नारीअंक
वर्ष
२२
संख्या
१

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम। गौरी-शंकर सीता-राम॥
जय रघुनन्दन जय सिया-राम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीता-राम॥

कोई सज्जन विज्ञापन भेजनेका कष्ट न उठावें।

कल्याणमें बाहरके विज्ञापन नहीं छपते।

समालोचनार्थ पुस्तकें कृपया न भेजें।

कल्याणमें समालोचनाका स्तम्भ नहीं है।

वार्षिक मूल्य भारतमें ७॥) विदेशमें १०) (१५ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका मूल्य ६≡) विदेशमें ८॥≈) (१२ शिलिङ्ग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

वर्ष २२]

नारी-अङ्क

[संख्या १
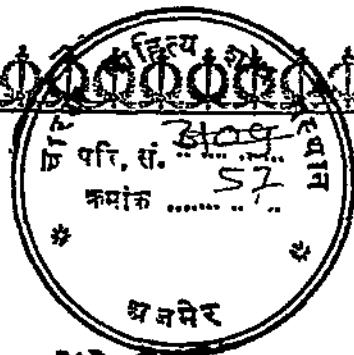
श्रीहरिः

कल्याण-प्रेमियों तथा ग्राहकोंसे निवेदन

नारी-अङ्कके प्रथम संस्करणकी १,०६,००० प्रतियाँ संवत् २००४ में छापी गयी थीं, जो बहुत शीघ्र बिक गयीं। तभीसे अनेक ग्राहकोंके अत्यन्त आग्रहपूर्ण पत्र बराबर आते रहे और वे लोग इसके पुनर्मुद्रणके लिये अनुरोध करते रहे, परंतु अनेक कठिनाइयोंके कारण यह कार्य अबतक न हो सका। अब यह १०,००० प्रतियोंका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

इस संस्करणमें प्रथम संस्करणकी तरह ही २ सुनहरे, ९ रंगीन, ४४ इकरंगे तथा १९८ इकरंगे लाइन चित्र पूरे-के-पूरे दिये गये हैं।

इस विशेषाङ्कका मूल्य पहलेवाला ही अर्थात् ६≈) ही रक्खा गया है। सजिल्द मँगवानेवालोंको १।) जिल्द चार्ज अलग लगेगा।

व्यवस्थापक—कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीहरिः

कल्याणके नियम

उद्देश्य—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ७॥) और भारतवर्षसे बाहरके लिये १०) (१५ शिलिङ्ग) नियत है। **बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।**

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं, किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो, तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

(७) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर दिसम्बरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला करेंगे।

(८) सात आना एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है; ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो ।≈) बाद दिया जा सकता है।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण' में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण' की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

(१०) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

(११) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।

(१२) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये। वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।

(१३) **प्रेस-विभाग और कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये।** 'कल्याण' के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १) से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

(१४) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

(१५) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर (नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें) पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(१६) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **व्यवस्थापक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे भेजने चाहिये।

(१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कुछ कम नहीं लिया जाता।

॥ श्रीहरिः ॥

नारी-अङ्ककी विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

आ—

संकलित

कविता

चित्रसूची

जगज्जननी श्रीसीताजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥

वर्ष २२ | गोरखपुर, सौर माघ २००४, जनवरी १९४८ | संख्या १
पूर्ण संख्या २५४

सीता-स्तवन

जयति श्रीजानकी भानु-कुल-भानु की,
प्राणप्रिय वल्लभे तरणि भूपे ।
राम आनंद-चैतन्यघन-विग्रहा,
शक्ति आह्लादिनी साररूपे ॥
जयति चितचरणचिन्तनि जेहि धरति हृत
काम-भय-कोह-मद-मोह-माया ।
रुद्र-विधि-विष्णु-सुर-सिद्ध-वंदितपदे,
जयति सर्वेश्वरी रामजाया ॥

कर्म-जप-योग-विज्ञान-वैराग्य लहि,
मोक्षहित योगि जे प्रभु मनावैं।
जयति वैदेहि सब शक्ति शिरभूषणे,
ते न तव दृष्टि बिनु कबहुँ पावैं॥
जयति जय कोटि ब्रह्माण्ड की ईशि,
जेहि निगम-मुनि बुद्धि तें अगम गावैं।
विदित यह गाथ अहदान-कुल-माथ सो
नाथ तव दान ते हाथ आवैं॥
दिव्य शत वर्ष जप-ध्यान जब शिव धर्‌यो,
राम गुरुरूप मिलि पथ बतायौ।
चितै हित लीन लखि कृपा कीन्ही तबै,
देवि, दुर्लभ देव-दरस पायौ॥
जयति श्रीस्वामिनी सीय-सुभ-नामिनी,
दामिनी कोटि निज देह दरसैं।
इंदिरा आदि दै मत्त-गज-गामिनी,
देव-भामिनी सबै पाँव परसैं॥
दुखित लखि भक्त बिनु दरस निज रूप तप-
यजन-जप-तंत्र तें सुलभ नाहीं।
कृपा करि पूर्णनवकंजदललोचना,
प्रकट भइ जनक-नृप-अजिर माहीं॥
रमित तव विपिन प्रिय प्रेम प्रगटन करन,
लंकपति-व्याज कछु खेल ठान्यौ।
गोपिका कृष्ण तव तुल्य बहु जतन करि,
तोहि मिलि ईश आनंद मान्यौ॥
हीन तव सुमुखि कै संग रहि रंक सों,
विमुख जो देव नहिं नाथ नेरौ।
अधम-उद्धरण यह जानि गहि शरण तव,
दास तुलसी भयौ आय चेरौ॥

(गो॰ तुलसीदासजी)

पञ्च-महाशक्ति

महाशक्तियाँ पाँच प्रमुख हैं—लक्ष्मी, सरस्वती, काली।
तारा, दुर्गा—ये सब-की-सब हैं अनन्त प्रभुताशाली॥

विश्वेश्वरी-स्तवन

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥

शरणागतकी पीड़ाका हरण करनेवाली देवी ! हमपर प्रसन्न होओ । अखिल जगत्की जननी ! प्रसन्न होओ । विश्वेश्वरि ! विश्वकी रक्षा करो । देवि ! तुम्हीं चराचर जगत्की अधीश्वरी हो ।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥

तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो । इस विश्वकी बीजरूपा परा माया हो । देवि ! तुमने इस समस्त जगत्को भलीभाँति मोहित कर रक्खा है । तुम्हीं प्रसन्न होनेपर इस पृथ्वीपर मोक्षकी प्राप्ति कराती हो ।

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥

देवि ! समस्त विद्याएँ तुम्हारे ही स्वरूपभेद हैं । जगत्में जितनी स्त्रियाँ हैं, सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं । जगदम्बे ! एकमात्र तुम्हारे ही द्वारा यह सारा विश्व व्याप्त है । तुम्हारी क्या स्तुति हो सकती है ? तुम स्तवन करने योग्य पदार्थोंसे परे और परा वाणी हो ।

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥

विश्वेश्वरि ! तुम विश्वका पालन करती हो । विश्वात्मिका हो, अतः समस्त विश्वको धारण करती हो । तुम विश्वाधिपतिकी भी वन्दनीया हो । जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने सिर झुकाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्वके आश्रयरूप हो जाते हैं ।

(दुर्गासप्तशती)

मातृ-स्तोत्र

व्यास उवाच

पितुरप्यधिका माता गर्भधारणपोषणात् ।
अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति विष्णुसमः प्रभुः ।
नास्ति शम्भुसमः पूज्यो नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

नास्ति चैकादशीतुल्यं व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
तपो नानशनात्तुल्यं नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

नास्ति भार्यासमं मित्रं नास्ति पुत्रसमः प्रियः ।
नास्ति भगिनीसमा मान्या नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

न जामातृसमं पात्रं न दानं कन्यया समम् ।
न भ्रातृसदृशो बन्धुर्न च मातृसमो गुरुः ॥

देशो गङ्गान्तिकः श्रेष्ठो दलेषु तुलसीदलम् ।
वर्णेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठो गुरुर्माता गुरुष्वपि ॥

पुरुषः पुत्ररूपेण भार्यामाश्रित्य जायते ।
पूर्वभावाश्रया माता तेन सैव गुरुः परः ॥

मातरं पितरं चोभौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित् ।
प्रणम्य मातरं पश्चात् प्रणमेत् पितरं गुरुम् ॥

माता धरित्री जननी दयार्द्रहृदया शिवा ।
देवी त्रिभुवनश्रेष्ठा निर्दोषा सर्वदुःखहा ॥

आराधनीया परमा दया शान्तिः क्षमा धृतिः ।
स्वाहा स्वधा च गौरी च पद्मा च विजया जया ॥

दुःखहन्त्रीति नामानि मातुरेवैकविंशतिम् ।
शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यः सर्वदुःखाद् विमुच्यते ॥

दुःखैर्महद्भिर्दूनोऽपि दृष्ट्वा मातरमीश्वरीम् ।
यमानन्दं लभेन्मर्त्यः स किं वाचोपपद्यते ॥

इति ते कथितं विप्र मातृस्तोत्रं महागुणम् ।
पराशरमुखात्पूर्वमश्रौषं मातृसंस्तवम् ॥
सेवित्वा पितरौ कश्चिद् व्याधः परमधर्मवित् ।
लेभे सर्वज्ञतां या तु साध्यते न तपस्विभिः ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्तिः कार्या तु मातरि ।
पितर्यपीति चोक्तं वै पित्रा शक्तिसुतेन मे ॥

व्यासजी कहते हैं—पुत्रके लिये माताका स्थान पितासे भी बढ़कर है; क्योंकि वह उसे गर्भमें धारण कर चुकी है तथा माताके द्वारा ही उसका पालन-पोषण हुआ है । अतः तीनों लोकोंमें माताके समान दूसरा कोई गुरु नहीं है । गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है, भगवान् विष्णुके समान कोई प्रभु नहीं है, शिवके समान कोई पूजनीय नहीं है तथा माताके समान कोई गुरु नहीं है । एकादशीके सदृश कोई त्रिभुवनविख्यात व्रत नहीं है, उपवासके समान कोई तपस्या नहीं है तथा माताके समान कोई गुरु नहीं है । भार्याके समान कोई मित्र नहीं है, पुत्रके समान कोई प्रिय नहीं है, बहिनके समान मान्य कोई स्त्री नहीं है तथा माताके समान कोई गुरु नहीं है । दामादके समान कोई दानका सुयोग्य पात्र नहीं है, कन्यादानके सदृश कोई दान नहीं है, भाईके समान बन्धु और माताके समान कोई गुरु नहीं है । देश वही श्रेष्ठ है, जो गङ्गाके समीप हो; पत्तोंमें तुलसीका पत्ता श्रेष्ठ है, वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है तथा गुरुजनोंमें माता ही सबसे श्रेष्ठ गुरु है । पुरुष पत्नीका आश्रय लेकर स्वयं ही पुत्ररूपमें जन्म लेता है, इस दृष्टिसे अपने पूर्वज पिताका भी आश्रय माता होती है; इसलिये वही सबसे श्रेष्ठ गुरु है । धर्मज्ञ पुत्र माता और पिता दोनोंको एक साथ देखनेपर पहले माताको प्रणाम करके पीछे पितारूपी गुरुको नमस्कार करे । माता, धरित्री, जननी, दयार्द्रहृदया, शिवा, त्रिभुवनश्रेष्ठा, देवी, निर्दोषा, सर्वदुःखहा, परम आराधनीया, दया, शान्ति, क्षमा, धृति, स्वाहा, स्वधा, गौरी, पद्मा, विजया, जया तथा दुःखहन्त्री—ये माताके ही इकीस नाम हैं । जो मनुष्य इन नामोंको सुनता और सुनाता है, वह सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है । बड़े-से-बड़े दुःखोंसे पीड़ित होनेपर भी भगवती माताका दर्शन करके मनुष्यको जो आनन्द मिलता है, उसे क्या वाणीद्वारा व्यक्त किया जा सकता है ?

ब्रह्मन् ! यह मैंने तुमसे परम गुणमय मातृस्तोत्रका वर्णन किया है । यह मातृ-स्तोत्र पूर्वकालमें मैंने अपने पिता श्रीपराशरजीके मुखसे सुना था । किसी परम धर्मज्ञ व्याधने केवल माता-पिताकी सेवा करके ही सर्वज्ञता प्राप्त कर ली, जो तपस्वियोंको भी सुलभ नहीं है । इसलिये पूर्ण यत्न करके माता और पिताके चरणोंमें भक्ति करनी चाहिये । यह बात मेरे पिता शक्तिनन्दन पराशरजीने मुझे बतायी थी ।

[बृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्ड, अध्याय २, श्लोक ३३ से ४७ तक [illegible]]

सती-माहात्म्य

(१)

अनुव्रजन्ती भर्तारं गृहात् पितृवनं मुदा ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥
व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ।
एवमुत्क्रम्य दूतेभ्यः पतिं स्वर्गं व्रजेत्सती ॥
यमदूताः पलायन्ते तामालोक्य पतिव्रताम् ।
तपनस्तप्यते नूनं दहनोऽपि च दह्यते ॥
कम्पन्ते सर्वतेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः ।
यावत्स्वलोमसंख्यास्ति तावत्कोट्ययुतानि च ॥
भर्त्रा स्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणा पतिव्रता ।
धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः ॥
धन्यः स च पतिः श्रीमान् येषां गेहे पतिव्रता ।
पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः ।
पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते ॥
पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद् भुवम् ।
सा तीर्थभूमिर्मान्येति नात्र भारोऽस्ति पावनः ॥
बिभ्यत् पतिव्रतास्पर्शं कुरुते भानुमानपि ।
सोमो गन्धर्व एवापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ॥
आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा ।
गायत्र्याघविनाशो नः पातिव्रत्येन साघनुत् ॥
गृहे गृहे न किं नार्यो रूपलावण्यगर्विताः ।
परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता ॥
भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ।
भार्या धर्मफलायैव भार्या संतानवृद्धये ॥
परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम् ।
देवपित्रतिथीनां च तृप्तिः स्याद् भार्यया गृहे ।
गृहस्थः स तु विज्ञेयो गृहे यस्य पतिव्रता ॥
यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् ।
तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सदनं पावनं भवेत् ॥

[स्कन्द० ब्रह्मखण्ड (धर्मारण्यखण्ड) अ० ७]

जो नारी अपने मृत पतिका अनुसरण करती हुई घरसे श्मशानकी ओर प्रसन्नताके साथ जाती है, वह पद-पदपर अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करती है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । जैसे सर्प पकड़नेवाला

सँपेरा साँपको उसके बिलसे बलपूर्वक निकाल लेता है, उसी प्रकार सती स्त्री अपने पतिको यमदूतोंके हाथसे छीनकर स्वर्गलोकमें जाती है। उस पतिव्रता देवीको देखकर यमदूत स्वयं भाग जाते हैं। पतिव्रताके तेजका अवलोकन करके सबको तपानेवाले सूर्यदेव स्वयं संतप्त हो उठते हैं, दूसरोंको जलानेवाले अग्निदेव भी स्वयं ही जलने लगते हैं तथा त्रिभुवनके सम्पूर्ण तेज काँप उठते हैं। अपने शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने अयुत कोटि (उतने ही खर्व) वर्षोंतक पतिव्रता स्त्री स्वर्गमें पतिके साथ विहार करती हुई सुख भोगती है। संसारमें वह माता धन्य है, वह पिता धन्य है तथा वह भाग्यवान् पति धन्य है, जिनके घरमें पतिव्रता स्त्री विराजती है। पतिव्रता स्त्रीके पुण्यसे उसके पिता, माता और पति—इन तीनोंके कुलोंकी तीन-तीन पीढ़ियाँ स्वर्गलोकमें जाकर सुख भोगती हैं। पतिव्रताका चरण जहाँ-जहाँ धरतीका स्पर्श करता है, वह स्थान तीर्थभूमिकी भाँति मान्य है। वहाँ भूमिपर कोई भार नहीं रहता; वह स्थान परम पावन हो जाता है। सूर्य भी डरते-डरते ही अपनी किरणोंसे पतिव्रताका स्पर्श करते हैं। चन्द्रमा और गन्धर्व आदि अपनेको पवित्र करनेके लिये ही उसका स्पर्श करते हैं, और किसी भावसे नहीं। जल सदा पतिव्रता देवीके चरण-स्पर्शकी अभिलाषा रखता है। वह जानता है कि 'गायत्रीके द्वारा जो हमारे पापका नाश होता है, उसमें उस देवीका पातिव्रत्य ही कारण है। पातिव्रत्यके बलसे ही वह हमारे पापोंका नाश करती है।' क्या घर-घरमें अपने रूप और लावण्यपर गर्व करनेवाली नारियाँ नहीं हैं? परन्तु पतिव्रता स्त्री भगवान् विश्वेश्वरकी भक्तिसे ही प्राप्त होती है। गृहस्थ-आश्रमका मूल भार्या है, सुखका मूल कारण भार्या है, धर्मफलकी प्राप्ति तथा संतानकी वृद्धिका भी भार्या ही कारण है। भार्यासे इहलोक और परलोक दोनोंपर विजय प्राप्त होती है। घरमे भार्याके होनेसे ही देवताओं, पितरों और अतिथियोंकी तृप्ति होती है। वास्तवमें गृहस्थ उसीको समझना चाहिये, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है। जैसे गङ्गामें स्नान करनेसे शरीर पवित्र होता है, उसी प्रकार पतिव्रताका दर्शन करके सम्पूर्ण गृह पवित्र हो जाता है।

(२)

पुरुषाणां सहस्रं च सती स्त्री च समुद्धरेत्।
पतिः पतिव्रतानां च मुच्यते सर्वपातकात्॥
नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा।
तया सार्धं च निष्कर्मा मोदते हरिमन्दिरे॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि।
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीषु तत्॥
तपस्विनां तपः सर्वं व्रतिनां यत्फलं व्रते।
दाने फलं च दातॄणां तत्सर्वं तासु संततम्॥
स्वयं नारायणः शम्भुर्विधाता जगतामपि।
सुराः सर्वे च मुनयो भीतास्ताभ्यश्च संततम्॥
सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा।
पतिव्रतां नमस्कृत्य मुच्यते पातकान्नरः॥
त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं क्षणेनैव पतिव्रता।
स्वतेजसा समर्था सा महापुण्यवती सदा॥

सतीनां च पतिः साध्वीपुत्रो निःशङ्क एव च।
न हि तस्य भयं किञ्चिद् देवेभ्यश्च यमादपि ॥
शतजन्मसुपुण्यानां गेहे जाता पतिव्रता।
पतिव्रताप्रसूः पूता जीवन्मुक्तः पिता तथा ॥
श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननं
न रत्नं स्त्रीभ्योऽन्यत् क्वचिदपि कृतं लोकपतिना।
तदर्थं धर्मार्थौ सुतविषयसौख्यानि च ततो
गृहे लक्ष्म्यो मान्याः सततमबला मानविभवैः ॥
ये ह्यङ्गनानां प्रवदन्ति दोषान्
वैराग्यमार्गेण गुणान् विहाय।
ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः
सद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम् ॥

[वाराहमिहिरकृत बृहत्संहिता]

सती स्त्री सहस्रों पुरुषोंका उद्धार कर देती है। पतिव्रताका पति सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। सतियोंके व्रतके प्रभावसे उनके पतिको कर्मका भोग नहीं भोगना पड़ता। वह सब कर्मोंके बन्धनसे रहित हो सती पत्नीके साथ भगवान् विष्णुके धाममे आनन्दका अनुभव करता है। पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सब सती-साध्वी स्त्रीके चरणोंमें लोटते हैं। सम्पूर्ण देवताओं और मुनियोंका जो तेज है, वह सब सती नारियोंमें स्वभावतः रहता है। तपस्वी जनोंका सारा तप, व्रत करनेवालोंके व्रतका सम्पूर्ण फल तथा दाताओं-के दानका भी समस्त फल मिलकर जितना होता है, वह सब पतिव्रता देवियोंमें व्याप्त रहता है। साक्षात् भगवान् नारायण, भगवान् शिव, जगद्विधाता ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण देवता और महर्षि भी पतिव्रताओंसे सदा डरते रहते हैं। सतीकी चरणधूलि पड़नेसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। पतिव्रताको मस्तक झुकाने-से मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। महापुण्यवती पतिव्रता स्त्री सदा अपने तेजसे तीनों लोकोंको क्षणभर-में भस्म कर डालनेकी शक्ति रखती है। पतिव्रताका पति तथा उसका पुत्र—ये दोनों सदा निर्भय रहते हैं। उन्हें देवताओं और यमसे भी किञ्चित् भय नहीं होता। जो सौ जन्मोंसे उत्तम पुण्यका संचय करते आ रहे हैं, उन्हींके घरमें पतिव्रता कन्या जन्म लेती है। पतिव्रताको जन्म देनेवाली माता परम पवित्र है तथा उसके पिता भी जीवन्मुक्त हैं। समस्त लोकोंकी रचना करनेवाले विधाताने कहीं भी स्त्रियोंके सिवा दूसरा कोई ऐसा रत्न नहीं उत्पन्न किया है, जो देखने, सुनने तथा स्पर्श और स्मरण करनेपर भी मनुष्यों-को आनन्द प्रदान करनेवाला हो। उन्हींके लिये धर्म और अर्थका संग्रह होता है। पुत्र-विषयक सुख उन्हींसे प्राप्त होता है। अतः मान ही जिनका धन है, ऐसे श्रेष्ठ पुरुषोंको उचित है कि वे घरमें अबलाओं-को गृह-लक्ष्मी समझकर सदा उनका आदर करें। [जो लोग केवल वैराग्यमार्गका सहारा ले स्त्रियोंके गुणोंको छोड़कर सिर्फ उनके दोषोंका वर्णन करते हैं, वे दुर्जन हैं—ऐसा मेरे मनका अनुमान है। वे दोष-वाक्य उनके मुखसे सद्भावनासे प्रेरित होकर नहीं निकले हैं।]

पति-स्तोत्र

नमः कान्ताय भर्त्रे च शिवचन्द्रस्वरूपिणे ।
नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च ॥
नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणपराय च ।
नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः ॥
पञ्चप्राणाधिदेवाय चक्षुपस्तारकाय च ।
ज्ञानाधाराय पत्नीनां परमानन्ददायिने ॥
पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिरेव महेश्वरः ।
पतिश्च निर्गुणाधारब्रह्मरूपो नमोऽस्तु ते ॥
क्षमस्व भगवन् दोषं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ।
पत्नीबन्धो दयासिन्धो दासीदोषं क्षमस्व च ॥

शिव (कल्याणमय) और चन्द्र (आह्लादमय) जिनके स्वरूप हैं, जो शान्त (जितात्मा), दान्त (जितेन्द्रिय) तथा सम्पूर्ण देवताओंके आश्रय हैं, सती नारीके कमनीय भर्ता उन पति-परमेश्वरको नमस्कार है । ब्रह्मस्वरूप, सतीके लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय, वन्दनीय, पूज्य तथा हृदयाधार आप पति देवताको प्रणाम है । जो पाँचों प्राणोंके अधिदेवता, नयनोंके तारे, ज्ञानके आधार तथा पत्नीको परमानन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन पति भगवान्‌को नमस्कार है । पति ही ब्रह्मा, पति ही विष्णु और पति ही महेश्वर हैं । निर्गुण एवं सबके आधारभूत ब्रह्म भी पति ही हैं; ऐसी महिमावाले आप पूज्य पतिदेवको प्रणाम है । भगवन् ! पत्नीके एकमात्र बान्धव ! दयासागर ! इस दासीसे जानकर या अनजानमें जो अपराध बन गये हों, उन्हें क्षमा कीजिये । अपनी इस सेविकाके सारे दोष माफ कीजिये ।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्यादौ पद्मया कृतम् ।
सरस्वत्या च धरया गङ्गया च पुरातनम् ॥
सावित्र्या च कृतं पूर्वं ब्रह्मणे चापि नित्यशः ।
पार्वत्या च कृतं भक्त्या कैलासे शङ्कराय च ॥
मुनीनां च सुराणां च पत्नीभिश्च कृतं पुरा ।
पतिव्रतानां सर्वासां स्तोत्रमेतच्छुभावहम् ॥

सृष्टिके प्रारम्भकालमें लक्ष्मी, सरस्वती, पृथ्वी और गङ्गा देवीने इस परम पुण्यमय पुरातन स्तोत्रका पाठ किया था । सावित्रीने भी पहले ब्रह्माजीके प्रति नित्य ही इस स्तुतिका उपयोग किया है । पार्वतीने भी कैलासमे शङ्करजीके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ किया है । इसी प्रकार देवताओं और ऋषियोंकी पत्नियोंने भी अपने-अपने पतिके लिये पूर्वकालमें इस स्तोत्रका पाठ किया है । यह स्तोत्र सभी पतिव्रताओंके लिये कल्याणकारी है ।

नारीकी विविध रूपोंमें वन्दना

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः । ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः । नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै । ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या । भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥

(दुर्गासप्तशती अ० ५ । ९—८२)

देवीको नमस्कार है, महादेवी शिवाको सर्वदा नमस्कार है । प्रकृति एवं भद्राको प्रणाम है । हमलोग नियमपूर्वक जगदम्बाको नमस्कार करते हैं । रौद्राको नमस्कार है । नित्या, गौरी एवं धात्रीको बारंबार नमस्कार है । ज्योत्स्नामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपा देवीको सतत प्रणाम है । शरणागतोंका कल्याण

करनेवाली वृद्धि एवं सिद्धिरूपा देवीको हम वारंवार नमस्कार करते हैं। नैर्ऋती (राक्षसोंकी लक्ष्मी), राजाओंकी लक्ष्मी तथा शर्वाणी (शिवपत्नी)-स्वरूपा आप जगदम्बाको वार-वार नमस्कार है। दुर्गा, दुर्गपारा (दुर्गम संकटसे पार उतारनेवाली), सारा (सबकी सारभूता), सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रादेवीको सर्वदा नमस्कार है। अत्यन्त सौम्य तथा अत्यन्त रौद्ररूपा देवीको हम नमस्कार करते हैं, उन्हें हमारा वारंवार प्रणाम है। जगत्की आधारभूता कृति देवीको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें विष्णुमायाके नामसे कही जाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें चेतना कहलाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें बुद्धिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें निद्रारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें क्षुधारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें छायारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें तृष्णारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें क्षान्ति (क्षमा) रूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें जातिरूपसे स्थित है, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें लज्जारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें शान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें श्रद्धारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें कान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें लक्ष्मीरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें वृत्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमे स्मृतिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें दयारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें तुष्टिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें मातारूपसे स्थित हैं उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। जो देवी सब प्राणियोंमें भ्रान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार, है। जो देवी जीवोंके इन्द्रियवर्गकी अधिष्ठात्री देवी एवं सब प्राणियोंमें सदा व्याप्त रहनेवाली हैं, उन व्याप्तिदेवीको वारंवार नमस्कार है। जो देवी चैतन्यरूपसे इस सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित है, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको वारंवार नमस्कार है। पूर्वकालमें अपने अभीष्टकी प्राप्ति होनेसे देवताओंने जिनकी स्तुति की तथा देवराज इन्द्रने बहुत दिनों-तक जिनका सेवन किया, वह कल्याणकी साधनभूता ईश्वरी हमारा कल्याण और मङ्गल करें तथा सारी आपत्तियोंका नाश कर डालें। उद्दण्ड दैत्योंसे सताये हुए हम सभी देवता जिन परमेश्वरीको इस समय नमस्कार करते है तथा जो भक्तिसे विनम्र पुरुषोंद्वारा स्मरण की जानेपर तत्काल ही सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश कर देती हैं, वे जगदम्बा हमारा संकट दूर करें।

नारी हो या नर—मनुष्य-जीवनका परम और चरम लक्ष्य है भगवत्प्राप्ति* या मुक्ति। समस्त दुःख-क्लेश, समस्त बन्धन और सब प्रकारके अभावोंकी आत्यन्तिक निवृत्तिका नाम ही मुक्ति है। इस मुक्तिको लक्ष्यमें रखकर ही मनुष्यको मुक्ति प्राप्त करनेके उपायस्वरूप धर्मका साधन करना चाहिये। जो कार्य भगवत्प्राप्तिके अनुकूल है, वही धर्म है; और जो प्रतिकूल है, वही अधर्म है। धर्म कर्तव्य है और अधर्म त्याज्य। इस धर्मका साधन होता है बुद्धि, मन और इन्द्रियोंके सम्यक् शास्त्रीय व्यवहारसे। अतएव इसमें शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक और मानसिक समृद्धि और जीवन-निर्वाहके योग्य कार्योंकी उपेक्षा नहीं है; वरं जीवनोपयोगी समस्त कार्योंको मोक्षोपयोगी बनाकर ही मुक्ति-पथपर अग्रसर होना है। इसलिये अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चतुर्विध पुरुषार्थ हैं। मोक्षके अनुकूल धर्म हो, धर्मसम्मत अर्थ हो और जीवन-धारणोपयोगी धर्मसम्मत ही कामोपभोग हो। धर्मसम्मत अर्थ और काम वही होगा, जो मोक्षके अनुकूल हो और अपने साथ ही समस्त परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व—किसीका भी परिणाममें अहित करनेवाला न होकर सबका हित करनेवाला हो।

इसी दृष्टिसे वर्णाश्रमका निर्माण और प्रत्येक व्यक्तिके लिये शास्त्रोंमें तदनुकूल कर्तव्य-कर्मका आदेश है। उद्देश्य—एकमात्र भगवत्प्राप्ति अर्थात् ऐहिक-पारलौकिक सात्त्विक सुख-सम्पत्ति तथा शान्तिका उपभोग करते हुए अन्तमें समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर सच्चिदानन्दघन परमात्मस्वरूपमें अखण्ड स्थिति। और साधन है एकमात्र इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये भीतरी-बाहरी जीवनका सम्यक् नियन्त्रण और नियोजन करते हुए श्रद्धा तथा निष्ठापूर्वक स्वधर्मका पालन।

नरकी भाँति नारीको भी भगवत्प्राप्ति करनी है, परंतु उसके लिये साधनका स्वरूप नरके साधनकी अपेक्षा विलक्षण है। नारीका स्वधर्म नरके स्वधर्मसे पृथक् है। पृथक् न हो तो वह परिवार, समाज और राष्ट्रमें विशृङ्खलता उत्पन्न करनेवाला हो जाय एवं इसलिये परिणाममें उनका अहितकारी होनेसे धर्म न रहकर 'अधर्म' बन जाय। नरका निर्माण, संरक्षण और संवर्धन नारी ही करती है। नारी यदि इस स्वधर्मसे च्युत हो जाय और नरके धर्मको ग्रहण करने लगे तो नरका अस्तित्व ही नहीं रहे। फलतः नारीका अस्तित्व भी संकटापन्न हो जाय। नर-नारी दोनोंको लेकर ही विश्व और विश्वके समस्त धर्मोंका अस्तित्व है। ये न रहें तो विश्व ही न रहे। अतएव नारीको स्वधर्ममें स्थित रहकर ही अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होना है। इसीलिये नरकी जननी, नरकी सहधर्मिणी, नरकी संरक्षिका नारी घरमें रहती है और इसीलिये वह पतिमें भगवद्बुद्धि करके अपनी चित्तवृत्तिको सर्वथा भगवत्स्वरूपाकार बनाकर अन्तमें समस्त बन्धनोंसे छूटकर पतिलोक अर्थात् भगवान्के दिव्यधामस्वरूप मुक्तिको सहज ही प्राप्त हो जाती है।

पतिको परमेश्वररूपसे माननेका यही अभिप्राय है कि नारी घरमें रहकर नरका निर्माण, संरक्षण और संवर्धन करती हुई भगवत्-संकल्परूप विश्वकी सेवाके द्वारा भगवान्की सेवा करे; और 'पति परमेश्वर हैं', 'पतिसे विवाह परमेश्वरसे विवाह है',

---

* इन्द्रिय और उनके भोगोंका ज्ञान तो सभी योनियोंमें है, परंतु सदसत्का विवेक केवल मनुष्यमें ही है। पशुको डंडेके भयसे विषयभोगसे हटाया जा सकता है, विषयोंका दोष समझाकर नहीं। मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो विवेकके द्वारा भगवद्विमुख विषयभोगके दोष और भगवत्प्राप्तिके महत्त्वको समझता है और उसीको जीवनका परम लक्ष्य बनाता है। जो मनुष्य भगवत्प्राप्तिको जीवनका लक्ष्य नहीं बनाता, वह तो पशुसे भी गया-गुजरा है। पशु तो बेचारा विवेक न होनेके कारण इस बातको नहीं समझता, परंतु मनुष्य तो विवेकका दुरुपयोग करता है।

'पतिका सांनिध्य परमेश्वरका सांनिध्य है', 'पतिका घर परमेश्वरका मन्दिर है', 'पतिकी सेवा परमेश्वरकी सेवा है', 'पतिका आज्ञापालन परमेश्वरका आज्ञापालन है', 'पतिको सुख पहुँचानेकी चेष्टा परमेश्वरकी प्रसन्नताका हेतु है, और पतिको सर्वस्व-समर्पण परमेश्वरको सर्वार्पण है'—इस प्रकार बार-बार चित्त-की वृत्तिको पतिके व्याजसे परमेश्वरमें लगाती हुई तद्गतचित्त, तद्गतबुद्धि और तदात्मा होकर अन्तमें परमेश्वरको प्राप्त कर ले। नियम यही है। श्रीभगवान्-ने गीतामें कहा है—

> तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
> गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥
> (५ । १७)

'जिनकी बुद्धि और जिनका मन तद्रूप (परमात्म-रूप) हो गया है, जिनकी निष्ठा उन परमात्मामें ही है, ऐसे तत्-(परमात्म-) परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्तिरूप मुक्तिको प्राप्त करते हैं।'

पतिव्रताकी ठीक यही स्थिति होती है। वह एक पतिके सिवा अन्य किसीको जानती ही नहीं, और सब प्रकारसे पतिके साथ घुल-मिलकर एक हो जाती है। इसीसे पतिव्रताका आदर्श ही भक्तिका सर्वोत्तम आदर्श माना गया है और इसीसे पतिव्रताके सामने समस्त देवता सिर झुकाते हैं।

पतिव्रता स्त्री पतिसे अभिन्न होती है। मनु महाराजने कहा है—"जो भर्ता है, वही भार्या है—'यो भर्ता सा स्मृताङ्गना' (९ । ४५) और दोनोंको मरणपर्यन्त परस्पर अनुकूल रहकर अर्थ-धर्म-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्गको प्राप्त करना चाहिये—स्त्री-पुरुषोंका संक्षेपमें यही परम धर्म है।"

> अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः ।
> एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥
> (९ । १०१)

शिशुपालन, गृहरक्षण आदि छोटे काम हैं और लेख लिखना, व्याख्यान देना, दफ्तरोंमें नौकरी करना बड़ा काम है—ऐसा मानना भूल है। वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो जितने महत्त्वका काम पालना है, उतना दूसरा है ही नहीं। फिर, कामकी लघुता-महत्ता तो मनकी भावनाके अनुसार हुआ करती है। चर्खा कातनेको लोग बहुत छोटा काम समझते थे और बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ ही फुरसतसे इस कामको किया करती थीं। परंतु पिछले दिनों जब श्रीगांधी-जीने इसके महत्त्वकी घोषणा की, तब पण्डित मोतीलाल नेहरू, पण्डित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपत राय और श्रीचित्तरञ्जनदास-सरीखे आजीवन कलम चलानेवाले लोगोंने भी चर्खा चलाया और उनकी बड़ाई हुई। इस प्रकार स्वधर्ममें निष्ठा और उपादेय-बुद्धि होनेपर स्वतः ही वह महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

इस समय जो स्वधर्म-पालनमें शिथिलता और परधर्म-पालनमें उत्साह दिखायी देता है, इसका कारण है भारतीय ऋषि-मुनि-प्रणीत शिक्षासे पराङ्मुखता। आजका भारत अपनी पुनीत प्राचीन शिक्षासे वञ्चित है और नवीन विपरीत ज्ञान उत्पन्न करनेवाली पर-शिक्षासे अभिभूत है। वह सीखता है—

(१) संसारमें क्रम-विकास होता है अर्थात् संसारकी सभी बातोंमें उत्तरोत्तर उन्नति होती है। (२) कुछ ही हजार वर्ष पहलेका कोई इतिहास नहीं प्राप्त होता। (३) आर्य इस देशके निवासी नहीं थे। और (४) धर्म समयानुसार बदलनेवाली चीज है। इसका परिणाम स्वाभाविक ही यह हुआ कि उसकी अपने गौरवमय अतीतसे, अपने त्रिकालज्ञ, सर्वविद्याविशारद, अलौकिक बुद्धिसम्पन्न, महान् तेजस्वी, सर्व-विधसम्पन्न पूर्वपुरुषोंसे, अपने प्राचीन सुख-समृद्धि और ज्ञानैश्वर्यपूर्ण स्वदेशसे और त्रिकालाबाधित धर्मसे श्रद्धा उठ गयी। वह समझने लगा कि 'पहले सर्वथा अवनति थी, क्रम-क्रमसे उन्नति हुई है। इस समय जैसी उन्नति है, वैसी पहले कभी नहीं थी। अतएव सुख-समृद्धिमें, ज्ञान-विज्ञानमें, विद्या-बुद्धिमें, प्रभाव-ऐश्वर्यमें आजका मानव जितना उन्नत है उतने न तो कभी हमारे पूर्वपुरुष उन्नत थे, न देश

उन्नत था और न संस्कृति उन्नत थी। बल्कि जितना ही पुराना काल था, उतनी ही अधिक अवनति थी; वेद, पुराण, महाभारत, रामायण आदि जितने ग्रन्थ हैं, वे सब इतिहास-युगके अर्थात् चार हजार वर्षसे इधर-इधरके लिखे हुए हैं और वे सभी प्रायः काव्य हैं—कविके मस्तिष्ककी उपज हैं। अतएव उनमें जो लाखों-करोड़ों वर्षों पहलेका गौरवमय वर्णन है, वह मिथ्या है। (बल्कि कई विद्वान् कहानेवाले लोग तो चार हजार वर्ष पहलेके कालको वेद-काल और पंद्रह सौ वर्ष पहलेके कालको रामायण-काल या राम-राज्यका काल मानते हैं।) धर्म सामाजिक नियम है और समाजकी परिस्थितिके अनुसार बदलनेवाला है। धर्मशास्त्रोंमें जो विधि-निषेधका वर्णन करके उनका पारलौकिक फल बतलाया है, वह लोगोंको नियन्त्रणमें रखनेके लिये कहा गया है। वस्तुतः वैसा होता नहीं है। और इस देशमें आर्य कभी रहते ही नहीं थे। अतएव लाखों, करोड़ों वर्षोंका जो यहाँका वर्णन है एवं उसमें जो आर्यगाथाएँ हैं, वे सभी कल्पित हैं।'

जब भारतने इस प्रकार समझा तो उसकी अपनी संस्कृतिसे, अपने पूर्वपुरुषोंसे, अपने धर्मसे और अपने यथार्थ देशसे अनास्था हो गयी। और वर्तमान उन्नत कहलानेवाले देशों और राष्ट्रोंको ही आदर्श मानकर वह तदनुकूल अपने जीवनका निर्माण करनेमें लग गया। जहाँ-जहाँ वर्तमान आदर्शोंसे उसको अपना आचरण या अपना आदर्श प्रतिकूल दिखायी दिया, वहीं-वहीं उसने सुधारकी आवश्यकता समझी, अर्थात् उस अपने आचरण और आदर्शको समूल नष्ट करके उसकी जगह वर्तमान उन्नत कहलानेवाले आचरण और आदर्शके स्थापनकी आवश्यकता समझी और तदनुसार प्रयत्नमें लग गया। इसी प्रयत्नको उसने देशसेवा, मानव-सेवा और धर्म-पालन समझ लिया एवं इस प्रकार वह अपने सर्वनाशमें ही संरक्षण, अपने सांस्कृतिक रूपके आमूल परिवर्तनमें ही उन्नति या विकास समझकर उसीमें लग गया और उत्तरोत्तर उन्नतिकी धारणाके कारण आज भी उसीमें लग रहा है। आज प्राचीनका संहार और नवीनका स्थापन इसीलिये आँखें मूँदकर चल रहा है और इसीलिये नवयुग, नवभारत, नवजीवन, नव-धर्म और नव-निर्माणके नारे लग रहे हैं। आज सारा देश इसी प्रवाहमें प्रवाहित है। और इसीसे भारतीय नारीके स्वरूपमें भी परिवर्तन हो रहा है; क्योंकि इस प्राचीन आदर्शके संहाररूप परिवर्तनमें ही मोहवश आजका नर और उसीके सदृश शिक्षा-प्राप्त नारी सच्चे हृदयसे अपनी तथा देशकी उन्नति मान रही है। नैतिक और सांस्कृतिक दिशामें जिस नारीका स्थान सबसे ऊँचा था, उसीके लिये आज यह कहा जा रहा है कि "भारतीय शास्त्रों, आचारों और प्रथाओंने नारीकी शक्तिको दबाया, उसे कुचला और उसका सर्वनाश कर दिया। अब नारी इस 'सर्वनाश' के दलदलसे निकलकर स्वतन्त्र और सुखी होगी।" वस्तुतः आज उनकी उन्नतिका आदर्श है यूरोप। अतः वे यूरोपकी निन्दा करते हुए भी सब यूरोपके ही पदानुगामी होकर उसीका अन्धानुकरण कर रहे हैं। *

* विचारशील विदेशी विद्वान् भारतीय हिंदुओंकी प्राचीन सामाजिक रीतियोंपर मुग्ध होकर उनका गुणगान करते हैं। श्रीफ्रेडरिक पिनकाट महोदय कहते हैं—

'इस प्रकार मान लेनेमें कोई भी शङ्का नहीं हो सकती कि करोड़ों बुद्धिमान् पुरुष हजारों वर्षोंसे जिन सामाजिक रीतियोंको व्यवहारमें ला रहे हैं, उनके भीतर ऐसा कोई तत्त्व अवश्य होगा जिसके कारण उन्हें हम मूर्खता या अत्याचार कहकर दोषपूर्ण नहीं ठहरा सकते। हिंदुओंके सम्बन्धमें यह बात निःसंकोचरूपसे स्वीकार की जा सकती है, जिनके बारेमें मैक्समूलरने ठीक ही कहा है कि 'यह दार्शनिकोंकी जाति है।' यह निश्चित है कि हिंदुओंकी समस्त धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था उनके शत-शत-वर्षव्यापी गम्भीर चिन्तन तथा सावधानीसे लिपिबद्ध किये हुए अनुभवके फलस्वरूप हैं। हम अंग्रेजलोग उन्हें यान्त्रिक कलाओं तथा प्रयोगमूलक विज्ञानके विषयमें जो कुछ सिखा सकें, सामाजिक विज्ञानके विषयमें हम उन्हें कुछ भी नहीं सिखा सकते। जिनसे समाजमें सुख-समृद्धि तथा शान्तिकी प्रतिष्ठा हो, ऐसे सभी उपायोंको हिंदुओंने बहुत पहलेसे प्रकृतिके शाश्वत तथ्यों

इसीसे आज सर्वत्र अधिकारकी पुकार है। आज भारत सर्वथा आत्मविस्मृत है, वह मस्तिष्कसे गुलाम हो गया है। शरीर भले ही स्वतन्त्र हो, पर अन्तर तो दूसरोंके दासत्वको भलीभाँति स्वीकार कर चुका है। यही इस युगकी महान् देन है पुराने भारतवर्षको—आर्यावर्तको और सबसे प्रधान और सुसभ्य प्राचीन आर्यजातिको !!

भारतीय आदर्श है कर्तव्यपालन और यूरोपका आदर्श है अधिकारप्राप्ति । कर्तव्यपालनमें सबके अधिकार अपने-आप ही सुरक्षित रहते हैं और अधिकारकी छीना-झपटीमें किसीका भी अधिकार सुरक्षित नहीं है; क्योंकि अधिकार अंधा होता है। वह केवल अपना ही स्वार्थ देखता है। उसे दूसरेके हितकी जरा भी परवा नहीं होती। इसके विपरीत कर्तव्य प्रकाशरूप होता है, वह पर-हितके लिये त्याग करता है। इसलिये सभीको उनके प्राप्य अधिकार अपने-आप मिल जाते हैं। कर्तव्य त्यागके द्वारा सबकी रक्षा करता है और कर्तव्यशून्य अधिकार प्रहार करके सबका संहार करना चाहता है। इसीसे आज राजा-प्रजा, पूँजीपति-मजदूर, जमींदार-किसान, ब्राह्मण-अब्राह्मण, अड़ोसी-पड़ोसी, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य और भाई-भाई आदि सभीमें झगड़ा है और वह झगड़ा यहाँतक बढ़ा है कि आज 'दो देह, एक प्राण' पति-पत्नीमें भी अधिकारका प्रश्न आ गया है। इसीसे यूरोप आदिमें जैसे मजदूरोंके यूनियन (सङ्घ) हैं, वैसे ही पत्नियोंके भी यूनियन बने हैं और जैसे मजदूर अपने अधिकारोंके लिये लड़ते हैं, माँगें पेश करते हैं, हड़ताल करते हैं, वैसे ही 'पत्नी-सङ्घ' भी सामूहिकरूपसे पतियोंसे अधिकारकी माँग करता है। *

कर्तव्यपालनसे जो नारी घरकी रानी बनती है, घरमें सबपर एकच्छत्र शासन करती है, वही अधिकारकी चिन्तामें पड़कर कर्तव्यशून्य हो आज राजमार्गपर नारे लगाती फिरती है। याद रखना चाहिये—कर्तव्यपालनमें त्याग है और त्यागसे ही नारीके अधिकारकी रक्षा होती है। नारों और आन्दोलनोंसे तो अधिकार छिनेगा ही !

पति पत्नीका अर्धाङ्ग है और पत्नी पतिका। दोनों मिलकर एक पूरा होता है। जरा विचारो—यदि प्रत्येक आधा-आधा अपनी-अपनी ओर खींचने लगे और जोर पड़नेपर यदि बीचसे फटकर दोनों आधे अलग-अलग हो जायँ तो क्या दशा होगी। दोनों ही मर जायँगे। पर इसके विपरीत यदि दोनों परस्पर दृढ़तासे सटे रहें, एक-दूसरेके सहायक रहकर परस्पर पुष्टि-तुष्टि करते रहें तो दोनों अत्यन्त सुखी रहेंगे और दोनोंकी एकतामें बड़ा विलक्षण सौन्दर्य और माधुर्य निखर उठेगा। संसारका काम भी तभी सुचारुरूपसे चलेगा।

पति और पत्नी दो पहिये हैं, जो गृहस्थकी गाड़ीको एक दूसरेको समान बल और सहयोग देते हुए चलाते हैं। पर वे तभी ऐसा कर सकते हैं, जब दोनों पहिये दो ओर लगे हों और स्वस्थ तथा गतिशील हों। पर दोनों यदि एक ओर लगा दिये जायँ तो गाड़ी नहीं चल सकती और न एक पहिया कमजोर हो

आधारपर स्थापित किये हुए सुव्यवस्थित नियमोंका रूप दे रक्खा है। उन सब विधानोंमें यदि हम अपने [illegible] छेड़नेकी चेष्टा करें तो उससे हानिकी ही सम्भावना है। उसके परिणामस्वरूप हिंदुओंमें भी परस्परविरोधी [illegible] बेतुका संघर्ष प्रारम्भ हो जायगा, जो हमारी यहाँकी निन्दनीय सामाजिक अवस्थाका निदर्शक है।'

* अभी कुछ ही दिनों पहलेकी बात है 'ब्रिटेनके विवाहिता नारीसङ्घ (Married Womens' Union)' ने [illegible] नया आन्दोलन शुरू किया है। वहाँ तलाकके मुकद्दमोंमें व्यभिचारिणी स्त्रीके पतिको उस [illegible] हर्जाना दिलाया जाता है। अब 'महिलासङ्घ' कहता है कि 'जो स्त्री दूसरेके साथ [illegible] है, उसका [illegible] निर्धारित करता है पर जो घरके कामोंमें पिसती है, उसका कोई मूल्य नहीं। अतः [illegible] चाहिये।' मतलब यह कि भगानेवाले बदमाशोंपर जो थोड़ा-बहुत हर्जानेका डर है, वह भी न रहे।

जाय या उसकी चाल रुक जाय, तभी गाड़ी चल सकती है। आज लोग कहते हैं कि 'दोनोंके समान अधिकार हैं। इसलिये दोनोंको समान कार्य करने चाहिये।' पर वे यह नहीं सोचते कि दोनों समान कार्य करने लगेंगे तो जैसे दोनों पहिये एक ओर लगा दिये जानेपर गाड़ी उलट जाती है, वही दशा गृहस्थीकी होगी और दोनोंके एक ओर लगनेपर एक दूसरेको समान बल मिलना असम्भव होनेसे दोनोंकी ही चाल बंद हो जायगी तथा दोनों ही निकम्मे हो जायँगे।

इसीलिये विवाह-संस्कारके द्वारा गृहस्थके संचालनके लिये स्त्री-पुरुषरूपी दोनों पहिये—एक घरकी ओर तथा एक बाहरकी ओर—जोड़ दिये जाते हैं। ये पहिये जुड़े कि गृहस्थकी गाड़ी चली और धर्म-सम्पादन आरम्भ हुआ। यही धर्म—दोनों ओर दोनोंके द्वारा अपने-अपने क्षेत्रके अनुकूल कार्य—स्वधर्म है और यही मोक्षोपयोगी है।

कहा जाता है कि पुरुष स्वतन्त्र है और स्त्री परतन्त्र है; परंतु यदि ध्यानसे देखा जाय तो पता लगेगा कि दोनों ही शास्त्रपरतन्त्र हैं। परतन्त्रताका स्वरूप पृथक्-पृथक् है। नारीके बिना पुरुष अधूरा है और पुरुषके बिना नारी अधूरी है। दोनोंका अविनाभाव-सम्बन्ध है। दोनोंको ही एक दूसरेकी अनिवार्य आवश्यकता है। दोनोंमें ही परस्पर सहकारिता, सहयोग और सौहार्द तथा एकात्मता होनी चाहिये। दोनोंमें जातिगत निन्दनीय दोष भी हैं और दोनोंमें जातिगत श्लाघ्य गुण भी हैं। इसके अतिरिक्त पूर्व-संस्कार तथा वर्तमान वातावरणके अनुसार व्यक्तिविशेषमें व्यक्तिगत दोष-गुण भी होते ही हैं। अतएव न तो सर्वथा निन्दा या प्रशंसाका पात्र पुरुष है और न नारी ही है। जो एककी निन्दा करके दूसरेकी प्रशंसा करते हैं, वे पक्षपात या भ्रमसे ही ऐसा करते हैं। जगत्‌की रचना ही प्रकृतिको लेकर हुई है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है, अतएव जगत्‌का कोई भी प्राणी त्रिगुणसे रहित नहीं है। विशेष-विशेष कारणोंसे किसीमें सत्त्व अधिक होता है तो किसीमें रजोगुण अथवा किसीमें तमोगुण कोई भी प्राणी इनसे मुक्त नहीं है। फिर नर या नारी ही इनसे कैसे मुक्त होंगे। व्यवहारमें यदि हार्दिक प्रेम हो तो अपने-आप ही दोष-दर्शन नहीं होगा और फलतः एक-दूसरेके गुण देखनेसे सहज ही एक दूसरेमें प्रेमकी वृद्धि होगी। यही पति-पत्नीका परम मनोहर प्रेम-सम्बन्ध है।

इन सब बातोंको समझकर ही हिंदू-गृहस्थ (नर और नारी) अपने-अपने स्वधर्ममें स्थित रहते हैं और सुख-शान्तिपूर्वक जीवन बिताकर अन्तमें परमात्माको प्राप्त हो सकते हैं। यह याद रखना चाहिये कि जहाँ प्रेम है, वहीं आनन्द है और जहाँ द्वेष है, वहीं दुःख है। प्रेम रहेगा तो जीवनमें सुख-शान्ति रहेगी ही। सुख-शान्तिमें मन अचञ्चल रहेगा। चञ्चलतारहित स्थिर मनसे ही भगवान्‌का चिन्तन होगा और उसीका परिणाम होगा—परम शान्ति, मुक्ति या भगवान्‌की प्राप्ति। भारतीय नर-नारी इस मुक्तिपथपर चलकर अपने जीवनको धन्य करें और सारे जगत्‌के सामने महान् आदर्श उपस्थित करें। तभी उनका और जगत्‌का कल्याण होगा। कल्याणमय भगवान् सबका कल्याण करें।

'शिव'

हिंदू-नारीका गौरवपूर्ण पद

हिंदू-नारीका शरीर पवित्र होता है। कोई मनुष्य सबके सामने अँगुलियोंके अग्रभागसे भी उन्हें स्पर्श नहीं कर सकता। कितनी ही हीन दशा उनकी क्यों न हो, बड़े-से-बड़े लोग भी उनके लिये आदरपूर्वक 'माता' का ही सम्बोधन करते हैं।—फादर अबे ड्यूबो

नारी-धर्म

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामि श्री[illegible] सरस्वतीजी महाराज [illegible])

भारतीय समाजमें नारी एक विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थानपर प्रतिष्ठित है। आर्यपुरुषने सदा ही उसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी माना है। इतना ही नहीं, व्यवहारमें पुरुष-मर्यादासे नारी-मर्यादा सदा ही उत्कृष्ट मानी गयी है। हिंदू-संस्कृति इस भावनासे परिपूर्ण है—

> यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
> यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥*

आर्य-संस्कृतिमें नारी-समाजके प्रति यह केवल शाब्दिक सद्भावना प्रदर्शन ही नहीं है। भारतीय गृहस्थ-जीवनमें पदे-पदे इसकी व्यावहारिक सार्थकता सिद्ध होती है। भले ही भौतिकवादी पाश्चात्यभावापन्न मस्तिष्कोंको इसमें कोई तथ्य न दिखायी दे और नारी-गौरव-रक्षणके साथ दैवी प्रसन्नताकी सङ्गति भले ही उनकी बुद्धिमें न आये; किंतु स्थूल जगत्‌का सूक्ष्म दैवी जगत्‌से सम्बन्ध और उसका रहस्य समझनेवाले तथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था-विशेषज्ञ धर्ममर्मज्ञोंके निकट इसका रहस्य तिरोहित नहीं है। इसीलिये हिंदू-जीवनमें नारी-मर्यादा सदैव सर्वत्र सुरक्षित रखनेका विशेष ध्यान रक्खा जाता है। धर्मशास्त्रका स्पष्ट आदेश है—

> पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
> रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥†

ध्यान रहे, धर्मशास्त्रद्वारा यह कल्याणकारी नारी-स्वातन्त्र्यका अपहरण नहीं है। नारीको निर्बाधरूपसे अपना स्वधर्म-पालन कर सकनेके लिये बाह्य आपत्तियोंसे उसकी रक्षाके हेतु पुरुष समाजपर यह भार दिया गया है। धर्मभीरु पुरुष इसे भार नहीं मानता, धर्मरूपमें स्वीकारकर अपना कल्याणकारी कर्तव्य समझता है। और इसी प्रकार—

> स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।‡

इस भगवद्वाक्यपर विश्वास करनेवाली धर्म[illegible] भारतीय नारी, धर्मशास्त्रकी इस व्यवस्थाको अपनी [illegible] अपहरण अथवा अपने उन्नतिपथमें बाधक नहीं [illegible], अपितु इसी मर्यादामें रहकर लोक[illegible] बनानेवाले सतीत्व-धर्मका दृढ़तापूर्वक पालन करती [illegible] व्यवहारमें नारीधर्मका आदर्श एवं [illegible] सम्पादन करती है।

नारीधर्मका निर्देश करते हुए धर्मशास्त्र [illegible] है—

> नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
> पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे [illegible]॥*

धर्मशास्त्रका यह आदेश विशेष महत्त्वपूर्ण [illegible] है। इसमें नारीके प्रधान धर्म—पातिव्रत[illegible] है। नारी सदा पुरुषकी चेरी बनी [illegible] नहीं है। नारीजीवनको [आधिभौतिक, आधि[illegible] आध्यात्मिक] त्रिविधोन्नतिके पथपर प्रतिष्ठित [illegible] ही इस प्रकार पातिव्रत्य धर्मका विधान है। [illegible] प्रधान समय पतिकी सेवा-शुश्रूषा आदि [illegible] ही व्यतीत होता है। इसलिये स्वाभाविक ही [illegible] पतिप्रधान रहती है। इस प्रकार सदा [illegible] करनेवाली पतिव्रता स्त्री मरणासन्नमें [illegible] पतिका चिन्तन करते हुए ही प्राणत्याग करती है। [illegible] शास्त्रके—

> यं यं वापि स्मरन् भावं [illegible]।
> तं तमेवैति कौन्तेय सदा [illegible]॥†

इस सिद्धान्तानुसार वह स्त्रीयोनिसे [illegible] योनिको प्राप्त होती है तथा पूर्वार्जित धर्मनिष्ठा [illegible] पुरुषयोनिमें धर्मनिष्ठ एवं [illegible] प्राप्त कर लेती है। इतना ही नहीं, [illegible] पतिव्रता नारी पतिरूपमें सदा [illegible] मरणोपरान्त भगवान्‌के लोकको ही प्राप्त होती है।

---

* जिस कुलमें स्त्रियोंका समादर है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं और जहाँ ऐसा नहीं है, उस परिवारमें समस्त (यज्ञादि) क्रियाएँ व्यर्थ होती हैं।

† बाल्यावस्थामें पिता, युवावस्थामें पति और वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करते हैं। स्त्रीको कभी इनसे पृथक् स्वतन्त्र रहनेका विधान नहीं है।

‡ दूसरेका धर्म (अपने परमकल्याण मोक्ष-मार्गमें बाधक होनेके कारण) भयावह होता है और अपने धर्ममें मरना भी श्रेष्ठ है।

* स्त्रियोंके लिये पृथक्‌रूपसे कोई [illegible] आवश्यकता नहीं है, केवल पति-[illegible] को पा सकती हैं।

† मरणकालमें जिस भाव ([illegible]) [illegible] शरीरत्याग करता है, [illegible] गतिको प्राप्त होता है।

पातिव्रत्य-पालनकी जो अक्षय महिमा शास्त्रोंमें कही गयी है, वह 'रोचनार्था फलश्रुतिः' नहीं, अक्षरशः सत्य है। पातिव्रत्य-के प्रभावसे नारी-अन्तःकरणमें ही सत्त्वगुणकी इतनी अधिक वृद्धि हो सकती है कि ('सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्'के आधारपर) उसके लिये ज्ञानकी प्राप्तितक सम्भव हो जाय। मैत्रेयी आदि-के ऐसे ही उदाहरण हैं। पातिव्रत्यकी ऐसी पूर्ण निष्ठा प्राप्त कर लेनेपर नारीको जीव-विकासकी पूर्णता अर्थात् कैवल्यपद मोक्षकी प्राप्तिके लिये जीव-क्रमोन्नतिकी स्वाभाविक कक्षाओं-को क्रमशः पार करने और उसके लिये पुरुषयोनिमें जन्म लेनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। स्त्रीयोनिसे ही वह मोक्ष प्राप्त कर लेती है। निष्ठाके अनुसार ये पातिव्रत्य-धर्म-पालनके आध्यात्मिक लाभ हैं।

जिस योनिमें प्रसव आदिके कारण अनेकों बार मरण-तुल्य कष्ट भोगना पड़ता है, ऐसी स्वाभाविक कष्टप्रद नारीयोनि-से जीवको मुक्त करानेके लिये ही धर्मशास्त्रने नारीके प्रति पातिव्रत्य-धर्मकी प्रतिष्ठा की है। जो नारी पातिव्रत्यका पालन नहीं करती, उसका जीवन कामवासना-प्रधान रहता है, जिससे स्वाभाविक ही कामभावमय उसका मरण होता है—क्योंकि जीवनकालमें जिस भावका प्राधान्य होता है, उसी भावकी स्फूर्ति मरणकालमें होती है और उसीके अनुसार उसकी भावी गति होती है। इसलिये ऐसी स्त्रियोंको पुनः कामप्रधान एवं स्वाभाविक कष्टप्रधान नारीयोनिमें जन्म लेना पड़ता है तथा कामभावकी उग्रता होनेपर और भी नीची पशुयोनियों-को प्राप्त होना पड़ता है। पातिव्रत्य-धर्म नारीयोनिमें जीवको स्वाभाविक क्रमोन्नतिके पथपर प्रतिष्ठित रखता है और उससे विरत होनेपर नारी अपने जीवोन्नतिके स्वाभाविक पथसे च्युत हो जाती है।

पातिव्रत्यके यथोचित पालनसे नारीमें स्वाभाविकरूपसे ही सिद्धियोंके रूपमें दैवी शक्तियोंका आविर्भाव होता है। यह पातिव्रत्यधर्म-पालनका आधिदैविक लाभ है। पुरुष-शरीरमें जो अलौकिक शक्तियाँ योग, तप आदि कठिन प्रयासपूर्ण उपायों-से प्राप्त होती हैं, वे नारी-शरीरमें पातिव्रत्य-पालनसे अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। रामायण, महाभारत आदि भारतीय इतिहासग्रन्थों और पुराणोंमें पातिव्रत्यके प्रभावसे त्रिकाल-दर्शिनी सिद्धि-सम्पन्ना अनेकों नारियोंके उदाहरण मिलते हैं। वही भारतभूमि है और वही नारीपरम्परा है; भारतीय नारी अपने सतीत्वधर्मका यथावत् पालन कर आज भी वही असाधारण दैवीशक्तियाँ प्राप्त कर सकती है, इसमें सन्देह नहीं।

पातिव्रत्यके आधिभौतिक लाभ—पूर्णसुखमय गार्हस्थ्य-जीवन, उत्तम मेधावी धर्मनिष्ठ सन्तान आदि—सहस्रों रूपोंमें स्पष्ट अनुभव किये जाते हैं। नारीधर्मका पूर्णतया वर्णन एवं रहस्योद्घाटन करनेके लिये बहुत अधिक लिखनेकी आवश्यकता होगी। बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे जानेपर भी उसके तत्त्वका पूर्णतया विश्लेषण हो सकेगा या नहीं, इसमें भी सन्देह है। क्योंकि धर्मशास्त्रकी प्रत्येक बात अत्यन्त निगूढ़ एवं दूरतक प्रभाव डालनेवाले वैज्ञानिक रहस्योंसे परिपूर्ण है। इसके नियमोंकी सूक्ष्मता एवं परस्परसम्बद्धता इतनी है कि एकमें थोडा भी अन्तर पड़नेपर सम्पूर्ण व्यवस्थापर उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। भारतीय समाजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, शासनव्यवस्था एवं धर्मव्यवस्था परस्पर इतनी ग्रथित हैं कि उनका स्वरूप विकृत हुए बिना वस्तुतः पार्थक्य हो ही नहीं सकता। धर्मशास्त्रके नियम जीवके जन्म-जन्मान्तरोंतकके अभ्युदय एव निःश्रेयससे सम्बन्ध रखते है और पदे-पदे जीवकी स्वाभाविक क्रमोन्नतिमें सहायक हैं। धर्मतत्त्वका पार पाना वस्तुतः कठिन है। इसीलिये लिखा है—'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्'। धर्मका रहस्य प्रकट करना असाधारण बात है, समाधिगम्य विषय है। इसीलिये धर्मशास्त्रमें नियमोंके पालनपर ही अधिक जोर दिया गया है। साधारण मानवीय बुद्धि धार्मिक नियमोंके रहस्योद्-घाटनके प्रयत्नमें तत्त्वतक तो पहुँच नहीं सकती, कुछ-का-कुछ समझकर भ्रमात्मिका अवश्य हो जाती है। इसलिये सर्व-साधारणको धर्मशास्त्रके सम्बन्धमें 'रहस्य समझने' और 'क्यों' के झगड़ेमें न पड़कर श्रद्धा-भक्तिसे उसके नियमोंका पालन ही करना चाहिये, इसीमें कल्याण है। जो धर्मशास्त्रके अनुसार जितना अधिक अपना जीवन बनाता है, वह सृष्टिचक्रमें जीव-क्रमोन्नतिके पथपर उतना ही अधिक अग्रसर होता है।

नारीजातिके लिये सतीत्वधर्म ही उसके सर्वविध कल्याण-का एकमात्र उपाय है। यह भी आवश्यक है कि वर्तमान भारतीय नारी इस बातको समझ ले कि अब उसके परम-कल्याणकारी सतीत्वधर्मपर भी सामाजिक एवं राजकीय आघात होने लगे हैं। सगोत्रविवाह, असवर्णविवाह, विधवा-विवाह, तलाक आदि अवाञ्छनीय कलुषित प्रथाके प्रवर्तक, वर्णसङ्कर-सन्तत्युत्पादक एवं पैतृक सम्पत्तिमें कन्याधिकार-प्रदायक आदि कुटुम्ब एवं समाजका विध्वंस करनेवाले धर्ममर्यादा एवं अर्थमर्यादाके विरुद्ध राजकीय कानून बनाये जा रहे हैं और इन्हें 'समाज-सुधार,' 'नारी-जागरण' एवं 'समानाधिकार'

आदि रोचक नामोंसे पुकारा जा रहा है। शास्त्रबुद्धिविहीन पाश्चात्यमुखापेक्षी लोग इनके प्रचारके लिये शतशः प्रयत्न कर रहे हैं, किंतु धर्ममर्मज्ञ समझते हैं कि इस प्रकारकी चेष्टाएँ समाज एवं राष्ट्रकी उन्नतिके लिये सर्वथा हेय हैं। क्योंकि इनसे नारी-जीवनकी पवित्रता भ्रष्ट होकर धर्महीन, उच्छृङ्खल एवं सतत-पतनोन्मुख समाजका सर्जन होगा। इस जीवनमें पचीस-पचास वर्षोंके लिये कुछ दिखावटी ऊपरी व्यावहारिक सुविधा प्राप्त करनेके लालचमें धर्मसे विरत हो रहना और भविष्यके अनेकों जन्मोंमें उन्नतिका मार्ग खो बैठना, यह कोई उन्नति और बुद्धिमानी नहीं है। इसलिये इस समय नारी-जातिको सतर्क रहकर अपने कल्याणकारी धर्मका अवलम्ब नहीं छोड़ना चाहिये। ऐसे धर्मविरुद्ध राजकीय नियमोंको कलियुगके प्रवर्तक समझकर घृणाकी दृष्टिसे देखना चाहिये। भारत स्वतन्त्र हो गया है। वह समय अब दूर नहीं है, जब शासनसूत्र हिंदुत्वाभिमानी धर्माभिमानी गम्भीर पुरुषोंके हाथमें आयेगा। उस समय यह सब दुर्व्यवस्था दूर हो जायगी; किंतु तबतक सतर्कतासे काम लेना चाहिये।

नारी-समाजपर सृष्टि-उत्पादनका भार है। [illegible] में वीर, साहसी, मेधावी, पवित्र एवं सर्वतोमुखी [illegible] संततिका सृजन हो—इसके लिये प्रत्येक भारतीय नारीको [illegible] व्यावहारिक जीवनमें अन्तर्बाह्य पवित्रता [illegible] सतत सावधान रहना चाहिये, स्वधर्म प्रतिपादक [illegible] महाभारत आदि धार्मिक ऐतिहासिक ग्रन्थोंका [illegible] करना चाहिये। सिनेमा, सहशिक्षा ([illegible] साथ पढ़ना) आदि कुप्रथाओंका बहिष्कार [illegible]। उपयुक्त समयपर सतानके शास्त्रानुसार [illegible] इसके लिये विशेष ध्यान रखना चाहिये। [illegible] परिवार एवं समाजका भी कर्तव्य है कि [illegible] अथवा विधवा—सभी अवस्थाओंमें नारीको [illegible] सुविधा प्रदान करे और उपयुक्त शिक्षादान [illegible] पूर्ण माता और उत्तम गृहिणी बनाने तथा [illegible] उन्हें स्वधर्मपर प्रतिष्ठित रह सकनेके योग्य बनावे। [illegible] समाज एवं राष्ट्रकी उन्नति होगी।

नारीधर्मकी रक्षा आवश्यक

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीद्वारिकापीठाधीश्वर स्वामी श्रीअभिनव सच्चिदानन्दतीर्थजी [illegible])

इस समय भारतवर्षमें आधुनिक नेता सुधारके नामपर नारीको न्यायोचित मार्गसे विचलित कर रहे हैं, [illegible] लिये शास्त्रीय मार्गका अवलोकन कराना आवश्यक है। इस विचारसे 'कल्याण' जो यह नारी-अङ्क प्रकाशित कर रहा है, यह सर्वथा उचित है।

'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु (यहाँ सब लोग सुखी रहें)—इस कल्याणमयी भावनाका उपदेश [illegible] अच्छी तरह जानता है कि इस समय, जब कि सब ओर धर्मका ह्रास हो रहा है, केवल स्त्रियोंमें ही कुछ धर्म [illegible] है। यदि उनके धर्मका भी ह्रास हो जाय तो 'स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः। संकरो नरकायैव [illegible] च।' (स्त्रियोंके दूषित—धर्मभ्रष्ट हो जानेपर वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है, वर्णसंकर संतान कुलघाती [illegible] अपने कुलको भी नरकमें ले जानेवाली होती है।)' इस भगवद्वचनके अनुसार सब ओर सब प्रकारसे हानि ही हानि [illegible] लिये नारीके धर्मकी रक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

धर्मकी रक्षा करनेवाले द्वारकाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंके समीप हम यह आशा करते हैं कि [illegible] का, विशेषतः स्त्रियोंके धर्मका कभी ह्रास नहीं होगा, भगवान्‌की हमलोगोंपर ऐसी ही कृपा बनी रहे।

सोलह माताएँ

स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया। अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका॥
सगर्भजा या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा॥
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः॥
([illegible])

स्तन पिलानेवाली, गर्भ धारण करनेवाली, भोजन देनेवाली, गुरुपत्नी, इष्टदेवताकी पत्नी, पिताकी पत्नी (सौतेली माँ), पितृकन्या (सौतेली बहन), सहोदरा बहिन, पुत्रवधू, सासु, नानी, दादी, भाईकी पत्नी, मौसी, बूआ और मामी—[illegible] मनुष्योंके लिये ये सोलह प्रकारकी माताएँ बतलायी गयी हैं।

नारीतीर्थ काञ्ची एवं कावेरी

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर श्रीशङ्कराचार्यजी महाराजका सदुपदेश)

हमारी जन्मभूमि भारतके आदि-मध्यावसानमें परमब्रह्म स्वयं नारी-रूपसे अवस्थित हैं। भगवती श्रुति कहती हैं—'त्वं कुमार उत वा कुमारी।' यह भारतभूमिके सम्बन्धमें स्वरूप-सिद्ध स्थिति है। उत्तरमें हैमवती, मध्यमें विन्ध्यवासिनी और दक्षिणमें समुद्र-तटपर यही श्रीपराशक्ति कौमारावस्थामें विराजमान कन्या-कुमारी नामसे अभिहित होती हैं।

भारतभूमिके नौ खण्डोंमें एक खण्ड कुमारिकाखण्ड है। महर्षि अगस्त्यसेवित द्रविड-भाषा-भाषी इस प्रान्तके दक्षिण भागमें सप्त-पुरियोंमें प्रसिद्ध काञ्ची और सप्त महानदियोंमें प्रख्यात कावेरी हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान् व्यासने आधे श्लोकमें इनका वर्णन किया है—

कामकोटिपुरीं काञ्चीं कावेरीं च सरिद्वराम्।

श्रीकाञ्चीकी अधिष्ठात्री हैं—भगवती कामकोटि। प्राचीन कालमें एक मूक बालकने भगवती कामकोटिकी आराधना की और उनकी कृपासे वह महाकवि हो गया। उसने पाँच सौ श्लोकोंसे श्रीअम्बाकी स्तुति की है। यह स्तव 'मूक-पञ्चशती'के नामसे विख्यात है। श्रीकामकोटिका स्वरूप क्या है? मूक कविकी धारणा है कि नारी-शक्तिकी सम्पूर्णता—चरम-सीमा ही भगवती-का स्वरूप है। 'पुण्या कापि पुरन्ध्री' 'नारिकुलैकशिखामणिः' आदिके द्वारा उन्होंने अपने भावोंको स्पष्टरूपसे व्यक्त किया है।

काञ्चीके साथ कावेरीका अभिन्न सम्बन्ध है। शास्त्रोंका कथन है कि सती-शिरोमणि देवी लोपामुद्रा अपने पति भगवान् अगस्त्यके कमण्डलुसे जलरूप धारण करके लोक-कल्याणार्थ कावेरी नामसे प्रवाहित हो रही हैं। श्रीकाञ्चीमें ही कुम्भसम्भवा कावेरीने द्विविध रूप धारण किया है। एकका नाम है उत्तरकावेरी और दूसरीका दक्षिणकावेरी।

जो देश नदीद्वारा सिञ्चित होकर उर्वर होते हैं, वे नदी-मातृक कहे जाते है और जो देश वर्षापर निर्भर करते हैं, वे देव-मातृक होते हैं। चोल देश नदी-मातृक देश है। भगवती कावेरी ही उसकी माता हैं। अपने दक्षिणकावेरी रूपसे वे इस सन्ततिका पोषण करती हैं। इस धाराका प्रायः सम्पूर्ण जल देशके उपयोगमें व्यय हो जाता है उत्तरकावेरी जिनका विख्यात नाम 'कोल्लिडम्' है, उनका सम्पूर्ण जल नदीपति समुद्रमें पहुँचता है। इस-के द्वारा मानो श्रीकावेरीजी नारीस्वरूपका एक आदर्श उपस्थित करती हैं कि एक साथ पुत्रका वात्सल्यभावसे पालन-पोषण एवं पतिकी सेवा नारीको करना चाहिये। इसी भावको लक्ष्य-कर कविने लिखा है—

तनूभवे वत्सलतानुरागो धवे समं तद्द्वितयं ममेति।
द्वेधा विभज्येव कवेरजायं पुष्णाति सिन्धुं च भजत्यजस्रम्॥

सातों पुरियोंको शास्त्रोंमें मोक्षदायिनी बताया गया है। उनमें काञ्चीकी अधिष्ठात्री नारी हैं और पुण्य-सरिता कावेरीका तो अनन्त माहात्म्य पुराणोंमें वर्णित है।

नारी-धर्मकी महत्ता

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्सालपुरपीठाधीश्वर जगद्गुरु स्वामी श्रीपुरुषोत्तम नृसिंह भारती महाराजका सदुपदेश)

हमें हर्ष होता है कि इस साल 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'नारी-अङ्क' होगा।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।'

—शास्त्रके इस वचनके अनुसार स्त्री-धर्मकी रक्षासे ही भारत देवताओंका निवास-स्थान बना था। देवताओंको अमरलोक-से मर्त्यलोकमें उतारनेके लिये एक नारी-धर्म ही समर्थ है। प्राचीनकालसे भारतमें सती सावित्री, देवी सीता, माता अनसूया इत्यादिको नारी-धर्मका आदर्श माना गया है।

खेदका विषय है कि इस समय पूजनीय भारतीय नारी-धर्मपर लगातार हस्तक्षेप हो रहा है। हमारी कुछ मातृ-भगिनियों-के मनमें भी कलुषित भावोंकी उत्पत्ति देखी जाती है। आशा है, इस नारी-विशेषाङ्कसे हमारी माताएँ और बहनें अवश्य शिक्षा ग्रहण करेंगी।

अन्तमे प्राचीनकालसे प्रसिद्ध भारतीय नारी-धर्मके उज्ज्वल स्वरूपका पुनः पूर्व स्थितिमे सबको दर्शन हो, अपने उपास्यदेव श्रीराजराजेश्वरी ललिताम्बा-श्रीचन्द्रमौलीश्वर तथा श्रीलक्ष्मीनृसिंहके चरणारविन्दमे यही हमारी नित्य प्रार्थना है।

नारी-जगत्का आदर और अधिकार

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीजगद्गुरु स्वामिरामानुजसम्प्रदायाचार्य श्रीस्वामी भागवताचार्यजी महाराज)

स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह ।
स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः ॥

सृष्टिके आरम्भमें परमात्माने अपनेको दो रूपोंमें विभक्त किया; आधेसे वे पुरुष, आधेसे नारी हो गये । वाम भागसे स्त्री और दक्षिण भागसे पुरुष हुए । धर्मप्राण भारतमें वेद, पुराण, स्मृति, इतिहास तथा प्राचीन संस्कृति और सद्धेतु-संवलित तर्कोंके द्वारा तथा प्राकृतिक विज्ञानसे भी स्त्रियोंको पुरुषोंकी अर्द्धांगिनी माना गया है । भारतीयपद्धतिके अनुसार किसी धार्मिक, सामाजिक तथा लौकिक कृत्यमें स्त्री और पुरुषके उत्तरीय वस्त्रोंके छोरोंसे ग्रन्थिबन्धन किया जाता है । बिना ग्रन्थिबन्धन किये कोई भी धार्मिक यज्ञ-यागादि कर्म तथा सामाजिक मङ्गल-कृत्य नहीं किये जाते हैं । आदर्श-प्रधान भारतमें स्त्रियोंको अधिकाधिक सम्मान दिया गया है । इसी देशमें विद्वान्, साधु, सन्यासी, बालक, वृद्ध एव सद्-गृहस्थ—सभी लोग सामान्यतः स्त्री-जातिको माता कहकर पुकारते हैं । सभी गृहस्थोंके घरमें स्त्रियाँ लक्ष्मी समझी जाती हैं । जिस घरमें स्त्रियाँ नहीं रहती हैं, वह घर जगल कहा जाता है ।

'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।'

'घरको घर नहीं कहते, जहाँ गृहिणी रहती है, वही घर कहलाता है ।' पुरुष बाहरसे सम्पत्ति कमाकर घरकी स्त्रियोंको सौंप देते हैं । वे स्वतन्त्ररूपसे घरकी सम्पत्तिकी देखभाल तथा उसका सदुपयोग करती हैं । भारतीय प्राचीन परम्पराके अनुसार किसी भी सार्वजनिक स्थान—टिकिट-घर, रेलगाडी, सभा, कुआँ, तालाब आदि क्षेत्रोंमें स्त्रियोंके लिये विशेष सुविधाके मार्ग अनिवार्यरूपसे खुले होते हैं । जिस गृहस्थके घरमें नारियोंका अपमान होता है, वह घर लक्ष्मीसे शून्य हो जाता है ।

नारियोंका अधिकार—भारतीय प्राचीन संस्कृतिसे अनभिज्ञ तथा विदेशी पद्धतिके अनुयायी कुछ आधुनिक शिक्षित लोग आजकल स्त्रियोंके लिये पुरुषोंके समान अधिकार बतलाकर नारी-समाजके लिये अधिक अहितकर 'तलाकबिल', 'समानाधिकारबिल' आदि धर्मविध्वंसक बिल उपस्थितकर राजकीय कानूनके द्वारा स्त्री-समाजको धर्मभ्रष्ट करनेकी चेष्टा कर रहे हैं । पिताकी सम्पत्तिमें पुत्र और पुत्रीका समानदाय (भाग) बतलाकर स्त्रियोंके परम पवित्र धार्मिक तथा सम्मानित दायको तिलाञ्जलि दी जा रही है । हमारे धर्मशास्त्र तथा प्राचीन पद्धतिके अनुसार पिताकी सम्पत्तिमें पुत्रसे अधिक अधिकार पुत्रियोंको दिया गया है । जैसे किसी गृहस्थके एक पुत्र और एक पुत्री है । पुत्रकी वधू अपने पिताके घरसे आयेगी और पुत्री अपने पतिके घर जायगी । यदि पुत्री अपने पिताकी आधी सम्पत्ति लेकर पतिके घर गयी तो पुत्र-वधू भी पिताके घरसे अपने हिस्सेका धन लेकर पतिके घर आयी; इससे लाभ ही क्या हुआ ? घरकी सम्पत्ति बाहर गयी और बाहरसे घर आयी । सच पूछिये तो पुत्रियोंके लिये हानि ही हुई । पिताके धनमें पुत्रोंकी तरह पुत्रियोंके लिये दाय 'भाग' न बताकर धार्मिक दृष्टिसे कन्याओंके लिये धन, वस्त्र, आभूषण आदिका दान अत्यन्त आवश्यक और अनिवार्य माना गया है । इसीमें कन्याओंका सम्मान है । पुत्रियोंके विवाहमें दहेज देनेकी प्रथा अनादिकालसे चली आती है और माता-पिता विविध क्लेश सहकर भी दहेज देना धर्म समझते हैं । पुत्रियोंका विवाह हो जानेके बाद भी जीवनभर अपनी शक्तिके अनुसार सर्वदा उनको कुछ-न-कुछ दिया ही जाता है । विवाहके समय तो सामर्थ्यानुसार आभूषण, वस्त्र, हाथी, घोड़े, दास, दासी, सुवर्ण, भूमि अनेक सामान दिये जाते हैं । पुत्रियोंकी सन्तान तथा सन्तानकी परम्परा सर्वदा मातृ-कुलसे धन, आदर, महत्त्व तथा पूजा पाती ही रहती है । मातृकुलका परिवार पुत्री और उसकी सन्ततिको सदा पूज्य समझता तथा आदर करता है । यदि पुत्रोंकी तरह पुत्रियोंको भी पिताकी सम्पत्तिमें कानूनन बँटवारा किया जाता तो यह विधान सर्वथा विनाशकारी होगा । अपने घरमें दूसरेका धन आवेगा और अपने घरका धन दूसरेके घर जायगा । इस तरह बड़ी भारी अनवस्था एवं अव्यवस्था हो जायगी । कहीं अचल सम्पत्ति रही, तो दो दो स्थानोंमें सम्पत्तिको सँभालना साधारण गृहस्थोंके लिये महान् दुष्कर होगा । एक सम्पत्तिशाली पिताके घरमें यदि पाँच पुत्र तथा पाँच पुत्रियाँ रहीं तो उसे पाँच पुत्रोंके अतिरिक्त पाँच जगह बँटवारा करना पड़ेगा और उसके घरमें पाँच जामाता आकर बँटवारा करेंगे । चल और अचल सम्पत्ति छिन्न-भिन्न हो जायगी । अतः हमारी प्राचीन पद्धति ही सुन्दर है । अर्वाचीन पद्धतिके समानाधिकारसे यदि पति-पत्नी दोनों ही किसी मास्टरी या इंजीनियरी काम करने बैठें तो उनको अतिरिक्त बच्चोंके पालन-पोषणके लिये भी किसीकी आवश्यकता पड़ जायगी । अतः अपने यहाँकी प्राचीन धार्मिक पद्धतिका अनुसरण ही स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये कल्याणकारी है ।

मातृदेवो भव

(लेखक—श्रीमज्जगद्गुरु श्रीरामानुजसम्प्रदायाचार्य आचार्यपीठाधिपति श्रीराघवाचार्य स्वामीजी महाराज)

नारी मातृदेवता है। भारतीय संस्कृतिने उसको माताके रूपमें उपस्थितकर इस रहस्यका उद्घाटन किया है कि वह मानवके कामोपभोगकी सामग्री न होकर उसकी वन्दनीया एवं पूजनीया है। इसी नाते मानवधर्मशास्त्र (२। १४५) में जननीका गौरव उपाध्यायसे दस लाख गुना, आचार्यसे लाख-गुना तथा पितासे हजारगुना बढ़कर बताया गया है। गर्भ-धारणके समयसे लेकर गुरुकुल भेजनेके समयतक पुत्रका पालन-पोषण करते हुए वह अपना जैसा परिचय देती है, उससे यही प्रमाणित होता है कि नारीका स्त्रीत्व मातृत्व ही है। सन्तान चाहे कुपुत्र निकल जाय, परंतु जन्मदात्री माता कभी कुमाता नहीं बन पाती—'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।' उसका स्नेह और वात्सल्य अपनी सन्तान-तक ही सीमित नहीं रहता। द्वारपर भिक्षाके लिये आये हुए गुरुकुलवासी ब्रह्मचारियोंको उनकी माताओंके सदृश सप्रेम भिक्षा देकर वह उनको 'मातृवत् परदारेषु' अर्थात् परायी स्त्री-को माता समझनेका पाठ पढ़ाती है और इस प्रकार प्रत्यक्षमें समाजकी जननी कहलानेका सौभाग्य प्राप्त करती है। कुदृष्टि-युक्त कोई पुरुष उसके पातिव्रत्य-तेजके समक्ष नहीं ठहर पाता और उसके मातृत्वके प्रति श्रद्धावनत होनेके लिये बाध्य होता है।

नारीको यह मातृत्व पुरुषके साथ समानताके सिद्धान्ता-नुसार किये गये किसी बँटवारेमें नहीं मिला। यदि ऐसा होता तो वह वन्दनीया न हो पाती। शास्त्रीय दृष्टिमें उसका यह मातृत्व दयामयी जगन्माताका प्रसाद है, जिनका रूप कहलाने-का गौरव सारे नारीसमाजको प्राप्त हुआ है। विष्णुपुराण-की सूक्ति है—

> देवतिर्यङ्मनुष्येषु पुन्नामा भगवान् हरिः।
> स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया ······ ॥

इसका आशय यह निकलता है कि सामान्य रूपमें देव-समाज, तिर्यक्योनि तथा मानवसमाजके पुरुषत्वमें भगवान् विष्णुकी अभिव्यक्ति है और स्त्रीत्वमें लक्ष्मीकी। इसके अतिरिक्त जिन महिलाओंने राष्ट्रका संरक्षण किया है तथा त्याग, तपस्या सात्त्विकता, सेवा, भगवद्भक्ति आदिके द्वारा इतिहासके पृष्ठों-को अलङ्कृत करते हुए आदर्श स्थापित किया है, वे जगन्माता-की विशिष्ट विभूतियाँ हैं। इस मर्मको न समझकर पाश्चात्त्य शिक्षासे प्रभावित लोग धर्मशास्त्रोंके उन वचनोंकी दुहाई देकर, जिनमें नारीके जीवनका भार क्रमशः पिता, पति और पुत्रपर डाला गया है, यह भ्रम फैलानेका दुस्साहस करते हैं कि हिंदुओंने नारीके अधिकारोंकी हत्या की है। वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। पाश्चात्त्य सभ्यताने आदिम मनुष्यके एक अङ्गसे नारीकी उत्पत्तिकी कल्पना की और अपने व्यवहारसे उसको मनुष्यके सुखोपभोगका यन्त्र बननेके लिये विवश कर अत्यन्त दुःखद अवस्थातक पहुँचा दिया है। इसके अनुकरण-से आर्यजननीकी भी दुर्दशा होगी। आवश्यकता इस बातकी है कि मानवसमाज नारीसमाजका समादर एवं संरक्षण करे। महर्षि याज्ञवल्क्यने आज्ञा दी है—

> भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः।
> बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्याः ········ ॥
> (१। ८२)

'पति, भ्राता, पिता, कुटुम्बी, सास, ससुर, देवर, बन्धु-बान्धव—इस प्रकार स्त्रीके सभी सम्बन्धियोंका कर्तव्य है कि वे उसका सभी प्रकार सम्मान करें।'

प्रत्येक मनुष्यके इस वैयक्तिक कर्तव्यका समर्थन करते हुए धर्मवाङ्मयने व्यष्टि सृष्टिके अर्धभागसे पुरुषकी और अर्धभागसे नारीकी उत्पत्ति प्रमाणितकर दाम्पत्य-जीवनमें पति-पत्नीकी एकात्मता स्थापित की है और पतिको पत्नीव्रत तथा पत्नीको पतिव्रता रहनेका आदेश दिया है। उत्तम पतिव्रता नारी केवल पतिमात्रको पुरुष मानती है—'पतिमात्रं पुरुषं मन्यमाना।' पतिके अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष उसकी दृष्टिमें पुरुष ही नहीं है। ऐसी नारीकी दृष्टिमें पतिके पत्नीव्रत होनेका महत्त्व होता है। तभी तो सती अनसूयाकी आशीर्वादात्मिका आज्ञा-के उत्तरमें पतिपरायणा सीताने—'मातृवद्वर्तते वीरो मान-मुत्सृज्य धर्मवित्'—कहकर इस तथ्यकी ओर संकेत किया है कि धर्मज्ञ राम परनारीके प्रति माता-सरीखा व्यवहार करते हैं। भगवती श्रुतिकी घोषणा है—'मातृदेवो भव' अर्थात् मातृदेवताके भक्त बनो। इसी घोषणामें माताकी आराधना-का विधान किया गया है। इसीका विराट् एवं व्यापक रूप है नारीसमाजकी आराधना। रामकी मर्यादा इसका निदर्शन है। अतः मानवसमाजका कर्तव्य है कि वह माताकी आराधना करते हुए नारीसमाजकी आराधना करे।

दर्शनशास्त्रमें नारी-जातिका माहात्म्य

(महामण्डलके एक महात्माद्वारा लिखित)

अन्तर्जगत्को देखनेके लिये जो शास्त्र पूज्यपाद महर्षियोंने बनाये हैं, उनको दर्शनशास्त्र कहते हैं। हिन्दूशास्त्रके अनुसार वैदिक दर्शनशास्त्रकी सात श्रेणियाँ हैं। न्यायदर्शन तथा वैशेषिक दर्शन—ये दोनों पदार्थवादसम्बन्धी दर्शनशास्त्र कहाते हैं। योगदर्शन और सांख्यदर्शन—ये दोनों सांख्यप्रवचनसम्बन्धी दर्शन हैं। और वेदके कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डके अनुसार तीन दर्शन हैं; यथा—कर्ममीमांसादर्शन, दैवीमीमांसादर्शन, ब्रह्ममीमांसादर्शन। इन सातों दर्शनोंके सिद्धान्तोंमें पुरुष और प्रकृतिसम्बन्धी विचारका रूपान्तरसे वर्णन है; परन्तु प्रकृतिका विस्तृत माहात्म्य सांख्यप्रवचन-दर्शनों और मीमांसादर्शनोंमें बहुत कुछ पाया जाता है। वैदिक दर्शनशास्त्रोंके अनुसार सृष्टिकार्यमें प्रकृतिका बहुत कुछ प्राधान्य है। चाहे कोई दर्शनशास्त्र उसको मूल प्रकृति कहे, चाहे कोई महामाया कहे, चाहे कोई ब्रह्मशक्ति कहे—सभी दर्शनशास्त्रोंका यही सिद्धान्त है कि सृष्टिक्रियामें प्रकृतिका ही प्राधान्य है। अतः इस सर्वशास्त्रसम्मत सिद्धान्तके विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार धर्म-पथपर चलकर प्रकृतिकी सेवा करनेसे मनुष्य अभ्युदयको प्राप्त करता है, जिस प्रकार जगज्जननी महामायाके अर्चन और सेवाद्वारा मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयसको प्राप्त करता है, उसी वैज्ञानिक सिद्धान्तका अवलम्बन करके धर्मके गतिवेत्ता पूज्यपाद महर्षियोंने इस सिद्धान्तका निर्णय किया है कि स्त्रियोंके अर्चनद्वारा मनुष्य अवश्य ही अभ्युदय प्राप्त करता है। स्मृतिशास्त्रमें भी कहा है—

'जहाँ नारी जातिकी पूजा होती है, वहाँ देवतालोग सदा आनन्द करते हैं। जहाँ उनकी पूजा नहीं होती, वहाँ सब प्रकारका धर्म-कार्यानुष्ठान विफल हो जाता है। कल्याण चाहनेवाले पिता, भ्राता, पति, देवर—इन सभीको उचित है कि उसको अलङ्कार-आभूषणादिसे भूषित करें। जिसके घरमें स्त्रियाँ दुःखित रहती हैं, शीघ्र ही उसका कुल-नाश हो जाता है। जिसके घरमें स्त्रियाँ आनन्दमें रहती हैं, उसका घर दिन-दिन बढ़ता जाता है। जिसके घरमें दुःखिता स्त्री अभिशाप देती है, उसके धन, पशु और सन्तान—सभी नाशको प्राप्त होते हैं। इसलिये शान्तिकामी लोगोंको हरेक उत्सवमें भोजन-भूषणादिसे नारियोंकी पूजा करनी चाहिये।' (मनुस्मृति अ० ३। ५५—५९)

वैदिक दर्शनोंमें जीव-सृष्टिकी दो स्वतन्त्र [illegible] गयी हैं—एक स्त्रीधारा और दूसरी पुरुषधारा। [illegible] दर्शनने भली प्रकारसे सिद्ध कर दिया है कि मूल प्रकृति [illegible] स्त्रीधाराका विशेष सम्बन्ध है। इस कारण यदि [illegible] कि स्त्रीमात्र ही प्रकृतिरूपिणी है तो [illegible] होगा। सप्तशती चण्डीमें और देवीभागवतमें [illegible]—

> विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
> स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ॥
> या याश्च ग्रामदेव्यः स्युस्ताः सर्वाः प्रकृतेः [illegible] ।
> कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः ॥

'समस्त विद्या और सब स्त्रियाँ देवीकी ही [illegible] हैं।' [illegible] ग्राम्य देवियाँ और समस्त विश्वस्थिता स्त्रियाँ प्रकृतिकी [illegible] अंशरूपिणी हैं।'

वस्तुतः आर्यजातिमें स्त्रीकी पूजा विहित है। [illegible] शास्त्रोंकी यही आज्ञा है कि नारीजाति [illegible] न होने पावे, नारीजाति पवित्रतासे भ्रष्ट न होने पावे; [illegible] आदर्श सतीत्वका बीज सदा विद्यमान रहे। [illegible] विधवा विवाहकी छाया भी स्पर्श न करने पावे और [illegible] स्त्रियाँ मनसे भी परपुरुषको स्मरण करनेमें [illegible] कलङ्कित समझा करें। आर्यनारीकी पूजा [illegible] सब सदाचार आर्यजातिमें प्रचलित हैं। जिस प्रकार [illegible] देशमें बिखरे हुए प्रस्तरखण्डोंको कोई भी [illegible] समझता है और हीरा-मणि आदि रत्नोंको [illegible] मनुष्य बड़े यत्नके साथ [illegible] प्रकार आर्यजातिके हृदयमें नारी-पूजा [illegible] धर्मरूपसे रक्षित है। [illegible] एकवाक्य होकर आर्यमहिलाओंकी पवित्रता [illegible] सम्मानवृद्धिके अभिप्रायसे ही उक्त सदाचारोंकी [illegible] है। किसी जिज्ञासुके हृदयमें शङ्का हो कि [illegible] प्रकृतिरूपिणी है तो सदाचारभ्रष्टा [illegible] भावापन्ना स्त्रियाँ क्यों नहीं पूजनीया [illegible] स्त्रियोंको त्याग करनेके लिये शास्त्रोंमें [illegible] प्रकारकी शङ्काओंका समाधान [illegible] प्रकार [illegible] देखते ही [illegible]

अनुरूप सदाचारवती स्त्री ही प्रकृति-शब्दवाच्य होगी, अन्यथा वह विकृति कहलायेगी। इसी कारणसे प्रकृतिकी पूजा ही शास्त्र-सम्मत है, विकृतिकी पूजा शास्त्रसम्मत नहीं है। इस विज्ञान-को अन्य प्रकारसे भी समझ सकते हैं कि विकृतिकी पूजा न करनेसे ही प्रकृतिकी पूजा होती है। क्योंकि जबतक विकृति-का अनादर नहीं हो, तबतक प्रकृतिका आदर सम्भव ही नहीं है। इसी कारण वेद और शास्त्रोंमें नारीजातिके विषयमें जिन-जिन सदाचारोंका वर्णन है, वे सब नारीजातिके सम्बन्धसे प्रकृति-पूजाके लिये ही हैं।

दर्शनशास्त्रोंमें और भी लिखा है कि इस संसारके स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चके सब अङ्गोंमें दो प्रकारकी शक्तियाँ देखनेमें आती हैं—एक आकर्षण-शक्ति और दूसरी विकर्षण-शक्ति। स्थूल प्रपञ्चमें परमाणुसे लेकर ग्रह-उपग्रहोंतकमें इन्हीं आकर्षण और विकर्षणरूपी दोनों शक्तियोंका कार्य स्पष्ट देखनेमें आता है। एक परमाणु एक परमाणुको अपनी ओर सृष्टिके समय खींचता है और लयके समय धक्का देता है। एक पत्थर अथवा काष्ठके परमाणुसमूह उस पत्थर अथवा काष्ठकी उत्पत्तिके समय परस्पर मिल-मिलकर दृढ़ताको प्राप्त होते हैं, यही उस काष्ठ अथवा पत्थरकी राजसिक अवस्था है। इसी अवस्थामें वह काष्ठ अथवा पत्थर वृद्धिको प्राप्त होता है। उन दोनोंमें जब तामसिक परिणाम होता है, तब उनके परस्परमें मिले हुए परमाणु विकर्षणको प्राप्त होकर एक दूसरेसे अलग हो जाते हैं और तब वह काष्ठ अथवा पत्थर अपने स्वरूपसे नष्ट हो जाता है। एक ब्रह्माण्डके ग्रह-उपग्रहोंकी दशा भी ऐसी ही समझनी उचित है। ग्रह-उपग्रहकी सृष्टि-दशामें परमाणु एकत्र होते है और प्रलय-दशामें पृथक्-पृथक् होकर ब्रह्माण्ड-का प्रलय-संसाधन करते हैं। स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रपञ्चोंमें आकर्षण और विकर्षण दोनों शक्तियोंका कार्य स्पष्ट देखनेमें आता है। स्थूलका उदाहरण दिया गया, अब सूक्ष्मका उदाहरण दिया जाता है। अन्तःकरणकी वृत्तियोंमें रागकी वृत्तियाँ आकर्षणजनित होती हैं और द्वेषकी वृत्तियाँ विकर्षणजनित होती हैं। रागवृत्ति क्रमशः बड़ोंमें श्रद्धा, बराबरवालोंमें प्रेम और छोटोंमें स्नेहरूपसे पल्लवित होकर संसार-बन्धनका कारण होती है।

रागकी महिमा यहाँतक है कि राग-वृत्ति क्रमशः महिमा-ज्ञानपूर्वक भगवद्भक्तिका रूप धारण करके भक्तको श्रीभगवान्-के चरणारविन्दमें पहुँचा देती है। इन सब दार्शनिक विज्ञानोंके अनुसार चिन्ताशील व्यक्तियोंके हृदयोंमें नारी-जातिका माहात्म्य कैसा है, इसका संक्षेपमें ज्ञान हो सकता है। सांख्य-दर्शनविज्ञानके अनुसार यह सिद्धान्त निश्चय किया गया है कि यदि तत्त्वज्ञानी महापुरुषको प्रकृतिका सम्यक् ज्ञान हो जाय तो उससे उसकी मुक्ति अवश्य हो जाती है; यह भी नारी-जातिके माहात्म्यका द्योतक है। पुरुष केवल प्रकृतिका द्रष्टा है और पुरुषके कारण ही प्रकृति परिणामिनी होती है। जगत्की सृष्टि-स्थिति-लय-क्रियामें प्रकृति ही कारण है। दूसरी ओर उसी सिद्धान्तके अनुसार इस संसारमें स्त्री ही माया-मोह या प्रेमरज्जुसे पुरुषको बाँधकर संसारके सब कार्योंमें कारण बनती है। सृष्टि-कार्यमें स्त्रीकी ही बड़ी जिम्मेवारी है। जब जीवपिण्डकी सृष्टि होती है, उस समय पुरुषकी जिम्मेवारी केवल मिनटोंकी है, परन्तु स्त्रीको नौ महिनेतक गर्भधारण करना पड़ता है और बालक उत्पन्न होनेपर उसके लालन-पालन आदि सब कार्योंमें माताकी ही प्रधानता रहती है। यही कारण है कि हिंदू-शास्त्रने आज्ञा दी है कि पुत्रको प्रणाम करते समय पहले माताको प्रणाम करना चाहिये। उसके अनन्तर पिताको प्रणाम करना चाहिये। ये सब विज्ञान अति विस्तृतरूपसे मीमांसादर्शनोंमें विवृत हैं। इन्हीं दार्शनिक सिद्धान्तोंपर निर्भर करके स्मृतिशास्त्रने माताकी महिमा सर्वोपरि कही है। कुमारी अवस्थामें जगदम्बाकी प्रतिकृतिरूपसे कन्याकी पूजा करना वेद और शास्त्रोंने हाथ उठाकर सिखाया है। सुहासिनी-पूजा तो कर्मकाण्डका एक अङ्ग है। जैसे संन्यासीगण निवृत्तिमार्गके स्वरूप होनेके कारण पूजनीय हैं, उसी प्रकार स्त्रियोंमें विधवा नारी भी हिंदू-गृहस्थमें निवृत्तिकी मूर्ति मानी जाकर आदर और पूजाकी अधिकारिणी होती है। आर्य-जातिमें नारी-जातिका सतीत्व-तप तो जगत्-को पवित्र करनेवाला है।

शोभा

गृहेषु तनया भूषा भूषा सम्पत्सु पण्डिताः। पुंसां भूषा तु सद्बुद्धिः स्त्रीणां भूषा सलज्जता॥

(बृहद्धर्मपुराण)

घरकी शोभा कन्या, सम्पत्तिकी शोभा पाण्डित्य, पुरुषकी शोभा सद्बुद्धि और स्त्रियोंकी शोभा लज्जा है।

नारीमें श्रद्धा-विश्वासकी अधिकताका वैज्ञानिक रहस्य

(लेखक—योगिराज स्वामीजी श्री१०८माधवानन्दजी महाराज*)

इस निखिल चराचर जगत्के अन्तरालमें यदि कोई सारभूत पदार्थ है तो वह ब्रह्म ही है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।' इसी ब्रह्मसे इस दृश्यमान जगत्का और प्रत्येक शरीरमें अवस्थित जीवका उद्गम हुआ है । वस्तुतः जीव ब्रह्म और माया—ये तीनों पदार्थ अनादि हैं और इनका पारस्परिक सम्बन्ध भी अनादि है । वेदान्तमें 'षण्णामनादित्वम्' कहकर यही सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है । वास्तवमें माया और जीवकी प्रतीति अज्ञानजन्य है और इस अज्ञानकी निवृत्ति गुरुकृपाके विना नहीं हो सकती । अस्तु ।

मायाविशिष्ट ईश्वरने जीवोंके कर्मफलप्रदानार्थ इस स्पन्दनात्मक जगत्की सृष्टि की है । जहाँ व्यावहारिक सत्तामें माया जड है, वहाँ पारमार्थिक जगत्में ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ नहीं । माया ब्रह्मकी शक्ति है । यद्यपि यह माया त्रिगुणात्मिका है, तथापि इसके जड होनेके कारण इसमें तमोगुण-की मात्रा अधिक है । यह तमोगुण इसमें क्यों अधिक है और इसमें कैसे आया, इसका विवेचन तो विषयान्तर होगा । प्रस्तुत विषयमें सर्वप्रथम स्मरण रखने योग्य बात यह है कि चेतन जगत्में मायाकी सर्वशक्तिपुञ्जस्वरूपा स्त्री ही है; मायाकी साकार, सगुण एवं सजीव प्रतिमा स्त्री ही है ।

पुरुष और स्त्रीमें जो शारीरिक एवं मानसिक भेद दृष्टिगोचर होता है, उसका मूल कारण उनके मस्तिष्कोंमें वर्तमान परमाणु-वैभिन्न्य है । प्रत्येक जीवके मस्तिष्कमें बाईस शक्तियाँ हैं—दस मस्तिष्कके दाहिनी ओर और दस बाँयीं ओर, एक ब्रह्मरन्ध्रमें और एक तालुमें । किसी भी जीवके मस्तिष्कमें इन सम्पूर्ण शक्तियोंका उद्घाटन नहीं पाया जाता, किसी एकाध शक्तिका ही प्राधान्य होता है । उदाहरणार्थ, किसीमें ज्ञान-शक्तिका विशेष प्रादुर्भाव देखा जाता है, किसीमें भाषण-शक्तिका, तो किसीमें लेखन-शक्तिका । ब्रह्मरन्ध्रमें जो इक्कीसवीं शक्ति है, उसका नाम है—अणुतत्त्व और वह आध्यात्मिक शक्ति-का केन्द्र है । वैसे तो ब्रह्म सर्वव्यापक है, पर इस पाञ्चभौतिक शरीरमें ब्रह्मका जो अस्तित्व है, वह ब्रह्मरन्ध्रस्थित अणुशक्ति मार्गद्वारा ही सर्वतोभावेन प्रसारित होता है । तालुके नीचे जो शक्ति है, उसका नाम पार्थिवशक्ति है । इस पार्थिव तत्त्वमें अग्नितत्त्वका अंश अधिक है । इस कारण [illegible] ही इसको जीवन मिलता है । हमारे शरीरमें स्थित सूर्य और बाह्य सूर्य दोनों एक ही हैं—'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे ।' सूर्य ही स्थावर-जङ्गमका आत्मा है, जैसा कि [illegible] मन्त्रोंमें कहा गया है—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।' सूर्य और चन्द्र दोनों मायाविशिष्ट ब्रह्मके नेत्र हैं । इनके द्वारा ही जड और चेतन जगत्को जीवन मिलता है । स्त्री अपने पार्थिवतत्त्वद्वारा इस जीवनको प्राप्त करती है और पुरुष अपने अणुतत्त्वद्वारा । सूर्यकी [illegible] जिनके गुण और प्रभाव पृथक् पृथक् हैं और जो [illegible] विभिन्नरूपसे पड़ती हैं । इन सूर्यरश्मियोंका विस्तृत [illegible] मैंने अपने 'सूर्यकिरण-विज्ञान' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थमें किया है । पुरुषका तत्त्व सूर्यकी पहली और दूसरी किरणको [illegible] आकृष्ट करता है और स्त्रीका तत्त्व सूर्यकी तीसरी किरणको खींचता है । सूर्यकी इस तीसरी किरणमें तमोगुणकी [illegible] है । स्त्रियोंके पार्थिव केन्द्रमें भी तमोगुणके [illegible] अधिक है, क्योंकि वे मायाकी अधिष्ठात्री शक्ति हैं । [illegible] तीसरी किरणको, जिसमें तमोगुणकी मात्रा अधिक है, [illegible] करती हैं । तमोगुणका अधिष्ठान होनेके कारण तथा [illegible] का ही आकर्षण करनेके कारण स्त्रियोंमें श्रद्धा-विश्वासकी अधिकता होती है और [illegible] अभाव होता है ।

तमोगुण क्रोध, श्रद्धा, विश्वास, आलस्य, निद्रा आदि सात विभागोंमें विभक्त है । इनमें श्रद्धा-विश्वासको [illegible] शेष सभी धाराएँ दुःखप्रद हैं, बशर्ते कि श्रद्धा-विश्वास [illegible] वाला या जो कुछ वह कह रहा है, वह यथार्थ और [illegible] हो । या तो सत्त्वगुणमें श्रद्धा-विश्वासकी [illegible] होती है, क्योंकि सत्त्वगुणी जीव [illegible] होते [illegible] तमोगुणी जीवोंमें श्रद्धा-विश्वासका प्राधान्य [illegible] तमोगुणमें श्रद्धा [illegible] लिये [illegible] । भर्तृहरिने इसी सिद्धान्तको [illegible] राध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः । [illegible]

---

* जिन्होंने अभी हालमें ही जोधपुरके किलेकी तरह इन्दौरके राजदरबारमें पूर्वोके [illegible] फुट-इंचसहित सही-सही बताकर भारतीय योगविद्याका चमत्कार प्रत्यक्ष सिद्ध कर सबको [illegible]

अधिक होनेके कारण उनमें श्रद्धा-विश्वासकी भावना प्रबल होती है। इसलिये पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियोंको बहकाना या फुसलाना अधिक सरल माना जाता है। यदि वे 'अज्ञ' हों तो उनकी श्रद्धा प्राप्त करना सरल है; क्योंकि किसी विषयमें ऊहापोह या तर्क-वितर्क करनेकी सामर्थ्यका उनमें अभाव है। यदि वे 'विशेषज्ञ' हों तो भी उनका विश्वासभाजन बनना कठिन नहीं, क्योंकि एक तो विदुषी होनेके नाते किसी विषयको हृदयङ्गम करनेकी प्रखरता उनमें होगी ही और दूसरे उनका स्त्रीत्व ही उन्हें तमोगुणका, श्रद्धा-विश्वासका अधिष्ठान बना देता है।

उपर्युक्त पंक्तियोंमें संक्षेपतः सूर्य-किरण-सिद्धान्तद्वारा नारीमें तमोगुणकी प्रधानता दिखलाकर उसे श्रद्धा-विश्वासका नैसर्गिक अधिष्ठान बताया गया है। नारी-जातिके इतिहासमें उसकी इस श्रद्धा-विश्वासकी भावनाने जो अनुपेक्षणीय योग दिया है, उसके मूलमें यही वैज्ञानिक रहस्य निहित है। इसी भावनाके बलपर नारी जहाँ पथभ्रष्ट हुई है, वहाँ उसने भक्ति-द्वारा अपार आध्यात्मिक उन्नति भी की है। गोपीप्रेम तथा मीराँकी प्रेमसाधना—ये नारीके अन्तस्तलमें निहित सात्त्विक श्रद्धा-विश्वासके ही चरम उत्कर्ष हैं। दूसरी ओर पाखण्डियों और दुराचारियोंने भी नारीकी इस दुर्बलताका अनुचित लाभ उठाकर उसे अपनी नारकीय वासनाओंकी तृप्तिका साधन बनाया। इसीलिये इस सावधानीकी साग्रह आवश्यकता है कि नारीकी श्रद्धा-भावनाको जाग्रत् करनेवाला व्यक्ति सदाचारी हो; क्योंकि अनुभव यही बताता है कि स्त्रियाँ अपात्रोंके प्रति भी श्रद्धा विश्वास करके अपना सर्वस्व खो बैठती हैं। यदि यह सम्भव न हो तो भी कम-से-कम वह शिक्षा तो अवश्य यथार्थ और समीचीन होनी चाहिये, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति नारीका विश्वास प्राप्त करना चाहता हो। क्योंकि अनुभव यह भी बताता है कि स्त्रियाँ कुशिक्षाको भी हृदयङ्गम कर मार्ग-भ्रष्ट हो जाती हैं। यही कारण है कि भारतीय शास्त्रकारोंने नारीकी निरन्तर रक्षा करनेका सत्परामर्श दिया है।

नारीकी महत्ता

(लेखक—ब्रह्मचारी अनन्त श्रीप्रभुदत्तजी महाराज)

या नारी प्रयता दक्षा या नारी पुत्रिणी भवेत्।
पतिव्रता पतिप्राणा सा नारी धर्मभागिनी॥*
(श्रीविष्णुधर्मोत्तर ३।३२२।११)

नीरसता महँ सदा सरसता जो सरसावै।
प्रेम सहित पय प्याइ प्यार करि हमें बढ़ावै॥
सेवा, प्यार, दुलार, दया की जो है मूरति।
पालन, पोषन, सृजन करत होवै हर्षित अति॥
जननी, भगिनी, कामिनी, बहु रूपनि महँ देइ सुख।
अस नारी निन्दा करै, ते सठ पावै नरक दुख॥

नर वपन कर सकता है, सृजनकी उसमें शक्ति नहीं। प्रकृतिके बिना पुरुष पंगु है। शक्तिके बिना शिव शव-समान है। ब्रह्माजी सृष्टि करनेको चले। बहुत-सी मानसिक सृष्टि कर डाली, कोई उत्साह नहीं। वृद्धिकी आशा नहीं। नीरस नर कर ही क्या सकता है। सूखे चूनमें जबतक जल न पड़े, सरस न हो, तबतक रोटी कैसे बन सकती है। यदि घृतका, नमकका—सरसता-लावण्यका संयोग न हो, तो सूखे आटेमें तृप्ति नहीं, भोजनमें उत्साह नहीं, स्फूर्ति नहीं। बहुत-सी मानसिक सृष्टि करके भी ब्रह्माजीने अपनेको कृतकार्य नहीं समझा। वे चिन्तित हुए, हताश हुए। अब क्या करें। अन्तमें ब्रह्माके दो रूप हो गये। एक अङ्गसे नारी और दूसरेसे नर। उनमें कोई अन्तर नहीं, छोटे-बड़ेका भेद-भाव नहीं, किंतु जो नारीरूप हुआ, उसमें सुकुमारता, मादकता, मृदुता, वशीकारिता, सुन्दरता, सरसता तथा आकर्षण नरसे अधिक हुआ। ये ही उसके गुण सृष्टिवृद्धिमें कारण हुए। नरका उसे देखकर ही उत्साह बढ़ गया, उसके अङ्ग-अङ्गमें स्फूर्ति आ गयी। उसकी एकान्तप्रियता नष्ट हो गयी। उसे मिथुन-धर्ममें सरसताका अनुभव हुआ। सृष्टिकी वृद्धि आरम्भ हुई। यदि नारी न होती तो सृष्टि कभी नहीं होती।

आर्य-शास्त्रोंमे भगवान्‌को माता और पिता दोनो कहा गया है। उनका मातृरूप भी है और पितृरूप भी। हम सब उनकी अबोध सन्तान हैं। छोटे-बच्चेका जितना स्नेह मातासे होता है, जितना आकर्षण जननीके प्रति होता है, उतना जनक पिताके प्रति नहीं होता। इसीलिये हमें आरम्भसे ही शक्तिकी उपासना बतायी जाती है, सावित्रीकी दीक्षा दी जाती है।

* जो नारी सब कार्योंमें प्रयत्नशील है, जो नारी सब कार्योंमें दक्ष है, जो नारी पुत्र-प्रसविनी है, जो नारी पतिव्रता है, जो नारी पतिको प्राणसमान प्यार करनेवाली है, वह नारी धर्मभागिनी है।

गणेशाय नमः के पूर्व श्री लगायी जाती है। राम, कृष्ण, शिव, विष्णु—कोई क्यों न हों, जबतक उनके पूर्व उनकी शक्ति नहीं, तबतक वे कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं। सीताके बिना राम अधूरे हैं। नटेश्वर नारीके बिना अर्धाङ्ग हैं, राधाके बिना कृष्ण कौड़ी कामके भी नहीं। उन्हें कोई छाछके मोलमें भी लेनेवाला नहीं। जिस सम्प्रदायमें शक्तिकी उपासना नहीं, वह नीरस सम्प्रदाय है। नारी प्राणदात्री है, वह सरसताका संचार करके सृष्टिके सृजन-कार्यको सुचारुरूपसे संचालित करनेके लिये सुन्दर से-सुन्दर सर्वश्रेष्ठ साधन है। नारी जगदम्बिका है, जगज्जननी है, सृष्टि-स्थिति तथा प्रलयङ्करी है। उसके अनेक रूप हैं।

जब वह पुत्री बनकर आती है तो वह एक कुलकी ही कीर्ति नहीं बढाती, दो कुलोंको गौरवान्वित करती है। अपनी सहज सरसताके कारण दो अपरिचित कुलोंको एकमें सम्बन्धित कर देती है। मधुर सम्बन्धसे परिवारभरमें हास्य-विनोदका पथ परिष्कृत कर देती है। जब वह भगिनीरूपमें लजाती हुई बन्धुके सम्मुख आती है और कम्पित करसे राखी बाँधती है या तिलक काढती है, तो हृदयमें एक नवजीवनका संचार कर देती है, हृदयमें एक प्रकारकी विचित्र स्नेहकी संजीवनी-सी घोल देती है। जब वह नरके सम्मुख नारीरूपमें आती है। जब वह नरके आधे रूपको पूर्ण करने अर्धाङ्गिनीके वेषमें आती है, तो वह घनीभूत सरसताके रूपमें ही अवतरित होती है। मनुष्य उसे पानेके लिये क्या नहीं करता। खानोंको वह प्राणोंका पण लगाकर क्यों खोदता है, इसीलिये कि इससे सुवर्ण रत्न निकालकर अपनी हृदयेश्वरीको सजाऊँ। मनस्वी होकर भी वह पग-पगपर अपमान क्यों सहता है, इसीलिये कि उसे अपनी प्रियतमाके लिये सुन्दर-से-सुन्दर साड़ी लानी है। अगाध समुद्रमें प्राणोंका मोह परित्याग करके वह इसी आशासे डुबकी लगाता है कि इसके नीचे कहीं मोती मिल जायँ तो अपनी मनोरमाके कण्ठके लिये हार बनाकर उसे सजा दूँ, अपने प्रेमका प्रतीक उसके हृदय-प्रदेशमें डालकर उसे प्रफुल्लित कर दूँ। यदि नारीका प्यार प्राप्त न हो, उसके नीरस जीवनमें सहधर्मिणीने सरसताका संपुट न लगाया हो, तो वह क्यों धूपमें दौड़ता, क्यों प्राणोंका पण लगाकर सब कुछ करनेको उद्यत हो जाता। ईंट, पत्थर, मिट्टीके बने घरको घर नहीं कहते; इनमें तो बड़ी-बड़ी दाढ़ी-जटाओंवाले बाबाजी भी रहते हैं। किंतु वे घर नहीं, कुटियाँ हैं। घर तो घरवालीसे ही कहाता है। 'गृहिणी गृहमुच्यते।' गृहकी अधीश्वरी ही न हो तो घर कैसा? गृहस्विनी ही न हो तो गृहस्थी कैसी? नारीके बिना नरकी शोभा नहीं।

वही नारी जब जननी बनकर सन्तानके [illegible] है तब तो वह अपने समस्त स्नेहको अपने [illegible] सिखा देती है, सेवाका अनुपम आदर्श उपस्थित कर देती है। स्वयं गीलेमें सोकर सुतको सूखेमें सुलाती है, स्वयं भूखी रहकर बच्चेको भोजन खिलाती है, स्वयं प्यासी रहकर [illegible] पिलाती है, स्वयं न नहाकर पुत्रको नहलाती है। [illegible] भी अधिक मानकर आत्माकी प्रतिकृति आत्मीयको सुख पहुँचाती है। इस प्रकार नारीको हम विभिन्न रूपोंमें पाते हैं और [illegible] भी पाते हैं, उसीमें उसे सेवा करते, [illegible] मिटाते और अपना अपनापन हटाते ही पाते हैं। [illegible] हैं—तू कौन है? लजाकर अपने [illegible] नाम बताती है। पुत्रको स्वयं प्रसव करती है, पालती है, पोसती है, किंतु उसका नाम कोई नहीं जानता, पुत्रको सब पिताके ही नामसे जानते हैं। उसने अपना पृथक् अस्तित्व बनाया ही नहीं। पतिमें ही उसने अपनेको मिला दिया। [illegible] पति पण्डित है और स्वयं निरक्षरा है, फिर भी वह [illegible] कहलावेगी। उसका पति वैद्य है, वह वैद्यक कुछ भी नहीं जानती; फिर भी वह वैद्यानीके नामसे [illegible] है। जबतक पिताके घरमें रही, तबतक उसने अपनी [illegible] स्थापित नहीं की। पतिके घर आयी, तो [illegible] आयी। अपने पिताका गोत्र भी त्याग दिया। [illegible] पतिमें अपनेको मिला दिया। इतना [illegible] मिलेगा।

लोग बाहर साधना करके साधु कहलाते हैं, किंतु [illegible] घरमें रहकर भी इतनी उग्र साधना करती है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेशतक उससे डर जाते हैं। वह [illegible] है, वह सूर्यकी गतिको रोक सकती है [illegible] दे सकती है। [illegible] कोई असम्भव कार्य नहीं। [illegible] महत्त्व सबसे बड़ा है। भगवान्‌ने [illegible] हार मानी है।

नारीको सदा अबला कहा है, [illegible] क्यों न हो। कैसी भी नारी क्यों न हो, [illegible] है। नारीका सर्वत्र सम्मान किया जाता है, [illegible] चढ़ाया जाता है। नारीके [illegible] पूजा होती है, वहाँ सभी देवता [illegible] में यदि एक भी नारीकी रक्षा की, [illegible] प्रायश्चित्त कर लिया, उसने [illegible] एक यही प्रसिद्ध प्राचीन कहानी है।

कोई बड़ा भारी डाकू था। उसने अपने जीवनमें बहुत लोगोंका धन अपहरण किया, बहुतसे डाके डाले, सत्तर व्यक्तियोंकी हत्याएँ कीं। अन्तमें उसे अपने इस घृणित कार्यसे विराग हुआ। उसने लूट-पाटके कार्यका परित्याग किया और पापोंके शोधनार्थ वह एक सच्चे साधुकी शरणमें गया।

साधुने उसका सम्पूर्ण समाचार सुनकर कहा—'भैया! तेरे पाप महान् हैं। सत्तर पुरुषोंकी हत्या करना सामान्य पाप नहीं है।'

डाकूने कहा—'गुरुदेव! मुझे कठिन-से-कठिन प्रायश्चित्त बताइये, उसे मैं करूँगा।'

साधुने उसे एक काला झंडा देते हुए कहा—'तुम इस झंडेको लेकर पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें भ्रमण करो। स्वयं स्नान करो और इस झंडेको भी स्नान कराओ। जिस तीर्थमें जाकर यह कालेसे सफेद हो जाय, वहीं समझना मेरे पाप धुल गये।'

गुरु-आज्ञा शिरोधार्य करके वह डाकू चल दिया। उसने समस्त पुण्य-सरिताओंमें, समस्त पवित्र तीर्थोंमें स्नान किया, झंडेको भी स्नान कराया; किंतु वह कालेसे सफेद न हुआ। तब तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने समझ लिया—'मेरे पापोंका प्रायश्चित्त असम्भव है। एक हत्या ही कठिनतासे छूटती है, फिर मैंने तो सत्तर हत्याएँ की हैं। गुरुदेवके समीप चलूँ और उनकी आज्ञा लेकर इन प्राणोंका परित्याग कर दूँ।' ऐसा सोचकर वह समस्त तीर्थोंमें स्नान करके गुरुके समीप लौट रहा था कि उसे एक सघन वन मार्गमें पड़ा।

उस वनमें उसे एक करुण ध्वनि सुनायी दी। दयावश वह उस ध्वनिका ही अनुगमन करता हुआ एक वृक्षोंके झुरमुटमें पहुँचा। वहाँ उसने देखा, दस डाकू किसी भले घरकी सुन्दरी नारीको पकड़ लाये है और उसके साथ बलात्कार करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। उन नर-पशुओंके फंदेमें फँसी वह अबला जलसे पृथक् मछलीकी भाँति बिलबिला रही है, बधिकके फंदेमें फँसी गौके समान काँप रही है, कुररी पक्षीकी भाँति रुदन कर रही है, व्याधोंके हाथ फँसी मृगीके समान अश्रुविमोचन कर रही है, उसकी ऐसी दयनीय दशा देखकर उस दस्युका हृदय द्रवित हो गया। तीर्थोंकी यात्रासे उसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था। शुद्ध अन्तःकरणमें ही दयाका संचार होता है, दयावान् पुरुष ही पर-पीडाको देखकर उसे मिटानेके लिये प्रयत्न करते हैं।

अपने पूर्वके स्वभावानुसार वह डाकू अपने पास तलवार रखता ही था। उसने सोचा—'अच्छी बात है, जैसे सत्तर, वैसे ही अस्सी। यदि पापोंका प्रायश्चित्त नहीं होता तो इस विपत्तिमें फँसी देवीका तो उद्धार करना ही चाहिये।' यह सोचकर उसने तलवारसे दसोंके सिर धड़से पृथक् कर दिये। देखते-ही-देखते उसका जो झंडा काला था, वह सफेद हो गया। डाकूके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। उस देवीको उसके स्थानपर पहुँचाकर वह दौड़ा-दौड़ा अपने गुरुके पास गया। उसके सफेद झंडेको देखकर गुरु समझ गये कि इसके पापोंका प्रायश्चित्त हो गया। उसने गुरुके पादपद्मोंमें प्रणाम किया। गुरुने आशीर्वाद देते हुए पूछा—'वत्स! किस तीर्थमें स्नान करनेसे तुम्हारा यह काला झंडा सफेद हुआ?'

हाथ जोड़कर डाकूने कहा—'गुरुदेव! असितीर्थमें स्नान करनेसे यह कालेसे सफेद बन गया। यह बड़े आश्चर्यकी बात है।'

गुरुने कहा—'असितीर्थ कहाँ है? उसमें स्नान करनेसे यह सफेद कैसे हुआ? मुझे पूरा वृत्तान्त सुनाओ।'

डाकूने कहा—'भगवन्! मैंने पृथ्वीकी परिक्रमा की, सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुण्यतीर्थोंमें जाकर स्नान किया, किंतु कहीं भी यह कालेसे सफेद नहीं हुआ। जब मैंने सत्तरके स्थानमें अस्सी हत्याएँ कर दीं, तब यह कालेसे सफेद हो गया। एक स्त्रीके साथ दस नर-पिशाच बलात्कार करना चाहते थे, मैंने सोचा—जैसे सत्तर, वैसे अस्सी। ज्यों ही मैंने दसोंका सिर काटा, त्यों ही यह कालेसे सफेद हो गया। गुरुदेव! इस विषयमें मुझे बड़ा आश्चर्य है, इसका कारण बताइये।'

यह सुनकर हँसते हुए गुरुने कहा—'देखो, भैया! वे सत्तर हत्याएँ तो तुमने स्वार्थवश की थी, बुरे भावसे की थीं। इसलिये वह तो पाप ही था। किंतु ये दस हत्याएँ तो तुमने दयाके वश होकर नारीकी रक्षाके लिये परार्थभावनासे की थीं; इसलिये यह महान् पुण्य है। इस पुण्यके प्रभावसे तुम्हारे वे सब पाप धुल गये। तुम्हारा काला झंडा सफेद हो गया। देखो, भैया! काम कोई भी बुरा या भला नहीं होता। बुराई-भलाई भावनाके ही अनुसार होती है। तप करना, अध्ययन करना, वेद-विधिका पालन करना, यहाँतक कि बलपूर्वक दूसरोंके धनका अपहरण करना—ये सब पाप नहीं हैं; किंतु यदि ये ही काम दूषित भावसे किये जायँ तो पाप है। आप तप कर रहे हैं, तप करके दूसरोंका अनिष्ट कर रहे हैं, तो वह तप तप नहीं है, दम्भ है, पाप है। वेदाध्ययन करना पुण्यका काम है; किंतु दूसरोंको दिखानेके लिये, तुच्छ स्वार्थके लिये, दम्भके लिये जो अध्ययन किया जाता है, दूसरोंको क्लेश पहुँचानेकी भावनासे, दूसरोंको नीचा दिखानेकी इच्छासे जो अध्ययन और वर्णाश्रम-धर्म-

का दिखावटी पालन किया जाता है, वह भाव दूषित होनेसे पुण्य नहीं, पाप है। इसी प्रकार यदि भाव शुद्ध हो, अश्वमेधादि यज्ञके लिये स्वेच्छासे कोई धन न देता हो, तो परोपकारके लिये—पुण्यकार्यके लिये विशुद्ध भावनासे किसीका धन छीन भी लिया जाय तो पाप नहीं है। यदि स्वार्थबुद्धिसे ऐसा किया जाय तो महापाप है।* तुमने तो दयावश अबलाकी रक्षा की। विपत्तिमें पडी स्त्रीकी जो आततायियोंके हाथोंसे रक्षा करता है, उससे बढकर पुण्यात्मा पुरुष कोई भी नहीं।'

साराश यह है कि स्त्रीकी रक्षा करना परम धर्म है। स्त्रीने कैसा भी घोर-से-घोर अपराध किया हो, उसे प्राणदण्ड कभी भी न देना चाहिये। ऐसा सुना जाता है कि शिवाजीके सैनिकोंने किसी शत्रु-पक्षकी स्त्रीको पकडकर छत्रपतिके सम्मुख उपस्थित किया। वह सेनाका समस्त भेद बताती थी। शिवाजीने उसे सत्कारपूर्वक चोली-ओढनी देकर सुरक्षित शत्रुओंके शिविरमें पहुँचा दिया। आर्य-संस्कृतिका यही सर्वोच्च सदाचार है। महाराज इक्ष्वाकुकी सेनाके बहुत-से पुरुषोंको एक शूकरीने मार डाला। रानीने राजासे कहा—'प्राणनाथ! आप इस शूकरीको मारते क्यों नहीं?' इसपर राजाने कहा—'प्रिये! स्त्रीजातिको अवध्या बताया है। मैं अपने बाणोंको स्त्रीपर कभी नहीं छोड सकता।' पूतना और शूर्पणखाके वधको अनेक युक्तियोंसे उचित सिद्ध किया जाता है। फिर भी कवियोंने और उस समयके लोगोंने भगवान्के इन कार्योंकी कड़ी आलोचना की है। स्त्रीको मारनेकी बात तो क्रूर-से-क्रूर पुरुष भी नहीं सोच सकते। जिस समाजने स्त्रियोंपर अत्याचार किये हैं, उनका निर्ममतासे वध किया है, उनके गुह्य अङ्गोंको काटा है या निर्दयतासे उनके साथ बलात्कार या उनपर आक्रमण किया है, उस समाजका नाश निश्चय हुआ है।

बिठूरके पेशवा नानासाहबने गदरके समय अंग्रेजोंको भारतसे निकालनेके लिये विद्रोहियोंका नेतृत्व किया था। उन्होंने कानपुरको विजय कर लिया और अंग्रेजोंको कैद कर लिया। उनमें कई अंग्रेज स्त्रियाँ भी बंदी बनायी गयी थीं। उन स्त्रियोंमें एक मेम बडी ही चतुर थी। उन्हें पहरेमें बाहर शौचके लिये ले जाया जाता था। उसने भंगिनको मिलाकर एक पत्र प्रयागके किलेके अंग्रेजोंको लिखा और शौच कर उसे वहीं छोड आयी। भंगिनने जबतक उस पत्रको नहीं उठाया, तब तक उसपर किसी प्रहरीकी दृष्टि पड गयी। उसने [illegible] पत्र नानासाहबको दिया। एक अंग्रेजी [illegible]। भंगिनके २५ कोडे लगे। उसने सब स्वीकार कर [illegible]। [illegible] तो लोगोंके हृदयमें प्रतिहिंसा आग उठी। वे सब मेमोंको [illegible] डालनेको उद्यत हुए। नानासाहबने बहुत रोका। [illegible] सैनिक माने नहीं और उन गोरी नारियोंको मार डाला। [illegible] समय पुरोहितने कहा कि 'अब हिंदुओंकी विजयमें [illegible]।'

साराश इतना ही है कि स्त्रियोंको किसी भी [illegible] प्राणदण्ड नहीं दिया जाता। जो स्त्रीहत्यारा है, उससे बढकर कोई पापी नहीं। स्त्रीकी रक्षामें लडते-लडते स्वयं प्राण दे दे, किंतु स्त्रियोंको कभी भी न मारे। जो प्रतिहिंसाके [illegible] स्त्रियोंकी हत्या करते हैं, वे अपने सिरपर [illegible] ही टीका नहीं लगाते, अपने समाजको भी नरकमें ले [illegible] हैं। आततायीको मारना दोष नहीं, किंतु स्त्रीकी रक्षा सब प्रकारसे करनी चाहिये। कन्या दान और नारी-रक्षामें [illegible] पुण्य नहीं। समाजका मुख उज्ज्वल करनेवाली नारी ही [illegible]। जिस समाजमें सच्चरित्र नारियाँ हैं, वह समाज गौरवान्वित है। स्त्रीका महत्त्व तभीतक है, जब वह अपनी मर्यादामें रहे। वह कन्या, भगिनी, माता तथा धर्मपत्नीके रूपमें रहे, [illegible] पूजनीय है, माननीय है। जब वह इन रूपोंको छोड [illegible] चारिणी, कामिनी तथा स्वैरिणी बन जाय, तब [illegible] से नीचे गिर जाती है। शास्त्रोंमें जहाँ नारियोंकी निन्दा की [illegible] है, वह धर्मपत्नीकी निन्दा नहीं है, स्वैरिणी [illegible] निन्दा है। पतिव्रताकी निन्दा कर ही कौन सकता है। [illegible] सम्मुख तो भगवान् भी काँपने लगते हैं। [illegible] ब्रह्माण्डको भस्म कर सकती है। सती और [illegible] यह पृथ्वी टिकी हुई है। शास्त्रोंमें नारी-निन्दा [illegible]। [illegible] भी कहीं ऐसा प्रसङ्ग आता है, वह [illegible] निन्दा है। [illegible] वह चाहे नर हो गया हो या नारी, [illegible] नहीं तो नारी तो जगदम्बिका है। [illegible] उसका महत्त्व तो सबसे श्रेष्ठ है [illegible] है, वह तो अपनी उस जननीकी निन्दा करता है, [illegible] समस्त तीर्थोंका निवास है। [illegible] और महिमाकी मूर्ति है।

नारी निंद न [illegible]
[illegible]

---

* तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्पस्वाभाविको वेदविधिर्न कल्पः। [illegible]

अध्यात्मवादकी कसौटीपर नारी-धर्म

(लेखक—स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)

प्रश्न—महात्माओंकी दृष्टिमें नारी क्या है ?

उत्तर—जो नर है। अभिप्राय यह है कि महात्माओंकी दृष्टिमें नारी और नरका भेद नहीं होता। जो ज्ञानमार्गद्वारा सिद्ध हैं, उनकी दृष्टिमें ब्रह्मके सिवा और सब नाम-रूप-क्रियात्मक प्रपञ्च मिथ्या है अर्थात् केवल ब्रह्म ही, प्रत्यगात्मा ही एक तत्त्व है। श्रीमद्भागवत (स्कन्ध १, अध्याय ४, श्लोक ५) में एक संकेत है। स्नान करते समय अवधूत शुकदेवको देखकर देवियोंने वस्त्र धारण नहीं किया; व्यासजीके आते ही दौड़कर धारण कर लिया। यह आश्चर्यचर्या देख व्यासजीने पूछा—'ऐसा क्यों ?' देवियोंने उत्तर दिया—'तुम्हारी दृष्टिमें स्त्री-पुरुषका भेद बना हुआ है, परन्तु तुम्हारे पुत्रकी एकान्त और निर्मल दृष्टिमें वह नहीं है।'

तवास्ति स्त्रीपुम्भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥

जो भक्तिमार्गद्वारा सिद्ध हैं, उनकी दृष्टिमें भी प्रभुके सिवा और कुछ नहीं है। वे श्रुति भगवतीके शब्दोंमें ही कहते रहते हैं—'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।' 'तुम्हीं स्त्री हो और तुम्हीं पुरुष। तुम्हीं कुमार हो और तुम्हीं कुमारी।'

महात्माओंकी दृष्टिमें नारी और नरका साम्य नहीं—एकत्व है, नारी-नरका ही नहीं, संपूर्ण।

प्र०—क्या नारीको प्रकृति और नरको पुरुष समझना उचित है ?

उ०—नितान्त अनुचित। जीव चाहे नरके शरीरमें हो अथवा नारीके, वह चेतन पुरुष ही है। शरीर नारीका हो अथवा नरका, वह प्रकृति ही है। इसलिये नारीको प्रकृति मानकर जो उसे भोग्य समझते हैं, उनकी दृष्टि अविवेकपूर्ण है। भगवान् श्रीकृष्णने शरीरको क्षेत्र और जीवको क्षेत्रज्ञ—चेतन कहा है, भले ही वह किसी भी योनिमें हो।

प्र०—जब नारीके रूपमें भी चेतन जीव ही है, तब शास्त्रोंमें उसकी इतनी निन्दा क्यों की गयी है ?

उ०—चेतन जीवकी निन्दा कहीं भी नहीं की गयी है। निन्दा है प्राकृत शरीरकी, वह चाहे नरका हो या नारीका। शरीरमें आत्मभाव, आसक्ति और अभिनिवेशके रूपमें फैली हुई अविद्याका नाश करनेके लिये ही उसकी क्षणभङ्गुरता, अपवित्रता, दुःखरूपता आदिका विवेचन किया जाता है। नारी अथवा नरके शरीरको सत्य, आत्मा, रमणीय एवं प्रिय माननेसे उसमें जो भोग्यबुद्धि होती है, वही समस्त अनर्थोंकी जननी है। नरकी बुद्धिमें चिरकालसे नारीके प्रति जो भ्रान्ति-मूलक भोग्य-भाव हो रहा है, उसके निषेधमें निन्दाका तात्पर्य है। नारी भी भ्रमवश अपनेको शरीर मानती है। इसलिये जब उसकी कोई निन्दा करता है, तब चिढ़ती है और प्रशंसा करता है, तब प्रसन्न होती है। यह दृष्टिकोण सर्वथा भ्रान्त है। नारी-शरीरकी निन्दा करनेवाले प्रतिक्षण नारीको यह प्रेरणा देते हैं कि तुम शरीर नहीं हो, शुद्ध चेतन हो। इसी ज्ञानसे संसारके सब हर्ष-विषादरूप विकारोंपर विजय प्राप्त करके मोक्ष-प्राप्ति की जाती है। इसके विपरीत प्रशंसा करनेवाले शरीरमें ही आत्मभाव और आसक्तिको दृढ़ कराते हैं एवं असङ्ग चेतनको ऐसी स्थितिमें रहनेकी प्रेरणा देते हैं, जिसमें वह अपनेको शरीर मानता रहे और इसीको सजा-सिंगारकर दूसरे शरीराभिमानियोंके सामने अपनेको भोग्यरूपसे उपस्थित करता रहे। ये नारी-शरीरकी प्रशंसा करनेवाले वास्तवमें नारी-जातिके शत्रु हैं और उन्हें चिरकालतक अपना भोग्य बनाये रखनेके लिये झाँसा देते रहते हैं। यदि नर नारीको अपना भोग्य मानता है तो वह नारीका सरासर अपमान करता है। जो निन्दा करता है, वह अपनेको उसे भोग्य माननेकी भूलसे बचानेकी चेष्टा करता है और वास्तवमें वही नारीका सम्मान करता है।

प्र०—निन्दकोंके प्रति नारीका क्या दृष्टिकोण होना चाहिये ?

उ०—

शरीरं यदि निन्दन्ति सहायास्ते जना मम।
आत्मानं यदि निन्दन्ति स्वात्मानं निन्दयन्ति ते ॥

विचारकी आँखसे देखना चाहिये कि 'वे किसकी निन्दा करते हैं—शरीरकी या आत्माकी ? यदि शरीरकी, तब तो वे हमारे हितैषी हैं—देहाभिमान छुड़ाकर नारीको शुद्ध, बुद्ध, मुक्त चेतनके रूपमें देखना चाहते हैं। यदि वे आत्माकी निन्दा करते हैं—जो कि नारी-नरका, सबका एक ही है—तब तो वे अपनी ही निन्दा करते हैं—उन्मत्त प्रलापपर ध्यान देनेकी क्या आवश्यकता है।'

प्र०—यदि नारीको नर भोग्य समझता है तो इसमे क्या दोष है ?

उ०—अनेक दोष हैं—

१—एकमात्र परमात्मा ही सत्य है—इस तात्त्विक सिद्धान्तसे च्युत हो जाना।

२—अपनेको देहाभिमानी भोक्ता मान बैठना।

३—नारीको पाञ्चभौतिक पुतला मानकर उसके प्रति स्थूल खाद्य पदार्थ अन्न-जल आदिके समान व्यवहार करके अपमानित करना। इसी प्रवृत्तिसे लोग स्त्री-जातिको सामान्य धन समझकर व्यापार करते हैं।

४—अपवित्रमें रमकर स्वयं नष्ट होना और दूसरेको नष्ट करना इत्यादि।

प्र०—नारीको माया कहनेका क्या अभिप्राय है?

उ०—माया शब्दका प्रयोग उत्तम और अधम दोनों अर्थोंमें होता है। तथापि यहाँ दूसरे अर्थपर विचार किया जाता है। मायाका अर्थ है—हो कुछ और दिखावे कुछ और। नर भ्रान्ति-परम्परामें विचरता हुआ इस स्थितिमें पहुँच गया कि वह अन्यकी अपेक्षा, भोगवासनाके आवेशमें नारी रूपधारी असङ्ग चेतनको ही भोग्य समझने लगा। नारीने सहयोग दिया—मैं सचमुच तुम्हारी भोग्या हूँ। यह छलना है—माया है। वस्तुतः भोक्ता और भोग्यका भेद झूठा है। यदि देहावेशको स्वीकार कर लें तो भी दोनों भोक्ता हैं। इस छलनामय भोग्यताके प्रदर्शनमें जो नारियाँ आगे रहीं, उन्हें ही माया कहा गया है।

प्र०—जब नारी और नर दोनोंके शरीर मायिक अथवा प्राकृत हैं और दोनों ही आत्मदृष्टिसे शुद्ध चेतन हैं, तब केवल नारियोंकी ही इतनी निन्दा क्यों?

उ०—शास्त्रका अभिप्राय केवल नारीकी निन्दा करनेमें सर्वथा नहीं है। तत्त्वदृष्टिसे वह तत्त्व दर्शनभेदसे चाहे ब्रह्म हो, प्रकृति हो, शून्य हो, कर्म हो, पञ्चभूत हो, कुछ भी क्यों न हो, नारी और नरका भेद नहीं है। जहाँ निन्दा है, वहाँ शरीरकी ही है। जैसे नर साधकोंको नारीके प्रति भोग्य बुद्धिरूप पापसे बचानेके लिये नारीशरीरकी निन्दा शास्त्रोंमें मिलती है, वैसे ही नारी साधकोंको नरके प्रति भोग्यबुद्धिरूप पापसे बचानेके लिये नरशरीरकी निन्दा प्राप्त होती है। श्रीरुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णसे कह रही हैं—

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्त-
र्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम्।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा
या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री॥
(श्रीमद्भा० १०। ६०। ४५)

'यह मनुष्यका शरीर जीवित होनेपर भी मुर्दा [illegible] है। ऊपरसे चमड़ी, दाढ़ी-मूँछ, रोएँ, नख और [illegible] हुआ है; परंतु इसके भीतर मांस, हड्डी, [illegible], [illegible], मूत्र, कफ, पित्त और वायु भरे पड़े हैं। जो स्त्री [illegible] प्रियतम पति समझकर सेवन करती है, वह [illegible] अत्यन्त मूर्खा है और सच पूछिये तो उसे कभी [illegible] चरणारविन्दके मकरन्दकी सुगन्ध सूँघनेको नहीं मिली है।'

इस प्रसङ्गमें पिङ्गलाके वचन भी अनुसन्धान करने योग्य हैं—

अहो मे मोहविततिं पश्यताविजितात्मनः।
या कान्तादसतः कामं कामये येन बालिशा॥
सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय।
अकामदं दुःखभयाधिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा॥
अहो मयाऽऽत्मा परितापितो वृथा साङ्केत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया।
स्त्रैणान्नराद्यार्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती॥
यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम्।
क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या॥
(श्रीमद्भा० ११। ८। ३०—[illegible])

'हाय! हाय! मैं इन्द्रियोंके अधीन हो गयी। [illegible] मेरे मोहका विस्तार तो देखो—मैं इन दुष्ट पुरुषोंसे, [illegible] कोई अस्तित्व ही नहीं है, विषय-सुखकी [illegible] हूँ। कितने दुःखकी बात है! मैं सचमुच मूर्खा हूँ। [illegible] मेरे निकट-से निकट—हृदयमें ही मेरे सच्चे स्वामी [illegible] विराजमान हैं। वे वास्तविक प्रेम-सुख और [illegible] धन भी देनेवाले हैं। जगत्के पुरुष अनित्य [illegible] हैं। हाय! हाय! मैंने उनको तो छोड़ दिया और [illegible] मनुष्योंका सेवन किया, जो मेरी एक भी [illegible] कर सकते। कामना पूर्तिकी बात तो [illegible] दुःख-भय, आधि-व्याधि, शोक और [illegible] हैं। यह मेरी मूर्खताकी हद है कि मैं उनका [illegible] बड़े खेदकी बात है, मैंने [illegible] वेश्यावृत्तिका आश्रय लिया और [illegible] मनको क्लेश दिया, पीड़ा पहुँचायी। [illegible] गया है। लम्पट, लोभी और [illegible] खरीद लिया है। और मैं [illegible] और रति-सुख चाहती हूँ। [illegible] घर है। इसमें हड्डियोंके [illegible] हुए हैं; चाम, रोएँ और [illegible]

नौ दरवाजे हैं, जिनसे मल निकलते ही रहते हैं। इसमें सञ्चित सम्पत्तिके नामपर केवल मल और मूत्र हैं। मेरे अतिरिक्त ऐसी कौन स्त्री है, जो इस (अपने या प्रियतमके) स्थूलशरीरको प्रिय समझकर सेवन करेगी ?'

कहनेका अभिप्राय यह है कि केवल नारियोंकी निन्दाका आरोप झूठा है। स्वदेहमें आत्मबुद्धि, पर-देहमें आत्मीय एवं प्रियबुद्धिका निषेध करनेके लिये समानरूपसे नारी और नर दोनों शरीरोंकी निन्दा है।

प्र०—ऐसी स्थितिमें विवाहका क्या प्रयोजन है ?

उ०—विवाहका प्रयोजन है—नारी और नर दोनोंकी वासनाओंका सकोच। विवाहबन्धन भी एक प्रकारका योगाभ्यास है। बात यह है कि जीव नारी हो या नर, अनादिकालसे वासनाओंसे विजडित और संचालित होता आ रहा है। सभी योनियोंमें उनकी पूर्तिका ही रस लेता रहा और उन्हींके वश ससारमें भटकता रहा। यदि इसको मुक्ति पाना है तो पूर्णरूपसे वासनारहित होना ही पड़ेगा; परन्तु एका-एक वासनाओंका सर्वथा त्याग सम्भव नहीं है। इसलिये उनकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तिपर नियन्त्रण स्थापित करनेके लिये वासनापूर्तिकी एक सीमा अथवा मर्यादा होना आवश्यक है। इसी लक्ष्यसे वासना-निवृत्तिके लिये, पूर्तिके लिये नहीं, विवाहकी मर्यादा रक्खी गयी है। शास्त्रोंमें विवाहको सन्ध्यावन्दनके समान नित्य विधिके अन्तर्गत न मानकर परिसंख्या विधिके अन्तर्गत माना गया है। आजकलके लोग इस लक्ष्यको भूलते जा रहे हैं—इसीसे वे भोगकी, वासनापूर्तिकी अधिक-से-अधिक सुविधा निकालनेको तत्पर हैं। इसका परिणाम होगा—विवाहके आध्यात्मिक उद्देश्यका नाश होनेसे उच्छृङ्खलताका साम्राज्य। जीव कभी वासनारहित नहीं हो सकेगा और न तो उसकी आध्यात्मिक उन्नति होगी। विवाहका दृढ़-से-दृढ़ धर्म-बन्धन ही जीवको वासनाजालसे मुक्तकर परमार्थपदकी प्राप्ति करा सकता है।

प्र०—वर-वधूका चुनाव एक दूसरेकी रुचिसे होना चाहिये या गुरुजनोंकी ?

उ०—सर्वथा गुरुजनोंकी रुचिसे। जब यह निश्चित हो जाता है कि वासनाओंका संकोच या नियन्त्रण ही विवाहका उद्देश्य है, तब सभी प्रश्नोंका उत्तर अपने-आप ही मिल जाता है। रूप, यौवन, विलासपर ध्यान रखकर विवाह करना तो विपरीत मार्ग है। गुरुजनोंकी आज्ञा मानकर, धर्मको सामने रखकर, वासनारोगकी निवृत्तिके लिये महौषधि समझकर ही विवाह करना चाहिये, भोगवासनासे नहीं। इस दृष्टिसे विचार करनेपर गृहस्थ-धर्ममें जो स्त्री-पुरुषके मिलनपर प्रतिबन्ध है, ग्राम्यसुखभोगपर नियन्त्रण है, सबकी युक्तियुक्तता सिद्ध हो जायगी। पातिव्रतधर्म, विधवाधर्म आदि समस्त नारी-धर्मोंका मूलतत्त्व यही है।

प्र०—यह दाम्पत्य-जीवन तो बहुत ही नीरस होगा ?

उ०—बिना धर्म-बन्धनके सच्चे रसकी उत्पत्ति नहीं होती। लोगोंके मनमें रसकी उल्टी कल्पना हो गयी है। वे भोगमे रस समझते हैं। धर्म-बन्धनमें कितना सरस भाव-प्रवाह है, इसके लिये विवाहका एक मन्त्र देखिये।

वर वधूका दाहिना हाथ पकड़कर कहता है—

अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोऽहम्। सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्॥

'प्रिये! मैं विष्णु हूँ, तुम लक्ष्मी। तुम त्रयी हो, मैं त्रिदेव। मैं सङ्गीतमय सामवेद हूँ, तुम कवितामयी ऋचा (ऋग्वेद) हो। मैं अन्तरिक्ष हूँ और तुम पृथ्वी।'

रस भावमें होता है, पदार्थ अथवा क्रियामें नहीं। जिस दाम्पत्यमे इतना ऊँचा भाव है, उसमें नीरसताकी कल्पना सर्वथा असङ्गत है।

प्र०—अन्य पुरुषोंके प्रति नारीकी कैसी दृष्टि हो ?

उ०—जब अपने पतिके सहवासका उद्देश्य ही कामपर विजय पाना है, तब ऐसी कोई भी दृष्टि जिससे काम वासनाको उद्दीपन प्राप्त हो किसीके प्रति भी कैसे की जा सकती है ? इसीसे चाहे पतिदेव इस लोकमें हों, न हों, नारीका धर्म यही है कि स्वप्नमें भी अपने मनमें बुरे भाव न आने दे। जो लोग वासनाओंका बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते हैं और कहते हैं कि नारी उन्हें वशमें नहीं कर सकती, वे नारीका अपमान करते हैं। उनकी बातोंमें आकर अपने व्रतसे च्युत नहीं होना चाहिये और किसी भी दृष्टिसे पिता, भाई, पुत्र मानकर भी पर-पुरुषसे हेल-मेल नहीं बढ़ाना चाहिये। किसी-किसीका कहना है कि भगवान् श्रीरामचन्द्र जब अत्रि मुनिके आश्रमपर गये, तब अनसूयाजी उन्हें दण्डवत् करनेतक नहीं आयीं, मिलनेकी तो बात ही दूर है। वाल्मीकीय रामायणमे लिखा है कि लङ्कामे श्रीहनुमान्‌जीने श्रीजनकनन्दिनीसे कहा कि 'आप मेरी पीठपर बैठकर भगवान्‌के पास चलें।' उन्होंने स्पष्टरूपसे मना कर दिया। बोलीं—'हरणके समय विवशताके कारण मुझे रावणका स्पर्श सहन करना पड़ा। अब मैं जान-बूझकर तुम्हारा स्पर्श

नहीं कर सकती ।' सती-साध्वी नारियोंके अन्तःकरण स्वतः ही ऐसे पवित्र होते हैं ।

प्र०—नारी अबला है, वह अपनी रक्षा कैसे करे ?

उ०—सती-साध्वी नारीमें अपरिमित शक्ति होती है । सावित्रीने अपने पातिव्रत्यके बलसे सत्यवान्‌को यमराजके पंजेसे छुड़ा लिया । सतीका सङ्कल्प अमोघ है । महाभारतके उद्योगपर्वमें शाण्डिली ब्राह्मणीकी कथा है । उसकी महिमा देखकर गरुड़की इच्छा हुई कि इसको भगवान्‌के लोकमें ले चलें । गरुड़के अङ्ग गल गये । क्षमा माँगनेपर शाण्डिलीने फिर ठीक कर दिया । अनसूयाके सामने ब्रह्मा, विष्णु, महेशको बालक बनना पड़ा । पतिव्रताके भयसे सूर्यको रुक जाना पड़ा—पुराणोंमें ऐसी अनेक कथाएँ हैं । जो अपने धर्मकी रक्षा करता है—ईश्वर, धर्म, देवता, सम्पूर्ण विश्व उसकी रक्षा करते हैं । रक्षा तो अपने मनकी ही करनी चाहिये । यदि मन सुरक्षित है तो कोई भी स्वयं मृत्यु भी किसीका कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।

प्र०—यह तो आध्यात्मिक बलकी बात हुई, आजकी नारी-जातिमें ऐसा बल कहाँ ?

उ०—आजकलकी बात और है । नारी स्वयं ही अपना स्वरूप और गौरव भूलती जा रही है । वह वासनापूर्तिकी सड़कपर सरसरायमाण गतिसे भागती दीखती है । वह बन-ठनकर मनचले लोगोंकी आँखें अपनी ओर खींचनेमें संलग्न है । सादगी, सरलता एवं पवित्रताके आस्वादनसे विरत होकर अपनेको इस रूपमें उपस्थित करना चाहती है, मानो स्व और परकी वासनाएँ पूरी करनेकी कोई मशीन हो । इस स्खलनकी पराकाष्ठा पतन है; परंतु यह सब तो पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृतिकी संसर्गजनित देन है, आगन्तुक है । भारतीय आर्य-नारीका सहज स्वरूप शुद्ध स्वर्णके समान ज्योतिष्मान एवं पवित्र है । वह मूर्तिमती श्रद्धा और सरलता है । धर्मकी अधर्षणीय दीप्तिका दर्शन तो इस गये-बीते युगमें भी उसीके कोमल हृदयमें होता है । केवल उनकी प्रवृत्तिको बहिर्मुखतासे अन्तर्मुखताकी ओर मोड़नेभरकी आवश्यकता है । सत्सङ्गसे आर्य-नारीका हृदय अपनी विस्मृत महत्ताको सँभाल लेगा ।

प्र०—आध्यात्मिक रुचि हो तब तो सत्सग करें ?

उ०—याज्ञवल्क्यके सत्सङ्गसे मैत्रेयीमें किस प्रकार आध्यात्मिक रुचि और बलका उदय हुआ था—बृहदारण्यक उपनिषद्‌की यह आख्यायिका अध्ययन करने योग्य है—

'अरी मैत्रेयी !' सम्बोधन करते हुए याज्ञवल्क्यने कहा—'अब मैं गृहस्थाश्रमसे ऊपर संन्यासाश्रममें प्रवेश करना चाहता हूँ । आओ, कात्यायनीके साथ तुम्हारा बँटवारा कर दूँ ।'

'यदि यह धन-धान्यसे परिपूर्ण समस्त पृथिवी मुझे [illegible] जाय तो क्या अमृतत्वकी प्राप्ति हो जायगी, भगवन् ?' मैत्रेयीने नम्र जिज्ञासा की ।

'नहीं ।' याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया 'धनियोंके जीवनके समान तुम्हारा जीवन भी होगा । धनसे अमृतत्वकी आशा करना व्यर्थ है ।'

'जिस धनसे मैं अमृतत्व नहीं प्राप्त कर सकती, उसे लेकर मैं क्या करूँगी ?' अपनी बात आगे बढ़ाते हुए मैत्रेयी कहने लगी—'भगवन् ! अमृतत्वका जो साधन आप जानते हों, वही मुझे बतलाइये ।'

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम् ।
यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहि ।

यह पति-पत्नी-संवाद एक प्राचीनतम आर्यनारीके हृदयका—उसकी विरक्ति एवं जिज्ञासाका जीता-जागता नमूना है और अवश्य ही यह महर्षि याज्ञवल्क्यके सत्सङ्गका प्रभाव है । यदि आज भी नारीको सत्सङ्ग, भगवत्कथा आदि प्राप्त हों तो मैत्रेयीके समान ही त्याग, वैराग्य एवं जिज्ञासाका उदय होना असम्भव है क्या ?

इसी वैराग्य और जिज्ञासासे प्रसन्न होकर महर्षि याज्ञवल्क्यने मैत्रेयीको उस तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया [illegible] प्राप्त करनेके लिये बड़े-बड़े योगी [illegible] रहते हैं । उदाहरणार्थ—

'जगत्‌में जिस किसीसे भी प्रेम किया जाता है—आत्माके लिये । अतः आत्मदर्शन ही कर्तव्य है । वह होता है श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे । आत्माके दर्शन, श्रवण और [illegible] से सब कुछ जान लिया जाता है ।'

'जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, लोक, देवता, भूत—[illegible] किसी भी पदार्थको अनात्मरूपसे देखता है, उसे [illegible] देते हैं; यह सब आत्मा ही है ।'

'जब द्वैतकी प्रतीति है तभी सूँघना, देखना, सुनना, प्रणाम करना, मनन करना, जानना है । [illegible] सब आत्मा ही है—ऐसा अनुभव हो [illegible] रहेगा ? जिसकी सत्ता और प्रकाशसे [illegible] किस साधनसे जाना जायगा । [illegible] के लिये कौन-सा साधन है ?'

आत्मा तो अनुभवस्वरूप ही है ।

यह अमर उपदेश सर्वप्रथम मैत्रेयीके त्याग, वैराग्य और जिज्ञासासे ही प्रकट हुआ था।

प्र०—यह तो नारीका जिज्ञासु रूप है। क्या नारीका ब्रह्मविद् रूप भी है?

उ०—अवश्य है। वेद, इतिहास, पुराण आदि प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थोंमें सर्वत्र ही नारीका ब्रह्मविद् रूप भी मिलता है। जिसमें साधन-चतुष्टय एवं जिज्ञासा है, वही ब्रह्मज्ञानका अधिकारी है। बृहदारण्यक-उपनिषद्में जनककी भरी सभामें गार्गी और याज्ञवल्क्यका संवाद हुआ है जिसमें याज्ञवल्क्यकी परीक्षा लेकर गार्गीने निर्णय दिया है, कि अब इनपर कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता।

'यदि आपकी अनुमति प्राप्त हो जाय, ब्राह्मणो! तो मैं याज्ञवल्क्यसे दो प्रश्न पूछूँ। यदि ये उत्तर दे देंगे तो आपलोगोंमेंसे कोई भी इन्हें ब्रह्मचर्चामें नहीं जीत सकेगा।'

'पूछ लो, गार्गी!'—ब्राह्मणोंने कहा।

'याज्ञवल्क्य! ये मेरे वीरके तीरके समान दो प्रश्न हैं—द्युलोकके ऊपर, पृथिवीका निम्न, दोनोंका बीच, स्वयं दोनों और भूत भविष्य तथा वर्तमान किसमें ओतप्रोत हैं?' गार्गीने पहला प्रश्न किया।

'आकाशमें!' याज्ञवल्क्यने संक्षेपसे उत्तर दिया। 'अच्छा, अब दूसरा प्रश्न।' गार्गीने कहा—'यह आकाश किसमें ओतप्रोत है?'

'इसी तत्त्वको ब्रह्मवेत्ता लोग अक्षर कहते हैं, गार्गी!' याज्ञवल्क्यने निषेधावधिरूपसे उसका वर्णन प्रारम्भ किया। वह न स्थूल है न सूक्ष्म, न छोटा न बड़ा। वह लाल, द्रव, छाया, तम, वायु, आकाश, संग, रस, गन्ध, नेत्र, कान, वाणी, मन, तेज, प्राण, मुख और मापसे रहित है। उसमें बाहर-भीतर भी नहीं है। न वह किसीका भोक्ता है और न तो भोग्य।'

अनेक युक्तियोंसे इस प्रत्यगात्मा ब्रह्मका वर्णन करते हुए याज्ञवल्क्यने कहा—'इसको जाने बिना हजारों वर्षके होम, यज्ञ, तप आदिके फल नाशवान् हो जाते हैं। यदि कोई इस अक्षरतत्त्वको जाने बिना ही मर जाय तो वह कृपण है और जान ले तो ब्रह्मवित् है।'

'यह अक्षर-ब्रह्म दृष्ट नहीं, द्रष्टा है। श्रुत नहीं, श्रोता है। मत नहीं, मन्ता है। विज्ञात नहीं, विज्ञाता है। इससे भिन्न कोई दूसरा द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, विज्ञाता नहीं है। इसी अक्षरमें, गार्गी! यह आकाश ओतप्रोत है।'

गार्गीने कहा—'ब्राह्मणो! आप इन्हें नमस्कार करें। इन्हें कोई ब्रह्मचर्चामें जीत नहीं सकता।'

राजा जनककी सभा, ब्रह्मवादी ऋषियोंकी भीड़, ब्रह्म-सम्बन्धी चर्चा, याज्ञवल्क्यकी परीक्षा और परीक्षक गार्गी। यह हमारी आर्य-नारीके ब्रह्मज्ञानकी विजयवैजयन्ती नहीं तो और क्या है?

प्र०—क्या आर्य-नारीका जीवन्मुक्त रूप भी है?

उ०—जो बोधवान् है, वही जीवन्मुक्त है। ज्ञानाग्निसे अज्ञान और तज्जनित कर्तृत्व, भोक्तृत्व, राग-द्वेषादि दोषोंकी निवृत्ति होनेपर जो शुद्ध जीवन है, उसीको जीवन्मुक्ति कहते हैं। बोधवान्‌का जीवन समस्त दोषोंसे रहित होनेके कारण जीवन्मुक्त कहा जाता है। उपनिषदादि ग्रन्थोंमें जीवन्मुक्तिकी भूमिकाओंका वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें देवहूतिकी जीवन्मुक्त अवस्थाका बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है—

> विशुद्धेन तदाऽऽत्मानमात्मना विश्वतोमुखम्।
> स्वानुभूत्या तिरोभूतमायागुणविशेषणम्॥
> ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये।
> निवृत्तजीवापत्तित्वात्क्षीणक्लेशाऽऽप्तनिर्वृतिः॥
> नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा।
> न सस्मार तदाऽऽत्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः॥
> तद्देहः परतःपोषोऽप्यकृशश्चाध्यसम्भवात्।
> बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः॥
> स्वाङ्गं तपोयोगमयं मुक्तकेशं गताम्बरम्।
> दैवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः॥
> एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरतः परम्।
> आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं भगवन्तमवाप ह॥
>
> (३।३३।२५–३०)

'धर्मानुष्ठान, भक्तियोग, प्रबल वैराग्य तथा अमानित्वादि ज्ञान-साधन-सम्पत्तिसे देवहूतिका अन्तःकरण विशुद्ध हो गया। तब वे उस परिपूर्ण आत्मस्वरूपके ध्यानमें मग्न हो गयीं, जो अपने स्वरूपभूत अनुभूतिसे माया और तज्जनित गुणोंके विशेषणसे रहित है। इस प्रकार स्वमहिमामें प्रतिष्ठित भगवत्स्वरूप ब्रह्ममें उनकी मति अवस्थित हो गयी। जीवकोशका ध्वंस हो जानेके कारण अविद्यादि पञ्च-क्लेशोंकी निवृत्ति हो गयी और वे परमानन्दस्वरूप हो गयीं। नित्य-निरन्तर समाधिमें आरूढ़ रहनेके कारण 'यह सत्त्वगुण है', 'यह रजोगुण है' इत्यादि भ्रम नहीं रहा। जागनेपर स्वप्नमें देखी हुई वस्तुके समान शरीरका ध्यान छूट गया। शरीरकी सँभाल दूसरे ही करते। चिन्ता

न होनेसे वह दुर्बल नहीं हुआ और निखर गया—राखसे ढकी आगके समान । चित्तवृत्ति परमात्मामें इस प्रकार समा गयी थी कि उन्हें अपने दैवगुप्त तपोयोगमय शरीरके सम्बन्धमें यह ध्यान भी नहीं रहता था कि बाल बिखर गये हैं और वस्त्र गिर गया है । कपिलदेवजीके द्वारा उपदिष्ट मार्गसे इस भाँति उन्होंने शीघ्र ही अनन्त शान्त परात्पर भगवत्स्वरूप आत्माको प्राप्त कर लिया ।'

आध्यात्मिक उत्कर्षकी यही चरम सीमा है !

प्र०—परंतु इस कठोर साधना और सिद्धिकी योग्यता तो साधारण नारीमें नहीं है, फिर क्या करे ?

उ०—सर्वसाधारण नर-नारीके लिये भक्तिमार्ग अति सुगम है । भगवान्‌के नामका जप, सत्सङ्गमें जाकर या घरपर भगवत्कथा, कीर्तन, श्रवण, स्मरणादि रूप भक्ति करनेमें तो कोई कठिनता नहीं है । भगवद्भक्तिमें प्राणिमात्रका अधिकार भी है । सबसे बड़ी बात यह है कि भक्ति नारी हृदयके सर्वथा अनुरूप है । नारीका शरीर सोमप्रधान है । इसलिये उसके शरीरपर चन्द्रमाका बहुत प्रभाव पड़ता है—ऋतुधर्म आदिके सम्बन्धमें नारीका आराध्य देवता भी चन्द्रमा है । यही कारण है कि उसके शरीर और मनमें भी सूर्य-तत्त्व-प्रधान नर-शरीरकी अपेक्षा अधिक सौम्यभावका आविर्भाव होता है । श्रद्धा और विश्वास भी जितना नारी-हृदयमें अभिव्यक्त होता है, उतना मस्तिष्कप्रधान नरमें नहीं । यदि थोड़ा सा भी सत्सङ्ग प्राप्त हो जाय तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अथवा श्रीरामचन्द्रके गुणानुवादके श्रवणमात्रसे ही नारीहृदय-सुधासागर भक्तिकी लहरियोंसे उद्वेलित हो उठे । भक्तिमार्ग सर्वथा निरुपद्रव है ।

प्र०—नारीके लिये तो सत्सङ्ग भी दुर्लभ है ।

उ०—आजकल जब चारों ओरसे धर्मपर और विशेषकर नारी-धर्मपर प्रहार किया जा रहा है, नारी-स्वातन्त्र्यके नामपर आर्य-ललनाओंको वासनापूर्तिकी मशीन बनानेका प्रबल संघर्ष छिड़ गया है, प्रकटरूपसे नाचघर, सिनेमा, क्रीडा-निकुञ्ज आदिके द्वारा वासनाओंके उभारनेके अड्डे बन गये हैं, पत्र-पत्रिका, पुस्तक, व्याख्यान आदिके द्वारा नारी-धर्मके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी गयी है, स्वयं नारी भी इस कुचक्रका रहस्य न समझ अपने शत्रुके हाथकी कठपुतली बनकर धर्म-मर्यादासे विद्रोहकी ओर अग्रसर हो रही है, ऐसे कुसमयमें नारीको सत्सङ्ग प्राप्त करनेसे रोकना आत्मघात है । इसका परिणाम यह होगा कि नारीको वासनाओंपर नियन्त्रण करनेका प्रोत्साहन तो मिलेगा नहीं, उलटे विरोधियोंका विषाक्त प्रचार उसतक पहुँचेगा एवं वह और भी धर्म-विरुद्धके मार्गपर चल पड़ेगी । इसलिये यदि नारी शीलवती नारीके रूपमें रहना चाहती है और नर उसे उस रूपमें देखना चाहता है तो सत्सङ्गकी रुचि नारीमें उदय होनी चाहिये और इसकी सुविधा उन्हें अवश्य मिलनी चाहिये । धर्मकी शुद्ध व्याख्या सत्सङ्गमें ही प्राप्त होती है, भक्ति और ज्ञानका रहस्य वहीं ज्ञात होता है । जीवनकी सफलता, परम शान्तिकी प्राप्ति इसीमें है ।

प्र०—नारी-जीवनका अन्तिम उत्कर्ष किस बातमें है ?

उ०—पतिके द्वारा परम पतिको प्राप्त कर लेनेमें । नर जब गुरु-दीक्षा ग्रहण करता है अथवा स्वाध्याय सत्सङ्गके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति अपने जीवनका लक्ष्य बनाता है, तब उसे एक मूर्ति मिलती है—ध्यान-सेवा करनेके लिये । इसी आलम्बनके द्वारा वह परमात्माकी ओर चलता है । परंतु नारीको बिना किसी विशेष प्रयत्नके पति मिलता है ध्यानसेवाके लिये, जिसमें वह भगवद्बुद्धि करके अपनी समस्त वासनाओंपर विजय प्राप्त करती है और अन्तमें परमात्माको । यदि चित्रपट अथवा मूर्तिद्वारा नर कल्याण प्राप्त कर सकता है तो नारी एक प्रत्यक्ष चलते-फिरते भगवान्‌के द्वारा क्यों नहीं आत्मकल्याण प्राप्त कर सकती है ? पतिके बाह्य शरीरका न होना भी उपासनामें बाधक नहीं है । क्योंकि पतिकी मूर्ति तो हृदयमें रहती है और वह अमर है । पति-पत्नी-सम्बन्ध, भाव और प्रीतिमें मृत्यु भी बाधा नहीं डाल सकती, यदि उद्देश्य परमार्थ हो ! सत्सङ्गद्वारा नारीको वासना-निवृत्तिकी प्रेरणा मिलती रहे तो यह कोई कठिन बात नहीं है ।

प्र०—तब पति भी पत्नीकी आराधनाके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति क्यों न करे ।

उ०—यह नर-जातिकी दुर्बलताकी बात है । नरके चित्तमें नारीके प्रति भोग्य भावना इतनी प्रबल हो गयी है कि वह पत्नीमें भगवान्का दर्शन करनेमें असमर्थ हो गया है । भोग्य-बुद्धि आनेसे आराधना विकृत हो जाती है । अन्यथा अपने शास्त्रोंमें कुमारीपूजा, सौभाग्यवतीपूजा, विधवापूजा एवं मातृपूजा आदिके रूपमें जगज्जननी भगवती चिन्मयीकी पूजा वर्णित है । और अब भी किसी अंशमें प्रचलित है । मातृपूजाकी महिमा तो ऐसी विलक्षण है कि [illegible] पुत्र भी मातृभक्तिके द्वारा परम कल्याणका भागी हो सकता है । क्योंकि भक्ति-भाव अपने हृदयकी अपनी सम्पत्ति है, बाह्य शरीरके साथ उसका कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है । हमें ऐसी महान् महिलाओंके दर्शन हुए हैं, जिनके सामने जानेसे अन्तःकरण पवित्र हो जाता है, श्रद्धासे सिर झुक जाता है । इसलिये नारीके

प्रति भगवद्बुद्धि करनेका निषेध नहीं है; परंतु पुरुषके हृदयकी दुर्बलता—भोग्यत्व-वासनाका उदय ही उसमें रुकावट है।

प्र०—क्या नर-नारीमें कहीं भी भगवद्बुद्धि की जा सकती है?

उ०—की जा सकती है। इतना ही नहीं, वास्तवमें सब भगवान् ही है—आत्मा ही है। यह जो रज्जुमें सर्पके समान बिना हुए ही नानात्वरूप प्रपञ्च भास रहा है, यह वास्तवमें भानमात्र परमात्मा ही है। इस प्रतीयमान विश्वप्रपञ्चके किसी अवयवपर दृष्टि जम जाय—वृत्ति निर्विकल्प हो जाय तो उस वस्तुका पृथक् नाम-रूप मिट जाय, वह परमात्माके स्वरूपमें ही साक्षात् अपरोक्ष अनुभव हो जाय। एक वस्तुके भगवद्रूप अनुभव होनेपर स्थाली-पुलाक-न्यायसे सबकी भगवत्स्वरूपताका बोध होना स्वाभाविक ही है। इसीसे महात्माओंको सब आत्मरूप—भगवद्रूप अनुभव होता है और वास्तवमें परमात्मा ही है।

साधकको सब कुछ परमात्मा ही है—ऐसा अनुभव नहीं होता। इसलिये उसे अपनी रुचि, गुरुदेवकी आज्ञा और शास्त्रके अनुसार क्रमशः परमात्माकी पूर्णताका अनुभव करना चाहिये।

अन्तिम सत्य है—वासुदेवः सर्वमेवं सर्वं यदयमात्मा।

पवित्र वैधव्य और संन्यास

(लेखक—स्वामीजी श्रीसनातनदेवजी महाराज)

भोग और मोक्ष—ये दो ही मानवमात्रके जीवनके उद्देश्य हो सकते हैं। श्रुतिने इन्हींको क्रमशः प्रेय और श्रेय कहा है, तथा इनका उल्लेख करनेके साथ ही यह भी घोषित किया है कि इनमेंसे श्रेयको स्वीकार करनेवालेका कल्याण होता है और जो प्रेयके पीछे पड़ता है, वह अपने वास्तविक हितसे वञ्चित रह जाता है—'तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्यउप्रेयो वृणीते॥ (कठ० १।२।१)' अतः श्रुतिका यह निर्विवाद मत है कि बुद्धिमान् पुरुष सर्वदा श्रेयोमार्गका ही अनुसरण करता है; जो मन्दबुद्धि है, चैनसे जीवन कट जाय—इतनेमें ही अपनेको कृतकृत्य माननेवाला है, वही योग-क्षेमकी सुविधाके लोभसे प्रेयःपन्थपर अग्रसर होता है।

श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥
(कठ० १।२।२)

इससे निश्चय होता है कि श्रेय अर्थात् मोक्ष ही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है। लक्ष्य ?—यदि गहराईसे देखें तो वही उसका वास्तविक स्वरूप है। संसारमें स्वरूपच्युति ही 'दुःख' या 'विपत्ति' आदि नामोंसे कही जाती है। इसीको 'अशान्ति' भी कहते हैं। जलमें जलके सिवा जब कोई भी विजातीय द्रव्य नहीं होता तो उसे स्वच्छ या प्रसन्न कहते हैं। यही बात आकाश, वायु आदि अन्य तत्त्वोंके विषयमें भी प्रसिद्ध है। शरीरमें भी जब किसी प्रकारका विजातीय द्रव्य बढ़ता है, तभी उसे अस्वस्थ या रोगी कहा जाता है। इसी प्रकार जब जीव या आत्मा किसी अनात्मवस्तुकी आसक्तिमें बँध जाता है तो वह स्वस्थ या शान्त कैसे रह सकता है। जितना भी भोग्यवर्ग है, वह सब अनात्मा ही है; अतः भोगासक्त प्राणी किसी प्रकार सुख या शान्तिका अनुभव नहीं कर सकता। इसके लिये तो उसे सब प्रकारकी भोगासक्तिसे मुक्त होकर आत्मारामी होना होगा। यह आत्मरमण ही सच्चा सुख या चरम शान्ति है, यही श्रेय है और यही जीवके जीवनका चरम लक्ष्य है।

संसारके जितने भी धर्म हैं, उनका अन्तिम लक्ष्य भी यह परम पद ही है। यह दूसरी बात है कि उनमेंसे बहुत थोड़े मतवाद इस तत्त्वतक पहुँच सके हैं, तथापि अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार अनात्मासे हटाकर आत्माकी ओर ले जाना तो प्रत्येक दार्शनिक सिद्धान्तका उद्देश्य रहा है। यहाँतक कि देहात्मवादी चार्वाक भी जीवको स्त्री-पुत्रादि गौण आत्माकी आसक्तिसे हटाकर अपने शरीरमें ही आत्मबुद्धि कराता है। इस प्रकार वह भी उसे अपेक्षाकृत आत्माभिमुख ही करता है।

वैशेषिक दर्शनने धर्मका लक्षण करते हुए कहा है—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।' (१।२) अर्थात् जिससे अभ्युदय (लौकिक उन्नति) और निःश्रेयस (मोक्ष) की सिद्धि हो, उसे धर्म कहते हैं। इससे यह तो निश्चय होता है कि धर्म अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंकी प्राप्ति करानेवाला है; परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि ये एक ही व्यक्तिको एक साथ प्राप्त होते हैं। संसारमें सब लोग एक-सी ही स्थितिके नहीं हैं। कोई रागी हैं, कोई विरागी; कोई भोगकामी और कोई मोक्षकामी। शास्त्र तो सभीका हितैषी और

पथप्रदर्शक है। अतः वह ऐसे धर्मका निरूपण करता है, जो भोगकामीको भोग और मोक्षकामीको मोक्षकी ओर ले जानेवाला हो। शास्त्रोक्त भोगसाधनोंके द्वारा जो लौकिक या पारलौकिक सुख प्राप्त होता है, वह किसी लम्बी यात्राके लिये निकले हुए पथिकके पड़ावोंकी तरह है। जीव अनादिकालसे अपने स्वरूपसे च्युत होकर तरह-तरहकी यातनाएँ भोग रहा है और अक्षय शान्ति पानेके लिये बेचैन है; परंतु तरह-तरहकी वासनाओंके कारण वह सब प्रकारके प्रलोभनोंसे मुँह मोड़कर सहसा आत्माभिमुख नहीं हो पाता। इन वासनाओंमें जो अत्यन्त प्रबल होती हैं, उनका क्षय नियमित भोगके बिना नहीं हो सकता। अतः शास्त्र जिन भोगसाधनोंको उपस्थित करता है, उनका उद्देश्य इन उत्कट वासनाओंके वेगको कुण्ठित करना ही है। जिस प्रकार रास्तेके पड़ावोंपर विश्राम कर लेनेसे थके हुए पथिकमें नवीन शक्तिका सञ्चार हो जाता है, उसी प्रकार शास्त्रोक्त भोगोंके द्वारा वासनाओंका वेग शिथिल पड़ जानेसे जीवमें अपने चरम लक्ष्यकी ओर बढ़नेकी योग्यता आ जाती है। इस प्रकार शास्त्र धीरे-धीरे भोगकामीको भी मोक्षकामी बना देता है। जीवको भोगोंमें ही आसक्त रखना शास्त्रका कदापि उद्देश्य नहीं है। जो लोग शास्त्रोक्त मर्यादाकी उपेक्षा करके अनर्गल भोग भोगना चाहते हैं, वे तो भोगोंके भोग्य हो जाते हैं और अपनी सारी शक्तिको भोगोंमें ही नष्ट करके अन्तमें मृत्युके मुखमें पड़ते हैं। शास्त्रका उद्देश्य है—जीवको भोगसे हटाकर योगमें लगाना और ये लोग भोगोंमें फँसकर रोगके चंगुलमें पड़ते हैं। शास्त्र संयत भोगके द्वारा भोगवासनाको कुण्ठित करता है; और ये अनर्गल भोगोंके द्वारा उसे और भी उत्तेजित कर देते हैं। वासना रोग है, संयत भोग उसकी ओषधि है; किंतु असंयत होनेपर वह ओषधि ही विष बन जाती है।

इसी उद्देश्यसे शास्त्रने भोगको सर्वदा नियमित ही रक्खा है। वह किसी भी प्रकारके भोगमें स्वच्छन्द प्रवृत्तिका समर्थन कभी नहीं करता। इसके सिवा वह भोगको भोगबुद्धिसे भोगनेके पक्षमें भी नहीं है। शौच, स्नान, भोजन, शयन आदि दैनिक व्यापारोंमेंसे भी ऐसा कोई नहीं है, जिसमें नियम या धर्माधर्मकी व्यवस्था न हो। जीवोंके लौकिक सम्बन्धोंकी व्यवस्था भी धर्माधर्मके आधारपर ही की गयी है। पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-भाई और स्वामी-सेवकके सम्बन्धोंकी आधारशिला धर्म ही है। इनकी व्यवस्था इस लोकमें जीवनयापनकी सुविधा अथवा आर्थिक समस्याको हल करनेके लिये ही नहीं की गयी। इसका कारण यही है कि शास्त्र जीवनके प्रत्येक विभागमें धर्मकी प्रतिष्ठा करके जीवको उसके चरम लक्ष्य निःश्रेयसकी ओर ले जाना चाहता है।

इसी दृष्टिकोणको लेकर शास्त्रने पत्नीके लिये पातिव्रत्य धर्मका विधान किया है। यदि गहराईसे देखें तो प्रत्येक धर्मका मूल संयम ही है। भोगोंमें जीवकी स्वाभाविकी प्रवृत्ति है; किंतु जब यह प्रवृत्ति असंयत होती है तो अधर्म या अशान्तिका कारण हो जाती है और जब संयत होती है तो धर्म या शान्तिका कारण बन जाती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच ही विषय हैं। इन्द्रियोंके रहते हुए यह असम्भव है कि इन्हें ग्रहण न किया जाय। इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका ग्रहण ही 'भोग' कहा जाता है। यह भोग जब संयत अर्थात् शास्त्रीय मर्यादासे सीमित होता है, तब 'धर्म' और जब असंयत अर्थात् शास्त्रीय मर्यादाका अतिक्रमण करके होता है, तब 'अधर्म' कहलाता है। इनमें अधर्म तो सर्वदा सब प्रकार जीवके अधःपतनका ही कारण होता है। धर्मका मूल संयम या त्याग है। अतः वह स्वभावसे ही जीवको त्यागकी ओर ले जाता है। जो धर्मानुष्ठान उसके परिणाममें प्राप्त होनेवाले सुखकी आसक्तिको लेकर होता है, वह तो जीवके बन्धनका ही कारण होता है। एक बार भले ही वह जीवको सुखकी प्राप्ति करा दे, परंतु उसके मूलमें जो सुखासक्ति है, वह तो उसके अधःपतनका ही कारण होगी। अतः धर्मानुष्ठानमें भी सुखासक्ति अथवा फलासक्ति जीवके बन्धनका ही कारण होती है, उसका वास्तविक हित तो फलासक्तिशून्य धर्मानुष्ठान अर्थात् निष्काम धर्मके द्वारा ही हो सकता है।

अतः पातिव्रत्यका मूल भी त्याग ही है। आजकलके लोग पति-पत्नीके सम्बन्धको पारस्परिक प्रेमके आधारपर मानते हैं और उनकी अनर्गल भोग प्रवृत्तिको भी अवैध नहीं मानते। परंतु इसे शास्त्रसम्मत पातिव्रत्य नहीं कह सकते। पातिव्रत्यका उद्देश्य किसी प्रेमिकाको उसका एकमात्र प्रेमास्पद समर्पित करना ही नहीं है। प्रेमास्पद तो विवाहसंस्कारके द्वारा समर्पित होता है। फिर उस प्रियतमकी भगवद्बुद्धिसे परिचर्या करना, उसमें प्राकृत भाव न रखकर भगवद्बुद्धिसे अपने प्रत्यक्ष इष्टदेवकी तरह मन, वाणी और शरीरसे उसकी आराधना करना—यही पातिव्रत्यका वास्तविक स्वरूप है। आजके संसारमें विवाहका उद्देश्य पति-पत्नीका अपनी काम-प्रवृत्तिको वैधरूपसे चरितार्थ करना समझा जाता है, परंतु हमारे शास्त्रोंने मानव-जीवनके प्रत्येक अध्यायको भगवत्प्राप्ति-

का साधन-सोपान बनाया है। नारीमें स्वभावतः ही हृदयकी प्रधानता होती है और प्राकृत जगत्में पतिसे बढ़कर उसके हृदयका सर्वस्व कोई और व्यक्ति नहीं हो सकता। उस हृदय-सर्वस्वमें भगवद्बुद्धि रखनेसे स्वभावतः ही भोगवासना कुण्ठित हो जायगी। राम और काम—ये एक स्थानपर कभी नहीं रह सकते। प्राकृत भावके बिना वासनाका उद्रेक कभी हो ही नहीं सकता। अतः जिस सती-साध्वीका अपने पतिदेवमें ठीक-ठीक भगवद्भाव हो जाता है, उसकी सारी वासनाएँ स्वभावतः ही निर्मूल हो जाती हैं। संसारका बन्धन तो वासनाएँ ही हैं। जिसमें वासनाएँ नहीं हैं, वह तो मुक्त ही है। अतः नारीके लिये पातिव्रत्य साक्षात् मुक्तिका साधन है। उसे घर-बार छोड़कर कहीं बाहर जानेकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता नहीं है—इतनी ही बात नहीं, बल्कि पतिसेवासे विमुख होकर इधर-उधर तीर्थयात्रा या संत-दर्शनके लिये भटकना भी निषिद्ध है। उसके लिये तो पति ही साक्षात् श्री-नारायण हैं, उनकी सेवा और अनुगति ही उसका प्रधान धर्म है और उसीके द्वारा वह परम गति प्राप्त कर सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शास्त्रको भोगासक्ति तो सधवाके लिये भी अभीष्ट नहीं है। जीवनको भोगोंमें लगाना तो उसे नष्ट करना ही है। भोग ऐसी कौन दुर्लभ वस्तु है। इन्द्रियोंके द्वारा शब्दादि विषयोंका ग्रहण तो स्वभावसे ही होगा। फिर उनके उपार्जन और संग्रहमें ही जीवनको लगा देना मूर्खता नहीं तो क्या है? इस प्रकार उनके पीछे पड़कर जीव व्यर्थ ही उनका मूल्य बढ़ा देते हैं और उनके आगे अपनेको हल्का कर देते हैं। यह भोगासक्ति आत्म-विडम्बना नहीं तो क्या है? यह तो अपने-आप ही स्वीकार की हुई गुलामी है। अतः जो समझदार होते हैं, वे अपने जीवन-को भोगोंके संग्रहमें कभी नहीं लगाते।

इस प्रकार जब शास्त्रमर्यादाके अनुसार सधवाके लिये भी भोगासक्ति अभीष्ट नहीं है तो विधवाके लिये वह किस प्रकार श्रेयस्कर हो सकती है? भोगोंके आगे सिर झुकाना तो जीवकी बहुत बड़ी निर्बलता है। इस निर्बलताका पोषण करते हुए जीव किसी प्रकार अपने असली लक्ष्यकी ओर नहीं बढ़ सकता। यह तो किसी प्रकार अपने जीवनके दिन काटना ही है। ऐसा कामचलाऊ जीवन किसी भी मनस्वी प्राणीको कैसे अभीष्ट हो सकता है। वह तो ऐसे जीवनकी अपेक्षा मृत्युका ही अधिक आदर करेगा। कोई भी सच्चा वीर अपने शत्रुकी कैदमें रहकर जीना कैसे पसंद कर सकता है। इसकी अपेक्षा तो उसे सम्मुख संग्राम करते हुए वीरगति प्राप्त करना ही सहर्ष स्वीकृत होगा। इसी प्रकार जो अपने चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिकी ओर बढ़ना ही इस जीवनका उद्देश्य समझते हैं, वे किसी प्रकार भोगोंकी दासताको स्वीकार नहीं कर सकते।

इसी लक्ष्यको सामने रखकर शास्त्रोंमें आश्रमधर्मकी व्यवस्था की गयी है। सबसे पहले ब्रह्मचर्याश्रममें बालक सुयोग्य गुरुओंकी सेवामें रहकर जीवनोपयोगी क्षमता प्राप्त करता है। फिर युवावस्थामें संयत भोगोंके द्वारा वासनाओंका क्षय करनेके उद्देश्यसे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है। भोगके बाद त्याग और तपस्याके द्वारा जीवनको भोगोपकरणोंके बन्धनसे मुक्त करना होता है, जिससे कि वह सर्वथा निरपेक्ष और निर्द्वन्द्व जीवन व्यतीत कर सके। इसी प्रयोजनकी पूर्तिके लिये वानप्रस्थ-आश्रमकी व्यवस्था की गयी है। इस प्रकार जब तपस्याके द्वारा वासनाओंका क्षय हो जाता है और चित्तमें भोगोपकरणोंके प्रति स्वाभाविक ही अरुचि हो जाती है तो साधक संन्यासाश्रममें प्रवेश करता है। 'संन्यास' का अर्थ है सम्यक् त्याग अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारका त्याग। जब यह दोनों प्रकारका त्याग पूर्णतया निष्पन्न हो जाता है तो जीव सब प्रकारके अनात्म-संसर्गसे मुक्त होकर अपने शुद्ध-स्वरूपमें स्थित हो जाता है। यह स्वरूपस्थिति ही जीवनका चरम लक्ष्य है। अतः वेष चाहे कैसा ही रहे, जबतक पूर्ण त्याग नहीं होगा, तबतक किसीको भी इस परमपदकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः संन्यास-निष्ठा ही जीवकी स्वरूपोपलब्धिका एकमात्र साधन है—त्यागके बिना इस चरम लक्ष्यकी प्राप्ति और किसी प्रकार नहीं हो सकती।

इस प्रकार जब त्याग और तपस्या ही मानव-जीवनके चरम लक्ष्यकी प्राप्तिके साधन हैं तो जिन्हें स्वभावसे ही ऐसा अवसर प्राप्त हुआ हो, उनके लिये उसका सदुपयोग न करके पुनः भोगोंमें फँसना भारी विडम्बना नहीं तो क्या है। वानप्रस्थ या संन्यास-आश्रममें जानेके लिये मनुष्यको स्वेच्छासे भोगोंका त्याग करना होता है। इसमें कई बार अपने सम्बन्धियोंकी ओरसे तरह-तरहकी बाधाएँ भी उपस्थित की जाती हैं। किंतु जिस आर्य-ललनाको दैववश वैधव्य प्राप्त हुआ है, उसके लिये तो मानो भगवान्ने स्वयं ही मुक्तिका मार्ग खोल दिया है। संसारमें स्त्रीके लिये वैधव्य बड़ी भारी आपत्ति और बड़े दुर्भाग्यकी बात समझी जाती है; परंतु ऐसा तो वे ही समझ सकते हैं, जिनके हृदयमें भोगोंके प्रति

किसी प्रकारका आदर है। यदि हृदयमें भोगासक्ति न हो और जीवनका चरम लक्ष्य पानेकी सच्ची लालसा हो तो इसमें किसी प्रकारके अमङ्गलकी कल्पना नहीं की जा सकती। जिन सती-साध्वी आर्यललनाओंने इस रहस्यको समझा था, उन्होंने कभी भोगासक्तिका आदर नहीं किया। वे पति-परमेश्वरका वियोग होते ही या तो हँसती-हँसती उनकी चितापर चढ़कर परलोकमें भी उसी रूपमें उनकी आराधना करती थीं, या सब प्रकारकी भोगसामग्रियोंको त्याग कर घरके भीतर ही तपोमय जीवनका आदर्श उपस्थित करते हुए अन्तमें परमपद प्राप्त करती थीं। वास्तवमें आदर्श आर्यमहिलाओंके लिये तो पतिका वियोग होनेपर ये ही दो मार्ग श्रेयस्कर है। इनके सिवा जीवनका कोई अन्य क्रम तो किसी प्रकार दिन काटना ही है, उससे कोई वास्तविक लाभ नहीं हो सकता।

ऊपर कहा जा चुका है कि 'संन्यास'का अर्थ है 'सम्यक् त्याग' और यह त्याग बाह्य एवं आभ्यन्तर भेदसे दो प्रकार-का है। इनमें पहले बाह्य त्याग ही होता है; उसका अच्छी तरह अभ्यास होनेपर फिर आन्तर त्यागकी वृत्ति भी उदित होने लगती है। इस आन्तर त्यागमें पहले भोग्य पदार्थोंके प्रति आसक्तिका त्याग होता है। उससे स्वभावतः ही भोगोंमें अरुचि हो जाती है। इसके पश्चात् अपने माने हुए धन, धरती और पुत्रादिमें अपनेपनका त्याग होता है। ऐसा होने-पर किसी प्रकारका आर्थिक या कौटुम्बिक हानि-लाभ होनेपर हर्ष या शोककी वृत्ति नहीं होती। फिर अपना ही स्वरूप समझे हुए स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण-शरीरोंमें आत्मबुद्धिका त्याग होता है और इसमें पूर्णता प्राप्त होते ही इनके अधिष्ठानभूत आत्मतत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है। ऐसा होने-पर फिर मरने-जीनेकी भी समस्या नहीं रहती, कोई अपना या पराया नहीं रहता, कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता और न कुछ करना ही शेष रहता है। इस प्रकार क्रमशः त्यागका उत्कर्ष होनेसे ही परम तत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है।

पवित्र वैधव्यमें बाह्य भोगोंका त्याग तो नियमतः ही करना होता है। आन्तरिक भोग भी एक आदर्श पतिव्रताके लिये तो अपने प्राणसर्वस्व पति-परमेश्वरकी प्रसन्नताके सिवा और कुछ नहीं होता। उसका सारा शृङ्गार, उसकी सारी ममता और सारी अहंता पतिदेवके चरणोंमें ही समर्पित होती है। जब इस पार्थिव शरीरसे उनका वियोग होता है तो या तो सतीधर्मके द्वारा वह इन सबको उन्हींमें होमकर उनके पारमार्थिक चिन्मय स्वरूपसे अभिन्न हो जाती है या उन्हें अपने हृदयसिंहासनपर प्रतिष्ठितकर ध्यानभावसे उनकी आराधना करती है। अबतक जो उसके बाह्यप्राण थे, अब वे उसके प्राणोंके प्राण हो जाते हैं। अबतक वह पतिदेवके रूपमें जिन परमात्मदेवको देखती थी, अब वे परमात्मदेव ही उसके हृदय-सर्वस्व हो जाते हैं। अबतक जिन तन, मन, धनको उसने पतिदेवकी परिचर्यामें लगाया था, अब परमात्मदेवके प्रेमकी प्रतिष्ठा होनेपर वे स्वतः ही न जाने कहाँ विलीन हो जाते हैं। अब उसकी दृष्टिमें अपना-पराया कुछ न रहकर केवल प्रभु ही रह जाते हैं। इस प्रकार वह घरमें रहते हुए ही उस परमतत्त्वकी उपलब्धि कर लेती है, जिसका यति-जन बड़े परिश्रमसे साक्षात्कार कर पाते हैं।

यह तो उन सती-साध्वियोंकी बात हुई, जिन्हें स्वभावसे ही वासनाशून्य विशुद्ध प्रेम प्राप्त है। उनके लिये तो उपर्युक्त दो मार्गोंके सिवा किसी अन्य मार्गकी ओर देखनेका प्रश्न ही नहीं है। उनके सिवा जो सामान्य कोटिकी स्त्रियाँ हैं, उनके लिये भी पतिका वियोग होनेपर श्रेयःसाधनका मार्ग तो संयमपूर्वक पवित्र जीवन व्यतीत करना ही है। आजकल जो पुनर्विवाह आदि भोगमय जीवनकी ओर उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है, वह उनके श्रेयःसाधनमें किसी प्रकार सहायक नहीं हो सकता। हाँ, समाजकी दृष्टिसे ओझल रहकर अथवा प्रकटरूपसे किसी अवैध आचरणके द्वारा जीवनको कलङ्कित करनेकी अपेक्षा तो वह अवश्य अच्छा है; परन्तु है यह किसी प्रकार दिन काटनेकी-सी ही बात। ऐसा जीवन परमार्थ-साधनमें कदापि उपयोगी नहीं हो सकता।

अतः जो वास्तवमें इस जीवनको सफल करना चाहती है, उन्हें तो संयमके मार्गका ही अवलम्बन करना चाहिये। भोगोंके सामने सिर झुकाना तो कायरता है। वास्तवमें सुख कहाँ है? वहाँ जो सुखाभास प्रतीत होता है, वह तो मनकी भोगासक्त दृष्टिका भ्रम ही है। उसका मोह आदरपूर्वक त्याग कर त्यागमय जीवनका आश्रय लो। श्रीभगवान्‌का भरोसा रक्खो। उनकी शरण लेनेपर वे सब प्रकार रक्षा करते हैं। भगवदाश्रयको छोड़कर किसी भोगी प्राणीका आश्रय लेना भारी भूल नहीं तो क्या है? यदि विवेकपूर्वक तुम भोगोंका मोह छोड़कर भगवान्‌का आश्रय लोगी तो तुम्हें भगवत्प्रेमरूप चिन्मय अमृतकी प्राप्ति होगी; जिसकी माधुरीका आस्वादन होनेपर देवताओंके भोग भी नीरस हो जायँगे और तुम सहजमें ही सब प्रकारके मोह और आसक्तियोंसे छूटकर उस परमपदको प्राप्त कर लोगी। यदि मन्द प्रवृत्ति होनेके कारण इस जन्ममें वह स्थिति प्राप्त न हुई तो भी उसे प्राप्त करनेका

मार्ग तो यही है। इसमें जितनी प्रगति होगी, वह तुम्हें कुछ-न-कुछ उसके समीप ही ले जायगी। विपरीत मार्ग पकड़नेसे तो तुम और भी दूर जा पड़ोगी।

इस प्रकार आर्यविधवाके लिये त्यागमय पवित्र जीवन ही निःश्रेयसका एकमात्र मार्ग है। पुरुषोंको संन्यासके द्वारा जिस पदकी प्राप्ति होती है तथा साध्वी सधवाओंको पातिव्रत्यके द्वारा जो गति मिलती है, वही स्थिति विधवाओंको इस पवित्र धर्मके द्वारा प्राप्त हो सकती है। घरमें रहते हुए भी विधवाओं-के लिये यह परम पवित्र संन्यास ही है। ऐसी तपस्विनी देवियोंके प्रति घरके लोगोंकी भी आदर-बुद्धि रहनी चाहिये। आजकल विधवाओंके प्रति गृहस्थोंका जैसा दूषित भाव रहता है, वह तो समाजका कलङ्क ही है। इस कालिमाका मार्जन होना बहुत आवश्यक है। आज गृहस्थोंके दुर्व्यवहारने विधवाओंके लिये जीवन भार बना दिया है। उन्हें इन तपस्विनी बहिनोंका आदर करना चाहिये तथा इन्हें साधन-भजन एवं जीवन-यापनकी यथोचित सुविधा देनी चाहिये। भगवान् मनुने गार्हस्थ्यके अभ्युदयके लिये स्त्रियोंका आदर अत्यन्त आवश्यक बताया है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।' नारियोंमें सधवा गृहकी लक्ष्मी है तो विधवा साक्षात् तप और त्यागकी मूर्ति है। अतः सधवाओंके समान उनका भी यथोचित सत्कार होना चाहिये। इससे उन्हें अपने जीवनकी पवित्रता और महत्ताको अक्षुण्ण रखनेमें प्रोत्साहन मिलेगा और उनके आशीर्वादसे घरवालोंकी भी सब प्रकार श्रीवृद्धि होगी।

नारीके उद्गार

'मा' जब मुझको कहा पुरुषने, तुच्छ हो गये देव सभी।
इतना आदर, इतनी महिमा, इतनी श्रद्धा कहाँ कभी?
उमड़ा स्नेह-सिन्धु अन्तरमें, डूब गयी आसक्ति अपार।
देह, गेह, अपमान, क्लेश, छिः! विजयी मेरा शाश्वत प्यार॥

'बहिन!' पुरुषने मुझे पुकारा, कितनी ममता! कितना नेह!
'मेरा भैया' पुलकित अन्तर, एक प्राण हम, हों दो देह।
कमलनयन अंगार उगलते हैं, यदि लक्षित हो अपमान।
दीर्घ भुजाओंमें भाईकी है रक्षित मेरा सम्मान॥

'बेटी' कहकर मुझे पुरुषने दिया स्नेह, अन्तर-सर्वस्व।
मेरा सुख, मेरी सुविधाकी चिन्ता—उसके सब सुख ह्रस्व॥
अपनेको भी विक्रय करके मुझे देख पायें निर्बाध।
मेरे पूज्य पिताकी होती एकमात्र यह जीवन-साध॥

'प्रिये!' पुरुष अर्धाङ्ग दे चुका, लेकरके हाथोंमें हाथ।
यहीं नहीं—उस सर्वेश्वरके निकट हमारा शाश्वत साथ॥
तन-मन-जीवन एक हो गये, मेरा घर—उसका संसार।
दोनों ही उत्सर्ग परस्पर, दोनोंपर दोनोंका भार॥

'पण्या!' आज दस्यु कहता है! पुरुष हो गया हाय पिशाच!
मैं अरक्षिता, दलिता, तप्ता, नंगा पाशवताका नाच!!
धर्म और लज्जा लुटती है! मैं अबला हूँ कातर, दीन!
पुत्र! पिता! भाई! स्वामी! सब तुम क्या इतने पौरुषहीन?

—सुदर्शन

सेवाव्रतमें संलग्न नारी
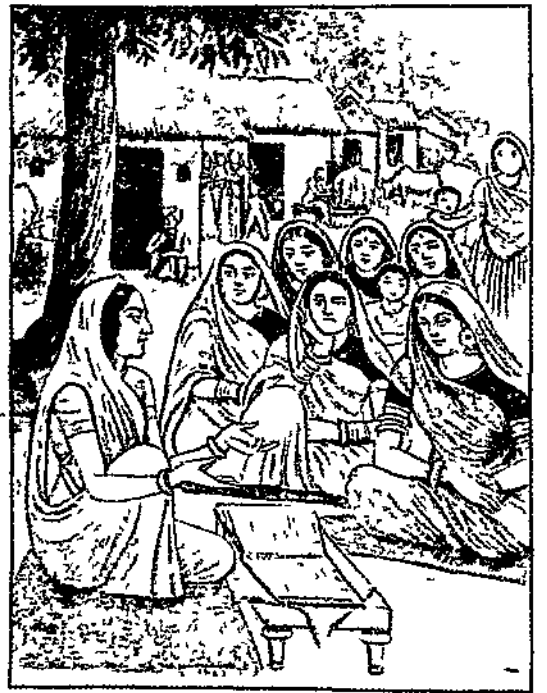
ग्रामसेविका बन दुखियोंके दुखमें हाथ बटाती है । और नर्स बन नगर बीच रोगीको दवा पिलाती हैं ॥
कहीं स्वच्छता और सफाईका भी ढंग बताती हैं । धर्मकथा कह कहीं नारिके सुंदर धर्म सिखाती हैं ॥

नारी-शक्तिका सदुपयोग

(मध्यप्रान्त और वरारके माननीय गवर्नर श्रीमंगलदास पकवासा महोदय)

स्त्रियोंके समानाधिकारकी बातमें मेरा अटल विश्वास है। जिस समाजमें स्त्रियोंको दबाया जाता है, उसे अन्तमें जाकर दुःख उठाना पड़ता है। स्त्रियोंमें एक शक्ति है। यदि मानवजातिके लाभके लिये इसका उपयोग न हुआ तो वह व्यर्थ जायगी। भारतवर्षके कानूनों और रीति-रिवाजोंने नारीकी महान् शक्तिको बढ़नेसे ही नहीं रोका वरं उसे दबाया और कुचला भी है। अब समय आ गया है कि महात्मा गांधीके उपदेशानुसार स्त्रियोंको पूर्ण अधिकार मिलें और उनका भी समाजमें स्थान हो। भारतकी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता स्त्री-जातिकी भी स्वतन्त्रता और स्वाधीनताकी इस रीतिसे विधायिनी हो कि अभ्युदयकी प्रत्येक दिशामें भारत पूरी ऊँचाईतक पहुँच जाय, विशेषकर नैतिक और सांस्कृतिक दिशामें इसका ऊर्ध्वगमन संसारके सभी राष्ट्रोंसे अधिक हो।

नारीका उच्च आदर्श

(सर चुन्नीलाल वी० मेहता, के० सी० एस० आई०)

हर्षकी बात है कि आपके आगामी विशेषाङ्क 'नारी-अङ्क'ने स्त्रियोंका विषय अपनाया है। वे आजकल तीव्रगतिसे सार्वजनिक कामोंमें भाग ले रही हैं। अच्छा होगा यदि उनका ध्यान उस अत्यन्त उच्च स्थानकी ओर आकर्षित किया जाय, जो हमारे पुराणपुरुषोंने उन्हें दे रक्खा है। इतनी बात अवश्य है कि उसका सम्बन्ध घरसे है (बाहरसे नहीं)।

भारतीय स्त्रियाँ क्या करें ?

(माननीया राजकुमारी अमृतकौर, स्वास्थ्य-सचिवा, भारत-सरकार)

'कल्याण' ने २१ साल बराबर हिंदीभाषाकी सेवा की है, उसके लिये बधाई देती हूँ। मुझे अफ़सोस है, मैं इतने काममें लगी हुई हूँ कि मुझे आपलोगोंके लिये लिखनेको समय नहीं मिलता। इतनी आशा 'कल्याण'-जैसी पत्रिकासे मैं रखती हूँ कि वह साहित्यका आदर्श ऊँचा रक्खेगा। ऐसा करनेसे जनताको ज्यादा लाभ पहुँचेगा, सनातन धर्म और परम्पराका ज्ञान भी उन्हें मिलेगा। जो परिस्थिति आज देशमें है, उसे सुधारनेमें आपलोग बहुत कुछ कर सकते हैं। हिंदू-मुसलमानकी मारपीट, झगड़े और वैरको केवल हार्दिक परिवर्तनसे ही दूर किया जा सकता है। ऐसे परिवर्तन करनेमें मदद देना कल्याण-जैसी पत्रिकाका धर्म है। स्त्री-जातिको भी सेवाके मैदानमें लानेमें आप बहुत बड़ी सहायता दे सकते हैं। स्वतन्त्रताका लाभ तब ही जनताको पहुँचेगा जब कि सब शिक्षित पुरुष और स्त्रियाँ सेवाके मैदानमें आयें और सरकारके साथ ग्रामोंके काममें हाथ बँटायें। मैं तो बहुत चाहती हूँ कि स्त्रियाँ लेडी डाक्टर, अध्यापिका, समाज-सेविका और हेल्थ-विज़िटर (Visitor) बनें। और शिक्षा और सेहतके क्षेत्रमें अपना जीवन अर्पण करें। ऐसा करें तो देशको बहुत लाभ पहुँचेगा। यही मेरा आपके लिये संदेश है।

नारीतत्त्व-गौरव

(लेखक—श्रीमन्मध्वसम्प्रदायाचार्य-दार्शनिकसार्वभौम-साहित्यदर्शनाद्याचार्य, न्यायरत्न, तर्करत्न, गोस्वामिश्रीदामोदरजी शास्त्री)

अबकी बार जगत्कल्याणकारी 'कल्याण' पत्रका 'विशेषाङ्क' कल्याणमयी नारियोंके सम्बन्धमें निकल रहा है; यह सर्वथा उचित भी है कि 'कल्याण' में कल्याणस्वरूपा नारियोंका भी कल्याणमय वर्णन हो। कल्याणस्वरूप 'नारीतत्त्व' के सम्बन्धमें मुझे भी कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत हो रहा है; अतएव कुछ लिखनेसे पूर्व मुखबन्धके द्वारा लेखकी सङ्गति की जाती है।

वक्तव्य यह है कि सच्चिदानन्दरूप भगवान्‌की विभूतिमे वेदादि शास्त्रोंने त्रिपादविभूतिको अप्राकृत लोक और पादविभूतिको प्राकृत जगत् कहा है।

वस्तुतः भगवान्‌की तीन शक्तियाँ हैं—१–अन्तरङ्गा, २–बहिरङ्गा और ३–तटस्था। इनमें अन्तरङ्गाके तीन भेद हैं—भगवत्स्वरूपमें सदंशकी, चिदंशकी तथा आनन्दांशकी शक्ति। ये क्रमशः १ सन्धिनी, २ संवित् और ३ ह्लादिनी कहलाती हैं। इन तीनोंको स्वरूपशक्ति भी कहते हैं।

बहिरङ्गाशक्तिके दो भेद हैं—१–माया और २–प्रकृति। मायाका काम आवरण करना है, उससे चिदंश और आनन्दांश दोनोंके आवृत होनेपर केवल सदंश जड या अचेतन कहलाता है; और केवल आनन्दांशके आवृत होनेसे सत् एवं चिद् अंशसे विशिष्ट तत्त्वको जीव, आत्मा या चेतन कहते हैं। भगवद्विमुख जीवोंका आनन्दांश अनादिकालसे आवृत होनेपर भी जब भगवत्कृपासे आनन्दावरणको माया हटा लेती है, तब जीव 'मुक्त' कहलाता है।

बहिरङ्गा शक्तिका दूसरा भेद प्रकृति है, जो सम्पूर्ण जडवर्गका उपादान कारण है। उसमें यह जड जगत् महदादिक्रमसे उत्पन्न होता है।

तीसरी तटस्था शक्तिका नाम जीव है; यह शक्ति बहिरङ्गाका काम न करनेसे बहिरङ्गा भी नहीं है और सर्वदा एकरस न रहनेसे अन्तरङ्गा भी नहीं है, सुतरां दोनोंसे पृथक् होनेके कारण 'तटस्था' कही गयी है। इस विवेचनसे तात्पर्य यह निकला कि 'शक्ति' शब्दका अर्थ स्त्रीत्वविशिष्ट वस्तु है। तब तो जीवोंका वास्तविक स्वरूप 'नारी' ही है, क्योंकि वह भी शक्तिरूप ही है। 'पुरुष' तो केवल वही है, जिसकी ये शक्तियाँ हैं। अर्थात् जो शक्तिमान् है, वही पुरुष है। वह पुरुष भगवान् है, इसीसे शास्त्रोंने उसे 'परमपुरुष', 'महापुरुष' या 'उत्तमपुरुष' कहा है; जीवोंमें जो 'पुरुष' कहलाते हैं, वे प्रकृति-निर्मित पुरुषाकार शरीरधारी होनेके कारण ही 'पुरुष' नाम धारण करते हैं। उनका वह रूप औपाधिक है, वास्तविक नहीं है। वास्तविक बात तो यही है कि शक्तिस्वरूप होनेके कारण वे 'स्त्री' ही हैं। अब देखिये कि 'नारीतत्त्व' कितना व्यापक, सत्य एवं नित्यसिद्ध है, इसके विपरीत प्राकृत पुरुषतत्त्व, अत्यन्त क्षुद्र, कल्पित अतएव विनाशी है।

शक्तिके बिना कोई शक्तिमान् भी कैसे हो सकता है? अतः भगवान्‌की शक्तिमत्ता भी शक्तिके ही अधीन है, यह दूसरी बात है कि शक्ति और शक्तिमान्‌में परस्पर तादात्म्य-सम्बन्ध होनेके कारण वे एक दूसरेसे सर्वथा पृथक् नहीं हैं। तादात्म्यका स्वरूप भेदसहिष्णु अभेद है, जैसा कि दीप-शिखा और प्रकाशका सम्बन्ध है। यहाँ न तो सर्वथा अभेद ही है और न भेद ही। अथवा यों कहिये कि भेद भी है, अभेद भी। भेद इसलिये है कि दीपककी ज्योतिमें हाथ लगानेसे हाथ जलेगा और उसमें फफोले पड़ जायँगे, परंतु उसके प्रकाशका सारे शरीरसे स्पर्श होनेपर भी न कोई अङ्ग जलता है न कष्ट ही होता है। इससे भेदका होना ही सिद्ध होता है। इसी प्रकार सर्वथा भेद भी नहीं कह सकते। क्योंकि एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न जो घट-पटादि वस्तुएँ हैं, उनमें घटके हटानेसे पट आदि नहीं हटते; किंतु दीपशिखाके हटानेसे प्रकाश भी हट जाता है, इससे अभेदका होना ही सिद्ध होता है। इस प्रकार किसी क्षेत्रमें भेद और किसी क्षेत्रमें अभेद होनेसे 'तादात्म्य' सम्बन्ध कहना पडता है। तपाये हुए लोहेमें लोहे और अग्निका भी यही सम्बन्ध है तथा यही सम्बन्ध जलमिश्रित दूधमें जल और दूधका है। शक्तिका शक्तिमान्‌के साथ ऐसा ही सम्बन्ध है। अन्तर इतना ही है कि हम सब जीवोंमें यह सामर्थ्य नहीं है कि हम अपनी शक्तिको अपनेसे पृथक् कर सकें, परंतु भगवान्‌में स्वयंसिद्ध ईशित्व-सिद्धि है, जिसके प्रभावसे वे अपनी तीनों ही प्रकारकी शक्तियोंको जगत्‌के रक्षणार्थ, विवेकार्थ और निज लीलार्थ पृथक् भी कर लेते हैं। इस प्रकार लीला आदिके लिये पृथक् की हुई शक्तिको राधिका, चन्द्रावली, रुक्मिणी, भामा, लक्ष्मी, जानकी, भू और शिवा

प्रभृति नामोंसे शास्त्रोंने उपासना-भेदसे विभिन्न अधिकारियों-के लिये व्यवहृत किया है।

ये सब भगवान्‌की शक्तियाँ भी नारीतत्त्व ही हैं, सुतरां त्रिपादविभूतिमें और पादविभूतिमें नारीतत्त्वकी ही प्रधानता अथवा कार्यकारिता निर्विवाद सिद्ध होती है।

भगवत्तत्त्वमें इतनी विलक्षणता है कि कभी तो शक्ति और शक्तिमान् पृथक् प्रकट रहकर विविध प्रकारकी लीलाएँ करते हैं—जैसा कि राधाकृष्ण, सीताराम, गौरीशंकर इत्यादिरूपसे शास्त्रोंमें लीलाओंका वर्णन देखा-सुना जाता है और कभी जब शक्तितत्त्व सर्वथा ही अप्रकट रहता है, तब परमात्मतत्त्व ब्रह्म, निराकार, निर्विशेषादि शब्दोंसे व्यवहृत होता है। इसी प्रकार कभी शक्तिमान् अप्रकट रहता है और शक्ति ही प्रकटरूपसे कर्तव्यपालन करती है। किंतु ऐसा अवसर ऐश्वर्य-प्रधान लीलामें ही उपस्थित होता है, माधुर्य प्रधान लीलामें नहीं; क्योंकि मधुरलीला दोनों तत्त्वोंकी प्रकटताके बिना हो ही नहीं सकती। ऐश्वर्य-प्रधान लीलामें दुष्टोंका निग्रह ही प्रधान कर्तव्य रहता है, अथवा संसारियों के ऐहिक मनोरथोंकी पूर्ति कर्त्तव्य रहती है।

अतः शक्तिस्वरूप मोहिनीरूपसे तामस प्रकृतिवाले असुरों-को अमृत-पानसे वञ्चित करना भी दुष्टनिग्रह ही है। महा-लक्ष्मी-महासरस्वती-महाकालीरूपसे असुर-संहार ही किया गया; दश महाविद्यारूपसे भी विविध ऐहिक फलोंका वितरण किया गया और कभी आवश्यकतावश दुष्ट-निग्रह भी किया गया।

सारांश यह कि उक्त सकल व्यवहार 'नारीतत्त्व' के ही प्रतापका गान कर रहा है। यह सब त्रिपादविभूतिशाली नारीतत्त्वके महत्त्वका दिग्दर्शन कराया गया।

अब पाद-विभूतिमें भी 'नारीतत्त्व' का उत्कर्ष देखिये। पाद-विभूतिमें जीवोंके प्रार्थनीय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ प्रसिद्ध हैं; इनमेंसे धर्मके अधिकांश अनुष्ठान ऐसे हैं, जो नारी बिना होते ही नहीं। अर्थोपार्जनमें भी यदि गार्हस्थ्यके रक्षण और अवेक्षणका भार नारी अपने ऊपर न ले तो पुरुषको उपार्जनका समय ही नहीं मिल सकता। कामके साम्राज्यमें तो इसके सभी अङ्गोंका प्राण नारी ही है। इसीसे तदनुसारी गुण भी पुरुषोंकी अपेक्षा नारियोंमें ही अधिक हैं। देखिये—पुरुषोंमें १ शोभा, २ विलास, ३ माधुर्य, ४ धैर्य, ५ तेज, ६ गाम्भीर्य, ७ ललित, ८ औदार्य—ये आठ गुण शास्त्रने बताये हैं, इनमेंसे भी दो तीनको छोडकर शेष सभी नारियोंके भीतर भी प्रस्फुटित होते हैं। तथा केवल नारियोंमें १ लीला, २ विलास, ३ विच्छित्ति, ४ बिब्बोक, ५ किलकिञ्चित, ६ मोट्टायित, ७ कुट्टमित, ८ विभ्रम, ९ ललित, १० मद, ११ विहृत, १२ तपन, १३ मौग्ध्य, १४ विक्षेप, १५ कुतूहल, १६ हसित, १७ चकित, १८ केलि—ये १८ गुण कहे गये हैं।

नारीके मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा धीरा, अधीरा, धीराधीरा, एवं स्वाधीनभर्तृका, खण्डिता, अभिसारिका, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका, वासकसज्जा और विरहोत्कण्ठिता आदि भेद तथा तदनुकूल भाव भी उनके गुण-विशेषको ही सूचित करते हैं। ये बातें रसशास्त्रोक्त हैं; कामशास्त्र-समुद्रकी तो कर्णधार ही नारी है।

मोक्षमें भी सूक्ष्मदृष्टिसे विचारिये तो परम्परा सम्बन्धसे नारी ही प्रयोजक है, क्योंकि बिना विरागके मोक्षका अधिकार ही नहीं हो सकता और विषयोंकी कटुताके ज्ञान बिना विराग नहीं होता तथा विषय कटुताका ज्ञान विषय भोग बिना नहीं होता। विषय-सेवनमें मुख्य नारी ही है, इस सम्बन्धसे नारी मोक्षमें भी कारण कही जा सकती है।

इस भाँति नारीतत्त्वके सम्पर्कके बिना कुछ वस्तु ही नहीं जान पड़ती। इसीसे मनु महाराज भी लिख गये कि जहाँ नारियोंका सम्मान है, वहाँ देवताओंका अनुग्रह रहता है।

इसीलिये नारीतत्त्व सबके लिये सर्वदा और सर्वथा परम आदरणीय है।

महिला-आदर्श

तियन-कर पुरुषन केर सुधार।
रीति अटल युग चार ॥ तियन० ॥
माता बनकर पुत्र सुधारैं, पत्नी बन भरतार ॥ तियन० ॥
अमर नाथ तिय गुन सों करतीं, जानत है संसार ॥ तियन० ॥
साध्वी तिय दोउ कुल को तारैं, आप होहिं भव-पार ॥ तियन० ॥
पति-कुल-धर्म तियन सों रच्छित, होहिं जो तिय सुविचार ॥
जस-अपजस नर तिय सों पावत, 'गंगा' वैदिक सार ॥ तियन० ॥

—(स्व०) श्रीगङ्गादेवी त्रिवेदी

श्रीमहाकाली, श्रीमहालक्ष्मी तथा श्रीमहासरस्वतीके स्वरूप

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीसकलनारायणजी शर्मा, काव्य-सांख्य-व्याकरण-तीर्थ)

परमेश्वर पूर्ण है। वह जगत्‌की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करता है। यह बात वेदान्तसूत्र (१।१।२) में है—'जन्माद्यस्य यतः।' वह उक्त कार्यके लिये अपनेको स्त्री और पुरुष—दो रूपोंमें प्रकटित करता है। 'त्र्यम्बकं यजामहे' (यजुर्वेद)। 'त्र्यम्बक' शब्दकी व्युत्पत्ति है—'स्त्री, अम्बा, स्वसा यस्य' (षड्विंशब्राह्मण)। वह अपनेको स्त्रीके साथ प्रकाशित करता है, जो लौकिक-व्यवहाररहित भगिनीके समान है। 'स्त्री' शब्दके सकारका लोप होनेसे 'त्र्यम्बक' शब्द बनता है। उसका नाम 'गौरी' है। 'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षति।' (ऋग्वेद)। इन वेदमन्त्रोंका तात्पर्य है कि वह स्त्री-पुरुषरूपसे माता-पिताके समान सुख देता है। मनुष्य उसकी सेवा करें। परमेश्वर 'त्रिनेत्र है' अर्थात् तीनों कालोंकी बात जानता है। अतएव महाकाली दुर्गा भी त्रिनेत्रा हैं। 'तत्र सर्वज्ञातिशयो बीजम्' (योगसूत्र)। वे सर्वज्ञ हैं। बिजलीके समान चमकनेवाली, धनुष-बाण एवं चक्रसे सुशोभित तथा सिंहपर चढ़ी हुई हैं।

> विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
> कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
> हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
> बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥

जो वीर पुरुष हैं, वे सिंह हैं। उनपर महाकालीकी सवारी है। ललाटमें चन्द्रमा है, जो भक्तोंको आनन्द और प्रकाश देता है। जब वे रुष्ट होती हैं, तब राक्षसोंपर चक्र चलाती हैं। संसार-चक्र अपने पापोंसे लडता रहता है और नष्ट होता रहता है। वह एक दूसरोंको चक्र-अस्त्र-शस्त्रसे चौपट करता है। यह भगवतीजीका परोक्ष-चक्र-संचालन है। माली बागके बुरे पौधोंको उखाड फेंकता तथा उसकी शोभा बढाता है। उसकी यह निपुणता है। माता दुर्गा दुष्टोंका विनाश कर जगत्‌पर दया करती हैं।

पहलेकी बात है कि महिषासुर बडा प्रबल हो गया। देवतालोग घबरा गये। तब ब्रह्मा, विष्णु, शिवने अपने तेजोंको इकट्ठाकर महालक्ष्मीरूपसे प्रकटित किया। इनके हाथोंमें गदा, धनुष, दण्ड, तलवार और ढाल आदि थे। कमलपर बैठी हुई और हाथमें कमल लिये हुई दीख पड़ीं। धन-सम्पत्तिका स्वरूप कमल है। जो धनाधिप है उसे धनकी रक्षा करनी चाहिये तथा रात-दिन अस्त्र-शस्त्रोंसे अपने कोषागारोंकी रक्षा करनी उचित है। इनके स्वरूपसे यह बात सिद्ध होती है। धनिकोंमें मद्य पीनेकी आदत होती है। यह स्वभाव धन-विरोधी है। इनके स्वरूपमें धनरक्षा तथा धन-नाश दोनों भाव हैं।

> अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
> दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
> शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
> सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

युद्धके समय महालक्ष्मी भी सिंहवाहिनी होती हैं, पर मन्त्रोंमें उनका वाहन उल्लू लिखा हुआ है। जिसपर लक्ष्मीकी कृपा होती है, उसे प्रकाशमें नहीं सूझता। उसके रुपये-पैसे अच्छे काममें व्यय नहीं होते। लक्ष्मी रजोगुणी हैं। इनसे दुःख ही होता है। पागलके समान धनाधिप होते हैं। यदि उनपर महासरस्वतीकी कृपा हो तो वे महापुरुष हो जाते हैं। जिससे सब कलुष धुल जाय, वह सरस् है। जो प्राणियोंके हृदयको सरस्—जलके समान स्वच्छ बनाती हैं, वे सरस्वती हैं, विद्यानिधि हैं। उनकी महत्ताकी इयत्ता नहीं, अतएव वे महासरस्वती हैं। उन्हें रुद्रने पहचाना, अतएव वह 'विद्यादाता महेश्वरः' कहलाता है। विद्याका गुण है—दुःखोंको दूर करना। मानसिक दुःख व्याधि है। बाहरी दुःख दुष्ट राक्षस महाव्याधिस्वरूप है। विद्वान् दुःखोंका विनाश शीघ्र करते हैं। महासरस्वतीजीने आविर्भूत होकर घण्टा, शूल तथा हलोंका प्रयोग किया। उनका आन्दोलन हुआ; वह घण्टानाद था। आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक शूल फैलाये गये। अन्नोंके उपार्जनकी सामग्री हल राक्षसोंसे छीन लिये गये। राक्षस दुर्बल हो गये। भगवतीजीका तेज सूर्यके समान था। राक्षस तुरंत नष्ट हो गये। धनुष-बाण केवल निमित्तमात्र हुए।

> ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
> हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
> गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
> पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

मन्त्रोंमें लिखा हुआ है कि सरस्वतीजीका वाहन हंस है। वह आकाश, भूमि दोनोपर चलता है।

वह नीर-क्षीरको पृथक् कर देता है। जिसपर सरस्वतीकी कृपा होती है, उसपर महाकाली (युद्धकी प्रधान देवता) तथा महालक्ष्मी (साधनकी देवता) स्वयं प्रसन्न हो जाती है। लौकिक व्यवहारके लिये तीनों देवियोंकी उपासना उचित है; क्योंकि उससे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों सिद्ध होते हैं और धर्म होता है—

'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।'

(वैशेषिक-दर्शन)

भारतीय नारी

(लेखक—डाक्टर श्रीभगवानदासजी)

एक सज्जन मित्रका आदेश हुआ कि 'प्राचीन कालकी भारतीय नारी' के बारेमें लेख दो। मैं विचारमें पड गया। सोचते-सोचते मनमें आया कि स्त्रियोंकी जो तात्त्विक प्रकृति है, वह तो जो प्राचीन कालमें, ढाई हजार या पाँच हजार या दस हजार वर्ष पहले बुद्धदेवके समयमें या वेदव्यास, श्रीकृष्ण और भीष्मपितामहके समयमें या रामजी और उनके पिता महाराज दशरथके समयमें रही, वही आज भी है। और न केवल भारतवर्षमें, अपितु पृथ्वीमात्रके सभी देशोंमें सभी कालोंमें वही है। हाँ, यह ठीक है कि पहिरावे-गहनेमें, वेष-भूषामें, अलङ्कार-आभूषणमें जरूर भेद रहा, जो अब भी है। अब भी गाँव-देहातकी स्त्रियोका, जैसा पुरुषोंका पहिनावा आदि दूसरा है, वैसे ही शहरवालोंका दूसरा। प्रान्त-प्रान्तका पहिनावा भिन्न-भिन्न है। और न केवल पहिरावेमें, भोजनके व्यञ्जनोंमें भी भेद है। यद्यपि गेहूँ, चावल, दाल, दूध, दही, घी विविध प्रकारके तेल, नमक, मीठा—ये ही सभी व्यञ्जन-भेदोंके सार हैं। ऐसे ही समय-समयपर बोली-भाषा भी बदलती रही है। जैसे वैदिक कालमें वैदिक भाषा थी; फिर पौराणिक कालमें रामायण, महाभारत, भागवत आदि इतिहास-पुराणोंकी भाषा चली; फिर पाली, प्राकृत, शौरसेनी आदि संस्कृतसे निकली विकृत (बिगड़ी) भाषाएँ बुद्धदेव, महावीर जिन, कालिदास आदि नाटककारोंके समयमें चलीं; अब उनके स्थानपर अवधी हिंदी, भोजपुरी हिंदी, बँगला, मराठी, गुजराती, मारवाडी, पंजाबी आदि। किंतु अन्तःकरणके भाव, हृदयके आशय, बौद्ध प्रत्यय, ज्ञानकी बातें, राग-द्वेष आदिके तरङ्ग, आशा आदि—ये सब सभी भाषाओंद्वारा वही-वही प्रकट किये जाते हैं। यह बात तो इतनेहीसे प्रत्यक्ष सिद्ध है कि प्रसिद्ध ग्रन्थोंके, जैसे भगवद्गीताके सैकड़ों भाषाओंमें अनुवाद हो चुके हैं। वेष-भूषाके बदलनेका हाल तो यों देखिये कि पचीस-तीस वर्ष पहले जो नगरवासिनी स्त्रियाँ मोटे-मोटे चाँदीके कडे पैरोंमें, सोनेके हाथोंमें, दस-दस, बारह-बारह 'बालियाँ' कानोंमें, मोटी-मोटी हँसलियाँ और कई-कई लड़की सोनेकी 'सिकड़ियाँ' गलेमें पहनती थीं, वही आज कानोंमें हल्की नफीसानी 'इयर-रिङ्', कलाइयोंमें सुबुक सोनेकी या जड़ाऊ चूड़ियाँ, पैरोंमें खूबसूरत जूतियाँ और भारी लहँगे, ओढनी, चोली आदिके स्थानमें सुन्दर बारीक सुनहली-रुपहली साड़ियाँ और रेशमी 'ब्लाऊज' (मिर्जई) पहनती हैं। नई पुश्तकी, स्कूल-कालिजोंमें पढती या पढी हुई लड़कियाँ तो उन पुरानी पुश्तके कपडोंका नाम भी नहीं जानतीं। परन्तु स्त्री-शरीर तो वैसा ही अब भी है जैसे पचीस, पचास, सौ हजार, दस हजार वर्ष पहले था।

इन सब उदाहरणोंका प्रयोजन क्या है? यह कि सब देश और कालमें स्त्रीकी प्रकृति यथा पुरुषकी, चार मुख्य प्रकारकी रही है और अब भी है—ज्ञानप्रधान (ब्राह्मण), क्रियाप्रधान (क्षत्रिय), इच्छाप्रधान (वैश्य) और अत्यन्त अस्पष्ट बच्चेकी-सी।

वैदिक कालमें भी गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, अरुन्धती, आत्रेयी, अनसूया आदि ब्रह्मवादिनी थीं। कई स्त्री ऋषियोंने वेद-मन्त्र बनाये। महाराज दशरथकी मध्यम रानी कैकेयी देवासुर-संग्राममें उनके साथ रथपर बैठकर इन्द्रदेवकी सहायताके लिये गयीं और जब दशरथके रथका एक अङ्ग टूटा तो उसको बाँध-छाँध करके उनके विजयकी कारण हुईं, जिससे दशरथने उनको दो वर दिये, जिनको उन्होंने आगेके लिये सञ्चित कर रक्खा ('जब माँगूँ, तब देना') और बादमें रामको वनवास और भरतको राज्यके रूपमें माँगा और रामायणकी कथाकी हेतु हुईं; जिससे आज न जाने कितने हजार वर्षोंसे भारतजनताको उत्तम राजशास्त्र, सदाचार और लौकिक व्यवहारकी शिक्षा मिल रही है। ऐसे ही श्रीकृष्णके समयमें ऋषियोंकी पत्नियाँ [illegible] हुईं। श्रीकृष्णकी पत्नी सत्यभामा उनके साथ [illegible] पर बैठकर देवासुर-युद्धोंमें जाया करती थी। पर अर्जुनकी पत्नी श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा उनसे अधिक [illegible]

रथ हाँकती थीं, इत्यादि । कथासरित्सागरमें वैश्य और शूद्र स्त्रियोंकी कहानियाँ हैं।

आजकी दुनियोंमें पश्चिमके देशोंमें भी इन्हीं चार प्रकृतियोंकी स्त्रियाँ तथा पुरुष देख पड़ते हैं—विदुषी, ग्रन्थकर्त्री, कवि, प्रोफेसर आदि। शिकारी घोर जंगलों और मरुस्थलोंमें जाकर सिंह-व्याघ्रका शिकार करनेवाली, जैसे सिंह-वाहना दुर्गा आदि हो चुकी हैं। यों तो अपने बच्चोंकी रक्षाके लिये गाय, भैंस भी सिंघनी (सिंही, शेरनी) हो जाती है। अपनी सन्तानरूप देवताओंकी रक्षाके लिये दुर्गादेवीने महिषासुर और शुम्भ-निशुम्भका संहार किया, जिनसे विष्णु और शिव भी हार गये थे। पश्चिममें अधिकाश स्त्रियाँ कृषि-गोरक्षा-वाणिज्य कर्म करनेवाली तथा मिहनत—मजदूरी, भृत्यकर्म करनेवाली ही हैं, जैसे भारतमें।

निष्कर्ष यह है कि प्राचीन नारी और नवीन नारीमें कोई तात्त्विक भेद नहीं है। जैसी सदा रही वैसी ही अब भी है। शिक्षा अगली पुश्तोंकी लड़कियोंकी कैसी होनी चाहिये—यह बहुत विचारनेकी बात है, अन्य लेखोंमें विचार किया है। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि न सब पुरानी चाल बुरी, न सब नयी चाल अच्छी है। दोनोंमेंसे देश, काल, अवस्थाके अनुसार अधिक गुणवाला अंश लेना चाहिये।

नारीमें परा शक्ति

(लेखक—माननीय बाबू श्रीसम्पूर्णानन्दजी, शिक्षासचिव, युक्तप्रान्त)

नारी पुरुषकी समानप्रसवा है, मनुष्यजातीय प्राणी है; इसलिये स्वभावतः उसमें प्रायः वह सब गुण-दोष विद्यमान हैं, जो मनुष्यको दूसरे प्राणियोंसे विभक्त करते हैं। जो लोग स्त्रीको स्त्री होनेके नाते छोटा मानते हैं, वे भूल करते हैं। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि स्त्रीकी बुद्धि पुरुषकी बुद्धिसे कम प्रखर होती है; परंतु यह सम्भवतः ठीक है कि स्त्री-पुरुषकी रुचियोंमें भेद होता है। कुछ विषय स्त्रियोंको, कुछ पुरुषोंको अधिक रुचिकर प्रतीत होते हैं—उनकी बुद्धिको अधिक आकृष्ट करते हैं।

ऐसे विषय कौन-कौन-से हैं—इस बातका अभीतक कोई वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हुआ है। सच बात तो यह है कि स्त्रियोंके सम्बन्धमें बहुत कम बातोंका वैज्ञानिक अध्ययन हुआ है। विज्ञान अध्येतव्य वस्तुके दृश्यगत रूपको देखना चाहता है, उसके उस रूपको पहचानना चाहता है, जो प्रत्येक द्रष्टाके लिये समान है, जो द्रष्टाके अभावमें भी रहेगा। बच्चा अपनी माको प्यारा लगता है। यह प्यारापन उसका वास्तविक दृश्यगत रूप नहीं है। उसकी सत्ता माता मात्रके लिये है। किसी दूसरेको वही बच्चा उसी समय बुरा लग सकता है। यह बुरापन भी द्रष्टृसापेक्ष्य है, अथ च वास्तविक नहीं है। दुर्भाग्यवशात् स्त्रीका जो कुछ भी अध्ययन हुआ है, वह किसी-न-किसी दृष्टि-विशेषसे ही हुआ है।

स्त्री पुरुषकी कामवासनाकी तृप्तिका साधन है। पुरुष उसको ढूँढ़ता है। उसको प्राप्त करनेसे जो सुख मिलता है, उसका आरोप उसके शरीरमें करता है। स्त्री उसके प्रतीक्षित सुखकी मूर्ति है। अतः इस दृष्टिसे स्त्री बहुत-से गुणोंकी खान है' सर्वोपरि सुन्दर है। उसके सौन्दर्यकी प्रशंसा करनेसे पुरुष नहीं थकता। यदि सौन्दर्यका अर्थ सुडौलपन हो तो यह विचारणीय प्रश्न है कि स्त्रीका शरीर अधिक सुडौल होता है या पुरुषका। परंतु पुरुषको विचार करनेका अवकाश कहाँ है।

कुछ लोगोंको अपनी दुर्बलता, इन्द्रियलोलुपताके लिये बहाना चाहिये। अपनेमें तपोनिष्ठा नहीं है, अपना चरित्र दृढ़ नहीं है, अपनेसे संयम करते नहीं बनता, इसके लिये स्त्रीको दोष दे देनेसे जी हल्का हो जाता है। स्त्री प्रलोभक है, इसलिये पुरुष गिर जाता है। हम तो परम योगीश्वर होते।

अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि रे मदिरेक्षणाः।

बात ठीक ही है; परंतु यही बात तो स्त्री भी कह सकती है। पुरुष उसको नीचे खींच लाता है। प्रलोभनको जीतनेमें ही तो संयम देखा जाता है। विषयाभावमें तो सभी इन्द्रियजित् महात्मा हैं। अस्तु, ऐसे ओछे विचारक और तपस्विमन्य दुर्बलात्माओंने स्त्रीमें अपनी सारी चारित्र-कमियोंको आरोपित कर रक्खा है। उनके कथनानुसार स्त्री नरकद्वार, तपोभ्रंशक, काम-प्रतिमा, पुरुषको मोक्ष-पथसे हटानेवाली पिशाची है। मनोविज्ञानके विद्वान् जानते हैं कि यदि मनुष्यका चित्त किसी वस्तु-विशेषपर लगा रहता है, परंतु वह उसको उस ओरसे हटाना चाहता है, क्योंकि उधर लगनेसे उसके किसी विशेष अभीष्ट या सामाजिक पदकी हानि होती है, तो चित्तमें तुमुल संघर्ष होता है। यदि संयमात्मक वृत्तियाँ पूर्णतया जीत गयीं तब तो

ठीक ही है, चरित्र ऊँचा उठता है; अन्यथा चाहे ऊपरसे शान्ति बची रहे, परंतु भीतर अशान्ति बनी रहती है। कभी-कभी यह अशान्ति निन्दाका रूप धारण करती है। जिस वस्तुको जी चाहता है, उसकी खूब निन्दा की जाती है। इसी बहाने उसकी चर्चा हो जाती है, एक प्रकारका मानस-संभोग हो जाता है, तृप्ति मिल जाती है। कोई धनका भूखा हो परंतु धन प्राप्त न कर सका तो वह धनिकोंकी निन्दा करेगा। निन्दा करनेमें लाख-करोड़ रुपया, अशर्फी सब कह जायगा, सबके चित्र उसकी आँखोंके सामने घूम जायँगे। इससे चित्त हलका हो जायगा। कुछ-कुछ वैसी ही शान्ति मिल जायगी, जैसी सचमुच लाख-करोड़की प्राप्तिसे मिलती। इसी प्रकार बहुत-से लोग, जिनकी कामवासना बहुत प्रबल है परंतु चतुर्थाश्रममें आ जाने-से वह तृप्त नहीं की जा सकती, स्त्रियोंकी चर्चा करते हैं। उनके शरीरकी रचनाका वर्णन करेंगे, गुह्य अङ्गोंका विशेष वर्णन करेंगे, स्त्री-पुरुषके यौन सम्बन्धका वर्णन करेंगे। स्वर निन्दा-का होगा, भाषा निन्दाकी होगी; परंतु उस निन्दाके द्वारा अपनी काम-पिपासा बुझायी जाती है। जो बातें कुत्सित ठहरायी जाती हैं, उनका मानस आस्वाद मिल जाता है। ऐसे कथन स्त्रीकी निन्दा नहीं, निन्दकके चित्तचाञ्चल्यके शब्द-चित्र हैं। ज्ञान-वैराग्यके उपदेशमें इनका कोई स्थान नहीं है; अन्यथा उपनिषद्, दर्शन, भगवद्गीता-जैसे ग्रन्थोंमें भी ऐसे स्थल मिलते।

कुछ लोगोंने स्त्रियोंके आचरणकी कुछ ऊपरी बातोंको लेकर उनको अशौचादि आठ दोषोंसे मढ दिया है। इन दोषोंका इतना ही आधार है कि स्त्री पुरुषसे भिन्न है। जो पुरुष करता है, वह भूषण है; अतः जो उससे विपरीत है, वह दूषण है।

सच तो यह है कि स्त्री-जीवनकी पहेलीकी कुंजी यह है कि स्त्रीको माता होना है। वह मातृत्वके लिये बनायी गयी है। यह कह सकते हैं कि पुरुष पितृत्वके लिये बना है। बस, जो अन्तर पितृत्व-मातृत्वमें है, वही अन्तर पुरुष और स्त्रीमें है। सन्तानके जीवनसे पिताका प्रधान सम्बन्ध तो एक बार, गर्भाधानके समय होता है। इसके बाद उसका स्थान गौण है। जो प्राणी कुटुम्ब बनाकर रहते हैं, उनमें कुछ थोड़ी-सी देख-भाल पिता करता है। मनुष्यमें औरोंकी अपेक्षा अधिक दायित्व पितापर आता है, फिर भी यह सम्बन्ध प्राकृतिक कम, सामाजिक अधिक है। यदि समाजका संघटन दूसरे प्रकारका हो जाय, यदि प्रत्येक बच्चेके भरण-पोषणका भार समाज ले ले, तो पिताके ऊपर कोई दायित्व न रहे, सिवा गर्भमें स्थापित करनेके पिताका बच्चेसे कोई नाता न हो। माताका सम्बन्ध समाजकर्तृक नहीं है। सामाजिक संगठन कैसा भी हो, बच्चेको गर्भमें तो रखना ही होगा। जन्मके बाद बच्चेको दूध पिलाना ही होगा, उसकी रक्षा करनी ही होगी, उसको जीवनोपयोगी बातें सिखानी ही होंगी। यदि समाज बच्चोंका भार अपने ऊपर लेगा तो उसे माताको दाई-के रूपमें रखना होगा। अतः माताका बच्चेके जीवनके साथ लंबा और गहरा सम्बन्ध है। इसीके अनुकूल स्त्रीके शरीर और चित्तकी बनावट है। पुरुषको सैकड़ोंसे काम पड़ता है। उनके सहयोगसे ही वह जीवनमें सफल हो सकता है। इस-लिये उसकी सहानुभूतिका क्षेत्र विस्तृत होता है। प्रायः उसका स्नेह किसीके भी प्रति गहरा नहीं होता; परंतु उसका स्नेहमय व्यवहार बहुतोंके साथ होता है। स्त्री अपने स्नेहके क्षेत्रको इतना नहीं फैला सकती। उसका जगत् छोटा होता है। वह अपने परिवार, बच्चे और उनके पितातक ही प्रायः सीमित रहता है; परंतु उसका गाम्भीर्य अतल होता है। पुरुषमें इतने गहरे प्रेमकी क्षमता नहीं होती। द्वेष और राग एक ही मुद्राके दो चेहरे हैं। जो जितना प्रेम कर सकता है, वह उतना ही द्वेष कर सकता है। पुरुषका द्वेष भी विस्तृत किंतु प्रायः गाम्भीर्यहीन होता है। स्त्री औरोंको प्रायः उपेक्षाभावसे देखती है; परंतु वह अपने प्रेमके समान ही घृणा भी करना जानती है। पुरुषकी भाँति स्त्रीको बात-बातपर क्रोध नहीं आता, परंतु यदि वह क्रुद्ध हो गयी तब तो उस आगको सँभालना कठिन होता है। पुरुषमें स्त्रीके बराबर न तो दयाशीलता होती है, न निर्दयता। उसके भाव प्रायः केन्द्रीभूत हो ही नहीं पाते। मातृत्व [illegible] नहीं है। माताके लिये तो बच्चा जगत् है। जो उसकी ओर टेढ़ी दृष्टिसे देखता है, वह शत्रु है, हन्तव्य है। इसीसे स्त्रीमें कृत्रिमता नहीं होती। पुरुषकी भाँति अपने भावोंको गोल शब्दोंमें छिपानेमें उसे रस नहीं आता। एक पाश्चात्य विद्वान्‌का कहना है कि झूठ बोलनेमें स्त्री पुरुषकी बराबरी नहीं कर सकती। अस्तु, इन बातोंको ध्यानमें रखकर यदि स्त्रीके स्वभाव और आचरणका अध्ययन किया जाय तो बहुत-सी बातें, जो विचित्र और दोषमय प्रतीत होती हैं, समझमें आ जायँगी।

स्त्रीके पत्नीत्व और पुरुषके पतित्वका स्वरूप भी एक-सा नहीं होता। स्त्रीके लिये एकपुरुषनिष्ठा सहज और स्वाभाविक है, पुरुष प्रकृत्या बहुस्त्रीगामी होता है। उसके लिये एक-पत्नीव्रत होना कष्टसाध्य होता है। [illegible] कर वाल्मीकिने रामके एकपत्नीव्रत होनेकी प्रशंसा की है।

स्त्रीके स्वभावका मातृत्व भी उसको एकनिष्ठ बनाता है। अपने स्नेहको बिखराना माताके लिये सम्भव नहीं है, उसको तो केन्द्रित करना ही अनुकूल प्रतीत होता है। पुराने नीतिके श्लोकोंमें लिखा मिलता है कि भार्या भोजनके समय माता-जैसा आचरण करती है। सचमुच पत्नीके भावमें वात्सल्य भी रहता है, वह अपने पतिको भोला बालक-सा समझती है और उसके ऊपर वैसी ही देख-रेख रखती है, जैसी बच्चोंपर रक्खी जाती है। जितनी तन्मयता पत्नी पतिके साथ करती है, उतनी पुरुष नहीं कर सकता। पतिकी उन्नतिमें, पतिके गुणोंके उत्कर्ष और प्रख्यापनमें, पतिकी प्रसिद्धिमें उसको अपूर्व आनन्द मिलता है। पतिकी वृद्धि और उसके यशोविस्तारमें उसको अपनी आत्माकी सार्थकता मिलती है।

इन सब बातोंकी तहमें नर-नारीका आध्यात्मिक स्वरूप है। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध और परस्परके प्रति आचरण आदि-नर और आदिनारीके परस्पर सम्बन्धकी छाया, भौतिक जगत्‌में निक्षेप है। इस सम्बन्धके स्वरूपकी ओर संकेत तो श्रौत वाङ्मयमें बराबर मिलता है। परंतु आगम-ग्रन्थोंने इसका वर्णन विस्तारसे किया है। ऋग्वेदका प्रसिद्ध नासदीयसूक्त पहले शुद्ध ब्रह्मकी चर्चा करता है 'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्' —उस अवस्थामें न सत् था न असत् था। इस वाङ्मन-सगोचर नेति-नेति-निर्देश्य अवस्थाके बाद परमात्मतत्त्व, सगुण शिव, अर्धनारीश्वर, मायाशबल ब्रह्म आता है। उसकी ओर श्रुतियाँ संकेत करती हैं—

तम आसीत्तमसा गूढमग्रे·····················

आनीदवातं स्वधया तदेकम्····················

तम (अर्थात् अविद्यारूपी माया) से ढका तम (अर्थात् निश्चेष्ट ब्रह्म) था। वह एक अपनी स्वधाके द्वारा बिना वायुके साँस लेता था। जो 'स्वं धारयति' अपने आपको धारण करे, निराधारा हो, वह स्वधा है। यह नाम आद्याशक्ति, पराशक्तिका है। आद्याशक्तिसे युक्त परशिव साँस लेता था। कहनेका तात्पर्य यह है कि चेतन था, ज्ञाता था। शुद्ध ब्रह्म चिन्मात्र, ज्ञानस्वरूप है। अन्य विषयके अभावमें परमात्माको अपनी सत्ताका ज्ञान था। 'मैं हूँ' का भान था। 'वायुके बिना' कहनेका तात्पर्य यह है कि कि सगुण शिव-पदार्थको किसी दूसरे साधनकी, अपनेसे भिन्न किसी पदार्थकी अपेक्षा नहीं थी। स्वधा उससे अभिन्न थी। इसीलिये उसको साम्ब—अम्बासमेत कहते हैं। इसी युगलमूर्ति, भिन्ना भिन्न पदार्थसे समस्त जगत्‌का विस्तार हुआ है; इसलिये सब वस्तुओंमें युगल तत्त्वकी अभिव्यक्ति होती है। नर और नारी दोनोंमें आदि-पुरुष और आदिशक्ति विद्यमान है। अतः दोनोंमें बहुत-सा गुणसाम्य होना ही चाहिये। परंतु नारीमें शक्ति और नरमें पुरुष-अंशका प्राधान्य है, इसलिये वैषम्यका होना भी स्वाभाविक है। नारीमें भगवती आदिशक्तिकी जो अभिव्यक्ति है, उसीको लक्ष्य करके देवोंने शुम्भवधके उपरान्त स्तुति करते हुए यह शब्द कहे थे—

तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

'हे देवि! जगत्‌की स्त्रियाँ समष्टि और व्यष्टिरूपसे आपके भेद हैं, आपकी ही विभिन्न मूर्तियाँ हैं।'

मायाकी व्युत्पत्ति है मीयते अनया—इसके द्वारा जाना जाता है। मायाके ही द्वारा ब्रह्म अपने आपको जानता है। परमात्मावस्थामें उसे अपनी सत्तामात्रका ज्ञान रहता है; ज्यों-ज्यों जगत्‌का विकास होता है, त्यों-त्यों ज्ञाता और ज्ञेयमें भेद बढ़ता जाता है। एक ही ब्रह्मतत्त्व असंख्य ज्ञाताओं और असंख्य ज्ञेयोंमें विभक्त हो जाता है। यह सब पराशक्तिकी क्रीडा है। वही ब्रह्मका प्रख्यापन करती है। ब्रह्मको प्रख्यापित करने, ज्ञेय बनाने, ज्ञात बनानेमें ही उसकी सार्थकता है, स्वरूपसिद्धि है। पराशक्तिके इस स्वरूपका दर्शन नारीमें होता है। पतिके यशोगान, उसकी कीर्तिवृद्धि, उसकी ख्यातिमें नारीको अपने जीवनकी सार्थकता प्रतीत होती है, अपूर्व सुखकी अनुभूति होती है।

आद्याशक्ति असंख्य शक्तियोंका समुच्चय है। सप्तशतीमें सकेतरूपसे बतलाया गया है कि सभी देवता, जगत्‌की सञ्चालिका सभी शक्तियाँ, उस एक महाशक्तिके भेद हैं, उसीमेंसे प्रकट होती हैं और फिर उसीमें लीन हो जाती हैं। आदिपुरुष इनसे रमण करता है, इनका उपयोग करता है। किसी शक्तिके योगसे वह ब्रह्मा होता है, किसीसे विष्णु, किसीसे रुद्र, किसीसे इन्द्र। शक्तियोंसे रमण करके वह अपने-को विकसित पाता है। एकाकी पुरुष तो चेतनापुञ्ज है। शक्ति ही उसे ज्ञाता, कर्ता, स्रष्टा, पालयिता, संहर्ता बनाती है। शक्तिके लिये पुरुष एक है, पुरुषके लिये शक्ति अनेक हैं। यही बात नर-नारी अपनेमें लाये हैं। पुरुष प्रकृत्या बहुगामी, नारी प्रकृत्या एकनिष्ठा है।

परमात्मा सगुण शिव-तत्त्वमें जो पराशक्ति है, वह स्थूलता-को, अव्यक्तरूपसे व्यक्तरूपको, प्राप्त होती है। वही जगद्योनि, जगद्बीज, जगन्माता है। उसीसे समस्त जगत् अभिव्यक्त और विस्तारको प्राप्त होता है। अभावसे भाव नहीं होता

इसलिये इस प्रकरणमें यदि सृष्टि और उत्पत्ति-जैसे शब्दोंका प्रयोग होता है तो केवल उपचारके लिये। शक्तिकी अभिव्यक्तिको तन्त्रग्रन्थोंमें बहुधा बतलाया गया है।

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिः··· ··· ··· ··· ··· ···॥
(शारदातिलक)

तस्माद्विनिर्गता नित्या सर्वगा विश्वसम्भवा।
(प्रयोगसार)

सच्चिदानन्दस्वरूप, कला (सूक्ष्म अविद्या) समेत परमेश्वरसे शक्ति निकली।

उससे सर्वव्यापी, नित्य, विश्वसम्भवा (जिससे विश्वका जन्म हुआ) बाहर निकली।

इसने ही ब्रह्मादि सभी जीवोंको जन्म दिया। इसकी ही सन्निधिसे ब्रह्मत्व, विष्णुत्व, इन्द्रत्वकी सिद्धि होती है। जैसा कि ऋग्वेदके दशम मण्डलके देवीसूक्तमें वाक् कहती है—

यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।

'जिसपर प्रसन्न होती हूँ उसको उग्र, उसको ब्रह्मा, उसको ऋषि, उसको सुमेधा बना देती हूँ।' इसने ही जन्म दिया है, इसलिये जीवमात्रकी माता है; पालन करती है, इसलिये भी विश्वम्भरी, धात्री, मातृस्थानीया है। परन्तु जीवके वशमें रहती है, उसकी कामनाओंकी पूर्ति करती है, इसलिये उसकी साध्वी पत्नी है।

सप्तशतीके प्राधानिक रहस्यमें यह बात समाधिभाषामें निर्दिष्ट है। आरम्भमें—

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा सकलेश्वरी।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता॥

'सबसे पूर्ववर्ती महालक्ष्मी, त्रिगुणस्वरूपा, अनन्त-कला (शक्ति) समुच्चयरूपा, ईश्वरी, लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सबको भीतर-बाहरसे व्याप्त करके स्थित थीं।'

उसने अपनेको त्रिधा विभक्त करके महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती रूप धारण किये। फिर इन तीनों विग्रहोंने अपने-अपने देहसे स्त्री-पुरुषात्मक एक-एक जोड़ा उत्पन्न किया। इस प्रकार महादेव, सरस्वती, ब्रह्मा, लक्ष्मी, विष्णु और गौरीका जन्म हुआ और फिर विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सरस्वती और रुद्र-गौरीका पति-पत्नी-सम्बन्ध स्थापित हुआ।

यह सारा प्रसङ्ग बहुत गूढ है; परंतु इतना तो स्पष्ट है कि इन देवोंकी जो पत्नियाँ हैं, वे सब उसी महादेवीके रूपान्तर हैं जो इनकी जननी है क्योंकि स्वरूपसे [illegible] विद्यमान है। ऐसी दशामें स्त्रीके चित्तमें पतिके प्रति [illegible] का होना स्वाभाविक है।

माताका सहिष्णु, क्षमाशील होना स्वाभाविक है। [illegible] अपनी सन्ततिकी बहुत-सी बातोंको हँसकर टाल देती है। क्रोध उससे दूर रहता है। इसीलिये पुरुष स्त्री-जातिको अपने दिल बहलानेका खिलौना बना सका है परन्तु उसके भीतरकी सुप्तप्राय महाकाली कभी-कभी जाग उठती है। जिसके निमेष-मात्रमें सहस्र-सहस्र ब्रह्माण्ड बनते-बिगड़ते हैं, जिसके बिना शिव शवोपम हैं, उसके सामने ठहरनेवाला त्रिलोकीमें कोई नहीं है। नारी यदि वस्तुतः क्रुद्ध हो जाय तो फिर [illegible] शान्त कोई उसे थाम नहीं सकता। महाकाली महारुद्रके शरीरपर नृत्य करती है।

नरके प्रति अपनेको अर्पित करके नारी अपनेको भूली सी रहती है। इससे पुरुष-जगत्को बहुत सी बातोंमें सुविधा होती है; परन्तु वह दूसरी बहुत-सी बातोंसे वञ्चित भी रह जाता है।

दासी-शरीर मातृत्वको पूरा पूरा व्यक्त नहीं करता। स्त्री मोहक है, अविद्यामयी है। इसलिये हम भूल गये हैं, वह भी भूल गयी है कि मोहका ध्वंस भी वही कर सकती है, विद्या भी उसीका रूप है। नीचे नारी गिराती है, ऊपर भी नारी उठा सकती है। नारी नरकका द्वार हो सकती है और नारीके दिव्य रूपका दर्शन किये बिना योगी कैवल्य भी नहीं प्राप्त कर सकता।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

ध्यानके द्वारा योगियोंने देव (परमात्मा) की आत्म-शक्तिको देखा, जो अपने गुणोंसे निगूढ—आच्छादित थी।

लोकके अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये नारीको चाहिये कि अपनेको पहचाने।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

पुरुषने अपने दर्प और दुरभिमानसे अपने चारों ओर जो जाल बिन लिया है, उसका छेदन करनेके लिये नारीको उपेक्षा-भावका परित्याग करना होगा। जिसने [illegible] के रूपमें असुरोंके और उनकी सेनाओंके [illegible] चूर्ण किया था, उसको आज नरोंके [illegible] उद्धार करना होगा।

नर-नारीका आदर्श और अधिकार

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य एम्० ए०)

मेरी परिचिता कुछ छोटी उम्रकी बालिकाएँ बातें कर रही थीं। उनके वार्तालापका विषय था 'विवाह'! एक लड़कीने कहा, 'क्या विवाह! कौन करेगी विवाह! कौन दासी बनने जायगी!' इससे स्पष्ट समझा जा सकता है कि लड़कीके इस मन्तव्यका मूल कहाँ है, समाजके अंदर हवा किस ओर बहने लगी है और निकट भविष्यमें सामाजिक संस्थान कैसा होने जा रहा है। हमारे गृहस्थ-जीवनकी शान्ति आज किस प्रकार विपन्न है, इससे यह भी सूचित होता है।

किसी व्यक्ति या समाजकी भलाई-बुराई, शुभ-अशुभ और शान्ति-अशान्ति प्रधानतया मनुष्यकी चित्तवृत्ति अथवा मनके भावोंपर ही निर्भर करती है। प्रचुर धन धान्य-सामग्री होनेपर भी दम्पतिके मनका भाव यदि परस्पर प्रतिकूल होता है तो कभी शान्ति नहीं होती, यह सभी जानते हैं। दूसरी ओर दुःखके बहुत-से कारण विद्यमान रहनेपर भी यदि परस्परमें अनुकूलता होती है, एक दूसरेके प्रति गहरा प्रेम होता है, तो कोई भी दुःख नहीं होता, कोई भी अशान्ति नहीं होती। अयोध्याके राजकुमार राम और जनकराजनन्दिनी सीताके दीर्घकाल वनवासी रहनेपर भी दोनोंमें बड़ा आनन्द था। इसका एकमात्र कारण यही है कि उनके मनके भाव भले थे। अतएव सुख-शान्तिकी प्राप्तिके लिये मनका उत्तम भाव बना रहे और उत्तरोत्तर बढ़ता रहे, प्रधानतासे इसी ओर लक्ष्य रखना कर्तव्य है।

गृहस्थ-जीवनमें नर-नारीकी प्रकृतिका पर्यालोचन करनेपर यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि इनमें स्वतन्त्र भावसे कोई भी सम्पूर्ण नहीं है। पुरुष नारीको चाहता है और नारी भी पुरुषको चाहती है। ऐसा हुए बिना नहीं चलता, ठीक गाड़ीके दो पहियोंकी भाँति। एकके न रहनेपर दूसरेका काम भी रुक जाता है। यह जो नर-नारीकी परस्परके प्रति आकाङ्क्षा है, सो उनकी स्वतन्त्र रूपसे अपनी-अपनी असम्पूर्णताको लेकर ही है। हमारे भारतवर्षके धर्म, शास्त्र, साहित्य, समाज, चित्र और शिल्प सभीमें इसी भावको अत्यन्त चमत्कारपूर्ण रीतिसे दिखाया है और वह हमारे महान् कल्याणके लिये हुआ है। हम आज यहाँ इसीपर कुछ आलोचना करके देखेंगे।

बृहदारण्यक उपनिषद् (१४ । १ । ३) में एक ऐसा प्रसंग है कि पहले यह सब कुछ आत्मा ही था। उसका आकार था पुरुषकी भाँति। उसने चारों ओर दृष्टि डालकर देखा तो उसे अपने सिवा और कुछ भी नहीं दिखायी दिया। उसने देखा कि मैं अकेला हूँ, इससे उसको भय हुआ। परंतु उसने सोचा कि 'जब मेरे सिवा और कुछ भी नहीं है, तब मैं भय क्यों करूँ? दूसरा कुछ होनेपर ही तो भय होता है।' उसका भय चला गया, परंतु उसे आनन्द नहीं मिला। देखा ही जाता है कि अकेले-अकेले किसीको अच्छा नहीं लगता। इसीसे उसने दूसरे व्यक्तिकी चाहना की। स्वामी और स्त्रीका एक साथ आलिङ्गित रहनेपर जो परिमाण होता है, उस समय आत्मा भी उसी परिमाणका था। उसने अपनेको दो भागोंमें विभक्त किया। उसीसे पति और पत्नी बने। इसीलिये प्रत्येक स्वयं अपने ही आधे अंशके सदृश है।[1]

उपनिषद्के इस उपाख्यानसे पता लगता है कि उस समयके ऋषियोंकी कल्पनामें पुरुषका आधा अंश पति है और आधा अंश स्त्री है। इन दो आधे अंशोंको मिलानेपर ही पुरुष पूर्ण होता है। इस उपनिषद्की भाँति शतपथ ब्राह्मण (५-२-३-१०)में भी कहा गया है कि जाया अपना आधा अंश ही है[2]। एक धर्म-शास्त्रमें भी कहा गया है कि जबतक स्त्रीकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक पुरुष आधा ही रहता है[3]।

पति-पत्नीमें जो यह आधे-आधे अङ्गकी कल्पना है, इससे अधिक अन्य कोई भी पवित्र, महान् और उच्च सम्बन्धकी कल्पना न है, न हो सकती है।

भारतके धर्म[4], काव्य[5], चित्र और भास्कर्य[6] में अर्ध-

---

१. स इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्। तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्य.।

(बृहदारण्यक उपनिषद् १ । ४ । ३)

सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत असितकुमार हालदार महाशयने इस विषयका एक सुन्दर चित्र अङ्कित किया है। वह लेखककी 'विवाह-मङ्गल' नामक पुस्तकमें दिया जायगा।

२. अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जायेति।

३. यावन्न विन्दते जाया तावदर्धो भवेत् पुमान्।

(व्याससंहिता २ । १४)

४. तन्त्रसारमें 'अर्धनारीश्वर' का ध्यान मिलता है।

५. माघ, मुरारि, मयूर आदि अनेक कवियोंने इसका वर्णन किया है।

६. अत्यन्त सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीनन्दलाल वसुके द्वारा अङ्कित अर्धनारीश्वरका चित्र अत्यन्त रमणीय है और उन्हींके उपयुक्त है। लेखकके 'विवाहमङ्गल'में उसे दिया जायगा।

७. राजशाहीकी रवीन्द्र-अनुसन्धान-समितिकी चित्रशालामें 'अर्धनारीश्वर' की सुन्दर शिलामूर्ति सुरक्षित है।

गृहिणीके दैनिक छः धर्मकृत्य
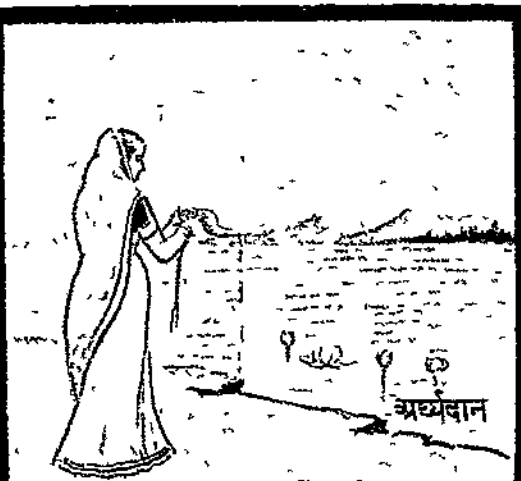
देव-अतिथि-तुलसीकी पूजा गौओंके हित ग्रास प्रदान।
अर्घ्यदान औ दीपदान—ये गृहिणीके षट् कर्म प्रधान॥

नारीश्वरकी कल्पनाके द्वारा भी पति-पत्नीके इस सम्बन्धको बहुत सुन्दर रीतिसे प्रकट किया गया है। अर्धनारीश्वरको चलित भाषामें कभी-कभी हर-गौरी कहा जाता है। इसमें हम आधी पार्वती और आधे महेश्वरकी मूर्ति देखते हैं। केवल पार्वती या केवल महादेव अर्धनारीश्वर नहीं होते।

पति और पत्नी दोनों यदि पारस्परिक सम्बन्धमें अपनेको आधे अङ्गकी भाँति समझें तो वह संसार जीवनमें सुख-शान्तिका प्रधान कारण बन जाता है, क्योंकि ऐसा होनेपर उनके दो प्राण, दो हृदय मिलकर एक हो जाते हैं। किसी प्रकारकी भेदबुद्धि नहीं रहती। भेदबुद्धि न रहनेपर शरीर भिन्न होनेपर भी वस्तुतः वे अभिन्न हो जाते हैं। यही समझकर विवाहके समय वर कन्यासे कहता है—

यह जो तुम्हारा हृदय है, सो मेरा हृदय हो जाय और यह जो मेरा हृदय है, सो तुम्हारा हृदय हो जाय[1]।

यह भाव यदि हृदयमें जाग्रत् रहे तो फिर क्या पति अपनेको प्रभु और पत्नीको दासी समझ सकता है, या पत्नी अपनेको दासी और पतिको प्रभु मान सकती है? फिर प्रभु और दासीकी कल्पनाका लेश भी नहीं रहता।

जहाँ गृहस्थ-जीवनके मूल आदर्शके साथ कोई परिचय न हो, वहीं पति-पत्नीमें मालिक और नौकरानीका भाव हो सकता है, अन्यत्र नहीं। हिंदू-परिवारमें 'सह धर्मं चरतम्' अर्थात् तुम दोनों एक साथ मिलकर धर्मका आचरण करो, इसी उपदेशको लेकर नर-नारी गृहस्थ-जीवनका आरम्भ करते हैं। धर्माचरण करनेके लिये ही वे अपने इस जीवनको ग्रहण करते हैं। ऐसा करना ही उनका व्रत है। जब जैसा भी सुख-दुःख आवे, उसको भोगकर इस व्रतका पालन करते हुए ही उन्हें चलना होगा, फिर वह चाहे जैसे भी हो। यदि धन सम्पत्ति होगी तो वे संसार-यात्राके निर्वाहमें दास-दासियोंकी सहायता लेंगे, नहीं तो अपने-आप ही आवश्यक कार्य करने पड़ेंगे। यह कर्तव्य जैसा पतिके लिये वैसा ही पत्नीके लिये है। व्रतपालन—धर्मपालन करना ही होगा।

विवाह करनेपर स्त्री दासी बन जाती है, यह भाव या कल्पना ही अभारतीय है। दरिद्रताके प्रसङ्गसे किसी-किसी स्त्रीको बहुत श्रमसाध्य कार्य करनेके लिये बाहर होना पड़ता है, यह सत्य है, परंतु इसका कारण विवाह नहीं है। इसका कारण है उनका दारिद्र्य।

आजकल पति पत्नीके 'समान अधिकार' (Equal right) का भी प्रश्न उठ रहा है। निश्चय है कि यह क्रमशः बढ़ेगा। भारतके समाजविज्ञानका आदर्श दूसरा है। उसके मतमें सम्पत्तिका न पृथक् (individual) अधिकार है और न समान अधिकार है किंतु सहाधिकार (joint right) है। दूसरे शब्दोंमें भारतीय समाज कहता है कि स्वतन्त्र स्त्री या स्वतन्त्र स्वामीका अधिकार नहीं है, दोनोंका मिलित अधिकार है। भारतवर्षने मानवके समग्र जीवनको केवल धर्म-साधनामें ही लगाकर चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) सिद्धिकी व्यवस्था की है। इसीसे उसके मतमें गृहस्थजीवन भी धर्मानुष्ठानके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यह धर्मानुष्ठान अकेले पुरुष या अकेली स्त्रीसे कभी नहीं हो सकता। दोनोंको मिलकर इसे करना पड़ता है। इस व्यापक दृष्टिसे, जिन्होंने मीमांसादर्शन पढ़ा है, वे इसे सहज ही समझ सकेंगे।

गृहदेवी

हिंदू-आदर्शके अनुसार स्त्री गृहस्थीकी पुजारिन है। वह घरके तुलसी आदि पवित्र वृक्षोंको जल देती है, होमकी अग्नि सँभाल रखती है, स्नान और पूजा-पाठसे शुद्ध होकर अन्नको भी पवित्र रखती है। उसकी गृहसेवा भक्तिका एक अङ्ग होती है। वह घरसे बाहर केवल तीर्थयात्राके लिये जाती है, परंतु घरके भीतर वह समस्त व्यापारोंका केन्द्र होती है और विभिन्न वय एवं श्रेणीके पुरुषोंसे अलग न रहकर उनकी घरेलू चर्चाओं, क्रियाओं तथा विचारोंपर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती रहती है।

कलाकौशल सीखनेमें भी वह कभी अयोग्य नहीं समझी गयी है। संस्कृत-साहित्यमें अनेक विदुषी महिलाओं तथा स्त्री कवियोंके उदाहरण मिलते हैं। तरुणी स्त्रियोंके लिये ही तो संस्कृतके शिक्षा-विशारद चौंसठ कलाओंकी तालिका बनाते हैं। श्रीशङ्कराचार्यने तो एक विदुषी महिलाके साथ शास्त्रार्थ किया था। सीता, द्रौपदी, सावित्री और दमयन्ती आदि आदर्श महिलाएँ शृङ्गारके अतिरिक्त अन्य कलाओंके द्वारा भी अपने-अपने पतिका प्रेम बनाये रखना जानती थीं और आजकी हिंदूगृहिणियोंकी भाँति ही वे उनकी सच्ची सङ्गिनी थीं।

—[illegible]

---

१. यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम। यदेतद्धृदयं मम तदस्तु हृदयं तव॥ ([illegible])

विश्वजननी नारी-शक्ति

(लेखक—श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय, एम्० ए०)

अशेष वैषम्यमय नियतपरिणामशील विश्वप्रपञ्चके बहिरावरणका भेद करके जिनकी सूक्ष्म दृष्टि इसके प्राणोंके भीतर प्रवेश कर गयी है, जीव-जगत्के बाह्य परिचयसे तृप्त न होकर जिन्होंने इसके अन्तर्निहित सत्यका अनुसन्धान किया है और वह सत्य जिनकी अनुभूतिके समक्ष प्रकट हो गया है, उनके लिये यह विश्व-जगत् ही एक अभिनव स्वरूपमें प्रकाशित हो जाता है। उन्होंने देख पाया है कि एक अद्वितीय महामहिमा-मण्डिता विचित्राभरण-शोभिता सच्चित्-प्रेमानन्दमयी, महाशक्ति इस विश्व-प्रपञ्चके रूपमें—नित्य नवायमान आकृति-प्रकृतिके साथ—अपनेको अभिव्यक्त करके अनादि-अनन्तकालसे अपने ही साथ आप खेल रही है। वे जो कुछ देखते हैं, जो सुनते है, जो स्पर्श करते हैं, जो आस्वादन करते हैं, सभीमें एक विचित्र विलास-निपुणा चैतन्यमयी महाशक्तिका नित्य नया परिचय प्राप्त करते हैं। सभी रूपोंमें वे उस महाशक्तिके ही सौन्दर्यको देखते हैं, समस्त रसोंमें उसीके माधुर्यका आस्वादन करते हैं, समस्त शब्दोंमें उसीकी वाणी सुनते है, समस्त गन्धोंमें उसीकी अङ्ग-गन्ध सूँघते हैं और सभी स्पर्शोंमें उसीके स्नेह-सरस कोमल दिव्य स्पर्शका अनुभव करते हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम, अनन्त वीर्य, अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य, अनन्त आनन्द और शान्तिकी अक्षय, अव्यय, अटूट भण्डार और उद्गम-स्थानरूपा वह अद्वितीय महाशक्ति अपनेको ही इस बहुधा विभक्त जगत्के रूपमें प्रकट करके और अपने ही अङ्गीभूत इस जगत्में विचित्र ज्ञान-प्रेम-वीर्य-ऐश्वर्यका खेल खेलकर अनादि-अनन्तकाल नित्य-नूतनरूपमें आप ही अपना आस्वादन कर रही है—यह सुमहान् दृश्य उनकी दृष्टिके सम्मुख समुज्ज्वलरूपमें प्रकट हो जाता है।

जो इस विचित्र-रस-विलासिनी विश्व-जननी विश्व-रूपिणी महाशक्तिका साक्षात्कार कर चुके हैं, वे जगत्में इतने दुःख-दैन्य, इतने द्वन्द्व-संघर्ष, इतने हिंसा-द्वेष, इतनी अज्ञता-मूढ़ता और इतनी क्षुद्रता-नीचताको देखकर भी विक्षुब्ध या विचलित नहीं होते। इनको वे लोग परमार्थतः सत्य बोध ही नहीं करते। वे देखते हैं कि विश्वजननी महाशक्तिके स्वरूपभूत अनन्त ज्ञान-सम्पत्को विचित्र खण्ड-ज्ञानके रूपमें विलसित करनेके लिये ही विश्वमें ज्ञानकी छाया-के रूपमें अज्ञानका प्रकाश, उसके अनन्त ऐश्वर्यका विचित्र सान्तरूपमें आस्वादन करानेके लिये ही ऐश्वर्यके आवरणरूप दुःख-दैन्यका अवभास होता है। मानव-समाजके समस्त हिंसा-द्वेष-कलह, समस्त अत्याचार-अविचार-निष्पेषण, समस्त संग्राम-हत्याकाण्ड और परस्वापहरणके अंदर भी वे एक अनन्त प्रेमरससागरका ही विचित्र हिल्लोल, विचित्र उत्ताल तरङ्गोंके घात-प्रतिघात देखते हैं। अपने शरीरके प्रति ऐकान्तिक प्रेम ही अन्यान्य शरीरोंके प्रति हिंसा-घृणा-भयादि आकारोंमें प्रकट होता है। अपनी जाति, समाज या सम्प्रदाय-में संकीर्णभावसे निबद्ध प्रेम ही प्रतिद्वन्द्वी अन्यान्य जाति, समाज और सम्प्रदायके प्रति दारुण विद्वेष और क्रोधके रूपमें प्रकट होता है। आत्माके स्वरूपभूत प्रेमकी प्रेरणासे ही जीव अपने प्राणोंतकको उत्सर्ग कर देता है और दूसरेके प्राणोंपर आघात भी करता है। प्रेम जब सकुचित सीमामें विशेष-विशेष रूपोंमें प्रकट होता है, तब हिंसा-द्वेष-घृणा-भय आदि आकारोंमें ही उसकी सीमाका निर्माण होता है। इन सब सीमाओंका अस्तित्व प्रेमके आश्रयपर ही होता है; प्रेम ही इन हिंसा-घृणादिका प्राण है। किसी विशेष क्षेत्रमें प्रेम-का विशेष विकास न हो तो हिंसा-घृणा-भय-कलहादिकी उत्पत्तिके लिये भी कोई कारण नहीं रहे। प्रेम यदि हिंसा-द्वेषादिके द्वारा परिच्छिन्न न होता तो वह अखण्ड निस्तरङ्ग स्व-स्वरूपाभिन्न रसास्वादनके रूपमें ही संसारके ऊपर विराजमान रहता, संसारमें इन विचित्र आकारोंमें प्रेमका विकास नहीं होता।

इस प्रकार तत्त्वदर्शी पुरुष यह उपलब्धि करते हैं कि ज्ञान, प्रेम, ऐश्वर्य, सौन्दर्य-माधुर्य, वीर्य और आनन्द ही वस्तुतः सत्य हैं; अज्ञान, अप्रेम, दैन्य, कदर्यता, दुर्बलता और दुःख परमार्थतः सत्य नहीं हैं। सत्यका वैचित्र्य-सम्पादन करनेके लिये ही असत्यका आविर्भाव होता है; प्रकाशके विचित्र विलासके लिये ही अन्धकार प्रकट होता है; एक अखण्ड सत्ताके बहुत-से सत्य रूपोंमें आत्मपरिचय देने और आत्मास्वादन करनेके लिये ही विभिन्न नाम-रूप-उपाधिका प्रादुर्भाव होता है। नित्य सत्य ज्ञान-प्रेम-वीर्यैश्वर्यमयी चिदानन्द-विलासिनी स्वस्वरूपास्वादिनी महाशक्ति ही अपने स्वरूपभूत अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम, अनन्त वीर्यैश्वर्य, अनन्त

जीवन और अनन्त आनन्दका विचित्र भावोंमें खण्ड-खण्ड रूपसे सम्भोग करनेके लिये ही मिथ्या आवरणकी सृष्टि करके विश्वरूपिणी बन गयी हैं। उन्हींके आत्मास्वादनके लीला-विलासमें ज्ञानका आश्रय करके ज्ञानकी विचित्रताके सम्पादक अज्ञानकी सृष्टि हुई है, आनन्दका आश्रय करके आनन्दके वैचित्र्य-विधायक दुःख-दैन्यादिका प्राकट्य हुआ है, वीर्यका आश्रय करके विचित्र स्तरोंकी दुर्बलता, सौन्दर्यका आश्रय करके नाना प्रकारकी कदर्यता, मङ्गलका आश्रय करके अमङ्गल और प्रेमका आश्रय करके अप्रेम विचित्र आकार-प्रकारसे लीला कर रहा है।

इस संसारमें जन्मके साथ मृत्यु, मिलनके साथ विरह, सृष्टिके साथ ध्वंस, सुखके साथ दुःख, यौवनके साथ जरा, स्वास्थ्यके साथ व्याधि, प्रेमके आत्मदानके साथ हिंसाके बीभत्स हत्याकाण्ड, ज्ञानके सत्यानुसन्धानके साथ मोहका अनृत-सेवन—सभी एक सूत्रमें ग्रथित हैं, एक ही प्राणके द्वारा संजीवित हैं। ये सब मानो परस्पर हाथ-से-हाथ मिलाकर, परस्परको आलिङ्गन करके कालकी तरङ्गोंमें नाचते हुए चल रहे हैं। कितने नवीन साम्राज्योंका निर्माण होता है, कितने सुप्रतिष्ठित साम्राज्य देखते-ही-देखते श्मशानमें परिणत हो जाते हैं। कितने असुर-दैत्य-दानव साधना-तपस्याके द्वारा अपरिमित ऐश्वर्य प्राप्त करके, बहुविध-जागतिक ज्ञान-विज्ञानको हस्तगत करके स्वर्ग-मर्त्य-पातालके ऊपर—जल-स्थल-आकाशके ऊपर—एकाधिपत्यका विस्तार करते हैं, फिर दूसरे ही क्षण अप्रत्याशितरूपसे समस्त सम्पदा-से वञ्चित होकर नितान्त निःसहाय क्षुद्रातिक्षुद्र दुर्बल कीटकी तरह प्राण-त्याग करते हैं। इस जगत्‌में कहीं प्रलयकी अग्नि अपनी सर्वग्रासी लंबी जिह्वाको लपलपाती हुई भीषण आकार-में प्रज्वलित है; कहीं ध्वंसके विकट चीत्कारसे आकाश-वायु, जल-स्थल प्रकम्पित हो रहे हैं; कहीं आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ज्वाला-यन्त्रणाओंका हृदयभेदी आर्तनाद हो रहा है; एवं कहीं प्रभुत्व-प्रतिष्ठाका उल्लास, भोगप्राचुर्य-का आनन्द-कोलाहल और विलास-व्यसनका उद्दाम नृत्य चल रहा है। यह वैचित्र्य ही संसार है।

भारतीय साधकोंने इस विश्व-प्रकृतिकी—विश्व-जननी-विश्वरूपिणी महाशक्तिकी अशेष सौन्दर्यमयी नारीके रूपमें और परम कल्याणमयी जननीके रूपमें उपलब्धि की है। पुरुषकेन्द्रिक मानव-समाजमें नारी साधारणत दुर्बलता, कोमलता, स्नेह-ममता पुरुषसेवा-परायणताकी प्रतिमा एव पुरुषकी संभोग्यारूपसे ही परिचित है। परंतु भारतीय मनीषियोंने नारीको इस दृष्टिसे नहीं देखा है। नारीकी कोमलता और मधुरतामें उन्होंने महाशक्तिका प्रकाश देखा है। नारीको उन्होंने शक्तिस्वरूपिणी बताया है। वीर्य और ऐश्वर्यका सौन्दर्य और माधुर्यरूपमें प्रकाश ही नारीत्व है। नारीके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें सौन्दर्य और माधुर्य, कोमल और शान्त गुण-समूह लीला कर रहे हैं, स्नेह और ममता तथा प्रेम और सेवाके द्वारा बाहर उसके प्राणोंकी झाँकी हो रही है; परंतु उसके भीतर अटूट वीर्य और अनन्त शक्ति भरी है। अन्तरमें अनन्त शक्तिका आधार है; इसीसे तो नारी पुरुषको गर्भमें धारण करती है, महान् वीर्य-सम्पन्न पुरुषोंको जन्म देती है। नारी पुरुषकी जननी है, पौरुषकी जननी है। सुप्रशान्त, सुकमनीय, सर्वरसधन, लीलायितगति नारीशक्तिसे ही विश्व-की समस्त शक्तियोंका जन्म होता है, समस्त खण्डशक्तियों-का उद्भव होता है; फिर जब प्रत्येक खण्डशक्ति नारीशक्तिमें उन्नीत होती है—प्रेम, माधुर्य और सौन्दर्यसे सुशोभित होती है—तभी उसकी पूर्णता सुसम्पन्न होती है। वीर्य, ऐश्वर्य, विक्रम, तेज जब निर्द्वन्द्व, निर्भीक और सहज भावमें रहते हैं, जब उनमें कोई चञ्चलता, रूक्षता, तीक्ष्णता और कदर्यता नहीं रहती; जब वे अपनी प्रतिद्वन्द्विनी शक्तियोंके प्रति हिंसात्मक संग्राममें नियुक्त होकर ज्वालामय नहीं हो जाते, और स्वच्छन्द रूपसे अपनेको प्रकट कर सकते हैं, तभी वे सौन्दर्य-माधुर्य-मण्डित होते हैं और तभी उनमें नारीत्वका विकास होता है।

भारतीय तत्त्वदर्शी साधकोंने विश्व-विधायिनी अनन्त-वैचित्र्यप्रसविनी महाशक्तिका एक ऐसी महानारीके रूपमें साक्षात्कार किया था। उस महानारीमें कर्मशक्ति और ज्ञान-शक्ति, शासनशक्ति और संरक्षणशक्ति, उत्पादिनीशक्ति और संघटिनी शक्ति सभी नित्य परिपूर्णतामें प्रतिष्ठित हैं। अतएव वह प्रेम, सौन्दर्य, माधुर्य और आनन्दसे मण्डित होकर प्रकट है। कर्मक्षेत्रमें उसका [illegible] कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। उसके ज्ञानमें कोई आवरण तथा विक्षेप नहीं है, उसकी सङ्कल्प-सिद्धिमें कोई अन्तराय नहीं है, इसमें उसके [illegible] भेद नहीं है। देवता और असुर सभी उसकी सन्तान हैं मनुष्य, पशु-पक्षी कीट-पतंग—सभीको उसने जन्म दिया है। सबकी नव प्रकारकी शक्तियोंमें उन्हींकी शक्ति [illegible] रूपसे लीला कर रही है। अतएव शान्ति और [illegible] प्रेम और कोमलता, धीरता और स्थिरता एवं सौन्दर्य और माधुर्य उनके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गमें नित्य विराजित रहते हैं।

इसीलिये उसकी रमणीय रमणी-मूर्ति है। विश्व-जगत्‌में पाशवशक्ति, आसुरशक्ति और राक्षस-शक्तियोंका भयावह ताण्डव-नृत्य और सामयिक प्रादुर्भाव देखकर भी सर्वशक्ति-जननी सर्वशक्ति-नियन्त्री महानारीके प्रति भारत-संतानने अपनी आस्था नहीं खोयी है; विश्वविधानके मूलमें जो एक कल्याणमयी नारीशक्ति लीला कर रही है—प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य और कल्याण ही उसका स्वरूप है,—इस सत्यको वह भूला नहीं है। विभिन्न समयोंमें नाना प्रकारसे उपद्रवग्रस्त होनेपर भी उसने महाशक्तिकी उस परम कल्याणमयी जननीमूर्तिकी ओर अपनी दृष्टिको स्थिर रक्खा है, विश्वासको अटूट बनाये रक्खा है। उसके इस जगत्‌में परिणाममें नारीशक्तिकी ही विजय होगी—प्रेम, अहिंसा, सेवा, चरित्र-बल, प्राणोंके कोमल भाव, व्यवहारके सौन्दर्य-माधुर्य ही परिणाममें विरोधी समस्त शक्तियोंपर विजय प्राप्त करेंगे—इस विश्वासको उसने कभी हटाया नहीं है। इस विश्वासने ही भारतको अमरत्व प्रदान किया है—अमृतत्वका अधिकारी बनाया है।

नारी-तत्त्व

(लेखक—श्रीक्षेत्रलाल साहा, एम्० ए०)

पुराणोंमें हमें नारी-जीवनके निगूढ सत्यसमूहकी प्रतिष्ठा-भूमि चिरन्तन चित्रवत् उज्ज्वल वर्णोंसे अंकित देखनेको मिलती है। पुराणों, वेदों और उपनिषदोंमें अनित्य पार्थिव जीवनकी नित्य रूपरश्मि-रेखा विभासित हो रही है। पहले दो नहीं थे। था एक। एकमेव। अद्वितीय परम पुरुष। किंतु अकेलेमें सुख नहीं है। सुख नहीं है यानी जीवन ही नहीं है। 'स वै नैव रेमे। एकाकी न रमते।' 'स द्वितीयमैच्छत्।' वे आद्य परमपुरुष अकेले होनेपर भी अकेले नहीं थे। अन्तरमें युगल थे। 'यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ।' मिलित देव-देवी नर-नारीरूप भावतः दो थे। शीघ्र ही वस्तुतः दो हो गये। 'स आत्मानं द्वेधा पातयत्। पतिश्च पत्नी चाभवताम्।' यह बृहदारण्यक उपनिषद् (४।३) का प्रसङ्ग है, सृष्टिके प्रारम्भका प्रसङ्ग है। पुरुष-प्रकृति और शिव-दुर्गाका प्रसङ्ग है। अर्धनारीश्वर मूर्ति इसी तत्त्वका मूर्तभाव-विशेष है। श्रीराधाकृष्ण पृथक् तत्त्व है। सृष्टि-प्रवृत्तिके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। श्रीकृष्ण मायातीत पुरुष हैं। शिव मायावलम्बी हैं, मायाश्रित हैं। 'मायिनं तु महेश्वरं विद्धि।' तत्त्व सृष्टिके बाद, ब्रह्माकी सृष्टिके बाद, अर्थात् ब्रह्माने उत्पन्न होकर जब विश्वका प्रवर्तन किया, तब कुमार और रुद्रादिकी सृष्टिके अनन्तर प्रजापतिवर्गकी सृष्टि हुई। तत्पश्चात् एक अपूर्व घटना हुई। सृष्टिकर्ताके तपोमय ज्ञानमय शरीरसे एक दिव्य नर-नारीका जोड़ा निकला। पुरुष स्वायम्भुव मनु थे और नारी विश्वमानवकी माता शतरूपा थीं। (भागवत ३।१२)

नर और नारी एक ही तत्त्वकी दो प्रकारकी मूर्तियाँ हैं। दो होकर वह रूप, भाव, शक्ति और सामर्थ्यमें विभिन्न हो गया है। अभिन्न होकर भी विभिन्न है। अचिन्त्य भेदाभेद-भाव है। श्वेताश्वतर-उपनिषद्‌में कहा है—आत्मामें स्त्री-पुरुषका भेद नहीं है—'नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः। यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स लक्ष्यते।' कर्मानुसार देहधारण हुआ और देहानुसार स्त्री-पुरुषका भेद हो गया है। नर-नारी तत्त्वतः और वस्तुतः एक हैं। संसारके कर्मक्षेत्रमें कर्मप्रेरणा एवं पृथक्-पृथक् सुख-दुःखादि कामनाके अनुसार जीवात्माका लिङ्गभेद होता है। नर-नारी जब कामना और कर्मके निःशेष हो जानेपर जन्म-मृत्युका अतिक्रम करके अमृत जीवनमें प्रवेश करते हैं, तब वहाँ भी यह लिङ्गभेद और रूपभेद नहीं मिटता। 'सृष्टिके आरम्भमें रमणीका प्रादुर्भाव हुआ, इसके पूर्व रमणी नहीं थी।' यह भावना सत्य नहीं है। कारण, सृष्टि अनादि और अनन्त है। अतएव रमणी भी सनातन है। प्रलयकालमें सब कुछ अन्तर्हित हो जाता है और फिर जीवन-प्रभातमें सब कुछ प्रकाशित हो जाता है—'प्रभवन्त्यहरागमे।' गीतामें एक गुरुतर और गूढतर बात कही गयी है। भगवान्‌ने कहा है—

> अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
> जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
>
> (७।५)

यहाँ पुरुष और प्रकृतिका द्वैत नहीं है। केवल प्रकृति ही है। परा और अपरा। जीवमात्र परा प्रकृति है और देह, मन, प्राण, इन्द्रिय, पृथ्वी, जल, तेज आदि सब अपरा प्रकृति है—जड प्रकृति है। चित् प्रकृति ही पुरुष है और वह पुरुष भी प्रकृति ही है। पुरुषरूपा प्रकृति और नारीरूपा प्रकृति। दोनों ही प्रकृति हैं, पुरुष नहीं हैं। पुरुष तो एक ही है। 'द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि

प्रत्ययानुपश्यः' (२।२०) इस पातञ्जलसूत्रमें प्रकृति-पुरुषका निगूढ रहस्य भरा है—महत्तत्त्व नामक बुद्धि जो प्रकृतिका सर्वोत्तम विकास है, उसमें पुरुष प्रतिबिम्बित होता है। बुद्धि पुरुषके द्वारा प्रतिसंविदित होती है। इसीलिये बुद्धि पुरुषाकारा बनती है, बनकर पुरुषका अभिमान ग्रहण करती है, पुरुषभावको प्राप्त होती है। पुरुषसे सम्पूर्ण पृथक् होनेपर भी पुरुष आभासित होकर पुरुष बन जाती है। दार्शनिकोंकी भाषामें इसका नाम 'ग्रहीता पुरुष' है। इस पुरुषभावके भ्रमको मिटाना ही समस्त साधनाओंका मूल उद्देश्य है। पार्थिव पुरुषगण प्रतिनिधि-पुरुष हैं, छाया-पुरुष-मात्र हैं। वस्तुतः प्रकृति हैं, पुरुष नहीं हैं। परंतु नारी भी नहीं हैं, जगत्‌में सत्य तत्त्व नारी है। पुरुष अभिनयकर्ता है। इसीलिये पुंचिह्नका नाम लिङ्ग है। अर्थात् जो रहता नहीं, विलीन हो जाता है—'लय गच्छति।' स्त्री-चिह्नका नाम योनि है अर्थात् कारण या तत्त्व है। नारीमें ही जीवका जीवन-तत्त्व प्रतिष्ठित है। नारी ही जीवनका 'कारण' है।

चण्डीमें जगज्जननी भगवती दुर्गाका ज्योतिर्मय प्रकाश है। विश्वविकाशिनीकी वह विकाशलीला अत्याश्चर्यमयी है। ब्रह्मादि देवता श्रीविष्णुभगवान्‌के पास जाकर महिषासुरके अत्याचारोंकी बात सुनाते हैं। सुनकर भगवान् क्रोध प्रकाश करते हैं। वही दुरन्त क्रोध देखते देखते ही संक्रामक हो उठता है। ब्रह्मादि देवता सभी क्रोधसे जलने लगते हैं। वह ज्वाला—वह तेज दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो जाता है। आकाश महान् प्रभामय बन जाता है। देखते-देखते ही यह भीषण तेजोराशि घनीभूत हो जाती है। दूसरे ही क्षण उस तेजोराशिसे एक दीप्त तेजोमयी नारीमूर्ति आविर्भूत होती है। अब देवताओंके आनन्दकी सीमा नहीं है। उन्होंने विश्वविमोहिनी विश्वजननी दानवदलिनी भगवती दुर्गाको देखा। उन सभीने वसन-भूषण-अस्त्र-शस्त्रादि उपहार देकर भगवतीका अभिनन्दन किया, उसकी अर्चना की। देवीने सम्मानित उच्चस्वरसे निनाद किया। वे बार-बार अट्टहास करने लगीं। अनन्त आकाशमें व्याप्त होकर वह भयानक शब्दतरङ्ग बह चला। महिषासुरने चकित होकर देखा तो उसे दिखलायी दीं—आकाश-पातालको अपनी ज्योतिसे उद्भासित करती हुई आद्याशक्ति सहस्रभुजवती देवी भगवती।

'दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थिताम्।'

अतएव हमलोगोंने देखा—समस्त देवताओंकी समस्त शत्रुविमर्दिनी शक्तियोंका समन्वय। यह समन्वित शक्ति ही 'विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणाम्' भगवती दुर्गा हैं। पुरुष-प्रकृति, नर-नारी, मानव-मानवी और देव-देवियोंका सच्चा संधान हमें इस प्रकार दुर्गासप्तशतीमें मिलता है। इसके अतिरिक्त दुर्गासप्तशतीमें और भी नारी-तत्त्व रहस्य निहित है। हम जानते हैं शिव और उनकी शक्ति दुर्गाको, विष्णु या नारायण और लक्ष्मीको, इन्द्र इन्द्राणीको, ब्रह्मा-ब्रह्माणीको। सबमें पुरुष और रमणी-भाव पृथक्-पृथक् हैं; परंतु चण्डीके ऋषिने एक अपूर्व बात कही है—

> ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
> शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः॥
> यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
> तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ॥
> (८।१२।१४)

मूर्तिमती गायत्री आदि ब्रह्माकी कोई प्रेयसी नहीं, ब्रह्माणी हैं। ब्रह्माका जैसा रूप और वेष-भूषा है, ठीक वैसा ही इनका है; परंतु ये रमणी हैं। जैसे महेश्वर हैं, माहेश्वरी वैसी ही तुषारवर्णा, ललाटपर चन्द्ररेखा धारण किये हुए, दोनों भुजाओंमें विषधर सर्पके कङ्कण धारण किये हुए हैं। कौमारी ठीक कुमारके सदृश है—'कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।' वैष्णवी सर्वथा विष्णुकी ही जीवित प्रतिमा-सी हैं। राधा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि कोई नहीं हैं पर वैष्णवी हैं। फिर इसी तरह वाराही, नारसिंही हैं। फिर ऐन्द्री हैं। इन्द्राणी शची देवी नहीं—सहस्रनयनोज्ज्वला [illegible] हैं। हम ऐसे किसी प्रसङ्गकी कल्पना नहीं कर सकते। परंतु इसमें तो कल्पनाकी अपेक्षा नहीं है। यह सत्य है। [illegible] मात्रमें जीवितरूपसे अनुप्रविष्ट होकर वर्तमान है। प्रत्येक पुरुष ही नारी है और प्रत्येक नारी ही पुरुष है। और जीवनमात्र ही युगलित है। व्यक्तिमात्र ही [illegible] है। हमारी शक्तिरूपिणी रमणी हमारे ही भीतर छिपी है। हमारे देह-मनमें निमग्न है—निविष्ट है। हम उसे पाते नहीं, देखते नहीं; परंतु चाहते हैं। हमारे अन्तरमें उसकी [illegible] है। इसी लालसाके वशमें होकर हम बाह्य जगत्‌में नारीकी खोज करते हैं। जिसको प्राप्त करते हैं, [illegible] नहीं होती। प्रार्थना करते हैं—'पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।' यही बात [illegible] एक रमणीमनोरम पुरुष [illegible]। [illegible] नहीं—देखती नहीं। [illegible] मनोरम नहीं होता। [illegible] इतना दुःख है, इतनी मर्मान्तिक वेदना है। इतनी विरह-[illegible] है।

नर-नारीकी आकाङ्क्षाओंका–कामनाओंका अन्त नहीं है। पर सुवर्ण-मणि-माणिक्य, बहुमूल्य वस्त्राभूषण आदिसे उस आकाङ्क्षाकी तृप्ति नहीं होती। समस्त कामनाओंकी अन्तरतम कामना है—पुरुषके लिये कामिनी और कामिनीके लिये प्रणयवान् पुरुष। किंतु जगत्की कोई भी कामिनी पुरुषकी इस कामिनी-कामनाको परिपूर्ण नहीं कर सकती। अप्सरा, किन्नरी, विद्याधरी-सभी मुग्ध पुरुषचित्तको विदग्ध करके, अन्धकारके गहन-गह्वरमें गिराकर चली जाती हैं। पुराणोंमें इसके अनेक ज्वलन्त उदाहरण हैं। सौभरि, वेदशीर्ष आदि ऋषियों और पुरूरवा, ययाति आदि राजाधिराजोंके जीवनचरित्रमें कामिनी-कामनाकी अनल ज्वाला प्रवाहित है। नारियोंके लिये चिरन्तन उदाहरण है—वाराङ्गना पिङ्गलाका। श्रीमद्भागवत (११।८)में पिङ्गलाकी कथा है और पतञ्जलि मुनिने भी पिङ्गलाकी स्मृतिको योगसूत्रमें मोतीके दानेकी भाँति गूँथ दिया है—'निराशः सुखी पिङ्गलावत्' (४। ११)। कवि रवीन्द्रनाथने एक कवितामें लिखा है—'पागल हइया वने-वने फिरि आपन गन्धे मम कस्तूरी-मृग सम। जाहा चाइ ताहा भूल करे चाइ जाहा पाइ ताहा चाइ ना॥' हम जिस रमणीको ढूँढ़ते हैं, वह तो हमारे ही अंदर हमसे मिली हुई विद्यमान है। उसीके रूप-रस-सौरभसे व्याकुल होकर हम भाग-दौड़ मचा रहे हैं। कस्तूरीमृगकी भाँति हम अपनी ही अन्तःशोभा-सौगन्धसे मुग्ध होकर वन-वन भटक रहे हैं। जिसको ग्रहण करके अपनाना चाहते हैं, वह मनके अनुकूल नहीं होती। इसीसे उसको चाहते नहीं। हमारी वाञ्छिता रमणी तो हमारी ही प्राणमयी, मनोमयी होकर—हमारी ही अन्तरतमा होकर हमारे ही भीतर नित्य विराजित है। हम निर्बोध हैं जो उसे बाहर खोज-खोजकर मर रहे हैं। हम जिस क्षण उसे पहचान पायेंगे, उसी क्षण हमारे प्राण-मन सदाके लिये आनन्द-चिन्मय-रसमें निमग्न हो जायँगे और इसीके साथ सच्चिदानन्द-रसमय अमृत पुरुषके साथ नित्य प्रेम-सम्मिलन सम्पन्न हो जायगा। कविने गाया है—'कौन विरहिणी नारी है, जो मेरे मध्य छिपी रहती।' उस विरहिणीकी, विरह-वेदना मिट जायगी। नित्य रासपूर्णिमाकी अमिय-ज्योत्स्ना विकसित हो जायगी।

इस प्रकार प्रेमसाधनाकी सिद्धिसे मिथ्या पुरुषाभिमान दूर हो जायगा। रागमयी दिव्यरसवैभवा रमणी प्रकट हो जायगी। यही पार्थिव पुरुष जीवनका परम सत्य है। रमणी-जीवनमें तो यह और भी गम्भीरतर सत्यरूपमें प्रतिभासित होता है। रमणी स्वामीके शरीर-मन-प्राण-मन्दिरमें अपने चिराकाङ्क्षित पुरुषकी उपासना करके, अपने गहन-गम्भीर पुष्प-सौरभ-पूर्ण हृदय-कुञ्जमें चिन्मय पुरुषका अनुसंधान करके समस्त भाव-रसोंमें उसीका अनुभव करके, उसकी परम स्पर्श-सुधाका पान करके अमृतमयी होकर, मर्त्य जीवनका अन्त होनेपर नित्यानन्दसौन्दर्यके राज्यमें अपने नित्य सुख-सुधाके साथ मिल जाती है। यही नारी-जीवनकी परम सिद्धि है।

परमार्थतः नारी पुरुषकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। नारी नारीके रूपमें ही अपनी समस्त प्रेमाकाङ्क्षाको पा जाती है, परम पुरुषके साथ नित्य प्रणयालिङ्गन प्राप्त कर सकती है; परंतु पुरुषको इस राग-सम्मिलनका सर्वोत्तम अधिकार प्राप्त करनेके लिये नारीभावसे विभावित होकर नारी बनना पड़ता है। अथवा कुत्सित पौरुष-गर्वका परित्याग करके किसी विशिष्ट प्रेमानुरागका भाव ग्रहण करना पड़ता है। कामिनी-कामनामय पुरुषाभिमान रहते कभी भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती। रमणी-लालसामें ही ज्ञानाच्छादनी और प्रेमावरणी मायाका सबसे अधिक घनीभूत प्रभाव रहता है। रमणी-सङ्गकी तृष्णाके रहते श्रीराधारमणकी—प्रेममय परम पुरुषकी कृपा नहीं प्राप्त हो सकती। भारतीय ऋषि-मुनियोंने नाना प्रकारसे इस सत्यको प्रकाशित किया है। यूरोपमें भी कार्डिनल न्यूमैनने यही बात स्पष्ट कही है। दान्ते, गेटे और शेलीने भी अपने जीवन और काव्योंमें इस निर्मलोज्ज्वल सत्यको नाना प्रकारसे प्रमाणित किया है। बाइबलका सोलामेन गीत इसी सत्यपर प्रतिष्ठित है। नारी-तत्त्व अत्यन्त गम्भीर रहस्यमय है। यहाँ संक्षेपमें शास्त्रालोकसे उसीका कुछ आभास दिया गया है। इसका श्रवण, मनन और निदिध्यासनके द्वारा हृदयके भीतर अनुभव करना चाहिये।

माता परम पूजनीय

जनको जन्मदातृत्वात् पालनाच्च पिता स्मृतः। गरीयान् जन्मदातुश्च योऽन्नदाता पिता मुने॥
तयोः शतगुणा माता पूज्या मान्या च वन्दिता। गर्भधारणपोषाभ्यां सा च ताभ्यां गरीयसी॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण गणेश० ४० अध्याय)

जन्मदाता और पालनकर्ता होनेके कारण सब पूज्योंमें पूज्यतम जनक और पिता कहलाता है। जन्मदातासे भी अन्नदाता पिता श्रेष्ठ है। इनसे भी सौगुनी श्रेष्ठ और वन्दनीय माता है, क्योंकि वह गर्भधारण तथा पोषण करती है।

नारीत्वका आदर्श—प्राच्य और प्रतीच्य

(लेखक—श्रीयुत वसन्तकुमार चटर्जी, एम्० ए०)

नारीत्वके भारतीय आदर्श और पाश्चात्त्य आदर्शकी तुलना करनेका आधार हमें दो बड़े-बड़े महाकाव्योंसे मिलता है। एक है वाल्मीकीय रामायण और दूसरा होमरका इलियड (Iliad) । इन दोनों महाकाव्योंकी कथावस्तुमें अद्भुत साम्य है । जैसे रामकी पत्नी सीताको रावण हर ले जाता है, उसी प्रकार मेनेलासकी स्त्री हेलेनका भी पेरिसद्वारा अपहरण होता है । जैसे राम रावणको युद्धमें परास्त करके श्रीसीताका उद्धार करते हैं, उसी तरह मेनेलास भी पेरिसको युद्धमें परास्त करके हेलेनका उद्धार करता है । दोनों कथावस्तुओंके बीच इतनी समता होते हुए भी वाल्मीकि और होमरद्वारा प्रदर्शित स्त्रीत्वके आदर्शमें आकाश-पातालका अन्तर है । पेरिसद्वारा अपहृत होनेके बाद हेलेन उसकी पत्नी बनकर रहती है । जब मेनेलास उसे छुड़ाकर लाता है, तब फिर वह पूर्ववत् मेनेलासकी भार्या हो जाती है । महाकवि होमरकी कल्पनामें ही यह बात नहीं आ सकी कि स्त्रीके लिये पतिभक्तिका भी कोई आदर्श हो सकता है । सच पूछा जाय तो 'पतिव्रता' और 'पातिव्रत्य' शब्दोंसे जो अर्थ ग्रहण होता है, उसको द्योतित करने योग्य पाश्चात्त्य भाषाओंमें कोई शब्द ही नहीं है । यह गवेषणा तो हमारे भारतीय ऋषियोंकी ही है कि स्त्रीके लिये सर्वोच्च आदर्श पतिभक्तिका है । उसके लिये अन्य धार्मिक विधि-विधानोंके पालनकी आवश्यकता नहीं, उसके लिये विद्या प्राप्त करना अथवा ललित कलाओंमें निपुण होना भी आवश्यक नहीं है । यदि वह पतिके प्रति अनन्य भक्ति प्राप्त कर सकती है तो उसका जीवन सफल हो जायगा और वह पूर्णताको प्राप्त हो जायगी । पुत्रका सबसे बड़ा धर्म पितृभक्ति है । इस गुणसे उसे ऐहिक सुख तो प्राप्त होगा ही, उसकी आध्यात्मिक उन्नति भी होगी । शिष्यका सबसे बड़ा धर्म गुरुभक्ति है। उसके लिये ज्ञान प्राप्त करनेका वही सर्वोत्तम साधन है । इसी प्रकार नारीका सबसे बड़ा धर्म पतिभक्ति है । इसके द्वारा उसे इस जीवनमें तथा मरणोत्तर-जीवनमें भी सुखकी प्राप्ति होगी ।

इस प्रश्नपर होमरके विचारानुसार भारतेतर देशोंमें इसी विचारका प्रचार है—स्त्री केवल भोगकी सामग्री है; और चूँकि वह शरीरसे अबला है, इसलिये जो कोई भी उसपर अधिकार कर ले उसीके हाथोंमें उसे आत्मसमर्पण कर देना होगा । उसकी अपनी इच्छा या कर्तव्यभावनाका प्रश्न ऐसा है कि जिसके उठनेकी कोई गुंजाइश ही नहीं । स्त्री-जातिके प्रति हिंदू-शास्त्रोंके विचार इससे नितान्त भिन्न हैं । मनु कहते हैं—'सन्तानको जन्म देनेवाली होनेके कारण स्त्रियाँ बड़ी भाग्यशालिनी हैं, वे घरकी दीप्ति हैं । वस्त्राभूषणोंसे उनका आदर करते रहना चाहिये । स्त्री और श्रीमें कोई भेद नहीं है[1] ।' वे फिर कहते हैं—'प्रचुर कल्याण चाहनेवाले पिता, भ्राता, पति तथा देवरोंको चाहिये कि वस्त्राभूषणोंद्वारा स्त्रियोंको अलङ्कृत करें ।' 'जिस कुलमें स्त्रियोंका सत्कार किया जाता है, उस कुलपर देवता प्रसन्न होते हैं; और जहाँ स्त्रियोंका सत्कार नहीं होता, वहाँके सब धर्म-कर्म निष्फल हो जाते हैं ।' 'जिस कुलमें स्त्रियाँ शोकमें रहती हैं, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है; जहाँ वे शोकको नहीं प्राप्त होतीं, वह कुल सदा फलता-फूलता है ।' (मनुस्मृति ३।५५-५७) नीत्शेने ठीक ही कहा है, 'मनुस्मृतिको छोड़कर मेरे देखनेमें ऐसी कोई दूसरी पुस्तक नहीं आयी, जिसमें स्त्रियोंके प्रति इतने अधिक सम्मानपूर्ण और दयापूर्ण उद्गार हों । इन प्राचीन श्वेत जटाधारी ऋषियों-मुनियोंका स्त्रियोंके प्रति सम्मानका कुछ ऐसा ढंग है कि उसका कदाचित् अतिक्रमण नहीं हो सकता[2] ।'

कभी-कभी यह कहा जाता है कि भगवान् श्रीरामके आदर्श-पुरुष होनेके कारण ही श्रीसीताकी उनके प्रति ऐसी भक्ति थी और यदि पति चरित्रवान् नहीं है तो उसके प्रति पत्नीकी मन्द-भक्ति क्षम्य है । पर ऐसे तर्कसे वैदिक आदर्शका अज्ञान ही झलकता है । वाल्मीकीय रामायणमें हम देखते हैं कि जब दण्डकारण्यमें भगवान् श्रीराम, श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मण अत्रि मुनिके अतिथि हुए थे, तब अत्रिपत्नी अनसूयाने श्रीसीताजीसे कहा था, 'सीते ! तुमने यह बड़ा सुन्दर किया

---

१. प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥
(मनु० ९ । २६)

2. "I know of no book in which so many delicate and kindly things are said of the woman as in the law-book of Manu; these old greybeards and saints have a manner of being gallant to woman which perhaps cannot be surpassed". (Anti Christ pp. 214-15)

जो वनमें पतिका साथ देनेके निमित्त राजमहलके भोगोंको लात मार दी; क्योंकि दुष्ट स्वभाववाले, स्वेच्छाचारी, सद्गुणोंसे रहित पतिको भी सती स्त्रियाँ परमेश्वरके ही रूपमें देखती हैं।' बात यही है कि पतिको परमेश्वर मानकर स्त्री पूर्णत्व-लाभ कर सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि पति श्रेष्ठ गुण-सम्पन्न हो, जिसकी सेवासे पत्नी अपना स्वभाव अधिक अच्छा बना सके। पतिसेवासे पत्नीको केवल पारलौकिक कल्याणकी ही प्राप्ति नहीं होती। यदि वह अपनी इच्छाको पतिकी इच्छामें विलीन कर दे तो इस लोकमें भी उसका जीवन अधिक सुखमय बन जाता है। उसकी नतिमें उन्नति है। अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रखनेकी अपेक्षा पतिके अधीन होकर पत्नी पतिको अधिक वशमें कर सकती है। विवाहित जीवनकी सुख-शान्तिके लिये यह आवश्यक है कि एक आज्ञा दे और दूसरा उसे शिरोधार्य करे। पति पत्नीका आदेश माने, इसकी अपेक्षा पत्नीका पतिकी आज्ञा मानना अधिक नैसर्गिक है। ईसाई-मतको माननेवाली जातियोंके विवाहोंमें भी पत्नी ही पतिका आदेश माननेका वचन देती है। पर ईसाईमत इस भावनाको इस सैद्धान्तिक निष्कर्षतक नहीं पहुँचा सका कि पत्नीको पतिकी पूजा करनी चाहिये और यदि पतिकी मृत्यु हो जाय तो पुनर्विवाहकी कल्पना भी नहीं करनी चाहिये। कहनेमें विरोध भले ही दीखे, पर यह निश्चित बात है कि हिंदू-परिवारमें जहाँ स्त्री पतिके नितान्त अधीन रहती है, घरमें शासन उसीका होता है, पतिका नहीं। बँगलाके प्रसिद्ध लेखक बंकिमचन्द्र चटर्जीने लिखा है कि 'हिंदू ऋषियोंकी बुद्धि इस बातको समझनेमें समर्थ हुई कि यद्यपि भगवान् निराकार और निस्सीम हैं, पर उनका यह रूप साधारण मनुष्योंके लिये अवगम्य नहीं। इसलिये एक ऐसे साकार और ससीम रूपकी आवश्यकता हुई, जिसकी पूजा की जा सके। पत्नीके लिये पूजाकी सबसे अधिक स्वभावानुकूल वस्तु उसका पति है। इसीलिये ऋषियोंका यह वचन है कि पत्नीको पतिकी परमेश्वरकी भाँति पूजा करनी चाहिये।'

रामायणके दो श्लोकोंको उद्धृत करके मैं इस लेखकी समाप्त करता हूँ। इसके अन्तका इससे बढ़कर और कोई सुन्दर ढंग हो भी नहीं सकता। ये श्लोक राम-वनवासके समयके श्रीसीताजीके उद्गार हैं—

नातन्त्री विद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा॥

(अयोध्याकाण्ड ३९।२९)

'जैसे विना तारके वीणा व्यर्थ है और विना पहियेके रथ, उसी प्रकार विना पतिके स्त्रीको सुख नहीं मिल सकता, चाहे उसके सौ पुत्र क्यों न हों।'

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥

(अयोध्याकाण्ड ३९।३०)

'पिता, भाई और पुत्रका दान परिमित होता है। पर पति स्त्रीके लिये अमित-दानी है। उसकी पूजा कौन नहीं करेगी?

आदर्श विवाह-पद्धति

विवाहकी कौन विधिसे समाजमें सामञ्जस्य और स्थायी व्यवस्था रह सकती है—हिंदूजातिने इसीका पता लगानेका प्रयत्न किया। जिस प्रकार यूरोपके राजपरिवार राज्यके विचारसे ही विवाह-सम्बन्ध करते थे और जिस प्रकार संतानोत्पत्तिशास्त्र मानवजातिकी प्रगतिके लिये व्यक्तिगत भावनाके त्यागका उपदेश देता है, उसी प्रकार हिंदूजातिमें भी समाजहितके लिये, जीवनके प्रलोभनोंसे बचनेकी दृष्टिसे विवाहकी व्यवस्था की गयी है। हिंदुओंकी वैवाहिक विधिका यही अभिप्राय है। मानवजातिकी उन्नतिके लिये ही हिंदूशास्त्र माताको गृहस्थाश्रममें स्वेच्छासे तपस्विनीका जीवन विताने और अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियोंको बुद्धि एवं आत्माके कठोर नियन्त्रणमें रखनेकी शिक्षा देते हैं। स्त्रीजातिके साथ प्रकृतिने जो कठोरता की है, उसे चुपचाप सहन करनेमें कुछ स्त्रियाँ अपनी तौहीन समझती हैं; परंतु इस हीनताके बोधसे बचनेका उपाय मातृभावका परित्याग नहीं बल्कि उसे एक निःस्वार्थपूर्ण आदर्शका अनुगामी बना देना है।

—जे० टिसल डेविस

मातृ-महिमा

(लेखक—प० श्रीजौहरीलालजी शर्मा महामहोपाध्याय)

मात्रा भवतु संमनाः (अथर्ववेद ३ । ३० । २)

इस लेखका शीर्षक समस्त पद है, जिसका अर्थ है, 'उदरमें गर्भ वा शरीरीको धारण करनेवाली पूजनीया माताकी पूज्यता वा महत्ता', जैसा कि इसके निर्वचनसे* सिद्ध है। माता-शब्द अत्यन्त प्रिय और बहुव्यापक है एवं जननी, जनित्री, जनयित्री, प्रसू—ये माताके पर्याय हैं।

माताकी महिमाके विषयमें श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहासमें एवं नीतिग्रन्थोंमें बहुत कुछ लिखा मिलता है। भगवती श्रुति उपदेश देती है—

मातृदेवो भव। (तैत्तिरीय० १ । ११)

अर्थात् हे मनुष्य! इष्टदेव समझकर माताकी सेवा कर। स्मृतिका वचन है—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

अर्थात् 'एक आचार्य गौरवमें दस उपाध्यायोंसे बढ़कर है। एक पिता सौ आचार्योंसे उत्तम है एवं एक माता एक सहस्र पिताओंसे श्रेष्ठ है।' सन्तानको नौ-दस महीने गर्भमें धारण करने एवं विविध कष्ट सहकर भी उसका पालन-पोषण करनेके कारण माताकी पदवी सबसे ऊँची है—

गर्भधारणपोषाभ्यां ततो माता गरीयसी।

माताके विरुद्ध आचरण सन्तानको किसी भी दशामें नहीं करना चाहिये। पुत्रोंके लिये माता परम पूजनीय है। माताके होते हुए उनको किसी दूसरे देवताकी पूजाकी आवश्यकता नहीं है। जैसा कि शास्त्रका अनुशासन है—

मातृतोऽन्यो न देवोऽस्ति तस्मात्पूज्या सदा सुतैः।

इस वचनसे इन्द्रादि देवताओंकी सत्ताका खण्डन अभिप्रेत नहीं है। मातामें देववत् पूज्यबुद्धि रखना ही पुत्रका कर्तव्य है और इसीको शास्त्र सिखाता है। धर्मशास्त्रियोंका कथन है—

मातुश्च यद्धितं किंचित्कुरुते भक्तितः पुमान्।
तद्धर्मं हि विजानीयादेवं धर्मविदो विदुः॥

अर्थात् माताकी भलाईके लिये पुरुष भक्तिपूर्वक जो कुछ भी कार्य करता है, वही उसके लिये धर्म है। गृहस्थ व्यक्तिकी बड़ी तपस्या इसीमें है कि वह माताकी सेवा उसको जगन्माता आद्याशक्ति समझकर और पिताकी शुश्रूषा परात्पर ब्रह्म मानकर करे; क्योंकि माता-पिताकी प्रसन्नता ही सब धर्मोंका मूल है—

त्वमाद्ये जगतां माता पिता ब्रह्म परात्परम्।
युवयोः प्रीणनं यस्मात्तस्मात्किं गृहिणां तपः॥

नीतिकारोंका मत है—

मातृष्वसा मातुलानी पितृव्यस्त्री पितृष्वसा।
श्वश्रूः पूर्वजपत्नी च मातृतुल्याः प्रकीर्तिताः॥

अर्थात् 'मौसी, मामी, चाची-ताई, फूआ, सास और भाभी—ये सब माताके समान हैं।' हरि मनुका उपदेश है—

पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी॥

अर्थात् 'पुरुषको चाहिये कि वह बूआ, मौसी और बड़ी बहिनके साथ माताका-सा व्यवहार करे और अपनी सगी माता तो इनसे भी बड़ी है ही।' ब्रह्मवैवर्तपुराणमें अन्य पन्द्रह महिलाओंको माताकी पंक्तिमें बैठाया है। वेदशास्त्र-विहित उन सोलह प्रकारकी माताओंका उल्लेख इस प्रकार है—

स्तन्यदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया।
अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका॥
सगर्भजा च या भगिनी स्वामिपत्नी प्रियाप्रसूः।
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा॥
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च।
जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः॥

अर्थात् 'दूध पिलानेवाली (धाय) गर्भ धारण करनेवाली, भोजन देनेवाली, गुरुपत्नी, इष्टदेवकी पत्नी, सौतेली माँ, सौतेली माकी पुत्री, सगी बड़ी बहिन, स्वामीकी पत्नी, सास, नानी, दादी, सगे बड़े भाईकी पत्नी, मौसी, बूआ और मामी—ये सब मिलाकर सोलह माताएँ हैं।

लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि जब मनुष्यपर कोई संकट पड़ता है, तब वह 'अरी मेरी मैया' कहकर माताका ही स्मरण करता है—'आपदि मातैव शरणम्।' माताके समान शरीरका और कोई पोषक नहीं है—

मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणम्।

इसका कारण यही है कि अहैतुक स्नेह करनेवाली माता ही एक ऐसी है, जिसका प्रेम सन्तानपर जन्मसे लेकर जीवन;

---

*'मा माने', 'माङ् माने' अथवा 'मान पूजायाम्' धातुसे 'नप्तृनेष्टृ' इत्यादि उणादिसूत्रानुसार 'तृ' प्रत्यय लगानेसे 'मातृ' शब्द निष्पन्न होता है। माति गर्भोऽस्यामिति माता। मान्यते पूज्यते जनैरिति वा माता। एवं 'मह पूजायाम्' धातुसे 'अत्' प्रत्यय लगाकर 'महत्' शब्द बनाया जाता है। पुनः भाववाचक 'इमनिच्' प्रत्यय लगानेसे 'महिमा' शब्द सम्पन्न होता है।

बाल्य, यौवन एवं प्रौढावस्थातक एक-सा बना रहता है।

माताका यह प्रेम केवल मनुष्ययोनिमें ही सीमित नहीं है। वह तो पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर आदि अन्य योनियोंमें भी प्रचुर मात्रामें पाया जाता है। चिड़िया और कुक्कुटी अंडे रखकर कुछ दिन उनको सेती हैं और बच्चे निकल आनेपर दाना चुगा-चुगाकर तबतक उनका पालन-पोषण करती हैं, जबतक पर निकल आनेसे उनमें स्वयं उड़ने और दाना-दुनका चुगनेकी शक्ति नहीं आ जाती। कच्छपी दूर रहकर भी अपने अंडोंको भगवत्प्रदत्त अपनी अनुसरण-शक्तिसे ही बच्चे निकलनेतक सेती है। एवं गाय, भैंस, बकरी, कुतिया, बिल्ली आदि भी बच्चे जनकर बाहरी आपत्तियोंसे तबतक उनकी रक्षा करती हैं, जबतक वे माताका दूध छोड़कर घास-भूसा आदि खाद्य पदार्थ खाकर आत्म-निर्भर नहीं हो जाते। वानरी तो स्नेह-पाशमें इतनी बद्ध रहती है कि मृत शावकको भी कई दिनोंतक छातीसे लगाये फिरती है। स्नेहकी प्रबलतामें माता असमर्थ होनेपर भी अपनी सन्तानको विपत्तिसे बचानेके लिये जान जोखिममें डालकर आक्रमणकारीपर प्रत्याक्रमण करनेका शक्तिभर प्रयास करती है, इसमें चाहे वह सफल हो या विफल। मातृप्रेमका एक ज्वलन्त उदाहरण नीचे दिया जाता है—

देवरत्तन नगरमें सगुरी और निगुरी नामकी दो स्त्रियाँ रहती थीं। एक दिनकी बात है कि सगुरीका शिशु पालनेमें लेटा हुआ था। माता पास बैठी काम कर रही थी। इसी अवसरमें निगुरी आकर बच्चेको उठाकर ले गयी। सगुरीने तत्क्षण उसके पास जाकर अपना बच्चा माँगा, किंतु निगुरीने उत्तर दिया कि 'बच्चा तो मेरा है, तेरा कहाँसे आया?' इसपर झगड़ा बढ़ा, यहाँतक कि सगुरीने अपने पुत्रको पानेके लिये नगरके अधिपतिसे निवेदन किया। अधिपतिने वादी-प्रतिवादीको बुलाकर पूछा कि बच्चा किसका है?' उत्तरमें दोनोंने ही अपना-अपना बताया। इससे अधिपति पहले तो कुछ असमञ्जसमें पड़ा; परंतु पीछे कुछ विचारकर उसने अपना मत यों प्रकट किया—'महाभागाओ! हमने तुम्हारा विवाद सुनकर यह निर्णय किया है कि इस बच्चेके बीचसे दो टुकड़े कर दिये जायँ और एक-एक टुकड़ा तुम दोनोंको दे दिया जाय। बोलो, इसमें तुम दोनों सम्मत हो न?' इस निर्णयको सुनकर निगुरी तो कुछ न बोली और चुपचाप खड़ी सुनती रही; पर सगुरी फूट-फूटकर रोने लगी और अधिपतिसे प्रार्थना करती हुई बोली कि 'महोदय! यह बच्चा कृपाकर निगुरीको ही दे दीजिये, यह इसीका है; इसके टुकड़े न कराइये।' सगुरीकी विकलतासे अधिपति तथा अन्य सभ्योंके चित्त द्रवीभूत हो गये और उनको निश्चय हो गया कि बच्चा दयावती सगुरीका ही है, निगुरीका नहीं। इसलिये अधिपतिके आज्ञानुसार बच्चा सगुरीको मिल गया, जिसको पाकर वह प्रसन्न हो अपने घर गयी और निगुरीको उसके झूठ और परधनलोलुपताका फलस्वरूप कारागारवास भोगना पड़ा। सृष्टिके प्रारम्भसे आजतक मातृमण्डलकी महत्ता लोक और वेदमें जागरूक है। स्नेहमयी माताकी सबसे बड़ी अभिलाषा यही रहती है कि मेरा पुत्र चिरायु हो और इसके साथ ही वह नीरोग, विद्वान्, बलवान्, धनी, धार्मिक एवं सर्वगुणसम्पन्न बने।

महारानी शतरूपाने अपने पुत्र-पुत्रियोंको ज्ञान और सदाचारकी ऐसी उत्तम शिक्षा दी थी कि उसके प्रभावसे वे अपने जीवनमें सदा यशस्वी और परोपकारी बनकर मोक्षके अधिकारी हुए। माता सती देवहूतिने आदिविद्वान् कपिलको जन्म दिया, जिन्होंने सांख्यदर्शनका प्रणयन कर संसारको कैवल्यका मार्ग सुझाया। माता अरुन्धती जगत्की ललनाओंके लिये पातिव्रत-धर्मका उपदेश देकर अमर हो गयी हैं। आज भी विवाहके समय उनका स्मरण किया जाता है—जब कि पुरोहित कन्यासे कहता है कि 'हे कन्ये! वसिष्ठपत्नी देवी अरुन्धतीका दर्शन कर, जो अपने पातिव्रत्यके माहात्म्यसे सब कुछ कर सकती हैं। इनके दर्शनसे तू साध्वी बन।' ऋग्वेदके दशम मण्डलके उनतालीस और चालीस संख्यावाले सूक्तोंकी द्रष्ट्री साध्वी घोषाने स्त्री-जगत्के निमित्त अश्विनीकुमारोंसे दया, दाक्षिण्य, धन, धान्य, विद्या, बुद्धि, आरोग्य आदि गुणोंसे युक्त पतिको प्रदान करनेकी प्रार्थना की है। इसी मण्डलके पचासी संख्यावाले सूक्तकी ऋषिका सूर्याने स्त्रियोंके सौभाग्यवती रहनेकी अभ्यर्थना श्रीभगवान्से की है और उनको आशीर्वादसहित उपदेश दिया है। यथा—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु॥

अर्थात् हे वधू! तू ससुरालमें जाकर अपने सदाचरण और सबके साथ अच्छे बर्तावसे सास, ससुर, ननद (देवरानी और जेठानियों) के ऊपर आधिपत्य जमाकर सबकी महारानी होकर रह।

तेजस्विनी विदुलाने तेजोहीन और भीरु संजय नामक अपने पुत्रको ओजस्वी भाषणद्वारा उत्साहपूर्ण उपदेश दे उसके कातर हृदयमें साहसका संचार कर दिया था, जिससे प्रभावित होकर संजय रणक्षेत्रमें गया और पराक्रमपूर्वक उत्साहके साथ युद्ध

करके अपने पूर्व विजेता सिन्धुराजको पराजित कर विजयी होकर घर लौटा और फिर उसने धन्यवादके साथ अपनी माताके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

माता कुन्तीने पाण्डवोंको धर्मपर दृढ़ रहते हुए क्षात्रधर्म और प्रजापालन करनेका उपदेश और आशीर्वाद दिया था, जिसके अनुसार चलकर वे सर्वथा कृतकार्य रहे। धर्मप्राणा गान्धारीने अपने दुराग्रही पुत्र सुयोधनको असन्मार्गसे हटाकर सन्मार्गपर लानेके लिये सामदानद्वारा राजनीति और धर्मनीतिके उत्तमोत्तम उपदेश दिये थे। माता कौशल्याको मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामकी जननी कहलानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वन जाते समय भाविवियोगजनित दुःखसे व्याकुल होकर भी आगा-पीछा सोचकर एवं धर्मका विचार कर पुत्रको वन जानेकी आज्ञा देकर उन्होंने यह आशीर्वाद दिया था—

न शक्यते वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम।
शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे॥
यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥

अर्थात् 'हे पुत्र! मैं तुझे किसी प्रकार रोक नहीं सकती; अब तो तू वनको जा; पर जल्दी लौटकर आना (अर्थात् चौदह वर्षसे अधिक मत ठहरना) और सत्पुरुषोंके मार्गपर चलना। प्रेम और नियमके साथ तू जिस धर्मके पालनमें प्रवृत्त हुआ है, वही धर्म तेरी रक्षा करेगा।' माता कैकेयी और सुमित्राने क्रमशः भरत और लक्ष्मण-शत्रुघ्न-जैसे पुत्रोंको जन्म दिया, जिन्होंने धीरता, वीरता, भ्रातृप्रेम और भगवद्भक्तिका जीता-जागता आदर्श स्थापितकर संसारका महान् उपकार किया है। प्रातःस्मरणीया माता देवकीने षोडशकलावतार उन भगवान् श्रीकृष्णको जन्म दिया था, जिन्होंने भगवद्गीताके सदुपदेश एवं पावन चरित्रोंसे भक्तको भवसागरसे पार उतरनेका मार्ग दिखाया। इस प्रकार अन्यान्य अनेक स्नेहमयी योग्य माताओंके नाम दिये जा सकते हैं, परन्तु विस्तार-भयसे इतना ही पर्याप्त समझा जा रहा है। इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, व्यास, वशिष्ठ, भारद्वाज, नारद, पराशर, भीष्म, शंकराचार्य आदि अनेक मातृसेवक महापुरुषोंके नामोंका निर्देश किया जा सकता है, जिन्होंने अपने जन्मसे जननी और जन्मभूमिके नामकी उन्नत धवल ध्वजा फहरायी, देशको परमोन्नतिके शिखरपर आरूढ रक्खा और अभ्युदय तथा निःश्रेयसके आनन्दका अनुभव कराया। धन्य हैं वे सज्जन, जो अहैतुक स्नेह करनेवाली परम सुहृद् माताकी सेवा कर महर्षि सुमन्तुके वचनानुसार इस लोक और परलोकमें सुखके भागी होते हैं—

आयुः पुमान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुण्यं बलं श्रियम्।
पशुं सुखं धनं धान्यं प्राप्नुयान्मातृवन्दनात्॥

अर्थात् 'माताकी सेवा करनेवाला सत्पुरुष दीर्घायु, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुण्य, बल, लक्ष्मी, पशु, सुख, धन, धान्य—सब कुछ प्राप्त कर सकता है।' इसके विपरीत हतभाग्य हैं वे लोग, जो सर्वसुखसम्पादयित्री हितैषिणी माताके विरुद्ध रहते हैं! ऐसोंके लिये शास्त्रकी यह भर्त्सना है—

धिगस्तु जन्म तेषां वै कृतघ्नानां च पापिनाम्।
ये सर्वसौख्यदां देवीं स्वोपास्यां न भजन्ति वै॥

अर्थात् 'धिक्कार है उन कृतघ्न, गुनमेटे, पापी दुर्जनोंको जो सर्वसौख्यदा माताकी सेवा-शुश्रूषा नहीं करते।' जगतीतलमें उनका जन्म लेना वृथा है, जो इस कहावतकी कोटिमें आते हैं कि 'जियत मातु सो दंगमदंगा, मरी मातु पहुँचावैं गंगा'।

भारतवर्ष सदासे मातृवर्गका सेवक रहा है। मातृवर्गका ही क्यों—स्त्रीमात्रका, नारीजातिका सेवक रहा है। इसीसे कार्य-व्यवहारमें भी पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका सम्मान अधिक होता आया है। वाग्व्यवहारमें भी पहले स्त्रीका नाम आता है, पीछे पुरुषका—जैसे सीता-राम, लक्ष्मी-नारायण, गौरी-शंकर, वागी-हिरण्यगर्भ, शची-पुरन्दर, माता-पिता आदि। साधारण जनतामें एक वाग्धारा प्रचलित है—

नारी-निंदा मत करो, नारी नर की खान।
नारी से पैदा हुए तुलसी सूर सुजान॥

जाति, व्यक्ति, समाज और देशका सौभाग्य सच्ची हितैषिणी माताके ही ऊपर निर्भर है। उपर्युक्त पंक्तियोंसे यही निष्कर्ष निकलता है कि माताका पद सबसे ऊँचा है, इसलिये सभी स्त्री-पुरुषोंका मुख्य कर्तव्य है कि वे परमधर्म समझकर माताकी सेवा-शुश्रूषा अवश्य करें-करावें—जिससे इस लोकमें यश और परलोकमें सुख प्राप्त हो। माताका स्थान वस्तुतः स्वर्गसे भी ऊँचा है—

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

[२]

प्राकृत मानवी माताके समान देवमाता भी पूजनीय हैं। परब्रह्मरूपिणी जगज्जननी श्रीदुर्गादेवी ही विश्वकी कल्याणकारी अम्बा हैं—

प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।

ये ही जगदम्बा समस्त प्राणियोंमें मातृरूपसे अवस्थित

हैं और मानव तो क्या, देवता भी बार-बार उनका नमन करते हैं—

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

वे जगदम्बा एक हैं, पर भक्तानुग्रह-विग्रहरूपमें अनेक रूपोंको धारण करती हैं। वे ही नारायणीरूपमें श्री और लक्ष्मी हैं—

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च' (यजुर्वेद)

भक्तोंको शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक विद्या-बुद्धि एवं आर्थिक सम्पत्ति प्रदान करनेके निमित्त वे महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती—इन तीन रूपोंको धारण करती हैं। गृहप्रतिष्ठा, विवाह आदि अवसरोंपर भक्तजन—

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः॥

—इस श्लोकद्वारा प्रतिपादित सात माताओंकी पूजा करते हैं। इन्हींमें चर्चिका माताको सम्मिलित कर देनेसे उक्त माताएँ आठ हो जाती हैं—

ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वाराही वैष्णवी तथा।
कौमारी चैव चामुण्डा चर्चिकेत्यष्ट मातरः॥

कहीं एक नारसिंही और बढ़ाकर नौ माताएँ मानी गयी हैं। *

बालकके जन्मसे छठे दिन षष्ठी देवी और कुमारी, धनदा, नन्दा, विपुला, मंगला, अचला और पद्मा—इन द्वारमातृकाओंका पूजन किया जाता है। ये सब माताएँ नवजात शिशुको आयु, आरोग्य, पुष्टि, तुष्टि और सम्पत्तिका आशीर्वाद देती हैं। ज्योतिर्वेत्ताओंकी माननीय आठ योगिनियाँ इस प्रकार हैं—

मङ्गला पिङ्गला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा।
उल्का सिद्धिः संकटा च योगिन्यष्टौ प्रकीर्तिताः॥

यथा नाम तथा गुणवाली ये माताएँ अपनी-अपनी दशामें मानवको हानि-लाभ, सुख-दुःख पहुँचाती हैं। इनके अतिरिक्त ज्योतिषियोंका माननीय एक योगिनीचक्र यहाँ दिया जाता है—

दिशा	तिथि	योगिनी-नाम
पूर्व	प्रतिपदा और नवमी	ब्रह्माणी
उत्तर	द्वितीया ,, दशमी	माहेश्वरी
अग्निकोण	तृतीया ,, एकादशी	कौमारी
निर्ऋतिकोण	चतुर्थी ,, द्वादशी	नारायणी
दक्षिण	पञ्चमी ,, त्रयोदशी	वाराही
पश्चिम	षष्ठी	इन्द्राणी
वायुकोण	सप्तमी ,, अमावास्या	चामुण्डा
ईशानकोण	अष्टमी	महालक्ष्मी

—यह चक्र यात्राके समय उपयोगमें आता है। इसके अनुसार यात्रा करनेसे यात्रीको सुख-दुःखकी प्राप्ति होती है—

वामे शुभप्रदा पृष्ठे वाञ्छितार्थप्रदायिनी।
दक्षिणे धनहन्त्री च सम्मुखे मृत्युदायिनी॥

अर्थात् बायीं ओर और पीठ पीछेकी योगिनी माता यात्रीकी चित्तकामना पूरी करती हैं, एव दाहिनी ओर और सम्मुखकी इसके विपरीत फल देती हैं।

शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री—ये नौ रूप उन्हीं आद्या माताके हैं, जिनकी आराधना चैत्र एवं आश्विनके शुक्लपक्षके पहले नौ दिनोंमें होती है। ये ही नवदुर्गा कहलाती हैं। महाविद्यास्वरूपिणी इन्हीं भगवतीके काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातङ्गी और कमला—ये दस नाम प्रसिद्ध हैं—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः॥

तन्त्रशास्त्रके पारङ्गत विद्वान् भक्त साधक इनका आराधन-अनुष्ठान करके अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। विद्या-माताओंके अवतार इस प्रकार हैं—

कृष्णरूपा कालिका स्याद् रामरूपा च तारिणी।
बगला कूर्ममूर्तिः स्यान्मीनो धूमावती भवेत्॥
छिन्नमस्ता नृसिंहः स्याद् वराहश्चैव भैरवी।
सुन्दरी जामदग्न्यः स्याद् वामनो भुवनेश्वरी॥

* इसी प्रकार वैष्णवी मातृकाएँ मानी गयी हैं—

सदा भगवती पौर्णमासी पद्मान्तरङ्गिका।
गङ्गा कलिन्दतनया गोपी वृन्दावनी तथा॥
गायत्री तुलसी वाणी पृथिवी गौश्च वैष्णवी।
श्रीयशोदा देवहूतिदेवकीरोहिणीमुखाः॥
श्रीसती द्रौपदी कुन्ती द्वापरे ये महर्षयः।
रुक्मिण्याद्यास्तथा चाष्ट महिष्यो याश्च ता अपि॥

भगवती पौर्णमासी, पद्मान्तरङ्गिका, गङ्गा, यमुना, गोपी, वृन्दावनी, गायत्री, तुलसी, वाणी (सरस्वती, पृथिवी और गौ—ये सभी वैष्णवी मातृकाएँ हैं। इनके सिवा, यशोदा, देवहूति, देवकी एवं रोहिणी आदि, सती द्रौपदी, कुन्ती तथा अन्यान्य महर्षिगण और रुक्मिणी आदि पटरानियाँ भी इसी श्रेणीमें हैं।

कमला बुद्धरूपा स्याद् दुर्गा स्यात्कल्किरूपिणी ।
स्वयं भगवती काली कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥
स्वयं च भगवान् कृष्णः कालीरूपोऽभवद् व्रजे ।

'भगवती कालिका कृष्णरूपा हैं, देवी तारिणी श्रीराम-स्वरूपा हैं, बगलामुखी देवी कूर्मावतारकी मूर्ति हैं, धूमावती मीनावतार हैं, छिन्नमस्ता नृसिंह और भैरवी वाराहावतार हैं। सुंदरी देवी परशुराम और भुवनेश्वरी वामनकी स्वरूपभूता हैं। भगवती कमला बुद्धरूपा तथा दुर्गा कल्किरूपिणी हैं। श्रीकृष्ण ही साक्षात् षोडशकलापूर्ण भगवान् हैं। कालीरूप स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही व्रजमें प्रकट हुए।'

इस प्रकार मत्स्यादि दस प्रधान अवतार लेकर मातृशक्ति दुर्जनदमन और सज्जनसंरक्षणरूप लोकका कल्याण करती है।

यज्ञादि शुभ कार्योंमें स्थण्डिल या मण्डपके मध्य अग्नि-कोणमें वेदकी विधिसे अथवा तन्त्रोक्त रीतिसे श्रीगणपतिके सहित सोलह माताओंका पूजन किया जाता है। वे सोलह माताएँ ये हैं—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥
धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवताः ।

अथवा

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा शान्तिः पुष्टिर्धृतिः क्षमा ॥
आत्मनो देवताश्चैव तथैव कुलदेवताः ।

द्वितीय उद्धरणोक्त देवियाँ इस प्रकार है—

१. गौरी अर्थात् योग धैर्य-सौन्दर्य आदि गुणोंकी अधिष्ठात्री।
२. पद्मा अर्थात् धन-सम्पत्ति आदिकी अधिष्ठात्री।
३. शची अर्थात् बल-वीर्यादि विविध कामनाओंकी अधिष्ठात्री।
४. मेधा अर्थात् शास्त्र-तत्त्वज्ञानकी अधिष्ठात्री।
५. सावित्री अर्थात् संसारकी सृष्टिक्रियाकी अधिष्ठात्री।
६. विजया अर्थात् कामादि आन्तर रिपु-विजयकी अधिष्ठात्री।
७. जया अर्थात् बाह्य शत्रुओंपर जयकी अधिष्ठात्री।
८. देवसेना अर्थात् सैन्य-सञ्चालन कौशलकी अधिष्ठात्री।
९. स्वधा अर्थात् पितरोंके श्राद्धादिकी अधिष्ठात्री।
१०. स्वाहा अर्थात् देवताओंके यज्ञादिकी अधिष्ठात्री।
११. शान्ति अर्थात् योगियोंके चित्तोपशमकी अधिष्ठात्री।
१२. पुष्टि अर्थात् भोगियोंकी भोगप्राप्तिकी अधिष्ठात्री।
१३. धृति अर्थात् जगत्‌की पालन-क्रियाकी अधिष्ठात्री।
१४. क्षमा अर्थात् विश्वव्याप्त वात्सल्यकी अधिष्ठात्री।
१५. इष्टदेवी यथा पार्वतीजी, लक्ष्मीजी, सरस्वतीजी।
१६. कुलदेवी यथा शाकम्भरी।

विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, जाति, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, मातृ, भ्रान्ति, व्याप्ति और चिति—ये तेईस रूप उसी एक जगदम्बाके अनेक कायव्यूहोंमें हैं जिनके प्रति शुम्भदैत्य-निराकृत देवताओंने प्राचीन कालमें प्रणाम-अञ्जलियाँ समर्पित की थीं।

अकारादि प्रत्येक अक्षरमें अपनी अलौकिक शक्तिसे विराजमान जगदम्बा वर्ण-मातृकाओंके रूपमें योगियोंद्वारा पूजित होती हैं।

वास्तु-पूजाके अवसरपर मण्डपके वायुकोणमें तथा अन्य शुभ कृत्योंमें मण्डपके नैर्ऋत्यकोणमें सम्पूजित, जगदम्बाकी अंशस्वरूपिणी चौंसठ योगिनियोंकी नामावली इस प्रकार है—

दिव्या, महाशब्दा, सिद्धि, माहेश्वरी, प्रेताक्षी, डाकिनी, काली, कालरात्रि, निशाकरी, हुंकारी, वेतालिका, ह्रींकारी, भूतडामरा, ऊर्ध्वकेशी, विरूपाक्षी, शुष्काङ्गी, नरभोजिनी, फेत्कारी, वीरभद्रा, धूम्राक्षी, कलहप्रिया, राक्षसी, घोर-रक्ताक्षी, विशालाक्षी, वीरा, भयंकरी, कुमारी, चण्डी, वाराही, मुण्डधारिणी, भैरवी, वज्रधारिणी, क्रोधा, दुर्मुखा, प्रेतवाहिनी, कर्का, दीर्घलम्बोष्ठी, मालिनी, योगिनी, कालाग्निमोहिनी, मोहिनी, चक्रा, कुण्डलिनी, बालुका, कौबेरी, यमदूती, करालिनी, कौशिका, यक्षिणी, भक्षिणी, कौमारी, मन्त्रवाहिनी, विशाला, कार्मुकी, व्याघ्री, महाराक्षसी, प्रेतभक्षिणी, धूर्जटा, विकटा, घोररूपा, कपालिका, निष्कला, अमला और सिद्धिप्रदा।

कर्मठोंद्वारा उपासिता ये योगिनियाँ यजमानद्वारा पूजित और प्रसन्न हो, मनोवाञ्छित फल देकर भक्तको कृतार्थ करती हैं। ये सब विविध नाम-रूप केवल एक जगदम्बा श्रीदुर्गादेवीके ही नामान्तर और रूपान्तर हैं। उनकी अपनी उक्ति है कि—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।

जो कोई उनकी स्तुति करता है, विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करता है तो वे वत्सला परमाम्बा धन सन्तति देकर ऐहलौकिक कामनाओंको पूर्ण कर देती हैं और साधकों-को सद्बुद्धि देकर पारमार्थिक आनन्द प्राप्त करा देती हैं—

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्गन्धधूपादिभिस्तथा ।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे तथा शुभाम् ॥

(सप्तशती)

माताका प्यार

(रचयिता—श्रीहरिवंश नारायणदास 'आर्त्तहरि')

तू कामधेनुका मधु-पय, शुचि सलिल जह्नुजाताका।
या सुधा क्षीरनिधिकी है, देवता प्यार माताका॥

तू स्नेहपूर्ण निर्झर है, जो युगसे झरता आता।
युग-युग झरता जायेगा कल छल-छल कल-कल गाता॥

तू एक, रूप तव नाना, अगणित लीलाएँ तेरी।
ले, सुन ले कुछ उनमेंसे, लिख रही कलम जो मेरी॥

वहु अश्रुधारसे भर-भर जब उछल रही थी गंगा।
रह-रह सियार रोते थे था भूत-प्रेतमें दंगा॥

हाँ, उस निशीथमें तू ही मरघटपर तो भ्रमता था।
रोहितको गोद लिवाये शैव्यामें तू रमता था॥

औ वहाँ विजन झुरमुटमें, सरिता-तटमें संध्याको।
हित श्रवणकुमार रुलाया किसने अंधी वृद्धाको॥

प्रायः स्मृति तो होगी ही त्रेताके पुत्र-प्रणयकी।
की त्रिविध अलौकिक गति जो दशरथकी रानी त्रयकी

माथे कलंककी वेंदी कैकेयीने लगवाई।
कौसल्या पर, रो-रोकर जननी आदर्श कहाई॥

'है पुत्रवती जगमें वह, सुत रामभक्त हो जिसका'।
कह लक्ष्मणको माताने वन भेजा, यश है उसका॥

स्वर्णिम दिन वे गोकुलके क्या याद नहीं हैं तुझको।
परियाँ जब तरस रही थीं लख नन्दाङ्गनमें तुझको॥

माखन-रोटी मातासे ले अर्द्ध कौर शशिमुखमें।
घुटनोंके बल हरि चलते, बलि जाती मा इस सुखमें॥

मुख पोंछ चूमती जननी, देती फिर भाल डिठौना।
तब स्याम सिसक उठते झट लेनेको चन्द्र-खिलौना॥

वात्सल्य अचल कर बाँधा ले स्नेह-तन्तु ऊखलमें।
मथुरा हरि गये, यशोदा विलखीं निशिदिन छिन-पलमें

फिर विरहिन शकुन्तलाने पूछो गवाह मृग-सुतको।
सींचा घटभर तुझमें ही आशाकी लता भरतको॥

निपतित कर राधा-सुतको अर्जुनने मोद मनाया।
तब कुन्ती-उर-कोनेमें तू घिर विषाद-घन आया॥

वेदना तनी जननीकी कृपया तू ही बतला दे।
अभिमन्यु-मृत्युका अनुभव कुछ मुझको आज सुना दे॥

इस कुरुक्षेत्रमें करते ये गीध-चील हैं धावा।
लोहू-लथपथ लोथोंको खाते निशिचर मुख बा-बा॥

दुर्योधनादिके शवको गान्धारी-इव माताएँ।
रोतीं गोदीमें ले ले, उमगातीं वत्सलताएँ॥

पगली-सी चिबुक पकड़कर मुण्डोंसे बदतीं विमना।
दहलाते आह! कलेजा ये रोना और तड़पना॥

वह इधर सिकंदर-माको आ देख, हाथ उर दाबे।
उद्विग्न कफन क्रय करने दूकानोंमें जब जावे॥

तेरी उदारतासे सच स्रष्टाकी सृष्टि बसी है।
पाकर तुझको ही जननी 'स्वर्गादपि गरीयसी' है॥

चिड़ियाँ चोंचोंमें भर-भर शावकको अन्न चुगातीं।
तनु चाट-चाट जब गायें लेड़ूको दूध पिलातीं॥

औ चूम-चूम मुख माता शिशुको पय पान कराती।
यह दृश्य देख जग किसकी रे! छाती है न जुड़ाती॥

तुझसे विमुग्ध हो सहती हा! अकथ प्रसवकी पीड़ा।
पालन-पोषण-संकटसे वह होती नहीं अधीरा॥

कुछ कूट-पीस जो लाती, भूखी रह लाल खिलाती।
ढक अञ्चलसे जाड़ेमें गोदीमें ले सो जाती॥

यों सन्तत महल-मढ़ीमें आ-आ विलास तू करता।
जननी-हियरिक्त-कलशको आमोद अमियसे भरता॥

यदि पुत्र दुःख भी देता, सब सह लेती माता है।
तो भी तू मृदु-मानसमें ऐ प्यार! पगा रहता है॥

भारतीय संस्कृतिमें नारी-धर्म

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भारतीय संस्कृति अपना एक खास निरालापन लिये हुए है। उसका निर्माण अध्यात्मकी सुदृढ भित्तिपर उन त्रिकालदर्शी ऋषियोंद्वारा हुआ है जो दिव्यदृष्टिसम्पन्न, राग-द्वेषशून्य एवं समदर्शी थे। उनकी दृष्टि इहलोकतक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने अपनी तपःपूत बुद्धिसे समाधि-जन्य दिव्य ईश्वरीय ज्ञानके आधारपर जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं वे सर्वथा निर्दोष, भ्रान्तिशून्य त्रिकालसत्य एवं मानव-बुद्धिसे परे हैं। उन्हें हम अपनी मलिन, मोहग्रस्त, संकीर्ण एवं व्यवसायशून्य बुद्धिके काँटेपर तौलने जाकर धोखा खानेके सिवा और कोई लाभ नहीं उठा सकते। जबसे हम भारतीयोंने शास्त्रका आधार छोड़कर मनमाना आचरण शुरू कर दिया, तभीसे हमारे दुःखके दिन प्रारम्भ हो गये। और यदि हमारी चाल ऐसी ही रही तो पता नहीं अभी हम अवनतिके किस गर्तमें जाकर गिरेंगे। वर्तमान युग विचार-स्वातन्त्र्यका युग है। आजका मनुष्य अपनी बुद्धिपर किसी भी प्रकारका अनुशासन या नियन्त्रण स्वीकार नहीं करता। आज हमें मोह-ग्रस्त मनुष्योंकी चारों ओर यही आवाज सुनायी देती है—शास्त्रको न मानो, धर्मका अनुशासन मानना गुलामी है, ईश्वरमें विश्वास बुद्धि-पारतन्त्र्यका द्योतक है। भारतवर्षमें भी पश्चिमसे एक ऐसी लहर आयी है, जिसने हमारी बुद्धिको विचलित कर दिया है, हमारे विश्वासको हिला दिया है। आज हम भी पागलोंकी भाँति चिल्लाने लगे हैं—पोथियोंको फाड दो, मनुस्मृतिको जला दो, धर्म ही विघटनमें हेतु है, वर्णव्यवस्था एकतामें बाधक है, इत्यादि-इत्यादि। आजकी भारतीय नारी भी, जो शील, विनय, लज्जा एवं सौम्यताकी मूर्ति थी, पाश्चात्य ललनाओंकी देखादेखी मूर्खताके कारण बहकने लगी है—हम पुरुषोंकी गुलामीमें नहीं रहना चाहतीं, हमें सीता-सावित्री नहीं बनना है, सतीत्व एक कुसंस्कार है, भारतीय ऋषियोंने हमें पुरुषोंके परतन्त्र बनाकर हमारे प्रति घोर अन्याय किया है, इत्यादि। ऐसे विपरीत समयमें, जब कि धर्मको लोग ढकोसला मानने लगे हैं, धर्मके विषयमें—विशेषकर नारी-धर्मके विषयमें—कुछ लिखनेका प्रयास करना दुःसाहस ही समझा जायगा। फिर भी साँचको कोई आँच नहीं है, सत्य तो सत्य ही है—चाहे कोई उसे माने या न माने—इसी भरोसेपर कर्तव्यबुद्धिसे प्रेरित होकर अपनी अल्पबुद्धिके अनुसार शास्त्रोंके आधारपर नारी-धर्मके विषयमें कुछ लिखनेका प्रयत्न किया जाता है।

'धृ धारणपोषणयोः' धातुसे 'मन्' प्रत्यय लगकर 'धर्म' शब्द बना है। अतः धर्मका अर्थ है—धारण करनेवाला, अथवा जिसके द्वारा यह सब कुछ धारण किया हुआ है। यह तो सभीको मानना पड़ेगा कि यह विश्व-ब्रह्माण्ड किसी नियम अथवा कानूनके द्वारा परिचालित है। पृथ्वी-आकाश, ग्रह-नक्षत्र, सूर्य-चन्द्र, जल-वायु, जड-चेतन, जीवन-मृत्यु, सृष्टि-प्रलय, वृद्धि-क्षय, उन्नति-अवनति, आरोहण-अवरोहण—सब कुछ एक नियमके अधीन है। जगत्की कोई भी क्रिया नियमके प्रतिकूल नहीं होती। इसी नियमका नाम 'धर्म' है। इन नियमोंको बुद्धिपूर्वक यथावस्थित रूपसे चलानेवाली चेतनशक्तिका नाम 'ईश्वर' है, इसी नियमको करामलकवत् प्रत्यक्ष देखनेवाले विशिष्टशक्तिसम्पन्न ईश्वरानुगृहीत आप्त पुरुषोंका नाम है—'ऋषि' और उन ऋषियोंके दिव्य अनुभव तथा उन अनुभवोंके आधारपर ईश्वरीय प्रेरणाके अनुकूल मानव-समाजके ऐहिक-आमुष्मिक सर्वविध कल्याणके लिये रचे हुए सनातन नियम जिन ग्रन्थोंमें संगृहीत हैं, उनका नाम है 'शास्त्र'। सनातन-धर्मके ये ही चार प्रधान आधारस्तम्भ हैं। हिंदू-संस्कृति इन्हीं चारपर अवलम्बित है और यही उसकी विशेषता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म अथवा शास्त्र न तो कोरा ढोंग है और न उपेक्षा अथवा अनादरकी वस्तु है। धर्मकी जो व्याख्या हमने ऊपर की है और सबसे सरल, शास्त्रसम्मत एवं सर्वमान्य व्याख्या 'धर्म'की यही है—उसके अनुसार धर्म ही विश्वके अभ्युदय एवं निःश्रेयसका एकमात्र साधन है, धर्मसे ही मानव-समाजका वास्तविक तथा स्थायी कल्याण सम्भव है, धर्मसे ही संसारमें सुख-समृद्धि एवं शान्तिका विस्तार हो सकता है,* धर्मके आधारपर ही मानव-जातिका यथार्थ संगठन एवं एकीकरण हो सकता है तथा धर्मसे ही उसके अधिकारों एवं हितोंकी रक्षा हो सकती है। जो लोग यह कहते हैं कि धर्म ही विघटनका हेतु है तथा धर्मसे ही हिन्दू-जाति अथवा भारतकी अवनति हुई है, धर्मसे ही पारस्परिक कलहकी सृष्टि हुई है,

---

* श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥
(मनु० २।९)

इत्यादि-इत्यादि, उन्होंने वास्तवमें धर्मका कोई दूसरा ही अर्थ समझा है।

इसी प्रकार धर्मका ज्ञान भी शास्त्रद्वारा ही सम्भव है। किसी भी विषयका सम्यक् ज्ञान उस विषयके पारंगत विद्वानों तथा उनके रचित ग्रन्थोंसे ही हो सकता है। यह माना कि स्थूल जगत्के कतिपय तथ्योंका आंशिक पता आधुनिक वैज्ञानिकोंने लगाया है; परंतु उनका यह ज्ञान अब भी अत्यन्त अधूरा एवं सीमित है। अब भी उसमें बहुत कुछ संशोधनकी आवश्यकता है, वैज्ञानिक स्वयं इस बातको स्वीकार करते हैं। फिर स्थूल जगत् ही तो सब कुछ नहीं है। इसके परे और इससे भी अधिक विस्तृत, विशुद्ध एवं सुन्दर तथा जिसकी यह स्थूल जगत् एक छाया अथवा प्रतिकृतिमात्र है—एक सूक्ष्म जगत् भी है, जिसके अनेकों स्तर हैं और जिसमें हमारी अपेक्षा कहीं अधिक उन्नत, शक्तिसम्पन्न एवं दीर्घजीवी प्राणी रहते हैं। हमारे ऋषियोंने उस जगत्का भी पता लगाया है और इस जगत्के साथ उस सूक्ष्म जगत्का क्या सम्बन्ध है, यहाँके प्राणी वहाँके प्राणियोंके द्वारा कैसे प्रभावित होते हैं, वहाँकी शक्तियाँ किस प्रकार यहाँके घटना-चक्रोंका नियन्त्रण करती हैं, मरनेके बाद जीवात्मा कहाँ-कहाँ जाता है और क्या-क्या करता है, यहाँ किस प्रकारका आचरण करके हम मृत्युके बाद भी सुखी रह सकते हैं तथा अमर जीवन प्राप्त कर सकते हैं, तथा कौनसे आचरण हमें गिरानेवाले हैं तथा दुःख देनेवाले हैं, यहाँ सुख-दुःख, ऊँची-नीची स्थिति, ऊँचा-नीचा जन्म, स्त्री-योनि अथवा पुरुष-योनि—जो कुछ भी हमें प्राप्त होता है, हमारे पूर्व सुकृतों अथवा दुष्कृतोंका फल है तथा सूक्ष्म जगत्की शक्तियोंके सहयोगके बिना यहाँ सुख-समृद्धि एवं शान्तिकी आशा दुराशामात्र है—इन सब बातोंको हमारे ऋषियोंने भली-भाँति समझा ही नहीं, देखा भी है और जो कुछ उन्होंने देखा और अनुभव किया है तथा उसके अनुसार जो कुछ आचरण उन्होंने हमारे लिये कल्याणकर समझा है और अनुभव किया है, वही सब हमारे विविध शास्त्रोंमें—हमारे वेदों और पुराणोंमें तथा हमारी स्मृतियोंमें संगृहीत है। अतः हमारे शास्त्रोंमें जो कुछ भी लिखा है, सर्वथा सत्य, निर्भ्रान्त एवं पक्षपात-रहित है; उसमें स्वार्थका गन्ध भी नहीं है। सत्यका सत्यरूपमें दर्शन करनेवाले महर्षि कभी असत्यवादी नहीं हो सकते। उनके वाक्योंमें असत्य, भ्रम, पक्षपात, स्वार्थ अथवा राग-द्वेषकी कल्पना करना अपना ही अहित करना और सत्यसे वञ्चित रहना है।

नीचे नारी-धर्मपर जो कुछ लिखा जायगा, वह इन्हीं सर्वज्ञ ऋषियोंके बनाये अथवा संग्रह किये हुए ग्रन्थोंके आधार-पर लिखा जायगा। वर्तमान युगके विकृत, मलिन एवं राग-द्वेष-दूषित अन्तःकरणवाले पुरुषोंको ये सिद्धान्त न जँचें अथवा उन्हें ये पक्षपातपूर्ण अथवा भ्रान्त दिखायी दें तो इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। यह निश्चित है कि ये सिद्धान्त सर्वथा सत्य एवं सत्यके आधारपर स्थिर किये हुए हैं और इन्हें मानकर इनके अनुसार चलनेसे सबका कल्याण हो सकता है; क्योंकि शास्त्रके सिद्धान्त सबके लिये समानरूपसे हितकर हैं। ऋषियोंने किसी एक वर्गके प्रति पक्षपात तथा किसी दूसरे वर्गके प्रति अन्याय अथवा अत्याचार किया हो—ऐसी कल्पना सर्वथा दूषित है। सबमें एक आत्मा अथवा परमात्माको देखने-वाले ऋषियोंमें पक्षपात कैसा? हाँ, वे इस बातको जानते थे—नहीं नहीं जानते हैं—(क्योंकि ऋषि कहीं चले थोड़े ही गये हैं, वे अब भी दिव्य लोकोंमें दिव्य शरीरसे विद्यमान हैं और अब भी अपत्यवत्सला माताकी भाँति हमें अपनी करुणापूर्ण दृष्टिसे देखते हुए हमारा हित-चिन्तन, हमारा कल्याण-साधन करते रहते हैं; यह दूसरी बात है कि हम अज्ञानवश उनके आदेशोंकी अवहेलना करके, उनके बताये हुए शोभन मार्गका उल्लङ्घन करके, बार-बार दुःखके गर्तमें गिरते रहें और जान-बूझकर अपना अकल्याण करते रहें) हाँ, वे इस बातको जानते हैं कि आत्मरूपसे एक होते हुए भी सबके कर्म कलाप, शरीर, मन-बुद्धि, स्वभाव एवं संस्कार आदि भिन्न-भिन्न होनेसे सबके आचरण एक-से नहीं हो सकते, सबकी योग्यता एक-सी नहीं हो सकती। इसीलिये उन्होंने कर्मानुसार एवं योग्यतानुसार सबके अलग-अलग कर्तव्य निश्चित किये हैं, कर्तव्योंके साथ-साथ सबके अधिकार भी अलग-अलग रक्खे हैं। साथ ही इस बातका भी ध्यान रक्खा है कि सबको अपने-अपने अधिकारमें रहते हुए अपने-अपने कर्तव्यके अनुष्ठानसे ही जीव-जीवनके परम लक्ष्य—परमात्माकी शीघ्र-से-शीघ्र प्राप्ति हो जाय।

यह मानी हुई बात है कि जगत्की सृष्टि ही वैषम्यको लेकर होती है। प्रकृतिकी साम्यावस्थामें जगत्का अस्तित्व ही नहीं रहता। केवल परमात्मा रहते हैं, जगद्बीजरूपा प्रकृति उनके अंदर रहती है। परमात्माकी इच्छासे जब प्रकृतिके गुणोंमें—सत्त्व, रज, तममें वैषम्य होता है, क्षोभ होता है, तभी सृष्टि-व्यापार प्रारम्भ होता है; और जबतक यह सृष्टि महाप्रलयके अन्तमें पुनः प्रकृतिमें लीन नहीं हो जाती, तबतक यह वैषम्यका व्यापार चलता ही रहता है। और जबतक वैषम्य है, तबतक व्यवहारकी विषमता, व्यवहारका भेद, कभी मिट नहीं सकता—चाहे उसे मिटानेकी हम कितनी ही चेष्टा क्यों न करें। जहाँ वैषम्य है, वहाँ कार्य-कलाप-

में भेद, अधिकारमें भेद अवश्यम्भावी है। इसी भेदको लेकर वर्णाश्रमकी व्यवस्था की गयी है, इसी भेदको लेकर स्त्री पुरुषके लिये अलग-अलग कर्तव्य निश्चित किये गये हैं और उनका कार्यक्षेत्र अलग-अलग स्थिर किया गया है। इसी भेदको लेकर स्पृश्यास्पृश्यका निर्णय किया गया है। इसी भेदको लेकर राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक, गुरु-शिष्य, ब्राह्मण-शूद्र, मस्तिष्क-जीवी-श्रमिक, संन्यासी-गृहस्थ, पति-पत्नी आदि विभागों अथवा वर्गोंकी रचना हुई है—जो सृष्टि-संचालनके लिये आवश्यक है। इस नैसर्गिक वैषम्य अथवा विभागको न मानकर जहाँ हम सबको एक करनेकी व्यर्थ चेष्टा करते हैं, वहीं साङ्कर्य और गड़बड़ी शुरू हो जाती है, वहाँ वर्गगत कलह प्रारम्भ हो जाते हैं, अधिकारको लेकर लड़ाई होने लगती है, छोटे-बड़ेका प्रश्न सामने आ जाता है। ज्यों-ज्यों हम भेद मिटानेकी चेष्टा करते हैं, त्यों-त्यों विघटन बढ़ता जाता है और फलतः समाज विशृङ्खलित एवं उच्छिन्न हो जाता है। भेद तो किसी-न-किसी रूपमें फिर भी बना ही रहता है। इस साङ्कर्य एवं अव्यवस्था तथा उसके दुष्परिणामोंसे बचनेके लिये ही हमारे दीर्घदर्शी, दिव्यदृष्टि-सम्पन्न महर्षियोंने गुण-कर्मके अनुसार समाजको कई नैसर्गिक विभागोंमें बाँटकर सबके लिये अलग-अलग कर्तव्य, अलग-अलग धर्म निश्चित किये हैं।

धर्मके हमारे यहाँ सामान्यतया दो विभाग किये गये हैं—सामान्य और विशेष। सामान्य अथवा मानवधर्म मनुष्यमात्रके लिये समान है। धृति (धैर्य), क्षमा, दम (मनोनिग्रह), अस्तेय (दूसरेका हक न मारना, चोरी-डकैती न करना), शौच (बाहर-भीतरकी शुद्धि, पवित्रता), इन्द्रिय-निग्रह, धी (सात्त्विक बुद्धि), विद्या (यथार्थ ज्ञान, सत्यासत्यकी वास्तविक पहचान), सत्य और अक्रोध (क्रोध-शून्यता)—मनूक्त-धर्मके ये दस लक्षण*; योगोक्त पाँच यम†—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (शरीर-निर्वाहके अतिरिक्त भोग्य पदार्थोंका संग्रह न करना); और पाँच नियम‡—शौच, संतोष, तप (धर्म-पालनके लिये कष्ट सहना), स्वाध्याय (सच्छास्त्रोंका अध्ययन तथा ईश्वरके नाम गुण आदिका कीर्तन) और ईश्वर-प्रणिधान (शरणागतिपूर्वक नित्य-निरन्तर भजन करते हुए भगवान्की आज्ञाका पालन करना); तथा निर्भयता, अन्तःकरणकी पवित्रता, ज्ञानकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले भगवान्के किसी भी स्वरूपका ध्यान, दान, दम (इन्द्रियनिग्रह), यज्ञ (भगवान् तथा देवताओंकी पूजा, हवन आदि), स्वाध्याय, तप, मन-वाणी शरीरकी सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, अहङ्कार आदिका त्याग, मनोनिग्रह, अपैशुन (निन्दा-चुगली न करना), जीव-मात्रके प्रति दया, विषयासक्तिका अभाव, कोमलता, निषिद्ध आचरणमें लज्जा, व्यर्थ चेष्टाका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शौच, अद्रोह (किसीसे द्रोह न करना), एवं निरभिमानता—गीतोक्त दैवी सम्पदाके ये छब्बीस लक्षण*, ये सभी सामान्य अथवा मानवधर्मके अन्तर्गत हैं। इनका पालन स्त्री-पुरुष तथा सभी वर्गके मनुष्योंके लिये—चाहे वे किसी वर्ण, जाति, सम्प्रदाय अथवा देशके हों—वाञ्छनीय है। उपर्युक्त दैवी गुण तथा आचरण सभी मतावलम्बियोंको समानरूपसे मान्य हैं, अतएव सभीके लिये अनुकरणीय हैं।

इन सामान्य धर्मोंके अतिरिक्त विशिष्ट वर्गोंके लिये हमारे शास्त्रोंने कुछ विशिष्ट धर्म भी माने हैं, जो सामान्य धर्मोंके साथ-साथ उन-उन वर्गोंके लिये विशेषरूपसे पालनीय हैं, क्योंकि वे उनके लिये सहज अथवा स्वभावगत हैं अर्थात् उन्हें जन्मतः अथवा प्राक्तन संस्कारोंसे प्राप्त हुए हैं। हमारे यहाँ जन्म आकस्मिक अथवा यादृच्छिक नहीं माना गया है। जाति (जन्म), आयु (जीवन-काल) तथा भोग (सुख-दुःखकी प्राप्ति)—ये तीनों ही हमें प्रारब्धकर्मके अनुसार प्राप्त होते हैं, अतएव ये अपरिवर्तनीय हैं—इन्हें कोई बदल नहीं सकता। उपनिषद्में आता है—

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥ (छान्दोग्य० ५ । १० । ७)

---

* धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥
(मनु० ६ । ९२)

† अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।
(योग० २ । ३०)

‡ शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।
(योग० २ । ३२)

* अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥
(गीता १६ । १—३)

'उन जीवोंमें जो अच्छे आचरणवाले होते हैं, वे शीघ्र ही उत्तम योनिको प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि अथवा वैश्ययोनि प्राप्त करते हैं। तथा जो अशुभ आचरणवाले हैं, वे तत्काल अशुभ योनिको प्राप्त होते हैं। वे कुत्तेकी योनि, सूकर योनि अथवा चाण्डालयोनि प्राप्त करते हैं।'

यही कारण है कि कोई चक्रवर्ती सम्राट् अथवा किसी धनकुबेरके यहाँ जन्म लेता है तो कोई दीन-हीन भिखारीके यहाँ; कोई शतायु होता है तो कोई अकालमें ही कालके गालमें चला जाता है; कोई जीवनभर चैनकी वंशी बजाता है तो कोई रो-रोकर दिन काटता है; कोई वृद्धावस्थामें भी स्वस्थ-सबल रहता है तो कोई जन्मसे ही रोगोंसे आक्रान्त रहता है।

उपर्युक्त सिद्धान्तके अनुसार स्त्री-योनि भी प्राक्तन कर्मोंके अनुसार ही प्राप्त होती है। एक ही माता-पितासे कई सन्तानें उत्पन्न होती हैं; उनमें कोई पुरुष-चिह्नसे युक्त होती है और कोई स्त्री चिह्नसे। प्राक्तन कर्मोंके अतिरिक्त उनके इस भेदमें क्या हेतु हो सकता है। जन्मके समय लिङ्गभेदके अतिरिक्त पुत्र एवं कन्याकी शरीर-रचना अथवा आकृतिमें कोई अन्तर नहीं होता। धीरे-धीरे अवस्था बढ़नेपर उनके शरीरकी गठनमें अन्तर स्पष्ट होने लगता है। यहाँतक कि किशोर अवस्थातक पहुँचते-पहुँचते दोनोंके शरीरकी रचनामें काफी अन्तर हो जाता है तथा युवा अवस्थामें यह अन्तर और भी स्पष्ट हो जाता है एवं अन्ततक बना रहता है। स्त्री और पुरुषके स्वभाव, शारीरिक बल तथा बौद्धिक विकासमें भी काफी अन्तर होता है। स्त्रियोंमें प्रायः भीरुता, अपवित्रता, चपलता तथा पुरुषोंकी अपेक्षा बुद्धिकी मन्दता आदि दोष होते हैं।* उनमें त्याग एवं सहिष्णुताकी मात्रा अधिक होती है। मस्तिष्ककी अपेक्षा उनमें हृदयकी प्रधानता होती है। इन्हीं सब कारणोंसे स्त्रियोंको हमारे शास्त्रोंमें पुरुषके अधीन रक्खा गया है। किसी भी हालतमें उन्हें स्वतन्त्र रहनेका अधिकार नहीं दिया गया है। उनके शरीरकी गठन तथा अङ्गोंकी रचना एवं उनके शरीरके व्यापार भी ऐसे हैं, जिनके कारण पुरुषोंके अधीन रहना ही उनके लिये स्वाभाविक एवं श्रेयस्कर है।

स्वभाव, बुद्धि तथा शारीरिक रचना एवं बल-पौरुषके अनुरूप ही स्त्रियोंका कार्यक्षेत्र भी पुरुषोंसे पृथक् रक्खा गया है। हिंदू-नारी घरकी रानी होती है। घरकी व्यवस्था तथा सफाई, भोजनशालाका प्रबन्ध तथा पाक तैयार करना, बच्चोंका लालन-पालन, उनकी शिक्षा तथा चरित्र-निर्माण, अन्न-वस्त्रका यथोचित संग्रह, आय-व्ययका समीकरण, परिवारके सब लोगोंकी सँभाल, सेवा एवं आवश्यकताओंकी पूर्ति तथा प्रधानतया गृहस्वामीकी सेवा, उन्हें सब प्रकारसे सुख पहुँचाना तथा उन्हें गृहस्थ-सम्बन्धी चिन्ताओंसे मुक्त रखना, सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करके वंशकी रक्षा एवं वृद्धि करना, पतिके धर्म-कार्योंमें हाथ बँटाना तथा स्वयं धर्मपालन करते हुए अपना एवं अपने पतिका उद्धार करना, पतिको ही परमात्माका प्रतीक, उनका प्रतिनिधि मानकर उन्हींमें अनन्य प्रेम करना—आदि-आदि स्त्रियोंके महान् कर्तव्य हमारे शास्त्रोंमें बताये गये हैं। सेवा, त्याग एवं आत्मोत्सर्ग ही नारीके प्रधान गुण हैं। पतिके प्रति आत्मसमर्पण तथा सन्तानके लिये आत्मदान ही उसके जीवनका परम पुनीत व्रत है। भगवान्‌के प्रति भक्तको आत्मसमर्पण किस प्रकार करना चाहिये, इसकी शिक्षा हमें पतिपरायणा पतिव्रता नारीके आदर्श जीवनसे ही मिलती है। इन्हीं सब कारणोंसे भारतीय समाजमें नारीका स्थान बहुत ऊँचा है। ऐसी दशामें भारतीय नारीको पुरुषकी गुलाम बतलाकर उसके अंदर पुरुषोंके प्रति विद्रोह-भावना उत्पन्न करना, उसे महान् सती-धर्मसे विचलितकर पथभ्रष्ट करना, घरकी रानीके महान् गौरवमय पदसे नीचे उतारकर पद, अधिकार एवं नौकरीके लिये दर-दर भटकनेवाली राहकी भिखारिणी बनाना कहाँतक उसका हित-साधन करना है—इसे नारी समानाधिकारके हिमायती स्वयं सोच सकते हैं। स्त्री और पुरुषमें शरीर, बुद्धि एवं स्वभावगत जो नैसर्गिक भेद है, उसे किसी प्रकार भी मिटाया नहीं जा सकता; और उसीके अनुसार दोनोंके कर्तव्य, अधिकार एवं कार्यक्षेत्रमें भी भेद रहना आवश्यक है। दोनोंके कार्यक्षेत्र तथा अधिकारोंमें समता लानेकी चेष्टा करना समाजको छिन्न-भिन्न करना होगा। इससे कभी जगत्‌का हित-साधन नहीं हो सकता। पाश्चात्य जगत्‌में इस प्रकारकी चेष्टासे क्या-क्या अनर्थ हो रहे हैं, वहाँकी पारिवारिक सुख-शान्ति किस प्रकार नष्ट हो रही है—इसे देखते-सुनते हुए भी हमलोग आँख मूँदकर उसी मार्गपर चलनेके लिये उतावले हो रहे हैं, यह कैसी विडम्बना है।

स्त्रियोंकी शिक्षा भी ऐसी होनी चाहिये, जो उनके जीवन तथा आदर्शके अनुकूल हो तथा जो उनके कर्तव्यपालनमें सहायक सिद्ध हो। पुरुषोंके आदर्शके अनुसार स्त्रियोंको भी उन्हीं सब विषयोंकी शिक्षा देना उनके जीवनको बर्बाद करना—उन्हें इतोभ्रष्ट-ततोभ्रष्ट करना है। वर्तमान

---

* श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥

शिक्षा-पद्धतिका उद्देश्य तो इस पद्धतिको प्रचारित करनेवाले पुरुषोंके ही कथनानुसार भारतीय नवयुवकोंको गुलाम बनाना, उनकी अपनी निजकी संस्कृति, इतिहास, पूर्वपुरुषों एवं धर्मके प्रति अनास्था उत्पन्न करना—उन्हें कहनेमात्रको भारतीय किंतु हृदयसे पाश्चात्त्य बना देना रहा है और इसी पद्धतिके अनुसार अपनी कन्याओंको भी शिक्षितकर हमने उनका ही नहीं, अपितु साथ-साथ अपने तथा अपनी भावी सन्तानके भी सर्वनाशका बीज बो दिया, किंतु अब भी हम यदि चेत जायँ तो अपने सर्वनाशको बचा सकते हैं। हमें अपनी कन्याओंका शिक्षा-क्रम ऐसा बनाना चाहिये, जिसमें वे आदर्श गृहिणी तथा सीता-सावित्री, अनसूया, मदालसा, मैत्रेयी आदिके समान पतिव्रता बन सकें। उन्हें साधारण भाषा तथा साहित्यिक ज्ञानके साथ-साथ सीना पिरोना, विविध पाक तैयार करना, बच्चोंका लालन-पालन करना, स्वास्थ्य एवं सफाईके साधारण नियमोंको जानना, देशी चिकित्साके प्रारम्भिक सिद्धान्तोंका तथा घरेलू नुस्खोंका ज्ञान प्राप्त करना, घायलोंकी प्रथम सेवा करना, गृह-प्रबन्ध, कृषि, गणित एवं अर्थशास्त्रका, चित्रकर्म, शिल्प आदि कलाओंका तथा इतिहास-भूगोलका साधारण ज्ञान प्राप्त करना तथा सर्वोपरि नीति, सद्गुण-सदाचार, सौजन्य, सादगी, कर्तव्य-पालन, ईश्वरभक्ति तथा धर्मका व्यावहारिक ज्ञान—इत्यादि विषयोंकी शिक्षा दी जानी चाहिये। यह शिक्षा भी उन्हें यथासम्भव घरोंमें ही दी जानी उचित है। पाठशालाओंमें चरित्र-सम्पन्न आदर्श अध्यापिकाओंका प्रायः अभाव होनेसे बालिकाओंके चरित्रपर बहुधा अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता और वे प्रायः विलासप्रिय एवं शौकीन बन जाती हैं। साथ ही भारतीय आदर्शके अनुसार वयस्क हो जानेपर लड़कियोंका बाहर निकलना भी श्रेयस्कर नहीं है। बालक-बालिकाओंकी सहशिक्षा तो भारतीय पद्धतिके सर्वथा प्रतिकूल एवं त्याज्य है। उसमें तो लाभकी अपेक्षा हानिकी ही अधिक सम्भावना है। अतः उससे सर्वथा बचना चाहिये। हमारे यहाँ तो स्त्री-पुरुषोंके सम्पर्कपर बहुत अधिक नियन्त्रण रक्खा गया है और सतीधर्मकी रक्षाके लिये यह परमावश्यक है। सतीधर्म ही भारतीय नारीका परम भूषण माना गया है और उसीने हिंदू-जाति एवं हिंदू धर्मकी रक्षा की है। क्षेत्र एवं बीजकी शुद्धि—रज-वीर्यकी शुद्धि ही जातिको एवं समाजको पवित्र रख सकती है और इसी सिद्धान्तको लक्ष्यमें रखकर नारी-जातिकी पवित्रता—सतीत्वरक्षापर इतना जोर दिया गया है।

महाकवि कालिदासके 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में महर्षि कण्वने अपनी पोष्य पुत्री शकुन्तलाको ससुराल जाते समय बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया है। कण्व कहते हैं—

> शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
> भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
> भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
> यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥

'बेटी! ससुरालमें जाकर सास-ससुर आदि बड़ोंकी सेवा करना; अपने पतिकी अन्य पत्नियोंके साथ (यदि कोई हों) मित्रताका, प्रेमका बर्ताव करना; यदि कभी पतिका तिरस्कार भी मिले, तो क्रोधके वशीभूत होकर उनके प्रतिकूल आचरण भूलकर भी न कर बैठना; दास-दासियोंके प्रति सदा दयाका भाव बनाये रखना और प्रचुर भोग-सामग्री प्राप्त करके अभिमानसे फूल मत जाना। इस प्रकारका आचरण करनेसे ही युवतियाँ 'गृहिणी' के सम्मान्य पदपर प्रतिष्ठित होती हैं और जो इसके विपरीत आचरण करती हैं, वे तो अपने कुलके लिये उपाधिरूप—क्लेशदायक बन जाती हैं।'

कविवर कालिदासने शास्त्रोंमें विस्तारसे कहे हुए 'नारी-धर्म' का निचोड़ बहुत थोड़े शब्दोंमें इस श्लोकमें रख दिया है।

> पुरुषाणां सहस्रं च सती स्त्री हि समुद्धरेत्।
> पतिः पतिव्रतानां च मुच्यते सर्वपातकात्॥
> नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा।
> तया सार्द्धं च निष्कर्मा मोदते हरिमन्दिरे॥

(स्कन्दपुराण)

सती अपने सतीत्व बलसे सहस्रों मनुष्योंका उद्धार करती है। सती स्त्रीका पति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होता है। पतिव्रत-के तेजसे सतीके स्वामीको कर्मफलका भोग नहीं करना पड़ता। वह सारे कर्मबन्धनसे छूटकर सतीके साथ भगवान्‌के परमधाममें आनन्दलाभ करता है।

नारी-धर्म

(लेखक—पू० प० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी)

भगवान् मनुने स्त्रियोंके सत्कारका बड़ा माहात्म्य कहा है और अनादरमें बहुत दोष दिखलाये हैं। स्त्रीसे ही धर्मार्थ-काम तीनोंकी सिद्धि होती है, इसीलिये वे 'त्रिवर्गसाधिका' कहलाती हैं। विवाहके समय वरसे प्रतिज्ञा करायी जाती है कि 'धर्मे अर्थे कामे च अनया सह वर्तितव्यम्' और वर प्रतिज्ञा करता है कि 'धर्मार्थ-कामका सेवन मैं इसके साथ करूँगा।' आज भी यज्ञ-यागादि कोई भी कार्य बिना स्त्रीके हो नहीं सकता और घरकी तो वह स्वामिनी ही होती है, इसीलिये उसे गृहिणी कहा जाता है (देखिये मनुस्मृति)।

स्त्री और पुमान्‌का सम्बन्ध ऐसा है कि बिना एकके धर्मका निरूपण किये दूसरेका धर्म सम्यक्‌रूपसे मनमें नहीं बैठता। 'स्त्री क्या है? उसकी विशेषता क्या है? उसके धर्म क्या हैं?' इन सब बातोंका पता 'स्त्री' और 'पुमान्' शब्दके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थोंसे ही लग जाता है। व्याकरण ही सब ज्ञान-विज्ञानकी प्रकृति है, अतः देखना चाहिये कि व्याकरण-शास्त्र इस विषयमें क्या कहता है।

'स्त्यै शब्दसंघातयोः।' शब्द तथा सघातके अर्थमें 'स्त्यै' धातुका प्रयोग होता है (स्त्यै+ड्ट्+ङीप्=स्त्री) इसीके अनुसार भगवान् भाष्यकार 'स्त्री' शब्दका अर्थ लिखते हुए कहते हैं—'अधिकरणसाधना लोके स्त्री स्तायत्यस्या गर्भ इति'। लोकमें अधिकरण-साधना स्त्री है; जिसमें गर्भ संघातरूपको प्राप्त हो, उसे 'स्त्री' कहते हैं। और 'सू' धातुके उत्तर 'डुम्सुन्' प्रत्यय करनेसे 'पुमान्' शब्द सिद्ध होता है। भगवान् भाष्यकार कहते हैं—कर्तृसाधनश्च पुमान्, सूते पुमान् इति। 'पुमान्' कर्तृ-साधन है, पुमान् ही प्रसव करता है। यही स्त्री और पुमान्‌की विशेषता है। वस्तुतः प्रसवधर्मी पुमान् है, वही शुक्रका स्थापन करनेवाला है और स्त्रीमें ही शुक्र शोणितका संयोग होता है। वह गर्भ धारण करती है। जो गर्भ धारण नहीं कर सकतीं, उनमें स्त्रीत्वका साफल्य नहीं है, स्त्री-समाजमें आज भी उनका आदर नहीं होता।

इस भेदपर मनन करनेसे पता चलता है कि इसके मूलमें आध्यात्मिक कारण निहित है। प्रकृति और पुरुषके योगसे ही यह सृष्टि है। इनमें प्रकृति जड और पुरुष चेतन है। पुरुष सृष्टिका मूल है, उसीसे जगत्‌की उत्पत्ति आदि हुआ करती है। भगवान् कहते हैं, 'मेरी माया—त्रिगुणात्मिका प्रकृति समस्त भूतोंकी योनि है, उसीमें मैं बीजको स्थापित करता हूँ। हे कौन्तेय! सभी योनियोंमें जो मूर्तियाँ पैदा होती हैं, उन सबकी गर्भ धारण करनेवाली (मा) मेरी प्रकृति है, और मैं बीजप्रद पिता हूँ।' यही मातृशक्ति और पितृशक्ति इस स्थूल जगत्‌में स्त्री और पुमान् रूपसे व्यक्त हुई है। इन्हींके योगसे यह स्थूल सृष्टि चल रही है। 'रुद्रो नर उमा नारी तस्मैतस्यै नमो नमः।' रुद्र नर हैं, उमा नारी हैं; इसलिये उन्हें बार-बार नमस्कार है (रुद्रहृदय उपनिषद्)।

उस पुरुष और प्रकृतिमें जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध यथासम्भव स्त्री और पुमान्‌में है। पुरुष स्वतन्त्र है, प्रकृति उसके आश्रित है। पुरुष एक रूप है, प्रकृति बहुरूपा है। पुरुष चेतन है, प्रकृति जड है। पुरुष शुद्ध है, प्रकृति अशुद्ध है। पुरुष प्रेरक है, प्रकृति नियोज्य है। जो लोग इन बातोंको नहीं समझते या नहीं समझना चाहते, उन्हें यदि स्त्री-धर्ममें अत्याचार, निर्दयता, गुलामी और स्वार्थपरायणताकी प्रतीति हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या है?

स्त्री और पुमान्‌में भोक्तृ-भोग्यभाव स्वाभाविक है। स्वाभाविकी प्रवृत्ति सदा अधोगामिनी होती है, अतः उन्हें शास्त्रीया बनानेका उपदेश है। सभी देश और सभी कालमें भोक्तृ-भोग्यरूपिणी प्रवृत्तिको स्वच्छन्दगामिनी होने देना श्रेयस्कर नहीं माना गया है। इसे नियमोंके नियन्त्रणमें रखनेसे ही कल्याण है। इसीलिये सर्वत्र विवाहकी प्रथा है और वैवाहिक जीवनके लिये सुस्थिर नियम हैं और वे ही सभ्यताके परिचायक हैं।

कहीं-कहीं कन्या और वरका परस्पर वरण ही विवाहकी मूल भित्ति है, परंतु शास्त्रचरणसेवी वैदिक आर्यजातिमें इस प्रथाको उत्तम नहीं माना है; क्योंकि यह प्रथा काम्य है, धर्म्य नहीं है। इसमें बहुत दोष हैं। अनुभवहीन कामान्ध व्यक्ति रूपपर ही मोहित हो जाते हैं और जिन बातोंका विवाहमें विचार होना चाहिये, उनपर उनकी दृष्टि जा नहीं सकती; अतः अपने जीवनका साथी चुननेमें उनसे चूक होना स्वाभाविक है। कन्याको वरान्वेषणकी स्वतन्त्रता देनेमें शीलकी रक्षा अत्यन्त दुर्घट है।

उत्तम प्रथा यह है कि पिता जिसे उचित समझे, कन्यादान करे अथवा भाई पिताकी अनुमतिसे कन्यादान करे। वह (कन्या) उसी (वर) की यावज्जीवन सेवा करे और उसके मरनेपर भी उसका उल्लङ्घन न करे। स्त्रीके मातृशक्तिका व्यक्तरूप और पतिके पितृशक्तिका व्यक्तरूप होनेसे ऐसे ही नियम होने उचित हैं।

जिस किसी भाँति इस सासारिक जीवनको निरर्गल करना ही इस मानव-समाजका उद्देश्य नहीं हो सकता। मनुष्य एक विशिष्ट जीव है; वह पशुओंकी भाँति वर्तमानसे ही सन्तुष्ट नहीं होता, उसे भविष्यकी भी चिन्ता है। उसके लिये वर्तमान

जन्मको ही सब कुछ मान लेना और परलोकपर दृष्टिपात न करना अस्वाभाविक है। वह विश्व-नियन्ताको अज्ञात और अज्ञेय (unknown, unknowable) मानकर सन्तुष्ट नहीं होता। उसकी मूर्ति मानकर उपासना करता है।

शास्त्रोंमें उसकी मूर्ति दो प्रकारकी मानी गयी है, एक स्थावर, दूसरी जङ्गम। शालग्रामादि स्थावर मूर्तियाँ हैं और गुरु जङ्गम-मूर्ति है। स्थावर मूर्तिसे जङ्गम-मूर्तिकी प्रतिष्ठा अधिक मानी गयी है। स्त्री जड प्रकृतिकी व्यक्त मूर्ति है, उसके गुरुदेव चेतनकी व्यक्त मूर्ति उसके पति हैं। 'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्' अतः पतिकी शुश्रूषासे वह कृतार्थ हो सकती है। पतिकी पूजाका अवसर मिलना सौभाग्य है, गुलामी नहीं है।

दूसरी बात यह है कि स्त्रीका अवयव-संघटन ही ऐसा है कि वह स्वभावसे ही अपावन है। उसे गर्भधात्री होना पड़ता है। वैवाहिक विधानमें 'प्राणैस्ते प्राणान् सन्दधामि। अस्थिभिरस्तेऽस्थीनि मांसैर्मांसानि त्वचा ते त्वच सन्दधामि' इत्यादि वाक्योंसे उसके प्राण, अस्थि, मांस, त्वचा पतिके प्राण, अस्थि, मांस, त्वचाके साथ एक कर दिये जाते हैं। अतः वह पतिसे गर्भ धारण करनेपर भी अशुद्ध नहीं होती। वैवाहिक सम्बन्ध ही स्त्रीको पावन करता है। वह पतिका शरीर हो जाती है। स्त्रीके लिये वैवाहिक विधि ही उपनयन है, पति-सेवा गुरुकुलमें वास है, घरका काम-काज अग्निहोत्र है। फलतः जिन लोगोंमें विवाह-संस्कार वैदिक विधिसे होता है, उनके यहाँ न विवाह-विच्छेद हो सकता है और न स्त्री पतिके मरनेपर उसका उल्लङ्घन कर सकती है।

बाल्यावस्थामें पिता रक्षा करे, यौवनमें पति रक्षा करे, वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करे, स्त्रीमें स्वातन्त्र्यकी योग्यता ही नहीं है। स्त्री कितनी ही बलवती हो, पर पुमान्पर बलात्कार नहीं कर सकती। अतः उसके शीलकी रक्षा होनी चाहिये। उसे स्वतन्त्र कदापि नहीं छोड़ना चाहिये।

ब्रह्मदेवने कहा—'स्थान न हो, मौका न हो, कोई प्रार्थना करनेवाला न हो, तब जाकर हे नारद ! स्त्रियोंमें सतीत्व उत्पन्न होता है। यदि सतीत्व उत्पन्न हो गया, तब तो स्त्रियाँ अग्नि-परीक्षामें भी खरी उतरती हैं। वे अपने जीवित पतिके लिये प्राण दे सकती हैं और मृत पतिके लिये अन्वारोहण तो उनका जगद्विख्यात है।' इसका विज्ञान कहते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥

विरहाग्निकी ज्वाला इतनी तीव्र होती है कि उसके सामने देह रूई हो जाती है। जिनके यहाँ सतीत्वकी पाठशाला ही कमी नहीं रही, वे इसे नहीं समझ सकते। भारतमें आज भी वीरपूजासे अधिक सतीपूजाका प्रचार है। इतनी विकट कानूनी रुकावटपर भी कोई साल ऐसा नहीं जाता, जिसमें सती होनेका समाचार न मिले।

जिस भाँति मानधन पुमान्में शूरता है, उसी भाँति पति-प्राणा ललनाओंमें सतीत्व है। दोनोंकी समय आनेपर प्राणको तृण माननेमें ही प्रशंसा है और अक्षय कीर्ति है। स्त्रियोंके सर्वनाशके विधाता पुरुष होते हैं; व अपने दण्डके लिये कानून नहीं बनाते, भोक्तृ-भोग्यभावरूपा प्रवृत्तिको निरर्गल करनेके लिये स्त्री-संरक्षणके नियमोंको तोड़नेके लिये आन्दोलन खड़ा करते हैं। कुत्ते और घोड़ोंके नस्लकी रक्षा चाहनेवाले यदि अपने नस्लकी रक्षाके नियमोंको तोड़ना चाहें तो सिवा उनकी विषयलालसाके और कौन सा कारण कहा जाय।

जिन देशोंमें स्त्री-स्वातन्त्र्यका प्रचार अधिक है, वहाँ स्त्रियोंकी दुर्दशा भी वर्णनातीत है। स्वतन्त्रताके कारण स्त्रियाँ भारभूत हो गयी हैं। पुरुष आजन्म गार्हस्थ्य-सुखसे वञ्चित रहना पसंद करते हैं, पर स्त्री गले बाँधना नहीं चाहते। कन्याओंको बड़ी भारी चिन्ता भर्तान्वेषणकी रहती है। उन्हें भर्ता दुर्लभ है। वहाँ जितनी संख्या विधवाओंकी है, उससे कहीं अधिक संख्या वहाँ कुमारियोंकी है। भारतमें महर्षियों-की अनुकम्पासे अभीतक यह दशा नहीं है। बेटे चाहे बिना ब्याहे रह जायँ, पर बेटियोंका ब्याह तो करना ही पड़ेगा। पिता-माता-भाई चाहे उजड़ें, चाहे बसें; पर बेटीका ब्याह बिना किये उद्धार नहीं। अन्धी, लँगड़ी, लूली कन्याओंका भी विवाह हो ही जाता है। अपने अभाग्यसे विधवा हो जायँ यह दूसरी बात है, पर एक बार भर्ता उनके पहुँचके भीतर आ ही जाता है।

भारतकी ललनाओंमें स्वधर्मका ज्ञान परम्परासे चला आता है। यदि बाहरी विकारोंसे वे बचायी जा सकें तो उन्हें धर्मशास्त्रके वचन सुनाकर शिक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं है। स्वधर्मका ज्ञान उन्हें पुरुषोंसे ज्यादा अधिक है। अतः स्त्रियोंकी अपेक्षा इस बातकी आवश्यकता पुरुषोंके लिये अधिक है कि वे स्त्रियोंके कल्याणार्थ स्त्रीधर्मको जानें और मानें।

भगवान् मनुने स्त्रीधर्मका बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उसका पालन सभी साध्वी स्त्रियोंको करना चाहिये और पुमानोंको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिसमें उनका धर्म सुरक्षित रहे।

भारतीय नारीका स्वरूप और उसका दायित्व

वर्तमान युगमें सब ओर स्वतन्त्रताकी आकाङ्क्षा जाग्रत् हो गयी है। नारीके हृदयमें भी इसका होना स्वाभाविक है। इसमें सन्देह नहीं कि स्वतन्त्रता परम श्रेष्ठ धर्म है और नर तथा नारी दोनोंको ही स्वतन्त्र होना भी चाहिये। यह भी परम सत्य है कि दोनों जबतक स्वतन्त्र नहीं होंगे, तबतक यथार्थ प्रेम होगा भी नहीं; परंतु विचारणीय प्रश्न यह है कि दोनोंकी स्वतन्त्रताके क्षेत्र तथा मार्ग दो हैं या एक ही? सच्ची बात यह है कि नर और नारीका शारीरिक और मानसिक संघटन नैसर्गिक दृष्टिसे कदापि एक-सा नहीं है। अतएव दोनोंकी स्वतन्त्रताके क्षेत्र और मार्ग भी निश्चय ही दो हैं। दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें अपने-अपने मार्गसे चलकर ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। यही स्वधर्म है। जबतक स्वधर्मको नहीं समझा जायगा, तबतक कल्याणकी आशा नहीं है। स्त्री घरकी रानी है, सम्राज्ञी है, घरमें उसका एकच्छत्र राज्य है; पर वह घरकी रानी है स्नेहमयी माता और आदर्श गृहिणीके ही रूपमें। यही उसका नैसर्गिक स्वातन्त्र्य है। इसीसे कहा गया है कि दस शिक्षकोंसे श्रेष्ठ आचार्य है, सौ आचार्योंसे श्रेष्ठ पिता है और हजार पिताओंकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ वन्दनीय और आदरणीय माता हैं।

नारीका यह सनातन मातृत्व ही उसका स्वरूप है। वह मानवताकी नित्य माता है। भगवान् राम-कृष्ण, भीष्म युधिष्ठिर, कर्ण-अर्जुन, बुद्ध महावीर, शङ्कर-रामानुज, गाँधी-मालवीय आदि जगत्के सभी बड़े-बड़े पुरुषोंको नारीने ही सृजन किया और बनाया है। उसका जीवन क्षणिक वैषयिक आनन्दके लिये नहीं, वह तो जगत्को प्रतिक्षण आनन्द प्रदान करनेवाली स्नेहमयी जननी है। उसमें प्रधानता है प्राणोंकी—हृदयकी; और पुरुषमें प्रधानता है शरीरकी। इसीलिये पुरुषकी स्वतन्त्रताका क्षेत्र है शरीर, और नारीकी स्वतन्त्रताका क्षेत्र है प्राण—हृदय। नारी शरीरसे चाहे दुर्बल हो, परंतु प्राणसे वह पुरुषकी अपेक्षा सदा ही अत्यन्त सबल है। इसीलिये पुरुष उतने त्यागकी कल्पना नहीं कर सकता, जितना त्याग नारी सहज ही कर सकती है। अतएव पुरुष और स्त्री सभी क्षेत्रोंमें समान भावसे स्वतन्त्र नहीं हैं।

कोई जोशमें आकर चाहे यह न स्वीकार करे, परंतु होशमें आनेपर तो यह मानना ही पड़ेगा कि नारी देहके क्षेत्रमें कभी पूर्णतया स्वाधीन नहीं हो सकती। प्रकृतिने उसके मन, प्राण और अवयवोंकी रचना ही ऐसी की है। वह स्वस्थ मानव शिशुको जन्म देकर अपने हृदयके अमीरससे उसे पाल-पोसकर पूर्ण मानव बनाती है। इस नैसर्गिक दायित्वकी पूर्तिके लिये ही उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका स्वाभाविक सद्व्यय होता रहा है। जगत्के अन्यान्य क्षेत्रोंमें जो नारीका स्थान सङ्कुचित या सीमित दीख पड़ता है, उसका कारण यही है कि नारी बहुक्षेत्रव्यापी कुशल पुरुषका उत्पादन और निर्माण करनेके लिये अपने एक विशिष्ट क्षेत्रमें रहकर ही प्रकारान्तरसे सारे जगत्की सेवा करती रहती है। (यदि नारी अपनी इस विशिष्टताको भूल जाय तो जगत्का विनाश बहुत शीघ्र होने लगे। आज यही हो रहा है!!)

स्त्रीको बाल, युवा और वृद्धावस्थामें जो स्वतन्त्र न रहनेके लिये कहा गया है, वह इसी दृष्टिसे कि उसके शरीरका नैसर्गिक संघटन ही ऐसा है कि उसे सदा एक सावधान पहरेदारकी जरूरत है। यह उसका पद-गौरव है, न कि पारतन्त्र्य। जिन पाश्चात्त्य देशोंमें नारी-स्वातन्त्र्यका अत्यधिक विस्तार है, वहाँ भी स्त्रियाँ पुरुषोंकी भाँति निर्भीक रूपसे विचरण नहीं कर पातीं। नारीमें मातृत्व है, उसे गर्भ धारण करना ही पड़ता है। प्रकृतिने पुरुषको इस दायित्वसे मुक्त रक्खा है और नारीपर इसका भार दिया है। अतएव उसकी शारीरिक स्वाधीनता सर्वत्र सुरक्षित नहीं है, परंतु इस दैहिक परतन्त्रतामें भी वह हृदयसे स्वतन्त्र है; क्योंकि तपस्या, त्याग, धैर्य, सहिष्णुता, सेवा आदि सद्गुण सत् स्त्रीकी सेवामें सदा लगे ही रहते हैं। पुरुषमें इन गुणोंको लाना पड़ता है, सो भी पूरे नहीं आते। स्त्रीमें स्वभावसे ही इन गुणोंका विकास रहता है। इसीसे नारी देहसे परतन्त्र होते हुए भी प्राणसे स्वतन्त्र है। नारीकी यह सेवा महान् है और केवल नारी ही इसे कर सकती है एवं इसी महत्सेवाके लिये स्रष्टाने नारीका सृजन किया है।

नारी अपने इस प्राकृतिक उत्तरदायित्वसे बच नहीं सकती। जो बचना चाहती है, उसमें विकृत रूपसे इसका उदय होता है। विकृत रूपसे होनेवाले कार्यका परिणाम बड़ा भयानक होता है। यूरोपमें नारी-स्वातन्त्र्य है। पर वहाँकी स्त्रियाँ क्या इस प्राकृतिक दायित्वसे बचती हैं? क्या वासनाओंपर उनका नियन्त्रण है? वे चाहे विवाह न करें, या सामाजिक विघटन होनेके कारण चाहे उनके विवाह योग्य उम्रमें न होने पावें; परंतु

पुरुष-संसर्ग तो हुए बिना रहता नहीं। कुछ दिनों पूर्व इंग्लैंड-की पार्लमेंटकी साधारण सभामें एक प्रश्नके उत्तरमें मजदूर सदस्य श्रीयुत लेजने बतलाया था कि 'इंग्लैंडमें बीस वर्षकी आयुवाली कुमारियोंमेंसे चालीस प्रतिशत विवाहके पहले ही गर्भवती पायी जाती हैं और विवाहित स्त्रियोंके प्रथम सन्तान-में चारमें एक अर्थात् पचीस प्रतिशत नाजायज (व्यभिचार-जन्य) होती है।' आपने यह भी कहा कि 'देशका ऐसा नैतिक पतन कभी देखनेमें नहीं आया।' कहते हैं, अमेरिका-की स्थिति इनसे भी कहीं अधिक भयानक है। क्या ऐसा स्त्री-स्वातन्त्र्य भारतीय स्त्री कभी सहन कर सकती है?

विदेशियोंका पारिवारिक जीवन प्रायः नष्ट हो गया है। सम्मिलित कुटुम्ब—जो दया, प्रेम, स्नेह, परोपकार, जीव-सेवा, संयम और शुद्ध अर्थ वितरणकी एक महती संस्था है, जिसमें दादा-दादी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, भाई-भौजाई, देवर-जेठ, सास-पतोहू, मामा-मामी, बूआ-बहिन, मौसी-मौसे, भानजे-भानजी, भतीजे-भतीजी आदिका एक महान् सुशृङ्खल कुटुम्ब है और जिसके भरण-पोषण तथा पालनमें गृहस्थ अपनेको धन्य और कृतार्थ समझता है—का तो नामोनिशान भी वहाँ नहीं मिलेगा। स्वतन्त्रता तथा समानाधिकारके युद्धने वहाँके सुन्दर घरको मिटा दिया है! इसीसे वहाँ जरा-जरा-सी बातमें कलह, अशान्ति, विवाह-विच्छेद या आत्महत्या हो जाती है। वहाँ स्त्री अब घरकी रानी नहीं है, घरमें उसका शासन नहीं चलता, गृहस्थ-जीवनका परम शोभनीय आदर्श उसकी कल्पनासे बाहर-की वस्तु हो गया है। घरको सुशोभित करनेवाली श्रेष्ठ गृहिणी, पतिके प्रत्येक कार्यमें हृदयसे सहयोग देनेवाली सहधर्मिणी और बच्चोंको हृदयका अमृतरस पिलाकर पालनेवाली माताका आदर्श वहाँ नष्ट हुआ जा रहा है। 'व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य' और 'स्वतन्त्र प्रेम' के मोहमें वहाँकी नारी आज इतनी अधिक पराधीन हो गयी है कि उसे दर-दर भटककर विभिन्न पुरुषों-की ठोकरें खानी पड़ती हैं। जगह-जगह प्रेम बेचना पड़ता है, नौकरीके लिये नये-नये मालिकोंके दरवाजे खटखटाने पड़ते हैं और No Vacancy की सूचना पढ़कर निराश लौटना पड़ता है। यह कैसी स्वतन्त्रता है और कैसा सुख है? और खेद तथा आश्चर्य है कि आज भारतीय महिलाएँ भी इसी स्वतन्त्रता और सुखकी ओर मोहवश अग्रसर हो रही हैं!!

लोग कहते हैं, वहाँकी शिक्षिता स्त्रियोंमें बहुमुखी विकास हुआ है। इसमें इतना तो सत्य है कि वहाँ स्त्रियोंमें अक्षर-ज्ञानका पर्याप्त विस्तार है; परन्तु इतने ही मात्रसे कोई सुशिक्षित और विकसित हो जाय, ऐसा नहीं माना जा सकता। वास्तवमें शिक्षा वह है, जो मनुष्यमें उसके स्वधर्मानुकूल कर्तव्यको जाग्रत् करके उसे उस कर्तव्यका पूरा पालन करने योग्य बना दे। यूरोपकी स्त्री-शिक्षाने यह काम नहीं किया। स्त्रियोंको उनके नैसर्गिक धर्म-के अनुकूल शिक्षा मिलती तो बड़ा लाभ होता। प्रकृतिके विरुद्ध शिक्षासे इसी प्रकार बड़ी हानि हुई है। इस युगमें स्त्रियों-को जो शिक्षा दी जाती है, क्या उससे सचमुच उनका स्वधर्मोचित विकास हुआ है? क्या इस शिक्षासे स्त्रियाँ अपने कार्यक्षेत्रमें कुशल बन सकी हैं? क्या अपने क्षेत्रमें जो उनकी नैसर्गिक स्वतन्त्रता थी उसकी पूरी रक्षा हुई है? उसका अपहरण तो नहीं हो गया है? सच पूछिये तो सैकड़ों वर्षोंसे चली आती हुई यूरोपकी शिक्षाने वहाँ कितनी महान् प्रतिभा-शालिनी स्वधर्मपरायणा जगत्की नैसर्गिक रक्षा करनेवाली महिलाओंको उत्पन्न किया है? बल्कि यह प्रत्यक्ष है कि इस शिक्षासे वहाँकी नारियोंमें गृहिणीत्व तथा मातृत्वका ह्रास हुआ है। अमेरिकामें ७७ प्रतिशत स्त्रियाँ घरके कामोंमें असफल साबित हुई हैं। ६० प्रतिशत स्त्रियोंने विवाहोचित उम्र बीत जानेके कारण विवाहकी योग्यता खो दी है। विवाहकी उम्र वहाँ साधारणतः १६ से २० वर्षतककी ही मानी जाती है। इसके बाद ज्यों-ज्यों उम्र बड़ी होती है, त्यों-ही-त्यों विवाहकी योग्यता घटती जाती है। इसीका परिणाम है कि वहाँ स्वेच्छाचार, अनाचार, व्यभिचार और अत्याचार उत्तरोत्तर बढ़ गये हैं। अविवाहित माताओंकी संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है। घरका सुख किसीको नहीं। बीमारी तथा बुढ़ापेमें कौन किसकी सेवा करे। वहाँकी शिक्षिता स्त्रियोंमें लगभग ५० प्रति-शतको कुमारी रहना पड़ता है और बिना ब्याहे ही उनको वैधव्य-का-सा दुःख भोगना पड़ता है। यही क्या बहुमुखी विकास है!

इसके सिवा वर्तमान शिक्षाका एक बड़ा दोष यह है कि स्त्रियोंमें नारीत्व और मातृत्वका नाश होकर उनमें पुरुषत्व बढ़ रहा है और उधर पुरुषोंमें स्त्रीत्वकी वृद्धि हो रही है! नारी नियमित व्यायाम करके और भाँति-भाँतिके अन्यान्य साधनोंके द्वारा 'मर्दाना' बनती जा रही है, तो पुरुष अङ्ग-लालित्य, भाव-भङ्गिमा, केश-विन्यास और स्वर-माधुर्य आदि-के द्वारा 'जनाना' बनते जा रहे हैं। स्त्रियोंमें मर्दानगी जरूर आनी चाहिये! उनको रणचण्डी और दशप्रहरणधारिणी दुर्गा बनना चाहिये। परन्तु बनना चाहिये [illegible] इच्छा रखनेवाले दुष्ट आततायीको दण्ड देनेके लिये ही। यह तभी होगा, जब उनमें पत्नीत्व और मातृत्वका अक्षुण्ण रूप स्थिर

रहेगा। भारतवर्षने तो नारीकी रणरङ्गिणी मुण्डमालिनी कराली कालीके रूपमें और सिंहवाहिनी महिषमर्दिनी दुर्गाके रूपमें पूजा की है। परंतु वहाँ भी वह है मा ही। स्नेहमयी माता, प्रेममयी पत्नी यदि वीराङ्गना बनकर रण-सज्जा-सुसज्जित होकर मैदानमें आवेगी तो वह आततायियोंके हाथसे अपनी तथा अपने पति-पुत्रकी रक्षा करके समाज और देशका अपरिमित मङ्गल एवं मुख उज्ज्वल करेगी। परंतु इस हृदय-धनको खोकर, मनकी इस परम मूल्यवान् सम्पत्तिको गँवाकर केवल देहके क्षेत्रमें स्वतन्त्र होनेके लिये यदि नारी तलवार हाथमें लेगी तो निश्चय समझिये, उस तलवारसे प्यारी संतानोंके ही सिर धड़से अलग होंगे, प्राण-प्रियतम पतियोंके ही हृदय बेधे जायँगे और सबके मुखोंपर कालिमा लगेगी!! स्त्रियोंको रणरङ्गिणी बननेके पहले इस बातको अच्छी तरह सोच रखना चाहिये। अत्याचारी, अनाचारीका दमन करनेके लिये हमारी मा-बहिनें रणचण्डी बनें, परंतु हमारी रक्षा और हमारे पालनके लिये उनके हृदयसे सदा अमीरस बहता रहे। वहाँ तलवार हाथमें रहे ही नहीं।

अतएव इस भ्रमको छोड़ देना चाहिये कि 'वर्तमान यूरोप-अमेरिकामें स्त्रियाँ स्वतन्त्र होनेके कारण सुखी हैं और उन्हें वर्तमान शिक्षासे सच्चा लाभ हुआ है।' फिर यदि मान भी लें कि किसी अंशमें लाभ हुआ भी हो तो वहाँका वातावरण, वहाँकी परिस्थिति, वहाँके रस्मोरिवाज, वहाँकी संस्कृति और वहाँका लक्ष्य दूसरा है तथा हमारा बिल्कुल दूसरा। वहाँ केवल भौतिक उन्नति ही जीवनका लक्ष्य है; हमारा लक्ष्य है परमात्माकी प्राप्ति। परमात्माकी प्राप्तिमें सर्वोत्तम साधन है विलास-वासनाका त्याग और इन्द्रियसंयम। इसका खयाल रखकर ही हमें अपनी शिक्षा-पद्धति बनानी चाहिये। तभी हमारी नारियाँ आदर्श माता और आदर्श गृहिणी बनकर जगत्का मङ्गल कर सकेंगी।

कहा जा सकता है कि क्या स्त्रियाँ देशका, समाजका कोई काम करें ही नहीं? ऐसी बात नहीं है। करें क्यों नहीं, करें, पर करें अपने स्वधर्मको बचाकर। अपने स्वधर्मकी जितनी भी शिक्षा अशिक्षित बहिनोंको दी जा सके, उतनी अपने उपदेश और आचरणोंके द्वारा वे अवश्य दें। सच्ची बात तो यह है कि यदि पति, पुत्र, पुत्रियाँ सब ठीक रहें, अपने-अपने कर्तव्य-पालनमें ईमानदारीसे संलग्न रहें, तो फिर देशमें, समाजमें ऐसी बुराई ही कौन-सी रह जाय, जिसे सुधारनेके लिये माताओंको घरसे बाहर निकलकर कुछ करना पड़े? और पुरुषोंको सत्पुरुष बनानेका यह काम है माताओंका। माताएँ यदि अपने स्व-धर्ममें तत्पर रहें तो पुरुषोंमें उच्छृङ्खलता आवेगी ही नहीं। अतः भारतकी आदरणीय देवियोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे अपने स्वरूपको सँभालें। अपने महान् दायित्वकी ओर ध्यान दें और पुरुषोंको वास्तविक स्वधर्मपरायण पुरुष बनावें। पुरुषोंकी प्रतिमाका वैसा ही निर्माण होगा, जैसा सर्वशक्तिमयी माताएँ करना चाहेंगी। आज जो पुरुष बिगड़े हैं, इसका उत्तरदायित्व माताओंपर ही है। वे उन्हे बना सकती हैं। यदि माताएँ पुरुषोंकी परवा न करके, अपने पति-पुत्रोंकी कल्याण-कामना न करके अपनी स्वतन्त्र व्यक्तिगत कल्याण-कामना करने लगेंगी, तो पुरुषोंका पतन अवश्यम्भावी है और जब पति-पुत्र बिगड़ गये तो गृहिणी और माता भी किसके बलपर अपने सुन्दर स्वरूपकी रक्षा कर सकेंगी। पुरुषोंको बचाकर अपनेको बचाना—पुरुषोंको पुरुष बनाकर अपने नारीत्वका अभ्युदय करना—इसीमें सच्चा कल्याणकारी नारी-उद्धार है। पुरुषको बे-लगाम छोड़कर नारीका उसकी प्रतिद्वन्द्वी होकर अपनी स्वतन्त्र उन्नति करने जाना तो पुरुषको निरङ्कुश, अत्याचारी, स्वेच्छाचारी बनाकर उसकी गुलामीको ही निमन्त्रण देना है और फलतः समाजमें दुःखका ऐसा दावानल धधकाना है, जिसमें पुरुष और स्त्री दोनोंके ही सुख जलकर खाक हो जायँगे!! भगवान्की कृपासे नारीमें सुबुद्धि *जाग्रत् हो, जिसमें वह अपने उत्तरदायित्वको समझे और स्वधर्म-*परायण होकर जगत्का परम मङ्गल करे। —ह० प्र० पो०

मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति। सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह॥

(याज्ञवल्क्य)

जो नारी पतिके जीवित रहते और उसकी मृत्युके बाद भी कभी दूसरे पुरुषकी इच्छा नहीं करती, उसको इस लोकमें कीर्ति मिलती है और परलोकमें पति-पत्नी दोनों साथ रहकर आनन्दका उपभोग करते हैं।

भारतीय नारी

(लेखक—पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री, साहित्यरत्न)

यह कहना उचित नहीं है कि भारतीय गृहस्थ घरमें कन्याका जन्म नहीं चाहता । जबतक वैदिक साहित्यका यह वचन जागरूक है—

अथ य इच्छेद्दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियात् ।

(बृहदारण्यक० ६ । ४ । १७)

—तबतक किसी भारतीयको कन्याजन्म सुनकर दुःखित नहीं होना चाहिये । यह तो वर्तमान आर्थिक सङ्कटका अभिशाप है कि घरमें नवजात कन्या शत्रुवत् प्रतीत होती है और फिर अपने चाहने न चाहनेसे होता ही क्या है ! दम्पति निरन्तर चाहते हैं कि उनके पुत्र हो, किंतु होती है पुत्री । वैदिक सभ्यता जब अपने विकासपर थी, तब यहाँके लोग इच्छानुसार पुत्र-पुत्री प्राप्त कर सकते थे । उदाहरणके लिये, सन्तानके अभिलाषी वैवस्वत मनु महाराजकी पत्नीने पुत्रेष्टि यज्ञके अवसरपर होतासे कन्याके लिये याचना की थी—

तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत ।
दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥

(श्रीमद्भा० ९ । १ । १४)

इला इसी यज्ञका प्रसाद थी, किंतु इस युगमें वेदोंकी ओरसे उदासीनता, पुत्रेष्टि आदि यज्ञोंमें अरुचि प्रभृति कारणोंसे भारतीय दम्पति इच्छानुसार सन्तति-लाभमें असफल हो रहे हैं । एक ओर अपने प्रमाद और आलस्यसे अमोघ वैदिक उपायोंका अवलम्बन छूट गया; दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वानोंके बताये हुए अनिश्चित* उपाय मोघ ही रहे । अतएव घरोंमें कन्याओंका जन्म होता ही रहता है और होता भी रहेगा । प्रकृति भी यही चाहती है कि घरोंमें केवल पुत्र ही न हों, पुत्रियाँ भी हों ।

नारीका सर्वप्रथम रूप वह है जब कि वह नवजात पुत्रीके रूपमें भूमिष्ठ होती है । क्रमशः वह स्तनन्धया होती है और आदर्श घरोंमें वह माता-पिताके पुत्रनिर्विशेष वात्सल्यको प्राप्त करके बड़ी होती है । अपने शैशव और बाल सुलभ क्रीडाओंसे वह परिवारके आमोद-प्रमोदमें उतनी ही सहायक होती है जितनी कि उसके अग्रज और अनुज । कुछ और बड़ी होनेपर जब वह खेलने लगती है, तब चतुर माता उसको घरौंदेके खेलद्वारा अनायास ही गृहनिर्माणकला और गृहव्यवस्थाकी शिक्षा देती है, गुड्डे-गुड़ियाके खेलद्वारा खिलौने बनाने एवं कपड़ोंकी सिलाई-बुनाई आदिका पाठ पढ़ाती है और 'सीताकी रसोई' द्वारा पाकशास्त्रका परिचय कराती है । भाई-बहिनोंके साथ प्रेमपूर्वक सम्भाषण और व्यवहार सिखाती है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।

(अथर्ववेद ३ । ३० । ३)

जबतक उसके शरीरमें कैशोरके लक्षणोंका उदय नहीं होता, उसकी माता उसके परिधानकी ओर विशेष ध्यान नहीं देती । वह घुटन्ना पहनकर भी घूम फिर लेती है । ऐसी अवस्थावाली बालिकाका पारिभाषिक नाम है नग्निका* । किंतु कैशोरके उदयके साथ स्तनोद्गमादि लक्षणोंके प्रकट होनेसे माता उसे नग्नावस्थामें नहीं रहने देना चाहती । उसके लिये ऐसे परिधानका आयोजन करती है, जिससे उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग उघड़े न रहें, क्योंकि अब वह 'मध्यमा'† अवस्थामें पदार्पण कर चुकी है । प्रवृत्तरजस्का होनेके कारण उस अवस्थाको मध्यमा कहा जाता है, क्योंकि उससे पूर्वकी अवस्था होती है अनागतरजस्का और उत्तरावस्था होती है निवृत्तरजस्का । जबतक उसका विवाह नहीं होता तबतक वह कन्या एवं कुमारी कहलाती है । प्राचीन कालमें कुमारियोंका मौञ्जीबन्धन‡ होता था, किंतु अर्वाचीन कालमें महर्षियोंने इस नियमका प्रतिबन्ध कर दिया । वह अब घरमें ही वयोवृद्ध अभिभावकोंसे

---

* Such instructions may seem attractive and promising to some people; I give them as respectful a hearing as my judgment will permit, but the reader should understand very clearly that practically each and every theory or "law", though "highly authenticated," has proven disappointing in so many cases that no one is justified in promising the desired results in any given case

("Confidential Talks with Husband and Wife" by L. B Sperry, M. D, Chapter on Predetermination of Sex)

---

* नग्निकाऽनागतार्तवा । (अमरकोश २ । ६ । ८)

† स्यान्मध्यमा दृष्टरजाः । (अमरकोश २ । ६ । ८)

‡ पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते । (यम०)

अथवा कन्याविद्यालयोंमें, आवश्यक गृहस्थोपयोगी शिक्षा प्राप्त कर लेती है। सहशिक्षामें भारतीय संस्कृतिको ठेस लगती है, अतएव किशोर-किशोरियोंको उससे बचाना चाहिये।

नवरात्रमें माता उसके लिये साँझी (सन्ध्यादेवी) बनाती है और मूर्तियोंकी रचना सिखाकर जगद्धात्री महामायादेवीकी पूजा कराती है। उसे ललित कलाओं (नृत्य, गीत, वाद्य) का अभ्यास कराया जाता है, जिसका प्रदर्शन पारिवारिक विशिष्ट उत्सवोंपर होता रहता है।

कन्याका कैशोर उसके माता पिताको यह सूचना देता है कि अब इसके लिये वरका अन्वेषण कीजिये। सावधान माता-पिता इस ओर यथासमय दत्तचित्त हो जाते हैं, जिससे कि कैशोरके परिपाक अथवा नवयौवनोन्मेषके होते-होते कन्या अपने पतिकुलमें* पहुँच जाय। पति-पत्नीका आयुर्वेदशास्त्र-सम्मत वय सर्वथा श्रेयस्कर है—पत्नी १६ की (कहीं १८की माना गया है) और पति २५ का। धर्मपत्नी, पाणिगृहीती, सहधर्मिणी, अर्धाङ्गिनी, भार्या, दारा ये सब पत्नीके ही नामान्तर हैं।

नर-नारीका पारस्परिक आकर्षण नैसर्गिक है। भगवान्के सृष्टि-सौष्ठवका यह अन्यतम निदर्शन है और प्रजावृद्धिके लिये इस आकर्षणकी परम आवश्यकता है। जिस प्रकार भोजनसे दो अर्थ सिद्ध होते हैं—जिह्वाद्वारा षड्रसका अनुभव और शरीरकी पुष्टि, उसी प्रकार नर नारीसम्बन्धसे भी दो अर्थ सिद्ध होते हैं—रति और सन्तति—

केनानन्दं रतिं प्रजातिम् (कौषीतकी उपनिषद १।७)

विधाताने खाद्य पदार्थोंमें अनेक प्रकारका स्वादमय आकर्षण रक्खा है, जिससे प्राणी अनायास खाद्य पदार्थोंके प्रति आकृष्ट होकर उनको आत्मसात् करके बलवृद्धि प्राप्त करता है। इसी प्रकार नारीका नरके प्रति और नरका नारीके प्रति सहज आकर्षण भी विधाताका विधान है, जिससे वे दोनों रतिके साथ-साथ सन्ततिको भी पा लेते हैं। रतिका ही दूसरा नाम आनन्द है। यह केवल लौकिक अनुभवकी ही बात नहीं है अपि तु शास्त्रकारोंने भी इसका समर्थन किया है। ईश्वरकृष्णने अपनी कारिकामें पञ्चम कर्मेन्द्रियका विषय आनन्द ही बताया है (किसी-किसीने इसे ब्रह्मानन्दका समकक्ष† तक कहा है)—

वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानाम्।

उपर्युक्त आकर्षणमें प्राणियोंकी स्वतः प्रवृत्ति है—

प्रवृत्तिरेषा भूतानाम्.......। (मनुस्मृति)

और इसका पारिभाषिक नाम है काम—

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः।

(कामसूत्र—अधिकरण १, अध्याय २)

यह काम चार पुरुषार्थोंमेंसे एक है, अतः मानवजीवनमें इसका बड़ा महत्त्व है। इसके दो भेद हैं—धर्मविरुद्ध और धर्माविरुद्ध। जब यह धर्मविरुद्ध होता है तो नर-नारीकी विविध अवनतिका कारण होता है; किंतु धर्मसे अविरुद्ध होनेपर यह उनकी सर्वाङ्गीण सुख-समृद्धिका पोषक होता है। अतएव धर्मसंयुक्त काम श्रीभगवान्की विभूति है

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। (गीता ७।११)

मानवकी निरर्गल कामवासनाको संयत, परिष्कृत एवं धर्म्य बनानेके लिये महर्षियोंने परिसंख्यावाक्योंद्वारा विवाह प्रथाकी अनुमति दी है

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥

(श्रीमद्भा० ११।५।११)

आठ प्रकारके ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच नामक विवाहोंमें उत्तरोत्तर हीनता है। इनमें पहले चार ही प्रशंसार्ह हैं। एवं शास्त्रमें सवर्णविवाह ही अच्छा माना गया है। वात्स्यायनने लिखा है कि

कामश्चतुर्षु वर्णेषु सवर्णतः शास्त्रतश्चानन्यपूर्वायां प्रयुज्यमानः पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च।

(कामसूत्र अधिकरण १, अध्याय ५)

उक्त उद्धरणमें नारीका जो 'अनन्यपूर्वा' विशेषण दिया गया है, उससे सिद्ध होता है कि नारीका एक ही विवाह प्रशस्त है। अन्यपूर्वासे विवाह भारतीय सुरुचिके प्रतिकूल है। कन्या एक बार ही पतिको वरण करती है। उसका एक ही बार दान होता है

सकृत्प्रदीयते कन्या।

भार्याके दो भेद हैं—एकचारिणी और सपत्नी। इनमें एक चारिणी ही प्रधान है और यही आदर्श है। वात्स्यायन-निर्दिष्ट सद्वृत्तके अनुसार वह पतिको देवता ही नहीं, परमेश्वर

---

* मङ्गलीः पतिलोकमाविश शं नो भव द्विपदे।

(ऋक्संहिता १०।८५।४७)

† सुरते च समाधौ च माया यत्र न लीयते।
ध्यानेनापि हि किं तेन किं तेन सुरतेन वा॥

समझती है और सदा उसके अनुकूल रहती है। यद्यपि पति न तो परमेश्वर है और न परमेश्वर पतिरूपमें आया है, तथापि पतिमें परमेश्वरकी-सी भावना नारीके आध्यात्मिक विकासमें सहायक अवश्य होती है, जिस प्रकार 'गुरुरेव परं ब्रह्म' की भावना शिष्यके विकासमें। पति तो साधारण नर है, परमेश्वर नारायण ठहरे; फिर भी पतिके प्रति नारीके आदरातिशयको प्रकट करनेके लिये पति शब्दके साथ परमेश्वरका प्रयोग किया जाता है, जैसे गुरु शब्दके साथ देव शब्द।

भार्या अपने पतिकी आज्ञासे घरका प्रबन्ध अपने अधिकारमें ले लेती है। वह घरको झाड़-बुहारकर, लीप-पोतकर स्वच्छ रखती है, कुसुमस्तबकों (गुलदस्तों)के उपयोगसे सुन्दर रखती है और ऐसा प्रबन्ध रखती है कि घरके इष्टदेवताका पूजन विधिपूर्वक होता रहे। गोनर्दीय नामक आचार्यकी सम्मति है कि स्वच्छ और सुन्दर घरसे बढकर मनोरञ्जक वस्तु गृहस्थ व्यक्तियोंके लिये और कोई नहीं है। घरके आसपास कच्ची भूमिमें वह हरे साग, धनिया, पोदीना, अदरख, जीरा, सौंफ, अजवायन लगाती है एवं बेला, चमेली आदि सुगन्धित पुष्पोंके पौधे भी। बगीचीमें बैठनेके लिये छोटे-छोटे चबूतरे बनवाती है और बीचमें जलकी सुविधाके लिये कुआँ या बावली खुदवाती है। भिक्षुकी, श्रमणा, कुलटा, कुहका (जादूगरनी) के साथ मेल-जोल नहीं रखती। इस बातको जानती है कि पतिको भोजनमें क्या रुचता है और क्या नहीं, एवं कौन-सा पदार्थ उनकी प्रकृतिके अनुकूल है और कौन सा प्रतिकूल। बाहरसे आते हुए पतिदेवके स्वरको पहचानकर आँगनमें खड़ी होकर सेवाके लिये प्रस्तुत रहती है। दासीको मना करके स्वयं पतिदेवके चरणोंको धोती है। उनके सम्मुख बिना आभूषण धारण किये नहीं आती। अतिव्यय या असद्-व्यय करते हुए पतिको एकान्तमें समझाती है। यदि किसी विवाह, यज्ञ अथवा प्रीतिभोजमें सम्मिलित होनेके लिये निमन्त्रण आता है, तो पतिकी आज्ञा लेकर सखियोंके साथ जाती है, अकेली नहीं। झूला आदि विविध मनोरञ्जक क्रीडाओंमें पतिकी सम्मतिसे ही प्रवृत्त होती है। पतिसे पहले जागती है, पीछे सोती है और सोते हुए पतिको नहीं जगाती। चौके (पाकालय) को छिपकली आदिसे सुरक्षित और हर प्रकारसे सजाकर रखती है। पतिदेव यदि कोई प्रतिकूल कार्य भी करें तो स्वल्प प्रतिवाद ही करती है, अधिक नहीं। उलाहना भले ही दे लेती है, किंतु उन्हें अनुकूल बनानेके लिये जादू-टोनेका आश्रय नहीं लेती। पतिके* प्रति दुर्वचन, क्रोधपूर्ण दृष्टि और दूसरी ओर मुँह करके बोलना—इन तीन दोषोंको अपने पास फटकने नहीं देती। न तो वह द्वारपर बैठती है और न वहाँ आते-जाते पुरुषोंकी ही ओर दृष्टिपात करती है। न तो वह बाग-बगीचोंमें जाकर बाहरवालोंसे परामर्श करती है और न एकान्तमें ही बहुत देरतक बैठती है। वह जानती है कि दाँत मैले रहनेसे और पसीने आते रहनेसे शरीरसे दुर्गन्ध आती है, अतएव वह मञ्जन और मञ्जनका सदुपयोग करती रहती है। पतिदेवके सम्मुख उपस्थित होते समय अनेक प्रकारके आभूषण, पुष्प एवं सुगन्धित, उज्ज्वल वस्त्र धारण करती है; और उनके साथ सैर करने जाते समय हलके, चिकने, थोड़े और बढ़िया कपड़े पहनती है, थोड़े ही गहने पहनती है, सुगन्ध द्रव्य लगाती है और हलका सा अनुलेपन और पुष्पमालाएँ धारण करती है। पतिदेवके अङ्गीकृत व्रत और उपवासोंको स्वयमपि करती है; उन व्रतोपवासोंको करनेसे पतिदेव रोकें तो वह कहती है कि इस विषयमें आप कृपया आग्रह न करें। घड़े, सुराही, गोल, मटके, टोकरे, पिटारे, खाट, पीढ़े तथा आवश्यक बर्तन [illegible] यथा-समय सस्ते दामोंमें संग्रह करती रहती है। नमक, घी, सुगन्ध-द्रव्य और ओषधियोंको अपने अपने स्थानपर भली-भाँति सुरक्षित रखती है। अपने घरकी गुप्त बातोंको बाहरवालोंसे [illegible] नहीं कहती। घरकी वार्षिक आयको जानकर उसके भीतर-ही-भीतर व्यय करती है। पीनेसे बचे हुए दूधसे [illegible] भी निकालती है। तिल-सरसों पिलवाकर तेल निकलवाती है और गन्ना पिलवाकर उसके रससे गुड़ बनवा लेती है। [illegible] कातकर कपड़ा बुन लेती है। छींके, अदवायन, रस्सी, [illegible]-का संग्रह करती है। नाजको छानती बीनती और [illegible]-पीसती है। घरके पालतू पशु पक्षियोंकी†—[illegible], तोता, [illegible], कोयल, मृग, मयूर, वानरोंकी—देख-रेख करती है। पतिदेवके फटे-पुराने वस्त्रोंको‡ धुलवाकर और [illegible] नौकर चाकरों को पारितोषिक रूपसे उत्सवोंपर वितरण करती है। [illegible] मित्रोंका पान-सुपारी माला देकर आदर करती है। [illegible]

---

* जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।

(अथर्ववेद ३। ३०। २)

† शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे। ([illegible])

‡ धरि धुवाय रतनावली निज सिय पट पुरान। [illegible]

[illegible]

([illegible])

[illegible] सेवा करती है, उनके अधीन रहती है, उन्हें उत्तर नहीं देती और उनकी उपस्थितिमें मित और शान्त वचनोंका उच्चारण करती है एवं ऊँचे स्वरसे नहीं हँसती। पतिके [illegible] का आदर करती है। पतिकुलके प्रिय और अप्रियको अपना भी प्रिय और अप्रिय समझती है। अपनी उत्तम दशाका गर्व नहीं करती। कुटुम्बमें सभीको अपने कौशलसे प्रसन्न रखती है। पतिकी जानकारीमें लाये बिना दान नहीं करती। नौकर-चाकरोंको अपने-अपने काममें लगाये रखती है और तीज-त्यौहारपर उन्हें पुरस्कारादि देती है। भाईके हितके लिये नागपञ्चमी और भ्रातृद्वितीया, पतिके कल्याणके लिये वट-सावित्री और करकचतुर्थी एवं पुत्रके मङ्गलके लिये अहोई आठें मनाती है। पातिव्रतके पालनमें जगज्जननी श्रीलक्ष्मीजीके मायामानुषरूप सीताजीका आदर्श सम्मुख रखती है।

पतिके विदेश जानेपर उसका नाम 'प्रोषितपतिका' होता है। उन दिनों वह सौभाग्यसूचक आभूषणोंके अतिरिक्त अन्य आभूषणोंको धारण नहीं करती। इष्टदेवताकी आराधनामें व्रत और उपवास करती है। पतिके समाचार जाननेमें प्रयत्नशील रहती है और स्वयं घरका प्रबन्ध करती है। सास आदि गुरुजनोंके निकट शयन करती है और उनका प्रिय आचरण करती हुई पतिदेवके अभीष्ट नवीन द्रव्योंका संग्रह और संगृहीत द्रव्योंका प्रतिसंस्कार करती-कराती रहती है। नित्य-नैमित्तिक कार्योंमें उचित व्यय करती है। पतिके प्रारम्भ कराये हुए मन्दिर, उद्यान आदिके निर्माणको पूरा कराती है। बिना किसी 'कारज' के पीहर नहीं जाती और जाती भी है तो पतिकुलवाले किसी व्यक्तिविशेषके साथ। प्रोषितपतिकाके ही वेषको धारण किये रहती है और वहाँ बहुत दिनोंतक नहीं ठहरती। पतिदेवके प्रवाससे लौटनेपर उसी वेषमें उनके दर्शन करती है, तदनन्तर उनके कुशलपूर्वक घर आ जानेकी प्रसन्नताके उपलक्ष्यमें देवताओंका विविध उपहारोंद्वारा पूजन करती है। यही भार्याका सद्वृत्त है, जिसकी प्रशंसामें कामसूत्रका यह श्लोक है—

> धर्ममर्थं तथा कामं लभन्ते स्थानमेव च।
> निरसपत्नं च भर्तारं नार्यः सद्वृत्तमाश्रिताः॥

पतिकुलके उत्तरदायित्वपूर्ण श्रमसाध्य कार्योंको करते-करते कभी-कभी तीज-त्यौहारोंपर—पर्वोत्सवोंपर—जब वह पतिकुलसे पितृकुल आया करती है तो मानो उसे विश्रामका प्रचुर अवसर-सा मिल जाता है। इस प्रकारका परिवर्तन उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये अतीव हितावह होता है। इन दिनों वह चिरण्टी और सुवासिनी कहलाती है।

आदर्श नारी आततायियोंमें बन्धुत्व-भावना रखनेवाले नपुंसकोंके नेतृत्वमें चलकर अपने सतीत्वके खोये जानेकी आशङ्कामात्रसे क्षुब्ध हो उठती है। देव-दानव-युद्धमें देवताओंकी विजय होगी, किंतु कारणवश देवताओंके निर्बल पड़ जानेपर नारी अपने ब्रह्माणी*, वैष्णवी, माहेश्वरी, वाराही, नारसिंही, कौमारी आदि रूपोंमें संघटित होकर, शस्त्र लेकर रण-रङ्गमें अवतीर्ण हो जाती है। प्रेममयी होनेके कारण वह केवल शृङ्गारके रस-रङ्गको ही जानती हो—ऐसा नहीं है; आवश्यकता पड़नेपर वीरताके रण-रङ्गको भी वह अपना लेती है। वह केवल सरस्वती और लक्ष्मीकी ही उपासना तो नहीं करती, काली भी उसकी उपास्यदेवी है। वह वाणीसे वीणा बजाना सीखती है, कमलासे कमलोपम सौकुमार्य सीखती है, तो रणचण्डीसे प्रखर करवाल-धारण भी तो सीखती है। वह वीर पुत्रियों, वीर वधुओं और वीर माताओंके देशमें उत्पन्न हुई है। विरोधियोंद्वारा आत्मसम्मानको पददलित होने देनेसे पूर्व ही वह स्वयं छिन्नमस्ता बनना स्वीकार कर लेती है। आर्तत्राणपरायण श्रीभगवान्‌से वह प्रार्थना करती है कि दस्युओंसे उसकी जातिका पराभव न हो। कवियोंने उसके अबलारूपका वर्णन बहुत किया है, उसके वीराङ्गनारूपका उतना चित्रण क्यों नहीं करते? क्या व्यासके मार्कण्डेयपुराणकी दुर्गाका नारीरूप नहीं था? क्या दुर्गावती और लक्ष्मीबाई इस देशकी नहीं थीं? यदि थीं तो क्यों नहीं अब देशमें वीरगाथाओंके साहित्यका सृजन होता? जब राजरानी कैकेयी रणभूमिमें जा सकती थीं तो अन्य नारियाँ क्यों नहीं जा सकतीं? नारियोंकी वीरता और कायरता पुरुषसापेक्ष हैं। पुरुष चाहें तो वे अवश्य वीर बन सकती हैं। नीतिका एक वचन है—

> अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च।
> पुरुषविशेषं प्राप्य भवन्ति योग्या अयोग्याश्च॥

गृहस्थके रङ्गमञ्चपर नारी अपने नायक (पति) की नायिका है। वह 'स्वकीया नायिका' के साहित्यशास्त्रोक्त—

> विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया।
> (साहित्यदर्पण)

---

* यदि देशमें नारियोंकी सहायक सेनाका संघटन वाञ्छनीय हो तो उसके अङ्गोंके लिये ये नाम दिये जा सकते हैं; पर भगवान् न करें स्त्रियोंको सेनामें भर्ती होनेके भी दिन आ जायँ।

—इस वचनमें निर्दिष्ट गुणोंको अपनेमें लानेका निरन्तर प्रयत्न करती है। उसके प्रेमपाशसे बँधे हुए पतिदेवका मन अन्यत्र विचलित नहीं होता। अतएव वह 'स्वाधीनभर्तृका' और 'अखण्डिता' है। पतिव्रता होनेके कारण वह एकमात्र अपने प्रियतमकी ही 'अभिसारिका' है। पतिदेवके प्रति कभी क्रोध न करनेके कारण उसे कोई कभी 'कलहान्तरिता' नहीं देख पाता और इसी कारण पतिद्वारा भी वह कभी 'अवमानिता' नहीं होती। पतिके सान्निध्यमें वह 'वासकसज्जा' बनी रहती है, किंतु 'प्रोषितभर्तृका' होनेपर मलिन-सा ही वेष धारण किये रहती है। पतिदेवकी ही आराधनामें वह भाव, हाव आदि अट्ठाईस सात्त्विक भावोंका प्रदर्शन करती है।

युवती नारीकी प्रेमलता सन्तति-प्रसवसे सफलताको प्राप्त करती है। अब उसका नाम जाया होता है—

यदस्यां जायते पुनः।

पति-पुत्रवती नारीको लोग पुरन्ध्री और कुटुम्बिनी कहते है। नारीका पुरन्ध्रीभाव परम प्रशंसास्पद है और यजुर्वेदके प्रसिद्ध राष्ट्रगानमें—

पुरन्धिर्योषा (वाजसनेयिसंहिता २२ । २२)

—शब्दोंमें महर्षिने यजमान-पत्नीके लिये उसी भावकी कामना की है। प्राचीन आर्य अनेक पुत्रोंकी इच्छा किया करते थे। वेदने अधिकाधिक दस पुत्रोंतककी अनुमति दी है—

दशास्यां पुत्रानाधेहि (ऋक्संहिता १० । ८५ । ४५)

किंतु इससे अधिक सन्तानकी निन्दा की है। अधिक सन्तानवालेको सुख नहीं—

बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश। (ऋक्संहिता)

बहुत-सी किंतु अवगुणी सन्तानसे तो कम, किंतु गुणी सन्तान ही अच्छी है—

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणा अपि॥

शास्त्रकी—

न जातु कामः कामानामुपभोगात्प्रशाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

—इस सम्मतिसे वह अपने दाम्पत्य-भावके सदनको कामकी कच्ची नींवपर न रखकर प्रीतिकी सुदृढ़ भित्तिपर स्थापित करती है। इस भावनाका परिणाम यह होता है कि कामका उद्दाम वेग तनीयान् (कम) होने लगता है, जिससे उसका यौवन अधिक कालतक बना रहता है और दम्पतिको दीर्घायु मिलती है; क्योंकि महर्षि चरकका वचन है कि दीर्घायुके साधनमें ब्रह्मचर्य सर्वोत्कृष्ट है—

ब्रह्मचर्यमायुष्कराणाम्।

बुद्धिमती नारी अपनी सन्ततिकी उपयुक्त शिक्षा-दीक्षामें दत्तचित्त रहती है। उसकी माता जिस प्रेमसे उसे घरेलू शिक्षा दिया करती थीं, उसी प्रेमसे अब वह अपनी पुत्रीको अनेक प्रकारकी उपयोगी शिक्षा देती है। समय पाकर वह सौभाग्यशालिनी नारी दादी और नानीके सम्मान्य पदपर प्रतिष्ठित होती है। पोते-पोतियों और धेवते धेवतियोंके साथ खेलकर वृद्ध नर-नारियोंका मनोरञ्जन भारतीय गृहकी विशेषता है—

क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।

(ऋक्संहिता १० । ८५ । ४२)

तब वह प्रौढा हो जाती है और अपने मनको प्रवृत्तिमार्गसे हटाकर निवृत्तिकी ओर लगाती है। पतिदेवके साथ देशकी पवित्र वनस्थलियोंमें अथवा पुत्रोंके पास ही रहकर आध्यात्मिक साधनाके साथ-साथ देशोपकारी कार्योंमें लीन रहती है। तदनन्तर अपने दिन दिन प्रवर्धमान वार्धक्यको गीताके—

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(९ । ३२)

—इस वाक्यसे प्रतिपादित परमात्मचिन्तनमें अभिरामित व्यतीत करती हुई अन्तमें ब्रह्म निर्वाण प्राप्त करती है, जो कि मानव-जीवनका चरम ध्येय है।

सज्जनकी प्रशंसा और दुर्जनकी निन्दाके समान सतीकी प्रशंसा और असतीकी निन्दाके अतिरिक्त भारतीय ग्रन्थोंमें कहीं-कहीं जो नारीकी साधारण कुत्सा देखनेमें आती है, जैसे कि—

(अ) न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति। (ऋक्संहिता)

(आ) सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु। (श्रीमद्भा० ३ । ३१ । ३५)

(इ) भूतभावोद्भवकरो विसर्गः ......योषित्सम्बन्धजः स कर्मसंज्ञितः, तदारम्भ सानुबन्धमुद्वेजनीयतया परिहरणीयतया च मुमुक्षुभिर्ज्ञातव्यम्। (गीता ८ । ३ पर आनन्दगिरि)

(ई) नाशस्य हेतुः स्त्रियः। (पञ्चतन्त्र)

—उसका प्रयोजन केवल निवृत्तिमार्गमें है। प्रवृत्तिमार्गमें नारीकी शंसा और निवृत्तिमार्गमें उसकी कुत्साका समन्वय

भारतीय संस्कृतिकी विलक्षणता है, जो विश्वमें अन्यत्र दुर्लभ है और नारीकी यह गाथा एवं कुत्सा पुरुषकी प्रवृत्ति और निवृत्तिके दृष्टिकोणसे ही है। नारीकी* प्रवृत्ति और निवृत्तिके दृष्टिकोणसे नर भी समानरूपसे उपादेय और हेय है। नारी श्रीभगवान्‌की लीलाविभूतिकी एक महनीय विभूति है। गुणवती सती साध्वी नारियाँ निरन्तर पूजनीय हैं—सत्करणीय हैं। जहाँ इनकी पूजा और मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

भारतीय नारी

(लेखक—श्रीमदनगोपालजी सिंहल)

दुर्गोंके द्वारोंपर,
राजपूतानेमें,
लाशें बिछ जाती थीं
वीर राजपूतोंकी;
शीशोंपर बाँधे कफन,
करमें करवाल लिये,
चूर-चूर देह और छलनी-सी छाती ले,
और उन लाशोंपर रखते हुए पैर जब
आगे बढ़ते थे यवन—
'अल्लाहो अकबर'के नारे लगाते हुए,
चाँद और तारेके झंडे लहराते हुए,
अंदर तब दुर्गोंमें
धमाके-से होते थे,
धड़ाके-से होते थे,
किलेकी सुरङ्गोंमें,
खुले भूखण्डोंपर,
महलोंकी छतों पै कभी
बिछती बारूदें थीं,
और फिर चलती थीं माती इतराती हुई
नूपुर बजाती हुई,
एकलिङ्ग-गौराकी जय-जय मनाती हुई
टोली-की-टोली राजपूत-ललनाओंकी,
राज-परिवारोंकी, सैनिक-परिवारोंकी,
हाथोंमें मशाल लिये
बढ़ती थीं उतावली-सी मिलनेको पतियोंसे,
पुत्रोंसे, पितासे और सगे-सम्बन्धियोंसे,
कुछ ही क्षण पहले मृत्यु-पथसे जो गये हैं स्वर्ग।
और जब टोलियाँ बारूदपर आती थीं,
चमकती मशालें सब नीचे झुक जाती थीं,
होता था धड़ाका-सा,
स्वाहा सब होता था,
क्षणमें घुल जाती थीं पुतली नवनीतकी,
राख बन जाती थीं प्रतिमा वे सोनेकी!
और यह कितनी बार
हुआ, कौन जाने यह ?
धर्मकी रक्षामें
राजपूत नारीने,
भारतीय नारीने
की है कुर्बानी ये,
कितनी बार जाने कौन ?
हुए हैं दुर्गोंमें नित्य राजपूतोंके
कितने ही 'जौहर' ये,
कितने ही 'साके' ये।

× × × ×

और बस, उनसे ही,
उनके ही कारणसे,
जौहरकी चिताओंसे निकलती हुई ज्वालासे,
आज भी भारतमें
भारतीय नारीके
दिव्य मुखमण्डलपर,
कमलकी पँखुरी-से कोमल कपोलोंपर,
गङ्गाकी धारा-से पावन कपोलोंपर
लाली है,
आभा है!

---

* या मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम्। स्त्रीत्वं स्त्रीसङ्गतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम्॥
तामात्मनो विजानीयात् पत्यपत्यगृहात्मकम्। दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा॥
(श्रीमद्भा० ३। ३१। ४१-४२)

भारतीय नारी क्या,
भारतीय सभ्यता ही
भारतीयता ही स्वयं
आजतक जीवित है, आज भी प्रफुल्लित है
इन्हीं बलिदानोंसे,
इन्हीं इतिहासोंसे ।
किंतु आज
आते हैं 'तलाक बिल',
'विधवा विवाह-बिल',
'महिला-अधिकार बिल',
धारा-सभाओंमें,
देव-देश भारतकी धारा-सभाओंमें,
सतियोंके भारतकी धारा-सभाओंमें,
सीताके भारतकी धारा-सभाओंमें,
भारतकी !
हाँ हाँ, इसी भारतकी धारा-सभाओंमें,
जिसके दिव्य आँगनमें
आज भी धधकती हैं
धू-धूकर जलती हैं
सतियोंकी चिताएँ, और
चमचम चमकती हैं चिताओंकी ज्वालाएँ ।

× × × ×

स्वार्थी मनुष्य ! तू
क्या-क्या न करता है
अपनी वासनाके लिये ।
उसकी पूर्तिके लिये
आज तू रानीको नीचे गिराता है,
आज तू नारीको दासी बनाता है ।
देनेको कहता है,
छीने ही लेता है,
उसका पति, उसकी गति,
उसका घर, उसके लाल,
उसका बल, उसका धर्म,
उसकी शक्ति, उसका कर्म,
उसे तू भिखारन बनाकर ही छोड़ेगा ?
देवीको दानवी बनाकर ही छोड़ेगा ?
भारतको यूरोप बनाकर ही छोड़ेगा ?
इससे भी ज्यादा और होगी क्या पतनकी दशा—
देशमुख कहते हैं बातें परदेशकी ।
किंतु यह जान ले,
खूब पहचान ले,
इससे न खेल, यह भारतीय नारी है,
शिवाकी, प्रतापकी, गुरुकी महतारी है,
हकीकत और बन्दा-से शहीदोंकी माता है,
हिंदूकी माता है,
भारतकी माता है,
भारतकी सभ्यताके सेवकोंकी जननी है,
भारतकी भव्यताके रक्षकोंकी भगिनी है,
सीता सावित्री है,
गीता-गायत्री है,
चाहेगी तुझे तो अभी धूलमें मिला देगी,
तेरी इस विदेशियतकी शेखी ही भुला देगी ।

वन्दे मातरम्

(रचयिता—श्रीनयनजी)

मैं अबोध शिशु हूँ—मम परिचित, माता सिवा न कोई और ।
दिनभर फिरता पीछे-पीछे, रात समय सोता इकठौर ।
वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्

मुझको माके सिवा न कोई, अन्य दीखता इस जग बीच ।
माकी 'शान्तगोद' से मुझको, कभी न सकता कोई खींच ।
वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्

एक रात वह चली कहींको, जागा मैं रोदनके साथ ।
माताने रख दिये खिलौने, अति सुन्दर दो मेरे हाथ ।
वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्

मन मेरा खिंच गया अचानक, थे [illegible] किंचित [illegible] ।
एक खिलौना 'कामिनि' नामक, और दूसरा '[illegible]' [illegible] ।
वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्

चली गयी वह ठग निज बालक, कुछ दिन लगा रहा मन चित्त ।
पर अब नीरस हुए खिलौने, सारा मन हो [illegible] ।
वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्

ओ माता ! हे देख ! पड़े हैं, फेंक दिये ये दोनों [illegible] ।
खेल-खेलमें इन खेलोंने, मुझको दी [illegible] ।
वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्

प्रेम-परीक्षा लेनेवाली, अब तो शिशुके हर संताप ।
आ जा, दर्शन दे जा, मैया दूर हो गये दोनों पाप ।
वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्

नारी-जीवन

(लेखक—साहित्यशिरोमणि डा० पाण्डेय श्रीरामावतारजी शर्मा, एम्०ए०, बी० एल्०, डी० लिट्०)

पुरुष और नारी—दोनों ही मानवताके समान अधिकारी हैं और मानव-समाजकी समुन्नति दोनोंके ही समान सम्मानपर निर्भर करती आयी है। किसी भी युगमें किसी समाजने उत्कर्ष प्राप्तिमें नारियोंके सम्मानकी अवहेलनाका कोई भाव प्रदर्शित नहीं किया और न असभ्यावस्थामें ही नारियोंकी उपयोगिता किसी रूपमें कम की जा सकी। नारियोंके मान और उपयोगमें कमी या भेद समय-समयपर अवश्य रहा है। किंतु पुरुषके स्वार्थको ही उसका कारण समझ लेना हमारी भूल होगी। समय, स्थान, रुचि और परिस्थितिके कारण समाजके नियम सभी देशोंके सभी कालमें एक तरहके नहीं रहने पाते। उनमें स्वाभाविक विभिन्नता उत्पन्न हो जाया करती है और संशोधनकी आवश्यकता भी इसी रूपमें किसी न-किसी समयमें हमारे सामने आ खड़ी होती है; किंतु निर्माण या संशोधनका सम्बन्ध बाह्य स्वरूपसे ही होता है। वास्तवमें पुरुष और नारीका सृष्टि-भेदमें जैसा प्राकृतिक स्वत्व है, वैसा ही रहता है और उसी स्वाभाविक धर्मके पालनसे उनका अपना या उनके समाजका सच्चा कल्याण घटित होता है।

नारीका जीवन क्या है और पुरुष-जीवनके साथ उसका कैसा सम्बन्ध होना चाहिये—इसका विवेचन हमें नारीको नारी-रूपमें और पुरुषको पुरुषरूपमें ही देखकर करना चाहिये; क्योंकि उसी रूपमें दोनोंकी रचना हुई है और सृष्टि-निर्माणमें उनके उसी रूपकी आवश्यकता भी ईश्वर या प्रकृति या विकासको महसूस करनी पड़ी है। सामाजिक, धार्मिक या राजनीतिक क्षेत्रमें कार्यशील हो जानेके ही कारण नारी पुरुष बन जाती है—यह समझना भूल है। तब तो इसका निष्कर्ष यह भी हो सकता है कि जो पुरुष सक्रिय न होकर घरमें आलसी बना पड़ा है, वह पुरुषत्वका जन्मसे प्राप्त अधिकार गँवा बैठा है। इसी तरह नारीको पुरुषकी समानताके अधिकार देने या स्वसामर्थ्यसे प्राप्त करनेकी चर्चाएँ भी प्रमादपूर्ण हैं। हम किसी भी यत्नसे नारीका अपना रूप नष्ट नहीं कर सकते और न उसे पुरुषरूपमें परिवर्तित कर सकते हैं; ऐसा प्रयास नारी-रूपके सौन्दर्यको नष्ट और उपयोगके मूल्यको कम कर सकता है। फिर ऐसे कुफल-प्रदायक प्रमादपूर्ण प्रयाससे क्या लाभ ?

हमें नारी-जीवनपर मीमांसा करते समय स्मरण रखना चाहिये कि सृष्टि विधान सर्वोपरि है और हमारी व्यक्तिगत आकाङ्क्षाएँ हमारे न चाहनेपर भी उसके प्रभावसे खाली नहीं रह सकतीं; इसी कारण तत्त्वदर्शी विश्व-संचालिका अन्तरात्मा-शक्ति, प्राकृतिक नियम या ईश्वरीय आदेशका समुचित सम्मान करते हुए ही सृष्टि-रहस्यके उद्घाटन या मानव-जीवन-कल्याणके विवेचनमें ध्यानमग्न होना श्रेयस्कर स्वीकार करते हैं। इसके विपरीत चलकर मनुष्य सुख या शान्तिका प्रसार नहीं कर सकते। तब हम स्त्रीत्व और पुंस्त्वके प्राकृतिक भेदका विचार न रखते हुए नारीमात्रके जीवनको पुरुष-जीवनकी समानतामें ला सकनेका कुयत्न कर समाजको कौन-सा लाभ पहुँचा सकेंगे। यह विचारका विषय है, कोरे कथन या आन्दोलनका नहीं। नारी-जीवन पुरुष-जीवनसे जिस स्वरूपमें भिन्न है वह पुरुषकृत नहीं, एक अलौकिक अज्ञात शक्तिकी इच्छासे वैसा निर्मित है। कोई भी सुधारक उसमें किञ्चित् परिवर्तन कदापि नहीं कर सकता, अपने स्वार्थसे वह पुरुष-समाजके स्वार्थका कल्पित संगीत गा-गाकर कुछ लोगोंका मनोरञ्जन अवश्य कर सकता है।

जो लोग पुरुष और नारीके जीवनको भिन्न समझते हैं या यह मानते हैं कि पुरुषने अपने स्वार्थसे नारीको नीचा बना रक्खा है और अब नारी-समाजको ऊँचा उठकर पुरुषकोटिमें आ जाना चाहिये—वे या तो विकत्थन-शूर हैं या अल्पज्ञ। उन्हें इस सिलसिलेमें अन्न और अन्नाद, भू और भूपतिके अन्तरपर थोड़ा भी विचार करना चाहिये और सोचना चाहिये कि क्या उनका कोई भी प्रयास इनके स्वाभाविक रूपमें अन्तर पैदाकर लाभप्रद परिणाम समक्ष कर सकता है ? संभव है कि यत्नके फलस्वरूप व्याधियाँ उत्पन्न हो जाय और प्रयोग जुगुप्साकी दृष्टिसे देखा जाने लगे। अतः सामाजिक हितको आगे रखते हुए पुरुष और नारीके जीवनपर ज्ञानचक्षुसे विचार करना चाहिये। संसारके जीव और पदार्थोंमें निराली भिन्नताके होते हुए भी एकरूपताका सर्वथा अभाव नहीं। उनके जीवन और उपयोग एक-दूसरेपर आश्रित हैं, सबका स्वार्थ सबोंके साथ है, निःस्वार्थ और स्वच्छन्द कोई नहीं। फिर पुरुष-जीवनसे भिन्न कोई नारी-जीवन कहाँ और 'पुरुष स्वार्थी और नारी-जीवन निःस्वार्थ'के भ्रमभरे विचारमें सामञ्जस्य कहाँ ! ऐसे विचार तो वास्तविकतासे निश्चय ही दूर हैं, बहुत दूर हैं; समाज उन्हें ग्रहण कर लाभान्वित नहीं हो सकता।

नारी-जागरणकी दुहाई देकर आपातरमणीय क्रान्ति, अधिकार, परिवर्तन और नयेपनके सम्बन्धमें जितनी मनगढंत बातें आज समाजकी देवियोंके सम्मुख बार बार प्रस्तावित और समर्थित की जाती हैं, उनमें सत्यका अंग उतना ही कम रहता है, जितना समाजलाभके दृष्टिकोणका अभाव। उसपर भी आश्चर्य है कि स्वार्थके पुतले मनचले पुरुष ही उन्हें कहते और दुहराते फिरते हैं। कौन जाने उस समय उनका कुछ स्वार्थ होता है या नहीं। पर ऐसे लोग तो हलचलप्रिय ही होते हैं, आन्दोलनके नामपर प्राचीनताको बुरा भला कहना उनका लक्ष्य होता है। समाजके आदर्शकी परवा वे कदापि नहीं करते। आजके जागरण-युगमें अनेक ऐसे सुधारक हैं, जिनकी श्रीदर्शनकी प्यासी आँखें क्लबमें, सभामें, समितिमें, गाड़ियोंमें, असेम्बलीमें, सभाओंमें, पार्टियोंमें, यात्रामें, भ्रमणमें—सर्वत्र जाग्रत् नारीकी ही झाँकी देखना चाहती हैं। इस व्याकुल दशामें वे जागरणकी क्या-क्या परिभाषाएँ नहीं करते। आश्चर्य ही क्या यदि इसमें उन्हें कतिपय अग्रसर महिलाओंका भी सहयोग प्राप्त हो जाय! किंतु इससे नारी-जीवनकी पवित्रता नष्ट नहीं हो जाती और न ऐसा प्रमाण नारी-जीवनके धार्मिक स्वरूपपर आघात पहुँचा सकता है। नारी-जीवन पुरुष-जीवनका केन्द्र है, उसकी आदिशक्ति है। पुरुष नारी-जीवनको गंदा बनाकर आप पवित्र जीवनका अधिकारी नहीं बन सकता। इसीसे धर्मग्रन्थ नारीके पूजनका आदेश करते हैं और विचारशील नारी जीवनको समुन्नत करना पुरुष-समाजका कर्तव्य बतलाते हैं। यह कोई जटिल समस्या नहीं, सामाजिक जीवनका सुखद प्रच्छन्न मार्ग है। अपनी भूलसे यदि हम सदाचारका भी निरादर करने लग जायँ तो दोष हमारा है, सदाचारका नहीं। इसी प्रकार नारी-जीवनकी पवित्रताका अनुभव न करना हमारी भूल है, नारी-जीवनका दोष नहीं। वह तो पवित्र है और धार्मिक भावनाओंसे ओतप्रोत है।

नारी

जग-जीवन पीछे रह जावे,
यदि नारी दे पावे न स्फूर्ति।
इतिहास अधूरे रह जावें,
यदि नारी कर पावे न पूर्ति॥
क्या विश्व-कोष में रह जावे?
होवे न अगर नारी-विभूति।
क्या ईश्वर कहलावें अगम्य?
यदि नारी हो न रहस्य-मूर्ति॥

× × ×

कैसे अशान्ति कोसों भागे?
यदि नारी दे पावे न शान्ति।
हो देश-धर्म की रक्षा क्या?
यदि नारी कर पावे न क्रान्ति॥
हो कौन भला कर्तव्यनिष्ठ?
यदि नारी दे पावे न श्रान्ति।
जीवन में क्या अन्वेषण हो?
नारी यदि उपजावे न भ्रान्ति॥

× × ×

नारी में अति उज्ज्वल सतीत्व,
उज्ज्वल सतीत्व में महातेज।
उस महातेज में दीपक से
नारी रखती है रवि सहेज॥

संसार महासागर अपार,
नारी सागर में बनी नाव।
जीवन की उष्ण दुपहरी में
नारी तरुवर की घनी छाँव॥

× × ×

औरों को स्वजन बना लेती
देखो, स्वजनों का संग छोड़।
औरों का सदन बसा लेती,
प्रिय जन्म-सदन-सम्बन्ध तोड़॥
नारी ही कर पाती जग में
वह महात्याग, जिसकी न होड़।
नारी-जीवन में क्षमा, दया,
लज्जा व शीलता का निचोड़॥

× × ×

नारी ही नर की अतुल्यान,
रे, नारी की महिमा महान।
नारी ने नर उत्पन्न किये,
'प्रह्लाद' और 'ध्रुव' के समान॥
नारी के आँचल में जीवन,
उस के आँचल में सुधा-वृष्टि।
शुचि सुधा-वृष्टि में प्रेम-प्यार,
औ प्रेम-प्यार में पली सृष्टि॥

—[illegible]

नारी-प्रतिष्ठाका आदर्श

(लेखक—श्री डॉ० जयेन्द्रराय भ० दूरकाल एम्० ए०, डी० ओ० सी०, विद्यावारिधि, साहित्यरत्नाकर)

'समस्त विश्व तथा मानव-हितकी दृष्टिसे नारी-प्रतिष्ठाका आदर्श क्या होना चाहिये ?' यह वर्तमान युगका महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इसको हल करनेके लिये स्त्रियोंके विषयमें अन्य अनेक प्रश्नोंपर भी विचार कर लेना आवश्यक है। वे प्रश्न अथवा विचारणीय विषय इस प्रकार हैं—स्त्रियोंका समाजमें स्थान, स्त्रियोंकी शक्ति, स्त्री-स्वतन्त्रताकी मर्यादा, स्त्रियोंका प्राकृतिक बलाबल तथा उनके गुण स्वभावका विवेक। जो समुदाय जिस प्रकार उक्त प्रश्नोंका निर्णय करता है, उसी प्रकार वह नारी-प्रतिष्ठाका आदर्श मानता है—ऐसा समझा जाता है। किसी समाजका ऐसा मत है कि स्त्री ही जीवनचर्याका केन्द्र है। किसीके मतमें जीवनचर्याका केन्द्र पुरुष माना गया है तथा कोई समाज न स्त्रीको, न पुरुषको, अपितु ईश्वरको जीवनका केन्द्र समझता है। इस रीतिसे मुख्यतः तीन प्रकारकी विचार-धाराएँ उत्पन्न होती हैं। यूरोपमें जहाँ तमोगुणका प्राधान्य है, वहाँ स्त्री ही जीवनका केन्द्र हो रही है। प्राचीन मुस्लिम प्रदेशोंमें, जिनकी कथाएँ 'अरेबियन नाइट्स' में आती हैं, पुरुष ही जीवनका केन्द्र समझा जाता था। परंतु भारतवर्षमें न स्त्रीको, न पुरुषको, अपितु ईश्वरको जीवनका केन्द्र माना गया है।

नारी-प्रतिष्ठाके प्रश्नके साथ तत्त्वविद्याका प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि कर्म-फलका भोग अनिवार्य है। प्रत्येक जीव अपने कर्मके अनुसार पुनर्जन्म ग्रहण करता है तथा अपने स्वभाव, गुण एवं संस्कार-के अनुसार क्रियामें प्रवृत्त होता है। इस तात्त्विक सिद्धान्तको प्रायः सभी विद्वानोंने किसी-न-किसी रूपमें स्वीकार किया है। हमें भी यह मान करके ही आगेका विचार करना है। यह सब कहनेका तात्पर्य यही है कि किसीका किसी जातिमें जन्म होना कोई आकस्मिक घटना नहीं, बल्कि पूर्वकर्मोंका सुनिश्चित परिणाम है। स्त्री और पुरुषके शरीर, स्वभाव तथा शक्तिमें भिन्नता स्पष्ट है। उसके अनुसार ही भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्रोंमें उनकी योग्यता और अयोग्यता भी समझनी चाहिये। वास्तवमें भारतीय आदर्श समस्त मानव-जातिके ही आदर्श हैं; परंतु भूमण्डलके अन्य मनुष्योंके जीवनमें वे आदर्श अधिक विकृतावस्थाको प्राप्त हो गये हैं, केवल भारतीय आर्योंने उन प्राचीन मानव-आदर्शोंको अपनी जीवन-चर्यामें अभीतक बचा रक्खा है। आर्योंके तात्त्विक सिद्धान्तके अनुसार प्रकृतिकी साम्यावस्थामें किसी जाति या गुणको कोई विशिष्ट स्थान ही नहीं प्राप्त था, तथापि शास्त्रोंमें प्रकृति और पुरुषरूपसे वर्णन किया गया है। देवी जगदम्बा लक्ष्मीरूपसे भगवान् नारायण-के युगल चरणोंकी सेवा करती हैं। इन दोनों अनादि दम्पति-की एक ही साथ पूजा होती है। आर्यदेशीय चारों वर्णोंकी प्रजा भगवान् लक्ष्मीनारायणकी आराधना करती है। इतना ही नहीं, प्रत्येक देवताके साथ उसकी शक्तिस्वरूपा देवी-का पूजन किया जाता है। केवल दम्पतिकी ही पूजा नहीं होती, पृथक्रूपसे केवल नारीशक्तिकी भी आराधना देखी जाती है। कुमारी कन्या, सुवासिनी स्त्री तथा गृहत्यागिनी विरक्ता देवियोंकी भी यथावसर पूजा करनेकी परिपाटी है। अतः आर्यलोग स्त्रियोंके प्रति द्वेष या तिरस्कारका भाव रखते थे, यह आक्षेप सर्वथा अनुचित है।

आजकल आर्य ऋषि-मुनियोंपर मुख्यतः दो आक्षेप किये जाते हैं—'एक तो यह कि उन्होंने स्त्रियोंको स्वतन्त्र रहनेकी आज्ञा नहीं दी है, दूसरा यह कि वे स्त्रियोंको विश्वास-के योग्य नहीं मानते। ये दोनों बातें नारी-प्रतिष्ठाके विरुद्ध हैं।' इसमें संदेह नहीं कि इस तरहकी बातें हमारे शास्त्रोंमें प्रसंगानुसार आयी हैं। परंतु ये तथ्य और हितकर हैं कि नहीं ? यही वास्तविक प्रश्न है। मनुजीने सिद्धान्तरूपसे यह बात कही है कि 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति'—स्त्रीको स्वतन्त्र नहीं रखना चाहिये। बाल्य-कालमें पिता, युवावस्थामें पति तथा वृद्धावस्थामें पुत्र उसकी रक्षा करे। उन्होंने यह भी बता दिया है कि 'यत्नपूर्वक स्त्रीकी रक्षा करनेवाला पुरुष अपनी संतान, चरित्र, कुल, आत्मा तथा धर्मकी रक्षा करता है।' सतीत्वके आदर्शका महत्त्व ही इस आज्ञाका मूल कारण है। सतीत्वका लौकिक फल है उत्तम गार्हस्थ्य-सुखकी उपलब्धि और पारलौकिक फल है उत्तम गति किंवा परमात्माकी प्राप्ति। सतीत्वका आदर्श तभी निभता है, जब नारी सदा अपने योग्य अभिभावकके संरक्षणमें रहे। स्वतन्त्रता-से तो उक्त आदर्शका सर्वतोभावेन विनाश होता है। यह बात केवल काल्पनिक नहीं, अपितु ऐतिहासिक सत्य है और यूरोपका एक शताब्दीका इतिहास इसकी पूरी गवाही दे चुका है।

स्त्रियोंको अपने पुरुषोंके संरक्षणमें रहनेका आदेश दिया

गया है; परंतु हमारे आदर्शका रहस्य तो यह है कि पुरुष भी सर्वथा स्वतन्त्र नहीं रह सकता। उसे भी धर्म और ईश्वरके अधीन रहनेका आदेश है। स्वतन्त्र तो न स्त्री है, न पुरुष। काल, कर्म, गुण और प्रकृतिके अधीन यह पाञ्चभौतिक शरीर-धारी मनुष्य स्वतन्त्र कैसे हो सकता है? उसके शरीरकी नाडीकी गति, रक्तकी उष्णता और इन्द्रियोंकी शक्ति भी तो उसके हाथमें नहीं है। पुरुष स्त्रीकी अपेक्षा स्थूल शक्ति और साहसमें बड़ा है; अतः उसको धर्मके अधीन रहकर चलनेका आदेश दिया गया। कुटुम्ब-जीवनकी एकतानता, सरलता और सुखदताके लिये स्त्री पुरुषके संरक्षणमें रक्खी गयी। यह आदर्श जीवन-व्यवस्थाकी अमोल और मनोहर भावना है। स्त्री दुष्टोंके चगुलमें न पड़ जाय, इसके लिये उसे आत्मीय जनोंके अधीन रक्खा गया। नारी पुरुषका अमूल्य जीवन-तत्त्व, आनन्द-तत्त्व और प्रजनन-तत्त्व है; अतः वह उसकी परम आत्मीया है। जो जिसके लिये बहुमूल्य और आत्मीय है, उसकी रक्षाके लिये वह स्वाभाविक ही सदा चिन्तित रहता है।

प्राचीन आदर्शके विरुद्ध क्रान्तिपूर्ण विचार रखनेवाले आधुनिक सभ्यतामें पले हुए लोग यह भी कहते हैं कि 'जिसकी जिसके प्रति वासना हो गयी, उसे उससे मिलनेमें रुकावट क्यों डाली जाय? सतीत्वके आदर्शकी आवश्यकता ही क्या है?' आवश्यकता है, और इसलिये है कि मनुष्य मनुष्य है और वह मनुष्य ही बना रहना चाहता है। इसलिये है कि वह मनुष्यतासे गिरकर पशुओंकी श्रेणीमें नहीं जाना चाहता। इसलिये भी है कि आयोंने सतीत्वसे प्राप्त होनेवाले स्नेह-धन और आनन्द-वैभवकी झाँकी की है। और इसलिये भी सतीत्व-रक्षणकी आवश्यकता है कि सतीत्वका आदर्श जितना ही सुस्थिर रहेगा, उतना ही राष्ट्रका बल बढ़ेगा और प्रजा चिरञ्जीविनी होगी। भारतवर्ष ही इसका दृष्टान्त है। इसके विपरीत पतनका दृष्टान्त फ्रांस है।

सच्ची बात यह है कि प्रशंसा और समादर गुणसे ही प्राप्त होते हैं। गुणके अभावमें केवल जाति अथवा वयकी पूजा नहीं होती। हमारे इतिहास-पुराणोंमें सती नारियोंकी प्रशंसा और दुष्ट स्त्रियोंकी निन्दा भी की गयी है। यही बात पुरुषों-के विषयमें भी है। अतः सतीत्वकी रक्षाको दृष्टिमें रखकर शास्त्रोंने जो नारीको 'स्वतन्त्र रखने योग्य' नहीं बताया, वह ठीक ही है। इसी प्रकार मायाविनी स्त्रियोंके स्वभावको सामने रखकर ही उन्हें अविश्वसनीय कहा गया है। अतः दोनों ही बातें ठीक एवं सुसंगत हैं। स्त्रीका शरीर सामान्यतः रजोगुणप्रधान है, इसलिये उसमें काम-वासनाका भी कुछ प्राबल्य कहा गया है तथा स्त्रीके स्वभावमें जो प्रकृतिसिद्ध 'लज्जा' नामक सद्गुण है, उसको सुरक्षित रखनेपर भी जोर दिया गया है। प्रायः सभी देशोंके स्त्री-पुरुषोंमें युवावस्था आनेपर प्रकृतिकी प्रेरणासे एक-दूसरेके प्रति आकर्षण पैदा होता है। अतः युवावस्था आनेके पहले ही विवाहकी अवस्था माननी चाहिये और योग्य समयपर पुत्रों एवं कन्याओंका विवाह कर ही देना चाहिये। आर्थिक अथवा अन्य कारणों-से भी इसको टालना दुराचारको निमन्त्रण देना है। यूरोप और अमेरिका आदि देशोंमें इस तथ्यकी उपेक्षा करनेसे ही स्वच्छन्दतावश युवक-युवतियोंका सदाचार सुरक्षित नहीं रह पाता। अतः हम इस बातको स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि जो सतीत्व और सदाचारकी रक्षा चाहते हैं, उन्हें बाल-विवाह स्वीकार करना पड़ेगा—युवावस्थाके पहले ही अपनी सन्तानोंको योग्य दाम्पत्यके बन्धनमें बाँध देना होगा। जो ऐसा नहीं करेंगे, उन्हें अपनी सन्तानोंके दुराचारको सहन करना पड़ेगा। यह बात दूसरी है कि सब लोग अपनी-अपनी मान्यताको श्रेष्ठ बतानेके लिये सुन्दर युक्तियाँ ढूँढकर बता सकते हैं, परंतु जगत्-के आधुनिक इतिहासमें यह वस्तुस्थिति अब प्रत्यक्ष हो चुकी है।

स्त्री और पुरुषकी समानताकी बात भी जो इस समय उठायी जाती है, एक बहुत बड़ी भ्रान्तिका ही परिणाम है। स्त्रियोंकी बात तो अलग रही, सब पुरुष ही समान नहीं हैं और न वे सभी क्षेत्रोंमें समानरूपसे कार्य करनेका अधिकार ही रखते हैं। यह प्राकृतिक अनुभव सिद्ध—विज्ञानसिद्ध सत्य है। शरीरमें, शक्तिमें और भावावेगमें पुरुष और स्त्री-में स्वभावसिद्ध भेद है। यही नहीं, मनुष्यमात्रमें सात्त्विक-राजस-तामस, साधु-दुष्ट, पुण्यवान्-पापी, उद्यमी-आलसी, चतुर-मूढ आदि अनेक श्रेणियाँ देखी जाती हैं; उन सबको समान मानना भी असत्य और अन्ध विश्वासको पालना है।

'स्त्री माया अथवा प्रकृतिका प्रतीक भी है, अतः उसमें तदनुकूल गुणोंकी भी छाया रहती है। वह अघटनघटना-पटीयसी है, नित्य-नूतन है, जादू करनेवाली तथा भ्रममें डालनेवाली है। वह मोहिनी है। इसलिये सावधान होकर चलनेवाले पुरुषोंको उसपर विश्वास नहीं करना चाहिये।' यह बात कहकर ऋषि-मुनियोंने वास्तविकताको ही प्रकट किया है। इसीमें नारीकी प्रतिष्ठाको आघात पहुँचानेकी भावना रंचमात्र भी नहीं है। अंग्रेज-कवि शेक्सपियरने भी एक पात्र-के मुखसे कहलाया है—

'Frailty! thy name is woman'.
'हे नैतिक दुर्बलते! तेरी मूर्ति ही स्त्री है।'

"अमेरिकाके प्रख्यात राजनीतिज्ञ मेनकेनका कहना है कि स्त्री और पुरुष सभी प्रायः इस एक बातमें सहमत हैं कि वे 'स्त्रीपर विश्वास नहीं करते।' दुनियाके साधारण अनुभवसे भी यह बात कही जा सकती है कि 'स्त्रियोंमें मृदुता, रजोगुण तथा भीरुता विशेष होनेके कारण उनके पतनकी अधिक सम्भावना है। अतः उनका विश्वास नहीं करना चाहिये।" इस कथनका यही अभिप्राय जान पड़ता है कि उनकी रक्षा करना और उनके माया-जालसे बचे रहना चाहिये। जो इस संसारसे मुक्त होना चाहता है, उसके लिये यह आदेश सर्वथा उचित ही है; क्योंकि स्त्री ही संसारकी जड़ है। जिन ऋषि-मुनियोंने महामायाकी बात भी स्पष्ट कह देनेमें तनिक भी संकोच नहीं किया, वे भला मानवी स्त्रीकी अयथार्थ खुशामद क्यों करते?

अन्तमें यही निवेदन है कि स्त्रीकी स्वतन्त्रताका निषेध उत्कृष्ट आदर्शकी रक्षा तथा दुष्टोंसे स्त्रीके संरक्षणके लिये है। यही उसकी वास्तविक स्वतन्त्रता है, जिससे वह स्वधर्मकी रक्षा कर सके। पुरुष भी पूर्ण स्वतन्त्र नहीं, ईश्वर-परतन्त्र है। शास्त्रोंने स्त्री और पुरुष दोनोंके कल्याणके लिये ही उनके सद्गुणोंकी प्रशंसा और दुर्गुणोंकी निन्दा की है। स्त्रियाँ भगवती जगदम्बाकी कला हैं, अतः उनमें उन्हींके समान माया और संमोहनकी शक्ति भी विद्यमान है।

नवरसा माता

१. शृङ्गार—

धो देती मुख और काजल लगा देती डिठौना बना।
कंठी, नूपुर, झंगुली, करधनी, कोई खिलौना भला॥
सारे साज सजा, बजा चुटकियाँ, मा बोलती तोतली।
लेवे चुम्बन क्यों न? दूध जब पीता झूलता झूलना॥

२. कर्मवीर—

गा-गा गीत सुला रही, थपकियाँ देते बिताती निशा।
ले जाती शिशुको कटिस्थ करके कोसों कराने दवा॥
भूखी है रहती सुतार्थ, विधवा चक्की चला पालती।
देखी कर्मरता सदैव सुतके लाभार्थ ही मातुको॥

३. बीभत्स—

देखा लार मुखागता, निकलती नेटा वही नाकसे।
फोड़े पीब-भरे सरक्त, कपड़े भीगे हुए मूत्रसे॥
सारा अङ्ग मलावृत, दिखीं सर्वत्र ही मक्खियाँ।
तो भी मा मुख चूमके स्वसुतसे छाती लगाती रही॥

४. भयानक—

फैले केश सभी, गयी लग तवेकी गालमें कालिमा।
है क्रोधातुर और दाँत कड़के, कम्पायमाना हुई॥
विद्युद्वेग समान शीघ्र चलके यों पूछती तद्गता—
'मारा क्यों शिशुको? पड़ोसिन, बता री दुष्टनी, पापिनी!

५. रौद्र—

'चोरी की'—सुन हो गई कुटिल भ्रू, आँखें हुई लाल-सी।
तोड़े गाल, गृहीत कान कसके खींची खरी थप्पड़े॥
'चीरूँगी तव चर्म मार करके, कोड़े लगाऊँ दसों।
देखा जो हमने खरा हृदय तो रेखा दिखी स्नेहकी॥

६. अद्भुत—

'आवेगा पर-ग्रामसे कल'—दिखा जो आजके स्वप्नमें।
बिल्लीका पद चाटना लख कहेगी—'आ रहा लाड़ला'॥
'होगा संकटमें किसी'—फरकती है आँख जो दाहिनी!
पाती है सब हाल नित्य सुतका बेतारके तार ज्यों॥

७. करुण—

रोती है जब देखती कि सुत जाता कालके गालमें।
छातीसे चिपका रही तन बड़ा प्यारा, नहीं छोड़ती॥
नाना भाँति विलाप आप करती, छाती पुनः पीटती।
हा! रे दुष्ट कृतान्त हा! सुत बिना सर्वस्व ही शून्य है॥

८. हास्य—

मा, माई, जननी, सुपूत-प्रसवा, मातेश्वरी, शूरदा।
पानेको यह कीर्ति बाट सुनकी जोहें सभी नारियाँ॥
पातीं किन्तु बड़ा हुए यदि बना; 'पाजी, गधा मूर्ख' जो।
तो बोले जन—'भैंस भी यह भरोसेकी बियानी पड़ा'॥

९. शान्त—

माने जन्म दिया, निवास हमने पाया रसा-गोदमें।
देती है नवशक्ति साहस-भरी मातेश्वरी चण्डिका॥
देती अन्न उमा, सभी निधि रमा, वाणी-सुधा शारदा।
क्या है प्राप्त नहीं किया जगत्‌ने मासे, बताओ इसे?

—बुधरामप्रसाद परसाई 'विशारद'

नारीकी आत्मकथा

(लेखिका—श्रीमती अनिला देवी)

मैं हूँ नारी। मैं अपने स्वामीकी सहधर्मिणी हूँ और अपने पुत्रकी जननी हूँ। मुझ-सा श्रेष्ठ संसारमें और कौन है? तमाम जगत् मेरा कर्मक्षेत्र है—मैं स्वाधीना हूँ; क्योंकि मैं अपने इच्छानुरूप कार्य कर सकती हूँ। मैं जगत्में किसीसे नहीं डरती। मैं महाशक्तिकी अंश हूँ। मेरी शक्ति पाकर ही मनुष्य शक्तिमान् है।

मैं स्वाधीना हूँ, परंतु उच्छृङ्खल नहीं हूँ। मैं शक्तिका उद्गमस्थान हूँ, परंतु अत्याचारके द्वारा अपनी शक्तिका प्रकाश नहीं करती। मैं केवल कहती ही नहीं, करती हूँ। मैं काम न करूँ तो संसार अचल हो जाय। सब कुछ करके भी मैं अहंकार नहीं करती। जो कर्म करनेका अभिमान करते हैं, उनके हाथ थक जाते हैं।

मेरा कर्मक्षेत्र बहुत बड़ा है—वह बाहर नहीं है, अंदर है। वहाँ मेरी बराबरीकी समझ रखनेवाला कोई है ही नहीं। मैं जिधर देखती हूँ, उधर ही अपना अप्रतिहत कर्तृत्व पाती हूँ। मेरे कर्तृत्वमें बाधा देनेवाला कोई नहीं है, क्योंकि मैं वैसा सुअवसर किसीको देती ही नहीं। पुरुष मेरी बात सुननेके लिये बाध्य है—परंतु वह मेरे कर्मक्षेत्रमें। मेरी बातसे ससार उन्नत होता है—इसलिये स्वामीके सन्देहका तो कोई कारण ही नहीं है। और पुत्र—वह तो मेरा ही है, उसीके लिये तो हम दोनों सदा व्यस्त हैं—वह तो मेरी बात सुननेको बाध्य है ही। इन दोको—पतिको और पुत्रको—अपने वशमें करके मैं जगत्में अजेय हूँ। डर किसको कहते हैं, मैं नहीं जानती। मैं पापसे घृणा करती हूँ—अतएव डर मेरे पास नहीं आता। मैं भयको नहीं देखती, इसीसे कोई दिखानेकी चेष्टा नहीं करता।

संसारमें मुझसे बड़ा और कौन है? मैं तो किसीको नहीं देखती। और जगत्में मुझसे बढ़कर छोटा भी कौन है? उसको भी तो कहीं नहीं खोज पाती। पुरुष दम्भ करता है कि मैं जगत्में प्रधान हूँ—बड़ा हूँ, मैं किसीकी परवा नहीं करता—वह अपने दम्भ और दर्पसे देशको कँपाना चाहता है। वह कभी आकाशमें उड़ता है, कभी सागरमें डुबकी मारता है और कभी रणभेरी बजाकर आकाशवायुको कँपाकर दूर-दूरतक दौड़ता है; परंतु मेरे सामने तो वह सदा छोटा ही है, क्योंकि मैं उसकी मा हूँ। उसके रुद्ररूपको देखकर हजारों-लाखों काँपते हैं, परंतु मेरे अँगुली हिलाते ही वह चुप हो जानेके लिये बाध्य है। मैं उसकी मा—केवल असहाय बचपनमें ही नहीं—सर्वदा और सर्वत्र हूँ। जिसके स्तनोंका दूध पीकर उसकी देह पुष्ट हुई है, उस मातृत्वके इशारेपर सिर झुकाकर चलनेके लिये वह बाध्य है।

गर्वित पुरुष जब सिंह, बाघ आदि हिंस्र प्राणियोंकी अपेक्षा भी अधिक हिंस्र हो जाता है, कठोरताके साथ मिलते-मिलते उसकी कोमल वृत्तियाँ जब सूख-सी जाती हैं, जब वह राक्षसी वृत्तियोंका सहारा लेकर जगत्को चूर-चूर कर डालनेपर उतारू हो जाता है—तब उस शुष्क मरुभूमिमें जलकी पुनीत धारा कौन बहाती है? मैं ही—उसकी सहधर्मिणी ही। उसको अपने पास बैठाकर—अपना अपनापन उसमें मिलाकर मैं उसे कोमल करती हूँ। मेरी शक्ति अप्रतिहत है। प्रयोग करनेकी कला जाननेपर वह कभी व्यर्थ नहीं जाती।

मैं बाहरके जगत्में कर्तृत्व नहीं चाहती। वह मेरे पिता, पति, भाई और पुत्रकी कर्मभूमि है। उन्हें कोई क्षेत्र नहीं मिलेगा तो वे क्या करेंगे? परंतु मेरी कर्मभूमि उनकी कर्मभूमिसे कहीं विशाल है। पुरुष जिस कामको नहीं कर सकता, उसको मैं अनायास ही कर सकती हूँ। प्रमाण—पुरुषके अभावमें संसार चल सकता है—परंतु मेरे अभावमें अचल हो जाता है। सब रहनेपर भी कुछ नहीं रहता।

मैं पढ़ती हूँ—सन्तानको शिक्षा देनेके लिये, पतिके थके हुए मनको शान्ति देनेके लिये। मैं गाना बजाना सीखती हूँ—शौकीनोंकी लालसा पूर्ण करनेके लिये नहीं—नर-हृदयको कोमल बनाकर उसमें पूर्णता लानेके लिये। मैं स्वयं नहीं नाचती—वरं जगत्को नचाती हूँ।

मैं सीखती हूँ—सिखानेके लिये। शिक्षाके क्षेत्रमें मेरा जन्मगत अधिकार है। मैं गुलाम नहीं पैदा करती। मैं प्रदान करती हूँ आदर्श—सृजन करती हूँ मानव, महामानव!

मैं खड्गधारिणी काली हूँ, पाखण्डोंका दमन करनेके लिये। मैं दशप्रहरणधारिणी दुर्गा हूँ—जनमें नयी शक्तिको जगानेके लिये। मैं लक्ष्मी हूँ—संसारको सुशोभित करनेके लिये। मैं सरस्वती हूँ—जगत्में विद्या वितरण करनेके लिये। मैं धरणी हूँ—सहिष्णुताके गुणसे। आकाश हूँ—सबकी आश्रयदायिनी होनेसे। वायु हूँ—सबकी जीवनदायिनी होनेसे। और जल हूँ—सबको स्निग्ध करनेवाली—दूसरोंके

अपना बनानेवाली होनेसे। मैं ज्योति हूँ—प्रकाशके कारण, और मैं माटी हूँ—क्योंकि मैं मा हूँ।

मेरे धर्मके विषयमें मतान्तर नहीं है—मेरा धर्म है नारीत्व—मातृत्व। मुझमें जातिभेदजनित कोई चिह्न नहीं है—सम्पूर्ण नारीजाति मेरी जाति है।

मैं सबसे अधिक छोटा बनना जानती हूँ—परंतु मैं बड़ी अभिमानिनी हूँ। मेरे भयसे त्रिभुवन काँपता है। मैं जो चाहती हूँ, वही पाती हूँ; तो भी मेरा मान जगत् प्रसिद्ध है।

पुरुष कामुक है, इसी लिये वह अपने ही समान मानकर मुझको 'कामिनी' कहना चाहता है। पुरुष दुर्बल है, सहज ही विभक्त हो जाता है, इसीसे मुझे दारा कहता है। मैं सभी सहती हूँ, क्योंकि मैं सहना जानती हूँ। मैं मनुष्यको गोदमें खिलाकर मनुष्य बनाती हूँ, उसके शरीरकी धूलिसे अपना शरीर मैला करती हूँ, इसीलिये कि मैं यह सब सह सकती हूँ।

रामायण और महाभारत—ये दो ही ग्रन्थ मुझे यथेष्ट ज्ञान देते हैं; क्योंकि जगत्के और जगत्के लोगोंके साथ खेलनेमें इनके समान कोई भी ग्रन्थ समर्थ नहीं हुआ। मैं दूसरी भाषा सीखती हूँ—परंतु बोलती हूँ अपनी ही भाषा। और मेरी सन्तान इसीलिये उसे गौरवके साथ मातृभाषा कहती है।

मुझको क्या पहचान लिया है? नहीं पहचाना तो फिर जगत् कैसे पहचानेगा?

नारी-निन्दाकी सार्थकता

हिंदूशास्त्रोंमें—श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहास आदिसे लेकर वर्तमान समयतकके संत-महात्माओंकी वाणीमें भी—जहाँ विविध सद्गुणोंकी प्रतिमा, ब्रह्मवादिनी, विदुषी, माता, पत्नी, सती, पतिव्रता, गृहिणी आदिके रूपमें नारीकी प्रचुर प्रशंसा की गयी है, उसकी महिमाके अमित गुण गाये गये हैं, वहाँ उन्हीं ग्रन्थोंमें नारीकी निन्दा भी की गयी है और नारीसे बचे रहनेका स्पष्ट आदेश दिया गया है, यद्यपि शास्त्रोंमें नारी-निन्दाकी अपेक्षा नारी-स्तुतिके प्रसंग कहीं अधिक हैं। संतोंकी वाणियोंमें भी 'काञ्चन' के साथ गिनी जानेवाली विषय-रूपा 'कामिनी'की जितनी निन्दा की गयी है, उससे कहीं अधिक पतिव्रताकी प्रशंसाके पुल बाँधे गये हैं। तथापि शास्त्रके इस नारी-निन्दाके प्रसंगको लेकर आजकल ऐसा कहा जा रहा है कि 'शास्त्रोंकी रचना पुरुषोंके द्वारा हुई है, अतएव उन्होंने जान-बूझकर नारीके प्रति यह अन्याय किया है।' पर यदि ध्यानसे देखा जाय तो पता लगेगा कि शास्त्रकारोंने निष्पक्ष बुद्धिसे जहाँ प्रशंसाकी आवश्यकता समझी, वहाँ बड़ी प्रशंसा की है और जहाँ निन्दाकी, वहाँ निन्दा की है। साथ ही, नारी-निन्दा किस हेतुसे की गयी है, इसपर शुद्ध भावके साथ सूक्ष्म विचार करनेपर तथा दीर्घदृष्टिसे उसका परिणाम देखनेपर यह स्पष्ट दिखायी देता है कि शास्त्रोंने जो नारी-निन्दा की है, उसमें जरा भी अतिशयोक्ति या दूषित भाव नहीं है, बल्कि वह सर्वथा सार्थक, सत्य और परम आवश्यक भी है।

मानव-जीवनका मुख्य ध्येय है भगवत्प्राप्ति। भगवत्प्राप्तिके लिये जीवनका संयमित, पवित्र तथा साधन-सम्पन्न होना अत्यन्त आवश्यक है। इस परमार्थ-साधनमें सर्वप्रधान विघ्न है—विषयसंग! मनुष्यका पूर्ण पतन—उसका सर्वनाश किस क्रमसे होता है, इस सम्बन्धमें श्रीभगवान् कहते हैं—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २। ६२-६३)

'विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति होती है, आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है, कामनासे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे संमोह—विवेकशून्यता होती है; अविवेकसे स्मृतिभ्रंश और स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिका नाश होता है एवं बुद्धिके नाशसे वह आप नष्ट हो जाता है।'

विषयोंमें सर्वप्रधान आकर्षक विषय है—'पुरुषके लिये नारी और नारीके लिये पुरुष। कहना नहीं होगा कि इनमें नारीकी अपेक्षा पुरुष प्राणीका चित्त अधिक दुर्बल है, अतः उसका पतन बहुत शीघ्र हो जाता है (और उसके पतनमें नारीका पतन तो है ही; क्योंकि उसीके आधारसे पुरुष गिरता है)। नारीका दर्शन-स्पर्श तो दूर रहा, उसका श्रवण-कथन भी पुरुषको गिरानेके लिये काफी है। इसीलिये विवाह-बन्धनके द्वारा एक स्त्रीके साथ एक पुरुषका संसर्ग सीमित करके ऋषिप्रणीत शास्त्रोंने उसे ऐसा नियमबद्ध कर दिया

गया है कि जिससे उसके जीवनमें कभी असंयम आ ही न सके; क्योंकि किसी एकके प्रति सतत आकर्षण दीर्घकालतक नहीं रहता। उसमें स्वाभाविकता आ जाती है और हिंदू-शास्त्रविधिके अनुसार एकके अतिरिक्त दूसरेका चिन्तन करना भी स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये व्यभिचार है। इसीलिये आठ प्रकारके मैथुन* बतलाकर उनका निषेध किया गया है।

हिंदू-विवाह-बन्धन इसीलिये संयमका सहायक और संवर्धक है, क्योंकि वह 'लौकिक अभ्युदय और निःश्रेयस'की सिद्धिके लिये सम्पन्न होनेवाला एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। रूप-गुणके आकर्षणसे प्रभावित तथा प्रमत्त होकर विषय-वासनाकी चरितार्थताके लिये किया जानेवाला सौदा नहीं, जो रूप-गुणका अभाव दिखलायी देते ही तोड़ दिया जा सकता है। हिंदू-विवाहका उद्देश्य क्रमशः विषयासक्तिसे मुक्त होकर भगवान्‌की ओर बढ़ना ही है। पत्नीके लिये पति तथा पतिके लिये पत्नी परस्पर अच्छेद्य धर्मसूत्रमें आबद्ध होकर—एक दूसरेके सुख-दुःखमें अभिन्न रहकर एक दूसरेकी धार्मिक-आध्यात्मिक प्रगतिमें सहायक है, अतः दोनों परमार्थ-पथके पथिक हैं। उनमें विषय-विलास नहीं होता। वे संतानोत्पादनरूपी धर्मके लिये ही धर्मसंगत काम†का सेवन करते हैं। अतः स्वाभाविक ही वे विलास-सामग्रीके रूपमें एक दूसरेका चिन्तन नहीं करते। पर-पुरुष तथा पर-नारीका चिन्तन सर्वथा निषिद्ध है और इस 'पर-निषेध' का विशदीकरण करनेके लिये ही नारी-निन्दा है।

प्रश्न हो सकता है कि "फिर इस रूपमें 'नारी निन्दा' ही क्यों? 'पुरुष निन्दा' क्यों नहीं?" इसका उत्तर यह है कि नारी धर्मानुसार एकमात्र अपने स्वामीमें परमात्मबुद्धि रखती है और जीवनके समस्त कार्य स्वामीके प्रीत्यर्थ ही करती है। उसके लिये पर-पुरुषका कोई प्रश्न ही नहीं, जिसकी निन्दा करके उसके मनको उधरसे हटाना आवश्यक हो, क्योंकि उसके मनमें तो स्वामीके अतिरिक्त दूसरे पुरुषका अस्तित्व ही नहीं है—'सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।' परंतु पुरुषके लिये यह बात नहीं है। पुरुष अपनी पत्नीमें व्यवहारतः परमात्मभाव नहीं रखता। व्यवहारमें पत्नी उसके लिये पूजनीया नहीं है; उसे जगत्‌में सब प्रकारके धर्मोंको यथाधिकार सम्पन्न करते हुए ही भगवान्‌को प्राप्त करना है, बहुतोंको पूजना है। (अवश्य ही उसे भी इस बहुपूजनमें पतिव्रताके आदर्शको सामने रखकर एक परमात्माकी पूजाके लिये ही सबकी पूजा करनी चाहिये। अपने मनमें एक स्त्री ही क्या, कीट-पतंगमात्रको ही भगवान्‌का स्वरूप समझकर मन ही-मन सभीको पूजना और प्रणाम करना चाहिये।*) इसीलिये वह व्यवहारमें नारीको नारी-भावसे देखता है, परंतु भगवत्प्राप्ति तो उसको भी होनी ही चाहिये। इसी कारण उसके लिये विविध साधनोंका विधान है, परंतु नारीको पतिसेवाके अतिरिक्त अन्य यम, नियम, जप, तप, व्रत, योग, यज्ञ, स्वाध्याय और तीर्थसेवनादि साधनोंकी कोई आवश्यकता नहीं होती। वह परमात्मभावसे किये हुए एकमात्र पतिसेवनरूपी महासाधनके द्वारा ही अनायास भगवत्प्राप्ति लाभ करती है—परमगतिको प्राप्त होती है—'बिनु श्रम नारि परम गति लहई।' (इतना ही नहीं, वह अपने पातिव्रत्यके प्रतापसे पापी पतिका भी परित्राण कर देती है।) विष्णुपुराणमें मुनियोंकी शङ्काका समाधान करते हुए भगवान् वेदव्यासजीने स्त्रियोंको 'साधु' और 'धन्य' बतलाया और फिर इस युक्तिका रहस्योद्घाटन करते हुए कहा—

> स्वधर्मस्याविरोधेन नरैर्लब्धं धनं सदा।
> प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि॥
> तस्यार्जने महाक्लेशः पालने च द्विजोत्तमाः।
> तथासद्विनियोगेन विज्ञातं गहनं नृणाम्॥
> एवमन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः।
> निजाञ्जयन्ति वै लोकान् प्राजापत्यादिकान् क्रमात्॥

---

* श्रवणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च कार्यनिष्पत्तिरेव च॥

'स्त्रीसम्बन्धी चर्चा सुनना, कहना, स्त्रियोंके साथ खेलना, उन्हें देखना, गुप्त बात करना, संकल्प करना, प्रयत्न करना और अङ्ग-सङ्ग करना—ये आठ प्रकारके मैथुन हैं।'

† 'धर्मसङ्गत काम' भगवान्‌का स्वरूप है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—'अर्जुन! प्राणियोंमें धर्मसे अविरुद्ध काम मैं हूँ'—'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ'।

* सीयराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
(मानस, बालकाण्ड)

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः॥
(श्रीमद्भा० ११।२।४१)

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदी, समुद्र—सभी भगवान्‌के शरीर हैं, ऐसा समझकर, कोई भी प्राणी हो, सबको अनन्यभावसे—भगवद्भावसे प्रणाम करे।'

योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा।
तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः॥
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा।
तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः॥
(६।२।२५-२९)

'पुरुषोंको अपने धर्मानुकूल (वर्णाश्रमानुमोदित तथा सत्य एवं न्यायपूर्वक) प्राप्त किये हुए धनसे ही सर्वदा सुपात्रको दान और विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठगण! ऐसे द्रव्यके उपार्जनमें तथा रक्षणमें बड़ा क्लेश होता है और कहीं वह धन अनुचित काममें लगा दिया गया तो उससे मनुष्योंको जो कष्ट भोगना पड़ता है, वह विदित ही है। इस प्रकार हे द्विजसत्तमो! पुरुषगण इन तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायोंके द्वारा प्राजापत्य आदि शुभ लोकोंको क्रमशः प्राप्त करते हैं। परंतु स्त्रियाँ तो कर्म मन-वचनद्वारा पतिकी सेवा करनेसे उनकी हितकारिणी बनकर पतिके समान शुभ लोकोंको अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषोंको अत्यन्त परिश्रमसे मिलते हैं। इसीलिये मैंने तीसरी बार यह कहा था कि 'स्त्रियाँ साधु हैं।'

परंतु यह ऊपर कहा ही गया है कि पुरुषके विविध परमार्थ-साधनोंमें प्रधान विघ्न है विषय-वासना, और उसमें प्रधान है—नारी। नारीके प्रति आसक्त चित्तवाला पुरुष परमार्थ-साधनमें कभी अग्रसर नहीं हो सकता। नारीमें इतना आकर्षण है कि साधन-संलग्न तपस्वी, वनवासी ऋषि, महर्षि, राजर्षि तथा देवर्षि भी नारी-संसर्गमें आकर अपनी साधनाकी रक्षा नहीं कर पाये हैं। विश्वामित्र, दुर्वासा, सौभरि, नारद आदि इसके उदाहरण हैं। इसीलिये विषयोंमें दुःखरूप दोषोंको देखकर या उनमें दुःख-दोष-बुद्धि करके वैराग्य प्राप्त करनेकी बात भगवान्‌ने गीतामें कही है—'दुःखदोषानुदर्शनम्' (१३।८)। नारीमें दुःख दोष दिखलाकर उससे आसक्ति हटाने और चित्तवृत्तिको भगवान्‌की ओर लगानेके लिये ही शास्त्रकी नारी-निन्दामें प्रवृत्ति हुई है। 'नारी नरककी खानि है; अग्नि, साँप, विष, क्षुरधार आदिसे भी भयानक है; साक्षात् सिंहिनी और सर्पिणी है' इत्यादि वर्णन उसके प्रति पुरुषके हृदयमें जो रमणीयताका भाव है, उसे हटानेके लिये ही है। स्त्रीमें भोग्य-बुद्धिका नाश हो जाय, इसीलिये ये सारी बातें कही गयी हैं। वेदोंमें जहाँ स्त्रीकी बड़ी प्रशंसा है, वहाँ भी उसे निन्दनीय कहा है—

ऋग्वेदमें कहा है—
इन्द्रश्चिद् घा स्त्रिया अशास्यं मनः उतो अह क्रतुं रघुम्।
(८।३३।१७)

इन्द्रने कहा—'नारीके मनका दमन नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसकी बुद्धि स्वल्प है।'
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता।
(१०।९५।१५)

'स्त्रियोंसे मित्रता करना व्यर्थ है, क्योंकि उनका हृदय भेड़ियेके समान है।'

मनु महाराज कहते हैं—
स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः॥
अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः।
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम्॥
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥
(२।२१३—२१५)

'इस लोकमें पुरुषोंको विकारग्रस्त कर देना—यह नारियोंका स्वभाव है। अतएव बुद्धिमान् पुरुष नारियोंकी ओरसे कभी प्रमाद नहीं करते—असावधान नहीं रहते। संसारमें कोई मूर्ख हो चाहे विद्वान्, काम-क्रोधके वशीभूत हुए पुरुषको स्त्रियाँ अनायास ही कुमार्गमें ले जा सकती हैं। (इसलिये) पुरुषको चाहिये कि वह माता, बहिन या पुत्रीके पास भी एकान्तमें न बैठे, क्योंकि इन्द्रियसमूह इतना बलवान् है कि विद्वान्‌के चित्तको भी खींच लेता है।'

श्रीमद्भागवतमें कहा है—
महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।
(५।५।२)

'महापुरुषोंकी सेवा मुक्तिका और स्त्री सङ्गियोंका सङ्ग नरकका द्वार है।'

न तथास्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः।
योषित्सङ्गाद् यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः॥
(११।१४।३०)

'स्त्रियोंके संगसे और स्त्री-संगी—कामी पुरुषोंके संगसे पुरुषको जैसे क्लेश और बन्धनमें पड़ना होता है, वैसा क्लेश और बन्धन किसी भी दूसरे संगसे नहीं होता।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा गया है—

यत्रेमे दोषनिवहाः काऽऽस्था तत्र पितामह।
का क्रीडा किं सुखं पुंसो विण्मूत्रमलवेश्मनि ॥
तेजः प्रणष्टं सम्भोगे दिवालापे यशःक्षयः।
धनक्षयोऽतिप्रीतौ चात्यासक्तौ वपुःक्षयः॥
साहित्ये पौरुषं नष्टं कलहे माननाशनम्।
सर्वनाशश्च विश्वासे ब्रह्मन्नारीषु किं सुखम्॥
(२३। २३-२५)

देवर्षि नारदजी पितामह ब्रह्माजीसे कहते हैं—

'जिस नारी-शरीरमें इतने दोषसमूह हैं, पितामह! उसपर कैसा भरोसा! इस मूत्र-पुरीष एवं मैलके कोठारमें पुरुषकी कैसी क्रीड़ा और कौन सुख है? स्त्रीके साथ सम्भोगमें तेजका नाश होता है, दिनमें बात करनेसे यशका नाश, अधिक प्रीति करनेसे धनका क्षय और अधिक आसक्तिसे शरीरका क्षय होता है। हे ब्रह्मन्! स्त्रियोंका संग करनेसे पौरुषका नाश, कलह करनेसे मानका नाश और विश्वास करनेसे सर्वनाश होता है। अतः स्त्रियोंमें कौन सुख है?'

महाभारतमें आया है—

अन्तकः पवनो मृत्युः पातालं वडवामुखम्।
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः॥
(अनुशासन० ३८। २९)

'यम, वायु, मृत्यु, पाताल, वडवानल, छूरेकी धार, विष, साँप और अग्निके साथ नारीकी तुलना दी जा सकती है।'

महात्मा कबीरजीने कहा है—

नारी की झाँई परत अंधा होत भुजंग।
कबीर तिन की कौन गति, नित नारी के संग॥
कामिनि सुंदर सर्पिनी, जो छेड़े तेहि खाय।
जे गुरु चरनन राचिया, तिनके निकट न जाय॥
पर नारी पैनी छुरी, मति कोइ लावो अंग।
रावन के दस सिर गए पर नारी के संग॥
नारी निरखि न देखियें, निरखि न कीजै दौर।
देखे ही ते विष चढ़ै, मन आवै कछु और॥
नारी नाहीं, जम अहै, तू मन राचै जाय।
मजारी ज्यों बाकि के काढ़ि कलेजा खाय॥
नैनों काजर पाइ कै गाढ़े बाँधे केस।
हाथों मेहँदी लाइ कै बाघिनि खाया देस॥

महात्मा सुन्दरदासजी कहते हैं—

कामिनी को अंग अति मलिन महा अशुद्ध,
रोम रोम मलिन मलिन सब द्वार है।
हाड़, मांस, मज्जा, मेद चर्म सूँ लपेट राखे,
ठौर ठौर रकत के भरे हू भंडार हैं॥
मूत्र हू पुरीष आँत एकमेक मिल रही,
और हू उदर माँहि विविध विकार हैं।
सुंदर कहत नारी नख सिख निन्दा रूप,
ताहि जो सराहैं, सो तो बड़ोई गँवार है॥

इसी प्रकार अन्यान्य शास्त्रों और संतोंने नारीकी विविध प्रकारसे निन्दा की है और यह सत्य ही है कि जो पुरुष नारीके उच्चतम हृदय, उसके त्यागमय और स्नेहमय स्वरूप तथा उसके पवित्रतम देवी भावको और न देखकर उसके शरीरस्थ स्थूल मांसपिण्डों और मल-मूत्रके गन्दगीकी ओर लालायित सतृष्ण दृष्टिसे देखेगा, उसे स्वर्गके दिव्य अमृत थोड़े ही मिलेगा? उसके लिये नारी वरदायिनी देवीके रूपमें थोड़े ही आत्मप्रकाश करेगी? उसके लिये तो वह निश्चय ही नरकका द्वार,* भीषण बाघिनी, विषधरी सर्पिनी और सर्वहरा मृत्यु ही होगी।

विचार करनेपर पता लगेगा कि इस नारी-निन्दामें नारी-रक्षा भी अन्तर्हित है। नारीके पतनमें कारण है पुरुषकी नीच प्रवृत्ति। पुरुषकी नीच प्रवृत्ति यदि किसी कारणसे रुक जाय तो नारीका पतन हो ही नहीं सकता। एक तो उसके पास पातिव्रत्यका रक्षा-कवच है; दूसरे यदि वह कहीं गिरना भी चाहेगी तो शास्त्रके वचनानुसार नारीकी भीषणताको देखा हुआ, उसे भयानक बाघिनी तथा नरककी खानि समझनेवाला नीच प्रवृत्तिसे रहित पुरुष उससे स्वाभाविक ही दूर रहेगा; फलतः नारीका पतन भी नहीं होगा। इस प्रकार दोनों ही पतनसे बच जायँगे और दोनों ही धर्मपथपर आरूढ़ होकर मानवजीवनके परम लक्ष्य भगवान्‌को प्राप्त कर सकेंगे।

अतएव शास्त्रों और संतोंके द्वारा की गयी नारी-निन्दा नारी और पुरुष दोनोंके लिये ही कल्याणकारिणी है और इसी सद्-उद्देश्यसे की गयी है। वस्तुतः तात्पर्य भी यही है।

दूसरी दृष्टिसे विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि यह निन्दा वस्तुतः साध्वी-सती नारीकी नहीं है। [illegible] नारी तो अपने पवित्र पातिव्रत्यके प्रतापसे सभी पुरुषोंकी

* भगवान्‌ने काम, क्रोध, लोभको नरकका द्वार बतलाया है। क्रोध और लोभ वस्तुतः कामके ही [illegible] ही है। काम ही प्रतिहत होकर क्रोध और [illegible] होकर लोभ [illegible] कामसे प्रसिद्ध होता है।

पाप-भावनाको या पापात्मा पुरुषोंके शरीरको अपने संकल्प-मात्रसे नष्ट कर सकती है। यह निन्दा तो कुलटा स्त्रियोंकी है, जो अपनी दूषित आन्तरिक वृत्ति या बाह्य क्रियाओंसे पुरुषोंको कलङ्कित किया करती हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीनारदजी कहते हैं—'स्त्रियाँ तीन प्रकारकी होती हैं—साध्वी, भोग्या और कुलटा। जो पर-लोकके भयसे, यशकी इच्छासे तथा स्नेहवशतः स्वामीकी निरन्तर सेवा करती है वह 'साध्वी' है। जो मनोवाञ्छित गहने-कपड़ोंकी चाहसे कामस्नेहयुक्त होकर पतिकी सेवा करती है, उसे 'भोग्या' कहते हैं और 'कुलटा' नारी तो वैसी ही होती है, जैसा 'कुलाङ्गार' पुरुष होता है। यह कपटसे पति-सेवा करती है, इसमें पतिभक्ति नहीं होती। इसका हृदय छूरेकी धार-सा तेज होता है, पर इसकी वाणी अमृत-सी होती है। इसका काम पुरुषसे आठगुना, आहार दूना, निष्ठुरता चौगुनी और क्रोध छःगुना होता है। ऐसी पुंश्चली नारी जारके लिये पतितकको मार डालनेमें नहीं हिचकती।' (ब्र० वै० ब्रह्मखण्ड, अध्याय २३)

इस प्रकारकी कुलटा नारीसे तो सभीको बचना चाहिये; परंतु वैराग्यकी साधना करनेवाले मुमुक्षु पुरुषके लिये तथा संन्यासी, वानप्रस्थ और ब्रह्मचारियोंके लिये तो नारीमात्र ही साधन-पथका अवरोध करनेवाली होती है। इस दृष्टिसे भी नारीकी निन्दा करना सार्थक है। इस प्रकार नारीमें दोष देखकर गृहस्थ पर-स्त्रीका त्याग करे और ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी नारीमात्रका। यही नारी-निन्दाका उद्देश्य है।

आजकल तो पुरुषजातिकी नीचता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। वे भाँति-भाँतिसे नारीका पतन करनेमें लगे हुए हैं। शास्त्रोंमें नारीकी जो निन्दा की गयी है, उससे सचमुच कहीं अधिक निन्दाका पात्र वर्तमान कालका पुरुषवर्ग है। वस्तुतः आज नारीको ही इस दुष्ट पुरुषसमाजसे बचना चाहिये। नारी इस बातको न समझकर जो पुरुष-संसर्गमें अधिक आने लगी है और इसीमें अपना अभ्युदय मान रही है, यह उसकी बहुत बड़ी भ्रान्ति है। आजके कुत्सितहृदय पुरुषसमाजने उसे बहकाकर भ्रममें डाल दिया है। नारी बाघिन-साँपिन हो या न हो; परंतु आजका नीच स्वार्थके वशमें पड़ा हुआ यह पुरुष तो नारीके लिये साँप-बाघसे भी बढ़कर भयानक है, जो ऊपरसे साँप-बाघ-सा डरावना न दीखनेपर भी—वरं मित्र-सा प्रतीत होनेपर भी—वस्तुतः नारीके महान् पतनके सतत प्रयत्नमें लगा है।

हिंदू-संस्कृतिमें नारीका स्थान

(लेखक—श्रीताराचन्द्रजी पांड्या)

मानव-जगत्का प्रायः आधा भाग नारी-जातिका है। संख्याके लिहाजसे भी नारी-जातिका महत्त्व स्पष्ट है।

नारी माताके तौरसे सन्तानको उत्पन्न करती है, उसका पालन-पोषण करती है तथा उसके प्रति जीवनभर अपार एवं निःस्वार्थ प्रेम धारण करती है। गृहिणीके तौरसे नारी पुरुषकी सखा है, मन्त्री है, उसके घरकी व्यवस्था करती है तथा धर्म-का भी साधन कराती है। वह पितृकुल और पतिकुल दोनों-को आनन्द देनेवाली है; प्रेम, दया, धैर्य, परिश्रम एवं स्वार्थ-त्यागकी प्रतिमा है; तथा पुरुषवर्ग उससे शक्ति, उत्साह एवं हर कार्यमें सहायता प्राप्त करता है। परंतु साथ ही उसके शरीरके प्रति पुरुषका कामवासना-सम्बन्धी आकर्षण भी होता है, जिसे समाज-हितके लिये संयमित करनेकी तथा मोक्ष (यानी स्वाधीनता, पूर्ण उन्नति एवं विश्व-प्रेम) के लिये नष्ट करनेकी आवश्यकता होती है। नहीं तो अनेक सामाजिक, कौटुम्बिक, वंश (नस्ल) सम्बन्धी और आध्यात्मिक अनर्थ हो जाते हैं।

इसीलिये हिंदू-शास्त्रोंमें जहाँ नारीके कन्यापनकी, मातृत्व-की तथा गृहिणीत्वकी पूजा की गयी है—माताके तौरसे उसे शिक्षक (उपाध्याय) से दस लाख गुना तथा पितासे हजार गुना गौरवशाली बताया गया है (मनु० २ । १४५), जननी-के तौरसे स्वर्गसे भी अधिक महिमाशाली कहा गया है, गृहिणी-के तौरसे उसे लक्ष्मी, सखा, सहधर्मिणी, धर्म एवं स्वर्गका साधन* तथा पुरुषकी शक्ति बताया गया है,—वहाँ उसके प्रति कामवासना मन्द या नष्ट करनेके प्रयोजनसे उसकी निन्दा भी की गयी है तथा उसकी इस तरहकी अपवित्र वासना-से रक्षाके लिये उसकी स्वतन्त्रताको नियन्त्रित किया गया है (मनु० ९ । ५–७, ९)। लेकिन उसे भी बलपूर्वक करनेकी व्यर्थता प्रकट कर दी गयी है।† जो इन भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं-पर ध्यान नहीं देते और अज्ञानसे या पक्षपातसे केवल नारी-निन्दाके ही वाक्योंको सामने रखते हैं, वे ही कहते हैं कि 'हिंदू-संस्कृतिमें नारीका तिरस्कार है।'

* अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह॥
(मनु० ९ । २८)

† कोई पुरुष जोर करके स्त्रियोंकी रक्षा नहीं कर सकता। घरमें बंद की जानेपर भी स्त्री रक्षित नहीं रह सकती। जो आप अपनी रक्षा करती है, वही अपनेको सुरक्षित रख सकती है। (मनु० ९ । १०, १२)

असलमें तो कामवासनाके आधारपर नारीकी निन्दा नारीके गौरवके ही लिये है; क्योंकि इसके द्वारा पुरुषको तथा नारीको—दोनोंको बताया गया है कि नारी कामवासनाकी तृप्तिके लिये नहीं है। यह तो उसका अधोगत स्वरूप है, लेकिन असलमें वह माता, लक्ष्मी और सखा तथा धर्म एवं अर्थमें सहायक है और इन्हींके रूपमें उसे मानना चाहिये। हिंदू-शास्त्रोंमें कामवासना संतानोत्पत्तिके कर्तव्यके लिये ही विहित मानी गयी है, लेकिन यह कितनी खूबी है कि पुत्रोत्पत्तिके बाद, 'पति ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है' इस आधारपर उसी स्त्रीके प्रति जाया भाव रखनेकी सूचना है (मनु० ९।८)। मनुने जो ज्येष्ठ पुत्रको ही धर्मज बताया है (९।१०६-७), उसका भी यही तात्पर्य प्रतीत होता है। इससे सूचित है कि नारी केवल सतानोत्पत्तिके लिये भी नहीं है।

मुस्लिम फकीर जुन्नेदने भी नारीके शरीरको नरकका तत्त्व बताया है।

कामवासनाकी अपेक्षासे पुरुषके लिये नारीको जैसा निन्दित कहा गया है, नारीके लिये पुरुषकी भी वैसी निन्दा समझनी चाहिये।

स्त्री स्वयं एक आत्मा है। पुरुषकी भाँति उसका भी गृहस्थाश्रम उसके अपने आत्माकी उन्नति तथा उसके अपने सद्गुणोंके विकासके लिये साधनस्वरूप है, जिसमें वह मातृत्व, गृहिणीत्व आदिके कर्तव्योंका पालन करती हुई तथा पतिके सत्कार्योंमें सहायता देती हुई उनके साथ-साथ तथा उनके द्वारा परोपकार, सेवा, संयम, त्याग, समत्व, ज्ञानप्राप्ति, भक्ति आदिका साधन या अभ्यास करती हुई अपने आत्मिक सद्गुणोंका विकास करती है। विशेष आत्मिक उन्नतिके लिये वैसी यथार्थ मानस स्थिति प्राप्त होनेपर मीराँबाई आदिकी भाँति वह भी गृहस्थाश्रमका त्याग कर सकती है।

पुरुष और स्त्रीके पारस्परिक सम्बन्धोंके लिये अन्य धर्मोंकी ओर देखें तो कुरानमें पुरुषोंको स्त्रियोंसे ऊँचा बताया गया है और पराङ्मुखी स्त्रीको पीटनेकी भी अनुज्ञा दे (४।३८) तथा स्त्री पतिकी खेती कही गयी है (२।२२३)। बाइबलमें भी स्त्रियोंके लिये पतिकी अधीनता आवश्यक बतायी गयी है (जेनेसिस ३।१६, १ कोरिन्थिअन्स ११।९; १४।३४; १ टिमोथी २।११-५; एफेशिअन ५।२२-८), और स्त्रीको बन्धन-स्वरूप तथा मृत्युसे भी अधिक दुःखदायी कहा गया है (एक्लेजिएस्टेज ७। २६)। हिंदू-धर्ममें भी सामान्यतया पत्नीके लिये पतिकी अधीनताका आदेश है, लेकिन यह पत्नीका कर्तव्य है और कौटुम्बिक शान्तिके उद्देश्यसे है, अन्यथा प्रतिस्पर्द्धा या कलह होते हैं। पतिका धर्म तो यह है कि पत्नीको मित्रवत् एवं अपने समान समझे। बाइबल (एफेशिअन्स ५। २५-३३) का भी यही मत है। इस प्रकार दोनों एक दूसरेके प्रति अपने अपने कर्तव्योंका पालन करें, तभी व्यवस्था रह सकती है।

पत्नीको अपने समान समझनेके लिये हिंदू शास्त्रोंमें केवल उपदेश ही नहीं है, किंतु इसे व्यवहारमें लाने एवं सुरक्षित रखनेके भी कई अचूक उपाय कर दिये गये हैं। धर्म-कर्म करने एवं दान देनेमें पत्नीकी सम्मति एवं उसका साथ लिया जाना आवश्यक ठहराया गया है। रुपये-पैसे इकट्ठे करने, खर्च करने आदिका कार्य भी स्त्रीको दिया गया है (मनु० ९।११)। मनुजी कहते हैं कि 'स्त्री-पुरुष मरणपर्यन्त धर्म, अर्थ आदिमें परस्पर अभिन्न होकर रहें; यह स्त्री पुरुषका श्रेष्ठ धर्म संक्षेपमें जानना चाहिये' (९।१०१)

वर्तमान हिंदू-नारीकी दुर्दशाका चित्र [illegible] प्रायः अतिरञ्जित ही होता है। आज भी हिंदू-स्त्रीकी [illegible] अन्य देशों और जातियोंकी स्त्रियोंकी तुलनामें [illegible] है—समाजमें एवं घरमें उसका ज्यादा सम्मान है तथा उसके अधिकार अधिक स्थिर एवं सुरक्षित हैं। फिर भी उनके सुधारकी आवश्यकता तो है ही। उसकी जो दुर्दशा [illegible] होती है, उसका कारण अधिकांशमें यह पाश्चात्य [illegible] है जिसने जीवनको स्वार्थी तथा विलासी बना दिया है, [illegible] तथा असन्तोषको बढ़ा दिया है और सामाजिक [illegible] व्यवस्थाको विशृङ्खल कर दिया है। हिंदू स्त्रियोंकी दशाके सुधारनेके उपाय निम्नलिखित हैं—(१) स्त्रियाँ अपने आपको केवल कामवासनाकी तृप्तिका साधन न बनने दें। माता, गृहिणी एवं पतिके सखाके तौरपर अपने गौरवकी रक्षा करें। (२) कामोत्तेजक एवं विलासमय [illegible] छोड़कर सादा परिश्रमी जीवन बितावें। (३) [illegible] पालन पोषण तथा घरके काम [illegible] को तुच्छ न समझें; उन्हें देश-सेवा एवं [illegible] महत्त्वपूर्ण अंग समझकर प्रेम तथा [illegible] करें। [illegible] कुटुम्ब सेवाको ही [illegible] (प्रॉवर्ब्स ३१। १०-३१)। (४) [illegible] आदिमें नारीके शरीर [illegible] करके उसके परिश्रमी जीवन [illegible] आप तथा स्त्रियोंमें इसका [illegible]

(५) नारीकी शिक्षा ऐसी हो, जिससे वह अपने मातृत्व एवं गृहिणीत्वके कर्तव्योंका सुचारुरूपसे पालन कर सके और अपने-आपको पतिकी जीवन-संगिनी एवं मित्र होनेके योग्य बना सके। (६) जैसी कि शास्त्रोंकी आज्ञा है, धर्म-कर्ममें तथा दान देनेमें पत्नीकी सम्मति लेना आवश्यक समझा जाय और सम्पत्तिके प्रबन्धमें भी उसका हाथ रहे। इससे यह लाभ होगा कि पतिके बाद भी वह सम्पत्तिका प्रबन्ध तथा संतानके हितोंकी रक्षा कर सकेगी। (७) स्त्रियोंके साम्पत्तिक एवं अन्य अधिकारोंकी रक्षा करना समाज एवं राज्य अपना एक मुख्य कर्तव्य समझे। (८) सदाचारिणी विधवाओंको सच्चे महात्मा-साधुओंके समान पूज्य समझा जाय। (९) यदि कोई स्त्री किसी कारणवश पतित हो जाय तो यथायोग्य तथा उसकी शक्तिके अनुसार प्रायश्चित्त देकर उसकी शुद्धि कर ली जाय और इस विषयमें पुरुष एवं स्त्रीमें अन्तर न किया जाय।

नारी-तत्त्व

(लेखक—पं० श्रीहनूमान्‌जी शर्मा)

(१) सृष्टिमें सुपीत कृष्ण भृङ्ग और स्वयम्भू (ब्रह्मा) तथा उनकी मानस संततिके सिवा ऐसा कोई भी जीव-जन्तु या प्राणी प्रतीत नहीं होता, जो नारीके सहयोग बिना केवल नरसे उत्पन्न हुआ हो या होता हो अथवा नर उसे उत्पन्न कर सकता हो। इसीलिये जनतामें 'नारीको नरकी खान' माना है। ………चाहे गौ, वृष, गज, अश्व या महिष हो; चाहे सिंह, व्याघ्र, वराह या भालू हो, चाहे मयूर, मराल, कुक्कुट या काक-कबूतर, कमेड़ी हो और चाहे कीट-पतङ्ग, वर्रा या मनुष्य हो; सबकी जननी (तज्जातीय) नारी होती है। उसके बिना अकेले नरसे कोई भी उत्पन्न नहीं होता।

(२) ईश्वरने नारीके शरीरकी बनावटमें कुछ ऐसी विशेषताएँ रख दी हैं, जिनका होना नरके शरीरमें सम्भव ही नहीं। सूक्ष्म दृष्टिसे विचार कर देखा जाय तो नारी किसी अंशमें प्रकृतिका प्रतिरूप प्रमाणित होती है और फिर नर तो पुरुष है ही। साधारण जनता इस बातका स्मरण नहीं रखती कि संसारमें जो कुछ संघटन-विघटन होता है, वह सब प्रकृतिकी रचना है और पुरुष उसका प्रेरक है। उसीकी प्रेरणासे वह कुछ करती है; परंतु प्रकृति अन्धी है और पुरुष पङ्गु है। ऐसी दशामें सृष्ट्युत्पादनादिके प्रयोजनसे अंधी प्रकृतिके कंधोंपर पङ्गु पुरुष आरूढ होकर अपने शब्द-सङ्केतादिसे काम करवाता है। यही बात मानव-जातिके नर-नारीमें संघटित होती है।

(३) प्राकृत नर केवल जीवनोपयुक्त धनोपार्जन कर लेता या कमाकर खा लेता है; किंतु नारीको पतिसेवा, गर्भ-रक्षा, शिशुपालन, गृह-प्रबन्ध, गोदोहन, रससंग्रह, सूप-सूत्र-सूचीकर्म, भाजन-निर्माण और आगत-स्वागतादिकी व्यवस्था आदि अनेक काम करने पड़ते हैं। ये काम एक या एकाधिक अन्य जातिके जीवोंमें भी होते हैं; परंतु मानव-नारीमें अनेक गुण होनेपर भी कुयोगवश वह अनारीपनेमें प्रवृत्त हो जाती है और उस समय नरकी प्रेरणा या मार्ग-प्रदर्शनसे ही वह कुछ करती है। अस्तु, इस अंशसे आभासित होता है कि नरकी अपेक्षा नारीके शरीरकी रचनामें अवश्य ही अनेक प्रकारकी विशेषता विद्यमान है और इस लेखमें उनके प्रकट करनेका किंचित् प्रयास किया गया है।

(४) नारीमें सृष्टि-उत्पादनकी योग्यता और प्रकृतिका प्रतिरूप होनेकी सामर्थ्यके सिवा वह 'दौहृदिनी' (दो हृदय-वाली) होती है, यह अलौकिक विशेषता है। शरीर-शास्त्रसे मालूम होता है कि गर्भावस्थाके दिनोंमें बालक जब चार मासका होता है, तब उसके अङ्ग-उपाङ्ग सब बन जाते हैं और वह हृदयवान् हो जाता है। उस समय उसके हृदयकी अभि-लाषाएँ नारीके हृदयद्वारा प्रकट हुआ करती हैं। गर्भवती स्त्रीके समीप रहनेवाले इस बातका जानते हैं कि उन दिनोंमें वह खाने-पीने, पहनने-विचरने, व्यवहार या आहार-विहार करने आदिकी अनेक अभिलाषाएँ प्रकट किया करती है। वे सब गर्भगत बालककी होती हैं और उनकी पूर्ति करना पति आदिके लिये नितान्त आवश्यक है। यदि भ्रमवश उनकी पूर्ति न की जाय तो गर्भस्थ बालकके बुद्धि-विवेकादिकी हीनता या विकृताङ्ग होनेकी सम्भावना रहती है। ग्रामीण स्त्रियोंका कथन है कि 'किसी स्त्रीको गर्भावस्थाके दिनोंमें अभक्ष्य-भक्षणकी इच्छा हुई, वह उसे खा गयी। साथ ही उसका देहान्त हो गया। तब मालूम हुआ कि वही पदार्थ बालकके मुँहमें है।' इससे उसके दो हृदय होना सिद्ध हुआ। अस्तु,

(५) जनतामें यह बात विख्यात है कि 'सतवाँस्या' (सातवें महीनेमें उत्पन्न हुआ) बालक जीवित रह जाता है किंतु 'अठवाँस्या' (आठवें महीनेमें उत्पन्न हुआ) जीवित नहीं रहता। क्यों नहीं रहता? इसका मुख्य कारण यही है

कि 'गर्भमें आठ महीनेका बालक हो जाता है, उस समय उसके ओजकी उत्पत्ति हो जाती है और वह कभी नारीके हृदयमें आ जाता है और कभी बालकके हृदयमें चला जाता है; किंतु वही ओज जिस समय बालकके हृदयसे माताके हृदयमें गया हुआ हो और उसी समय नारीके प्रसव-वेदना शुरू होकर बालक बाहर आ जाय तो वह जीवित नहीं रहता (जीवनप्रद ओजके न होनेसे तत्काल या कालान्तरमें मर जाता है) । नारीके लिये यह विशेषता अति चिन्तनीय और चिरस्मरणीय है ।

(६) अनभिज्ञ मनुष्य यह देखकर आश्चर्य कर सकते हैं कि नर वीर्यरूपसे नारीके उदरमें प्रवेश करता है और फिर वही पुत्र होकर बाहर आता है । उस समय उसके गुण, कर्म, स्वभाव या रूप-रंग और आकृति आदि पुत्रमें अङ्कित रहते हैं और वह 'आत्मा वै जायते पुत्रः' को सार्थक करता है । कदाचित् आकृति आदि तद्भिन्न हों तो उसके औरस होनेमें सन्देह हो सकता है या गर्भाधानके विधानमें लोम विलोम हुआ है । इस प्रकारसे नारीके उदरमें नरका प्रवेश होना एक प्रकारकी 'प्रहेलिका' (पहेली) हो सकती है और उसके लिये कहा जा सकता है कि 'पुत्रोत्पादनके पीछे पत्नी पतिको पुत्ररूपमें परिणत करके मातारूपसे पालन-पोषण, रक्षण और शिक्षण करती है और पति पुत्ररूपसे पयःपानादि करके पोषित होता और पुत्र नामसे प्रसिद्ध होता है ।' परंतु व्यवहारमें 'पति पत्नी' और 'माता-पुत्र' ही कहलाते हैं । इसी विशेषतासे नारीको 'जाया' कहते हैं । प्रसङ्गवश यहाँ यह लिख देना उचित है कि परलोकमें गया हुआ सूक्ष्मशरीर अन्नादिमें आकर मनुष्य आदिकी किसी भी योनिको प्राप्त करके (तज्जातीय) नरके उदरमें जाता है और फिर वही वीर्य बनकर नारीके गर्भमें निवास करता और पुत्ररूपसे प्रकट होता है ।

(७) सद्गृहस्थ इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि मनुष्य-जातिकी नारी प्रतिमास रजस्वला होती है और उस अवसरमें तीन दिनतक उसके मूत्रमार्गसे रक्तस्राव हुआ करता है । तदनन्तर शुद्ध स्नान करनेपर यदि उसके गर्भ रह जाय तो मासिकधर्म बंद हो जाता है, साथ ही गर्भस्थ बालकके उत्पन्न होनेसे पहले ही नारीके पयोधर दुग्धपूर्ण हो जाते हैं, जिनको निकट भविष्यमें प्रकट होनेवाला बालक पीता और पोषित होता है । यह क्रिया बालकके पयःपान करनेपर्यन्त होती रहती है फिर बंद हो जाती है और मासिकधर्म होते ही रक्तस्रावकी पुनरावृत्ति आरम्भ हो जाती है । इस अदला बदलीमें अतिकालके रुके हुए रुधिरका क्या होता है और पयःपान बंद होनेके बाद पयोधरोंके दूधकी क्या वस्तु बनती है ? इस विषयमें वैज्ञानिकोंने अनुसन्धान करके यह निश्चय किया है कि 'गर्भ रहनेके पीछे मासिक धर्मका रुधिर ही दूधके रूपमें परिणत हो जाता है और बालकके पयःपानका त्याग होते ही फिर वही दूध रुधिरका रूप धारण कर लेता है । यह नारीके शरीर-रचनाकी विलक्षण विशेषता है ।

(८) इसी प्रकार एक दूसरी क्रिया और होती है । उसमें नारीके भुक्त भोजनादिका तथ्यांश गर्भस्थ बालकको मिलता है और उससे वह बढ़ता और पोषित होता है । इस कामके लिये प्रत्येक प्राणीके उदरमें एक ऐसा यन्त्र होता है जिसमें गये हुए अन्न-जल, तृण-कण, फल फूल या मांसादिका विश्लेपण होता है और उसके हो जानेपर तथ्यांशको अस्थि-मज्जा-मांसादिके बढ़ानेमें लगा दिया जाता है । विशेषता यह होती है कि नारीके भोजन किये हुए पोष्य या अपोष्य पदार्थोंके तथ्यांशसे उसके अस्थि-मज्जा मांसादि तो बढ़ते ही हैं साथ ही उसके सारभूत अंशसे गर्भस्थ बालककी क्षुधा निवृत्ति होती और मांसादि बननेमें सहायता मिलती है । इसमें भी यह अधिक होता है कि नारी तो अपने भक्ष्य पदार्थको मुखसे खाती है, किंतु गर्भस्थ बालक नारीकी रसवहा और अपनी नाभिबद्ध नाड़ीके द्वारा खाता-पीता या पोषित होता है । यह नाड़ी वही है, जिसको 'नाल' कहते हैं और जन्म होनेके बाद जिसका छेदन कर देते हैं । यह नाल सभी जरायुज जीवोंके होती है । उक्त प्रकारसे खाने-पीनेमें भी एक विशेषता और होती है—वह यह कि गर्भवती नारी तो जो कुछ खाती-पीती है, उससे उसके मूत्र और पुरीष बनते हैं और वह उनका त्याग करती है; परंतु गर्भस्थ बालक सब कुछ खा-पीकर भी न मूत्रत्याग करता है और न पुरीषोत्सर्ग करता है । यह एक विलक्षण क्रिया होती है और इसको आयुर्वेदके ज्ञाता जानते हैं ।

(९) इस विषयमें नारीके गर्भाधानसम्बन्धी नियमों तथा विशेषताओंका ध्यान रखना नरके लिये विशेष आवश्यक है । इस बातको सब जानते हैं कि रजस्वला नारी चौथे दिन शुद्ध स्नान करती है और वस्त्राभूषणादि धारण करनेके बाद सर्वप्रथम पतिको देखती है । यदि अन्य मनुष्यको या किसी प्रकारके कौतुकजनक अन्य दृश्यको देखे तो उसका प्रभाव गर्भाधानमें प्रविष्ट होता है । शास्त्रकारोंका मत है कि शुद्ध स्नान करनेपर पीछे विषम रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे पुत्री

और सममें पुत्र होता है। इसी प्रकार 'रजाधिक्ये भवेत्पुत्री शुक्राधिक्ये भवेत्पुमान्'—रज अधिक होनेसे पुत्री और वीर्य अधिक होनेसे पुत्र होता है। 'ज्योतिर्विज्ञान' के अनुसार छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं रात्रिमें जिस दिन गुरु, रवि, भौम और मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मूल और श्रवणका योग हो उस दिन एक प्रहर रात गये पीछे सहवास करनेसे सुन्दर सुशील, दीर्घायुषी और भाग्यशाली पुत्र होता है। गर्भाधानके समय नारीके अङ्ग-उपाङ्ग वक्र या विलोम न होने चाहिये। साङ्गोपाङ्ग सीधे रहने चाहिये। साथ ही स्वस्थचित्त विकसितहृदय उत्तमभावना पुत्रप्राप्तिकी कामना और हर्षोत्साह आदिसे संयुक्त रहनी चाहिये। इसी प्रकार शुक्रत्यागके समय नरको सत्यशील, दयाधर्म, देश-सेवा, धैर्य, वीर्य, उदारता और ईश्वरस्मरणादिमें मन रखना चाहिये। वैज्ञानिकोंका मत है कि नारी यदि शुद्ध स्नान करनेपर स्वप्नमें नरके साथ सहवास करनेका आचरण करे तो उसके भी गर्भ रह जाता है, परन्तु गर्भसे उत्पन्न होनेवाला बालक पितृज देहसे वर्जित रहता है अर्थात् उसके केश-श्मश्रु-नख-लोम-दन्त शिरा-धमनी और रेत आदि नहीं होते, क्योंकि पितृज देहमे स्नायु-अस्थि और मज्जा आदि पितासे प्राप्त होते हैं और लोम-रक्त तथा मांसादि मातासे मिलते है। इस सम्बन्धमे यह सूचित करना आश्चर्यजनक प्रतीत होगा कि 'मलयगिरिकी शुद्धस्नाता नारी वहाँका केवल वायु सेवन करके ही गर्भवती हो जाती है और उसीसे उनके सजातीय सुन्दर संतान उत्पन्न होती है।' अस्तु,

(१०) लोक-व्यवहारकी दृष्टिसे देखा जाय तो सद्गृहस्थके पारिवारिक संकटको सुचारुरूपसे चलानेमें नरकी अपेक्षा नारी अधिक तत्पर, प्रवीण और सहनशील होती है। गार्हस्थ्य जीवनके कई एक काम उसको ऐसे करने पड़ते है जिनके करनेमें नर अकुलाता, आपत्ति मानता या क्रोध करता है; परंतु नारी निर्धन रहकर या आपद्ग्रस्त होकर भी वैसा नहीं करती। दैवात् पतिकी असामयिक मृत्यु हो गयी हो, घरमें 'पयोमुख' (दुधमुँहे) और कुछ अवस्थावाले भी पाँच-सात बच्चे हों, निर्वाहके मार्ग सब बंद हो गये हो और कुछ कर्ज होनेसे उधार भी नहीं मिलता हो तो भी विधवा नारी बड़े धैर्यके साथ जेवर बेचकर, उधार लेकर, चून पीसकर या सूत कातकर मृत पतिकी अन्त्येष्टि-क्रिया करती, बच्चोंको समयपर (रूखा-सूखा कैसा भी) खिला-पिलाकर राजी रखती, यथासाध्य उनकी शिक्षा-दीक्षा और स्वास्थ्यका प्रबन्ध करती और अवसर आये उनके विवाह भी कर देती है; और यदि नरकी उपस्थितिमें नारी मर जाय तो बचे हुए बालकोंकी और घरके सामानकी बड़ी दुर्दशा होती है। गृहस्थकी उपयोगी सामग्रीको सद्व्यवस्थ रखना, समयपर भोजन बनाकर बच्चोंको खिलाना और आये-गयेका यथायोग्य स्वागत-सम्मान करना आदि तो दूर रहा, वह स्वयं भूखा रहता, बच्चोंको चना-चबैना या खोमचेका दोना खिलाकर राजी करता और आगत स्वागतमें चुप्पी खींचता है। इस प्रकार कई दिनोंतक करते रहनेसे अन्तमें अस्वस्थ, ऋणग्रस्त और आपद्ग्रस्त होकर रो देता है और बिलखते हुए बच्चोंको छोड़कर वनमें चला जाता या साधु होकर स्त्रियोको कोसने लगता है। ऐसी दशामें विधवा नारीकी अपेक्षा विधुर नर कितना अधीर, डरपोक, निरुद्यमी, अदूरदर्शी और मन्दबुद्धि सिद्ध होता है—इसका अनुमान विशेषज्ञ सद्गृहस्थ या भुक्तभोगी स्वयं कर सकते हैं।

(११) उपर्युक्त कष्टकारी कारणोंके बदले यदि आनन्दपूर्ण घरमें पतिप्राणा मनोहारिणी नारीके समीप खेलते हुए, पढ़ते हुए और लिखे-पढ़े पुत्रोंके सान्निध्यमें अन्न-पानादि लेने, सत्सम्मतिवाले सन्मित्रोंके आने, आज्ञापालक सुयोग्य सेवक होने, नित्यप्रति शिवपूजन, साधुसेवा और कथामृतपान करने और निखिलशास्त्रनिष्णात द्विजराजोंके पधारने एव घरका गृहेश्वर होनेपर भी नारीके समान नरसे न तो आतुर-भेषजादिकी व्यवस्था की जाती, न आतिथ्य-सत्कार पूर्ण होता, न बालक-बालिकाओंकी यथायोग्य परिचर्या हो सकती और न अन्नपानादिका, वस्त्राभूषणादिका या खण्ड-भाण्ड-शय्या-वितान आदिका यथासमय संचय किया जा सकता है। ऐसे कामोंके लिये गृहपति नर पैसे देकर पुस्तक-पत्रादिके पढ़ने, वार्तालाप करने, पत्रादि लिखने या बाजारमें चले जानेके सिवा और कर ही क्या सकता है। एतावन्मात्रमें ही उस नरके गृहेश्वर होनेका अधिकार सुरक्षित रह जाता है, किंतु नारी सब प्रकारके वैभव भोगती हुई भी प्रतिदिन पतिपद-रजको शिरोधार्य करने, क्रीडासक्त नग्नप्राय पुत्रोंको गोदमें रखने, उनका मल-मूत्रादि धोने, वस्त्राभूषणादिसे भूषित करने, अवसर आये झाड़ू लगाने, चौका-बर्तन करने, चक्की चलाने, भोजन बनाने, पति-पुत्रादिको (या भूखे-प्यासे आदिको) प्रेमपूर्वक आदरसहित भोजन कराने, शेषान्न (सामान्य भोजन) से भी सन्तुष्ट होने और आये-गये साधु-संत-महात्मा या सुपठित सन्मित्रादिका सत्कार करने आदिमें सदा-सर्वदा तल्लीन रहती है और उपर्युक्त कामोंके करनेसे कभी आकुल नहीं होती। ऐसी नारियोंको ही शास्त्रकारोंने

प्राचीन नारी
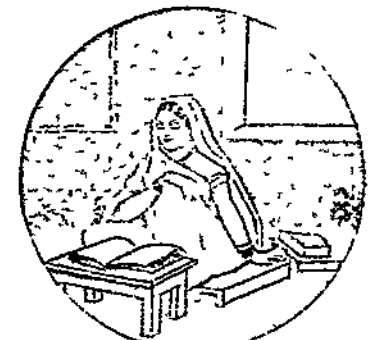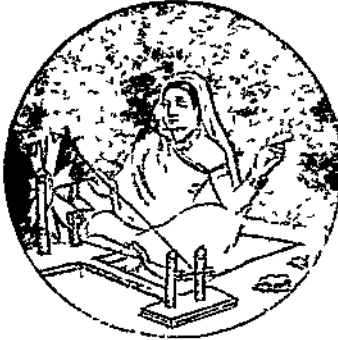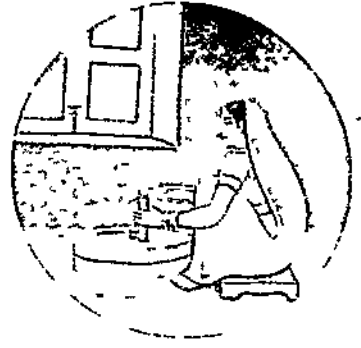
स्वच्छ रखती है घर-द्वारको बुहार सदा, धान कूट लेती औ चाकी भी चलाती है।
सूत कातती है और माखन विलोती घर, भोजन विशुद्ध निज हाथसे बनाती है॥
करती सिलाई है, लड़ाती लाड़ लाड़लेको, पाठ करती है, निज पतिको जिमाती है।
आय और व्ययका हिसाब लिखती है, हरि-गाथा सुनती है पुण्यजीवन बिताती है॥

'गृहेश्वरी' बतलाया है और उनसे ही गृहस्थाश्रमका महत्त्व मान्य होता है।

(१२) सद्योजात शिशुको खा जानेवाली कूकर-शूकर और बिडाल जातिकी नारीके सिवा प्राणिमात्रकी नारी स्वभावतः पतिकी अपेक्षा पुत्रपर अधिक स्नेह रखती है और आघातादिके अवसरमें पतिसेवाको छोड़कर भी पुत्रकी चिकित्सा तत्काल करती है। खाने-पीने आदिमें भी वह पुत्रके प्रति विशेष स्नेह दरसाती है और हठी पुत्रकी अनिष्टकर कामनाओंको भी किसी अंशमें प्रकारान्तरसे पूर्ण करती है। इस अंशका यह अभिप्राय नहीं है कि उस अवसरमें वह पतिसेवाका तिरस्कार करती है। सेवा अवश्य करती है; परंतु स्नेहानुराग पुत्रमें उपस्थित रहता है। ऐसा क्यों करती है? इसलिये कि पुत्र पतिका ही अंशप्रसूत है और पुत्ररूपसे पतिने ही नौ महीने-तक उदरमें निवास किया था और बाहर आकर भी उसने नारीका आदर-सम्मान अधिक करवाया था। ऐसे ही अनेक कारणोंसे नारीका पुत्रके प्रति प्रगाढ़ प्रेम होता है और उसकी अन्तरात्मा पुत्र-सेवाको ही पतिसेवा मानती है। यह सब कुछ होनेपर भी 'पातिव्रतधर्म'के प्राधान्यकालमें कुछ ऐसी पतिव्रता नारियाँ भी हो गयी हैं, जो प्रज्वलित अग्निकुण्डमें गिरते हुए अपने सुकुमार शिशुको देखकर भी गोदमें सिर रखकर शयन करते हुए पतिको जगाती नहीं थीं और ऐसी ही पतिव्रताओंके शापसे भयभीत होकर अग्निदेव भी स्वयं शीतल हो जाते और अङ्कस्थ अङ्गारोंको चन्दन-पङ्कमें परिणत करके शिशुको सुख-शय्यापर शयन करवाते थे।

(१३) मानव-जातिकी नारीके लिये 'सहगमनविधान' उसकी लोकोत्तर विशेषताका द्योतक है। यहाँ उसका आंशिक परिचय प्रकट करनेसे ज्ञात होगा कि एक परम सुन्दरी कोमलाङ्गी हिंदू-नारी परलोक जाते हुए पतिके साथ जानेमें अपने प्रगाढ़ प्रेमको उस रूपमें प्रकट करती है, जिसको दूरसे देखकर भी प्रायः सभी प्राणी भयकम्पित हो जाते हैं और उससे बचनेके लिये दूर भागते हैं। उदाहरणार्थ पति पाँच दिनसे रोगशय्यापर शयन कर रहा है। नारी निराहार-व्रतके साथ उसकी परिचर्यामें तल्लीन हो रही है। सुयोग्य वैद्य, हकीम और डाक्टर उसको रोगमुक्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, किंतु रोगका वेग घटनेके बदले बढ़ रहा है। अन्तमें प्राण-प्रयाणका समय आनेसे पहले ही नारी वहाँसे चली जाती है और अपने वासस्थानमें जाकर यथोचित स्नान-दानादि करनेके अनन्तर सहगमनके वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होती है और पतिके समीप आकर उसे आश्वासन देती है कि 'आप यहाँके सुख-दुःखादिका कोई विचार न करें, मैं आपके साथ चलूँगी और वहाँ आपकी सेवा करूँगी।' पति इसका कोई उत्तर नहीं देता और गतप्राण होकर मौन हो जाता है।

(१४) उधर श्मशानभूमिमें काठ चन्दन और [illegible] आदिकी चितापर मृत पति सोया हुआ है। सतीरूपमें सौभाग्य-चिह्न धारण की हुई शान्तमूर्ति हर्षोन्मुखी नारी हाथमें जल, फल, गन्ध, पुष्प और अक्षत लेकर 'संकल्प'* करती है कि 'मैं अपने माता-पिता और श्वशुरादिके कुलोंको पवित्र करनेकी कामनासे अरुन्धती आदिके समान साढ़े तीन करोड़ वर्ष-पर्यन्त पतिके साथ निवास करनेके निमित्त श्रीलक्ष्मीनारायणकी प्रसन्नताके लिये सहगमन करती हूँ।' इसके अनन्तर पृथक्-पृथक् स्थापित किये हुए सूप (वंशपात्रों) में सौभाग्यवती स्त्रियोंके उपयोगी वस्त्राभूषण, गन्ध, पुष्प, हरिद्रा, कुङ्कुम, कज्जल, [illegible] और रजतमुद्रा आदि स्थापन करके तेरह सौभाग्यवती स्त्रियोंको देकर प्रार्थना करती है कि 'हे लक्ष्मीनारायण†! आप इस वायन दानसे सन्तुष्ट होकर मुझे सहगमन करनेका बल प्रदान करें।' तत्पश्चात् वस्त्रके कोनेमें पञ्चरत्न, नीलाञ्जन बाँधकर मुँहमें मोती धारण करती है और अग्निके समीप उपस्थित होकर कहती है कि 'हे अग्निदेव! आप मुझे पतिके साथ जानेका [illegible] मार्ग प्रदान करें।' फिर 'अग्नये तेजोऽधिपतये स्वाहा' आदि ११ आहुति देकर अग्निकी प्रदक्षिणा करती है। तदनन्तर हाथमें पुष्पाञ्जलि लेकर 'त्वमग्ने सर्वभूतानाम्' से प्रार्थना करके अग्निमें प्रवेश करती है और पतिके देहको अङ्कस्थ करके उपस्थित जनताको हर्षोत्फुल्ल मनसे शुभाशिष देकर सहगमन करती है। धर्मशास्त्रोंमें इस प्रकार सहगमन करनेका बड़ा माहात्म्य लिखा है। अस्तु।

(१५) जिस प्रकार नारीकी देहान्तर्वर्ती रचनामें विशेषताओंका बाहुल्य है, उसी प्रकार उसकी बाहरी रचनामें

---

* अग्नये तेजोऽधिपतये स्वाहा। २ विष्णवे [illegible] स्वाहा। ३ कालाय धर्माधिपतये स्वाहा। ४ पृथिव्यै [illegible]। ५ [illegible] रसाधिष्ठात्र्यै०। ६ वायवे [illegible]०। ७ [illegible]। ८ कालाय धर्माधिपतये०। ९ [illegible]। १० [illegible] वेदाधिपतये०। ११ [illegible]।

† लक्ष्मीनारायणो [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

‡ [illegible]
[illegible]

भी विविध प्रकारकी विशेषताओंका समावेश हुआ है। उदाहरणार्थ उसके समुन्नत स्तनद्वय और नाभिके नीचेका गुह्यस्थान—इन दोनोंसे उसका नारी होना प्रकट होता है। इसके सिवा बहुत-से चिह्न भी ऐसे हैं, जिनसे नारीका सुख-सौभाग्यशालिनी होना सूचित हो जाता है। 'सामुद्रिक शास्त्र' में लिखा है कि जिस नारीके पदतलमें हल, पद्म और वज्रका चिह्न हो, वह गरीबके घर जाकर भी रानीके समान सुख भोगती है। जिसकी जङ्घा सरल, सुगोल, रोमशून्य और घुटने समान हों, वह सौभाग्यवती होती है। जिसका ऊरु शुण्डादण्ड-जैसा स्थूल, सरल, सुन्दर, कोमल और वर्तुल हो, वह शुभ होता है। कमलकोरकी आकृति-जैसे, लोमहीन स्तन-द्वय स्थूल, कोमल, उन्नत, अविरल, कठोर और परस्पर समान हों, वे सौभाग्य देते हैं। शङ्खसदृश ग्रीवामें तीन रेखाएँ हों, वक्षःस्थल रोमशून्य हो और अङ्ग-उपाङ्ग यथोचित समान हों, वह नारी सुलक्षणा होती है। जिसके पंक्तिबद्ध सुश्वेत दन्त, आरक्त अधरोष्ठ, सुन्दर मुखमण्डल और कर्णमधुर भाषण हो, वह शुभ होती है। जिसके सुस्निग्ध कृष्णकेश सूक्ष्म, कोमल और कुञ्चित हों तथा शीर्षादि पादान्तपर्यन्तका अङ्ग-विभाग सुडौल हो, वह भोगवती होती है। जिसके हाथ या पाँवमें गज, अश्व, छत्र, चामर, ध्वजा या रथादिके चिह्न हों और जिसके मणिबन्धसे मध्यमाङ्गुलिपर्यन्त 'ऊर्ध्वरेखा' गयी हो, वह राजरानी होती है और जिसके शरीरमें तिल, भौंरी या लहसुन हो, वह सौभाग्यवती होती है। जिसके वामस्तनपर तिल हो, वह पुत्रवती होती है और जिसके गुह्याङ्गमें दाहिनी ओर तिल हो, वह राजमहिषीके समान सुख भोगनेवाली होती है। उपर्युक्त चिह्नादिसे विपरीत लक्षण हों, उनका विपरीत फल होता है। यह सब कुछ होनेपर भी—

(१६) यह सत्य है कि 'दोषहीन तो देवता भी नहीं होते।' ऐसी दशामें खानपान, कुसंग, पतिविरह, स्वतन्त्रविचरण और परगृह-निवास करने आदि कारणोंसे नारी यदि पथभ्रष्ट हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। शास्त्रकारोंने नारीके लिये द्वारदेशमें खड़ी रहने, खिड़कीसे आते-जाते पुरुषोंको देखने, मिथ्याभाषण करने और बात-बातमें हँसनेका निषेध किया है। जो नारी परम्परागत पातिव्रतधर्मके पालनकी कुल-मर्यादाका त्याग कर देती हैं, वे गोस्वामी तुलसीदासजीके लेखानुसार 'साहस, अनृत, चपलता, माया, भय, अविवेक, अशौच और दयाहीन' होनेमें प्रवृत्त हो जाती हैं। इसके विपरीत यदि नारी पातिव्रत-धर्ममें परायण रहे, परम्परागत श्रेष्ठ कुल-मर्यादाका पालन करे, परपुरुषाभिलाषकी दुर्भावनाका स्वप्नमें भी उदय न होने दे और अपनी लज्जाशीलताकी समुचितरूपसे रक्षा करे तो ऐसी नारीके सहयोगसे नरको नारकीय यातनाओंके अनुभव करनेका अवसर ही नहीं मिले। स्वर्गीय सुख स्वतः प्राप्त होते रहें और अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति तो निस्सन्देह होगी ही।

नारी-निर्णय

शक्ति है यह मायालीला, जगतको यह ही जनती है।
बहिन है, पत्नी है यह ही, सुता भी यह ही बनती है ॥ १ ॥
ब्रह्म भी शक्तिहीन होकर नहीं कुछ भी कर सकता है।
सृजन भी नहीं, नहीं पालन, नहीं कुछ भी हर सकता है ॥ २ ॥
ऋद्धिसे और सिद्धिसे ही पूज्य है गजाननवाला।
गिराके बिना करेगा क्या पितामह चतुराननवाला ॥ ३ ॥
विष्णुको दानवारि करती शक्तिदा है लक्ष्मी माया।
शिवा है कंकाली काली सदा शिवकी आधी काया ॥ ४ ॥
राम तो पीछे-पीछे ही सदा फिरते थे सीताके।
कृष्ण भी कब आगे आये मोहिनी राधा गीताके ॥ ५ ॥
कहा है व्यासदेवने यह—'स्त्रियाँ हैं सब कुछ सब जगमें।'*
प्रेम-छवि, मान, ज्ञान, गुण, बल भरे हैं इनकी रग-रगमें ॥ ६ ॥
कहा है मनुने, 'होता है जहाँपर नारीका पूजन—
देवता वहाँ रमण करते वहाँ हैं कान्ति, शान्ति, सुख, धन'† ॥ ७ ॥
बढ़ाकर नारीको ही तो सदा बढ़ता है जगमें नर।
बड़ा पद यह ही पाती है प्रेमसे उसको पैदा कर ॥ ८ ॥
जन्मको देनेवाली यह, प्रेमको करनेवाली है।
नावको खेनेवाली है, साथमें मरनेवाली है ॥ ९ ॥
मान है नरका नारी ही, कान्ति है यह उसकी अनुपम।
शान है उसकी बड़ी यही, शान्ति है यह उसकी अनुपम ॥ १० ॥
स्त्रियोंके चार रूप ये हैं—अहिंसा, सत्य, प्रेम, खादी।
मिलेगी इनके ही द्वारा हिंदको पूरी आजादी ॥ ११ ॥
सदा यह अबला होकर भी पुरुषसे अधिक चक्रवती है।
यही है नारी निर्णय, यह आश्रिता एक भगवती है ॥ १२ ॥

—पु० प्रतापनारायणजी

* स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु। † यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

भारतीय साहित्यमें नारी

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम्० ए०, साहित्याचार्य)

आज इस पुण्यभूमि भारतवर्षमें हिंदू-नारीकी जो वीभत्स धर्षणा हो रही है, उसके स्मरणमात्रसे ही हमारे शरीरमें रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं—हमारा रोम-रोम उसका प्रतिवाद करनेके लिये मानो समूहरूपसे जाग्रत् दीख पड़ता है। नारीका इसमें दोष क्या ? प्रधान तथा प्रबल दोष तो हमारा ही, पुरुषोंका ही है। नारी सर्वदा ही पुरुषकी छत्रछायामें अपने गुण-गरिमाका विस्तार करती हुई निवास करती आयी है। उसकी रक्षाका उत्तरदायित्व पुरुषके ही ऊपर है, परंतु आज इन नामधारी पुरुषोंकी वीर्यहीनता, दुर्बलता तथा अपमान-सहिष्णुताके कारण ही नारीकी यह भयावह स्थिति उत्पन्न हो गयी है। भारतीय समाजमें नारी त्याग तथा तपस्याकी प्रतीक है। मनुका यह वचन हम कभी भूल नहीं सकते कि जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती हैं, वहाँ देवतालोग आनन्दित रहते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

स्त्रियोंका पूजन देवताओंके समाराधनका मुख्य साधन है। नारी भारतीय संस्कृतिमें अतीव उन्नत गौरवकी अधिकारिणी सदासे रही है। स्त्रीत्वके नाते उसमें स्वभाववशात् अनेक प्रकारकी दुर्बलताएँ स्वतः विद्यमान रहती हैं। इसीलिये तो भारतीय समाजशास्त्रियोंने 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' का शङ्ख-निनाद किया है। यह कथन स्त्रीसमाजकी निन्दा या अपमान-का सूचक नहीं है, प्रत्युत वस्तुस्थितिका द्योतक है। हमारे धर्मशास्त्रियोंने नारीके संरक्षणका भार बलके प्रतीक पुरुषके ऊपर ही छोड़ दिया। नारीके तीन रूप हैं—कन्या, पत्नी तथा माता; और इन तीनों ही दशाओंमें उसकी रक्षाका, उसकी मान-मर्यादा तथा प्रतिष्ठाके संरक्षणका पवित्र कार्य 'पुरुष'के ऊपर ही निर्भर करता है। पुरुषमात्रका सूचक वेद-का महनीय शब्द है—'वीर'। 'वीर'का शब्दार्थ ही है—पुरुष और इसी अर्थमें इसका प्रयोग संस्कृतसे सम्बद्ध आर्य भाषाओंमें अभी भी होता है। लैटिन भाषाका 'वीरुस' (Virus) मनुष्यका वाचक है और यह शब्द संस्कृत 'वीरस्' (वीरः) का ही साक्षात् प्रतिनिधि है। इस शब्दसे व्युत्पन्न अंग्रेजी भाषामें प्रयुक्त 'विरिलिटी' (Virility) भी पुंस्त्व, वीर्यका ही द्योतक है। सारांश यह है कि पुरुष वही है जो वीर हो, वीर्य-सम्पन्न हो, अपनेको तथा अपने आश्रितको रक्षण करनेकी क्षमता रखता हो। वैदिक ऋषियोंने इस वीर्यके प्रतीक, 'वीर' नामधारी पुरुषके संरक्षणमें 'नारी' की व्यवस्था कर उचित ही कार्य किया; परंतु दुःखका विषय है कि हम अपने सामर्थ्यसे ही सर्वथा च्युत हो गये, अपने आपको बचानेकी क्षमतासे विहीन होकर हमने अपनी अनमोल थातीके रक्षणसे ही अपना हाथ खींचकर जघन्य कार्य किया। अतः नारीकी इस वर्तमान दुरवस्थाका समस्त दोष पुरुषकी नपुंसकताको है।

हिंदू-संस्कृतिमें नारीके महनीय स्थानको परखनेके लिये अपनी संस्कृतिके स्वरूपको हमें पहचानना पड़ेगा। हमारी सभ्यताके दो पादपीठ हैं—त्याग और तपस्या। हमारी सभ्यता किसीकी सम्पत्तिपर बलात् अधिकार जमाकर उसे बरबस छीनने और झपटनेका उपदेश नहीं देती है। यह गम्भीर स्वरसे पुकारती है—

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।

त्यागसे सम्पत्तिका उपभोग करो। किसीके धनपर लालच न करो। अपनी सम्पत्ति भी बाँटकर खाओ। हमारा प्रतिदिन बलिवैश्वदेवकर्म इसी त्यागवृत्तिका दैनन्दिन आचरण है। हमारा अद्वैत वेदान्त सच्चा साम्यवादी धर्म है, जो हमारे प्राणीमात्रको अपना बन्धु ही नहीं, प्रत्युत अपना ही रूप समझता है। अतः त्याग हमारी संस्कृतिका प्रधान आधार-पीठ है और त्यागके लिये आवश्यक है तपस्या। तपस्याके द्वारा ही मानव अपने कालुष्यको जलाकर पवित्र तथा विशुद्ध बन जाता है। सोना आगमें तपनेपर खरा उतरता है। मनुष्य भी तपस्याके द्वारा खरा उतरता है—अपनी विशुद्धि प्राप्त करता है। बिना तपस्याके त्यागकी भावना [illegible] जाग्रत् नहीं हो सकती। अतः भारतीय संस्कृति त्याग [illegible] तपस्याके ताने-बानेसे बुनी हुई [illegible] है [illegible] रंग शताब्दियोंके [illegible] पड़नेपर भी आज भी [illegible] प्रकार नेत्ररञ्जक तथा चटकीला है और [illegible] संस्कृति और सभ्यताकी प्रतीक है—

भारतीय नारी

नारी त्याग और तपस्याकी [illegible] है। इन्हीं दोनों तत्त्वोंके [illegible] संगठित हुआ है। नारी-जीवनका [illegible] है—[illegible] और

इस मन्त्रको सिद्ध करनेकी क्षमता उसे प्रदान की है तपस्याने। हम ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि उसके जीवनके किस अंशमें इन महनीय तत्त्वोंके विलासका दर्शन हमें नहीं मिलता; परंतु यदि हम उसके पूर्वजीवनको 'तपस्या'का काल तथा उत्तर-जीवनको 'त्याग'का काल मानें, तो कथमपि अनुचित न होगा। नारीके तीन रूप हमें दीख पड़ते हैं—कन्यारूप, भार्यारूप तथा मातृरूप। कौमार-काल नारी-जीवनकी साधनावस्था है और उत्तर-काल उस जीवनकी सिद्धावस्था है। हमारी संस्कृतिके उपासक संस्कृत-कवियोंने नारीकी इन तीनों अवस्थाओंका चित्रण बड़ी ही सुन्दरताके साथ किया है।

नारी कन्यारूपमें

कन्यारूपमें नारीका चित्रण हमें कालिदासकी कवितामें उपलब्ध होता है। कालिदास आर्य-संस्कृतिके प्रतिनिधि ठहरे। उन्होंने आर्यकन्याके आदर्शको 'पार्वती'के रूपमें अभिव्यक्त किया है। आर्यकन्याको अदम्य, अजेय तथा जितेन्द्रिय बनानेका मुख्य साधन 'तपस्या' ही है। कालिदासने अपने कुमारसम्भवमें इसके महत्त्वको बड़े ही भव्य शब्दोंमें प्रकट किया है। शिवजीके द्वारा मदन-दहनके अनन्तर भग्नमनोरथा पार्वती जगत्की समग्र आशाएँ छोड़कर तपस्याकी साधनामें जुट गयी। उसकी तपस्या इतनी कठोर थी कि कठिन शरीरसे उपार्जित मुनियोंकी तपस्या उसके सामने नितान्त प्रभाहीन तथा प्रभावहीन प्रतीत होती। प्रकृतिके नाना प्रकारके कष्टोंको झेलकर अन्ततः वह अपनी कामनासिद्धिमें सफल होती है। उसका मनोरथतरु फलसम्पन्न होता है। उसे अभीष्ट फल प्राप्त होता है। कालिदासने पार्वतीके तपका रहस्य विशेषरूपसे प्रकट किया है।

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥

(कुमारसम्भव ५।२)

पार्वतीकी तपस्याका फल था—तथाविधं प्रेम, उत्कट कोटिका अलौकिक प्रेम और तादृशः पतिः, उस प्रकारका मृत्युको जीतनेवाला पति। जगत्के समस्त पति मृत्युके क्रीत दास हैं। एक ही व्यक्ति मृत्युको जीतनेवाला है और वह है मृत्युञ्जय महादेव। मृत्युको जीतनेकी क्षमता एकमें ही है, और वह व्यक्ति है देवोंमें महान् देव अर्थात् महादेव। आजतक कोई भी कन्या मृत्युञ्जयको पति वरण करनेमें समर्थ नहीं हुई और इस युगल-जोड़ीका प्रेम भी कितना अनुपम, कितना उत्कट, कितना अलौकिक है। कालिदासने 'तथाविधं' शब्दके भीतर गम्भीर अर्थकी अभिव्यञ्जना की है। शङ्करने पार्वतीको अपने मस्तकपर स्थान दिया है। आदरकी भी एक सीमा होती है। पत्नीको इतना उच्च स्थान प्रदान करना सत्कारका महान् प्रकर्ष है, आदरकी पराकाष्ठा है। अन्य देवताओंमें किसीने अपनी पत्नीको इतना गौरव प्रदान नहीं किया है। गौरीकी यह साधना भारतीय कन्याओंके लिये अनुकरणीय वस्तु है। हमारी कन्याओंके सामने एक ही महान् आदर्श है और वह है पार्वतीका। भारतीय समाजमें 'गौरीपूजन' का रहस्य इस महती तपःसाधनाके भीतर अन्तर्निहित है।

नारी पत्नीरूपमें

संस्कृत-कवियोंने पत्नीरूपमें नारीका सुचारु चित्रण किया है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति—इन महामान्य कवियोंने भारतीय पत्नीकी रूप-छटाका वर्णन बड़ी ही सुन्दर भाषामें किया है। भगवती जनकनन्दिनीके शील-सौन्दर्यकी ज्योत्स्ना किस व्यक्तिके हृदयको उपशम तथा शान्त नहीं प्रदान करती। जानकीका चरित्र भारतीय पत्नियोंके महान् आदर्शका प्रतीक है। वाल्मीकीय रामायणके अनेक प्रसङ्ग इस कथनके प्रमाणभूत हैं। रावणके द्वारा बारंबार प्रार्थना करनेपर सीताने जो अवहेलनामूलक वचन कहे हैं, वे भारतीय नारीका गौरव सदा उद्घोषित करते रहेंगे। वह कहती है कि 'इस निशाचर रावणसे प्रेम करनेकी बात तो दूर रही, मैं तो इसे अपने पैरसे—नहीं-नहीं, बायें पैरसे—भी नहीं छू सकती।'

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्॥

(५।२६।१०)

रावणकी मृत्युके अनन्तर रामने सीताके चरित्रकी विशुद्धिको सामान्य जनताके सामने प्रकट करनेके लिये अनेक कटुवचन कहे। उन वचनोंके उत्तरमें सीताके वचन इतने मर्मस्पर्शी हैं कि आलोचकका हृदय आनन्दातिरेकसे गद्गद हो उठता है। भगवती सीताके ये कथन कितने मार्मिक हैं। वे कह रही हैं कि 'मनुष्य उसी वस्तुके लिये उत्तरदायी होता है, जिसपर उसका अधिकार होता है। मैं अपने हृदयकी स्वामिनी हूँ। उसे मैंने अपने वशमें रक्खा है। वह सदा आपके चिन्तनमें निरत रहा है। अङ्गोंपर मेरा काबू नहीं। वे पराधीन ठहरे। यदि रावणने बलात्कारसे उनका स्पर्श कर लिया तो इसमें मेरा अपराध ही क्या है?'

नारीकी पाँच अवस्थाएँ
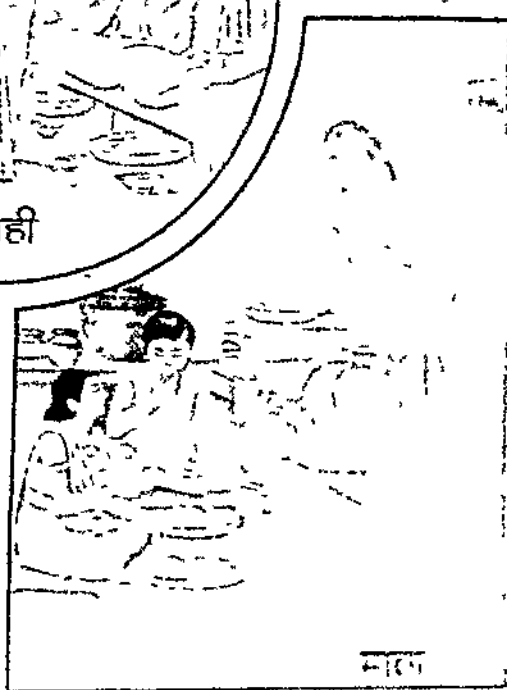
कन्या, भगिनी, पत्नी, माता, पितामही—ये भव्य महान।
पाँच अवस्थाएँ नारीकी सुख आदर्श शान्तिकी खान॥

मदधीनं तु यत् तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते ।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ॥

'मेरे चरित्रपर लाञ्छन लगाना कथमपि उचित नहीं है; मेरे निर्बल अंशको पकड़कर आपने आगे किया है, परतु मेरे चरित्रके सबल अंशको पीछे ढकेल दिया है । नारीका दुर्बल अंश है—उसका नारीत्व, स्त्रीत्व और सबल अंश है—उसका पत्नीत्व और पातिव्रत । नरशार्दूल ! आप मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं, परंतु क्रोधावेशमें आकर आपका यह कथन साधारण पामर जनके समान है । मैं आपकी हृदयसे भक्ति करती हूँ । मेरा स्वभाव निश्छल और पवित्र है । आश्चर्य है कि आप-जैसे नरशार्दूलने मेरे स्वभावको, मेरी भक्तिको तथा पाणिग्रहणको पीछे ढकेल दिया है; मेरा उपहास करनेके लिये मेरे स्त्रीत्वको आगे रक्खा है ।' कितने महत्त्वपूर्ण शब्द हैं—

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः ।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥

कितनी ओजस्विता भरी है इन सीधे-सादे निष्कपट शब्दोंमें । अनादृता भारतीय ललनाका यह उद्गार कितना हृदयवेधक है ! सुनते ही सहृदय व्यक्तिकी आँखोंमें सहानुभूतिके आँसू छलक पड़ते हैं ।

महाकवि कालिदासने सीताके जिस चरित्रका विलास अपनी वैदग्ध्यमयी वाणीके द्वारा अभिव्यक्त किया है, उसमें पारिजातकी सुगन्ध है, मानव-चित्तको विकसित तथा विस्मय-स्तिमित कर देनेकी अद्भुत क्षमता है । प्रजा-पालनकी वेदीपर भगवान् रामचन्द्रने अपने जीवन-सर्वस्वकी बलि देकर जो आदर्श उपस्थित किया है, वह हमारे राजवर्गके लिये श्लाघनीय तो है ही; परतु उससे भी श्लाघ्यतर वह आदर्श है, जिसे परित्यक्ता जानकीने अपने पतिदेव रामचन्द्रके प्रति प्रकट किया है । बीहड़ जंगलमें लक्ष्मणजी विदेहनन्दिनीको छोड़कर जब जाने लगे, तब सीताने रामचन्द्रजीको जो आत्मनिवेदन किया है, वह भारतीय नारीके गौरव, मर्यादा तथा त्यागका ज्वलन्त उदाहरण है । सीतापरित्याग रामराज्यकी प्रतिनिधि घटना है । लोक-मङ्गलकी वेदीपर आत्मसुखको बलिदान दे देना ही भारतीय नरेशोंका आदर्श प्रजापालन-व्रत है और इस आदर्शकी प्रतिष्ठा की स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रने । प्रजाके अनुरञ्जनके लिये रामने अपनी प्राणवल्लभा सीताको छोड़नेमे न विलम्ब किया और न संकोच दिखलाया । गर्भ-भारसे आक्रान्त सीता राजा रामके इस कार्यके औचित्यको अच्छी तरह समझ रही हैं, परंतु फिर भी उन्हें उलाहना देनेमें वह नहीं चूकती । वे लक्ष्मणसे पूछती हैं कि 'क्या ऐसी विकट परिस्थितिमें उनका परित्याग शास्त्रके अनुकूल है कि इक्ष्वाकु-वंशकी मर्यादाके अनुरूप ?' परंतु फिर वह चेत जाती हैं कि 'राम कल्याणबुद्धि ठहरे—अपने प्रियपात्रोंके कल्याणकी कामना करनेवाले हैं । वे मेरे लिये किसी अकल्याण वस्तुकी क्या कभी कल्पना कर सकते हैं ? अतः मेरे ही प्राचीन पातकोंका यह जागरूक फल है ।' धन्य है सीताकी पतिभक्ति ! पतिकी अवहेलना तो दूर रहे, वह स्वयं कर्मवादके सिद्धान्तपर आत्मतुष्टि प्राप्त कर रही हैं ।

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः ।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ॥

अतः अपने पातकोंको दूर करनेका एक ही साधन है, और वह साधन है तपस्या । अतः मैं इसी तपस्यामें अपनेको संलग्न करने जा रही हूँ, जिससे मेरे पातक शीघ्र दूर हो जायँ । परतु सीताकी एक विषादभरी प्रार्थना है । राम राजा ठहरे । मैं ठहरी एक तापसी एकाकिनी तपस्विनी । [illegible] सामान्य प्रजाकी दृष्टिसे ही वे मेरा ध्यान रक्खें । यही अन्तिम निवेदन है—'तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ।' जनकनन्दिनीकी इस प्रार्थनामें कितना ओज भरा है, कितनी करुणा भरी है, कितना आत्मत्याग झलक रहा है । भारतीय नारीका यही [illegible] जीवन है । पतिके कल्याण तथा मङ्गलके निमित्त [illegible] या आत्मसमर्पण ही 'नारीत्व' है । पुरुषकी [illegible] संगममें है । नारीके बिना पुरुषका जीवन अधूरा है । [illegible] नारीके सहयोगके वह अपने पुरुषार्थमें कृतकार्य [illegible] सकता । नारी पशु-प्रवृत्तिकी प्रतीक नहीं है । [illegible] गुणोंकी प्रतिमा है, अलौकिक गुणोंकी मूर्ति है । [illegible] हमारी तान्त्रिक पूजामें शक्ति या [illegible] ।

हमारा गार्हस्थ्य-जीवन [illegible] है । भगवान्की प्राप्ति अनुरागसे [illegible] । [illegible] प्रियतमके पानेके लिये एक [illegible] । [illegible] जितना सरल है, करनेमें यह उतना ही [illegible] । [illegible] एक दुरूह तत्त्व है, जिसे यथार्थतः [illegible] है जितना उसका आचरणमें [illegible] । [illegible] इसी प्रेम-तत्त्वकी साधना [illegible] है । [illegible] भवभूतिने इस तत्त्वकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की है—

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्राप्यते ॥

'यह प्रेम सुखमें और दुःखमें अद्वैत अर्थात् एकाकार रहता है। समग्र अवस्थाओंमें अनुकूल रहता है। इससे हृदयको विश्राम मिलता है। बुढ़ापा इसके रसको—आनन्दको हरण नहीं कर सकता। समयके बीतनेपर बाहरी आवरणके हट जानेपर यह परिपक्व स्नेहसारमें स्थित रहता है। वही यह कल्याणकारी–भद्र प्रेम है और किसी ही भाग्यशाली पुरुषको प्राप्त होता है।'

इस प्रेमको भगवदर्पण कीजिये, प्रभु अवश्य मिलेंगे। अपने भक्तोंको अपने क्रोडमें रखने तथा उसके अङ्कमें आनन्द मनानेके लिये वह लीलामय सदा तत्पर रहता है, परंतु विषय-रसके चाटनेमें ही जीवन वितानेवाला प्राणी उधर मुड़ता ही नहीं। जीवको भगवान्की ओर अनुरक्त करनेका साधन है—नारी। आलंकारिकोंने शब्दोंके तीन प्रकार बतलाये हैं—(क) प्रभुसम्मित शब्द। राजाकी आज्ञाके अनुरूप शब्द, जिनका अक्षरशः पालन न्याय्य होता है। किसी प्रकार चूके नहीं कि तलवारके नीचे गला पड़ा। यह शब्द वेद है। (ख) सुहृत्सम्मित शब्द। मित्रके हितोपदेशके समान शब्द; जिनमें उचित-अनुचित दोनोंमें मार्ग दिखलाये जाते हैं। कोई जोर नहीं, जुल्म नहीं, मानना और न मानना आपके हाथमें—जैसे इतिहास-पुराण। (ग) कान्तासम्मित शब्द। प्रियतमाके कमनीय वचनके समान शब्द, जो रसमय होनेसे शीघ्र ही हृदयपर प्रभाव डालते हैं। उनका उपदेश इतना प्रभावशाली होता है कि आप उसे माननेके लिये बाध्य हो जाते हैं—जैसे रसप्रधान काव्य। इस प्रकार साहित्यमें 'नारी'का प्रभाव विशेषरूपसे अभिव्यक्त किया गया है। वह शक्तिकी मूर्ति है, प्रेमका अवतार है, अनुरागकी वाटिका है, रसका उत्स है, हृदयकलीको विकसित करनेवाले प्रभातवायुका हिलोरा है; मानसमें आनन्द-लहरी उठानेवाला मन्द-मन्द प्रवाहित पवन है। संस्कृत-साहित्यने नारीकी शक्ति पहचानी है और उसे उचित रूपसे अभिव्यक्त किया है।

वैदिक साहित्यमें नारी

(लेखक – पं० श्रीरामगोविन्दजी त्रिवेदी)

वेदोंके मुख्य विषय हैं—कर्म, उपासना और ज्ञान, जो समस्त मानव-जातिके धर्म हैं। इनमें केवल स्त्री अथवा केवल पुरुषको लक्ष्य करके अधिक बातें नहीं कही गयी हैं। जो कुछ है, सबके लिये है। वेद इतिहास भी नहीं हैं, जिससे स्त्री और पुरुष-वर्गके विषयमें कुछ विशेष चर्चाका प्रसंग आवे; तथापि उनमें इतिहासके बीज और साधन-सामग्री अवश्य हैं। वेद ज्ञानके भण्डार हैं; उस भण्डारमें खोज करनेपर नारीके महत्त्वको प्रकाशित करनेवाले विषय भी अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं। वेद चार हैं—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व। इनमेंसे ऋग्वेदमें ही कुछ ऐसी बातें पायी जाती हैं, जो प्राचीन कालसे चली आनेवाली आर्यनारीकी सभ्यता और संस्कृतिपर प्रकाश डालती हैं। कुछ विदुषी नारियाँ अपने सद्गुणोंके कारण तथा मन्त्रोंका साक्षात्कार करनेवाली ऋषिकाओंके रूपमें प्रतिष्ठित हुई हैं। यजुर्वेदमें नारीके विषयमें बहुत कम चर्चा है। सामवेदमें तो है ही नहीं। अथर्ववेदमें चर्चा अवश्य है; पर ऋग्वेदसे अधिक नहीं; अतः इस लेखमें जो कुछ कहा जायगा, उसमें ऋग्वेदमें आयी हुई बातोंका ही प्रायः दिग्दर्शन होगा। अन्य वेदों तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थोंकी मुख्य-मुख्य बातोंका भी इसीमें समावेश समझना चाहिये।

पहले उन महिमामयी नारियोंके सम्बन्धमें निवेदन किया जाता है, जो मन्त्र-द्रष्ट्री ऋषिकाओं अथवा देवियोंके रूपमें प्रसिद्ध हैं। जैसे धनकी देवी लक्ष्मी, शक्तिकी दुर्गा और विद्याकी सरस्वती हैं, वैसे ही अदिति, उषा, इन्द्राणी, इला, भारती, होत्रा, सिनीवाली, श्रद्धा, पृश्नि आदि वैदिक देवियाँ अनेक तत्त्वोंकी अधिष्ठात्री हैं। इन्हें कहीं देवमाता और कहीं देव-कन्या बताया गया है। इन सबमें अदितिदेवीका उल्लेख सबकी अपेक्षा अधिक है। ये सर्वशक्तिमती, विश्वहितैषिणी, सर्वग्राहिणी और स्वाधीन मानी गयी हैं। अदिति ही आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र और समस्त देवता हैं। पञ्चजन (गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस) भी वही हैं। अदिति ही जन्म और उसका कारण हैं।* कहीं-कहीं अदितिके साथ दितिका भी उल्लेख है—'अदितिं दितिं च।' इन्हीं दितिको पुराणोंमें दैत्योंकी माता कहा गया है।

* अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥

ऋग्वेदमें कई स्थलोंपर सीताकी स्तुति देवी कहकर की गयी है—'सौभाग्यवती सीता! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हमें धन और सुन्दर फल दो। पूषा सीताको नियमित करें' (४।५७।६—७)। उषाका अर्थ प्रभात है, किंतु ऋग्वेदमें लगभग तीन सौ बार उषाका 'देवी-रूपमें स्तवन किया गया है। सूक्त-के-सूक्त उषादेवीकी स्तुतिसे भरे पड़े हैं। वहाँ इनके लिये सत्यमनीषिणी और दीप्तिमती आदि गुणबोधक विशेषण दिये गये हैं।* वह नित्य यौवन-सम्पन्ना, शुभ्रवसना और धनाधीश्वरी बतायी गयी हैं। सूर्यकी पुत्रीका नाम सूर्या है। इन्हें ऋग्वेदमें देवी और ऋषिका भी कहा गया है। सूर्याने दशम मण्डलके ८५ वें सूक्तका साक्षात्कार किया था। उसमें बहुत-सी ज्ञातव्य बातें हैं। सूर्याके विवाहका जो वर्णन उपलब्ध होता है, उससे कई तत्कालीन प्रथाओंका परिचय मिलता है, जो आज भी न्यूनाधिकरूपमें पायी जाती हैं। इन्द्राणी इन्द्रदेवकी पत्नी हैं। इनका एक नाम शची भी है। ऋग्वेदके दशम मण्डल, सूक्त १४५ की ऋषिका भी ये ही हैं। १५९ वें सूक्तकी ऋषिका प्रलोमपुत्री शची कही गयी हैं। 'वाक्' भी एक देवीका नाम है। इन्हें अन्न-जलकी दात्री एवं हर्षप्रदायिनी माना गया है। ये अम्भृण ऋषिकी पुत्री हैं। दशम मण्डलके १२५ वें सूक्तका प्रथम दर्शन इन्होंने ही किया है। वैदिक देवी-सूक्तकी ऋषिका ये ही हैं। ये वाग्देवी ही मित्र और वरुणको धारण करनेवाली, धनदात्री, ज्ञानवती, प्राणिव्यापिनी, उपदेशिका तथा आकाशजननी आदि कही गयी हैं। इला भी एक देवी हैं; इन्हें घृतहस्ता, अन्नरूपिणी, हविर्लक्षणा, गोसन्धकी निर्मात्री तथा मनुके यज्ञमें हविष्यका सेवन करनेवाली बताया गया है।

सरस्वतीदेवी पतितपावनी, धनदायिनी, सत्यकी ओर प्रेरित करनेवाली, शिक्षिका और ज्ञानदात्री मानी गयी हैं (१।३।१०–१२)। इनके द्वारा अनेक मन्त्रोंका आविष्कार भी हुआ है। इसी प्रकार भारती, होला, सरण्यू, सिनीवाली, राका, गुङ्गू, असु तथा श्रद्धा आदि देवियोंकी महिमाका भी यथास्थान वर्णन है। पृश्नि, अरण्यानी, वरुणानी तथा अग्नायी प्रभृति देवियोंका भी स्तवन किया गया है।

दैवी संसृतिके अनन्तर मानव-जगत्पर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि आर्यलोग नारियोंका बड़ा सम्मान करते थे। वे घरको नहीं, नारीको ही घर मानते थे और गृहस्थधर्मके पालनमें नारीकी ही प्रधानता समझते थे। उनके विवाहका प्रयोजन था नारीके साथ रहकर धर्मानुष्ठान और [illegible]। नारीके बिना गृहका अस्तित्व ही कहाँ है और उसके बिना गृहस्थ-धर्मका सम्पादन ही कैसे हो सकता है। इस धारणाके अनुसार गृहस्थधर्मकी प्रतिष्ठा एकमात्र गृहिणीपर ही निर्भर थी। सन्तान पुत्र हो या पुत्री—दोनों उन्हें समान रूपसे प्रिय थे। वे पूषा देवतासे कमनीय कन्याके लिये प्रार्थना करते थे। कन्याओंका उनके यहाँ बड़ा आदर होता था। कन्याका विवाह हो जानेपर उससे जो पुत्र होता, उसको अर्थात् अपने दौहित्रको वे अपने धनका उत्तराधिकारी भी बनाते थे। पुत्र अथवा पौत्रके अभावमें ही दौहित्रको यह अधिकार मिलता था। कन्याका एक नाम दुहिता भी है। यह शब्द 'दुह' धातुसे बना है, इसका अर्थ है दुहना। इसके आधारपर कई विद्वानोंका यह कहना है कि 'कन्याएँ पहले समयमें दूध दुहनेका काम करती थीं। घरमें गोरक्षाका प्रधान कार्य इन्हींके हाथमें था। दूध, दही, घी आदिकी व्यवस्था ये ही करती थीं।' कन्याएँ तथा स्त्रियाँ रूई धूनतीं, सूत काततीं, वस्त्र बुनतीं और कशीदा भी काढ़ती थीं। इन बातोंके समर्थक अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं। (२।३।६ तथा २।३८।४ आदि) कन्याएँ घड़ोंमें जल भरकर भी लाती थीं। वे माता पिताको पानी नहीं भरने देती थीं। खेत रखानेका कार्य भी वे ही करती थीं। कन्याकी रक्षा पिता करते थे, पिता न हों तो बड़े भाईपर उनकी रक्षा और विवाह आदिका भार रहता था। आमरण अविवाहित रहनेवाली कन्या पिताके धनमें हिस्सा पाती थी। [illegible]-तक नारी अपने घरमें प्रभुता रखती थी (१०।८५।३०)। पशु रक्षिणी और वीरप्रसविनी नारीका उन दिनों विशेष आदर था। ऐसी नारीकी प्राप्तिके लिये देवताओंसे प्रार्थना की जाती थी (१०।८५।४४)। नारी स्वयं धनको भी [illegible] को दान देती थी। (१०।८५।२९)। [illegible] धनका कुछ नियत भाग प्राप्त होता था, जिसपर केवल उसी-का अधिकार होता था।

इस प्रकार आर्य-जातिमें प्राचीन कालसे ही नारीका सदा समादर होता आया है। अन्य जातियोंमें प्राचीन [illegible] यह बात नहीं पायी जाती। कई जातियोंमें [illegible] पैरकी जूती समझती थी। उनके यहाँ [illegible] भी जघन्य प्रथा थी। [illegible] लड़कियाँ जला दी जाती थीं। [illegible] नारकीय दशा थी, वह इतिहासके विद्यार्थियोंसे छिपी नहीं है।

* ग्रीकोंमें 'दहना' 'एथेना' आदि कई नाम और कहानियाँ 'उषा' के लिये प्रचलित हैं। वे लोग उषाके पूरे भक्त हैं। लैटिन-भाषाभाषी उषाको 'मिनिर्वा' कहते हैं।

ऋग्वेदके अनुशीलनसे ज्ञान पड़ता है कि आर्योंमें स्त्री-शिक्षाका यथेष्ट प्रचार था। स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती और कविताएँ भी बनाती थीं। वे अपनी त्याग-तपस्यासे ऋषिभावको भी प्राप्त होतीं और मन्त्रोंका साक्षात्कार करती थीं। ऋग्वेदके अनेक सूक्तोंका आविष्कार स्त्रियोंद्वारा ही हुआ है, यह बात ऊपर बतायी जा चुकी है। ब्रह्मवादिनी घोषाके द्वारा साक्षात्कृत (दशम मण्डलके) ३९ वें और ४० वें सूक्तोंमें कुछ ऐसे मन्त्र हैं, जिनसे सूचित होता है आर्यलोग विवाहके समय वर और कन्याको विविध वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके बहुत सम्मान करते थे। लोग स्त्रीकी प्राण-रक्षा और मर्यादा-रक्षाके लिये भारी-से-भारी कष्ट सहन करनेसे भी पीछे नहीं हटते थे। स्त्रियाँ यज्ञ-कार्यमें नियुक्त होती थीं। समाजमें उनको बहुत ही प्यार और दुलारसे रक्खा जाता था। सूर्याके द्वारा आविष्कृत मन्त्रोंमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि स्त्री अपने पतिके अधीन रहती थी, परंतु घरके अन्य सब पदार्थोंपर उसीका प्रभुत्व रहता था। नौकर-चाकरपर भी वही शासन करती थी। वर और वधू जब विवाहमें एक साथ बैठते थे, उस समय गुरुजनों और देवताओंसे वधूके सौभाग्यके लिये प्रार्थना की जाती थी। यह प्रथा आर्योंमें अबतक प्रचलित है। आज भी निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर सिन्दूर एवं सौभाग्यवर्धक आशीर्वाद अर्पण किया जाता है। वह मन्त्र यह है—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं वि परेतन॥

'यह परम कल्याणमयी वधू यहाँ बैठी है, गुरुजनो तथा देवताओ! आप सब लोग यहाँ आवें, इसे कृपादृष्टिसे देखें तथा इसके सौभाग्यसूचक आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थानको पधारें।'

कुछ मन्त्रोंसे यह भी सूचित होता है कि उस समय स्त्रियाँ सङ्गीत आदिमें भी निपुणा होती थीं। पतिके साथ स्त्रियाँ भी युद्धमें जाती थीं। विश्पला अपने पतिके साथ युद्धमें गयी थी और वहाँ उसकी जाँघ टूट गयी थी, जिसे अश्विनीकुमारोंने ठीक किया था। नमुचिके पास भी स्त्रियोंकी सेना थी। वृत्रासुरके साथ उसकी माता दनु भी युद्धमें गयी थी, जो इन्द्रके द्वारा मारी गयी। वैदिक साहित्यके अनुशीलनसे यह भी सिद्ध होता है कि पहलेकी स्त्रियाँ वेद पढ़तीं और यज्ञोपवीत भी धारण करती थीं। सुलभा, मैत्रेयी और गार्गी आदिकी विद्वत्ता प्रसिद्ध है। वाल्मीकिरामायण (५। १५। ४८)-के अनुसार सीताजी वैदिक प्रार्थना करती थीं। कौसल्याके विषयमें भी ऐसा आया है कि वे मन्त्रपाठपूर्वक अग्निहोत्र करती थीं। वीरमित्रोदयके संस्कार-प्रकाशमें स्त्रियोंके दो भेद किये गये हैं—एक ब्रह्मवादिनी और दूसरी सद्योद्वाहा। इनमें—'ब्रह्मवादिनीनामग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्या'—ब्रह्मवादिनी स्त्रियोंको यह अधिकार है कि वे अग्निहोत्र, वेदाध्ययन तथा अपने घरमें भिक्षा ग्रहण करें।' इससे सिद्ध है कि सर्वसाधारण स्त्रियोंके लिये यह अधिकार नहीं है। पहले सभी स्त्रियोंको यह अधिकार था, पर कलिमें उनके वेदाध्ययन आदिका निषेध कर दिया गया। यमस्मृतिमें कहा गया है—'पूर्वकालमें कुमारियोंका उपनयन, वेदारम्भ तथा गायत्री-उपदेश होता था, परंतु उनके गुरु या अध्यापक केवल पिता, चाचा अथवा बड़े भाई ही होते थे। दूसरे किसीको यह अधिकार नहीं था कि उन्हें पढ़ावे—

पुरा कल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा।
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत् परः॥

वेद-मन्त्रोंसे यह भी ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ सुन्दर वस्त्र पहनती थीं, सूती वस्त्र वे केवल पहनती ही नहीं, बुनती भी थीं। ऊनी वस्त्र पहननेका भी रिवाज था। कपड़ा बुननेवाले तन्तुवाय भी उस समय होते थे। हाथोंमें कड़ा पहननेकी प्रथा थी। आभूषण, आयुध, माला, हार, वलय आदि सुवर्णके बनते थे। लोहे और सोनेके घर बननेकी भी चर्चा आती है (७। ३। ७ और ७। १५। ४)। हजार दरवाजोंवाले विशाल भवन बनाये जाते थे (७। ८८। ५)। द्वारपर द्वारपाल रक्खा जाता था (२। १५। ९)। एक हजार खंभोंवाले दुमंजिले मकान बनते थे (५। ६२। ६)। कुछ मन्त्रोंसे स्वयंवर-प्रथा भी सूचित होती है। एक मन्त्रमें कहा गया है—'पति स्त्रीके वस्त्रको न ओढ़े, अन्यथा श्री नष्ट हो जाती है (१०। ८५। ३०)। वर कन्याको वधूरूपमें ग्रहण करते समय उसका हाथ पकड़कर कहता था—

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥
(१०। ८५। ३६)

'कल्याणी! मैं तुम्हारे और अपने सौभाग्यके लिये तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ। तुम मुझ पतिके साथ वृद्धावस्थातक बनी रहो। भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धि आदि देवताओंने गृहस्थ-धर्मकी रक्षाके लिये मुझे तुमको दिया है।'

आर्य-विवाह-पद्धतिमें इस विधिका आज भी पालन

कराया जाता है । पत्नी भी लाजा-हवनके समय पति और कुटुम्बीजनोंकी मङ्गल-कामना करती थी । यह परम्परा भी आजतक कायम है । हिंदू-धर्ममें पति पत्नी एक दूसरेके सखा और सहधर्मी है । दोनोंका समान स्थान है । कोई किसीसे छोटा या बड़ा नहीं है । सप्तपदीके विधानद्वारा नव-दम्पतिके इसी सख्यभावको सुदृढ किया जाता है । १० । ८५ । ४२ में कहा गया है—'तुम दोनों दम्पति कभी एक-दूसरेसे अलग न होना ।' ४३ वें मन्त्रमें पतिका कथन है—'प्रजापति हमें सन्तति दें, अर्यमा बुढापेतक हमें साथ रक्खें । वधू ! तुम मङ्गलमयी होकर पति-गृहमें रहो । घरके मनुष्यों और पशुओंके लिये कल्याणकारिणी बनो ।' फिर परमात्मासे प्रार्थना की जाती है—

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कुरु ।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥

'परमात्मन् ! इस वधूको सुयोग्य पुत्रवाली तथा सौभाग्यवती बनाओ । इसके गर्भमें दस पुत्रोंको स्थापित करो । इसके दस पुत्र और ग्यारहवें पति—सब मौजूद रहें ।'

तत्पश्चात् वधूको आशीर्वाद मिलता है—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥

'वधू ! तुम घरमें सास, ससुर, ननद और देवर—सबके हृदयकी महारानी बनो । सबको अपने प्रेम, सेवा और सद्व्यवहारसे जीत लो ।'

इन दिव्य आदर्शोंका पालन वधू करती थी, आज भी विवाहके समय ये शिक्षायें दी जाती हैं; परंतु आजके युगमें नूतन शिक्षाके विषाक्त प्रभावसे लोगोंका ध्यान इन विधियोंकी ओरसे हटकर व्यर्थके दिखावेमें जा लगा है । प्रत्येक हिंदू-धर्मावलम्बीको चाहिये कि वे वर और वधूको इन मन्त्रोंके दिव्य आदर्श हृदयङ्गम करा दें । लज्जा स्त्रीका सद्गुण है । वेद कहता है—

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥
(८ । ४३ । १९)

'साध्वी नारी ! तुम नीचे देखा करो (तुम्हारी दृष्टि विनयसे झुकी रहे) । ऊपर न देखो । पैरोंको परस्पर मिलाये रक्खो (टाँगोंको फैलाओ मत) । वस्त्र इस प्रकार पहनो, जिससे तुम्हारे ओष्ठ तथा कटिके नीचेके भागपर किसीकी दृष्टि न पड़े ।' इससे सिद्ध है कि स्त्री सलज्ज हो और मुखपर घूँघट डाले रहे ।

यजुर्वेदकी तैत्तिरीय संहिता (६ । ५ । ८ । २) में बताया गया है कि पिताके धनपर कन्याका कोई अधिकार नहीं है (उसका अधिकारी पुत्र ही है) । वाजसनेयिसंहितामें लिखा है कि ब्रह्मचारिणी और शिक्षिता कन्याका विवाह होना चाहिये (१२ । ३ । १७-१८) । अथर्ववेदमें बताया गया है कि कन्या ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर तरुण पतिको प्राप्त करती है—'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्' (११।५।१८)। माता-पिताके निरीक्षणमें कन्या पतिका चुनाव करती थी (६ । ६१ । १) । कन्याकी विदाईके समय उसको [illegible] पलंग, गद्दा और कोच आदि देते थे (१४ । २ । ३१, ४१) । कन्याको खजानेकी सदूक आदि भी दी जाती थी (१४ । २ । ३०; ४ । २० । ३), गाय और कम्बल आदि भी कन्याको दहेजमें प्राप्त होते थे । स्त्रीका अपने पतिपर इस लोक और परलोकमें भी अधिकार माना जाता था—'त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य च ।' (१४ । १ । ४३)

वेदमें जहाँतक देखा गया है, सहमरणकी प्रथा नहीं [illegible] होती । इसी प्रकार विवाहकी अवस्था भी युवावस्था ही प्रशस्त मानी गयी है ।*

* ऐसा भी माना जाता है कि वेदमें सहमरणका समर्थन है ; अथर्ववेदका एक मन्त्र है—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥
(१८ । ३ । १)

पतिके दाहके अवसरपर स्त्रीके देवर आदि उसकी ओरसे कहते हैं—हे मनुष्य ! पतिलोकको (जहाँ पति गया है, उस लोककी) इच्छा करती हुई, दूसरे जन्ममें भी वही पति मिले—इस [illegible] पालन करती हुई यह नारी मृतक हुए तुम्हारे पास [illegible] होती है, अर्थात् सहमरणके द्वारा तुम्हारे पास जा रही है ।

पाश्चात्य विद्वान् मि० मैकडोनल (Macdonell) ने [illegible] कहा है कि ऋग्वेद (१० । १८ । ९) में [illegible] सहमरणका संकेत है । इसके अतिरिक्त [illegible] शाखाका यह मन्त्र मिला है, जिसमें सहमरणका स्पष्ट वर्णन है—

'अग्ने व्रतानां व्रतपतिरसि पत्युरनुगमनं [illegible] साध्यताम् । [illegible]'

'अग्निदेव ! तुम व्रतोंके अधिपति हो, [illegible] पालन होता है), मैं पतिके साथ अनुगमन (सहमरण) [illegible] करूँगी । तुम ऐसी कृपा करो, जिससे मैं यह [illegible]

आपस्तम्ब धर्मसूत्रमें लिखा है—

जायापत्योर्न विभागो दृश्यते । पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु तथा पुण्यफलेषु द्रव्यपरिग्रहेषु च ॥

'स्त्री और पतिमें कोई विभाग या बँटवारा नहीं देखा जाता। दोनों एक हैं, दोनोंके सब कुछ एक हैं। पति जब पाणिग्रहण कर लेता है, तबसे प्रत्येक कर्ममें दोनोंका सहयोग अपेक्षित रहता है। इसी प्रकार पुण्यफलमें तथा द्रव्य-संग्रहमें भी दोनोंका सहयोग तथा समानाधिकार है।' कोई कोई यह भी अर्थ करते हैं कि स्त्री-पुरुष सदासे एक हैं; इनमें विभाग नहीं है।

शतपथ ब्राह्मणका कथन है कि 'पत्नीके बिना पुरुष स्वर्ग नहीं जा सकता।' इसलिये स्वर्ग आदिकी कामनासे किये जानेवाले यज्ञमें पत्नीकी उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक समझी जाती थी—

स रोहयञ्जायामामन्त्रयते, जाये एहि स्वो रोहावेति। रोहावेत्याह जाया। तस्माज्जायामामन्त्रयते। अर्धो ह वैष आत्मनो यज्जाया। (५।२।१।१०)

'वह पुरुष स्वर्गलोकपर आरूढ़ होते समय पत्नीको सम्बोधित करता है—'जाये! चलो, स्वर्गलोकमें चलें।' पत्नी कहती है—'स्वर्गलोकमें चलें।' इसीलिये 'जाया' को आमन्त्रित करता है, क्योंकि जाया (पत्नी) इस शरीरका अर्द्धाङ्ग है।'

ऐतरेय ब्राह्मणमें नारीको सखा माना है—'सखा ह जाया' (८।३।१३)।

इस प्रकार सम्पूर्ण वैदिक साहित्यके अनुशीलनसे यह पता लगता है कि वेदोंमें नारीके प्रति बड़े ही सम्मान और उदारताका भाव है। नारी घरकी रानी है—यही वैदिक सभ्यताका आदर्श है।

नारी और वेद

(लेखक—पं० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र, वेदाचार्य, धर्मशास्त्राचार्य, मीमांसादर्शन-शास्त्री)

विवाहकालमें कन्यादान, पाणिग्रहणके बाद लाजाहोममें कन्या अपने लिये अपने मुखसे 'नारी' शब्दका सबसे पहले प्रयोग करती है (पा० गृ० १।६।२, अ० १४।२।६३); क्योंकि इससे पहले उसका नर-सम्बन्ध नहीं रहा है। 'नारीत्व' को प्राप्त करते ही वह दो प्रधान आदर्श अपने सामने अपने ही वचनमें जीवनके लिये रखती है—

१. 'आयुष्मानस्तु मे पतिः।'

२. 'एधन्तां ज्ञातयो मम।'

मेरा पति पूर्ण आयुष्संपन्न हो और मेरी जाति (समाज) की अभिवृद्धि हो। नारी होनेके बाद ही इसे 'सौभाग्य'की प्राप्ति होती है (अ० १४।१।३८, पा० गृ० १।८।९)। सौभाग्यका प्रधान अर्थ पतिकी नीरोग स्थिति है (ऋ० १०।८६।११)। पतिमती स्त्रियाँ अविधवा (सधवा) कहलाती हैं। घरमें सधवा स्त्रियोंका प्रथम स्थान है (ऋ० १०।१८।७)। इनको सर्वदा नीरोग, अञ्जन एवं घृतादि स्निग्ध पदार्थोंसे विभूषित, मूल्यवान् धातुओंसे समलङ्कृत, अश्रुविहीन (ऋ० १०।१८।७), सुरूपिणी, हँसमुख (३।५८।८), शुद्ध कर्तव्यनिष्ठा, पतिप्रिया (१।७३।३), सुवस्त्रा (१०।७१।४), विचारशीला (१।२८।३), पतिमात्रपरायणा (१०।८५।४७), पातिव्रत-धर्मनिष्ठा (पा० गृ० १।८।८) होना चाहिये। इन्हें अपने सत्-कर्तव्यसे सास, ससुर, देवर, ननदके ऊपर साम्राज्य प्राप्त करना चाहिये। नारी होनेके साथ ही इनको 'पत्नी' पद भी प्राप्त हो जाता है, जिसके कारणसे ये अपने पतिके किये कर्तव्यका फल प्राप्त कर लेती हैं (पाणिनि० ४।१।३३)। शास्त्रीय विधानसे पुरुष-सम्बन्ध होनेपर ही स्त्री व्यक्ति पत्नी कहलाती है। पत्नी पुरुषका आधा

मेरा यह व्रत सिद्ध हो। अग्ने! यहाँ मैं तुम्हें स्वर्गलोगकी प्राप्तिके लिये नमस्कार करती हूँ। जातवेदा! आज हविष्यसे तुम्हारी आराधना करके मैं तुममें ही प्रवेश करूँगी, तुम अपने सत्त्वसे (सात्त्विक तेजसे) मुझे पतिके सम्मुख पहुँचाओ।'

डा० केगी (Kaegi) भी ऋग्वेद 'आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे' (१०।१८७) इस मन्त्रको सहमरणके अनुकूल ही मानते हैं। हाँ, यह कहा जा सकता है कि सतीदाहकी प्रथा बाध्यतामूलक नहीं थी। सो ठीक ही है।

इसी प्रकार कन्याओंका विवाह भी छोटी अवस्थामें होनेका उल्लेख पाया जाता है। च्यवन ऋषिका विवाह छोटी अवस्थाकी कन्याके साथ ही हुआ था। नासत्यगणने विमदाका विवाह बालिकावस्थामें किया था। इन्द्रने कक्षीवनको वृचया नामक बालिका कन्या-समर्पित की थी। ये सारे प्रसंग ऋग्वेदमें हैं।

स्वरूप है (तै० ब्रा० ३ । ३ । ५) । इस पत्नीके बिना पुरुष अधूरा रहने (श० ५ । २ । १ । १०) के कारण सब यज्ञों-का अधिकारी नहीं बनता (तै० २ । २ । २ । ६) । पत्नी लक्ष्मीका स्वरूप है (श० १३ । २ । ६ । ७) । इनका पूजन (सत्कार) करना चाहिये (मनु० ३ । ५६) । पुरुषोंद्वारा स्त्रियोंकी पूजा उनके कर्तव्योंसे की जाती है । पुरुषको संसारमें फँसा देनेमात्रसे पूजा प्राप्त करनेकी योग्यता नहीं हो सकती (१ । ९२ । ३) । पुरुषोंद्वारा सम्मानित होनेके कारण स्त्रियोंका वैदिक नाम 'मेना' (निरु० ३ । २१) है । पति इसमें गर्भरूपसे उत्पन्न होता है, इसलिये इसे 'जाया' कहते हैं (ऐ० ब्रा० ७ । १३) । पुत्र-सन्ततिसे स्त्रीकी प्रशंसा है (१० । ८६ । ९) । बीस सन्तति होनेपर भी जिसके शरीरमें विकृति न आवे, वह स्त्री महत्त्वशालिनी है (१० । ८६ । २३), साधारण स्त्रीमें दस सन्ततिका आधान होना चाहिये (१० । ८५ । ४५) । अधिक सन्तति होनेसे जीवन कष्टमय हो जाता है (२ । ३ । २०) । स्त्रीके अङ्गोंमें बाहु, अङ्गुली (२ । ३२ । ७), भग (१० । ८६ । ६) की शोभनता, केशकी पृथुता (१० । ८६ । ८), कटिभाग (श० ३ । ५ । १ । ११)—जघनकी विशालता (१० । ८६ । ८), मध्यभागकी कृशता (श० १ । २ । ५ । १६)—की प्रशंसा वेदोंमें मिलती है । स्त्रीको इस तरह रहना चाहिये कि दूसरा मनुष्य उसका रूप देखता हुआ भी न देख सके (लज्जापूर्ण), वाणी सुनता हुआ भी पूरी न सुन सके (मन्दवाणी)—(१० । ७१ । ४) । स्त्रियोंको पुरुषोंके सामने भोजन नहीं करना चाहिये (श० १ । ९ । २ । १२), स्त्रियोंको पुरुषोंकी सभामें बैठना उचित नहीं (श० १ । ३ । १ । २१), स्त्री-समाजका रक्षक पुरुष होता है (श० १ । ३ । १ । ९) । सूतका कातना, बुनना, फैलाना स्त्रियोंका कर्तव्य है (अ० १४ । १ । ४५) । स्त्रियोंको अपने मस्तकके बालोंको साफ रखना चाहिये । मस्तक पर आभूषण भी पहनना चाहिये तथा 'शयन-विदग्धा'—सोनेमें चतुर भी अवश्य होना चाहिये (य० ११ । ५६) । स्त्रीके पहने हुए वस्त्र पुरुषको नहीं पहनने चाहिये । इससे अलक्ष्मी-का वास होता है (१० । ८५ । ३०, ३४) । नारियोंको अपने नेत्रमें शान्ति रखनी चाहिये । पशुओं, मनुष्यों—अर्थात् प्राणिमात्रके लिये हितकारिणी एवं वर्चस्विनी होना चाहिये (१० । ८५ । ४४) । किसीकी हिंसाका भाव नहीं रखना चाहिये (श० ६ । ३ । १ । ३९) । स्त्रीके सब भाव-विलासों का प्राकृतिक उदाहरण देकर शिक्षाकारोंने उच्चारणका प्रकार भी बतलाया है (या० शि० १ । ६९ । २ । ६७, ६८, ७०) । स्त्रीको पति, श्वशुर, घर, समाजकी पुष्टिका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये (अ० १४ । २ । २७) । पति पत्नीका सम्बन्ध सुगम एवं कल्याणप्रद है । इस मार्गके आश्रयसे हानि नहीं होती, अपितु प्रशंसा—धनका लाभ होता है (अ० १४ । २ । ८) । दम्पती अपने संसारके दुर्गम मार्गको सुगमतासे पार कर सकते हैं (अ० १४ । २ । ११) ।

इस संक्षिप्त लेखमें ऋ०—ऋग्वेद, य०—यजुर्वेद (शुक्ल) सा०—सामवेद, अ०—अथर्ववेद, नि०—निरुक्त, शि०—शिक्षा, पा० गृ०—पारस्कर गृह्यसूत्रका संकेत है ।

नारी !

नारी ! तुम नर-मन-मधुप मधुर गुञ्जन-सी,
जीवन मधु-ऋतुकी ललित कलित-कुञ्जन-सी ।
तुम अवनीकी छवि, अतुल प्रभा कन-कनकी,
श्वासोंकी सुखमय सुरभि, सुखी जीवन-सी ॥ १ ॥

तुम नभकी निर्मल कान्ति, शान्ति उडुगणकी,
रजनीकी मुद्रामूक, कला शशि-तनकी ।
तुम प्रातभानुकी किरण, जलजकी शोभा,
नव बकुल मुकुल-सी मृदुल सरस मधुवन-सी ॥ २ ॥

तुम त्रिगुणा त्रिविध स्वरूप धारिणी धन्या,
जग-जननी, तुम सुषमामयी नारि, नर-कन्या ।
तन तरणी सम्बल एक तुम्हारी छाया,
तुम सृष्टि-स्थिति-संहार-करण कारण-सी ॥ ३ ॥

तुम इन्द्रदेवकी शची, रमा श्रीहरिकी,
शङ्करकी शक्ति अनूप, धार-सुरसरिकी ।
अयि ! ब्रह्माकी ब्रह्माणि, आदर्श माया,
तुम प्राणिमात्रकी सकल सिद्धि-साधन-सी ॥ ४ ॥

—[illegible]

उपनिषदोंमें नारी

(लेखक—श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य, विद्याभूषण, सांख्यतीर्थ)

उपनिषदोंका मुख्य सिद्धान्त यही है कि जितने भी दृश्यादृश्य भिन्न-भिन्न नामरूपवाले जागतिक पदार्थ हैं, सृष्टिके आदिमें ये सभी एक ही सर्वाधार सर्वशक्तिमान् परमात्मामें अन्तर्निहित थे। उस समय भिन्न-भिन्न रूपोंमें स्थित रहते हुए भी समस्त चराचर कारणरूप होनेसे एक ही सत् पदार्थ कहलाता था; किंतु दृश्य, द्रष्टा, दर्शन आदि व्यवहारोंके न होनेके कारण उपनिषदोंमें कहीं-कहींपर वह प्रलयकालिक जीव, प्रकृति, ईश्वर, काल, कर्म—इन अनादि, अनन्त तत्त्वोंका समूह असत् भी कहा गया है, तथा आत्मा कहकर भी कई स्थलोंपर निर्देश किया गया है। उस समय वह सत् या असत् आत्मतत्त्व स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि संज्ञाओंसे संकेतित नहीं होता था। उस समय काल भी दिन-रात्रि आदि विभागोंमें विभक्त नहीं था।

फिर प्रलयकालके अवसान एवं सृष्टिके आरम्भमें जब उसी सर्वाधार सद्रूप प्रभुकी इच्छाशक्ति अभिव्यक्त होती है, तब वह प्रभु महेश्वर एवं मायी और उनका शक्तिसमूह प्रकृति, माया आदि शब्दोंसे वर्णित होता है। यद्यपि उस समयके लक्ष्यसे उपनिषदोंमें 'नारी' शब्दका प्रयोग बहुत खोजसे ही मिल सकता है, तथापि नारी-तत्त्व सर्वत्र ओतप्रोत है। वही नारी-तत्त्व सर्वशक्तिमान् सर्वाधार श्रीसर्वेश्वर प्रभुकी शक्ति है जो माया, प्रकृति, अजा, इच्छा, ह्री, धी, श्री आदि अनेक शब्दोंसे उपनिषदोंमें वर्णित हुई है। परमात्माके गुण, स्वरूप, विग्रह, शक्ति आदिके विषयमें अनेकों मतभेद हैं; बहुत-से विद्वान्, जो श्रुतिमें जहाँ-तहाँ आये हुए निर्गुण शब्दका अर्थ समस्तगुणरहित मानकर परमात्माको भी शुभाशुभ, प्राकृताप्राकृत गुणोंसे हीन बतला रहे हैं, उनके लिये तो परमात्माके गुण, विग्रह आदिकी चर्चा भी करना व्यर्थ है; किंतु जिन विद्वानोंने निर्गुण शब्दका वास्तविक अर्थ समस्त प्राकृत गुणोंसे अतीत और दिव्य सद्गुणोंका भंडार स्वीकार किया है एवं निराकार शब्दका भी आकाररहित अर्थ न मानकर समस्त आकारोंका अतिक्रमणकारी एवं सर्वोच्च, प्राकृत आकाररहित दिव्य स्वरूपभूत आकारवान् अर्थ माना है, उनके लिये परमात्माके गुण, स्वरूप, विग्रह आदिकी मीमांसा करना आवश्यक है। यद्यपि उपनिषदोंके कई वाक्योंमें परमात्माको निर्गुण, निष्क्रिय एवं अकर्ता बतलाया है, तथापि अधिकतर वाक्य सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वगुणागार ही बतला रहे हैं। दोनों प्रकारके वाक्योंका मुख्य निष्कर्ष यही है कि परमात्मा दिव्यगुणी हैं, किसी भी समय वह गुणहीन नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थितिमें जब प्रलयकालीन सद्रूप परमात्माके गुण, शक्ति आदि भी सद्रूप ही रहते हैं एवं 'इदं' शब्दवाच्य समस्त जगत् भी सद्रूप ही बन जाता है, तब नारी पृथक् कहाँ रही ! वह भी उस समय सद्रूप ही थी; सब कुछ एक (अ ई क) थे। अर्थात् जिस प्रकार व्याकरणशास्त्रमें अकार, ईकार और ककार—तीनों वर्ण मिलकर 'एक' ऐसा निराला एक शब्द कहलाता है, वैसे ही प्रलयकालमें भी अ—श्रीवासुदेव और ई—श्रीमहालक्ष्मी (महाशक्ति) एव क—जीव-समूह—ये सब भी एक सत्—अथवा आत्मशब्दवाच्य एक ही तत्त्व कहलाते हैं।

यद्यपि अन्तर्भावदृष्टिसे चेतन-अचेतन समस्त पदार्थोंकी अन्तर्भाव प्रक्रियाके अनेकों ही प्रकार हैं, तथापि सद्रूपमें अन्तर्भाव करनेकी प्रक्रिया सभी उपनिषदोंमें समान ही मिलती है; क्योंकि शक्ति (प्रकृति) और शक्तिमान् परमेश्वर दोनों ही सत् हैं। अतः शक्ति-शक्तिमान्का युगल अनादि-अनन्त है। कारण, शक्तिके बिना शक्तिमान् नहीं कहला सकता और शक्तिमान्के बिना शक्तिका पृथक् अस्तित्व नहीं रह सकता। ये दोनों अन्योन्यापेक्षी हैं। इसलिये नर (ब्रह्म) शक्तिमान् कहलाता है तो नारी उसकी शक्ति मानी जाती है। उस शक्तिमान्की वह महाशक्ति ज्ञान, बल, क्रिया आदि अनेकों रूपोंसे उसकी सहकारिणी एवं सहधर्मिणी बनी रहती है[1]। वही शक्ति परा एवं अपरा प्रकृति भी कहलाती है[2], और अंशी (प्रभु) का अंश भी कहलाती है[3]।

सृष्टिके आरम्भमें बस वही शक्ति-शक्तिमान्का एक युगल था; उसमें विचार हुआ कि हमारे इस युगलका साथी

---

१. परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।
(श्वेता० ६ । ८)

२. अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो··· ·········॥
(गीता ७ । ५)

३. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
(गीता १५ । ७)

अब कोई दूसरा भी युगल प्रकटित होना चाहिये, तब उसी सद्रूप युगलने मनके साथ वाणीका युगल रचा[1]। तदनन्तर गो-वृषभ[2] आदि मिथुनोंके संग-संग द्यौ और सूर्यरूपी युगल (मिथुन) की रचना की[3]। परंतु ये सब मिथुन (युगल) उस आत्माको उतना सन्तुष्ट नहीं कर सके जितनी कि आवश्यकता थी। अतएव उस सद्रूप परमात्माने इस मन-वाणी, इन्द्रियाँ आदि अपने समस्त युगलोंसहित विराट् (ब्रह्माण्डमय) रूपमें जलपर शयन किया। वही पुरुषावतार कहलाया।

यद्यपि उसी पुरुषावतारी एक ही विराट् विग्रहमें सभी शक्तियाँ निहित थीं, तथापि तत्तद्रूपोंमें विभक्त होकर अभिव्यक्त हुए बिना उस पुरुषावतार नर (ब्रह्म) को असन्तोष ही रहा; असन्तोष ही नहीं—वह नर भयभीत भी होने लगा, क्योंकि एकाकीको भय होना स्वाभाविक है[4]। जब भय होता है तब किसीको भी खेल अच्छा नहीं लगता; परब्रह्मको सृष्टिरूपी अपना खेल जब नहीं बनता दीखा, तब शीघ्र ही वह विराट् शरीर गिर गया। गिरते ही दो भाग बन गये, शरीरपतनके कारण दोनों विभागोंकी अभिव्यक्ति होनेसे एक भागका नाम 'पति' और दूसरे भागका नाम 'पत्नी' पड़ा[5]। और जो सुख एवं आकाश ब्रह्मके दो रूप थे[6], वे भी दोनोंमें विभक्त हो गये अर्थात् सुख-विशेषांश पति (नर) में रहा और आकाश-विशेषांश पत्नी (नारी) में रहा। अतएव नारी (पत्नी) बिना नर (पति)-शरीर अर्ध युगल कहलाता है, उस अपूर्णताकी पूर्ति नारीके द्वारा ही हो सकती है[7]। एक ही 'क' रूप ब्रह्मके शरीर-पतनानन्तर दो विभाग हुए, जिससे नर-नारियोंके शरीरोंका नाम काया पड़ा[8]। वह आदि नर स्वायम्भुव मनु कहलाया और वह आदि नारी शतरूपाके नामसे लोकमें विख्यात हुई[1]। उन्हीं दोनोंके द्वारा समस्त नर-नारियोंका विस्तार हुआ है।

वास्तवमें नर और नारी दोनों एक ही तेजकी दो ज्योतियाँ हैं[2]; जो कार्यक्रम इस लोकमें [illegible] है, [illegible] कार्यक्रम पारलौकिक एवं वेदों, उपनिषदोंमें पाया जाता है[3]।

उपनिषदोंमें नारीको कहीं-कहींपर [illegible] भी कहा है और किसी श्रुतिमें उमा आदि नामोंसे भी संकेत किया है; किंतु नारीका वास्तविक स्वरूप [illegible] परब्रह्म परमेश्वरकी भिन्नाभिन्नात्मिका शक्ति ही है। [illegible] नररूप, सर्वाधार सर्वशक्तिमान् श्रीपरमेश्वर एवं जगत्की उत्पत्ति स्थिति लयकारिणी नारीरूपा भगवती [illegible]—इन दोनोंकी मनमोहिनी नित्यविहार विहारिणी युगल जोड़ी [illegible] सर्वदासे ही अटल है। उनके नामरूपोंका भी [illegible] सार्वदिक ही है। जैसे उन दोनोंका 'एक तेज है' [illegible] माना जाता है, उसी प्रकार उन्हीं दोनोंके [illegible] नर-नारियोंको भी 'एक तत्त्व है नाम' ही [illegible] चाहिये। नारी नरके लिये अनुपम सहकारिणी है; क्योंकि यदि नर जीवरूपसे विचरण करता है तो नारी बुद्धि बनकर [illegible] देती है। यदि नर दिन बनकर [illegible] करता है तो नारी रात्रि बनकर उसके श्रमको हरती है। यदि नर मन बनकर संकल्प-विकल्प करता है तो नारी वाणी बनकर [illegible] करती है। यदि नर सूर्यरूप बनकर [illegible] करता है तो नारी द्यौ बनकर उसको [illegible] देती है। यदि नर इन्द्र बनकर जलवृष्टि करता है तो नारी पृथ्वी बनकर उस जलसे प्राणियोंका पोषण करती है। नर यदि [illegible] है तो नारी पालिका है। नर यदि नारायण बनकर [illegible] राशिमें भयंकर शेष-शय्यापर पौढ़ना चाहते हैं तो नारी महालक्ष्मी बन अपने अद्भुत [illegible] उनकी [illegible] बना चरण चाँपती है। नर यदि राम बनकर [illegible] युद्ध करते हैं तो नारी जनकनन्दिनी बन अपने [illegible] उनकी सहायता करती है। नर यदि [illegible] है तो नारी [illegible] है। नर यदि नद है तो नारी नदी है। नर यदि [illegible] है तो नारी भार्या है। नर यदि [illegible] है तो नारी [illegible] है।

---

१. सोऽकामयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुनं समभवद्। (बृ० १।२।४)

२. सा गौरभवदृषभ इतर० (बृ० १।४।४)

३. अथैतस्य मनसो द्यौः शरीरम्० (बृ० १।५।१२)

४. सोऽबिभेत्तस्मादेकाकी बिभेति स हायमीक्षाञ्चक्रे० (बृ० १।४।२)

५. स इममेवात्मानं द्वेधापातयत् (बृ० १।४।३)

६. कं ब्रह्म खं ब्रह्म (छान्दोग्य० ४।१०।५)

७. अयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत (बृ० १।४।३)

८. कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायमभिचक्षते। ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत॥ (श्रीमद्भा० ३।१२।५२)

१. शतरूपां च तां नारीं [illegible]। स्वायम्भुवो मनुर्देव [illegible] (विष्णु० १।७।१८)

२. द्वे द्वे ज्योतिषी [illegible] ([illegible])

३. [illegible] ज्योतिरभूद् द्वेधा [illegible] ([illegible])

नर यदि वेत्ता है तो नारी विद्या है। नर यदि मायी है तो नारी माया है। नर यदि बन्धक है तो नारी शृंखला है। नर यदि मोचक है तो नारी मुक्ति है। नर यदि कर्ता है तो नारी क्रिया है।

जैसे नर-नारीकी संज्ञा अन्योन्यापेक्ष है, वैसे ही नर-नारीके अङ्ग-उपाङ्ग, आकृति-प्रकृति, कार्य-करण, रहन-सहन, व्यवहार, दर्शन, स्पर्शन, बोल-चाल—सब कुछ परस्परसापेक्ष हैं। इन सब कारणोंसे बुद्धिमान् व्यक्तियोंको सहज ही ज्ञात हो सकता है कि नारी नरका सचमुच वाम-अङ्ग ही है।

जिस प्रकार सांख्यशास्त्रमें प्रकृति और पुरुषद्वारा अन्ध-पङ्गुके दृष्टान्तसे समस्त जगत्‌का संचालन सिद्ध किया है, उसी प्रकार नर-नारीद्वारा भी लोक-संचालनकी प्रक्रिया उपनिषदोंमें बतलायी गयी है। उपनिषदोंमें इस सारे संसारको परब्रह्मकी यज्ञशाला माना है। नरको होता माना है और नारी-को अग्नि बतलाया है। जैसे होता समस्त सामग्रियोंका संचय करके अग्निमें आहुतियाँ प्रदान करते हैं और अग्नि उन आहुतियोंके स्थूलांशोंको भस्म करके शुद्ध दिव्यांशोंको होताके उद्देश्यानुसार तत्तद्देवोंकी सन्निधिमें पहुँचा देता है, वैसे ही नारी भी नरोंके पाप-पुण्यात्मक सभी प्रकारके भले-बुरे कर्मों-द्वारा अर्जित किये हुए द्रव्य-रसादिकोंको यथोचित स्थानोंमें सुरक्षित रखकर यथोचितरूपसे विभक्त कर देती है। अतएव नर संचायक है और नारी विभाजक है। इन्हीं दोनोंके अवलम्बपर सारा संसार स्थित है।

नारियोंके लिये वही शुभ बुद्धि है जिस बुद्धिसे उन्हें अपने इस स्वरूपका ज्ञान हो जाय कि हम नर (ब्रह्म) की भिन्ना-भिन्नात्मिका शक्ति एवं अंश हैं और नर हमारा नियामक, संरक्षक तथा अभिवर्धक है। यदि हम नरसे यत्किञ्चित् भी अपनेको पृथक् सत्तावाली एवं स्वतन्त्र मानती हैं तो हमारी वही गति होगी, जो वृक्षसे पृथक् होकर इतस्ततः गिरनेवाले पत्रकी होती है। इसी प्रकार नरको भी समझना चाहिये कि यदि हम अपनी नारी-शक्तिको बल, विद्या, दक्षता आदि गुणोंसे समृद्ध न बनाकर केवल जडवत् भोग्य वस्तु ही मानते हैं तो हमारी भी वही गति होगी, जो किसी एक असमर्थ मरणासन्न वृद्ध विधुरकी होती है। इसलिये प्रत्येक नर-नारीको अपने अङ्गाङ्गि भाव (स्वरूप) को जाननेके लिये प्रतिदिन उस परमपिता परमेश्वरसे यही प्रार्थना करनी चाहिये—

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगा
द्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः
स नो बुद्‌ध्या शुभया संयुनक्तु॥

(श्वेता० ४। १)

अर्थात् जो समस्त पदार्थोंका आधार एक ही अवर्ण (अकार)-वाची श्रीवासुदेव प्रभु अपनी स्वाभाविक ज्ञान-बल-क्रिया आदि अनन्त शक्तियोंके योगसे अनेकों वर्णों (वर्णन करने योग्य पदार्थों) एवं विश्वको उत्पन्न (अभिव्यक्त) करके पालन करता है और अन्तमें अपने ही अंदर लीन कर लेता है, वही प्रभु सदा-सर्वदा हम सभी नर-नारियोंको शुभ बुद्धि प्रदान करें, जिससे कि हम अपना और अपने प्रभुके स्वरूपको जानकर परमानन्दको प्राप्त कर सकें।

भ्रमानेवाली

एक महात्मा तीर्थाटन करते हुए मालवा प्रान्तके किसी ग्राममें जा पहुँचे। एक घरके सामने भिक्षाके लिये 'नारायण हरि' शब्दका उच्चारण किया। गृहिणी चर्खा कात रही थी। 'नारायण हरि'की आवाज सुनते ही बोली—'महाराज! ठहरो, भीख लाती हूँ।' भिक्षुक संन्यासी खड़े हो गये। चर्खेकी चूँ-चूँ ध्वनिसे उन्होंने समझा, बेचारा काष्ठ रो रहा है—तो बोल उठे—

रे रे यन्त्र रोदिषि किं भामिन्यां भ्रमते जगत्। यस्याः कटाक्षमात्रेण करस्पर्शेन का गतिः॥

अरे काठके यन्त्र! क्यों रो रहा है? जिस नारीके कटाक्षमात्रसे जगत् भ्रम रहा है; उसने तुझको हाथसे छू लिया है। तेरी यह गति उचित ही है। —भिक्षु गौरीशंकर

स्मृति-ग्रन्थोंमें नारी

(लेखक—पं० श्रीरामगोविन्दजी त्रिवेदी)

नारी-जातिके सम्बन्धमें स्मृतिकारोंके विचार बड़े उन्नत एवं उत्कृष्ट हैं। उनकी दृष्टिमें नारियाँ साक्षात् देवी और लक्ष्मीकी स्वरूपभूता हैं। मनुजी कहते हैं—

'पिता, भ्राता, पति तथा देवरको, जो अपनी विशेष भलाई चाहते हों, उचित है कि वे स्त्रियोंका आदर करें और उन्हें वस्त्राभूषणसे विभूषित रक्खें। जहाँ स्त्रियोंका आदर होता है, वहाँ सम्पूर्ण देवता प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं; जहाँ इनका आदर नहीं, वहाँ सम्पूर्ण क्रियाएँ निष्फल होती हैं। जिस कुलमें भगिनी, पत्नी, कन्या, पुत्रवधू और माता आदि स्त्रियाँ दुःखी रहती हैं, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जहाँ ये दुःखी नहीं होतीं, वह कुल सदा वृद्धिको प्राप्त होता है। स्त्रियाँ उचित सम्मान न मिलनेके कारण जिन घरोंको शाप दे देती हैं, वे कृत्याके सताये हुएकी भाँति सब ओरसे नाशको प्राप्त होते हैं। इसलिये कल्याणकामी पुरुषोंको सदा वस्त्र, आभूषण और भोजन देकर इनका समादर करना चाहिये। प्रत्येक शुभ कर्ममें तथा उत्सवोंपर इनका भलीभाँति सम्मान करना चाहिये। जिस कुलमें पत्नीसे पति सन्तुष्ट है और पतिसे पत्नीको सन्तोष है, वहाँ सदा कल्याण होता है। यह निश्चित बात है।

(मनु० ३। ५५—६०)

उपर्युक्त पङ्क्तियोंमें नारी-जातिके प्रति कितना उदार एवं आदरका भाव है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। हिंदू-धर्मानुयायी पुरुष स्त्रियोंका आदर केवल लौकिक दृष्टिसे ही नहीं, धार्मिक दृष्टिसे भी करते हैं। नारीके प्रति यह उदात्त भावना केवल हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें ही दृष्टिगोचर होती है। हिंदू-समाजकी नारी भगवती दुर्गाकी प्रतिमूर्ति है। पाश्चात्त्य शिक्षासे प्रभावित व्यक्तियोंका कहना है कि जिस जातिमें नारियोंका जितना ही सम्मान होता है, वह जाति उतनी ही सभ्य है। यदि सभ्यताकी इस परिभाषाको मान लिया जाय तो भी सर्वाधिक सम्मान करनेके कारण हिंदूजाति ही संसारमें सभ्यतम सिद्ध होती है।

नयी रोशनीके लोग यह आक्षेप करते हैं कि 'आर्थिक दृष्टिसे हिंदू-स्त्रियाँ अधिक गिरी हुई हैं। उनको दीन और पराधीन बना रक्खा गया है। वे एक-एक पैसेकी मुहताज होती हैं।' परन्तु यह आरोप सर्वथा निराधार है। वेदोंसे लेकर स्मृतियोंतक यह बात डंकेकी चोट कही गयी है कि 'घरकी स्वामिनी स्त्रियाँ हैं।' व्यवहारमें भी [illegible] है। हिंदू पुरुष केवल उपार्जन करता है, [illegible] और उपयोग घरकी स्वामिनीके अधीन होता है। [illegible] स्त्रीका है। उसपर उनका एकाधिपत्य है। [illegible] धनकी बात, जिसपर पति-पत्नी दोनोंका समान अधिकार है। इसके सिवा हमारे धर्मशास्त्रोंने कुछ ऐसा धन भी [illegible] कर दिया है, जो केवल स्त्रीका ही है। [illegible] जीकी राय इस प्रकार है—

'माताकी मृत्यु हो जानेपर [illegible] और अविवाहिता सहोदरा कन्याएँ माताके धनमें समान भाग प्राप्त करें। यदि सहोदरा कन्याएँ विवाहिता हों और उनके [illegible] उत्पन्न हुई हों तो वैसी प्रत्येक कन्याको [illegible] कुछ भाग प्राप्त होना चाहिये। स्त्री धन [illegible] १. विवाह-समयमें पिता आदिके द्वारा प्राप्त धन, २. [illegible] के समय पिता-माता आदिसे प्राप्त धन, ३. [illegible] प्रेमपूर्वक भेंटमें मिला हुआ धन तथा [illegible] पितासे, ५. मातासे और ६. भ्रातासे मिला हुआ धन।'
(मनु० ९। १९२—१९४)

यदि स्त्रीकी मृत्यु हो जाय तो उसके धनका [illegible] कौन होगा? इसका उत्तर मनुजी इस प्रकार देते हैं [illegible] के जीवित रहते ही स्त्रीकी मृत्यु हो जानेपर [illegible] जितना धन स्त्रीको मिला है, वह सब [illegible] मिलेगा, दूसरा कोई उनका अधिकारी नहीं है (मनु० ९। १९५)। नारी विवाहिता हो या अविवाहिता, [illegible] दशामें मनुजीने धनकी अधिकारिणी [illegible] है।

याज्ञवल्क्यस्मृति, दायभाग, [illegible] व्यवहारमयूख, नारदस्मृति, [illegible] कौटिल्य-अर्थशास्त्र, [illegible] पाराशरस्मृति, वीरमित्रोदय [illegible] और नारीके उत्तराधिकारके [illegible] गया है। इन्हीं ग्रन्थोंके निर्णयके [illegible] धनका उत्तराधिकार प्राप्त हुआ है।

[illegible] स्मृति (२। २०—३६) में [illegible] का उपदेश इस प्रकार दिया गया है—

"स्त्रीको चाहिये कि वह [illegible]

उठ जाय। हाथ-मुँह धोकर अपने बिस्तरको समेटकर रख दे तथा गृहको झाड़-बुहारकर साफ करे। तदनन्तर होम-गृहमें जाकर उसे लीप-पोतकर स्वच्छ बनावे। अग्निहोत्रके कार्य-में आनेवाले चिकने बर्तनोंको गर्म जलसे धोकर शुद्ध करे और उन्हे यथास्थान रख दे। जहाँ दो पात्र एक साथ रक्खे जाते हों, वहाँ वैसे ही रक्खे, उन युग्म पात्रोंको अलग-अलग न करे। चावल आदि रखनेके जो पात्र हैं, उन्हें धो-पोंछकर साफ करके चावल आदिसे पूर्ण करके रक्खे। जलके सभी पात्रों-में जल भरकर रक्खे। भोजनके सारे बर्तनोंको माँज-धोकर शुद्ध करके ठीक स्थानपर रख दे। तत्पश्चात् भोजन-पात्र कहाँ हैं, भोज्य पदार्थ और जल मौजूद हैं कि नहीं, खर्चके लिये पैसे कितने हैं—इन सब बातोंका विचार और सँभाल करके चूल्हेको मिट्टीसे लीप-पोतकर उसमें आग जलावे। इस प्रकार क्रमशः प्रातःकालीन नित्यकर्म समाप्त करके नारी सास-ससुर आदि गुरुजनोको प्रणाम करे। उसके बाद पति, पिता, माता, मामा तथा अन्य बन्धु-बान्धवोंके द्वारा प्राप्त हुए वस्त्र और अलंकारोंको आवश्यकताके अनुसार धारण करे। साध्वी स्त्री प्रत्येक शुभ कार्यमें पतिको मित्रकी भाँति उचित परामर्श दे। पति जो कार्य बतावे, उसे दासीकी भाँति दत्तचित्त होकर पूर्ण करे और सदा छायाकी भाँति पतिकी अनुगामिनी बनी रहे। पतिव्रता नारी भोजन तैयार करके पतिको सूचित करे। जब पति बलिवैश्वदेव आदि कार्य पूर्ण कर ले तो पहले बालकों और अतिथियोंको भोजन कराकर तब (गुरुजनों एवं) पतिको भोजन करावे। सबके बाद पतिकी आज्ञासे स्वयं भोजन करे। दिनके तीसरे पहरमे घरका हिसाब-किताब देखे। प्रातः-कालकी ही भाँति सन्ध्याके समय भी पतिव्रता स्त्री घरको स्वच्छ करके भोजन बनावे और उक्त क्रमसे ही पतिको भोजन करावे। सायंकालीन दीप-दान और शङ्ख-ध्वनि आदि गृहके नित्य-कृत्य समाप्त करके स्वयं भोजन करे। सब कार्यों-के पश्चात् सुन्दर शय्या बिछाकर पतिको आरामसे शयन करनेकी प्रार्थना करे और स्वय प्रेमपूर्वक उनकी यथावत् सेवा करे। पतिके सो जानेपर पतिका ही ध्यान करके स्वय भी सो जाय। उस समय नारी कपड़े सँभालकर सतर्क होकर सोवे। कामनाशून्य एवं जितेन्द्रिय रहे। स्त्रीको धीरे-धीरे बोलना चाहिये। वह न तो कड़ी बात कहे और न अधिक बोले। पतिसे कभी अप्रिय वचन न कहे। किसीसे भी विवाद न करे। प्रलाप और विलाप भी न करे। अधिक खर्चीली न बने। पतिके धर्म-कार्यकी विरोधिनी न बने। असावधानी, चञ्चल-चित्तता, क्रोध, ईर्ष्या, प्रवञ्चना, अत्यन्त अभिमान, दुष्टता, जीव-हिंसा, सपत्नी-द्वेष, अहंकार, धूर्तता, नास्तिकता, दुःसाहस, चोरी और कपट आदि दोषोंका साध्वी स्त्री सदा त्याग करे। इस प्रकार पतिको परम देवता मानकर उसकी सेवा करनेवाली साध्वी स्त्री इहलोकमे यश और कल्याण प्राप्त करती है और परलोकमें भी पतिके साथ सुख भोगती है।"

कितना सुन्दर दिव्य उपदेश है! इसके अनुसार चलने वाली कुल-ललना प्रत्येक घरको स्वर्ग बना सकती है।

हिंदूधर्ममें अतिथि-सेवाको महान् धर्म माना गया है। अतः सबसे पहले अतिथिको ही भोजन करानेका विधान है। स्त्रीको धर्मतः सबसे पीछे भोजन करना उचित है। तथापि जो नयी दुलहिन घरमें आयी हो, उसे मनुजीने पहले भोजन करानेका आदेश दिया है। वधू चाहे कन्या हो चाहे पतोहू, वह प्रथम भोजनकी अधिकारिणी है। यही बात गर्भवती स्त्री-के लिये भी है। (मनु० ३। ११४)

कन्याके विवाहके विषयमे विचार करते समय मनुजी (९। ८८-८९) कहते हैं—'यदि कन्याकी अवस्था विवाहके योग्य पूरी न हुई हो, कुछ-कुछ कमी रह गयी हो तो भी यदि कोई उत्तम, कुलीन, सुन्दर, सजातीय और गुणवान् वर मिल जाय तो उसके साथ कन्याका विवाह कर देना चाहिये।' कन्याके लिये योग्य वरका अनुसन्धान करनेमें कितनी कठिनाई होती है, इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं। अतः यदि अनायास ही कोई परम सुयोग्य वर प्राप्त हो गया हो तो साल, छः महीने पहले भी विवाह कर देनेमें कोई हानि नहीं है। आगे मनुजी लिखते हैं—'कन्या ऋतुमती हो जाय और जीवनभर पिताके ही घरमें रह जाय तो भी गुणहीन वर-से उसका विवाह कदापि न करे।' योग्य वरका अनुसन्धान कितना आवश्यक है, यह उपर्युक्त पङ्क्तियोंसे सिद्ध है।

यदि पिता, माता या अन्य कोई अभिभावक कन्याकी विवाह-योग्य अवस्था हो जानेपर भी उसके विवाहकी ओर ध्यान नहीं देते और लापरवाही करते हैं तो कुलवती कन्या कुल-मर्यादा तथा गुरुजनोंके सम्मानकी रक्षाके लिये ऋतुमती हो जानेपर भी तीन वर्षोंतक प्रतीक्षा करे। इतनेपर भी यदि अभिभावक उसके विवाहकी व्यवस्था नहीं करते तो शास्त्रतः उसे यह अधिकार है कि वह स्वयं ही अपने लिये योग्य पति चुन ले। अभिभावकके द्वारा विवाहकी उपेक्षा होनेपर यदि कन्या स्वयं अपना पति चुन ले तो उसे कोई पाप नहीं होगा और उसके साथ विवाह करनेवाला पुरुष भी दोषका भागी नहीं हो सकता' (मनु० ९। ९०-९१)। इस प्रकार आर्य

धर्मग्रन्थोंमें एक सीमातक नारीको अपने विवाहकी स्वतन्त्रता दी गयी है। जो लोग स्वाधीनता और स्वतन्त्रताकी रट लगाते हैं, उन्हें इन पङ्क्तियोंपर दृष्टिपात करना चाहिये। हमारे स्मृतिकार प्रधानतः कन्याके विवाहका उत्तरदायित्व अभिभावकोंपर ही डालते हैं, क्योंकि विवाहकी जो अवस्था बतायी गयी है, उसमें नारी स्वयं अपने हिताहितका पूर्ण परिज्ञान नहीं कर सकती। पिता-माता आदि जो कुछ करेंगे, सर्वथा उसका भला सोचकर ही करेंगे। कन्याके विवाहकी अवस्था मनुजीने आठसे बारहतक बतायी है। यही अन्य स्मृतिकारोंका भी मत है। विवाहसे मतलब यहाँ विवाह-संस्कारसे है। हिंदुओंमें यह प्रथा है कि विवाहके बाद वर्षके अंदर या तीसरे वर्ष अथवा पाँचवें वर्ष कन्याका गौना या वधूप्रवेश हो। इसीको कहीं-कहीं 'द्विरागमन' भी कहते हैं। उसके होनेपर कन्या पतिके घरपर वधूरूपमें दीर्घकालतक निवास करती है। कहीं-कहीं विवाहके समय कन्या दो-एक दिनके लिये पतिके घर जाती और वहाँका कुलाचार पूरा करके पिताके घर लौट आती है। उसके बाद गौना होता है। यदि आठ वर्षकी कन्याका विवाह हुआ हो तो उसका गौना पाँच सालमें, दस वर्षकी कन्याका तीन साल बाद और बारह वर्षकी कन्याका सालभरमें गौना होना चाहिये। सारांश यह कि ऋतुमती होनेके पहले विवाह और ऋतुमती हो जानेपर गौनेका उपयुक्त समय है। बंगाल और मिथिला आदिमें कितनी ही कन्याएँ ग्यारह सालकी अवस्थामें ही ऋतुमती हो जाती हैं, अतः उनका विवाह इससे पहले ही होना उचित है। ऋतुमती स्त्रीके मनमें पुरुष-सहवासकी कामना होती है। अतः ऋतुमती होनेकी अवस्थाके पहले ही यदि उसका विवाह हो जाय तो वह पुरुषरूपमें अपने पतिका ही चिन्तन करेगी, अतः मानसिक व्यभिचारसे भी वह बच सकती है। इस धार्मिक विज्ञानको लक्ष्य करके ही ऐसी व्यवस्था की गयी है।

मनुजीने कन्या-विक्रयका बहुत विरोध किया है (९। ९८—१०२)। वे कहते हैं—'शूद्र भी शुल्कके रूपमें कुछ लेकर या रुपये-पैसे लेकर अपनी कन्याका दान न करे, क्योंकि यदि कन्याका पिता धन लेता है तो वह अपनी कन्याको (गाय-भैंसोंकी तरह) बेचता है।' किसी एक वरको कन्या देनेका वादा करके दूसरेके साथ उसका विवाह करना भी निन्दनीय माना गया है। शुल्कके नामपर चुपके-चुपके रुपये लेकर कन्या-विक्रय करना पहले कभी नहीं सुना गया है। 'स्त्री और पुरुष (पति-पत्नी) आमरण एक-दूसरेके साथ सहमत होकर रहें—परस्परविरोधी विचारोंको प्रश्रय न दें। संक्षेपमें यही उनका धर्म है।' विवाह होनेपर पति-पत्नी एक हो जाते हैं, अतः वे अलग-अलग होकर कोई कार्य न करें, इसके लिये उन्हें सदा सचेष्ट रहना चाहिये। एक-दूसरेके सहयोगी बनकर रहनेमें ही उनका लाभ है—यही प्रत्येक दम्पतिके लिये धर्मशास्त्रोंकी सलाह है। विवाहके जो आठ भेद बताये गये हैं, उनमें भी स्त्रीकी मर्यादाको सदा अक्षुण्ण रखनेपर ही ध्यान दिलाया गया है।

मनुस्मृतिमें नारीके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा गया है। नीचेकी कुछ पंक्तियोंपर और ध्यान दीजिये—

जो नारी सन्तानहीन हो, जिसके कुलमें (ससुराल और पीहरमें) कोई न हो, जो पतिव्रता, विधवा या रोगिणी हो, उनकी रक्षा सब लोग करें (८। २८)।

जो सगे-सम्बन्धी स्त्रीके जीवितकालमें ही उसका धन हरण कर लें, उनको धार्मिक राजा चोरके समान दण्ड दे (८। २९)।

जो सगे-सम्बन्धी स्त्रीकी धन-सम्पत्ति, उसके [illegible] घोड़े और गहने-कपड़े अपहरण करते [illegible] निश्चय ही नरकगामी होते हैं (३। ५२)।

कन्या परम स्नेहकी पात्री है। वह कभी कुछ [illegible] भी कर ले तो पिता क्रोध न करे [illegible] (४। १८५)।

नारी और ब्राह्मणकी रक्षा करनेके लिये [illegible] मारना पड़े तो भी दोष नहीं होता (८। [illegible])।

नारीके सम्बन्धमें अन्य स्मृतियोंके विचार भी [illegible] और पठनीय हैं—'स्त्रीकी अनुकूलता ही स्वर्ग है और उसका प्रतिकूल होना नरकसे भी भयङ्कर है। [illegible] कोई औषध नहीं है। समस्त दुःखोंको दूर करनेवाली [illegible] है। घरको घर नहीं कहते, स्त्री ही घर है। [illegible] गृह जंगलसे भी बदतर है। भार्या [illegible] सखा है। यदि पत्नी कभी अप्रिय वचन भी [illegible] उससे अप्रिय वचन न कहे, क्योंकि [illegible] सब स्त्रीके ही अधीन है। पुरुष [illegible] और पालन करनेके कारण 'पति' नाम [illegible] है। इसके विपरीत चलनेमें न वह [illegible] नारी जातिमें असाधारण पवित्रता है, वह कभी [illegible] अपवित्र नहीं होती। नारीका [illegible] पुरुष ही शौर्य है, नारी ही सौन्दर्य है। [illegible] उसकी विचार-शक्ति है, [illegible]

सम्पादन करता है, और नारीकी विशेषता उसकी प्रज्ञा है, जिसके द्वारा वह सभी विषयोंमें सामञ्जस्य करती है और पुरुषकी विचार-बुद्धिको नियमित करती है। जो लोग नारी-जातिसे घृणा करते हैं, समझना चाहिये कि वे अपनी माताका ही अपमान करते हैं। जिसपर नारीकी कोप-दृष्टि है, उसपर भगवान्का भी अभिशाप लगा हुआ है। जिस दुष्टके व्यवहारसे नारीकी आँखोंसे आँसू बहते हैं, वह देवताके क्रोधानलसे भस्म हो जाता है। जो व्यक्ति नारीके दुःख-दर्दमें उसकी हँसी उड़ाता है, उसका अकल्याण होता है। ईश्वर भी उसकी प्रार्थना नहीं सुनते। नारीके कण्ठसे निकला हुआ धर्मसंगीत ईश्वरके कानोंको बहुत ही सुख देनेवाला होता है। ईश्वरकी प्रीतिके लिये नारीके साथ-साथ ही पुरुषको प्रार्थना करनी चाहिये। नारीको असहाय समझकर उसको सताने और उसके पितृ-धनका अपहरण करनेसे बढ़कर नीचतर पाप और नहीं है। नारी गृहलक्ष्मी है, उसके सान्निध्यसे गृहदेवता प्रसन्न होते हैं। खेती आदि कठोर परिश्रममूलक कर्म नारीको नहीं करने देना चाहिये। जो आत्मीय स्वजन बुरी नीयतसे असहाय नारीकी धन-सम्पत्ति, उसके यान-वाहन और गहने-कपड़ोंका हरण कर लेते हैं, वे निश्चय ही नरकोंमें जाते हैं, उनका कल्याण किसी दिन भी नहीं होता।"

हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें सती नारीकी बड़ी महिमा गायी गयी है। ब्रह्मवैवर्तपुराणका वचन है—

> पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि।
> तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीषु वै।
> सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा॥

'पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सभी सती-साध्वी स्त्रीके चरणोंमें निवास करते हैं। सम्पूर्ण देवताओं और मुनियोंका तेज भी सती स्त्रियोंमें स्वभावतः रहता है। सती नारियोंकी चरण-रजसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है।'

गुरुजनोंमें माताका गौरव सबसे अधिक बताकर शास्त्रोंने नारी-जातिके सम्मानको ही सर्वोपरि सूचित किया है।* स्मृतियोंमें जो कहीं-कहीं स्त्रीकी निन्दा मिलती है, उससे भी सती-साध्वी नारीका महत्त्व ही सूचित होता है। निन्दा दो दृष्टियोंसे है—एक तो ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और सन्यासीके मनमें स्त्रियोंकी ओरसे वैराग्य उत्पन्न करनेके लिये नारीको नरकद्वार कहा गया है। उनके लिये सचमुच ही नारीका संसर्ग वैसा ही है। दूसरी उन दुष्ट स्त्रियोंकी निन्दा की गयी है, जो लज्जाको तिलाञ्जलि दे अधर्मके मार्गपर चलती हैं। अतः वह वास्तवमें नारी-निन्दा नहीं, दुर्गुण-दुराचारकी निन्दा है। दुराचारपरायण पुरुष हो या स्त्री—सभी निन्दाके पात्र हैं। कन्या, बहिन और पत्नी सभी रूपोंमें नारी पुरुषके स्नेह, प्रेम और आदरकी अधिकारिणी है। वास्तवमें वह पुरुष-जननी होनेके कारण सदा ही वन्दनीय है।

बहादुर किसान-पत्नी

पटियाला राज्यकी बात है। एक तरुणी किसान-बहू पतिके लिये भोजन लिये घरसे खेत जा रही थी। बरसातके दिन थे। इसलिये उसने छाता लगा रक्खा था। दैवयोगसे उसी रास्ते एक डाकका हरकारा जा रहा था। उसने युवतीको अकेली देखकर छाता छीन लिया और लगा दौड़ने। युवती पीछे दौड़ी और एक ही मीलके अंदर उसके पास जा पहुँची। पहुँचते ही उसने छाता छुड़ाकर इतने चपत-घूसे जमाये कि डाकियाजीके होश गुम हो गये। उसने उसका डाकका थैला छीनकर शहरमें पहुँचाया। इस वीर-कार्यके पुरस्कारमें उसे १६ बीघा जमीन मिली।

—गौरीशंकर

---

* उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता। सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥

(मनु० २। १४५)

'दस उपाध्यायोंकी अपेक्षा आचार्य, सौ आचार्योंकी अपेक्षा पिता और हजार पिताओंकी अपेक्षा माताका गौरव अधिक होता है।' ऐसे ही वचन अन्य स्मृतियोंमें भी पाये जाते हैं, जैसे—

उपाध्यायाद्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता। पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते॥ (वसिष्ठ० १३)

भारतीय सभ्यतामें नारीका स्थान

(लेखक—देवर्षि भट्ट श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, साहित्यवारिधि, कविशिरोमणि, कविसार्वभौम)

विश्वमें ज्ञान-ज्योतिका सर्वप्रथम प्रकाश करनेवाले आदिम सभ्य आर्य हैं। सभ्य जगत्पर अभिमानकी छाप बैठानेवाली आज अनेक जातियाँ दिखायी देती हैं, किंतु सर्वप्रथम सभ्यताके पदाङ्क दिखानेवाले एकमात्र आर्य ही हैं। यह हमारा ही नहीं, सभ्यताका आदिम इतिहास खोजनेवाले सात समुद्र पारके ऐतिहासिकोंका तथ्य है। आर्योंकी प्राचीन सभ्यतामें नारीका कितना सम्मान है। यह सूक्ष्मतासे खोजने-जैसा गूढ़तत्त्व नहीं। पारमैश्वर्य-पदपर भी जब आप उसे प्रतिष्ठित पायेंगे, तब भी क्या प्रमाणोंकी परतन्त्रता प्रकट करनी होगी ? जगज्जननीको जाननेके लिये भी भला, जगत्में ज्योति जगानी होगी ? जिसके लिये—'देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या' यों सभक्ति सगद्गद स्तुति करते हैं भला, उसका भी सम्मान युक्तियोंसे प्रमाणित करना होगा ? 'आद्याशक्ति' कहकर जिसकी भक्तिकी अभिव्यक्ति करते हैं, उसका पदगौरव भी समझानेकी बात है ? 'शक्ति' के बिना विश्वकी अभिव्यक्ति सिद्ध करना किस शक्तिशालीका दावा है ?

यह भी जाने दीजिये—जिसके बिना 'ईश्वर' भी अपने स्वरूपसे आधे ही रह जाते हैं और पूरे रूपमे 'अर्द्धनारीश्वर' कहलाते हैं, वहाँ नारीका सम्मान प्रमाणोंसे सिद्ध कीजियेगा ? फिर अर्द्धनारीश्वर होनेपर भी विशेषता यह है—

आत्मीयं चरणं दधाति पुरतो निम्नोन्नतायां भुवि
स्वीयेनैव करेण कर्षति तरोः पुष्पं श्रमाशङ्कया।
तल्पे किञ्च मृगत्वचा विरचिते निद्राति भागैर्निजैः

'अर्द्धनारीश्वर भगवान् शिव ऊँची-नीची भूमिपर चलनेके समय, परिश्रमसे बचानेके विचारसे अपना ही चरण धरते हैं और वृक्षसे पुष्प तोड़ते समय अपना ही हाथ काममें लाते हैं। और तो क्या, मृगचर्मसे बनायी हुई सुखशय्यापर भी अपने भागको ही टेकते है, जिससे कि दूसरे भागको श्रम न हो।' भला, जहाँ इतना ऊँचा विचार है, वहाँ नारीका सम्मान प्रमाणोंद्वारा सिद्ध करना होगा ? इधर भावुक भक्तोंकी भावना है कि समूची नारी तो क्या, उसका एक अक्षर ('र' रेफ) भी हटा लिया जाय तो बड़ा भारी भाग उड़ जायगा—

जो पै ये न होय रानी राधेको रकार हू तो
मेरे जानि राधेश्याम आधेश्याम रहते।

मानवजगत्को ज्ञानकी 'देन' देनेवाले विज्ञाननिधि 'वेद', जो केवल सर्वप्रथम ही नहीं, यावन्मात्र साहित्योंके मूल भी हैं, उनमें भी नारीका महत्त्व कितना घोषित किया है—यह ध्यान देनेकी बात है। वेदका सर्वस्व है क्रियाकलाप। उसका पूर्व काण्ड कर्मोपदेशसे भरा है। 'त्रैगुण्यविषया वेदाः' इत्यादि गीतादिके वाक्योंसे भी तो यही सूचित किया गया है। वैदिक कर्मानुष्ठानके लिये ब्रह्मचारी, गृहस्थ आदि चार आश्रम आर्योंके जगत्प्रसिद्ध हैं। वेदका सर्वस्व जब आप क्रियानुष्ठान ही मान चुके हैं, तब यह भी समझ लेना होगा कि वैदिक कार्योंके लिये चारों आश्रमोंमें 'गृहस्थ' आश्रमको प्रधानता दी हुई है। भगवान् मनु कहते हैं—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः॥
सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि॥
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥

इन चारों आश्रमोंकी गृहस्थाश्रमसे ही उत्पत्ति होती है। चारों आश्रमोंमे गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है, क्योंकि बाकी तीन भी इसीसे चलते हैं। जैसे सब नद और नदियाँ समुद्रमें जाकर मिलते हैं, उसी तरह सब आश्रमवाले गृहस्थ [illegible] जाकर अवस्थान पाते हैं।

इस सर्वप्रधान गृहस्थाश्रमके [illegible] नारीके सहयोग बिना नहीं सिद्ध होते। क्या वैदिक और क्या [illegible] सभीमें स्त्रीका सहयोग आवश्यक है। मनुष्य [illegible] गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है, उस [illegible] देवता, अग्नि और ऋत्विजोंकी साक्षीमें जाति-सज्जोंसे [illegible] कि 'धर्मे अर्थे च नातिचरामि'—धर्म-[illegible] भी इसके बिना नहीं चलेगा। [illegible] क्रिया-कलापमें नारीका केवल सहयोग ही नहीं, [illegible] दृष्टिसे प्रधानता भी दी गयी है। [illegible] नहीं, सभी सभ्य जगत्में [illegible] आप देखेंगे कि वैदिक [illegible] (दाहिनी सीट) [illegible] है। [illegible] वामतः'—अभिषेकके [illegible] है। वेदकी '[illegible]' [illegible]

सम्माननीय है। इस यज्ञविधाने ही विश्वमण्डलमें आर्योंका आजतक उच्च मस्तक कर रक्खा है। जो विश्वमण्डलमें इतने गौरवके स्थान हैं, वह 'यज्ञ' बिना नारीके नहीं होते। सहधर्मचारिणीके बिना यज्ञ करनेका अधिकार ही नहीं मिलता। भगवान् रामने लोकानुवर्तनके लिये जिस समय श्रीसीताका परित्याग कर दिया, उस समय सीताकी वनवासकी सखियाँ 'पत्नी-परित्यागके बाद श्रीरामचन्द्रका क्या हाल हुआ' यह जाननेके लिये किसी तापसीसे पूछती हैं—'अथ स रामभद्रः किमाचारः ?' 'अब वह रामचन्द्र क्या करते हैं ?' तापसी—'तेन राज्ञा राजक्रतुरश्वमेधः प्रक्रान्तः' 'वह अब अश्वमेध कर रहे हैं।' यह सुनते ही उनको भगवान् रामचन्द्रके द्वितीय विवाहका निश्चय हो गया, क्योंकि बिना पत्नीके यज्ञ हो ही नहीं सकता। इसीलिये बड़े दुःख और घृणाके साथ उनके मुखसे निकला—'हन्त ! परिणीतमपि ?' 'हाय क्या विवाह भी कर लिया ?' तापसी जवाब देती है—'शान्तम्, नहि नहि'। 'राम ! राम ! यह क्या कहती हो, ऐसा नहीं है।' तो प्रश्न होता है—'का तर्हि यज्ञे सहधर्मचारिणी ?' 'तो फिर यज्ञमें सहधर्मचारिणी कौन है ?' यही नहीं, कई कार्योंमें केवल गृहिणीको ही प्रधानता दी गयी है। प्रसिद्धि चली आती है कि—'प्रायेण गृहिणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः' कन्या-विवाहादि कार्योंमें कुटुम्बियोंके गृहिणी ही 'नेत्र'स्वरूप होती है।

इसके अनन्तर क्या पुराण, क्या स्मृतियाँ, सर्वत्र ही नारीको बड़ा ऊँचा आसन दिया गया है। आप देखेंगे पुराणोंमें स्थान-स्थानपर नारी-जातिका बड़ा महत्त्व घोषित किया गया है। जहाँ चराचरनायक भगवान् विष्णु भी 'मोहिनी अवतार' लेते हैं, भला वहाँ कोई नारीका तिरस्कार सिद्ध कर सकता है ? भगवान् मनु बड़े आग्रहके साथ आज्ञा देते हैं कि 'पूजनीयाः प्रयत्नतः' 'समाजको प्रयत्न करके भी नारीकी पूजा (सम्मान) करनी चाहिये।'

इस विषयको विशेष लिखकर निबन्धका कलेवर नाहक बढ़ाना आवश्यक नहीं समझता, किंतु ऋषियोंपर अथवा प्राचीन भारतीयोंपर नारी-जातिके तिरस्कारका कलङ्क लानेवाले महोदय यदि निष्पक्षपातभावसे मनुस्मृतिके इस प्रकरण (अध्याय ३ श्लोक ५१-६२) को देखेंगे और मनन करेंगे तो उन्हें स्पष्ट प्रतीत हो जायगा कि प्राचीन भारतीयोंका नैतिक दृष्टिकोण महिला-जातिपर कितना उदार रहा है।

अब आर्ष-साहित्यके अनन्तरका भारतीय साहित्य लीजिये। इसमें भी नारी-जातिके प्रति हम भारतीयोंके क्या भाव थे, इसकी परीक्षा कीजिये। दोषदर्शी पुरुषोंकी तरफसे दिये गये नारियोंके प्रति दोषोंकी शङ्काओंको हटाते हुए वे कहते हैं—

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्।
मासि मासि रजो यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥

'स्त्री-जाति मूलतः पवित्र है। इनमें दोष कभी आ ही नहीं सकता, क्योंकि प्रतिमास रजके द्वारा इनके दोष दूर होते रहते हैं।' संसार-यात्रामें नारीका व्यक्तित्व कितना महत्त्व रखता है। देखिये, साहित्यवाले इसको किस अलङ्कृत भाषामें कह रहे हैं। वह भी भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धमें—

सम्पत्त रमणी शीलसम्पन्नरमणीं विना।
इत्यूढवान्नरमणी रमणीं रुक्मिणीं हरिः ॥

'इस संसारमें अतुल सम्पत्ति भी शील (सुचरित्र)-सम्पन्न रमणी (नारी) के बिना फीकी है। इसीलिये मनुष्य-चरित्रका आदर्श दिखानेवाले भगवान् श्रीकृष्णने रुक्मिणीका पाणिग्रहण किया' इत्यादि। क्या प्राचीन इतिहास और क्या राजपूतोंके इतिवृत्तोंमें आपने देखा होगा कि आर्यस्त्रियोंने समाजके लिये जो त्याग, औदार्य और वीरता दिखायी है, उसके लिये आजतक पुरुष कितने कृतज्ञ रहे हैं।

कुछ शिक्षित महोदय 'ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥' इत्यादि दिखलाकर स्त्री-जातिके प्रति भारतीयोंका तिरस्कार सिद्ध करना चाहते हैं; किंतु ऐसी उक्तियाँ किस प्रसङ्गमें और क्यों कही गयी हैं—इसका उन्होंने विचार नहीं किया है। इन शङ्काओंका समाधान स्थान-स्थानपर विवेकियोंने खूब कर दिया है और सम्भव है, इस 'अङ्क' में भी इस विषयपर समुचित प्रकाश डाला जाय। अतएव मैं इस प्रसङ्गको नहीं छेड़ता; किंतु यह दिखलाना उचित समझता हूँ कि इन नवीन शिक्षित महानुभावोंमें ऐसी-ऐसी शङ्काओंके स्रोत कहाँसे फूट पड़ते हैं। यह है पश्चिमी शिक्षाकी 'देन'। पश्चिमी विजेता-जाति अपनी शिक्षाके द्वारा जो भी 'गुरुमन्त्र' इन्हें देती रही, यह भी समय-समयपर उसीकी प्रतिध्वनि करते रहे। अपने घरका साहित्य इस सम्बन्धमें क्या कहता है, इसपर विश्वास करनेके लिये वहाँसे शायद मनाही आ गयी होगी। कुछ वर्ष पहले पश्चिमसे इशारा आया कि 'भारतीय काव्य 'फोश' (अश्लील) हैं। उनमें लज्जाजनक स्त्रैणता भरी है।' बस, उन दिनोंके इंगलिश और देश-भाषा-साहित्यमें देख लीजिये कि काव्य और शृङ्गाररसके

प्रति सबने विद्रोह-घोषणा कर दी। इसीके कारण 'कामसूत्र' सरीखे दुर्लभ प्राचीन साहित्यपर भी प्रकाशकोंको लाचार लिखना पडा कि 'नितान्तं गोपनीयम्' (अत्यन्त गुप्त); किंतु थोड़ा ही ठहरकर पश्चिमकी तरफसे एक लहर आती है, जिसमें नाटक और काव्योंमें खुले शृङ्गारका साम्राज्य दिखाया जाता है। बस, यहाँ भी सिनेमाओंमें देख लीजिये 'मैडमोंका अर्द्धनग्न डान्स'। क्या यह हमारे प्राचीन काव्योंकी अपेक्षा शृङ्गार-विषयमें 'सुरुचि' प्रचार करनेवाले हैं?

'कामसूत्र' तो 'नितान्तं गोपनीयम्' रहा; किंतु पश्चिमके गुरुओंने जब काम-शास्त्रविषयको एक उपयोगी साहित्य होनेकी आज्ञा दी तो बस यहाँ 'सरस्वती' सदृश उच्च पत्रोंमें भी सेंट निहालसिंह आदिके कामशास्त्रके खुले लेख प्रकाशित होने लगे। 'कामसूत्र'का हिंदी अनुवाद बाजारमें बिकने लगा। मैं अपनी बाल्यावस्थासे देखता आ रहा हूँ कि 'पञ्चतन्त्र' की संस्कृत कहानियाँ सभी स्कूलोंकी संस्कृत-शिक्षामें पढ़ायी जाती रहीं। सभी अंग्रेजी शिक्षित उपभाषा संस्कृतके साथ पञ्चतन्त्र पढ़ते रहे। कभी उसके प्रति ऐसी भक्ति नहीं जगी, किंतु एक जर्मनीके प्रोफ़ेसर पञ्चतन्त्रपर अन्वेषणके लेख लिखते हैं, उसके लिये भारतभरमें भ्रमण करते हुए उसकी उच्चता घोषित करते हैं तो बस, यहाँके शिक्षित भी पञ्चतन्त्रकी शतमुखसे प्रशंसा कर उठते हैं। 'सुधा' में उसके लिये सूक्ति-सुधा बरस पड़ती है।

प्राचीन संस्कृत-पण्डितोंने वेद आदिके द्वारा प्रमाणित करके ही लिखा था कि 'आर्यलोगोंका आदिम निवास आर्यावर्त था, उस समयका भारतवर्ष ही था और वेदोंका निर्माण वहीं हुआ था;' किंतु पश्चिमके विद्वानोंने हमें पढ़ाया कि 'नहीं, आर्यलोग बाहरसे भारतमें आये हैं।' बस, हमने अपने घरकी एक न सुनी। हम बाहरसे आये हैं, यही अबतक रटते रहे। अब कुछ दिनसे अंग्रेजी-शिक्षितोंकी तरफसे एक लहर आयी कि—नहीं, आर्योंका आदिम निवास 'मध्य एशिया' नहीं, पहलेका 'आर्यावर्त' था। इस विषयपर माननीय बाबू संपूर्णानन्दजीने हिंदी-पुस्तक लिखी तो नवीन शिक्षित महानुभावोंकी आँखें खुलने लगीं। निवेदन करनेका यही अभिप्राय है कि स्त्री-जातिके प्रति भारतीयोंकी तिरस्कार-घोषणा भी दूसरी तरफसे आयी हुई है।

आजकल कालेजोंमें कुमारियों और नवयुवकोंको साथ-साथ रखकर और एक प्रकारकी ही शिक्षा देकर जो नवीन सभ्यता सिखलायी जा रही है, उसके अनुसार छोटी-सी बातपर पतिदेव क्षमा माँगते हैं और जेबसे गिरे रुमालको भी सौंपनेपर पतिदेवकी तरफसे 'धन्यवाद' मिलता है। इसलिये हमारी पूज्य स्त्री जाति आजकल तो अपना गौरव और पुराने समयमें अपना अपमान न समझे। आपके देशके प्राचीन साहित्यमें आपके प्रति असीम सम्मान प्रकट किया गया है, इसपर विश्वास करें। इस समयकी स्त्री-शिक्षापर यहाँ लिखना मेरा ध्येय नहीं; किंतु आजकलकी शिक्षाको खूब जाँच पड़ताल कर ग्रहण करें, यह मेरा निवेदन है। यह नारी-जाति ही हमारी सभ्यताकी मूल है। यदि शिक्षाके द्वारा इसमें दोषका बीज बो दिया गया तो फिर हजारों उपायोंसे भी आप उसे नहीं हटा सकेंगे और सिवा पछतानेके फिर कोई उपाय न रहेगा, जैसा कि भगवद्गीतामें कहा है—

स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः।

इस सम्बन्धमें मेरे बनाये तीन 'छन्द' भेंट करके आपसे विदा लेता हूँ। कविताकी नयी 'बानगी' समझकर ही पाठक महोदय कृपा करेंगे और साथ-साथ स्त्री-शिक्षाके [illegible] मेरे विचारोंकी परीक्षा भी करेंगे।

छप्पय

पत्नी प्रियतममाप्य वन्दनं वचसा कुरुते।
पतिसुहृत्सु संपत्सु करोन्मर्दनमातनुते॥
पतिर्व्यलीके कृते क्षमाशब्दं वत [illegible]।
पतिवस्तुनि दत्ते च धन्यवादानि[illegible]॥
अर्द्धाङ्गिनीति गौरवपदं प्राणसमेति च [illegible]।
युक्त्यापहृत्य हृदते नराः कृत्रिमोपचार[illegible]॥

पतिके मिलनेपर पत्नी 'गुड मार्निंग' [illegible] वाचनिक नमस्कार करती है। पतिके मित्रोंसे [illegible] करमर्दन (शेकहैण्ड) करती है। थोड़ा भी [illegible] पतिदेव क्षमा माँगते हैं। पत्नीकी कोई भी [illegible] यह धन्यवादकी पात्र होती है। 'अर्धाङ्गिनी' ([illegible] आधा भाग) इस गौरवपूर्ण पद और [illegible] ([illegible] समान) इस अतुल संपत्तिको [illegible] पुरुष उसके एवजमें [illegible] ([illegible]) आपत्ति नजर करते हैं।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पूर्वं किल पारतन्त्र्यमासीन्निजदेश एव
साम्प्रतं स्वगेहेऽपि च पारतन्त्र्यमीप्सितम्।
नूतनयुगेऽस्मिन्नवशिक्षितनराणामथ
नारीशिक्षणेऽपि ननु नूतनत्वमीक्षितम्॥

अन्य देशोंकी नारी-शिक्षाकी देखा-देखी अपनी स्त्रियोंको भी वैदेशिक शिक्षा दिलाते हैं। ये स्त्रियाँ शिक्षित और परीक्षोत्तीर्ण होकर, अवहेलनाके साथ अपने घरके कामोंको बिना पूर्वापर विचारे छोड़ देती हैं। पहले अपने देशमें ही हम परतन्त्र थे, अब हम अपने घरमें भी अपने हाथोंसे परतन्त्र होना चाहते हैं (घरकी स्त्रियोंके काम छोड़ देनेपर हम सदा नौकरोंके वशीभूत हो जायँगे)। इस नवीन युगमें नवीन शिक्षित महोदयोंकी आज नारी-शिक्षामें भी नवीनता दिखायी दे रही है।

वेत्रदण्डमादायाथ वाकीलत्वमेति वधू
राजकर्मचारितां च सेयमाप्यतेतमाम्।
सुन्दरीसमाजेनाथ स्वीयदलं संगृह्याथ
राजगृहद्वारे बलात्स्वत्वमीप्स्यतेतमाम्।
मञ्जुनाथ साम्प्रतं तु सैनिकत्वमाप्य सैव
शस्त्रास्त्रैः सुसज्जा समरार्थं नह्यतेतमाम्।
या वै गृहलक्ष्मीः पुरा मामण्डीति गेहमिदं
साम्प्रतं तु सैव रणचण्डी चित्र्यतेतमाम्॥

फैशनसूचक बेंत लिये आज नारी वकील बनती है, अदालत आदि महकमोंमें राजकर्मचारी (क्लर्क) बनती है। सुन्दरी-समाज आज अपना दल संगठन करके राजदरबारमें बलके साथ अपना स्वत्व माँगता है [सफ्रेजिस्ट सम्प्रदायका पुराना वृत्त स्मरण कीजिये]। अब शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर सैनिक बनी हुई युद्धके लिये कमर कस रही है। जो नारी पहले गृहलक्ष्मीके रूपमें घरको अलङ्कृत करती थी, उसीको अब रणचण्डीके रूपमें चित्रित कर रहे हैं।

भक्तिका तत्त्व और स्वरूप

(लेखक—श्रीमती विद्यादेवी महोदया)

जीवोंके प्रियतम सखा चिरबन्धु परमेश्वर रसरूप अर्थात् प्रेममय हैं, यथा श्रुतिमें—रसो वै सः, अर्थात् वह रसरूप ही है। जीव उन्हींका अंश है, इस कारण जीवमात्रके अन्तःकरणमें उस प्रेमका प्रवाह देखनेमें आता है। पशु-पक्षी आदि सभी जीव प्रेमकी अद्भुत चेष्टा करते हैं। मनुष्य पूर्णावयव जीव होनेसे उसके अन्तःकरणमें उस प्रेम-प्रवाहका विशेष विकास देखनेमें आता है। मनुष्य स्वभावतः प्रेमके आदान-प्रदानकी इच्छा रखता है। वह किसीको प्रेम करना चाहता है और किसीसे प्रेम कराना भी चाहता है। जिस किसी मनुष्य-स्त्री या पुरुषको इन दोनोंमेंसे किसी एकका या दोनोंका अभाव होता है, वह अपना जीवन अत्यन्त नीरस एवं दुःखमय अनुभव करता है।

सांसारिक आधारोंके भेदसे लौकिक जगत्में इस रसरूप प्रेमके तीन स्वरूप बनते हैं—जिनको श्रद्धा—प्रेम और स्नेह कहते हैं। अपने सम्माननीय पूज्यजनोंके प्रति प्रेमको श्रद्धा कहते हैं—जैसे पिता-माता, ज्येष्ठ भ्राता, आचार्य आदिके प्रति जो प्रेम होता है, वह श्रद्धा है। इसी प्रकार समवयस्कके प्रति जो प्रेम होता है—जैसे मित्रका मित्रके प्रति, पतिका पत्नीके प्रति और पत्नीका पतिके प्रति, उसको प्रेम कहते हैं। पुनः वही प्रेम-प्रवाह जब नीचेकी ओर प्रवाहित होता है—जैसे पुत्र-कन्याके प्रति, छोटा भाई, छोटी बहिन आदिके प्रति—तो उसको स्नेह कहा जाता है। संसारमें जितने प्रकारके प्रेम-सम्बन्ध हो सकते हैं, सब इन्हीं तीनोंके भीतर आ जाते हैं। यह सारा जगत् इन्हीं श्रद्धा, प्रेम और स्नेह-सम्बन्धके बन्धनमें जकड़ा हुआ है।

सांसारिक सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील, नाशवान् और क्षणस्थायी हैं; किसी भी वस्तुकी स्थिरता नहीं। मनुष्यके बिना जाने ही प्रत्येक वस्तुकी स्थितिमें परिवर्तन होता रहता है या वह वस्तु नष्ट होती रहती है। इस कारण इन स्नेह प्रेम और श्रद्धाके लौकिक आधारोंका भी नाश या परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इस परिवर्तन या नाशका असर मनुष्योंके अन्तःकरणको उथल-पुथल करनेवाला होता है, वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी और असह्य हो जाता है। अन्तःकरणके ऐसे अनेक घात-प्रतिघातजनित निराशा और दुःखके पश्चात् किसी भाग्यशाली व्यक्तिको ऐसे प्रेमपात्रकी खोज होती है, जो नित्य, निरामय, अविनाशी और परम प्रेममय और परमानन्दमय हो। ऐसा प्रेमपात्र एकमात्र परमात्मा ही है, जो प्रेममय है, जिसको प्रेम करनेसे कभी निराशा होती ही नहीं। इस तत्त्वको जानकर जब मनुष्य अपने हृदयके प्रेम-प्रवाहको अपने उस परम प्रियतम चिरसखा प्रभुके चरणों-

की ओर प्रवाहित कर देता है, तब उसी प्रेमको 'भक्ति' कहते हैं। इस प्रकार लौकिक सब प्रकारके प्रेमको श्रद्धा, प्रेम और स्नेह कहते हैं और वही प्रेम जब अनन्त प्रेमके उद्गमस्थान प्रभुके चरणोंकी ओर प्रवाहित होने लगता है तो उसीका नाम भक्ति है।

भक्तिके लक्षणके विषयमें भक्तिदर्शनके आचार्य देवर्षि नारद एवं महर्षि शाण्डिल्यने कहा है—

'सा कस्मिन् परमप्रेमरूपा।'

'सा परानुरक्तिरीश्वरे।'

अर्थात् 'परमेश्वरके प्रति प्रेमको ही भक्ति कहते हैं।' अद्वैतसिद्धिकार आचार्य मधुसूदनसरस्वतीजीने भी कहा है—

'द्रवीभावपूर्विका मनसो भगवदाकाररूपा सविकल्प-वृत्तिर्भक्तिरिति' अर्थात् 'भगवत्प्रेममें द्रव होकर भगवान्‌के साथ जो चित्तका सविकल्प तदाकारभाव है, वही भक्ति है।' इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें भी भक्तिका लक्षण भगवान्‌ने कहा है—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥

अर्थात् 'भगवान्‌का गुणगान सुनते ही भगवान्‌के प्रति समुद्रगामिनी गङ्गाकी अविराम धाराकी तरह चित्तकी जो अहैतुक अविच्छिन्न गति है, वही भक्ति है। इन विचारोंसे निश्चय होता है कि परम प्रेममय परमात्माके प्रति अहैतुक अविराम प्रेमका नाम ही भक्ति है।'

इस भगवत्प्रेमरूपिणी भक्तिके प्रधानतः दो भेद हैं—गौणी और परा। साधन-दशाकी भक्तिको गौणी और सिद्धि-दशाकी भक्तिको परा भक्ति कहते हैं। पुनः गौणी भक्तिके दो भेद हैं—वैधी और रागात्मिका। श्रीगुरुदेवके वचनों एवं शास्त्रकी सहायतासे प्रियतम प्रभुमें प्रेम उत्पन्न करनेके लिये जो साधन किया जाता है, उसको वैधी भक्ति कहते हैं। यथा दैवी-मीमांसादर्शनमें कहा है कि 'विधि-साध्यमाना वैधी सोपानरूपा'—विधिके द्वारा जिसका साधन होता है, उसको वैधी भक्ति कहते हैं; वह भक्तिके उन्नत अधिकार प्राप्त करनेके लिये सोपानरूपा है। वह वैधी भक्ति नौ अङ्गोंमें विभाजित है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(श्रीमद्भा० ७।५।२३)

अर्थात् 'श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—वैधी भक्तिके ये नौ अङ्ग हैं।' भगवान्‌की मधुर गुणावलियोंके श्रवणका नाम श्रवण है, यह वैधी भक्तिका प्रथम अङ्ग है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥

अर्थात् जहाँ सुधासिन्धुकी तरह भगवान्‌की मधुर गुण कथा नहीं प्रवाहित होती, जहाँपर भगवान्‌के प्यारे भागवत साधुगण नहीं निवास करते, जहाँ [illegible] नहीं होता, इन्द्रलोक होनेपर भी वह [illegible] नहीं है।

इस प्रकार वैधी भक्तिके इस प्रथम अङ्गका सेवन करते करते भक्तका हृदय धीरे धीरे श्रीभगवान्‌के मङ्गलमय चरण कमलोंकी ओर आकर्षित होने लगता है। भगवान्‌के लोकोत्तर मधुर चरित्रोंके कीर्तनका नाम कीर्तन है। इस विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा है—

सङ्कीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥
(१२।१२।४७)

अर्थात् भगवान्‌के अनन्त मधुर चरित्रोंके कीर्तन [illegible] अन्तःकरणमें उनकी मधुर मूर्ति विराजकर मनुष्योंके [illegible] सन्निहित सारे व्यसनोंको वैसे ही दूर कर देती है, जैसे सूर्य [illegible] अन्धकारको अथवा प्रचण्ड वायु मेघमालाओंको दूर करती है।

इस प्रकार पुण्यकीर्ति भगवान्‌की मधुर गुणकथाओंके [illegible] द्वारा भक्तके हृदयमें क्रमशः भगवत्प्रेमकी स्फूर्ति होने लगती है। वैधी भक्तिके तीसरे अङ्गका नाम स्मरण है। [illegible] प्रभुके मधुर भाव, मधुर मूर्ति तथा मधुर गुणोंके स्मरणका नाम स्मरण है। किसी न किसी प्रकार इनका स्मरण करते रहनेसे क्या फल होता है, इस विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा है—

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्॥
(१२।१२।५४)

अर्थात् भगवान‍्के चरणारविन्दोंके निरन्तर स्मरणसे सब अमङ्गलोंका नाश, शान्तिकी प्राप्ति, सत्त्वशुद्धि, परमात्म-भक्ति और विज्ञान-विरागसहित ज्ञानकी अभिवृद्धि होती है।

प्रभुके चरणकमलोंकी सेवाका नाम पादसेवन है। यह वैधी भक्तिका चौथा अङ्ग है। पादसेवनके द्वारा भक्तके अन्तःकरणमें अनेक जन्म-जन्मान्तरोंसे सञ्चित पापराशि एवं मलिनताका नाश होकर भगवत्प्रेमकी स्फूर्ति होने लगती है। वैधी भक्तिके पाँचवें अङ्गका नाम अर्चन है। भगवान‍्की मृण्मयी, पाषाणमयी अथवा धातुमयी स्थूलमूर्ति बनाकर अथवा हृदयमें भावमयी मूर्ति बनाकर बाह्य अथवा मानस-पूजनका नाम अर्चन है। इस विषयमें श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान‍्ने स्वयं आज्ञा की है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(९।२६)

अर्थात् 'पत्र, पुष्प, फल, जल—जो कुछ भी मुझे भक्तिके साथ भक्त अर्पण करता है, भक्तके अर्पण किये हुए उसको मैं ग्रहण करता हूँ।' इस अर्चनरूपी पूजाके द्वारा भगवत्-प्रसन्नता प्राप्त होती है और अन्तःकरणकी मलिन विषय-वासना परिशुद्ध होती है, जिससे भक्त भगवान‍्के चरणोंकी ओर अग्रसर होता है। वैधी भक्तिका छठा अङ्ग वन्दन है। भगवान‍्के चरणोंकी वन्दनाका नाम वन्दन है, इससे जीवभावके प्रधान अवलम्बन अहङ्कारका नाश होता है और उसमें भगवद्भावका विकास होता है। वैधी भक्तिके अन्तिम तीन अङ्ग दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन विशेषतः भाव-प्रधान हैं और प्रथम छः अङ्गोंसे उन्नत अधिकारके हैं। इनका पूर्णतः विकास तो रागात्मिका दशामें होता है, परंतु वैधीकी अन्तिम दशामें इनका अभ्यासरूपसे साधन किया जाता है। वैधी भक्तिके इन अङ्गोंका साधन करते करते अनेक जन्मोंके सञ्चित पापों एवं मलिनताके नाश होनेपर अन्तःकरण पवित्र और मलरहित हो जाता है, उसमें श्री-भगवान‍्के प्रति अविश्रान्त प्रेमका प्रवाह बहने लगता है एवं अन्तःकरण प्रियतम इष्टदेवका मन्दिर बन जाता है। उसमें यथार्थ भगवत्प्रेमका प्राकट्य होता है। भगवत्प्रेमकी इसी अवस्थाको 'रागात्मिका भक्ति' कहते हैं। भक्तिकी इस अवस्थामें भगवत्प्रेमपीयूष-निर्झरिणीकी अविराम अविच्छिन्न धारा परम भाग्यशाली भक्तके अन्तःकरणमें प्रवाहित होने लगती है। वह उसीमें उन्मज्जन-निमज्जन करने लगता है। रागात्मिका भक्तिके विषयमें भक्तिशास्त्रके आचार्य भगवान् अङ्गिराने दैवीमीमांसादर्शनमें कहा है—

रसानुभाविकाऽऽनन्दशान्तिदा रागात्मिका।

अपने ही दुःख-सुख, राग-द्वेष, मान-अपमान, लाभ-हानि आदि द्वन्द्वोंसे उत्पन्न उद्वेगोंकी अग्निमें मनुष्यका अन्तःकरण दिन रात झुलसता और जलता-भुनता रहता है; इस कारण उस परम आनन्द और शान्तिमय परम मङ्गलमय प्रभुका ही अंश होनेपर भी मनुष्य सदा अशान्ति और दुःख ही पाता है, क्योंकि अपने प्रियतम हृदयविहारी प्रभुसे वह दूर-दूर रहता है। जब वह इन द्वन्द्वोंसे चित्तको हटाकर अपने प्रेष्ठ आराध्यदेवता चिरसखासे सच्चा प्रेम करता है, तो उस रसिकराज आनन्दरूपके निकट पहुँचनेसे स्वतः वह आनन्द और शान्तिका अनुभव करने लगता है। जैसे ज्यों-ज्यों अग्निके पास पहुँचते हैं, त्यों-त्यों अग्निकी उष्णता अधिक अनुभव होती है, उसी कारण जितना-जितना भाग्य-शाली भक्त आनन्दकन्द भगवान‍्के चरणोंकी ओर बढ़ता है, उतना-उतना उसे आनन्द और शान्तिका अनुभव होने लगता है। रागात्मिका भक्तिके उदय होनेपर भक्तका हृदय भगवत्प्रेममें विभोर रहता है, उसको अन्य विषयकी सुधि नहीं रहती। इसी कारण देवर्षि नारदके मतमें अपने समस्त कर्मोंको प्रभुके अर्पण करना, भगवान‍्का एक क्षणके विस्मरण होनेसे अत्यन्त व्याकुल हो जाना ही भक्ति है। प्रभुसे मिलनेकी व्याकुलताकी दशामें भक्त कहता है—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतरा क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
(श्रीमद्भा० ६।११।२६)

'हे कमललोचन! जैसे छोटी चिड़िया, जिसको पंख नहीं जमे हैं, अपनी माताके दर्शनके लिये लालायित रहती है, जैसे क्षुधातुर छोटा बछड़ा माताका स्तन पीनेके लिये व्यग्र रहता है और जिस प्रकार प्रवासी पतिके दर्शनके लिये प्रियतमा पत्नीका हृदय सदा व्याकुल रहता है, उसी प्रकार मेरा मन तुम्हारे दर्शनके लिये सदा लालायित है।' रागात्मिका भक्तिका उदय होनेपर भाग्यवान् भक्तकी बाहरी चेष्टा कैसी होती है, इसके अनेक वर्णन श्रीमद्भागवतमें पाये जाते हैं—

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो
भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ।
औत्कण्ठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमान-
स्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते॥
(३ । २८ । ३४)

अर्थात् 'प्रियतम भगवान्के प्रति मधुर प्रेमका उदय होनेपर भाग्यवान् भक्तका हृदय द्रवीभूत हो जाता है, आनन्दसे अङ्ग पुलकित होने लगता है, वह गलदश्रु और गद्‌गदकण्ठ होकर सदा उन्हींके चरणकमलोंके मकरन्द-पानमें निमग्न रहता है।' उसकी बाह्य चेष्टा विचित्र होती है। वह भगवत्प्रेममें उन्मत्त होकर कभी रोता है, कभी हँसता है और गाने लगता है। भागवतमें भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च
मद्‌भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥
(११ । १४ । २४)

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥
(११ । ३ । ३२)

अर्थात् 'जिसकी वाणी गद्‌गद और चित्त द्रवीभूत हो जाता है, जो कभी बार-बार रोता है, कभी हँसता है, कभी निःसकोच होकर उच्चस्वरसे गाने लगता है और कभी नाच उठता है, ऐसा मेरा भक्त त्रिलोकको पवित्र करता है।' ऐसे अलौकिक व्यक्ति भगवान् अच्युतका ध्यान कर कभी रोते, कभी हँसते, कभी आनन्दित होते और कभी बड़बड़ाने लगते हैं तथा कभी नाचते, कभी भगवद्गुण-गान करते और कभी उन अजन्मा प्रभुकी लीलाओंका चिन्तन करते हैं और कभी परम उपरतिको प्राप्त करके मौन हो जाते हैं।'

ऐसा भगवान्‌का प्यारा भक्त अपने प्रेष्ठ भगवान्‌के अतिरिक्त किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता। यथा, श्रीमद्‌भागवतमें—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥
(११ । १४ । १४)

भगवान् कहते हैं कि 'जिसने अन्तःकरणको मुझमें ही अर्पण कर दिया है, वह मुझे छोड़कर न ब्रह्म-पद, न इन्द्र-पद, न सार्वभौम राज्य, न समस्त भूमण्डलका आधिपत्य, न योगकी सिद्धियाँ और न मोक्षकी ही इच्छा करता है।'

रागात्मिका भक्तिकी दशामें भगवान्‌के साथ भक्तकी इतनी घनिष्ठता हो जाती है कि उसका काम, क्रोध, अभिमान, अहङ्कार—सब भगवान्‌के प्रति ही होता है। भक्तवत्सल प्रेममय प्रभु भक्तके अधीन होनेसे उन सब मान आदिके भावोंको आनन्दके साथ सहन करते हैं। भक्तकी इसी अवस्थामें भाग्य-वान् भक्तको भगवान्‌के भावमय सगुण रूपोंके दर्शन भी होते हैं। भक्त सूरदासको उनके इष्टदेवका दर्शन हुआ था। जिस समय भगवान्‌ने सूरदाससे अपना हाथ छुड़ा लिया था, उस समय उन्होंने बड़े अभिमानके साथ कहा था—

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात् कृष्ण ! किमद्भुतम् ।
हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते ॥

'हे भगवन् ! तुम हाथ छुड़ाकर जाते हो, इसमें तुम्हारा क्या पौरुष है, यदि हृदय छोड़कर जा सको, तभी तुम्हारा पौरुष मानूँगा।' इसी प्रेममूलक जोर और अहङ्कारके साथ भक्त उदयनाचार्यने भी कहा था—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि मामवज्ञाय वर्तसे ।
उपस्थितेषु बौद्धेषु मदधीना तव स्थितिः ॥

'हे प्रभो ! इस समय ऐश्वर्यके मदमें मत्त होकर तुम मेरी अवज्ञा करते हो, दर्शन नहीं देते, किंतु स्मरण रक्खो, जब बौद्ध तुम्हारी सत्ताके नाशके लिये तत्पर होंगे, तब तुम्हारी स्थिति मेरे अधीन होगी।

भगवान्‌के ऐसे अनन्य भक्त, जिनके जीवन, धन, सर्वस्व भगवान् ही हैं, अपनी भक्तिके द्वारा सर्वशक्तिमान् सर्व-नियन्ता और अखिल ब्रह्माण्डके स्वामी भगवान्‌को अपने अधीन कर लेते हैं। भागवतमें—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥
नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥
ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥
मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥
(९ । ४ । ६३-६६, ६८)

श्रीभगवान् कहते हैं कि 'मैं भक्तोंके अधीन हूँ। मेरे हृदय-पर भक्तोंका सम्पूर्ण आधिपत्य है; मेरे भक्त साधुओंके बिना मैं अपने आत्मा तथा परमा श्रीको भी नहीं चाहता। मैं साधुओंकी परम गति हूँ। जिन्होंने स्त्री-पुत्र-परिवार-धनादि सबका त्याग कर एकमात्र मेरी शरण ली है, उनको मैं कैसे त्याग सकता हूँ। जिस प्रकार सती स्त्री अपने अनन्य प्रेमके द्वारा पतिको अपने वशमें कर लेती है, उसी प्रकार समदृष्टि-परायण साधुगण मुझमें हृदयको बाँधकर भक्तिके द्वारा मुझे अपने वशीभूत कर लेते हैं। साधु मेरे हृदय हैं और मैं साधुओंका हृदय हूँ। वे मुझसे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते और मैं उनके सिवा और कुछ नहीं जानता।'

इस प्रकार रागात्मिका भक्तिके द्वारा भगवत्प्रेममें सदा तल्लीन रहनेसे भाग्यवान् भक्तका हृदय जब सम्पूर्ण रूपसे शुद्ध हो जाता है, उसके सब कलुष-कालिमा विदूरित हो जाते हैं, तब स्वतः भक्तिका अन्तिम अधिकार परा भक्तिका उदय होता है। यथा—

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद्भक्त्या विनाऽऽशयः॥
यथाग्निना हेम मलं जहाति
ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय
मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम्॥
यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ
मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं
चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम्॥
(श्रीमद्भा० ११। १४। २३, २५, २६)

'बिना भक्तिके द्वारा रोमाञ्च हुए, बिना चित्तके द्रवीभूत हुए, बिना आनन्दाश्रुओंके उद्रेक हुए अन्तःकरण कैसे शुद्ध हो सकता है। जैसे अग्निमें तपानेसे सुवर्ण मैलको त्याग देता है और अपने निर्मल स्वरूपको प्राप्त करता है, उसी प्रकार मेरे भक्तियोगके द्वारा आत्मा कर्माशयसे मुक्त होकर मुझको प्राप्त हो जाता है। जैसे-जैसे मेरी परम पवित्र कथाओंके श्रवण और कीर्तनसे अन्तःकरण परिमार्जित होता जाता है, वैसे-वैसे वह अञ्जनयुक्त नेत्रोंके समान सूक्ष्म वस्तुका दर्शन करता है।'

परा भक्तिकी अवस्थामें ज्ञानकी पूर्णता होती है। इस अवस्थामें ज्ञानी भक्त भगवान्के चिन्मय रूपका प्रत्यक्ष दर्शन कर कृतकृत्य हो जाता है। श्रीभगवान्ने भगवद्गीतामें कहा है—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥
(१०। ९, १०, ११)

'जिन्होंने मन, प्राण—सब मुझमें ही लगा रक्खा है, जो परस्परमें मेरी ही कथा एवं कीर्तन कर संतुष्ट एवं आनन्दित होते हैं, सदा मुझमें ही आसक्तचित्त प्रेमपूर्वक मेरा भजन करनेवाले उन भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वह मुझको प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे भक्तोंपर कृपा करनेके लिये मैं उन्हींके आत्मभावसे अवस्थित होकर ज्ञानरूप उज्ज्वल प्रकाशके द्वारा अज्ञानरूप अन्धकारका नाश करता हूँ।'

इस प्रकार भगवत्कृपासे परा भक्तिको प्राप्त ज्ञानी भक्त सब समय, सब अवस्था एवं सब वस्तुओंमें प्रभुको ही देखता है, प्रभुसे भिन्न और कोई वस्तु उसे दिखायी नहीं देती। अतः वह समदृष्टि हो जाता है। यही जीव और शिवका, भक्त और भगवान्का, आत्मा और परमात्माका अनन्त मधुर मिलन है। यही भक्तिकी पराकाष्ठा, यही ज्ञानकी पराकाष्ठा है। इसके अनन्तर और कुछ प्राप्तव्य अवशेष नहीं रहता। अनन्तकालका प्रेमका प्यासा, आनन्दका भूखा जीव परम प्रेममय परमानन्दमय प्रभुके साथ एक होकर अनन्त आनन्द और परम शान्तिको प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है। इसी अवस्थाको लक्ष्यकर श्रीगीतामें कहा है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥
(६। २२)

अर्थात् 'जिसको लाभकर अन्य किसी लाभको उससे अधिक नहीं समझता और जिसमें रहकर गुरुतर दुःख-द्वारा भी विचलित नहीं होता।'

जिसने अपने अन्तिम प्राप्तव्य प्रियतमको पा लिया है, उसको इन्द्रिय एवं विषयोंके सम्बन्धसे होनेवाले हर्ष, द्वेष, शोक, इच्छा आदि कैसे विचलित कर सकते हैं। भगवद्भाव-प्राप्त ऐसे भक्तोंके बाहरी लक्षण श्रीभगवद्गीतामें मिलते हैं—

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥
(१२ । १६, १७)

अर्थात् 'जो किसी वस्तुकी स्पृहा नहीं रखता, बाहर-भीतरसे पवित्र है, सामने आये हुए कर्तव्यको आलस्य छोड़कर सम्पन्न करता है, किसी विषयमें पक्षपात नहीं करता, व्यथारहित है तथा अपनी इच्छासे किसी कार्यका प्रारम्भ नहीं करता, ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय है । जो प्रिय-लाभमें हर्ष और अप्रिय-प्राप्तिमें द्वेष नहीं करता, न शोक करता है, न इष्ट-प्राप्तिकी इच्छा करता है, ऐसा शुभ-अशुभ दोनोंका त्याग करनेवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।' श्रीमद्भागवतमें श्रीभगवान्‌ने ऐसे प्रिय भक्तके सम्बन्धमें श्रीमुखसे कहा है—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥
निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः
शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः ।
कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्
तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥
(११ । १४ । १६, १७)

अर्थात् जो 'निरपेक्ष, शान्त, निर्वैर और समदर्शी मुनि (जिसका मन सदा भगवान्‌में तल्लीन है) है, उसके पीछे-पीछे मैं इसलिये फिरता हूँ कि उसकी चरण-रेणुसे पवित्र हो जाऊँ । मुझमें अनुरक्तचित्त, अकिञ्चन, शान्त, सर्वभूतहितकारी, कामनारहित महात्मागण जिस आनन्दका अनुभव करते हैं, निरपेक्षतासे ही प्राप्त होनेवाले उस परम सुखको अन्य लोग नहीं जानते ।'

भक्तिकी यह सर्वोच्च अन्तिम अवस्था प्रभुकी कृपासे ही भाग्यवान् भक्तको प्राप्त होती है । इसके प्राप्त होनेके पश्चात् पुनः कुछ भी प्राप्तव्य अथवा ज्ञातव्य अवशिष्ट नहीं रह जाता है ।

मनुष्यकी आध्यात्मिक उन्नतिके तीन मार्ग वेद-शास्त्रोंमें निर्धारित हैं—भक्ति, ज्ञान और कर्म । श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌ने श्रीमुखसे कहा है—

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥

अर्थात् 'मनुष्योंके कल्याणके लिये ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग—ये तीन योग मैंने कहे हैं, इनके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।' इन तीनोंमें ज्ञानका मार्ग अत्यन्त कठिन, दुःसाध्य और अधिकारापेक्ष है । उसमें पतन होनेकी आशङ्का है । कर्ममें भी अनेक प्रकारके विधि-निषेध और बाहुल्यजनित असुविधाएँ हैं । परन्तु भक्तिका मार्ग ऐसा सरल, सरस एवं सुगम है जिसके लिये भगवान् हाथ उठाकर कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(गी० १८ । ६६)

अर्थात् 'सब धर्मोंको छोड़कर एकमात्र मेरी शरणमें आओ, मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त करूँगा, शोक मत करो।' इसमें न अधिकारकी अपेक्षा है, न सामर्थ्यकी अपेक्षा है । केवल दीन होकर सच्चे हृदयसे प्रभुके शरणमें जानेकी आवश्यकता है । किसी भी वर्णका मनुष्य—स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध भगवान्‌का भजन करके भक्ति द्वारा उनको प्राप्त कर सकता है । भगवान्‌ने गीतामें कहा ही है—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
(९ । ३२)

अर्थात् 'भगवान्‌का आश्रय लेकर पापयोनि स्त्री, शूद्र एवं वैश्य—सभी भगवत्-प्राप्तिरूपी परमगतिको प्राप्त करते हैं।' भगवान्‌ने गीतामें और भी कहा है—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
(९ । ३०, ३१)

'अत्यन्त दुराचारी भी यदि अनन्य भक्तिसे मेरा भजन करे, तो उसे साधु ही मानना चाहिये, क्योंकि उसने अपना सत्य निश्चय कर लिया है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वती शान्तिको प्राप्त करता है । हे अर्जुन ! तुम निश्चय जानो कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होगा ।'

यही भक्तिका अलौकिक स्वरूप एवं माहात्म्य है ।

भारतीय गृहोंसे लुप्त होती हुई गृहलक्ष्मियाँ

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

अनादिकालसे नारी मनुष्यताके इतिहासकी प्रधान नायिका है। उसको लेकर राष्ट्र उठे हैं और गिरे हैं; उसके आगे-पीछे धर्मका अभ्युदय और पतन हुआ है; उसके साथ मानवता हँसी और रोयी है और साहित्य उसको पाकर धन्य हुआ है और दलदलमें भी गिरा है। मकड़ीके जालेकी भाँति विश्वका इतिहास नारीके केन्द्र-बिन्दुके चारों ओर फैलता और सिकुड़ता रहा है। आज भी नारीको लेकर संसारमें एक आन्दोलन, एक हलचल है। उसको देखकर हम आधुनिक सभ्यता, आधुनिक समाजके विषयमें एक राय कायम कर सकते हैं। सदा ही वह अपने युगकी सभ्यताका प्रतीक बनकर रही है; क्योंकि वह महाप्रकृतिकी सर्जनाशक्तिका प्रतीक है। इसलिये उसमें जो भाव उदय होते हैं, उसके हृदयमें जो भाव-राशि एकत्र होती है- वही समाजमें प्रतिबिम्बित होती है।

इस दृष्टिसे जब हम वर्तमान नारीको देखते हैं, तब आश्चर्य-विमूढ होना पड़ता है। उसका यह दावा कि वह बन्दिनी प्राचीनाओंके शवपर खड़ी नूतन स्वतन्त्रताका संदेश देने आयी है, सुनता हूँ तो हँसी आती है। यह प्रचारका, नारोंका युग है। मानवका विचार और चिन्तना आज शिथिल पड़ गयी है। इसलिये स्वतन्त्रताका नारा जो कुछ देता है वह स्वतन्त्रता नहीं, बल्कि स्वतन्त्रताका झूठा आभास भर है। अन्यथा, क्या सचमुच आजकी नारी पहलेसे अधिक स्वतन्त्र है ? क्या आज उसमें नारीत्व अधिक विकसित है ? नहीं; आजकी स्वतन्त्र कही जानेवाली नारी, जो अधिकांशमें केवल रमणी बनकर रह गयी है, अपनी बाह्य स्वतन्त्रता, अपने नागरिक अधिकार, अपनी सभा-सोसाइटियोंके बावजूद एक विशेष दृष्टिकोणके प्रचारक पुरुषवर्गके हाथका खिलौना-मात्र है। वह जोरोंके साथ दावा तो जरूर करती है कि वह पुरुषके मनोरञ्जनकी सामग्री अब नहीं है; पर वह जरा विचार करे तो देखेगी कि आज वह पहलेसे कहीं अधिक पुरुषके मनोरञ्जनकी सामग्री बन गयी है। आधुनिक सभ्यताके जितने भी तीर्थस्थान हैं (और सभ्यताका पता उसके तीर्थस्थानोंसे ही लगता है) यानी क्लब, सिनेमा, कालेज, ब्यूटी शाप्स या प्रसाधनगृह, प्रदर्शनियाँ या जो भी त्यौहार या मेले हैं— जैसे 'फैंसी फेयर', फ्लावर शो, बेबी शो, पार्टियाँ इत्यादि, उनमें उसे देखिये। कदाचित् ही एक ऐसी मिलेगी जो सादगी, शील, गरिमा और गौरवकी प्रतीक हो; इसके विरुद्ध वह प्रसाधन-द्रव्योंसे दबी हुई, पुरुषकी आँखोंका शिकार और पुरुषका अपनी आँखोंसे शिकार करनेवाली, नाज-नखरोंसे पूर्ण, मानो रूपके हाटमें अपना स्थान सिद्ध करनेको विकल है। ऐसी जगहोंमें ऐसा सौन्दर्य कहाँ दिखायी देता है, जिसके आगे आँखें झपक जायँ; तेज और चरित्र बलसे दमकता सौन्दर्य, जिसके प्रभावसे विषयोन्मत्त पुरुषोंकी वासना शान्त हो जाती है; या कम-से-कम वह सौन्दर्य, जो मनको कुरेदता नहीं, वासनाएँ नहीं उत्पन्न करता, मनको अशान्त नहीं करता, प्रभुके अमित सौन्दर्यकी प्रतिकृति-सा हृदयमें उस नारीकी महत्ता और श्रेष्ठताका बोध उत्पन्न करता है। प्रदर्शनियोंमें चले जाइये; देखिये, चलता-फिरता रूपका एक बाजार सजा है। लोग वहाँ भारतीय उद्योग-कला-कौशलके नमूने देखने जाते हैं ? यदि कोई कहता है तो झूठा है। लोग वहाँ रूप-सी अप्सराओंको देखने जाते हैं। लोग कहते हैं और मैं सुनता हूँ—तीन आने पैसोंमें अच्छी तफरीह हो जाती है। यदि एक साल स्त्रियाँ इन प्रदर्शनियोंका बहिष्कार कर दें तो वे ठप हो जायँ। आखिर वे इतने शृङ्गार, इतने बाहरी सज-धजका आश्रय क्यों लेती हैं ? किन्हें आकर्षित करना उनका लक्ष्य होता है ? क्या वे अंदरसे तृप्त, किसी दूसरेकी ओर न देखकर जो कुछ उनका है उसमें तन्मय नारियोंके उदाहरण हैं ? स्पष्ट है, यह सब पुरुषोंको आकर्षित अथवा कम-से-कम चमत्कृत करनेके लिये है। भले वे अज्ञात भावना-वश ऐसा करती हों।

इसीका परिणाम यह हुआ है कि विवाहित जीवनमें सर्वत्र आज रूप-सी रमणियोंकी माँग बढ़ रही है। विवाहके जितने विज्ञापन आजकल पत्रोंमें निकलते हैं, उन सबमें लड़कीके सुन्दरी, चम्पकवर्णा होनेकी माँग की जाती है और शिक्षित समाजमें यह माँग बहुत ज्यादा है। स्पष्ट है कि स्वतन्त्र और सभ्य आधुनिकाओंने पुरुषमें रूप-लिप्साकी जबर्दस्त प्यास पैदा कर दी है। आज एक कर्कशा, अवगुणों-से पूर्ण, आलसी पर रूपवती कन्याके सरलतापूर्वक विवाहित हो जानेकी उस कन्याकी अपेक्षा कहीं अधिक सम्भावना है जो स्वस्थ है, परिश्रमी है, सुशीला है पर रूपवती नहीं। आजकलकी सभ्यताका समस्त जोर बाह्य आलम्बनोंपर है।

इसीलिये वह दिन-दिन दिखाऊ, प्रदर्शनात्मक होती जाती है; और चूँकि जीवनके कठोर कर्मक्षेत्रमें ये आलम्बन ज्यादा दिन टिक नहीं सकते (वहाँ तो आन्तरिक गुण ही काम आते हैं), इसलिये कुछ ही समयमें विवाहित जीवन असन्तुष्ट, चिड़चिड़ा, एक दूसरेके प्रति शोषण और उत्पीडनसे भरा और हाहाकारपूर्ण हो उठता है। कल्पनाकी रंगीनियाँ, जो कविताके प्रतीकोंसे पूर्ण दीखती थीं और जमीनपर पाँव पड़ने न देती थीं, जीवनकी कठोर चट्टानोंसे टकराकर नष्ट हो जाती हैं।

स्पष्ट है कि इस वृत्तिके कारण नारी पुरुषकी अपेक्षा अधिक घाटेमें रहती है। रूप और विलासका खेल अधिक दिन नहीं चल सकता; पर जब पुरुषको चाट लग जाती है, तब उसका नियन्त्रण कैसे किया जा सकता है? नियन्त्रण-जैसी कोई चीज भी तो आजकी सभ्यता बर्दाश्त नहीं करती। इसलिये हम देखते हैं कि जो नारियाँ स्वतन्त्रताका नारा जितनी तेजीसे लगाती हैं और जो अपने मनसे युक्त चुनाव करती हैं, उनमेंसे अधिकांश कहीं अधिक असन्तुष्ट, अतृप्त देखी जाती हैं—कुछ ही दिनोंमें प्रायः उनका स्वप्न भंग हो जाता है। पर अपनी स्वतन्त्रताके झूठे दावेके कारण वे रोग और समस्याके मूल कारणोंका विचार फिर भी नहीं कर पातीं; बल्कि समस्त दोष पुरुषोंके सिर मढ़कर, उन्हें स्वार्थी और पीड़क कहकर बैठ जाती हैं।

इससे समस्या हल तो होती नहीं, और जटिल होती जाती है। जैसे मजदूरों और पूँजीपतियोंके अलग-अलग वर्ग बनते जाते हैं, उनमें वर्ग भावनाका तेजीसे प्रचार किया जा रहा है, वैसे ही नारी अपना एक अलग वर्ग बनाती जा रही है। स्त्रियोंकी पत्र-पत्रिकाएँ देखिये; पुरुषको विरोधी, शत्रु, विपक्षी समझकर अधिकांश लेख लिखे जाते हैं। जैसे कठघरेमें खड़े अभियुक्त पुरुषसे जवाब तलब किया जा रहा हो और उसे अधम, अन्यायी कहनेसे नारीको वह सन्तोष मिल रहा हो जो प्रतिपक्षीको अपमानित कर प्राकृत जनोंको होता है।

कहाँ एक जीवनव्यापी सहयोगकी साधनाका जीवन, जहाँ दोसे एक हो जाने और एकत्वकी परम अनुभूतिके क्षणोंमें नवीन जीवनकी सृष्टि करनेकी प्रेरणा, कहाँ यह वर्ग-चेतनाका विकास, पीड़क और पीड़ित, मालिक और दासीके रूपमें बँटवारा और एक दूसरेके प्रति प्रतिहिंसासे पूर्ण मन! क्या इसी नींवपर सहयोगके जीवनका निर्माण होगा? क्या इसी नींवपर नवीन समाज-व्यवस्थाका स्वर्ग खड़ा किया जायगा?

पर यह स्वर्ग केवल मृग मरीचिका है, कल्पना है, जिसका प्रलोभन देकर स्वार्थी, आधुनिक सभ्यताकी [illegible] भावनामें डूबे लोगोंने नारीको गुमराह—पथभ्रष्ट—कर दिया है। अधिकार और स्वतन्त्रता! कैसे मोहक, मायावी, [illegible] फँसाने और नशेमें विस्मृत कर देनेवाले शब्द हैं ये! इन्हीं द्वारा हर प्रकारके यम नियम और नियन्त्रणोंसे पुरुषने ही नारीको मुक्त किया? क्यों? इसलिये कि उसे नारीके उसका गौरव, उसका मातृत्व बोध छीन लेना था और उसे रमणी बनाना था; इसलिये कि युग-युगके संस्कारोंसे [illegible] नारीके पवित्रताका कवच टूट जाय और वह पुरुषके मनोरंजन और विलासका केन्द्र बनकर रहे, भले उसके [illegible] कहकर गालियाँ ही देती और अपनी [illegible] देती रहे। अपने सम्पूर्ण विरोधों और [illegible] आधुनिक नारी पुरुषके वैभव विलासकी प्रदर्शिनी और ड्राइंग रूमकी शोभा भर है।

बात यह है कि जीवन तर्कों और प्रदर्शनोंसे [illegible] नहीं उतारा जा सकता। वह सच्ची [illegible] और कठोर तथा दीर्घकालिक साधनाओंसे ही [illegible] सकता है। भारतीय गृहजीवनका निर्माण इसी प्रकार किया गया था। इसीलिये सम्पूर्ण हिन्दू [illegible] उसीपर आश्रित थी। वह जीवनको उदात्त [illegible] करता था, वह भोगकी छूट देता था [illegible] समाजके रक्षण और संवर्धनमें वह सहायक था, [illegible] विकास क्रमकी अगली [illegible]। इसीलिये हमारी सम्पूर्ण [illegible] मातारूप ही आदर्श समझा गया। [illegible] इसी मूल धारासे ओतप्रोत है। प्राचीन [illegible] देखिये—शान्ति और गौरवसे पूर्ण [illegible] पुष्ट भरे हुए स्तन, [illegible]। मातृत्वकी महिमा नारीको [illegible] भोगके ऊपर उठाती थी। [illegible] न हो, या शृङ्गार न हो, [illegible] जोर ([illegible]) नहीं था। [illegible] बीच भी नारी मातृत्व [illegible] थी। जीवन एक आदर्शसे [illegible] में [illegible] [illegible] शिथिल पड़ जाता था।

आज अविश्वास, खींचातानी और असहिष्णुताके वातावरणमें हम जीवन आरम्भ करते हैं। जीवन उस वृक्ष-के समान, जिसकी जड़ें भूमिकी गहराईमें प्रवेश न कर पायी हों, आँधीके झटकोंमें लड़खड़ाता और बहुधा गिर ही जाता है। जिंदगीके दो झटकोंमें आँखोंकी खुमारी और दिलके सपने उखड़ जाते हैं। फिर जीवनकी मंजिल कठिनाइयोंसे भर जाती है—पग-पगपर समस्याओं और जटिलताओंसे भरी हुई। कल जिस नारीकी वाणीमें कोयलकी कूक सुनायी पड़ती थी, आज उसमें कौआ काँव-काँव करता सुनायी पड़ता है; जो पत्नी हृदयकी आशा और आँखोंकी ज्योति थी, वह निराशाकी कठोर मंजिलकी तरह असह्य हो जाती है। जो पति जिंदगीका नशा बनकर आया था, वह खुमारीके बादकी थकान और शिथिलताके रूपमें आता है और जिसे देखकर पत्नीकी आँखें ठंडी और तृप्त हो जाती थीं, वह अब धूपसे जलते हुए लंबे चटियल मैदानकी तरह भयानक लगता है!

आज यही हो रहा है। इसीलिये नारी मानव-जातिकी माता होनेका अपना दावा छोड़ती जा रही है; सभ्यता और संस्कृतिके निर्माणमें उसका जो स्थान है, उससे हट रही है। वह अपनेको गलत देख रही, गलत समझ रही है और प्रतिक्रिया तथा प्रतिहिंसाकी धारामें बहती जा रही है। इस विस्मृता और मूर्छिता नारीको लेकर सभ्यताका मेरुदण्ड टेढ़ा हो रहा है। इस दृष्टिकोणके कारण दिलोंमें खिंचावट आयी है, अन्तर पड़ा है, खाई गहरी हुई है; जीवनमें संशय, हृदयमें उलझन और दिमागमें खीझ एवं अतृप्ति आयी है—जिससे नारीका जीवन न केवल दुखी बल्कि अशक्त और अपदार्थ भी होता जाता है; गृह, सन्तति और समाजके शासन और नियमनकी शक्ति वह खो बैठती है। भले वह ऊपर-से हँसे, उत्सवोंमें शामिल हो और अपनी स्वतन्त्रता एवं सुखकी घोषणा करती फिरे; पर अंदरसे खोखली, बिल्कुल खोखली हो जाती है—उस सूखी लकड़ीके समान, जिसकी आकृति ऊपरसे ज्यों-की-त्यों कायम हो पर जिसका गूदा सब-का-सब घुनके पेटमें चला गया हो और कोई नहीं जानता कि कब कड़कड़ करके टूट जायगी और अभिनय समाप्त हो जायगा। ऐसी नारी अपने लिये और समाजके लिये एक भयानक खतरा है। अपनी हँसीमें भयंकर विष छिपाये हुए, अङ्गारोंके दाने बिखेरती हुई, अपने पद-चापसे दिशाओंको कम्पित करती हुई नारी!—नारी जो आस-पासके वातावरण-के अमृत-बिन्दुओंको सुखाकर उनकी जगह जहर उगलती चलती है; नारी जिसकी आँखोंमें सूनेपनकी आग है, जिसके दिलमें अभावका हाहाकार है, जिसकी लटोंमें काल-सर्पोंका फूत्कार है; नारी जिसका अन्तःस्रोत सूख गया है, वह अन्तःस्रोत जिसके कारण उसकी महत्ता और मृदुता है!

आश्चर्य है कि अपने त्याग, संयम और स्नेहसे नारीने मानव-सभ्यता तथा संस्कृतिके उत्थानमें जो गौरवपूर्ण पद प्राप्त किया था, उससे वह हटती जा रही है। अनादिकाल-से वह मानव-जातिमें संस्कृति-विकासका कार्य करती आयी है। उसके त्यागसे मानवमें पशुता पराजित हुई है। उसके प्रेमसे मानव धन्य हुआ है। उसके दान, त्याग और तपसे समाज बन सका है। जगत्में प्रेमके दानसे बढ़कर कुछ नहीं है। मूर्खतामें प्रायः कह दिया जाता है कि मानवमें हिंसाकी प्रवृत्ति स्वाभाविक है। तब क्या प्रेमकी वृत्ति अस्वाभाविक है? क्या हिंसा और शोषणसे ही जगत्का इतना विकास हुआ है; सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ उसीके सहारे पनपी और खड़ी हुई हैं? आखिर किसने आदमीको भेड़ियेसे आदमी बनाया? किसने उसमें ममत्व-का विस्तार किया? किसने उसमें श्रेष्ठताके संस्कार पैदा किये? क्या बिना प्रेमके दानके वह सब सम्भव होता, जो आजतक हो सका है? उस कालमें जब पुरुष जंगली, स्वच्छन्द, किसी-की न सुननेवाला; अपने अहङ्कारमें विस्मृत, बाधा-बन्ध-विहीन, अपने अस्त्रोंपर भरोसा करनेवाला था, किस अधिकार-से नारीने उसे पालतू बना लिया, किस शक्तिसे उसने उसे अनुरक्त किया? किसके कौशलसे उसने उन झोपड़ियोंका निर्माण किया, जिनमें विद्रोही और हिंसक मानवने अपनी सभ्यताके शैशवमें, सुखकी चंद घड़ियाँ बितायी होंगी? यह सब नारीने किस बलसे किया? किस अधिकारसे किया? प्रेमकी अमृत-शक्तिसे उसने हिंसक प्रवृत्तियोंको पराजितकर मानव-सन्ततिको श्रेष्ठ संस्कृतिकी दीक्षा दी। वह देखनेमें निरीह थी पर उसमें वास्तविक शक्तिका अधिष्ठान था; वह निरस्त्र थी पर उसके चारों ओर एक ऐसा ज्योति-मण्डल था, जिसके प्रकाशमें शस्त्राभिमानी घुटने टेक देते थे। वह परम रिक्ता थी पर उसका दान कभी समाप्त न होता था,—दिन हो, रात हो, अन्धकार हो, प्रकाश हो, दुर्दिन हो, सुदिन हो, उसकी स्नेहधारा सदैव बहती रहती थी। देखने-में दीना, पर उस वैभवसे मण्डित, जो संसारके परम वैभवके प्रलोभनोंको तुच्छ समझकर ठुकरा सकती है! आजकी सभ्य नारी उसका उपहास करती है! जैसे छाया या मृत्यु जीवन-का उपहास करे!

इतने आन्दोलन, इतना प्रचार, इतने उपदेश आज निरर्थक हो जाते हैं। हम सब सुनते हैं, पर सुनकर फिर ऊँघने लगते हैं। जैसे सब प्रयत्न मिलकर भी समाजके शवमें जीवन-संचार नहीं कर पा रहे हों! क्यों ऐसा है? आज धन और वैभवसे जगमगाते नगर हैं; धनपतियोंके प्रयत्नोंसे निकलनेवाला कारखानोंकी चिमनियोंका धुँआ आकाशमें भर गया है; प्रेस और पत्र दिन-दिन बढ़ रहे हैं; बालकी खाल निकालनेवाली शिक्षा भी हमें मिल रही है; समाज शरीरमें सर्वत्र आन्दोलन है, हरकत है, पर जीवनका देवता अपने कपाट बंद किये ऐसा सोता है कि हमारी आर्तवाणी उसतक नहीं पहुँच पाती। क्यों ऐसा है?

इसीलिये कि गृह, जो समाजके मूल घटक थे, आज बिखर रहे हैं। दीवारें हैं, कमरे हैं, बिजलियाँ हैं; पर गृहके प्राण, गृहकी लक्ष्मीका पता नहीं है। उसके अभावमें सब कुछ निष्प्राण है। गृहलक्ष्मियोंका लोप होता जा रहा है, इसलिये गृहोंका भी लोप हो रहा है। समाजकी नींव खिसक रही है और हम उसको टेक और चाँड दे रहे हैं। मैं तो फिर [illegible] और खोजता हूँ, उस मिटती हुई नारीको जो हमारी [illegible] दीपक लिये हमारे आगे-आगे चल रही थी। वे [illegible] गृह, जो अपनी दयनीय कृपणताके साथ भी [illegible] पहलेतक हमें जीवनकी निष्ठा देते थे, कठिनाइयोंकी [illegible] हमारा सहारा और प्रकाश थे, आज कहाँ हैं! वे [illegible] लक्ष्मियाँ और अन्नपूर्णाएँ आज कहाँ हैं, जिनके [illegible] आश्वासन अभावकी घड़ियोंमें हमें [illegible] और कठिनाइयोंकी चट्टानोंको तोड़नेका बल प्रदान करता था! [illegible] गन्ध, देहमें मातृत्वका गौरवभरे [illegible] —दीवारें जिसके हाससे चमकती हों, द्वार जिसके हाथसे आतिथ्यके सत्कारकी घोषणा करते हों, [illegible] लोग जिसके अञ्चल-दीपसे आलोकित हों और [illegible] स्नेह-रागसे रञ्जित हों, घरके अणु-अणुमें समायी हुई [illegible] और पत्थरको सजीव करनेवाली वह [illegible] कहाँ है!

शब्द-व्युत्पत्ति और नारी

(लेखक—पं० श्रीरामसुरेशजी त्रिपाठी, एम्० ए०)

प्रत्येक शब्दका इतिहास है। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है, शब्द अपने वाच्यके स्वरूपका भी संकेत करता है। अवश्य ही शब्दोंके अर्थमें समय-समयपर संकोच-विस्तार हुआ करते हैं और शब्द कभी-कभी अपने मूल अर्थसे बहुत दूर जा पड़ते हैं; पर इस परिवर्तनसे मूल अर्थकी विशेषता नष्ट नहीं होती। नारी-अर्थके बोधक शब्द भी नारीके स्वरूपपर बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं। कवियोंकी दृष्टिमें नारी माया-सी दुर्बोध-प्रकृति-सी बहुरूपी, साथ ही सहानुभूति-सी सरल रही है। इन विभिन्न रूपोंके कारण ही उसे रहस्यमय कोटिमें डाल दिया गया है। पर यदि शब्दोंके विकासके साथ मानव सभ्यताके विकासका अध्ययन किया जाय तो जान पड़ेगा कि नारी उतने ही अंशमें रहस्यमयी है, जितने अंशमें संसारकी कोई भी वस्तु। विषम समाजमें विषम स्थिति होनेके कारण नारीके विभिन्न स्वरूप होते गये। मानवका नारीके साथ शारीरिक, रागात्मक और धार्मिक सम्बन्ध होनेके कारण भी नारीके स्वरूप भेद हुए और उनके सूचक शब्दोंकी अलग-अलग सृष्टि हुई। अवश्य ही ये भेद-प्रभेद भावुकतासे अतिरञ्जित होकर इतने बढ़ गये हैं कि शब्द-व्युत्पत्तिके सहारे नारीके स्वरूपको समझना सरल नहीं है। ॐसे संपूर्ण सृष्टि ध्वनित हो जाय तो हो जाय, सच्चिदानन्दसे [illegible] तो झलक जाय; किंतु किसी एक शब्दसे [illegible] अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। फिर भी जिस तरह [illegible] से ओस बिन्दुमें संपूर्ण सूर्यमण्डल प्रतिबिम्बित हो जाता है उसी तरह नारी-वाचक छोटे-से छोटे शब्दोंमें भी उसकी [illegible] उसके गुण, उसकी क्रिया अथवा [illegible] ही [illegible] हैं। साथ ही नाम रखनेवाले समाजकी भी मानसिक स्थिति [illegible] उन्नति और सांस्कृतिक चेतना भी व्यक्त हो जाती है। और इसीलिये, नारी शब्दके कुछ पर्यायवाची शब्दोंकी [illegible] के सहारे नारीके कुछ सामान्य और कुछ [illegible] प्रकाश डालनेका प्रयत्न इस लेखमें किया गया है।

मेना(वैदिक)-ऋग्वेदमें 'मेना' शब्द नारी [illegible] वाचक है। महर्षि यास्कने [illegible] है—'मानयन्ति एनाः (पुरुषाः)' ([illegible]); पुरुष इनका आदर करते हैं। [illegible] लौकिक (क्लासिकल) संस्कृतमें मेना शब्द [illegible] मेना=मना=मान्या। [illegible] रूपमें मिलता है। [illegible]

ग्नाः (वैदिक)–'ग्ना' शब्द भी ऋग्वेदमें स्त्री-अर्थका बोधक है। ऋग्वेदमें यह शब्द प्रायः देवपत्नियोंके लिये ही आता है; किंतु ब्राह्मण ग्रन्थोंमें सामान्य स्त्रीके लिये प्रयुक्त है। यास्कने इसका अर्थ किया है—'ग्ना गच्छन्ति एनाः' (निरुक्त ३। २१। २)। दुर्गाचार्यने इसका भाव स्पष्ट करते हुए लिखा है कि स्त्रीको ग्ना इसलिये कहते हैं कि पुरुष संसर्गकी कामनासे इनके पास जाते हैं, गमन करते हैं। संस्कृतमें ग्ना शब्दका व्यवहार नहीं मिलता। किंतु संस्कृतका 'गम्या' शब्द इसी ग्नाका विकसित रूप है। ग्ना=गमा=गम्या। यह गम् धातुसे बना है। अवस्तामें 'घेना' या 'गेना' शब्द स्त्रीके लिये प्रयुक्त हुआ है, जो ग्नाका ही परिवर्तित रूप है। जर्मन भाषाका स्त्री-अर्थका वाचक गुने (Gune) शब्द भी ग्नासे ही बना है। ग्रीकके गॉमाए् (विवाह) शब्दमें भी ग्नाकी गन्ध है।

स्त्री–नारीके लिये सबसे अधिक प्रचलित शब्द 'स्त्री' है। वैदिक साहित्यमें यह प्रसिद्ध हो चुका था। पाली और प्राकृतके युगमें सजीव रहा। अपभ्रंशकाल इसे अपने स्थानसे डिगा नहीं सका। और आज भारतकी सभी प्रसिद्ध भाषाओंमें इसकी अखण्ड परम्परा सुरक्षित है। 'स्त्री' शब्द 'स्त्यै' धातुसे बना है। यास्कके मतमें स्त्यैका अर्थ लज्जासे सिकुड़ना है। स्त्रीको स्त्री इसलिये कहते हैं कि वह लजाती है। 'स्त्रियः स्त्यायतेः अपत्रपणकर्मणः' (निरुक्त ३। २१। २)। दुर्गाचार्यने इसकी टीकामें लिखा है—'लज्जार्थस्य लजन्तेऽपि हि ताः।' अर्थात् नारीकी स्त्री संज्ञा उसके लज्जाशील होनेके कारण है। परंतु पाणिनिके धातुपाठमें स्त्यैका अर्थ लजाना नहीं मिलता। धातुपाठके अनुसार स्त्यैका अर्थ है शब्द करना तथा इकट्ठा करना। ('स्त्यै शब्दसंघातयोः' धा० पा० १। ९३५)। इस धातुपाठके आधारपर यह कहा जा सकता है कि नारीका स्त्री नाम उसके बक्वादी स्वरूपके कारण पड़ा। स्त्रियाँ पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक बातचीत करनेवाली, गप्प लड़ानेवाली होती हैं, ऐसी जन-श्रुति है, किंतु किसी भी आचार्यने स्त्रीकी उपर्युक्त व्याख्या नहीं की है। पतञ्जलिने अष्टाध्यायीके 'स्त्रियाम्' सूत्रके भाष्यमें स्त्री शब्दपर कई पहलुओंसे विचार किया है। लोकमें कुछ शारीरिक चिह्नोंको देखकर 'स्त्री' कहा जाता है। ये चिह्न हैं स्तन और केश (भग)। 'स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः' (पा० ४। १। ३ पर म० भाष्य)। किंतु यह स्थूल रूप है। अतः पतञ्जलिने दूसरी जगह पर स्त्यै धातुको ही आधार माना है। पतञ्जलिके मतसे स्त्रीका अर्थ है—'स्त्यायति अस्यां गर्भ इति स्त्री'। नारीको स्त्री इसलिये कहते हैं कि गर्भकी स्थिति (पिण्ड) उसके भीतर होती है। क्षीरस्वामीने भी यही अर्थ किया है। पतञ्जलिने स्त्री शब्दकी एक दूसरी व्युत्पत्ति दी है। वह है—'शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाना गुणाना स्त्यानं स्त्री।' शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध–इन सबका समुच्चय (?) ही स्त्री है। महाभाष्यके प्रसिद्ध टीकाकार कैयटने स्त्यानका अर्थ तिरोभाव किया है। कैयटके मतसे शब्द, स्पर्श आदि सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके परिणाम हैं। इन गुणोंका आविर्भाव पुंस्त्वका, तिरोभाव स्त्रीत्वका और स्थिति (साम्यावस्था) नपुंसकत्वका द्योतक है। कैयटने यह स्पष्ट नहीं किया है कि आविर्भाव, तिरोभाव आदिकी प्रक्रिया क्या है। वे इन अवस्थाओंको केवल शब्दगोचर मानते हैं अर्थात् किस वस्तुमें गुणोंका उपचय या अपचय है, यह उसके वाचक पुंलिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग शब्दसे जाना जा सकता है। नागेशने कैयटके सिद्धान्तका समर्थन किया है। सांख्यदर्शनके अनुसार प्रत्येक वस्तुमें तीनों गुण हैं। वे विषम परिमाणमें हैं। तीनोंमेंसे कोई एक प्रधान और शेष दो अप्रधान होते रहते हैं। यह तो ठीक है; किंतु तीनोंका एक साथ आविर्भाव या तिरोभाव माननेकी आवश्यकता क्या है? उनके उपचय या अपचयको मापनेका स्थिर-बिन्दु क्या है? फिर तीनों गुणोंकी साम्यावस्था तो मूल प्रकृतिमें ही सम्भव है। पर कैयटके मतमें जिन वस्तुओंके लिये नपुंसकलिङ्ग शब्दका प्रयोग होता है, वे सब मानो गुणोंकी साम्यावस्थाके द्योतक हैं।

मेरी नम्र सम्मतिमें, स्त्यानका अर्थ समुच्चय या संघात उचित है। स्त्यै धातुके मूल अर्थके अनुरूप भी है। यहाँ यह भी ध्यान देनेकी बात है कि शब्द, स्पर्श आदिका संघात स्त्री है—यह पतञ्जलिकी मौलिक उक्ति या कल्पना नहीं है। उनसे शताब्दियों पहले यास्कने यह भाव व्यक्त किया है। ऋग्वेद। (१। १६। १६) पर टिप्पणी लिखते हुए यास्कने लिखा है—'स्त्रियः एव एताः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धहारिण्यः' (नि० अ० १४ ख० २०)। अवश्य ही न तो पतञ्जलिने और न यास्कने ही यह विवेचन किया है कि किस तरह स्त्री शब्द, स्पर्श, रूप आदिको हरण या वहन करती है। शब्द, स्पर्श आदि ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं। पुरुषकी ज्ञानेन्द्रियोंकी तृप्ति अकेले स्त्रीसे एक ही साथ एक ही समयमें हो सकती है। सम्भव है, इसी कारण स्त्री शब्दादिका अधिष्ठान मान ली गयी हो। स्त्री-शब्द, स्त्री-स्पर्श, स्त्री-रूप, स्त्री-रस, स्त्री-गन्ध—ये क्या अलग-अलग और क्या साथ-साथ, इस

लीलामय जगत्में अपनी अनिर्वचनीय सुषमा और अनुपम आकर्षक शक्तिके लिये सुविदित है। फिर आचार्याने शब्द, स्पर्श आदिके संघातमें स्त्रीत्वके दर्शन किये, तो कोई आश्चर्य नहीं। क्या इसीलिये साधु-महात्माओंके यहाँ विषयोंसे दूर होनेका अर्थ 'स्त्री'से दूर होना है ?

योषा—स्त्रीके लिये यह भी प्राचीन शब्द है। यह यु= जुटाना धातुसे बना है। दुर्गाचार्यके मतमें स्त्रीको योषा इसलिये कहते हैं कि वह अपने आपको पुरुषके साथ जुटाती है। 'योषा यौतेः मिश्रणार्थस्य, सा हि मिश्रयति आत्मानं पुरुषेण साकम्' (नि० ३ । १५ । १)। योषणा और योषित्— ये दोनों शब्द भी, जो नारी-अर्थके वाचक हैं, योषाके ही मूल भावको रखते हैं। वैदिक संस्कृतमें योषा शब्दका व्यवहार प्रचुर रूपमें है। जैसे—'योषा जारस्य चक्षुषा विभाति' (ऋ० १ । ९८ । ११) प्रेमीकी दृष्टिमें प्रेमिका सुन्दर लगती है। 'न वै योषा कंचन हिनस्ति' (शत० ब्रा० ३ । ६ । १ । ४)। स्त्रीपर कोई हाथ नहीं उठाता। लौकिक संस्कृतमें योषित् शब्दका व्यवहार अधिक है।

नारी—ऋग्वेदमें नारी शब्द नहीं मिलता। पर यज्ञके अर्थमें 'नार्यः' शब्दका प्रयोग हुआ है। तैत्तिरीय आरण्यक ६ । १ । ३ और शतपथ ब्राह्मण ३ । ५ । ४ । ४ में यह मिलता है। नारी शब्द नृ अथवा नरसे बना है। नृ+अञ्+ ङीन्=नारी। नर+ङीप्=नारी। पतञ्जलिने दोनों व्युत्पत्तियों-को ठीक माना है ('नुर्धर्म्या नारी, नरस्यापि नारी' महाभाष्य ४ । ४ । ९) यास्कने नर शब्दको नृतः=नाचना-से बनाया है। 'नराः मनुष्याः नृत्यन्ति कर्मसु' (निरुक्त ५ । १ । ३)। काम करते समय मनुष्य हाथ-पैर नचाता है, हिलाता-डुलाता है; इसलिये उसे नर कहते हैं। इसी विशेषण-के कारण स्त्रीको नारी कह सकते हैं; किंतु ऋग्वेदमें नृका प्रयोग वीरताका काम करना, दान देना तथा नेतृत्व करनेके अर्थमें हुआ है और नर शब्दका प्रयोग भी वीर, दाता तथा नेताके अर्थमें हुआ है। स्त्रीका नारी नाम भी इन्हीं विशेषताओं-के कारण पड़ा होगा। वे युद्ध तथा शिकारमें वीरोंकी सहायिका होती होंगी और अतिथियों एवं भिक्षुकोंके सत्कार-दान आदि-का भार भी इन्हींपर रहता होगा। ब्राह्मणोंमें कहीं कहीं 'नारिः' पाठ मिलता है। सायणके मतसे नारिका भाव नरोंका उपकारक अथवा शत्रु न होना है। 'नृणा महावीराग्निनाम् उपकारित्वात् नारिः। न अरिः नारिः' (सायण तै० आ० ४ । २ । १)।

वामा—स्त्री वामा है; क्योंकि वह सौन्दर्य [illegible] है— 'वमति सौन्दर्यम्।' स्त्री वामा है, क्योंकि प्रतिकूल बात कहती है। जैसे 'हाँ' के बदले प्रायः 'नहीं' कहती है। वामा दुर्गाका भी नाम है।

> वामं विरुद्धरूपं तु [illegible] ।
> वामेन सुखदा देवी वामा तेन मता बुधैः ॥
>
> ([illegible])
>
> या पुनः पूज्यमाना तु [illegible] ।
> यज्ञभागं स्वयं धत्ते सा वामा तु [illegible] ॥
>
> ([illegible])

अबला—इस शब्दकी रचना [illegible] सामने रखकर की गयी है। [illegible] हो, नारीकी मानसिक [illegible] थे और उसे वशमें करना [illegible]।

'स्त्रिया अशास्यं मनः' ([illegible])

सुन्दरी—सु+उन्द=गीला [illegible] स्त्रीको सुन्दरी कहते हैं, क्योंकि उसको देखने [illegible] हृदय गीला होता है, [illegible] नन्दयति इति [illegible] ([illegible] ५२)। स्त्री अच्छी तरह प्र[illegible] है। वस्तुतः सुन्दरी शब्द ऋग्वेदके 'सूनरी' [illegible] रूप है। ऋग्वेदमें [illegible] है। सूनरीका अर्थ है शोभामयी, सुन्दरी।

> आ घा योषेव सूनरी [illegible] ।
>
> ([illegible])

अर्थात् प्रसन्नतायुक्त उषा एक सुन्दरी [illegible] रही है।

प्रमदा—[illegible] रमणीकी नैसर्गिक विशेषता [illegible] भाव [illegible] भी है। [illegible]— पुलकित स्वभाव होनेके कारण [illegible] है।

ललना—[illegible] है। [illegible] चार प्रकट होते हैं। [illegible]

मानिनी—[illegible] एक मनोवैज्ञानिक [illegible] होती है। [illegible]

मानिनीका रूप और स्वत्व है और वह है स्वाभिमान, आत्मसम्मानकी भावना। इसमें अहंकारकी मात्रा तीव्र होती है। उसके सौन्दर्य, गुण, कार्य आदि किसीकी प्रतिकूल आलोचना उसे बाण-सी लगती है। वह सच्चे अर्थमें मानिनी है।

महिला–मह्+इलच्+आ=महिला। मह्का अर्थ पूजा है। पूज्य होनेके कारण स्त्रीका महिला नाम पड़ा। पर पीछेके कवियोंने इस शब्दका प्रयोग करते समय इसके मूल अर्थपर ध्यान कम दिया है।

उपर्युक्त शब्दोंकी व्युत्पत्ति नारीके सामान्य स्वरूपकी ही अभिव्यञ्जना करती है। नारीके सम्बन्धविशेषके द्योतक कुछ शब्दोंका विवरण नीचे दिया जाता है—

दुहिता–कन्याके लिये दुहिता शब्द अत्यन्त प्राचीन है। एङ्गलो-सैक्शनका दोह्तार (dohtor), अंग्रेजीका डाटर (daughter), जर्मनका तोख्तर (tochter) ग्रीकका थुगदर (thejather) और अवस्ताका दुघेतर (dudheter)—ये सभी शब्द दुहिता शब्दसे किसी-न-किसी रूपमें नाता रखते हैं। भारतवर्षमें कन्याओंकी करुण-कथा उनके वाचक शब्दोंमें भी छिपी हुई है। इसका प्रमाण स्वयं दुहिता शब्द है। यास्कके अनुसार दुहिता शब्दकी व्युत्पत्ति है—'दुहिता दुर्हिता, दूरेहिता' (नि० ३।४।४)। दुर्गाचार्य इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि—दुहिता दुर्हिता है; क्योंकि वह जहाँ कहीं भी दी जाती है, उसका स्वागत नहीं होता; वह सर्वत्र दुत्कारी जाती है। 'सा हि यत्रैव दीयते तत्रैव दुर्हिता भवति।' अथवा 'दूरे हिता दुहिता।' क्योंकि दूर होनेपर ही पिताको चैन मिलता है 'दूरे सति सा पितुः हिता पथ्यं भवति इति दुहिता इति उच्यते।' यास्कने दुहिता शब्दको दुह धातुसे भी बनाया है 'दोग्धेर्वा'। इसकी व्याख्यामें दुर्गाचार्य कहते हैं—'सा हि नित्यमेव पितुः सकाशाद् द्रव्यं दोग्धि, प्रार्थनापरत्वात्' अर्थात् वह पिताको प्रसन्नकर सदा उससे कुछ-न-कुछ धन दूहा करती है। इसलिये दुहिता है। इसमें सन्देह नहीं कि दुहितृ शब्द दुह=दुहना धातुसे बना है। अतः यह अनुमान भी सम्भव है कि प्रारम्भिक युगमें कन्याएँ अपने पिताके घर गाय दूहा करती थीं। फलतः उनका नाम दुहितृ (दुहिता) पड़ा। पर उनके प्रति युवकोंका अनुदार भाव देखकर ही यास्कने उपर्युक्त व्याख्या की है। इसमें संदेह नहीं कि हमारे देशमें सर्व-साधारणका कन्याके प्रति उतना प्यार नहीं रहा है, जितना पुत्रके प्रति। 'ऐतरेय ब्राह्मण'में एक स्थानपर 'कृपणं हि दुहिता, ज्योतिर्हि पुत्रः' कहा गया है। पुत्र ज्योतिःस्वरूप है, जब कि दुहिता दुःखकी खान है। पतञ्जलिने पुत्र और दुहिताकी समानता दिखाते हुए लिखा है—तथा 'यदि पुनाति प्रीणातीति वा पुत्रः दुहितर्यप्येतद् भवति'—यदि पुत्र पवित्र करता है या आह्लादित करता है, तो दुहिता भी पवित्र करती है, आह्लादित करती है। (अष्टा० १। २। ६२ पर महाभाष्य)।

जाया–स्त्रीके पत्नीरूपके लिये जाया शब्द व्यवहृत होता है। ऐतरेय ब्राह्मणमें जायाकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गयी है–

तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।

जाया जाया इसलिये है कि पुरुष स्वयं उसमें पुत्ररूपसे जन्म लेता है। वैदिक साहित्यमें पुत्रके साधनरूप जायाकी महिमा, गरिमा तथा शोभा स्थान-स्थानपर गायी गयी है। ऐतरेय ब्राह्मणमें जायाको 'आभूतिरेषा भूतिः'—यही शोभा है, यही ऐश्वर्य है, कहा गया है। ऋग्वेदमें जायाके प्रति बड़े ही मधुर उद्गार मिलते हैं। 'कल्याणी जाया सुरण गृहे ते'=तुम्हारे घरमें कल्याणी सुषमामयी जाया है (ऋग्वेद ३। ५३। ६)। 'जायेदस्तं मघवन् सेदुयोनिः=हे इन्द्र! जाया ही घर है, वही पुरुषका विश्राम-स्थल है (ऋग्वेद ३। ५३। ४)। ये सब उद्गार नारीके सम्मानित स्वरूपके द्योतक हैं।

माता–शब्द-व्युत्पत्तिद्वारा मातृ शब्दके भावको जानने-की चेष्टा वैसी ही है, जैसी कि किसी फूलकी नसोंको उधेड़-उधेड़कर उसके सौन्दर्यको परखनेकी चेष्टा। ऋग्वेदमें मातृ शब्द अन्तरिक्ष, नदी, जल तथा पृथ्वीके अर्थमें भी व्यवहृत है। वैयाकरण मातृ शब्दको मान्+तृच्से बनाते हैं। मानका अर्थ है आदर। अतः मातृ शब्दका अर्थ 'आदरणीय' है। यों यास्कके मतसे मातृका भाव निर्मातृ=निर्माण करनेवाली जननी भी है। पर आदि-युगसे लेकर आजतक मानव जिसे असीम श्रद्धा भेंट करता रहा और जिससे अजस्र अक्षय स्नेह पाता रहा, वह केवल जन्मदात्री नहीं। वह इससे बहुत बड़ी है। उसका स्थान स्वर्गसे भी ऊँचा और गुरुसे भी अधिक पूज्य है। माता सदा माता ही है।

उपर्युक्त नारीके पर्यायवाची शब्दोंकी व्युत्पत्ति नारीके कुछ चिरन्तन सत्यका निर्देश करती है। नारीके कुछ नाम उसके भौतिक स्वरूपके द्योतक हैं। स्त्रियाँ सृष्टिके साधन हैं। प्रकृतिके मूर्तरूप हैं। अबला हैं। पर कोमल-कान्त-कमनीय

है। कुछ नाम उनके शारीरिक और मानसिक (साइको-फिजिकल) विशेषताओंके सूचक हैं। उनमें रमणीका मौहव, कामिनीकी वासना, भीरुकी शंका और प्रमदाका मद —एक साथ मिलता रहता है। उनके कुछ नामोंकी व्युत्पत्ति नारीके स्वरूपको उतना व्यक्त नहीं करती, जितना पुरुषके भावात्मक (इमोशनल) स्वरूपको व्यक्त करती है। किसी कान्ताको वामलोचना कहते समय पुरुषकी आँखोंका ही रंग कुछ और होता है। शब्द-व्युत्पत्तिके द्वारा नारीके सौन्दर्यात्मक (एस्थेटिक) पहलूपर भी प्रकाश डाला गया है। स्त्री ही शोभा है। रमणीयताका नाम ही नारी है। जो वस्तुएँ नारीको प्रिय हैं, वे सुन्दर हैं। जिन वस्तुओंसे नारीके अवयवोंका साम्य है, वे रुचिर हैं। नारीमें सौन्दर्य, सौन्दर्यमें प्रेम, प्रेममें अनन्यता और अनन्यतामें आनन्द है। आनन्द नारीमें है। पर जैसे प्रकाशके पीछे अन्धकार [illegible] रहती है, वैसे ही नारीकी [illegible] प्रेमकी ओटमें घृणा, उसकी [illegible] आनन्द-रसमें विषादका बीज भी [illegible] नारीका यह [illegible] मानवको तभी [illegible] स्वार्थकी वासनासे ग्रस्त [illegible] मानवने नारीको इन शब्दोंसे भी [illegible] नारीके आध्यात्मिक स्वरूपको [illegible] शक्ति है। चिति है। उसकी [illegible] स्थिति और उसकी शक्ति प्रकट [illegible] पूज्या है। आराध्या है। [illegible] और जीवनमें [illegible] है। वह भक्ति है। श्रद्धा है।

नारी
पाश्चात्त्य-समाजमें और हिंदू-समाजमें

(लेखक—श्रीचारुचन्द्र मित्र, एटर्नी एट-ला)

आजकल सर्वत्र ही नारी-जागरणकी बात सुनी जाती है। 'उनपर सदासे ही अत्याचार होता आया है—अब वे शिक्षिता होकर अपना न्याय्य अधिकार चाहती हैं। पुरुषोंकी भाँति सभी काम करनेका—विशेषतः धनोपार्जनके कार्य करनेका उन्हें अधिकार होना चाहिये। वे धनोपार्जनका कार्य न कर सकनेके कारण ही पुरुषोंकी गुलाम बननेको मजबूर हो रही थीं। पुरुष मनमाने ढगसे इन्द्रियोंको चरितार्थ करता है, स्त्री वैसा करती है तो पूरा दोष समझा जाता है—वैसा करनेपर स्त्रियोंको इस लोकमें कितने ही कष्ट सहने पड़ते हैं और उन्हें परलोकका भय दिखलाया जाता है। खुद पसंद करके विवाह करना चाहिये—और सुलकर न दीखते ही तलाक कर देनेका उन्हें अधिकार होना चाहिये। पारिवारिक जीवनमें उनपर स्वामीका कोई अधिकार नहीं रहना चाहिये—राजनीतिक क्षेत्रमें उनका अधिकार रहना चाहिये।' इस तरह नाना प्रकारके अधिकारोंके लिये दावा सुननेमें आता है। कहा जाता है 'हिंदू-समाज सदासे ही स्त्रियोंपर घोर अत्याचार करता है, उनका अपमान करता है, उन्हें उपर्युक्त अधिकार नहीं देना चाहता—विधवा-विवाहको उचित नहीं बतलाता, लड़कियोंका कम उम्रमें विवाह करके उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तिके विकासका मार्ग रोक दिया जाता है। अतएव हिंदू-समाजमें जड़से परिवर्तन होनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। परिवर्तन न होनेसे इसकी उन्नतिकी कुछ भी आशा नहीं है।' [illegible] युवतियाँ इन सब बातोंको [illegible] मानो पाश्चात्त्य देशोंकी [illegible] दिखलाकर वे इन लोगोंके [illegible]

जो लोग यहाँ [illegible] हिंदू-जाति पुरानी असभ्य जातियोंकी [illegible] करती है उनको [illegible] किसी भी सभ्य जातिने [illegible] देखा [illegible] भी नहीं की। [illegible] हेय या नीच समझते—[illegible] शक्तिमान् भगवान्को [illegible] के रूपमें उनकी कल्पना [illegible] की बार बार नारी-देवता (दुर्गा) [illegible] हाथसे रक्षा होनेकी [illegible] जाती—विपत्ति पड़ते ही [illegible] जीवनकी प्रधान [illegible] अधिष्ठात्री देवताको [illegible] माननेवालोंके लिये [illegible] हमारे धर्मशास्त्रोंमें [illegible]

बेटी, पुत्रवधू, भाईकी स्त्री, जातिकी स्त्रियाँ, मित्रकी स्त्री आदि) के साथ, केवल अपनी पत्नीके लिये ही नहीं— सम्मानपूर्वक व्यवहार करनेका जैसा विशेष निर्देश है— यहाँतक कहा गया है कि वैसा सम्मानपूर्ण व्यवहार न करनेसे कुलके इहलोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं— वैसा अन्य किसी भी धर्मशास्त्रमें नहीं देखा जाता।*

हिंदू-शास्त्रके इन सब आदेशोंकी अवज्ञा की जानेके कारण ही स्त्रियोंको उतना कष्ट हो रहा है, तो भी नवीन विचारोंके लोग हिंदू-जातिको नारीनिग्रही कहनेमें जरा भी कुण्ठित नहीं होते।

हम सभी स्त्रियोंको माता कहके सम्बोधन करते हैं— 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' हमारी एक प्रचलित लोकोक्ति है।

इससे यह प्रमाणित होता है कि हिंदू-जातिकी भाँति किसी भी जातिने न तो स्त्रियोंका इतना सम्मान किया और न उन्हें ऊँचा स्थान ही दिया है। अतएव सभी क्षेत्रोंमें स्त्रियोंका पुरुषोंके समान अधिकार न होनेके कारण हिंदू-जातिको नारी-निग्रही न समझकर निरपेक्षभावसे विचार करके देखना चाहिये कि समाजमें स्त्रीका स्थान और कार्य क्या होना चाहिये, हिंदू-आदर्श क्या है और वह स्त्रियोंके लिये, समाजके लिये, चराचर जीवोंके लिये कल्याणकारक है या नहीं। पाश्चात्त्य आदर्श अधिक कल्याणकारक है या नहीं? सामाजिक या राजनीतिक किसी भी विधि-निषेधके नियमोंपर विचार करके देखना चाहिये कि वे सर्वसाधारणके लिये कल्याणकारक हैं या नहीं? यह याद रखना चाहिये कि व्यक्तिगतभावसे तो कुछ लोगोंके लिये असुविधा हो सकती है, किंतु समष्टिकी सुविधा और कल्याणके लिये सभी जातियोंको व्यक्तिगत सुविधाकी तो उपेक्षा करनी ही पड़ती है और ऐसा होना अपरिहार्य है।

एक बात यह और याद रखनी चाहिये कि सबके साथ समान व्यवहार करनेपर वस्तुतः उनके साथ न्याय्य व्यवहार नहीं हो सकता। वह उनके लिये कल्याणकारी नहीं हो सकता। बाघ और गौको एक ही आहार देनेसे उनके साथ न्याय्य व्यवहार नहीं होता—सबको एक-सा आहार देना सबके उपयोगी नहीं होता। सबके द्वारा एक ही काम करानेसे उनमेंसे बहुतोंके प्रति अत्याचार हो सकता है। हृदयके रोगवाले मनुष्योंको हवाईजहाज चलानेका काम सौंपना उनके प्रति अत्याचार करना होता है। जिस काममें जो कम उपयुक्त हैं, उनको वह कार्य न करने देना,—और जिनमें जिस कार्यकी विशेष योग्यता या सहज पटुता है, उनको वह कार्य सौंपना समाजके लिये कल्याणकारी है। इसीलिये जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है; उनको सिपाही नहीं बनाया जाता। लोगोंके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, शक्ति और गुणागुणका विचार करनेके बाद ही उनके लिये यथायोग्य कार्यका निर्देश करना समाजके लिये कल्याणकारी हुआ करता है। यह सभी सभ्य जातियोंका सर्वसम्मत स्वीकृत सिद्धान्त है।

पुरुष और स्त्रीके शरीरकी रचनापर ध्यान देनेसे यह मालूम होता है कि साधारणतः स्त्रीके शरीरका आयतन, देहकी और पेशियोंकी शक्ति पुरुषकी अपेक्षा कम है, उसकी अस्थि भी कुछ कमजोर है और शरीर भी अधिक कोमल है। स्त्रीके मस्तिष्कका वजन और जटिलता (convolutions), मस्तिष्कके अगले भाग (cerebrum) का, पिछले भाग (cerebellum) का और स्नायुग्रन्थि(nerve ganglia)का वजन भी पुरुषकी अपेक्षा कम है। परंतु थेलेमस (Thalemus)—जो सम्प्रति भावप्रवणता (emotions) का उत्पत्तिस्थान माना गया है—पुरुषोंकी अपेक्षा बड़ा है। शरीर और मस्तिष्कके इस पार्थक्यसे ही यह पता चलता है कि पुरुष और स्त्रीके लिये एक ही प्रकारका कार्य होना उपयुक्त नहीं है। पुरुषोंके समान उन्हींके जैसे कार्य करनेसे स्त्रियोंकी दुर्गति अनिवार्य है, क्योंकि वे पुरुषकी अपेक्षा बहुत दुर्बल हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियोंके मातृत्वके उपयोगी अङ्ग हैं (fallopian tube, uterus, ovary, breast) और ये सब अङ्ग, कामभोगोपयोगी अङ्गकी अपेक्षा बहुत बड़े हैं—कामभोगोपयोगी अङ्ग इन अङ्गोंके कुछ अंशोंके साथ सम्बन्धित है। स्त्रीके शरीरकी रचना इस प्रकार मातृत्वके पूर्ण विकासके लिये है। पूर्ण गर्भावस्थामें मातृत्वके अङ्गोंके समीपस्थ सभी अङ्गोंको अवकाश देना पड़ता है। मातृत्वके अङ्गोंमें बहुत से स्नायु और स्नायु-ग्रन्थियाँ हैं, वे शरीरके अन्यान्य अंशोंके साथ सम्बन्धित हैं। स्त्रियोंके स्नायु उनके मातृत्वके उपयोगी हैं—अधिकतर सूक्ष्म अनुभूतिशील हैं—

---

* शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥
(मनु० ३।५७)

जिस कुलमें बेटी, बहिन, पत्नी, पुत्रवधू, भ्रातृवधू, देवरानी, जेठानी, सास, ननद, मौसी आदि सम्बन्धी स्त्रियाँ (दुःखके मारे) शोक करती हैं, उस कुलका शीघ्र ही नाश हो जाता है और जिस कुलमें वे शोक नहीं करतीं, वह कुल सदा उन्नत होता रहता है।

वे सहज ही उत्तेजित हो जाती हैं। वे बहुत समयतक थोड़ा परिश्रम कर सकती हैं, पुरुष समय-समयपर अधिक परिश्रम कर सकते हैं। उनके लिये अधिक विश्रामकी आवश्यकता है। मातृत्वके अङ्ग हैं, इसीलिये उनमें मातृत्वकी प्राकृतिक प्रेरणा भी है। बच्चोंको स्तनपान कराकर, उन्हें पाल-पोसकर वे जिस तरह सुखी होती हैं, पुरुष उस तरह नहीं हो सकते। मातृत्वपर ही सृष्टि निर्भर करती है। अतएव मातृत्वके अङ्ग उनके प्रधान अङ्गोंमें गिने जाते हैं। पुरुष और स्त्रीका पार्थक्य इस मातृत्वको लेकर ही है, अतएव मातृत्व ही स्त्रीत्व है। जीव-जगत्‌में मनुष्य ही सबकी अपेक्षा अधिक उन्नत (evolved) है; इसलिये मानव-स्त्रियोंका मातृत्व भी सर्वापेक्षा अधिक विकसित है। इसीसे माता और सन्तानका सम्बन्ध जीवनभरका होता है और मातृत्वके अङ्गीभूत सेवापरायणता, त्यागशीलता और परार्थपरता आदि गुणोंका विकास स्त्रियोंमें अधिक है और वही क्रमशः सारी मानव-जातिमें अत्यन्त विस्तृत है। इसीलिये मनुष्य जितना परस्पर सहायक और निर्भरशील है, उतना अन्य कोई प्राणी नहीं है और इस परस्पर सहायशीलताके कारण ही मानवजाति इतनी उन्नति कर सकी है (Benjamin Kidd on Science of Power देखना चाहिये)।

जन्तुओंमें देखा जाता है कि स्त्रीजन्तु कामोपभोगके बाद ही गर्भवती हो जाती हैं। जिनके गर्भवती होनेकी सम्भावना नहीं होती, वे कामोपभोग नहीं करतीं। इससे यह प्रमाणित होता है कि प्रकृतिके निर्देशसे स्त्रियोंका काम उनके मातृत्व-विकासमें सहायकमात्र है—उनके कामका मातृत्वके अङ्गके साथ सम्बन्ध होनेके कारण बहुत बार मातृत्वकी प्राकृतिक प्रेरणा ही कामके रूपमें दिखायी पड़ती है। इन सब कारणोंसे स्त्रियोंके ऐसे कार्य होने चाहिये, जिनसे मातृत्वमें किसी प्रकारकी बाधा न पहुँचे, उनके मातृत्वके अङ्गोंका सम्यक् व्यवहार चल सके। अङ्ग रहनेसे उसके व्यवहारकी प्रेरणा प्रकृतिसे ही आती है, अधिक दिनोंतक व्यवहार न होनेसे उस अङ्गकी स्नायु सूख जाती है,—वह अङ्ग क्रमशः अव्यवहार्य हो जाता है—और इसीलिये कई बार तो बीमारियाँ भी हो जाती हैं। मातृत्वके अङ्गोंकी भी बहुत समयतक व्यवहार न होनेसे यही अवस्था होती है—मातृत्वकी प्राकृतिक आकाङ्क्षा भी क्रमशः लुप्त हो जाती है। किसी मनुष्यको उसके हाथ-पैर आदि प्रधान अङ्गोंका व्यवहार न करने देना जैसे उसपर अत्याचार करना होता है, वैसे ही स्त्रियोंके मातृत्वके अङ्गोंको बहुत कालतक व्यवहार न करने देना उनपर भी घोर अत्याचार करना होता है। जबतक स्त्रियोंके रज निर्गत होता है, तभीतक वे माता हो सकती हैं। पहले भी नहीं हो सकतीं और रज बंद होनेके बाद भी नहीं हो सकतीं। अतएव रज निर्गत होना आरम्भ होते ही यह समझ लेना चाहिये कि वे माता बननेके योग्य हो गयी हैं। सभी स्त्री-जन्तु उसी समयसे कामोपभोग करतीं और गर्भवती होती हैं—वे उसके बाद थोड़े समय भी अपेक्षा नहीं करतीं। अतएव प्रकृतिका यही निर्देश है कि स्त्रियोंको रजोदर्शनके समयसे ही काम और मातृत्वके अङ्गोंका व्यवहार करने देना चाहिये। इन विषयोंके सर्ववादिसम्मत प्रसिद्ध विद्वान् हैवलक एलिस (Havelock Ellis) लिखते हैं कि 'रजो निःसरण का आरम्भ ही स्त्रियोंकी यौवन-परिपक्वताका निर्देश करता है' Sexual maturity is determined in women by a precise biological event, the completion of puberty on the onset of menstruation" (देखिये Psychology of Sex. भाग ६, पृ० ५२४)। रजोदर्शनके बाद स्त्रियोंको बहुत कालतक कामके और मातृत्वके अङ्गोंका व्यवहार न करने देना उनपर अत्याचार करना होता है और इसीसे देखा जाता है कि उस समय अविवाहित कन्याओंके हिस्टीरिया, रजसम्बन्धी बहुत-सी व्याधियाँ, अजीर्ण, सिरदर्द, सिर घूमना आदि भाँति भाँतिके रोग और बहुत बार अत्यन्त दूषित रक्तहीनता (Chlorosis, Persistent Anaemia) और हृत्पिण्डकी बीमारी हो जाती है। इस बातको सभी विशेषज्ञ विद्वान् स्वीकार करते हैं। इसीलिये हमारे यहाँ रजोदर्शनके आरम्भसे ही कामोपभोग और मातृत्वके अङ्गोंका व्यवहार हो सके और ऐसा होनेमें किसी विपत्तिका सामना न करना पड़े—कम उम्रमें कन्याओंके विवाह की प्रथा है। ऐसा न किया जाता तो उनपर अत्याचार करना होता। इस अत्याचारका निवारण भी कम उम्रमें विवाह करनेका एक प्रधान उद्देश्य है। सुधारक लोग जो इस प्रथाको दूषित बतलाते हैं, सो सर्वथा निरर्थक है। कम उम्रमें विवाह होनेसे लड़कियाँ शिक्षा नहीं पा सकतीं, उनका यह कहना भी भ्रमात्मक है; क्योंकि बहू अपने स्वामीके वंशकी पोष्य कन्या है, इसीलिये विवाहके समय उसका गोत्र बदल जाता है—अतएव उसकी शिक्षाका भार उसके पोषण करनेवाले श्वशुर या स्वामीपर आ जाता है। अपने निज परिवारके लिये उपयोगी शिक्षा देना उन्हींका कर्तव्य है और वे ऐसा करते

भी हैं। जिनके घर पायी हुई शिक्षा स्वामीके कुलके लिये अनुपयुक्त भी हो सकती है—अनुपयोगी शिक्षासे विरोधकी सम्भावना है। इस सम्भावनाका निराकरण करनेके लिये ही—दाम्पत्यप्रेमके पूर्ण विकासके उद्देश्यसे ही—बहुओंकी शिक्षाका भार स्वामीके वंशपर छोड़ा गया है। यदि स्वामीके घरमें बहुएँ उपयोगी शिक्षा नहीं पातीं तो यह हमारी समाज-रचनाका दोष नहीं है—यह सास ससुर अथवा स्वामीका ही दोष है।

स्त्रियोंके रजोदर्शन-कालमें उनके शरीरमें नाना प्रकारके विपर्यय होते हैं—स्नायु इतनी उत्तेजित होती है, उनमें इतना विकृत भाव आ जाता है कि उस समय उनके लिये विश्रामकी बड़ी ही आवश्यकता है। सभी डाक्टर इस बातको स्वीकार करते हैं। इस विश्रामके न मिलनेसे उन्हें विशेष कष्ट होता है, भाँति-भाँतिकी बीमारियाँ हो जाती हैं और कभी-कभी तो वे बहुत ही भयानक रूप धारण कर लेती हैं। गर्भकालमें और जबतक सन्तान बहुत छोटी है, तबतक उसकी सेवा और देख-रेखके लिये उन्हें दूसरा काम नहीं करना चाहिये। उस समय दूसरा काम करनेसे स्त्रियोंको विशेष कष्ट और असुविधा होती है—शिशुओंको भी कष्ट और बहुत बार तो उनकी बड़ी दुर्गति होती है। धनी स्त्रियाँ बच्चोंकी सेवा दूसरी स्त्रियोंके द्वारा करा भी सकती हैं परंतु साधारण स्त्रियाँ नहीं करा सकतीं। उनके बच्चोंकी तो दुर्गति ही होती है। अतएव स्त्रीकी शरीररचना और उसकी क्रियासे प्रतीत होता है कि उसके लिये ऐसा कार्य होना चाहिये जिससे (१) उसके मातृत्वमें कोई बाधा न हो अर्थात् (क) रजोदर्शनके आरम्भसे ही उनके लिये माता बननेकी सुविधा हो, (ख) गर्भके समय और जबतक बच्चा छोटा हो, तबतक उसकी सेवा और देख-भालके लिये पूरा अवकाश मिले और उसको इसके लिये विशेष चिन्ता न करनी पड़े अथवा विशेष कष्ट न उठाना पड़े। (२) मासिक रजोदर्शनके समय विश्राम मिल सके। (३) शरीरकी आपेक्षिक दुर्बलता और स्नायुकी क्रिया पार्थक्यके लिये अनुपयोगी न हो। यदि स्त्रियोंके कार्यमें उपर्युक्त कोई बाधा हो, तब उनके लिये वैसा कार्य करनेमें, करानेमें या बाध्य होकर किये जानेमें उनका अधिकार न बढ़कर उनपर अत्याचार ही करना होता है।

पाश्चात्त्य स्त्रियाँ आजकल बहुत-से कार्य करती हैं—उन्हें वोट (मत) का अधिकार दिया गया है। बहुत-सी राजनीतिक क्षेत्रमें भी काम करती हैं। इसीसे हमारे युवक-युवतियाँ और कुछ बड़े लोग भी ऐसा समझ लेते हैं कि इस प्रकारके कार्य कर सकनेमें स्त्रियोंका अधिकार बढ़ता है और हमलोगोंको भी ऐसा ही करना चाहिये। पाश्चात्त्य देशोंमें ऐसा क्यों हुआ, इसका विचार पीछे करेंगे। अभी यहाँ यह देखें कि इस प्रकार कर सकना साधारणतः स्त्रियोंके लिये कल्याणकारी है या नहीं।

ऐसे बहुत ही थोड़े अर्थकरी या राजनीतिक कार्य हैं, जिनमें स्त्रियाँ मासिकधर्मके लिये तीन-चार दिन और गर्भकालमें तथा बच्चा उत्पन्न होनेके बाद भी कुछ कालतक विश्राम पा सकती हों। अतएव जिन कार्योंमें उन्हें इस प्रकार विश्राम नहीं मिलता, उन कार्योंको पा जाना या उन्हें करने देना उनके लिये कदापि कल्याणकारी नहीं है—समाजके लिये भी कल्याणकारी नहीं है। जिनकी गर्भ-धारण करनेकी शक्ति लुप्त हो गयी है, उन स्त्रियोंके लिये ऐसे कार्य दोषजनक नहीं भी होते; परंतु आजकल तो साधारणतः सभी स्त्रियोंके लिये ऐसा अधिकार माँगा जा रहा है—पाश्चात्त्य देशोंमें यही हुआ है—और इसके फलस्वरूप कुमारी, विवाहिता और वृद्धा सभी स्त्रियाँ अर्थकरी कार्योंमें और राजनीतिक क्षेत्रोंमें आ रही हैं। सब स्त्रियोंके इस प्रकार कर्मक्षेत्रमें उतर आनेसे एक तो यह हुआ है कि जिन स्त्रियोंके लिये इस तरहके कार्य आवश्यक हैं या अनुपयोगी नहीं हैं, उन्हें काम मिलना बहुत कठिन हो गया है; क्योंकि कार्य चाहनेवालियोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी है। दूसरे, इन सब क्षेत्रोंमें कार्य करनेवाले पुरुषोंके साथ प्रतियोगिता करनी पड़ती है, जिससे स्त्रियोंके अत्यावश्यक मासिक विश्राम उन्हें नहीं मिल रहा है, और इसके परिणामस्वरूप उनका शारीरिक कष्ट और स्वास्थ्यनाश अनिवार्य हो गया है। अतएव स्त्रियोंके लिये ऐसे कार्य कल्याणकारक न होनेसे ऐसे कार्योंके मिलनेसे उनके अधिकारकी वृद्धि मानना कदापि उचित नहीं है। यह तो एक प्रकारका उनपर अत्याचार है; इसलिये इस प्रकारके कार्य उन्हें जितने कम करने पड़ें उतना ही उनके लिये अच्छा है और इस प्रकारकी समाजरचना ही उपयुक्त है! प्रथम तो यों ही गरीबोंको—स्त्री हो या पुरुष नौकरीकी तलाशमें अपमान सहना पड़ता है। ... पाश्चात्त्य-समाजमें सत् उपायसे जीविका उपार्जन ... युवती शिक्षिता स्त्रियोंके लिये भी—विशेष अ... शायद बहुत लोग इस बातको नहीं जानते लेखक Hall Caine के "The wc gavest me", H. G. well के "Ann और Victor Hugo के "Les ... फैंटाइन्का उपाख्यान पढ़नेसे इसका पता बहुत बार चरित्रहीनता आर्थिक उन्नतिमें

इसीलिये बहुत-सी स्त्रियोंका पतन होता है। इसीसे देखा जाता है कि पाश्चात्य वेश्याओंमें अधिकांशको धनोपार्जनके कार्य करने जाकर ही वेश्यावृत्ति स्वीकार करनी पड़ी है। Havelock Ellis (देखिये Psychology of Sex भाग ६, पृ० ५५७-५५८) लिखते हैं कि कल-कारखानोंमें काम करनेवाली (Factory-girls) घरोंमें काम करनेवाली, दूकानोंमें माल बेचनेवाली (Shop-girls) और होटलोंमें सेवा करनेवाली (waitresses) लड़कियोंमेंसे ही अधिकांश वेश्याएँ आती हैं। जो दरजीका काम करती हैं, उनमें जब रोजगार अच्छा नहीं चलता तब बहुत-सी वेश्यावृत्ति करती हैं। बहुत-सी दोनों कार्य साथ साथ करती हैं। मुक्ति-फौज (Salvation Army) के हिसाबसे पता लगता है कि लंदन नगरके पूर्वीय अंशमें—जहाँ अधिकांश गरीबोंकी बस्ती है—प्रतिशत ८८ वेश्याएँ नौकरीपेशा स्त्रियोंमेंसे आयी हैं। लदन शहरकी १६०२२ वेश्याओंमें ५०६१ आनन्दोपभोगके लिये, ३३६३ गरीबीके कारण, ३१५ धोखेसे और १६३६ पुरुषोंके द्वारा विवाहकी प्रतिज्ञा भंग होनेसे इस नीच कार्यमें प्रवृत्त हुई हैं। 'The Great Social Evil' नामक पुस्तकमें Logan साहबने लिखा है कि 'वेश्याओंमें एक चतुर्थांश पहले होटलोंमें काम करतीं, एक चतुर्थांश कल-कारखानोंमें काम करतीं, एक चतुर्थांश कुटनियोंके फेरमें पड़कर और एक चतुर्थांश बेकारीसे (उसमें कुछ अपने दोष-से भी) और विवाहकी प्रतिज्ञा भंग होनेसे वेश्यावृत्ति करती हैं।' बर्लिन और वायना नगरोंमें प्रतिशत ५१ और ५८ वेश्याएँ नौकरीपेशा स्त्रियोंमेंसे आयी हैं। Havelock Ellis और भी लिखते हैं कि 'बहुत-से मजदूर और मध्य श्रेणीके लोगोंकी लड़कियाँ गुप्त वेश्यावृत्ति करती हैं, यह निश्चय है।' Actor साहब 'On Prostitution' नामक पुस्तकमें लिखते हैं—'अगणित ब्रिटिश स्त्रियाँ बीच बीचमें वेश्यावृत्ति करती हैं।' वेश्या होनेका प्रधान कारण उनके मतसे है—बेकारी और वेतनकी अल्पता। कुछ लोगोंका यह कहना है कि धनियोंके भोगोंको देखकर उनसे प्रलोभित होकर ही अधिकांश स्त्रियाँ इस प्रकार वेश्यावृत्ति करती हैं। स्वर्गीय लाला लाजपतरायने अपनी "Unhappy India" नामक पुस्तकके १८ वें अध्यायमें James Merchant के "The Master Problem" और Dr. Bloch के "Sexual Life of Our Time" "Glass of fashion' तथा अन्यान्य विश्वासयोग्य समाज-तत्त्वविदोंके लेखोंसे यह दिखलाया है कि 'दूकानोंमें माल बेचनेवाली अधिकांश स्त्रियोंको गुप्त वेश्यावृत्ति करनी पड़ती है। बहुत-से सेवासदन (Nursing homes), स्नानागार (baths), शरीर और हाथ-पैर दबानेके स्थान (Massage Establishments), नाच-गानके स्थान, थियेटर, शराबकी दूकानें और होटल गुप्त वेश्यावृत्तिके स्थान ही गिने जाते हैं—वहाँ जो युवतियाँ काम करती हैं उनका वास्तविक कार्य वेश्यावृत्ति ही है।'* नौकरीकी तलाशमें फिरनेवाली अनेकों युवतियोंको नाना प्रकारसे लोभमें डालकर, भय दिखलाकर, विपत्तिमें फँसाकर वेश्यावृत्ति करनेके लिये बाध्य किया जाता है। इसीसे ब्रिटिश सरकारने निम्नलिखित विज्ञप्ति निकालकर सबको सावधान किया था।

लड़कियोंको चेतावनी†

खतरेसे सावधान!

किसी भी अपरिचित व्यक्तिसे—वह पुरुष हो या स्त्री—गली कूचेमें, दूकानोंपर, स्टेशनोंपर, रेलगाड़ीमें, देहातके एकान्त रास्तेपर अथवा आमोद-प्रमोदके स्थानोंपर कभी बोलो मत, बात मत करो।

---

* देखिये The Master Problem पृ० १८७

† The notification is quoted in extenso. (see Ibid P. 188)

Warning to Girls Forewarned is Forearmed

"Girls should never speak to strangers, either men or women in the street, in shops, in stations, in trains, in lonely country roads, or in places of amusement.

Girls should never ask the way of anp but officials on duty, such as policemen, railways officials or postmen

Girls should never loiter or stand about alone in the street and, if accosted by a stranger (whether man or woman), should walk as quickly as possible to the nearest policeman

Girls should never stay to help a woman who apparently faints at their feet in the street But should immediately call a policeman to her aid

Girls should never accept an invitation to join Sunday School or Bible Class given them by strangers, even if they are wearing the dress of a Sister or nun, or are in clerical dress.

पहरेपर जो पुलिसका अफसर या सिपाही हो या रेलवेका कर्मचारी हो या डाकिया हो—इनके सिवा किसीसे रास्ता मत पूछो।

सड़कपर या गलीमें कभी अकेले मत घूमो और जब कोई अनजान आदमी—चाहे पुरुष हो या स्त्री–तुमसे बात करनेके लिये लगे तो जल्दी-से-जल्दी तुम पासके पुलिसमैनके समीप पहुँच जाओ।

कोई भी स्त्री बहानेबाजीसे तुम्हारे पास मूर्छित होकर गिर पड़े तो उसे उठाने मत लगो; तुरंत पुलिसके सिपाहीको पुकारो।

रविवारकी पाठशाला या बाइबिल-क्लासमें शामिल होनेके लिये कोई अपरिचित व्यक्ति कहे तो कभी भी उसकी बात मत मानो। भले ही वह पादरी या पादरिनकी पोशाकमें क्यों न हो।

Girls should never accept a lift offered by a stranger in a motor, or taxi-car, or vehicle of any description.

Girls should never go to an address given them by a stranger, or enter any house, restaurant, or place of amusement on the invitation of a stranger.

Girls should never go with a stranger (even if dressed as a hospital nurse) or believe stories of their relatives having sufferd from an accident or being suddenly taken ill, as this is a common device to kidnap girls.

Girls should never accept sweets, food, a glass of water, or smell flowers offered them by a stranger, neither should they buy scents or other articles at their door as so many things may contain drugs

Girls should never take a situation through an advertisement or a stranger or registry office either in England or abroad, without first making enquiries from the Society to which they belong.

Girls should never go to London or any large town for even one night without knowing of some safe lodging".

मोटर, टैक्सी या और किसी प्रकारकी गाड़ीमें जानेवाला अपरिचित व्यक्ति तुम्हें पहुँचा देनेको कहे तो कभी साथ मत होओ।

कोई अपरिचित तुमसे मानपत्र या अभिनन्दनपत्र स्वीकार करनेकी प्रार्थना करे तो कभी भी उसके फंदेमें मत पड़ो; और न किसीके घर, रेस्टूराँ या मनोविनोदके स्थानोंपर ही जाओ।

अस्पतालकी नर्स (धाई) के वेशमें या और भी किसी वेशमें कोई अनजान व्यक्ति तुमसे यह आकर कहने लगे कि तुम्हारा अमुक सम्बन्धी किसी दुर्घटनामें आ फँसा है या घायल होकर अस्पतालमें पड़ा है तो उसकी बातपर विश्वास मत करो, क्योंकि तुम्हें बहकानेके लिये ही उसने ऐसा जाल रच रक्खा है।

कोई भी अपरिचित व्यक्ति तुम्हें खानेके लिये मिठाई दे, भोजन दे, पीनेके लिये जल दे, सूँघनेके लिये फूल दे तो कदापि तुम स्वीकार मत करो और न घरके पासकी दूकानोंपरसे इत्र आदि ही खरीदो, क्योंकि हो सकता है कि उसमें कोई नशीली चीज मिला दी गयी हो।

अखबारके किसी विज्ञापन या किसी अनजान आदमीके कहनेपर कोई नौकरी स्वीकार मत करो, इंग्लैंडमें हो या बाहर। पहले उनके बारेमें पूरा पता लगा लो कि कहीं उचक्के तो नहीं हैं।

लंदनमें या बाहर कहीं एक रातके लिये भी मत जाओ। जाना ही हो तो पहले किसी सुरक्षित निवासस्थानका पता जान लो।'

जो लोग अवरोधप्रथाको दूषित बतलाते हैं, उन्हें पाश्चात्य युवतियोंकी इन कठिनाईकी बातोंका स्मरण रखना चाहिये।

युवती स्त्रियोंको पैसोंकी कमाईके लिये पाश्चात्य देशोंमें कितना विषमय फल भोगना पड़ता है, इसका कुछ दिग्दर्शन कराया गया है। गरीबोंको—खास करके व्यक्तिस्वातन्त्र्यके नामपर असहाय अवस्थाको प्राप्त हुई युवतियोंको पैसेके लिये कर्म करना ही पड़ता है—उन्हें पेटके लिये जब जो काम मिल जाता है, बाध्य होकर वही स्वीकार करना पड़ता है। भले-बुरेका विचार करनेके लिये अवसर ही नहीं मिलता—धोखा देनेवालोंकी बुरी नीयत समझनेकी शक्ति युवतियोंमें नहीं होती—खास करके आतुरताके समय! हमारे देशके बड़े-बूढ़े लोग भी भुलावेमें आ जाते हैं—आड़काटीलोग कुलियोंको किस तरह बहकाकर ले जाते हैं, यह बात प्रसिद्ध है। अतएव नौकरी चाहनेवाली गरीब युवतियोंको कुटिनियाँ प्रलोभनमें

डालकर उन्हें घरसे निकाल ले जाती हैं। यह उनका पहला काम होता है। हमारे यहाँ भी जब व्यक्तिस्वातन्त्र्यके नाते स्त्रियोंको अपनी जीविकाका काम आप खोजना पड़ेगा, तब न मालूम उनकी कितनी दुर्दशा होगी! हा! इसीको आज सुधारकगण 'नारी-अधिकार' का विस्तार बतलाकर हमारी गृहलक्ष्मियोंको समझा रहे हैं!

पाश्चात्य देशोंकी व्यक्तितान्त्रिक समाज-रचनाके दोषसे सबको अपनेपर ही निर्भर करना पड़ता है। वहाँ अपनी सन्तानके लिये वर-कन्या खोजनेका भार प्रायः माता पिता या अभिभावकपर नहीं होता। इसलिये अधिकांश मनुष्य बहुत कालतक विवाह नहीं कर पाते। बहुतोंकी तो जवानी ही बीत जाती है। अतएव बहुत-सी स्त्रियाँ भी बहुत बड़ी उम्र-तक—कोई-कोई जीवनपर्यन्त—अविवाहिता रह जाती हैं; इस कारणसे उन्हें पुरुषोंके साथ विषम प्रतियोगितामें अर्थोपार्जनके कार्य करनेका कष्ट भोगना पड़ता है। पेटके लिये वे अर्थोपार्जनके तथा अन्यान्य कर्मोंमें पुरुषोंके साथ प्रतियोगिता करना चाहती हैं—और इसीको हम उन्नतिका चिह्न या नारी-अधिकारका विस्तार समझ बैठे और यहाँ भी वैसा ही करना चाहते हैं। इसका फल क्या होता है और क्या हुआ है, उसे स्थिरचित्तसे देखना चाहिये।

बहुत-सी अविवाहिता स्त्रियाँ जब इस प्रकार अर्थोपार्जनके कर्मक्षेत्रमें उतर आती हैं, तब स्वाभाविक ही 'आवश्यकता और पूर्तिके नियमानुसार' (Law of demand and supply) वेतनकी दर घट जाती है। जितने स्थान स्त्रियोंको मिल जाते हैं, उतने स्थानोंपर पुरुषोंको कार्य नहीं मिलता—वे कामपर जाते तो उनमेंसे बहुत-से लोग विवाह करके कुछ दूसरी स्त्रियोंको नौकरीकी फजीहतसे बचा सकते; परंतु काम न मिलनेसे वे ऐसा नहीं कर सकते, अतएव उनकी बेकारीके साथ ही उनसे प्रतिपालित होनेकी सम्भावनावाली स्त्रियोंको भी अर्थोपार्जनके लिये नौकरी करनी पड़ती है। अतएव जितनी ही अधिक स्त्रियाँ नौकरीके क्षेत्रमें बढ़ती हैं, उतने ही विवाहोंकी संख्या घटती है। जब बेकार आदमी अपना ही पेट नहीं पाल सकता, तब वह विवाह कहाँसे करे? पाश्चात्य देशोंमें यही हो रहा है। इस प्रकार बहुत-सी स्त्रियाँ बहुत कालतक अविवाहिता रहनेसे और अर्थोपार्जनके क्षेत्रमें पुरुषोंके साथ प्रतियोगिता करनेसे स्वाभाविक ही पुरुष और स्त्रियोंमें एक द्वन्द्व—एक विद्वेषभाव उत्पन्न हो जाता है (इसके अन्य गौण कारण भी हैं)। पाश्चात्य देशोंमें ऐसा हो गया है और क्रमशः बढ़ रहा है। इस बातको 'नारी-अधिकार' का विस्तार करनेवाले नेता भी स्वीकार करते हैं। इस प्रकार प्रतियोगिताके क्षेत्रमें दीर्घकालतक पुरुषोंके साथ कार्य करनेसे उनमें स्त्री-स्वभावसुलभ कोमलताके बदले पुरुषसुलभ कठोरता आ जाती है। सहानुभूतिकी प्रेरणा कम हो जाती है, जो दीर्घ-कालके अभ्यासके अभावसे उनको मातृत्वके, विवाहित जीवनके और गृहस्थीके कर्मके लिये अनुपयुक्त बना देती है। मातृत्वके और गृहस्थीके कर्ममें फिर उन्हें वैसा सुख नहीं मिलता वरं कष्ट होता है। दूसरेकी सुख-सुविधाके लिये अपनी सुख-सुविधाको बलि चढ़ा देनेकी प्रवृत्ति और शक्ति—जिसपर विवाहित जीवनकी सुख-शान्ति प्रधानतया निर्भर करती है—उनमें बहुत कम हो जाती है; अतएव वे अपने विवाहित जीवन-को सुख, शान्ति और स्वच्छन्दतामय बनानेमें अयोग्य हो जाती हैं। उनका विवाहित जीवन अशान्तिमय होता है और ऐसा होना अपरिहार्य है—पाश्चात्य देशोंमें यही हो रहा है। इसीसे वहाँ तलाक (विवाह-विच्छेद) भी जोरसे बढ़ रहा है और आज इसीको हमारे युवक-युवती नारी-अधिकारका विस्तार और उन्नतिका लक्षण मान बैठे हैं!

यदि सन्तान हो तो तलाक होनेपर उनकी कैसी दुर्दशा होती है और उसे देखकर माताओंको कितना कष्ट होता है, इसपर विचार कीजिये। खुद ही पसंद करके विवाह किया था, प्राण भरके प्रेम किया था, न जाने सुखके कितने स्वप्न देखे थे; वे सब चूर्ण हो गये! प्रेमास्पदका दुर्व्यवहार असह्य हो उठा—घर टूट गया; अब फिर नये सिरेसे घर बसाना होगा—फिर मनके अनुकूल साथीकी खोजमें भटकना पड़ेगा—और न जाने कितने मनचाहे स्थानोंसे ठुकराये जानेका चुपचाप अपमान सहना पड़ेगा। यह सब बातें प्रेम-प्रवण नारी-हृदयके लिये कितनी मार्मिक पीड़ा पहुँचानेवाली हैं, हमारे युवक-युवती जरा कल्पनाकी सहायतासे इसपर विचार करें और ऐसी स्थितिके उत्तरोत्तर बढ़नेसे ही नारी-अधिकारका विस्तार बतलाना कितना अनुचित है, इसपर भी विचार करें। इससे केवल पाश्चात्य विवाहप्रणालीका दोष और उसकी विफलता स्पष्ट प्रमाणित हो रही है! जो स्त्रियाँ अर्थोपार्जनका काम करनेमें अभ्यस्त हो चुकी हैं, प्रथम तो उन्हें गृहस्थीके काम ही अच्छे नहीं लगते, फिर बहुत-सी स्त्रियाँ विवाह होनेपर भी पैसेकी बहुतायतके लोभसे अर्थोपार्जनका काम करती रहती हैं। विवाहित स्त्रियोंके काम करते रहनेसे फिर अविवाहित स्त्रियों और पुरुषोंको अर्थोपार्जनकी विशेष

आवश्यकता है, उनका कर्मक्षेत्र संकुचित हो जाता है। वेतनकी दर घट जाती है, जिससे उनकी दुर्दशा होती है—नारी-समष्टिका भी किसी प्रकार भी कल्याण नहीं होता। केवल धनी मालिकोंको ही सुविधा होती है। विवाहिता स्त्रियोंके अर्थकरी कर्म करनेसे उनका विवाहित जीवन भी शान्ति और प्रीति उपजानेवाला नहीं होता; सन्तान होती है तो उनकी भी दुर्दशा होती है। जब स्त्री-पुरुष दोनों ही दिनभर काम करके थके हुए, नाना प्रकारकी झंझटोंसे हैरान हुए और विविध तापोंसे तपे हुए घर लौटते हैं, तब उनमेंसे कौन और कब किसको सेवा और सहानुभूतिकी शान्ति-धारा सींचकर सुखी, शीतल कर सकेगा? और यदि परस्पर आवश्यकतानुसार यत्न, सेवा और सहानुभूति ही नहीं मिलती, तब विवाहकी सफलता ही कहाँ है? तब तो वह घर घर नहीं है—बासा मात्र है। ऐसी अवस्थामें (सेवा और सहानुभूतिके अभावमें) साधारण कलह भी भीषण रूप धारण कर लेता है और बहुत बार उसीके फलस्वरूप तलाक (विवाह-विच्छेद) कर दिया जाता है। सन्तानका पालन, सेवा और सत्कार करना भी उनके लिये अत्यन्त कष्टकर होता है और जब सन्तान पिता-मातासे यत्न, आदर, स्नेह और शिक्षा नहीं पातीं, तब उनमें भी पिता-माताके प्रति प्रेम, भक्ति और श्रद्धाका विकास नहीं हो सकता। अतएव वृद्धावस्थामें जब दूसरेके सहारे, सेवा और सहायताकी नितान्त आवश्यकता होती है, तब सन्तानसे उनको ये चीजें नहीं मिलतीं। पाश्चात्य देशोंमें पिता-माता अपने पुत्रोंसे अब भी ऐसी सेवा नहीं पाते। इसीलिये उन्हें भाड़ेकी सेवापर निर्भर करना पड़ता है। गरीबोंकी दुर्दशा तो सीमाकी होती है। अधिकांश वृद्धोंको मानो निर्जन कारागारका दुःख भोगना पड़ता है। इसीसे पाश्चात्य देशोंमें वृद्धावस्था इतनी भयकी चीज है।

प्रेमका पात्र जितना समीप रहता है और उसकी जितनी अधिक सेवा-शुश्रूषा की जाती है, उतना ही प्रेम अधिक विकसित होता है। इसीलिये देखा जाता है कि जब बिना माके बच्चेको पिता विशेष यत्नसे सेवा करनेको बाध्य होता है, तब पिता भी प्रायः माताकी भाँति ही स्नेहशील हो जाता है। पिता-माताके अपनी सन्तानके पास न रह सकनेके कारण ही उनके प्रति स्नेहका विकास नहीं हो पाता। प्रेम करनेमें—यत्न और सेवा करनेमें जो सुख होता है—उससे जीवन जितना सरस रहता है, उससे वे वञ्चित रह जाते हैं। पृथ्वीकी सबसे उत्तम उपभोग्य वस्तु है प्रेम—उसीके विस्तारका पथ संकुचित हो जाता है। इस प्रकार परार्थपरता, प्रेम और सहानुभूतिका मार्ग सङ्कुचित होनेके फलस्वरूप ही स्वार्थपरता, निर्दयता और निठुरता प्रकट होती है—फिर धन ही जीवनका प्रधान काम्य हो जाता है और उसकी प्राप्तिके लिये मनुष्य सभी सद्वृत्तियोंकी बलि देनेके लिये बाध्य हो जाता है! Ellen Key जो नारी अधिकारका विस्तार करनेवाली एक प्रधान और विचारशीला नारी-नेता मानी जाती हैं—जिनकी 'Love and Marriage' नामक पुस्तकका सात आठ पाश्चात्य भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है—लिखती हैं कि 'विवाहिता स्त्रियोंके अर्थोपार्जनके कार्य करनेके फलस्वरूप अविवाहिता स्त्रियोंका पारिश्रमिक (वेतन) घट गया है।। उनकी घरकी स्वच्छन्दताकी ओर देखनेकी प्रवृत्ति और शक्ति लुप्त हो गयी है—वे जो कुछ पैदा करती हैं, असावधानताके कारण वे उससे कहीं अधिक नुकसान कर बैठती हैं। बहुत-सी बाँझ हो जाती हैं—बहुतोंके बच्चे नहीं जीते, उनके बच्चोंके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यको हानि पहुँचती है, विवाहित जीवन भी घृणाके योग्य हो जाता है, उनके घर आराम और शान्तिसे हीन होते हैं और उनमें मद्यपान तथा पापोंकी वृद्धि हो जाती है।' (These married women, who are partly maintained by their husbands, have by their supplementary earning reduced the wages of self supporting, unmarried ones and when these in their turn are married, they lack the desire and capacity to look after the home and waste through negligence more than they earn. The consequence of the outside employment of wives has further more been sterility, high infantile mortality and the degeneration of the surviving children both physically and psychically—a debased domestic life, with its consequence—discomfort, drunkenness and crime. (See 'Love and Marriage' Ch. V, p. 169.) पाश्चात्य देशोंमें भी जिसका फल इतना विषमय हुआ है, उसको नारी-अधिकारका विस्तार कैसे कहा जाता है और किस आशासे हमारे सुधारक महानुभाव ऐसा करना चाहते हैं, यह बात हमारी क्षीण बुद्धिमें नहीं आती। क्या हम यह नहीं देख सकते कि नारियोंका यह अधिकार वैसा ही है, जैसा गायोंके गलेपर

जूआ लादकर खुले मैदानमें हल खींचते हुए उन्हें मुक्त वायुसेवनका अधिकार देना अथवा उनका गाडीमें जुतकर उन्हें खींचते हुए जगह-जगह घूमने और देखनेका अधिकार प्राप्त करना और इसीके साथ अलङ्कारस्वरूप उनके गलेमें घंटा बाँध देना !

हमारे संयुक्त-परिवारकी प्रथाने लोकतः और धर्मतः प्रत्येक स्त्रीके आजीवन भरण-पोषणका अनिवार्य भार उसके पिता-माताके वशपर अथवा स्वामीके पिता-माताके वशपर दे रक्खा था; और सभी पुरुषोंको विवाह करनेका आदेश होनेके कारण प्रायः सभी अबलाओंको पुरुषोंके साथ विषम प्रतियोगितामें उतरकर धनोपार्जनके क्षेत्रमें अपमान और अत्याचार नहीं सहन करना पड़ता था । सभी स्त्रियोंको प्रथम यौवनसे ही—जिस समय इन्द्रियाँ बहुत ही प्रबल रहती हैं—कामोपभोगकी सुविधा होनेसे प्रकट या अप्रकटरूपसे उन्हें वेश्यावृत्ति नहीं करनी पड़ती थी । जिसमें नारीका यथार्थ नारीत्व है—नारी-जीवनका जो प्रधान कार्य (function) है, जिसमें नारी-जीवनकी सार्थकता है और जो जीवनको सरस रखनेका प्रधान उद्गमस्थान है, उस 'मातृत्व'का सुख जिसमें सब भोग सकें—सन्तानपालनमें संयुक्त-परिवारके अन्यान्य स्त्री-पुरुषोंकी सहायता मिलनेके कारण माताको विपत्तिका सामना न करना पड़े और न अधिक चिन्ता ही करनी पड़े—इसकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था की गयी थी । हमारे घरमें माताका स्थान सबसे ऊँचा है । इसपर भी आज पाश्चात्योंका अनुकरण करनेवाले सुधारक सज्जन हमें नारी-निग्रही बतलाते हैं । इधर हमारे पाश्चात्त्य भाई स्त्रियोंको प्रथम यौवनकी प्राकृतिक प्रेरणा और उच्छ्वासको रोकनेके लिये बाध्य करते हैं, अथवा उपभोगकी चाह रखनेवाली संसारसे अनभिज्ञ युवतियोंको विपत्तिके सागरमें डुबा देते हैं, मनोनुकूल युवकोंकी प्राप्तिके लिये अपार चेष्टा करनेको बाध्य करते हैं, इच्छित स्थलोंसे अपमानका बोझा हृदयमें छिपाकर बार-बार निराश होकर लौटनेको मजबूर करते हैं और इसके लिये उनके हृदयको विषमय बनाकर जलाते हैं, पुरुषोंके साथ विषम प्रतियोगितामें स्वास्थ्यनाशक तथा शारीरिक और मानसिक शक्तिके लिये अनुपयोगी अर्थोपार्जनके कार्यकी छीना-झपटीमें अबलाओंको झोंक देते हैं और इसके परिणाम-स्वरूप उनकी नारीसुलभ कोमलता, सुहृदता, सेवापरायणता, परार्थपरता क्षीण करके उन्हें गृहस्थीका कार्य करनेके लिये सर्वथा अनुपयुक्त बना देते हैं, मातृत्वके अङ्गों और उनसे सम्बन्धित स्नायु और स्नायुग्रन्थियोंको व्यवहाराभावसे शुष्क करके जगज्जननीरूपिणी जगद्धात्रीरूपिणी नारीका नारीत्व जो मातृत्व है—उसीको अपने 'उन्नत' समाजकी मशीनमें पीसकर नष्ट कर देते हैं और मातृत्वका निरोध करनेवाले उपायोंका अवलम्बन करके उन्हें पुरुषोंकी केवल काम-सहचरी और चित्तविनोदिनी सखी बनकर नारी जीवनको सार्थक करनेके लिये कहते और बाध्य करते हैं तथा नारीको नारीत्वसे विहीन करके उसे नकली पुरुष बनाते हैं । जो विवाह कर पाती हैं, उनमें भी अधिकांशको मनके विरुद्ध स्थलोंमें ही विवाह करनेको बाध्य होना पड़ता है । आगे पाश्चात्त्य देशोंमें प्रति-शत ७५ से भी अधिक विवाह अर्थके अथवा अन्यान्य सांसारिक सुविधाके लिये ही होते हैं—युवतियोंके स्वाभ्य प्रेम परिणयके लिये नहीं—और उनमेंसे अधिकांशका विवाहित जीवन अशान्तिपूर्ण होता है और तलाककी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है—जिनमें अनेकों स्त्रियोंको गुप्त वेश्यावृत्ति करनी पड़ती है । जिनके घरोंमें काम सहचरी नारी (और कम उम्रकी कन्या) के सिवा और कोई स्त्री नहीं है—यहाँतक कि माता भी घरमें स्थान नहीं पाती, जो वृद्धावस्थामें प्रायः सभी स्त्रियोंको निर्जन कारावासका दुःख भोग कराकर प्रियजनोंसे रहित वैतनिक या अवैतनिक सेवासदनोंमें पृथ्वीसे घोर विदा लेनेको बाध्य करते हैं, वे 'अबलाबान्धव' और 'नारी-अधिकार'के विस्तार करनेवाले हैं और हमारा 'शिक्षित' सम्प्रदाय अपनी चिर अभ्यस्त प्रथाके अनुसार सिर नवाकर इन्हींको मान रहा है और अपनी प्राचीन समाजरचनाको तोड़कर पाश्चात्योंकी अविकल नकल करके उन्हींकी भाँति 'उन्नत' और 'नारीपूजक' समाजकी रचना करनेके लिये कमर कसकर तैयार है और हमारी 'शिक्षिता' देवियाँ पाश्चात्योंकी दृष्टि-मनोहर समाजरचनाके इस प्रज्वलित अग्निकुण्डमें भस्म होकर मर मिटनेकी स्वाधीनता पानेके लिये आतुर हैं !! हा ! सर्वदर्शी भगवन् ! हमारी इस शौककी गुलामीकी घोर परिणति क्या होगी ?

आर्य महिलाओंमें आध्यात्मिकता

(लेखक— डा० श्रीदुर्गाशंकरजी नागर)

संसारके इतिहासमें भारतकी आध्यात्मिकता अपना एक विशेष महत्त्व रखती है। मिस्र, यूनान, रोम, बेबीलोन और अन्य देशोंकी सभ्यताएँ नष्ट-भ्रष्ट हो गयी हैं और उनका नामो-निशान भी नहीं है; किंतु शताब्दियोंतक क्रूर विपरीत कालचक्रका सामना करती हुई भारतीय संस्कृति अबतक जीवित है। इसका कारण है इसकी आध्यात्मिकता और इसका त्याग।

आजके लोग तो कहते हैं कि अध्यात्मविद्याने ही देशवासियोंको अकर्मण्य बना दिया और देशको पतितावस्थाके गर्तमें डाल दिया। अध्यात्मकी चर्चा आज लोगोंको नहीं रुचती। हमारी संस्कृति ऊँचे दर्जेकी थी, हम जगद्गुरु थे। हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षि ऐसे थे। उनकी कीर्तिगाथा और गौरवगानसे हमें क्या लाभ हो सकता है, जबतक हममें श्रेष्ठता, त्याग और आध्यात्मिकता न हो।' परंतु ऐसे लोगोंको विद्वान् साइलसके ये शब्द स्मृति-पटपर अङ्कित कर लेने चाहिये—'It is of momentous importance that a nation should have a great past to look back upon.' अपने राष्ट्र-जीवन और दृष्टिको विशाल बनानेके लिये प्रभावशाली भूतकालका गौरवपूर्ण होना परमावश्यक है। तभी हम घोरतर, कठिन से-कठिन अवस्थामें निर्भय होकर सिर ऊँचा रख सकते हैं।

पश्चिमके प्रसिद्ध विद्वान् क्रोजरके भारतीय संस्कृतिके विषयमें कैसे उदात्त विचार हैं, उनका मनन करें—' If there is a country on earth which can justly claim the honour of having been the cradle of the human race or atleast the scene of primitive civilization, the successive development of which is the second life of man, that country is assuredly India' यदि पृथ्वीपरसे कोई ऐसा देश है जो सबका गौरव रखता हो तो वह मानवजातिका आदिस्थान, प्रथम सुधार और सभ्यताका आदिस्थान निःसंशय भारतवर्ष ही है।

कोंटजेरोल्सटट, सुप्रसिद्ध फ्रेंच-साहित्यकार एवं विद्वान्, भारतीय संस्कृतिके लिये हृदयोद्गार प्रकट करते हुए कहते हैं—'हे प्राचीन भारतभूमि! जगत्‌की उत्पत्तिका आदिम स्थान, मनुष्य जातिकी धाय जननी! तेरा जय-जयकार हो। पूज्य धात्रि! तेरी जय हो। हे धर्मकी, प्रेमकी, कविताकी एवं विज्ञानकी पितृभूमि! हम तुझे प्रणाम करते हैं और चाहते हैं कि तेरा गौरवास्पद भूतकाल पश्चिमके भविष्यमें उदय होकर पुनरावर्तन करे।'

इस सभ्यता और संस्कृतिके आध्यात्मिक संस्कार डालनेवाले कौन हैं? वे हैं हमारी आर्यमाताएँ। भारतीय इतिहासके पर्यवेक्षण और गवेषणासे पता चलता है कि आर्यमाताओंकी दयासे ही हममें थोड़ी-बहुत भी आध्यात्मिकता शेष रह पायी है। यदि हमारे जीवनमें आध्यात्मिक अंशका समावेश न हो तो वह जीवन बोलने-चालनेवाले पशुओंका जीवन है। आर्यमाताएँ ही हमारे समाजकी शक्तिका प्राण हैं। भारतके महान् पुरुषोंको जन्म देनेवाली आर्यमाताएँ ही हैं कि जिन्होंने अपने आध्यात्मिक विशुद्ध जीवनके अमिट संस्कार उनके हृदय और जीवनपर अङ्कित किये हैं।

अर्जुन, कर्ण, भीष्मपितामह, अभिमन्यु अथवा पृथ्वीराज, प्रताप, शिवाजी और गुरुगोविन्दसिंहका चरित्र पढ़िये। उनमें असाधारण वीरता थी। ये वीररत्न माताके उदरसे ही महान् संस्कार प्राप्त करके उत्पन्न हुए थे। माताओंकी पवित्र, उच्च और वीरत्वकी भावनाका उनके जीवनपर अप्रतिहत प्रभाव पड़ा है। गर्भावस्थामें भगवान् बुद्धको शिक्षा देनेवाली उनकी पवित्र अन्तःकरणवाली माता थी। दधीचि, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य आदिमें जो अलौकिक योगबल था, उसका कारण उनकी माताएँ थीं। ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, रामदास और नरसिंह मेहतामें जो अद्भुत भक्तिबल था, वह सब आर्यजननीकी प्रबल इच्छा और आध्यात्मिक संस्कारोंका प्रभाव था।

समराङ्गणमें अप्रतिम शौर्यसे वीर योद्धाओंको चकित कर देनेवाले क्षत्रियोंका चरित्र पढ़िये। उनमें वीरताकी भावना जाग्रत् करनेवाली वीराङ्गनाओंकी उत्साहप्रद भावनाएँ ही कार्य करती थीं।

मदालसा देवी अपने पुत्रोंको जब पालनेमें सुलाती थी उस समय कैसी आध्यात्मिक भावनाओंसे पूर्ण लोरियाँ उनको सुनाती थी! उनके गलेमें ऐसे मन्त्रका यन्त्र बाँध देती थी कि घोर विपत्तिके समय उस तावीजको खोलकर उसमेंसे अमूल्य उपदेश अपने हृदय पटलपर अङ्कितकर मृत्युसे निर्भय हो जाते और अपना कर्तव्य दृढ़तासे पालन करते। यथा—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि
संसारमायापरिवर्जितोऽसि ।
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां
मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम् ॥

'हे पुत्र ! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरञ्जन है, संसारकी माया-से रहित है। यह संसार स्वप्नमात्र है। उठ, जाग्रत् हो, मोह-निद्राका त्याग कर। तू सच्चिदानन्द आत्मा है !' मदालसाके ये वाक्य कितने निर्भयता प्रदान करनेवाले हैं।

स्वर्गीय कविसम्राट् रवीन्द्रनाथजी टाकुरने अपने एक लेख-में भारतीय नारीकी विशेषताके विषयमें कहा है कि 'पाश्चात्य देशोंमें भी अनेक पतिभक्ता, सुशीला और साध्वी स्त्रियाँ हो चुकी हैं। कलाकौशल और भौतिक विद्यामें भी वे अग्रसर हो रही हैं, किंतु भारतीय नारीमें कुछ और ही विशेषता है।' जब याज्ञवल्क्य ऋषि संसारके जीवनसे थककर, संसारसे विरक्त हो, अरण्यमें जाने लगे तो उन्होंने अपनी पत्नी मैत्रेयीसे विदा चाही। मैत्रेयीको वैभव, ऐश्वर्य, धन-दौलत देने लगे और मैत्रेयीसे कहा कि तुम संसारमें रहकर श्रीमान्-जैसा सम्पन्न, शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकोगी। मैत्रेयीने कहा—

येनाहं नामृता स्यां तेनाहं किं कुर्याम्।
(बृहदारण्यक०)

क्या मैं इस धन-दौलतसे अमर हो जाऊँगी ? जिससे मुझे अमरता ही प्राप्त न हो, उस वस्तुको लेकर मैं क्या करूँगी ? भोगोंमें शान्ति नहीं है।

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथजी कहते हैं कि मैत्रेयीके इन शब्दों-में कितना जीवन, माधुर्य और सत्य भरा हुआ है ! क्या ऐसा उदाहरण अन्यत्र मिल सकता है ?

मैत्रेयीने फिर पूछा कि वह कौन-सी वस्तु है, जिसकी प्राप्ति मनुष्यको स्वाधीन और स्वतन्त्र बना देती है। वह जीवन-अमृत मुझे बताओ जिससे सच्चा सुख, सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द प्राप्त हो। इसके उत्तरमें महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा—'अरे, आत्माको ही देखना-सुनना और उसीका साक्षात्कार करना चाहिये। मनुष्य-जन्मका यही अन्तिम लक्ष्य है।' विदुषी गार्गीको भी याज्ञवल्क्यने यही उपदेश दिया।

यो वा एतद् अक्षरं गार्गि अविदित्वा अस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः। यो वा एतद् अक्षरं गार्गि ! विदित्वा अस्मा-ल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः।

'हे गार्गि ! जो इस अविनाशी तत्त्वको बिना जाने इस लोकसे विदा हो जाता है, वह कृपण है—कंजूस है। उसका जन्म निष्फल है और जो उस अमर-तत्त्व आत्माको जान लेनेके पश्चात् इस लोकसे विदा होता है, वह ब्राह्मण है।'

आज भी हजारों आर्य महिलाओंने पञ्जाबमें अपने सतीत्व-की रक्षाके लिये और आततायियोंके हाथ न पड़नेके लिये अपने प्राणोंको उत्सर्ग कर दिया, अपने शरीरके मोहको छोड़कर अपने शरीरको धधकती हुई अग्निके समर्पण कर दिया। यहाँतक कि अपने ही आदमियोंसे अपने शरीरके टुकड़े-टुकड़े करवा दिये।

'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' (गीता २। २०)। शरीरके नाश होनेसे और मर जानेसे आत्माका नाश नहीं होता। मृत्यु उस आत्माका स्पर्श नहीं कर सकती। यही हमारे भारतवर्षकी महान् आध्यात्मिक निधि है।

'अध्यात्मके विषयमें जर्मनीके सुप्रसिद्ध विद्वान्, तार्किक और तत्त्ववेत्ता शोपनहारने कैसे उत्कृष्ट वचन कहे हैं—

अध्यात्म-विद्याके पवित्र ग्रन्थ उपनिषदोंके मनन करनेसे, हर एक पदसे गहरा, नया और उच्च विचार उत्पन्न होता है। भारतवर्षका प्राचीन वायुमण्डल हमें घेरे हुए है और नयी रोशनी और नवीन विचार भी हमारे चारों ओर हैं। सारे संसारमें किसी दूसरी विद्याका अभ्यास ऐसा उपयोगी और हृदयको शान्ति देनेवाला नहीं है, जैसा कि भारतीय अध्यात्म-विद्याके उपनिषदोंका साहित्य। इसने मेरे जीवनमें परमानन्द और परम शान्ति दी है और यह मृत्युके समय भी परम आनन्द और शान्ति देगा।'

स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः
प्रशान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः ।
निरन्तरं ब्रह्मणि ये रमन्तः
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥
([illegible])

'जो अपने आत्माके आनन्दभावमें सदा प्रसन्न रहते हैं, जिनकी सब इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ प्रशान्त रहती हैं, जो निरन्तर ब्रह्ममें ही रमण करते हैं, ऐसे पुरुष केवल लँगोटी लगाये हुए हों तो भी महाभाग्यशाली हैं।' सच्चे आत्मज्ञानसे ही शान्ति, आनन्द, स्वाधीनता और स्वतन्त्रता मिल सकती है। अन्य मार्गसे नहीं।

अन्तमें स्वदेशभक्त लाला लाजपतरायजीके गौरवप्रद और भावपूर्ण वचनोंको दिया जा रहा है। हमें चाहिये कि इन-के सत्यको पहचानें।

'हमारी आध्यात्मिकता हमारी बड़ी पूँजी है। मुझे विश्वास है कि हममेंसे ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा, जो यूरोपके भौतिक पदार्थोंसे आध्यात्मिकताका परिवर्तन करनेको तैयार हो। मैं उसको समस्त संसारके साम्राज्यके लिये भी छोड़नेको तैयार नहीं हूँ। तुम मुझसे पूछ सकते हो कि मैं ऐसा करनेको क्यों तैयार नहीं हूँ। मैं इसके उत्तरमें दो ही शब्द कहूँगा। 'क्योंकि फिर हम हिंदू नहीं रहेंगे।' कम-से-कम मुझे तो यह स्वीकार नहीं है कि संसारके आरम्भसे जो आध्यात्मिकता मुझे पूर्वजोंसे प्राप्त हुई है, उसका परित्याग कर दूँ। हमलोगोंकी पतित परिस्थिति है। इससे भी पूर्णरूपसे मैं परिचित हूँ। किंतु इतनेपर भी मैं यह महसूस करता हूँ कि हम अपनी वर्तमान अधोगतिमें भी सभ्यताकी उच्च-से-उच्च कोटिमें हैं, जो हमें सौंपी गयी है, सिवा हमारे और कोई दूसरा हमारी आनेवाली सन्तानको नहीं सौंप सकता।'

नारी

(लेखक—पं० श्रीचन्द्रबलीजी पाण्डेय, एम्० ए०)

नारी अभीतक नरके लिये पहेली थी, पर अब वह पश्चिमकी कृपासे अपने लिये ही पहेली बनती जा रही है! वह नरके आश्रयमें रहना नहीं चाहती, पर अपने जीवनका विकास उसीके मध्य देखना चाहती है। उसके प्रशंसक तो बहुत हैं, पर उसके शीलकी शोभा बढ़ानेवाले कितने अल्प? कारण कुछ भी हो, परिस्थिति यही है। इसकी उपेक्षा हो नहीं सकती। उसको माता कहनेकी प्रथा उठ चली है और लोग उसे मिस्टर, मिस या देवीके रूपमें ही देखते अथवा मुँहसे कहना चाहते हैं। स्थिति जो कुछ रहे, पर कुछ बातोंपर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। सबसे पहले जो बात इस जनके सामने आती है, वह यह है कि स्त्री स्त्रीका ही उपहास क्यों करती है। गालीकी प्रथा उठती जा रही है, पर विनोदकी मात्रा घटती नहीं है। वह तो एक प्रकारसे और भी बढ़ती जा रही है। मानवने किस भावनासे प्रेरित होकर जड़ पदार्थोंमें भी नर-नारीकी कल्पना कर ली और किस प्रेरणासे प्रेरित होकर अपने विकसित जीवनसे नपुंसकको निकाल दिया—इसे कौन कहे; पर कौन नहीं जानता कि यही लिङ्गभेद हिंदी-भाषाकी दुरूहताका कारण बन गया है और उसको दूर करनेका छोटा-मोटा आन्दोलन भी चल पड़ा है। उधर किशोरी भी किशोर बननेके लिये लालायित है और अपनी वेश-भूषासे प्रकट तो वैसा ही होना चाहती है। होना सब कुछ चाहती है; किंतु होनहार कुछ और ही दिखायी दे रही है। सारे श्रम, उद्योग और प्रयत्नोंके पश्चात् नारी नारी ही रह जाती है और अन्तमें उसकी यह अनुभूति उसके लिये महँगी ही पड़ती है। महँगी तो उसके लिये बस, लाञ्छना ही है। जो हो, कहना तो हमें यह है कि नारी नारीके द्वारा ही नरको क्यों लज्जित करना चाहती है और क्यों अपनी नारीकी मर्यादासे ही कुण्ठा अनुभव करती है।

लगभग बीस वर्ष पहलेकी बात है, यह जन अपने सहज भावमें शौचको जा रहा था। देखा तो एक श्वान भी उधरसे निकला और अपनी सहज गतिसे अपने मार्गपर चला गया। उसको इस प्रकार अपने रंगमें जाते देखकर मेहतरानीको न जाने क्या सूझा कि वह अपने बच्चेसे बोल उठी कि 'तुम्हारे फूफा जा रहे हैं।' मेहतर भी मुसकरा उठा। बात बच्चेसे कही गयी थी, पर उसका प्रभाव पड़ा बापपर। माता पिताकी इस चुहलका पुत्रपर जो प्रभाव पड़ा, उसका अनुमान हम स्वयं कर सकते हैं और सरलताके साथ कह सकते हैं कि जान या अनजानमें यही परम्परा इसी प्रकार आगे बढ़ती आ रही है। ठीक है, पर इस भावनाका उदय ही उस मेहतरानीके चित्तमें क्यों हुआ? प्रसंगवश इतना जान लें कि उसका दम्पति-जीवन अत्यन्त सुखी था और उसका सुहाग भी उसके शीलके साथ खिल रहा था। फिर भी अपने विनोदका साधन उसने अपनी जातिको ही बनाया और अपनी ननदको ही एक प्रकारसे गाली दी। व्यक्तिगत रूपमें जो बात हुई, वही समूहमें भी प्रतिदिन होती देखी जा सकती है। किसी ससुरालका दृश्य सामने रख लें और प्रत्यक्ष देख लें कि स्त्रियाँ किस हुलाससे क्या गा रही हैं और अपने गुरुजनोंके सामने ही, अपने परिजनोंमें ही क्या पँवारा फैला रही हैं। ऐसी बेतुकी और फूहड़ बातें सुर में सुर मिलाकर एक साथ एक ध्वनिमें इस उल्लाससे कह रही हैं कि स्वयं लज्जा भी लज्जित होकर कुछ और ही रंग दिखाती है और किसी लज्जालुकी शोभा बढ़ाकर अन्तमें उसे भी मुँहफट बना देती है। एक वृद्ध महोदयका यह कथन बराबर कानोंमें गूँजा करता है कि यह ऐसी महिम जाति है कि अपना अपमान आप ही करती है। तो क्या यह सच है? फ्रायड आदि विलायती विद्वानोंका कथन क्या है, इसे हम नहीं जानते और न यही जानते कि

विश्वमें इस विनोदकी स्थिति क्या है। हम तो 'सेक्स'के पुजारियों और 'सुश्री'के लेखकोंसे केवल इतना भर जानना चाहते हैं कि इसका रहस्य क्या है और वह कौन-सी वासना या मूल प्रकृति है, जिसकी प्रेरणासे नारी नारीकी भर्त्सनामें ही सुख-सन्तोष और आनन्दका अनुभव करती है। स्मरण रहे, दासता या उसकी विवशताके माथे ही सब कुछ नहीं मढ़ा जा सकता। नहीं, विवेक और मानवताके नाते कुछ उसके तत्त्वपर भी विचार करना ही होगा और मानव-जीवनके विकासमें उसकी स्वतन्त्र सत्ताका हाथ भी देखना ही होगा। प्रश्न बीस या उन्नीसका नहीं, सोलह आनाका है और इसीसे मनभरका उसपर विचार भी करना है। कोई कुछ भी कहता रहे, पर अपने रामको तो कभी नर-नारीमें अभेद दिखायी नहीं देता और न ऐसा देखनेकी चेष्टामें कोई मङ्गल ही हाथ लगता है। निदान इस जनका निश्चित मत है कि नारीको नारी ही रहने दिया जाय और उसे नर बनानेकी वृथा चेष्टामें मूड़ न मारा जाय। कारण: यह नर बनी नहीं कि नर नारी बना और फिर वही विपरीत सुख आगे रहा। तो फिर इससे लाभ क्या? प्रकृतिने उलटा सीधा अपना काम तो करा ही लिया, फिर यह विलोम कैसा? अस्तु, कहना पड़ता है कि नारीके विकासमें उसकी सहज प्रवृत्तिका मर्दन नहीं हो सकता और उसकी प्रकृतिपर पुरुषार्थका परदा नहीं चढ़ सकता। संस्कृतके पण्डितोंने न जाने क्या समझकर 'दारा'-को पुंल्लिङ्ग और 'कलत्र'को नपुंसक बना दिया और काम उनसे स्त्रीका ही लिया। तो क्या यही स्थिति उन नारियोंकी है, जो समाजमें पुरुष अथवा अपुरुषके रूपमें आ रही हैं पर काम कर रही हैं नारीका ही? समाधान कुछ भी हो व्यवधान कुछ भी पड़े, पर वस्तुस्थिति यह है कि नारी नारी ही है, उसे नर होनेमें लाभ नहीं। वह नरकी जननी जो है!

नारीके दो रूप

(रचयिता—श्रीछोटेलालजी मिश्र)

(१)

एक वे नारी, जिन संतति विद्वान होत,
　　एक वे नारी, जिन संतति अनारी हैं।
एक वे नारी, जो घर-तन सफाई राखें,
　　एक न न्हायँ, देयँ घरमें ना बुहारी हैं॥
एक वे नारी, जो बालकको डराय राखें
　　एक वे कायरको बनावें बलधारी हैं।
एक वे नारी, बिना पढ़ी लिखी पालें धर्म,
　　छोटे एक, ठोकर धर्म ऊपर जिन मारी हैं॥

(२)

एक वे नारी, वन पठावें सौत-लालनको,
　　एक वे नारी भेजें सौति संग अपना।
एक वे नारी, जो विषयमें लिप्त रहें,
　　एक वे त्यागि सब, हरी नाम जपना॥
एक वे नारी, जो मोह, ना बिसारि सकें,
　　एक वे, बिसारें मोह, समझें जग सपना।
एक वे नारी, जो दोऊ कुल तारि देयँ,
　　छोटे एक नारी, जो न तरि सकें अपना॥

(३)

एक वे भोर होत ईश्वर-गुणगान करें,
　　एक वे देन लगें भोर होत गारी हैं।
एक वे नारी, जो दाता और दानी जनें
　　एक वे नारी, जनें चोर और ज्वारी हैं॥
एक वे, जिनके पूत देश-धर्म-रक्षक जो,
　　एक वे जिन्न-जमदूत उन्हारी हैं।
छोटे द्विज चाहो कल्याण तो सुधार लेहु,
　　कर्ता और कारण तो हमारी महतारी हैं॥

आधुनिक नारी

(लेखक—पं० श्रीद्वारिकाप्रसादजी चतुर्वेदी)

यद्यपि कहने-सुननेके लिये अंग्रेज इस देशको छोड़ गये, तथापि अंग्रेजियतसे हमारा पिंड अभी नहीं छूटा और न शीघ्र छूटनेकी आशा ही है। इस अंग्रेजियतका प्रभाव इतनी गहराईपर है कि इससे कदाचित् ही कोई बचा हो या बच सके। सम्पादक महोदय! क्षमा करना। हमारी धारणा तो यह है कि अंग्रेजियतके प्रभावसे आप भी नहीं बच सके। यदि ऐसा न होता, तो 'नारी-अङ्क'की योजना आप क्यों करते? हमारी आर्य-संस्कृतिमें तो नारीका स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही नहीं माना गया। तब 'कल्याण'का यह 'नारी-अङ्क' कैसा? हाँ, इस नयी स्वतन्त्रताके युगमें हमारे प्रान्तमें इस समय 'नारी-शासन' है, इस दृष्टिकोणसे यह आपका 'नारी-अङ्क'का आयोजन सामयिक ही है।

प्राचीन कालकी भारतकी आदरणीया और प्रातःस्मरणीया नारियोंकी पुण्यदायिनी गाथाओंको सुननेवाले आजकलके शिक्षित एवं सभ्य-समाजमें सम्भव है, एक-दो ही व्यक्ति निकलें। भारतीय सभ्य-समाजमें ऐसे लोगोंका ही बोलबाला है, जो भारतीय नारी-समाजको यूरोपियन नारी समाजके आदर्शपर चलाना देशोन्नतिका मूल-तत्त्व समझ बैठे हैं। जिस विषमयी अंग्रेजी शिक्षासे हमारे देशके युवक 'न घरके न घाटके' हो रहे हैं, उसी अंग्रेजी शिक्षाका प्रचार बड़ी तत्परतासे भारतीय युवतियोंमें किया जा रहा है! जो भ्रष्टाचार, जो दुर्व्यसन, जो निस्सार अहंकार और जो गर्हित आदर्श आज एक भारतीय शिक्षित युवकके हैं, वे ही एक भारतीय नारीके सामने उपस्थित किये जा रहे हैं। जिस प्रकार युवक स्कूलों-कालेजोंमें शिक्षा प्राप्त करनेको जानेपर फैशनके गुलाम बन-कर आते हैं, वही दशा गर्ल्स स्कूलों और गर्ल्स कालेजोंमें शिक्षा प्राप्त करनेवाली लड़कियों और युवतियोंकी देख पड़ रही है। ऊँची एड़ीका जूता, मुँह और सिर उघरा, साड़ी या धोतीका एक पल्ला एक कंधेपर इस ढंगसे पड़ा हुआ कि जिससे वाम वक्षःस्थल ढका न हो, आधा ढका और आधा खुला। स्त्रियोचित लज्जा या हयाका नामोनिशान भी नहीं। सिनेमा देखनेका जो शौक कालेजोंके युवकोंको है, वही इन युवतियोंको भी। जिस प्रकार लड़के जहाँ-तहाँ अभिनय किया करते हैं, उसी प्रकार युवतियोंके छात्रावासोंमें भी अभिनय होते रहते हैं। प्रयागके युवतियोंके एक छात्रावासमें तो छात्राओंके लिये अभिनय-कृत्य नियमित रूपसे निर्दिष्ट है। इन अभिनयोंके पुरुष-सूत्रधार ग्रीनरूममें बेरोक-टोक आते-जाते हैं। इसी प्रकारके एक नहीं, अनेक दूषणोंको इन संस्थाओं-में स्थान प्राप्त हो रहे हैं।

हमारे बाल्य-कालमें एक समय था, जब कचहरीको घरकी स्त्रियाँ 'किरानीखाना' कहती थीं और जो वहाँ काम करते थे, वे घरमें उन कपड़ोंको पहने हुए नहीं घुस पाते थे। जो शुद्धि टट्टी जानेवालेको करनी पड़ती थी, वही शुद्धि किरानीखानेमें काम करनेवालोंको घरमें घुसनेके पूर्व करनी पड़ती थी। बाबूजी भले ही विंश-शताब्दीके नवीन शिक्षा-दीक्षाप्राप्त जेंटिलमैन बन जाते, किंतु घरमें उन्हें प्राचीन प्रथाको ही बर्तना पड़ता था। इन लोगोंकी इस नैतिक दुर्बलताकी अंग्रेज दिल्लगी उड़ाते थे। यह हमारी अपने नेत्रोंसे देखी और कानोंसे सुनी बातें हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि इन बाबुओंको 'स्त्री-शिक्षा'के प्रचारमें ही अपनी भलाई देख पड़ी और यह 'स्त्री-शिक्षा'के प्रचारके लिये सिरतोड़ परिश्रम करने लगे। अच्छा हो या बुरा, उद्योग तो कभी-न-कभी सफल होता ही है। अतः आज इन लोगोंका उद्योग सोलहों आने सफल हो रहा है। बाबूजी जितना चाहते थे, उससे कहीं अधिक सुधार उनके घरमें दृष्टिगोचर हो रहा है। इसकी प्रतिक्रिया आगे जो होगी, उसे जान लेना कठिन नहीं है। देखा-देखी दशा यहाँतक बिगड़ चुकी है कि आधुनिक हिंदुस्थानी अफसरोंकी गृह-देवियाँ हिंदू-महिलोचित सम्बोधनोंसे घृणा करने लगी हैं। हम एक ऐसे गजटेड अफसरकी महिलाको जानते हैं, जो अपने पतिके अर्दलीके मुखसे 'बहूजी' कहकर सम्बोधन किये जानेपर आपेसे बाहर हो गयी थीं। अपनेको 'मेम साहिबा' कहलानेकी उत्कट लालसा ही उस बेचारे अर्दलीकी भर्त्सनाका कारण थी। यह तो हुई आजकलकी एक भद्र महिलाकी बात; हम एक ऐसे बंगाली महोदयके नामका भी उल्लेख कर सकते हैं, जो 'बाबू' कहनेपर अग्निशर्मा बन जाते थे। सन् १८९५-९६ की बात है, प्रयागके कालविन अस्पतालमें राय-बहादुर डाक्टर महेन्द्रनाथ ओहदेदार एसिस्टेंट सर्जन थे। यह एक सफल और चिकित्सा-कार्यमें सुयशप्राप्त महानुभाव थे। प्रयागमें उस समय इनकी प्रैक्टिस बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। जाति-के ये बंगाली थे। बंगालीको लोग साधारणतः बाबू कहा ही

आधुनिक नारी
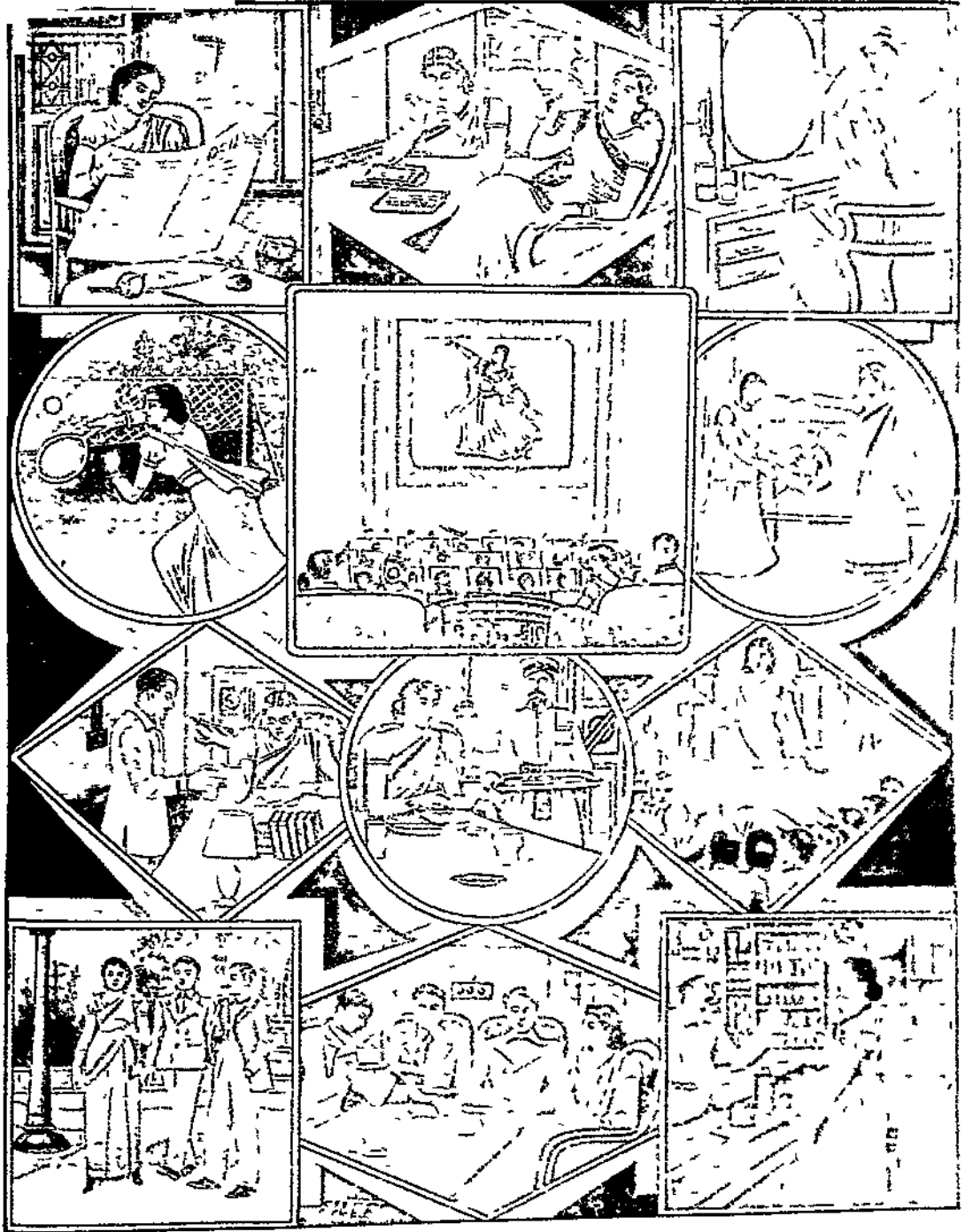
पढ़े अखवार, है सिगारका उड़ाती धुआँ, करती सिंगार भी पामेड पाउडरसे।
क्लब और सिनेमा जाती पर-पुरुषोंके साथ, दाईपर बच्चोंका उतार भार सरसे॥
पतिसे मँगाती जल, खाती खुद होटलमे, वक्‌ता सुनाती पुरुषोंको तार स्वरसे।
मित्रों संग घूमती है, जाती चायपार्टियोंमें, आती है बाजारमें निकलकर घरसे॥

दिया करते हैं; किंतु यदि डाक्टर ओहदेदारको कभी कोई भूलसे भी 'बाबू साहब' कह देता तो कहनेवालेकी शामत आ जाती थी। वैसे आप बड़े ही मिलनसार और सरल स्वभावके सज्जन थे, किंतु अंग्रेजियतकी बू उनमें भरी हुई थी। इस प्रकारके कई एक पुरुषों और महिलाओंको हम जानते हैं, जो कृष्ण-वर्णके होनेपर भी शानमें अपनेको किसी गौराङ्गीसे कम नहीं समझतीं। यहाँतक कि ऐसे लोग अपनी मातृभाषा भी जान-बूझकर बिगाड़कर ही बोलते हैं। यह लोग 'आप क्या चाहते हैं?' न कहकर 'तुम क्या माँगता है' कहा करते हैं। जैसे अंग्रेज हिंदी-भाषाके शब्दोंको जबान ऐंठकर एक विलक्षण दम्भसे उच्चारण करते हैं, वैसे ही ये भी उनके शब्दोच्चारणका अनुकरण करनेमें अपना बड़प्पन समझते हैं।

पिछले दिनों हमारे घरकी लड़कियाँ पढ़ायी अधिक नहीं जाती थीं, वे गुनायी अधिक जाती थीं। गुननेसे उनकी स्मृतिशक्तिका अद्भुत विकास होता था। ये उत्तम श्रेणीकी गृहस्वामिनी बनती थीं। पुरुषका काम धनोपार्जन करनामात्र था और गृहका सारा प्रबन्ध और दायित्व उनके ऊपर रहता था। वह समय था, जब इस देशके गृहस्थोंके घर भरे-पूरे और सुख-शान्तिके निकेतन थे। उस कालकी देवियोंको देखनेसे मनमें उनके प्रति श्रद्धा और आदरकी भावना स्वतः ही उत्पन्न होती थी। उस समयकी स्त्रियोंकी रहन-सहन, आचार-विचार तथा घरके छोटों-बड़ोंके प्रति उनका कर्तव्य-पालन उनको सुगृहिणीकी उपाधि देनेके हेतु सर्वथा उपयुक्त था। घरके छोटोंके प्रति (वे भले ही उनके जेठ या देवरकी सन्तान ही क्यों न हों) उनका अकृत्रिम स्नेह और वात्सल्य भाव तथा घरके बड़ोंके प्रति उनका आदरका भाव घरमें सुख-शान्ति बढ़ानेवाला होता था। घरकी स्त्रियाँ घरमें रहनेवाले भाइयोंमें सद्भाव बनाये रखनेको सदा प्रयत्नशीला रहती थीं और 'जहाँ सुमति तहँ संपति नाना' वाली पुण्यश्लोक गोस्वामीजीकी उक्ति अक्षरशः चरितार्थ होती थी। वह काल था, जब गृहस्थाश्रम सचमुच सर्वश्रेष्ठ आश्रम बना हुआ था।

किंतु आज? इस प्रश्नका उत्तर देना अनावश्यक इसलिये है कि गृहस्थाश्रममें आज एक गृहस्थकी जो दयनीय दशा है, उसका थोड़ा बहुत अनुभव प्रायः सभीको है। अतः उक्त प्रश्नका उत्तर प्रश्नकर्ता अपने व्यक्तिगत अनुभवद्वारा स्वयं प्राप्त कर सकता है।

युवक-शिक्षाद्वारा हिंदूदुर्गपर आरम्भमें अंग्रेजोंने आक्रमण तो किया, किंतु वे दुर्गकी दीवालोंको भग्नकर दुर्गके अंदर न घुस सके। स्त्री-शिक्षारूपी आक्रमणद्वारा वे दुर्गकी दीवालोंको भग्नकर दुर्गके अन्तःपुरतक पहुँच गये, और भारतीय सभ्यता और संस्कृतिको विकृत बना दिया। अंग्रेजोंकी शिक्षा-दीक्षाके गुलाम भारतवासी अंग्रेजोंके छोड़े इस अधूरे कामको 'तलाक'को हिंदू-समाजके लिये वैधिक कृत्य बना तथा स्त्री-पुरुषके रजिस्टर्ड वैवाहिक सम्बन्धको नियम-तन्त्र-सम्मत ठहराकर हिंदू नारी-समाजमें एक क्रान्ति उत्पन्न कर चुके हैं। यह लोग प्राचीन कालीन सुगृहिणी नारियाँ नहीं चाहते। यह लोग चाहते हैं अंग्रेजी मेम साहिबाएँ! अतः ये लोग स्त्रीको पुरुषके समानाधिकार प्रदान करनेके मिस हिंदू-समाजमें और हिंदूघरोंमें अशान्ति और उच्छृङ्खलताका साम्राज्य स्थापन करनेको तुले हुए हैं! यद्यपि विवेकी विदेशी हिंदुओंकी सामाजिक प्रथाओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर चुके हैं और अब भी करते हैं, तथापि लार्ड मैकालेके ये शिष्य हिंदू विदेशियोंकी दूषित सामाजिक प्रथाओंके प्रति आस्थावान् हैं। इनका लक्ष्य एक भारतीय महिलाको विदेशी वेष-भूषा तथा संस्कृतिसे सम्पन्न करना है!!

कई वर्षोंकी पुरानी बात है। हमें एक आवश्यक कार्य-वश स्वर्गीय डाक्टर गङ्गानाथजी झाके आवास स्थानपर जाना पड़ा। हमलोग वार्तालाप कर ही रहे थे कि प्रयाग-विश्व-विद्यालयके कतिपय छात्र भी वहाँ आ पहुँचे। आनेका कारण पूछनेपर छात्रोंने कहा—'हम विश्वविद्यालयमें एक प्रोफेसरकी लड़कीके नृत्यका कार्यक्रम बनाना चाहते हैं; अतः हमें इसके लिये अनुमति प्रदान की जाय।' डाक्टर साहबने उन छात्रोंकी बात सुन लेनेपर एक जिज्ञासाभरी दृष्टि हमपर डाली। डाक्टर साहबका आन्तरिक अभिप्राय जान लेनेमें हमें कठिनाई नहीं हुई। हमने कहा—'आप विश्वविद्यालयके वाइस चान्सलर हैं और ये आपके विश्वविद्यालयके छात्र हैं। अतः उपस्थित विषयपर हमारा कुछ कहना सर्वथा अनुचित और अप्रासङ्गिक है।' इसपर डाक्टर साहबने मुसकराकर कहा—'यह तो आप ठीक कहते हैं; किंतु ऐसे नृत्यके सम्बन्धमें आपके व्यक्तिगत विचार क्या हैं, हम यही जानना चाहते हैं।' उत्तरमें हमने कहा—'हम तो सनातनधर्मी हैं। हमारे निजके विचार कुछ नहीं, प्रत्युत हमारे विचार तो वे ही हैं, जो हमारे नीतिकारोंके अनुभूत विचार हैं।' यह कहकर हमने नीतिका एक श्लोकार्द्ध पढ़ा 'वल्गा गणिका नटी निर्लज्जाश्च कुलाङ्गनाः।' 'जो युवती [illegible] पुरुषोंके बीच नाचे, वह क्या कुलाङ्गना कही जा सकती है?' इसे सुन डाक्टर साहबने उन छात्रोंको अनुमति देना अस्वीकृत कर दिया। इसपर स्थानीय दैनिक 'लीडर' में डाक्टर साहबके विरुद्ध आन्दोलन भी उठाया गया, किंतु प्रौढ़ विचार रखनेवाले डाक्टर साहबके मनके ऊपर उस अवाञ्छनीय आन्दोलनका

कुछ भी प्रभाव न पड़ा । इतना ही नहीं, डाक्टर साहबने 'ग्रेजुएट' होनेपर भी अपने विश्वविद्यालयमें पढ़ने नहीं दिया । पाश्चात्य मनोवृत्तिके लोगोंने इसका भी बड़ा विरोध किया था; किंतु इंग्लैंडके एक बड़े प्रसिद्ध व्यक्तिका पत्र डाक्टर साहबने हमें दिखाया था, जिसमें डाक्टर साहबकी इस दूरदर्शिताभरी नीतिकी सराहना मुक्तकण्ठसे की गयी थी ।

इसी प्रकार दिव्यलोकवासी पं० मदनमोहनजी मालवीयने एक बार हिंदू-विश्वविद्यालयकी चर्चा छिड़नेपर हमसे कहा था— 'चौबेजी! हमसे एक बड़ी भूल हुई कि हमने कन्या-विभाग भी खोला ।' इस कार्यको भूल कहनेका कारण पूछनेपर हमें जो उत्तर मिला था, उसे हम लिखनेमें असमर्थ हैं । जिस प्रकार मालवीयजी हिंदू-विश्वविद्यालयसे कणाद, गौतम, भरद्वाज, वसिष्ठ-जैसे स्नातक निकालना चाहते थे, उसी प्रकार इस विश्वविद्यालयमें वे गार्गी, गौतमी एवं अनसूया-जैसी स्त्रियाँ बनानेको भी उत्सुक थे; किंतु उनकी ये दोनों ही आशाएँ निराशाओंमें परिणत हुईं !

अन्तमें हम यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि हमारे इन निजी विचारोंको पढ़कर कहीं पाठक भ्रममें न पड़ जायँ । हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि प्राचीन कालकी प्रतिमानमें सौ-की-सौ नारियाँ आदर्श होती थीं । नहीं, उस कालमें भी क्रोधना, कलहप्रिया नारियोंके कारण अनेक गृहस्थोंके घर साक्षात् रौरव नरक बने हुए थे । ऐसी कर्कशाएँ भी थीं, जिनके विषयमें किसी कविने कहा था—

न्हाय धोय पलका पर बैठीं, कर सोलह सिंगार ।
सूरें देखना घर माँहि दीजो कब मरिहैं भरतार ॥

किंतु ऐसी कर्कशाओंकी संख्याकी अपेक्षा सुगृहिणियोंकी संख्या अत्यधिक थी । इसी युगमें नहीं, वरं पुरातन युगोंमें भी स्त्रीस्वभावसुलभ निर्बलताओंसे ओतप्रोत स्त्रियाँ थीं । शूर्पणखाको वस्तुतः यदि जन्मना राक्षसी होनेके कारण-उपेक्षणीय भी मान लें जायँ, तो उसी युगकी अयोध्याकी श्री-को नष्ट करनेकी मूल कारण मन्थराके लिये क्या समाधान किया जा सकता है । लङ्काकी राक्षसियोंमें ही तो त्रिजटा थी, जिसने दुःखाम्बुधिमें डूबती हुई माता जानकीको आश्वासन प्रदान किया था; किंतु त्रिजटा थी एक ही । किष्किन्धाकी बलवान् वालिकी पत्नी ताराकी समझ और धार्मिकता क्या भुलाने योग्य है ? आजकलके नवीन शिक्षाप्राप्त युवकों-में भी ऐसे उच्चकोटीय आदर्शान्वित इने-गिने ताराओंकी तरह कतिपय युवकोंके जीवनका कार्यक्रम और उनकी दिनचर्या प्रशंसनीय है, उसी प्रकार आधुनिक कालकी कतिपय शिक्षाप्राप्त युवतियाँ भी अपने स्त्रीसमाजमें सराहनीय अपवाद हैं; किंतु फैशनेबिल नारियोंकी संख्या अत्यधिक देख हमें दुःखके साथ ऊपरकी पंक्तियोंमें उनके विषयमें कतिपय अप्रिय बातें लिखने-को विवश होना पड़ा है !

हमारा आन्तरिक उद्देश्य उनकी विडम्बना करना नहीं है; प्रत्युत उनके दोष प्रदर्शन कर उनको सावधान कर देना-मात्र हमारा लक्ष्य है । स्त्री-जातिपर धर्म, देश और समाजकी उन्नतिका बहुत बड़ा दायित्व है; अतः यदि ये ठीक राहपर आ जायँ, तो पुरुषोंको अपने आप सुधार करनेको विवश होना पड़े, किंतु इस समय तो 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' की लोकोक्ति चरितार्थ होती देख पड़ रही है । इस समय स्वतन्त्रताप्राप्त भारतवर्षमें जिन महानुभावोंको जनताकी शिक्षाका कार्य सौंपा गया है, दुर्भाग्यवश उनका लक्ष्य हर काममें रशियन-पद्धति है । वे जाति-पाँतिको मटियामेटकर सब वर्णोंको एक वर्ण हिंदुस्तानी बनानेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं । स्टेशनपर हिंदू पानी और मुसल्मानी पानीका भेद-भाव उड़ाकर 'जनरल वाटर'की व्यवस्था कर दी गयी है । 'आरपाडावस' पानी देनेवाले जान-बूझकर ट्रेनोंके प्लेटफार्मपर पहुँचनेपर दिखलायी ही नहीं पड़ते । उस दिन पढ़ा था कि हमारे प्रान्तके प्रगतिशील सत्ताधारियोंने सरकारी कागजोंमें जाति लिखना एकदम बंद कर दिया है । लोगोंको अपने नामोंके आगे पीछे जाति या वर्णसूचक उपपद आदि लगानेका भी निषेध कर दिया गया है; जो अपनी पुरानी आदतसे लाचार हैं और अपने नामोंके पीछे परम्परागत वर्णसूचक उपपद लगाते हैं, वे सत्ताधारियोंकी अच्छी निगाहोंमें नहीं हैं । ऐसे लोगोंसे सत्ताधारी शीघ्रातिशीघ्र अपना पीछा छुड़ानेको नाना प्रकारके उचित-अनुचित उपायोंसे काम ले रहे हैं । अतः इस देशसे अंग्रेज जातिके विदा हो जानेपर भी अंग्रेजियतका यहाँसे जाना सहज नहीं है । अंग्रेजियतमें डूबे हुए ये लोग 'स्वयं नष्टः परान्नाशयति'को चरितार्थ करना चाहते हैं ।

अतः हम अपने देशके क्या नारी और क्या पुरुष-समाज-को हिंदू बनाये रखनेके लिये देशके सच्चे हितैषियोंसे प्रार्थना करेंगे कि किसी समय किसी स्थानपर समवेत होकर बालक एवं बालिकाओंकी शिक्षाका क्रम निर्धारित करें और सत्ता-धारियोंके ऊपर अपने बालक और बालिकाओंकी शिक्षाके लिये निर्भर न रहें । ऐसा होनेपर ही हम आर्य-संस्कृतिकी रक्षा कर सकेंगे और बालक-बालिकाओंमें उत्तरोत्तर बढ़ती हुई बुराइयोंको रोक सकेंगे । इस उपायको छोड़ 'नान्यः पन्था विद्यते ।'

स्त्री-पुरुषमें परस्पर परिचय

(लेखक—श्रीकिशोरलाल घनश्याम मशरूवाला)

एक मित्रने मुझे सवाल भेजा कि 'क्या ईसाई संत टॉमस ए-कैम्पिस्का नीचे लिखे आशयका वचन मेरेपर लागू किया जा सकता है ? 'किसी भी स्त्रीसे परिचय न रक्खो; बल्कि आमतौरपर सब स्त्रियोंको भगवान्‌पर छोड दो !'

शायद मैं यह कहूँगा कि जो सिर्फ धर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदिके प्रचारमें लगे हुए हैं, उनके लिये इसी नियम-पर चलना अच्छा है; परंतु ससारके कामोंमें लगे हुए लोगोंके लिये जितना जरूरी हो, उतना परिचय करना अनिवार्य है। लेकिन परिचयके कारण स्त्री या पुरुष किसीसे भी फिजूल शरीर-लगायी करनेकी जरूरत नहीं; वह मोह है और उससे बचना चाहिये। इसमें मैं सजातीय-विजातीय व्यक्तिका भी भेद नहीं मानता यानी किसी भी पुरुष या स्त्रीका अनावश्यक अथवा जो टाला सकता है ऐसा शरीर-सम्पर्क न करो।

मेरी एक ओर स्त्री-निन्दाके या दूसरी ओर स्त्री-प्रशंसाके इस प्रकारके व्यापक सूत्रोंमें श्रद्धा नहीं है—जैसे स्त्री नागन या बाघन है, मायाविनी है, कपटी है आदि; या वह भावनाप्रधान है, धर्मकी रक्षा करनेवाली है, जब कि पुरुष बुद्धिप्रधान, गिनतीबाज, शिकारी है इत्यादि। दोनों तरहके उद्गार अत्युक्तिके शब्दाडम्बर हैं। पुरुषसे ज्यादा कठोर, धर्मबुद्धिहीन, गिनतीबाज और शिकारी स्त्रियाँ होती हैं, और जैसे नाग तथा बाघसे भयंकर और दुष्ट पुरुष होते हैं, वैसे अत्यन्त मृदु, सरल और धर्मात्मा भी पुरुष होते हैं। हरेक स्त्रीमें पुरुषका अंश है और हर पुरुषमें स्त्रीका। इसलिये दोनोंमें इस तरहके गुणोंकी मेल-सेल है; दोनोंमेंसे कोई अधिक प्रशंसायोग्य नहीं, कोई अधिक निन्दायोग्य नहीं। और पुरुषका पुरुषके स्पर्शमें तथा स्त्रीका स्त्रीके स्पर्शमें भी विकार रह सकता है। अवश्य ही विजातीय स्पर्शमें सहज ही वह जल्दी पैदा होना सम्भव है, परंतु चित्तशुद्धिकी दृष्टिसे दोनोंको अनावश्यक स्पर्श छोडना चाहिये। कर्तव्यकी बात अलग है। जहाँ ऐसा कर्तव्य हो, वहाँ तो विकारका खतरा उठा करके भी उसे करना होगा।

> प्राणापद्युपपन्नायां स्त्रीणां स्वेषां च वा क्वचित्।
> तदा स्पृष्ट्वापि तद्रक्षा कार्या संभाष्य ताश्च वा ॥

(साधु या ब्रह्मचारीपर) जब अपने या स्त्रियोंके प्राणों-की आपत्तिका प्रसङ्ग आवे, तब उन्हें छूकर या उनसे बोलकर भी उनकी रक्षा की जाय। (स्वामिनारायण-सम्प्रदायकी शिक्षापत्री)

साधु-ब्रह्मचारीके लिये कर्तव्यरूप स्पर्शकी इतनी ही परिस्थिति पैदा हो सकती है। परंतु सांसारिक कर्मक्षेत्रमें और भी तथा हर रोज ऐसे प्रसङ्ग आने सम्भव हैं—उदाहरणार्थ नर्स या डॉक्टरके लिये। फिर भी, अनावश्यक शरीर-लगायीसे सावधानता-के साथ बचना ही चाहिये, चाहे कोई अनेकोंका माना हुआ ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु या महात्मा हो अथवा सादा-सीधा मायामें बँधा हुआ संसारी।

इस तरह स्त्री या पुरुष किसीके भी स्पर्शके बारेमें मेरी दोनोंके प्रति समान दृष्टि है।

अब रहा, दाक्षिण्य—यानी आदर व्यक्त करनेका प्रश्न। इस विषयमें मेरी रायमें विशिष्ट परिस्थितिमें जो ज्यादा बलवान् हो, वह कम बलवान्‌को आगे स्थान दे और मदद करे—इसमें दाक्षिण्यका पूरा धर्म समा जाता है। साधारण परिस्थितिमें यह धर्म स्त्रियोंके प्रति पुरुषोंका होगा, परंतु विशेष परिस्थितिमें उलटा भी हो सकता है।

स्त्री-पुरुषका मिलन दोषमय है

> घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान्। तस्माद् घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद् बुधः ॥
> मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्। बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

नारी घृतके घड़ेके समान है और पुरुष जलती हुई आगके समान। इसलिये जैसे बुद्धिमान् पुरुष आग लग जानेके भयसे घी और आगको एक साथ नहीं रखते, वैसे ही नारी और पुरुषको साथ नहीं रहना चाहिये। पुरुषको चाहिये कि मा बहिन और कन्याके साथ भी एकान्तमें न बैठे। इन्द्रियाँ बड़ी बलवती हैं, वे विद्वान्‌को भी खींच लेती हैं।

नारी नरकी अर्द्धाङ्गिनी

(लेखक—साहित्याचार्य 'मग')

विज्ञानमयी सभ्यताके शैशव कालमें ही आर्योंने—हमारे पूर्वजोंने जीवनकी गम्भीरतम गुत्थियोंका सुलझाना अपना अन्यतम कर्तव्य समझा था। आत्मसत्ताके अन्वेषणमें अनगिनत मनीषियोंने जी होमकर जिस विचारधाराको प्रचारित किया था और जिस मतवादकी स्थापना की थी, उसका अक्षर-प्रत्यक्षर अभी भी अपनी भास्वरताको उसी रूपमें धारण किये हुए है। अपनी दुर्बलताके कारण अभी हम विजातीयोंसे जिस प्रकारकी एक क्षीण-सी रेखा पाकर फूले नहीं समाते, वही दिव्य आलोक हमारे तपस्तप्त मुनिपुङ्गवोंके पर्णकुटीरोंमें कभी अठखेलियाँ करता था, जिसकी एक बाँकी झाँकीसे ही भारतकी पवित्र भूमि जगमगा गयी थी; किंतु कौशलसे विधर्मियोंने उसपर यवनिका डाल दी और हतभाग्य भारतीयोंको आज अंधेकी तरह टटोलनेको विवश कर दिया!

हमारे पूर्वजोंने जिस प्रगल्भतासे प्रकृति-पुरुषका विवेचन किया है, विश्लेषण किया है, उसकी समता रखनेवालोंकी दृष्टिमें विदेशियोंका कौन-सा मतवाद महार्घ्यता धारण करनेका साहस करता है? पहले यह किसने बताया है कि प्रकृति जड है और पुरुष चेतन एवं दोनोंका एकावयव ही यह दृश्यमान संसार है? चाँद सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे ही जैसे जगको आप्यायित करता रहता है, वैसे ही प्रकृति भी पुरुषके सम्पर्कसे ही तरह तरहके खेल खेला करती है। यदि इस संसर्गमें विघटन हो जाय तो एकके बिना दूसरा सदाके लिये अधूरा रह जायगा।

अन्धकारके अभावमें प्रकाशको कौन पूछेगा? चेतनाका स्फुरण हृदयकोषके व्यतिरिक्त और कहाँ स्थान पावेगा? हमारी शक्ति हमें छोड़कर केवल कभी टिक सकेगी? यदि नहीं, तो फिर बिना नर-नारीके एकीभावके नीरस, शुष्क और अकर्मण्य जीवन बितानेको कौन तैयार होगा? संन्यासियोंने भी शक्तिपूजन कर जीवनमें कोमलता और मृदुलताका सिञ्चन किया है एवं मातृ-भावका आदर कर प्राणोंको आप्यायित किया है।

भविष्यपुराणके सातवें अध्यायमें आता है—'पुमानर्द्ध-पुमांस्तावद्यावद्भार्यां न विन्दति।' यानी पुरुषका कलेवर तबतक पूर्णताको धारण नहीं करता, जबतक कि उसके आधे अङ्गको आकर नारी नहीं भर देती। वहींपर यह श्लोक भी लिखा है—

> एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः।
> अभार्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु॥

मतलब यह कि एक चक्केका रथ कुछ दूर लुढ़ककर ही लुढ़क जायगा और एक पाँखसे चिड़िया फड़फड़ाकर ही रह जायगी, थोड़ी दूर भी नहीं उड़ सकेगी। उसी तरह अकेला पुरुष कोई कार्य भी नहीं कर सकेगा। गृहस्थीकी देख-रेख, बच्चोंका लालन-पालन एवं क्लान्त और शिथिल मानसमें उत्साहका संवर्द्धन जिस खूबीसे स्त्रियाँ कर सकती हैं, वह पुरुषोंकी सामर्थ्यके एकदम बाहर है। इसीलिये कवि-कुल-गुरु कालिदासने लिखा है—'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।' निर्गलितार्थ यह है कि मानव-जीवन तभी सुखमय होता है, जब कि वह थोड़ी देरके लिये भी अपना भार विश्वासपूर्वक किसीपर सौंपकर सुस्ता ले, दम ले ले। गुरु वस्तुओंके भारसे थका हुआ दाहिना हाथ बायें हाथको गठरी देकर जिस शान्ति और अश्रान्तिका अनुभव करता है, वह क्या किसी औरसे वह पा सकता है? एक सद्गृहिणी अपने पतिके भारको जिस खूबसूरतीसे हमेशा हल्का करती रहती है, वह किस अनुभवीसे अलक्षित है? विपत्ति या कठिन कालमें जब पुरुषोंका मार्ग-निर्द्धारण संशय-ग्रस्त हो जाता है, तब दुःख-सुखकी समान साझेदार वही स्त्री परामर्श देती है। दो घड़ी जी बहलाना और नस-नसमें ताजगी भर देना उसीका काम है। ललित कलाके शिक्षणमें जो उमंग पुरुष उनके (स्त्रियोंके) प्रति धारण करता है, वह ढूँढ़े भी कहीं नहीं मिलेगी। यह क्यों? इसीलिये न कि, प्राणोंसे दोनोंमें अभेद दीखता है। नर यदि नारीको अर्द्धाङ्गिनी नहीं समझे तो आज संसारका रूप ही कुछ और हो जाय, जिसके भद्देपनमें सन्देह किया ही नहीं जा सकता।

बाँयीं आँख कुछ और तरहसे देखे एवं दाहिनी आँख उसे ही कुछ और ढंगसे देखे तो वस्तुभावका यथार्थ ज्ञान किसी भी दशामें सम्भव नहीं है। नरका नारी अगर आधा अङ्ग है तो नारीकी भी पूर्णता नर-सम्पर्कसे ही उद्भूत होती है। व्यष्टिरूपसे दोनों ही रिक्त हैं। बिना समष्टिके विश्व-वाटिकाका सिरजन नहीं हो सकता। इसीलिये आदिदेव

महादेवकी कल्पना, धारणा या जो कहें हिंदुओंने अर्द्ध-नारीश्वरके रूपमें की है। विष्णु यदि राम-रूप धारण करते हैं तो मोहिनीका रूप धारण करनेमें भी उन्हें देर नहीं लगती। मतलब यह कि समष्टिरूपसे नर-नारीमें एकीभाव है। एकमें मृदुलता है, कोमलता है, चारुता है, मिठास है तो दूसरमें कठोरता है, कर्मठता है और बाँकापन या मर्दानगी है। प्रानक न्यायसे इन सभी गुणोंका सम्मेलन ही कोई आदर्श खड़ा कर सकता है। महाभारत अनुशासनपर्वके १४६ वें अध्यायमें आया है—

देववत् सततं साध्वी भर्तारमनुपश्यति।
दम्पत्योरेष वै धर्मः सहधर्मकृतः शुभः॥

अर्थात् पत्नी अगर पतिको देवताकी तरह समझती है तो पति भी उसे उन्हीं नजरोंसे देखता है। दम्पतिका एक ही धर्म है। सहचारिता दोनोंके लिये आवश्यक है।

विष्णुपुराण-प्रथमांशके चौथे अध्यायमें लिखा है—

अर्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान्।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः॥

अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भमें रुद्र आधे शरीरसे पुरुष और आधे शरीरसे स्त्री हुए। यह देखकर ब्रह्माको सन्तोष हुआ और उन्होंने बताया कि अब इसका विभाग किया जाय और सृष्टि चलायी जाय। किसी वस्तुको दो टुकड़ोंमें बाँट देनेपर भी मूलाधार एक ही रहेगा। नदीकी कितनी भी शाखाएँ हो जायँ, लेकिन न आदिस्रोत बदल सकता है और न उसमें वैषम्य ही उपस्थित हो सकता है। वस्तुतः देखा जाय तो नर-नारीका एक ही कार्य है—सृष्टि-सम्पादन। यों 'ग्राम गच्छन् तृणं स्पृशति' की तरह भव-जजालमे किसे क्या नहीं करना पड़ता। किंतु नर-मादा या स्त्री-पुरुष शब्द जब मानव-सन्ततिके बाद अण्डज-पिण्डज आदिमें व्यवहृत होता है, तब उपर्युक्त सिद्धान्तका रहस्य स्फुट-सा दीखने लगता है। मानवोंने बौद्धिक विकास किया है। इनके आगे छोटे-बड़े अनगिनत काम पड़े हैं, अतः कामकी आड़मे ये अपने पैमानेसे ही सब नापना चाहते हैं; लेकिन इस नापमें इन्होंने यह शर्त भी लगा दी है कि वह कहीं भी पुरुषोंके स्वार्थमें व्याघात नहीं पहुँचाये। ज्यों-ज्यों इस भावनाका उदय हुआ, त्यों-त्यों पलड़ेमें दबाव पड़ता गया।

ऐसा कौन-सा कार्य है, जिसे पुरुष कर सकता है और स्त्री नहीं कर सकती, या स्त्री कर सकती है और पुरुष नहीं कर सकता? सब जगहोंसे टकराकर नजर वहीं टिकेगी यानी गर्भधारण और वीर्यका उत्पादन। वाम नयन जिसे देखेगा, उसे दक्षिण नयन अवश्य देखेगा; क्योंकि दोनों ही शरीरके अङ्ग हैं और दोनोंका कार्य भी एक ही है। फिर भी हम बाँयीं आँखको उठाकर दाहिनी आँखके गड्ढेमें नहीं भर सकते; क्योंकि दोनोंकी स्थितिमें तारतम्य है। किंतु नयनत्वावच्छेदेन दोनों नयन एक हैं।

आज क्या, शुरूकी ही बात लें, जिन कार्योंको पुरुष कर सकते थे, उन्हें स्त्रियाँ भी कर लेती थीं। पढ़ने-लिखनेमें स्त्रियाँ पुरुषोंसे पीछे नहीं थीं। देखिये ऋग्वेद १। १२६। ७ मन्त्रकी ऋषि या मन्त्र बनानेवाली रोमशा या लोमशा, ऋ० १०। ४० सूक्तकी ऋषि घोषा, ५। २८ सूक्तकी ऋषि विश्ववारा, ऋ० १०। ४५ सूक्तकी ऋषि इन्द्राणी, ऋ० १०। १५९ सूक्तकी ऋषि प्रलोमतनया शची एव ऋ० ५। ९ सूक्तकी ऋषि अपाला थीं। स्त्रियाँ संग्राम भी किया करती थीं। रथ हाँका करती थीं। मुद्गलकी इन्द्रसेनाने बड़ी स्फूर्तिसे युद्धमें रथ हाँका था और इन्द्रके शत्रुओंका विनाश बड़ी वीरतासे किया था। अस्त्रसंचालन-कलामें वह पारङ्गत थी। अपनी वीरतासे उसने शत्रुओंके छक्के छुड़ा दिये थे और अपहृत गौओंको उनसे छुड़ाया था (ऋ० १०। १०२। २–११)। दौत्यकार्य भी स्त्रियोंके द्वारा सम्पादित किया जाता था। इन्द्रकी ओरसे पणि असुरके पास दूती बनकर सरमा गयी थी। सरमा और पणिका संवाद पढ़कर तत्कालीन स्त्रियोंकी बुद्धि-प्रखरतापर किसे आश्चर्य न होगा (ऋ० १०। १०८)।

स्त्री या पुरुष दोनोंका ही सिरजन एक ही मिट्टीसे होता है। दोनों एक ही मा-बापकी सन्तान हैं, किंतु प्रकृत दशामें यद्यपि दोनोंकी स्थिति भिन्न हो जाती है, तथापि हमारा हिंदू-धर्मशास्त्र इस ढंगसे दोनोंको वैवाहिक धर्म सूत्रसे संगठित कर देता है कि नारी नरकी अर्द्धाङ्गिनी हो जाती है। दक्षस्मृतिका वचन है—

पत्नीमूलं गृहं पुंसां यदिच्छन्दानुवर्तिनी।
तदा धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते॥

यानी गृही या गृहस्थाश्रमी पुरुष तभी सफल बनता है, जब कि वह पत्नीवान् होता है और पत्नी भी ठीक उसके अनुकूल—जैसा कि उसके अनुकूल उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग है। यदि ऐसा है तो उसी पत्नीके सहारे वह त्रिवर्गका फल भोग करता है। स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, अध्याय ४ में बताया गया है—

भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ।
भार्या धर्मफलावाप्त्यै भार्या सन्तानवृद्धये ॥६७॥

मतलब यह कि गृहस्थीकी मूलभित्ति भार्या है । अगर पुरुषने दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित नहीं किया तो उसकी गृहस्थी किसी कामकी नहीं है; क्योंकि सुखका स्रोत जहाँसे फूटता है, उसका वही स्थल सूखा-सा है । बिना सहधर्मिणीके पुरुष धर्माधिकारी भी नहीं होता । इसीलिये सीताके अभावमें श्रीरामचन्द्रने यज्ञ करते समय सुवर्णमयी सीताको पास रखा था और सृष्टिका सम्पादन तो अकेला पुरुष बिना स्त्रीकी सहायताके कर ही नहीं सकता । श्लोकके तात्पर्यपर ध्यान देनेसे स्पष्ट दीखेगा कि यदि पुरुष अपनी जीवन-सङ्गिनी, सहधर्मिणी या अर्द्धाङ्गिनीको अपनेसे अलग कर देता है या ऐसी कल्पना करता है तो उसका संसार सूना पड़ जाता है—गृहस्थीके स्वादमें नीरसता, सुखका सर्वथा अभाव, धर्माचरणमें अनधिकारिता और वंशविलोपका प्रत्यक्ष भय । ऐसे हाहाकारमय संसारमें रहना कौन कबूल करेगा ? इसीलिये तो नरने नारीको अर्द्धाङ्गिनी बनाया है ।

अच्छा, तो नर जिस नारीको अर्द्धाङ्गिनी बनाता है, अपना आधा अङ्ग जिसे सौंप देता है या अपने आधे अङ्गोंमें जिसे समा लेता है, वह केवल एक कुतूहलके लिये नहीं करता है, बल्कि उससे भी वह बड़ी-बड़ी आशा रखता है । परिणय-सूत्रमें बँध जानेपर भी यदि नर-नारीमें भेद रहा तो दोनोंको नरक यहीं दीखने लगता है । दक्षप्रजापतिने कहा है—'प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संशयः ।' जिस तरह माली बीजू आममें कलम बाँधकर दोनोंको एकावयव, एकप्राण देता है—दोनों दरख्त आपसमें मिलकर एक हो जाते हैं, उसी तरह हिंदू-धर्मशास्त्र वैवाहिक सूत्रमें बाँधकर नर नारीको एक कर देता है । बीजू दरख्तको अपनापन सौंप देना पड़ता है । यदि उसकी कहीं अलग टहनी निकलती भी है तो माली उसे बरदाश्त नहीं करता, तोड़ देता है । ठीक यही दशा [illegible] हिंदुओंके घर स्त्रियोंकी है । मुनि वात्स्यायन या वात्स्यायनने लिखा है—'भार्यैकचारिणी गूढविश्रम्भा देववत्पतिमानुकूल्येन वर्तेत ।' यानी स्त्री मन, वचन, कर्म या और जो कुछ भी हो सकता है, सब प्रकारसे पतिमें निरत रहे—पतिको पूरा विश्वास करा दे कि वह उसीकी है । पतिको देवता माने और पतिकी इच्छाके अनुसार ही आचरण करे । यह तो तभी हो सकता है जब कि स्त्री [illegible] और सर्वतोभावसे पतिमें मिल जाय । परन्तु जो इतना करेगा, उसे भी तो कुछ लोभ चाहिये, उसके आगे भी तो कुछ उज्ज्वल प्रकाश होना चाहिये; नहीं तो कोई ऐसा क्यों करेगा ? हमारे आचार्योंने, ऋषि-मुनियोंने इसपर भी विचार किया है । आगे चलकर उसी सूत्र-ग्रन्थमें लिखा है—

धर्ममर्थं तथा कामं लभन्ते स्थानमेव च ।
निःसपत्नं च भर्तारं नार्यः सद्वृत्तमाश्रिताः ॥

यानी जो नारी नारी-सदाचारकी उपासना करती हैं, वे धर्म, अर्थ, कामके साथ-साथ पतिका निष्कण्टकरूपसे उपभोग करती हैं और पतिके हृदयमें उच्च स्थान पाती हैं । इसी गुण-विशेषसे नारी नरकी अर्द्धाङ्गता धारण करती है । राजशेखरने भी इसी भावको अपने सट्टकमें यों व्यक्त किया है—

चित्ते चिहुट्टदि ण खुट्टदि सा गुणेसु
सेज्जासु लोट्टदि विसप्पदि दिम्मुहेसु ।
बोल्लम्मि वट्टदि पवट्टदि कव्वबन्धे
झाणेण तुट्टदि चिरं तरुणी चलक्खी ॥

चञ्चल नयनवाली तरुणी नारी सदा पुरुषोंके हृदयमें विश्राम करती है; क्योंकि अपने गुणोंके कारण वह हमेशा जागरूक रहती है । चाहे पुरुष सोया रहे या जिधर भी अपना रुख रखले, वह वहाँ वर्तमान रहती है । बोलचालमें या काव्य-प्रबन्धके विरचनमें भी वह साकार मूर्तिमती होकर विराजती रहती है । और क्या, कल्पनामें भी उसका स्खलन नहीं होता । मतलब यह कि दोनोंका परस्पर विश्वास, दोनोंका दोनोंके प्रति आत्मीयताका आदान-प्रदान और दोनोंके हितोंमें दोनोंकी एकान्त तन्मयता दोनोंको एकाकार किये रहती है ।

केवल विषय-सुखका आस्वाद ही जिनका लक्ष्य है, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, उन्हें दम्पतिके इस शाश्वत सम्बन्धमें कोई विशेषता नहीं दीख पड़ती, जैसे समुद्र लाँघते समय हनुमान्‌को उसकी गहराईका ज्ञान नहीं हो सका था; किंतु उस गहराईका पता तो मन्दराचलको चला है, जो भारी-भड़कम देह लिये सागर-तहमें पैठा हुआ है । आर्य-मनीषियोंका कार्य था रहस्योद्घाटन करना, जीवनके स्तरको कूटस्थ कर देना और विशृङ्खल तथा अमर्यादित मानव-सन्ततियोंको सुसंस्कृत पदनिरत आरूढ करा देना । जो इस रहस्यको समझते हैं और जिन्हें इसमें कल्याण दीखता है, वे तो इस प्राचीन पन्थाको श्रेयस्कर समझते हैं और जिनके दिल-दिमाग

को विजातीयोंके संसर्गने दूषित कर दिया है, वे अपनी अलग खिचड़ी पकाया करते हैं। ऐसोंके लिये नारी अभी भी पहेली बनी हुई है।

जिसका जो सहज, स्वाभाविक या नैसर्गिक गुण है, उसे कोई क्योंकर छीन सकता है ! अग्निका दाहकत्व, जलका शैत्य और नारीके मार्दव, सौष्ठव या वात्सल्य गुणका अपकर्षण किसी भी तरह नहीं हो सकता। स्त्रियोंमें सेवा-शुश्रूषाकी भावना जन्मजात होती है। कर्कशता और कोमलता एवं मृदुता और कठोरता जब अलग-अलग रहती है, तब उससे सांसारिक कार्योंका सम्पादन-सुचारु रूपसे नहीं हो सकता; परंतु ज्यों ही दोनोंका सम्मिश्रण हुआ कि गृहस्थीका छकड़ा लीक पकड़ लेता है।

'द्वा सुपर्णा ''''''।' मन्त्रका भी यही रहस्य है। बिना स्त्री-पुरुषोंके मेल-मिलापके यह दृश्यमान संसार गोचरीभूत नहीं होता। दोनों ही एक ही वृक्षपर बैठनेवाले पक्षी हैं। दोनोंमें ही सहकारिता और सौहार्द है। इसमें विघटन होते ही पद-पदपर वैषम्य उपस्थित होगा और चिन्मय धारामें उद्भूत होगा व्याघात। पौरुषका वास्तविक विकास स्त्रियोंमें कभी नहीं हो सकता। लता वृक्षोंको ही पकड़कर आगे बढ़ेगी। नदियोंका विश्राम समुद्रोंमें ही होगा। सौदामिनी मेघोंको छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकती। ठीक उसी तरह स्त्रियोंकी विश्रान्ति भी पुरुषोंके आधे अङ्गोंके सिवा दूसरी जगह नहीं हो सकती। यदि कोई अलबेली लतिका वृक्षोंको छोड़ कहीं सिर ऊँचा कर देती है, तो उसका पतन उसी क्षण स्थिर हो जाता है। नदियाँ समुद्रकी राह छोड़ दें तो वहीं सूख जायँ। सान्द्र मेघ-पटलसे पृथक् होते ही वहीं सौदामिनी सिर्फ धरामें धँस जाती है!

नारीको जो हमारे पूर्वजोंने नरकी अर्द्धाङ्गिनी कहा है, वह इन्हीं कारणोंसे, पर इसका यह तात्पर्य कहीं भी नहीं है कि पुरुष उसके मौलिक गुणोंका अपकर्षण करे, उसकी उन्नतिमें बाधक हो, उसकी सदिच्छा-सदभिलाषाओंका उन्मूलन करे और उसे पद-दलित या निःसहाय छोड़ दे, उसे ज्ञान-विज्ञानकी किरणोंसे वञ्चित करे, शिक्षाके विशाल प्राङ्गणमें उसे छूटकर खेलनेकी छुट्टी नहीं दे और उसे सात तहोंमें ढका रक्खे। यदि कोई ऐसा करता है तो वह स्वयं अपने आधे अङ्गको कमजोर बनाता है। हमारे शास्त्रकारोंने स्त्रियोंको रक्षणीय अवश्य कहा है, किंतु उपेक्षणीय कभी भी नहीं कहा है।

कोशिश करनेपर बायाँ हाथ भी लिख सकता है, मुँहतक ग्रास पहुँचा सकता है और देवताके सिर चन्दन भी लगा सकता है; परंतु बिना उसकी इस चेष्टाके ही इन कार्योंको दाहिना हाथ कर देता है। यदि इसके लिये वह दगाबाजी करे यानी युद्धमें आगे बढ़कर धनुषको न पकड़े तो सब गुड़ गोबर ही समझिये; लेकिन ऐसा न होकर दोनोंमें अगर मैत्री-भाव रहा, तो शरीर-यात्रा निर्विघ्न चलती रहेगी। दोनों ही खुश रहेंगे और दोनोंके कार्योंका अन्तर किसीकी समझमें नहीं आवेगा। स्त्रियोंके लिये भी कुछ ऐसी ही बातें हैं। जिन कार्योंको पुरुष आसानीसे कर लेते हैं, वहाँ स्त्रियोंमें पौरुष-प्रदर्शनकी कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, जहाँ उनके पुरुषायितकी जरूरत है, वहाँ वे अवश्य प्रकट किया करें। कोई भी कार्य हो, दम्पतिका एक ही लक्ष्य रहता है। जो जिस कार्य-को आसानीसे कर सके, वह कर डाले। इसमें हुज्जत कैसी ! अधिकार या हकके लिये तकरार कैसा ?

धर्मशास्त्रोंने साफ शब्दोंमें आज्ञा दे रक्खी है कि जहाँ स्त्रियोंका सत्कार होता है, पूजा होती है, वहीं देवभावका उदय होता है, उसी घरमें स्वर्ग निवास करता है। इससे अधिक और क्या चाहिये ? पुरुषोंने जब स्त्रियोंको अर्द्धाङ्गिनी बनाया है, तब अपना आधा अधिकार उन्हें सौंप देनेमें किसी भी पुरुषको कोई एतराज नहीं है। बाहरका काम पुरुष देखता है और घरका काम स्त्रियाँ देखती हैं। स्त्रियोंकी चूल्हा-चक्कीपर अधिकार जमानेके लिये या बच्चोंके लालन-पालनमें दस्तंदाजी करनेके लिये अथवा उनकी सेवा-शुश्रूषाके कार्यमें होड़ लगानेके लिये कहीं कोई भी पुरुष तो उतावला नहीं हो रहा है; परंतु आज स्त्रियाँ पुरुषोंके कामोंमें और स्पर्धा करना चाह रही हैं। क्या दफ्तरोंमें और क्या बाजारोंमें, जहाँ देखिये वहीं ये कोमलाङ्गी रमणियाँ अधिकारमदसे दुर्दमनीय-सी बनी अपनी सुकुमारताका गला घोट रही हैं। अर्द्धाङ्गिनी-के बाद तो दूसरी सीढ़ी अब सम्पूर्णाङ्गिनीका ही हो सकता है।

हम तो धार्मिक जगत्में विचरण करते हुए नास्तिक दृष्टि-कोणसे यह स्पष्ट देख रहे हैं कि स्त्रियोंको ज्यादा दूर [illegible] करनेकी कोई जरूरत नहीं रहती। स्कन्दपुराणमें लिखा है—

> यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियां च।
> तस्याप्यर्द्धं सा फलं नान्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव॥

मतलब यह कि जो स्त्री केवल पतिकी ही सेवा एक चित्तसे करती है, उसे कहीं भटकनेकी जरूरत नहीं है। उसका पति जो कुछ भी दान-धर्म, सेवा-सत्कार और धर्म-पुण्य आदि करता है, उसका आधा फल बिना प्रयास, [illegible]

ही जाता है; क्योंकि अर्द्धाङ्गिनी जो है वह। यही नहीं, इनकी अर्द्धाङ्गिनी होनेके नाते निर्णयामृतमें यह भी लिखा है कि—

भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्।

यानी पत्नी पतिका व्रत करे और पति पत्नीका। शास्त्रकारोंने स्त्रियोंको अर्द्धाङ्गिनीका पद समर्पणकर उन्हें कहीं भी नीचा दिखानेकी चेष्टा नहीं की है। दोनों पलड़ोंमें दबाव एक-सा ही दिया है; परंतु इतना ख्याल उन्होंने अवश्य रक्खा है कि स्त्रियाँ मक्खनसे, मखमलसे और फूलसे भी बढ़कर कोमल हैं। इनकी नुनुक-मिजाजी भी जाहिर है। तब इनके सिर ज्यादा काम लाद देना कौन-सी अक्लमन्दी होती? अतएव इनके अनुरूप ही इन्हें काम भी सौंपा गया है।

देखिये न मायावाद, कायावाद और मिथ्यावादमें इनकी बुद्धि किस तरह प्रौढ़ बनी रहती है और सम्मोहन कलाकी कलाबाजियोंमें तो इनके जौहरका निखार देखते ही बनता है। इसीलिये घरकी चहारदीवारीके भीतर इनका एकाधिपत्य साम्राज्य कायम कर दिया गया है। वहाँ इनका अनुशासन किसीको अमान्य नहीं होता।

जो कुछ भी हो, जिस तरह भी विचार किया जाय, स्त्री-पुरुषोंमें बिना समभाव स्थापित किये काम नहीं चलेगा। समभावका अर्थ है, आधेका अधिकार। जब ये अर्द्धाङ्गिनी हैं, तब आधा अधिकार सब तरहसे इनका जायज है। जहाँ चाहें, ये अपने इस अधिकारका उपयोग कर सकती हैं; लेकिन समझ-बूझकर। ये इन दिनों जिस तरह पुरुषोंके कदम-पर-कदम रखनेको मचल रही हैं, वह इन्हें किस बियाबानमें पहुँचा आयेगा—यह पता नहीं। दफ्तरोंमें पैठनेके लिये इनकी कोशिश जोरोंसे जारी है। वहाँ सभी मर्दोंका तो ठिकाना लगा ही नहीं है, भला ये जाकर क्या करेंगी? क्या अब तवे-चूल्हेका इंचार्ज मर्द बनेगा और ये दफ्तरोंमें कुर्सियाँ तोड़ा करेंगी? पैर बहुत दिनोंतक चल चुका, अब क्या कुछ दिनोंके लिये सिरको भी चलना पड़ेगा? अर्द्धाङ्गिनीका यदि ऐसा ही अर्थ लगाया जाय, तब तो शास्त्रकारोंका सारा परिश्रम मटियामेट समझिये। नहीं तो जिस उच्च विचारधाराको उन्होंने प्रश्रय दिया था, उसीमें स्वच्छन्द भावसे अवगाहन करनेमें ही सभीका कल्याण है।

नारीकी प्रार्थना

[वेदमन्त्रोंके आधारपर]

माता और पिता की सुन्दर
इच्छाओं की मूर्ति बनूँ मैं।
प्रभो! शक्ति दो, प्रिय गृहजन के
अरमानों की पूर्ति बनूँ मैं।

जिसके आँगन की वेदी का
धुँवा छू रहा हो उच्चाम्बर।
भरा अन्न, घृत-वस्त्र-स्वर्ण से
हो वह मेरा गेह धरा पर।

शशि से मिले मुझे मुख-छवि वह,
बनि जिससे छविमान गगन हो।
दे मधु-ऋतु! मुसकान मुझे वह
विकसित जिससे गिरि-कानन हो।

नमस्कार है इन्द्र! तुम्हें, मैं
यही विनय करती निशि-वासर।
मेघ-घटा की दिव्य छटा से
विरचो मेरा यौवन शुचितर।

तेज दिया हो जिसे सूर्य ने,
वसुधा ने धनपूर्ण किया हो।
जिसने अपने अति भुजबल से
बैरी का मद चूर्ण किया हो।

सौ बरसों तक जीने वाला
हो वह मेरा प्रिय जीवन-धन।
भरा उसे उत्साहों से नित
रक्खें मेरे दीर्घ मृग-नयन।

जिनकी चर्चासे अरि दहलें
और मित्र आनन्द मनायें।
जिन्हें देखते ही गृह-जन के
उर प्रकाश से भर-भर जायें।

रवि-शशि से जो ज्योतिमान हों,
जिनसे निखरे कुल की लाली।
ऐसे सुत-कन्याओं से हो
हे प्रभु! मेरी गोद न खाली।

—श्रीनाथसिंह

आदर्श नारीके छः रूप

परामर्शमें है मन्त्री-सी, सेवामें नित दासी है। भोजनमें माताके सम है, शयन-समय रंभा-सी है॥
धर्म-कर्ममें सदा संगिनी, रोष-सहिष्णु धरा-सी है। छः आदर्श गुणोंसे शोभित नारि पुण्यकी राशी है॥

आदर्श नारी

(लेखक—ठा० श्रीश्रीनाथसिंहजी)

हमारी यह दुनिया एक बड़ा रङ्गमञ्च है। जबसे यह बनी है, तभीसे इसपर एक नाटक शुरू हो गया है। प्रकृतिने स्थान-स्थानपर पर्वत, वन, नदी, समुद्र आदिको रखकर इस रङ्गमञ्चको सँवारा है। हम जितने जीवधारी हैं, वे सब मानो अभिनेता हैं। पुरुष इस संसार-नाटकका नायक है और स्त्री नायिका है। सूर्य, चन्द्र और तारे दर्शक हैं। अगर उनकी मौनभाषा हम सुन और समझ सकें तो वे हमें बता सकते हैं कि सृष्टिके आदिसे अबतक किसने अपना पार्ट कैसा अदा किया है।

इस लेखमें हम इस संसार-नाटककी नायिका अर्थात् नारीकी चर्चा करना चाहते हैं। वह न होती तो शायद यह रङ्गमञ्च सूना ही रह जाता। उसके पदार्पणमात्रसे ही यह रङ्गमञ्च सरस और सजीव हो उठा है। संसारमें जो कुछ हुआ है और हो रहा है, सबपर उसका प्रभाव पड़ा है। इस सब नाटकके बीचमें वह एक बड़ी शक्ति है। कहीं वह बेटी बनकर आयी है, कहीं बहन बनकर, कहीं पत्नी बनकर और कहीं माता बनकर। उसके ये सब रूप एक-से-एक बढ़कर हैं। सबसे अच्छा रूप कौन है, यह कहना असम्भव है। इसीलिये बुद्धिमानोंने उसे माया कहकर छोड़ दिया है।

अच्छा, मान लीजिये कि सूर्य, चन्द्र और तारोंने अबतक इस संसारका जो कुछ भी नाटक देखा है, उस सबकी एक फिल्म बन जाय और हमें दिखायी जाय तो क्या उसको देखनेके बाद हम यह बता सकते हैं कि स्त्रियोंमें सबसे अच्छा पार्ट किसका रहा। यदि हम प्रत्येक दृष्टिकोणसे देख और समझकर किसी एककी ओर अँगुली उठा सकें तो वही आदर्श स्त्री होगी।

हम मानवोंका जीवन बहुत ही छोटा होता है। हम सूर्य, चन्द्र और तारोंकी आँखोंसे संसारको नहीं देख सकते। हम तो जो कुछ उन्होंने लाखों, करोड़ों वर्षोंमें देखा है, वह घंटों और मिनटोंमें देखना चाहते हैं; तो हम कैसे देख सकते हैं? वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, विविध इतिहास तथा आख्यान वन्दनीय स्त्रियोंकी गाथाओंसे भरे पड़े हैं। उन सबको पढ़ और समझकर हम अपने निर्णयपर पहुँच सकते हैं और अपनी वर्तमान मा-बहिनोंके सामने उस एक आदर्श स्त्रीके चरित्रको अङ्कित करके कह सकते हैं—'देखो, स्त्रीका मार्ग यह है, तुम्हें इसी मार्गपर चलना है।'

आदर्श बहुत ही दूर और उसतक पहुँचनेका मार्ग बहुत ही जटिल होता है। पर केवल इसीलिये हमें उससे मुँह न मोड़ लेना चाहिये। वह तो मौत होगी। जिंदगी आदर्शकी ओर बढ़नेका नाम है। साधना, धैर्य, संयम और सतत प्रयत्नसे कितने ही लोग आदर्शतक पहुँच जाते हैं। कितने ही कुछ दूर चलकर रह जाते हैं। कितने ही कुछ और आगे चलते हैं। उन सबका जीवन हमारे लिये अनुकरणीय है; क्योंकि हमें वे मार्ग दिखाते हैं और लक्ष्यकी ओर संकेत करते हैं।

आइये वेद, पुराण, इतिहास आदिका दूरबीन लगाकर हम देखें कि आदर्शके मार्गपर सबसे आगे कौन स्त्री है। इस मार्गपर आपको वैदिक कालसे अबतक अनेक स्त्रियाँ चलती मिलेंगी। कुछपर तो समयका इतना गहरा कुहरा छा गया है कि हम उन्हें पहचान भी नहीं सकते। कुछके गिर्द हमारे शास्त्रकारोंने, कवियों, लेखकोंने अपनी गाथाओंकी मशालें जला दी हैं, जिससे समयके इस ओर कुहरेके होते हुए भी हम उन्हें स्पष्ट देख सकते हैं और पहचान सकते हैं। कुछ हमारे इतने करीब हैं कि हम चाहें तो दौड़कर उनतक पहुँच सकते हैं। उन्हें भी हम पहचान सकते हैं।

रामायण और महाभारतसे पहले वैदिक कालमें जो स्त्रियाँ हुईं, वे यद्यपि बहुत आगे हैं पर वे आकृतिमात्र प्रतीत होती हैं। सम्भव है उनमें कुछने अपने समयमें सीता-सावित्री आदिसे भी सुन्दर और उच्चादर्श उपस्थित किया हो, पर उनके गिर्द लाखों बरसोंके समयका इतना कुहरा छा गया है कि हम उन्हें स्पष्ट नहीं देख सकते।

परंतु रामायण और महाभारत काल हमारे सामने अभी भी इतना प्रकाशमान है कि हम बहुत कुछ देख और समझ सकते हैं। इसका श्रेय महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास-जैसे महाकवियोंको है जिन्होंने अपने ग्रन्थोंका [illegible] फैलाकर इस युगको हमारे सामने इस प्रकार रख दिया है कि जैसे आजकी बात हो। सीता, सावित्री, गान्धारी, कुन्ती, अहल्या, द्रौपदी, मन्दोदरी, सुनीति [illegible] स्त्रियाँ इस कालमें हुईं। इनके नामोंको यहाँ हमने [illegible] नहीं लिखा। इनमें सबसे आगे कौन है, यह कहना [illegible] है। सभी आदर्शतक पहुँची हुई [illegible] करीब एक-सा ही है। पर महर्षि वाल्मीकिने सीताजीका [illegible]

विस्तारसे लिखी है कि वे हमें बहुत प्रिय और निकट प्रतीत होती हैं। फिर गोस्वामी तुलसीदासने अपने रामचरितमानस-की रचनाकर उन्हें हमारे हृदयोंमें बैठा दिया है। अतएव जब कि हम आदर्श स्त्रीकी चर्चा करते हैं, हमारा ध्यान सबसे पहले उनकी ओर जाता है।

सीताके चरितसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी स्त्री अपने लक्ष्यतक तभी पहुँच सकती है, जब उसे ऐसे माता पिता मिले हों जो उसका स्नेहसे लालन-पालन करें। जब उसे ऐसा पति मिला हो जो यथार्थमें उसे अपना आधा अङ्ग समझे। ऐसी सास मिली हो, जो अपनी कन्यासे भी अधिक उससे प्यार करे। जब उसे ऐसे पुत्र मिले हों, जो उसका गर्व करें। हमारे देशमें बहुत-से लोग आजकल कन्या-जन्मसे उदास हो उठते हैं, क्योंकि कन्याको वे परायी सम्पत्ति समझते हैं। ऐसे व्यक्तियोंके घरमें जो स्त्री जन्म लेती है, कहना पड़ेगा कि वह अभागिनी है। उपेक्षापूर्ण वातावरणमें उसे जीवन व्यतीत करना पड़ता है। न उसे अच्छा खानेको मिलता है न अच्छा पहननेको, न उसके स्वास्थ्यका कोई यत्न किया जाता है और न उसकी शिक्षाकी कोई चिन्ता। यदि महाराज जनक भी ऐसे ही पिता होते तो सीताका आदर्श स्त्रीरूप आज हमारे सामने कैसे आता? सीताको पाकर जनकने अपनेको धन्य माना था। सीताके जन्मके समय उन्होंने अपार हर्ष प्रकट किया था। जिस समय सीताको उन्होंने अपनी गोदमें उठाया था, उन्होंने अनुभव किया था कि उनके-जैसा सुखी व्यक्ति संसारमें दूसरा नहीं है। उनका हृदय उमंग और उत्साहसे भर गया था और उनका मस्तक गर्वसे ऊँचा उठ गया था। उसी क्षणसे वे इस प्रयत्नमें लग गये थे कि सीता आदर्श नारी बनें और उन्हें सफलता मिली।

हमारे देशमें आज कितने ऐसे पिता हैं, जो कन्याके लिये जनकका हृदय रखते हैं। उनकी लड़कियाँ अगर आदर्श नारी न बन सकीं तो उन बेचारियोंका क्या कुसूर है? पुरुष-की बात जाने दीजिये। स्वयं स्त्रियाँ पुत्रकी कामना करती हैं और कन्या-जन्मसे उदास होती हैं। वे भूल जाती हैं कि उनके जन्मके समय भी यही हालत थी, उनको भी घरमें उपेक्षा मिली थी, वे भी पुत्रके मुकाबलेमें बेटी समझी गयी थीं। इस सम्बन्धमें हमें अपना दृष्टिकोण बदलनेकी बहुत जरूरत है। यदि हमारे घरमें कोई कन्या जन्म ले तो हमें उसका भी उसी हर्ष और उत्साहसे स्वागत करना चाहिये, जिस हर्ष और उत्साहसे हम पुत्रका स्वागत करते हैं। जबतक सामूहिकरूपमें हम अपना दृष्टिकोण नहीं बदलते, किसी भी परिवारमें अच्छी बहू नहीं आ सकती।

प्राचीन कालमें कन्याका लालन-पालन पुत्रके ही समान होता था। इसके काफी सबूत मिलते हैं। सीताका जिक्र तो हम कर ही चुके हैं। पार्वती, सावित्री, दमयन्ती, द्रौपदीकी कथाएँ भी इसके अच्छे उदाहरण हैं। जिन राजघरोंमें इन देवियोंने जन्म लिया था, उनमें पुत्र-जन्म भी हुए होंगे। पर इनके लालन पालनपर इतना अधिक जोर दिया गया था कि इतिहासमें ये-ही-ये रह गयी हैं।

दमयन्ती तो इतनी सुन्दर और सुयोग्य थीं कि उनके स्वयंवरमें देवता मनुष्यका वेश धरकर आये थे कि वे उन्हींमें-से किसीको वर लें। सावित्रीका इतना दुलार था कि उसे छूट दी गयी कि वह अखिल विश्वका भ्रमण करके अपने मनका वर चुन ले। पार्वती और द्रौपदीका भी लालन-पालन और विवाह धूमधामसे किया गया।

यदि हमारे घरमें कन्या जन्म ले तो हमारा फर्ज है कि हम इन आदर्श देवियोंका स्मरण करें, हर्षोत्सव मनावें और उन्हें सुयोग्य नारी बनावें। वसुदेव बनकर उन्हें उपेक्षाके कंसको न सौंपें। हमें चाहिये कि हम पुत्रोंकी भाँति प्रति-वर्ष अपनी कन्याओंकी सालगिरह मनावें। उन्हें यह अनुभव न होने पावे कि पुत्रोंके मुकाबलेमें उनको घटकर समझा जा रहा है। यदि हमने इतना कर लिया तो अपने समाजमें हमें सीता-सावित्रीके फिरसे दर्शन हो सकते हैं।

किसी लड़कीके आदर्श स्त्री बननेके लिये जिस प्रकार यह जरूरी है कि घरमें उसको सबका पूर्ण स्नेह मिले, उसी प्रकार यह भी जरूरी है कि वह सुयोग्य हाथोंमें पत्नीरूपमें सौंपी जाय। कन्याके लिये पतिका चुनाव करते समय हमारे सामने शिव, राम, हरिश्चन्द्र, नल, सत्यवान्का आदर्श होना चाहिये, जो स्त्रीको अपना अर्द्धाङ्ग, अपनी जीवन-सङ्गिनी समझते थे। उसका विवाह करते समय हमें केवल यही न सोचना चाहिये कि उसे रहनेको अच्छा घर, पहननेको अच्छे कपड़े और खानेको सुस्वादु भोजन सदैव उपस्थित रहेगा, बल्कि यह भी देखना चाहिये कि जीवनमें उसे अपनी शक्तिको विकसित करने और उस शक्तिसे देश और समाजको उन्नत बनानेका भी अवसर मिलेगा।

जिस स्त्रीको जन्म और विवाहसे अच्छे घरोंमें पहुँचनेका अवसर मिलता है, वह धन्य है। सच है कि पुरुषका जन्म तो एक ही बार होता है, परंतु स्त्रीका जन्म दो बार होता

है। उसका दूसरा जन्म उस दिन होता है, जिस दिन उसका विवाह होता है और वह सर्वथा नवीन घर, नवीन वातावरण-में प्रवेश करती है। वहींसे उसका वास्तविक नारी-जीवन शुरू होता है। अच्छे माता-पिताका मिलना जिस प्रकार एक इत्तिफाककी बात है, उसी प्रकार अच्छी सास और अच्छे पतिका मिलना भी एक इत्तिफाक ही है। फिर भी अच्छे कुल और अच्छे पतिकी प्राप्ति बहुत कुछ अच्छी खोजपर निर्भर है।

यह सही है कि हमारे धर्मग्रन्थोंमें स्त्रीको आदरका उच्च स्थान दिया गया है। उसे देवी कहा गया है। तथापि हमारे सामाजिक जीवनमें एक ऐसा युग आया जब स्त्रीके प्रति ऐसा ही व्यवहार किया गया, जैसा लोग पालतू पशुओंके प्रति करते हैं। उस समय तो कन्या-जन्म इतना अशुभ समझा जाने लगा कि बहुत-से लोग नवजात कन्याको जन्म लेते ही गला घोंटकर मार डालते थे। जो उन्हें जिलाते भी थे, उनके घरोंमें उस बेचारी कन्याको कुत्ते-बिल्लीसे भी अधिक आदर नहीं मिलता था। स्त्रीका विवाहित जीवन भी वैसा ही दुःखमय था। पुरुष तो देवता बन बैठा था; पर बेचारी स्त्रीको इतना भी अवसर नहीं दिया गया था कि वह सही अर्थोंमें उसकी पुजारिन बने। पति पत्नीको पैरकी जूती, घरकी मजदूरिन समझने लगा था। स्त्रीको कोई स्वाधीनता न थी। वह पतिके चरणोंकी दासीमात्र रह गयी थी, पतिके मरनेपर उसीके साथ जला भी दी जाती थी, क्योंकि फिर उसकी उपयोगिता ही क्या थी। मृतकके पहने हुए वस्त्रोंकी भाँति वह भी घरसे निकाल बाहर करने या जला देनेकी वस्तु बन गयी थी। बहुत-से लोग आज दिन भी इस प्रकार जलनेवाली स्त्रीको आदर्श स्त्री मानते हैं। यह कहाँतक सही है, इस विवादमें हम यहाँ नहीं पड़ना चाहते।

अब जमाना बदला है। नवजात कन्याको गला घोंटकर मार डालने और विवाहिता स्त्रीको पतिके साथ जला डालनेकी प्रथा कानूनद्वारा रोक दी गयी है। अब इन कार्योंको करने या प्रोत्साहन देनेके लिये उद्यत लोग दण्डित होते हैं। स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी-ऐसे नेता इस युगमें हुए, जिन्होंने अपने लेखों, वक्तृताओंमें और व्यावहारिक जीवनसे हमारे सामने हमारे उच्च प्राचीन आदर्शोंको नया करके रक्खा। इन और ऐसे ही अन्य नेताओंके आन्दोलनके परिणामस्वरूप हमारे समाजने करवट बदली है। घरोंमें कन्याओंका आदर-मान होने लगा है। विवाहिताएँ अपने पतियोंकी पुनः अर्द्धाङ्गिनी समझी जाने लगी हैं। माना कि ऐसे परिवार अभी कम ही हैं! पर हमारा समाज उन्नतिके इस मार्गपर चल पड़ा है। आजकी स्त्रीको एक उज्ज्वल भविष्य पुकार रहा है।

मान लीजिये कि किसी बहिनका जन्म अच्छे घरमें नहीं हुआ और दुर्भाग्यसे उसे अच्छा पति भी नहीं मिला तो क्या वह आदर्श स्त्री नहीं बन सकती? एक समयमें तो इस तरहका डर हो सकता था, लेकिन अब देशका वातावरण ऐसा है कि कोई भी स्त्री चाहे तो अपने निजी प्रयत्नोंसे भी उच्चादर्श-तक पहुँच सकती है। एक कहावत है कि पुत्र पिताके भाग्यसे जीता है, परंतु कन्या अपना भाग्य लेकर संसारमें आती है। इतने दिनोंकी पारिवारिक उपेक्षाने स्त्रीमें परिस्थितियोंसे लड़नेकी खासी शक्ति उत्पन्न कर दी है। स्त्रीको परमात्माका मोहिनी-रूप कहा गया है। अपनी सेवाओंसे, अपने मृदु व्यवहारोंसे वह अपने परिवारके लोगोंका मन मोह लेती है और विषम परिस्थितियोंमें भी अपनी शक्तियोंको विकसित कर सकती है।

अब प्रश्न उठता है कि आजकलकी स्त्रीको क्या जानना चाहिये और उसे क्या करना चाहिये, जिससे कि वह अपने जीवन-संग्राममें सफल हो और हम उसे आदर्श स्त्री कहें। अच्छा, तो सुनिये। स्त्री-जीवनका ध्येय है—संसारको सुन्दर और सुखद बनाना, संताप मिटाना और आनन्द बढ़ाना। जिस प्रकार फूल अपनी मनमोहक मुस्कानसे अपने पास-पड़ोसको सुन्दर बनाता है और चतुर्दिक् सुगन्ध फैलाता है उसी प्रकार स्त्रीको भी अपने पास-पड़ोसको स्वच्छ, सुरभित और सुन्दर बनाना है। स्त्री शान्ति, शक्ति, स्नेह, धैर्य, क्षमा, त्याग, सौन्दर्य और माधुर्यका प्रतीक है। जिस स्थानपर, जिस घरमें एक भी स्त्री हो, वहाँ ये सब बातें अवश्य होनी चाहिये। सूर्य उसीका तेज है, चन्द्रमा उसीकी [illegible] है, कुसुम उसीकी मुसकान है, कोकिल उसीकी वाणीका परिचय देती है। सागर उसीके मनकी गहराई है। [illegible] और शोभाशाली है! जिस स्त्रीमें ये सब गुण जितनी ही अधिक मात्रामें प्रस्फुटित होते हैं, वह संसारको उतना ही अधिक अपनी ओर आकृष्ट करती है और युगोंतक उसका गुणगान जारी रहता है।

स्त्री अपने घरकी लक्ष्मी है, अपने बच्चोंकी माता है, अपने पतिकी जीवनसङ्गिनी है, अपने पास-पड़ोसकी शोभा है, अपने देशकी सेविका है और अखिल विश्वकी एक देवी है। उसमें इन सब गुणोंका समावेश होना चाहिये।

इसका यह [illegible] है, जिसमें [illegible] प्रत्येक [illegible] ही [illegible]। [illegible] बच्चे, [illegible] परन्तु [illegible] रहती हुई, [illegible] प्रसन्न, [illegible] सन्तुष्ट और [illegible] —[illegible] होना चाहिये। उसके घरके लोग स्वस्थ और प्रसन्न हों, उसका पति [illegible] कि [illegible] नहीं है। वह [illegible] संसारमें [illegible] है। उसके पास-पड़ोसके लोग मानें कि [illegible] उनका [illegible] है, वह न हो तो उनके [illegible] मालूम हो उठे। वह अपने घरको इस तरह [illegible] कि उसे अपने देशका प्रतीक समझे और [illegible] अपना घर समझे। देशके लिये उस छोटे-से घरको [illegible] तैयार रहे और इस तरहका जीवन [illegible] कि संसारमें कोई भी उसकी प्रशंसा किये बिना, उसको [illegible] मस्तक झुकाये बिना न रहे। जो स्त्री अपनेमें इन सब गुणोंको पैदा करती है, वही आदर्श स्त्री है।

आप कहेंगे यह तो प्रत्येक स्त्रीके लिये सम्भव नहीं है। माना, परंतु प्रत्येक स्त्री इस मार्गकी ओर कदम उठा सकती है। वह अपने शरीरको जैसे सजाती सँवारती है, वैसे ही अपने घरको भी सजा सँवार सकती है। अपने बच्चोंको स्वस्थ और प्रसन्न रखने और उन्हें सुयोग्य नागरिक बनानेके लिये बहुत कुछ कर सकती है। रोज रोजके काममें अपने पतिको प्रोत्साहन दे सकती है और उसका हाथ बँटा सकती है और इस बातका प्रयत्न कर सकती है कि उससे पास-पड़ोसके लोग प्रसन्न रहें। ये बातें अपनेमें पैदा कर लेना कोई मुश्किल नहीं। जो स्त्री इतना भी करती है, वह आदर्श स्त्री है। प्रत्येक स्त्रीसे, जो यह लेख पढ़े, हम प्रार्थना करेंगे कि वह अपने जीवनके इस लक्ष्यको ध्यानमें रक्खे और इसकी ओर बढ़नेका बराबर प्रयत्न करती रहे। ईश्वर उसका साथ देगा।

पाया न समझ माली गँवार

(रचयिता—पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी)

क्या प्रेम-नेम था बेलीमें, क्या-क्या गुन थे अलबेलीमें।
वह तरुके ऊपर चढ़ती थी, फैलती-फूलती-फलती थी॥
जब प्रेम-पाश उसने डाला, बँध गया पेड़ हो मतवाला।
वह बेलि-वृक्षका दिव्य प्यार।
पाया न समझ माली गँवार॥

दोनों ही मिलकर हुए एक, रह गया नहीं कुछ भी विवेक।
सुख-[illegible]-[illegible], दोनों सहते थे एक साथ॥
तरुके [illegible] बेली [illegible], बेलीके दुखमें तरु [illegible]।
दाम्पत्य-प्रेमका यही सार। पाया०

[illegible] बेलि तरुके अधीन, पर बात नहीं यह समीचीन।
[illegible] पराधीन, बेलीके बन्धन कठिन पीन॥
[illegible] डार-डार, तरुके ऊपर करती विहार।
[illegible] भी तरुको यह बेलि भार? पाया०

है कहाँ [illegible] गठबाट, फिर कहाँ नेमका ठाट-बाट।
[illegible] कहाँ है [illegible] हानि, जिस [illegible] है लाभ-हानि॥
जब दुख-सुख दोका हुआ एक, सह सके प्रेमका भेद नेक?
है नहीं स्वार्थका कुछ विचार। पाया०

उसने बेलीका किया पक्ष, समझा अपनेको बड़ा दक्ष।
जब स्वत्वबेलिका अलगाया, आपसी प्रेमको बिलगाया
यों बीज फूटका डाल दिया, प्रिय-प्रेम पैज-पामाल किया॥
कहता फिरता इसको सुधार। पाया०

बेलीको तरुसे हटा दिया, अपने पैरोंपर खड़ा किया।
उसको स्वतन्त्रता सिखलाया, पश्चिमका रस्ता बतलाया॥
वह भूल गई अपना स्वभाव, लायी अपनेमें वृक्ष-भाव।
पर रह सकती क्या निराधार? पाया०

फिर पतित हुई वह बार-बार, कैसे कोई सकता सँभार।
तब हुआ भूमिपर ही पसार, उसपर भी सबका पग-प्रहार
दुर्दशा-गर्तमें गिरी हाय! स्वातन्त्र्य-पाठ पढ़ निःसहाय!!
इस भाँति हुआ उपवन उजार।
पाया न समझ माली गँवार॥

भारतीय नारीकी लोकोत्तर झाँकी

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

भारतीय त्रिकालज्ञ पूज्यपाद महर्षियोंने मानव-जीवन और वर्णाश्रम-सम्बन्धी प्रत्येक बातको आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे समझा था। साथ ही विराट्-प्रकृति, मानव-प्रकृति और व्यावहारिक प्रकृतिके संश्लेषण-विश्लेषणको समझकर ही मनुष्यकी सर्वश्रेष्ठ गार्हस्थ्य-संस्थाकी नींव रक्खी थी। यही कारण है कि नारी-प्रकृतिमें भगवती जगदम्बा और पुरुष-प्रकृतिमें विराट्का प्राकट्य उनकी अपनी अनोखी सक्रिय कल्पना थी। सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी सीता और सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीराम उनके इसी विज्ञान-वैभवके चमत्कार थे। विशेषतः चरित्र-महिमा, गुण-गरिमा और शील-मधुरिमा-समन्वित नारी-निर्माणकी उनकी अपनी कला-चातुरी तो ब्रह्माकी ब्राह्मी, विष्णुकी वैष्णवी और शिवकी शैवी शक्तियोंकी भी विनिन्दक है। वैसे ही आधुनिक संसारकी तो कोई भी स्त्रियोचित सामाजिक और नैतिक वस्तु इसकी समतामें नहीं रक्खी जा सकती। यह वस्तुतः माधुर्यमें शरच्चन्द्र और ऐश्वर्यमें प्रचण्ड मार्तण्डकी भी स्पर्द्धाकी वस्तु है। जीवनके इन दोनों तत्त्वोंका विश्लेषणात्मक साहित्यिक मूर्तरूप कविके अबला-सबलात्मक निम्नलिखित मनोज्ञ चित्रणमें पढ़िये। देखिये, वस्तु कितनी सुन्दर और वास्तविक है।

अबला—अबला-जीवन ! हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचलमें है दूध और आँखोंमें पानी[1]॥

सबला—सबला-जीवन ! सत्य तुम्हारी यही प्रणाली[1]।
हाथोंमें है मृत्यु और आँखोंमें काली॥

यह है भारतीय नारीका विश्व-वन्द्य पालक और संहारमय अबलात्व और सबलात्व-संमिश्रित व्यक्तित्व। आज भी वस्तुतः हिंदुओंकी अपनी समस्त इज्जत-आबरू, मान-सम्मान, प्राण-प्रतिष्ठा और रक्षा-दीक्षा इसीपर निर्भर है। यही इनके सामाजिक जीवनका भी सबल है और अपने इसी व्यक्तित्वके प्रश्रयसे इस क्षण भी भारतीय नारी गार्हस्थ्यकी सर्वे-सर्वा बनी हुई है। एक भारतीय विद्वान्के मुखसे भारतीय नारीके विषयमें कुछ उद्गार सुनिये। वह प्रकारान्तरसे इस विषयपर इस तरह प्रकाश डालता है—

ब्रह्माकी सृष्टिमें नारी अपूर्व वस्तु है, फिर चाहे वह किसी भी रूपमें हो; किंतु उसका मानव-रूप तो और भी विलक्षण है। इस रूपमें तो वह ऐसी प्रतीत होती है मानो समस्त सृष्टिका सौन्दर्य-माधुर्य, सुख-शान्ति, लालन-पालन और रक्षणावेक्षण उसके अपने ही हाथकी वस्तु है। इसपर यह बात भी मुक्तकण्ठसे कही जा सकती है कि नारीका भारतीय रूप तो न केवल अद्भुत, अपितु लोकोत्तर महिमान्वित है। कहना यह चाहिये कि विधिने भारतेतर देशोंकी नारियोंके निर्माणमें जिस मृत्तिकाका उपयोग किया है उससे भारतीय नारीकी रचना नहीं हुई है, अपितु इसके लिये उसने किसी दूसरी ही दिव्य मृत्तिकासे काम लिया है। कदाचित् यह कहना भी असंगत न होगा कि भारतीय नारी देखनेमें प्राकृतिक मालूम होती है, परंतु है वह असलमें विशुद्ध पारमार्थिक तत्त्वोंकी बनी वस्तु। तभी तो वह अपने माता, भगिनी, पुत्री, पत्नी आदि विविध और विभिन्न रूपोंमें आज भी प्रतिमावत् पूज्य है। झाँकी लेने और आरती उतारनेकी वस्तु है। कुमारसम्भवमें हिन्दू-नारीकी इसी रूपरेखाकी कालिदासने इन शब्दोंमें आरती उतारी है—

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां[1]
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥

यही कारण है कि म० *Amiel* के शब्दोंमें आर्य-जाति की आजकी पतनोन्मुख अवस्थामें भी यही आर्य-[illegible] सुख-सौभाग्यको सदैव अपने उत्सङ्गमें [illegible] रही है।

म० म० पं० [illegible]जीके शब्दोंमें भारतीय नारी अपने प्रत्येक प्रकार, रूप और दशामें आज भी [illegible] लङ्कारका विषय बनी हुई है। उसकी गुण-[illegible] विचार कर सकना मनुष्यकी शक्तिके [illegible] है, उसकी महनीय विलक्षणता तो इसीमें [illegible]

१. कोमलता और कठोरताके दोनों कैसे विलक्षण रूप हैं। पहला अहिंसा-पूर्ण परंतु सीमान्त कोमल, कारुणिक और पोषक है। दूसरा उद्भट हिंसामय किंतु रोमाञ्चकारी और निरपेक्ष घातक है।

१. अपने सौन्दर्यको [illegible] विश्वकी भी अनोखी बात नहीं है [illegible] की वस्तु नहीं है। परन्तु भारतीय नारीमें [illegible] लोक-परम्परा है।

और राजमाताके निम्नलिखित संवादपर सामयिक आवश्यकता-की दृष्टिसे भी विचार करिये—

महाराणीने महलोंमें 'राव' की मृत्युके समाचार सुनकर चिल्लाकर पूछा—'क्या वह अकेला ही चल बसा ?'

राजमाता—कभी नहीं, वह बालक जिसने इन छातियोंका दूध पिया है, रणक्षेत्रमें कभी अकेला प्रस्थान नहीं कर सकता। (अर्थात् वह सहस्रोंको मारकर मरा होगा)

यह कहते हुए माताका मस्तक गर्वसे ऊँचा हो गया, उनकी छातियोंसे दूध बह निकला।

यह भी सत्य है कि राजपूत अपने शत्रुओंकी संख्या नहीं पूछते थे, प्रत्युत उत्सुकतासे उनका पता पूछते थे।

यह सब पुण्यश्लोक भारतीय नारियोंके ही दूध अथवा भारतके जलवायुके ओज-तेजका ही प्रभाव था।

ऐसी दशामें यह कहना पूर्णतः सत्य है कि यदि आज भी भारतकी जाग्रत् नारी अपने स्वरूपको अच्छी तरह समझ ले तो वह क्या नहीं कर सकती। हमारी समझमें तो आज [illegible] नाशोन्मुख संसारके धरातलको वह बहुत कुछ ऊँचा उठा सकती है और भारतको तो वह न जाने क्या और कैसा बना सकती है। सच तो यह है कि आज भी वह संसारको पवित्रता कर्तव्यतत्परता और वास्तविक वीरताका पाठ पढ़ा सकती है।[1]

भारतीय नारीके सच्चे लोकोत्तर सपूत श्रीरामके लिये देखिये, आदिकवि वाल्मीकि इस तरह लिखते हैं—

राम धनुषपर एक ही बार बाण चढ़ाते हैं।

यह हैं भारतीय नारी और उसके सपूतोंके [illegible] कारनामे। आज भी इन्हींसे हिंदू जाति जीवित है और भविष्यमें भी इन्हींसे हमें सब कुछ आशा है।

नारीका स्वरूप

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

महाशक्ति, महामाया, महामोहा—ये शब्द नारीके लिये आदियुगसे प्रयुक्त होते चले आये हैं। पुरुषके लिये नारी सदासे एक पहेली रही है, यद्यपि इस पहेलीको पुरुषने स्वतः बना दिया है। जब हम किसी वस्तुको अपने दृष्टिकोण-से देखने लगते हैं और वह हमारे दृष्टिकोणसे सर्वथा भिन्न स्वभावकी होती है, तो वह हमारे लिये एक पहेली—उलझन हो जाती है। पुरुषने कभी तटस्थ दृष्टिसे नारीका अध्ययन ही नहीं करना चाहा। उसने जब नारीकी ओर दृष्टिपात किया तो वह पुरुष रहा। फलतः नारी उसके लिये एक पहेली रही। दीर्घकालतक पुरुषके इस उलझनभरे दृष्टिकोणने नारीको इसका अभ्यस्त बना दिया। वह इसमें कुतूहलका रसास्वाद करने लगी। उसने अपनेको रहस्यमयी बना डाला।

दार्शनिकोंने पुरुष और प्रकृतिकी जो व्याख्या की है, वह इतनी पूर्ण है कि उसमें पूर्ण पुरुष एवं पूर्ण नारीका समावेश है। यह स्मरण रहना चाहिये कि पुरुष-शरीरमें प्राप्त होने-वाले सब पुरुष ही नहीं होते और नारी-शरीरमें मिलनेवाली सब नारियाँ ही नहीं है। दोनोंमें पशुत्व तो है ही । साथ ही पुरुषमें भी नारी तत्त्व एवं नारीमें भी पुरुष तत्त्व है। कभी-कभी तो यह इतना विषम हो जाता है कि यदि शारीरिक [illegible] ध्यान छोड दें तो एक पुरुष अपनी कोमलता [illegible] नारी ही जान पड़ता है; और एक नारी पुरुष [illegible]। सामान्यतया नारीमें शक्तितत्त्व एवं पुरुषमें पुरुषतत्त्वकी प्रधानता होती है और इससे हम उन्हें नारी या पुरुष कहते हैं।

वास्तविक पुरुष क्या है? [illegible] है। कामनाहीन है। उसमें आसक्ति नहीं। [illegible] उद्देश्य नहीं, कोई ग्रह नहीं, कोई [illegible] नहीं। [illegible] शान्त-तत्त्व है। वह उदासीन अपने [illegible] है। [illegible] वह देखता ही नहीं। कभी उनके [illegible] जब प्रकृतिकी ओर देखता है तो [illegible] वह उपभोक्ता बन जाता है। [illegible] है सुख-दुःखका। कर्ता वह नहीं। [illegible] मिथ्या मानता है। सारी क्रियाओंमें [illegible] प्रकृति ही उनका सञ्चालन करती है। [illegible] क्रियाएँ होती हैं।

---

१. भारतीय नारीकी वीरोचित ख्याति न केवल इतिहास अपितु किरनमयीकी कटार, [illegible] दुर्गावतीके निर्मम आत्मत्याग, पद्मिनीके जौहर-व्रत, पन्नाधायके लोम-हर्षण बलिदान, लक्ष्मीबाई और [illegible] गाथाओंमें अब भी भारत-माताके सच्चे सपूतोंके हृदयोंको कर्तव्य-पथकी ओर प्रेरित करती रहती [illegible] उत्साहित करती है।

यद्यपि उसमें कर्तृत्व नहीं है, पर उसकी प्रेरणा ही महाशक्ति है। पुरुषके कर्तृत्वको उसकी प्रेरणा न मिले तो वह सुप्त रहता है। नारीकी प्रेरणा पुरुषको महाकवि, महान् कलाकार, महान् उद्योगी या किसी भी दुर्गम आखेटमें निपुण अथवा विकट यात्राका यात्री बना सकती है। नारीकी प्रेरणा पुरुषको युद्धमें अजेय बना देती है और नारीकी प्रेरणापर पुरुष कहीं भी बलिदान होनेमें गौरव अनुभव करता है। वस्तुतः पुरुष शक्तिमान् है और नारी ही उसकी शक्ति है। पुरुषके कार्य, योग, वैराग्य और भोग—सभी नारीके बिना रसहीन हैं। नारी सबमें जीवन एवं रसका संचार कर देती है।

नारी महामाया है। उसीके आकर्षणमें पुरुष आबद्ध है। पुरुषकी समस्त क्रियाओं एवं विचारोंपर वह बादलके समान छायी हुई है। उसे पुरुष अनेक रूपोंमें उपलब्ध करता है। नारीका आकर्षण और नारीका तिरस्कार या घृणा—यही उसकी महत्ताके मूलमें कार्य कर रही हैं। विश्वके लगभग सभी महत्तम पुरुषोंकी महत्ताका सर्जन नारीने किया है। इससे पुरुष तटस्थ नहीं हो पाता।

नारी महामोहा या मोहमयी है। यदि उसमें पुरुषतत्त्व प्रधान नहीं है तो अपने पति, अपने बच्चे और अपने घरके सम्बन्धमें ही वह सबसे अधिक सोचती है। उसके सोचनेका केन्द्र 'अपने'से बाहर नहीं होता। वह अपनेको छोड़ना नहीं चाहती। उसकी अभिवृद्धि और रक्षा ही उसका पूर्ण उद्देश्य है। जब वह त्यागमयी बनती है, तब भी उसकी प्रेरणाका केन्द्र 'अपना' ही होता है। वह किसी अपनेके अभ्युदयके लिये ही त्याग करती है।

नारी उत्सर्गमयी है। यही वस्तुतः उसका कल्याणमय रूप है। मोहमयी होकर भी उसे अपने लिये कोई मोह नहीं। वह जैसे कष्ट एवं सेवाके लिये ही निर्मित हुई है। अपना सर्वस्व किसीको देकर ही वह पूर्ण होती है। अपनोंकी सेवा, रक्षा, उत्कर्ष—यही उसके प्रयत्नोंका लक्ष्य है। अपनी सुख सुविधा उसके लिये बहुत गौण है। उस ओर सदासे उसका उपेक्षाका भाव रहा है।

नारीका आग्रह आभूषण एवं शृङ्गारके लिये प्रायः सभी जातियोंमें समानरूपसे है। प्रकृति ही पुरुषको आकर्षित करनेके नित्य प्रयत्नमें संलग्न है। नारीमें पुरुषको आकर्षित करनेकी यह भावना ही शृङ्गारके रूपमें प्रबल है। उसका देश-कालानुसार बाह्य स्वरूप चाहे जो हो, परंतु यह भावना तो उसमें है ही।

नारी महाकाली है। जब उसका राग असंतोष बनकर विद्रोह करता है तो उसकी विध्वंसिनी शक्ति उन्मत्त हो जाती है। पुरुषकी क्रियाएँ तो उसीकी प्रेरणा हैं। नारीका आकर्षण और नारीकी प्रेरणा महायुद्ध कराती है। विनाश उपस्थित करती है। घरोंमें अशान्ति एवं कलह तथा जीवनमें कटुता एवं दुःखका सर्जन करती है।

नारी महासरस्वती है। नारीकी भावनाको यदि कलासे पृथक् कर दें तो विश्वकी कलामें केवल ठूँठ और श्मशान रह जायँगे। यह स्मरण रहना चाहिये कि विरागोत्पादक कलाओंकी प्रेरणा भी नारी ही है। भले वह विरागात्मिका वृत्तिमें उसके मूलमें हो। प्रतिभा उसीकी प्रेरणासे प्रदीप्त होती है और रसका वही आश्रय है।

नारी महालक्ष्मी है। यदि वह शिशुओंका पालन न करे! उसीकी सेवा, उसीका प्रेम समाजको बनाये है। उसी गृहिणीके कारण गृहोंकी उत्पत्ति हुई है। यदि नारीका आकर्षण न हो तो पुरुष घरों या होटलोंसे भाग जायँ। वे उपवास करके मर जायँ या पशुओंकी भाँति घास-पत्ते खाने लगें। घरमें शान्ति, समाजमें सुख एवं राष्ट्रमें उत्कर्षका सर्जन नारी ही करती है। नारीकी प्रेरणा ही पुरुषको व्यवस्था एवं नियमके लिये विवश करती है। नहीं तो, पुरुष तो स्वभावतः नियमोंसे भागनेवाला है।

हमें अब इनके फलितार्थोंपर विचार करना चाहिये। गृह नारीके निर्माण हैं। यदि नारी उन्हें छोड़ देगी तो वे नष्ट हो जायँगे। पुरुष तो कहीं भी रह लेगा। होटल और पेड़के नीचे भी उसका काम चल जायगा; किंतु नन्हे शिशु गोदमें लेकर नारी कैसे रहेगी वहाँ? गृहोंको नष्ट करके वह अपने आश्रयको स्वयं तोड़ देगी।

पुरुष गृहकी रक्षा नहीं कर सकता। उसमें केन्द्रित रहता नहीं। जब भी उसपर गृहका भार आ पड़ा है, उसने गृहको खा पीकर फूँक डाला है और बाहरका भिखारी हो गया है। यदि वह नीच होगा तो व्यसनोंमें, सामान्य होगा तो मित्र- और उच्च होगा तो परोपकारमें गृहको निर्धन कर देगा। पकड़ रखनेकी प्रवृत्ति उसमें नहीं। उसका घर टूटा-फूटा होगा। उसकी सामग्री अव्यवस्थित होगी। इस अव्यवस्थापर वह झल्लायगा और उसे और बढ़ायेगा। घर सहेजे रखना उसके अगोचर है!

पुरुषमें त्यागकी अपेक्षा क्रूरता अधिक है। अतः वह बच्चोंको न तो सम्हाल सकता और न उन्हें सुपोषण दे

[illegible] प्रकाशित होता है [illegible] ।

[illegible] । यदि समाज [illegible] सामाजिक [illegible] तात्कालिक [illegible] भी वह [illegible] है । समाजमें [illegible] ।

[illegible] । उसका मन अपने शरीर- [illegible] । अतः आत्मोंकी चिन्ता [illegible] करता है । अतः उसकी कल्पना [illegible] है । वह अधिक उदारता और विस्तृत दृष्टिकोण- [illegible] । समाज तो परस्परके [illegible] सहयोग- [illegible] है । यदि उसमें [illegible] स्वार्थको प्रधानता [illegible] हो जायगा ।

[illegible] है । वह कल्पना और आदर्शोंके [illegible] है । उसका यह [illegible] समाजको संगठित [illegible] करता है । पर उसको [illegible] हो जायगा, क्योंकि [illegible] ही उड़ना [illegible] बनाती रहती है और [illegible] कल्पना और आदर्शोंको [illegible] पुरुषके आदर्श [illegible] ।

[illegible] है । वह यथार्थदर्शिनी [illegible] कि वह [illegible] है । वह [illegible] आदर्श [illegible] करेगी ।

तो एक बात स्मरण रखना चाहिये । पुरुषकी कल्पना- शीलताके बिना भी नारीका कुछ नष्ट न होगा । वह पड़ोसी- को देखकर धीरे-धीरे अपना विकास कर लेगी । वह स्वभावतः स्थिर है और स्थिति उसे सारी बात समझाती रहेगी । अवश्य ही यह गति अत्यन्त मन्द होगी । अवश्य नारीकी ईर्ष्या उसे पड़ोसीसे अनेक बार लड़ायेगी, लेकिन नारी- के बिना पुरुष तो केवल अपनी कल्पनाओं और आदर्शोंमें उलझा रहनेवाला एक आवारा होगा । वह ख्याली पुलाव पकायेगा । अपनी कल्पनाओंको मूर्त करनेके लिये, अपने आदर्शोंको चरितार्थ करनेके लिये वह कभी उपकरण संग्रह न कर सकेगा और न उनकी रक्षा ही कर सकेगा । संग्रह और रक्षा तो नारीके कार्य हैं ।

नारीकी मूल प्रकृति है पुरुषके प्रति अपनेको उत्सर्ग कर देना । पुरुषको आकर्षित करनेका प्रयत्न करना । पुरुषकी प्रकृति है उपभोग । नारी जब समाजमें आती है तो उसकी प्रवृत्ति अनर्थ उपस्थित कर देती है । पाश्चात्त्य सभ्यताने नारी- को समाजमें खुला छोड़ा । आज वहाँ नारी प्रत्येक पुरुषको आकर्षित करनेके उपायमें पगली हो गयी । वहाँके फैशनमें नारी अर्धनग्न हो गयी । उसके वस्त्र घटते और सूक्ष्म होते जा रहे हैं । नारीकी उत्सर्ग वृत्ति और पुरुषकी उपभोग वृत्ति स्वाभाविक है । उसे रोका नहीं जा सकता । सहशिक्षा और अबाध सामाजिक मिलनमें ये वृत्तियाँ अनर्थ तो करेंगी ही ।

नारी जब उत्सर्गको छोड़कर अर्जन प्रारम्भ करती है तो अपने जीवनको अशान्त बना लेती है । वह सामनयी केन्द्रित वृत्तिकी है । एकको त्यागकर जब अनेकमें वह हृदयको विभक्त करेगी तो वह अपने स्वभावके प्रति विद्रोह करेगी और उसका परिणाम तो जीवनमें अशान्ति होना है ही ।

पुरुष जब संग्रह और संकीर्णताको अपनाता है तो वह अपने जीवनको अशान्त बना लेता है । आर्यसंस्कृतिने पुरुष- को विश्व भरकी आराधना बतायी । उसका क्षेत्र विश्व है । नारीका क्षेत्र घर है । उसकी वृत्ति 'अपनों' पर उत्सर्ग होने- की है, अतः उसका आराध्य पति है । जीवनमें शान्ति तथा सुखके लिये नारीको अपना स्वरूप समझकर ही आचरण करना उपयुक्त होगा । उसे उत्सर्गमें पुरुषका प्रतिद्वन्द्वी नहीं बनना चाहिये ।

नारी और नौकरी

(लेखक—पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र, एम्० ए०)

आजकल अपने यहाँकी शिक्षित स्त्रियोंको नौकरियोंका बड़ा चस्का लग रहा है । इस सम्बन्धमें पाश्चात्योंका क्या अनुभव है, इसे भी देख लेना चाहिये । प्रथम महायुद्धके पहले पाश्चात्य देशोंमें भी बड़े घरोंकी स्त्रियोंके लिये नौकरी करके रुपया कमाना अपमान समझा जाता था । केवल गरीब स्त्रियाँ घरों तथा कारखानोंमें काम करके अपना पेट पालती थीं । युद्धके दिनों पुरुषोंके लड़ाईपर चले जानेके कारण प्रायः सभी कामोंमें स्त्रियोंको लगाना आवश्यक हो गया । इस तरह उन्हें आर्थिक स्वतन्त्रताका मजा आ गया; परंतु जब युद्ध समाप्त हुआ, तब एक विकट प्रश्न उपस्थित हो गया । स्त्री-पुरुष दोनोंको काम देना कठिन हो गया और बेकारोंकी संख्या बढ़ने लगी । 'आवर फ्रीडम ऐंड इट्स रिजल्ट्स' (हमारी स्वतन्त्रता और उसके परिणाम) नामक पुस्तकमें ब्रिटेनके नारी-आन्दोलनकी एक प्रधान नेत्री रे इस्ट्रैची लिखती हैं कि 'स्त्रियोंकी आर्थिक स्वतन्त्रताके मार्गमें कितनी ही रुकावटें हैं । इनमें कुछ तो प्राकृतिक हैं, जिनमे परिवर्तनकी सम्भावना नहीं और कुछ परम्परागत सामाजिक बहमोंके कारण हैं, जिनके दूर होनेमें बहुत समय लगेगा । गर्भ धारण करके बच्चा जनना स्त्रियोंका प्रकृतिसिद्ध कार्य है, जो कभी पुरुषोंके मत्थे नहीं पड़ सकता । यद्यपि इसमें अधिक समय नहीं लगता, तथापि इसकी सम्भावनाके कारण स्त्रियोंको काम मिलनेमें बाधा अवश्य पड़ती है । लड़कोंको सीना-पिरोना, खाना पकाना भले ही सिखाया जाय; पर इन कामोंके लिये वे घरोंमें नहीं बैठ सकते । घरका बहुत कुछ काम स्त्रियोंको ही करना पड़ता है । इसका फल यह होता है कि बाहर काम करनेवाली स्त्रियोंपर दोहरा बोझ पड़ता है, जिसमें वे अपना स्वास्थ्य गँवा बैठती हैं । स्त्रियोंकी शारीरिक शक्ति पुरुषोंसे कम होती है, यह मानना ही पड़ेगा । एक बात यह भी है कि चालीस वर्षकी आयु हो जानेपर स्त्रियोंमे शक्तिका ह्रास आरम्भ हो जाता है । इतनी आयु होनेपर ही जिसे हटानेकी आवश्यकता हो, ऐसे व्यक्तिको काम देनेमें लोगोंको आगा-पीछा होता ही है । स्त्रियोंमें एक दोष यह भी है कि वे जो काम लेती हैं, उसके पीछे पड़ जाती हैं । मनोऽनुकूल काम मिलनेपर तो यह गुण है; किंतु जब ऐसा नहीं होता, तब इसका स्वास्थ्यपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है । पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें ममता भी अधिक होती है । घर-द्वार, बाल-बच्चों, वृद्ध तथा रोगी आश्रितजनोंको छोड़कर जहाँ चाहे चले जाना इनके लिये सहज नहीं होता । स्त्रियोंकी आर्थिक स्वतन्त्रताका प्रश्न बड़ा जटिल है । अभी तो इसके प्रयोग-का प्रारम्भ ही हुआ है । उनके तथा समाजके जीवनपर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, यह समय ही बतायेगा ।'

स्त्रियाँ जब नौकरियोंके पीछे पड़ती हैं, तब घर बिगड़ जाता है । इसका अनुभव पाश्चात्य देशोंमें भी हो रहा है । इंग्लैंडमें विवाहिता स्त्रियाँ शिक्षा तथा अन्य कई विभागोंमें काम नहीं कर सकतीं । कई नगरोंकी म्युनिसिपलिटियोंमें यह नियम है कि विवाह हो जानेके पश्चात् स्त्रियाँ काम परसे हटा दी जाती हैं । सोवियट रूसमें स्त्रियोंको पूर्ण स्वतन्त्रता है । लेनिन्की राय थी कि 'स्त्रियोंको गृहस्थीके कार्य तथा बच्चोंकी परवरिशसे मुक्त कर देना चाहिये, जिसमें वे देशकी सेवा कर सकें ।' इसलिये बच्चोंके पालन पोषण और शिक्षाका भार राज्यने लिया । बच्चा जननेके लिये सरकारी सूतिकागृह खोले गये । शिशुशालाओंमें उनका पालन पोषण होने लगा और बड़े होनेपर स्कूलोंमें उनकी शिक्षाका प्रबन्ध किया गया । इन संस्थाओंमें उन्हें सब तरह सुविधा दी गयी और इनका सञ्चालन विशेषज्ञोंको सौंपा गया । पर बादमें देखा गया कि इनमें भी [illegible] वह बात नहीं आती, जो घरके पले बच्चोंमें होती है । इसका अनुभव स्वयं लेनिन्की पत्नी क्रुपस्काने किया, [illegible] हाथमें बहुत दिनोंतक शिशु पालन विभागका [illegible] ।

प्रथम महायुद्धके बाद जैसी स्थिति उत्पन्न हुई थी, [illegible] ही गत महायुद्धके बाद भी देखनेमें आ रही है । [illegible] देशोंमें स्त्रियोंको काम मिलना कठिन हो रहा है । [illegible] ही स्त्रियाँ रोजगारकी तलाशमें भटक रही हैं । स्त्री-पुरुषोंकी समानताकी हामी भरनेवाले पाश्चात्य देशोंमें भी [illegible] एक ही प्रकारके कामके लिये स्त्री-पुरुषोंका वेतन [illegible] है । ब्रिटेनमें समाजवादी सरकार है । [illegible] थोड़े ही दिन पहले यह प्रस्ताव [illegible] वेतन समान कर दिया जाय । पर [illegible] विरोध किया गया । उसका कहना था कि [illegible] उसे मान्य है, [illegible]

जायगा, अतः यह अभी सम्भव नहीं।' यह समझना भूल है कि घरका काम राष्ट्रका काम नहीं। गत महायुद्धके समय ब्रिटेनके युद्धमन्त्रीने स्त्रियोंसे अपील करते हुए कहा था कि 'स्त्रियाँ समझती हैं कि साधारण काम करनेमें उनका समय नष्ट होता है। पर यह बात नहीं। किसी-न-किसीको तो राष्ट्रके लिये आलू बनाना और थालियाँ साफ करनी ही पड़ेंगी। बिना छोटे-छोटे काम सीखे बड़े कामोंकी योग्यता नहीं आती।'

कहा जा सकता है कि यह स्वतन्त्रता या समानताका शौक नहीं, जिसके कारण स्त्रियाँ नौकरियोंके पीछे दौड़ती हैं। वास्तवमें यह उनकी आर्थिक विवशता है। परंतु आर्थिक दृष्टिसे भी नौकरियोंसे क्या लाभ होता है? घरपर रहकर स्त्री कितना काम कर सकती है। यदि वह नौकरीपर चली जाय तो वही काम मजदूरी देकर दूसरोंसे कराना होगा। तब भी क्या सब काम अपने मनके अनुसार होगा और स्त्री अपनी कमाईसे सबको मजदूरी देकर अपने लिये कुछ बचा लेगी?

भारतकी स्त्रियोंमें नौकरीका शौक बढ़नेसे विकट समस्याएँ उपस्थित होने लगी हैं। स्कूलोंकी इन्स्पेक्टरानियाँ बड़े चक्करमें हैं—दौरेपर बच्चोंको हर समय अपने साथ कहाँतक रक्खें और घरपर नौकरोंके मत्थे छोड़ें तो उनकी दुर्दशा। कुछ दिन पहले पंजाब-सरकार इसपर गौरसे विचार कर रही थी कि विवाहिता स्त्रियोंको यह पद न देनेके लिये नियम बना देना चाहिये। ट्रावनकोर राज्यकी कौंसिलमें यह बहस छिड़नेपर कि नर्सों (धाय) को विवाहिता होना चाहिये या नहीं, उस विभागके अध्यक्षने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—'या तो पत्नी बनकर रहना पड़ेगा या धाय। दोनोंके काम एक साथ नहीं हो सकते।' हाँ, यह बात अवश्य है कि गृहस्थीको सुचारुरूपसे चलाते हुए तथा अपनी मान मर्यादाकी रक्षा करते हुए किसी उद्योगके द्वारा चार पैसे कमाये जा सकें तो अच्छा ही है। घरमें यदि कोई सहायता करनेवाला न हो तो घरेलू उद्योग-धंधे करनेमें कोई हानि नहीं। इसे मनुने भी माना है। वे लिखते हैं कि यदि पति जीवन-निर्वाहका प्रबन्ध बिना किये विदेश चला जाय तो स्त्री सीना-पिरोना आदि अनिन्दित शिल्पोंसे अपना निर्वाह करे—

प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ।

कहा जा सकता है कि जब गरीब घरोंकी या नीची कही जानेवाली जातियोंकी स्त्रियाँ घरके बाहर मेहनत-मजदूरी कर सकती हैं, तब फिर अमीर या बड़े घरोंकी स्त्रियोंके मार्गमें ही क्यों रुकावटें डाली जायँ। वहाँ दो बातोंका ध्यान रखना पड़ेगा। इनमेंसे एक तो है सम्मिलित कुटुम्बकी प्रथा। इसमें कुछ दोष भी हैं। प्रायः एक व्यक्ति कमाते-कमाते पिसता है और कई निठल्ले लोग बैठे-बैठे खाते और मौज उड़ाते हैं। इसके अतिरिक्त जहाँ चार बर्तन एक साथ होते हैं, वहाँ कुछ खुट-पुट चलती ही है। पर इन सबके होते हुए भी इसमें एक बड़ा लाभ मानना ही पड़ेगा और वह यह है कि कुटुम्बका कोई सदस्य निःसहाय नहीं रहता। किसी-न किसी तरह सभीका निर्वाह हो जाता है। घरका कुछ-न-कुछ काम भी सबको करना ही पड़ता है। बच्चोंकी देख-रेखका भार प्रायः घरकी बूढ़ी स्त्रियोंपर रहता है। उन्हें अपने बच्चे सौंपकर काम करने-योग्य स्त्रियाँ निश्चिन्तताके साथ बाहर मेहनत-मजदूरी करती हैं। दूसरी बात यह है कि प्रायः स्त्रियाँ अपने घरके पुरुषोंके काममें ही उनका हाथ बँटाती हैं। किसानके घरकी स्त्रियाँ खेती-बारीमें अपने यहाँके पुरुषोंके साथ पूरी मेहनत करती हैं। व्यवसायियोंके सम्बन्धमें भी यही बात है। बढ़ई, दरजी, लुहार आदिकी स्त्रियाँ अपने पतियोंके काममें इतनी दक्ष हो जाती हैं कि आवश्यकता पड़नेपर बिना पुरुषोंकी सहायताके भी वे अपना काम चला लेती हैं। इसमें एक और सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि बच्चोंको छुटपनसे ही अपने माता-पिताके कामकी शिक्षा मिलने लग जाती है। प्रत्येक घर 'बेसिक ट्रेनिंग सेंटर' बन जाता है। बच्चोंको जीविको-पार्जनयोग्य बनानेमें एक पैसा खर्च नहीं होता। क्या यह बात बनावटी वातावरणवाली संस्थाओंमें आ सकती है, जिन-पर आजकल इतना रुपया फूँका जा रहा है? यदि बड़े घरानो-की स्त्रियाँ भी कोई ऐसा काम सीखें, जिसमें घरमें रहकर ही वे अपने पतिका बोझ हल्का कर सकें तो अच्छा ही है। दफ्तरके अफसरोंकी घुड़की-धमकी सहनेकी अपेक्षा अपने पति-की सेवा कहीं अच्छी। दूसरोंके बच्चोंको शिक्षा देनेके लिये स्कूलोंमें नौकरी करनेके पहले अपने बच्चोंकी शिक्षाकी चिन्ता करनी चाहिये।

घर यदि पति-पत्नीकी साझेदारी है तो उसमें पति बाहर मेहनत करके पैसा लाता है और पत्नी घरमें मेहनत करके अपना हिस्सा पूरा करती है, इसमें अन्याय कहाँ? केवल पति-पत्नीका कुटुम्ब और दोनोंके विभिन्न व्यवसाय—ये सर्वथा आधुनिक भाव हैं। बच्चोंको किसी कुटुम्बीजनके घरमें रखनेसे स्वतन्त्रतामें बाधा पड़ती है। ऐसी दशामें यदि पति-पत्नीका कार्य-क्षेत्र अलग हुआ तो फिर न बच्चोंकी देख-रेख हो सकती है और न घरकी ही। इन व्यावहारिक अड़चनोंके अतिरिक्त इस प्रकारकी आर्थिक स्वतन्त्रतामें केवल घरके ही

नहीं, समाजके विघटनके बीज अन्तर्हित हैं। अपने यहाँका यह प्राचीन आदर्श है कि स्त्री, अपना देह और सन्तान—ये तीनों मिलकर पुरुष होता है। जो भर्ता है, वही भार्या है; इन दोनोंमें कुछ भी भेद नहीं—

एतावानेव पुरुषो यज्जायाऽऽत्मा प्रजेति ह।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना॥
(मनु० ९। ४५)

इसलिये जीवनपर्यन्त स्त्री-पुरुष धर्म, अर्थ, काम आदिमें पृथक् न हों। आपसमें यही उनका धर्म बतलाया गया है—

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥
(मनु० ९। १०१)

किसी समय पश्चिम भी यही आदर्श मानता था। प्राचीन यूनानके प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटोका, जिनपर बहुत कुछ भारतीय प्रभाव था, कहना था कि "वह बड़ा ही सौभाग्यशाली तथा सुखी राष्ट्र है, जहाँ 'मेरा' और तेरा—ये शब्द बहुत कम सुनायी देते हैं; क्योंकि वहाँके नागरिकोंका सभी प्रधान बातोंमें सम्मिलित स्वार्थ होता है। इसी तरह विवाहित स्त्री-पुरुषकी पूँजी एक ही होनी चाहिये, जिसमें कि उनमें भी 'मेरे' और 'तेरे' का भाव न हो।" अपने यहाँ अब भी पुराने चालके घरोंकी यही रीति है कि पति जो कुछ कमाकर लाया अपनी पत्नीके हाथमें रख दिया; वह चाहे जैसे खर्च करे, वह घरकी रानी है। बैंकोंमें दोनोंके अलग-अलग खाते, अलग हिसाब-किताब, अलग-अलग खर्च—ये सब नये भाव हैं, जिनका परिणाम यह हो रहा है कि 'संघटन' 'संघटन' चिल्लाते हुए भी सर्वत्र 'विघटन' 'विघटन' ही देख पड़ रहा है। विश्वमें शान्ति स्थापित करनेके लिये जिन विद्वानोंका दिमाग किसी नयी व्यवस्थाकी खोजमें है, उनमें बहुतोंकी यही राय है कि इसकी कुञ्जी देश या व्यक्तिकी आत्मनिर्भरतामें नहीं बल्कि परस्पर-निर्भरतामें है। आर्थिक ही क्यों, यदि देखा जाय तो जीवनके सभी विभागोंमें परस्पर निर्भरतासे ही सहयोगकी प्रवृत्ति आ सकती है। पर जब उसका घरमें ही अन्त कर दिया जायगा तो क्या वह राष्ट्र या विश्वके सम्बन्धमें आ सकती है?

भारतीय देवियोंके प्रति

(तपस्विनी श्री ११८ श्रीमज्जगज्जननीजीका शुभ संदेश)

विश्ववन्द्य आर्यावर्तकी देवियो! मैं आज स्वागतपूर्वक आपका आवाहन करती हूँ; जरा घरकी चहारदीवारीसे बाहर आकर देखिये तो सही, आपकी प्राणाधिक प्रिय संतानोंकी इस समय क्या दुर्दशा हो रही है? जिन्हें आपने बड़े [illegible] पाला, प्राणपणसे जिनका संरक्षण और संवर्धन किया, उन्हींकी आज दिन-दहाड़े होली जलायी जाती है। आज आँचलमें मुँह [illegible] कर चुपचाप बैठनेका समय नहीं है। हमपर, आपपर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। इस समय हमारे स्वतन्त्र राष्ट्रको [illegible] महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरुगोविन्दसिंह, श्रीबंदा वैरागी, समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी, बिहारके रणबाँकुरे [illegible] सिंहजी तथा वीरवर श्रीदुर्गादासजी-जैसे संतानोंकी परम आवश्यकता है। जबतक आप सुभद्रा नहीं बनेंगी, अभिमन्यु-जैसे वीर [illegible] नहीं हो सकेंगी। श्रीगुरु गोविन्दसिंह-जैसे पुत्रको जन्म नहीं दे सकेंगी। श्रीजीजीबाई बने बिना आप छत्रपति शिवाजीकी जननी नहीं हो सकेंगी। [illegible] जन्म देनेके पहले आपको श्रीगुजरीबाई बनना होगा। मदालसा, मैनावती और सुमित्रा बननेपर ही आप [illegible] तथा लक्ष्मण-जैसे पुत्रोंकी माता बन सकेंगी। त्याग, तपस्या तथा सतीत्वके पथपर चलनेवाली प्राचीन देवियोंका आदर्श [illegible] स्वयं अपनाइये और अपनी कन्याओंको भी उन्हीं आदर्शोंपर चलना सिखाइये। इसके लिये यह आवश्यक है कि [illegible] सुकोमलमति सुकुमारी कन्याओंको आधुनिक ढंगपर चलनेवाले गर्ल्स स्कूलों और कालेजोंके [illegible] वहाँ भेजकर आप उन्हें पतिपरायणा नहीं बना सकतीं। हाँ, उस वातावरणमें रहकर वे [illegible] अवश्य पारङ्गत हो जायँगी।

आप अपने घरको ही शिक्षण-संस्था बनाइये, स्वयं ही आदर्शपर दृढ़ रहकर संतानोंकी [illegible] । यह आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। ऐसा करके आप एक सार्वजनीन, सार्वभौम शुद्ध सनातन [illegible] अभूतपूर्व सृष्टि कर सकेंगी। तभी आप ऐसी संतानोंका निर्माण करनेमें सफल हो सकेंगी, [illegible] जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन' यह सूक्ति पूर्णरूपसे चरितार्थ हो। तभी आपके [illegible] अग्नि परीक्षा देनेवाली देवियोंका दिव्य दर्शन संभव हो सकेगा।

जीवनकी पाठशालामें नारी

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

बहन, तुम पढ़ी-लिखी हो। तुमने स्कूल-कालेजमें या घर-पर भी शिक्षा प्राप्त की है। पर मैं उस पाठशाला और उस शिक्षाकी बात नहीं करता। मैं उस शिक्षाकी बात कर रहा हूँ, जो तुममें जीवनकी शक्ति उत्पन्न करेगी, जो तुम्हें मानव-जीवनकी समस्याओंको सुलझाने और आदर्शोंके लिये प्रयत्न करनेका बल देगी।

तुमने जीवनकी इस पाठशालामें प्रवेश ही किया है। यहाँ आकर तुम्हारे बहुत-से स्वप्न टूट जायँगे; बहुतेरी पूर्व-कल्पित भावनाएँ असत्य सिद्ध होंगी। जब तुम सुखके सपनोंपर झूलती होगी, तभी उल्कापात होगा। इसलिये तुम्हें जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके साधनोंका संग्रह करना होगा; तुम्हें प्रति पगपर सीखना होगा।

सबसे पहले तुम्हें अपने स्वास्थ्यकी ओर ध्यान देना होगा। स्त्रियाँ स्वास्थ्यके प्रति प्रायः उदासीन रहती हैं। वे भूलती हैं कि उनकी सारी उमंगें, गृहका आनन्द, बच्चोंका भविष्य—सब उनके स्वास्थ्यपर निर्भर है। स्वास्थ्यका अर्थ केवल शारीरिक स्वास्थ्य नहीं है। मानसिक स्वास्थ्य उससे भी अधिक आवश्यक है। शारीरिक स्वास्थ्यके बिना किसी तरह काम चल भी जाय, पर मानसिक स्वास्थ्यके बिना तो जीवन नरक ही है। जीवनकी पाठशालामें तुम्हें सबसे अधिक ध्यान इसीपर देना होगा। यदि तुम कठिन और उत्तेजक परिस्थितियोंमें शान्त नहीं रह सकती, यदि तुम्हारा मन तुम्हारे काबूमें नहीं है, यदि तुम जरा-जरा-सी बातमें रो देती हो, यदि जरा-सी घटना तुम्हें खीज और क्रोधसे भर देती है, तो मैं कहूँगा कि दुनियाका अनन्त वैभव भी तुम्हें सुखी नहीं कर सकता। जीवनमें प्रतिदिन ऐसे अवसर आयँगे कि उनका बुरा अर्थ लेकर तुम अपना, अपने पति और कुटुम्बियोंका जीवन दुःखमय बना सकती हो। एक बार मनपरसे नियन्त्रण हटा, तुम्हारे अंदर [illegible] आया कि वह बढ़ता ही जायगा और तुम [illegible] जाओगी। खीझोगी और गिरोगी, गिरोगी और [illegible]। यहाँतक कि मार्गके फूल लुप्त हो जायँगे और तुम्हारे पैरोंका स्वागत करनेके लिये केवल काँटे रह जायँगे।

दुनियामें जितना भी दुःख है, वह इसी मानसिक असंयमके कारण है। यदि तुमने इसे नहीं समझा [illegible] तो तुम्हारी सारी शिक्षा व्यर्थ है। मनुष्यका [illegible] मन अनेक प्रकारसे अपनेको धोखा देता है। जब हम क्रोध करते हैं तो तर्क और बुद्धि उस समय क्रोधका समर्थन करती है। मैं यह भी मानता हूँ कि तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी झुँझलाहट न्यायसंगत हो सकती है, तुम तर्कसे उसका औचित्य सिद्ध कर सकती हो। मैं तर्क न करूँगा। मैं तुमसे विनय करूँगा कि क्षणभर रुककर अपने हृदयको टटोलो और उत्तर दो कि क्या वहाँ सब कुछ ठीक है? क्या तुम उत्तेजनामें कुछ ऐसा काम नहीं कर गयी हो जिसे करके तुम्हारा हृदय सुखी नहीं, उलटे अशान्त हो गया है? यदि यह सत्य है तो न्यायकी बातोंसे क्या लाभ? तर्क जीवनकी कठिनाइयाँ बढ़ा सकता है, समस्याएँ पैदा कर सकता है, पर उन्हें हल नहीं कर सकता।

जिस युगमें हम जी रहे हैं, उसमें संघर्ष इतना अधिक है कि जीवनकी शक्तियाँ पंगु हो गयी हैं और शारीरिक स्वास्थ्य तो बिगड़ा ही है, मानसिक स्वास्थ्य उससे भी अधिक नष्ट हो गया है। मनुष्य इतना तुनुकमिजाज हो गया है कि उसमें ग्रहणकी, धारणाकी, अपनेपर काबू रखनेकी शक्तिका लोप होता जा रहा है। प्रत्येक दिशा और प्रत्येक क्षेत्रमें तुम्हें इसके अगणित उदाहरण आज मिलेंगे। परंतु गृहस्थ-जीवन तो इस गुण और इस शिक्षणके अभावमें नरक ही हो गया है। तुम्हारी शक्तिकी परीक्षा यहीं है और तुम्हारे ज्ञान, तुम्हारी सदाशयता—सबको चुनौती देनेवाली परिस्थितियाँ आज तुम्हारे सामने हैं।

× × ×

दो अभिशप्त हृदय

मेरे एक मित्र हैं। उनकी एक बहिनकी दो वर्ष पूर्व शादी हुई। यह लड़की न केवल विदुषी बल्कि सुशीला भी थी। जीवनमें सदा उसने प्यार और दुलार ही पाया था। अच्छी जगह शादी हुई। भरा-पूरा, प्रतिष्ठित कुटुम्ब। हमलोगोंने समझा, लड़कपनकी भाँति इसका नारी-जीवन भी सुखपूर्ण होगा। इसके पति अच्छे, सदाशय युवक हैं और कल ही मैं इन दोनोंसे मिलकर लौटा हूँ। पर जो कुछ मैंने देखा और जाना, उससे मेरी वे आशाएँ नष्ट हो गयीं। दोनोंने अपने अभाव-अभियोग अलग-अलग मेरे सामने रक्खे और दोष दूसरे पक्षका बताया। दोनोंका दावा था कि उसने अधिक-से-अधिक ध्यान दूसरेका रक्खा। मैं नहीं जानता, किसकी बातमें कहाँतक सत्य था। मैं समझता हूँ, दोनोंने सच्ची बातें कहीं;

पर इन सब बातोंके बीच एक बात निश्चित थी कि दोनोंने एक दूसरेसे जिस सुखकी आशा की थी, वह पूरी न हुई। उनके स्वप्न टूट गये थे और जीवनमें खीझ और कटुता भर गयी थी।

चिनगारी

बात यह थी कि पतिकी मा कुछ रूखे स्वभावकी थीं। जीवनकी तकलीफोंने उन्हें कुछ कटु बना दिया था। पुराने वातावरणमें पली थीं। बहूपर अधिकार और शासनकी भावना उनमें प्रधान थी। वैसे वे कुछ बुरी न थीं। पर वे कुछ कहतीं और जरा रूखे ढंगसे कहतीं कि बहूको बुरा लगता। वह चाहती कि चुप रह जाय, हँसकर सहन कर ले; पर जो उसकी बुद्धि कहती, वैसा वह कर न पाती थी। मन उसका जवाब देनेको बेचैन हो जाता। जीभ दबाती, पर दो एक शब्द निकल ही जाते—वे शब्द, जो भावनाओंके पुञ्जमें ऐसे लगते हैं जैसे बारूदमें चिनगारी लगती है। जरा-सी चिनगारी और एक भयंकर विस्फोट, सुदर्शन वस्तुएँ गंदी राखमें बदल जाती हैं।

कलहका पहाड़

यहाँ यही हुआ। दो शब्द, न चाहते हुए भी, जीभसे निकले और झट दोसे चार, चारसे सोलह हुए। इसी प्रकार तबतक बढ़ते गये, जबतक इर्द-गिर्दका सम्पूर्ण जीवन दुःख और हाहाकारसे भर नहीं गया। एकने कहा—'मा! आप तो झूठी ही बात-बातमें बिगड़ती हैं।' दूसरी बोली—'बाप-रे-बाप! तुझे तो सीधी बातें भी टेढी लगती हे। आयी और झगड़ने लगी !!

पहली (बहू)—'मैंने आखिर क्या झगडा किया। बिना कुछ बताये ही आप कलङ्क लगाती हैं।'

दूसरी (सास)—'नहीं, झगड़ालू तो मैं हूँ। तू तो सीधी-साधी सावित्री है। लड़केको पाल पोपकर इतना बड़ा किया। सोचती थी—बहू आयेगी, मेरा भाग्य खुल जायगा। सेवा करेगी; पर यहाँ तो किसमत ही ऐसी है कि सोना छुओ तो मिट्टी हो जाय। जब किसमत ही खोटी है, तब तू कलकी छोकरी अगर मुझे शिक्षा दे तो आश्चर्य नहीं।'

इन झगड़ोंमें बेचारा पति क्या करता? क्या वह अपनी माको घरसे अलग कर देता? क्या वह बहूको निकाल बाहर करता? ये स्वभावगत दोष थे और तर्कोंसे इनका निराकरण नहीं हो सकता था। बहुत दिनोंतक उसने वही किया, जो प्रायः पति करते हैं—यानी स्थितिसे भागता रहा। सुनी अन सुनी करता रहा। पर दुर्भाग्यसे कोई कबतक भाग सकता है। घर आता तो एक ओर बहूकी क्रोधसे भरी आँखें उसपर टूटतीं, जिनके साथ कभी-कभी आँसुओंका तूफान भी होता। दूसरी ओर, माकी ओरसे, व्यङ्गोंकी बौछार उसके सीनका स्वागत करती। बहू और मा दोनों अपने करम ठोकतीं। एक सोचती—किसके पाले आ पड़ी। दूसरी कहती—भाग्यमें बहूकी गुलामी भी लिखी थी। पत्नी सोचती—कैसे सुन्दर सपनोंसे भरे लड़कपन और किशोरावस्थाके वे दिन थे। वह माका दुलार, वह बहिनोंका प्यार, वह पिताका स्नेह, भाइयों-की ममता। वह सहेलियोंकी चुहल और छेड़खानियाँ। ऐसी बातें कभी किसीने न कही होंगी। आप ये हैं [illegible]। जब मेरी इज्जत नहीं रख सकते तो क्यों ब्याह लाये! क्या मा-की सेवाके लिये लौंडियाँ नहीं मिल सकती थीं। मारे और पड़ी रहूँ; पर मेरा ही खाना और मुझीपर हुक्म चलाना! हाय, मेरा करम फूट गया। वे सुनते हैं और चुप हैं। क्या मैं मिट्टीका ढेला हूँ। क्या मुझमें जान नहीं! [illegible] ऐसा विद्वान् और ऐसा बोदा। रहें उनके साथ। उन[illegible] लड़के हैं। मैं पराई बेटी, मेरा कौन है?' इसी तरहकी हजार बातें, जिन्होंने मधु मक्खीकी तरह पीछा किया और उसके हृदयको छलनी कर डाला।

उधर मा सोचती—'वही लड़का है, जो मेरे आगे आँख नहीं उठाता था। अब मुँह देखता है और [illegible] जाता है। बहूके आगे माको भूल गया। [illegible] इसे पाला। न दिन देखा न रात। (बीच-बीचमें [illegible] रोना)। आज मेरा कोई आसरा नहीं रहा, [illegible] हो रही है। कभी बहूको नहीं डाँटा, [illegible] मजाल थी जो यों जाल फैलाती। [illegible] है। जब बुरे दिन आते हैं, कौन किसका होता है। हे भगवन्! मुझे जल्द उठा लो।' इसी तरहके [illegible] हमारे विवेकके चारों ओर अपनी बन्दिश [illegible] जैसे मकड़ी अपने शिकारको जालमें [illegible]—[illegible] उसे बेबस और निष्प्राण कर डालती है।

विस्फोट

जब बेचारा पति इन दो चक्कियोंमें पिसते पिसते [illegible] हो गया तो एक दिन विस्फोट हुआ। [illegible] लड़ाई हुई। फिर बहूने उससे कहा—'तुमने मेरा जीवन नरक बना दिया। [illegible] जाओ और मुझे शान्तिके साथ मरनेके लिये छोड़ दो। [illegible] झगड़ोंके वातावरणमें रहते-रहते बहूका [illegible] हो गया था कि उसने पतिसे भी कह दिया—'मैं [illegible] जाऊँगी, यहीं रहूँगी। [illegible] आपको मेरे पास शान्ति न मिले तो कहीं [illegible]।'

और अब तीनों एक-दूसरेको कोसते हैं, तड़पते और छटपटाते हैं, पर इस झगड़ेसे दूर नहीं होते। उस नरककी अग्निमें, जिससे कोई छुटकारा नहीं दिखायी देता, सब जलते हैं और दूसरोंको जलाते हैं।

ठीक इसके विपरीत एक दूसरा उदाहरण मेरे सामने है। करुणा एक साधारण गृहस्थ मा-बापकी बेटी। साधारण हिंदी मिडिलतक शिक्षित। इसका विवाह एक मध्यम श्रेणीके युवकसे हुआ। यह युवक एक हाई-स्कूलमें अध्यापक है। पचासी रुपये मिलते हैं। मा दूसरी जगह शादी करना चाहती थीं; पर कुछ लड़केकी इच्छा, कुछ परिस्थितियोंके कारण शादी इसी करुणासे हो गयी। मा तो रूठी थीं ही; उन्होंने बहूका हार्दिक स्वागत न किया। करुणाने यह स्थिति समझी तो पतिसे कहा—'मैं पहले माकी सेवा करके उनका हृदय जीत लूँगी। तब दूसरी बातोंकी ओर ध्यान दूँगी। इस बीच आपकी सेवामें कुछ त्रुटि हो जाय तो आप क्षमा करेंगे। मैं आपकी हूँ। अतः आपके साथ तो सदा ही रहना ही है; पर माको मेरे कारण असन्तोष हुआ तो घरकी शान्ति नष्ट हो जायगी।' इसके बाद वह माकी ओर विशेष ध्यान देने लगी। माने शुरूमें जली-कटी सुनायी। उसने भोजन बनाया तो उसमें ऐब निकाले। पर करुणाने विनीत भावसे कहा—'मा! मैं अभी बच्ची हूँ। आपके चरणोंमें रहकर मुझे सीखना है। मुझे कुछ नहीं आता; पर आप आशा करती रहेंगी और मुझे सिखाती रहेंगी तो मैं धीरे-धीरे सीख जाऊँगी।' वह जब जो करती, मासे पहले पूछती—'मा! यह काम कैसे करूँ?' माके हाथ-पाँव दबाती, उनकी आवश्यकताओं और इच्छाओंका ख्याल रखती। थोड़े दिनोंमें मा पानी हो गयीं। उनकी जबानपर सदा बहूके लिये आशीर्वाद और प्रशंसाके शब्द होते। वह बेटेसे भी कहतीं—'पूर्वजन्मके पुण्यसे मुझे ऐसी लक्ष्मी बहू मिली है। मैं पगली थी, उसे समझ न सकी थी।' आज यह कुटुम्ब परम सुखी है, मोतीकी लड़ीकी तरह एकमें गुथा हुआ।

इसीलिये कहा जाता है कि जीवनमें संस्कारिताकी आवश्यकता शिक्षासे अधिक है। विरोधी परिस्थितियों और उत्तेजक वातावरणमें भी मनको शान्त रखना एक ऐसी सिद्धि है, जो निरन्तर प्रयत्नसे मिलती है। यह न समझो कि कड़वी बातोंका जवाब देनेसे उतावली जिह्वाको नियन्त्रणमें रखकर तुम दूसरोंके लिये त्याग कर रही हो। इसमें त्यागकी बात उतनी नहीं, जितनी स्वयं तुम्हारे स्वार्थकी बात है। ऐसा करके तुम दूसरोंका नहीं—अपना भला कर रही हो, अपना स्वभाव बना रही हो, अपने सुखी गृहका निर्माण कर रही हो। यदि तुमने कटुताका उत्तर कटुतासे दिया हो, क्रोध किया हो, तो तुम्हें स्पष्ट हो जायगा कि क्रोधका प्रभाव स्वयं तुम्हारे मन और स्वास्थ्यपर कितना अधिक पड़ता है। क्रोध वह विष है, जो दूसरोंकी अपेक्षा प्रयोग करनेवालेको पहले मारता है।

गृहस्थ-जीवन एक ब्यौरेका जीवन है। इसमें चारों ओर दृष्टि रखकर चलना पड़ता है। तुम एक, पर अनेककी माँगे यहाँ हैं। फिर बीमारी, दुःख, दुर्घटनाएँ जीवनमें आती ही रहती हैं। उनके तीक्ष्ण विषसे बचनेका एकमात्र उपाय मानसिक स्वास्थ्य और मनपर नियन्त्रण है। यदि तुम इनके बीच अपने मनको बलवान् और शान्त रखलोगी, उत्तेजनाओंके प्रलोभनोंसे बचोगी तो मैं समझूँगा—तुमने जो पढ़ा है, ठीक पढ़ा है और जीवनकी पाठशालामें प्राप्त किये अनुभवोंका लाभ उठानेकी क्षमता तुममें आ गयी है।

दुःख और वेदनाका आगमन जीवनमें होता है। कठिनाइयाँ जीवनमें आती हैं। दुर्दिन आते हैं। परन्तु दुःख सत्य नहीं है, वेदना सत्य नहीं है। इनके बीच भी जीवन पनपता है। मृत्यु और दुःखपर जीवनकी विजय ही सत्य है। निराशाओंके बीच आशा सत्य है। विनाशके बीच भी जीवन अंकुरित होता और बढ़ता है। प्रकृतिमें देखो, सर्वत्र तुम्हें यह बात दिखायी देगी। बिना सुखी हुए मनुष्य रह नहीं सकता। सुख प्राप्त करना ही मानवका चरम पुरुषार्थ है। आनन्दकी साधना ही जीवनका लक्ष्य है। मानता हूँ तुम्हारे पास बीमारियाँ भी आयँगी, मृत्युके दंशसे तुम्हारा जीवन क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो जायगा, प्रेमकी उमंगें निराशाकी शुष्क ठंडी हवाओंसे शिथिल हो जायँगी, स्नेही जन बिछुड़ जायँगे, अवाञ्छनीय जनोंका आगमन होगा; पर इन सबके बीच भी मानव जीता है, उगता है, बढ़ता है—इससे कौन इन्कार करेगा?

इसलिये तुम निश्चय करो कि कठिनाइयाँ तुम्हारा दम तोड़ न सकेंगी, निराशाएँ तुम्हारा उत्साह भंग न कर सकेंगी। दुःख तुम्हें पराजित न कर सकेगा और तुम अपने मन और जिह्वापर पूर्ण नियन्त्रण रखकर, अपनेको प्रतिहिंसात्मक और मूर्च्छित न होने देकर जीवनको माङ्गल्यका दान दोगी।

अत्याचार

सास-ननद कर रहीं कहीं तो पुत्र-वधूपर अत्याचार।
कहीं वधू ही सास-ननदको देती खड़ी कड़ी फटकार॥

हिंदू-विवाहमें पत्नीका समादृत स्थान

(लेखक—महामहोपाध्याय डा० प्रसन्नकुमार आचार्य, आई० ई० एस्०, एम्० ए० (कलकत्ता), पी-एच्० डी० (लेडन), डी० लिट्० [illegible])

स्त्री-पुरुषका संयोग ही पारिवारिक विकासका मूल है। एक नैसर्गिक प्रवृत्तिके द्वारा स्त्री-पुरुष मिलते और सृष्टिका विस्तार करते हैं। इस रीतिसे जातिकी परम्परा अक्षुण्ण बनी रहती है। विधाताकी विलक्षण चातुरीके फलस्वरूप स्त्री-पुरुषके इस संयोगमें एक अद्भुत ऐन्द्रिय सुख और मानसिक तृप्ति तथा संततिके द्वारा अपने पूर्ण विकास और स्वरूप-लब्धिकी निश्चित संभावना सन्निहित है।

स्त्री-पुरुषके इस संयोगमें सांस्कृतिक विकासकी मात्रा माता-पिताके एक दूसरेके प्रति तथा एतत्संयोगजन्य अपनी संततिके प्रति स्वयं अनुभूत उत्तरदायित्वकी भावनापर निर्भर करती है। इस उत्तरदायित्वको स्वेच्छापूर्वक स्वीकार तथा वहन करनेसे लोग भागें नहीं और स्त्री पुरुषका संयोग मर्यादाधीन रहे, इसके लिये समस्त सभ्य समाजोंमें विवाहके नियम बनाये गये। कहीं-कहीं ये नियम केवल प्रथामात्र हो सकते हैं—जैसे कि प्राचीन असभ्य जातियोंमें, जिनके उद्देश्यमें प्रधानता स्वार्थकी थी और विधिका आदर्श था—जिसकी लाठी उसकी भैंस। मध्यकालीन समाजके वैवाहिक नियमोंमें धार्मिकताको प्रधानता दी गयी और सामाजिक व्यवस्था तथा वैयक्तिक एवं भौतिक हितकी अवहेलना की गयी। आधुनिक प्रगतिशील समाजोंने वैयक्तिक स्वतन्त्रताके साथ सामाजिक व्यवस्थाका ऐक्य स्थापित करनेके लिये परस्पर-विरोधी नियमोंका निर्माण किया। इस विरोधके मूलमें उन नैसर्गिक नियमोंकी अवहेलना है, जिनके अधीन होकर स्त्रीको गर्भ-धारणका कष्ट उठाना पड़ता है और यौवनसे अपेक्षाकृत शीघ्र ही हाथ धोना पड़ता है, और साथ-ही-साथ नैतिक और आध्यात्मिक हितोंकी भी अवहेलना है। इतना ही नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्थाकी भी अवहेलना हुई है, जिसकी मर्यादा केवल यौन शुद्धिपर ही निर्भर नहीं करती, वरं सर्वव्यापी और सर्वकालीन सतीत्व और पवित्रतापर अवलम्बित है। इस प्रकार वैवाहिक नियमोंके मूलमें तीन आदर्श हो सकते हैं। एक तो केवल व्यक्तिगत एवं ऐन्द्रिय तृप्ति। दूसरा शुद्ध सामाजिक हित तथा नैसर्गिक लाभ। तीसरा वह आध्यात्मिक उन्नति, जिसका मार्ग तब सुगम हो जाता है, जब स्त्री-पुरुष सर्वथा एक होकर मानव-विकासकी पराकाष्ठा एवं मोक्षको प्राप्त होते हैं।

हिंदुओंमें इस प्रकारका विवाह एक पवित्र संस्कार माना गया है। मुसलमानों, ईसाइयों तथा अन्य धर्मावलम्बियोंमें विवाहको केवल एक सौदे (Contract) के रूपमें माना जाता है। इस कारण विवाह नामक इस सौदेकी स्वीकृति एवं देशकी शासनधाराओंद्वारा रक्षाके लिये रजिस्ट्री करानेकी आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकारके सौदाई सम्बन्धमें स्त्री-पुरुषकी स्थिति किसी साझेकी व्यापारिक संस्थामें काम करनेवाले हिस्सेदारोंकी-सी होती है। परिस्थिति विशेषमें अलग हो जाना उनकी इच्छापर निर्भर करता है। हिंदू विवाहका स्वरूप आध्यात्मिक संयोग होनेके कारण यहाँ रजिस्ट्रीकी आवश्यकता नहीं पड़ती और पृथक् होनेका भी प्रश्न नहीं उठता। यह संबन्ध केवल आजीवन ही नहीं वरं मृत्युके उपरान्त भी माना जाता है। हिंदू-विवाहकी एक दूसरी प्रधान विशेषता यह है कि हमारी विवाह-विधि स्त्री-पुरुष दोनोंको एकमें बाँधकर एक ऐसे [illegible] करती है, जिसका एक अर्द्धाङ्ग पुरुष बनता है और दूसरा अर्द्धाङ्ग स्त्री बनती है। इस भावात्मक आदर्शकी [illegible] अभिव्यञ्जना शिव और पार्वतीकी अर्द्धनारीश्वर मूर्तिमें देखनेको मिलती है। आजकलके सफल विवाहोंमें भी इस प्रकारकी पूर्ण एकताका विकास होता है। पर [illegible] देखनेपर विवाहका जो आदर्श हिंदू-शास्त्रोंने रखा है, उससे ऊँचा दूसरा नहीं हो सकता।

हिंदू-विवाहके आठ प्रकारोंमें स्त्री-पुरुषकी प्रायः सभी संयोग-रीतियोंका समावेश हो गया है। इन [illegible] ऐसा नहीं है कि प्रारम्भसे ही इनका आध्यात्मिक [illegible] हो जाय। पर इन प्रकारोंमें जितनी [illegible] वे भी अन्ततोगत्वा एक पवित्र संबन्धमें परिणत हो सकते हैं। [illegible] सामाजिक व्यवस्था और शृङ्खला टूटने नहीं [illegible] आध्यात्मिक विकास तो निश्चित हो ही जाता है। [illegible] प्रकारके विवाहोंके उदाहरण तो वैदिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक साहित्यमें भी प्राप्त होते हैं; पर विवाहके नियमोंको [illegible] व्यवस्थित रूपसे ग्रथित करनेकी [illegible] और स्मृतियोंद्वारा ही हुई। [illegible] ऋषियोंने किया था। वे सब नियम [illegible] अनुसार जनताके प्रतिनिधियोंके [illegible]

स्वीकृत किये गये नियमोंकी तरह नहीं बने थे और न वे किन्हीं स्वार्थी शासकोंके द्वारा निर्मित हुए थे। उनके विधानमें वस्तुस्थितिकी नीतिका सहारा लिया जाना दीखता है। वे गहन चिन्तन और सूक्ष्म वाद विवादके परिणाम मालूम पड़ते हैं। उनकी रचना करते समय वैयक्तिक हित, सामाजिक सुशृङ्खला, राजनैतिक व्यवस्था और आध्यात्मिक पूर्णताकी प्राप्तिका आदर्श सामने था।

मनुस्मृति (३ । २७-३४) में तथा अन्यत्र भी हिंदू-विवाहके आठों प्रकारोंका अवरोह क्रमसे सविस्तर वर्णन हुआ है। सबसे प्रथम है 'ब्राह्म विवाह'। इसका प्रधान और प्रकट उद्देश्य है—ब्रह्मकी प्राप्ति अर्थात् गृहस्थधर्मका पालन करते हुए मोक्ष-लाभ। इसको दूसरे शब्दोंमें आध्यात्मिक कह सकते हैं। समुचित दहेजके साथ विवाहयोग्या कन्याका दान एक विद्वान् एवं सच्चरित्र पुरुषको किया जाता है, जिसे कन्या-का पिता या अभिभावक अपने घर आमन्त्रित करता है। शिव और पार्वतीका विवाह इसका उदाहरण बताया जाता है। इस उदाहरणमें हम एक बात यह भी देखते हैं कि विद्यावारिधि देवताका प्रेम और संग प्राप्त करनेके लिये कन्या स्वयं घोर तप करती है। वसिष्ठ और अरुन्धतीके उदाहरणमें भी हम पति-पत्नीके मनमें गार्हस्थ्य-जीवनमें हिस्सा बँटानेके अतिरिक्त बौद्धिक मैत्रीकी भी लालसा देखते हैं। अतः यह प्रकार सभीके लिये आदर्श माना गया है।

दूसरा प्रकार है 'दैव विवाह'। इसमें आभूषण-विभूषिता कन्याका दान उस याजकको किया जाता है, जो किसी यज्ञ-क्रियामें पौरोहित्य-कर्मका समुचित सम्पादन करता है। अपने कर्तव्यका सफलतापूर्वक सम्पादन करके अपनी योग्यता और चरित्रको प्रमाणित कर देनेवाला कुशल याजक प्राचीन समाजका सबसे उन्नतिशील व्यक्ति समझा जाता था। उस कालमें याजन सबसे आदरणीय और धनावह कर्म था। किसी भी अवस्थामें ऐसा पति कन्या और उसके माता-पिताद्वारा सर्वप्रथम पसंद किये जानेका पात्र था। इस प्रकारका संबन्ध बौद्धिक मैत्री, आर्थिक स्वतन्त्रता एवं गौरवपूर्ण सामाजिक स्थितिका विधायक समझा जाता। च्यवन और सुकन्या तथा इन्द्र और इन्द्राणीका परिणय इस प्रकारके विवाहका उदाहरण है। दूसरे उदाहरणमें इसके सम्मानित स्वरूपका दर्शन होता है। यदि याजनको ही, जो स्वयं किसी सम्मान्य और विद्वत्तापूर्ण जीविकासे कम नहीं है, प्रधानता न प्रदान की जाय तो दैव विवाह आजकलके उच्च परिवारोंके सम्बन्ध-सा लगेगा।

'आर्ष विवाह'का सम्बन्ध ऋषि शब्दसे है। ऋषिलोग प्रायः विवाह-बन्धनमें पड़नेके प्रति उदासीन रहते और अपने बौद्धिक व्यापारके लिये स्वतन्त्र रहना ही पसंद करते थे। अपनी बौद्धिक शक्ति और चरित्रके लिये वे समादृत होते और उनसे ऐसी बुद्धिमान् संततिकी उत्पत्तिकी आशा की जाती थी, जो समाजके भूषण बने। अतएव कन्या और उसके माता-पिताको भी ऐसे पतिको प्राप्त करनेकी इच्छा होती थी। इस प्रकारके विवाहकी विधिमें जो शर्त रक्खी गयी है, वही इस बातका प्रमाण होती थी कि ऐसे व्यक्तिने विवाह-बन्धनको स्वीकार करनेका निर्णय कर लिया है। सर्त इस प्रकार है—'पवित्र धर्मके निर्वाहके उद्देश्यसे, ऋषिसे एक गाय और एक बैल अथवा दो जोड़े लेकर कन्याके माता-पिता उसे ऋषिको पत्नीरूपमे सौंप देते हैं।' यह स्पष्ट ही है कि पतिद्वारा दिये हुए पशु पत्नीके मूल्यके रूपमें नहीं होते थे; इसका अर्थ केवल इतना ही है कि ऋषिने अब गृहस्थ-जीवन बिताने और गृहस्थीसे अपनी जीविका चलानेका निश्चय कर लिया है। कन्याके माता-पिताको दिये हुए पशु इस सम्बन्धकी रक्षा और निर्वाह दोनों बातोंके प्रमाणका काम देते। ऐसे विवाहसे यदि पुत्रोत्पत्ति न भी हो, तब भी आर्ष स्वभाव और अप्रतिकूल साहचर्यमें तो कोई दुविधा थी ही नहीं। उदाहरणके लिये अगस्त्य ऋषि और लोपामुद्राका सम्बन्ध सामने रक्खा जा सकता है। यह एक प्रकारसे सामान्य मध्यमवर्गके लोगोंका विवाह है, इसमें कोई आध्यात्मिक भाव नहीं है।

चौथे प्रशस्त प्रकारका मानुष अथवा 'प्राजापत्य' नाम बड़ा सार्थक है। इसका स्पष्ट उद्देश्य सन्तान (प्रजा) की उत्पत्ति है। ब्राह्म, दैव और आर्ष भेदोंसे पृथक् यह स्त्री और पुरुष-का सामान्य संयोग है। इसके संपादनकालकी यह स्पष्ट आज्ञा है—'तुम दोनों साथ रहकर धर्माचरण करो।' वैसे तो इसके मुख्य उद्देश्यका संकेत तो इस प्राजापत्य नामसे ही मिल जाता है। वह यह कि पति और पत्नीका संयोग संतानोत्पादनके निमित्त होना चाहिये। विवाहके इस प्रकारमें हिंदू एवं अन्य विवाहोंके वास्तविक स्वरूपका दर्शन होता है, अर्थात् पत्नीको प्राप्त करनेका उद्देश्य पुत्र (अथवा पुत्री) को उत्पन्न करना है, जिसके द्वारा पितृतर्पण हो सके तथा आश्रितों, अतिथियों एवं अभावग्रस्तोंको भोजन मिलता रहे और इस रीतिसे समाज और उसकी विभिन्न संस्थाओंकी परम्परा बनी रहे।[1]

१. पुत्रार्थे क्रियते भार्या पुत्रः पिण्डप्रयोजकः।

विवाहके ये चार प्रकार स्तुत्य एवं आदर्श बताये गये हैं। इनकी प्रशंसा करते हुए महाराज मनुने कहा है (३। ३७–४२), 'ब्राह्म विवाह'से उत्पन्न हुआ पुत्र (यदि सुकर्म करे तो) अपने पिता, पितामह आदि दस पूर्वपुरुषोंको, पुत्र-पौत्रादि दस आगेके वंशजोंको तथा इक्कीसवें अपने आपको पापसे मुक्त करता है, 'दैव विवाह'से उत्पन्न हुआ पुत्र सात पहलेके और सात आगेके होनेवाले वंशजोंको तारता है; 'आर्ष विवाह'से उत्पन्न पुत्र तीन पीढ़ी पीछेकी और तीन आगेकी तारता है, तथा 'प्राजापत्य विवाह'का पुत्र छः बीती हुई एवं छः आगेकी पीढ़ियोंको तारता है। यह भी कहा है कि इन चारों विवाहों-से उत्पन्न हुए पुत्र 'सुरूप, सत्त्वगुणी, धनवान्, यशस्वी तथा इच्छानुसार भोग प्राप्त करनेवाले होते हैं और धर्मिष्ठ होनेके कारण सौ वर्षोंकी आयु प्राप्त करते हैं।" इस प्रकारसे विवाह-के स्तुत्य प्रकारोंका निर्णय केवल पति-पत्नीकी सुविधा और सुखसे ही नहीं, वर उनका फल कैसा है—इस बातसे भी होता है।

शेष चार प्रकारोंके लिये आज्ञा तो दे दी गयी है, पर विशेष परिस्थितियों एवं मानव दुर्बलताओंके साथ उनका सम्बन्ध होने-के कारण उन्हें श्रेष्ठ नहीं माना गया है। इनके लिये आज्ञा देनेके उद्देश्य यही था कि समाजकी सुश्रृङ्खला, व्यवस्था और शान्ति भङ्ग न हो; किंतु इन निन्दनीय विवाहोंसे उत्पन्न पुत्रों-के विषयमें कहा गया है कि 'वे क्रूरकर्मी, मिथ्यावादी और वेद एवं धर्मकी निन्दा करनेवाले होते हैं।'

पाँचवें प्रकारका नाम है 'आसुर'। इसके अनुसार पति कन्या एवं उसके सम्बन्धियोंको यथाशक्ति धन देकर वयःप्राप्त कुमारीको ग्रहण करता है। यह एक प्रकारका अपहरण ही है और धन मानो कन्याके घरवालोंका रोष शान्त करनेके लिये और स्वयं कन्याकी रक्षाके लिये दिया जाता है। इस प्रकारके विवाहका उदाहरण महाभारतके प्रसिद्ध पात्र पाण्डु और माद्रीके सम्बन्धको कहा जा सकता है।

'गान्धर्व विवाह' प्रणयमूलक या भावप्रेरित होता है। जैसे गन्धर्वलोग जहाँ प्रेम हुआ, संभोगमें प्रयुक्त हो जाते हैं, वैसे ही यह विवाह भी कुमारी कन्याका उसके प्रेमीके साथ स्वेच्छा पूर्ण संयोग है। समाजकी अनुमति प्राप्त करनेतक ठहरनेका धैर्य उनमें नहीं होता। शारीरिक संयोग, जो इस प्रकारके विवाहका मुख्य प्रयोजन है, किसी रीति या विधिके पालनके पूर्व ही हो जाता है; पर उचित रीतियों और विधियोंके कर लेनेके बाद समाज इसको भी स्वीकार कर लेता है। इस तरह-से वैवाहिक पवित्रता, सामाजिक और वैयक्तिक शान्ति अक्षुण्ण रह जाती है। उदाहरणके लिये शकुन्तला और दुष्यन्तका विवाह।

कन्याके सगे-सम्बन्धियोंको मारकर रोती [illegible] घरसे अपहरण कर लेना 'राक्षस विवाह' है। [illegible] अत्याचारको भी इसलिये स्वीकार किया कि कोई [illegible] करके लायी हुई कन्याको भी उचित विधियोंकी पूर्तिके बाद सविधि परिणीता पत्नीके रूपमें ग्रहण कर सके। [illegible] सुभद्राहरण और श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीहरण [illegible] विवाहके उदाहरण हैं। इस प्रकारके विवाह भी [illegible] और सफल सिद्ध होते थे। आजकलके विवाहोंमें [illegible] दूल्हेकी जो बारात निकलती है, वह कुछ [illegible] लगती है, जिसमें मारू बाजे बजते रहते हैं और [illegible] स्थानपर बाराती लोग सजे चलते हैं। सम्भव है [illegible] 'आसुर विवाह' की छाया चली आ रही हो।

सोती हुई, नशेमें चूर अथवा पागल कन्याके [illegible] करना 'पैशाच विवाह' है। [illegible] विवाह उदाहरणमें आ सकता है। आसुर और पैशाच [illegible] मनुके कालमें भी अधर्म्य समझा जाता था (३। २५)। [illegible] पूर्वक विवाहसंस्कारको पूरा कर लेनेके पश्चात् [illegible]-के भी राज्यद्वारा स्वीकृत हो जानेका केवल यही उद्देश्य था कि शारीरिक संयोगकी पवित्रता एवं सामाजिक [illegible] बनी रहे।

ध्यान दिया जाय तो इन आठों प्रकारोंमें नाना [illegible] के दर्शन होंगे। पहले चार 'स्तुत्य सम्बन्ध' [illegible] सम्पादित होते हैं। पर उनमें भी पारस्परिक [illegible] है ही। ये विवाह युवावस्थामें ही होते थे; [illegible] के जो विधि-निषेध बताये गये हैं, उनका कोई [illegible]। उनकी प्रौढ़ रूप-रेखा आधुनिक [illegible] किसी भी सभ्य समाजके वे अनुकूल हैं। [illegible] आसुर और पैशाच विवाहको प्राचीन कालमें भी [illegible] जाता था। पहलेका सिद्धान्त कन्याको [illegible] है। किंतु यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि [illegible] पाये हुए धनको फिर वरको लौटा देते हैं। [illegible] कन्याके कौमार्यपर [illegible] प्रकारके सम्बन्ध भी युवावस्थामें ही [illegible] के वर प्राप्त हो [illegible] बलात्कार करनेकी प्रेरणा हो सकती है। [illegible] और राक्षस विवाह भी युवावस्थामें ही [illegible] विवाहका तात्कालिक प्रयोजन ही [illegible] लड़कीको अपहरण करने और [illegible] तभी होगा, जब वह [illegible]

से निकाले गये शास्त्रकारोंके इन निष्कर्षोंका स्पष्ट विरोध दीख पड़ता है । यद्यपि वेदोंमें अल्पवयस्का कन्याओंके विवाहके प्रमाण भी मिलते हैं, पर ऐसा मालूम होता है कि कम अवस्थावाली प्रथा स्थान और परिस्थिति-विशेषके लिये थी । हम आगे देखेंगे कि ब्राह्म विवाहकी विधियोंसे भी यही प्रकट होता है कि विवाहके समय कन्या यौवनमें पदार्पण कर चुकी होती थी ।

'ब्राह्म विवाह'-सम्बन्धी विधियाँ ही अन्य प्रकारोंमें भी चलती हैं । बातचीत समाप्त होनेके बाद पारस्परिक सम्मति प्राप्त हो जाने-पर, कुछ ग्रन्थोंके अनुसार, विवाह-संस्कारका आरम्भ कुशाण्डिका (कुशकण्डिका) नामक यज्ञसे होता है । अन्य ग्रन्थकार इसका अन्तमें होना बतलाते हैं । इसका उद्देश्य विवाहके सफलतापूर्वक सम्पन्न होनेके लिये देवताओंके आशीर्वादप्राप्त्यर्थ प्रार्थना करना है । इसके बाद फिर 'नान्दीमुख' श्राद्ध होता है, जिसका उद्देश्य पितरोंका आशीर्वाद प्राप्त करना होता है । तत्पश्चात् वर और कन्याको हरिद्राचूर्ण तथा अन्य सुगन्धि-द्रव्योंसे स्वास्थ्यप्रद स्नान कराया जाता है । इसको गात्रहरिद्रा कहते हैं । वर और कन्यामें कामको जाग्रत् करना ही इस स्नानका मुख्य उद्देश्य है । इसी सम्बन्धमें कन्याके सम्बन्धियोंद्वारा कामदेवकी एक महत्त्वपूर्ण प्रार्थना की जाती है—'तुम्हारा नाम काम है, पर वास्तवमें तुम मद हो । तुम्हारा नशा वरको कन्याके पास खींच लावे; क्योंकि कन्या ही कामाग्निकी अरणि है, जो रति-क्रियासे प्रज्वलित हो उठती है[1] ।

फिर कहते हैं (वररूपी भ्रमरको आकर्षित करनेके निमित्त) कन्याकी योनि मधुरूपा है । वह विधाताका द्वितीय मुख है । इसीसे कन्या वरको जीत लेती है और सबको अपने अधीन कर लेती है[2] । उससे कहा जाता है कि वह अपने पतिकी कामनाको तृप्त करे[3] ।

वर स्वयं पाणिग्रहणके पश्चात् कहता है कि कन्यादान और उसके ग्रहणका उद्देश्य यही है कि दोनोंकी वासना पूरी हो और वह इस उद्देश्यको चरितार्थ करनेकी प्रतिज्ञा भी करता है[4] ।

फिर संप्रदान अथवा कन्यादान नामक सबसे मुख्य क्रिया-की बारी आती है । अब कन्या वरके हाथोंमें पूर्णरूपेण सौंप दी जाती है । यह प्रथा ईसाइयों और मुसलमानोंमें भी पायी जाती है और इसका अभिप्राय यह है कि सविधि संपन्न विवाहमें अपने मनोऽनुकूल पुरुषको भी कन्या अपने-आपको स्वयं नहीं सौंप सकती । कन्याके पिताके अभावमें कन्यादान-का कार्य किसी दूसरे अभिभावकको करना पड़ता है । हिंदू-प्रथाके अनुसार कन्याका पिता विधिवत् और सम्मानपूर्वक वरका स्वागत करके उससे उसे वररूपमें ग्रहण करनेकी आज्ञा लेता है और उससे पूछता है कि वह कन्याके प्रति पतिके कर्तव्योंका पालन करनेको तैयार है न ? फिर वर सबके सामने विधिवत् इस उत्तरदायित्वको स्वीकार करता है[1] । उसका यह कर्तव्य बताया जाता है कि वह वधूकी रक्षा करे, उसका पालन करे, उसके गुणोंका आदर करे और अपराधोंको क्षमा करे । तत्पश्चात् कन्या अर्पण कर दी जाती है । इस समय दोनों पक्षोंके पूर्व-पुरुषोंका नाम लिया जाता है, जिससे वर-वधूकी पहचानके विषयमें कोई बखेड़ा न हो । कन्यादानके साथ दहेज भी दिया जाता है । दहेजमें सभी प्रकारकी वस्तुएँ दी जाती हैं—जैसे अन्न, जल, बिछौने, पशु, स्वर्ण और रत्नादि तथा जमीन-जायदाद भी[2] ।

तब वर-वधूके हाथ एक साथ बाँध दिये जाते हैं और उनके वस्त्रोंको भी मिलाकर गाँठ लगा दी जाती है । इस ग्रन्थिबन्धनका अभिप्राय यह है कि वर-वधू दोनों शरीरसे तो एक हो ही गये तथा एक दूसरेके लिये सदाके साथी भी बन गये । फिर यह प्रार्थना की जाती है कि उनका यह सम्बन्ध 'इन्द्र और इन्द्राणी, विभावसु और स्वाहा, सोम और रोहिणी, नल और दमयन्ती, वैश्रवण और भद्रा, वसिष्ठ और अरुन्धती एवं अन्ततः नारायण एवं लक्ष्मीके सम्बन्धके समान चिरस्थायी हो ।' इस प्रत्येक उदाहरणमें कुछ विशिष्ट महत्त्व है और उन सभीका ग्रहण यहाँ अभीष्ट है ।

इस प्रकार कन्याको ग्रहण करनेके बाद विवाह-मण्डपसे

---

१. काम वेद ते नाम मदो नामासि समानयामुं सुरा तेऽभवत् परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ।

२. इमं त उपस्थं मधुना संसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद् द्वितीयम् ।
तेन पुंसोऽभिभवासि सर्वान् अवशान् वशिन्यसि राज्ञि स्वाहा ॥

३. अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः । तेनाज्यमकृण्वंस्त्रैशृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद् दधातु स्वाहा ।

४. क इदं कस्मा अदात् कामः कामाय अदात् कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामं समुद्रमाविश । कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते ।

१. पाद्यादिभिरभ्यर्च्य वरत्वेन भवन्तं वृणे । यथाविहित वर-कर्म कुरु । यथाज्ञानं करवाणि ।

दूर्वां पुष्पं फलञ्चैव वस्त्रं ताम्बूलमेव च ।
एभिः कन्या मया दत्ता रक्षणं पोषणं कुरु ॥
अस्याः कन्याया दोषाः क्षन्तव्या गुणास्तु ग्राह्याः ।

२. भूमिमन्नं जलं शय्यां गोहिरण्यादिकं यौतुकं जामात्रे दद्यात्।

वर उसे प्रधान गृहमें ले जाता है[1]। वहाँ साथ-साथ हवन करनेके लिये संयोजक-अग्नि प्रज्वलित एवं स्थापित की जाती है। इसी अग्निके चारों ओर प्राथमिक प्रतिज्ञाएँ और शर्तें की जाती हैं। जीवनभर पालन करनेके संकल्पकी अभिव्यञ्जनाके रूपमें पति पत्नीको अपने उत्तरीय और अन्तरीयसे आवृत करके उसे आदरपूर्वक संबोधित करते हुए कहता है, 'मान्ये! यहाँ सौ वर्षोंतक सुखपूर्वक रहो, यशको प्राप्त करो, धन-धान्यसे परिपूर्ण रहो, मेरा और तुम्हारा कभी विछोह न हो। यहाँ रहकर सार्वभौम जीवन यापन करो। अर्थात् शान्त और समृद्धिको प्राप्त होओ। इस घरमें अपने प्यारे बच्चोंके साथ फूलो-फलो और घरके काम-काजकी ओर भी तुम्हारा ध्यान रहे[2]।'

इन पङ्क्तियोंका महत्त्व जितना कहें थोड़ा है। सौ वर्षकी आयुको मानव-जीवनकी चरम सीमा समझनी चाहिये। इस प्रकारसे पत्नीको जीवनभरके लिये ही अङ्गीकार किया जाता है। उसे आजीवन कारागारमें नहीं बंद कर दिया जाता वरं उसे अब यशस्वी जीवन बिताना है और सब प्रकारसे मान, सम्पत्ति और सुखका भोग करना है। अपने प्यारे शिशुओंके साथ-साथ फूलना-फलना है। गृहस्थाश्रम-सम्बन्धी कर्तव्योंके पालनके अतिरिक्त और उससे कुछ नहीं माँगा जाता। पत्नीके समादृत स्थानविषयक अन्य बातें आगे आयेंगी।

अब सप्तपदी नामक क्रिया होती है। इसमें पति-पत्नी साथ-साथ यज्ञाग्निकी परिक्रमा करते हैं। उस समय पति पहले पदपर इच्छाओंकी पूर्ति, दूसरेपर शक्तिसंचय, तीसरेपर गृहस्थाश्रम-धर्मका पालन, चौथेपर दोनोंकी पूर्ण एकात्मता एवं मैत्री, पाँचवेंपर पशुधनकी प्राप्ति, छठेपर संपत्तिकी प्राप्ति और सातवेंपर यज्ञोंके सात फलोंकी प्राप्तिमें पत्नीका सहयोग और साहचर्य मिलते रहनेके लिये देवताओंसे प्रार्थना करता चलता है।

तत्पश्चात् पत्नीको संबोधित करके पति उसके प्रति की हुई अपनी प्रतिज्ञाओंको संक्षेपसे दुहराते हुए फिर कहता है, 'प्रिये! (विवाहित जीवनके) सप्त उद्देश्योंको प्राप्त करनेमें तुम मेरे साथ रहो, मैं तुम्हारा सखा बननेका वचन देता हूँ, हमारे संगको कोई दूसरी स्त्री भङ्ग नहीं कर सकेगी और हमारा प्रेम सकल सुखोंका स्रोत होगा[1]।'

फिर वह दर्शकों और मित्रोंको लक्ष्य करके कहता है, 'आपलोग मिलकर मेरी इस सुमङ्गला पत्नीको देखें और जानेके पहले उसके चिर सौभाग्यके लिये प्रार्थना करें।' वह समस्त देवताओंसे भी प्रार्थना करता है कि 'देवगण हमारे हृदयोंको शुद्ध करें। वरुण, मरुद्गण, ब्रह्मा और बृहस्पति हमारे हृदयोंको मिलाकर एक कर दें। अर्थात् हम स्वरूपसे, स्वभावसे और बुद्धिसे एक हो जायँ[2]।' पति-पत्नीकी एकताका यह सर्वाङ्गपूर्ण स्वरूप है और यही हिंदू-विवाहका आदर्श भी है।

हार्दिक एकताके हेतु प्रार्थना और प्रतिज्ञा करनेके उपरान्त भौतिक एकताके प्रतीकरूपसे 'पाणिग्रहण' नामक कर्म होता है। पति अपने दोनों हाथोंसे स्नेहपूर्वक पत्नीके हाथोंको पकड़कर छः और प्रतिज्ञाएँ करता है, 'गृहस्थाश्रममें मेरी सहायता करनेके लिये देवताओंने दया करके तुम्हें मुझको प्रदान किया है, अपना बड़ा भाग्य मानकर मैं तुम्हारा पाणिग्रहण करता हूँ; वृद्धावस्थातक (अर्थात् जबतक मृत्यु हमें अलग न कर दे) मेरे साथ रहो।' 'सुभगे! मेरे प्रति तुम्हारी सदा अक्रूर दृष्टि रहे, तुम अपतिघातिनी सिद्ध हो, वीरप्रसवा बनो, तुम्हारा गर्भ कभी व्यर्थ न जाय; तुम नित्य पञ्च महायज्ञोंको करनेवाली होओ, हमें सुख पहुँचाओ और हमारे परिवारके सभी द्विपदों (सम्बन्धियों) और चतुष्पदों (पशुओं) का भला करो।' 'विधाता हमलोगोंको वृद्धावस्थातक संततिसुख देते रहें, अर्यमा हमारे वंशजोंको महान् गुणोंसे युक्त बनावें। भार्ये!

---

१. यह क्रिया पतिके घरमें होनी चाहिये, क्योंकि कुछ लोगोंमें प्रचलित प्रथाके अनुसार वधूके घरके कर्म यहीं समाप्त हो जाते हैं। पर सामान्य प्रथा यही है कि उसके और भी कई कर्म कन्याके ही घर होते हैं। आगेके वर्णनमें हम देखते हैं कि यह क्रिया कन्याके ही घर होती है; क्योंकि इसके बाद कन्याके पिताके घरसे पति पत्नीको अपने घर रथमें बैठाकर ले जाता है।

२. शतं च जीव शरदः सुवर्चा वसूनि चार्ये विभजासि जीवन्। इहैव स्तं मा वियुष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।

१. सखे सप्तपदा भव सख्यं ते गमेयम्।

सख्य ते मा योषा· (छिन्दन्तु) सख्याते मा योष्ठा. (सुखकारिण)

इसपर व्याख्याकार कहते हैं, 'सुखकारिण्य. स्त्रियः त्वया सह सख्य कुर्वन्तु' (सुख देनेवाली स्त्रियाँ तुम्हारी मित्र हों) पर यह प्रसंगसे मेल नहीं खाता।

२. समञ्जन्तु विश्वेदेवा. समापो हृदयं नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥

हितकारी देवताओंने तुम्हें मुझे दिया है। अतः तुम अपने पतिके घरमें पधारो और परिवारके द्विपदों और चतुष्पदोंका भला करो।' इन उद्गारोंका महत्त्व स्पष्ट है। प्रत्येक बुद्धिमती नारीको ऐसे आशीर्वाद-मंगलोच्चार अवश्य ही गर्व होगा।

अब पत्नी कहती है, 'मेरा पति अपने परिवारमें मेरे प्रवेशको मंगल बनावे, जिससे मैं वहाँ सुख और शान्तिसे रह सकूँ और मेरा कोई शत्रु न हो।'[1]

इस माँगको स्वीकार करते हुए पति देवताओंसे छः प्रकारके वरदान पत्नीके लिये माँगता है। इस समय पत्नी पतिके दाहिने कंधेको पकड़े हुए उसे सहारा दिये खड़ी रहती है। पति कहता है, 'अग्नि देवता इसे सन्तान दें, वरुण मृत्युसे उनकी रक्षा करें; जिससे इसे अपनी सन्ततिकी बीमारीके कारण रोना न पड़े।' 'यह (मेरे साथ) नित्य विवाहाग्निमें हवन करे। इसकी सन्तान इसकी वृद्धावस्थातक जीवित रहे (और इसकी आज्ञा माने), इसकी गोदी कभी सूनी न रहे, इसे पौत्रोंका सुख देखनेका सुख मिले।' 'द्यु देवता तुम्हारी पीठ और अश्विनीकुमार तुम्हारे ऊरुप्रदेशकी रक्षा करें।[2] विधाता तुम्हारे स्तनन्धय शिशुओंकी वस्त्र धारण कर सकने योग्य अवस्थातक रक्षा करें; उसके बाद बृहस्पति और विश्वेदेव उनकी रक्षा करें (अर्थात् उन्हें बुद्धि प्रदान करें)।' 'तुम्हारे घरमें कभी विलाप करनेका शब्द न हो। शोकमें डूबी और रोनेवाली स्त्रियाँ तुमसे दूसरी हों और शत्रुओंके घरमें हों। तुम्हारा रोना यदि कभी हो भी तो हृदयद्रावक न हो। तुम अपने पतिके परिवारको अलङ्कृत करो। तुम्हारा पति जीवित रहे और तुम अपने बच्चोंको सुखी और फलते फूलते देखो।' 'सुभगे! मैं तुम्हारा वन्ध्यत्व दूर करूँगा, तुम्हारे बच्चोंके और तुम्हारे कालको दूर रक्खूँगा, सब प्रकारके दुर्भाग्योंको भी तुमसे दूर रक्खूँगा। इन सबको (मुरझायी हुई) मालाकी तरह शत्रुके गलेमें डाल दूँगा।' और अन्तमें वह यमराजसे कहता है कि 'मृत्यु हमसे दूर रहे, (अकाल) मृत्युसे हम बचे रहें, आप हमें भयमुक्त करें। हे काल! आप कहीं और जायँ; मैं आपसे ही कह रहा हूँ। हमारे पुत्र-पौत्रोंको हमसे मत छीनें। हमारे वीर पुरुषोंको मत मारें।' पति पत्नी साथ साथ अग्निदेवको ये छः आज्य-आहुतियाँ देते हैं।

१. प मे पतिमान् पन्था कल्पतां
शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्।

२. इसका अभिप्राय यह है कि पत्नी गर्भ-धारणके योग्य बनी रहे।

इसके बाद अश्मारोहण कर्म होता है। पत्नी अपने भुजाओंको पतिके कंधोंपर ले जाकर हाथ जोड़ लेती है। फिर दोनों एक शिलापर पैर रखते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि अपने विवाहित जीवनमें दोनों शिलाकी भाँति दृढ रहें और अपनी शक्तियोंको एक करके शत्रुको पददलित कर सकें।[1] अब पत्नी अपने हाथों और शरीरको पतिके शरीरसे पृथक् करके अग्निदेवसे प्रार्थना करती है, 'मेरा पति सौ वर्षोंतक जीवित रहे; पतिपक्षीय मेरे सम्बन्धी धन-धान्यसे परिपूर्ण हों और प्रजावान् हों।'[2] उसके बाद पति प्रार्थना करता है, 'देवता मेरी पत्नीको मेरे परिवारसे कभी वियुक्त न करें।'[3] इस प्रकार आधुनिक स्वार्थपूर्ण मनोवृत्तिकी भाँति हिंदू आदर्शमें पत्नी केवल अपने पति और बच्चोंकी ही शुभकामना नहीं करती वरं पतिके पिता-माता, भाई-बहिन एव अन्य निकटके तथा प्रिय सम्बन्धियोंका भी हित चाहती है। 'हे इन्द्रदेव! आपकी कृपासे यह पत्नी मेरी सन्ततिको गर्भमें धारण करे, पतिके प्रति अनुरागिणी हो और दस सन्तान उत्पन्न करे[4];

१. इममश्मानमारोह अश्मेव त्व स्थिरा भव।
द्विषन्तमपबाधस्व मा च त्वं शतयो मम॥

२. मे पतिः शत वर्षाणि जीवत्वेधन्तां ज्ञातयो मम।

३. स इमा देवोऽर्यमा प्रेतो मुञ्चतु मामुत।

४. इसका रूसके जनसंख्या-विस्तार-आन्दोलनसे अद्भुत साम्य है। सोवियट सरकारने अपने राष्ट्रिय जीवनमें मातृत्वको सबसे अग्रिम स्थान प्रदान किया है। वहाँ जबसे तीसरा बच्चा पेटमें आता है, माताको अधिक भत्ता मिलने लगता है। प्रसवकालकी छुट्टी बढ़ाकर ग्यारह सप्ताहकी कर दी जाती है। गर्भावस्थाके अन्तिम तीन महीनोंमें और प्रसवके बाद छ. महीनोंतक दूना राशन मिलता है। मातृत्वके कर्तव्य और गौरवको प्रकाशमें लानेके निमित्त 'मातृत्व-पदक' (Motherhood Medal) की सृष्टि हुई है। यह पाँचसे छः बच्चोंतकको जन्म देनेवाली माताओंके लिये है। सात, आठ या नौ बच्चोंको जन्म देनेवाली माताओंको 'मातृत्वकी कीर्ति' (Maternity Glory) नामक श्रेणीमें गिना जाता है और दस या उससे भी अधिक बच्चोंकी माको प्रसवशूरा (Mother Heroine) की श्रेणी प्राप्त होती है।

दूसरी ओर केवल निःसन्तान लोगोंको ही अपनी आयका छः प्रतिशत अतिरिक्त कर नहीं देना पड़ता, बल्कि एक सन्तानवालेको आयका डेढ प्रतिशत और दो सन्तानवालेको एक प्रतिशत विशिष्ट कर रूपमें देना पड़ता है। इन बातोंसे हमें यह समझमें आ जायगा कि हिंदू-स्मृतिकारोंने तेरह या चौदह प्रकारके पुत्रों और उत्तराधिकारियोंका

इस तरह पतिको मिलाकर कुल ग्यारह हो जायँगे।' 'अपने सास-श्वसुर, ननदों और देवरोंपर शासन करनेवाली तुम मेरे घरकी रानी बनो।'

अब उत्तरविवाह नामक कर्म होता है। इसमे एक हवन किया जाता है और छः और प्रार्थनाएँ की जाती हैं—'अग्निदेवताको दी हुई मेरी इस पूर्णाहुतिके प्रतापसे मेरी पत्नीकी भौहों, चक्षुगह्वरों, मुख, सिरके केश, दृष्टि, रुदन, शील, वार्तालाप, मुसकराहट, दाँतोंकी चमक, हाथों, पैरों, जंघाओं, गुप्तेन्द्रिय, जानुओं, सन्धियों और अङ्ग-प्रत्यङ्गमें जहाँ भी कोई अवाञ्छनीय घोर दोष हो, सब दूर हो जायँ।'

इसके बाद वर-वधू दोनों उठकर बाहर आते हैं और आकाशस्थ तारेकी ओर देखते हुए वधू अपना नाम लेकर अपनेको पतिका नाम लेकर उसकी पत्नी घोषित करती हुई कहती है—'हे ध्रुव नक्षत्र! जैसे आप स्थिर हैं, वैसे ही मैं भी अपने पतिके परिवारमें सदाके लिये स्थित हो गयी हूँ। हे अरुन्धती! आपकी ही भाँति मैं भी मन, वचन और शरीरसे अपने पतिके साथ जुड़ गयी हूँ। अपने पतिके परिवारके साथ मेरा संयोग आकाश, पृथ्वी, समस्त ब्रह्माण्ड और इन सब पर्वतोंकी भाँति अचल है[1]। फिर पतिद्वारा पत्नीके पूर्ण जीवनकी शुभ कामना प्रकट करनेके पश्चात् यह कर्म समाप्त होता है।

इसके बाद जो कर्म होता है, उसमें वधूको गृहस्थ-जीवनकी दीक्षा दी जाती है। पहले तीन दिनतक पति-पत्नी दोनों ब्रह्मचर्याश्रमके उपयुक्त सादा सात्त्विक भोजन ग्रहण करते हैं और गर्भाधान-संस्कारमें बतायी विधिके अनुकूल रातमें साथ-साथ पृथ्वीपर सोते हैं। पहले कहे हुए वस्त्राच्छादन कर्मकी भाँति इस भोजन-ग्रहण कर्मके अवसरपर भी पति कहता है, 'अब मैं तुमको शरीर और आत्माको बाँध रखनेवाली अन्नकी डोरीसे उसी प्रकार बाँधता हूँ, जैसे तुम्हारे मन और हृदयको विवाहकी अमिथ्या ग्रन्थिसे पहलेसे ही बाँध रक्खा है। भोजनरूपी जीवन सूत्रसे मै तुमको बाँधता हूँ।'

अब रथमें बैठकर दम्पति अपने घरको प्रस्थान करते हैं। पत्नीका परिवारवालोंसे परिचय कराया जाता है। चौथे दिन शरीर-शुद्धिकी दृष्टिसे दम्पति चतुर्थी-होम नामक यज्ञ करते है। फिर गर्भाधान-संस्कारके नियमोंके अनुसार जबतक दोनोंकी इच्छा पुत्र उत्पन्न करनेकी नहीं होती, दम्पति एक ही बिस्तरेपर बिना एक दूसरेको स्पर्श किये हुए सोते हैं।

थोड़े-बहुत परिवर्तनके साथ ये ही प्रथाएँ देशभरमें और हिंदुओंकी प्रायः प्रत्येक जातिमे प्रचलित हैं। जो अन्तर है, वे केवल स्थानीय, लोकप्रथा-भेदसे और साम्प्रदायिक हैं। मूल सिद्धान्तोंमें उनसे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। इस प्रकार उपरिलिखित वैवाहिक कर्मोंसे उनकी सांस्कृतिक महत्ताका एक सामान्य रूप जाना जा सकता है—तथा उनकी आधारभूत समुन्नत सभ्यताका अनुमान किया जा सकता है।

दूसरी ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सभी अन्य सभ्य समाजोंके अनुरूप हिंदू-विवाह भी माता-पिताद्वारा ही तय होता है; पर कन्याकी सम्मति बिल्कुल न ली जाती हो—ऐसी बात भी नहीं रहती। दूसरी ध्यान देनेवाली बात यह है कि विवाहके आध्यात्मिक प्रकारमे भी गृहस्थाश्रममें रहना, स्वाभाविक कामकी प्रवृत्तिको चरितार्थ करना, पुत्र उत्पन्न करना और दम्पतिको ही नहीं वरं समूचे सम्मिलित परिवारको सुख-सुविधा पहुँचाना ही मुख्य उद्देश्य है। विवाहके समय पति-पत्नी दोनोंके द्वारा की गयी प्रतिज्ञाओंमें स्पष्ट और अस्पष्ट रूपसे इसी बातका उल्लेख है कि दोनों साथ तो रहेंगे, पर मालिक और गुलामकी तरह नहीं, वर मित्र और बराबरके साझीदारकी तरह। इससे हिंदू-विवाहके उच्च सांस्कृतिक महत्त्व और भौतिक हितपरताका पता चलता है। सामान्य परिस्थितियोंमे सम्बन्धविच्छेदके लिये व्यवस्था करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी पर कुछ विशिष्ट परिस्थितियोंमें जैसे पतिके नपुंसक होनेपर, पत्नीको त्याग देनेपर, पत्नीके वन्ध्या होनेपर अथवा उसमें और कोई दोष होनेपर उचित अपवादकी भी व्यवस्था थी। पर वहाँ भी इस बातका ध्यान रक्खा ही जाता था कि समाजकी व्यवस्था टूटने न पावे और राष्ट्रिय तथा आध्यात्मिक आदर्शोंको कोई धक्का न लगे।

क्यों निर्देश किया है। मनुने इतने प्रकारके पुत्र गिनाये हैं—असमान वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न, विधवासे उत्पन्न तथा औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न, अपविद्ध (अन्तिम छः दायाद हैं); कानीन, सहोढ, क्रीतक, पौनर्भव, स्वयंदत्त और पारशव (ये छः अदायाद बान्धव हैं)। पुत्रकी महत्ता जैसी आजकल है, वैसी ही पहले भी थी। 'पुरुष पुत्रसे (स्वर्गादि) लोकोंको जीतता है, पौत्रसे अमरत्व प्राप्त करता है और पुत्रके पौत्रसे सूर्यलोकको पाता है। लोकमें पौत्र और दौहित्रमें कोई अन्तर नहीं है; पुरुषका दौहित्र भी पौत्रके समान ही परलोकमें उसकी रक्षा करता है।' (मनु० ९। १३७–१३९)

१. ज्योतिर्विज्ञानानुसार तो आकाशस्थ सकल ज्योतिष्पिण्ड एक नियमके अधीन होकर चक्कर लगाया करते हैं। पर वैसे ये सब यह पृथ्वी तथा ब्रह्माण्ड—सभी देखनेवालोंको स्थिर ही दिखायी देते हैं।

सकृत् कन्या प्रदीयते

(लेखक—पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य)

कन्यादानके बाद कन्यापरसे दाताकी स्वत्व-निवृत्ति होती है या नहीं, इस विषयमें कुछ लोगोंका कहना है कि ''गोदानादि कर्मोंमें 'इमां गां तुभ्यमहं सम्प्रददे' (यह गाय मैं तुम्हें देता हूँ) यह कहनेके बाद स्व-स्वत्व-निवृत्तिका बोधक 'न मम' (अब यह मेरी नहीं है) इन दो पदोंका भी उच्चारण किया जाता है; अतः वहाँ अपने स्वत्वकी निवृत्ति हो जाती है। कन्यादानमें तो 'इमां कन्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे' (इस कन्याको मैं तुम्हें देता हूँ) केवल इतना ही कहा जाता है, 'न मम' इस पदद्वयका उच्चारण नहीं किया जाता। अतः 'गोदान' की तरह 'कन्यादान'में स्वत्व-निवृत्ति नहीं होती। अतएव एक बार किसीको दी हुई कन्याका भी दूसरे व्यक्तिको पुनः 'दान' हो सकता है अर्थात् 'पुनर्विवाह' (विधवा-विवाह) हो सकता है।''

इन प्रश्नकर्ताओंसे पूछना चाहिये कि 'न मम' इस पदद्वयका उच्चारण हो या न हो, कन्यादानमें भी गोदानकी तरह 'दा' धातुका उच्चारण होता है या नहीं? यदि होता है तो वहाँपर उच्चारण किये हुए 'दा' धातुका क्या अर्थ है? व्याकरणके सिद्धान्तानुसार 'दा' धातुका अर्थ इस प्रकार है—'स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वापादनरूपो व्यापारः।' अर्थात् अपने अधिकारकी निवृत्ति कर दूसरेके अधिकारका आपादन करना।

वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदीके 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' (१।४।३२) इस सूत्रकी टीका करते हुए तत्त्वबोधिनीकार लिखते हैं—'दानं चापुनर्ग्रहणाय स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वोत्पादनम्' अर्थात् पुनः वापस न लेनेकी बुद्धिसे अपना अधिकार हटाकर दूसरेके अधिकारका व्यवस्थापन करना ही 'दा' धातुका स्वार्थ है।

'शास्त्रदीपिका'में भी पार्थसारथि मिश्रजीने चतुर्थ अध्यायके द्वितीय पादके बारहवें अधिकरणमें याग-होमादिके भेद-कथनावसरमें इस प्रकार कहा है—

'देवतोद्देशेन स्वद्रव्यपरित्यागो यागः, स एव प्रक्षेपाधिको होमः, स्वीयस्य परकीयत्वापादनं दानम्।'

और भी वहीं 'भाट्टदीपिका'में कहा है—

'सम्प्रदानस्वत्वापादको द्रव्यत्यागो दानपदार्थः' अर्थात् सम्प्रदान—पात्रके स्वत्वापादक द्रव्यत्यागको 'दान' कहते हैं। इस स्थितिमें 'दा' धातु ही स्वस्वत्वनिवृत्तिका तथा परस्वत्वापादनका प्रतिपादन करती है; और जहाँ 'दा' धातुका प्रयोग होता है, वहाँ स्वस्वत्व निवृत्ति भी स्वतः सिद्ध हो जाती है। फिर 'न मम' इस पदद्वयके प्रयोगसे कौन सी नयी बात ज्ञात होती है?

दा-धात्वर्थ स्व-स्वत्व-निवृत्तिका ही अनुवाद 'न मम' इस पदद्वयसे करना चाहिये—यह मानकर ही स्मृतिकारोंने 'न ममेति स्वसत्ताया निवृत्तमपि कीर्तयेत्' कहा है। अतः दानस्थलोंमें सर्वत्र 'न मम' यह कथन केवल अनुवादरूप ही है, इसके न कहनेपर भी स्वत्वनिवृत्ति होती है—यह स्पष्ट है। अतएव गोदान प्रभृतिमें भी 'न मम' इस पदद्वयका शिष्टलोग कभी-कभी उच्चारण नहीं करते।

यागादिमें केवल 'इदमग्नये' इत्यादिमें चतुर्थीमात्रका प्रयोग होनेसे तथा 'दा' धातुके अप्रयोगसे वहाँपर चतुर्थीद्वारा त्यज्यमानद्रव्योद्देश्यत्वमात्रका कथन होता है, अतः स्व-स्वत्व-निवृत्ति-बोधक 'न मम' इस पदद्वयका उच्चारण करना ही चाहिये। फिर, यदि 'कन्यादान'में स्व-स्वत्व-निवृत्ति नहीं होती तो वह 'पुत्रदान'में कैसे हो जायगी? यदि इष्टापत्ति हो तो यह नहीं हो सकता; क्योंकि 'गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्दत्रिमः सुतः' इत्यादि गोत्र-रिक्थ-निवृत्ति-बोधक शास्त्रोंकी क्या दशा होगी? और क्यों वह पुत्र प्रतिग्रहीता (गोद लेनेवाले) के मर जानेपर दूसरेको नहीं दिया जा सकता? और क्यों न कन्या भी पुत्रोंकी तरह 'दायभाग'-की ग्राहिणी (अधिकारिणी) हो? अतः दत्तक-हवनके बाद जैसे पुत्र अपने पिताके गोत्रसे च्युत हो जाता है और उसका तथा पिताका 'जन्य-जनक-भाव'के अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध शेष नहीं रह जाता, वैसे ही वैवाहिक 'सप्तपदी'के अनन्तर कन्या तथा पितामें भी 'जन्य-जनक-भाव'के अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। अतएव कन्याको 'परकीय द्रव्यन्यास' (धरोहर) कहा जाता है—

'प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा' (अभिज्ञान शाकुन्तल)

अब रही महर्षि शौनकजीकी बात, जिन्होंने 'कन्यादानं त्रिःकार्यम्' (कन्यादान तीन बार करना चाहिये) यह कहा है। इस कथनका तात्पर्य यह है कि यद्यपि कन्यादान एक बार-

में ही सुसम्पन्न होता है, फिर भी अदृष्टके लिये दो बार और कहना चाहिये न कि तीन बार 'कन्यादान' करना चाहिये। जैसे यज्ञादिमें मधुपर्क-प्रकरणमें 'मधुपर्कः' यह एक बार उच्चारण करनेसे ही कार्य सिद्ध हो जाता है, फिर भी 'मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः' यों तीन बार कहा जाता है। जिस प्रकार सोमयागमें दीक्षाप्रकरणमें दीक्षितावेदनके समय 'दीक्षितोऽयं ब्राह्मणः' (का० श्रौ० ७।४।११) यों एक बार कहनेसे ही कार्यसिद्धि सुतरासिद्ध है, पुनः 'त्रिरुपांश्वाह त्रिरुच्चैः' यह तीन बारका कथन केवल अदृष्टार्थ होता है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि 'गोदान' की तरह 'कन्यादान' में भी 'दा' धातुके प्रयोगसे स्व-स्वत्व-निवृत्ति होती ही है, चाहे 'न मम' इस पदद्वयका उच्चारण हो या न हो। अतएव 'गोदान'में भी कभी कुछ लोग 'न मम' इसका उच्चारण नहीं करते और 'कन्यादान'में कभी इसका प्रयोग कर देते हैं।

किसी देश-विशेषमें कुछ लोग 'प्रजासहत्वकर्मभ्यः प्रतिपादयामि' (प्रजोत्पादनके लिये, साथमें रहनेके लिये और धर्म-कर्म करनेके लिये मैं इस कन्याका दान करता हूँ) यही प्रतिपादन करते हैं, किंतु यह प्रतिपादन भी 'दान'का ही पर्याय है। अतः कन्यादानके अनन्तर वैवाहिक 'सप्तपदी' में ही कन्याकी पिताके गोत्रसे निवृत्ति हो जाती है और पिता तथा उस कन्यामें जन्य जनक भाव-सम्बन्धमात्र रह जाता है। अतएव वह कन्या 'दानरूप से पुनः किसीको नहीं दी जा सकती। इसीसे यह कहा गया है—

सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥

विवाह-विच्छेद (तलाक)

आजकल कुछ लोग इस प्रयत्नमें हैं कि हिंदू-नारीको कानूनद्वारा विवाह-विच्छेदका अधिकार प्राप्त हो। जो लोग इस समय हिंदू-विवाह-सम्बन्धी नये कानून बनाना चाहते हैं, उनकी नीयतपर सदेह करनेका कोई कारण नहीं है। जहाँतक अपना अनुमान और ज्ञान है, यह कहा जा सकता है कि वे सज्जन सचमुच ही भारतीय हिंदू-नारीकी कल्याण-कामनासे ही इस प्रकारका प्रयत्न कर रहे हैं। उनके सामने ऐसे प्रसंग आये और आते रहते हैं, जिनके कारण उनके मनमें यह बात धँस गयी है कि कानूनमें परिवर्तन हुए बिना हिंदू-स्त्रियोंपर जो सामाजिक अत्याचार होते हैं, उनका अन्त नहीं होगा। ऐसे विचारवाले सज्जन यह कहते हैं और उनके दृष्टिकोणसे ऐसा कहना ठीक भी है कि 'आदर्शवाद ऊँची चीज है, परन्तु उसका प्रयोग इस युगमें संभव नहीं है; फिर आदर्शवादका प्रयोग केवल नारी-जातिके लिये ही क्यों हो? पुरुषोंके प्रति क्यों न हो? पुरुष चाहे जैसा, चाहे जितना अनाचार, स्वेच्छाचार, व्यभिचार और अत्याचार करे, कोई आपत्ति नहीं, वह सर्वथा स्वतन्त्र है; परन्तु सारे नियम, सारे बन्धन केवल स्त्रीके लिये हों—यह चल नहीं सकता। ऊँचे आदर्शकी चिल्लाहट मचानेसे काम नहीं चलेगा। इस प्रकार चिल्लाहट मचानेवालोंमें कितने ऐसे हैं, जो स्वयं आदर्शकी रक्षा करते हैं? फिर इस युगमें पुराने आदर्शके अनुसार चलना भी संभव नहीं है। युगधर्मके अनुसार परिवर्तन करना ही पड़ेगा। पुरानी लकीरको पकड़े रहना तो पागलपन है' आदि।

इसमें सदेह नहीं कि पुरुषोंके द्वारा कहीं-कहीं अपने घरकी स्त्रियोंके प्रति तथा विधवा बहनोंके प्रति ऐसे-ऐसे अमानुषिक अत्याचार होते हैं, जिनको देख-सुनकर सहृदय पुरुषका मन प्राचीन प्रथाके प्रति विद्रोह कर उठता है और वह स्वाभाविक ही हर उपायसे ऐसे अत्याचारोंको रोकनेका प्रयास करता है; परंतु इस प्रकार सुधारकी वास्तविक इच्छा होनेपर भी वे सज्जन यह नहीं विचारते कि इस समय यदि कुछ लोग झूठ बोलते और उसमें सुविधाका अनुभव करते हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि 'झूठ बोलना ही उचित है, सत्यको छोड़ देना चाहिये।' बल्कि यह कहना संगत होगा कि सत्य-भाषण और सत्य-पालनमें युगके प्रभावसे या हमारी कमजोरीसे जो अड़चनें पैदा हो गयी हैं, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। यही वास्तविक सुधार है। कुछ लोग आदर्शकी रक्षा नहीं करते, इसलिये आदर्शके त्यागका आदेश न देकर आदेशको सर्वथा छोड़ देनेकी चेष्टा न करके जो लोग आदर्शकी रक्षा नहीं कर सकते, उनके लिये उसकी रक्षा कर सकने योग्य मनोवृत्ति और परिस्थिति उत्पन्न कर देना, तमाम अड़चनोंको मिटा देना—यही कर्तव्य है।

परंतु ऐसा न करके, एक आँख फूट गयी है तो दूसरी भी फोड़ दो—इस नीतिके अनुसार 'कुछ लोग आदर्शकी रक्षा नहीं कर रहे हैं, इसलिये जो कर रहे हैं उनके लिये भी उसका दरवाजा बंद कर दो—आदर्शको रहने ही न दो' यह कहना वस्तुतः प्रमाद है; तथापि ऐसा कहा जा रहा है।

इसका कारण किसीका नैसर्गिक दोष नहीं। इसमें प्रधान कारण है—अंग्रेजी सभ्यताका प्रभाव तथा विजातीय आदर्शोंको लेकर निर्माण की हुई आधुनिक शिक्षा। इसीका यह परिणाम हुआ है कि हमारी अपनी संस्कृतिके प्रति—अपनी प्राचीन प्रथाओंके प्रति हमारी दोष-बुद्धि दृढमूल हो गयी है। इसीसे हिन्दुस्तानका सच्चे हृदयसे कल्याण चाहनेवाले इस देशके बड़े पुरुष भी इस विचारधाराके कारण वास्तवमें विदेशी संस्कृतिकी प्रशंसा करते हैं और अपनी संस्कृतिकी निन्दा! सचमुच आज अपनी सभ्यतामें हमारी अश्रद्धा और अनास्था तथा पश्चिमीय सभ्यतामें हमारी श्रद्धा और आस्था इतनी बढ़ गयी है कि हम आज वहाँके दोषोंको भी गुण समझकर ग्रहण करनेके लिये आतुर हैं! हमें अपने-आपपर इतनी घृणा हो गयी है कि हमारी प्रत्येक प्राचीन प्रथामें हमें तीव्र दुर्गन्ध आने लगी है, हम उससे नाक-भौंह सिकोड़ने लगे हैं। और इधर हमारी मानसिक गुलामी इतनी बढ़ गयी है कि दूसरे लोग जिसको अपना दोष मानकर उससे मुक्त होनेके लिये छटपटा रहे हैं, हम उसीको गुण मानकर उसका आलिङ्गन करनेको लालायित हैं। इसीसे आजका प्रगतिशील भारतीय तरुण परदेशी सभ्यताकी निन्दा करता हुआ भी पर-पदानुगामी, परानुकरणपरायण, पर-भावापन्न और पर-मस्तिष्कके सामने नतमस्तक होकर उन्नति और विकासके नामपर अपनेको महान् विनाशकारी आगमें झोंक रहा है!

पाश्चात्य जगत्के मनीषीगण समाजका अधःपतन होता देखकर जिन चीजोंको समाजसे निकालना चाहते हैं, हमारे शिक्षित प्रगतिमान् भारतीय उसीको ग्रहण करनेके लिये व्याकुल हैं! हालमें ही ईसाई-जगत्के धर्माचार्य रोमके पोपने कहा था—'यूरोपमें तलाककी संख्या बहुत जोरोंसे बढ रही है, विद्यार्थियोंका ईश्वरमें विश्वास घट रहा है और अश्लील नाटकोंका प्रचार बढ रहा है। यह बहुत बुरी बात है।' सुधारवादियोंके नक्कारखानेके सामने बेचारे पोपकी यह तूतीकी क्षीण आवाज किसीके कानमें क्यों जाने लगी?

विवाह-विच्छेदकी आलोचना करती हुई विदुषी अंग्रेज-महिला श्रीमती एम्० मैकिन्टस एम० ए० ने लिखा है—

'सभी युगोंमें नर-नारियोंके जीवनके दो प्रधान अवलम्बन रहे हैं—एक विवाह और दूसरा घर। वर्तमान युगमें ये दोनों ही अवलम्बन डाइवोर्स (तलाक) नामक अमङ्गलकारी प्रेतके प्रभावसे समाच्छन्न हो गये हैं! इस प्रेतने नर-नारियोंके हृदयोंको भयसे भर दिया है। तलाकने समाजका सर्वनाश होता है और यह समाज-हितके सर्वथा प्रतिकूल है, इस बातको अनेक युक्तियोंसे सिद्ध किया जा सकता है। इनमें एक युक्ति तो यह है कि तलाकसे घर टूट जाता है और परिवार नष्ट हो जाता है। विवाहका प्रधान उद्देश्य है—सन्तानोत्पादन। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये पारिवारिक बन्धनकी आवश्यकता है। यदि पति-पत्नी मृत्यु-कालतक एक-दूसरेके प्रति पूरा विश्वास रखकर दाम्पत्य-बन्धनको सुदृढ़ न बनाये रक्खें तो उपर्युक्त उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो सकती।

'आजकल स्वतन्त्र प्रेम (Free Love) की नयी रीति चली है। इसके अनुसार आधुनिक नर-नारी विवाह-बन्धनको शिथिल करके 'कामज प्रेम'के स्वाभाविक अधिकारकी निर्बाध स्थापना करना चाहते हैं। इस नयी व्यवस्थाके परिणामस्वरूप मनुष्यकी वंश-वृद्धि तो चलेगी, परंतु चलेगी बिल्कुल स्वतन्त्र पद्धतिसे। पितृत्व और मातृत्वकी धारणा लुप्त हो जायगी और बच्चोंका दल कीट-पतंगोंकी तरह पलेगा! सब समान हो जायँगे। उनमें रहेगा न व्यक्तित्व और न रहेगी किसी उद्देश्यकी विशिष्टता ही'……।'

डाक्टर डेनेबल महोदयने लिखा था—'हमारी समझमें विवाहसे तात्पर्य है दायित्वका वहन या बन्धन। इसमें दायित्वशून्यता या निर्बाध स्वतन्त्रताका कोई भी संकेत हम नहीं पाते। बंद घर निरापद और शान्तिमय होता है। दरवाजा खुला रहनेपर उसमें चोर-डकैत आ सकते हैं। और भी तरह-तरहके उत्पात, उपद्रव आकर घरकी शान्तिको भंग कर सकते हैं। यह बन्धनका सुख है। जिस घरका दरवाजा चौपट है, वह घर नहीं, वह तो सराय है।

'विवाहके साथ ही यदि विवाह-विच्छेदका खुला द्वार छोड़ दिया जाय तो स्त्री-पुरुष दोनोंकी कोई विशिष्टता नहीं रह सकेगी। फिर तो विवाह और विच्छेद तथा नित्य नयी-नयी जोड़ीका निर्माण—यह तमाशा चलता रहेगा।'…

'पाश्चात्य-समाजमें विवाह एक प्रकारका शर्तनामा (Contract) होनेपर भी उसमें यह स्पष्ट निर्देश रहता है कि यह सम्बन्ध मृत्यु-कालतकके लिये है—till breath us do part। यदि आरम्भसे ही पति-पत्नीके मनोंमें यह धारणा जाग्रत् रहेगी कि जब चाहे, तभी मिलन टूट सकता है, तब तो देह-मनको शुद्ध रखना बहुत ही कठिन होगा। फिर प्रेम-स्नेहकी दुहाई कोई नहीं मानेगा और फिर कौन किसके बच्चे-बच्चियोंको पालेगा।'…'विवाह-विच्छेदकी बातके साथ ही पुनर्विवाहकी बात भी चित्तमें आ ही जाती है। इस

पुनर्विवाहकी, चाहे जिसको देह-समर्पणकी, कल्पनासे यदि सुसंकृत (cultured) मनमें विद्रोह नहीं पैदा होगा तो फिर मनकी इस संस्कृतिका गौरव ही क्या है । फिर तो विवाह कानून-संमत एक रखेली रखनेका रूप (Legalized form of concubinage) होगा ।'

प्रेम और काममें बड़ा अन्तर है । प्रेममें त्याग है, उत्सर्ग है, बलिदान है । मनुष्य-जीवनकी पूर्ण परिणति प्रेमसे ही होती है । प्रेम त्यागस्वरूप है, उत्सर्गपरायण है । काम विषयलुब्ध है, भोगपरायण है । जहाँ केवल निजेन्द्रिय-सुख-की इच्छा है, वहाँ 'काम' है, चाहे उसका नाम प्रेम हो । वस्तुतः उसमें प्रेमको स्थान नहीं है । पशुमें प्रेम नहीं होता । इसीसे उनका दाम्पत्य क्षणिक भोग विलासकी पूर्तिमें ही समाप्त हो जाता है । इसीसे कामको 'पाशविक वृत्ति' कहा जाता है । मनुष्यमें प्रेम है, इसलिये उसमें क्षणिक लालसा-पूर्ति नहीं है । वह नित्य है, शाश्वत है । विवाह उत्सर्ग और प्रेमका मूर्तिमान् स्वरूप है । इसीसे विवाह-बन्धन भी नित्य और अच्छेद्य है । जहाँ विवाह-विच्छेदकी बात है, वहाँ तो मनुष्यके पशुत्वकी सूचना है । विवाहमें जहाँ विच्छेदकी संभावना आ जाती है, वहीं नर-नारीका पवित्र और मधुर सम्बन्ध अत्यन्त जघन्य हो जाता है । फिर मनुष्य और पशुमें कोई भेद नहीं रह जाता । विवाह-विच्छेदकी प्रथा चलाना मानवताको मारकर उसे कुत्ते-कुतियाके रूपमे परिणत कर देना है ॥

हिंदू-विवाह दूसरी जातियोंकी भाँति कोई शर्तनामा नहीं है, पवित्र धर्म-संस्कार है । एक महायज्ञ है । स्वार्थ इसकी आहुति है और नैष्कर्म्य-सिद्धि या मोक्ष इसका परम धन है । यज्ञकी पवित्र अग्निसे इसका प्रारम्भ होता है परंतु श्मशानकी चिताग्नि भी इस बन्धनको तोड़ नहीं सकती । त्यागके द्वारा प्रेमकी पवित्रताका संरक्षण करना और प्रेमको उत्तरोत्तर उच्च स्थिति-पर ले जाना विवाहका महान् उद्देश्य है । प्रेम, स्नेह, प्रीति, अनुराग, मैत्री, मुदिता, करुणा आदि पवित्र और मधुर भाव मनुष्य-जीवनकी परम लोभनीय सम्पत्ति हैं । इस परम सम्पत्तिकी रक्षा होती है त्याग, क्षमा, सहनशीलता, धैर्य और सेवा आदि सद्वृत्तियोंके द्वारा—और इन्हींसे इन भावोंकी वृद्धि भी होती है ।

हिंदू-विवाह-संस्कारमें पति-पत्नीकी यह निश्चित धारणा होती है कि हमारा यह सम्बन्ध सर्वथा अविच्छिन्न है । जन्म-जन्मान्तरमें भी यह कभी नहीं टूट सकता । ऐसी ही प्रार्थना और कामना भी की जाती है । इसीलिये कभी किसी कारणवश यदि किसी बातपर परस्पर मतभेद हो जाता है अथवा आपसमें झगडा भी हो जाता है तो वह बहुत समयतक टिकता नहीं । त्याग, क्षमा, सहिष्णुता, धैर्य आदि वृत्तियाँ दोनोंके मनोंको शीघ्र ही सुधारकर कलह शान्त करा देती हैं; अतएव प्रेम अक्षुण्ण बना रहता है । जीवनमें दुःखके दिन अधिक कालतक स्थायी नहीं होते, क्योंकि पति पत्नी दोनोंको ही एक-दूसरेसे मेल करनेकी इच्छा हो जाती है । 'हम दोनों जीवनभरके संगी हैं' यह धारणा अत्यन्त दृढ होनेके कारण पारस्परिक विश्वास और प्रेम केन्द्रीभूत हो जाते हैं । और किसी प्रकार किसी कारणवश सामान्य उत्तेजना, जोश, क्रोध या अविश्वासके उदय होनेपर सहसा ऐसा कोई कार्य प्रायः नहीं होता, जिससे सम्बन्ध टूट जाय ।

उत्तेजना, जोश या क्रोध आदिका कार्य यदि उसी समय नहीं हो जाता, बीचमें कुछ समय मिल जाता है, तो फिर उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है । जितनी ही देर होती है, उतना ही उनका आवेग घटता है । कुछ समय बाद तो वे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं । परंतु यदि विच्छेदका दरवाजा खुला हो तो जहाँ जोश आया और जोशके जोरसे होश गया कि वहीं सम्बन्ध टूट गया—तलाक कर दिया गया ! इसीसे अमेरिका-जैसे देशोंमें प्रतिवर्ष लगभग सात-आठ लाख तलाकके मामले होते हैं और उत्तरोत्तर इनकी संख्या बढ रही है । रूसमें तो आज विवाह, कल तलाक—यही खेल चल रहा है । हमारे यहाँ विवाह-बन्धनके कारण स्त्री-पुरुष पारिवारिक जीवनमें इतने बँध जाते हैं कि कभी सामयिक उत्तेजनाके कारण अलग होनेकी इच्छा होती भी है तो वैसा सहजमें हो नहीं पाता । इससे पारिवारिक संघटन टूटता नहीं ।

साथ ही जब विवाह होते ही पत्नी-पति दोनोंको यह निश्चय हो जाता है कि यह मेरा पति है और यह मेरी पत्नी है, हम दोनोंका यह प्रेममय पवित्र सम्बन्ध नित्य और अटूट है, तब दोनोंके मन केन्द्रीभूत हो जाते हैं । इसलिये उनके मनों-के लिये अन्य किसी ओर जानेकी सम्भावना ही नहीं रहती । 'कोई कितने ही सुन्दर, आकर्षक और गुणवान् स्त्री-पुरुष क्यों न हों, उनसे अपना क्या काम'—यह भावना दृढ रहती है । ऐसी अवस्थामें नर-नारीके अबाध मिलनकी बात दूर रही, पर-स्त्री या पर-पुरुषके चिन्तनको, उन्हें काम-दोषयुक्त दृष्टिसे एक बार देखनेमात्रको भी महान् पाप माना जाता

है तथा प्रायः सभी नर-नारी इस पापमें फँसनेका प्रयत्न भी करते रहते हैं। पाश्चात्त्य देशोंमें ऐसी बात नहीं है। वहाँ नर-नारीकी संख्या बहुत संतुलित है। नर-नारीके शारीरिक मिलनको वे स्वाधीनता मानते हैं, व्यभिचार नहीं। इसीसे इस स्वाधीनताका उपभोग करनेके लिये वे लालायित रहते हैं। इसीका नाम उन्होंने वहाँ 'स्वतन्त्र प्रेम' (Free Love) है। विवाह-बन्धनमें इस पापमें स्वाभाविक ही रुकावट होती है, और विवाह-विच्छेदसे इस पापको प्रोत्साहन मिलता है। अतएव तलाकका कानून बन जानेपर, अन्य कारण न होनेपर भी, बहुत-से विवाह-विच्छेदके मामले तो केवल इसी निमित्तसे होने लगेंगे।*

विवाहित स्त्री-पुरुषके पारस्परिक व्यवहारके सम्बन्धमें आलोचना करती हुई श्रीमती रॉबिन्सन् कहती हैं—'हिस्सेदारीके कारबारमें जैसे हिस्सेदारों (Partners) को एक दूसरेकी मानकर चलना पड़ता है—मौज या मनमानी करनेसे कारबार नहीं चलता, वैसे ही पति-पत्नीकी हिस्सेदारीमें घरका भी नियम है। दोनो एक-दूसरेसे मिलकर, सलाह करके काम करेंगे तो घरका व्यापार सुचारुरूपसे चलेगा। यही विवाहका मुख्य उद्देश्य है, क्योंकि इस सहयोगितापर ही दोनोंकी सुख-शान्ति निर्भर है। एक-दूसरेके दोषों या भूलोंको क्षमाकी ऑंखोंसे देखकर चलनेसे ही हिस्सेदारी निभती है। नहीं तो उसका विच्छेद अवश्यम्भावी है। इस सहयोगिताको जिस पवित्र वृत्तिसे पोषण मिलता है, उसीका नाम है प्रेम, प्रीति या अनुराग। मनमानी तृप्ति या स्वेच्छाचारके सुखको ही जीवनका उद्देश्य बना लेनेपर तो परिणाममें क्षोभ और पश्चात्ताप ही प्राप्त होगा। अतएव पति-पत्नीको परस्पर एक-दूसरेकी सहकर चलना चाहिये। स्वतन्त्रता या स्वेच्छाचारको सिर नहीं चढाना चाहिये।

इस सहयोगिताके भावोंकी रक्षा जिस प्रेमसे होती है, विवाह-विच्छेदका मार्ग खुला रहनेपर विवाहमें उस प्रेमकी उत्पत्ति ही रुक जायगी। फिर सहयोगिता कहाँसे होगी। सहयोगिता न होनेपर तलाककी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ेगी ही। यूरोपमें यही हो रहा है और इसीसे वहाँका समाज आज अशान्ति और अनाचारका घर बना हुआ है! विवाह-विच्छेद होने तथा स्त्रीका दूसरे पुरुषसे और पुरुषका दूसरी-स्त्रीसे विवाह होनेपर पहलेके बच्चे अनाथ हो जायँगे। स्त्रियोंमें मातृत्वकी जो महान् वृत्ति है और पितामें जो पितृत्वका पवित्र भाव है, वे क्रमशः नष्ट हो जायँगे। फिर बच्चोंका पोषण या तो रूसकी भाँति राज्य करेगा या उनकी दुर्दशा होगी।

अमेरिकाके भूतपूर्व प्रेसिडेंट रूजवेल्ट महोदयने अपनी जीवन-स्मृतिमें कहा है—'मेरी उम्र उस समय दस वर्षकी थी। मैं बीमार था। बिछौनेपर पड़ा पुस्तककी तस्वीर देखा करता। बगलमें बैठी हुई मा मुझे तस्वीरोंका भाव समझाया करती। मुझे बड़ा अच्छा लगता। नींद नहीं आती तो मेरी मा मेरे मुँहमें मुँह देकर मुझे सान्त्वना देती। पिता और माता दोनों ही मुझे लेकर व्यस्त रहते। कितनी कहानियाँ कहते। कहानियाँ—वह माता-पिताका स्नेह। उस स्नेहने ही मेरे सारे कष्टोंको मिटा दिया। यदि ऐसा न होता, यदि मुझ बीमारको बिछौनेपर फेंक दिया जाता और दो तीन नर्सोंपर मेरा भार देकर मेरे मा-बाप बाहर चले गये होते—पार्टीमें, नाटकमें, सान्ध्य-भोजनमें या राजनीतिक आलोचना-समिति-

* विदेशोंमें यथार्थमें यही हो रहा है। कुछ समय पहले एक प्रसिद्ध वकील महोदयने 'सण्डे-एक्सप्रेस'के प्रतिनिधिसे कहा था कि तलाकोंकी संख्यावृद्धिके बहुत-से कारणोंमें एक प्रधान कारण तो यह है कि नवीन विवाहित तरुणियाँ पारिवारिक जीवनको सुखी बनानेकी जरा भी चिन्ता नहीं करतीं। वे जरा-जरा-सी बातोंपर (मामूली पोशाक, फैशन, हँसी-मजाक, त्योरी-ताने, सिगरेट-बिस्कुट और चाय-शर्बततकपर) अपने पतियोंसे झगड़ पड़ती हैं।' वकील महोदयने यह भी कहा कि 'मेरे पास तलाक-सम्बन्धी अधिक मुकद्दमे युवक-युवतियोंके ही आते हैं, जो सामयिक उत्तेजनावश फुर्तीसे विवाह कर लेते हैं और कुछ महीने समुद्रतटकी ओर आमोद-प्रमोद करके जीवनसे तंग आकर तलाककी बात सोचने लगते हैं। कई अदालतोंमें स्त्रियोंके आँसुओंके दृश्य तो नहीं देखे जाते पर मौन रहनेपर भी उनमें 'करुणा' बोलती है। इसलिये कि उनका सारा सुखस्वप्न कुछ सप्ताहोंकी ज्योत्स्नामयी रात्रियोंके बाद ही विलासप्रिय पुरुषोंके द्वारा तोड़ दिया जाता है। परन्तु युवतियोंसे अधिक दुःखपूर्ण दृश्य तो उन महिलाओंका होता है जो प्रौढ़ आयुकी हैं और जो अदालतमें उन सुन्दर तरुणियोंकी ओर घूर-घूरकर सिसकती हैं, जिनके कारण उनके पतियोंने उन्हें परित्याग कर दिया है। ऐसे ही अभागे वे बच्चे हैं, जिनका जन्म ऐसे मा-बापोंसे हुआ है, जो वस्तुतः स्त्री-पुरुष नहीं समझे जाते थे।' इसी प्रकार विवाह-विच्छेदकी संख्या भी बड़े जोरोंसे बढ़ रही है। विवाह तथा विवाह-विच्छेद मिनटोंमें तय होते हैं और तोड़ दिये जाते हैं। पशुओंका-सा व्यवहार हो गया है। आज हम भारतवासी भी इसीको उन्नति मानते हैं और इसीकी इच्छा करने लगे हैं। इससे अधिक दुर्दैव और क्या होगा?

मे—तो यह विचार करते ही मेरा शरीर काँप जाता है—फिर मेरा न जाने क्या होता। फिर रूजवेल्टके पलनेकी कोई आशा नहीं रहती।'

मातृत्व और पितृत्वकी भावना नष्ट होनेपर समाजकी कैसी भयानक स्थिति हो सकती है, इसकी कल्पनासे ही हृदय काँप जाता है।

तलाकका कानून बना तो वह केवल स्त्रीके लिये ही नहीं होगा, पुरुषके लिये भी होगा; और ऐसा होनेपर अधिक हानि स्त्री-जातिकी ही होगी, क्योंकि भारतवर्षमें अबतक भी स्त्री-जातिका पुरुषकी अपेक्षा बहुत कम पतन हुआ है। स्त्रियाँ पतिको तलाक देने बहुत कम आवेंगी—पुरुष बहुत अधिक आवेंगे। अतएव किसी भी दृष्टिसे तलाक-कानून श्रेयस्कर नहीं है। इसमें सब प्रकारसे हानि-ही-हानि है। इसलिये प्रत्येक नर-नारीको इसका विरोध करना चाहिये। पर दुःखकी बात है आज भारतका शिक्षित नारी-समाज पतनको ही उत्थान मानकर 'तलाक' कानूनके लिये लालायित हो रहा है।

हिंदूशास्त्रके अनुसार सतीत्व परम पुण्य है और पर-पुरुष-चिन्तन मात्र महापाप है। इसीलिये आज इस गये-गुजरे जमानेमें भी स्वेच्छापूर्वक पतिके शवको गोदमें रखकर सानन्द प्राण-त्याग करनेवाली सतियाँ हिंदू समाजमें मिलती हैं। भारतवर्षकी स्त्री-जातिका गौरव उसके सतीत्व और मातृत्वमें ही है। स्त्री-जातिका यह गौरव भारतका गौरव है। अतः प्रत्येक भारतीय नर-नारीको इसकी रक्षा प्राणपणसे करनी चाहिये।

हिंदू-विवाहकी पवित्रता

मनुष्यकी प्रबल इन्द्रियलालसाका सङ्कोच करके उसे एक सीमामें आबद्ध करनेके लिये—दूसरे शब्दोंमे भोगसे संयमकी ओर, प्रवृत्तिसे निवृत्तिकी ओर तथा संसारसे भगवान्‌की ओर बढ़नेके लिये विवाह करना आवश्यक है। यही हिंदू-विवाहका उद्देश्य एवं लक्ष्य है। हिंदू-विवाह भोगलिप्साका साधन नहीं, एक धार्मिक संस्कार है। संस्कारसे अन्तःशुद्धि होती है और शुद्ध अन्तःकरणमे तत्त्वज्ञान एवं भगवत्प्रेमका प्रादुर्भाव होता है, जो जीवनका चरम एवं परम पुरुषार्थ है। संत फ्रांसिसने यह ठीक ही कहा था कि 'काम-वासनाकी चिकित्साके लिये विवाह बड़ी अच्छी वस्तु है; परंतु वह कड़वी दवा है, बहुत सँभलकर उसका व्यवहार न किया जाय तो बड़ी भयावह भी है।' वास्तवमें विवाह करनेपर भी यदि जीवन असंयममें ही बीता तो विवाहका सारा उद्देश्य ही व्यर्थ गया। हिंदू-शास्त्रोंमें विवाहित पति-पत्नीको भी सदा मिलनकी सुविधा नहीं दी गयी है। आज यह पर्व, कल वह व्रत, दूसरे दिन स्त्रीकी रजस्वला-अवस्था आदि बहुत-से विधि-निषेध ऐसे हैं, जो दम्पतिकी भोगेच्छाको नियमित करके उन्हें प्रतिमास दो एक दिनसे अधिक मिलनका अवसर नहीं देते। ये सारी बातें संयमके पथपर अग्रसर करनेके उद्देश्यसे ही की जाती हैं।

मनुष्यके ऊपर देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ ऋण—ये तीन ऋण होते हैं। यज्ञ-यागादिके अनुष्ठानसे देव-ऋणका, स्वाध्यायसे ऋषि-ऋणका और विवाह करके पितरोंके श्राद्ध-तर्पणके योग्य धार्मिक एवं सदाचारी पुत्रका उत्पादन करनेसे पितृ-ऋणका परिशोधन होता है—इन तीनों ऋणोंके चुका देनेपर मोक्ष-मार्गमें सहज ही मन लग सकता है। मनुजी कहते हैं—

> ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
> अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः॥

इस प्रकार पितरोंकी सेवा तथा सद्धर्मपालनकी परम्परा सुरक्षित रखनेके लिये सन्तान-उत्पादन करना विवाहका दूसरा उद्देश्य है। पहला संयम और दूसरा परमार्थ-साधन—ये दोनों ही उद्देश्य भोगसे अन्यत्र ले जानेवाले हैं। भोगको कहीं भी विवाहका उद्देश्य नहीं माना गया है। विवाहके पहले मनुष्य केवल अपने व्यक्तित्वकी ही चिन्ता करता है, किंतु विवाहित हो जानेपर उसे क्रमशः अपनी चिन्ता भुलाकर पत्नी, पुत्र, परिवार, सम्बन्धी, कुटुम्बी, समाज और देशके प्रति आत्मीय-भावनाका विस्तार करना पड़ता है। इसी प्रकार समस्त वसुधाको ही कुटुम्ब समझकर वह राग-द्वेषसे रहित हो जाता है। अतः विवाह आध्यात्मिक विकासका एक साधन है। विवाहका अन्तिम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति या मोक्ष है। विवाहित स्त्री पुरुष प्रेम पिपासु होते हैं। पुरुष अपना सम्पूर्ण प्रेम पत्नीके प्रति प्रवाहित करके केवल उसीका होकर रहना चाहता है। इसी प्रकार साध्वी पत्नी अपना तन, मन, जीवन—सब पतिको अर्पण करके केवल उसीकी होकर रहती है। दोनों एक-दूसरेके लिये अनन्य बन जाते हैं। यही अनन्यता जब भगवान्‌के प्रति समर्पित हो जाय तो जीवन कृतार्थ हो सकता है। जीवमात्र भगवान्‌का सेवक अथवा

श्रेणी है। भगवान् सबके स्वामी एवं प्रियतम हैं—यही भाव भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला है। सती स्त्री पतिमें ही इसी प्रकार इस भावसे कृतार्थ हो जाती है। पुरुष भी पत्नीके साथ सहधर्मका पालन करनेसे अन्तःशुद्धि हो जानेपर भगवत्प्रेमका अधिकारी बन जाता है। मनुजीने सन्तानोत्पादन, धर्म-कर्म, सेवा, उत्तम प्रेम, पितरोंका उद्धार तथा अपना उद्धार भी स्त्रीके ही अधीन बताया है—

> अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
> दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥

इसीलिये हिंदू-शास्त्रोंने स्त्रीके सतीत्वकी रक्षापर अधिक जोर दिया है। स्त्रीकी रक्षा करनेवाला पुरुष अपने सन्तानकी, अपने सदाचारकी, कुलकी, अपनी तथा अपने धर्मकी भी रक्षा कर लेता है—

> स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ।
> स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥

इसी दृष्टिसे बचपनमें पिता, युवती-अवस्थामें पति और वृद्धावस्थामें पुत्रोंपर स्त्रीकी रक्षाका भार दिया गया है। इससे स्त्रीको परतन्त्र बनानेकी भावना नहीं, उसके पदका गौरव सूचित होता है। जैसे देवीकी रक्षामें पार्षद रहते हैं, रानीकी रक्षा सैनिक करते हैं, उसी प्रकार स्त्रीमात्रके प्रहरी पुरुष हैं। जैसे पिता सन्तानकी और पुत्र माताकी रक्षा प्रेम और श्रद्धासे ही करते हैं, उसी प्रकार पति भी पत्नीका संरक्षण प्रेमसे ही करता है, परतन्त्र बनानेके लिये नहीं। कन्या जबतक रजस्वला नहीं होती, तभीतक उसे पिताके अधिकारमें रखनेकी आवश्यकता है; रजस्वला-अवस्था आनेके पहले ही उसपर पतिका अधिकार हो जाना चाहिये। प्रकृतिके नियमानुसार जब कन्यामें मातृत्व-शक्तिका विकास होता है, और उसमें पति-सहवासकी इच्छा जाग्रत् होती है, उसी अवस्थामें वह रजस्वला होती है। यदि उस समय वह विवाहित है तो स्वभावतः उसे पुरुषके रूपमें पतिका ही चिन्तन होगा। अतः वह मानसिक व्यभिचारसे भी बच जायगी। यदि वह अविवाहित है, तो प्रत्येक बार रजस्वला होनेपर वह भिन्न-भिन्न पुरुषोंको मनमें स्थान दे सकती है। मनमें अपवित्रता आनेपर वह शरीरको भी पवित्र रखनेमें समर्थ न हो सकेगी, अतः वैवाहिक जीवनकी पवित्रता सुरक्षित रखनेके लिये रजस्वला होनेके पूर्व ही कन्याका विवाह कर देना चाहिये। यही नारीकी सबसे बड़ी रक्षा है और इस रक्षापर ही लोक-परलोक—सबकी रक्षा सुस्थिर है।

रजस्वला होनेके पूर्व विवाह हो जानेपर भी वधूकी अवस्था जबतक सोलह वर्षकी न हो जाय, तबतक उसे और उसके पतिको भी अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। तभी भावी सन्तति सुयोग्य एवं स्वस्थ होती है। वयस्क पति-पत्नी भी निरन्तर भोगमें डूबे रहें, यह भारतीय आदर्श नहीं है। रजस्वलावस्थामें पहलेके चार दिनका निषेध तो है ही, ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रियाँ भी निन्दित हैं। इसके सिवा—पर्व, व्रत, अमावस्या, व्यतीपात आदिका विचार करनेपर प्रतिमास केवल एक ही दो दिन शुद्ध समय निकलता है। इसीमें धर्म-बुद्धिसे सन्तानोत्पादनकी इच्छा लेकर पत्नी-सहवास करे। गर्भ स्थापित होनेपर पुनः अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन हो; यह ब्रह्मचर्य कम से-कम पाँच वर्षोंतक चालू रहे। इस प्रकार संयमपूर्वक रहनेका ही शास्त्रीय आदेश है।

हिंदू-विवाह-संस्कारके वैदिक मन्त्रोंपर ध्यान देनेसे यह सूचित होता है कि पति-पत्नी एक प्राण, दो देह होकर रहें। दोनोंके मनमें एक दूसरेके प्रति मङ्गल-कामना भरी हो। नारी पतिव्रता और पुरुष एकपत्नीव्रती हो। सर्वोत्तम पतिव्रता वह है, जिसकी दृष्टिमें पतिके सिवा दूसरा कोई पुरुष हो ही नहीं। दूसरी श्रेणी उसकी है, जो पतिके सिवा अन्य पुरुषोंको अपने पिता, भाई अथवा पुत्रके रूपमें देखती है।

आजकल लोग यूरोपका आदर्श अपने यहाँ लाना चाहते हैं; परंतु विचारशील विदेशी विद्वान् भारतीय वैवाहिक आदर्शको ही सर्वोपरि बतलाते हैं। हैवलक एलिस विवाह-विज्ञानके अच्छे ज्ञाता समझे जाते हैं। उन्होंने अधिक उम्रमें विवाहका विरोध करते हुए बतलाया है—'आजकल विवाहकी उम्र क्रमशः बढ़ायी जाती है, इससे स्वेच्छानुसार प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक सभी तरहके इन्द्रिय-संसर्गकी प्रवृत्ति बढ़ रही है, जिससे नैतिक जीवनकी भयङ्कर हानि हो रही है।'

विदुषी मेरी कारमाइकल स्टोप्स लिखती हैं—'मेरा दिनों-दिन यह विश्वास बढ़ रहा है कि कन्याका विवाह शीघ्र ही होना उचित है। विलम्बका विवाह जातिके लिये असीम विपत्तिका कारण है।'

ए० टी० ए० रॉटने अपनी 'सेफ मैरेज' नामक पुस्तक (पृष्ठ २०) में लिखा है—'पश्चिम देशकी स्त्रियाँ अवैध पुरुष-संसर्गसे सुजाक आदि रोगोंका शिकार हो जाती हैं। शीघ्र विवाहके द्वारा ऐसी आशङ्का प्रायः कम हो जाती है।'

अमेरिकन जज लिंडसेने लिखा है—'केवल न्यूयार्कमें कम-से-कम पचास हजार स्त्रियाँ उपपतियोंके सङ्ग रहती हैं—विवाह नहीं करतीं।'

डा० प्लेफेयरका मत है—'अधिक अवस्थामें विवाह और गर्भाधान होनेपर प्रसव अत्यन्त कष्टकर होता है।'

मि० लिकी कहते हैं—'आयर्लैंडकी गरीब किसान-जातिमें शीघ्र विवाहकी जो प्रथा है, उसीसे वहाँकी स्त्रियोंमें उच्च कोटिका पातिव्रत्य-धर्म और पतिके प्रति हार्दिक अनुराग बना है।'

फ्रेडरिक पिनकटका कथन है—'हिंदुओंका विवाह-बन्धन टूटनेके लिये नहीं होता, वह वेद-शास्त्रोंके अनुसार लोक-परलोकको बाँधनेवाला होता है। वहाँ विवाह-विच्छेद आकाश-कुसुमवत् है। लाखों वर्षोंसे हिंदू जातिमें यह प्रथा चली आती है। हिंदू-विवाह-प्रथा सर्वोत्तम है।'

'विमेन आफ इंडिया' के लेखक रयफील्ड लिखते हैं—'हिंदुओंकी विवाह-प्रथा सुखद है। इसमें स्वार्थ कम और सार्वभौमभाव बहुत अधिक है। पति-भक्तिकी पूर्णताके द्वारा ही किसी जातिकी उत्तमताका पता लगता है। हिंदू-नारियोंके साथ संसारकी किसी भी अन्य जातिवाली स्त्रियोंकी तुलना नहीं की जा सकती। इसका मुख्य कारण हिंदू-विवाहकी पवित्रता है!'

यूरोपकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तिका अधाधुध अनुकरण करनेवाले सुधारकलोग उपर्युक्त पंक्तियोंपर विचार करें और भारतीय आदर्शकी महत्ताका अनुभव करें—यही मेरी विनीत प्रार्थना है। —रा० त्रि०

नारी-उन्नति

(लेखक—दीवान बहादुर श्रीकृष्णलाल एम० झवेरी, एम०ए०, एल्-एल्०बी०, जे० पी०)

इतिहासके अरुणोदयकालसे ही भारतवर्षमें स्त्री-जातिका आदर-होता रहा है। वैदिककालमें प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कर्ममें वह अपने पतिके साथ नियुक्त होती थी। पतिके साथ पत्नीके बैठे बिना कोई भी पूजन अथवा धार्मिक कृत्य पूर्णत्वको नहीं प्राप्त होता था। बिना पत्नीके किया हुआ अग्निहोत्र फलहीन होता था। राज्यके कार्योंमें भी राजाके साथ रानी ऐसी लगी रहती थी मानो वह एक अत्याज्य सगिनी हो। हमें रामके इतिहासमें कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा, जहाँ वे विशेष अवसरोंपर सीतासे अलग रहे हों। सासारिक कार्यों तथा घरके कामोंमें स्त्रीका विशेषाधिकार होता था और उनमें उसका हिस्सा भी स्वाभाविक ही पतिसे अधिक होता था। अपने बच्चोंकी माके रूपमें भी उसका आसन पतिसे ऊँचा ही रहता था। विद्वत्ता एवं पाण्डित्यमे भी वह अपने भाई या पतिसे पीछे नहीं रहती थी। गार्गी और लीलावतीकी बडी महिमा है। सावित्रीने अपने पिताके यहाँ उसी प्रकार विद्याध्ययन किया था, जैसे कि सत्यवान्ने। उनके शिक्षा प्राप्त करनेमे कोई रुकावट नहीं थी। केवल मध्ययुगमें ही—जब कि हमारे देश, हमारे जीवन, हमारी प्रभुता और राजनीति सबमे चारों ओरसे पतन हो गया—स्त्री-जाति भी अपने उच्चासनसे नीचे आ गिरी। तब भी मनु-जैसे स्मृतिकार उसकी प्रतिष्ठाको भूले नहीं थे; उन्होंने अपने प्रसिद्ध श्लोकोमे दुहराया कि जहाँ स्त्रियोंकी पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। यह हिंदू-जीवनका एक व्यापक सिद्धान्त था। विदेशी शासन अपनी अलग रूढियोंको लेकर आया और भारतीय स्त्रियोंके बुरे दिन आये। उसका आसन पीछे लगने लगा और उसकी स्थिति घटते-घटते एक चल-सपत्तिके समान हो गयी। इस सुप्तावस्थामें भी वह प्राचीन ज्वाला कभी-कभी फूट ही पड़ती थी। स्त्रियाँ केवल घरके काम-काज करनेके भीतर ही सीमित हो गयीं, इसलिये वे धर्मकी ओर अधिक झुकीं। ऐसी ही स्त्रियोंमेंसे मीराबाई-जैसी संत और कवयित्री निकलीं। राजनीतिके क्षेत्रमे अकबरकी रानी जोधपुरी बेगम और झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाईने जन्म लिया। मुस्लिम शासकोंके बीच यद्यपि स्त्री उपेक्षिता थी, फिर भी मरुभूमिमें उद्यानकी भाँति रजियाबेगम और चाँदबीबी-जैसी राज्यसत्ताको सँभालनेवाली रानियाँ और औरगजेबकी पुत्री जेबुन्निसा-जैसी कवयित्रियाँ हो गयी हैं। पिछली पीढियोंमे नारीको उसके उचित स्थानपर पहुँचा देनेकी सफल चेष्टा हुई है। तरुदत्त और श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा उनकी अनेक विख्यात बहनोंने- जिनकी संख्या इतनी अधिक है कि सबका पृथक् पृथक् नाम लेना कठिन हो जायगा, इस प्रयत्नकी सफलताको प्रमाणित कर दिया है। और आज अपने जीवनके प्रत्येक भौतिक क्षेत्रमें हम अपनी पत्नियों, पुत्रियों, बहिनों एवं माताओंको धीरे-धीरे पर दृढता-पूर्वक अपने खोये हुए स्थानको फिरसे प्राप्त करते हुए देख रहे हैं। इस कल्याणकारी परिवर्तन अथवा क्रान्तिके लिये भगवान्को धन्यवाद है!

सतीत्वका तेज

सतीत्वकी अग्निपरीक्षाकी बातें पुराने ग्रन्थोंमें बहुत पढ़नेको मिलती हैं, परंतु आजका समाज उनपर विश्वास नहीं करता। आजकल लोगोंकी यही धारणा है कि ये सब कपोलकल्पित बातें हैं, ऐसा होना सम्भव नहीं। परन्तु बीच-बीचमें ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं, जिन्हें देख-सुनकर चकित होना पड़ता है। गत तारीख ६ दिसम्बर १९३८ को मुँगेर जिलेमें एक ऐसी ही विचित्र घटना हुई थी—

मुँगेर जिलेके प्रसिद्ध उलाव ग्राममें गोरखपुर जिलेके कुछ पत्थरकट्टे लोग कई महीनोंसे डेरा डाले आस-पासके गाँवोंमें चक्की आदि छीलनेका काम कर अपना जीवन बिताते थे। जयलाल पत्थरकट्टेकी लड़की, नेथुनी पत्थरकट्टेकी पत्नी सुन्दरी नामक एक ३०-३२ वर्षकी युवती उनमें थी। उसके दो छोटे-छोटे लड़के भी थे। बाबूलाल नामक एक व्यक्तिने उसके पतिसे कहा कि 'तुम्हारी स्त्री बदचलन हो गयी है; इसे जो गर्भ है, वह भी तुम्हारा नहीं है।' युवतीने दोषारोपण करनेवालेसे नम्रतापूर्वक कहा, 'तुम झूठे हो; भगवान् साक्षी हैं, मैंने कभी पर-पुरुषका सङ्ग नहीं किया।' उसने कहा, 'अच्छा! तुम सच्ची हो तो अपनी जातिमें जो अग्निपरीक्षा होती आयी है, वह तुम भी दो।' युवतीने हँसते हुए कहा, 'हाँ-हाँ' जब चाहो ले लो।' इसके फलस्वरूप मंगलवार तारीख ६-१२-३८ को निम्नलिखित प्रकारसे उस युवतीकी अग्निपरीक्षा हुई।

ग्रामसे दक्षिण एक वट-पीपलका वृक्ष है, इस वृक्षके नीचे बहुत से गोइठोंका ढेर लगाकर उसमें आग लगा दी गयी और उसमें लगभग दो सेरका लोहेका एक हथौड़ा रख दिया गया। हथौड़ा जब लाल हो गया, तब उस युवतीको स्नान कराकर उसके जुड़े हुए दोनों हाथोंकी हथेलियोंपर घी लगा दिया गया और उनपर घी लगे हुए पीपलके ढाई पत्ते रखकर कच्चे सूतसे हथेली बाँध दी गयी। धूनीसे लेकर सात डग-तक सात गोइठे रख दिये गये। युवतीको धूनीके पास खड़ा कर दिया गया। जातिके मुखियाने सँडासेके द्वारा जलता हुआ लाल हथौड़ा निकालकर युवतीके पास खड़े होकर उससे कहा—'यदि तुम निर्दोष हो तो इस जलते हुए लोहेको हथेलीपर ले लो और सात डग चली जाओ।' इसपर युवतीने सूर्यभगवान्‌की ओर मुँह करके यह प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! यदि मैं निर्दोष हूँ तो आप मेरा धर्म रखना।' इतना कहकर उसने बड़े हर्षसे जलते हुए लोहेको हथेलीपर रख लिया और सात डग आगे जाकर उसे जमीनपर फेंक दिया। जिस जगह वह लोहा गिरा, उस जगहकी घास जलकर जमीनकी मिट्टी भी दो इञ्च गहराईतक जल गयी। परंतु बड़े आश्चर्यकी बात यह हुई कि भगवत्कृपासे न तो हथेलीपरका सूत जला, न पीपलके पत्ते जले और न युवतीकी हथेलीपर जरा दागतक ही आया।

इस अग्निपरीक्षाको देखनेके लिये लगभग दो सौ स्त्री-पुरुषोंकी भीड़ लगी थी, जिसमें कुछ पत्थरकट्टे लोग थे और बाकी गाँवके लोग थे। सबने सतीका जय-जयकार किया। तदनन्तर इस पतिव्रता देवीको श्रीमती सावित्री देवीजीकी डेवढ़ीपर बुलाकर मिठाई, कपड़े तथा फूल-मालादिसे उसका सत्कार किया गया।

शिष्टाचारकी मर्यादा

युवती गुरुभार्या च प्रणमेन्न पदे स्पृशन्। कनिष्ठभ्रातृपत्न्यास्तु स्नुषायाः शिष्ययोषितः॥
त्वङ्कारमङ्गस्पर्शं च बहिःसन्दर्शनस्थितिम्। उच्छिष्टदापनं चैव नासां कुर्यात् कदाचन॥
जननी गुरुपत्नी च श्वश्रूर्ज्येष्ठसहोदरा। मातृष्वसा मातुलानी सप्तमी तु पितुः स्वसा॥
एता हि मातृपर्याया लघुत्वं चोत्तरोत्तरम्। एता मान्याश्च पूज्याश्च अगम्याश्चैव सर्वशः॥

(बृहद्धर्म० उत्तर० १। ४२—४५)

गुरुकी पत्नी यदि युवती हो तो उसके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम नहीं करना चाहिये। छोटे भाईकी स्त्री, पतोहू तथा शिष्यकी पत्नीको न तो 'तुम' कहकर पास बुलाना चाहिये, न इनके अङ्गोंका स्पर्श करना चाहिये, न इन्हें घरके बाहर देखने या ठहरानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इन सबको कभी अपना जूँठा भी नहीं दिलाना चाहिये। जन्मदायिनी माता, गुरुकी पत्नी, सास, बड़ी बहन, मौसी, मामी तथा सातवीं बूआ—ये सब माताके ही दूसरे नाम और रूप हैं। इनमें माताकी अपेक्षा उत्तरोत्तर लघुता है। ये सभी माननीय, पूजनीय तथा सब प्रकारसे अगम्य (समागमके अयोग्य) हैं।

नारी-जागरणका अभिप्राय

(लेखिका—श्रीमती निरुपमा शर्मा)

एकइ धर्म एक व्रत नेमा । कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ॥

(गो० तुलसीदास)

नारी-जागरणकी बातें प्रायः सुनी और पढ़ी जाती हैं। सुधार-मार्गपर अग्रसर बहनें भी नारी-जागरणकी आवश्यकता अनिवार्य समझती और नारी-समाजके उत्थानके लिये प्रत्येक स्त्रीके हृदयमें जागरणका भाव पैदा होना जरूरी बतलाती हैं; किंतु नारी-जागरण है क्या, यह एक विवादास्पद विषय है।

कुछ लोगोंके मतमें स्त्री-स्वत्वोंकी माँग ही नारी-जागरण है। कुछ लोग इसके द्वारा यह प्रकट करना चाहते हैं कि सामाजिक हलचलमें पुरुषोंकी समानतामें स्त्रियोंको भी अग्रसर होनेका पूरा अधिकार है; कुछ लोग इसे स्त्री-समाजकी क्रान्तिका पर्याय समझते हैं और कुछ लोग इसे पर्देसे बाहर निकली कतिपय पढ़ी-लिखी महिलाओंमें चहल-पहल पैदा करनेका एक सीधा रास्ता स्वीकार करना चाहते हैं। नारी-जागरणके लक्षणमें प्रस्तुत किये जाते प्रमाणोंसे यही पता चलता है। यह ठीक है कि आजका नारी-समाज जाग चुका है और वह पुरुषोंकी समानताके स्वाधिकारोंकी रक्षामें स्वयं पूरा समर्थ है; किंतु यही नारी-जागरणका अभिप्राय या आदर्श नहीं माना जा सकता। पुरुष और स्त्री जिस समाजके अभिन्न अङ्ग हैं, उस समाजके आदर्शको दृष्टिकोणसे बाहर रखकर सामाजिक उत्थानका विचार नहीं किया जा सकता; वैसी स्थितिमें नारी-जागरणका अभिप्राय भी सामाजिक उत्थान और उसके द्वारा समाजादर्शका पालन होना ही श्रेयस्कर है।

यों तो आन्दोलन किसी भी रूपमें पैदा किया जा सकता है, किंतु उसके स्थायी प्रभाव और लाभसे ही जन-समाज संतुष्ट हो सकता है। उसी तरह कोरे आन्दोलन या अधिकार-प्राप्तिके लिये गढ़ी गयी क्षणिक अशान्तियाँ ही जागरणके लक्षण नहीं स्वीकार की जा सकतीं और न नारी-समाज उसके पीछे पागल बनकर अपने पुरातन कल्याणकारिणी शान्तिविधायिनी संस्कृतिको ठुकरा देनेकी मनोवृत्ति धारण कर सकता है। ऐसा करके नारी-समाज न पुरुषोंकी समानता ही प्राप्त कर सकता है और न अपनी प्रकृति-प्रदत्त श्रीकी रक्षा ही। कितनी भी कृत्रिम चेष्टाएँ करके प्राकृतिक भेदका विनाश सदाके लिये कदापि नहीं किया जा सकता। पुरुष पुरुष ही है, स्त्री स्त्री ही, यद्यपि मानवताके अधिकारी दोनों ही हैं। परन्तु इनका स्वाभाविक अन्तर एकको दूसरेपर आश्रित रखनेवाला ही है। ऐसी दशामें सनातन विचारका त्याग अशान्तिका ही विधायक है।

यह क्रान्ति-युग है, ठीक है। सर्वत्र परिवर्तन हो रहा है, अच्छा ही है। स्त्रियाँ भी क्रान्ति करें और क्रान्तिद्वारा अशुभ भावोंका नाश करें एवं परिवर्तनवादिनी बनकर शिक्षा-प्रकाशमें अपना उत्तरदायित्व भली-भाँति समझें। यही उनका जागरण है। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे अधिकारोंकी माँगकी कुलालसा-से प्रेरित हो देवी-पदभ्रष्टा दानवी बन जायँ और पति-पुत्रके आन्तरिक प्रेमका श्राद्ध करने लग जायँ। जो पुरानी जंजीरें पतिव्रत-धर्मके बन्धनको दृढ रक्खे हुए हैं, उन्हें तोड देनेका प्रयास 'नारी-जागरण' नहीं, उसे तो 'नारी मरण' कहा जा सकता है और तब सम्भव है कि समाजमें पुरुष-ही-पुरुष रह जायँ। क्या ऐसा अवसर किसीको पसंद हो सकता है? यदि नहीं तो, नारी-जागरणका अभिप्राय नारी-धर्मका पालन होना ही ठीक है; अधिकारार्थ युद्धके लिये संसारमें पुरुषोंकी कमी नहीं, वसुन्धरावक्षके उपद्रव पहले उनके हाथों शान्त हो लें।

ऐतिहासिक तथ्य

'स्थूलदर्शी पुरुष जो अपनी ही तराजूसे सब जातियोंकी सामाजिक रीतियोंको तौलते हैं, हिंदू-जातिके साथ बनावटी सहानुभूति दिखाते हुए उनकी स्त्रियोंकी हीन दशापर रोते हैं कि वे स्वतन्त्र नहीं हैं और जेलखानेकी तरह उन्हें पर्देमें रक्खा जाता है।········किंतु राजपूत-स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता, सम्मान तथा गार्हस्थ्य सुखके विषयमें मुझे जो कुछ ज्ञान है उससे मुझे कभी यह खेद नहीं होता है कि वे जेलखानेकी तरह बन्धनमें रक्खी जाती हैं।'

—कर्नल टॉड

तुलसीदासका नारी-सौन्दर्य

(लेखक—पं० श्रीदेवीरत्नजी अवस्थी 'साहित्यरत्न')

गो० तुलसीदासजी भारतीयताके योग्यतम प्रतिनिधियोंमें अन्यतम हैं। बड़े-बड़े विदेशी विद्वान् भी उनकी अलौकिक विद्या, बुद्धि तथा वर्चस्विनी प्रतिभाका आदर-सत्कार करते नहीं थकते। संसारका सबसे अधिक प्रगतिशील देश रूस तुलसीदासजी रचनाओंके अध्ययनका केन्द्र बन रहा है। हमारे देशके स्वराज्यकी मङ्गल-वेला हमें तुलसीदास-जैसे महामतिमान् विचारक और लोक-नेताकी प्रतिभा और विद्वत्ता समझानेके लिये उतरी है। स्वराज्यके प्रयत्नोंके निमित्त नारी-जातिकी सजगता आवश्यक थी। आवेशके इस युगमें अपनी इस आवश्यकताकी पूर्तिकी धुनमें पड़कर अपने उथले अध्ययनके बलपर हमने तुलसीदास-जैसे महातत्त्वज्ञको नारी-जीवनसे घृणा करनेवाला कह डाला! हमने उन्हें संकीर्ण, क्षुद्र और मूढ़ कहनेमें भी संकोच नहीं किया। जो भी हो, पर आज यह आवश्यक हो गया है कि हम अपने अध्ययनको और अधिक विस्तृत तथा गम्भीर बनावें। किसी विचारक और तत्त्वज्ञ महाकविके द्वारा प्रस्तुत विचारों और भावनाओंके अध्ययनके पहले यह जान लेना आवश्यक है कि इन विचारों और भावनाओंकी धारा किन पर्वतों और किन वन्य खण्डोंको लाँघती हुई बह रही है। हजारों मीलोंतक सम-भूमिमें विहार करनेवाली पुण्यसलिला भागीरथी हिमालयकी कन्दराओंमें कभी टेढ़ी होकर दौड़ने लगती है, कभी सँकरी होकर दुर्दर्ष बन जाती है और कभी-कभी क्रुद्ध होकर बड़े-बड़े शिलाखण्डोंके वक्षःस्थल चीर डालती है। महिमामयी जाह्नवीके ये विभिन्न रूप हमारे कुतूहलका कारण बन जाते हैं। कभी-कभी इनसे हमें डर भी लगने लगता है। पर गङ्गाका वास्तविक स्वरूप देखनेके लिये तो दूसरी ही आँखें चाहिये। गङ्गाकी ही आर्द्रताके प्रसादसे हमारी वसुन्धरा स्वर्णभूमि कहलाती है। हमारे घरोंको अन्नसे भरनेमें तथा हमारे पशुओंको सबल और स्वस्थ बनाकर हमें प्रसन्न रखनेमें गङ्गा माताका कितना हाथ है—उनकी कितनी कृपा है; साधारण दृष्टिसे हम यह नहीं देख पाते। इस संसारमें हमें अपने ही वरदानोंके बलपर यह अलभ्य दृष्टि प्राप्त करनी है। आइये, हम स्वतः अपने लिये अपने वरदानका निर्माण करें और देखें कि नारी-निन्दाके लिये बहुत अधिक बदनाम तुलसीदास-जैसे हमारे लोकनेताकी वास्तविक धारणा इस सम्बन्धमें कैसी थी।

जिस प्रकार गङ्गाकी धाराको कभी टेढ़ी होकर बहना पड़ता है, कभी सँकड़ी होकर, कभी घनघोर स्वरसे गरजना पड़ता है, कभी भयङ्कर बनकर टकराना। ठीक उसी तरह लोक-माङ्गल्यकी कामनासे कविता लिखनेवाले* तुलसीदासको अनेक रूप धारण करने पड़े हैं। इस प्रकारकी अनेकरूपता—विशेषकर एक महाकविकी अनेकरूपता अपने समाजके लिये एक उत्तम और उत्कृष्ट अध्ययन-सामग्री प्रस्तुत करती है। हमपर यह उत्तरदायित्व है कि हम इस अध्ययन-सामग्रीसे समुचित लाभ उठाकर अपने देशकी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त करें। तुलसीदासके विचारों तथा आदर्शोंके अध्ययनमें यह कभी न भूलना चाहिये कि वे तत्त्वदर्शी विद्वान् होनेके साथ-साथ अपूर्व तथा अश्रुतपूर्व प्रतिभाके महाकवि भी थे। इसलिये उनकी प्रस्तुत सामग्रीकी आलोचना करना और उसका हृदयङ्गम करना सहज काम नहीं है। कविकी रचनाके अध्ययन करनेकी लालसा जाग्रत् करनेके पहले अपने अंदर हमें कविकी दृष्टि जाग्रत् करनी पड़ेगी; और तभी वेदोंकी शिक्षाके स्वर-में-स्वर मिलाकर हमारी प्रज्ञा गा उठेगी—

'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'

नारी-निन्दाके लिये बहुत अधिक बदनाम होनेवाले तुलसीदासने जिस युगमें जन्म लिया था, वह अभिशापोंका युग था। उनके काव्य-कालके लगभग छः सौ बरस पहले भारतके तत्कालीन नेताओंने अपनी शक्ति, अपना साहस और अपना संगठन मिटा दिया था। भारतकी महान् सभ्यता और संस्कृति विदेशोंसे विजेताओंके रूपमें आकर लदे हुए शासकोंकी सेनाओंद्वारा कुचल दी गयी थी। वर्णाश्रम मिट गया था। उसके अध्यक्ष मूर्ख हो गये थे—लालची हो गये थे और व्यभिचारमें संलग्न थे†। उसके उपाध्यक्ष क्षत्रिय शासकका वास्तविक पद खोकर विदेशी सत्ताके अनुचर बन बैठे थे। अपने इस पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये वे करते क्या थे? वे अधर्मके मार्गमें चलकर प्रजाको सताते थे।‡ वर्णाश्रमके अर्थ-सचिव वैश्य असत्य और अनाचारकी प्रतिमूर्ति थे।§

---

* कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

† बिप्र निरच्छर लोलुप कामी।

‡ नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं॥

§ 'झूठइ लेना झूठइ देना', 'लोभइ ओढ़न लोभइ डासन।'

जब समाजका नेतृत्व ऐसे अयोग्य हाथोंमें हो तो उसमें शक्ति और स्वाभिमानके बदले बीभत्सता तो आ ही जायगी। उस युगके वर्णाश्रमका चतुर्थ सदस्य शूद्र इस बीभत्सताका प्रतीक था। वह अपने नेताओंको जितनी करी फटकार देता है, वह ध्यान देने योग्य है। ठीक आज-ही-कलकी भाँति उस समयका शूद्र अपने अग्रजोंकी अप्रतिष्ठा करता हुआ कहता था कि हम तुमसे छोटे होकर क्यों रहें।*

चारों ओर अव्यवस्था थी, अनाचार था और पराधीनता थी। अव्यवस्था और अनाचारके इस युगमें—गुलामी और पराधीनताकी इस पतनावस्थामें देशमें क्षुद्रताका बोलबाला था। इस क्षुद्रताके कारण लोग अर्थोपासनामें डूब रहे थे। ब्राह्मण विद्याके व्यापारी बन गये थे—धर्मका दोहन कर रहे थे।† इस पैसेके लिये जब ब्राह्मण वेदोंके व्यापारी और धर्मके दोहक बन गये तो उनके दूसरे घरवालोंका अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी कुगतिका कहना ही क्या?

क्षत्रिय-शासन-व्यवस्थाकी क्षीणताके कारण पराधीनता और परमुखापेक्षी भावनाएँ जनताको खाये जा रही थीं। शासनाधिकारसे वस्तुतः वञ्चित होकर देशी नरेशोंका दल मुगल-दरबारका माण्डलिक बन गया था। स्वयं सम्राट्की सरकार, जिसका वर्णाश्रमसे कोई सम्बन्ध नहीं था, इन देशी नरेशोंकी चाटुकारिताका लाभ उठाकर जनताको पीस रही थी। एक ओर महाराणा प्रतापसिंह इस पराधीनता और परमुखापेक्षाका विरोध कर रहे थे, दूसरी ओर उनके सगे भाई शक्तिसिंह मुगल-सम्राट्की सेवामें विराजमान थे! सूर्य और चन्द्रवंशोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले बड़े-बड़े राजघरानोंके लोग सम्राट्के दरबारकी मनसबदारीके लिये एक-दूसरेकी प्रतिद्वन्द्विता करनेमें व्यस्त थे। तुलसीदास यह सब देखकर बड़े दुखी हो रहे थे। इन्होंने बड़ी व्यथाके साथ इस भ्रष्टताकी चर्चा की है।‡

जब ब्राह्मण और क्षत्रिय इस प्रकार अर्थलोलुपताके शिकार हो रहे थे, तब साधु-संन्यासियोंका कर्तव्य था कि वे नेतृत्व करते और देशको डूबनेसे बचाते; पर वह भी नहीं हुआ। बड़े-बड़े मठों और मन्दिरोंका दुरुपयोग होने लगा। धर्मके नाम इन मठों और मन्दिरोंकी सम्पत्तिका ये साधु-

* जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि।

† बेचहिं बेद धर्म दुहि लेहीं।

‡ द्विज श्रुति बचक भूप प्रजासन। काहु न मान निगम अनुसासन॥
भूमि चोर भूप भए। (कवितावली)

संन्यासी खुलकर उपभोग करने लगे। जो उद्धारक थे, वे जनताके त्रास और विडम्बनाका कारण बन बैठे।*

समाजके अग्रगण्य वर्गकी इस दुर्दशाका दोष जनता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। जनता अपनी अगली पीढ़ियोंतकमें लक्ष्मीकी अमिट लालसा भरनेका प्रयत्न करने लगी।†

यह था तुलसीदासका वह अकबरी युग, जिसमें सम्राट्के मनोरञ्जनके लिये स्त्रियोंका मीनाबाजार लगता था। अंग्रेज-इतिहासकारोंने इसे भारतका स्वर्णयुग कह डाला है। इतिहासके विद्वानोंको चाहिये कि वे इस कथित स्वर्णयुगको तुलसीदासकी आँखोंसे देखें और विदेशी लोगोंके द्वारा उत्पन्न किये गये इस मिथ्या भ्रमको दूर कर दें। तुलसीदासकी यह साक्षी हजारों ताम्रपत्रों और शिलालेखोंकी साक्षियोंसे अधिक सच्ची और खरी है। तुलसीदासकी इस सचाईको देखने और समझनेका युग अब समीप आ गया है।

अर्थोपासनाके इस युगमें लोगोंने भोग-विलासका इतना घृणित जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया था, जिसकी कोई सीमा नहीं थी। भोग-विलासके कारण लोगोंमें स्त्रैण-भावनाएँ घर कर गयी थीं। समाजके इस व्यभिचारसे—देशके इस पापसे तुलसीदासकी आत्मा रोती थी; और इसी रुदनमें—इसी चीत्कारमें उन्होंने नारीकी निन्दा की है। तुलसीदासको नारी-जगत्का उद्दण्ड विरोधी समझनेके पहले आपको ऊपरकी परिस्थितियाँ देख लेनी चाहिये। क्या आप चाहते हैं कि तुलसीदास-जैसा संन्यासी मूर्ख, लोभी और कामुक समाजको नारीके रूप-सौन्दर्यका पाठ पढ़ाकर उसकी व्यभिचार-वृत्तिको उभारता हुआ भारतीय महिलाओंको नरकमें ढकेलनेके पापमें हिस्सा लेने लगे? जिस समाजमें भले लोग अपनी विवाहिता सहधर्मिणीको निकाल कर, निकृष्ट कोटिकी बदेनू स्त्रियोंको घरमें बैठाकर भी बड़े बने रह सकते थे,‡ उस समाजमें तुलसीदास जैसे लोकनेताने नारी-निन्दा करके भोग-विलासकी बढ़ती हुई प्रवृत्तिको, उद्दण्ड और कामुक वासनाओंको शमन करनेका केवल एक क्षुद्र प्रयत्न भर किया था। इस प्रयत्नके लिये तुलसीदास मनुष्यमात्रके श्रद्धाके पात्र हैं, निन्दाके कदापि नहीं।

तुलसीदासको नारी-निन्दक बतानेवालोंको अत्यन्त

* तपसी धनवंत दरिद्र गृही।

† मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥

‡ कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥

स्थान-विशेषके दृष्टिसे उनकी आलोचना करनी चाहिये। बेटी, बहिन और माताकी गौरवमयी निधियाँ सदा-सर्वदा संसारकी कल्याण-कामनामें तत्पर रहती हैं। इन पंक्तियोंका लेखक सभी विद्वान् पाठकों और पाठिकाओंसे तुलसीदासकी एक भी ऐसी पंक्ति बतानेका आग्रह करता है, जिसके द्वारा उन्होंने नारीकी इन गौरवमयी निधियोंको बुरी बताया हो। अपने और नारीके तुलसीदासने नारीकी इन श्रेष्ठतम सम्पत्तियोंको प्रोत्साहित किया है, उन्हें आगे बढ़ाया है और उनका इतना उदात्त स्वरूप देशके सामने उपस्थित किया है जिसकी अन्यत्र तो प्राप्ति ही दुर्लभ है। अपने ग्रन्थोंमें जहाँ भी उन्होंने नारी-की निन्दा की है, वहाँ नारी वह मशीन मात्र है जो पुरुषोंकी कामुक प्रवृत्तियोंकी परितुष्टिके लिये साज-सँवारकर खड़ी कर दी जाती है। नारीकी मौलिक सम्पत्तिका इस निन्दासे कोई सम्बन्ध नहीं है।

तुलसीदासकी नारी-निन्दा तीन भागोंमें विभाजित की जा सकती है। इस नारी निन्दाके कुछ स्थल ऐसे हैं, जिनमें किसी स्त्रीके द्वारा ही नारी नीची बतायी गयी है। कुछ स्थल ऐसे हैं, जिनमें उन पुरुषोंद्वारा नारीकी निन्दा की गयी है, जो ग्रन्थ-कारकी दृष्टिमें आदर्श चरित्रवाले नहीं थे। सबसे गम्भीर और विचारणीय स्थल वे हैं, जिनमें ग्रन्थकारके आदर्श चरित्र-वाले आप्तपुरुष अथवा स्वयं राम नारीकी निन्दा करते हैं। स्त्रियोंद्वारा स्त्रियोंकी जहाँ निन्दा है, उन स्थलोंमें यह देखना चाहिये कि यह निन्दा किस प्रसंगमें की जा रही है। कैकेयी मन्थराने परिहासपूर्वक कहती है—

> काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
> तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसकानि॥

आजके तार्किक सुधारक तुलसीदासके 'तिय बिसेषि'पर क्षोभ प्रकट कर सकते हैं। समताका दावा करनेवाली आजकी विदुषी महिलाएँ यदि इस नारीनिन्दक तुलसीदासको अपने बीच पा जायँ तो कच्चा चबा लें। पर अभद्रता और अविचारसे संसारका काम सुधरनेके बदले बिगड़ता है। ठंडे मस्तिष्कसे सोचिये और पूर्वापर प्रसङ्ग देखकर समझिये; तब बात समझमें आयगी। मन्थरा कुबड़ी थी ही। विकलाङ्ग मनुष्योंका समय-समयपर क्या आज भी मजाक नहीं उड़ाया जाता? मजाक उड़ाती हुई कैकेयी यही तो कहती है कि 'विकलाङ्ग लोग यों ही कुटिल होते हैं, तिसपर तू स्त्री है और फिर चेरी है। यदि तेरे निकट भी कुटिल हों तो उसमें तेरा क्या दोष!' तुलसीदास समाजमें प्रचलित हास-परिहासकी धारणाका यथास्थल प्रयोग करके काव्यको सजीव बनावें तो उसमें कौन-सा अपराध है? परंतु हास-परिहासमें भी यदि अपने अधीन व्यक्तिको बुरा कहा जायगा तो उसके हृदयको चोट लगेगी, यह तुलसीदास-का भावुक हृदय अनुभव करता था। उनकी कैकेयी मन्थरा-को इतना कह तो देती है, पर कहकर पछताती है। अपना पश्चात्ताप वह तुरंत इन शब्दोंमें प्रकट करती है—

> प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही॥
> राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली॥

सम्पन्न लोग गरीबोंका अपमान किया ही करते हैं, यही तुलसीदास दिखाते हैं। पर तुलसीदासकी दृष्टिमें सम्पन्न लोगों-का यह आचरण स्तुत्य नहीं है; इसीलिये उनकी कैकेयी तुरंत अपना रुख बदलकर कोमल ही नहीं हो जाती, बल्कि अपने शब्दोंको एक प्रकारसे वापस ले लेती है।

किरातिनी बाला शबरी अपनी क्षुद्रता बताती हुई निवेदन करती है—

> केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़ मति भारी॥
> अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद गँवारी॥

नम्रता जताना सज्जनताका चिह्न है। यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि शबरी जिसके सामने नम्रता प्रकट कर रही है, वह साधारण व्यक्ति नहीं है, संसारका पालक और रक्षक है। पर शबरीके इस आदर्शका अनुकरण करके सांसारिक लोग विनम्रताका दुरुपयोग न करने लग जायँ, इसकी चिन्ता तुलसी-दासको बहुत थी। तुलसीदासके राम शील और सौजन्यके सागर हैं। वे अपनी इस महान् भक्तबालासे यह कैसे कहें कि 'मूर्ख चुप रह, मेरे सामने नारीकी इतनी निन्दा मत कर!' बड़ी भावपूर्ण भाषा-में बड़ी शिष्टताके साथ वे शबरीसे कहते हैं—'शुभे! जाति-पाँति, कुल और धर्म-भेदकी भावनासे मैं किसीको अच्छा-बुरा नहीं समझता। स्त्री होनेसे कोई न नीचा हो जाता है, न पुरुष होने-से ऊँचा। देवि! तुम्हें सम्पूर्ण भक्ति प्राप्त है, अतएव तुम्हारी समता ऋषि-मुनि भी कठिनतासे कर सकते हैं।' पाठक! मानस-में शबरी-मिलनका प्रसंग देखकर निर्णय करें कि इन पंक्तियों-के लेखकने रामके उपर्युक्त वाक्योंको बढ़ा-चढ़ाकर तो नहीं लिखा। इस प्रकार प्रत्येक स्थलमें जहाँ भी नारीद्वारा नारी-की निन्दा है, अध्ययन और मननकी सामग्री भरी पड़ी है।

अब हम उन स्थलोंकी ओर झुकते हैं, जिनमें तुलसीदास-ने ऐसे लोगोंके द्वारा नारी-निन्दा करायी है जो उनके आदर्श चरित्र नहीं थे। प्रायः इन्हीं प्रसङ्गोंमें लिखी गयी चौपाइयों-को लेकर तुलसीदासको बहुत अधिक बदनाम किया गया है।

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

यही वह चौपाई है, जिसे प्रमाण मानकर गाँवका किसान अपनी पत्नीकी पीठ प्रायः पूजा करता है। यही वह पंक्ति है, जिसके स्मरणमात्रसे विश्वविद्यालयोंकी शिक्षा समाप्त करके निकलनेवाले स्नातक 'डैम' 'फूलिश' कहकर जल-भुन जाते हैं। आजकी विदुषी बालाएँ इसी पंक्तिको लेकर मध्यकालीन भारतके अप्रतिम नेता तुलसीदासको घोर प्रतिक्रियावादी कहकर अपनी विद्वत्ताकी धाक जमाने लगती हैं। आइये, देखें कि ऐसी खटकनेवाली बात आखिर क्यों लिखी गयी है।

लगातार तीन दिनोंतक समुद्रकी आराधना करते-करते राम हार गये, पर समुद्रने उनकी सेनाके लिये मार्ग नहीं प्रशस्त किया। राम, तुलसीदासके राम साक्षात् ब्रह्म हैं। आपको यदि यह न भावे तो आप उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम तो मान ही लेंगे। मर्यादापुरुषोत्तमका मार्ग ही प्रगति-मार्ग कहा जाता है। समुद्रका मार्ग प्रशस्त न करना सूचित करता है कि वह प्रगति-मार्गके विरोधमें डटा हुआ था। रामने इस कार्यको जनद्रोह समझा। वे क्रुद्ध हो उठे। वे कहते हैं—'तीन दिन हो गये। यह जडताका मूर्तिमन्त अवतार समुद्र मेरी प्रार्थनातक नहीं सुनता। इस तरहके जड प्रवृत्ति-वाले किसीसे बिना भयके प्रेम नहीं किया करते। लक्ष्मण! उठो। मेरा धनुष-बाण ले तो आओ, मैं अग्निबाणसे अभी इसे सूखा किये देता हूँ। शठोंसे की गयी विनय, कुटिल हृदयके व्यक्तियोंसे किया गया प्रेम, संकीर्ण स्वभाववालेके साथ बरती गयी विशिष्टताकी नीति, ममतामें सने हुए व्यक्ति-को सुनाया हुआ ज्ञानोपदेश, लोभी मनुष्यको सिखाया हुआ वैराग्य तथा क्रोधी व्यक्तिको दिया गया शान्तिका उपदेश ऊसरमें फलोंके बीज बोनेकी तरह व्यर्थ है। मर्यादापुरुषोत्तम रामका क्रोध भी उचित ही होता है। उनकी प्रत्येक बातका अलग-अलग महत्त्व है। रामके प्रगति-पथमें बाधक बनने-वाला प्रतिक्रियावादी समुद्र केवल देखनेको महान् बना हुआ था। मर्यादापुरुषोत्तमकी दृष्टिमें प्रगतिका विरोध करनेवाला और देवताओंकी कोटिमें अपना नाम लिखाने-वाला यह समुद्र जड था; इसलिये जबतक इसके हृदयमें भय न छा जाय—आतंक न जम जाय, तबतक वह किसीसे प्रेम नहीं करता। इसके लिये विनय व्यर्थ है; पर यदि यह कहीं विनयी बननेका ढोंग करे तो समझना चाहिये कि उसमें भी इसकी शठता छिपी पड़ी है। इसके लिये प्रेमका कोई मूल्य नहीं है; पर यह यदि कहीं प्रेम दिखलाता दिखायी दे तो समझना चाहिये कि इस प्रेम-प्रदर्शनमें कुटिलता भरी हुई है। यह सहज कृपण है—स्वभावतः अनुदार है; अतएव नीति-सौन्दर्यका, उदारताका इसके लिये कोई महत्त्व ही नहीं है; पर यदि यह सहज कृपण अर्थात् स्वभावतः अनुदार व्यक्ति उदारता प्रदर्शित करनेका ढोंग करे तो समझना चाहिये कि उसके इस ढोंगमें किसी बड़ी असुन्दर अनीतिका—जबर्दस्त संकीर्णताका निवास है। यह ममता रत है, अतएव इसके लिये संसारभरका ज्ञानोपदेश केवल एक दिखावा है—ढोंग है; पर यदि यह किसी कारण स्वयं ज्ञानी बननेकी माया फैलावे तो जान लेना चाहिये कि यह अपनी मिथ्या ममतामें औरोंको फाँसनेके लिये उपदेशक बन बैठा है। यह अति लोभी है, इसलिये विरागियोंके विरागमें भी यह छल-छद्म देखता है; किंतु यदि यह स्वयं तपस्वीका वेष बनाकर वैराग्य-का उपदेश करने लगे तो उसमें भी उसके लोभकी असंयमित प्रवृत्ति काम कर रही होगी। शान्ति इसके लिये व्यर्थ है, क्योंकि प्रतिक्रियावादी होनेके कारण क्रोधके विकारसे यह डूबा हुआ है; पर यदि कभी यह अक्रोध धारण करनेका ढोंग करता दीख पड़े तो समझना चाहिये कि अपनी प्रति-क्रियावादी नीतिके प्रसारके लिये ही यह ऐसा कर रहा है। परमात्माकी चर्चा इसके लिये निरर्थक है, क्योंकि कामुक प्रवृत्तियोंका उपर्युक्त दुर्गुणोंके साथ निवास करना अवश्यम्भावी है।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके द्वारा समुद्रके प्रति कही गयी चौपाइयोंमें उपर्युक्त व्यङ्ग्य भरा पड़ा है। इस तरहकी आलोचना करते हुए रामने अग्निबाण छोड़कर समुद्रमें आग लगा दी। समुद्रकी सम्पदा जलने लगी। वह शठ ब्राह्मणका वेष धारण करके रामकी शरणमें आता है और प्रार्थना करता हुआ कहता है कि 'मर्यादापुरुषोत्तम! आपने मुझे सजा देकर बड़ा सुन्दर किया। देव! ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री सदैव ताड़नामें ही ठीक रहते हैं। राम इसकी विनय सुन-कर, जो शठताका ही प्रच्छन्नरूप है, मुसकरा देते हैं और कहते हैं कि 'भाई! सेना उतारनेका उपाय करो।'

ऊपरके उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि समुद्रका चरित्र आदर्श चरित्र नहीं था, अतएव उसकी कही हुई किसी बातमें तुलसी-दासकी सम्मति छिपी नहीं रह सकती। पर आदर्शच्युत समुद्रके निजी विचार थे। समुद्रकी तरहके अनेकानेक आदर्शच्युत लोग तुलसीदासके समयमें वर्तमान थे, जो नारीके सम्बन्धमें इसी प्रकारकी अनार्य धारणा रखते थे। इन्हीं

आदर्शच्युत लोगोंकी कहनी बातोंको इस प्रसंगमें तुलसीदासने बड़ी सतर्कतापूर्वक चित्रित किया है। यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि शबरीने जब नारीको अधम कहा, तब तो रामने उसको सुन्दरतापूर्वक समझाया कि मैं ऊँचाई-निचाई-को किसी जाति-भेद, धर्म-भेद या लिंग-भेदसे नहीं आँकता। जो भक्त है, वह चाहे ऊँची जातिका हो चाहे नीची जातिका, चाहे इस धर्मका हो चाहे उस धर्मका, चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष, आदरणीय है और परम गतिका अधिकारी है।' पर समुद्र जब कहता है कि 'महाराज! ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्रियोंको बिना डंडेके नहीं सीधा किया जा सकता,' तब राम केवल मुसकरा देते हैं और कहते हैं कि 'भाई! सेना उतारनेका उपाय करो।' मर्यादापुरुषोत्तमके क्रोधका क्या कोई अर्थ नहीं होना चाहिये? क्या उन्होंने साधारण मनुष्य-की तरह नाराज होकर यों ही समुद्रमें अग्निबाण चला दिया था? समुद्रको समझाना-बुझाना और वाद-विवाद करना अप्रासंगिक था। उनका तो उस समय केवल एक लक्ष्य था कि किस प्रकार सेना समुद्रके उस पार उतरकर पहुँच जाय। शबरी आदर्श नारी थी, इसलिये मर्यादापुरुषोत्तम राम ही नहीं, साक्षात् परब्रह्म उसकी बातोंका समुचित उत्तर देकर उसे समझा देते हैं; पर समुद्र आदर्शच्युत है, प्रतिक्रियावादी है, इसलिये मर्यादापुरुषोत्तम उसकी चिन्ता केवल दण्डद्वारा करते हैं। आत्मोपदेशका वह अधिकारी नहीं है। यह क्या उस प्रतिक्रियावादीके लिये कम सौभाग्यकी बात थी कि राम उसके बनावटी रूपको देखकर क्रुद्ध नहीं हुए और मुसकरा उठे। अब पाठकोंके सामने हम इस समस्त प्रसंगको तुलसी-दासके शब्दोंमें उद्धृत करके उनका ध्यान एक विचित्र बात-की ओर आकर्षित करते हैं—

> बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
> बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥
>
> लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
> सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
> ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
> क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बए फल जथा॥
> अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
> संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥
> मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
> कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना॥
>
> काटेहिं पइ कदरी फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
> बिनय न मान खगेस सुनु, डाटेहिं पइ नव नीच॥
>
> सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
> गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥
> तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥
> प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥
> प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥
> ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताडना के अधिकारी॥
> प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
> प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥
>
> सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
> जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥

इन पंक्तियोंके लेखककी प्रार्थना है कि तुलसीदासको पहले सिरेका नारी-निन्दक कहनेके पहले हमारे समाजके नव-निर्माता ऊपर दिये हुए सन्दर्भका अध्ययन करें। सहानुभूति-पूर्ण गम्भीर अध्ययनके बाद उन्हें पता चलेगा कि तुलसीदास-का हृदय स्त्रियोंके लिये कितना सहानुभूतिपूर्ण था। समुद्र शठ है, जड है और भयभीत है। जिस प्रकारके दोष अपनेमें होते हैं, उसी प्रकारके दोष मनुष्य औरोंमें भी देखना चाहता है। समुद्र कहता है—'भगवन्! मैं ही अकेला ऐसा नहीं हूँ। अग्नि, आकाश, वायु और पृथ्वीमें भी तो मेरी ही तरहकी जडता विद्यमान है। इसके सिवा मेरी यह जडता—मेरी यह प्रतिक्रियावादिता कुछ मेरी अपनी चीज तो है नहीं। यह तो आपकी उत्पन्न की हुई है। आप ही इसके जिम्मेदार हैं।' देखिये, कितने कौशलपूर्वक समुद्र अपना दोष औरोंपर ही नहीं, रामपर भी थोप रहा है। पर राम सब सुन लेते हैं, बोलते कुछ नहीं, मुसकरा भर देते हैं। इस तरह रामने केवल नारी-निन्दा ही सुनकर मौन ग्रहण कर लिया हो, यह बात नहीं है। उन्होंने अपनी निन्दा सुनी, संसारके सौन्दर्यके आधार अग्नि-देवकी निन्दा सुनी और आकाश तथा वायुकी निन्दाके साथ-साथ उस धरती माताकी निन्दा सुनी, जिसकी धूलमें लोटकर उन्होंने आर्यत्वकी मर्यादा बढ़ायी थी। इसलिये तुलसीदासपर लगाये गये इस आरोपमें कोई तथ्य नहीं रह जाता कि उनके राम कान ढोरकर नारीकी निन्दा सुनते हैं और बोलते कुछ नहीं। यदि राम उस समय अधिक बोलते तो रामके उस क्रोधका सौन्दर्य समाप्त हो जाता, जो कभी व्यर्थके लिये नहीं होता। इसके बाद एक बात और देखिये। 'काटेहिं पइ कदरी फरइ' वाले दोहेको पूर्वापर प्रसंगोंके साथ आप बार-बार पढ़िये। यह दोहा तुलसीदासकी नारीविषयक सहानुभूतिका सुन्दर प्रतिबिम्ब है। आखिर रामने क्या समुद्रको कम बुरा-भला

कहा था; पर जड और प्रतिक्रियावादी समुद्र जब दण्डकी प्रताड़नासे प्रकट हुआ तो विनय करने लगा और अपने-जैसे दोष वह अन्य अनेक पदार्थों और जीवोंमें दिखलाने लगा। इसमें उसने रामतकको नहीं छोड़ा; फिर शूद्र, पशु और स्त्रियोंकी बात ही क्या ? यह अनर्गल प्रलाप तुलसीदासको, मालूम होता है, बहुत खल गया और इसीके शमनार्थ उन्होंने 'काटेहिं पइ कदरी फरइ, डाटेहिं पइ नव नीच' जैसी बात काकभुशुण्डिके द्वारा कहला दी। पाठक देखें कि काकभुशुण्डि और गरुड़ इस प्रसंगमें अचानक कूद पड़ते हैं। इसलिये यह बहुत स्पष्ट है कि यह दोहा उन्होंने समुद्रकी बातोंके अनौचित्य-प्रदर्शनके लिये बादमें जोड़ दिया है। समुद्रके द्वारा की जानेवाली इस नारी-निन्दाके कारण ही तुलसीदास उससे चिढ़ गये और जो कड़ी बात उसके लिये रामने कही थी, वही बात काकभुशुण्डिके द्वारा प्रसंग न होनेपर भी उन्होंने कुछ ही फेर-फारके साथ दुबारा कहलवा दी। तुलसीदासकी सहृदयताका यह एक बड़ा अच्छा नमूना हम उपस्थित कर रहे हैं। विद्वान् पाठक और पाठिकाएँ इसपर अपने-अपने विचार प्रकट करें, यह प्रार्थना है।

(शेष आगे)

मानसमें नारी

(लेखक—पं० श्रीरामकिङ्करजी उपाध्याय)

श्रीरामचरितमानस विश्ववाङ्मयकी अनुपम विभूति है। भारतीय हिंदू-साहित्यमें तो यह अपनी शैलीका बेजोड़ ग्रन्थ है। इसमें हिंदू-संस्कृतिका जैसा साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है, वैसा अन्यत्र नहीं देखा जाता। और विषयोंकी बात जाने दें, केवल नारीके ही विविध स्वरूपों और अङ्गोंकी आलोचना की जाय तो बहुत विस्तार हो सकता है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने नारीके विविध स्वभावोंका निर्देश करते हुए एक ओर 'पुरुष मनोहर निरखहिं नारी' लिखते हैं तो दूसरी ओर 'सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं' भी। इसीसे यत्र-तत्र नारीकी निन्दाका प्रसङ्ग आनेपर लोग यह तो ध्यान देते नहीं कि किस नारीके सम्बन्धमें कौन-सी बात कही गयी है, गोस्वामीजीको नारीका कट्टर शत्रु बतलाने लगते हैं। मानसमें उन्होंने नारीका सार्वभौम एवं पूर्ण मनोवैज्ञानिक रीतिसे विभिन्न नरोंकी भाँति ही भिन्न-भिन्न रूपोंमें चित्रण किया है।

एक ओर उसमें जहाँ कौसल्या, सुमित्रा, सीता, अनसूया, शबरी-जैसी महान् स्त्रियोंका चित्रण है, वहीं दूसरी ओर मन्थरा, शूर्पणखा, लंकिनी-जैसी दुष्टा स्त्रियोंका भी। जो व्यक्ति स्त्री-समाजकी केवल प्रशंसा करता है, वह स्त्री-समाजका है कट्टर शत्रु। उससे लाभकी अपेक्षा हानि अधिक है। महात्मा तो निष्पक्ष दृष्टिसे प्रत्येक गुण-दोषका विवेचन करते हैं, जिससे गुण-ग्रहण और अवगुणका परित्याग किया जा सके।

तेहि ते कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥

सत्य कड़वा हो सकता है, पर उसके बिना वास्तविकताको प्राप्त भी तो नहीं कर सकते; अस्तु, बिना उनकी प्रत्येक बातको समझे उन्हें स्त्री-समाजका शत्रु बताना अशोभन है। वे स्त्रीके मातृ-रूप, कन्यारूप, पत्नीरूपके विरोधी नहीं, वे तो प्रमदा स्वरूपके विरोधी हैं। आइये, आज हम मानसावगाहन करके स्त्रीके विभिन्न रूप और कर्तव्योंका दिग्दर्शन करें और देखें कि उन्होंने कितना सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

स्त्रीका प्रारम्भिक विकास होता है कन्यारूपमें। इस समय उसमें भोलापन होता है और वह माता-पिताके निकट रहकर उनका आज्ञापालन करते हुए, आगे पत्नीरूपमें आनेवाले महान् कर्तव्य-भारोंको वहन करने योग्य बनती है। वह अपने आगे आनेवाले सर्वस्व-समर्पणकी भावनाको दृढ बनानेके लिये प्रारम्भमें ही अपने भविष्य जीवनको पिताकी विश्वस्तता-पर छोड देती है, यह क्या नारीका साधारण त्याग है ? श्रीकिशोरीजीमें कन्यारूपका जो लघु चित्रण किया गया है, लघु होते हुए भी वह अद्वितीय है। वे परम सुशीला हैं, नित्य देव-पूजन तथा सात्त्विक कार्य करती हैं; फिर भी प्रत्येक कार्यके पूर्व उसमें माता-पिताकी स्वीकृति आवश्यक समझती हैं। इस सम्बन्धमें 'बालकाण्ड' में एक चौपाई है—

तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई।
संग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥

इनमें रेखाङ्कित वाक्य एवं शब्दोंमें कन्याके स्वभाव वर्तमान निहित हैं।

आगे चलकर हम देखते हैं, उनके मनमें श्रीरामचन्द्रका नाम सुनकर पूर्वानुरागका उदय हो जाता है और सखियोंके साथ वे उनको ढूँढती-फिरती हैं; फिर भी कवि हमें यहाँ बड़ी सावधानीसे सचेत करता है कि इनमें कोई दूसरा ही कारण

है; नहीं तो, कन्याके भविष्यका निर्माता पिता ही है। वे स्वयं न भी जानें, पर 'सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत'।

अतएव दर्शनोंकी लालसा और इसकी अन्तःप्रेरणाका कारण था ऋषिके वचनोंपर उनका दृढ़ विश्वास। वे ऋषि-भक्ता हैं, देवर्षि नारदपर उनका पूर्ण विश्वास है; इसीलिये वे ऐसा करनेका साहस करती हैं। और अन्तमें उनको प्रभुका दर्शन भी हुआ, और वे उस 'अनुपम कुमार' पर मुग्ध भी हो गयीं—बिल्कुल बेबस। फिर भी कन्याकी यह बेबसी आगे चलकर उसे महान् बना देती है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जो स्त्री अपने जन्मदाता पिताके ऊपर विश्वास नहीं कर सकती, वह विवाहित होनेपर एक पुरुषकी प्रत्येक आशाका पालन कैसे करेगी। इसीलिये उसकी इस कर्तव्य-पालकताका निर्माण बाल्यावस्थाकी बेबसीमें ही निहित है। वह स्वयं प्रेम-प्रस्ताव या स्वयंवर नहीं कर सकती। यदि वासनाके प्रवाहको रोक न सके तो वह मानव क्या होगा, वह तो इच्छाओंके हाथका खिलौना हो जायगा। इसीलिये अन्तमें वे मनसे उनके चरणोंमें स्नेह रखते हुए भी लौट पड़ती हैं—

फिरी अपनपउ पितु बस जाने॥

इसमें एक पीड़ा है, पर बिना मानसिक इच्छाओंका दमन किये कोई महान् बन भी कैसे सकता है। इसलिये यद्यपि उनके मनमें यह विश्वास है—

जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

—फिर भी वे प्रधानता पिताको ही देती हैं। यदि उन्होंने ऐसा न किया होता, तो हम उन्हें प्रेमीकी उपाधिसे भले ही विभूषित करते पर वे कन्याके कर्तव्यसे च्युत हो जातीं। इस त्यागका फल भी उन्हें प्रत्यक्ष मिला; क्योंकि यह हो नहीं सकता कि कोई अपने गुरुजनोंके लिये त्याग करे और उसको अभीप्सित वस्तु उसे प्राप्त न हो। अतः यहाँपर राघवेन्द्र राम ही उन्हें पतिरूपमें प्राप्त हुए। यही है कन्याका सर्वश्रेष्ठ चरित्र-चित्रण। इतने बलिदानके पश्चात् ही उसपर पत्नीत्वका गुरु भार डाला जा सकता है और उससे यह आशा की जा सकती है कि वह अपने पतिके लिये सर्वत्याग कर सकेगी।

फिर हमारे सामने आता है—नारीका पत्नीरूप, जब वह अपनी समस्त मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियोंसे पतिकी सेवामें संलग्न हो जाती है, उसके जीवनका एक ही मत हो जाता है—'पतिसेवा'। और उसे यह एकाग्रता, जो योगियोंको बड़ी साधनाके पश्चात् प्राप्त होती है, सहज ही—प्राणायाम किये बिना ही प्राप्त हो जाती है। भक्तोंके भगवान् उसके पति ही तो हैं, उन्हें खोजनेके लिये वन-वन भटकनेकी आवश्यकता नहीं। ज्ञानियोंका ब्रह्मज्ञान भी पातिव्रत-धर्ममें ही संनिहित है। इस प्रकार पातिव्रत-धर्मके पालनसे ही उसे वह सब प्राप्त हो जाता है, जो भक्तों, ज्ञानियों और योगियोंको अनेक साधनोंके पश्चात् होता है। इसीलिये 'मानस' में पत्नीके एकमात्र कर्तव्यका निर्देश इन शब्दोंमें किया गया है—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पतिपद प्रेमा॥

एक बात यहाँपर ध्यान देने योग्य और है कि इसका उपदेशक स्वयं भी इसपर पूर्ण दृढ़ है। अनसूयाजी इसकी पराकाष्ठा तब कर देती हैं, जब स्वयं भगवान् रामके आनेपर भी उनके दर्शनार्थ नहीं जातीं। वे जायेंगी क्यों? उनके राम तो श्रीअत्रिजी ही हैं। 'सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं' कहनेवाली नारी स्वय भी वैसी ही है। उन्हें अपने 'पतिकी पूर्णता' पर कितना दृढ़ विश्वास है, इसका यह एक सुन्दर प्रमाण है। यही तो विशेषता है उस नारीकी जो परम पतिव्रता श्री-किशोरीजी भी उपदेश-श्रवणकी इच्छासे श्रोता बन गयीं। व्रत तो सभी लाभदायक होते हैं; पर दो नियम आवश्यक हैं—व्रतपर विश्वास और उसके नियमोंका ठीक पालन। स्त्रीके लिये पतिसे अधिक विश्वस्त कौन हो सकता है?

..................। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥

अतएव एक स्त्रीके लिये पातिव्रतसे श्रेष्ठ कोई विश्वस्त व्रत हो ही नहीं सकता। अन्य व्रतोंका फल तो भविष्यमें प्राप्त होता है, पर इस व्रतका फल तो प्रत्यक्ष है। रही नियमोंकी बात, सो अपने मन, बुद्धि, शरीरकी शक्तिके अनुसार ही लोग 'निरंबु' अथवा फलाहार आदि करते हैं। उसी अपेक्षासे वे श्रेष्ठ, निकृष्ट भी माने जाते हैं। उसी तरह पतिव्रताके भी चार भेद किये गये हैं और उन्हें उत्तम, मध्यम, अधम और निकृष्ट बताया गया है। इस प्रकार एक ओर जहाँ इस व्रतसे पतिकी अनुकूलता प्राप्त होती है, वहीं निष्ठाके कारण एक दिव्य शक्तिका उत्पादन होता है, जिससे वह सब कुछ कर सकनेमें समर्थ हो जाती है। चित्रकूटकी मन्दाकिनी इस बातकी साक्षी है कि जो कार्य (गङ्गावतरण) पुरुष अनेक पीढ़ियोंमें कर सका, वही पतिव्रताने अपने प्रभावसे पतिके सेवार्थ एक क्षणमें कर दिखाया।

सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥
बेद पुरान समस्त बखानी। अत्रि प्रिया निज तप बल आनी॥

कौन कहता है कि पुरुष श्रेष्ठ और स्त्री निकृष्ट है ? स्वधर्मस्थित पुरुषकी अपेक्षा पतिव्रता अधिक श्रेष्ठ है । इसकी साक्षी है उपर्युक्त चौपाइयाँ और आज भी चित्रकूटमें बहती हुई पयस्विनी गङ्गा ।

यह नहीं है कि 'मानस' में केवल स्त्रियोंको ही ऐसे उपदेश दिये गये हों; अपितु इधर-उधर पुरुषोंके भी तीन भेदोंका संकेत किया गया है और उसे दोके नीचे अधार्मिक मान लिया गया है । उदाहरणके लिये हम निम्न पंक्तियाँ उद्धृत कर सकते हैं—

स्त्री	पुरुष
१. उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥	१ मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी ॥
२. मध्यम परपति देखइ कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥	२ जननी सम जानहि पर नारी ।
३. धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥	३ रघुबमिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥

पर सीधी-सी बात यह है कि हमें अपने कर्तव्योंका पालन करना चाहिये । इसीमें सबका कल्याण निहित है । यदि कोई शत्रु किलेकी चार ईंटें गिरा दे तो क्या चार और मित्र भी नष्ट कर दें । नहीं, उसके लिये तो आवश्यक है कि ऐसी अवस्थामें पूर्ण दृढ़तासे रक्षामें जुट जाय । इसी प्रकार यदि पुरुष अपने कर्तव्यका पालन न कर रहा हो, तब तो नारीको दृढ़तासे अपने कर्तव्यपालनमें जुट जाना चाहिये । इसीलिये कहा गया है—

वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥

एक प्रस्तर-प्रतिमामें भगवद्भाव करके यदि स्त्री कल्याणकी इच्छा रखती है, तो क्या अपने चेतन पतिसे उसका कल्याण न होगा ? वह तो उसका नित्य ही बरदाता है, और न भी दे तो क्या । भावना ही कल्याणकारक होती है । हम कभी प्रतिमाको कुछ खाते, बोलते नहीं देखते; फिर भी हम ऐसी कल्पना कर लेते हैं । उसी तरह पतिमें भी नारीकी श्रेष्ठ भावना उसके स्वयंके लिये लाभप्रद है, इसीलिये पातिव्रत-धर्मकी महिमा बताते हुए अन्तमें अनसूयाजीने कहा—

बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई ॥
सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥

आज भी प्रभु मस्तकपर सुशोभित तुलसी इस कथन सत्यता प्रमाणित कर रही है कि नारी अपने पातिव्रत मा भगवान्‌को इतनी प्रिय हो सकती है कि बड़े-बड़े पुरुष भ भी उस महिमातक न पहुँच सकें । क्या है कोई प्रमाण इस बातका कि प्रभुने स्वयं अपनी भक्ति करनेवालेको ऐसा महत्त्व प्रदान किया हो ।

मानसमें यद्यपि अनेक पतिपरायणा नारियोंका चित्रण पर उसमें श्रीकिशोरीजीके जीवनमें हम उनकी पूर्ण चरितार्थ देख सकते हैं । कन्यारूपमें आप उनकी एक झाँकी दे चुके। अब देखिये, वह है पतिपरायणा पत्नीरूप सीता । अ भगवान्‌के वनगमनका प्रसंग उपस्थित है । सदा सुखों ऐश्वर्यकी गोदमें पली सीता प्रभुसे बार-बार अनुरोध रही हैं कि आप मुझे साथ ले चलिये । अनेक भय दिख गये, पर वे अपने व्रतसे विचलित न हुईं । प्रत्येक तर्क उत्तर उन्होंने बड़ा सुन्दर दिया, जिसका अतीव भावप्र विस्तृत चित्रण गोस्वामीजीने अयोध्याकाण्डमें किया है उसमें सास-ससुर, माता-पिताके लिये भी आदर और है, अशिष्टता नहीं । और फिर कलतक सदा कोमल दुकूल धारिणी सीताने कठोर वल्कल धारण किया और पड़ीं पतिके दुःखमें भाग बँटाने, स्वसुरके लिये नहीं- 'पाय पलोटिहि सब निसि दासी' की पवित्र प्रतिज्ञाके साथ मार्गके कठोर कष्टोंको उन्होंने सहर्ष झेल लिया और चित्रकू में उनकी सेवामें संलग्न हो गयीं ।

'दीप बाति नहिं टारन कहेऊँ' जैसी स्थितिमें रही और निर्माण किया विशाल भव्य वेदीका, जिसपर सदैव मु मुनियोंका पतिके साथ सत्संग होता है, जिसका वर्णन इस प्रकार है—

बट छायाँ बेदिका बनाई । सिय निज पानि सरोज सुहाई ॥
जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान ।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ॥

उन्होंने प्रभुकी प्रिय 'तुलसी' को अपने हाथों लगाया—

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए । कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए ॥

पतिकी अविरल सेवामें उन्हें इतना आनन्द मिला उन्हें ध्यान भी नहीं आता कभी सुख-सुविधा का । चित्रकू माता आयीं, सखियाँ आयीं और स्नेहपूरित पिता भी पधारे पिताने पुत्रीको देखा और हृदय गर्वमिश्रित प्रसन्नतासे

गया और हठात् पतिपरायणा कन्याकी तुलना गङ्गासे करके उन्होंने अपनी कन्याको श्रेष्ठ बताया। जैसा कि इन पंक्तियोंसे लक्षित होता है—

तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ पेमु परितोषु बिसेषी॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ॥
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥

यह थे एक ज्ञानी पिताके हृदय-उद्गार, जो उनकी सहज गम्भीरताको एक ओर हटाकर हठात् मुँहसे निकल पड़े।

धन्य पतिव्रता नारी और वह कन्या, जिसे अपने पिताके मुखसे ऐसे वाक्य सुननेको मिलें। सायंकाल हो रहा है और साथ ही सीताजीकी उद्विग्नता बढ़ती जा रही है—बहुत देरसे पतिको छोड़कर आयी हुई हूँ, अतएव—

'इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं'

पर उसे प्रकट कैसे करे? पतिव्रता नारीके द्वारा किसी भी धार्मिक मर्यादाका उल्लङ्घन कैसे सम्भव होता? उनकी चतुर माता समझ जाती हैं अपनी पुत्रीके भावोंको। किंतु जिस वस्तुसे उनका हृदय गद्गद हो गया, वह है सीताकी पति-भक्तिके साथ उनका सौशील्य, जो मुखसे न कहकर इंगितसे ही जानेकी इच्छा व्यक्त करनेसे प्रकट हुआ। यह था कन्या और पत्नीका दिव्य समन्वय।

इसके पश्चात् आती है वियोगकी दुःखद घटना—मानो इस बातको बतानेके लिये ही इस घटनाका नाट्य प्रभुने किया कि पतिव्रता अपने पतिके वियोगमें किस प्रकार जीवन यापन करती है। एक ऐश्वर्यमदोन्मत्त कामीके हाथ वे पड़ जाती हैं और वह भी उनके एक दृष्टि-विक्षेपके लिये समग्र विभव एवं ऐश्वर्योंसहित उनका सेवक बननेको तत्पर है। यथा—

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥

पर इसके उत्तरमें 'श्रीजी' ने जो उत्तर दिया, वह पतिव्रता स्त्रीके उस महान् आत्मबलका सूचक है, जिसे काल-विजेता रावण भी न हटा सका। रावणको उत्तर देते समय आप एक तिनका सामने कर लेती हैं—

तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥

मानो यह इस बातका सूचक था कि सारा ऐश्वर्य पतिव्रताके लिये तृणके सदृश है। उन्होंने अनेक कष्ट उठाये, रात-दिन जागती रहीं, राक्षसियोंसे डरायी गयीं; पर व्रत अडिग भावसे चल रहा है। पतिसे दूर रहकर भी वे पतिमें ही समायी हुई हैं—वही 'मधुर-मनोहर मूर्ति' उनके हृदयमें बसी हुई है—जिसका वर्णन रामायणकी इन पंक्तियोंमें है—

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥
निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥

यही है पतिसे दूर रहते हुए भी पतिव्रता नारीके भावका चित्रण। इसके पश्चात् अनेक दिनोंमें पुनः उन्हें रावण-वधके उपरान्त प्रभुका दर्शन होता है। आज उनके हृदयमें अपार प्रसन्नता उमड़ी पड़ रही है। पर इतना कष्ट उठानेपर भी उनका स्वागत हुआ पतिकी ओरसे दुर्वचन कहकर! किंतु इससे क्या उनके हृदयमें पतिके प्रति दोषारोपणका भाव उत्पन्न हुआ? नहीं, वे शान्त भावसे अग्नि-परीक्षा देनेको प्रस्तुत हैं—

श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली॥

अयोध्यामें लौटनेके बाद एक बार फिर हमें पत्नीके कर्तव्यका निर्देश करती हुई श्रीकिशोरीजीका उत्कृष्ट चरित देखनेको मिलता है, जो निम्न पंक्तियोंमें स्पष्ट झलक रहा है—

जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी॥
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई॥
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ॥

इस प्रकार अपने त्याग-तपस्याके पश्चात् नारी मातृ-पद-की अधिकारिणी होती है, जहाँ बैठकर वह पुरुष-समाजका निर्माण करती है। अपने वात्सल्यस्नेहसे एक लघुशिशुके मिट्टीमय दीपकके तनमें वही प्रकाश फैला देती है, जिससे प्रकाश पाता है विश्व!

श्रीलक्ष्मण-जैसे तेजस्वी भक्तको बनानेमें सुमित्रा माताकी प्रेरणा नहीं, इसे कौन चतुर मान सकता है? माताका हृदय अपनी सम्पूर्ण शक्तियों तथा अभिलाषाओंसहित पुत्रकी शुभ कामनापर आश्रित रहता है, वह अपने पुत्रके जीवनको उज्ज्वल और सुखमय बनानेकी कल्पनाके सहारे ही जीवन-यापन करती है।

आज जा रहे हैं भगवान् राम वन। लक्ष्मण भी साथ

जानेकी प्राण-पणसे चेष्टा करते हैं; राघवेन्द्र बहुत-से तर्क करते हैं, पर उन सबका एक उत्तर उन्हें मिला—

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥

अन्तमें प्रभु हारकर कहते हैं—

मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥

शङ्कित हृदयसे लक्ष्मण माताके निकट पहुँचते हैं। माताने देखा लक्ष्मणका म्लान मुख। आश्चर्य! लक्ष्मण और दुःखित! फिर आज जब राघवेन्द्रका राज्याभिषेक होनेवाला है। किसी अज्ञात आशंकासे उनका हृदय काँप उठा। फिर धैर्य धारण करके पूछती हैं उनसे उदासीका कारण। उत्तरमें—

लखन कही सब कथा बिसेषी।

एक बार सुमित्रा माता हतबुद्धि-सी हो जाती हैं, फिर प्रश्नसूचक दृष्टिसे लक्ष्मणजीकी ओर देखने लग जाती हैं। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि ऐसी स्थितिमें रामको छोड़ लक्ष्मणजीको यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता थी? लक्ष्मणजीने बताया 'आज्ञा लेने आया हूँ।'

अपने पुत्रकी भूलकी ओर संकेत करती हुई सुमित्रा माताने जो उत्तर दिया, वह उनकी विशाल-हृदयताके साथ ही माताकी सच्ची हित-भावना और भारतीय सांस्कृतिक परम्पराके सर्वथा अनुकूल है। क्या भावपूर्ण वाक्य है—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

उनके इस प्रसंगको पढ़कर देखें उसमें क्या नहीं है—मातृ-हृदय, भक्ति और प्रेमका उच्चतम सिद्धान्त, ज्ञान और निष्काम कर्म—सबका निचोड़ उन्होंने थोड़े-से वाक्योंमें रख दिया है, और तब बादमें श्रीलक्ष्मणजीकी महत्तामें हमें कोई आश्चर्य नहीं रह जाता। ऐसी माताका पुत्र ऐसा होना ही चाहिये। यही कारण है कि जिस समय कवि चित्रकूटमें सुमित्रा माता और प्रभुका मिलन कराते हैं, वहाँ वे सुमित्रा माताकी महत्ताका संकेत करनेके लिये राघवेन्द्रको अति रङ्क तथा सुमित्राजीको संपत्तिकी उपमा देते हैं—

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥

यह उपमा अन्य स्थलोंसे बिल्कुल उल्टी है—क्योंकि दूसरे स्थानोंमें भगवान्‌को धन और भक्तोंको दीन बताया गया है, यथा—

धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥

यह है एक नारीके मातृ तथा भक्त-हृदयकी सम्मिलित झाँकी। एक ओर उन्होंने अपने पुत्रके मर्यादापूर्ण भविष्यका निर्माण किया, तो दूसरी ओर भक्तोंको भक्तिमार्गका श्रेष्ठतम मार्ग प्रदर्शित कर दिया। और एक बार तो हम देखते हैं कि उनके प्रेमको देखकर भरत और हनुमान्‌जी-जैसे प्रेमी भी लज्जित हो जाते हैं। श्रीलक्ष्मणजीकी मूर्छितावस्थामें उनके लिये हनुमान्‌जी ओषधि लेकर चलते हैं और अयोध्यामें श्रीभरतके सायकसे मूर्छित हो गिर पड़ते हैं। गीतावलीमें इसका बड़ा ही भावपूर्ण मनोग्राही चित्रण है। सचेत होनेपर यह सन्देश सुमित्रा माताके समीप पहुँचाया जाता है। सुनकर उनके नेत्रोंमें आँसू आ जाते हैं—पर इसलिये नहीं कि पुत्र मारा गया——उन्हें तो दीख रहा था लक्ष्मण अमर हो गया; पर आपको एक और ही चिन्ता हो रही है। उन्हें संतोष था कि पुत्रने उनके आज्ञापालनार्थ अपने प्राण दे दिये; पर—

रघुनंदनु बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं।

और आप शत्रुघ्नको भी लक्ष्मणजीके मार्गका अनुसरण करनेका आदेश देती हैं। माताके इस प्रेमपूर्ण त्यागको देखकर श्रीहनुमान्‌जी और भरतजी-जैसे प्रेमी ग्लानिमें डूब जाते हैं—

अब अनुज गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं।

केवल ऐसी ही माताओंके द्वारा पुत्र तथा विश्वका हित सुरक्षित है। कौन कहता है कि नारीके प्रति गोस्वामीजीके हृदयमें आदर-भाव न था! इस झाँकीका एक बार ध्यान करते ही हम उस महान् नारीके प्रति श्रद्धासे अभिभूत हो जाते हैं, जिसने लक्ष्मण और शत्रुघ्न जैसे पुत्रोंका निर्माण किया।

इसी प्रकार 'मानस'में नारीके अनेक रूप बड़े ही भावपूर्ण रीतिसे गोस्वामीजीने चित्रित किये हैं। वीराङ्गना नारी, भक्त नारी, ज्ञानी नारी—ऐसे अनेक स्वरूप हैं, जिन्हें पढ़कर हमें स्त्रीकी महत्ता तथा विशेषताका ज्ञान हो सकता है।

तुलसीकी नारी

(रचयिता—पं० श्रीरामवचनजी द्विवेदी 'अरविन्द', साहित्यालङ्कार)

(१)

अबला कहना कौन तुझे है, तू है सबला बलकी खान।
तेरे सम्मुख सकल जगत है नाक रगड़ता धरकर कान॥
कोई तुझको काल समझकर डर-डरकर करता है बात।
कोई मन-मन्दिरमें तेरी पूजा करता है दिन-रात॥
कोई आह-आह करता है खाकर विषम बाणकी चोट।
कोई तेरे चरणोंपर ही, देखो, आज रहा है लोट॥
किस निष्ठुरतासे निज जनको पैरोंसे ठुकराती तू।
विषसे बोरे वाक्य-बिन्दु हृत्तलमें अरी गिराती तू॥
बलका, मनका और वचनका पता न तेरा पाते हैं।
इसीलिये तो 'नेति-नेति' कह मौन शास्त्र रह जाते हैं॥
हे अबले!अबले क्यों, सबले ! जो तू करे, सभी है ठीक।
सत्य कहा है–'जो समर्थ हैं, नहीं पीटते हैं वे लीक'॥
जो तेरा सेवक अनन्य हो सदा नवाये रहता शीश।
वचन-बाणसे बेधित कर तू उपजाती उसके उर टीस॥
यही हृदयकी टीस किसीको करनेको कहती विष-पान।
यही हृदयकी टीस किसीके लेनेको कहती है प्राण॥
यही हृदयकी टीस किसीके उरमें पहुँच दहकती है।
कभी धुआँती,कभी ज्वाल जल उठती,लपट धधकती है
टीस,हृदयकी टीस गजब है' है विचित्र इसका परिणाम
रागी बैरागी हो जाता सुधा-धौत तजकर निज धाम॥
देखो, आँख उठाकर देखो इसी टीसकी खाकर मार।
वह भोगी योगी बनता है, तज देता है कुल-परिवार॥
कुश-आसनपर आसन मारे बैठा है गंगाके घाट।
करमें है तुलसीकी माला,तिलक सोभता शुभ्र ललाट॥
बैठे-ही-बैठे इसने कर दिया मनोहर 'सर' निर्माण।
सात घाटसे जो मण्डित है सुन्दर,सुखद,पवित्र,महान

(२)

आदि घाटपर जब हम जाकर डुबकी मार निकलते हैं।
दो बालक वर वीर देखते, जो अघ-पुंज निगलते हैं॥

× × ×

पिता-वचन सुन इन पुत्रोंने चौदह वर्ष किया वन-वास।
प्रिया बनी निज पतिकी छाया,अनुज बना भाईका दास॥

× × ×

आगे बढ़कर हम विलोकते सघन गहनमें पर्णकुटीर।
माया-ज्ञान-विराग यहींपर धरे हुए हैं सौम्य शरीर॥
साधु-वेष धरकर नारीका यहाँ हरण करता शैतान।
अबला संरक्षणहित पक्षीतक दे देता है निज प्राण॥
यहीं देखते हैं हम खाते पुरुषोत्तमको जूठे बेर।
किसके जूठे ? भिलनीके, फिर अब 'अछूत'की कैसी टेर

× × ×

बढ़ते हैं हम आज यहाँसे करने चौथे घाट नहान—
वर वैराग्य-वारिमें मनके जहाँ मैलका है अवसान॥
यहाँ देखते हम निबाहते मानवताकी सुन्दर टेक।
रिपुवध कर अपने साथीका साथी करता है अभिषेक॥

× × ×

शोक-निवारक घाट पाँचवाँ,जहाँ खड़ा है वृक्ष अशोक।
जिसके नीचे बैठ विरहिणी मरती है प्रियतमके शोक॥
विरह-वह्निको नयन जहाँपर बैरी बने बुझाते हैं।
जहाँ शरदके,वाल चन्द्र बनकर मार्तण्ड खिझाते हैं॥

× × ×

छठे घाटपर देख रहे हम होते हुए महा रण-रंग।
शोणितकी सरिता बहती है, खड्ग खेल करता शिर संग

× × ×

सप्तम घाट सुखद शीतल है, सुन्दर है, है शोभा-धाम।
लोक-शोकसे ताड़ित जन सब लेते इसी जगह विश्राम॥
इतना सुन्दर घाट बना है, कलायुक्त पावन भरपूर।
एक बारके ही गोतेमें आधि-व्याधि हो जातीं दूर॥

(३)

इस 'सर'में डुबकी लेते ही होता नव-जीवन-संचार।
ईति-भीति-संताप-निराशा झट सिधारते यमके द्वार॥
बालक-युवक-जरठ-नर-नारी करते इसका अमृत पान।
यहाँ-वहाँ सर्वत्र हो रहा 'सरवर' कर्ताका गुण-गान॥
क्या है नाम सरोवरका,है किसने इसका किया प्रकाश।
'रामचरितमानस'यह'सर'है,निर्माताहैं'तुलसीदास',
वे ही तुलसी ? जिन तुलसीको नारीने दी थी फटकार!
बन बैठे अब भक्त-शिरोमणि काव्य-कामिनी-उरके हार!
नारी सब कुछ कर सकती है इस भूतलपर वाचक वृन्द!
महा उदधिके तीव्र स्रोतको भी कर सकती है अवरुद्ध

राष्ट्र, समाज, देश है इनके एक इशारेका अवलम्ब।
उन्नतिके उत्तुंग शिखरपर चाहें तो धर दें अविलम्ब॥
किसे ज्ञात था निज नारीके एक शब्दकी खाकर मार—
भोगी तुलसी योगी होंगे फैलावेंगे ज्ञान अपार?॥
तुलसी-उरमें अगर न लगता नारीकी बोलोंका बाण।
कौन देशकी दशा पलटता छेड़ राम-तन्त्रीकी तान॥
भरा गजबका है जादू नारीकी वाणीमें भरपूर।
भोग-काँचको स्वयं पटककर कर देती हैं चकनाचूर॥
भारतमाता खोज रही है ऐसी ही नारी तत्काल।
जो तुलसी-से व्यसनी पतिके उरमें संजीवन दें डाल॥
चटक-मटक मिथ्या दलदलमें ललनाएँ अब सनें नहीं।
अकर्मण्यता, भोग-पिपासाकी पात्री ये बनें नहीं॥
विषय-वासना, वैर, अशिक्षा दुराचारके सिर काटें।
सीधी-सादी रहन-सहनके वर प्रसाद घर-घर बाँटें॥
पतिको पथपर लावें उनके मानसके मलको धोवें।
तुलसीकी नारी सी भगवन्! गृह-लक्ष्मी घर-घर होवें॥

हिंदी-काव्यमें नारी

(लेखक—प्रो० श्रीमुंशीरामजी शर्मा, एम्० ए०)

हिंदी-साहित्यकी परम्परा जिस संस्कृत, पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्यकी परम्पराके बीजाङ्कुर लेकर प्रारम्भ हुई, वह उसके निकट पूर्वमें अपनी प्राचीन पद्धतिसे पृथक् हो गयी थी। समयकी अनिवार्य परिस्थितियोंने उसे प्रभावित कर रक्खा था। मनुकालीन 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' वाला स्वर्ण-सिद्धान्त बौद्धकालीन विहारोंके स्वच्छन्द जीवनद्वारा भ्रष्ट कर दिया गया था। अप्राकृतिक संयमकी ओर बढ़े हुए श्रमण काल पाकर आश्रमोंमें अनाचारकी वृद्धिके कारण बने। भिक्षुणियोंका दौत्य-कार्य भिक्षुओंकी प्रज्ञा पारमिताकी सिद्धिमें व्यभिचार उत्पन्न करने लगा। जिस महान् पदसे भिक्षुवर्ग च्युत हुआ, उसकी विकृतिसे उत्तराखण्डका विपुल भू-भाग आप्लुत हो गया। भारतके अधःपतनके मूलमें बौद्ध-धर्मकी यह विकृति भरी पड़ी है, जो ऐतिहासिकोंद्वारा विस्मृत नहीं हो सकती। भारतके लिये बौद्ध-धर्म उन दिनों वैसा ही अभिशाप सिद्ध हुआ, जैसा इस समय इस्लाम सिद्ध हो रहा है। दोनों मतावलम्बियोंकी आँखें सदैव इस देशके योग-क्षेम-से हटकर विदेशी स्वमतावलम्बियोंके योग-क्षेमकी ओर लगी रहीं। दोनोंने जहाँ भारतको कलाके उत्कृष्ट उदाहरण दिये, वहाँ दोनोंने उसे विनाशके गर्तमें भी डाल दिया। बौद्धोंकी विलासिता तत्कालीन संस्कृत तथा अन्य प्राकृत आदिके काव्योंमें प्रकट हुई थी; इस्लामके द्वारा फैलायी हुई विकृति हिंदीके रीतिकालीन काव्य तथा उर्दूके गजलोंमें देखी जा सकती है। बौद्धोंका समूल निष्कासन भी क्या इस्लामके समूल निष्कासनका उदाहरण बनेगा?

हाँ, तो मातृपूजाका सिद्धान्त बौद्धोंके अनाचारसे भ्रष्ट हुआ। भिक्षु संयमकी ओर चलते थे, पर व्यभिचार हाथ आता था; प्रव्रज्या ग्रहण करते थे, पर दूषित वातावरणमें भ्रमण करने लगते थे; अष्टाङ्ग अपनानेके नामपर विकृत राजनीतिक चालोंमें पड़ जाते थे। भिक्षुओंने ऐकान्तिक साधना-का उपदेश दिया, व्यावहारिक धर्म—गार्हस्थ्य-जीवनकी उपेक्षा की; पर जो प्राकृतिक धर्म है, उससे कोई कैसे दूर हो सकता है? इसी कारण स्त्रियोंसे घृणा करना सिखाकर भी वे वासनाओं-के आखेट हो जाते थे। बौद्धोंकी यही ऐकान्तिक साधना आगे चलकर संतोंके वैराग्य प्रधान मतमें परिवर्तित हो गयी। मातृशक्तिकी पूजाको इस भावना धाराने दो दिशाओंसे चोट पहुँचायी—एक तो स्त्रीतत्त्वके प्रति घृणाके भाव फैलाकर और दूसरी ओर परकीया-प्रेम जनित व्यभिचारद्वारा अनाचार फैलाकर। दो-दो आघातोंको पाकर मातृशक्ति सचमुच अनादृत हो गयी। क्या कबीर, क्या सूर, क्या तुलसी—सभी संत कवि नारीके एक रूपको लेकर कुत्सापूर्ण चित्र खींचते गये। रीतिकालीन कवि तो अनियन्त्रित भावसे विलासपरक शब्दावलीके पीछे पड़ गये। भारतेन्दु-कालतक यही प्रवृत्ति चलती रही। अनेक छायावादी कवि भारतेन्दुके पश्चात् प्रकृतिका आवरण लेकर इसी विलासभावको व्यक्त करते रहे। नरेन्द्र और अञ्चल जैसे प्रगतिवादियोंकी रचनाओंमें आज भी उद्दाम वासनाकी उपासना देखी जा सकती है। अनेक शताब्दियोंके पश्चात् राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तने नारीका अमूल्य महत्त्व पहचाना और स्वर्गीय 'प्रसाद' जीने मातृ-शक्तिको उस महान् आसनपर प्रतिष्ठित किया, जो उसे पुराकालसे प्राप्त था और जो उसका प्राकृतिक अधिकार था।

संत कवियोंने जिन प्रणालियोंसे स्त्री जातिके प्रति अपने विचार प्रकट किये हैं उनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

मिल गुरुनि ना मेटई, गनकादिकके साथ ।
कबहुँ दाग लगावई, कारी हाँडी हाथ ॥
गाँठ धरे ते मंत्र है, मानुष खाते जान ।
विकट नारि पाले परी, काढ़ि करेजा खात ॥

—कबीर

नारी नागिन एक सुभाइ ।
नागिन के काटे विष होइ । नारी चितवत नर रहै मोहि ॥
नारी सों नर प्रीति लगावै । पै नारी तिहि मनहिं न लावै ॥
नारी संग प्रीति जो करै । नारी ताहि तुरत परिहरै ॥

—सूरदास

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ॥
सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ । सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ ॥
निज प्रतिबिंब बरुकु गहि जाई । जानि न जाइ नारि गति भाई ॥

—मानस

जनम पत्रिका बरति कै देखहु मनहिं बिचारि ।
दारुन बैरी मीचु के बीच बिराजति नारि ॥

—दोहावली, तुलसीदास

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ऊपर लिखे उद्धरणोंमें संत कवियोंने स्त्रियोंके सम्बन्धमें जो भाव अभिव्यक्त किये हैं, वे बौद्धादि मतोंकी ऐकान्तिक साधनाके प्रभावका ही एक अङ्ग है। विश्वसे विरक्त होनेमें साधकोंके सम्मुख जो प्रबल प्रत्यूह खड़ा होता है, वह गृहस्थका जंजाल ही है और गृहस्थका मूलाधार स्त्री है। ऐसा ही समझकर विरागी साधक कवियोंने स्त्री जातिको उपर्युक्त रूपमें अंकित किया है। वैदिक धर्ममें इस प्रकारकी भावनाको कोई स्थान नहीं है। वहाँ पुरुष और स्त्री दोनों ऐहिक एवं पारमार्थिक उन्नतिमें परस्पर सहयोगसे चलते हैं। वैदिक कर्मकाण्डमें यज्ञकी अनन्त महिमा वर्णित है और यज्ञ अकेले पुरुषद्वारा हो ही नहीं सकता। यज्ञमें यजमान पुरुषके साथ उसकी पत्नीकी उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक मानी गयी है। यदि ब्रह्मचर्यकी भावनाका प्रश्न हो, तो जहाँ पुरुष ब्रह्मप्राप्तिके लिये संयमी बनता है, वहाँ स्त्री भी संयमका पालन करती है। इतिहासमें दोनोंके उदाहरण विद्यमान हैं। वैसे भी नर एवं नारी एक दूसरेके पूरक हैं। दर्शनोंमें प्राण एवं रयि—नरत्व एवं स्त्रीत्व—दोनोंके संयोगसे सृष्टिकी उत्पत्ति मानी गयी है। सृष्टिका विकास इन्हीं दोनोंके मेलपर निर्भर है। अतः जीवनके उत्थानमें दोनोंका परस्पर सहयोग अपेक्षित है। एकके बिना दूसरा पङ्गु है। वैदिक धर्म समन्वयवादी है, एकाङ्गी नहीं। तभी तो मनुने मातृशक्तिकी पूजाको मंगल, आनन्द एवं कल्याणका कारण माना है। तैत्तिरीय उपनिषद्ने भी 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव' का आदेश देते हुए मातृशक्तिको सभी देवताओंमें प्रमुख स्थान दिया है।

संत कवियोंके पश्चात् हिंदी-साहित्यमें रीतिकालका उदय हुआ। इस कालमें नारी नायिकाके विविध रूपोंमें प्रकट हुई। प्रौढा, मध्या, स्वकीया, परकीया, मुग्धा, खण्डिता, अभिसारिका, अधीरा, कलहान्तरिता आदि नाना प्रकारके भेद-प्रभेद साङ्गोपाङ्ग वर्णित हुए। इन सबमें नारी उपभोगकी सामग्रीके अतिरिक्त अपना अन्य कोई रूप नहीं रखती। इस विषयके एक-से-एक बढ़कर सुन्दर उदाहरण कवियोंने प्रस्तुत किये। हिंदी-साहित्यमें नायिका-भेद-वर्णनकी एक बाढ़-सी आ गयी, जो आधुनिक युगके प्रारम्भतक चलती रही। इस परम्पराके एकाध कवि आज भी दिखलायी देते हैं।

वर्तमान युगके घोर यथार्थवादी कवियोंने ऐन्द्रियकता (Sex) की भावनाको अत्यधिक महत्त्व देते हुए जो अश्लील एवं नग्न रचनाएँ लिखी हैं, उनके उदाहरण न देना ही अच्छा होगा।

नारीके यथार्थ रूपकी अभिव्यञ्जना इस युगमें सर्वप्रथम देशके सांस्कृतिक कवि श्रीमैथिलीशरण गुप्तकी कृतियोंमें दिखलायी दी। स्त्री कहीं माता, कहीं पुत्री, कहीं बहिन और कहीं पत्नीके रूपमें हमारे सामने आती है। पत्नीके अतिरिक्त उसके अन्य सभी रूप पूज्य हैं; पर आर्य-संस्कृतिने उसके पत्नीरूपको भी पूज्य माना है। गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करते ही स्त्री सम्राज्ञी बन जाती है। सास, ननद, देवर प्रभृति सभी गृहके सदस्य उसे मान्य समझने लगते हैं। पतिका तो वह अर्द्धाङ्ग ही है। राष्ट्रकवि गुप्तजीने कई प्रसङ्गोंमें स्त्रीके इस रूपका वर्णन किया है। 'साकेत' में वन जाते समय सीता रामसे कहती है—

जो गौरव लेकर स्वामी। होते हो काननगामी ॥
उसमें अर्द्ध भाग मेरा। करो न आज त्याग मेरा ॥
मातृ-सिद्धि पितृ-सत्य सभी। मुझ अर्द्धाङ्गी बिना अभी ॥
हैं अर्द्धाङ्ग अधूरे ही। सिद्ध करो तो पूरे ही ॥

साकेतके प्रथम सर्गमें लक्ष्मण-उर्मिला-संवादके अन्तर्गत लक्ष्मण अपनेको उर्मिलाका दास कहते हैं। इसपर उर्मिलाका स्वाभिमानी स्त्री-तत्त्व भड़क उठता है। वह कहती है—

दास बननेका बहाना किस लिये? क्या मुझे दासी कहाना, इसलिये?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो। और देवी ही मुझे रक्खो, अहो!

उर्मिलाके इस कथनको सुनकर लक्ष्मण भी आर्य-संस्कृति-जन्य संस्कारोंको इस प्रकार प्रकट करते हैं—

तुम रहो मेरी हृदय-देवी सदा। मैं तुम्हारा हूँ प्रणय-सेवी सदा॥

आगे चलकर इसी संवादमें पति-पत्नीका कर्तव्य निम्नाङ्कित पंक्तियोंद्वारा प्रकट किया गया है—

लक्ष्मण—

जन्मभूमि-ममत्व कृपया छोड़कर। चारुचिन्तामणि-कलासे होड़ कर॥
कल्पवल्ली-सी तुम्हीं चलती हुई। बाँटती हो दिव्य फल फलती हुई॥

उर्मिला—

खोजती हैं किन्तु आश्रय मात्र हम।
चाहती हैं एक तुम-सा पात्र हम॥
आन्तरिक सुख-दुःख हम जिसमें धरें।
और निज भवभार यों हलका करें॥

अष्टम सर्गके प्रारम्भमें सीताकी ओर दृष्टि डालते हुए रामके रूपका वर्णन गुप्तजी इस प्रकार करते हैं—

यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी।
योगीके आगे अलख ज्योति ज्यों जागी॥

यहाँ राम (पुरुष) साधक अथवा योगी हैं और सीता (स्त्री) सिद्धि हैं। मातृशक्तिका यह कितना ऊँचा पद है!

पति-पत्नीद्वारा अन्योन्य सत्कारकी भावनाको प्रकट करते हुए गुप्तजीने इसी सर्गके अन्तमें लक्ष्मणको उर्मिलाके चरणोंमें और उर्मिलाको लक्ष्मणके चरणोंमें डाल दिया है—

गिर पड़े दौड़ सौमित्रि प्रिया-पद-तलमें।
वह भीग उठी प्रिय-चरण धरे दृग-जलमें॥

'यशोधरा'में गुप्तजीने स्त्रीकी ओरसे उस लाञ्छनका भी परिहार कराया है, जिसमें वह पुरुषकी आध्यात्मिक सिद्धिके मार्गमें विघ्नरूप बनती है। यशोधरा कहती है—

सिद्धि-मार्गकी बाधा नारी! फिर उसकी क्या गति है?

अथवा—

सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरवकी बात।
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात॥

सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
कह तो, क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

स्त्री सिद्धि-पथमें बाधारूप नहीं है। पुरुष अपनी निर्बलतासे उसे ऐसा समझता है। न्यूनता पुरुषमें है, स्त्रीमें नहीं। उसे अपने पातिव्रत्यका अमोघ बल प्राप्त है और उसीके द्वारा वह अपने ही नहीं, पतिके भी मार्गमें आनेवाले कण्टकोंको दूर करनेकी क्षमता रखती है। यशोधरा कहती है—

बस, सिन्दूर बिन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल।
वह जलता अंगार जला दे उनका सब जंजाल॥

अथवा—

तुम्हें अप्सरा-विघ्न न व्यापे यशोधरा-कर-धारी॥

आर्य-संस्कृतिमें पत्नीके इस महत्त्वके निदर्शक अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। पति पत्नीकी एकरूपताका वर्णन करते हुए गुप्तजी लिखते हैं—

दिव्य-मूर्ति-वञ्चित भले, चर्मचक्षु मन हाय।
प्रणय! पिघल कर प्रिय न जो प्राणोंमें रम जाय॥

यशोधराकी निम्नलिखित पंक्तियाँ तो नारी-जीवनके समग्र रूपको एक साथ प्रकट कर देती हैं—

अबला-जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचलमें है दूध और आँखोंमें पानी॥

'आँचलमें दूध' नारी हृदयके उदार दान, त्याग एवं ममत्वको व्यञ्जित करता है। 'आँखोंमें पानी' एक ओर उसकी करुणाका सूचक है और दूसरी ओर 'पानी'में श्लेष माननेसे उसकी लज्जा एवं स्वाभिमानका परिचायक है।

कविवर गुप्तजीसे भी बढ़कर स्वर्गीय 'प्रसाद'जीने मातृशक्तिके पदको ऊँचा उठाया। उन्होंने नारीको अपने नाटकोंमें प्रकृति-स्वरूपा माना है। उनके शब्दोंमें वह करुणाकी मूर्ति है। दया, क्षमा, त्याग, तितिक्षा एवं सेवा-भावनाकी वह साक्षात् प्रतिमा है। उनके नाटकों तथा काव्योंमें कोई-न-कोई देवी अपने असाधारण गुणों एवं दिव्य कर्मोंके द्वारा अन्य पात्रोंका उद्धार करती है। असत्को सत्में, अधमताको उदात्ततामें, राक्षसत्वको देवत्वमें, बर्बरताको सभ्यतामें एवं पापको पुण्यमें परिवर्तित करनेका भार उन्हींपर है। 'स्कन्दगुप्त'में देवसेना, 'अजातशत्रु'में मल्लिका तथा 'कामायनी'में श्रद्धा यही कार्य करती है। 'अजातशत्रु'में एक स्थानपर उन्होंने पुरुषको सूर्यके समान जलते-जलते काम करनेवाला, संघर्षमें पड़नेवाला, अस्थिर एवं अशान्त माना है, पर स्त्रीको चन्द्रके समान शीतल, शान्त, स्निग्ध ज्योतिका प्रसार करनेवाली कहा है। जैसे सूर्यका पूरक चन्द्र है, उसी प्रकार पुरुषकी पूरक स्त्री। पुरुष प्रश्न है तो स्त्री उसका उत्तर। पुरुष समस्या है तो स्त्री उसका समाधान। पुरुष श्रान्त-क्लान्त होकर मातृ-अञ्चलकी वरद छायामें ही शान्ति एवं विश्राम उपलब्ध करता

है। मातृशक्ति, नारीत्व स्वभावसे ही प्रेममय है। उसमें अविचल विश्वास एवं अडिग श्रद्धा ओतप्रोत है। समर्पणका भाव उसमें असीम ही सीमा है। 'कामायनी'के दर्शनसर्गमें प्रसादजी लिखते हैं—

यह लीला जिसकी विकस चली, वह मूल शक्ति थी प्रेमकला।
उसका संदेश सुनानेको संसृतिमें आयी वह अमला॥
स्व-वेदनाओंसे भरा नहीं, मुस्कान है मूक-सुधाओंकी।
वह चेतनता है शान्तिमयी जीवनके उग्र विचारोंकी॥

नारी विश्वमें प्रेमका पावन संदेश देनेके लिये अवतरित हुई है। पुरुष-जीवनकी संघर्षजन्य उष्णता यदि कहीं शान्तिमय शीतल विश्राम पाती है तो मातृ शक्तिके मङ्गलमय, स्नेहमय क्रोडमें। पुरुष यदि तृष्णा है तो स्त्री उसकी तृप्ति। दोनोंके द्वारा ही आनन्द समन्वय सम्भव होता है, पर इस आनन्दमें मुख्य भाग नारीका ही है।

दर्शनसर्गमें—

'नारी माया-ममताका बल। वह शक्तिमयी छाया शीतल॥'

तथा निर्वेदसर्गमें—

'तुम अजस्र वर्षा सुहागकी और स्नेहकी मधु रजनी॥
चिर अतृप्त जीवन यदि था तो तुम उसमें संतोष बनी॥

लिखकर भी प्रसादजीने इसी तथ्यकी पुष्टि की है।

नारी पुरुषको क्या देती है? वही जो उसके पास है। और उसके पास है—दया, ममत्व, विश्वास, सेवा, क्षमा, त्याग-जैसे स्वर्गीय गुण। मनुकी असहाय, एकाकी अवस्था एवं विषादमग्न चिन्तित जीवनका अनुभव करके श्रद्धा अपने-आपको मनुकी सेवामें समर्पित करती हुई कहती है—

समर्पण लो सेवाका सार, सजल संसृतिका यह पतवार।
आजसे यह जीवन उत्सर्ग, इसी पदतलमें विगत विकार॥
दया, माया, ममता लो आज, मधुरिमा लो अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ, तुम्हारे लिये खुला है पास॥

और जैसे भारतीय क्षत्राणी अपने वीर पुत्र या पतिको तिलक लगाकर रणक्षेत्रमें जानेके लिये सुसज्जित करती है, उसी प्रकार श्रद्धा मनुको आलस्यमयी अवसादमग्न अवस्थासे निकालकर कर्मक्षेत्रमें पदार्पण कराती हुई कहती है—

शक्तिशाली हो विजयी बनो, विश्वमें गूँज रहा जयगान॥

मनु भी अन्तमें मातृशक्तिकी इस महत्ताको अनुभव करते हुए कहते हैं—

तुम देवि, आह! कितनी उदार! यह मातृमूर्ति है निर्विकार॥
हे सर्वमङ्गले! तुम महती, सबका दुख अपनेपर सहती।
कल्याणमयी वाणी कहती, तुम क्षमा निलयमें हो रहती॥

नारी अपना सब कुछ देकर भी रंक नहीं बनती। देनेसे भी क्या कभी कोई दीन बना है? वेद कहता है—'सौ हाथोंसे देनेवालेको परमात्मा सहस्र हाथोंसे देता है। दाताका दिया हुआ दान कई गुना होकर उसकी समृद्धिका कारण बनता है।' प्रसादजीकी श्रद्धा भी कहती है—

प्रिय अवतक हो इतने सशंक? देकर कुछ कोई नहीं रंक।

कामायनीके लज्जा नामक सर्गमें प्रसादजीने स्त्रीका अत्यन्त स्वाभाविक चित्र अङ्कित किया है। श्रद्धा लज्जारूपी छाया-प्रतिमासे कहती है—

यह आज समझ तो पाई हूँ, मैं दुर्बलतामें नारी हूँ।
अवयवकी सुन्दर कोमलता लेकर मैं सबसे हारी हूँ॥
पर मन भी क्यों इतना ढीला अपनेसे होता जाता है?
घनश्याम-खण्ड-सी आँखोंमें क्यों सहसा जल भर आता है?
सर्वस्व समर्पण करनेकी, विश्वास-महातरु-छायामें,
चुपचाप पड़ी रहनेकी क्यों ममता जगती है मायामें?
नारी-जीवनका चित्र यही क्या, विकल रंग भर देती हो?
अस्फुट रेखाकी सीमामें आकार कलाको देती हो॥
मैं जभी तोलनेका करती उपचार, स्वयं तुल जाती हूँ।
भुज-लता फँसाकर नरतरुसे झूले-सी झोंके खाती हूँ॥
इस अर्पणमें कुछ और नहीं, केवल उत्सर्ग छलकता है।
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ, इतना ही सरल झलकता है॥

इसपर लज्जा श्रद्धाको उत्तर देती हुई कहती है—

क्या कहती हो? ठहरो नारी, संकल्प अश्रु-जलसे अपने।
तुम दान कर चुकीं पहले ही जीवनके सोने-से सपने॥
नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास-रजत-नग पग-तलमें।
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो जीवनके सुन्दर समतलमें॥

ये पंक्तियाँ व्याख्याकी अपेक्षा नहीं रखतीं। श्रद्धाके रूपमें प्रसादजीने नारीका वह महामहिम, उदात्तगुणशाली रूप उपस्थित किया है, जो उसे पुराकालमें प्राप्त था और भविष्यमें प्राप्त होना चाहिये। जिस दिनसे मानवने मातृशक्तिके इस पुनीत रूपकी अवहेलना की, उस दिनसे वह विषादकी ज्वालामें झुलसने लगा। इस ज्वालासे यदि कोई उसे बचा सकता है तो मातृ-शक्ति-पूजाकी पुनः प्रतिष्ठा। निर्वेदसर्गमें श्रद्धा अपने रूपका उद्घाटन करती हुई मातृशक्तिके इसी महत्त्वका गुणगान गाती है—

तुमुल कोलाहल-कलहमें मैं हृदयकी बात, रे मन !
विकल होकर नित्य चंचल खोजती जब नींदके पल,
चेतना थक-सी रही, तब मैं मलयकी बात, रे मन !
चिर विषाद विलीन मनकी, इस व्यथाके तिमिर-वनकी,
मैं उषा-सी ज्योति-रेखा कुसुम विकसित प्रात, रे मन !
जहाँ मरु-ज्वाला धधकती, चातकी कनको तरसती,
उन्हीं जीवन-घाटियोंकी मैं सरस बरसात, रे मन !
पवनकी प्राचीरमें रुक जला जीवन, जी रहा झुक,
इस झुलसते विश्व-दिनकी मैं कुसुम-ऋतु-रात, रे मन !
चिर निराशा नीरधरसे प्रतिच्छायित अश्रु-सरमें,
मधुप मुखर, मरंद मुकुलित, मैं सजल जलजात, रे मन !

हिंदी-साहित्यमें मातृशक्तिकी महत्ताका अभिव्यञ्जन इतने सुन्दर रूपमें किसी अन्य स्थानपर भी हुआ है, यह मैं नहीं जानता। कामायनी आधुनिक हिंदी साहित्यका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है और इस ग्रन्थने मातृमहत्त्वकी पुनः प्रतिष्ठा की है, यह भी निर्विवादरूपसे सिद्ध है। पिछले ऐवेके कवि नारीको जहाँ सिद्धिमार्गमें बाधारूप समझते रहे, वहाँ प्रसादजीने कामायनीमें श्रद्धाको सिद्धिपथका अपूर्व प्रदर्शक एवं साधक सिद्ध किया है। श्रद्धा ही मनुको आध्यात्मिक पथपर ले जाती है और नीचेके तीन लोकोंका दर्शन कराती है। अन्तमें दोनों श्रद्धा और मनु अक्षय आनन्दको प्राप्त करते हैं।

नारी—मातारूपमें

(लेखक—प्रो० श्रीफीरोज कावसजी दावर, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

विधाताने ऐसा ही नियम बना दिया है कि सृष्टि द्विलिङ्गात्मक हो। इन्हीं दोनोंके अनवरत उद्योग एवं अनिवार्य समन्वयसे ही जीवन-नाटककी रचना होती है। यह भी एक दैवी विधान है कि प्रकाशके बाद अन्धकार और ग्रीष्मके बाद शीतका आगमन होता है। शक्ति और अविवेकपूर्ण यौवनके बीत जानेपर दुर्बल और सिद्ध अनुभूतियोंसे युक्त जरा आती है। [एकके बाद दूसरा आता ही जाता है, क्रम टूटने नहीं पाता।] इसी प्रकार द्विलिङ्गात्मक सृष्टि भी इसीलिये हुई कि इसका विस्तार होता रहे, इसलिये नहीं कि मनमानी स्वच्छन्दता अथवा स्वकल्पित महत्ताकी स्थापनाके लिये निरर्थक परिश्रम किये जायँ। प्रत्येक क्रिया, जो हितप्रद और फलदायिनी है, भगवदीय आयोजनाको बढ़ानेवाली होती है और हमको निकट ले जाती है उस ईश्वरके, जो हमारी 'गति, मति, गुरु, आदि और अन्त' सब कुछ है। सभी प्रश्नोंकी भाँति स्त्री-पुरुषके प्रश्नको भी कलुषित एवं तुच्छ तथा शुद्ध और पवित्र दोनों तरहकी दृष्टियोंसे देखा जा सकता है। किसी समयमें पश्चिम और पूर्वमें भी स्त्रीको मायाविनीके रूपमें ही देखा गया था, मानो स्त्रीकी रचना ही केवल इसीलिये हुई थी कि वह मनुष्यको धर्मपथसे विचलित करे। जगह-जगह खुले शब्दोंमें स्त्रीको अधःपतनका पथ, नरकका द्वार आदि कह-कर उसकी निन्दा की गयी है। सेंट क्राइसोस्टोमके कथनानुसार 'स्त्री एक आवश्यक दोष है, एक स्वाभाविक प्रलोभन है, एक वाञ्छनीय विपत्ति है, घरमें रहनेवाली एक बला है, एक प्राणान्तक आकर्षण है, रोग है।' यदि मनुष्य यह मानता है कि मानवीय सृष्टिका आधा भाग दूसरे अर्द्धांशको केवल नष्ट-भ्रष्ट कर देनेके लिये ही बना है तो सचमुच यही समझना चाहिये कि मनुष्यकी उद्दण्डता और मूर्खता अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी है। अधिकांशमें होता यह है कि मनुष्य स्त्रीको बहकाकर उसका सत्यानाश कर देता है। पर वह सदा यह सिद्ध करनेको तैयार रहता है कि उसके पतनका एकमात्र उत्तरदायित्व स्त्रीपर ही है। यदि आवश्यकता हो तो इसकी पुष्टिमें वह शास्त्रोंका प्रमाण भी सामने रख देगा। ऐसा कहा जा सकता है कि ऐसी मनोवृत्तिके मूलभूत अज्ञान और धूर्तताको पीछे छोड़कर अब हम आगे बढ़ आये हैं।

पर पश्चिम तो आज भी प्रत्येक सामाजिक सम्बन्धके पीछे 'काम' को ही देखता दिखाता है। कुछ पश्चिमीय विचारकोंको माताके प्रति बच्चेकी भोली मुसकानमें भी कामका ही कुत्सित रूप दिखायी देगा। [illegible] बच्चोंकी निर्दोष क्रीडाओंमें भी उनको कामकी ही गन्दी प्रवृत्तिका सदेह होगा। ये लोग अपने विचारोंकी रक्षाके लिये शास्त्रोंका सहारा नहीं लेते, वरं वैज्ञानिक तथ्योंकी एक विशाल सेनाके पीछे छिपते हैं। आधुनिक पाश्चात्त्य मस्तिष्क भयंकररूपसे कामग्रस्त है और इसकी छाप आजकलकी कविता और कहानीपर पड़ रही है। प्रकृतिमें कामकी महत्ता और उपयोगिताको बड़ा विराट् रूप दे दिया गया है। जीवनके प्रत्येक क्रिया-क्षेत्रमें काम ही सब कुछ है। फल यह हुआ है कि कामके साथ जो पवित्रताकी भावना थी, वह आँखोंसे बिल्कुल दूर हो गयी। बिजली एक सर्वव्यापक वस्तु है, उसमें महान् शक्ति है और वह नाश करनेवाली भी है, परंतु

बुद्धिमत्ता और विवेकसे काममें लानेपर आधुनिक जीवनके लिये यही प्राकृतिक तत्त्वोंमेंसे बड़े कामकी वस्तु सिद्ध हो सकती है। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध भी निस्सार नहीं है; पर उससे बचनेके लिये सभी जगह खतरेको देखनेसे थोड़े ही काम चलेगा, और न उसकी यही दवा है कि विलासिताको निर्बाध गति दे दी जाय। इस खतरेसे बचनेका उपाय है शुद्ध, नियमित एवं व्यवस्थित जीवन। विज्ञान सत्य हो सकता है; पर यदि सत्यको किसी पक्षपातपूर्ण आग्रहके कारण इतना अतिरञ्जित किया जाय कि जीवनके अन्य कल्याणकारी क्षेत्रोंकी अवहेलना हो जाय तो सत्यका अनिष्टकारी अर्द्धसत्यमें पतन हो जाता है। वह एक अन्धविश्वास बन जाता है, जिसकी विवेक नहीं, विज्ञान पीठ ठोंकता है।

पुरुषने जो कुछ भी स्त्रीके प्रति कहा है और मन्द ही सही, पर दूसरी ओर उसकी जो अवश्यम्भावी प्रतिक्रिया हुई है, उन सबके होते हुए भी यदि ठीक दृष्टिसे देखा जाय तो जीवनके खाने-खानेमें नारी-जातिका एक आवश्यक स्थान दिखायी देगा। हम देखेंगे कि उसका प्रभाव पावन और संस्कृत है; वह प्रेरणा देनेवाली, पवित्र बनानेवाली तथा संयम सिखानेवाली एक शक्ति है और सबसे बढ़कर वह एक सतत सौन्दर्य और आनन्दकी वस्तु है। नारी चाहे कितनी भी अबला और स्खलनशील हो, माताके रूपमें उसका सर्वोत्कृष्ट स्वरूप देखनेको मिलता है। तभी वह अपने सारे गुणोंको प्रकट करनेमें समर्थ होती है। 'मा' शब्दमें ही एक अनिर्वचनीय पवित्रता है। हमारे कोमलतम और उच्चतम विचार तथा प्रियतम एवं चिरसञ्चित स्वप्न वहीं केन्द्रित हैं। 'मा' शब्दका व्यवहार हम उन वस्तुओंके लिये करते हैं, जिन्हें हम जीवनमें सर्वाधिक प्यार करते हैं। उदाहरणके लिये हम 'मातृभाषा' और 'मातृभूमि' का प्रयोग इसीलिये करते हैं कि अपनी भाषा और अपने देशको हम दूसरोंसे श्रेष्ठ समझते हैं। अंग्रेजीमें अपने विद्यालयको अल्मामेटर (Alma mater—दयामयी जननी) कहकर पुकारनेकी प्रथा है; क्योंकि हमारी प्रियतम और सुखप्लुत स्मृतियोंका केन्द्र वही है। इतना ही नहीं, कभी-कभी भगवान्‌की भी माके रूपमें भावना की जाती है, जैसा कि हिंदू-धर्ममें की गयी है। भगवदीय प्रेम और दयालुताकी ऐसी अभिव्यञ्जना, जो पूर्णताकी सीमाको छूनेका साहस कर सकती है, केवल माताके ही प्रतीकसे हो सकती है। ईसाइयोंमें भी कुमारी मरियमकी पूजा होती है, जो उनकी त्रिविभूतियोंके पवित्र पुरुष और ईश्वररूपमें देखे जानेवाले ईसामसीहकी जननी हैं। यदि प्रत्येक गली-कूचेमें इस बातका साक्षात् प्रमाण देना हो कि मनुष्य भगवान् है तो सर्वोत्तम उपाय यही है कि हम अपनी माताओंकी ओर निर्देश कर दें। प्रमाणमें यहूदियोंकी यह उक्ति है कि 'भगवान् सब जगह [प्रकट] नहीं हो सकते, इसीलिये उन्होंने माताओंकी सृष्टि की।' प्रत्येक देशमें और प्रत्येक कालमें मनुष्यने माताको सर्वाधिक भक्ति और सर्वाधिक श्रद्धाका पात्र माना है, जैसा 'पजन्द'की इस उक्तिसे स्पष्ट है कि 'किसी भी परिस्थितिमें माको अप्रसन्न मत करो।' हिंदुओंके महान् स्मृतिकार मनुने भी माताको सर्वोच्च आसनपर बैठाया है। वे कहते हैं—'गुरुका आदर करना चाहिये, पर पिता गुरुसे सहस्रगुना आदरणीय है और माता तो पितासे भी सहस्रगुना अधिक आदरणीया है।'

सच्चे प्रेमका आधार है स्वार्थका पूर्णतया त्याग और ऐसे प्रेमके सर्वोत्कृष्ट रूपका दर्शन माताओंके स्नेहमें ही होता है। बड़ा गम्भीर और बड़ा तीव्र होते हुए भी इस प्रेमकी डुग्गी नहीं पिटती और न काव्य या साहित्यमें ही इसके गीत गाये जाते हैं या उल्लेख होता है। नायक-नायिकाके प्रेमका वर्णन करनेमें कविलोग दूर-दूरकी कौड़ी लाये हैं, पर मातृहृदयसे उद्भूत पवित्रतम और निःस्वार्थतम स्नेहके चित्रणकी ओर शायद ही किसीने ध्यान दिया है। प्रेमास्पदोंने प्रेमियो-को और पत्नियोंने पतियोंको भले ही धोखा दिया हो, पिताओं-ने पुत्रों और पुत्रोंने पिताओंका अपमान किया हो, बहिनों और बेटियोंने अपने भाइयों और पिताओंके प्रति निष्ठुरता और वात्सल्यविहीनताका व्यवहार किया हो, सौतेली मा भी अपनी मरी हुई सौतके बच्चोंके प्रति प्रायः निर्मम और कठोर होती है; पर ऐसी अस्वाभाविक माताओंका उदाहरण कम मिलेगा, जिन्होंने अपनी कोखसे उत्पन्न हुई संततिको धोखा दिया हो। माताओंमें भी उनके अपने दोष होते हैं; पर अपनी संतानके दुःखोंके प्रति उपेक्षा एक ऐसी बात है, जो कोई माता करेगी ही नहीं—कर ही नहीं सकती। जननीके वात्सल्यमें कामकी दुर्गन्ध नहीं रहती, लोभसे उत्पन्न अस्थिरता नहीं रहती और वह स्वार्थसे कलुषित नहीं होता। माताओंका स्नेह, दया और क्षमा अपार होती है। सहिष्णुता और त्याग माताओंके स्वाभाविक गुण होते हैं। अपने बच्चेको पेटमें नौ महीने रखनेके तपस्याकालमें ही ये उनके हृदयमें उत्पन्न हो जाते हैं और फिर जीवनपर्यन्त वर्तमान रहते हैं।

अधिकांश स्त्रियाँ वन्ध्यत्वको अभिशाप समझती हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि वात्सल्यके रूपमें अपनी दिव्यताको प्रकट करनेसे यह उन्हें वञ्चित रखता है। बचपनमें ही अपनी मासे हाथ धो बैठनेवाला, उसके स्नेहामृतपानसे तथा उसके सेवाधिकारसे वञ्चित मनुष्य निश्चय ही अभागा है। उसके घाटेकी पूर्ति तो फिर इसी बातसे हो सकती है कि अपनी एक जीवनसगिनीको छोडकर अन्य समस्त स्त्रियोंको वह मा माने और तदनुरूप ही उनका आदर भी करे। सेंट आगस्टाइन, शिवाजी और जान रस्किन आदि-जैसे महान् व्यक्तियोंने अपने ऊपर माताओंके ऋणको मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। ये व्यक्ति अपने पिताओंके सम्बन्धमें भले ही कुछ न बोले हों, पर अपनी माताओंका तथा अपने चरित्र एवं जीवन-वृत्तपर उनके प्रभावका इन्होंने खूब गुण गाया है। इसमें कोई आश्चर्यकी बात भी नहीं, क्योंकि माता ही शिशुकी प्रथम गुरु है। स्वय सब प्रकारके सकटोको उठाकर अपने बच्चेकी सब प्रकारकी निवार्य विपत्तियों और कष्टोंसे रक्षा करती हुई प्रेम और आत्मत्यागद्वारा वह उसे शिक्षा देती है। सभी शिक्षकोंमे उसका स्थान सर्वश्रेष्ठ है, बीमारीके समय उससे बढ़कर कुशल सेवा करनेवाली दूसरी नहीं और नित्यप्रतिके जीवनमें भी वही सबसे योग्य पथप्रदर्शक, तत्त्वज्ञानी और मित्र है।

प्रेम अधा होता है और प्रणयकी अपेक्षा मातृस्नेहके विषयमे यह उक्ति अधिक ठीक है। किसी माने अपने बच्चेको कभी मूर्ख अथवा दुष्ट नहीं समझा; बल्कि सारे ससारकी सम्मिलित सम्मतिके विरुद्ध भी वह निर्भीक होकर अपने पुत्रके पक्षमे खड़ी होकर बोलेगी। उसका प्रेम उसके लिये सत्यके ऊपर पर्दा डाल देता है। उसका पक्षपात उसके विवेकको हर लेता है। इसीको सर हाल केन (Sir Hall Caine) साहब माताओंकी दिव्य मूढता (The divine foolishness of mothers) के नामसे पुकारते हैं। माताके स्नेहका बच्चे भी स्वाभाविक ही पूरा-पूरा प्रत्युत्तर देते हैं। यह बात गलत होते हुए भी बच्चे ऐसा विश्वास करते हैं कि शारीरिक और नैतिक सौन्दर्यकी दृष्टिसे उनकी माताएँ तो बस, अनुपम देवियाँ हैं। पुत्र ऐसा विश्वास करते हैं कि उनकी माताएँ सब प्रकारकी मानवीय भूलों और दुर्बलताओंसे ऊपर उठी हुई हैं; और जैसे माताओंको पुत्रके दोष नहीं दीखते, वैसे ही पुत्र भी माताओंके दोष देखनेमें असमर्थ होते हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कैसे प्रेम और विवेक एक साथ नहीं रह सकते, और कैसे प्रेम बड़े-बड़े बुद्धिशाली मस्तिष्कोंको भी अस्थिर कर देता है। ऐसी परिस्थिति देखकर मेटरलिंक (Macterlinck) की यह विचित्रोक्ति समझमें आ जाती है कि 'अपने बच्चोंको प्यार करते समय सभी माताएँ सम्पत्तिशालिनी हो जाती हैं, कोई माता दरिद्र, कुरूप या जरा-जीर्ण नहीं रहती।' (All mothers are rich when they love their children, there are no poor mothers, no ugly ones, no old ones) नीतिशास्त्रके सारे नियमोपनियम यदि किसी एक विशेष व्यक्तिमें एकत्रित हो सकते हैं तो पुत्रके लिये एक 'मा' शब्दमे वे सब-के-सब संगृहीत हो जाते हैं। उसके लिये मा सदैव ही गौकी तरह सीधी, हिमकी भाँति निर्मल और गङ्गाके समान पवित्र है। यदि वसुन्धरापर कोई ऐसी वस्तु है, जो भगवदीय प्रेमकी अधिक-से-अधिक स्मृति दिला सकती है, तो वह मा है। इसीसे वेदमें कहा है—'मातृदेवो भव'। पृथ्वीपर भगवान्‌की स्वरूपभूता माता ही है।

पूर्वकी स्त्रियाँ

पूर्वकी स्त्रियाँ यूरोपकी स्त्रियोंकी तरह प्रकाशमें नहीं आतीं, किंतु अपने परिवारकी न्यायोचित सीमामें उनका प्रभाव अपनी पाश्चात्त्य बहिनोंसे कम नहीं होता। उनमें शिष्टाचार तथा सदाचार भी कम नहीं होता। पश्चिमी स्त्रियोंकी स्वतन्त्रताका अधिकांश परिणाम जिन्हें मालूम है, उन्हें विचार करना चाहिये कि स्त्रियोंके प्रति पाश्चात्त्योंका व्यवहार अधिक बुद्धिमानीका है या पौरस्त्योंका।

—सर [illegible]

पञ्च-सती

(१)

सावित्री

मनमें वरण एक बार जिसका है किया,
शरण उसीकी ले बढ़ाती वहीं रतिको ;
होवे अल्पजीवी या अनेक कल्पजीवी वर,
पर उस ओरसे हटाती नहीं मतिको।
धर्मबलसे ही धर्मराजको सदल जीत
अदल-बदल देती विधिकी नियतिको ,
निज ननभाल होके करती सँभाल सती,
कालके भी मुखसे निकाल लाती पतिको ॥

(२)

शैव्या

तन-मन-प्राणसे सतत अनुगामी रह
स्वामीके न सत्य और धर्मको निभाती जो ,
भारी ऋण-भारको उतार कैसे पाते प्रिय,
चेरी बन विप्रकी न आप ही बिकाती जो।
बातें देव होकर अधीर क्यों? पतिव्रता न—
चीर निज चीर सुत-कफन बनाती जो ,
हरिश्चन्द्र चन्द्र-से चमक उठते क्या? नहीं
शैव्याके सतीत्वकी अमंद रश्मि आती जो ॥

(३)

सीता

सेवा हाथ आये वनमें भी प्राणनाथकी जो,
साथ-साथ मनमें मुदित वहाँ जातीं ये ;
सोनेके सुमेर मिलें, वरुण-कुबेर मिलें,
ढेर मिलें रत्न-राज्य, तो भी ठुकरातीं ये।
कर अपमान नहीं बचता दशानन भी,
लङ्कापुरीकी भी धुरी धूलमें मिलातीं ये ,
शिक्षा हेतु, स्वर्ण-से सतीत्वकी परीक्षा हेतु,
ज्वलित चिताग्नि बीच जीते-जी समातीं ये ॥

(४)

दमयन्ती

आये द्वार देवोंको बिसार प्यार-प्रेरित हो
निज प्रिय कंठमें पिन्हाती जयमाला है ,
दीनदशा पतिकी विलोक लोक-लाज त्याग
साथ नाथके ही रह सहती कसाला है।
तुल्य पतिव्रतके न मानती अमूल्य धन,
प्राण दे-दे पाला, उसे सतत सँभाला है ,
आये कालनाग या सताये विकराल व्याध,
दग्ध किये डालती सतीकी क्रोध-ज्वाला है ॥

(५)

देवहूति

राज-तनयासे मुनिराजकी वधूटी हुई,
छूटी हुई संपदाकी किन्तु नहीं चाह है ;
निज पतिदेवके सदैव लगी सेवनमें
सीमाहीन प्रणय-पयोनिधि-प्रवाह है।
गाते गुण-गौरव अघाते नहीं देववृन्द,
रम्य रूप-शीलकी अनूप धूप-छाँह है ,
प्यार मिला प्रियका अपार वैभवोंके साथ
महिमा सतीकी अहो! अमित अथाह है ॥

—'राम'

पञ्च-सती
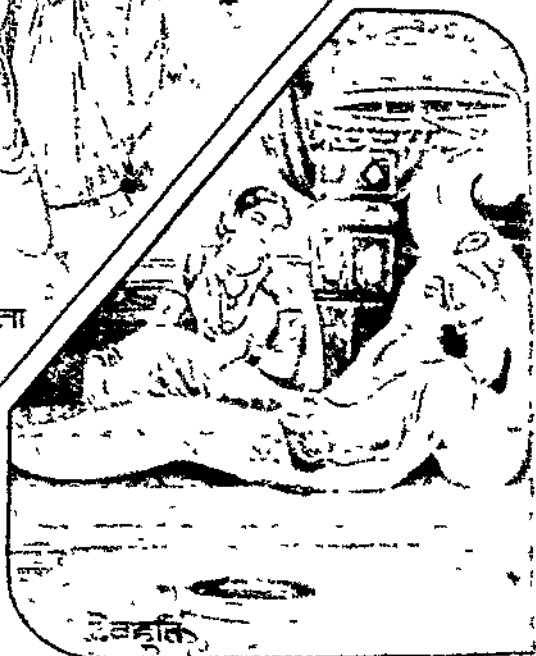
सावित्री, शैव्या, सीताजी, देवहूति औ दमयन्ती।
आर्यजगत्‌की परम पावनी पाँच सती ये कुलवन्ती॥

लड़कियोंकी शिक्षा

(लेखक—पं० श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी)

लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियोंकी शिक्षामें विशेष सावधानी अपेक्षित है। सामान्यतः लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियोंकी बुद्धि अधिक तेज होती है, परंतु शरीरमें (और मस्तिष्कमें भी) मृदुता भी अधिक होती है। यही कारण है कि गणित-जैसे शुष्क और बुद्धिग्राह्य विषयोंमें उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाली महिलाएँ शरीरसे प्रायः निस्तेज और निर्बल हो जाती हैं। ऐसी स्त्रियाँ स्वभावतः गृहस्थीमें दयनीय स्थिति उत्पन्न कर देती हैं। सदा बीमार रहनेसे वे स्वयं तो दुखी रहती ही हैं, कुटुम्ब भी सुखी नहीं रहता। विद्या सुखके लिये होती है; पर यहाँ दुःखदायी हो जाती है। दूध और घी अमृत है, परंतु जितना पच सके। अन्यथा, विष भी बन सकता है। इसी तरह महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालयकी शिक्षा भी समझिये, विशेषतः परीक्षा पास करानेवाली शिक्षा। परीक्षाओंके दुर्वह भारसे कठोर पुरुष-शरीर भी प्रायः दबकर क्षीण हो जाता है। फिर स्त्रीका तो कहना ही क्या! इसलिये उच्च शिक्षा देने-दिलानेके पहले माता-पिताको अपनी लड़कीकी रुचि तथा योग्यताके साथ-साथ शारीरिक स्थितिका भी ख्याल कर लेना चाहिये। शक्तिके अनुसार ही काम अच्छा होता है। हाँ, साधारणतः मैट्रिक, सम्मेलनकी प्रथमा अथवा महिलाविद्यापीठकी 'विद्या-विनोदिनी' परीक्षा तो प्रत्येक लड़कीके लिये एक तरहसे जरूरी ही है। परीक्षा न हो तो कम-से-कम इतनी योग्यता सही। इस अवस्थामें कुछ लड़कियोंका विवाह हो जायगा; कुछके लिये बातचीत चालू होगी। तबतक इंटर-सम्मेलनकी मध्यमा या विद्यापीठकी 'विदुषी' परीक्षा दी जा सकती है और यह पढ़ाई घरपर भी हो सकती है। बस, इसके बाद अधिक सोच-विचार करना है—अधिक अच्छा यही है कि इसी समय विवाह कर दिया जाय। आगे चलकर अपने पतिगृहसे भी उच्च परीक्षा वर्ष-दो वर्षमें दी जा सकती है—यदि अनुकूल वातावरण हो। अन्यथा, घर-गृहस्थी चलाने योग्य और छोटे बच्चोंको घरपर ही साधारण शिक्षा देनेके लिये योग्य इतना पर्याप्त है। जिन्हें पढ़ना ही है और जिनका शरीर पूर्ण स्वस्थ है, साथ ही जो विवाहकी उतनी चिन्ता नहीं करतीं, वे आगे बढ़ सकती हैं। बी० ए० तथा एम्० ए० पास लड़कियोंके लिये वर मिलना प्रायः कठिन हो जाता है और तब इच्छा या अनिच्छासे उन्हें अविवाहित जीवन ही बिताना पड़ता है। आगे चलकर किसी समय वह एकाकी जीवन असहाय अवस्थाका अनुभव कराता है, विशेषतः बुढ़ापेमें। इसलिये मानव-जीवनमें एक साथीकी आवश्यकता भी रहती है। हाँ, जो वैसा एकाकी जीवन पसंद करें, उनकी बात अलग है। किंतु किसी समय उन्हें भी पछताना पड़ेगा, यदि किसी विशेष उद्देश्यके बिना वैसा हो, तब बात और है। एक बार श्रीसुभाषचन्द्र बोससे किसीने पूछा—'आप विवाह न करेंगे?' उन्होंने तुरत उत्तर दिया—'मैं मातृभूमिके बन्धन काटनेमें लगा हुआ हूँ और इसलिये मुझे इतनी फुर्सत ही नहीं मिली कि इस महत्त्वपूर्ण विषयपर कुछ सोच पाता।' यह है लगन! इसी तरह जिन्हें देशमें शिक्षा-प्रचार आदि कुछ करनेकी लगन हो, जो किसी व्रतमें लगी हों, उनकी बात दूसरी है। स्त्री हो चाहे पुरुष, सबका सामान्य मार्ग छोड़कर जो अलग जाय, उसका कोई विशेष उद्देश्य होना चाहिये। अन्यथा वह पतित हो जायगा।

'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥'

(गीता ३।३३)

प्रकृतिपर विजय साधारण बात नहीं है, सबके वशकी बात नहीं है। इसलिये खूब सोच-समझकर आगे बढ़ना चाहिये।

अध्यापिकाओंकी बात

जब आप अपनी लड़कीको किसी शिक्षा-संस्थामें भर्ती कराना चाहें, तब यह अच्छी तरह देख लें कि उसकी व्यवस्था किन लोगोंके हाथमें है। फिर आप यह देखें कि अध्यापिकाएँ वहाँ कैसी हैं। उत्तम वस्तु भी दुराचारसे विष बन जाती है। आचरण बड़ी चीज है। आचरणहीन [illegible] किस कामका? आजकल अध्यापक या अध्यापिकाकी नियुक्ति करते समय प्रायः यही देखा और पूछा जाता है कि कौन-सी परीक्षा पास है! यही कारण है कि शिक्षित समाज राक्षस बनता चला जा रहा है। यदि किसी अध्यापकके किसी प्रत्यक्ष दुराचारकी ओर संचालकोंका ध्यान भी दिलाया जाय, तो कह देते हैं—ऊँह! हमें किसीके प्राइवेट-जीवनसे क्या मतलब? इसीलिये [illegible]

हो रहा है। इस शिक्षासे क्या लाभ? दुश्चरित्र शिक्षितसे निरक्षर सीधा-सादा आदमी समाजके लिये अधिक अच्छा! भोजन तो वही अच्छा कहा जायगा, जिससे शरीरका पोषण हो। विषमिश्रित भोजनसे तो भूखा ही रहना अच्छा! हमारे देशमें पहले आचार (कैरेक्टर) पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता था। आचार्य शिष्यके ज्ञानसंवर्धनपर जितना ध्यान देते थे, उससे सौगुना उसके आचारपर आदेश था—'आचारं शिक्षयेदेनम्।' जिसमें सदाचारका अभाव हो, उस महापण्डितकी भी इज्जत न होती थी। कहा है—

'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।'

आचारहीन व्यक्तिको वेद या ज्ञान पवित्र नहीं करता, उसे ऊँचे नहीं उठा सकता।

लड़कियोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें तो यह बात अत्यधिक ध्यान देने योग्य है, और यह सब अध्यापिकाओंपर निर्भर है। इसलिये माता पिताको चाहिये कि किसी शिक्षा संस्थामें लड़कीको दाखिल करनेसे पहले यह सब भलीभाँति देख ले। इसके बाद भी संस्थामें मा या बड़ी बहनोंको जाते-आते रहना चाहिये, जिससे सब गति-विधिका पता रहे और पढ़ाई-लिखाईकी जानकारी भी रहे।

अध्यापिकाओंके कुछ वर्ग हैं। किसी किसी संस्थामें छोटी-छोटी लड़कियाँ ही पढ़ानेके लिये रख ली जाती हैं; प्रायः उसी संस्थासे मैट्रिक आदि जिन्होंने पास कर लिया। ऐसी लड़कियाँ जिस संस्थामें अधिक अध्यापिकाएँ हों, वहाँ पढ़ाई ठीक न होगी। अनुभवशून्यता, विद्यामें कमी, व्यवहार-अनभिज्ञता आदिके साथ-साथ अस्थिरता भी पढ़ाईके लिये बाधा है। ऐसी लड़कियाँ किसी संस्थामें वर्ष-दो-वर्षसे अधिक नहीं टिकतीं। विवाह हुआ और वे गयीं। सो जिस संस्थामें ऐसी अध्यापिकाएँ अधिक हों, वहाँ अपनी लड़कीको भेजना ठीक नहीं। पढ़ाई कुछ न होगी।

कुछ अध्यापिकाएँ ऐसी होती हैं, जो घरपर गृहस्थी सँभालती हैं और संस्थामें छः घंटे पढ़ाई-लिखाईका काम करती हैं। इन बेचारियोंकी दशा बड़ी दयनीय होती है। न घरका ही काम अच्छी तरह सँभल पाता है, न संस्थाका ही कर्तव्य निभता है। घरमें छोटे छोटे बच्चे छोड़कर आती हैं, उनकी चिन्ता है, वह भूखा होगा। वह रोता होगा। इनका मन पढ़ानेमें लगेगा? कुछ अध्यापिकाएँ अपने छोटे बच्चोंको साथ संस्थामें ले आती हैं। इससे पढ़ाईमें और भी बाधा पड़ती है। ऐसी (गृहस्थ) अध्यापिकाएँ जहाँ अधिक हों, वहाँ भी पढ़ाई ठीक न होगी। इसलिये ऐसी संस्थामें भी लड़कीको तभी दाखिल कराइये, जब प्रगति हो।

अध्यापिकाओंका एक वर्ग और भी है—जो बड़ी उम्रकी है, विवाह करनेकी बात भी नहीं और गृहस्थीकी झंझटमें भी नहीं हैं; परंतु इनकी अधिकता जहाँ हो, वहाँ भी ठीक न होगा। इस वर्गमें या तो वे अध्यापिकाएँ हैं, जिन्होंने 'मिस' जीवन बिताना अपना लक्ष्य बनाया है और या फिर वे हैं, जो किसी कारण पतिसे अलग होकर स्वतन्त्र रह रही हैं। ये दोनो ही अवस्थाएँ छात्राओंके जीवनपर कुछ अच्छा असर नहीं डालतीं। ऐसी अध्यापिकाएँ स्वभावतः 'स्त्री-अधिकार', 'पुरुष-स्वार्थ' आदिकी बातें करती हैं और 'पुरुष निर्दय होते हैं' आदि विषयोंपर लड़कियोंसे निबन्ध लिखवाती हैं। कोमलमति बालिकाओंके मस्तिष्कपर इसका प्रभाव पड़ता है। वे अपना दिमाग वैसा ही बना लेती हैं। विवाह होनेके बाद ये अपनी ससुरालमें उसी दृष्टिकोणसे सब देखती-सुनती हैं। 'कर्तव्य' की अपेक्षा 'अधिकार' पर ही उनका ध्यान अधिक रहता है। घरमें सरसताकी जगह शुष्कता आती है, खट-पट शुरू होती है और एक दिन ये भी अलग होकर अध्यापिका बन जाती हैं। यों यह परम्परा चलती है। ऐसी अध्यापिकाएँ स्वभावतः बहुत चिड़चिड़ी हो जाती हैं; क्योंकि जीवनके सरस सुखसे कभी इनका मेल ही नहीं हुआ। पढ़ाकर घर गयीं, रोटी-चौका-बर्तन! फिर कोई ट्यूशन! फिर स्कूल! ऐसी अध्यापिकाएँ जहाँ होंगी, वहाँ पढ़ी-लिखी लड़की शुष्क तथा अहम्मन्य हो जायगी। वह कर्तव्यकी उपेक्षा करेगी और जा बेजा अधिकार-अधिकार चिल्लाती रहेगी। इसलिये ऐसी संस्थासे बचना चाहिये, जहाँ इस श्रेणीकी अध्यापिकाएँ हों।

अध्यापिकाओंकी एक और श्रेणी है। जो बड़ी उम्रकी विधवाएँ हैं, वे अच्छी अध्यापिकाएँ बन सकती हैं। अध्यापिका-पदके लिये यदि विधवा देवियोंको तैयार किया जाय, तो ये सबसे अच्छा काम कर सकती हैं।

विधवाओंका पुनर्विवाह

आज समाजमें विधवा-विवाहकी धूम है। हम कहते हैं—

उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथापायं च चिन्तयेत्।

उपायके साथ अपायपर भी दृष्टि रखनी चाहिये। समाजमें स्त्रियोंकी संख्या अधिक है और इन्हें जीवन भी अधिक प्राप्त होता है! लड़कियोंके लिये वर ढूँढ़नेमें कितनी दिक्कत होती है! यदि विधवा-विवाह एकदम चालू हो जाय और

जैसा कि लोग चाहते हैं, सब विधवाओंके विवाह करा दिये जायँ, साथ ही एक पुरुष अनेक स्त्रियोंसे विवाह न कर सके और विधुर भी विधवासे ही विवाह कर सके तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देशमें भी 'मिस'-जीवन यूरोप तथा अमेरिकाकी तरह दिखायी देगा ! ये मिसें समाजके लिये, भारतीय समाजके लिये, ठीक न होंगी ! तब इनपर दया करके 'मिस मैरेज सोसायटी' कायम करके इनके लिये प्रचार करना होगा ! विधवासे 'मिस' समाजके लिये कम चिन्तनीय है क्या ? हाँ, जो नाममात्रकी 'विधवा' है या जो नाम मात्रसे 'विवाहिता' होकर रह गयी है, उनका विवाह और बात है। रुचि तथा परिस्थिति देखकर इनके लिये अवश्य विवाहकी व्यवस्था होनी चाहिये और हमारा धर्मशास्त्र भी इसके लिये अनुमति देगा, परंतु बड़ी उम्रकी विधवाओंके लिये यह मार्ग उत्तम नहीं। देशमें स्त्री-शिक्षाकी जरूरत है। हमारी विधवा बहनें अपने त्याग तथा तपश्चर्याके जीवन-से यह काम कर सकती हैं। विधवा वर्गसे अध्यापिकाएँ तैयार करनी चाहिये। फिर इनका जीवन सुखमय हो जायगा। एक उद्देश्यमें लग जानेसे इनका सुख दूसरे दुःखको भुला देगा। वे स्वतन्त्र भी हो जायँगी। फिर किसी कुटुम्बमें इनकी दयनीय स्थिति न रहेगी। अध्यापिकाएँ ऊँचे दर्जेकी मिलेंगी और पढ़ाई भी अच्छी होगी। फिर लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियोंकी शिक्षाका स्तर नीचा न होगा; क्योंकि इनमें बुद्धि कम नहीं होती।

क्या ही अच्छा हो कि हमारे धनी-मानी सेठ साहूकार मिलकर कहीं एक बहुत बड़ी ऐसी केन्द्रिय संस्था स्थापित करें, जहाँ विधवाओंको प्रारम्भिकसे लेकर उच्चतम श्रेणीतक शिक्षा देनेकी व्यवस्था हो और अध्ययन [illegible] भी व्यवस्था हो। यह संस्था ऐसी प्रभावपूर्ण तथा विख्यात हो कि देशभरसे विधवाएँ आ-आकर उसमें दाखिल हों और देशभरसे जहाँ अध्यापिकाओंके लिये माँग आया करे।

पाणिग्रहणकी प्रतिज्ञा

(अनु०—श्रीगोविन्दजी झा)

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगोऽर्य्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥

जीवनके इस पुण्य पर्वमे धरता हूँ मैं हाथ। रहो सुहागभरी चिर दिन तुम, सुभगे ! मेरे साथ ॥
सुन्दरि ! तुमसे मुझे मिलाया है देवोंने आज। तुमको देता हूँ मैं अपने गार्हपत्यका राज ॥

अमोऽहमस्मि मा त्वं मा त्वमस्यमोऽहम् ।
सामाहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ॥

तुम लक्ष्मी हो, मैं तो अबतक था लक्ष्मीसे हीन। सचमुच तुम लक्ष्मी हो, मैं था बिना तुम्हारे दीन ॥
सुभगे ! तुम हो ऋचा सामकी, मैं हूँ स्वरका लास। तुम हो सुजला-सुफला धरणी, मैं निर्मल आकाश ॥

तावेहि विवहावहै सह रेतो दधावहै ।
प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून् ॥

आओ, बाँधें प्राण परस्पर ले विवाहका सूत। दें दुनियाँको मिलित शक्तिसे रचकर कई सपूत ॥

ते सन्तु जरदष्टयः सम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम् ॥

हम दोनों सुन्दर छवि लेकर रहे प्रेममें मग्न। दोनोंके मानस हों मङ्गलमय भावोंमें लग्न ॥
देखें शत शरदोंकी शोभा, जिएँ सुखी सौ वर्ष। सुनें कोकिलोंके कलरवमें भी वसन्तके हर्ष ॥

(ऋग्वेद ८ । ३ । २७)

स्त्री-शिक्षा और सहशिक्षा

प्रायः सभी धार्मिक तथा विद्वान् महानुभावोंका यह मत है कि वर्तमान प्रचलित शिक्षाप्रणाली हिंदू नारियोंके आदर्शके सर्वथा प्रतिकूल है; फिर जवान लड़के-लड़कियोंका एक साथ पढ़ना तो और भी अधिक हानिकर है। इस सहशिक्षाका भीषण परिणाम प्रत्यक्ष देखनेपर भी मोहवश आज उसी मार्गपर चलनेका आग्रह किया जा रहा है। इसका कारण प्रत्यक्ष है।

जिन बातोंको हमारे यहाँ पतन समझा जाता है, वही बातें आजके जगत्‌की दृष्टिमें उत्थान या उन्नतिके चिह्न मानी जाती हैं। पाश्चात्य सभ्यताका आदर्श आज हमारे हृदयोंमें सबसे ऊँचा आसन प्राप्त कर चुका है, अतएव अंधे होकर उसकी ओर स्वयं अग्रसर होना और दूसरोंको ले जानेकी चेष्टा करना स्वाभाविक ही है।

पहले 'समानशिक्षा'पर कुछ विचार करें। शिक्षाका साधारण उद्देश्य है मनुष्यके अंदर छिपी हुई पवित्र तथा अभ्युदयकारिणी शक्तियोंका उचित विकास करना। परंतु क्या पुरुष और स्त्रीमें शक्ति एक-सी है? क्या पुरुष और स्त्रीकी शक्तिके विकासका क्षेत्र एक ही है? क्या सब बातोंमें पुरुषके समान ही स्त्रीको शिक्षा ग्रहण करनेकी आवश्यकता है? गम्भीरतासे विचार करनेपर स्पष्ट उत्तर मिलता है—'नहीं!' दोनोंकी शरीर-रचनामें भेद है, दोनोंके कार्योंमें भेद है, दोनोंके हृदयोंमें भेद है और दोनोंके कर्मक्षेत्र भी विभिन्न हैं। अतः इस भेदको ध्यानमें रखकर ही शिक्षाकी व्यवस्था करनी चाहिये। इस प्रकृति-वैचित्र्यको मिटाकर आज हम प्रमादवश स्त्री-पुरुषको सभी कार्योंमें समान देखना चाहते हैं। इस पाश्चात्य साम्यवादकी मोहिनी आशाने हमारी मतिको तमसाच्छन्न कर दिया है, इसीसे हमें आज प्रत्यक्ष भी अप्रत्यक्ष हो रहा है। ध्यानसे देखनेपर दोनोंमें दो प्रकारकी शक्तियाँ माननी पड़ती हैं और दोनोंके दो क्षेत्र भी मानित होते हैं। स्त्रियोंका क्षेत्र है घर, पुरुषका क्षेत्र है बाहर। स्त्री घरकी स्वामिनी है, पुरुष बाहरका मालिक है। 'घर' और 'बाहर'से यह मतलब नहीं कि स्त्री सदा घरके अंदर बंद रहे और पुरुष सदा बाहर ही रहे। स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर ही एक सच्चा 'घर' है। पति बाहर जाता है, उसी 'घरके' लिये और स्त्री घरमें रहती है उसी 'घर'के लिये। इसी प्रकार आवश्यक धार्मिक या सामाजिक कार्यके निमित्त स्त्री घरकी मर्यादाके अनुसार पति-पुत्रादिके साथ बाहर जाती है उसी 'घर'के लिये—'घर'को भूलकर स्वतन्त्र शौकसे नहीं। पति घरमें आता है 'घर'के लिये—'घर'को भूलकर, बाहरकी सफलतामें फूलकर, अभिमानमें डूबकर, हुकूमत करनेके लिये नहीं। घर-बाहरकी यह व्यवस्था, जाना-आना, मिलना-जुलना, कमाना-खाना, पाठ-पूजन, दान-पुण्य, आचार-व्यवहार—सब इस एक ही 'घर'को सुरक्षित और समुन्नत बनानेके लिये है।

स्त्रीको मातृत्वमें जो सुख है, घरकी स्वतन्त्रतामें जो आनन्द है, वह दफ्तरकी क्लर्कीमें कहाँसे मिलेगा? स्त्रीका खास क्षेत्र मातृत्व है। उसके सारे अङ्ग आरम्भसे इस मातृत्वके लिये ही सचेष्ट हैं। वह मातृत्वका पोषण करनेवाले गुणोंसे ही महान् बनी है। वह माता बनकर ही बड़े-से-बड़े यशस्वी पुरुषोंको अवतरित करती है। सब प्रकारके पुरुषोचित बड़े-से-बड़े प्रलोभनोंपर लात मारकर—बहुत बड़ा त्याग करके ही नारी इस मातृत्वके गौरवपूर्ण पदको प्राप्त करती और सुखी होती है। जिस शिक्षासे इस मातृत्वमें बाधा पहुँचती है, जिस शिक्षामें स्त्रीके पवित्र मातृत्वके आधारस्वरूप सतीत्व-पर कुठाराघात होता है, वह तो शिक्षा नहीं है, कुशिक्षा है।

एक पत्रमें प्रकाशित हुआ था कि एक फैशनेबल पाश्चात्य युवतीने अपने बालकको इसलिये मार डाला कि उसको रात्रिके समय खाँसी अधिक आती थी, इस कारण वह बहुत रोता था और इससे युवतीके सुख-शयनमें विघ्न होता था। एक युवतीने बच्चेके पालन-पोषणसे पिंड छुडानेके लिये आत्महत्या कर ली थी। मातृत्वका यह विनाश कितना भयङ्कर है? परंतु जिस उच्च शिक्षाके पीछे आज हम व्याकुल हैं, जिस सभ्यताका प्रभाव आजकी हमारी स्त्री-शिक्षाको सञ्चालित कर रहा है, उस सभ्यताके मातृत्व-नाशका तो यही नमूना है! आज हम स्त्रियोंके मातृत्वका विनाश कर उन्हें नेतृत्व करना सिखाते हैं, परंतु यह भूल जाते हैं कि यदि मातृत्व या सतीत्वका आदर्श न रहा, यदि स्त्री अपने स्वाभाविक त्यागके आदर्शको भूल गयी—वह स्नेहमयी मा, प्रेममयी पत्नी या त्यागमयी देवी न रही, तो उसका नेतृत्व किसपर होगा।

याद रखना चाहिये कि विदेशी भाषामें बी० ए०, एम्० ए० हो जाना कोई खास शिक्षा नहीं है। परायी भाषा सीखकर ही कोई स्त्री विदुषी नहीं हो जाती, इसीसे उसमें कोई दिव्य गुण नहीं आ जाते। विदेशी भाषा सीखनेमें भी आपत्ति

नहीं, यदि उससे कोई हानि न हो तो; परन्तु अपनी शुद्ध संस्कृतिका बलिदान कर उसके बदले विदेशी भाषा सीखकर शिक्षिता कहलाना तो बहुत ही घाटेका सौदा है। इस शिक्षाके फलस्वरूप स्त्रियोंमें आजकल जो नवीन सामाजिक प्रयोग शुरू हुए हैं, उनसे भी उनकी और समाजकी नैतिक और धार्मिक दोनों ही दृष्टियोंसे यथेष्ट हानि हो रही है। इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि स्त्रियोंको पढ़ना-पढ़ाना नहीं चाहिये। द्रौपदी बहुत बड़ी विदुषी थी, राज्य-सञ्चालन कर सकती थी और महाभारत-युद्धकी मन्त्रणा-सभामें भी वह अपने पतियोंके साथ रहती थी; परंतु वह आदर्श सद्गृहिणी भी थी। अहल्याबाई विदुषी और धर्मशीला थी। अतएव सद्गृहिणी होकर ही स्त्रियाँ विदुषी बनें। ऐसी ही पढ़ाईकी आवश्यकता है। इस दृष्टिसे आजकी युनिवर्सिटियोंकी शिक्षा नारी-जातिके लिये निरर्थक ही नहीं, वरं अत्यन्त हानिकर है। जो शिक्षा स्त्रियोंके स्वाभाविक गुण मातृत्व, सतीत्व, सद्गृहिणीपन, शिष्टाचार और स्त्रियोचित हार्दिक उपयोगी सौन्दर्य-माधुर्यको नष्ट कर देती है, उसे उच्च शिक्षा कहना सचमुच बड़े ही आश्चर्यकी बात है। जिस विद्यासे सद्गुण रह सकें और बढ़ सकें, उसी विद्याको पढ़ाकर नारियोंको विदुषी बनाना चाहिये, और इसीकी आवश्यकता भी है। शिक्षा यथार्थ वही है, जिससे संस्कृतिकी रक्षा तथा सद्गुणोंका विकास हो। यह जिसमें हो, वही सुशिक्षिता है। इसलिये वर्तमान स्त्री-शिक्षामें आमूल परिवर्तन होना चाहिये और ऐसी शिक्षा-पद्धति बननी चाहिये, जिससे नारीको अपने स्वरूपका तथा कर्तव्यका यथार्थ ज्ञान हो।

अब सहशिक्षापर विचार कीजिये। स्त्रियोंमें बहुत से स्वाभाविक गुण हैं। उन्हीं गुणोंके कारण वे महान् पुरुषोंकी माताएँ बनती हैं। उन्हीं गुणोंका विकास करना स्त्री-शिक्षाका उद्देश्य होना चाहिये। परन्तु साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि जो चीज जितनी बढ़ी-चढ़ी होती है, वह उल्टे मार्गपर चले तो उससे हानि भी उतनी ही अधिक होती है। स्त्रीको उन्नत बनानेवाले त्याग, सहनशीलता, सरलता, तप, सेवा आदि अनेक आदर्श गुण हैं। परंतु स्त्री यदि चरित्रसे गिर जाती है तो फिर उसके यही गुण विपरीत दिशामें पलट-कर उसे अत्यन्त भयङ्कर बना देते हैं!

स्त्री-पुरुषके शरीरकी रचना ही ऐसी है कि उनमें एक दूसरेको आकर्षित करनेकी विलक्षण शक्ति मौजूद है। नित्य समीप रहकर संयम रखना असम्भव-सा है। प्राचीन कालके तपोवनमें निर्मल वातावरणमें रहनेवाले जैमिनि, [illegible] पराशर-सरीखे महर्षि और न्यूटन और मिल्टन-जैसे [illegible] पुरुष और वर्तमान कालके बड़े बड़े साधक पुरुष भी जब संसर्ग-दोषसे इन्द्रिय संयम नहीं कर सके, तब सिनेमाओंमें जानेवाले, गंदे उपन्यास पढ़नेवाले, तन-मन और वाणीसे सदा शृङ्गारका मनन करनेवाले, भोगवादको प्रश्रय देनेवाली केवल अर्थकरी विद्याके क्षेत्र कालेजोंमें पढ़नेवाले और यथेच्छ आचरणके केन्द्रस्थान छात्रावासोंमें निवास करनेवाले विलासिताके पुतले युवक-युवतियोंसे गुरुकुलों-जैसा इन्द्रिय-संयमकी आशा करना तो जान बूझकर अपनेआपको धोखा देना है। परंतु क्या किया जाय, आज बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् भी यूरोपका उदाहरण देकर सहशिक्षाका समर्थन कर रहे हैं, मतिवैचित्र्य है!

कुछ लोग संस्कृत नाटकोंके आधारपर प्राचीन गुरुकुलोंमें सहशिक्षाका होना सिद्ध करते हैं; परंतु उन्हें यह जानना चाहिये कि प्राचीन ग्रन्थोंमें कहीं भी कन्याओं और किशोर ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर एक साथ पढ़नेका प्रमाण नहीं मिलता, गुरु-कन्याओंके साथ भाई-बहनके नाते ब्रह्मचारी गुरुकुलमें अवश्य रहते थे। परंतु गुरुकुलोंमें अत्यन्त कठोर नियम थे। सभी बातोंमें संयम था और आजकलके कालेज होस्टलोंकी तरह विलासिता और स्त्री-पुरुषकी परस्पर कामवृत्ति जगानेवाले साधन वहाँ नहीं थे। इतनेपर भी उन दिनोंमें इतिहासके अनुसार कहीं-कहीं अनर्थ होनेकी सम्भावना थी ही। अतएव इससे आजकलकी सहशिक्षाका समर्थन होना कदापि नहीं हो सकता।

कुछ वर्षों पूर्व लाहौरके एक सुधारक पत्रमें लड़कियोंकी सहशिक्षाके विरोधमें एक जिम्मेदार सज्जनका लिखा एक लेख निकला था, जिसमें लिखा था कि .... की लेडी हेल्थ आफिसरकी घोषणाका स्मरण किया जाय, जो उन्होंने ...... के विद्यालयोंमें पढ़नेवाली विद्यार्थिनियोंके स्वास्थ्यकी देखभाल करके की थी कि बारह वर्षसे ऊपरकी आयुवाली कोरी लड़कियोंमें १० प्रति-शतके लगभग आसवती (गर्भवती) और गर्भपात करनेवाली पायी जाती हैं। यदि निष्पक्षतासे देखा जाय तो सब ओर यही आग लगी हुई है; परंतु माता-पिता और देशके नेता क्या सोच रहे हैं, यह हमारी समझके बाहर है।

१० प्रतिशत तो बहुत बड़ी संख्या है, १० प्रतिशत भी हो तो बहुत ही भयानक है। विश्वास नहीं होता कि यह संख्या सत्य है। सम्भव है इसमें भूल हुई हो, परंतु इतना

तो [illegible] समझना होगा कि आजकल स्कूलोंमें पढ़नेवाली युवती [illegible] बिगड़नेकी सम्भावना बहुत [illegible] और इसलिये ऐसी घटनाओंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। और इसीसे आजकी ये लड़कियाँ [illegible] भी [illegible] लगी हैं। * जब [illegible] तब स्वेच्छाचारको ही आदर्श माननेवाली शिक्षिता बयस्का स्त्रीका क्या हाल हो सकता है, यह सोचते ही हृदय काँप उठता है। पाश्चात्य देशोंमें तो ऐसा होता था, पर अब यहाँ भी वैसा ही होने लगा। यही हमारी उन्नति है, यही हमारा जागरण है! इसलिये इस विषयपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिये और प्रगतिके नामपर इस बढ़ती हुई पतनकी धाराको रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये!

वर्तमान स्त्री-शिक्षामें परिवर्तनकी आवश्यकता

(ले०—श्रीमती कु० शकुन्तला गुप्ता बी० ए०, हिंदी आनर्स)

इस दृष्टिसे भारतवर्ष अवश्य भाग्यवान् है कि यहाँकी जनताका ध्यान प्रतिदिन शिक्षाकी ओर आकर्षित होता जा रहा है। स्त्री-पुरुष और बच्चे सभी इस दिशाकी ओर उन्मुख हो गये हैं; परन्तु किसके लिये कौन पथ श्रेयस्कर है, इसका निर्णय नहीं हो पा रहा है। लक्ष्यहीन पथिककी भाँति जिसके जीमें जिधर आता है, वह उधर ही उड़ान मार रहा है।

अतः शिक्षाका युग होनेपर भी आश्चर्य है कि स्त्री-पुरुष किसीको भी अपने कर्तव्यका ध्यान नहीं है। पथका ज्ञान नहीं है। सोचनेपर हम इसी तथ्यपर पहुँचते हैं कि हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति ही ऐसी है, जिसने युवक और युवतियोंकी पवित्र भावनाओंको नष्ट कर उन्हें परानुकरण-परायण बना दिया है और उन्हें मार्गदर्शन बनाकर मानसिक परतन्त्रताकी शृङ्खलामें आबद्ध कर दिया है। उनके मस्तिष्कके लिये ऐसे विषय मिलते हैं, जो उनके सार्वजनिक जीवनके लिये अनुपयुक्त और हानिकारक सिद्ध होते हैं।

चकित कर देनेवाली सृष्टिके रचयिता विधाता अल्पज्ञ नहीं थे, जिन्होंने जीवन-शकट चलानेके लिये स्त्री और पुरुषको भिन्न-भिन्न रूपमें रचा और उनमें महत्त्वपूर्ण भेद उत्पन्न कर दिया। उनकी प्रकृति भिन्न बना दी। इस प्रकार आदिकालसे ही जब स्त्रियोंके कार्य-क्षेत्र पुरुषोंसे सर्वथा पृथक् हैं, फिर एक ही शिक्षा दोनोंके लिये किस प्रकार उपयोगी हो सकती है?

यह प्रवाह जिस प्रकार चल रहा है, उसे देखते हुए कहना पड़ता है कि स्त्रियाँ भी आज बाह्य क्षेत्रमें पुरुषोंसे आगे बढ़ जानेके लिये होड़ ले रही हैं! यह पाश्चात्य शिक्षाका ही प्रभाव है, जिसने हमें बाहरसे भारतीय रखकर भी मनसे विदेशी बना दिया है। हमारी रग-रगमें दासता आ गयी है।

परिणाम प्रत्यक्ष है। सहस्रों युवक बी० ए० और एम० ए० की डिग्रियाँ लेकर नौकरियोंके लिये प्रत्येक देहरी खटखटाते फिरते हैं। 'No vacancy' लिखित कार्यालयसे

* कुछ वर्षों पूर्व 'हिंदुस्थान टाइम्स' के प्रतिनिधिने शिमलाके एक सभ्य समाजका वर्णन करते हुए लिखा था कि एक श्रीमतीजीने प्राचीन स्त्रियोंका खूब मजाक उड़ाया, और एकने तो यहाँतक कह डाला कि सीता और सावित्रीको दफना दो, उन्होंने हमारा कौन-सा उपकार किया है। उन्होंने कहा—Sita could have done better than meekly allow her husband to persist in his foolish decision to go to the forest....... And I think Savitri could have better employed her time and energy than running after Yama to fetch her husband's soul

'रामने वनके लिये प्रस्थान करनेका जो मूर्खतापूर्ण निश्चय किया था, सीताको चाहिये था कि वह उसका विरोध करती, न कि चुपचाप उन्हें उसपर अमल करने देती ... और मेरी समझसे सावित्री भी पतिको पुनर्जीवित करनेके लिये यमके पीछे दौड़नेकी अपेक्षा अपने समय और शक्तिको किसी अच्छे काममें लगा सकती थी।'

यही नहीं, उन्होंने यहाँतक कह डाला, 'निस्सन्देह ये कहानियाँ स्त्रियोंके मनमें यह बात जमानेके लिये ही गढ़ी गयी हैं कि पतिके बिना उनका कोई (स्वतन्त्र) अस्तित्व नहीं है और हमें इसी भावके खिलाफ लड़ना है। इसलिये मेरी यह सम्मति है कि सीता और सावित्री [illegible] (Opiates) हैं, जिनके साथ हमें बार-बार घसीटा जाता है, देशके सर्वोत्तम हितोंके लिये जल्दी ही हमें उनसे पिण्ड छुड़ा लेना चाहिये। और यह किसलिये? वे कहती हैं, पतिकी पूजाको हम कतई बर्दाश्त नहीं करेंगी। हम न तो पति-[illegible] चाहती हैं, न [illegible]।'

उनके हृदयपर कितना आघात पहुँचता है, इसका अनुभव वे ही करते हैं। इस शिक्षाने उन्हें वह कौशल नहीं दिया, जिससे वे श्रमपूर्वक जीविकोपार्जन कर सकें। क्षुधा-प्रपीड़ित ऐसे युवकोंकी आत्महत्याका वृत्तान्त समाचार-पत्रोंमें पढ़कर हृदय काँप उठता है।

सौभाग्यसे यदि उन्हें कहीं नौकरी भी मिली तो दफ्तरोंमें गौरवर्ण युवतियोंसे सम्पर्क हो जानेपर अपने घरकी सीधी-सादी अपढ़ (आजकलकी भाषामें) स्त्री मनको क्यों भाने लगी? अब तो उन गृहदेवियोंकी प्रत्येक क्रिया 'नॉनसेंस' और 'ईडियट' हो गयी। उन बेचारियोंने कभी चहारदीवारीसे बाहर पैरतक नहीं रक्खा, उन्हें हवाके रुखका पता कैसे लगे?

फलस्वरूप घरोंकी देवियाँ तिरस्कृत होने लगती हैं। पाश्चात्त्य शिक्षाके रंगमें रँगे युवककी पत्नीको भी पतिके हाथमें-हाथ डालकर गिटपिट बोलती हुई क्लबोंमें जानेवाली होना चाहिये। इसका प्रभाव कन्याओंके माता-पिताओंपर पड़ा! पुत्रीको अच्छे परिवारमें देने और शिक्षित लड़केसे विवाह करनेके लिये अंग्रेजी पढ़ाना आवश्यक हो गया। धन फूँककर और पवित्र गृहिणी-धर्मसे दूर हटाकर उन्हें अपनी लड़कियोंको अंग्रेजी पढ़ाना और नवीन सभ्यताकी आँधीमें उड़ाना अनिवार्य हो गया। कन्या विद्यालयोंकी भरमार हुई तथा छात्राएँ भी वर्षाकी भाँति बरसने लगीं। कुछ दिनोंमें और रंग पलटा और सहशिक्षाका प्रचार हो गया!

अब एक ओर सहस्रों ग्रैजुएट युवक जेबोंमें हाथ डाले घूम रहे हैं और दूसरी ओर सैकड़ों बी० ए०, एम्० ए० उपाधिविभूषिता युवतियाँ सज-धजकर तितलियोंकी भाँति एक पुष्पसे दूसरे पुष्पको सूँघती फिरती हैं। क्लबोंमें जाकर पुरुषोंके साथ भाँति-भाँतिके खेल खेले बिना उनका मनोरञ्जन नहीं होता। चौके-चूल्हेके तो नामसे ही रंग काला हो जाता है। आय हो या न हो; परंतु फैशनमें किसी प्रकार अन्तर नहीं आना चाहिये। नित-नयी साड़ी पहने बिना और ड्रिंक किये तथा मीट खाये बिना एवं स्मोक किये बिना फैशन पूरा नहीं होता। लज्जा नामकी कोई वस्तु उनके पास फटकने नहीं पाती। क्लबों और पार्टियोंमें आधी-आधी राततक हँसी-मजाक होते रहते हैं। यह इस पिशाचिनी शिक्षाका ही प्रभाव है, फिर भी शिक्षा-संचालक शत-प्रतिशत परीक्षा-परिणाम दिखाकर जनताको चकित कर अपना नाम अमर करना चाहते हैं।

यहाँपर हम माता-पिताको भी निर्दोष नहीं कह सकते। जब कभी दुर्भाग्यवश कोई दुष्परिणाम होता है तो समाज सारा दोष युवतियोंके सिर मढ़ देता है; किंतु यदि विचार कर देखा जाय तो उस दोषमें माता-पिता तथा [illegible] भी भागी हैं, जिन्होंने युवक-युवतियोंको इतनी बेहद स्वतन्त्रता दे दी है। एक ओर पाश्चात्त्य सभ्यताकी सीढ़ीपर चढ़ाना चाहते हैं और दूसरी ओर युवतियोंको सीता-सावित्रीकी भाँति सती-साध्वी भी बनाना चाहते हैं। 'एक म्यानमें दो तलवार देखा, सुना न कान' वाली कहावत यह देखकर तुरंत याद आ जाती है।

अब रहीं अध्यापिकाएँ। उनको दो घंटे रात रहते ही उठकर दिनके बाद आधी राततक काम करना पड़ता है, उनकी हड्डी-पसली एक हो जाती है, पल भरको नहीं [illegible], फिर वे कब और कहाँ सदाचार सीखें। और [illegible] ५०-६० छात्राओंको पाठ्य विषयोंके अतिरिक्त कब और कैसे सदाचार सिखा दें। उनको तो इसी बातकी चिन्ता रहती है कि परीक्षाका परिणाम शत प्रतिशत नहीं आया तो नौकरीसे हाथ धोना पड़ेगा!

लड़कियाँ कीड़ेके समान पाठ्य पुस्तकोंसे चिपटी रहती हैं और परीक्षामें पास होनेकी बाट देखा करती हैं। साथ ही गंदे वातावरण तथा गंदी पुस्तकोंके [illegible] पढ़नेसे मानसिक विकार बढ़ते जाते हैं। परिणाम यह होता है कि यौवनसे पूर्व ही नाना प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जो उनके शरीरको जर्जर कर देते हैं। विवाहके बाद [illegible] पृथ्वीपर डालकर वे अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देती हैं या आजीवन रोगिणी बनकर अपना तथा अपने [illegible] नष्ट कर देती हैं। यह है आजकलकी हमारी स्थिति! [illegible] है शिक्षाका दुःखद परिणाम "हमारी भारतीय देवियों [illegible] स्वास्थ्य खोकर एड़ी-चोटीका पसीना एक करके [illegible] है, उसका उनके जीवनमें कोई उपयोग नहीं हो पाता।

संसारमें सबसे दुष्कर भार स्त्रीके [illegible]। [illegible] पद ग्रहण करना सबसे [illegible]। [illegible] आदर्श गृहिणी और आदर्श माता—यही दो [illegible]। माताका उत्तरदायित्व सबसे [illegible]। परिवारके सारे कार्योंको निर्विघ्न [illegible] दायित्वको समझने और पूर्ण [illegible] प्रचलित स्त्री-शिक्षा पद्धतिमें [illegible] उत्तर नहीं तो इस शिक्षाकी निरर्थकता भी स्पष्ट है।

परंतु अब हम सजग हो गये हैं। [illegible] है। अब हम शिक्षाके [illegible]। [illegible] पुत्र-पुत्रीके माता-पिताका यह [illegible]

[illegible] समय-समय उनकी रुचियोंकी [illegible] ध्यान रक्खें। उनके मनोऽनुकूल शिक्षा देकर ही वे उन्हें आगे बढ़ा सकते हैं।

स्त्री-शिक्षा-संस्थाओंके सभी संचालकोंका कर्तव्य है कि वे शिक्षा-पाठ्यक्रमपर गम्भीरतासे विचार करें। अन्य पाठ्य-विषयोंके साथ स्त्रियोंके योग्य विषयोंका, जो उनके प्रतिदिनके जीवनमें उपयोगी हैं, समावेश अवश्य करें। पाश्चात्य सभ्यताको दूर कर भारतीय भाषासे प्रेम बढ़ायें।

स्त्री-पुरुषोंकी शिक्षामें दिन-रातका भेद होना चाहिये। स्त्रियोंके लिये गृह-विज्ञानकी शिक्षा जितनी आवश्यक होगी, उतनी मास्टरी नहीं। गृहस्थीके प्रत्येक कामकी जानकारी और काम करनेकी आदत उनके लिये आवश्यक है। नौकरों-के न रहनेपर काम रुक जाय, ऐसी स्थिति स्त्रीके लिये अत्यन्त कष्टकर होनी चाहिये।

अब वह समय है, जब युवतियोंको पत्नीके तथा गृहिणीके कर्तव्य तथा शिशुपालन आदिकी शिक्षा दी जाय। अब भावी माताओंकी ओर देश आशा और विश्वाससे देख रहा है। सच्ची सुशिक्षिता माताओंसे ही देशका भाल उच्च होनेकी सम्भावना है।

स्त्री-शिक्षाके सूत्रधारोंके दृष्टिकोणमें पर्याप्त परिवर्तन होना आवश्यक है। हमारी शिक्षा भारतीय देवियोंको विस्मृत एवं खोये हुए गौरवको पुनः प्राप्त करा देनेवाली, हमारी भारतीय संस्कृतिकी संरक्षिका तथा देशके भालको उज्ज्वल बनानेवाली होनी चाहिये। *

धर्मके नामपर पाप

यह सत्य है कि स्त्रियोंमें श्रद्धा-विश्वास अधिक है, धार्मिक भावना विशेष है; और यह भी सत्य है कि आज भी धर्मको बहुत कुछ स्त्रियोंने बचा रक्खा है। पढ़े-लिखे बाबुओंको जहाँ न तो अवकाश है और न श्रद्धा है, वहाँ उनकी माता और पत्नियाँ पुत्र और पतिकी मङ्गल-कामनासे, परलोकके विश्वाससे और आत्मोद्धारके उद्देश्यसे धर्मका आचरण, भगवान्‌का भजन, दान-पुण्य, अतिथिसत्कार, पूजा-पाठ और व्रतोपवास करती हैं, कथा-कीर्तन सुनती हैं, मन्दिरोंमें देवदर्शनको जाती हैं और तीर्थोंमें जाकर संत-महात्माओंके दर्शन-सत्संग करती हैं। यह सभी कुछ मङ्गलमय है और इससे लोक-परलोक दोनोंमें अतुलित लाभ होता है; परंतु साथ ही यह भी सच है कि आजकल जैसे प्रायः सभी क्षेत्रोंमें दम्भ, धोखा, भ्रष्टाचार, अनाचार तथा ठगी चलती है, वैसे धर्म तथा अध्यात्मके क्षेत्रमें अनाचार और धोखाधड़ी बेशुमार चलती है। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि इस क्षेत्रमें आजकल अनाचारका विशेष प्राबल्य है। कई तीर्थोंमें तो खास तौरपर अनाचार तथा व्यभिचारके अड्डे बने हुए हैं। गुरुओंकी चारों ओर बाढ़ आ गयी है और लोगोंके मनोंमें, खास करके सरल-हृदया स्त्रियोंके मनोंमें, ये संस्कार बद्धमूल कर दिये गये हैं कि गुरुसे दीक्षा लिये (कानमें मन्त्र फुँकवाये) बिना आत्मोद्धारकी कोई आशा ही नहीं है। गुरुका दर्जा भगवान्‌से भी ऊँचा है तथा गुरुको सर्वस्व अर्पण कर देना ही शिष्य या शिष्याका एकमात्र कर्तव्य है।' सिद्धान्ततः यह सत्य है कि परमार्थ-मार्गमें सद्गुरुकी आवश्यकता है और गुरुके प्रति समर्पण-भाव अवश्य होना चाहिये; परंतु आजकल न तो प्रायः वैसे सद्गुरु ही दृष्टिगोचर होते हैं और न विशुद्ध आत्म-समर्पणका भाव ही। फिर स्त्रियोंके लिये तो एकमात्र पति ही परम गुरु माने गये हैं। उन्हें अन्य गुरु करनेकी आवश्यकता नहीं है। यह ठीक है कि देवदासी-प्रथा जैसे आरम्भमें देवताके प्रति शुद्ध समर्पण-भावकी द्योतक थी, परंतु पीछेसे उसमें महान् पाप आ गया, उसी प्रकार गुरुकरण-प्रथाका मूल भी पवित्र था, परंतु आजकल तो इसका बहुत बड़ा दुरुपयोग हो रहा है।

असलमें स्त्रियोंको पर-पुरुषमात्रसे ही दूर रहना चाहिये। स्त्री-पुरुषका पास-पास रहकर धर्मको बचाये रखना बहुत ही कठिन है। ऐसे सैकड़ों-हजारों उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध है कि महात्मा, भक्त, आचार्य और पण्डित, पुजारी आदि कहलानेवाले लोगोंके द्वारा सरलहृदया स्त्रियोंका बहुत तरहसे पतन हुआ है और हो रहा है। कहीं भगवान् श्रीकृष्णकी महान् पवित्र लोकोत्तर व्रजलीला और गोपीप्रेमके नामपर पाप किये जाते हैं; कहीं मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्रके नामपर रामविवाह आदिके प्रसङ्गसे स्त्री-समाजके सामने गंदे पद, गंदी गालियाँ गायी जाती हैं और नारी-समाजको पतनके गर्तमें ढकेला जाता है; तो कहीं गुरुदेव स्वयं भगवान्-

* लेख सार-रूप, स्थानाभावसे संक्षिप्त करके दिया गया है।—सं०

का स्वरूप बनकर शिष्याओंसे आत्मसमर्पण करवाते हैं। कहाँतक कहा जाय! अभी उस दिन हमें एक बहुत लंबा पत्र मिला है, जिसमें एक सज्जनने उनके गुरु-भगवान्‌के द्वारा उनकी धर्मपत्नीको किस प्रकार धर्मच्युत किया गया—इसका बड़ा ही रोमाञ्चकारी वर्णन किया है। भगवान् और धर्मके नामपर भगवान्‌के मन्दिरमें, भगवद्विग्रहके सम्मुख ऐसे-ऐसे दुराचरण किये जाते हैं, जिनकी कल्पनासे भी महान् दुःख होता है। पर जब वस्तुतः ऐसा होता है, तब क्या कहा जाय! अतएव हमारी सरलहृदया श्रद्धासम्पन्ना देवियोंको चाहिये कि वे अपने सतीत्वको ही सबसे बढ़कर मूल्यवान् धन समझें और किसी भी संत, महात्मा, गुरु, आचार्य, भक्त, प्रेमी, रसिक, देशसेवक, समाजसेवक आदिके कुसंगमें कभी न पड़ें; न तो एकान्तमें किसी भी परपुरुषसे मिलना चाहिये, न किसीका कभी स्पर्श ही करना चाहिये और न किसीको गुरु बनाकर या प्रेमी महात्मा मानकर गंदी चर्चामें अकेले या अन्यान्य स्त्रियोंके साथ सम्मिलित ही होना चाहिये। फिर वह चर्चा भले भगवान्‌की पवित्र लीलाके नामपर ही क्यों न की जाती हो। सच्चे संत-महात्मा, भक्त, प्रेमीजन ऐसा दुराचार कभी नहीं कर सकते। जो ऐसा करते हैं, वे संत-महात्माओंके वेषमें छिपे हुए पापी हैं, जो अपनी कुत्सित कामनाकी पूर्तिके लिये स्वाँग धारण करके इन पवित्र वेषोंको कलङ्कित कर रहे हैं, और सच तो यह है कि इस घोर कलियुगमें अधिकांश ऐसे ही हैं। अतः इनसे बचना ही चाहिये।

जैसे धर्मके क्षेत्रमें यह बुराई है, वैसे ही राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रमें भी यह बुराई कम नहीं है। 'बहिनजी' कहकर पुकारनेवाले अनेकों दुष्ट व्यक्ति देशभक्त और समाजसेवकका पवित्र बाना धारण किये हुए और स्त्री-समाजके दुःखोंके प्रति सहानुभूतिके आँसू बहाते हुए इसी प्रकारके कुकर्मोंमें रत रहते हैं। यह हमारा महान् पतन है, पर है यह सत्य! सावधान!

पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

आज एक तरफ कुशिक्षासे प्रभावित व्यक्ति धर्मको रसातल भेजनेके लिये जमीन-आसमानके कुलाबे भिड़ा रहे हैं तो एक ओर शास्त्रज्ञानहीन अर्थ-काम-लम्पट व्यक्ति धर्मके नामपर घोर दुराचार फैला रहे हैं! इधर भारतमें श्रद्धालुओंकी यह दशा है कि ये 'बाबावाक्यं प्रमाणम्' समझते हुए धर्मध्वजियोंकी आज्ञाके पालनमें रत्तीभर भी कसर नहीं करते। शास्त्राभिज्ञोंसे यह बात छिपी नहीं है कि स्त्रीका गुरु पति ही होता है, किंतु इतनेपर भी, ये अर्थलोलुप स्त्रियोंको चेली बनाते हैं और अवसर पाकर उनके धन और सतीत्वके भी अपहरणमें सङ्कोच नहीं करते! सच पूछा जाय तो ये प्रच्छन्न नास्तिक ही सुधारकोंको धर्ममें दखल देनेका अवसर प्रदान करते हैं और आजकी दुरवस्थाकी बहुत कुछ जिम्मेदारी भी इन्हींके सिर है।

इसपर कुछ लोगोंका यह कहना है कि आचार-परम्परासे यह सिद्ध है कि स्त्रियोंको चेली बनानेमें कोई दोष नहीं। सर्वत्र ही स्त्रियाँ चेली की जाती हैं, यह सभी देशोंका आचार है, अतएव इसमें दोष नहीं; क्योंकि पहले देशाचार ही देखना चाहिये। देश-देशकी जो स्थिति हो, वही कर्त्तव्य होता है—

'देशाचारस्तावदादौ विज्ञेयो
देशे देशे या स्थितिः सैव कार्या।'

किंतु यह कथन निस्सार है, क्योंकि शास्त्रसे अविरुद्ध आचार ही धर्ममें प्रमाण होता है। शास्त्रविरुद्ध आचार धर्मके विषयोंमें प्रमाण नहीं हो सकता। वसिष्ठस्मृतिके प्रारम्भमें ही कहा गया है कि शास्त्रविहित कर्म ही धर्म है, शास्त्रप्रमाण न मिलनेपर ही शिष्टाचार प्रमाण होता है—

'विहितो धर्मः। तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्।'

इस तरह उपर्युक्त सामान्य वचन इस विशेष वचनसे स्पष्ट ही बाधित हो जाता है। महाभारतके अनुशासनपर्वमें भी कहा गया है कि धर्म-जिज्ञासुके लिये सर्वप्रथम प्रमाण वेद ही है, धर्मशास्त्र द्वितीय और लोकाचार तृतीय प्रमाण है—

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।
द्वितीयं धर्मशास्त्रं तु तृतीयं लोकसंग्रहः॥

असल बात तो यह है कि जिस विषयमें वेद या स्मृतिमें विधि या निषेध नहीं मिलता, उसी विषयमें देशाचार और कुलाचारसे धर्मका निर्णय किया जाता है—

न यत्र साक्षाद्विधयो न निषेधाः श्रुतौ स्मृतौ।
देशाचारकुलाचारैस्तत्र धर्मो निरूप्यते।'

विधानपारिजातमें तो यहाँतक कहा गया है कि जिस

तरह वेदविरुद्ध स्मृतिका परित्याग किया जाता है, उसी तरह स्मृतिके विरुद्ध लोकाचारको भी त्याग देना चाहिये—

स्मृतेर्वेदविरोधे तु परित्यागो यथा भवेत्।
तथैव लौकिकं वाक्यं स्मृतिबाधे परित्यजेत्॥

भगवान् शङ्कराचार्यने भी कहा है कि शास्त्रविहित धर्मकी ही उपासना करनी चाहिये, उच्छास्त्रीय धर्म प्रचलित रहनेपर भी उपास्य नहीं—

सर्वत्र हि शास्त्रप्रापिता एव धर्मा उपास्या न विद्यमाना अप्यशास्त्रीया.।

(छान्दो० शा० भा० २।२।१)

अतएव स्पष्ट है कि स्त्रियोंको चेली बनानेवाले धर्मध्वजी शास्त्रविरोधी हैं। उनका यह मनोमुखी आचार अनाचारमात्र है।

शास्त्रोंमें कहीं भी स्त्रीको गुरु करनेकी विधि नहीं कही गयी है, प्रत्युत पतिको ही गुरु कहा गया है। आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणमें ही अनेक स्थलोंपर यह बात सुस्पष्टरूपेण कही गयी है। इससे तत्कालीन आचारका भी पता लग जाता है। अनसूयाके द्वारा पातिव्रत्य धर्मका उपदेश किये जानेपर आदर्श नारी भगवती सीता कहती हैं कि मुझे भी यह मालूम है कि स्त्रीका गुरु पति होता है—

विदितं तु ममाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुरुः।

(वाल्मी० अयो० ११८।२)

रावणके द्वारा भगवान् रामकी निन्दा किये जानेपर फिर वे ही कहती हैं—

दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः।

(वाल्मी० उत्तर० ४८।१७)

निर्वासित होनेपर भी वे कहती हैं कि स्त्रीके लिये तो पति ही देवता, पति ही बन्धु तथा पति ही गुरु है; इसलिये उसे प्राणोंकी बाजी लगाकर भी विशेषरूपसे पतिका प्रिय करना चाहिये—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः॥

(७।४८।१७)

'यद्वै किञ्च मनुरवदत्तद्भेषजम्'(तैत्तिरीयसं० २।२।१०।२)

इस वेदवाक्यसे समर्थित मनु महाराज भी कहते हैं कि स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही गुरुकुलवास है—

'पतिसेवा गुरौ वासः' (मनु० २।६७)

स्कन्दजीने भी अगस्त्यपत्नी लोपामुद्राकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि पति ही देवता, पति ही गुरु तथा धर्म, तीर्थ और व्रत भी पति ही है। इसलिये सब छोड़-छाड़कर स्त्री एक पतिकी ही पूजा करे—

भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥

(स्कंदपु० काशीखं० ४।४८)

तिर्यग्योनिगता कपोती भी अपने पतिसे कहती है कि ब्राह्मणोंके गुरु अग्नि हैं, सब वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है, स्त्रियोंका गुरु उसका पति है और अभ्यागत सब लोगोंका गुरु है—

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥

(ब्रह्मपुराण० ८०।४७)

ब्रह्मपुत्री मोहिनी भी राजेन्द्र रुक्माङ्गदसे कहती है कि पति ही स्वामी, गति, देवता तथा गुरु है। उसपर वशीकरणका प्रयोग करनेवाली सुख कैसे पायेगी—

भर्ता नाथो गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च।
तस्य वश्यं चरेद् या तु सा कथं सुखमाप्नुयात्॥

(बृहन्नारदीयपुराण, उत्तरभाग १४।४०)

महर्षि शातातपने भी कहा है कि स्त्रीका एक पति ही गुरु है—'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्।' निर्णयसिन्धुकारने भी कहा है—'रामायणमें पतिको गुरु कहा गया है' और इसपर उन्होंने रामायण और शातातपके प्रमाण भी दिये हैं। वे लिखते हैं—

'पित्राद्यो महागुरवः स्त्रीणां पतिरेव गुरुः,उक्तं च रामायणे-'पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च (शातातपः)।' पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।'

चाणक्यने भी उपर्युक्त श्लोकको दुहरा दिया है (देखिये चाणक्यनीति ५।१)। विस्तारभयसे अधिक प्रमाण उपस्थित नहीं किये जाते। यह नहीं कहा जा सकता कि ये श्रुति-वचन नहीं हैं, क्योंकि श्रुतिका विरोध न होनेसे तथा 'अपि वा तुल्यत्वात्' (मीमांसादर्शन ६।२२), 'वेदतुल्या हि स्मृतिः', 'वैदिका एव पदार्थाः स्मर्यन्ते इत्युक्तम्, स्मार्ताश्चैते वैदिका एव' (शबरस्वामी) इत्यादि वचनोंसे स्मृति-पुराण वेदतुल्य ही ग्राह्य हैं। अतएव वैदिकोंके लिये सर्वथा मान्य हैं। विधवा और कुमारियोंके लिये भी अन्य गुरुका विधान नहीं; क्योंकि कन्याओंका विवाह ही उपनयनस्थानीय होनेसे गुरुकुलवास होता है और विधवा या तो पतिका अनुगमन करे या शील-संरक्षण करते हुए त्रिभुवन-गुरु भगवान्‌को ही गुरु समझती हुई पतिका ही ध्यान करे।

पतिमेव समाध्यायेद् विष्णुरूपधरं हरिम्।

(स्कन्द० काशी० ४।८१)

कर्तव्याकर्तव्यनिर्णयमें शास्त्र ही एकमात्र प्रमाण है—'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते', 'सर्वस्य लोचनं शास्त्रम्' इत्यादि । स्त्रीके लिये अन्य गुरुका विधान और उसके निमित्त तन-धन समर्पणकर स्वधर्मभ्रष्ट पतिता होनेका वचन शास्त्रमें नहीं मिलता । फिर भी जो कहीं छद्मवेषधारियोंद्वारा स्त्रियोंको चेली आदि बनाते देखा जाता है, वह अशास्त्रीय व्यवहार स्वच्छन्दतामात्र है । स्त्रियोंके लिये तो बस‌-

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा । कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ॥

पवित्र देवी-मन्दिर

शीत और उष्णमय इस जड जगत्‌में सबल शरीर वही कहा जा सकता है, जो नीरोग रहकर सहज ही शीतोष्णको सहन कर सके । उसी प्रकार इस सुख-दुःखमय संसारमें वह मन सबल कहा जा सकता है, जो समभावसे सुख-दुःखका उपभोग कर सके—'दुःखमें अनुद्विग्नमना' और 'सुखमें विगत-स्पृह' रह सके । निरवच्छिन्न सुख किसीके भाग्यमें नहीं, दुःख-का हिस्सा सबको लेना पडता है; अतएव वही शिक्षा शिक्षा है, जिसके द्वारा शरीर और मनका इस प्रकार गठन हो जिससे दुःखका बोझ सिरपर आ जानेपर भी कोई कष्ट न हो । सुख-की अभिलाषा ही करनी हो तो उस विशुद्ध और अनन्त सुखकी कामना करनी चाहिये, जिसका ह्रास नहीं होता तथा जो दुःखकी कालिमासे मिश्रित नहीं है । पतिके न रहनेपर दूसरा पति किया जा सकता है, परंतु पुत्र या कन्याके न रहनेपर उस अभावकी पूर्ति कैसे होगी ? जिस मार्गपर चलने-से सब अभावोंकी पूर्ति होती है, अर्थात् अभाव अभाव नहीं रह जाते, वह निवृत्तिकी ओर जानेवाला मार्ग प्रेय न होनेपर भी श्रेय है । उस मार्गसे जो चलते हैं, वे स्वयं यथार्थ सुखी होकर अपने उज्ज्वल दृष्टान्तके द्वारा औरोंके दुःखके भारको पूर्णतः दूर नहीं कर सकते तो बहुत अंशमें उसे हल्का कर देते हैं । हिंदू-विधवाएँ ब्रह्मचर्य और संयमके द्वारा देह और मनको विशुद्ध बनाकर उसी निवृत्ति मार्गका अनुसरण करती हैं । उस सुपथसे हटाकर उनको विपथगामी बनानेकी चेष्टा करना न तो उनके लिये और न साधारण समाजके लिये ही हितकर है । हिंदू-विधवाके दुःसह कष्टकी बात सोचते समय हृदयमें बड़ी व्यथा होती है, परंतु उसकी अलौकिक कष्ट सहनेकी शक्ति तथा उसके असाधारण स्वार्थ-त्यागको ओर देखनेपर मन एक साथ विस्मय और श्रद्धासे परिपूर्ण हो जाता है । हिंदू-विधवाओंने ही संसारमें पति-प्रेमकी पराकाष्ठा प्रदर्शित की है । उनकी उज्ज्वल आभाने [illegible] अन्धकारसे आच्छन्न हिंदू-गृहोंको आलोकित कर रखा है । उनका दीप्तिमन्त दृष्टान्त हिंदू-नर-नारीकी जीवन-यात्राके लिये पथ-प्रदर्शनका काम करता है । उनका पवित्र जीवन पृथ्वीके ऊपर एक दुर्लभ वस्तु है । वह कभी पृथ्वीसे लुप्त न हो । हिंदू-विधवाकी चिर-वैधव्य प्रथा हिंदू-समाजका देवी-मन्दिर है । हिंदू-समाजमें सुधारके लिये बहुत-सी जगह है, सुधारकों-के लिये बहुत-से काम हैं । बहुत-सी जगहोंको [illegible] और अवस्थाके लिये उपयोगी बनाकर [illegible] । परंतु मेरी सानुनय प्रार्थना यह है कि वे [illegible] निर्माणके लिये इस पवित्र देवी-मन्दिरको नष्ट-भ्रष्ट न करें ।

—[illegible]

परार्थ-जीवनकी जीवित प्रतिमा

घरका मुखिया जब स्वयं यत्नपूर्वक विधवाके भलीभाँति पालनका भार उठा लेता है, तब किस प्रकार धर्मोन्नति होती है—इस बातको जिन्होंने अपनी आँखोंसे देखा है, वे ही जान सकते हैं । विधवा स्वतः ही भोग-सुखका परित्याग करती है, घरके कार्योंमें अत्यन्त निपुण हो उठती है; अतिथि, अभ्यागत, कुटुम्ब और स्वजनोंको भोजन करानेमें बड़ा सुख मानती है; स्वयं सबल और स्वस्थ शरीरवाली हो जाती है, ईर्ष्यादि दोषोंसे रहित होकर सधवाओंके प्रति अनुग्रह करनेवाली और उनकी सन्तानके प्रति मातृवत् स्नेह करनेवाली बन जाती है । जिस घरमें ऐसी विधवाका निवास होता है, उस परिवारके स्त्री-पुरुष निरन्तर [illegible] फल पाते हैं । 'परार्थ-जीवन' क्या है, [illegible] नहीं कहते और पोथियोंमें ही नहीं पढ़ते—[illegible] जीवित मूर्तिको अपनी आँखोंसे देखते हैं ।

जब [illegible] धार्मिक [illegible] कर सकती है, तब [illegible] पवित्र [illegible] नहीं हो सकता, ऐसा कहना सर्वथा [illegible] है ।

—[illegible]

दुःखमय विधवा-जीवन

(ले०—एक बहिन)

विधवा-जीवनका महत्त्व संयम और त्यागमें है। विधवा अपने सुख-दुःखको भूलकर, अपनी सुविधा-असुविधाका ख्याल न कर अपनी पूरी शक्तिसे अनवरत सेवा करनेमें तत्पर रहती है। उसकी सेवाका दायरा पतितक ही सीमित नहीं रहता, वह अखिल जगत्पति भगवान्के स्वरूप समस्त जगत्को अपनी पवित्र सेवासे परितृप्त करना चाहती है। वह वैराग्य, त्याग, संयम, सदाचार और सेवाकी जीवित मूर्ति है। यह सारी बातें सत्य हैं और इस दृष्टिसे विधवा हिंदू-गृहकी शोभा है। पर यह शोभनीय विधवा तभी शोभाकी मूर्ति रह सकती है, जब उसे त्याग-संयमके लिये उचित अवसर मिले और अपने सेवा-भावका विकास करनेके लिये पर्याप्त सद्व्यवहार तथा अनुकूल वातावरण प्राप्त हो।

आज विधवाकी क्या दशा है—जरा विचार कीजिये। बारह-चौदह वर्षकी सुकुमार अवस्था है, जिसे ब्याह क्या वस्तु है—इसका भी पता नहीं, जो खेल-कूदके क्षेत्रमें रहने योग्य है। सास-ससुर आदिसे जहाँ प्यार मिलना चाहिये, वहाँ वह दुत्कारी जाती है। पिशाचिन है, आते ही हमारे बच्चेको खा गयी, राँड़ कुभागिन है। किसीसे बोलती है तो बड़ी पापिन है; किसी समान उम्रकी लड़कीसे भी हँसकर बोलना चाहती है तो बेशर्म है; जुल्म न सह सकनेकी बात कहीं जीभपर भी लाती है तो बकवादिन और लड़ाकी; बच्चोंको किसी अनुचित बातपर टोकती है तो बच्चोंको देखकर कुढ़नेवाली; नौकर-चाकरसे कोई कामकी बात कहती है तो कुलटा; साफ-सुथरे कपड़े पहने तो शौकीन; कभी औरोंकी देखादेखी कुछ खाना चाहे तो चटोरी; हँसकर बोले तो महापापिनी; घरमें किसी बच्चेको कुछ बीमारी हो जाय तो डाइन; विवाह-शादीमें कहीं खड़ी हो जाय तो अमङ्गल चाहनेवाली और भजन पूजन करना चाहे तो कामचोर है—यह सब सुननेको मिलता है। नौकर-चाकर भी अच्छी तरह उससे नहीं बोलते; बस, छोटे-बड़े सभीकी चाकरी करना उसका काम। जरा भी कहीं सुस्ताना चाहे तो लानत मलामत। सास, ननद, देवरानी, जेठानी और भौजाईतकके ताने सुनना और चुपचाप उन्हें सहना। रोनेका भी अधिकार नहीं। बीमार हुई तो बहाने करती है। दुःख-दर्दकी कोई पूछनेवाला नहीं। सहानुभूतिसे कोई देखनेवाला नहीं; अच्छा खाने-पीने-पहननेकी तो बात ही दूर—साधारण तथा घटिया भोजन-वस्त्र भी आवश्यकतानुसार समयपर नहीं मिलते। हिलना-मिलना, हँसी-खुशी, त्यौहार-पर्व, विवाह-शादी, सभीसे बहिष्कार तथा बात-बातमें फड़ाई! किसी मङ्गल-कार्यमें परछाईं भी न पड़े। सामने दीख गयी तो ससुर-देवरका ही नहीं, पिता और भाईका भी शुभ यात्राका मुहूर्त बिगड़ गया! सधवाके सामने आ गयी तो मानो उसका सोहाग ही लुट रहा है। चक्की, चूल्हा, ऊखल, बर्तन, पानी, झाड़ू, घरके सभी काम उसीको करने हैं। बेचारी हक्की-बक्की रह जाती है। सोच भी नहीं सकती कि इतना सब उसीके साथ क्यों हो रहा है। मुख कुम्हला जाता है, खून सूख जाता है। शोक-विषादके मारे दिन-रात मन-ही-मन रोती है। विवाहके समय मुँह-देखनी आदिके कुछ रुपये हों, तो वे भी ऊपर-के-ऊपर हड़प लिये जाते हैं। जन्मभर दासीकी भी दासी होकर रहे तो कुत्तेकी तरह रोटीका टुकड़ा मिल जाय। फटा-पुराना कपड़ा मिल जाय। नहीं तो, वह भी नसीब नहीं !!

इस प्रकार स्नेहशून्य, मानवतारहित दारुण दुर्व्यवहारके साथ ही नीचवृत्तिके दुराचारी पुरुषोंकी कामदृष्टिका शिकार भी उसको होना पड़ता है। असहाय है—किससे कहे! घरके मालिक नीच, मुनीम-गुमाश्ते नीच, नौकर-चाकर नीच। फिर कहीं किसी साधु-महात्मा बने हुए लफंगेकी बातोंमें आ गयी तो वह सर्वनाश करनेको तैयार। गर्भ रह गया तो गुपचुप भ्रूणहत्याकी तैयारी या आत्महत्या। घरमें स्थान नहीं, नाक कटती है। बेचारी जीये तो विधर्मी बने या वेश्या बने।

घरका वातावरण सात्त्विकता, सादगी, संयम और सेवा-भावसे सर्वथा विपरीत। स्वाद, शौकीनी, सिनेमा, खेल-तमाशे, राग-रंग, हँसी-खुशी, छप्पन भोग, विलास-सामग्री, गंदी बातचीत और प्रत्यक्ष हास-विलासकी प्रचुरता। अब बताइये—इस स्थितिमें वह बेचारी पराधीन दुखिया पवित्र वैधव्यका निर्वाह कैसे करे! आजकल घर-घर जो बाल-विधवाओंकी संख्या बढ़ रही है, उनमें बहुत-सी ऐसी हैं जो पवित्र वैधव्यका मर्म समझना तो दूर रहा, विवाहका शास्त्रीय आदर्श भी नहीं जानतीं। विषय-सेवनके वातावरणमें

जनमी हुई एवं विषयसेवनके वातावरणमें व्याही गयी, और अब विधवा होते ही अकस्मात् संयम-तपकी मूर्ति बन जाय। यह कैसे सम्भव है ?

ऐसी स्थितिमें समाजको तथा धार्मिक पुरुषोंको गम्भीरतापूर्वक सोच-विचारकर ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे विधवाओंकी संख्या-वृद्धिमें पूरी रुकावट हो, उनका जीवन सुख-शान्तिपूर्वक पवित्रतासे बीत सके और समाजपर बढ़ता हुआ पाप तथा महान् दुःखका भार कुछ हल्का हो। अन्यथा न तो विधवाओंके दुःख-दर्दमें कभी [illegible] और न [illegible] पापमय होनेपर भी विधवा-विवाह ही करेंगे।

जिन पुरुषोंके मनमें कुछ भी मानवता और दया [illegible] जिनको जरा भी धर्मरक्षाकी लगन है, उनको बहुत शीघ्र—केवल पवित्र वैधव्यका उपदेश देकर ही नहीं—[illegible] से सुन्दर सफल व्यवस्था करनी चाहिये। चारों ओर आग लगी है, शीघ्र ही बुझानेका उपाय नहीं हुआ तो समाज और समाजका धर्म भस्मीभूत हो जायगा। निश्चित !

मेरे जीवनमें कैसे परिवर्तन हुआ

(लेखिका—एक सुखी विधवा)

मैं बारह वर्षकी थी, विवाह हुए छः ही महीने हुए थे, मैंने विवाहके समयके अतिरिक्त पतिदेवका मुख भी नहीं देखा था, तभी पतिदेवका परलोकवास हो गया। मुझपर वज्रपात हो गया। मैं रोना भी नहीं जानती थी; परंतु मेरा मन कितना व्याकुल था, उसमें कितनी असह्य पीड़ा थी, इसे मैं किसी प्रकार भी लिखकर नहीं बता सकती। मेरे माता-पिताका बुरा हाल था। उन्होंने मुझे जिस दुलार-प्यारसे पाला था और मेरे भावी सुखके जो-जो स्वप्न देखे थे, उनको अकस्मात् भङ्ग हुआ देखकर वे अचिन्त्य दुःखराशिसे अभिभूत हो रहे थे। कुछ महीने तो यों ही बीते। फिर मेरे माता-पिता शान्तिकी खोजमें मुझे साथ लेकर तीर्थयात्राको निकले। घूमते-फिरते एक दिन हमलोग गङ्गा-तटपर एक वृद्ध महात्माकी कुटियापर पहुँचे। महात्मा अकेले बैठे थे। उनके चेहरेपर अपार शान्ति छायी थी। मेरे माता-पिताने धीरे-धीरे मेरी दशाका वर्णन किया और वे रो पड़े। महात्माने बड़ी ही सहानुभूतिके साथ उनको तथा मुझको समझाते हुए कहा—'बेटी! मनुष्य-जीवनका परम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। इसीसे शास्त्रकार ऋषियोंने विवाह-विधान काम-सुखभोगके लिये नहीं, परंतु काम-वासनाको संयमित करके भगवत्प्राप्तिके मार्गमें बढ़नेके लिये बनाया है। चरम उद्देश्य तो विषय-वासनाका त्याग ही है। हमलोगोंने इसीलिये विषयोंका त्याग करके संन्यासीका बाना धारण किया है। तुम्हारा वह नरकोंमें ले जानेवाला, इहलोक और परलोकमें दुःख देनेवाला कामोपभोग छूट गया, इससे तुम तथा तुम्हारे ये भोले माता-पिता दुखी क्यों होते हैं ? क्या विषय-भोगसे कभी किसीको परम शान्ति, आत्यन्तिक सुख या मुक्ति मिली है ? भगवान्‌ने गीतामें 'काम' को तो नरकका द्वार बतलाया है। मनुष्य भ्रमसे इसमें सुख मानकर उसमें फँस जाता है। तुमपर तो भगवान्‌की [illegible] कृपा हुई है, जो उन्होंने तुम्हें कामके भीषण नरकसे निकाल लिया है। काम सेवनमें तो दुःख-ही-दुःख है। बच्चे होते, मर जाते; दिन-रात प्रपञ्चमें मन रहता। भगवत्प्राप्तिके साधनके लिये अवकाश ही नहीं मिलता। तुम्हें तो भगवान्‌ने अनायास ही मनुष्य-जीवनकी सफलताका सुअवसर दे दिया है। आहार, निद्रा, भय, मैथुनादि तो पशुओंमें भी होते हैं। अनादिकालसे जीव इन्हींमें तो रचता-पचता आया है। पता नहीं, कितने लाखों करोड़ों जन्म यही करते बीते होंगे। विधवा न होकर कोई सधवा रहती है तो क्या होता है ? यही बाल-बच्चे पैदा होते हैं। फिर यदि भगवान्‌ने तुमको वैधव्य देकर इस प्रपञ्चसे बचा लिया, बाल-बच्चे [illegible] हुए, पशुओंकी तरह इन्द्रियोंके भोग नहीं भोगे, तो [illegible] कौन-सा नुकसान हो गया ? एक जन्ममें [illegible] बिगड़ गया ? फिर, यह विषय भोग तथा [illegible] तो इनके बाधक तथा बन्धनकारक हैं। [illegible] करोड़ जन्मोंमें भी भगवत्प्राप्तिका मार्ग [illegible]। यदि भगवान्‌ने कृपा करके तुमको अपनी प्राप्तिका [illegible] है, संसारके आपातरमणीय किंतु परिणाममें महान् दुःख देनेवाले विषयोंसे अलग करके [illegible] सुविधा कर दी है, तो इसमें तो तुमको [illegible] चाहिये। विषयत्यागी ही वस्तुतः बड़भागी है। विषयोंमें लगे हुए लोग तो भाग्यहीन हैं। [illegible] कहा है—

'सुनहु उमा ते [illegible]। हरि तजि [illegible] अनुरागी॥'

'बेटी ! तेरे भाग्य नहीं फूटे हैं । तू तो अपनेको सौभाग्यवती समझ, जो परम सुन्दर श्रीभगवान्‌के देव-दुर्लभ चरण-कमलोंको प्राप्त करनेके लिये साधना करनेका तुझे सुअवसर मिला है । जा, निश्चिन्त होकर भगवान्‌का भजन कर, अपने इस निवृत्तिमय जीवनको भगवान्‌का आशीर्वाद समझ । गृहस्थाश्रमके अनन्त झंझटों, दुःखों और विषय-सेवनसे होनेवाले पापों तथा परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाले महान् दुःखोंसे तू छूट गयी है, इसे अपना सौभाग्य समझ और परम आनन्द तथा शान्तिके साथ भगवत्-साधन करती हुई स्वयं शाश्वती शान्ति और आत्यन्तिक आनन्द प्राप्त कर तथा अपने आदर्शसे तेरे-जैसी अन्यान्य बहिनोंके जीवनमें भी आनन्द सुधाका प्रवाह बहा दे । जा ! भगवान् तेरा मङ्गल करेंगे !'

महात्माके सारे शब्द ज्यों-के-त्यों तो मुझे याद नहीं हैं । परन्तु अधिकांश शब्द ये ही हैं, जो मैंने ऊपर लिखे हैं । पता नहीं, कैसे क्या हुआ । महात्माके शब्दोंने उसी समय मेरे जीवनमें आश्चर्यमय परिवर्तन कर दिया । मेरे आँसू सदाके लिये सूख गये । मेरा जीवन आनन्द और शान्तिसे भर गया । मैं आज भी अत्यन्त सुखी हूँ और बड़ी पवित्रताके साथ मेरा विषय-निवृत्त जीवन परम शान्तिके साथ बीत रहा है । मैं अनुभव कर रही हूँ कि सचमुच भगवान्‌ने बड़ी ही दया की थी । मैं यदि संसारके विषयोंमें फँसी रहती तो पता नहीं, मेरी किस नरकमें जानेकी भूमिका बनती । मैं अपनी विधवा बहिनोंसे निवेदन करती हूँ कि वे काम-सुखको सुख मानकर उसके लिये लालायित न हों, दुःख जरा भी न मानें । संसारके तमाम दुःखोंको भगवान्‌का आशीर्वाद मानकर सिर चढ़ावें और अपने जीवनको त्याग-वैराग्यमय, निवृत्तिपरक तथा अत्यन्त सादा बनावें तथा दिन-रात भगवान्‌की ओर चित्तवृत्तिका प्रवाह बहानेकी चेष्टा करें । आप निश्चय समझें, ऐसा करनेपर आप तो तरेंगी ही, आपका जीवन तो परम सुखसे बीतेगा ही, आप और भी बहुतोंके जीवनको पवित्र, सुख-शान्तिमय बनाकर उनको संसार-सागरसे तारनेमें सहायक होंगी । यही मनुष्य-जीवनका परम लक्ष्य है और किसी भी जीवको इस ओर लगा देनेसे बढ़कर उसका कोई भी उपकार नहीं हो सकता !!

विधवा-जीवनको पवित्र रखनेका साधन

विधवाका दुःख अकथनीय है, उसका अनुमान दूसरा कोई भी नहीं कर सकता; परन्तु यह भी परम सिद्ध है कि विधवाकी कामवासनाको जगाकर उसे कामोपभोगमें लगानेसे, उसे विलासिनी बनानेसे, उसके पुनर्विवाहकी व्यवस्था कर देनेसे उसका दुःख नहीं मिट सकता । दुःखका कारण है—हमारे अपने ही कर्म । और भविष्यमें यदि हम सुख चाहते हैं तो हमें अभी से ही संयमपूर्ण सत्कर्म करने चाहिये, जिनका परिणाम सुख हो । विषय-सेवनकी सुविधाका परिणाम सुख नहीं होगा । स्त्री विधवा क्यों होती है, इसका कारण है—उसके पूर्वजन्मका असदाचार । यदि यहाँ भी वह पुनः असदाचारमें प्रवृत्त होगी तो उसका भविष्य और भी संकट-पूर्ण होगा । गुसाईं तुलसीदासजीने कहा है—

बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई ॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । बिधवा होइ पाइ तरुनाई ॥

स्कन्दपुराणमें कहा गया है—

या नारी तु पतिं त्यक्त्वा मनोवाक्कायकर्मभिः ॥
रहः करोति वै जारं गत्वा वा पुरुषान्तरम् ।
तेन कर्मविपाकेन सा नारी विधवा भवेत् ॥

'जो नारी अपने पतिको त्यागकर मन, वचन, शरीर तथा कर्मसे जारका सेवन करती है, दूसरे पुरुषके पास जाती है, वह उस कर्मके फलस्वरूप जन्मान्तरमें विधवा होती है ।'

यहाँतक कि पापोंके कारण पुरुषोंको भी अगले जन्ममें स्त्री-योनिमें जन्म लेकर विधवा होना पड़ता है—

यः स्वनारीं परित्यज्य निर्दोषां कुलसंभवाम् ।
परदाररतो हि स्यादन्यां वा कुरुते स्त्रियम् ॥
सोऽन्यजन्मनि देवेशि स्त्री भूत्वा विधवा भवेत् ।

(स्कन्दपुराण)

श्रीशंकरजी उमा देवीसे कहते हैं—'हे देवेश्वरी ! जो पुरुष अपनी निर्दोष तथा कुलीन पत्नीको छोड़कर परस्त्रीमें आसक्त होता है या दूसरी स्त्रीको पत्नी बनाता है, वह जन्मान्तरमें स्त्री-योनिमें जन्म लेकर विधवा होता है ।'

इससे यह सिद्ध है कि विधवापन पूर्वकर्मके फलस्वरूप ही मिलता है । इसका नाश शुभकर्म, तपस्या या भगवद्भजनसे ही होगा । पुनर्विवाह या विषय-सेवनसे यह दोष दूर नहीं हो सकता । वरं उससे तो दोष और भी बढ़ जायगा, जो जन्मान्तरमें विशेष दुःखका कारण होगा । मुक्ति तो प्राप्त

होगी ही नहीं, मानव-जीवन भावी दुःखोंकी विशाल भूमिका बन जायगा। इसीलिये विधवा स्त्रीको पतिके अभावमें तन्मय होकर परमपति भगवान्‌में मन लगानेका आदेश दिया गया है।

हिंदू-स्त्रीका विवाह कोई सौदा नहीं है, जो तोड़ा जा सके। वह तो सदा अटूट रहता है। पतिके परलोकगमन करनेपर भी वह ज्यों-का-त्यों बना रहता है।

आज हिंदू-विधवाकी ओरसे समाजमें जो एक ओर उदासीनता और दूसरी ओर उत्साह देखा जाता है, वह दोनों ही उसके लिये वस्तुतः महान् विपत्तिस्वरूप हैं। एक ओर तो समाजके पुरुष विधवाको भाँति-भाँतिसे दुःख देकर उसे धर्मच्युत करके पथ-भ्रष्ट करते हैं और दूसरी ओर उसपर दया दिखाकर उसे कामकी विषबेलिका सेवन करनेको उत्साहित करके पथभ्रष्ट करते हैं। ऐसी अवस्थामें विधवाके जीवनका दुःखमय होना स्वाभाविक है और विधवाकी दुःखभरी आहसे समाजका अमङ्गल भी अवश्यम्भावी है। इस विनाशसे समाजको बचाना हो तो विधवाके साथ बहुत सुन्दर, पवित्र और आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिये और साथ ही उसका जीवन पवित्र संन्यासीके जीवनकी भाँति त्यागमय रह सके, इसकी व्यवस्था तथा इसीका प्रचार करना चाहिये। विधवा-जीवनको पवित्र तथा सुखी बनानेके कुछ उपाय ये हैं—

(१) विधवा-जीवनके गौरवका ज्ञान विधवाको कराना। उसको यह हृदयङ्गम करा देना कि विधवा-जीवन घृणित और दुःखमय नहीं है, बल्कि पवित्र दैवी जीवन है, जिसमें भोग-जीवनकी समाप्तिके साथ ही आत्यन्तिक सुख और परमानन्दकी प्राप्ति करानेवाले आध्यात्मिक जीवनका आरम्भ होता है। उसे समझाना चाहिये कि मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। विषयसेवनसे विषयोंमें आसक्ति-कामनादि बढ़ते हैं। अतः विषयसेवन करनेवाली सधवा स्त्रियोंको भगवत्प्राप्तिकी साधनाका जो सुअवसर न मालूम कितने जन्मोंके बाद मिल सकेगा, वह उसको इसी जन्ममें अनायास मिल गया है। इसलिये वस्तुतः वह पुण्यशालिनी और भाग्यवती है; और जैसे विषयविरागी त्यागी संन्यासी सबके पूज्य, आदरणीय और श्रद्धास्पद होते हैं, वैसे ही वह भी पूजनीय और श्रद्धाकी पात्र है। सुख-दुःख किसी घटनामें नहीं, बल्कि मनके अनुकूल तथा प्रतिकूल भावोंमें है। एक संन्यासी स्वेच्छासे विषयोंका त्याग करके निवृत्तिमय जीवन बिताता है, इससे उसको सुखका अनुभव होता है; और दूसरे एक आदमीको उसका सब कुछ छीनकर कोई जबरदस्ती घरसे निकाल देता है, उसको बड़ा दुःख होता है। दोनोंकी विषय सुखहीनताकी बाहरी स्थिति एक-सी है; फिर एकको सुख, दूसरेको दुःख क्यों होता है? इसीलिये कि एक इस स्थितिमें अनुकूलताका अनुभव करता है और दूसरा प्रतिकूलताका। संसारीके लिये कामिनी, काञ्चन, विषय भोगादि सुखरूप हैं; वही मनोभावना बदल जानेसे विरक्त संन्यासीके लिये दुःखरूप हो जाते हैं और संन्यासीके लिये जो त्याग सुखरूप है, उसमें संसारीको दुःखकी अनुभूति होती है। अतः विधवामें यदि ऐसी बुद्धि पैदा कर दी जाय कि विधवाका विषय विरहित जीवन उसके लिये परम गौरवकी वस्तु है तथा मानव-जीवनके परम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है—इससे उसका जीवन अनादरणीय तथा दुःखमय नहीं हो गया है, वरं आदरणीय और गौरवमय हो गया है और सबको उसके साथ वस्तुतः ऐसा ही आदर, श्रद्धा तथा पूज्यभावका बर्ताव भी करना चाहिये—इससे विधवा अपने जीवनमें सुखका अनुभव करेगी और उसका जीवन पवित्र तथा संयमपूर्ण बना रहेगा।

(२) विधवा ससुरालमें हो तो सास-ससुरको और पीहरमें हो तो माता-पिताको विलासिताका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये तथा अपने जीवनको [illegible] पूर्ण वानप्रस्थके सदृश तपोमय बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे विधवाको बड़ा सन्तोष होगा, उसका विलासिताकी ओर आकर्षण नहीं होगा और उसके धर्मच्युत होनेका भी डर नहीं रहेगा। उसके सामने बड़ोंका जो पवित्र आदर्श होगा, वह उसके कर्तव्य-पालनमें बल और उत्साह प्रदान करेगा। यह कार्य कठिन है, परंतु है बहुत ही लाभदायक और आवश्यक कर्तव्य।

इसीके साथ घरके अन्यान्य स्त्री-पुरुषोंको भी विषय-सम्बन्ध बहुत सावधानीसे करना चाहिये, जिससे विधवाका ध्यान उधर न जाय।

(३) विधवाका कभी तिरस्कार या अपमान नहीं करना चाहिये। उसे कटुवचन कभी नहीं कहना चाहिये। उसे घरका देवता समझना चाहिये। ऐसा समझना चाहिये कि उसका स्थान सधवा माता और [illegible] ऊँचा है। विधवा कोई सत्कार्य दान, [illegible], उपवास आदि करना चाहे तो अपने घरकी शक्तिके अनुसार [illegible] धनव्यय और सहयोगके साथ उसको सहायता करनी चाहिये। इसमें जरा भी कृपणता नहीं करनी चाहिये। उसे ऐसे सात्त्विक कार्य अधिक-से-अधिक करते रहने चाहिये, जिससे उसके मनमें विषयभोगोंकी ओर जानेका अवसर ही नहीं मिले।

(४) विधवाके हृदयकी प्रेमधारा परिवारभरके सभी बालकोंमें बहने लगे, जो—इनके लिये उसे सुखावह, सुविधा तथा उत्साह प्रदान करना चाहिये। उसमें प्रेम परोपकार द्वारा भगवद्भक्तिकी भावना तथा गौरवके भाव जगाना चाहिये। यह समाजमें सब बच्चोंकी स्नेहमयी माँ बन जाय तो उसको अपना जीवन पवित्रतासे बितानेमें बड़ी सहायता मिल सकती है।

(५) विधवाको तिरस्कार या अपमानके भावसे नहीं, किंतु उसके स्वत्वके गौरवके लिये सादा जीवन बितानेके लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। विधवा सदाचारिणी हो, खान-पानादिमें संयम नियमका पालन करे, तामसी राजसी वस्तुओंका खान-पान-सेवन त्याग दे, अलङ्कार तथा रंगीन कपड़े न पहने * (इनसे स्वाभाविक उत्तेजना होकर ब्रह्मचर्यव्रतकी हानि पहुँचती है, यह वैज्ञानिक रहस्य है) इधर-उधर लाज छोड़कर न घूमे, शारीरिक परिश्रम अवश्य करे, नाटक-सिनेमा कभी न देखे, गंदे चित्रों और पुस्तकोंका अवलोकन न करे, स्त्रियोंमें परस्पर विषयसम्बन्धी चर्चा न करे, पुरुषोंके सङ्गसे सदा बचे, अकेली पुरुषोंके साथ न रहे; किसी भी पुरुषको गुरु बनाकर उसके चरण छूने, उसके अङ्गोंका स्पर्श करने, पैर दबाने, एकान्तमें उसके पास रहने आदिमें सावधानीके साथ अवश्य बचती रहे, फिर चाहे वह कितना ही बड़ा भक्त, महात्मा या त्यागी-संन्यासी ही क्यों न हो; विधवा स्त्री एकमात्र भगवान्‌को ही परम पति और परम गुरु माने; रातको कमरेमें अकेली या अन्य स्त्रियाँ हों तो उनके पास सोवे; घरमें शिशु हों तो एक-दो शिशुओंको अपने पास जरूर सुलावे; शृङ्गार न करे; नित्य भगवन्नाम जप, इष्टपूजन, गीता-रामायणादि पाठका नियम रक्खे; सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय करे; और हो सके तथा शरीर साथ दे तो बीच बीचमें चान्द्रायणादि व्रत भी करे। शारीरिक, वाचिक और मानसिक तपोंका आचरण करे; † संन्यासी तथा ब्रह्मचारीके लिये सात्त्विक भोजन, मन-वाणीके संयम और सदाचारके जो नियम शास्त्रोंमें वर्णित हैं, विधवा देवी उनका पालन करे। इस प्रकार संयमित जीवन रखकर भगवद्-भजन, शास्त्रचर्चा, हरिकथा, वैराग्य, त्याग तथा पातिव्रत्यकी महिमा बतलानेवाले ग्रन्थोंका पठन-अध्ययन, आध्यात्मिक सदुपदेशोंका श्रवण-मनन, भगवान्‌के विग्रहकी उपासना आदि करनेसे विधवाका जीवन साधनामय हो जायगा। उसे यहाँ सुख-शान्ति मिलेगी और अन्तमें मुक्ति!

(६) बाल-विवाह और वृद्ध-विवाहकी प्रथा बंद कर देनी चाहिये। लड़कियोंका विवाह बहुत छोटी अवस्थामें नहीं करके अपने-अपने प्रान्तकी स्थितिके अनुसार रजस्वलासे पूर्व करना चाहिये और लड़कियोंमें धार्मिक शिक्षाका प्रसार अवश्य होना चाहिये, जिससे उनके जीवनमें सतीत्वका गौरव जाग्रत् होकर अक्षुण्ण बना रहे।

(७) विधवाओंकी धन-सम्पत्तिको देव-सम्पत्ति मानकर बड़ी ईमानदारीसे उसका संरक्षण करना चाहिये। विधवाके हकको मारना तथा उसकी सम्पत्तिपर मन चलाना और हड़पना महापाप है।

विधवा नारीके सम्बन्धमें मनु महाराज (मनु० अ० ५ में) कहते हैं—

> कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।
> न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥१५७॥
> आसीतामरणात् क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
> यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम् ॥१५८॥
> मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
> स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥१६०॥

'पतिकी मृत्यु हो जानेपर पवित्र, पुष्प, फल और मूलादि अल्पाहारके द्वारा शरीरको क्षीण करे, परंतु व्यभिचार-बुद्धिसे परपुरुषका नाम भी न ले।

'साध्वी स्त्री एकमात्र पतिपरायण (सावित्री आदि)

---

* स्मृतिसंहितामें आता है—

> केशरञ्जनताम्बूलगन्धपुष्पादिसेवनम्।
> भूषणं रङ्गवस्त्रं च कांस्यपात्रेषु भोजनम्॥

केशरञ्जन करना, पान खाना, गन्ध-पुष्पादिका सेवन करना, आभूषण धारण करना, रंगीन वस्त्र पहनना और काँसीके बर्तनमें भोजन करना—इनका विधवाको त्याग करना चाहिये।

† श्रीमद्भगवद्गीताके सत्रहवें अध्यायमें बतलाया गया है—

> देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
> ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥
> अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
> स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १५ ॥
> मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
> भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और ज्ञानी पुरुषोंका पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीर-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

उद्वेग न करनेवाला, प्रिय, हितकारक और यथार्थ भाषण एवं स्वाध्यायका अभ्यास—यह वाणी-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

मनकी प्रसन्नता, सौम्यता, ईश्वरका मनन, मनका निग्रह और अन्तःकरणकी भलीभाँति शुद्धि—यह मानस-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

नारियोंके अत्युत्तम (पातिव्रत) धर्मकी चाहनेवाली होकर विधवा होनेके अनन्तर मनकी कामनाको त्याग दे और मृत्यु-कालपर्यन्त नियमोंका पालन करती हुई ब्रह्मचर्यसे रहे।

'पतिके मरणके अनन्तर जो साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्यका पालन करती है, वह पुत्रहीन होनेपर भी ब्रह्मचारियोंके सदृश स्वर्ग (दिव्य) लोकमे जाती है।'

जो स्त्रियाँ इस प्रकार अपने धर्मका पालन न करके क्षणिक विषयसुखके लोभसे अपनेको इन्द्रियोंकी गुलाम बना लेती हैं, उनका भविष्य बिगड जाता है और वे महान् दुःखोंको भोगती हैं। उनका जीवन यहाँ तो दुःखमय हो ही जाता है, परलोक-में भी उन्हे महान् क्लेशोंका भोग करना पड़ता है। वे [illegible] हैं, जो पवित्र विधवाओंको सतीधर्मसे च्युत करके पाप-पङ्कमें फँसाते हैं और उन बेचारी असहाया देवियोंको दुःखकी ज्वाला-में जलनेके लिये बाध्य करते हैं।

पर्दा-प्रथा

(लेखक—योगिराज स्वामीजी श्रीश्रीमाधवानन्दजी महाराज)

भारतीय नारीकी समस्याओंमे पर्दा-प्रथा विशेष महत्त्व रखती है। इसके औचित्य और अनौचित्यके विषयमें अनेक मत-मतान्तर पाये जाते हैं। पर्देके विरोधी पर्देको मध्यकालीन युगकी प्रथा बताकर आजके युगमें उसकी अनावश्यकता सिद्ध करनेका प्रयास करते हैं। दूसरी ओर पर्देके समर्थक पर्देको अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित मानते हैं और उसकी प्राचीनताको ही उसकी उपयोगिताका प्रमाण बतलाते हैं। यदि विशुद्ध अनुसन्धानात्मक दृष्टिसे विचार किया जाय तो पर्देका प्रचार अत्यन्त प्राचीन है। पर्देका द्योतक 'अवगुण्ठन' शब्द संस्कृतके प्राचीनतम ग्रन्थोंमे उपलब्ध होता है। रामायण-में दशरथके श्राद्धके समय सीता अपने श्वशुरकी छाया आनेपर घूँघट कर लेती है। सस्कृतके नाटकोंमे स्त्रियोंके 'अवगुण्ठन-वती' होनेका बार-बार उल्लेख मिलता है। अतः पर्देकी प्रथा प्राचीन है और उसे मध्ययुगीन या आधुनिक मानना भ्रान्तिपूर्ण है।

अब प्रश्न यह है कि आधुनिक युगमे भारतमे पर्देका प्रयोग वाञ्छनीय है अथवा नहीं। इस विषयमे मेरा यह निःसन्दिग्ध मत है कि वह पर्दा, जो नारीको घरकी चहारदीवारीके भीतर बद रखता है, जो उसे प्रकृतिके दोनों वरदानों—प्रकाश और वायुसे वञ्चित रखता है और जो उसे नाना प्रकारके क्षयकारी रोगोंसे ग्रस्त कर देता है, सर्वथा हेय और त्याज्य है तथा नारीके लिये अभिशापस्वरूप है। मैं उस पर्देका घोर विरोधी हूँ, जो उदाहरणार्थ मुसलमानी बोहरोंमें पाया जाता है। बोहरा स्त्रियोंको घरके बाहर दृष्टिपात भी नहीं करने दिया जाता और वे चिकसे ढकी जालियोंमेंसे ही थोड़ा-बहुत झाँक सकती हैं। परिणामस्वरूप बोहरा स्त्रियोंमें क्षयरोगका अत्यधिक आतङ्क देखा जाता है। मेरे मतानुसार स्त्रियोंको वायु-सेवनके लिये बाहर जाते समय पर्देका प्रयोग नहीं करना चाहिये और न इसे अपने [illegible] ही उन्हें [illegible] देना चाहिये। नारी घरकी रानी है और उसके [illegible] पर्दा अनावश्यक ही नहीं, बाधक और असुविधाजनक भी है।

किंतु साथ ही-साथ मैं उस पर्दाहीनताका भी समर्थन नहीं करता, जो आजके तथाकथित [illegible] समाजमें [illegible] या बेहयाईका पर्यायवाची बन गया है। यदि दिन-रात घूँघट-में छिपी नारी अपने लिये तथा समाजके लिये [illegible] है तो घर और बाहर स्वच्छन्द विचरण करनेवाली, पुरुष-समाजके साथ निर्बाध सम्पर्कमें आनेवाली तथा [illegible] लज्जा, संकोच एवं मर्यादाको तिलाञ्जलि देनेवाली नारी भी भारतीय संस्कृतिको पतनोन्मुख करनेवाली है। मेरा विचार है कि यदि नारी पुरुषोंके अधिक सम्पर्कमें आयेगी तो उसकी पवित्रतापर, उसके शील-सौन्दर्यपर [illegible] पड़ेगी। अतः जब मैं पर्देका समर्थन करता हूँ तो मेरा [illegible] यही है कि स्त्रियाँ अपने ही दायरेमें रहें। पुरुषोंके [illegible] क्षेत्रमें प्रवेश कर अपने नैसर्गिक कर्तव्योंकी उपेक्षा न करें। पुरुष-समाज और नारी-समाजका [illegible] और दुराचारको जन्म देगा; [illegible] निरोध-जैसे सामाजिक दूषणोंको प्रोत्साहन [illegible] भारतीय संस्कृतिका [illegible] होगा। [illegible] यथासम्भव दूर रखनेकी [illegible] है। [illegible] चेष्टा करना च्युत संस्कृतिको [illegible] देना है।

स्वर्गीय लाला [illegible] सम्बन्धमें अपने विचार मुझसे [illegible] थी कि भारतीय समाजमें पर्दा [illegible] है [illegible] व्यवहार एक जंगली प्रथा है; किंतु [illegible]

यह जब वे इससे मिले तो उनके विचारोंमें आमूल परिवर्तन हो गया था। अब वे पर्देके कट्टर हिमायती बन गये। पर्दाहीन जातियोंके समाजमें स्त्री-पुरुषोंका स्वच्छन्द सम्पर्क तथा उससे उत्पन्न भ्रष्टाचारको देखकर वे यह अनुभव करने लगे थे कि भारतीय समाजको यदि इन बुराइयोंसे दूर रखना है तो भारतीय समाजमें पर्देका अस्तित्व बना रहना चाहिये।

सारांश यह कि पर्देका व्यवहार मध्यम भावसे होना चाहिये। जिस अंशमें वह नारीके स्वास्थ्य और गृह-कार्यमें बाधक है, वह त्याज्य और हेय है; और जिस अंशमें वह पुरुष और नारी-समाजमें एक मर्यादित सीमाबन्धनका कार्य करता है, वह ग्राह्य, उपादेय एवं आचरणीय है। भारतीय आदर्शके अनुसार स्त्रीका क्षेत्र अपने आपमें स्वतन्त्र और पुरुष-क्षेत्रसे भिन्न है। इसी आदर्शके अनुकरणमें भारतीय संस्कृतिका उत्थान निहित है।*

लज्जा नारीका भूषण है

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टा इव पार्थिवाः।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जाश्च कुलस्त्रियः॥

'सन्तोषहीन ब्राह्मण, सन्तोषी राजा, लजवन्ती वेश्या और लज्जाहीना कुलवधूका नाश निश्चित है।'

जिस प्रकार स्त्रियोंका जेलकी काल-कोठरीकी तरह बंद रहना उनके लिये हानिकर है, उसी प्रकार—वरं उससे भी कहीं बढ़कर हानिकर उनका स्त्रियोचित लज्जाको छोड़कर पुरुषोंके साथ निरङ्कुशरूपसे घूमना-फिरना, पार्टियोंमें शामिल होना, पर-पुरुषोंसे निःसंकोच मिलना, गंदे खेल तमाशोंमें जाना, पर-पुरुषोंके साथ खान-पान तथा नृत्य-गीतादि करना आदि है। नारीके पास सबसे मूल्यवान् तथा आदरणीय सम्पत्ति है उसका सतीत्व। सतीत्वकी रक्षा ही उसके जीवनका सर्वोच्च ध्येय है। इसीलिये वह बाहर न घूमकर घरकी रानी बनी घरमें रहती है। इसीलिये उसके लिये अवरोध-प्रथाका विधान है। जो लोग स्त्री जातिपर सहानुभूति एवं दया करनेके भावसे उनको घरसे निकालकर बाहर खड़ी करना अपना कर्तव्य समझते हैं, वे या तो नीयत शुद्ध होनेपर भी भ्रममें हैं, उन्होंने इसके तत्त्वको समझा नहीं है, या वे अपनी उच्छृङ्खल वासनाके अनुसार ही दया तथा सहानुभूतिके नामपर यह पाप कर रहे हैं।

लज्जाशीलतासे सतीत्व और पातिव्रत्यका पोषण और संरक्षण होता है। इसीलिये लज्जाको स्त्रीका भूषण बतलाया गया है। पुरुषमें पुरुष-भाव तथा नारीमें प्रकृति (देवी) भावकी प्रधानता स्वाभाविक होती है। लज्जा देवी-भाव है। इसी नैसर्गिक कारणसे नारीमें लज्जा भी नैसर्गिक होती है। पुरुष-प्रकृतिके साथ नारी-प्रकृतिका यह भेद स्वभावसिद्ध है। यों तो मनुष्यमात्रमें उसके विवेकसम्पन्न प्राणी होनेके कारण पशु-प्राणीकी भाँति आहार, निद्रा और खास करके स्त्री-पुरुषोंकी कामचेष्टा और मैथुनादिमें निर्लज्ज भाव नहीं होता, फिर मनुष्योंमें नारी तो विशेषरूपसे लज्जाशीला होती है। नारीकी शोभा इसीमें है। लज्जाका परित्याग करना नारीके लिये गुण-गौरवकी बात नहीं; बल्कि इससे उसके गौरवकी, सतीत्वकी, मानस-स्वास्थ्यकी, देवी-भावकी तथा स्वाभाविक पवित्रताकी हानि होती है। इसीसे वेदोंमें भी नारीके लिये लज्जाका विधान मिलता है। ऋग्वेद ८। ४। २६ में है—

'यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव।'

---

* नारीकी शोभा लज्जामें है, लज्जा उसका एक भूषण है। अपने स्वामी भगवान् राम और देवर लक्ष्मणके साथ देवी सीता वनमें जा रही हैं। वनवासिनियाँ सीताजीसे पूछती हैं—

कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

तो सीताजी संकुचित होकर मुसकरा देती हैं और मधुर स्वरसे लक्ष्मणजीका परिचय देती हुई कहती हैं—

सहज सुभाय सुभग तनु गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥

और फिर—

बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥ खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सैननि॥

यह लज्जाका आदर्श है। वस्तुतः हिंदुओंमें वैसा पर्दा है ही नहीं। यह तो शील-संकोचका एक सुन्दर निदर्शन है। लोग कहते हैं—'यह कैसा पर्दा, जो बड़ोंके—श्वशुर-जेठ आदिके सामने तो पर्दा करे और दूसरे लोगोंके सामने खुले मुँह रहे।' पर इसीसे तो यह सिद्ध है कि यह वस्तुतः पर्दा नहीं है। यह तो बड़ोंके सत्कारके लिये एक शील-संकोचका पवित्र भाव है, जो होना ही चाहिये।—सं०

'वस्त्रद्वारा आवृत वधूकी भाँति जो यज्ञके द्वार आवृत है।' इसमें नारीके लिये अपने अङ्गोंको ढके रखनेका स्पष्ट निर्देश है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य स्थलोंमें भी तथा रामायण, महाभारत एवं पुराणादि ग्रन्थोंमें इसके प्रचुर प्रमाण मिलते हैं। सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि सतियों-का जो घरोंसे बाहर निकलनेका इतिहास मिलता है, वह विशेष परिस्थितिकी बात है। और ऐसी विशेष परिस्थितियोंमें हिंदूशास्त्र भी बाहर निकलनेकी आज्ञा देते हैं।

स्त्रियोंका गौरव लज्जाशीलतामें है, इसके विषयमें कुछ दूरदर्शी पाश्चात्त्य विद्वानोंके मत भी देखिये—

The reputation of a woman is as a crystal mirror, shining and bright, but liable to be sullied by every breath that comes near it. (Cervantes)

नारीकी कीर्ति स्फटिक-दर्पणके सदृश है, जो अत्यन्त उज्ज्वल एवं चमकीला होनेपर भी दूसरेके एक श्वाससे भी मलिन होने लगती है। (सरवांटेस)

She is not made to be the admiration of everybody but the happiness of one. (Burke)

नारीकी सृष्टि हरेकको मुग्ध करनेके लिये नहीं है, वह तो एक-मात्र (अपने पतिदेवता) को सुख देनेके लिये ही हुई है। (बर्क)

A woman smells sweetest, when she smells not at all. (Plantus)

सबसे अधिक सुगन्धवाली स्त्री वही है, जिसकी गन्ध किसीको नहीं मिलती। (प्लैंटस)

Woman is a flower that breathes its perfume in the shade only. (Lamenneis)

नारी एक ऐसा पुष्प है जो छाया (घर) में ही अपनी सुगन्ध फैलाती है। (लेमेनिस)

The flower of sweetest smell is shy and lovely (Wordsworth)

श्रेष्ठ गन्धवाला पुष्प लजीला और चित्ताकर्षक होता है। (वर्डसवर्थ)

जो वस्तु जितनी ही मूल्यवान् तथा प्रिय होती है, वह उतनी ही अधिक सावधानी, सम्मान तथा संरक्षणके साथ रक्खी जाती है। धन-रत्नादि अमूल्य पदार्थोंको लोग इसीलिये छिपाकर रखते हैं। हमारे यहाँ स्त्री पुरुषके विषय-विलासकी सामग्री नहीं है, वह संपूर्ण गार्हस्थ्य-धर्ममें सहधर्मिणी है। उसका शरीर कामका यन्त्र नहीं है, वरं वह जगज्जननीके मङ्गल-विग्रहकी भाँति पूजनीय है। कन्यारूपमें तथा [illegible] सुहागिनी [illegible] रूपमें वन्दनीय है। हिंदू-शास्त्रानुसार गौरी या कुमारी पूजनसे तथा सती-पूजनसे गृहस्थके दुःख-दारिद्र्य तथा [illegible]-का नाश होता है और उसके धर्म, धन, आयु एवं वंशकी वृद्धि होती है। इसीलिये ससम्मान स्त्री-पूजनका विधान है। यह उसके साथ निर्दय व्यवहार नहीं, बल्कि उसके प्रति महान् सम्मानका निदर्शन है। साथ ही उसके सतीत्व धर्मकी रक्षाका मङ्गल साधन भी।

लज्जा छोड़कर पुरुषसमाजमें निःसंकोच घूमने फिरनेसे पवित्र पातिव्रत्यमें क्षति पहुँचती है; क्योंकि इस स्थितिमें नारीको हजारों पुरुषोंकी विकृत दूषित दृष्टिका शिकार होना पड़ता है। देवीभागवतमें एक कथा आती है कि [illegible] नामकी एक राजकन्याने स्वयंवरमें जानेसे इसीलिये इन्कार किया था कि 'वहाँ अनेक राजाओंकी कामदृष्टि मुझपर पड़ेगी और इससे मेरे पातिव्रत्यपर आघात लगेगा।' यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि जिस नारीको बहुत-से पुरुष कामदृष्टिसे देखते हैं और खास करके जिसके नेत्रोंपर दृष्टि पड़ती है, एवं परस्पर नेत्र मिलते हैं, (इसीलिये लज्जाशील स्त्रियाँ स्वाभाविक आँखोंको नीचेकी ओर रखती हैं) उसके पातिव्रत धर्मकी निश्चित हानि होती है। मनुष्यके मानसिक भावोंका विद्युत्-प्रवाह उसके शरीरसे निरन्तर निकलता रहता है और वह स्पर्श, वार्ता एवं दृष्टिपात आदिके द्वारा (किसी अंशमें तो बिना किसी साधनके अपने-आप ही) दूसरेके मन और शरीरपर असर करता है। जहाँ उसके अनुकूल सजातीय भाव वर्तमान होते हैं, वहाँ विशेष असर होता है; पर जहाँ वैसा सजातीय भाव नहीं होता, वहाँ भी कुछ-न-कुछ असर तो पड़ता ही है। और यदि बार-बार ऐसा होता रहे तो क्रमशः भाव भी सजातीय बन जाते हैं। इससे यह सिद्ध है कि किसी स्त्रीके प्रति कामुक पुरुषोंकी कामदृष्टिके द्वारा [illegible] भावपूर्ण कामदृष्टि बार-बार पड़ती रहेगी, [illegible] पातिव्रत्यका प्रबल भाव उस कामदृष्टिके [illegible] या परास्त करनेमें समर्थ नहीं होगा तो उस नारीके [illegible] निश्चय ही चञ्चलता होगी। [illegible] यदि उस विकारकी स्थितिमें [illegible] हो जायगा!

जिन स्त्रियोंने घर छोड़कर स्वतन्त्र [illegible] किया है, वे अन्यान्य नारी [illegible]

मुस्कानें प्रश्न नहीं भले हों, पर यदि वे अन्तर्मुखी होकर अपने अन्तरका इतिहास कहेंगी तो उनमेंसे अधिकांशको यह अनुभव होगा कि उनके मनमें बहुत बार विकार आया है और किसी-किसीका तो पतन भी हो गया है। बताइये, संयम-शीलके लिये यह कितनी बड़ी हानि है!

इसके सिवा कदाचित् पुरुषोंकी भाँति नारी भी काम-दृष्टिसे पुरुषोंको देखने लगे, तब तो पुरुषके मनोभाव बहुत ही जल्दी बदलते हैं और दोनोंका पतन निश्चित-सा होता है। इस विज्ञानके अनुभवी पाश्चात्य विद्वान् स्टेनली रेट महोदय कहते हैं—

'It was discovered that certain subjects, more especially women, could produce changes in the aura by an effort of will causing rays to issue from the body or the colour of the aura to alter.' (Stanley Red)

'यह पाया गया है कि कई वस्तुएँ, खास करके स्त्रियाँ, अपनी इच्छाशक्तिसे पुरुषके 'औरा' को बदल देती हैं। पुरुषके शरीरसे उसके मनोभावोंकी जो विद्युत्-लहरियाँ निकलती हैं, उनके बदल जानेसे 'औरा' के वर्णमें भी परिवर्तन हो जाता है।'

मनुष्यके शरीरसे उसके मानसिक काम क्रोधादि दुर्भावोंके तथा त्याग क्षमादि सद्भावोंके विद्युत्-कण निरन्तर निकलते रहते हैं और उसके शरीरके चारों ओर विविध रंगोंकी लहरियोंके रूपमें प्रकट होते हैं। सूक्ष्म दृष्टिसे इनको देखा भी जा सकता है। इन्हींको 'औरा' (aura) कहते हैं।

विभिन्न पुरुषोंकी दृष्टि स्त्रियोंपर न पड़े और उससे विकृत होनेपर स्त्रियोंकी दृष्टि पुरुषोंपर न पड़े—क्योंकि ऐसा होनेपर स्त्रियोंके पवित्र पातिव्रत्यका नाश होता है,—इसीसे स्त्रियोंके लिये पुरुषालयोंमें, बाजारोंमें न घूमकर अलग घरमें रहनेका विधान है। यहाँतक कहा गया है कि आहार-निद्राके समयमें भी पुरुष स्त्रियोंको न देखे।* आजकल जो स्त्रियोंको साथ लेकर घूमने-फिरने तथा एक ही टेबलपर एक साथ खाने-पीनेकी प्रथा बढ़ रही है, यह वस्तुतः दोषयुक्त न दीखनेपर भी महान् दोष उत्पन्न करनेवाली है। ऐसा करनेवाले स्त्री-पुरुषोंको ईमानदारीके साथ अपनी मनोदशाका चित्र देखना चाहिये और भलीभाँति सोच-समझकर सबको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिसमें नारीके भूषण लज्जाकी रक्षा हो और उसका पातिव्रत्य धर्म अक्षुण्ण बना रहे।

जब मूर्च्छिता जगेगी

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

अभी उस दिन एक बहिनसे बातें चल पड़ीं। वह एक कॉलेजकी प्रिंसिपल हैं। सुधारके वातावरणमें पली हुई। पुस्तकें अन्यान्योंपर इन्होंने काफी लिखा है। जीवनके शैशवमें बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर वह चली थीं। समझती थीं कि वह युग बीत गया, जब नारी पुरुषके इशारेपर नाचती थी; आज विश्वके कोलाहल और संघर्षमें वह राजपथपर खड़ी है और समाजमें पूरा भाग लेगी। पर अनुभवने शीघ्र स्वप्न भंग कर दिया। अब वह अनुभव करती हैं कि आजकी नारी एक अद्भुत-सी चीज बन गयी है। सुबहसे शामतक अपने शृंगार और प्रसाधनमें व्यस्त। कॉलेज जा रही है तो बार-बार आईनेमें देख लेती है; बेचैन हो जाते हैं कि कहीं मेकअप तो नहीं बिगड़ा है; 'वैनिटी बैग' मेंसे शीशा निकालकर देखती जाती है; विद्याभिरुचि उतनी नहीं जितनी 'डिग्रियों'—उपाधियों—के बलपर 'अच्छा' घर प्राप्त करनेका भाव है। विवाहके पूर्व यह और विवाहके बाद बँगले, कार, सिनेमा, क्लब, पार्टियाँ या यह न हुआ तो कभी समाप्त न होनेवाली आगमें धीरे-धीरे जलना। और कुछ काम नहीं। उन्होंने और भी बहुत से निराशाजनक अनुभव सुनाये।

इस प्रकारके अनुभव एकाकी नहीं हैं। ये हमारे समाजकी एक गहरी मानसिक व्याधिके सूचक हैं। मैं तो ज्यों-ज्यों नारी-समस्याओंका अध्ययन करता जाता हूँ, मेरी धारणा दृढ होती जाती है कि नारी आज जैसी मूर्च्छिता है, वैसी कभी न थी। प्रचारके इस युगमें, जब प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वर्ग अपने अधिकारोंका प्रश्न लेकर उठ खड़ा हुआ है और जन-सेवकोंने जागरणकी शङ्ख-ध्वनिसे हमारा मानस कम्पित कर दिया है, तब यह बात न केवल आश्चर्यजनक वरं हास्यास्पद

* 'नाश्नीयाद् भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम्।' (मनु० ४। ४३)
स्त्रीपुरुष एक साथ बैठकर भोजन न करें और स्त्री भोजन करती हो तो उसे देखे भी नहीं।

प्रतीत होगी । पर हास्यास्पद यह नहीं है । शङ्ख तो बज रहे हैं; पर जब हर दसवें आदमीके हाथमें एवं ओठोंमें शङ्ख और बिगुल बज रहे हों, तब किसीको कुछ सुनायी न दे — यह बिल्कुल स्वाभाविक है ।

आधुनिक नारी बिल्कुल एक तमाशे और दिलबहलावकी चीज बन गयी है । नकली आदर्श, नकली आकाङ्क्षाएँ, अपने लिये जोरसे बोलनेवाली पर अपनी स्वत्वरक्षामें अत्यन्त असमर्थ, सपनोंपर तैरनेवाली—यदि उसका बस चले तो जमीनपर पाँव न रक्खे । फिर वह नारी, जिसने संयम और कर्त्तव्यकी जगह भोग और मोहसे अपने जीवनको आच्छन्न कर लिया है, जो अपने तारुण्यके दिनोंमें विवेकके उपदेशोंका केवल उपहास कर सकती है; जो अपने अभिभावकों और हितचिन्तकोंकी सलाह ठुकराकर मस्ती भावुकताके चढ़ रहे वाक्योंके आकर्षणको अधिक महत्त्व देती है; जो जीवनके अत्यन्त जटिल और दूरगामी बन्धनोंमें बँधते हुए सिनेमाके पर्दोंके नशा पैदा करनेवाले, पर प्यास बुझा सकनेमें सदा असमर्थ दृश्योंपर, स्वप्निल लहरोंपर बह रही है, वह जब जिंदगीके एक कड़े झटकेमें एक दिन अपनेको सूखी रेतपर अकेली पाती है,—ऐसी जगह जहाँसे यौवनके ज्वारकी तरङ्गें दूर निकल गयी हैं और जीवनके भाटेमें जहाँ अकेलापन है, खीझ है, रोदन है, बेबसी है, तब आँखें जीवन युद्धकी प्रखर दोपहरीमें एकाएक खुल जाती हैं और सामने अत्यन्त अनाकर्षक रास्ता दूरतक चला गया दिखायी पड़ता है । मैं पूछता हूँ कि जीवनके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अवसरपर जिस नारीने खिलवाड़में अपनेको लुटा दिया है, उसे अब रोकर समाजको गाली देनेका क्या हक है ? जो नारी स्वयं मूर्च्छिता, विवशा, असहाया है, उसका दूसरोंको रास्ता दिखाने या रुद्ध नारी-शक्तिको स्वतन्त्र करनेका दावा करना मिथ्या है ।

मैं पूछता हूँ कि आज जब संसारपर मरणका अन्धकार छा गया है और जब जीवन, भयत्रस्त-सा, हमारे दरवाजेकी कुंडी खटखटा रहा है, तब यह मूर्च्छिता क्या एक खतरा नहीं है ? आज वह अपने प्रति कैसे आश्वस्त होगी और मानव-जातिकी माता होनेके नाते उसे क्या आश्वासन देगी ? अपनी स्वतन्त्रताकी घोषणाओं और अपनी सम्पूर्ण वाग्मिताके बीच आजकी नारी पुरुषका अनुकरणमात्र बनकर रह गयी है । वह अपने व्यक्तित्वकी रक्षाकी बातें करती है—पर पुरुषके पीछे उसके क्रिया-कलापकी नकल करती बढ़ी जा रही है । उसकी दृष्टि अपनी अन्तर्गरिमापर नहीं, पुरुषकी उच्छृङ्खलतामात्र-पर है; और उस उच्छृङ्खलताका [illegible] वह भी अधिकाधिक उच्छृङ्खल बने । पुरुषके [illegible] पर उससे भी तेजीसे भागनेवाली ! दौड़ [illegible] पर आगे बढ़नेकी है ! जब संसारके सामने [illegible] जातिके गढ़नेका, एक नूतन स्वस्थ [illegible] कार्य उपस्थित है, तब अपने [illegible] समझनेकी भूल करनेवाली नारी क्या देगी ? [illegible] पहलेकी नारी शृङ्गार नहीं करती थी [illegible] वञ्चित थी; पर हाँ, तबसे आज यह अन्तर [illegible] कि जो लचक और मटक, जो शृङ्गार और [illegible] की कल्पनातक था [illegible] राजमार्गपर इतराता और [illegible] क्यों ? इससे नारी क्या पाती है ? [illegible] करता है ?

मैं भी चाहता हूँ कि नारी अपने सौन्दर्य [illegible] हो, अपनी महिमासे महिमामयी हो, अपने [illegible] और अधिकारकी घोषणा करे । पर [illegible] पुरुषके आकर्षणका केन्द्र बना देनेसे [illegible] ?

× × × ×

और दूसरी ओर एक दूसरे प्रकारकी नारी [illegible] है । दुनियासे अनजान, देश और धर्मसे [illegible] परम्पराके अवगुण्ठनमें बँधी, ब्याह [illegible] कम है—जिसका ब्याह इसीलिये हुआ कि [illegible] पति और अपने बाल-बच्चोंकी नाव [illegible]—[illegible] की अपेक्षा परम्पराका बोझ [illegible] विवेककी अपेक्षा अपवाद और [illegible] छायी हुई है । थोड़ी दूरीतक देखनेवाली [illegible] थोड़ेमें असन्तुष्ट । मानो न [illegible] साँस और एक गतिसे [illegible] चलनेवाली । चलना है, इसलिये [illegible] है, इसलिये ढोती है ।

इस लड़कीका जन्म [illegible] उसकी ओर कोई संवेदना नहीं [illegible] नहीं, पिता उसे पाकर [illegible] तब उसे ग्रहण करना ही है; [illegible] गहने-कपड़ोंमें मगन, [illegible] सगे-सम्बन्धियोंमें मगन । जो [illegible] सक्रिय विरोधका भाव उसमें नहीं । [illegible]

है, उसकी कोई अनुभूति नहीं। पुरुषके बिना रास्ता खोजनेमें भी असमर्थ, सहमी हुई भय, लज्जा, आतङ्कसे त्रस्त, भीत मृगीकी भाँति देख-देखकर, फूँक-फूँककर पाँव रखनेवाली। निर्जीव-सी !

नारी-जीवनके ये दोनों ही दृश्य बड़े दुःखद हैं। समाजमें उनकी सभाएँ हैं, इतने संगठन हैं, हर तरहका काम हो रहा है; पर चेतना नहीं आ रही है। इसका कारण यही है कि नारी जीवन मूर्च्छाके अन्धकार और नशेमें भर गया है। आज नारी अचेत है, क्षुद्र प्रश्नोंमें व्यस्त, क्षुद्र स्वार्थमें लिप्त, दूरतक देखनेमें असमर्थ, अपनी संस्कृति और उदार परम्पराओंके प्रति अविश्वस्त।

यह बेहोशी कैसे दूर होगी ? पुरुषकी नकल करनेसे ? बुराइयोंमें उनसे होड़से ? नहीं। यह गलत रास्ता है। यह भयानक है। जबतक नारी अनुभव न करेगी कि वह पुरुषको निश्चिन्तता और आनन्द देनेवाली मात्र नहीं है बल्कि उसे संस्कार प्रदान करनेवाली भी है, जबतक वह न समझेगी कि वह 'रमणी' है, पर रमणीसे अधिक माता है, वह पुरुष-जातिकी माता है, तबतक सब बातें व्यर्थ हैं।

मैं मानता हूँ कि हमारी संस्कृतिके लिये बड़ा ही विकट समय यह आया है। हमें भय दूसरोंसे उतना नहीं, जितना अपनेसे है। अपनेसे इसलिये कि हम आत्मदीप्तिसे शून्य हो गये हैं। हम अपने अन्तरको भूलकर बाहर प्रकाशके लिये भटक रहे हैं। आँखें बंद किये हुए सूर्यके न उगनेका यह उलाहना व्यर्थ है। एक सर्वग्राही नास्तिकताने हमारा मानस आच्छन्न होता जा रहा है। चारों ओरसे तेज हवाएँ आ रही हैं और इसके बीच हमें अपने दीपककी रक्षाका कोई उत्साह नहीं रह गया है।

और, यह भय इसलिये और भी भयानक हो उठा है कि न केवल हमारे राष्ट्रकी शरीर-शक्ति सुप्त है वरं प्राणशक्ति भी खो रही है। कौन है यह प्राणशक्ति ? वही-वही नारी, जो युग-युगसे हमारी सभ्यताके आदर्शका दीपक प्रज्वलित रखती आ रही है, जिसने पुरुषके मानको भक्ति और श्रद्धासे संस्कृत किया है, जिसने स्वार्थोपर मानवताकी प्रधानताकी घोषणा की है, जिसने मानवजातिमें समष्टिगत कोमल प्राण और आत्माका सृजन किया है। वही दानमयी, सर्वत्यागमयी, महिमामयी नारी।

वही नारी आज मूर्च्छित है। वही नारी आज अचेत है। [illegible] दीना बन गयी है, अपने गौरवके प्रति विस्मृत। स्नेहकी धारासे गृहोंका सिञ्चन करनेवाली गृहलक्ष्मी आज विवशा, उपेक्षिता, तिरस्कृता है। अपने दूधसे मानव-जातिकी आशा और भविष्यका निर्माण और रक्षण करनेवाली माता आज भूलुण्ठिता है। अपनेको देकर सब कुछ पानेवाली, सर्वमयी अन्नपूर्णा आज रिक्त है। तब कैसे जागरण होगा ?

बाहर दीपक सँजोनेका आज फैशन है। जगमग करती दीपमालिका मनको मुग्ध किये लेती है। प्रकाशसे आँखें चकाचौंध हैं। पर अन्तर सूना, देवगृहमें बुझती-सी एक लौ, जिसकी ओर किसीका ध्यान नहीं और उपेक्षा तथा स्नेहकी कमीसे जिसकी बाती दम तोड़ना चाहती है। चेतन नारीसे शून्य गृह ऐसा ही होता है।

मेरे सामने एक चित्र टँगा है। मनोरम प्रान्त; चतुर्दिक् हरे-भरे वृक्ष; डालियाँ हिलतीं-डुलतीं; झकोरोंसे वृक्ष कम्पित। एक नारी आँचलसे दीपको बुझनेसे बचाती हुई देव-मन्दिरकी ओर अग्रसर हो रही है। कहीं उसका ध्यान नहीं है; अपना भी ध्यान नहीं है। बस, दीपक जलता रहे—देवताके मन्दिरको प्रकाशित करनेवाला दीपक।

यही हमारी सभ्यता और संस्कृतिका चित्र है। यही वास्तविक नारीका चित्र है। कठिनाइयों और प्रतिकूल परिस्थितियोंके बीच भी अपने कर्तव्यमें अनुरक्त। अपने आदर्शको बुझने न देनेको सन्नद्ध। जिसने युगोंसे इसी प्रकार हमारी आत्माको जाग्रत् रक्खा है—प्राणोंकी दीप्ति बुझने नहीं दी है। जिसके अञ्चल-तले प्रकाश सुरक्षित है, जिसकी छायामें देवताकी अर्चना आश्वस्त है। आत्मदेवकी पूजा निरन्तर चलती रहे, इस उद्देश्यसे श्रद्धाके दीपकको बचाती हुई, देवताके मार्गपर निरन्तर बढ़नेवाली।

यह सम्पूर्ण नारी-शक्ति आज मूर्च्छित है। यह समस्त शक्ति आज रुद्ध है। हे माताओ, बहिनो, बेटियो ! तुम अपने गौरवकी परम्पराकी ओर देखो। तुम जगो; तुम्हारे जगे बिना कुछ न बचेगा। तुम्हारे सहयोग बिना कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य सम्भव नहीं है। तुम उठो; मोहके तुच्छ बन्धनोंको तोड़ दो। आज जीवन तुम्हारी भीख चाहता है; आज सन्तति तुम्हारा मातृत्व चाहती है। आज भाई तुम्हारा बहनापा चाहते हैं। युग-युगमें तुमने स्नेहका जो दान किया है, वह क्या आज बंद हो जायगा ? तुम्हारी मधुर वाणीसे गृह गुञ्जित रहे हैं। क्या वे आज मौन हो जायँगे ? तुम्हारी मुसकानसे हमारा मानस स्निग्ध होता रहा है। क्या आज उस क्रमका अन्त हो जायगा ? तुमको देखकर हमने अपनेको खोजा और पाया है। तब आज तुम अपने स्व-रूपको क्यों छोड़ोगी !

आज जब जगत्‌पर मरणका अन्धकार छा गया है, जब मानवताके शाश्वत सत्य दानवताके पंखमें हैं, तब इस तरह काम न चलेगा। तब नारीको अपने गौरवकी परम्पराकी रक्षाके लिये खड़ा होना पड़ेगा। तब उसे देखना होगा कि जिस पुरुषको उसने सभ्यता और संस्कृतिकी दीक्षा दी, जिसमें उसने ममत्व और मर्यादाओंका विस्तार किया, और जिस पुरुषकी वह माता है, वह उसकी उपेक्षा, उसका अपमान न कर सकेगा।

मा! अपनी मूर्च्छासे जगो। उठो! तुम बन्धनमुक्त हो। तुम सर्वशक्तिमयी हो। तुमने वह [illegible] है— वह गौरव, वह तेज, जिसके लिये [illegible] छटपटा रहे हैं। हे मङ्गलमयी! तुम्हारे [illegible] मार्ग मुखरित हो। हे दानमयी! तुम्हारे दानसे [illegible] धन्य हो। हे शक्तिमयी! तुम्हारे तेजसे हम तेजस्वी हों। उन बन्धनोंको टूट जाने दो, जिनमें तुमने [illegible] है। हे वन्द्य नारी! तुम निर्बन्ध हो। हे [illegible] हो। मानवताके अगणित दल कष्ट तुम्हारा [illegible] हैं। उठो और अपनी शाश्वत यात्रा पुनः [illegible]।

बीसवीं सदीमें नारी

(लेखक—पण्डित श्रीमदनमोहनजी विद्यासागर)

जैसे स्वप्नसे कोई जाग उठे और एकदम अपने सामने सब परिवर्तित देखे, वैसे ही बीसवीं सदीने नींद तोड़ी, करवट बदली और देखा ······सब कुछ बदल गया है।······हर पदार्थने नये रंग-ढंग स्वीकार कर लिये हैं।

रहन-सहन, आचार-विचार, विधा-विधान, विचारधारा, वेश-भूषा, रंग ढंग—सब बिल्कुल बदल गये हैं।······प्राचीन और नवीनमें सर्वथा आकाश-पातालका भेद आ गया है।

चहल पहल दुनियामें बढ़नेसे ब्रह्माण्डमें कुछ हरारत होने लगी; कारखाने-फैक्टरियोंके धूएँसे समान ब्रह्माण्डकी आँखें (दृष्टिकोण) काली हो गयीं, चिमनियोंकी प्रतिदिनकी सीटियोंने स्वप्नको भगाकर मानो चौबीसों घंटे जागरणकी सूचना दे दी हो। तरह-तरहकी पार्टियोंके नारोंसे आसमान फट गया और इस बदलती दुनियाँकी खबर स्वर्गमें जा पहुँची।·· अपने दरबारके रंगमें भंग होते देख देवताओंमें तहलका मच गया।

देवताओंको भारतवर्षकी हुकूमत छोड़े काफी समय हो चुका था।······सबने सोचा, चलो अपने इस प्यारे देशमें जाकर जरा निरीक्षण कर आवें। विशिष्ट मण्डल तैयार हो गया। नामावली बननेके बाद देखा गया कि उसमें नारी-देवता तो कोई था ही नहीं। अखिल-देवता-महिला-मण्डलकी प्रधाना इन्द्राणीने कहा— 'हमारा प्रतिनिधित्व क्यों नहीं? यदि वहाँ कभी स्त्रियोंसे काम आ पड़ा तो आप सब किसका मुख ताकेंगे? परायी औरतोंसे बातें करना तो सर्वथा हानिकर और निषिद्ध है।'

देवता अपनी-अपनी देवियोंके सहित······भारतभूमिके आकाशमार्गपर उतर आये। निर्णय हुआ कि [illegible] सम्बन्धी मामलोंपर ही निरीक्षण और [illegible] किया जायगा।

····राय बहादुर····प्रसादजीके [illegible] सबसे प्रथम मण्डल उतर आया। सूर्यको [illegible] थे। उनकी कन्या (अट्ठाईस वर्षकी) [illegible] थी। रातको एक बजे [illegible] वापिस आयी थी।···[illegible] बहिन···(बाईस वर्षकी), जो [illegible] रक्खे खुर्राटे ले रही थी। [illegible] करती थी।·····पढ़ते पढ़ते [illegible]। ·····पास ही पुस्तकमें किसी [illegible] थी।······

सूर्य देवताने चारों तरफ [illegible] आये।

क्यों? क्या क्या देखा?····

सब कुछ सुननेके बाद एकने पूछा—[illegible] रामायण-महाभारतकी पोथी भी थी या नहीं?

अरे! रे! यह क्या कहते हो! [illegible] था कि ये तो [illegible] तो बहुत से चटकीले, चमकीले नाटक [illegible]।····

उसमें···[illegible] देव स्त्रियाँ भी लज्जित हो गयीं।······

एकने उत्सुकतावश पूछा—[illegible] नहीं हुआ?' मण्डलके [illegible] दिखायेंगे।'

[illegible] सजाबों, [illegible] स्त्रियाँ, बहिनें, [illegible] थीं। भोली देव-स्त्रियोंने [illegible] गयीं। कहा—छिः! छिः!! [illegible] या इस तरहका आचरण तो [illegible] है।' ……अध्यक्षने कहा—'देवियो! [illegible] संस्कार' और 'पाणि-ग्रहण संस्कार' दोनों [illegible]। पर वस्तुतः ये पति-पत्नियोंके जोड़े नहीं हैं। [illegible]। ……एक बूढ़ी देवता महिलाने पूछा—[illegible] कोई धर्म करम, पूजा-पाठ नहीं रहा?' …… [illegible]—'धीरे धीरे बातें करो। आजकल इन सबको तो [illegible] समझा जाता है। फुर्सत नहीं। नौ बजेतक [illegible] शृङ्गार होता है, फिर कालेज जाना। ……सायंकाल सिनेमा [illegible]! फुर्सत मिले तो मुझे विश्वास है कि ये भी उनका नाम ले लें। ……लखनऊकी उन दोनों पढ़ी-लिखी नारियोंका विवाह भी नहीं हुआ। शायद वे आदित्य-ब्रह्मचारिणी रहना पसंद करती हों। मैंने तो ऐसा भी सुना है कि अधिकांश अविवाहित ही रहना पसंद करती हैं, क्योंकि बच्चे पैदा करना भी क्या कोई काम है। वे इनके स्वतन्त्र जीवन-सुखके कंटक मात्र हैं। ……उनको लटकाये ये [illegible] कैसे सँभाल सकती हैं?'…

शिष्टमण्डल वहाँसे चलकर लाहौरके लारेंस गार्डनके [illegible] जा पहुँचा। झूमती हुई लड़कियोंकी एक टोली उधरसे गुजरी ……। इतर-फुलेलकी सुगन्धके मारे (देव स्त्रियोंकी नाक फटने लगी) ……उनकी भुजाएँ नंगी थीं, गर्दन साफ, आधी छाती ……। कपड़े इतने बारीक ……। उनकी बातचीतमें बहुत-सी ऐसी बातें थीं, जो देव महिलाओंको पसन्द नहीं थीं।

देवता महिला सदस्याने कहा—'वेदोंमें तो फूलोंसे शृङ्गार और [illegible] कपड़े पहननेका विधान है?' ……

अध्यक्षने कहा—'देवीजी! वेद तो कभीके गँड़रियोंके [illegible] जा चुके हैं।' ……तो क्या इन्हें कोई वेद-मन्त्र भी याद नहीं? अध्यक्षने मुसकराकर कहा—'रतन' और '[illegible]'के गानोंमें जो इन्स्पिरेशन है, वह इनमें कहाँ?

[illegible] था, एक टेनिस हालमें सब लोग पहुँचे। [illegible] एक लड़की अपनी अम्मासे कहती थी—'अम्मी! [illegible] पाउडर और लिपस्टिक लगा दो न। आज सिनेमा [illegible]। ……[illegible] आवेगा। मैंने उसे कह दिया है कि तू मेरा [illegible] मैं तेरी……।'

देवता महिला-सदस्याकी इच्छा हुई कि 'इस छोकरीके सिरके बाल नोच डालूँ।' ……'दादाजी! क्या इन्हें बाल्यकालसे कोई गृहकृत्य नहीं सिखाया जाता?' अध्यक्षने कहा—'देवीजी! आजकल तो समानताका सिद्धान्त है। इनका कहना है कि यह हमारा कार्य नहीं। हमने ठेका नहीं लिया कि चूल्हेमें पड़े।' ……कई बार तो भोजन भी परिवारका होटलमें ही हो जाता है।

प्रातःकाल अखबारमें पढ़ा कि बम्बईमें 'अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन' का अधिवेशन है।

शिष्टमण्डल वहाँ जा पहुँचा। अंदर जाने लगा तो स्वयंसेविकाने कहा—'टिकट या पास?'

अध्यक्षने कहा—'देवी! हम तो स्वर्गवासी हैं……'

उनके वेश-भूषा देख रेशमी साड़ीमें देदीप्यमान उस देशसेविकाने कहा—'बिना टिकटके अंदर जानेकी इजाजत नहीं।' …… उन्होंने अन्तर्धान होकर सब देखने-जानेकी सोची।

मञ्चपर भारतवर्षकी बड़ी-बड़ी महिलाएँ विराजमान थीं। उनके हाव भाव, वेश-भूषाको देख ऐसा मालूम पड़ता था कि ये सब एक प्रदर्शनीमें रखनेयोग्य गुड़ियाएँ हैं। देशसेविकाएँ न होकर देशभक्षिकाएँ हैं। ……इनसे देशका कोई कल्याण नहीं होनेका।

कार्यवाही प्रारम्भ हुई। ……उनकी एक ऐसी भाषा थी, जो बेचारे इनको समझ न आयी। ये इस भाषाकी लकड़दादी (संस्कृत) को तो जानते थे, पर ……… बृहस्पतिने आकर उनकी यह बाधा दूर कर दी……। उसने बताया कि कई प्रस्ताव पास किये जा रहे हैं—

१—कुछ अन्तर्जातीय राजनीति-सम्बन्धी हैं………।

२—कुछ भारतीय राजनीति-सम्बन्धी हैं…… ।

३—कुछ किसान-मजदूर-सम्बन्धी भी हैं………।

४—कुछ कलकत्तेमें पुलिसके विद्यार्थियोंपर लाठीचार्जके विषयमें………।

देवता महिला-सदस्याने पूछा—'क्यों क्या कोई नारी-सम्बन्धी प्रस्ताव भी है?'

जवाब मिला—नहीं………'बच्चोंके ठीक पालन, स्त्रियोंकी उत्तम शिक्षा, फैशनोंका विरोध, सामाजिक बुराइयोंका विरोध, मूढ़ विश्वासोंके खण्डन-विषयक चर्चा भी हुई या नहीं?' देवता महिलाने पूछा। अध्यक्षने कहा—'इन विषयोंपर विचार करना इनको अपमानजनक मालूम पड़ता है।

इसके बाद शिष्टमण्डल कुछ समय और हमारे देशमें रहा और उसने कई कुटुम्बों, स्कूलों और अन्य संस्थाओंका निरीक्षण किया।······

आसमानमें बादल गरज रहे थे·······। देवताओंने आतिशबाजियाँ (बिजलियाँ) चमकाकर उन्हें मार्ग दिखाया। शिष्ट-मण्डलकी रिपोर्ट सुनकर यह विचार बना कि—

'स्त्रियोंमें जागरण नामसे सञ्चालित आन्दोलनसे नारी-जातिका कल्याण होनेके स्थानपर हानि अधिक हो रही है। उनको दी जानेवाली शिक्षा उन्हें न घरका रखती है और न कहीं औरका। मातृत्वके प्रति गौरवबुद्धि हट गयी है। माता बननेसे नारियाँ घबराने लगी हैं। गृहिणीत्व भी गर्हित है। उन्हें तो जीवनभर डार्लिंग बननेमें अधिक लाभ दिखायी देता है।'··········

इस बीसवीं सदीमें उनका स्थान ऊँचा नहीं हुआ, पर नीचा भी है। सदाचार, पुण्य-धर्म-[illegible] [illegible] है; मीटिंग करने या प्रस्ताव पास करनेसे नहीं। [illegible] जीवन नारी (क्या सबके) के लिये [illegible] फैशनेबल जीवन नहीं।·· ··निस्सन्देह [illegible] उन्नतिमें बाधक हैं, उनके दूर करनेकी हम भी [illegible] करते हैं। जिन बुराइयोंके करनेका अधिकार [illegible] पुरुषोंको मिला है, उन्हीं बुराइयोंके करनेका अधिकार [illegible] महामूर्खता है। प्रयत्न तो यह होना चाहिये कि [illegible] जगहसे हटायी जाय।·····नारीको [illegible] भुलाना चाहिये। वर्तमानमें [illegible] ही रूप बनाना चाहती है, जो कि उसकी [illegible] उन्नतिमें बड़ी भारी रुकावट है।·· ··

क्या मेरी प्यारी बहिनें इस [illegible] प्रयत्न करेंगी?

प्रगतिशील संस्कार और साहित्यसे पोषित समाजकी नारी

(लेखक—पं० श्रीसूर्यनारायणजी व्यास)

जिस देश अथवा समाजका साहित्य स्वस्थ एवं जीवित होता है, वही देश या समाज जीवित, उन्नत प्रगतिशील माना जाता है। हजारों वर्ष बीत जानेपर भी भारतको इस बातका गर्व है कि उसका साहित्य सर्वाङ्गीण पुष्ट होनेके कारण ही उसका समाज स्वस्थतापूर्वक चिरजीवी बना हुआ है। अवश्य ही पराधीनताकी पिछली दो शताब्दियोंमें हमारी अपनी आत्म-विस्मृतिने पर-प्रेरणासे पथ-भ्रान्त बना दिया है; जिस भारतसे प्रकाश पाकर विश्वकी संस्कृति अपनेको उज्ज्वल देखनेको विवश बनती थी, उस भारतको स्वतःकी आत्म-प्रवञ्चनाने अवश्य ही विपथगामिताका अनुयायी कर दिया है। जिससे प्रेरित हो किसी भी साहित्य अथवा समाजने प्रगति-साधना की है, उसका 'मूल' कितना विशाल, कितना समुन्नत होना चाहिये, जो निरन्तर शताब्दियोंसे नहीं, सहस्राब्दियोंसे समानरूपसे अनेक उत्थान-पतनोंके आते-जाते रहनेपर भी जगको प्रगति और प्रकाश प्रदान करता आ रहा है।

भारतीय साहित्यने अपने समाजको जो नैतिक और सांस्कृतिक संवर्धन दिया है, वह चिरकालाबाधित है। उसकी प्रगति-प्रेरणामें भी उच्छृङ्खलताको अवसर नहीं है। सदाचार-की मर्यादित मानभूमिपर प्रधावित होनेकी संपूर्ण स्वाधीनता अवश्य है। पश्चिमके प्रकाशमें प्राप्त प्रगतिने [illegible] जो पतनकी ओर पथ-गमन किया है, [illegible] समाधिमें ही सहायक बना है, [illegible] जिसे आज 'प्रगति' शब्दपर समाज-निर्माणके लिये [illegible] सूचित किया जाता है, उसका 'निर्बन्ध' [illegible] साहित्यमें आरम्भसे ही नीति-निर्धारणके [illegible] चुका है। समाजकी वेगवती गतिकी [illegible] सुविधाको लक्ष्यमें रखकर ही [illegible] पूर्वक निर्णय किया है। परन्तु पूर्वकी [illegible] प्रतिबन्ध रूपमें रहनेके कारण [illegible] सभ्य सत्कारोंको [illegible] वे पश्चिमके [illegible] पाते हैं। पूर्वका विधान [illegible] पश्चिमकी सदाचारविषयक धारणाको [illegible] है। भारतीय सभ्यताकी [illegible] आधारित रहनेके कारण [illegible] सर्वोपरि सुख-समाधान [illegible] भोग-कामनाके [illegible] सीमाको महत्त्व न देकर [illegible]

[illegible] सामाजिक सौन्दर्यकी विकास-साधना ही नष्ट होती रही है। पश्चिमके इसी संस्कारके अनुसरणने भारतीय समाजकी अशान्तिको जन्म दिया है।

जिन्होंने ध्यानपूर्वक भारतीय साहित्यका अनुशीलन किया है, वे स्वीकार करेंगे कि सदियोंसे नहीं, सहस्राब्दियोंसे पुरातन समझे जानेवाले दूरदर्शी आचार्योंने हमें जिस प्रकार सामाजिक सुधारकी सुविधाएँ प्रदान की हैं, वह आज ही नहीं—आनेवाले अनेक युगोंको भी प्रेरणा देती रहेंगी। परंतु हम अपने आदर्शोंसे आज अनजान हो गये हैं। संस्कृत-साहित्यके रसिक कविकुलकलाधर महाकवि कालिदासकी श्रृंगारिकताको कौन नहीं जानता ! उनकी शकुन्तला, मालविका, उर्वशी और यक्षपत्नीकी सौन्दर्य-माधुरी, प्रणय-विलास सारे विश्वके सुधी-समाजके गाये हुए हैं; परंतु दो हजार साल पुराने इस रस-विलासके आचार्य कविका 'आदर्श' था—'अनिर्वचनीय परकलत्रम्'(परस्त्रीकी चर्चा करना अनुचित है।) मर्यादाकी मान-भूमिपर ही कालिदासके काव्य-नाटक पात्रोंका अभिनय है। परंतु ये पात्र अपनी पुरोगामिता, सौन्दर्य-प्रसाधना आदिमें आजकी 'पेरिस' की परम प्रगतिशीला परियोंको भी पीछे ही नहीं, बहुत पीछे छोड़ देनेवाले हैं। फिर भी इनके चरित्रोंकी आदर्श भावनापर आज भी कौन अँगुली उठानेका साहस कर सकता है ?

हमारे समक्ष जिस वैदिक समाजकी आदिम वैवाहिक कल्पना 'सूर्या'के रूपमें ऋग्वेदने प्रस्तुत की है, उसकी परम्परा न जाने कितनी शत-सहस्राब्दियोंके बाद भी आजके समाजमें यथावत् देखी जा सकती है। इस आदिम वैदिक विवाहमें भी 'कन्या'की जो कल्पना की है, वह यौवनसे सुशोभित हुई है ('कन्यात्वेन अभिनवयौवनलक्षणं [illegible]— सायण)। और उसे स्वतःपतिकी कामना करनेवाली [illegible] किया है (पतिं कामयमानाम्)। अपना जीवन-संगी निर्वाचित करनेकी स्वाधीनता रखनेवाली कुमारिकाएँ ये आधुनिक नहीं, किंतु ठेठ वैदिक युगकी रही हैं। उपनिषद् और वैदिक साहित्यकी ब्रह्मवादिनी बाला (अविवाहिता) नारियोंकी अनेक कथा गाथाएँ इस साहित्यमें भरी हुई हैं। कई देवियाँ ब्रह्मवादिनी और मन्त्रदर्शिनी हो चुकी हैं। मैत्रेयी और गार्गी कौमार्यकालमें महर्षि याज्ञवल्क्य-जैसे तत्त्ववेत्ताओंसे ब्रह्मवाद करनेकी चर्चासे आज भी उपनिषद्-[illegible] परिचित हैं। नारीकी यह प्रतिष्ठा- अविवाहिता-अवस्थाका स्वातन्त्र्य और ज्ञान विज्ञान-जैसे गम्भीर विषयपर प्रभुत्व पश्चिमके प्रकाशमें सुधारकी धूमरित धारणा रखनेवाली देवियोंको अब भी पथ प्रदर्शनके लिये पर्याप्त है।

विवाह और दाम्पत्य-जीवनकी उलझी हुई आधुनिक समस्याने समाज-जीवनको जर्जर और अशान्तिमय बना दिया है। हमारी संस्कृतिकी विस्मृति और पराधीनताकी लंबी अवधिने आत्मविश्वास एवं आत्मस्वरूपपर अज्ञानका आवरण डालकर हमें जिस अन्धतमसमें डाल दिया है, यह अशान्ति उसीकी आभारी हुई है। परंतु हमने इससे निकलनेके लिये भी जो उपाय—योजनाएँ की हैं, उनका आदर्श पूर्वको नहीं, पश्चिमको बनाया है, जो समाजकी इस मधुर समस्याके विषयमें गहरे अँधेरेमें जा रहा है। विवाहके आठ प्रकारान्तरोंमें भारतीय पद्धतिने जो सुविधाएँ और सरलताएँ प्रदान की हैं, वह निरन्तर 'तलाक' की 'ताली' जेबमें रखकर प्रतिक्षण पतिके साथ प्रेम-प्रसङ्ग-रचना करनेवाली देवियोंके देशमें भी दिखायी नहीं दे सकतीं। इसपर भी उन आठ प्रकारोंमें संकुचितताको तिलमात्र अवसर नहीं है। सिविल-मैरेजकी संस्कारहीन सुविधाने उच्छृङ्खलता और स्वैराचारको अवश्य ही सरल बना दिया है। पर भारतीय पद्धतिने समाजको मनोऽनुकूल सुविधा प्रदान करके भी पावित्र्य-परम्पराका जो अङ्कुश रक्खा है, उसकी कल्पना भी आधुनिक सुधारोंको नहीं छू सकती ! और देशोंने प्रगतिशीलताका 'पट्टा' पाकर भी जिन सुविधाओंको क्षम्य नहीं समझा, उन उदार सूचनाओंको भी जब हम अपने मानव-धर्मके विधाताओंके विधानोंमें सहज देखते हैं तो विस्मयसे विमुग्ध ही बन जाना पड़ता है। 'नियोग'के विधानको नैतिकताकी परिधिमें परिगणितकर नारीको 'कुल-लक्ष्मी' स्वीकार करनेकी बात वह पश्चिम भी, जिसके सदाचार का 'स्तर' ऊपर नहीं है, स्वीकार करनेको तैयार न होगा ! यही कारण है कि भारतीय साहित्यके समक्ष हमारा सिर सदा नम्रतासे झुका रहता है। जिस युगकी हम चर्चा कर रहे हैं, उसकी कई शत-शताब्दियोंके बादतक पश्चिमने सभ्यताके समीरको स्पर्श नहीं किया था। पुरातन कालकी नारी यदि केवल सन्तान उत्पन्न करनेकी 'मशीन' या रसोई-घरकी 'रानी' ही रहती तो ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रमें जो उसने नरके साथ सहकार किया है, वह कैसे सम्भव होता। हाँ, उनकी सर्वाङ्गीण समुन्नतिमें भी सदाचार उनका चिरसंगी बना रहा है। उसको त्यागकर वे इस समयकी बाजारू प्रगतिशीला नहीं बनीं। वेश्या कही जानेवाली वसन्त-सेना, बौद्धकालकी अनुयायी वासवदत्ता यदि आजकी परिभाषामें 'वेश्या' ही होती

तो इतिहास और साहित्यने उन्हें अमर न बना दिया होता ! दमयन्ती और शकुन्तलाकी प्रणयकथा इतिवृत्तकी अमर-कथा हैं पर विश्वामित्र और कण्वके 'आश्रमकी पवित्रता'की धरोहर उनके साथ है। महर्षि कण्व शकुन्तलाके प्रणयपर भी अपनी मुहर लगा देते हैं। यदि यह 'असम्भव घटना' होती तो एक आश्रमवासी तपोधन महर्षिकी सहिष्णुताकी अधिकारी नहीं बनती ! सम्भव है पुरातत्त्वके पण्डितोंको शकुन्तला दमयन्तीके कोई सिक्के न मिलें और आधुनिक विज्ञानकी कसौटीपर उनका अस्तित्व साबित न भी किया जा सके' किंतु इतिहास-विश्रुत कालिदासने आजसे दो हजार साल पहले इन्हें अपने साहित्यमें अमर पात्र बनाकर दो सहस्राब्दियोंके समाजके साथ अवश्य उनका सामञ्जस्य बिठला दिया है। इसके बाद पाठक उस शकुन्तलाका रूप देखें, जो निरे जंगलमें पलकर वल्कल-वसन परिधानकर शिष्टता-सभ्यता और सौन्दर्य-प्रसाधनोंसे परिपूर्ण एक ऐसी उत्कृष्ट नारी निर्मित होती है, जिसकी सुसंस्कारिता-के साथ इस युगकी कोई भी समुन्नत सम्राज्ञी भी नहीं बिठलायी जा सकेगी !

कौन पहचान सकता है कि हम उसी समुन्नतिके सौध-शिखरपर पहुँचे हुए समाजकी ही सन्तानें हैं ?

हम जिन्हें पुराने समझते हैं, (वास्तवमें विकृत) उन परिवारोंमें यदि किसी कन्याको 'वर' देखना चाहे तो नहीं दिखलाया जाता। फिर 'फोटो'की बात तो बहुत दूर है। किंतु स्वयंवरकी बहुत प्रसिद्ध प्रणालिकामें तो अत्यन्त कुलीन राजकुलोंतककी रूपरमणियोंका शतशः राजकुमारोंके सम्मुख प्रदर्शन ही होता था। वे स्वतः पतिनिर्वाचन करती थीं ! इन 'असूर्यम्पश्याओं'के विषयमें क्या कहा जायगा ? क्या उन्हें उद्धता, स्वैराचारिणी या असंस्कृता माना गया है ?

पश्चिमकी अनुकरणशीला देवियाँ आजन्म 'मिस'का मान पानेकी कल्पना करती हैं। भारतीय नारीके लिये कौमार्य की सुविधा न रही हो—यह बात नहीं है। [illegible] कौमार्यमें पवित्रताका परमादर प्रतिष्ठित था। [illegible] कामनामें दीर्घकालीन तपःसाधना [illegible] कालतक कौमार्य-साधनाके सिवा [illegible] अनेक हैं। महाभारतीय शल्यपर्वमें शाण्डिल्य [illegible] धृतवतीका आजीवन तपश्चरणपूर्वक कुमारी [illegible] देव-ब्राह्मणवन्दित हो जाना तथा [illegible] दुहिता श्रुतावतीका नामस्मरण भी पावन माना गया है।

सतियोंके चरित्रके विषयमें तो भारत ही [illegible] किसी देशमें सतीप्रथाका सर्वत्र नहीं मिलना। [illegible] की बात छोड़िये, परन्तु सतीत्वके आदर्शकी [illegible] अतुलनीय ही रही है।

भारतीय आदर्शकी परम्परा निःसंदेह [illegible] ओर अहल्याके पतन और दूसरी ओर [illegible] द्रौपदीके चीरहरणसे दुष्ट दुःशासनकी [illegible] हो सकता है। मन्दोदरीने राक्षसराज [illegible] हम परिचित हो [illegible] हैं। वहाँ महाभारत हमें उन्हीं [illegible] को प्रातःस्मरणीय घोषित करता है। और [illegible] की यह परिणीता है कि परम्पराने हमारा [illegible] कीर्ति मालिकाओंके समक्ष नम्रतासे [illegible] विश्वसाहित्यमें इसकी समता नहीं है। [illegible] यह स्पष्ट प्रकट है कि हमारी [illegible] साहित्यका 'मूल' निरन्तर प्रगतिशील [illegible] है। यही कारण है कि हम उसी [illegible] सिद्धान्त, अथच शाश्वत प्रतिष्ठित [illegible] रखकर ही आजपर्यन्त अपना अस्तित्व बनाये [illegible] का कालक्रम सिलसिलेवार [illegible] प्रगतिशील साहित्य और संस्कृतिके [illegible] होनेवाले समाजका अस्तित्व ही [illegible]

नारीका सम्मान

वर्तमान एकाकारके युगमें यह कहना बहुत कठिन है कि नारीका स्थान कहाँ है ! [illegible] शुद्धाचारिणी, स्वदेशवत्सला और सतीशिरोमणि है; कुछ ही दिनों बाद वह [illegible] है। इस समय नारी प्रगतिके जो आन्दोलन हो रहे हैं अथवा पुरुषमात्र ही आज [illegible] इससे भारतरमणीको अतीत सम्मानकी एक कानी कौड़ी भी मिलनेकी आशा नहीं है। वर्तमान युगमें [illegible] आकाशकुसुमकी ओर देखती हुई किस प्रकार नीचेकी ओर अग्रसर हो रही है। [illegible] मन्त्रि-सभा या व्यवस्थापिका-सभाकी सदस्या अथवा लेडी, जज, बैरिस्टर होनेमें ही यदि नारीका [illegible] तब तो समझना होगा कि आज भारतवासी अपनेको हिंदू कहनेका अधिकारी ही नहीं [illegible]

भारतीय नारीका कर्तव्य

(ले०—श्रीअनुरूपा देवी)

उस गोदिके रानी प्रान्तमें अभी उस दिनतक भारतीय नारियोंका अधिकार कुछ कम नहीं था। प्रमाण चाहिये तो अपने ही बचपनमें देखी हुई या जवानीमें जानी हुई अथवा अभी मौजूद दादीके साथ पोतीको मिलाकर देख लीजिये। कमीज, पेटीकोट, ब्लाउज और जूते मोजे पहनकर कापी और किताबोंका बोझ लादकर यह पोती क्या उस दादीकी अपेक्षा अधिक उन्नत हृदयवाली, अधिक उदार विचारवाली तथा त्यागके बलपर पवित्र चरित्रवाली बन सकी है?

बच्चे-बच्चियोंको स्कूली शिक्षा देनी हो तो दीजिये; परंतु याद रखिये असली शिक्षा है 'गृहशिक्षा'। और इस गृहशिक्षाके लिये प्रधान शिक्षक हैं, बच्चे-बच्चियोंकी मा! मा स्वयं सीखकर बच्चोंको सिखाती और आदमी बनाती है। वही सिखाती है स्वदेशसे प्रेम करना, स्वधर्मको प्राणोंसे बढ़कर प्रिय समझना तथा स्वजातिको शरीरके शोणितबिन्दुके समान प्रिय मानना। और वह अपने आचरणसे सिखाती है—'त्याग धर्म'। संयमका धर्म ही वीरका धर्म है—महान् पुरुषका धर्म है, धार्मिकका धर्म है।

असंयम, उच्छृङ्खलता अथवा भोगेच्छा संसारमें वाञ्छनीय नहीं है, बल्कि त्याज्य वस्तु है। सदाचारका पालन, स्वधर्मकी सेवा तथा शास्त्र-ज्ञान-प्राप्तिकी इच्छा और चेष्टा—इन सब प्रवृत्तियोंको बच्चोंके मनोंमें जाग्रत् कर देना माका काम है। अर्थात् हिंदू माताको ऐसा कार्य करना पड़ेगा, जिससे उसकी सन्तानका इस लोक और परलोकमें मङ्गल हो। दृष्टिको केवल सांसारिकताके प्रति ही सीमित रखनेसे माताके कर्तव्यका सम्यक्रूपसे पालन नहीं होगा। इस प्रकार यदि गृह-शिक्षारूपी बन्धनको भलीभाँति कस दिया जायगा तो पश्चिम-तटकी ओर चाहे कितनी ही प्रबल और बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठें, पूर्व तटकी हानि उतनी बड़ी सांघातिक न होगी।

माताओ! हमलोगोंमें जो सास हैं, वे अपनी पुत्र-वधुओंको अपने पेटकी कन्याके समान मानकर उन्हें यथासाध्य सत्शिक्षा प्रदान करें, नैतिक शिक्षापर पूर्ण दृष्टि रक्खें—स्नेह और यत्नके साथ: उनमें यदि कुछ दोष हो तो उसे सुधार लें। 'बहू' है, इसलिये वह कोई पृथक् प्राणी नहीं है; बल्कि वह घरकी जननी है। उस गृहलक्ष्मी कल्याणीके द्वारा एक नवीन वंशकी सृष्टि होगी, इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातको एक क्षणके लिये भी भूलनेसे काम न चलेगा। किसका काम नहीं चलेगा? स्वयं अपना ही। अपने ससुरका भावी वंश, और उनके स्वर्ग या नरकका प्राप्त होना निर्भर करता है इस वधूरूपिणी प्राणीकी शिक्षा-दीक्षाके ऊपर ही 'आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः।' खान यदि अच्छी है तो उससे पद्मराग मणि ही निकलेगी। काँच कहाँसे आयगा? मुख्यतः सन्तानके द्वारा ही माता-पिताका परिचय प्राप्त होता है, यही स्वाभाविक है। हमलोगोंकी आनेवाली सन्तान ही हमारे लिये स्वर्ग और नरक है। जो जैसी सन्तान उत्पन्न करते हैं, संसारमें उनका यश और अपयश तदनुसार ही रह जाता है। अतएव केवल आजकलका वधूधर्म ही उनका प्रधान धर्म नहीं हो सकता। वह धार्मिका, नीतिज्ञानयुक्ता, विद्यावती, गृहकर्म आदिमें सुदक्षा तथा शरीर और स्वास्थ्यके सम्बन्धमें अभिज्ञता प्राप्त करके संक्रामक रोगोंसे अपनी रक्षा करनेमें समर्था हो, तभी 'पु' नामक नरकसे त्राणके लिये पुत्ररूपी भगवान्को अपने घर लानेकी योग्यता प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकती है। इस बातको समझकर उन्हें ऐसी ही बना लें। साथ ही, दूसरे घरोंके लिये इसी प्रकार अपने घरकी कन्याओंको तैयार कर दें। भारतीय नारीके लिये इस समय इससे बढ़कर और कोई कर्तव्य है या नहीं, मैं नहीं जानती। यदि हो तो जो उस पथके पथिक हैं, उनको बुलाकर यदि आपका मन लगे तो उनसे सुन लें। परंतु एक बात मैं बहुत जोर देकर कहूँगी—कोई कुछ भी कहे, सतीका एकनिष्ठ प्रेम होता है और उसका जो एक महान् आदर्श है—उससे बढ़कर और कल्याणप्रद और कुछ भी संसारमें हो नहीं सकता। विवाहका उद्देश्य केवल देह-सुख नहीं है; यदि वैसा होता तो पृथ्वीसे अबतक विवाह-संस्कार उठ गया होता और आजके दिन जो कल्पनाके राज्यमें खूब आडम्बरका आसन जमाये बैठे हैं, संसारके समस्त आसनोंका अधिकार उनके हाथमें आ गया होता। विवाहमें जो पति-पत्नीकी एकात्मता स्वीकार की जाती है, यदि आज पुरुषोंके द्वारा कहीं-कहीं उसका भङ्ग होता है तो उसका बदला लेनेके लिये अपनी नाक कटानेकी आवश्यकता नहीं है। जो लोग सती-धर्मकी असारताका प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करते हैं, उनको न सुनना ही अच्छा है। जिस दिन संसारसे नारीका सतीत्व लुप्त हो जायगा, उस दिन जान लीजिये कि पृथ्वीका भी ध्वंसकाल समुपस्थित हो जायगा। मनुष्य उस दिन पशुत्वकी ओर लौटेगा, यह जानना होगा। परंतु इस प्रकार भय करनेकी आवश्यकता नहीं, ऐसा दुर्दिन कभी आ ही नहीं सकता।

मार और प्यार

सास कर्कशा स्वामी निर्दय दोनों रहे बहूको मार ।
सास सुशीला सहृदय स्वामी करते गहनोंसे सत्कार ॥

सहमरण या सती-चमत्कार

आर्तार्ऽऽर्ते मोदिता हृष्टे प्रोषिते मलिना कृशा ।
मृते च म्रियते पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥

'जो नारी स्वामीके दुःखसे दुःखिता, हर्षमें हर्षिता, स्वामीके प्रवासमें रहनेपर मलिना (शृङ्गारविहीना) और कृश शरीरवाली होकर रहती है एवं स्वामीके मरनेपर मर जाती है, उसे पतिव्रता कहते हैं।'

नारी भर्तारमासाद्य यावन्न दहते तनुम् ।
तावन्न मुच्यते सा हि स्त्रीशरीरात् कथञ्चन ॥

'पतिमें भलीभाँति लीन होकर जबतक नारी उसके साथ सहमृता (सती) नहीं होती—अपनी भिन्न सत्ताको भस्म नहीं कर देती, तबतक स्त्री-शरीरसे छूटकर मोक्षको नहीं प्राप्त होती।'

प्राचीन ग्रन्थोंमें बहुधा यह उल्लेख मिलता है कि प्राचीन कालमें आर्यनारियाँ सती होती थीं, हँसती-हँसती पतिके शवको गोदमें रखकर अपने शरीरको भस्म कर डालती थीं। वेदोंमें सहमरणका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। स्मृतियो और पुराणोंमें भी पाया जाता है। श्रीमद्भागवतमें आया है कि महाराज पृथुकी पत्नी अर्चिने स्वामीके साथ चितारोहण किया था। महाभारतमें पाण्डुपत्नी माद्री, वसुदेवजीकी चार पत्नी देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिराके सहमरणका प्रसङ्ग आता है। धृतराष्ट्रपत्नी गान्धारीने भी पतिका अनुगमन किया था। भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेपर देवी रुक्मिणी, गान्धारी, शैब्या, हैमवती, जाम्बवती आदि सती हुई थीं (देखिये महाभारत, आदिपर्व ९६ । ६५; १२५ । २९; विराटपर्व २३।८; शान्तिपर्व १४८।१० और मौसलपर्व ७–१८)। ऐसे ही बहुत-से प्रसग और भी पाये जाते हैं। ये घटनाएँ सर्वथा सत्य हैं। ऐसा होना असम्भव नहीं है। फिर सती-प्रथाको कानूनद्वारा बंद क्यो किया गया? यह एक विचारणीय प्रश्न है। कहा जाता है, जिस समय सती-प्रथाबंदीका कानून बना, उस समय समाजकी निन्दाके भयसे स्त्रियाँ महान् मानसिक और शारीरिक कष्ट सहकर बिना मनके जलती थी। वरं यहाँतक होने लगा था कि जिसका पति मर जाता था, उस स्त्रीको स्वार्थवश घरके लोग उसकी इच्छाके विरुद्ध जबरदस्ती पतिकी लाशके साथ बाँधकर जला देते थे। ये बातें न्यूनाधिकरूपमें सत्य हो सकती हैं। क्योंकि कामना तथा स्वार्थ मानवको दानव और पिशाच बना देते हैं। स्वार्थवश किसीको फुसलाकर, बहकाकर, प्रोत्साहन दिलाकर और उसको आगमें झोंककर मरवा देना तो उनकी निर्मम हत्या करना है। अतएव यदि ऐसा होता था तो वह निश्चय ही निर्दयता और महान् पापाचरण था। इसलिये पुरुषोंके द्वारा ऐसे जघन्य और नीच कर्मका बंद होना भी सर्वथा ठीक ही था। इतना होनेपर भी सच्ची सतियोंको पतिका अनुगमन करनेसे कौन रोक सकता है? कानूनकी पहुँच वहाँतक है ही नहीं। इस गये-गुजरे जमानेमें भी बीच-बीचमें ऐसी सतियोंकी चमत्कारपूर्ण घटनाएँ देखने सुननेको मिलती हैं।

सतीके शरीरसे स्वतः अग्नि प्रकट होनेकी बात सुनकर लोगोंको कुछ असम्भव-सा लगता है; परंतु ऐसा होना असम्भव नहीं है। शास्त्रमें विश्वास करनेवाले लोगोंकी तो यह दृढ़ धारणा है कि सती देवीके संकल्पसे ही अग्नि प्रकट हो जाती है, और यह सर्वथा सत्य भी है। परंतु अन्यान्य युक्तियोंसे भी यह बात समझमें आ सकती है। अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। हमारे शरीरमें भी है। रगड़ लगनेपर वह प्रकट होती है। हाथसे हाथ मलनेपर वह गरम हो जाता है। अरणि-मन्थनसे (लकड़ियोंको परस्पर रगड़नेसे) अग्नि प्रकट होते तो बहुत लोगोंने देखा होगा। जंगलोंमें पेड़ोंके आपसमें रगड़ लगनेसे अग्नि पैदा हो जाया करती है। चकमक पत्थर [illegible] चोट लगनेपर आग उगलते हैं, यह सबको विदित है। इसी प्रकार किन्हीं विशेष संयोगोंमें शरीरसे ही अग्नि प्रकट हो सकती है। जब किसीको बुखार होता है तो कभी-कभी उसका शरीर इतना उत्तप्त हो जाता है कि उसका स्पर्श सहन नहीं होता। यह गर्मी कहीं बाहरसे नहीं आती, उस शरीरके भीतरकी है, अग्निके जाग्रत होनेसे तापमान बढ़ जाता है। चिन्ता, शोक और विरहके कारण भी शरीर [illegible] दग्ध होने लगता है। यही आग किसी विशेष [illegible] प्रज्वलित भी हो जाय तो क्या आश्चर्य है! सती देवीने बिना [illegible] अपने स्वामी भगवान् शङ्करका अपमान देखकर [illegible] इतना सन्ताप हुआ कि उनके शरीरसे योगाग्नि प्रकट हो गयी और वे उसीसे जल गयीं। कहते हैं दीपक [illegible] अग्निका उद्दीपन होता है, [illegible] दूर रखे हुए दीपक भी प्रज्वलित हो उठते [illegible]। इस प्रकार बाह्य या आभ्यन्तरिक [illegible] उद्दीप्त होनेसे [illegible] हो सकते हैं।

मनुष्यके शरीरमें छोटी-बड़ी बहुत गाँठें हैं, जो सारे शरीरमें फैली हुई हैं। इन गाँठोंमें कुछ प्रणालीवाली हैं, जिनसे निरन्तर रस झरता है। कुछ आँसुओंकी हैं, जिनसे आँसू बहते हैं। कुछ गाँठें ऐसी भी हैं, जिनसे कोई भी रस झरता नहीं दिखायी देता। इन्हें रसवाही-नालिकारहित ग्रन्थि कहते हैं। इन गाँठोंके साथ शरीरकी आकृति और कदका सम्बन्ध रहता है। इतना ही नहीं, मनुष्यके चरित्रका भी इनसे सम्बन्ध होता है। जैसे इन गाँठोंसे मनुष्यके चरित्रका निर्माण होता है, वैसे ही मनुष्यके चरित्रका इन गाँठोंपर प्रभाव पड़ता है। मतलब यह कि इन गाँठोंके विचित्र विकास, असाधारण परिवर्तन और विनाश आदि मनुष्यके अपने जीवनपर निर्भर करते हैं। फिर जैसी गाँठें होती हैं, उनसे वैसी ही क्रिया भी होती ही है। एक सच्ची सती, जिसके तन, मन और हृदय सर्वथा पवित्र हैं, जो अपने पतिके प्रेमके आधारपर ही जीवित है, जिसने अपने हृदयमें पतिके सिवा दूसरे किसीको कभी स्थान ही नहीं दिया, जिसका जीवन पतिके लिये सदा आनन्दलाभ करनेमें ही बीता और जो पतिका क्षणभरके लिये भी वियोग सहन करनेमें असमर्थ है, उसके इन चरित्रगत भावोंका उसके शरीरकी ग्रन्थियोंपर कैसा प्रभाव होता है और उसके अंदरके तमाम अवयव कैसी असाधारण स्थितिमें पहुँच जाते हैं, इसका हमलोग कुछ भी अनुमान नहीं लगा सकते। ऐसी अवस्थामें पति-वियोगकी स्थिति प्राप्त होनेपर उसके आन्तरिक अवयवोंमें ऐसी विशेष क्रिया हो, जिससे अग्नि प्रकट हो जाय, तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ?

मनुष्यके शरीरमें गलेके आगे एक ग्रन्थि है, जिसे अंग्रेजीमें 'थाइरॉइड ग्लैंड' कहते हैं। यह गाँठ शरीरमें प्रेम और कामना उत्पन्न करती है, शरीरमें गर्मी बढ़ाती है और इसमेंसे निकलनेवाले रसका प्रवाह यदि बढ़ जाता है तो मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। इस गाँठसे निकलनेवाले रसको 'थाइरोक्सिन' कहते हैं। इस गाँठ और इससे बहनेवाले रसके सम्बन्धमें डा० लुई बरमन एम०डी० महोदयने 'The Garnds Regulating Personality' नामक ग्रन्थमें जो कुछ लिखा है, उसका सारांश इस प्रकार है—

'मानव-शरीरके मांसपेशियोंके जलती रहने (गर्मी प्राप्त करने) का व्यापार शरीरके थाइरोइड नामक गाँठसे बहनेवाले रसके परिमाणपर अवलम्बित है। यह निश्चित है कि यदि इन रसोंकी निकासीमें रुकावट दिये और आवश्यकता होनेपर विशेष कम करनेके लिये कोई साधन न हो तो मांसपेशियाँ बिल्कुल जलकर भस्म हो जायँ। अतएव जिस मांसपेशीमें थाइरोइडसे बहनेवाला प्रवाह सबसे अधिक परिमाणमें हो और रक्तके द्वारा उसे अधिक-से-अधिक मिलनेवाला प्रवाह जारी रहे तो उसमें पहुँचनेवाली शक्तिका दबाव 'सेफ्टी वल्व'से रहित एक बायलरकी स्थितिपर पहुँच जाय।' अर्थात् जैसे इस प्रकारकी स्थितिमें बायलर फट जाता है, वैसे ही मनुष्यका शरीर जलकर भस्म हो जा सकता है। परंतु मनुष्यमात्रमें ही इस बढ़ती हुई गर्मीको सीमाबद्ध रखनेके लिये प्रकृतिने सुन्दर योजना बना रक्खी है, जिससे तंदुरुस्तीकी हालतमें मांसपेशीको उतनी ही गर्मी मिलती है जितनी उसके लिये आवश्यक होती है।

परंतु यदि किसी सतीके पति-वियोगके समय उसके मनकी स्थिति ऐसी असाधारण हो जाय कि जिससे थाइरोइड-ग्रन्थिपर सीधा प्रभाव पड़े और वह उसकी गर्मीको एकदम बढ़ाकर शरीरसे अग्नि पैदा कर दे तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। पतिगतप्राणा प्रेममूर्ति सतीके हृदयमें जब पति-वियोगकी अग्नि सुलगती है, तब उसका रूप कैसा होता है—इसको हमलोग ठीक-ठीक समझ ही नहीं सकते। ऐसी हालतमें गलेके पासकी थाइरोइड गाँठमें रसका प्रवाह बढ़ जाना और उसके कारण कंधे आदिसे अग्निका फूट निकलना सर्वथा सम्भव और युक्तिसंगत है। इस स्थितिको डा० बरमनने हाइपरथाइरोडिज्म (Hyperthyroidism) कहा है। अन्य कई विद्वानोंने भी इस ग्रन्थि-विज्ञानका समर्थन किया है।

हमारे शरीरमें एक अग्नि तो खास तौरपर सदा रहती है, जिसे जठरानल कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—'मैं ही वैश्वानर (अग्नि) होकर शरीरके भीतर चतुर्विध अन्नको पचाता हूँ।' जो अग्नि अप्रकटरूपसे सदा वर्तमान है, वह यदि कारणविशेषसे प्रकट हो जाय तो इसमें अनहोनी बात क्या है ? अप्रकट अग्निका प्रकट होना तो हम अपने घरोंमें रोज ही देखते हैं। अतः सतीके शरीरमें विशेष अवस्थामें अग्निका प्रादुर्भाव होना कदापि असम्भव नहीं है।

पति-वियोगके अवसरपर बिना किसी रोगके सती स्त्रीके मरणमें तो जरा भी आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये। महान् शोक और महान् आनन्दकी दशामें हृदयकी गति रुककर मृत्यु होनेकी घटनाएँ तो बहुत होती हैं। मनका शरीरपर बड़ा भारी असर होता है। भक्त कवि जयदेवकी मिथ्या मृत्युका समाचार सुनते ही उनकी धर्मपत्नी पद्मावतीका प्राण-वियोग हो गया था, यह प्रसिद्ध है। परंतु यह याद रखना चाहिये कि मृत होना सर्वथा स्वाभाविक बात है। किसी

बाहरी प्रेरणा, चेष्टा या बलात्कारसे ऐसा नहीं हुआ जाता। बलात्कारसे मरना तो पाप है। स्वयं करनेपर आत्महत्या और दूसरा कराता है तो उसके लिये नर-हत्या होती है। साथ ही पतिके साथ सहमरणका वरण करनेवाली सतीसे उस सती देवीका दर्जा किसी तरह कम नहीं है जो [illegible] ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करती हुई जीवित [illegible] बच्चोंकी निष्काम सेवा करती है। और [illegible] आचरणोंसे परलोकमें पतिको अनन्त सुख [illegible] है।

नारीका प्रश्न

नरकी शक्ति है नारी। नारीके द्वारा ही नर शक्तिमान् होता है। नारी अक्षय शक्तिका स्रोत है। शक्तिके बिना शक्तिमान् नहीं, नारीके बिना नरका अस्तित्व नहीं। नारीके जीवन-विकासपर नरके जीवनका उत्कर्ष अवलम्बित है। नर नारी-जीवनका आधार है. दोनों एक ही अस्तित्वके ऐसे परस्परसम्बद्ध पहलू हैं, जिनमें एककी उपेक्षा करनेसे दूसरेकी हानि अवश्यम्भावी है। दोनोंके समुचित और सन्तुलित विकासपर ही समाजकी स्वस्थता निर्भर करती है। अतएव नरके प्रश्नके समान ही नारीका प्रश्न समाजका एक प्रमुख प्रश्न है।

जिस प्रकार महामाया अपने चिद्विलासमें विश्व-ब्रह्माण्डको व्यक्त करती है, उसी प्रकार नारी अपने शिशुके चित्तमें व्यक्त जगत्की छाया डालती है। जीवनके अरुणोदयमें नारी ही जननीके रूपमें सात्त्विक, राजसिक और तामसिक संस्कारोंका जो बीज बालकके जीवन-क्षेत्रमें वपन करती है, बड़ा होनेपर वही बीज पुष्पित और पल्लवित होकर जगत्-जीवनका कारण बनता है। नारी सृष्टि करती है, उसका पालन करती है और अन्ततः प्रलयके कारणोंका सङ्कलन भी उसीके द्वारा होता है। अतएव समाजमें सुव्यवस्था-दुर्व्यवस्था. शान्ति-अशान्ति, धर्माधर्म आदि द्वन्द्वोंके निर्माणमें मूलतः नारीकी सहज लीला ही काम करती है।

नर और नारीका अविनाभाव-सम्बन्ध है। नर-नारीकी सृष्टिके साथ मायाकी क्रीडा प्रारम्भ होती है। नर और नारीका कार्य-कारणभाव बीज और वृक्षके समान अनादि है। बीज और वृक्ष जिस प्रकार एक ही तत्त्वके दो अङ्ग हैं उनमें परस्पर विरोध नहीं. उसी प्रकार समाज-जीवनमें नर-नारी-विरोध अप्राकृतिक है। [illegible] नरसे [illegible] प्रकारका भी नारी-आन्दोलन अप्राकृतिक होनेसे [illegible] सहज विकासमें बाधक है। समाज-जीवनमें नर और नारीका पारस्परिक सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। नारीके [illegible] रूपमें नरकी प्रतिद्वन्द्वितामें [illegible] पागलपनके सिवा और कुछ नहीं है। परन्तु [illegible] नहीं है कि नारीको दासत्वमें रखा जाय और [illegible] अधिकारी बनाया जाय। नारी पूज्य है, [illegible] है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' [illegible] भूमि स्वर्गसे भी बढ़कर है, भगवान्‌से भी [illegible]। नारी, जब अपने इस पदकी मर्यादाका पालन करनेके [illegible] सन्नद्ध रहती है, तब वह समाजमें देवीके [illegible] है। जहाँ नारी-पूजा होती है. वहाँ देवता [illegible] है।

अतएव नारी-आन्दोलनको [illegible] उद्देश्यमें परिणत करनेकी जितनी आवश्यकता है [illegible] लिये उतनी ही आवश्यकता है [illegible] पद-प्रतिष्ठा प्रदान करनेकी। नारी [illegible] अखिल विश्व उसकी [illegible] भीतर रहनेमें ही उसकी शोभा है और [illegible] मर्यादाका उल्लङ्घन करनेसे समाजकी [illegible] उसमें अशान्ति और वैषम्य आ जायगा. [illegible] सामना करना पड़ेगा।

नारी! तू योग-निद्रासे जाग। [illegible] हो। तेरे पुत्र विनाशकी ओर जा रहे हैं. [illegible] अमरत्वकी ओर ले चल। [illegible] बल. वीर्य, [illegible] कल्याण हो।—[illegible]

प्रभुकी देन

विश्वके उस महान् शिल्पीने मेरे लिये ऐसी जीवनसङ्गिनी रची है, जो [illegible] सुनहरे, तीक्ष्ण एवं मनोहर नेत्रोंवाली. सच्चे फौलादकी बनी हुई और सीधे [illegible] है।

मान, साहस, वीरता और उत्साह. ऐसा प्रेम जो जीवनमें कभी शिथिल न हो. जिसे [illegible] दुर्व्यवहार हिला न सके—मेरे महान् प्रभुने उसे इन गुणोंसे विभूषित किया है।

उस महामहिम पिताने इसके रूपमें मुझे एक शिक्षक, शिष्य. सखा, भार्या. [illegible] सम्पूर्ण हृदय एवं स्वतन्त्र आत्मा दी है। —स्टीवेंसन

नारी-महिमा

प्रभु-सत्ताकी प्रबल शक्ति अति, मानवताका अतुल विकास ।
पूर्ण विश्वकी जन्मदायिनी, विधि-संसृतिका सफल प्रयास ॥
देव-गणोंकी वन्दनीय नित, हरिकी एकमात्र छाया ।
नारीकी सत्ता इस जगमें, नारीकी ही है माया ॥
शेष, महेश, विष्णु, विधि, नारद, इन्द्र, धर्म गुण गाते हैं ।
वेद, पुराण, शास्त्र, स्मृतिगण सब महिमा अमित सुनाते हैं ॥
नारीके सतीत्वकी गरिमा ही भारतका गौरव है ।
भोग्य मानकर दुख देनेपर नारी ही ध्रुव रौरव है ॥
श्रवण-सरीखे पितृभक्त, औ लक्ष्मण-जैसे ब्रह्मव्रती ।
भीष्म-सदृश भीषणप्रतिज्ञ, औ हरिश्चन्द्रसे सत्यव्रती ॥
राम, कृष्ण, हनुमान, भरत, अर्जुन औ भीम-युधिष्ठिरको ।
नारीने ही जन्म दिया था ध्रुव, प्रह्लाद भक्तवरको ॥
सीता, सावित्री, अनसूया, शकुन्तला औ दमयन्ती ।
मदालसा, द्रौपदी, सुकन्या, देवहुती-सी महासती ॥
अतुलित कष्ट सहे, पर सत्य न भूली भारतकी नारी ।
अग्नि-परीक्षा अति कठोर दे देकर वे निखरीं सारी ॥
हाय ! आज उस नारी-गौरवका किञ्चित् भी शेष नहीं ।
सद्भावना, सतीत्व-धर्मका अब मिलता नहिं लेश कहीं ॥
लज्जा, सहनशीलता, मृदुता, दया, नारिके सद्गुण थे ।
आज विलुप्त हुए सारे, जो नारीके आभूषण थे ॥
लज्जाको अब दी तिलाञ्जली, धर्म बक्समें बंद किया ।
अप-टु-डेट बन निकली घरसे कुछ मित्रोंको साथ लिया ॥
रूप दिखाती, बात बनाती, लाज गँवाती सत-पथकी ।
यही सभ्यता है नारीकी ? यही शान है भारतकी ? ॥
अभी समय है, जागो निद्रासे, भारतकी ललनाओ ! ।
धर्म और कर्तव्य सँभालो, सती बनो औ हरषाओ ॥
जीवनका है सार यही; निज धर्म विचारो, अपनाओ ।
आज फिर उसी सती-धर्मका झंडा जगमें फहराओ ॥
आज तुम्हारी यह दुर्बलता तुम्हें कष्ट पहुँचाती है ।
क्षणिक हर्षके हेतु तुम्हें आजीवन बाधा आती है ॥
दो दिन स्वजन साथ देते दुखमें, दुनिया ठुकराती है ।
करुणासागर, दीनबन्धुको भी क्या दया न आती है ? ॥
अत्याचारी नर-पिशाच सब आज तुम्हें हैं सता रहे ।
पुरुष नपुंसक हुए, सभी निज कायरताको बता रहे ॥
ईश-कृपाका आश्रय करके स्मरण करो स्वरूप अपना ।
उठो, मिटा दो सती-तेजसे दुष्टोंका सुखकर सपना ॥

—वेदवती शर्मा प्रभाकर

तब और अब

तब तो जौहरकी ज्वालामें सहित उमंग जलीं सतियाँ।
कितनी चढ़कर ज्वलित चितापर पतिके संग चलीं सतियाँ॥
आलिंगित हो पर-पुरुषोंसे किंतु नृत्य करती हैं आज।
कितनी देनेको तलाक आ चढ़ीं कोर्टमें तज कर लाज॥

नारी-जगत्का सर्वोत्तम आदर्श

(लेखक—श्रीबालकृष्णजी अग्रवाल)

पुरुषकी अपेक्षा नारीका विशेष महत्त्व है। नारियाँ पुरुषोंकी ही नहीं, अपितु देवताओंकी भी जननी हैं। इसलिये भगवान्की सृष्टिमें वे आदरणीया हैं। उनका स्थान सबसे ऊँचा है। अतः उनके धर्म तथा आदर्शकी रक्षा अत्यावश्यक है। हमारे प्राचीन इतिहास साक्षी हैं कि जननी जानकीका लङ्काधिपति रावणद्वारा अपहरण नहीं होता और पाञ्चाली कौरवराज दुर्योधन तथा दुःशासनसे अपमानित नहीं होती तो रामायण और महाभारत-जैसे परम आदर्श ग्रन्थोंका निर्माण नहीं होता। परम आदर्श संयम-नियम, व्रत-उपवास तथा समस्त पुण्य-धर्मोंमें हमारी तपोमयी देवियाँ प्राचीन कालसे लेकर आजतक हमसे आगे ही रही हैं; किंतु खेद है कि आधुनिक सुधारवादके प्रबल झंझावातसे वे अपनी रक्षा नहीं कर पा रही हैं।

नर-नारीमें भगवान्ने कुछ भेद रक्खा है। इसलिये दोनोंके कार्योंमें समानता नहीं हो सकती। कोई कार्य पुरुष अच्छी तरह कर सकते हैं तो कोई स्त्री। एक-दूसरेके स्वभावके प्रतिकूल कार्य करने और करानेमें व्यक्ति, समाज तथा देशकी शक्तिका अपव्यय होगा। अतः हितकर सुधारमें इस बातका ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि हमारे प्रिय भारतकी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और आदर्श अक्षुण्ण बने रहें।

समाजका आधार 'नारी' है। 'नारीसे नर उपजें ध्रुव-प्रह्लाद समान।' हमें अपनी नारी-जातिका उत्कर्ष, अभ्युदय और कल्याण चाहना है तो सबसे प्रथम हमारा यह कर्तव्य है कि हम संसारका इतिहास देखकर, उसपर भलीभाँति विचारकर निर्णय करें कि हमारे नारी-समाजके लिये ऐसा कौन आदर्श सर्वोत्तम होगा, जिसको नारी-समाज अपना लक्ष्य बनाकर संसारमें अपना गौरव, अपना धर्म तथा अपना अस्तित्व कायम रख सकता है। इसके लिये परम अनुभवी जगद्विख्यात् स्वामी श्रीविवेकानन्दजीके जगज्जननी जानकीके प्रति अत्यन्त सुन्दर एवं भावपूर्ण विचार उद्धृत किये जाते हैं—

'वैदिक कालके पश्चात् जगत्को प्रभावित करनेवाले अगणित श्रेष्ठ ऋषि, श्रेष्ठ अवतार हुए हैं, जिनकी सख्या श्रीभागवतमें तो अगणित बतलायी गयी है; इन सब अवतारोंमेंसे जिनकी भारतमें विशेष पूजा होती है, वे हैं भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण। वीर-युगकी प्राचीन प्रतिभा भगवान् रामको हमारे सबसे श्रेष्ठ ऋषि श्रीवाल्मीकिजीने सत्य और धर्माचरणकी एक मूर्ति, एक आदर्श पुत्र, एक आदर्श पति, एक आदर्श पिता और इन सबसे भी परे एक आदर्श राजाके रूपमें उपस्थित किया है। कोई दूसरी भाषा उतनी शुद्ध, पवित्र, सुन्दर और सरल नहीं हो सकती जितनी वह भाषा जिसमें कि श्रेष्ठ कविने भगवान् श्रीरामका जीवन चित्रित किया है। श्रीसीताजीकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है। पूर्वकाल-का समस्त सम्पूर्ण साहित्य देख जाइये और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि भविष्यमें भी जो साहित्य निर्माण होगा, उसमें भी दूसरी सीता न मिलेगी। श्रीसीताजी अनुपम हैं; उनका चरित्र जो एक बार निर्माण हो चुका, सदैवके लिये हो गया। सम्भव है बहुतसे राम हुए हों, परंतु सीताजी एकसे अधिक नहीं। उनकी समता उन्हींसे दी जा सकती है। वे ही भारतकी एक सच्ची नारी हैं; क्योंकि जितने भी स्त्रियोंके पूर्णरूपसे प्राप्त भारतीय आदर्श हुए हैं वे सब एकमात्र माता सीताके जीवनसे विकसित हुए हैं। आज भी हजारों वर्षोंके उपरान्त उनका अस्तित्व और गौरव विद्यमान है और सम्पूर्ण आर्यावर्तकी भूमि पर प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बालक भक्तिके साथ उनकी पूजा करता है। हमारी ये यशस्विनी सीता, पवित्रतासे भी पवित्र, धैर्य और त्यागकी सीमा सदैव हमारे आर्यावर्तमें पूजनीय रहेंगी। जिन्होंने बिना संकोच किये कितना त्यागपूर्ण जीवन बिताया और सहनशीलता दिखायी, सदैव शुद्ध और सदैव पवित्र पत्नी रहीं, मनुष्यमात्रकी एक आदर्श, देवताओंकी भी आदर्श, ऐसी महान् श्रीसीता ही हमारे राष्ट्रकी देवता बनकर रह सकती हैं। हममेंसे प्रत्येक इनसे भलीभाँति परिचित है। इसलिये विशेष वर्णनकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। हमारी सभी पौराणिक गाथाएँ, चाहे लोप हो जायँ, वेद भी चाहे मिट जायँ और हमारी संस्कृतभाषा भी चाहे सदाके लिये लोप हो जाय; परंतु जबतक इस देशमें पाँच भी हिंदू जीवित रहेंगे, चाहे वे कैसी भी ग्रामीण भाषा बोलते हों, हमारी माता सीताजीकी कथा सदैव अमर रहेगी—इन शब्दोंको ध्यानमें रखिये। सीताजी हमारी जातिके मर्मस्थानतक पहुँच चुकी हैं। वे प्रत्येक हिंदू पुरुष और स्त्रीके रक्त-बिन्दुमें विद्यमान हैं। हम सब उनके बालक हैं। हमारे नारी-समाजको नवयुगके अनुरूप बनानेका कोई भी प्रयास यदि वह माता सीताजीके आदर्शसे नारीसमाजको पृथक् ले जाता है तो वह एकदम असफल होगा, जैसा कि हम प्रतिदिन देख रहे हैं। भारतके नारी-समाजको

[illegible] पद-चिह्नोंका अनुसरण कर आगे बढ़ना और उनकी उन्नति करनी चाहिये । स्वाधीनताका केवल यही एक मार्ग है ।'

[illegible] अमेरिका और जापान प्रभृति देशोंमें भ्रमण कर और [illegible] तथा [illegible] गम्भीर अध्ययनके अनन्तर [illegible] इसी निष्कर्षपर पहुँचे थे कि 'हमारी नारीका शुभ पथ [illegible] माता जानकीका पथ है ।' इस आदर्शसे थोड़ा भी विचलित होना नारी-समाजका पतनकी ओर अग्रसर होना है और नारीका पतन आरम्भ हुआ कि देश, धर्म, राष्ट्र और समाज पतनकी ओर अभिमुख हो जायँगे । इस कुपरिणामका अनुभव वर्तमान समयमें देश कर भी रहा है !

[illegible] समाज, देश और धर्मके हितकी दृष्टिसे सुधारकोंसे विनम्र निवेदन है कि वे पुरुष और स्त्रीके कार्योंको मिश्रित न करें । पुरुषोंको उनके स्वभाव और योग्यताके अनुकूल बाहरी कार्य सौंपे जायँ और स्त्रियोंको उनके स्वभाव और योग्यताके अनुसार भीतरी कार्य दिये जायँ । बालकोंको प्राथमिक शिक्षा देना, उनके मनमें देश और धर्मके प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न करना, उनका ठीक रीतिसे लालन-पालन करना, उन्हें स्वस्थ रखकर बलवान् बनाना, घरकी ठीक रीतिसे व्यवस्था चलाना, सुन्दर भोजन बनाना, अतिथि-सत्कार, गो-सेवा, आयुर्वेदिक ओषधियोंद्वारा अपने परिवार, पड़ोस तथा समाजकी सेवा, सीना-पिरोना आदि महत्त्वपूर्ण कार्य देवियाँ बड़ी सुन्दरतासे कर सकती हैं । इस प्रकार देश और समाजके धनकी बचत होगी और अल्प प्रयाससे अत्यधिक काम भी हो जायगा । उनके सिनेमा और पार्टियोंमें घूमनेसे देशहित कदापि नहीं हो सकता । यह पाश्चात्त्य सभ्यता है । भारतीय सभ्यता यह नहीं है ।

एक पाश्चात्त्य पुरुष अपनी स्त्रीको प्रेयसी कहकर सम्बोधित करेगा । परंतु एक भारतीय अपनी स्त्रीको प्रेयसी न कहकर 'पुत्र या पुत्रीकी मा' कहकर सम्बोधित करेगा । इस संस्कृतिकी हमें रक्षा करनी है । अंग्रेजी पढ़ाकर लड़कियोंको तितली नहीं बनाना है ।

आज हमने अपने देशसे अंग्रेजोंको निकालकर स्वतन्त्रता प्राप्त की है; किंतु यदि हम उनकी भाषा, उनकी शिक्षा और उनकी सभ्यताको नहीं निकाल सके तो यह उसी प्रकार एक आश्चर्यकी बात होगी जैसे सिरदर्दकी दवा कर क्षणिक आराम पा लिया, पर सिररोगके मूल कारण कब्जका उपचार नहीं किया । हमारे देश और समाजका कल्याण नारियोंको जगज्जननी माता जानकीके आदर्शको पूर्णतया पालन करनेमें है और वे ही हमारे स्वामी विवेकानन्दजीके शब्दोंमें राष्ट्रकी देवी हैं ।

पतिव्रताके लक्षण

(लेखक—जैनाचार्य मुमुक्षु श्रीभव्यानन्द विजयजी)

पतिव्रता, साध्वी और सती स्त्री वही है, जो सर्वदा अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर अपने पतिपर निर्मल प्रीति रखती है तथा पतिके इच्छानुसार चलकर उसकी आज्ञाका पालन करती है । अर्थात् जो तन, मन और वचनसे पतिकी सेवाके सिवा दूसरी कुछ भी इच्छा नहीं रखती । पतिको ही अपने सुख-दुःखका एकमात्र साथी समझती है । बिना कार्य घरसे बाहर नहीं जाती । सास-ससुरको सगे माता पिताके सदृश समझकर सदा सेवा भक्ति करती है । ननदको सगी बहनके समान और देवरको भ्रातृवत् समझती है । पतिके सोनेके पीछे सोती है । उनके पहले उठकर स्वच्छतापूर्वक घरका तमाम कार्य करती है । पतिको विनयपूर्वक प्रथम भोजन कराकर फिर स्वयं करती है । घरके सारे काम करके अध्ययनमें मन लगाती है । पतिके प्रिय आत्मीय स्वजनोंका सम्मान करती है । [illegible] सबका खान-पान सुचारु रूपसे करती है । [illegible] साथ व्यर्थ बात-चीत नहीं करती । किसीके [illegible] स्वभावसे भी ऊँचे स्वरसे नहीं बोलती । पतिसे छिपाकर कुछ भी नहीं रखती । सत्शास्त्रका उपदेश श्रवण करके उसीके अनुसार बर्ताव करती है । पतिको धर्मसम्बन्धी तथा व्यवहारसम्बन्धी कार्योंमें उत्साह और साहस देकर तन-मन और वचनसे सहायता करती है । सन्तानका प्रेमसे पालन पोषण करती हुई उसे धीर, वीर, गम्भीर, धार्मिक और सर्वगुणसम्पन्न विद्वान् बनानेका सर्वदा प्रयत्न करती है । उसे अशुभ कार्योंमें प्रवृत्त नहीं होने देती । पतिकी दी हुई वस्तुको भलीभाँति सँभालकर रखती है । यदि कोई दुष्ट पुरुष बुरी दृष्टिसे उसकी ओर देखे, मधुर वचनोंसे रिझावे, अथवा उसे कभी आवश्यक कार्यवश मनुष्योंकी भीड़में जाना पड़े और उस समय किसी पुरुषका स्पर्श हो जाय, तो इन अवस्थाओंमें मनमें जरा भी विकार नहीं लाती । पर-पुरुषके सामने दृष्टि स्थिर करके एक दृष्टिसे नहीं देखती । किंतु कार्यवश कदाचित् सामने देखनेकी आवश्यकता होती है तो भाई और बापके समान समझकर देखती है । देव-दर्शन आदिके बहाने पुरुषोंकी भीड़में धक्के न खाकर घरमें ही प्रेमपूर्वक

ईश्वरभक्ति करती है। पति कैसा भी हो, उसीको देवतुल्य जानकर सदा प्रसन्न रहती है। पतिके सिवा दूसरे किसीकी भी गरज नहीं रखती। किसी मनुष्यके द्वारा किसी प्रकारका बड़े-से-बड़ा लोभ दिखलाये जानेपर भी अपने मनको विचलित नहीं होने देती। फिर वह मनुष्य चाहे देव-गन्धर्वके समान परम सुन्दर और महान् धनसम्पन्न क्यों न हो। पतिव्रता स्त्री किसी बातके किसी भी प्रलोभनमें न फँसकर दुष्ट पुरुषोंको धिक्कारती और उनको दूर कर देती है। पतिके सिवा किसीको नहीं भजती। किसी भी पुरुषका स्पर्श न हो जाय, इसका ध्यान रखती है। मर्यादा, शील और लज्जाकी रक्षा हो, ऐसा वस्त्र पहनती है। पिंडली, जङ्घा, पेट, वक्षःस्थल आदि शरीरके सारे अङ्ग अच्छी तरह ढके रहें, इस प्रकारके वस्त्रोंको धारण करती है। नग्न होकर स्नान नहीं करती। सदा हर्षित-वदन रहती है। धीमी चालसे चलती है। बजनेवाले गहने नहीं पहनती। कभी जोरसे नहीं हँसती। अन्यान्य स्त्री-पुरुषोंकी विलास-चेष्टाको कभी नहीं देखती। सदा सौभाग्यदर्शक साधारण श्रृङ्गार रखती है। शरीरको बाहरी हीरे-मोती या स्वर्णके अच्छे आभूषणोंके बदले आदर्श सद्गुणोंसे सजानेकी इच्छा और चेष्टा करती है। शरीरको क्षणभङ्गुर मानकर, परलोकका विचारकर उत्तम दान-पुण्य करके सत्कीर्तिका सम्पादन करती है। सदा शीलकी सावधानीसे रक्षा करती है। सत्य बोलती है। कभी चोरी नहीं करती। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और तृष्णाको शत्रुके समान समझकर यथासाध्य इनका त्याग करती है। सन्तोष, समता, सहनशीलता, त्याग, विनय, अहिंसा, सत्य और क्षमा आदि सद्गुणोंसे सदा मित्रके समान प्रेम करती है। पतिके द्वारा जो कुछ मिलता है, उसीमें निरन्तर आनन्द मानती है। विद्या और विनय आदि गुणोंको ग्रहण करती है। उदार, चतुर और परोपकारपरायण रहती है। धर्म, नीति, सद्व्यवहार और कला-कौशलकी शिक्षा स्वयं प्राप्तकर अपनी सन्तानको सिखाती तथा श्रेष्ठ उपदेश देकर सन्मार्गमें लानेका प्रयत्न करती है। किसीको दुःख हो, ऐसा बर्ताव कभी नहीं करती। अपने परिवार तथा अन्य जनोंके साथ लड़-झगड़कर क्लेश उत्पन्न नहीं करती। हर्ष-शोक और सुख-दुःखमें समान रहती है। पतिकी आज्ञा लेकर सौभाग्यवर्धक व्रत-नियम आदि धर्म-कार्य करती है। धर्मपर पूर्ण श्रद्धा रखती है। जेठको ससुर और जेठानीको सासके तुल्य देखती है। उनकी सन्तानको अपनी ही सन्तानके समान प्रिय समझती है। शास्त्रोंको पढ़ती और सुनती है। किसीकी निन्दा नहीं करती। नीच, पन्द्रैस, पतिद्रोहिणी और कलहा स्त्रियोंकी सगति कभी भूलकर भी नहीं करती। ऐसी दुष्टात्माओंके पास खड़ी रहना तथा बैठना भी नहीं चाहती। सद्गुणवती और सुपात्र स्त्रियोंकी ही सगति करती है। सब दुर्गुणोंसे दूर रह सद्गुणोंको ग्रहणकर दूसरी बहिनोंको अपने समान सद्गुणवती बनानेकी विनय तथा प्रेमपूर्वक चेष्टा रखती है। किसीका अपमान नहीं करती, न कटु वचन बोलती, न व्यर्थ बकवाद करती और न ज्यादा बोलचाल ही करती है। पतिका कभी स्वयं अपमान नहीं करती और न दूसरोंके द्वारा किये हुए उनके अपमानको सहन कर सकती है। वैद्य, वृद्ध और सद्गुरुसे भी आवश्यकता होनेपर ही मर्यादासे बोलती है। पीहरमें अधिक समय नहीं रहती। इस असार संसारमें यह मनुष्य-जन्म किस प्रकार सार्थक हो, इस बातका विचार रात दिन करती है और विचारके द्वारा निश्चित किये हुए सत्य-मार्गपर स्थित रहकर ही जगत्के साथ बर्ताव करती है। विघ्नोंको और नाना प्रकारके सङ्कटोंको सहकर भी अपनी नेक टेकको कभी नहीं छोड़ती—इत्यादि शुभ लक्षण सती या पतिव्रता स्त्रीमें स्वाभाविक होते हैं।

उपर्युक्त लक्षणोंको धारण करनेवाली ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला, राजीमति, द्रौपदी, कौशल्या, मृगावती, सुलसा, सीता, सुभद्रा, शिवा, कुन्ती, शीलवती, दमयन्ती, पुष्पचूला और पद्मावती आदि ऐसी अनेक सती स्त्रियाँ प्राचीन कालमें हो चुकी हैं, जिन्होंने अपने सतीत्वको अखण्डित रखनेके लिये अनेक प्रकारकी भयानक आपत्तियोंका सामना किया। इसीलिये वे सतियाँ इस महत् पूज्य पदको प्राप्त हुईं। 'सती' इन दो अक्षरोंकी पूज्य पदवीको प्राप्त कर लेना सहज नहीं है। यह तलवारकी धारपर चलनेके समान अति कठिन काम है। जिसके पूर्वकृत पुण्योंका सञ्चय होता है और जिसका जीवन सच्चिन्तन तथा सत्-कर्मशील होता है, उसको यह पद सहज स्वाभाविक रीतिसे सुखपूर्वक प्राप्त हो जाता है।

देखिये! जन्म-मरणके बन्धनसे छूट जाना—यही पुरुष तथा स्त्रीका मुख्य कर्तव्य है। इस प्रधान कर्तव्यको भूलकर इन्द्रियोंके तुच्छ सुखमें ही अपने जन्म-जीवनको गवाँ देना बहुत बड़ी मूर्खता और महान् हानि है। इसलिये प्यारी बहिनो! तुम अपने स्त्री-धर्मको समझो, समझकर पालन करो और दुर्लभ सतीत्वको प्राप्त करके अपने जीवनको सार्थक करो। यही तुम्हारा कर्तव्य तथा परम धर्म है। इसीसे तुमको इस लोक तथा परलोकमें महान् सुख-शान्तिकी निश्चित प्राप्ति होगी।

नारियोंके व्रत-त्यौहार

(लेखक—पं० श्रीरामदत्तजी भारद्वाज एम्० ए०, एल्‌एल्० बी०, एल्‌टी०)

चैत्र शुक्ल

(१) नवदुर्गा—

चैत्र शुक्ला प्रतिपदासे महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वतीकी प्रसन्नताके लिये व्रत-उपवास प्रारम्भ होता है, जो नवमीको समाप्त होता है। स्त्रियाँ भीतपर विविध रंगमयी मिट्टीसे मन्दिर बनाकर उनमें श्रीदुर्गाभगवतीकी स्थापना करती हैं। आवाहनादि-विसर्जनान्त उपचारोंसे पूजा करके कन्या और बटुकको भोजन कराती हैं। अष्टमी और नवमीको भजन-गानसे भी देवीजीकी आराधना होती है।

(२) गनगौर (गणपति-गौरी)—

चैत्र शुक्ला तृतीयाको सौभाग्यवती महिलाएँ तथा कन्याएँ गौरीशङ्करकी पार्थिव मूर्तियाँ बनाती हैं और गौरीमाताकी गोदीमें बाल-गणपतिको बिठाती हैं। व्रतकी कथा सुनी जाती है। दूर्वा, रोली आदि सामग्रीसे गणगौरका पूजन-अर्चन करके 'गुना' नामक पक्वान्नका नैवेद्य निवेदन करती हैं। प्रसाद केवल स्त्रियोंको ही दिया जाता है। स्त्रियाँ गौरका सिन्दूर अपनी माँगमें लगाती हैं। कन्याएँ तत्पश्चात् सोलह दिनतक पूजा करती हैं। इसी व्रतको 'सौभाग्यसुन्दरीव्रत' भी कहते हैं। तृतीयाको ही गौरीदोलोत्सव भी होता है।

(३) रामनवमी—

चैत्रशुक्ला नवमीको रामनवमीका व्रत होता है। इस दिन दोपहरमें श्रीराम-जन्मका उत्सव मनाया जाता है; प्रसाद और फलाहार ग्रहण किया जाता है।

वैशाख

(१) अखै तीज (अक्षय तृतीया)—

वैशाख शुक्ला तृतीयाको सक्तुभाण्डोंका दान-सङ्कल्प किया जाता है। बदरीनाथमें बड़ा उत्सव मनाया जाता है।

(२) नरसिंह-चौदस (नृसिंहचतुर्दशी)—

वैशाख शुक्ला चतुर्दशीको श्रीभगवान् नरसिंहके अवतारके उपलक्षमें उपवास किया जाता है। पूजन सन्ध्याकालमें होता है। इसमें पञ्चामृतस्नान विशेषरूपसे उल्लेखयोग्य है।

(३) जानकीनवमी—

वैशाख शुक्ला नवमीको जानकीनवमीका उत्सव होता है। दोपहरमें जानकीजीका जन्मोत्सव मनाया जाता है।

ज्येष्ठ

(१) बड़-मावस (वट-सावित्री)—

ज्येष्ठकी अमावस्याको सौभाग्यवती स्त्रियाँ व्रत रखती हैं। जेठ बदी तेरससे लेकर अमावसतक तीन दिन लगातार व्रत रखनेकी विधि है। सोने अथवा मिट्टीकी सावित्रीकी प्रतिमा बनाकर उसे वटके मूल भागमें स्थापित करके उसकी पूजा करनी चाहिये। सिन्दूर-कुङ्कुम आदि चढ़ाना और रक्षासूत्रसे १०८ बार वट वृक्षके तनेको लपेटना चाहिये। प्रतिमा दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको देनी चाहिये। कहीं-कहीं स्त्रियाँ भीतपर हल्दी-चावलकी पिठी (ऐंपन) से वटका चित्र खींचकर उसकी पूजा कर बड़के फल (बड़वड़े अथवा टोंमने) से व्रत खोलकर पक्वान्न भोजन करती हैं। इसी दिन सती सावित्रीने अपने तपके प्रभावसे यमराजके हाथमें पड़े हुए पति सत्यवान्‌को छुड़ाया था।

(२) दशहरा—

ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको होता है। गङ्गा अथवा तीर्थान्तरपर स्नान करके यथाशक्ति दान-पुण्य किया जाता है।

(३) निर्जला एकादशी—

ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीको निर्जल उपवास किया जाता है। घड़े, सुराहियाँ, ककड़ी, खरबूजे आदि ऋतुफल और चीनीका दान ब्राह्मणोंको दिया जाता है।

आषाढ़

(१) देवशयनी एकादशी—

आषाढ़ शुक्ला एकादशीको स्त्रियाँ पञ्चदेवोंकी पार्थिव प्रतिमाएँ रचकर उनकी पूजा करती हैं तथा दूध और दूबसे जिमाकर उन्हें शयन कराती हैं। चार मासतक शुभ कार्यका प्रारम्भ नहीं किया जाता।

(२) गुरु-पूनो (गुरुपूर्णिमा)—

आषाढ़की पूर्णिमाको अपने गुरुकी पूजा होती है।

श्रावण

(१) भैय्या-पाँचें (भ्रातृ-पञ्चमी)—

श्रावण कृष्णा पञ्चमीको भ्रातृमती महिलाएँ साँपकी बाँबी (सर्पके वल्मीक) की पूजा करती हैं और तत्सम्बन्धी कथाका

श्रवण करती हैं। धान्यपञ्चक अर्थात् मूँग, मोठ, चने, मटर और बाजरेको भिगोकर खाती हैं। बासी भोजन पाया जाता है।

(२) तीज—

श्रावण शुक्ला तृतीयाको स्त्रियाँ बड़ा आनन्द-उत्सव मनाती हैं। विशेषतया पुत्रियोंका यह त्यौहार है। कन्याओंको श्रृंगार (सिंदारा) दिया जाता है। मेंहदी लगायी जाती है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ पक्वान्नका वायन (वायना) दान देती हैं। झूला झूलकर मल्हार गाती हैं।

(३) नागपञ्चमी—

श्रावण शुक्ला पञ्चमीको दूधमें घिसे हुए कोयलेसे भीतपर नागोंकी प्रतिमाएँ खींची जाती हैं। कहीं-कहीं गायके गोबरको सरसों और बालूसे अभिमन्त्रित करके उसीसे दीवारपर नागकी प्रतिमाएँ बनायी जाती हैं। भगवान् अनन्त या नाग देवताके उद्देश्यसे धानका लावा (खील) चढाते हैं। नागोंको दुग्धपान कराया जाता है। एक मृण्मय (मिट्टीके) पात्रमें जौ बोये जाते हैं, जिन्हें 'घूँगा' कहते हैं। एक कहानी कही जाती है।

(४) श्रावण शुक्ला सप्तमी—

इस दिन सतीदेवीकी पूजा की जाती है। दुर्गाकी भी आराधना होती है। हाथ-पैरोंमें स्त्रियाँ मेंहदी लगाती हैं। इसी दिन तुलसी-जयन्तीका उत्सव होता है।

(५) घूँगा झूलनी चतुर्दशी—

श्रावण शुक्ला चतुर्दशीको स्त्रियाँ मीठे खजूर (सकल-पारे) सेककर उनसे 'घूँगे' जिमाती हैं। और फिर गीत गा-गाकर उन्हें झुलाती हैं।

(६) रक्षा-बन्धन—

श्रावणकी पूर्णिमाको बहिनें अपने भाइयोंके हाथोंमें रक्षा-सूत्र (राखी) बाँधती हैं और कानोंपर नौरतें (नौ दिन पहले बोये हुए जौके अङ्कुर) रखती हैं।

भाद्रपद

(१) गाज—

भाद्रपदमें सर्वप्रथम मेघोंके गर्जनपर सूती अथवा ऊनी दस तारवाला सूत्र (सूत) हाथमें बाँधा जाता है, जो दसवें या चौदहवें दिन खोला जाता है। डोरा खोलते समय गाजकी कहानी ब्राह्मणीसे सुनी जाती है। कुछ मीठा और कुछ फीका ढाई पावका गज-रोटा बनता है। गाजकी चँदिया अलग बनती है, जो ब्राह्मणीको दे दी जाती है।

(२) बूढ़ी तीज (वृद्ध तृतीया)—

भाद्रपद कृष्णा तृतीयाको सौभाग्यवती स्त्रियाँ, केवल वधुएँ इसे मनाती हैं। पितृगृहपर हों तो ये श्वशुरालय चली जाती हैं। वधुओंको श्रृङ्गार (सिन्दारा) दिया जाता है और वे चौदह पूरी और पूओंका वायन (वायना) दान करती हैं तथा झूला झूलती और गीत गाती हैं। पञ्चाङ्गोंसे विदित होता है कि यह उत्सव दिन-रात मनाया जाना चाहिये—'दिवा नक्तं विधीयते।' इसका नाम 'कजलीव्रत' भी है। इसमें रातको स्त्रियाँ कजली भी गाती हैं। दिनमें भी गाती और झूलती हैं। मिर्जापुर और बनारसमें तो कजलीका उत्सव महीनों चलता है। इस दिन अधिक धूमधाम रहती है।

(३) जन्माठैं (श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी)—

भाद्रपद कृष्णा अष्टमीको कृष्ण भगवान्‌की जयन्ती मनायी जाती है। दिनभर व्रत रखकर निशीथ (आधी रात) में चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदानकर तथा भगवान्‌के जन्मकालकी झाँकीका दर्शन करके भगवत्पूजनके पश्चात् प्रसाद ग्रहण करते हैं। कुछ लोग एक बार फलाहार भी करते हैं।

(४) हरितालिका व्रत (भाद्र शुक्ल तृतीया)—

यह सौभाग्यवर्धक व्रत है। विवाहके पश्चात् सभी स्त्रियाँ इस व्रतका पालन करती हैं। इसका फल है— सौभाग्यकी रक्षा, वैधव्यका निवारण और पुत्र पौत्र आदिकी वृद्धि—'अवैधव्यकरा स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी।' कहते हैं, पार्वतीजीका विवाह कहीं अन्यत्र होने जा रहा था, परंतु उनका प्रेम भगवान् शङ्करजीमें था। अतः सखियाँ उन्हें छिपाकर एक जंगलमें ले गयीं। वहाँ उन्होंने व्रत रखकर भगवान्‌की आराधना की, जिसके फलस्वरूप भगवान् शिव उन्हें पतिरूपमें प्राप्त हुए। 'आलीभिर्हरिता यस्मात्तस्मात् सा हरितालिका'—इस वचनके अनुसार इस व्रतका नाम 'हरितालिका' है। इसको तीज भी कहते हैं। इस दिन स्त्रियाँ चौबीस घंटेका अखण्ड निर्जल व्रत रहती हैं। इस दिन शिव पार्वतीका पूजन होता है और रातमें जागरण किया जाता है। सिन्दूर, चूड़ी, दर्पण, रंगीन वस्त्र आदि माङ्गलिक वस्तुएँ [illegible] सौभाग्यवती [illegible] लिये देती हैं। व्रतकी कथा भी सुनी जाती है।

(५) रिक-पाँचैं (ऋषि-पञ्चमी)—

भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीको यह उत्सव किया जाता है। पण्डितसे कथा सुनती हैं एवं बोये हुए अन्नको नहीं [illegible]। प्रायः तिन्नीका चावल फलाहारके रूपमें [illegible]

है। ऋषियोंका पूजन भी होता है। इस व्रतसे रजस्वला-कालमें किये हुए स्पर्श आदिका दोष दूर होता है।

(६) बलदेव-छठ (बलदेव-षष्ठी)—

स्त्रियाँ भाद्रपद शुक्ला षष्ठीको बलदेवजीकी जयन्ती मनाती हैं और ब्राह्मण-भोजन कराती हैं। बलदेवजीका मेला भी कहीं कहीं लगता है।

(७) राधाष्टमी—

स्त्रियाँ भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको श्रीराधाजीके जन्मका उत्सव मनाती हुई उपवास, पूजन और ब्राह्मण-भोजन कराती हैं।

(८) ओक द्वादसी (वामन-जयन्ती)—

भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको भगवान्के वामनावतारका ध्यान, पूजन, स्तोत्रादिद्वारा आराधन किया जाता है।

(९) अनन्त-चतुर्दशी—

भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको अनन्त भगवान्का पूजन करके पौराणिक कथा सुनकर चतुर्दशग्रन्थिमय अनन्त सूत्र बाँधा जाता है। भोजनमें पकवान बनानेका लौकिक नियम है।

आश्विन (क्वार)

(१) श्राद्ध—

भाद्रपदकी पूर्णिमासे आश्विनकी अमावस्यातक सोलह श्राद्ध होते हैं। पितरोंकी तृप्तिके लिये विविध भोज्य पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाता है। यह पुरुषकृत्य है, किंतु पुरुषभावके अभावमें यह स्त्री-कृत्य भी है। आश्विन कृष्णा नवमीको मातृश्राद्ध होता है।

(२) जिउतिया (जीवत्पुत्रिका)—

यह व्रत पुत्र और पुत्रीकी जीवन रक्षाके लिये आश्विन कृष्णा (या शुक्ला) अष्टमीको किया जाता है। माताएँ नदी अथवा तालाब आदिमें स्नान करके चौबीस घंटेका अखण्ड निर्जल व्रत करती हैं। सन्ध्याके समय पुनः स्नान करके राजा जीमूतवाहनकी पूजा की जाती है। इस व्रतकी कथा भी सुनी जाती है। दूसरे दिन सबेरे स्नान करके सोने या सूतकी जिउतिया पहनी जाती है। जिउतिया और अन्न फल आदि दान भी करना होता है। राजा जीमूतवाहनने एक नागमाताके इकलौते पुत्रका प्राण बचानेके लिये अपना प्राण अर्पण कर दिया था, इसीसे उनका पूजन होता है।

(३) नवदुर्गोत्सव—

आश्विन शुक्ला प्रतिपदासे दुर्गादेवीका पूजन और व्रत प्रारम्भ होता है। चैत्रके नवदुर्गोत्सवके समान ही अन्य कृत्य किये जाते हैं।

(४) दशहरा—

इसका नाम विजयादशमी भी है। महिषासुरपर दुर्गा भगवतीके विजय प्राप्त करनेके कारण यह नाम पड़ा है। कहते हैं, श्रीरामचन्द्रजीने इसी दिन दशग्रीव रावणपर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थान किया था। दश महाविद्याओंकी पूजा होती है। घोड़ी, शमी, पुस्तक, लेखनी, मसिपात्र, आयुध आदि आजीविकोपयोगी साधनपर भी गन्ध अक्षत चढ़ाये जाते हैं। बहिनें भाइयोंको टीका करती हैं, मिष्टान्न खिलाकर नौरते (नूतन जौका अङ्कुर) देती हैं। भाई बहिनोंको दक्षिणा देते हैं।

(५) सरद-पूनो (कोजागरी)—

आश्विनकी पूर्णिमाको खीर बनाकर चाँदनीमें रखकर श्रीभगवान्का भोग लगाकर रात्रिमें जागरण होता है। जग-ज्जननी लक्ष्मीजी यह देखने आया करती हैं कि आज रातको कौन कौन जाग रहा है। इसीसे 'को जागरी' नाम पड़ा है। इस रात्रिमें चन्द्रमाकी सुधामयी किरणोंसे जगत्को परम शान्ति प्राप्त होती है। नेत्र-ज्योतिकी परीक्षाके लिये स्त्री पुरुष सुईमें धागा पिरोया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णका रासोत्सव भी इसी दिन रात्रिको मनाया जाता है।

कार्तिक

(१) करवा चौथ (करक-चतुर्थी)—

कार्तिक कृष्णा चतुर्थीको सौभाग्यवती स्त्रियाँ चन्द्रोदय-तक निर्जल उपवास करती हैं। भीतपर चन्द्र, सूर्य, भ्रातृ-मस्तक, प्रजापति-मस्तक और एक पुत्रीवाला चित्र खींचती हैं। जलपूर्ण पात्र और पूए-पूरीका नैवेद्य निवेदन कर कथा सुनती हैं। परस्पर करक (करुए) परिवर्तन करती हैं, वायन (बायना) दान देती हैं। चन्द्रको अर्घ्य देकर पारण करती हैं।

(२) अहोई आठें (अघहा अष्टमी)—

कार्तिक कृष्णा अष्टमीको पुत्रवती स्त्रियाँ निशीथ (आधी रात) पर्यन्त उपवास रखती हैं। भीतपर अहोईका चित्र खींचती हैं, जिसमें चन्द्र, सूर्य और एक शल्लकी (सेह—स्याऊ) होते हैं। भोजनसे पहले पूजा करके कहानी सुनना और चन्द्रको (कहीं-कहीं तारोंको) अर्घ्य देना अनिवार्य है।

(३) दिवाली (दीपावली)—

कार्तिक अमावस्याको मध्याह्नमें सिन्दूरारुण हनुमान्जीकी पूजा होती है और 'चूरमे'के लड्डुओंका नैवेद्य दिया जाता है।

सन्ध्या-समय भीतपर सुरात्रि (सौरती) की स्थापना होती है, जिसमें श्रीलक्ष्मीदेवी और नारायणका श्रीगणपति-पूजनके साथ-साथ आराधन होता है। यथेच्छ दीपकोंसे नीराजन (आरती) होता है। बही, बसना, कलम, दावात आदिका पूजा व्यापारी लोग करते हैं।

(४) अन्नकूट—

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाको यह उत्सव मनाया जाता है। इसमें षड्रस और चतुर्विध नैवेद्य भगवान्‌को अर्पण किया जाता है। रात्रि-जागरण और गोवर्द्धन-पूजन इस उत्सवके अङ्ग हैं।

(५) भैया-दौज (भ्रातृ-द्वितीया)—

कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको यमुना-स्नानका माहात्म्य है। भ्रातृमती महिलाएँ तथा कन्याएँ घरके आँगनमें चतुष्कोण मण्डल रचकर गन्ध, अक्षत, चना, खील, कपास, मिठाई, गोला और जलपूर्ण पात्रद्वारा पूजा कर यम-यमीकी कथा सुनती हैं। कथा-श्रवणसे पूर्व हाथमें ली हुई लाजाओं (खीलों) को कथान्तमें पृथ्वीपर डालकर, उन्हें समेटकर, द्वारपर शत्रु-मर्दनकी भावना कर चना चबाकर रिपुसूदनकी भावना करती हैं। कपासकी 'आव' बनाकर उदकुम्भी (पलैंढी) पर स्थापितकर भाइयोंको टीका कर-उन्हें भोजन कराके दक्षिणा पाती हैं। उस दिन यमुना स्नान करके यमराजके तर्पण-का भी विधान है।

(६) डाल-छठ (सूर्यषष्ठी व्रत)—

यह व्रत पुत्र-प्राप्ति तथा पुत्रोंको दीर्घायु होनेकी इच्छा-से किया जाता है। पञ्चमीको एक बार बिना नमकका भोजन, षष्ठीको निर्जल उपवास और सप्तमीको एक समय पारण— यही व्रतका परिचय है। षष्ठीके दिन किसी डाल आदिमें मिठाई, फल, नारियल आदि लेकर स्त्रियाँ किसी नदी या पोखरेके तटपर जाकर नहाती, गीत गाती हैं। सप्तमीको भी इसी प्रकार नदी आदिमें नहाती और दूधका अर्घ्य सूर्य-को देती हैं।

(७) देवठान (देवोत्थानी एकादशी)—

कार्तिक शुक्ला एकादशीको पृथ्वीपर विविध चित्रावली तथा भीतपर श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंकी प्रतिमाएँ बनाती हैं। सन्ध्या-समय टोकरी बजाकर देवोंका उद्बोधन कराके गन्ना आदि वस्तुओंसे पूजन किया जाता है। गीत गाये जाते हैं। कहीं-कहीं दीवालीके एक दिन पहलेवाली रात-में, कहीं कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाकी रातमें और कहीं एकादशी-की ही रातमें सूप आदि बजाया जाता है। उसका उद्देश्य भगवान्‌को जगाकर घरमें प्रवेश कराना और दरिद्रता आदि दोषोंको दूर भगाना है।

(८) कार्तिकस्नान—

महीनेभर सूर्योदयसे पूर्व स्नान करती हैं। सात्त्विक और शास्त्रीय भोजन, ब्रह्मचर्य आदिका पालन आवश्यक होता है। शयन करनेके पहले और उठनेके बाद तुलसी कथा, शुकदेव-कथा आदि सुननेकी प्रथा है। कार्तिक-माहात्म्यकी कथा भी कहीं-कहीं सुनी जाती है। अनेक तीर्थोंमें पूर्णिमाको स्नानका भारी मेला लगता है।

मार्गशीर्ष (अगहन)

सूकरक्षेत्र (सोरों) में अगहन शुक्ला एकादशीको और पूर्णिमाको गङ्गास्नान।

भारतमें सब ओर एकादशीका व्रत और कुछ स्थानोंपर गीता जयन्तीका उत्सव भी होता है।

पौष

(१) रुक्मिणी-अष्टमी—

पौष कृष्ण अष्टमीको श्रीकृष्ण, रुक्मिणी और प्रद्युम्नकी पूजा करके सुहासिनी आठ स्त्रियोंको भोजन कराकर दक्षिणा दी जाती है। इससे श्रीरुक्मिणीजी प्रसन्न होती हैं।

(२) सूर्य-सप्तमी (मार्तण्ड-सप्तमी)—

पौष शुक्ल सप्तमीको सूर्य भगवान्‌का पूजन करके शक्ति हो तो गोदान किया जाता है। इससे सारे अरिष्टोंकी शान्ति होती है।

माघ

(१) मकर-संक्रान्ति—

माघमें सूर्यनारायण जब मकर राशिमें प्रवेश करते हैं, तब (जनवरी १३, १४, १५ को) यह उत्सव मनाया जाता है। तीर्थ-स्नानपूर्वक तिल, गुड, घृत, खिचड़ी आदिका दान और भोजन होता है। स्त्रियाँ गुड और पेठेकी गौरी मूर्तिकी रचना कर उनकी पूजा करती हैं।

(२) सकट चौथ (सङ्कष्टचतुर्थी)—

माघ कृष्ण चतुर्थीको विपत्ति विनाशके निमित्त [illegible] अथवा मिलकर सिद्धि-बुद्धिसहित गणपतिकी स्थापना कर स्त्रियाँ तिल-कूट और पूओंका नैवेद्य निवेदन करती हैं। व्रत करके चन्द्रको अर्घ्य देनेके अनन्तर भोजन किया जाता है।

(३) बूढ़ा बाबू (पितामह-द्वितीया)

इसे माघ शुक्ल द्वितीयाको मनाते हैं। इसे 'बूढ़े बाबू' भी कहते हैं। बाजरेके चूनमें तिल डालकर स्त्रियाँ [illegible] अर्पित करती हैं।

(४) वसन्त-पञ्चमी—

माघ शुक्ल पञ्चमीको श्रीलक्ष्मीनारायण, सरस्वतीजी और [illegible] आराधन होता है। बसन्ती रंगमें रँगे हुए वस्त्र पहने जाते हैं। होलीके गीत इस दिनसे प्रारम्भ हो जाते हैं।

(५) अचला-सप्तमी—

माघ शुक्ल सप्तमीको यह व्रत होता है। इसे सौर-सप्तमी भी कहते हैं। इसको वसिष्ठजीने चलाया है। इसमें स्त्रियाँ षष्ठीको एक बार भोजन करती हैं; सप्तमीको उपवास होता है। सूर्यकी पूजा प्रधान है। यह व्रत पापनाशक और सौभाग्यप्रद है। सौभाग्य और सौन्दर्यकी भी वृद्धि करनेवाला है। इस दिन प्रयागमें त्रिवेणी स्नानका बड़ा माहात्म्य है।

फाल्गुन

(१) शिव-चौदस (शिवचतुर्दशी या शिवरात्रि)—

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको भगवान् शङ्करकी प्रीतिके निमित्त उपवास रक्खा जाता है। दिनमें सिंघाड़े, बेर, नारियल, आक, धतूरा, बेलद्वारा पूजनकर और रात्रिमें जागरण करती हुई गीत गाती हैं।

(२) फुलेरा दौज—

फाल्गुन शुक्ल द्वितीयाको स्त्रियाँ आँगनमें पञ्च रंगसे चौक पूरती हैं और होलीतक नित्य ऐसा करती हैं। गोबरके सम्भार (ढाल, तलवार आदि) बनाये जाते हैं, जिनका होलिकादाहमें उपयोग करते हैं। इस उत्सवको 'फुलेरा दौज' भी कहते हैं।

(३) रंगभरनी (आमलकी-एकादशी)—

फाल्गुन शुक्ल एकादशीको यह उत्सव होता है। भगवान् नारायणके मन्दिरोंमें रंग-क्रीड़ा होती है। आँवलेके वृक्षकी पूजा होती है।

(४) होली—

फाल्गुनकी पूर्णिमाको होलिकोत्सव मनाया जाता है। पहलेसे बनाकर सुखाये हुए, गोबरके शस्त्रास्त्रोंको आँगनमें इकट्ठा करके अग्नि-स्थापनान्तर नये जौके दानोंसे हवन करते हैं। होलिका-दहन सदैव रात्रिमें होता है। मध्याह्नमें महावीर हनुमान्‌की पूजा होती है।

चैत्र (कृष्ण)

(१) धुलैंडी (धूलिवन्दन)—

चैत्र कृष्ण प्रतिपदाको टेसूके पीले पानीसे और गुलाल-अबीरसे रंग खेलती हैं, जिसमें पिचकारियोंका प्रयोग होता है। आम्र मञ्जरीको चन्दनसे घिसकर उसके प्राशनका माहात्म्य शास्त्रमें वर्णित है।

(२) बसौड़ा—

इसे शीतला-सप्तमी और सीयल-सातें कहते हैं। यह चैत्र कृष्ण सप्तमी (कहीं-कहीं अष्टमी) को मनाया जाता है। पहली रातको पूजनार्थ बनाकर रक्खा हुआ बासी भोजन शीतलादेवीके अर्पण किया जाता है; कुक्कुटका स्पर्श बालकोंसे कराया जाता है। कुक्कुटको पूए खिलाये जाते हैं। वृद्धा स्त्रीको भोजन कराती हैं और चौराहेपर सराकें छुड़वाती हैं।

(३) सूर्यनारायणकी कथा—

प्रत्येक रविवारको मध्याह्नोपरान्त स्त्रियाँ कथा श्रवण करती हैं। नमकीन भोजन नहीं किया जाता तथा रात्रिमें जलपान भी वर्जित है।

परिवारमें नारीका स्थान

'पत्नी और माता अपने लिये कैसा आदर्श निश्चित करती है, किस रूपमें वह अपने कर्तव्य और जीवनको समझती है, उसीसे समग्र जातिका भाग्य-निर्णय होता है। उसकी निष्ठा दाम्पत्य-प्रेमका उज्ज्वल तारा है और उसका प्रेम ही वह जीवनी शक्ति है, जो उसके आत्मीयजनोंके भविष्यका निर्माण करता है। स्त्री ही परिवारके उद्धार या विनाशका कारण है। परिवारके समस्त भाग्यको मानो वह अपनी ओढ़नीके छोरमें बाँधे फिरती है।'—[illegible]

नारियोंका धनाधिकार

(लेखक—पं० श्रीविद्याधरजी त्रिवेदी)

हिंदू-समाजमें स्त्री और पुरुष एक प्राण, दो देह माने जाते हैं; उनका स्वार्थ, उनका स्वत्व और उनका अधिकार एक होता है: पति सम्पत्तिका और स्त्रीका स्वामी है तो पत्नी भी पतिके सर्वस्वकी तथा उसके हृदयकी भी स्वामिनी है। पुरुष गृहस्वामी होनेके साथ ही बाहर काम करनेवाला श्रमिक भी है, किंतु स्त्री पुरुषकी समस्त सम्पदापर एकमात्र अधिकार रखनेवाली घरकी रानी है। अतः भारतीय नारीको जो आदर और सम्मान प्राप्त है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। पतिके धनपर तो समान अधिकार है ही; हिंदू नारीकी कुछ ऐसी सम्पत्ति भी होती है, जिसपर केवल उसीका व्यक्तिगत अधिकार होता है।

विवाहिता कन्या अथवा वधूको जो जवाहरात और सुवर्ण आदिके गहने मायके तथा ससुरालसे मिलते हैं, उसपर वह स्वतन्त्र अधिकार रखती है, वह केवल उसीकी सम्पत्ति है। उसके सिवा भी जो समय-समयपर पिता-माता, भाई, सास-ससुर, पति एवं अन्य गुरुजनोंसे उसको उपहारमें धन मिलता है, वह भी उसीका है। इस प्रकारका धन 'स्त्रीधन' कहा गया है। प्राचीन कालमें कोई-कोई शुल्क लेकर कन्याका विवाह करते थे, ऐसे विवाह प्रायः क्षत्रियोंमें ही होते थे। वह शुल्क कन्याको ही दिया जाता था। शुल्ककी शर्त केवल वर-पक्षकी शक्ति और वैभवको समझनेके लिये लगायी जाती थी। यह शुल्क कहीं धनके रूपमे और कहीं पराक्रमके रूपमें चुकाना पड़ता था। आज भी बहुत-सी जातियोंमें कन्याके लिये जेवर लानेकी शर्त करके ब्याह किये जाते हैं। यह 'स्त्रीधन' स्त्री अपनी इच्छाके अनुसार सत्कार्यमें लगाती थी; स्त्रीकी मृत्युके पश्चात् वह धन उसके पुत्र-पुत्रियोंको मिलता था। सन्तान न होनेपर अन्य निकटतम सम्बन्धीको प्राप्त होता था।

नारीको जीवन-निर्वाहके लिये मिला हुआ धन भी 'स्त्री-धन' है, ऐसा महर्षि देवलका मत है। मिताक्षरामें स्त्रीधनकी सीमा और विस्तृत है। स्त्रीको उत्तराधिकारमें प्राप्त धन, उसकी खरीदी हुई सम्पत्ति, बँटवारेमें मिला हुआ धन, विवाहमे प्राप्त और अपने अधिकारमें आया हुआ धन—इन सबको 'स्त्रीधन' कहा जाता है—

'रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमप्राप्तमेतत् स्त्रीधनम्'
(मिताक्षरा)

मनुजीका मत है कि 'स्त्रीधन'का व्यय करनेके पूर्व नारीके लिये पतिकी सम्मति ले लेना परम आवश्यक है। कात्यायन कहते हैं—स्त्रीधन दो प्रकारका है सौदायिक और असौदायिक—पिता, माता, भ्राता और पतिके द्वारा प्राप्त धन सौदायिक, शेष असौदायिक है। सौदायिक धनपर नारीका पूर्ण अधिकार है; परंतु असौदायिक धनका वह केवल उपभोग कर सकती है। नारदके मतमे सौदायिक धनके अन्तर्गत भी जो अचल सम्पत्ति है, उसे स्त्री बेच नहीं सकती। अधिकांश धर्मशास्त्रोंका ऐसा ही मत है। मिताक्षराके लेखक विज्ञानेश्वरका मत है कि पति-की मृत्युके बाद विधवा उसके धनकी पूर्णरूपेण स्वामिनी बन जाती है। याज्ञवल्क्यके मतमे विधवाको यह भी अधिकार है कि वह सम्पत्ति अपनी कन्याको दे सके। मिताक्षराका यह भी कथन है कि सम्मिलित परिवारमें किसी पुरुषकी मृत्यु होने-पर उसकी सम्पत्तिका पूरा उत्तराधिकार उसके पुत्रोंको ही नहीं प्राप्य है तो नारीको कैसे प्राप्त हो सकता है? इन्हीं सब बातों-पर विचार करके प्रिवी कौंसिलने फैसला दिया था कि 'स्त्री उत्तराधिकारमें प्राप्त हुई सम्पत्तिको, स्त्री-धन होनेपर भी, बेच नहीं सकती; वह उसके पतिके अन्य उत्तराधिकारियोंको ही मिलेगी—।' देवलका कथन है कि यदि पति स्त्रीधनको खर्च करे तो उसे सूदके साथ पुनः नारीको लौटा दे। पतिके सिवा दूसरे किसीको स्त्रीधन खर्च करनेका भी अधिकार नहीं है। याज्ञवल्क्यके मतसे यदि दुर्भिक्षमें, धर्मकार्यमें अथवा रोगकी दशामें पति स्त्रीधनका उपयोग करे तो उसे वह लौटानेको बाध्य नहीं है। कात्यायन कहते हैं- यदि पतिने उस समय इस शर्तपर धनको लिया हो कि लौटा देंगे- तो उसे अनुकूल समयपर अपने वचनका पालन करना चाहिये। यदि बिना लौटाये ही मर जाय तो पुत्रोंको ऋण समझकर उसे अवश्य लौटानेका प्रयत्न करना चाहिये। कात्यायनका यह भी कहना है कि असती अथवा दुराचारिणी स्त्री स्त्रीधनकी अधिकारिणी नहीं है।

स्त्रीकी मृत्यु होनेपर उसके धनकी अधिकारिणी कन्या मानी गयी है। विवाहिताकी अपेक्षा अविवाहिताका अधिक अधिकार है। विवाहिताओंमें भी जो दरिद्र हो, उसका अधिक अधिकार है। मनुजीके मतमें स्त्रीके निधन हो जानेपर उसके धनको पुत्र और पुत्री बराबर बाँट ले। पुत्रीका पुत्र (दौहित्र) भी नानीके धनका उत्तराधिकारी माना गया है। [illegible]

[illegible] पुत्रियोंको [illegible] है। कात्यायन, बृहस्पति, व्यास और नारद-[illegible] पुत्रके अभावमें पुत्री ही धनकी अधिकारिणी है, [illegible] दूसरा कोई [illegible] नहीं। अविवाहिता कन्याओं को [illegible] धनका भाग प्राप्त होता था (ऋग्वेद)। [illegible] के अनुसार भाईके रहते हुए बहिनका [illegible] अधिकार नहीं है, परन्तु शुक्राचार्य उस दशा में भी अधिकार मानते हैं। विष्णु और नारदके मतमें [illegible] अविवाहिताओंका है। याज्ञवल्क्यके मतानुसार [illegible] भाई धनका चतुर्थांश देकर बहिनका विवाह कर दे, [illegible] है। देवलके मतमें विवाहमें जितना आवश्यक हो उतना ही धन लगाना चाहिये। आपस्तम्ब, कुल्लूक भट्ट, [illegible], विष्णु तथा याज्ञवल्क्य आदिकी रायमें सन्तानहीन विधवा पतिके धनकी उत्तराधिकारिणी मानी गयी है। [illegible] केवल उसके भरण-पोषणतक ही अधिकार माना है। बृहस्पति [illegible] सम्पत्तिमें और [illegible] चल-अचल दोनों सम्पत्तिमें उसका अधिकार स्वीकार करते हैं। जीमूतवाहन-की भी यही राय है। याज्ञवल्क्यके मतमें वही विधवा पतिके धनकी उत्तराधिकारिणी है, जिसका पति परिवारसे अलग हो गया हो। परंतु बृहस्पति और जीमूतवाहन संयुक्त परिवारमें भी उसके इस अधिकारको अक्षुण्ण मानते हैं। इस बातमें प्रायः सभी स्मृतिकार एक मत हैं कि विधवाका उसके जीवनकालतक पतिके धनपर अधिकार है, वह उसे बेच नहीं सकती। हाँ, दान और धर्म करनेमें उसके लिये कोई रुकावट नहीं है। कहीं-कहीं पुत्रकी सम्पत्तिपर विधवाका नहीं, उसकी माताका अधिकार माना गया है। यह बात संयुक्त परिवारके लिये ही है और वह भी पुत्र आदिके न रहनेपर ही। याज्ञवल्क्यने यह भी लिखा है कि यदि कृपण और अत्याचारी पतिके दुर्व्यवहारसे सती-साध्वी पत्नीका उसके साथ रहना असम्भव हो जाय तो पतिकी सम्पत्तिका एक तिहाई भाग उसे पृथक् रहकर निर्वाह करनेके लिये मिल जाना चाहिये।

विवाहका काल

मनुष्यमें पशुकी भाँति यथेच्छाचार न हो। इन्द्रियलालसा और भोगवासना मर्यादित रहे, भावोंमें शुद्धि रहे। धीरे-धीरे संयमके द्वारा मनुष्य त्यागी और बड़े; सन्तानोत्पत्तिके द्वारा वंशकी रक्षा और पितृ-ऋणका शोध हो; प्रेमको केन्द्रीभूत करके उसे [illegible] बनानेका अभ्यास बढ़े; स्वार्थका संकोच और परार्थ-त्यागकी बुद्धि जाग्रत् होकर वैसा ही परार्थ त्यागमय जीवन [illegible]—और अन्तमें भगवत्प्राप्ति हो जाय। इन्हीं सब उद्देश्योंको लेकर हिन्दू विवाहका विधान है। विवाह धार्मिक संस्कार है, [illegible] एक सोपान है। इसमें विलास-वासनाका [illegible] नहीं होता, बल्कि संयमपूर्ण जीवनका प्रारम्भ होता है। इसीसे विवाहमें अन्य विषयोंके विचारके साथ-साथ [illegible] भी विचार किया गया है। इसमें सर्वप्रधान एक बात है—[illegible] यह कि कन्याका विवाह रजोदर्शनसे पूर्व हो जाना चाहिये। रजोदर्शन सब देशोंमें एक उम्रमें नहीं होता। [illegible] कारण कहीं थोड़ी उम्रमें हो जाता है तो कहीं कुछ बड़ी अवस्था होनेपर होता है। अतएव उम्रका [illegible] देश [illegible] स्थितिके अनुसार करना चाहिये, परन्तु रजोदर्शनसे पूर्व विवाह हो जाना आवश्यक है।

रजोदर्शन [illegible] एक महान् सङ्केत है। उसके द्वारा [illegible] होने योग्य हो जाती है और इसी कारण [illegible] [illegible] इच्छा करती है, और वह पुरुष सम्बन्धकी इच्छा करती है। इसी स्वाभाविक वासनाको केन्द्रीभूत करनेके लिये रजस्वला होनेसे पूर्व विवाहका विधान किया गया है। स्वामीके आश्रयसे स्त्रीकी काम-वासना इधर-उधर फैलकर दूषित नहीं होती। पर विवाह न होनेकी हालतमें वही वासना अवसर पाकर व्यभिचारके रूपमें परिणत हो जाती है, जैसा कि आजकल यूरोपमें हो रहा है। वहाँ कुमारी माताओंकी संख्या जिस प्रकार बढ़ रही है, उसको देखते यह कहना पड़ता है कि वहाँ सतीत्व या तो है ही नहीं, और यदि कुछ बचा है तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।

रजस्वला होनेपर स्त्रीको पुरुष-प्राप्तिकी जो इच्छा होती है, वह उसे बलात्कारसे पुरुष दर्शन करवाती है। उस समय यदि पतिके द्वारा अन्तःकरण सुरक्षित नहीं होता तो उसके चित्तपर अनेकों पुरुषोंकी छाया पड़ती है, जिससे उसका आदर्श सतीत्व नष्ट हो जाता है। ऋतुमती स्त्रीके चित्तकी स्थिति ठीक फोटोके कैमेरेकी-सी होती है। ऋतु-स्नान करके वह जिस पुरुषको मनमें देखती है, उसकी मूर्ति चित्तपर आ जाती है। इसीलिये ऋतु-कालसे पहले ही विवाह हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। आदर्श सती वही है, जो या तो पतिके सिवा किसीको पुरुषरूपमें देखती ही नहीं और यदि देखती है तो पिता, भ्राता या पुत्रके रूपमें। पर ऐसा देखनेवाली भी मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता मानी गयी है—

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर-पति देखहि कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥

यह तभी सम्भव है, जब ऋतुकालके पूर्व विवाह हो चुका हो और वह ऋतुकालमें पतिके संरक्षणमें रहे।

साधारणतया विवाहके समय कन्याकी उम्र तेरह और वरकी कम-से-कम अठारह होनी चाहिये। विवाह करना आवश्यक है और वह भी बहुत बड़ी उम्र होनेके पहले ही कर लेना चाहिये।

गर्भाधानके श्रेष्ठ नियम

'गर्भाधान-संस्कार' सबसे आवश्यक संस्कार है; परंतु आजकल उसका सर्वथा विलोप ही हो गया है। स्त्री-पुरुषके शरीर और मनकी स्वस्थता, पवित्रता, आनन्द तथा शास्त्रानुकूल तिथि, वार, समय आदिके संयोगसे ही श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न होती है। जैसे फोटोमें हू-बहू वही चित्र आता है, जैसा फोटो लेनेके समय रहता है, उसी प्रकार गर्भाधानके समय दम्पतिका जैसा तन-मन होता है, वैसे ही तन-मनवाली सन्तान होती है। मनुष्यका प्रधान लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। अतः उसी लक्ष्यको ध्यानमें रखकर उसीके लिये जगत्‌के सारे काम करने चाहिये। गर्भाधानका उद्देश्य, गर्भ-ग्रहणकी योग्यता, तदुपयोगी मन और स्वास्थ्य एवं तदुपयोगी काल—इन सब बातोंको सोच-समझकर विवाहित पति-पत्नीके संसर्ग करनेसे उत्तम सन्तान होती है। मनमाने रूपमें अथवा स्त्रीके ऋतुमती होते ही शास्त्रकी दुहाई देकर पशुवत् आचरण करनेसे तो हानि ही होती है। यहाँ गर्भाधानके कालके सम्बन्धमें शास्त्रकी जो व्यवस्था है, उसे संक्षेपमें लिखा जाता है—

लग्न, सूर्य और चन्द्रके पापयुक्त और पापमध्यगत न होनेपर, सप्तम स्थानमें पापग्रह न रहनेपर और अष्टम स्थानमें मङ्गल एवं चतुर्थमें पापग्रह न रहनेपर तथा राशि, लग्न और लग्नके चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, नवम और दशम स्थान शुभग्रहयुक्त होनेपर एवं तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान पापयुक्त होनेपर 'गण्ड' समयका त्याग करके युग्म रात्रिमें पुरुषके चन्द्रादि शुद्ध होनेपर उसे गर्भाधान करना चाहिये।*

ऋतुके पहले दिनसे सोलहवें दिनतक ऋतुकाल माना गया है; इसमें पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रिको छोड़कर युग्म रात्रियोंमेंसे किसी रात्रिको गर्भाधान करना चाहिये। ज्येष्ठा, मूल, मघा, अश्लेषा, रेवती, कृत्तिका, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद नक्षत्र तथा पर्व, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी, एकादशी, व्यतिपात, संक्रान्ति, इष्टजयन्ती आदि पर्वोंका त्याग करके गर्भाधान करना चाहिये।

मनु महाराजके कथनानुसार सोलह रात्रियाँ ऋतुकालकी हैं। इनमें रक्तस्रावकी पहली चार रात्रियाँ अत्यन्त निन्दित हैं। ये चार तथा ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि—इस प्रकार छः रात्रियोंमें संसर्ग निषिद्ध है। शेष दस रात्रियोंमें छठी, आठवीं और दसवीं आदि युग्म रात्रिमें गर्भाधान होनेपर पुत्र; एवं पाँचवीं, सातवीं आदि अयुग्म रात्रियोंमें होनेपर कन्या होती है। ऋतुकालकी निन्दित छः रात्रि और अनिन्दित दस रात्रियोंमेंसे कोई-सी भी आठ रात्रि—यों चौदह रात्रियोंको छोड़कर शेष पर्ववर्जित दो रात्रियोंमें स्त्री-संसर्ग करनेवालेके ब्रह्मचर्यकी हानि नहीं होती।

इसमें रजोदर्शनके निकटकी रात्रियोंसे उत्तर उत्तरकी रात्रियाँ अधिक प्रशस्त हैं। सतरहवीं रात्रिसे पुनः रजोदर्शनकी चौथी रात्रितक सर्वथा संयमसे रहना चाहिये। भोगकी संख्या जितनी ही कम होगी, उतनी ही पुरुषकी नीरोगता, पवित्रता और शक्तिमत्ता बढ़ेगी। भोग-सुख भी उससे अधिक प्राप्त होगा और सन्तान भी स्वस्थ, पुष्ट, धर्मात्मा, मेधावी तथा संवर्धनशील होगी।

इसी प्रकार कालका भी बड़ा महत्त्व है। दिनमें गर्भाधान सर्वथा निषिद्ध है। दिनके गर्भाधानसे उत्पन्न सन्तान दुराचारी

* पापासंयुतमध्यगेषु दिनकृच्छप्रक्षपास्वामिषु
तद्युनेष्वशुभोज्झितेषु विकुजे च्छिद्रे विपापे सुखे।
सद्युक्तेषु त्रिकोणकण्टकविधूष्वायत्रिषष्ठान्विते
पापे युग्मनिशास्वगण्डसमये पुंशुद्धितः सङ्गमः॥

अश्विनी, मघा और मूल नक्षत्रमें प्रथम तीन दण्ड और रेवती, अश्लेषा, ज्येष्ठा नक्षत्रमें शेष पाँच दण्ड 'गण्ड' माने जाते हैं। मूलके आदि तीन दण्ड और ज्येष्ठाके शेष पाँच दण्डका नाम 'दिवागण्ड' है। मघाके आदि तीन दण्ड और अश्लेषाके शेष पाँच दण्डका नाम 'रात्रिगण्ड' है, तथा अश्विनीके आदि तीन दण्ड और रेवतीके शेष पाँच दण्डका नाम 'सन्ध्यागण्ड' है।

और अधम होती है। सन्ध्याकी राक्षसी-वेलामें घोरदर्शन विकटाकार राक्षस तथा भूत-प्रेत-पिशाचादि विचरण करते रहते हैं। इसी समय भगवान् भवानीपति भी भूतोंसे घिरे हुए घूमते रहते हैं। दितिके गर्भसे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु-सरीखे महान् दानव इसीलिये उत्पन्न हुए थे कि उन्होंने आग्रहपूर्वक सन्ध्या-कालमें अपने स्वामी महात्मा कश्यपजीके द्वारा गर्भाधान करवाया था। रात्रिके तृतीय प्रहरकी सन्तान हरिभक्त और धर्मपरायण हुआ करती है।

गर्भाधानके समय शुद्ध सात्त्विक विचार होने चाहिये। चरकसंहिता शारीर-अष्टमाध्यायमें बताया गया है कि 'गर्भाधानके समय रज-वीर्यके मिश्रण-कालमें माता-पिताके मनमें जैसे भाव होते हैं, वे ही भाव पूर्व-कर्मके फलका समन्वय करते हुए गर्भस्थ बालकमें प्रकट होते हैं।'

जैसी धार्मिक, शूर, विद्वान्, तेजस्वी सन्तान चाहिये, वैसा ही भाव रखना चाहिये; और ऋतुस्नानके बाद प्रतिदिन वैसी ही वस्तुओंको देखना और चिन्तन करना चाहिये। महर्षि चरकने लिखा है कि 'जो स्त्री पुष्ट, बलवान् और पराक्रमी पुत्र चाहती हो, उसे ऋतुस्नानके पश्चात् प्रतिदिन प्रातःकाल सफेद रंगके बड़े भारी साँड़को देखना चाहिये।' हमारे शास्त्रोंमें कहा गया है और यह विज्ञानसिद्ध है कि ऋतु-स्नानके पश्चात् स्त्री पहले-पहल जिसको देखती है, उसीका संस्कार उसके चित्तपर पड़ जाता है और वैसी ही सन्तान बनती है। एक अमेरिकन स्त्रीके कमरेमें एक हब्शीकी तसवीर टँगी थी। उसने ऋतु-स्नानके बाद पहले उसीको देखा था और गर्भकालमें भी प्रतिदिन उसीको देखा करती थी। इसका गर्भस्थ बालकपर इतना प्रभाव पड़ा कि उस बालकका चेहरा ठीक हब्शीका-सा हो गया। एक ब्राह्मण-स्त्रीने ऋतु-स्नानके बाद एक दुष्ट प्रकृतिके पठानको अचानक देख लिया था, इससे उसका वह बालक ब्राह्मणोंके आचरणसे हीन पठान-प्रकृतिका हुआ। सुश्रुत-शारीरस्थानके द्वितीय अध्यायमें लिखा है कि 'ऋतु-स्नान करनेके बाद स्त्रीको पति न मिलनेपर वह कभी-कभी कामवश स्वप्नमें पुरुष-समागम करती है। उस समय अपना ही वीर्य रजसे मिलकर जरायुमें पहुँच जाता है और वह गर्भवती हो जाती है। परंतु उस गर्भमें पति-वीर्यके अभावसे अस्थि आदि नहीं होते, वह केवल मांसपिण्डका कुम्हड़ा-जैसा होता है या साँप, बिच्छू, भेड़िया आदिके आकारके विकृत जीव ऐसे गर्भसे उत्पन्न होते हैं।' ऋतुकालमें कुत्ते, भेड़िये, बकरे आदिके मैथुन देखनेपर भी उसी भावके अनुसार रातको स्वप्न आते हैं और ऐसे विकृत जीव गर्भमें निर्माण हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त गर्भवती स्त्रीको गर्भकालमें भी बहुत सावधानीके साथ सद्विचार, सत्सङ्ग, सत्-आलोचन, सद्-ग्रन्थोंका अध्ययन और सत् तथा शुभ दृश्योंको देखना चाहिये। गर्भकालमें प्रह्लादकी माता कयाधू देवर्षि नारदजीके आश्रममें रहकर नित्य हरि-चर्चा सुनती थी, इससे उनके पुत्र प्रह्लाद महान् भक्त हुए। सुभद्राके गर्भमें ही अभिमन्युने अपने पिता अर्जुनके साथ माताकी बातचीतमें ही चक्रव्यूह-भेद करनेकी कला सीख ली थी।

नर-नारीका भेद

गर्भधारणके समयसे ही स्त्री और पुरुषके विकासका ढंग अलग-अलग होता है। उनमें आहार-परिपाकके परिणाम भिन्न होते हैं। नर और नारीकी शरीररचना, अङ्गोंकी क्रिया तथा मनोव्यापारमें भी जो अन्तर है, उनमें आहार-परिपाकके इन प्रभावोंका अध्ययन किया जा सकता है। पुरुषकी पसलियाँ अधिक उभरी होती हैं तो स्त्रियोंका वस्ति भाग अधिक प्रशस्त होता है, पुरुषकी मांसपेशियाँ अधिक क्रियाशील होती हैं स्त्रियोंकी कम होती हैं, पुरुषके मस्तिष्कका व्यापार अधिक ठोस एवं विशाल होता है तो स्त्रियोंमें धारणाशक्ति तथा छोटी-छोटी बातोंकी सँभाल अधिक गहरी होती है। लिङ्गभेदजनित परिवर्तनके ये त्रिविध प्रसिद्ध उदाहरण हैं।—अर्नेस्ट हेकल और हेवलक इलिस

एक प्रसवसे दूसरे प्रसवके बीचका समय कितना हो ?

आजकल जो जवान स्त्रियों और बच्चोंको लगातार बीमारियाँ भोगनी पड़ती हैं और उनकी मृत्यु भी अधिक होती है, इसमें 'असंयम' एक प्रधान कारण है । विषयभोगकी अतिशयता जैसे पुरुषके लिये घातक है, वैसे ही स्त्रीके लिये भी अत्यन्त हानिकारक है । अधिक विषय-सेवनसे स्त्रियोंको कब्ज, उदरपीड़ा, प्रदर, दुर्बलता, योनिभ्रंश, शिरःपीडा, क्षय और प्रसूतिके विविध रोग हो जाते हैं । कम उम्रकी वधुएँ जो रात दिन सिर दुखने, भूख न लगने, जी मचलाने, सफेद रस बहने और पेट तथा पेंड़ूमें दर्द होने आदि रोगोंके कारण अनवरत यन्त्रणा भोगती रहती हैं, इसका प्रधान कारण 'अतिशय विषय-भोग' ही है । अधिक विषय-भोगसे गर्भ-स्राव तो होता ही है; सन्तान भी दुर्बल, अल्पजीवी, रोगी, मन्दबुद्धि, चरित्रहीन और अधार्मिक होती है । उनमें विकास और संवर्धनकी शक्ति भी बहुत कम पायी जाती है ।

अतिशय विषयभोगसे स्त्रियोंको विविध रोग लग जाते हैं, उनका यौवन अकालमें ही नष्ट हो जाता है, कुछ ही वर्षोंमें जवान उम्रमें ही वे बूढ़ी हो जाती हैं । धर्मसे रुचि हट जाती है । शरीरपर आलस्य छाया रहता है । अग्निमें घी डालनेसे जैसे अग्नि बढ़ती है, वैसे ही अतिरिक्त भोगसे भोगकामना उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है । दाम्पत्य सुखमें कमी आ जाती है, आयु घट जाती है और सदा-सर्वदा रोगिणी रहनेसे घरमें पति आदिके द्वारा असत्कार प्राप्त होनेके कारण उसकी मानस-पीड़ा भी बढ़ जाती है । अतएव दम्पतिको चाहिये कि वे नीरोगता, धार्मिकता, उत्तम स्वस्थ सन्तान और दीर्घ आयुकी प्राप्तिके लिये अधिक-से-अधिक संयम करें ।

यह स्मरण रखना चाहिये कि विषयसेवन विषयसुखके लिये नहीं है, सन्तानोत्पत्तिरूप धर्मपालनके लिये है । अतएव धर्मानुकूल विषय-सेवन ही कर्तव्य है । भगवान्‌ने कहा है—

'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।'

'हे अर्जुन ! प्राणियोंमें धर्मसे अविरुद्ध काम मैं हूँ ।' इसी दृष्टिसे शास्त्रानुसार ऋतुकालमें कम-से-कम विषय-संसर्ग करना चाहिये । गर्भाधान हो जानेपर विषयसंसर्ग सर्वथा बंद कर देना चाहिये ।

प्रसवके बाद बच्चा जबतक स्तनपान करता रहे, तबतक तो विषय-भोग करना ही नहीं चाहिये । लगभग पौने दो वर्षतक स्तनपान कराना उचित है । जिन बच्चोंको स्वस्थ माताका स्नेहपरिपूर्ण दूध मिलता है, उनका जीवन सब प्रकार से सुखी होता है । असंयमजनित विघ्न नहीं होगा तथा माताका शरीर स्वस्थ रहेगा तो पौने दो वर्षतक स्तनोंमें पर्याप्त दूध आता रहेगा । स्तनपान बंद करानेके पश्चात् उतनेही कालतक माताके शरीरको आराम पहुँचे, इस निमित्तसे संभोग नहीं करना चाहिये । इसके बाद डेढ़ सालका अवकाश पुष्ट और दीर्घजीवी सन्तानके निर्माणयोग्य स्थिति प्राप्त करनेके लिये और मिलना चाहिये । इस प्रकार लगभग सन्तानोत्पत्ति-के बाद पाँच सालतक संयमसे रहना उचित है ।

शिशुके स्तनपान छोड़ते ही सम्भोग करना 'अधम' है । स्तनपान छोड़नेके बाद उतने ही समयके बाद सम्भोग करना 'मध्यम' है और पूरे पाँच साल बीतनेपर संभोग करना 'सर्वश्रेष्ठ' है । इतना न हो सके तो कम-से-कम पहली सन्तानके बाद दूसरी सन्तान उत्पन्न होनेमें बीचका समय पाँच सालका तो होना ही चाहिये । ऐसा करनेसे दस महीने पूर्व ही [illegible] सम्भोग किया जा सकता है ।

संयमशील माता-पिताके पवित्र उद्देश्यसे प्रेरित [illegible] ही सत्-सन्तानकी उत्पत्ति सम्भव है । सोलह वर्षसे पैंतीस वर्षकी उम्रतक संयमका पालन करते हुए तीन-चार सन्तान हो जायँ तो पर्याप्त है । इससे सन्तान भी श्रेष्ठ होगी और उनके माता-पिता भी सुखसे रहेंगे । जितनी ही कमजोर सन्तान अधिक होगी, उतना ही उनके पालनमें श्रम, व्यय, [illegible], उनके लगातार रोगी रहने तथा अकालमें ही मरनेका सन्ताप भी अधिक होगा । अधिक सन्तान होनेसे उनका लालन-पालन भी सावधानीसे तथा प्यारसे नहीं हो सकेगा और [illegible] इसीमें लग जायगा, किसी भी शुभ कर्म, [illegible] और मानवजीवनके परम ध्येय भगवत्प्राप्तिके लिये [illegible], तीर्थसेवन, भजन आदिके लिये समय ही नहीं मिलेगा, [illegible] बहुत बड़ी हानि है, क्योंकि मानव जीवन [illegible] हो जाता है ।

फिर, बहुत सी अयोग्य सन्तान होनेकी अपेक्षा [illegible] एक-दो सन्तानका होना भी बहुत [illegible] है । [illegible] कीड़े एक ही साथ लाखोंकी संख्यामें पैदा होते हैं, [illegible] दो-ढाई सौतक बच्चे एक साथ पैदा करती है [illegible]

अभिमानको आप ही खा जाती है । कुतियोंके पाँच-सात पिल्ले एक साथ होते हैं; परंतु उनका क्या महत्त्व है । महाराज राजेन्द्र श्रीरामचन्द्र अपनी माके एक ही थे । भीष्म एक ही थे । शङ्कराचार्य एक ही थे । पर उनका कितना महत्त्व है । महत्ता गुणोंमें है, संख्यामें नहीं । वस्तुतः महत्त्वपूर्ण और सफल सन्तान तो वही है, जो भगवान्‌की भक्त हो । नहीं तो पशु-मादाकी तरह मानव-स्त्री भी पशु-सन्तान ही ब्याती है—सुपुत्र नहीं जनती ।

पुत्रवती जुबती जग सोई । रघुपति भगतु जासु सुतु होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी । राम बिमुख सुत तें हित जानी ॥

नारी—भगवान्‌की विभूति

नारीका आकर्षण परम लोभनीय और दुस्त्यज है । वह आकर्षक वस्तुओंमें भगवान्‌की विभूति है । इसी गुणके कारण भक्त भगवान्‌से प्रार्थना करता है कि—'कामिहि नारि पिआरि जिमि'......'तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।' नारीका आश्रय लेकर भगवान्‌का आत्मिक सौन्दर्य आँखवाले लोगोंको पागल बनाता रहता है । समझनेवाले रूपरसिक समझ जाते हैं और परम आकर्षक भगवान्‌के दिव्य सौन्दर्यकी ओर सब कुछ भूल उन्मत्त होकर दौड़ पड़ते हैं ।

भगवान्‌की तरह नारीमें भी यह विशेषता है कि उसमें कई प्रकारके विरोधी गुण पाये जाते हैं । वह प्रेमकी पुतली है तो अवसर आनेपर क्रोधाभिभूत चण्डिका भी है । वह निज जनोंका पालन-पोषण करती है तो शत्रुओंका विनाश भी करती है । वह बहिन, मा, सखा, स्वामिनी, परम आज्ञाकारी सेविका और सुखद रमणी है । वह पतिको बल देती है । और वह जिस मार्गका पथिक हुआ, उसी ओर बढ़ाती है । कहीं-कहीं तो वह अपने रूपपर आसक्त—विपरीत पथके पथिक प्राणियोंको सूरदास और तुलसीदास बना देती है ।

नारी घरकी शोभा है । घरकी रानी है । नारीरहित मनुष्यको मकान मिलना भी दुर्लभ है । इस लोकमें तथा परलोकमें नारीकी कृपासे सर्वोच्च स्थान सुरक्षित रहता है । उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता । वह पतिके सुखको ही अपना सुख समझती है और दुःखको दुःख । वह पतिके लिये ही जीवित रहती है तथा पतिके लिये अपना सर्वस्व त्याग करनेसे भी नहीं हिचकती । उसका पतिमें सर्वसमर्पणका भाव होता है । इस प्रकार वह भगवान्‌को प्राप्त करनेका आदर्श भी उपस्थित करती है और भगवत्प्राप्तिकी साधनाका सुन्दर समर्पणरूप साधन बतलाती है ।

भगवान्‌की इन विभूतिरूपा नारियोंकी रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है । हम केवल इनकी रक्षा कर लें तो ये अन्य सभी बातोंसे हमारी रक्षा कर लेंगी । नारीकी रक्षा हो गयी तो धर्मकी रक्षा हो गयी । इस गये-गुजरे जमानेमें नारी ही धर्मको सुरक्षित रख सकी है । पुरुषवर्गने धर्मको प्रायः छोड़ दिया है । धर्मके लिये असंख्य नारियोंने जौहर-व्रत किया । आज भी धर्मरक्षार्थ हजारों नारियाँ अग्नि तथा विषकी ज्वालामें अपनेको जला-जलाकर जौहर दिखला रही हैं । इस अधर्मके अन्धकार-युगमें नारी ही सूर्यकी तरह धर्मका प्रकाश दे रही है ।

सुहृद् प्रभुकी भाँति नारी देना ही-देना जानती है । वह लेती भी है तो देनेके लिये । थोड़ा लेकर अत्यधिक देती है ।

जैसे भगवान् अपना अपमान सह सकते हैं, पर भक्तका नहीं, उसी प्रकार नारी अपना अपमान सह सकती है पर पतिका नहीं । इसके लिये दक्षकन्या 'सती' का इतिहास प्रसिद्ध ही है ।

भगवान्‌की दिव्य विभूतियाँ भी इसी परम दिव्य विभूतिसे ही प्रकट होती हैं । प्रह्लाद, नारद, शुकदेव—यहाँतक कि राम-कृष्ण आदि भगवान्‌के अवतार भी इसी विभूतिसे प्रकट होते हैं ।

भगवत्प्रदत्त इस नारीरूपा विभूतिका कोई तिरस्कार, अपमान—भगवान्‌की विभूति न समझकर दुरुपयोग करता है तो भगवान् उसे बड़ा कठोर दण्ड देते हैं । अतः सावधान होकर इस विभूतिकी रक्षा करते हुए इसकी रक्षासे रक्षित होकर भगवान्‌की ओर अग्रसर होना ही उचित एवं अनिवार्य कर्तव्य जान पड़ता है । —गंगासिंह ठाकुर

ऋतुकालमें स्त्रीको कैसे रहना चाहिये

स्त्री शरीरमें जो मलिनता होती है, वह प्रतिमास रजस्राव-के द्वारा निकल जाती है और वह पवित्र होकर गर्भधारणके योग्य बन जाती है। मनुमहाराज भी यही कहते हैं। हिंदू-शास्त्रोंमें कहा गया है कि रजस्वला स्त्रीको तीन दिनोंतक किसीका स्पर्श नहीं करना चाहिये। उसे सबसे अलग, किसीकी नजर न पड़े, ऐसे स्थानमें बैठना चाहिये। चौथे दिन स्नान करके पवित्र होनेके समयतक किसीको न अपना मुख दिखलाना चाहिये, न अपना शब्द सुनाना चाहिये—

> स्त्री धर्मिणी त्रिरात्रन्तु स्वमुखं नैव दर्शयेत्।
> स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नानाच्च शुध्यति॥

ऋतुकालके समय पुरुषको भूलकर भी रजस्वलाके समीप नहीं जाना चाहिये। मनुमहाराज कहते हैं—

> नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने।
> समानशयने चैव न शयीत तया सह॥
> रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः।
> प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते॥
> तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम्।
> प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते॥
>
> (मनु० ४। ४०—४२)

'कामातुर होनेपर भी पुरुष रजोदर्शनके समय स्त्री-समागम न करे, और स्त्रीके साथ एक शय्यापर न सोवे। जो पुरुष रजस्वला नारीके साथ समागम करता है, उसकी बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और आयु नष्ट होती है। और जो पुरुष रजस्वला स्त्रीसे बचा रहता है, उसकी बुद्धि, तेज, बल, नेत्र-ज्योति और आयु बढ़ती है।'

रजस्वला होनेके समय जितना इन्द्रियसंयम, हल्का भोजन तथा विलासिताका अभाव होगा, उतनी ही स्त्रीशोणितकी शक्ति कम होगी, जिससे ऋतुस्नानके बाद गर्भाधान होनेपर कन्या न होकर पुत्र उत्पन्न होगा। रजस्वला स्त्रीको तीन दिनोंतक केवल एक बार भोजन करना, जमीनपर सोना, संयत रहना, घी दूध दहीका सेवन नहीं करना, पुष्पमाला या गहने नहीं पहनना, अग्निको स्पर्श न करना और चतुर्थ दिन सचैल स्नान करना चाहिये।

ऋतुकालमें स्त्रीका स्पर्श न करनेसे उसका अपमान होता है, ऐसा कभी नहीं मानना चाहिये। उसके अपने स्वास्थ्यके लिये तथा दूसरोंके स्वास्थ्य एवं प्राकृतिक जड़ वस्तुओंको अपने स्वरूपमें सुरक्षित रहने देनेके लिये भी उसका किसीको न देखना और न स्पर्श करना आवश्यक है। बहुधा यह देखा गया है कि घरमें पापड़ बनते हों और रजस्वला स्त्री उनको देख ले तो पापड़ लाल हो जाते हैं। कुछ लोग इस बातको वहम कहा करते हैं, परन्तु यह वैज्ञानिक तथ्य है।

अमेरिकाके प्रो० शीक (Schiek) ने अनुसन्धान करके यह प्रमाणित किया है कि 'रजस्वला नारीके शरीरमें ऐसा कोई प्रबल विष होता है कि वह जिस बगीचेमें चली जाती है, उस बगीचेके फूल पत्ते आदि सूख जाते हैं, फूलोंके वृक्ष मर जाते हैं, फल सड़ जाते हैं। यहाँतक कि वृक्षोंके गोंद आदि भी पड़ जाते हैं। कभी-कभी मर भी जाते हैं।'*

रजोदर्शनके समय पालन करनेके नियम

जबतक रक्त बहता है, तबतक ऋतुकाल ही है। साधारणतः तीन दिन ऋतुकालके माने जाते हैं; परन्तु तीन दिनके बाद भी यदि रक्त बंद नहीं होता तो वैसी हालतमें चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्धि नहीं होती। अशुचिका कारण तो रक्तस्राव है; वह जबतक है, तबतक स्नानमात्रसे शुद्धि कैसे हो सकती है? अतएव जबतक रक्तस्राव है, तबतक नियमोंका पालन भी आवश्यक है।

नियम

(१) ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये, जिससे शरीरको अधिक हिलाना पड़े या उसपर जोर देना या दबाव पड़े। जलका भरा कलसा उठाना, ज्यादा देरतक उकड़ू बैठना, दौड़-भाग करना, बहुत जोरसे हँसना, रोना या झगड़ा करना, ज्यादा घूमना-फिरना, गाना-बजाना, शोक, दुःख या काम बढ़ानेवाले दृश्य देखना या ग्रन्थ पढ़ना—ये सभी निषिद्ध हैं। ऐसे काम करने—जो काम अधिक जोर लगाकर करने पड़ते हैं, (जैसे जलका कलसा उठाना या चूल्हेपरसे बहुत वजनदार बर्तनको उतारना आदि) नहीं करने चाहिये। हल्के साधारण काम-काज करनेमें हर्ज नहीं है।

(२) तलपेट और कमरको ढक रखे। [illegible]

---

* देखिये American Journal of Clinical Medicine May 1921, Medical Record for February, 1919 (P 5?7) abstracts and articles (Wien Klin Wock, May 20, 1920)

करना चाहिये। रजोदर्शनके समय जो स्नान करना मना है, उसका यही कारण है। इस समय मस्तकमें गर्मी मालूम होनेपर ठंडा तेल लगाना और जलके अँगोछेसे पोंछना हानिकर नहीं है; परंतु कमर जलमें डुबाकर नहाना या गीली जगहमें खुले बदन सोना बहुत हानिकर है।

(३) कपड़ेके मैले-कुचैले टुकड़ेका व्यवहार नहीं करना चाहिये। एक बार काममें लाया हुआ कपड़ा धो लेनेपर भी फिर उसे काममें लेना हानिकर है। रजस्वला-समयका रक्त एक प्रकारका विष है। इस विषके संसर्गमें आयी हुई चीजको भी विषके समान ही समझकर उसका त्याग करना चाहिये।

(४) जबतक रक्तस्राव होता हो, तबतक 'पतिका सङ्ग' तो भूलकर भी न करे। शास्त्रोंमें इन दिनोंमें पतिका दर्शन करना भी निषिद्ध बतलाया गया है।

(५) मांसाहारियोंको भी इन दिनोंमें मांस, मद्य, मछली या पियाज आदि बिल्कुल नहीं खाने चाहिये।

साधारण-से नियम हैं। पर इनका पालन करनेवाली स्त्री जैसे स्वस्थ और सुखी रहती है, वैसे ही न पालन करनेवाली-को निश्चय ही बीमार तथा दुखी होना पड़ता है।

रामराज्यमें नारी

(लेखक—श्रीशान्तिकुमार नानूराम व्यास, एम्० ए०)

रामराज्यके समयकी संस्कृतिका चित्रण करनेवाला एकमात्र ग्रन्थ वाल्मीकि-रामायण है। वाल्मीकिके कथनानुसार रामायण महाकाव्य एक नारीका—उस युगकी आदर्शभूत महानारी सीताका ही चरित्र-चित्रण है (१। ४। ७)। अन्य नारियोंके चरित्रपर आनुषङ्गिक रूपसे प्रकाश डाला गया है। रामराज्यकी नारी-संस्कृतिका यथार्थ स्वरूप जाननेके लिये रामायण प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करती है। किसी भी संस्कृतिकी उच्चताकी कसौटी नारीके प्रति तत्कालीन समाज-का व्यवहार है। रामायणकालीन संस्कृति आर्यसंस्कृतिका आदर्श मानी जाती है। अतएव इस तथ्यके मूल्याङ्कनके लिये हमें रामराज्यमें नारीकी स्थितिका परीक्षण करना चाहिये।

कन्याकी स्थिति

वैदिक कालमें कन्या आजन्म ब्रह्मचारिणी रह सकती थी। पर रामायण-कालमें कन्याका विवाह अनिवार्य हो गया था (७। २५। २८)। अतः 'कन्यापितृत्व' सभी मानकाङ्क्षी लोगोंके लिये दुःखदायक था; क्योंकि कन्याका वरण कौन करेगा, यह निश्चय नहीं किया जा सकता। माता-पिता अपनी कन्याकी बढ़ती हुई आयु देखकर चिन्तित हो जाते थे; क्योंकि उन्हें यह आशङ्का थी कि वरगण उसे कहीं अस्वीकार न कर दें। कन्या अपने चरित्रके विषयमें तीन परिवारोंको संशय-ग्रस्त रखती है (७। ९। ८–११)। जब सीताकी अवस्था विवाहके योग्य हुई, तब उनके पिता जनक उसी प्रकार चिन्ता-मग्न हो गये, जिस प्रकार एक निर्धन व्यक्ति अपनी स्वल्प सम्पत्तिके नष्ट हो जानेपर; क्योंकि कन्याके पिताको, चाहे वह इन्द्र-का समकक्ष ही क्या न हो, समान और निम्नश्रेणीवाले लोगों-से अनादर ही प्राप्त होता है (२। ११८। ३४–५)।

उपर्युक्त कथनोंका यह आशय नहीं कि कन्याओंसे द्वेष, द्रोह या घृणा की जाती हो। जन्मजात कन्याओंको मार डालने या उनके परित्यागका रामायणमें उल्लेख कहीं नहीं मिलता। कन्याके जन्मका परिवारमें स्वागत नहीं होता था, यह कथन भी उचित नहीं। कन्या अपने पिताकी 'दयिता' थी (१। ३२। २५)। निःसन्तान यक्ष सुकेतुको ताटका नामक कन्यारत्न दीर्घ तपस्याके पश्चात् प्राप्त हुआ था (१। २५। ५-६)। इसपर भी यदि 'कन्यापितृत्व' चिन्ता-का विषय होता था तो इसका कारण था—कन्याके भावी जीवनको सुखी बनानेकी उत्कट लालसा। राजा जनकने सीता-के विवाहार्थ विशाल स्वयंवरका आयोजन क्यों किया तथा अनेक राजाओंसे शत्रुता क्यों मोल ली (१। ६६। १९-२०)? केवल इसीलिये कि उनकी पुत्रीको संसारका सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर पतिरूपमें प्राप्त हो सके। अपनी कुब्जा कन्याओंके लिये अनुरूप भर्ता ढूँढ़नेमें राजा कुशनाभने जो विचार-विमर्श और उद्योग किया, उससे भी यही सिद्ध होता है कि कन्या परिवारमें उपेक्षाका विषय नहीं थी तथा उसके विवाहित जीवनको सुखमय बनानेके लिये उसके अभिभावक पूरा प्रयत्न करते थे।

यही नहीं, अविवाहित कन्याओंको माङ्गलिक तथा उनकी उपस्थितिको शुभ शकुन माना जाता था। उत्सवोंमें कुमारी कन्याओंकी उपस्थिति वाञ्छनीय थी। रामके अयोध्या लौटनेपर कन्याओंने उनका स्वागत किया था (६। १२८। ३८)। राज्याभिषेकके महोत्सवमें आठ अलङ्कृत कन्याएँ नूतन राजाका अभिषेक किया करती थीं (६। १२८। ६२)। युवराजके

नगरी-प्रवेशपर द्विजातियोंकी कन्याएँ उनकी प्रदक्षिणा करके उन्हें फल समर्पित करती थीं (२ । ४३ । १५)।

शिक्षा दीक्षा

रामायणके प्रमुख स्त्री-पात्रोंकी समीक्षासे यह स्पष्ट है कि विवाहके पूर्व उन्हें अपने घरोंमें समुचित शिक्षा मिल चुकी होगी। चूँकि उन्हें सभी धार्मिक कृत्योंमें अकेले या पतिके साथ पूर्ण योग देना अनिवार्य था, अतः उन्हें विवाहके पहले ही वैदिक और स्मार्त क्रियाकल्पोंकी तथा उनमें प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रोंकी शिक्षा दे दी जाती थी। रामके वन जानेके समय कौसल्या अग्निमें मन्त्रोंसहित आहुति दे रही थीं (२। २० । १५)। लङ्कामें हनुमान्‌ने एक स्वच्छ जलवाली नदी देखकर सोचा कि सीता अपना सायंकालिक कृत्य करनेके लिये यहाँ अवश्य आयेंगी (५ । १५ । ४८) वानर स्त्रियोंमें भी वैदिक क्रियाकलापोंका ज्ञान परिलक्षित होता है। वालीकी पत्नी ताराको 'मन्त्रवित्' कहा गया है; जब वाली सुग्रीवसे लड़ने गया तो ताराने अपने पतिकी विजयकामनासे स्वस्त्ययन किया था (४ । १६ । १२)। इन उदाहरणोंसे प्रतीत होता है कि स्त्रियोंको वैदिक कर्मकाण्डकी शिक्षा दी जाती थी।

कन्याओंको व्यावहारिक और नैतिक शिक्षा भी दी जाती थी। राजा कुशनाभ अपनी पुत्रियोंको क्षमाका आदर्श उपदेश देते हैं (१ । ३३ । ७–९)। राजकुमारियोंको राजधर्मकी भी शिक्षा दी जाती थी। युवराज-पत्नी होनेके नाते सीता राजधर्ममें परिनिष्ठित थीं (२ । २६ । ४)। क्षात्रधर्मका उन्हें पूर्णतया बोध था (३ । १० । २)। उनका पौराणिक ज्ञान पर्याप्त था (५ । २४ । ९-१०) संस्कृत और प्राकृत भाषाओंसे वह सुपरिचित थीं (५ । ३० । १७-९)। ताराको रावणके बलाबलका पता था (४ । ३५ । १५-८)। सीताको अपने पीहरमें पत्नीके कर्तव्योंके विषयमें शिक्षा प्राप्त हो चुकी थी (२ । २७ । १०)। कुशनाभकी कन्याएँ नृत्य-गानमें कुशल थीं (१ । ३२ । १३)। स्त्री-तपस्विनी हेमप्रभाकी सखी हेमा 'नृत्यगीतविशारदा' थी (४ । ५१ । १७)। रावणके अन्तःपुरकी रमणियाँ वाद्ययन्त्रोंके प्रयोगमें प्रवीण थीं।

विवाहके समय कन्याकी अवस्था

पञ्चवटीमें सीताने रावणको अपना जो पूर्व इतिहास बताया, उससे ज्ञात होता है कि सीता विवाहके बाद १२ वर्ष ससुरालमें रहीं और वनमें आते समय उनकी आयु १८ वर्ष की थी, अर्थात् उनका विवाह ६ वर्षकी आयुमें हो चुका था (३ । ४७ । ३-११)। किंतु रामायणके अन्य स्थलोंसे पता चलता है कि सीताका विवाह उनकी 'पतिसंयोगसुलभ' अवस्थामें हुआ था (२ । ११८ । ३४) तथा विवाहके तुरंत बाद ही वह और उनकी बहिनें अपने-अपने पतियोंके साथ एकान्तमें रमण करने लगी थीं (१ । ७७ । १३-४)। इससे सीताकी युवावस्था सिद्ध होती है। विवाहके समय सीताको उनकी माताने अग्निके समक्ष जो उपदेश दिया था, उसकी विस्मृति सीताको नहीं हुई थी (२ । ११८ । ८-९)। अतएव सीताकी आयु इस प्रकारका उपदेश ग्रहण करने योग्य अवश्य हो गयी थी। विवाहके समय जहाँ राम 'समुपस्थितयौवन' थे (१ । ५० । १८), वहाँ सीता भी वर्धमाना, प्राप्तयौवना थीं (१ । ६६ । १५)। विवाहके समय उनका ६ वर्षकी किशोरावस्थामें होना असंगत जान पड़ता है। अन्य प्रमाणोंसे भी वयस्क कन्याओंका विवाह ही प्रमाणित होता है। कुशनाभकी कन्याएँ, जो उद्धत वायुके विवाह-प्रस्तावको अनादरपूर्वक ठुकरा सकती थीं और जिन्हें अपने कुलकी मान-मर्यादाका पूरा ध्यान था, ब्रह्मदत्तसे अपने विवाहके समय बाल-वधुएँ कदापि नहीं रही होंगी। तृणविन्दुकी कन्या पुलस्त्यसे विवाहके समय गर्भ धारण करने योग्य अवस्थाको प्राप्त हो चुकी थी (७ । २)।

विवाह

कन्याओंको पति-वरणमें स्वतन्त्रता नहीं थी। इस कार्यमें वे 'पितृवशा' थीं (७ । ८० । ९)। स्वयंवरका उल्लेख होनेपर भी वह स्वेच्छासम्मत नहीं था। जब वायुने कुशनाभकी कन्याओंसे विवाहका प्रस्ताव किया तो उन्होंने कहा कि हमारे पति वही होंगे, जिन्हें हमारे पिता अर्पित करेंगे (१ । ३२ । २२)। कामोन्मत्त राजा दण्डकको भार्गव-कन्या अरजाने कहा कि 'मैं कुमारिका हूँ और अपने पिताके सर्वथा अधीन हूँ। मेरे पितासे आप मेरी याचना करें, आपकी प्रार्थनापर वे मुझे आपको दान कर देंगे (७ । ८० । ९-१२)।' ऐसी दशामें सम्भ्रान्त आर्य-परिवारोंमें प्रणय विवाहों या गान्धर्व-विवाहोंके लिये अनुकूल वातावरण नहीं था। कन्याकी याचना केवल पितासे ही करनी पड़ती थी (७ । १७ । १०)। वही उसका उपयुक्त वरके साथ उपयुक्त समय और स्थानपर विवाह सम्पन्न करानेका अधिकारी था (१ । ३३ । १०)।

वर-वधू दोनों 'सदृश' होने चाहिये (१ । ७० । ४५)। राम और सीता, लक्ष्मण और उर्मिलाका सम्बन्ध परस्पर सर्वथा योग्य था (१ । ७२ । ३)। वरको जहाँ ऊर्ध्वरेता और शुभाचारी होना चाहिये (१ । ३३ । ११), वहाँ वधूको

'तुल्यशीलवयोवृत्ता' एवं 'तुल्याभिजनलक्षणा' होना चाहिये (५।१६।५)। वरके लिये उच्च और प्रतिष्ठित कुलमें जन्म लेना ही पर्याप्त था। यद्यपि रावणको ब्रह्मासे क्रूरकर्मा होनेका शाप मिल चुका था, तथापि मय दानवने, यह जानते हुए भी, अपनी कन्या मन्दोदरीका विवाह उससे कर दिया; क्योंकि रावण ब्रह्माकी तीसरी पीढ़ीमें उत्पन्न विश्रवाका पुत्र था (७।१२।२०-१)।

रामायणकालीन एवं प्रचलित भारतीय विवाह-पद्धतिमें जहाँतक संस्कारोंका प्रश्न है, कोई मौलिक भेद दृष्टिगोचर नहीं होता (१।७०-३)। उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र विवाहके लिये माङ्गलिक माना जाता था (१।७२।१३)। शास्त्रोक्त विधिसे सम्पन्न विवाह अविच्छेद्य था। इस लोकमें पिता आदिके द्वारा जो कन्या जिस पुरुषको अपने धर्मके अनुसार जलसे संकल्प करके दी जाती है, वह मरनेके बाद परलोकमें भी उसीकी स्त्री होती है (२।२९।१८)। स्वामीका त्याग स्त्रीके लिये बड़ा क्रूरतापूर्ण कार्य है (२।२४।१२)। अयोध्याकाण्ड (१२।१०२) में कहा गया है कि रामको सङ्कटमें पड़े देखकर अनुरागिणी स्त्रियाँ भी अपने पतियोंका परित्याग कर देंगी। रामके वनगमनपर दशरथने कैकेयीसे कहा कि 'तू न तो मेरी स्त्री है और न संगिनी ही। तूने धनमें आसक्त होकर धर्मको त्यागा है, अतएव मैं तेरा परित्याग करता हूँ (२।४२।७)।' लङ्काविजयके बाद जब रामने सीताका त्याग कर दिया तो सीताने उन्हें अपने पाणिग्रहणका स्मरण दिलाया था (६।११७।१६)। कैकेयीके पिताने कैकेयीकी माताको त्यागकर उसे घरसे निकाल दिया था; क्योंकि अपनी उत्सुकताकी तृप्तिके लिये उसे अपने स्वामीकी मृत्युकी भी परवा नहीं थी (२।३५)।

दहेज—दासीप्रथा

दहेजकी प्रथा प्राचीन भारतमें अप्रचलित थी। कन्यादानके समय प्रचुर मात्रामें 'कन्याधन' अवश्य दिया जाता था, पर इसे आधुनिक अर्थमें प्रयुक्त दहेजका नाम देना अनुचित होगा; क्योंकि दहेजमें लेन-देनकी भावना काम करती है और विवाहके पूर्व उसकी मात्राके विषयमें समझौता-सा हो जाता है। राजा जनकने अपनी प्रिय पुत्री सीताके विवाहोत्सवपर प्रभूत कन्याधन दिया था (१।७४।३-५); किंतु वह उन्होंने स्वेच्छा और प्रसन्नतापूर्वक दिया था, इसके विषयमें वरपक्षसे पहले कोई सौदा नहीं हुआ था। दहेजकी कुप्रथासे प्राचीन भारतीय समाज अछूता था।

स्त्रियोंको उपहारस्वरूप देनेके कई उल्लेख मिलते हैं। कामधेनु गौके बदले विश्वामित्र वसिष्ठको बहुत-सी तरुणियाँ देनेको तैयार थे (१।५३।१९)। रामको करस्वरूप सुन्दर दासियाँ भेंट की गयी थीं (७।३९।१०)। जनकने रामके विवाहमें सौ कन्याएँ और दास-दासियाँ भेंट की थीं (१।७४।५)। मन्थरा एक 'ज्ञातिदासी' थी, जो कैकेयीके साथ दशरथके यहाँ आयी थी (२।७।१)। ताराके शब्दोंमें 'संसारमें ज्ञानी पुरुषोंकी दृष्टिमें स्त्री-दानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है' (४।२४।३८)। जब हनुमान्‌ने रामके अयोध्या लौटनेका शुभ संवाद भरतको सुनाया तो भरतने उन्हें सोलह कुण्डलधारिणी कन्याएँ पत्नीरूपसे उपहार देनेका वचन दिया था (६।१२५।४४)। सीताकी अग्निशुद्धिके पश्चात् विभीषणने रामसे निवेदन किया कि आपके स्नानके लिये जल, अङ्गराग, वस्त्र, आभूषण, चन्दन और दिव्य मालाएँ प्रस्तुत हैं तथा 'अलङ्करणक्रिया'में निपुण कमलनयना स्त्रियाँ भी उपस्थित हैं, जो आपको विधिपूर्वक स्नान करा देंगी (६।१२१।२-३)। सैरन्ध्रीका काम करनेवाली स्त्रियाँ 'परमनारी' कहलाती थीं (६।२१।३)

सौन्दर्य-प्रसाधन

स्त्री-सौन्दर्यका भारतीय आदर्श रामायणमें स्थल-स्थलपर चित्रित है। पैने, स्निग्ध, सम तथा शुभ्र दाँत, विशाल विमल नेत्र जिनकी पुतलियाँ काली और प्रान्तभाग अरुण हो, विशाल जघनप्रदेश, सुन्दर कटि, मांसल करि-करोपम ऊरु, पीनोन्नत वृत्ताकार सुसंसक्त स्वर्णकुम्भके समान पयोधर, हेमवर्ण तथा सभी अङ्गोंका समानरूपसे विभक्त होना—यह भारतीय सौन्दर्यका प्राचीन मापदण्ड है (३।४६)। सुलक्षणा और सौभाग्यवती स्त्रियोंके चरणोंमें कमलरेखाएँ होती हैं, उनके बाल बारीक, समान और काले, भौंहें पृथक्, दाँत बिना सटे तथा आँखोंके प्रान्तभाग, नेत्र, हाथ, पैर, टखने और जाँघें—ये सब समान और उभरे हुए होते हैं। नख उतार-चढ़ाववाले और चिकने, अंगुलियाँ समान, अङ्गकान्ति खराटी हुई मणिके समान उज्ज्वल और शरीरके रोएँ कोमल होते हैं। पैरोंकी दसों अंगुलियाँ और तलवे पृथ्वीसे अच्छी तरह सट जाते हैं। हाथ-पैर लाल और उनमें यवकी समूची रेखाएँ होती हैं। सीतामें ये सभी शुभ लक्षण विद्यमान थे (६।४८)।

सौन्दर्यको मनोरम बनानेके लिये बाह्य साधनोंका प्रयोग भी प्रचलित था। सीता प्रतिदिन अपना शृङ्गार करती थीं (२।३७।३५)। रामके वनसे लौटनेपर दशरथकी

रानियोंने सीताका 'प्रतिकर्म' (श्रृङ्गार) स्वयं अपने हाथोंसे किया था (६ । १२८ । १७)। अङ्गोंपर अङ्गराग तथा कुचोंपर रक्तचन्दनका अनुलेपन किया जाता था (२ । ३३ । ९; ३ । ६३ । ८)। नेत्रोंमें अञ्जन लगाया जाता (४ । २७ । १४) तथा मुखपर भाँति-भाँतिकी चित्रकारी की जाती थी (४ । ३० । ५५)। सीताका तिलक पुँछ जानेपर राम-ने उनके कपोलोंपर मनःशिलासे एक नवीन तिलक चित्रित कर दिया था (५ । ४० । ५)। पैरोंमें महावर लगाया जाता था, जिससे उनमें पद्मकोशोंकी प्रभा आ जाती थी (२ । ६० । १८)। सीताका मुख सुगन्धिपूर्ण बताया गया है, जिससे मुख-प्रसाधन-विधिका व्यवहार सूचित होता है (४ । १ । १०९)।

स्त्रियोंकी वेष-भूषामें मुख्यतः दो वस्त्र हुआ करते थे, एक अधोवस्त्र और दूसरा उत्तरीय। अपने अपहरणके समय सीता-ने मार्गमें अपने आभूषण उत्तरीयमें बाँधकर नीचे डाल दिये थे (३ । ५४ । २)। अशोकवाटिकामें सीताने केवल एक ही पीला वस्त्र धारण कर रक्खा था (५ । १५ । २१)। स्त्रियाँ प्रायः रेशमी वस्त्र पहनती थीं। नववधू सीताका स्वागत करते समय दशरथकी रानियाँ क्षौमवस्त्रोंसे सजी थीं (१ । ७७ । १२)। मन्थरा-जैसी दासीको भी हम 'क्षौमवासिनी' पाते हैं (२ । ७ । ७)। पञ्चवटीमें रावणके सम्मुख सीता पीला रेशमी वस्त्र पहने हुए थीं (३ । ४६ । १३)।

आभूषणोंका प्रेम स्त्रियोंको सदासे रहा है। वाल्मीकिने उत्तम आभूषणोंसे भूषित प्रमदाओंको बारंबार उपमान बनाया है (२ । ५० । २३; ४ । २७ । २३)। राजमहल आभूषणोंकी सुमधुर झनकारसे निनादित रहते थे (५।४।११)। सीता रामके साथ वनमें 'सर्वाभरणभूषिता' होकर विचरण करती थीं (३ । १९ । १७)। रामराज्याभिषेक-के अवसरपर सीता और सुग्रीवकी पत्नियाँ सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होकर तथा सुन्दर कुण्डल धारण करके नगर देखने गयी थीं (६ । १२८ । २२)। कानोंमें कर्णवेष्ट और श्वदंष्ट्र, गलेमें निष्क, हार या हेमसूत्र, पैरोंमें नूपुर, कमरमें काञ्ची, रशना या मेखला, मुखपर तिलक, केशपाशो-में चूडामणि तथा बाँहोंमें आभरण धारण किये जाते थे। पुष्पों और मालाओंका भी आभूषणरूपमें व्यवहार होता था। अभिसारके लिये प्रयाण करती हुई स्वर्गसुन्दरी रम्भाने अपने केशोंका मन्दारकुसुमोंसे श्रृङ्गार किया था (७ । २६ । १५)।

परदा

जब सीता अयोध्याके राजमार्गसे अपने पतिके साथ वन-को जाती हैं, तब यह कहा जाता है कि जिनको पहले आकाश-में विचरण करनेवाले प्राणी भी नहीं देख पाते थे, उन्हीं सीताको इस समय सड़कोंपर खड़े मनुष्य देख रहे हैं (२ । ३८ । ८)। युद्धकाण्डमें कहा गया है कि विपत्तिकालमें तथा युद्धों, स्वयंवरों और यज्ञोंके अवसरोंपर स्त्रियोंको देखना दोषावह नहीं है (६ । ११४ । २८)। इन कथनोंसे परदा-प्रथाका प्रचार प्रमाणित न होकर केवल यही सूचित होता है कि स्त्रियाँ प्रायः एकान्तमें रहती थीं तथा विशेष अवसरोंके अतिरिक्त जनसमूहमें नहीं आती थीं। उपर्युक्त अवसरोंपर जब उन्हें महलोंके बाहर आना पड़ता तो वे अवगुण्ठनका प्रयोग नहीं करती थीं। सीता साधारण प्राणियोंकी दृष्टि अपने ऊपर पड़नेपर घूँघटसे अपना मुँह नहीं ढक लेतीं। लङ्कायुद्धके बाद भी जब वह सहस्रों वानरों और राक्षसोंकी उपस्थितिमें रामके सामने आती हैं तो वह अवश्य स्त्री-सुलभ सकोचका अनुभव करती हैं, किंतु परदेका कोई व्यवहार न कर अपने स्वामीके चन्द्र-मुखको जी भरकर निहारती हैं (६ । ११४ । ३५-५)।

परदा-प्रथाका वास्तविक उद्देश्य प्राकृत मनुष्योंके 'दुष्ट चक्षुओं' (६ । ११५ । २०) से सम्भ्रान्त महिलाओंकी रक्षा करना माना जाता है। पर सच पूछा जाय तो स्त्रियोंकी रक्षा केवल उनकी आन्तरिक चारित्र्य शक्तिद्वारा ही सम्भव हो सकती है। अयोध्याके नागरिक अपनी पत्नियोंकी ओरसे सर्वथा निश्चिन्त होकर रामके साथ वन जानेको तैयार हो गये थे, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि हमारी स्त्रियाँ अपने चरित्र-बलसे पूर्णतया सुरक्षित हैं (२ । ४५ । २५)। स्त्रियोंके लिये न घर, न वस्त्र, न दीवारें और न राजसत्कार ही वैसी आड़ करनेवाला है, जैसा कि उनका अपना सदाचरण (६ । ११४ । २७)। इन कथनोंकी सत्यता सीताके उदाहरणसे स्वतः प्रकट है जो शत्रुगृहमें भी अपने पातिव्रत तेजके प्रभावसे निष्कलङ्क बनी रहीं (३ । ३७ । १४)।

प्रेमका आदर्श

रामायणमें पारस्परिक अनुरागको ही महत्त्व दिया गया है। राम और सीता दोनों दोनोंके अनन्य प्रेमी थे। जिस प्रकार सीताके हृदय-मन्दिरमें राम सदा विराजमान रहते थे, उसी प्रकार रामका मन भी सीतामें ही लगा रहता था (१ । ७७ । २६; ४ । १ । ५२)। रावणकी स्त्री धान्यमालिनीने सीताके साथ बलात्कार न करनेकी प्रार्थना करते हुए अपने स्वामीसे कहा कि अनिच्छुक स्त्रीसे प्रेम करनेवाले पुरुषको मनस्तापका शिकार होना पड़ता है; इसके विपरीत किसी

अनुरागिणी स्त्रीसे प्रेम करनेपर प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है (५। २२ । ४२)। रावणने भी सीतासे कहा कि 'यद्यपि मैं तुमपर अत्यन्त आसक्त हूँ, फिर भी तुम्हारी इच्छा न होनेके कारण मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा (५ । २० । ६)।' अनुराग प्रायः दर्शनजन्य होता है; अदृष्टके प्रति प्रेम उत्पन्न नहीं होता (५ । २६ । ३९)। सदृश दम्पतिमें ही प्रेमकी प्रगाढ़ता होती है (१ । ७७ । २७–८)।

प्रेम मध्यमभावसे करना चाहिये। अतिप्रणय और अप्रणय दोनों ही अनुचित हैं (४ । २२ । २३) । अपनी पत्नीके प्रति अन्धानुरागका रामायण समर्थन नहीं करती (४ । ७ । ५)। कामपरायण होना कोई प्रशंसाकी बात नहीं है। (२। २१ । ५८); विशेषकर स्त्रियोंके लिये तो 'कामवृत्त' सर्वथा अनुचित है (३ । ४३ । २१) । ताराने कामके बलको असह्य माना है (४ । ३३ । ५४)। कामकी सचमुच बड़ी वाम गति है। कामासक्त होनेपर मनुष्य क्रोधके पात्रको भी अपना प्रेमास्पद बना लेता है। रामके प्रति शत्रुता होनेके कारण रावण सीताका वध करनेको बार-बार प्रेरित होता था; किंतु कामका प्रभाव—सीताके प्रति अनुराग—उसके रोषको स्नेहमें परिणत कर देता था (५ । २२ । ३–५)।

वाल्मीकिने अविवाहित और असंयत प्रेमको बारंबार निन्दित और दण्डित किया है। अपने प्राकृत स्वभावके कारण पुरुष नारीका उपभोग करना चाहता है, उससे विवाह करना नहीं। भार्गव-कन्या अरजा राजा दण्डकसे प्रार्थना करती है कि आप मेरे पितासे मेरी पत्नीरूपमें याचना कर लें; किंतु दण्डक बलात्कारपूर्वक उसका उपभोग करता है और सर्वनाश-का भागी बनता है (७ । ८०–१)। वाल्मीकिने 'स्वदार-निरत' होनेका ही आग्रह किया है। मारीचने रावणको अपनी ही स्त्रियोंसे प्रणय करनेका परामर्श दिया था (३ । ३८ । ३०–१) । अजितेन्द्रिय व्यक्तिका नाश अवश्यम्भावी है (३ । ४८ । २२)।

विवाहकी परिणति—पत्नीत्वकी सफलता—प्रणय एवं सन्तानप्राप्तिमें ही निहित है (२ । १०० । ७२)। पुरुष जहाँ स्त्री-समागमसे इन्द्रिय-सुख लूटना चाहता है (१ । ४८ । १८), वहाँ, स्त्री पति-संयोगद्वारा पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा करती है (१ । ३६ । २१)।

पातिव्रत्य-धर्मकी महिमा

स्त्रीके लिये पति ही गति और पति ही धर्म है (२ । २१ । ६०), पति ही देवता और पति ही प्रभु है (२ । २४ । २१), पति ही गुरु और पति ही सर्वस्व है (२ । ११८ । २)। कुलीन, गुणवती और व्रत-उपवासमें तत्पर होनेपर भी जो नारी अपने पतिकी सेवा नहीं करती, उसे पापियोंकी ही गति मिलती है। देवताओंकी पूजा और वन्दनासे दूर रहनेपर भी जो स्त्री अपने पतिकी सेवामें लगी रहती है, उसे उत्तम स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। अतः नारीको अपने पतिके प्रिय और हितमें संलग्न रहकर सदा उसीकी सेवा करनी चाहिये। यही स्त्रीका लोक और वेदमें प्रसिद्ध सनातन धर्म है (२। २४ । ५–८)।

भारतीय नारियोंके लिये सीता पातिव्रत्य-धर्मका उज्ज्वल आदर्श उपस्थित करती हैं। रावणकी अशोकवाटिकामें नवीन सुवर्णके समान दीप्तिमती सीताको देखकर हनुमान् उनके 'भर्तृदृढव्रत' से बड़े प्रभावित हुए और मन-ही-मन कहने लगे कि महात्मा जनककी यह कन्या केवल पति-प्रेमके कारण ही विपत्तियोंका कुछ भी विचार न करके निर्जन वनमें चली आयी थीं। ये फल-मूलसे ही सन्तुष्ट रहकर भी 'भर्तृशुश्रूषण-परा' रहती थीं और अब श्रीरामचन्द्रके समागमकी आशासे ही अपना शरीर धारण किये हुए हैं (५ । १६)। अनसूयाने सीताको उपदेश दिया कि अपने स्वामी नगरमें रहें या वनमें, भले हों या बुरे, जिन स्त्रियोंको वे प्रिय होते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकोंकी प्राप्ति होती है। पति बुरे स्वभावका, मनमाना बर्ताव करनेवाला अथवा धनहीन ही क्यों न हो, वह उत्तम स्वभाववाली नारियोंके लिये श्रेष्ठ देवताके समान है। पतिसे बढ़कर स्त्रीका कोई हितकारी बन्धु नहीं है (२।११७)। सीताने भी अनसूयाकी बातोंका समर्थन किया और कहा कि यदि मेरे पतिदेव अनार्य और चरित्रहीन होते तो भी मैं बिना किसी दुविधाके उनकी सेवामें लगी रहती। स्त्रीके लिये पति-सेवाके अतिरिक्त दूसरा कोई तप नहीं है। पातिव्रत्य-धर्मका पालन करनेवाली साध्वी स्त्रियाँ अपने पुण्यकर्मके बलसे देवलोकमें आदर पाती हैं (२ । ११८)।

स्त्री-सम्बन्धी कटूक्तियाँ

रामायणमें नारीके प्रति कतिपय कटूक्तियाँ भी पायी जाती हैं। स्त्रियोंमें चपलता एक स्वाभाविक दोष है (६ । १६ । ९) । उनमें विद्युत्‌की-सी चञ्चलता, शस्त्रोंकी-सी तीक्ष्णता और वायुकी-सी शीघ्रता पायी जाती है । सृष्टिके आरम्भसे ही स्त्रियोंकी ऐसी प्रकृति देखी जाती है कि वे अपने 'समस्थ' (धन-धान्यादियुक्त) पतिका अवलम्बन करती हैं, और 'विषमस्थ' (दरिद्र, रोगादिग्रस्त) पतिका परित्याग कर

देती हैं। किंतु अगस्त्यका यह कथन सभी स्त्रियोंके लिये नहीं है; क्योंकि वे ही आगे चलकर कहते हैं—'सीता-जैसी स्त्रियाँ इन दोषोंसे रहित हैं और वे अरुन्धतीके समान पूजनीय हैं' (३ । १३ । ५-७) । कैकेयीद्वारा छले गये महाराज दशरथ दुःखवश स्त्रीमात्रकी निन्दा करते हुए कहते हैं कि 'स्त्रियोंको धिक्कार है, वे शठ और स्वार्थपरायण होती हैं;' किंतु दशरथ तुरंत ही अपने इस अमर्यादित कथनमें संशोधन कर लेते हैं—'मेरा आशय यह नहीं है कि सभी स्त्रियाँ भरतकी माताके समान होती हैं' (२ । १२ । १००) । रामायणमें एक स्थलपर स्त्रीके मुखसे स्त्रीकी निन्दा पायी जाती है। कौसल्या सीतासे कहती हैं कि दुष्ट स्त्रियोंका यह स्वभाव होता है कि पहले तो वे पतिके द्वारा यथेष्ट सुख भोगती हैं, परंतु जब वह थोड़ी-सी विपत्तिमें पड़ जाता है तो उसपर अनेक दोषारोपण करती हैं और उसका त्याग कर देती हैं । उच्च कुल, उपकार, विद्या, दान, बन्धन—इनमेंसे कोई भी उन्हें पापकर्मसे निवृत्त नहीं कर सकता, क्योंकि वे 'अचिन्त्यहृदया' होती हैं (२ । ३९ । २०-३) । स्पष्ट है कि कौसल्याके ये उद्गार दुष्ट स्त्रियोंके लिये ही हैं, समस्त नारी-जातिको ये लाञ्छित नहीं करते ।

नारीका सम्मान

सीताको 'पतिसम्मानिता' कहा गया है (३ । १६ । २)। अगस्त्यने रामसे कहा था कि जिस प्रकार सीता वनमें प्रसन्न रह सकें, वही कार्य आपको करना चाहिये (३ । १३ । ४) । शास्त्रोक्त यज्ञ-यागादि कर्मोंमें पति और पत्नी दोनोंका संयुक्त अधिकार होता था; पत्नीको साथ लिये बिना पुरुष यज्ञकर्मका अनुष्ठान नहीं कर सकता था (४ । २४ । ३८) । सीताके अभावमें रामको अश्वमेध यज्ञमें अपनी पत्नीकी सुवर्ण प्रतिमा रखनी पड़ी थी (७ । ९१ । २५) । वैदिक श्रुतियाँ पत्नीको पतिकी अभिन्न आत्मा बतलाती हैं (४ । २४ । ३७-८) । तब फिर यदि वसिष्ठ सीताको रामकी आत्मा होनेके नाते सिंहासनारूढ करनेका प्रस्ताव करें तो क्या आश्चर्य ! (२ । ३७ । २४)

स्त्रियोंको अवध्य माननेका विधान भी स्त्रियोंके प्रति सम्मानकी भावनाका सूचक है (२ । ७८ । २१) । रामने ताटकाका वध केवल विश्वामित्रकी प्रेरणापर यज्ञकर्मके संरक्षणार्थ किया था (१ । २५ । १७-२२) । लङ्काकी अधिष्ठात्री राक्षसी लङ्किनीने जब हनुमान्‌का मार्ग रोका तो हनुमान्‌ने केवल अपने बायें हाथसे उसे एक घूँसा जमाया और स्त्री जानकर उसपर अधिक क्रोध नहीं किया (५ । ३ । ४०) । रावणने भी सीताद्वारा कई बार अनादृत होनेपर भी उनका वध नहीं किया ।

यद्यपि वैधव्य स्त्रीके लिये घोरतम विपत्ति थी (७ । २५ । ४३), तथापि विधवाएँ अनादरकी पात्र नहीं थीं। दशरथकी विधवा रानियाँ सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करती हैं । रामकी तथाकथित मृत्युपर विलाप करती हुई सीता कहती हैं कि मुझे राम, लक्ष्मण, अपनी माता या स्वयं अपने लिये भी उतना शोक नहीं है, जितना अपनी तपस्विनी सासके लिये है (६ । ४८ । २०) । शूर्पणखाके विधवा हो जानेपर रावणने उसे बहुत ढाढ़स दिया और कहा कि 'मैं तुम्हें दान-मान-प्रसाद-द्वारा प्रसन्न करता रहूँगा और तुम दण्डकारण्यमें खरकी संरक्षकतामें जाकर रहो (७ । २४ । ३३-६)।' अपनी बहनके निरादरका प्रतिकार करनेके लिये रावणने सीताका हरण किया था (३ । ३६ । १३-४) ।

तत्कालीन समाज स्त्रियोंके प्रति उच्च शिष्टाचारका पालन करता था । वाहनोंपर चढ़ते समय स्त्रियोंको पहले स्थान दिया जाता था । गङ्गा पार करते समय लक्ष्मणने सीताको नावपर पहले बैठाया, फिर स्वयं उसपर सवार हुए (२ । ५२ । ७५-६) । रथोंमें महिलाएँ आगेकी ओर बैठायी जाती थीं (२ । ४३ । १२) । राजरानीके प्रति प्रजाजन साष्टाङ्ग प्रणामद्वारा अपना आदरभाव प्रकट करते थे । अशोक-वाटिकामें हनुमान्‌ने प्रणाम एवं अञ्जलिबन्धद्वारा सीताका अभिवादन किया था (५ । ३३ । १-२) । ज्येष्ठ भ्राताकी पत्नी माताके समान मानी जाती थीं और छोटे भाई उन्हें नित्य प्रणाम करते थे (४ । ६ । २३) । माताको 'अम्ब' (२ । २१ । ५०), 'देवि' (२ । १८ । १८) या 'आर्ये' के नामसे सम्बोधित किया जाता था । पतिद्वारा पत्नीके प्रति 'देवि' (३ । १० । २), 'भद्रे' (६ । ११५ । २), 'कल्याणि' (२ । २६ । २९) या 'मनस्विनि' (२ । २६ । २८)-जैसे उदात्त सम्बोधनोंका प्रयोग प्रेमीके अलौकिक अनुरागका द्योतक है । 'बाले' (२ । १२ । २१), 'भीरु' (२ । १२ । २२), और 'प्रिये' (२ । २६ । ३८)-जैसे सम्बोधन पत्नीके प्रति पुरुषके सुकुमार भावोंके व्यञ्जक हैं। कामुकोंकी शब्दावली-में 'चारुस्मिते' (३ । ४६ । २८), 'विलासिनि' (५ । २० । २९), 'मदिरेक्षणे' (५ । २४ । २६) तथा 'ललने' (५ । २० । ३५)-जैसे सम्बोधनोंका भी बाहुल्य देख पड़ता है ।

परायी स्त्रियोंकी ओर देखना असभ्यता थी। मदविह्वलाङ्गी वानरराजपत्नी ताराको देखते ही महात्मा लक्ष्मण मुँह नीचा करके उदासीन भावसे खड़े हो गये थे। स्त्रियोंके सामने अपने कोपका निवारण कर लेना चाहिये (४। ३३। ३९)। महात्मा लोग स्त्रियोंके प्रति कोई दारुण कार्य नहीं करते (४। ३३। ३६)।

हमारी उन्नतिका उपाय

(लेखिका—श्रीशकुन्तलादेवीजी अग्रवाल)

भारतीय नारीकी समस्या भी एक विकट समस्या है। वेदोंसे लेकर हमारे सभी शास्त्रों और धर्मग्रन्थोंमें स्त्रीका दर्जा पुरुषसे ऊँचा बताया गया है। प्राचीन कालमें हिंदू-नारीको मान और पूजाका यह स्तुत्य दर्जा सदा प्राप्त भी रहा है। सीताराम, राधेश्याम, राधाकृष्ण' गौरीशङ्कर आदि नाम आज भी स्पष्ट बता रहे हैं कि हिंदू-सभ्यतामें पहले स्त्रीको स्थान देकर पीछे पुरुषको दिया जाता है। परंतु आजकी हिंदू-नारी अपने आपको दीन-हीन और अबला समझती है, ऐसा क्यों? हमारी उन्नतिका उपाय क्या है, यह मैं संक्षेपमें अपने पाठकोंके सम्मुख रखना चाहती हूँ।

हमारी अधोगतिके कारण

हमारी अधोगतिके कारणोंको अनेक भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। उनमेंसे कुछ राष्ट्रिय अर्थात् राजनीतिक हैं और कुछ सामाजिक। भारतवर्षकी पराधीनताके कारण पुरुषोंके साथ स्त्रियोंका भी अधोगतिको प्राप्त होना स्वाभाविक ही था; परंतु पश्चिमीय सभ्यताका प्रभाव, स्त्रियोंमें शिक्षाका अभाव, अनमेल विवाह आदि सामाजिक कुरीतियाँ ऐसे सामाजिक कारण थे, जिन्होंने रानी झाँसी और महादेवी दुर्गावतीकी सन्तानको सबलासे अबला बना दिया। आज पढ़ी-लिखी बहिनोंकी ओरसे 'वैवाहिक जीवन दुःखमय है' यह सिद्ध करनेके लिये लेख-पर-लेख निकलते हैं। पुरुषोंके अत्याचारको कोसा जाता है और अनपढ़ बहिनोंकी ओरसे उसका समर्थन किया जाता है और इस सबका आधार 'निजी अनुभव' बताया जाता है। इस प्रकार पुरुष और नारीका संघर्ष आरम्भ हो जाता है और दोनोंका दाम्पत्य-जीवन और भी अधिक दुःखमय हो जाता है। पति पत्नीके दोषोंको देखता है और पत्नी पतिके दोषोंको।

मेरा अनुभव

मैंने इस प्रश्नपर गम्भीर विचार किया है। मेरा अनुभव इससे भिन्न है। मैं वैवाहिक जीवनको दुःखमय नहीं समझती। मैं स्त्रीको दीन-हीन अथवा अबला भी नहीं समझती और न स्त्रियोंकी वर्तमान दुर्दशाका दोष ही पुरुषोंको देना चाहती हूँ। दूसरेके दोषों तथा अपने गुणोंकी समीक्षासे किसी भी मनुष्यकी उन्नति नहीं हो सकती, इससे तो अवनति ही होती है। जो सिद्धान्त व्यष्टिरूपसे ठीक है, वही समष्टिरूपसे नारी-जातिके लिये भी ठीक है। यदि हिंदू-नारी पुरुषोंके अत्याचारकी ही दिन-रात चर्चा करती रहे और इस प्रकार उन्नतिके शिखरपर पहुँचना अथवा ऐहिक सुखको प्राप्त करना चाहे, तो यह आशा दुराशामात्र है।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।

—का परम सिद्धान्त नारी-जातिकी उन्नतिके लिये भी वैसा ही अमोघ अस्त्र है, जैसा किसीके व्यक्तिगत जीवनके लिये। मेरा यह अनुभव है कि यदि हमारी बहिनें अपनी शक्तिको पहचान जायँ, यदि वे अपने कर्तव्यका पालन करने लग जायँ, तो इससे न केवल उनका अपना जीवन सुखमय हो जाय, वरं पुरुषोंका भी काफी सुधार हो जाय और स्वतन्त्र भारतका मस्तक गर्वसे उन्नत हो जाय।

उदाहरणके रूपमें आप विचार करें, हमारी एक जीती-जागती समस्या है विधवाओंका प्रश्न। इसका एक मुख्य कारण है अनमेल विवाह, पचास वर्षके बूढ़ेका बारह वर्षकी कन्यासे विवाह कर देना। परंतु यह विवाह होते ही क्यों हैं? इसलिये कि हमारी बहिनें अशिक्षिता हैं। वे अपनी शक्तिको पहचानतीं नहीं। यदि कन्याकी माता यह आग्रह करे कि मैं अपनी पुत्रीका विवाह बूढ़ेसे कभी नहीं होने दूँगी तो संसारमें कोई ऐसी शक्ति नहीं, जो एक हिंदू-माताकी इच्छाका विरोध कर सके। जबतक पुरुषके साथ पत्नी यज्ञमें न बैठे, कोई यज्ञ पूर्ण हो नहीं सकता। विवाह-संस्कारमें भी कन्याकी माताकी उपस्थिति अत्यावश्यक है। शास्त्रोंमें तो हिंदू-विवाहको इसी जन्मका नहीं, परन्तु जन्म-जन्मान्तरका सम्बन्ध बताया गया है। हिंदू-देवी यह प्रार्थना करती है कि 'हे स्वामिन्! जन्म-जन्मान्तरमें आप ही मेरे पतिदेव होवें'। तो ऐसे पवित्र, शाश्वत सम्बन्धके

विषयमें बहनोंकी ओरसे ऐसी उपेक्षा और तटस्थता क्यों ?

हिंदू-नारी अबला नहीं

हिंदू-नारी अबला नहीं। उसको अबला समझनेवाले भारी भूलमें हैं। प्राचीन कालसे लेकर अबतक हिंदू-नारीने अपने 'सबला' होनेका बराबर प्रमाण दिया है। प्राचीन कालमें कैकेयी आदि महारानियोंने युद्धभूमिमें वीरताके अलौकिक कार्योंके द्वारा महारथियोंसे वरोंको प्राप्त किया। अर्वाचीन कालमें महारानी झाँसीने अंग्रेजी-साम्राज्यके दाँत खट्टे किये। आज भी भारतकी अनेकों सुपुत्रियाँ स्वतन्त्र देशोंके बड़े-से-बड़े नेताओंके साथ टक्कर ले सकती हैं।

हिंदू-नारीपर अत्याचार

हिंदू-नारीपर राक्षसों और दानवोंकी ओरसे समय-समयपर घोर अत्याचार होते रहे हैं। पिछले कुछ महीनोंमें पाकिस्तानमें मुसल्मान गुंडोंके द्वारा हिंदू-नारियोंपर जो अमानवीय अत्याचार किये गये हैं, उन्होंने बर्बरता और क्रूरतामें इतिहासके पुराने रिकार्डको बहुत पीछे छोड़ दिया है। प्रश्न उठ सकता है कि ऐसी अवस्थामें अबला हिंदू-नारी क्या करे ? मैं फिर कहूँगी हिंदू-नारी अबला नहीं। आप अपना इतिहास खोलकर देखें। रावण सीताको उठाकर ले गया। रावण राक्षस था; उसने अपने पराक्रमसे इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवताओंको वशमें कर रक्खा था। उसने सीताको अनेक प्रलोभन दिखाये। उसको अनेक प्रकारकी पीड़ाएँ पहुँचायीं। उसके वधकी धमकी उसको दी। आशातीत भय उसको दिखाये, परंतु क्या वह अपने उद्देश्यमें सफल हुआ ? कदापि नहीं। क्यों ? सीता भारतकी देवी थी, वह सती-साध्वी थी, पातिव्रत्य-धर्मकी साक्षात् मूर्ति थी। रावण जानता था कि महान्-से-महान् अत्याचारीको क्षणभरमें भस्म कर देनेकी शक्ति सतीकी एक आहमें है, उसके एक शापमें है। पुरुषके पास यदि क्षात्र-तेज है, पशु-बल है, तो नारीके पास ब्रह्म-तेज है। दैवी शक्ति है। हजार पशु-बलसे बढ़कर एक दैवी शक्ति है, यह हमारे अनुभवकी बात है। क्या फिर भी हम नारीको अबला कहेंगे ?

आवश्यकता इस बातकी है कि हम अपनी उस दैवी शक्तिको पहचानें, उसे जाग्रत् करने तथा बढ़ानेका प्रयत्न करें। अपने धर्मपर सुदृढ़ रहें। अपने आपको दीन-हीन समझना छोड़ दें। संसारकी काया पलट देनेकी शक्ति हिंदू-नारीमें है। पुरुषोंपर दोषारोपण करनेके बजाय हम अपनी न्यूनताओंपर विचार करें और उनको दूर करनेकी चेष्टा करें। पुरुष तो नारीके बिना अधूरा है, कुछ भी करनेमें असमर्थ है। नारी पुरुषको सन्मार्ग दिखानेवाली है, वह उसकी माता है और उसका भविष्य बनानेवाली है। वह उसके पाँवकी जूती नहीं, उसके सिरकी माला है। शर्त यही है कि हम अपने स्वरूप और अपनी शक्तिको पहचानें, अपने परम कर्तव्यको जानें और उसपर आचरण करें।

स्त्रियोंके साथ कैसा व्यवहार करें ?

स्त्री आदर और प्यारकी वस्तु है। अनेक कार्य जो शक्ति न होनेसे नहीं कर सकते, वे स्त्रीकी सहायतासे सशक्त होकर कर सकते हैं, इसलिये स्त्रीका नाम शक्ति है। वह धर्म-कर्ममें सहायता देती है, इसलिये उसका नाम है सहधर्मिणी और हमारे सत्त्वको गर्भमें धारण करती है इसलिये उसका नाम है जाया। इसीसे कहना पड़ता है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी अवस्थामें स्त्री हमारी प्रधान सहायिका है। हम यदि नरकको जायँगे तो वही ले जायगी। स्वर्गका पथ वही दिखायगी। वैराग्य और मोक्ष-पद पहुँचाना भी उसीके हाथ है।

स्त्री विलासकी सामग्री नहीं है। स्त्रियाँ ही जगज्जीवन और प्रेम-भक्तिकी आधार हैं। फिर असद्व्यवहार करनेपर वे ही घोर कालरूपिणी पिशाचिनी और राक्षसिनी होकर सबको ग्रास करती हैं। वेश्याएँ उन्हीं कालान्तक मूर्तिकी सामान्य छविमात्र हैं। स्त्रीरूपी महासमुद्रमें बड़े-बड़े अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। रसिकजन उन्हीं सब महारत्नोंके अधिकारी होकर चिरसुखमय जीवन बिताते हैं और हम ऐसे दुर्बल घृणित व्यक्ति कामान्धमत्त होकर उस महासमुद्रमें डुबकी लगा अपना अस्तित्व भी खो बैठते हैं। बड़ी सावधानी इन महाशक्तियोंके साथ व्यवहार करो। कभी भूलकर भी कामुक दृष्टिसे स्त्रियोंको मत देखो। ब्रह्मा, विष्णु, महेशका सम्मेलन तुम एक स्त्रीमें देख सकते हो। स्त्रियोंका अपमान ध्वंसका कारण है।

हिंदू-रमणियोंको बीबी न बनाकर गरीबोंकी माँ-बाप बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। —पागल हरनाथ

नारी

(ले०—सौ० श्रीलक्ष्मीबाई)

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥

आज कुछ वर्षोंमे लगातार हम यह सुन रहे हैं कि 'नारी-समाज रसातलकी ओर जा रहा है, नारी-आन्दोलन नितान्त आवश्यक है; नारीको चाहिये कि वह अपनी पराधीनताकी जंजीरोंको तोड़ दे । नारी किसी बातमें पुरुषोंसे कम नहीं, नारीको अपनी स्वतन्त्र आजीविका उपार्जन करनी चाहिये; घरकी चहारदीवारी नारीके लिये जेलसे बढ़कर है, बच्चे पैदा करना और पुरुषका दासत्व अङ्गीकार करना ही नारी-जीवनका एकमात्र कर्तव्य कदापि नहीं हो सकता—इत्यादि-इत्यादि ।'

इन सब बातों और दुहाइयोंको सुनते-सुनते हमारे कान पक गये । आखिर बात क्या है ? आप कहना क्या चाहते हैं ? आपकी नारी-विषयक कल्पना क्या है ? यह जो अधोगति बतायी जा रही है, वह भारतीय नारीकी है या यह वसुन्धराके समस्त नारी-समाजका चित्र है ?

माता सीता और सती सावित्रीकी कुलोत्पन्ना, विदुषी गार्गी और महाभागा मैत्रेयीकी चरण-धूलिको पुनीत मानने-वाली, अरुन्धती और अनसूयाकी कल्पनामें मस्त रहनेवाली एवं रानी लक्ष्मीबाई और ताराबाईके शौर्यको सराहनेवाली भारतकी आर्य-नारियोंके भव्य मस्तकपर क्यों यह अधोगतिका टीका लगाया जा रहा है ?

अधोगति हुई है पराधीन भारतकी । परतन्त्र बनकर देशने संस्कार, धर्म, नीति, विद्या, प्रेम और शौर्य—सभी कुछ खो दिया ! उपनिषद् और वेद नामशेष रह गये । धर्मशास्त्र कथाओंका विषय बन गया । श्रुति-स्मृति और सदाचार स्वप्नवत् हो गये । तक्षशिला और नालन्दाके विद्या-भण्डार भस्मसात् हो गये । जिस देशने अखिल जगत्को शिक्षा दी—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥
(मनुस्मृति २ । २०)

—आज उसकी यह दुर्दशा हो गयी । परतन्त्रता गाढ़तर बनती गयी । आदर्श चूर-चूर होने लगे । उपनिषद्के 'ईशा-वास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।' इस सौम्य-सुन्दर उपदेशको भूल गये । काम क्रोध-परायणता आ गयी । विषय-लोलुपता बढ़ती गयी । और इसीके परिणामरूप आज यह दुर्दशा, दरिद्रता और चोर-बाजारी (Black-Market) से धन इकट्ठा करनेकी हीनवृत्ति जाग उठी है ।

'सर्वत्रमहिताय,सर्वजनसुखाय'वाली भारतीय शिक्षा-दीक्षा-पर बेहूदा पाश्चात्य रंग चढ़ गया । इतनेपर भी सोचिये—आज जगत्के सामने हम जो अपने महान् आदर्शको लिये उन्नतमस्तक होकर खड़े हैं, सो किसके बलपर ? भारतके नारी-रत्न हमारे संस्कार-दुर्गकी नींवमें आयतमशिला बनकर पड़े हैं । क्षणभर कल्पना तो कीजिये कि यदि अपना स्वत्व खोकर पाश्चात्य मोह-मदिरामें प्रमत्त भारत आर्य-रमणियोंके सहारे-सहारे पैर न धरता तो जगत्में शिष्टसंस्कारोंकी पताका लहरानेके लिये उसके पास अवशिष्ट रह ही क्या गया था ?

नारी क्या है ? जन्मसे ही उसमें मातृत्वकी मधुर गन्ध महक रही है । अति बाल्यकालमें वह पितासे लाड प्राप्त करती है । कुछ सँभलनेपर उसका सहारा बन जाती है । बहिन बन-कर भाईकी रक्षिका होती है । युवावस्थामें जन्मसे परिचित माता-पिता, भाई-बन्धु, बाल्यकालीन घर-बार, चिरसंचित संस्कार और कुटुम्ब-प्रणाली—अधिक क्या, अपने-आपको भी खोकर नारी क्षणार्द्धमात्रमें ब्राह्मण, अग्नि और गुरुजनोंकी साक्षीमें 'तव हृदये मे हृदयं दधामि' और 'तव भुक्तेऽनु भोक्ष्यामि, तव सुप्ते शयिष्यते' कहती हुई अविभक्त भावसे स्वामीमें लीन हो जाती है । यहाँ भी उसका मातृत्व जगमगाता रहता है । पतिकी छायाकी तरह घूमती हुई भारतीय नारी चारों ओरसे स्वामीको मातृत्वसे छा देती है । पतिका खान-पान, व्यवहार—कुछ भी उसकी दृष्टि-मर्यादासे बाहर नहीं है । उसके परम सुखका यह विषय बन जाता है । सन्तानकी मा बनकर तो नारी मातृत्वकी चरम सीमापर पहुँच जाती है । नारी जगत्-जननी है । निश्चय मानिये—उसीकी तपस्या, धर्मभीरुता, दया, शान्ति और नितान्त स्नेहसे ही आज भी भारतके संस्कार बचे हुए हैं । आर्यके आदर्श अवशिष्ट हैं ।

नारी-समाजकी अधोगति भारतके पतनका कारण नहीं है, अपितु पराधीनताकी बहती हुई स्रोतस्विनीमें डूबकर देशने अपने साथ नारीको भी डुबोया है । अकेला नारी अपने पथपर दृढ रहनेका भरसक प्रयत्न करती रही, परंतु चारों ओरके संयोगोंने उसके ऊपर अपनी छाया डाल ही दी !

संसार-रथको सुचारु रूपसे चलानेके लिये पुरुष और नारी

दोनोंकी ही अपने-अपने स्थानपर समान आवश्यकता है। आर्य-शास्त्रकारोंने दोनोंकी शक्ति-भक्तिका पूरा अदाजा लगाकर ही दोनोंके लिये स्थान निश्चित किये थे। उसमें अपवादको भी अवकाश था। रथके दोनों चक्र सदा एक-दूसरेके सहारे सरल गतिसे चलते रहे। मार्गमें चढाव-उतार आते रहे, किंतु चक्र सहारे-सहारे निश्चित पथकी ओर आगे बढते ही गये। पर यह जो असन्तोष, मनमुटाव, देखा-देखी और अशिक्षाके साथ-साथ कुशिक्षाकी आँधी आयी, इसमें सब कुछ उड गया। मानो मिश्री खाकर जी भर गया हो!

मान लिया कि रथके इन पहियोंमें कहीं कुछ त्रुटि है, उसको दूर करना चाहिये। पर दूर करनेके बदले यदि उसके समूलोच्छेदकी ही बाँग मारी जाती रहेगी, तो यह चक्रहीन रथ एक-न-एक दिन नष्ट होकर ही रहेगा। नारी प्राचीन हो या अर्वाचीन—स्थानभ्रष्ट होनेपर उसका नारीत्व स्वयं ही मुर्झा जायगा। नारीका कर्तव्यक्षेत्र अति विस्तृत है। उसको सुचारुरूपसे सम्पन्न करनेपर, अन्य कार्योंमें भी वह हाथ बँटाना चाहे तो अति प्रसन्नतासे वैसा कर सकती है! यह साधारण नारी-समाजको लक्ष्य करके ही लिखा गया है। इसमें भी अनेक अपवाद हो सकते हैं।

एक दूसरी बात यह है कि लोग कहते हैं 'नारी ही नारीकी शत्रु है।' मैं नहीं कह सकती कि यह बात कितने अंशमें सत्य है। पर इतना तो निश्चित है कि हम आज अशिक्षा, कुसंस्कार और अधर्मके कारण अपने कर्तव्यको भलीभाँति नहीं निभा रही हैं। इसके फलस्वरूप परनिन्दा और झूठे वहम हमारेमें घर कर गये हैं। यदि कुछ समझदारीसे काम लिया जाय तो मैं मानती हूँ हमारा गृह-जीवन फिरसे हरा-भरा बन सकता है।

हमारे जीवनमें शिक्षाका प्रश्न भी गौण नहीं है। जहाँतक मेरा ख्याल है, हमारे नारी-समाजके दो विभाग किये जा सकते हैं। एक दल है अशिक्षिताओंका और दूसरा वह है जो स्कूल-कालेजोंमें शिक्षा प्राप्त कर रहा है। शिक्षाके विषयमें विशेष लिखना यहाँ विषयान्तर ही गिना जायगा। फिर भी इतना लिखना तो आवश्यक है कि पाश्चात्त्य साँचेमें ढली हुई हमारी यह आधुनिक शिक्षा-प्रणाली न तो हमारे कर्तव्यको ही बलवत्तर बनाती है और न हमारे गृह-जीवनको मधुरतम करती है।

नारी यदि नारीका सत्य कर्तव्य जान ले, सुन्दर शिक्षा-दीक्षासे दीप्त आदर्श गृहिणी बन जाय, तो उस अलङ्कृत सुनहरे भूतकालके पुनरुदयकी उषा शीघ्र ही दृष्टिगोचर होने लगे। नारी प्रेमपात्र-पुत्री है, स्नेहमयी भगिनी है, कर्तव्यशीला पत्नी है और भविष्यके नागरिकोंकी माता है। किसी विद्वज्जनने ठीक ही कहा है—

जो कर झुलाये पालना, वह जगत्पर शासन करे।

नारीकी वर्तमान शोचनीय स्थिति

(लेखिका—आचार्या श्रीमती शारदा वेदालङ्कार, एम्० ए०, स्नातिका)

पश्चिमी पंजाब और काश्मीर-राज्यसे आये हुए लाखों शरणार्थियोंमें निराश्रिता स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंसे अधिक है। संसारके समस्त स्वातन्त्र्य-आन्दोलनोंके बृहत् इतिहासका यदि हम अध्ययन करें तो स्थान-परिवर्तन करते हुए इतने बड़े लाखोंकी संख्याके काफिले ढूँढ़े नहीं मिलेंगे। यह काफिले क्या थे? मानो मीलों फैला, उजडा हुआ जन-प्रदेश। वर्तमान स्वातन्त्र्य-आन्दोलनका वह अत्यन्त अमानुषी, सर्वथा जघन्य, महान् क्रूर पैशाचिक ताण्डवसे परिपूर्ण अध्याय था, जो पंजाबके लाखों वीरात्माओंके रक्तसे लिखा गया और जो हो गया है अमर एवं अमिट।

जब शरणार्थी-महिलाएँ, जिनके आँसू सूख चुके हैं, विधर्मियोंके अत्याचारोंकी करुण कहानी सुनाती हैं तो वह सीता-हरणकी पुरातनकथासे कहीं अधिक मार्मिक एवं बहुत ही अधिक हृदयविदारक होती है। केवल मकान, जायदाद चली जाती तो वे सन्तोष कर लेतीं; किंतु उन्हें तो अपने प्रियजनोंके प्राणोंकी भी आहुति देनी पड़ी। बहुतोंका तो शोभा व सिन्दूर लुट गया तो बहुतोंके गोदीके लाल उनकी आँखोंके सामने ही धरतीपर पटककर मार दिये गये! नौजवान बेटियाँ छिन गयीं। अनेकों अधेड़ औरतें तो बिल्कुल निराश्रिता हो गयीं, जिन्हें आज एकमात्र प्रभुका ही आश्रय है। किसी दिन छोटे मकानसे लेकर विशाल प्रासादोंमें रहनेवाली ये महिलाएँ बड़े सुखसे खाती-पीती थीं, आराम-चैनसे सोती थीं। पंजाबियोंका खाना-पहनना प्रसिद्ध है। किंतु उन्हें ऐसी कल्पना स्वप्नमें भी नहीं थी कि भारतीय स्वतन्त्रताका मूल्य वस्तुतः उन्हें ही चुकाना पड़ेगा—अपना सर्वस्व लुटाकर, दर-दरकी भिखारिन बनकर, पति-पुत्रोंकी कत्ल करवाकर और आततायियोंद्वारा अपना अमूल्य सतीत्व हरण करवाकर!!!

संसारके महान् आत्माओंकी जन्मदात्री यह नारी ही है। यदि स्वतन्त्र भारतमें यह सुरक्षित, सुशिक्षित और सुसंस्कृत हो गयी तो यह अपना अमूल्य दान अनवरतरूपसे देती रहेगी और हमारी यह स्वाधीनता हमसे कभी नहीं छीनी जा सकेगी। क्योंकि जिसके हाथमें पालनेकी डोरी है, वही संसारपर राज्य कर सकती है. किंतु यदि नारीकी आत्माको देशवासियोंने शान्ति नहीं दी, उसके धधकते हुए कलेजेपर अमृत नहीं बरसाया, उसकी दयनीय दशापर ध्यान नहीं दिया, उसके पवित्र सतीत्व और सम्मानकी रक्षा नहीं की, तो हमें वीर आत्माओंके दर्शन सर्वथा दुर्लभ हो जायँगे। आज इस स्वतन्त्र भारतके आधारस्तम्भ, कलके नागरिक वे बच्चे हैं, जो अभी माके दूधके साथ चिपटे हुए हैं, अबोध हैं। बच्चे राष्ट्रकी विभूति तथा एक अविभाज्य सम्पत्ति हैं जिनपर प्रत्येक राष्ट्रको अभिमान होता है। यदि माकी उच्च भावनाएँ उन्हें दूधके साथ मिलेंगी तो निश्चय जानिये 'वीरभोग्या वसुन्धरा' की उक्ति अक्षरशः सत्य सिद्ध होगी। किंतु यदि उन्हें उनका करुण क्रन्दन तथा उत्तप्त श्वास ही मिला तो वे कमजोर एव डरपोक प्राणी बनेंगे। अतः देशकी भाग्य-निर्मात्री ये लाखों माताएँ हैं, जो आज सर्वत्र अपमानित और लाञ्छित होकर भोजनहीन—भूखसे छटपटा रही हैं, वस्त्रहीन—जाड़ेकी ठंडी हवामें काँप रही हैं, जनहीन—बिल्कुल निराश्रिता हैं, जो दिन-दहाड़े उन नीच गुंडोंका शिकार बन जाती हैं, जो उनके प्राण-हरण करनेसे पहले उनका पवित्र और महामूल्यवान् सतीत्व अपहरण कर लेते हैं!

भारतीयो! चेतो, इन असहायोंकी रक्षाके लिये कमर कसकर तैयार हो जाओ। देखो, पुण्यश्लोक महर्षिकी अमर आत्मा स्वर्गसे तुम्हें चेतावनी दे रही है। उठो, आँखें खोलो, सारे भेद और मतभेद भुलाकर, मानवताके नाते जातीय संघटनमें बँध जाओ। एक राष्ट्र, एक भाषा, एक विचारका समर्थन करो। कहींपर यदि कोई आततायी तुम्हारी इन मा-बहिनोंकी ओर टेढ़ी नजर भी करे तो तुरंत उसकी आँखें निकालकर उसे मृत्युदण्ड दो। इनके सतीत्वकी रक्षाके लिये अनेकों अमर आत्माएँ तुम्हारा मार्ग प्रदर्शन करेंगी।

क्या आप भूल गये? इसी भारतमें प्राचीनसे लेकर अर्वाचीन युगतक हजारों नारी-रत्न सुलभा, मैत्रेयी, सीता, सावित्री, संघमित्रा, पटाचारा, दुर्गावती, लक्ष्मीबाई, कस्तूरबा तथा स्वरूपरानी-जैसी पैदा हुई थीं। यह नारी ही सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गाकी अखण्ड त्रिवेणी है। वे दिन दूर नहीं, जब ये आपके आश्रयमात्रसे ही लक्ष्मी और पद्मिनीके रूपमें समराङ्गणमें उपस्थित होंगी। नारीके हृदयमें सेवाकी गङ्गा है। वह त्याग एवं परोपकारसे मण्डित है। किंतु आज नारी देशके लिये सर्वस्व अर्पण कर रही है और करके ही सती होगी। आज देशकी सेवा ही उसकी चन्दनकी चिता है। उसीपर जलकर वह अमर होगी। क्या राष्ट्रिय कवि मैथिलीशरणके शब्दोंमें महात्मा बुद्धकी वीरपत्नी यशोधराकी उक्ति भूल गये!

स्वयं सुसज्जित करके क्षणमें प्रियतमको प्राणोंके पणमें,
हमीं भेज देती हैं रणमें क्षात्र-धर्मके नाते।

नारी-जीवनकी यह अमर अभिलाषा है। नारीके हृदयका नैवेद्य पाकर जब पुरुष समराङ्गणमें उतरता है तो वैरीके प्राण लेकर, विजय प्राप्त करके ही दम लेता है; आज इसी वीर-रस-प्रवाहिनी नारीके प्रति आपको अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिये।

आज एक ओर तो सर्वप्रथम भारतीय विदुषी महिला सुश्री विजयालक्ष्मी पण्डित सोवियत-रूसमें भारतीय राजदूत बनकर गयी हैं। सुश्री सरोजिनी नायडू संयुक्तप्रान्तकी गवर्नरका कार्य-भार सँभाल रही हैं। सुश्री सम्माननीया राजकुमारी अमृतकौर भी हिंदू-यूनियनके प्रमुख मन्त्रि-मण्डलमें स्वास्थ्य-विभागकी मन्त्रिणी हैं। एवं दूसरी ओर इसी दिल्ली तथा संयुक्तप्रान्तमें हजारों शरणार्थी संभ्रान्त महिलाएँ घर-बारसे हीन, दाने-दानेको तरस रही हैं! आपको इस गहरी विषमताको दूर करना होगा और जबतक आपके प्राणोंमें अन्तिम श्वास है, आपको अपनी इन निराश्रिता बहिनों तथा उनके बच्चोंके लिये भोजन, वस्त्र, घर तथा शिक्षा और साथ ही उचित सम्मान-सत्कार आदिकी योग्य व्यवस्था करनी होगी।

देशके धनियोंका धन, मकान, जायदाद आज इन शरणार्थियोंको बसाने तथा इन्हें सुव्यवस्थित करनेमें लगाया जाय। हमारी राष्ट्रिय सरकार इनके रहने-सहनेके लिये शीघ्र ही मकान आदिकी व्यवस्था कर रही है; किंतु आप नागरिकोंका भी यह कर्तव्य है कि जहाँ-जहाँ वे पहुँचें, वहाँ-वहाँ आप उनको आश्रय दें। आप उनके लिये नगर-नगरमें; ग्राम-ग्राममें 'उद्योग-कला-मन्दिर' खोलें, जहाँ जाकर वे शिल्पकलासे ही अपनी रोटीका प्रश्न हल कर लेवें। उनके बच्चोंके लिये स्कूलोंमें निःशुल्क शिक्षाका प्रबन्ध किया जाय। जो अशिक्षित महिलाएँ हैं, उनको शिक्षित करनेके लिये पाठशालाएँ खोली जायँ, ताकि वे दो-चार वर्षोंमें साधारण पढ़-लिखकर स्वावलम्बिनी बन सकें। आपको इन्हें आत्मरक्षार्थ हाथमें तलवार देकर देशका सच्चा नागरिक बनाना होगा, तभी इनकी शोचनीय स्थितिमें सुधार हो सकता है।

पत्नीका परित्याग कदापि उचित नहीं !

हिंदू-धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे पति-पत्नीका सम्बन्ध सर्वथा अविच्छेद्य है। जिस प्रकार पत्नीके लिये पतिका त्याग किसी भी हालतमें विहित नहीं, उसी प्रकार पतिके द्वारा भी पत्नीका त्याग सर्वथा अनुचित है। इस सम्बन्धमें मार्कण्डेयपुराणमें एक बड़ा सुन्दर आख्यान मिलता है। सृष्टिके आरम्भकी बात है। मानवीय सृष्टिके आदि प्रवर्तक महाराज स्वायम्भुव मनुके पुत्र राजा उत्तानपादके दो संतानें हुईं। उनमे ज्येष्ठ थे महाभागवत ध्रुव—जिनकी कीर्ति जगद्विख्यात है। उनके सौतेले भाईका नाम था उत्तम। इनका जैसा नाम था, वैसे ही इनमें गुण थे। शत्रु-मित्रमें तथा अपने-परायेमें इनका समान भाव था। ये धर्मज्ञ थे और दुष्टोंके लिये यमराजके समान भयंकर तथा साधु पुरुषोंके लिये चन्द्रमाके समान आह्लादजनक थे। इनकी पत्नीका नाम था बहुला। बहुलामें इनकी बड़ी आसक्ति थी। स्वप्नमें भी इनका चित्त बहुलामें ही लगा रहता था। ये सदा रानीके इच्छानुसार ही चलते थे, फिर भी वह कभी इनके अनुकूल नहीं होती थी। एक बार अन्यान्य राजाओंके समक्ष ही रानीने राजाकी आज्ञा मानना अस्वीकार कर दिया। इससे राजाको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने रानीको जंगलमें छुड़वा दिया। रानीको भी राजासे अलग होनेमें प्रसन्नता ही हुई। राजा औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगे।

एक दिनकी बात है, कोई ब्राह्मण उनके दरबारमे उपस्थित हुआ। उसने राजासे फर्याद की कि उसकी पत्नीको रातमें कोई चुरा ले गया। राजाके पूछनेपर ब्राह्मणने बताया कि उसकी पत्नी स्वभावकी बड़ी क्रूर है, कुरूपा भी है तथा वाणी भी उसकी कठोर है। उसकी पहली अवस्था भी कुछ-कुछ बीत चुकी थी। फिर भी राजासे उसने अपनी पत्नीका पता लगाकर उसे वापस ला देनेकी प्रार्थना की। राजाने कहा—'ब्राह्मण देवता! तुम ऐसी स्त्रीके लिये क्यों दुखी होते हो। मैं तुम्हें दूसरी स्त्री दिला दूँगा। रूप और शील दोनोंसे हीन होनेके कारण वह स्त्री तो त्याग देने योग्य ही है।'

ब्राह्मण शास्त्रका मर्मज्ञ था। उसे राजाकी यह बात पसंद नहीं आयी। उसने कहा—'राजन्! भार्याकी रक्षा करनी चाहिये—यह श्रुतिका परम आदेश है। उसकी रक्षा न करनेपर वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है। वर्णसकर अपने पितरोंको स्वर्गसे नीचे गिरा देता है। पत्नी न होनेसे मेरे नित्य-कर्मकी हानि हो रही है, धर्मका लोप हो रहा है। इससे मेरा पतन अवश्यम्भावी है। उससे मुझे जो संतति प्राप्त होगी, वह धर्मका पालन करनेवाली होगी। इसलिये जैसे भी हो, आप मेरी पत्नीको वापस ला दें। आप राजा हैं, प्रजाकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है।'

ब्राह्मणके शब्द राजापर असर कर गये। उन्होंने सोच-विचारकर अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। वे ब्राह्मणपत्नीकी खोजमें घरसे निकल पड़े और पृथ्वीपर इधर-उधर घूमने लगे। एक दिन वनमें घूमते-घूमते उन्हें किसी मुनिका आश्रम दिखायी पड़ा। आश्रममें उन्होंने मुनिका दर्शन किया। मुनिने भी उनका स्वागत किया और अपने शिष्यसे अर्घ्य लानेको कहा। इसपर शिष्यने उनके कानमे धीरेसे कुछ कहा तथा मुनिने ध्यानद्वारा सारी बात जान ली और राजाको आसन देकर केवल बातचीतके द्वारा ही उनका सत्कार किया। राजाके मनमें मुनिके इस व्यवहारसे सन्देह हो गया और उन्होंने मुनिसे विनयपूर्वक अर्घ्य न देनेका कारण जानना चाहा। मुनिने बताया कि राजाने अपनी पत्नीका त्याग करके धर्मका लोप कर दिया है, इसीसे वे अर्घ्यके पात्र नहीं हैं। उन्होंने कहा—**'राजन्! पतिका स्वभाव कैसा भी हो, पत्नीको उचित है कि वह सदा पतिके अनुकूल रहे। इसी प्रकार पतिका भी कर्तव्य है कि वह दुष्ट स्वभाववाली पत्नीका भी पालन-पोषण करे।'** राजाने अपनी भूल स्वीकार की और मुनिसे उस ब्राह्मणपत्नीका हाल जानना चाहा। ऋषिने बताया कि ब्राह्मणपत्नीको अमुक राक्षस ले गया है और अमुक वनमें जानेपर वह मिल जायगी। साथ ही उन्होंने शीघ्र ही उस ब्राह्मणपत्नीको ले आनेके लिये कहा, जिससे उस ब्राह्मणको भी उन्हींकी भाँति दिनोंदिन पापका भागी न होना पड़े।

राजाने मुनिको कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम किया और उनके बताये हुए वनमें जाकर ब्राह्मणपत्नीका पता लगाया। वह अबतक चरित्रसे गिरी नहीं थी। राक्षस उसे केवल इसीलिये ले आया था कि ब्राह्मण विद्वान् होनेके कारण सभी यज्ञोंमें ऋत्विज बनता था और जहाँ कहीं वह राक्षस जाता, उसे रक्षोघ्न मन्त्रोंद्वारा भगा दिया करता था, जिससे उसे परिवार-सहित भूखों मरना पड़ता था। राक्षस इस बातको जानता था कि कोई भी पुरुष पत्नीके बिना यज्ञ-कर्म नहीं कर सकता; इसलिये ब्राह्मणके कर्ममें विघ्न डालनेके लिये ही वह उसकी

पत्नीको हर लाया था। राजाको प्रसन्न करनेके लिये वह ब्राह्मण-पत्नीको पुनः उसके पतिके घर छोड़ आया और साथ ही उसके शरीरमें प्रवेश करके उसके दुष्ट स्वभावको भी खा गया, जिससे वह सर्वथा पतिके अनुकूल बन गयी। अब राजाको अपनी पत्नीके विषयमें चिन्ता हुई और वे उसका पता लगानेके लिये पुनः ऋषिके पास पहुँचे। ऋषिने राजाको उसका सारा वृत्तान्त बता दिया और पत्नी-त्यागका दोष वर्णन करते हुए पुनः उनसे कहा—'**राजन्! मनुष्योंके लिये पत्नी धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धिका कारण है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—कोई भी क्यों न हो, पत्नीके न होनेपर वह कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रहता। जैसे पत्नीके लिये पतिका त्याग अनुचित है, उसी प्रकार पुरुषोंके लिये पत्नीका त्याग भी उचित नहीं।**' राजाके पूछनेपर ऋषिने उन्हें यह भी बताया कि पाणिग्रहणके समय सूर्य, मङ्गल और शनिकी उनपर तथा शुक्र और गुरुकी उनकी पत्नीपर दृष्टि थी। उस मुहूर्तमें चन्द्रमा और बुध भी, जो परस्पर शत्रुभाव रखनेवाले हैं, उनकी पत्नीके अनुकूल थे और उनके प्रतिकूल। इसीलिये उन्हें अपनी रानीकी प्रतिकूलताका कष्ट भोगना पड़ा।

रानीको वापस लानेका प्रयत्न करनेके पूर्व राजा उस ऋत्विज ब्राह्मणके पास गये, जिसकी पत्नी उन्होंने राक्षससे वापस दिलवायी थी और उससे अपनी पत्नीको अनुकूल बनानेका उपाय पूछा। ब्राह्मणने राजासे मित्रविन्दा नामक यज्ञ करवाया। तब राजाने उसी राक्षसके द्वारा, जो उस ब्राह्मण-की पत्नीको हर ले गया था, अपनी पत्नीको भी बुलवा लिया। वह नागलोकमें नागराज कपोतके यहाँ सुरक्षित थी। नागराज उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता था; किंतु उसकी पुत्रीने यह सोचकर कि वह उसकी माकी सौत बनने जा रही है, उसे छिपाकर अपने पास रख लिया, जिससे उसका सतीत्व अक्षुण्ण बना रहा। मित्रविन्दा नामक यज्ञके प्रभावसे उसका स्वभाव भी बदल गया और वह अब अपने पतिके सर्वथा अनुकूल बन गयी। तदनन्तर उसके गर्भसे एक महान् तेजस्वी पुत्रका जन्म हुआ, जो औत्तम नामसे विख्यात हुआ और जो तीसरे मन्वन्तरमें मनुके पदपर प्रतिष्ठित हुआ। ये औत्तम मनु इतने प्रभावशाली हुए कि मार्कण्डेयपुराणमें इनके सम्बन्धमें लिखा है—जो मनुष्य राजा उत्तमके उपाख्यान और औत्तमके जन्मकी कथा प्रतिदिन सुनता है, उसका कभी किसीसे द्वेष नहीं होता। यही नहीं, इस चरित्रको सुनने और पढ़नेवालेका कभी अपनी पत्नी, पुत्र अथवा बन्धुओंसे वियोग नहीं होता।

उपर्युक्त उपाख्यानसे कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। पहली बात तो इससे यही सिद्ध होती है कि विवाह-विच्छेद हिंदू-धर्मको मान्य नहीं है। विवाह-संस्कार पति-पत्नीको जीवनभरके लिये अत्यन्त पवित्र धार्मिक बन्धनसे बाँध देता है। पतिके बिना पत्नी अधूरी है और पत्नीके बिना पति धर्म-कर्मसे च्युत हो जाता है, किसी भी कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रह जाता। यज्ञ-कर्ममें तो विशेषरूपसे पत्नीका सहयोग अनिवार्य है। पद्मपुराणमें तो यहाँतक कहा गया है कि माता-पिता और गुरु-के समान पत्नी भी एक तीर्थ है। जिस प्रकार पत्नीके लिये पतिसे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है, उसी प्रकार साध्वी पत्नी भी पतिके लिये तीर्थतुल्य है—आदरकी वस्तु है। जिस प्रकार पत्नी यदि पतिको साथ लिये बिना कोई यज्ञ आदि धर्मानुष्ठान करती है तो वह निष्फल होता है, उसी प्रकार पति भी यदि सहधर्मिणी पत्नीके बिना धर्मानुष्ठान करता है तो उसका वह अनुष्ठान व्यर्थ हो जाता है। पद्मपुराणमें पत्नीतीर्थके प्रसङ्गमें कृकल नामक वैश्यकी कथा आती है, जिसने अपनी साध्वी पत्नीको साथमें लिये बिना ही तीर्थाटन किया था; किंतु उसकी इस तीर्थ-यात्रासे शुभ फल होना तो दूर रहा, उल्टे उसके पितर बाँधे गये। जो लोग हिंदू-धर्मपर नारीके प्रति अनुदारताका आरोप लगाते हैं, उन्हें इस प्रसङ्गको ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये।

इसके बाद कृकलने घरपर ही रहकर पत्नीके साथ श्रद्धा-पूर्वक श्राद्ध और देवपूजन आदि पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान किया। इससे प्रसन्न होकर देवता, पितर और मुनिगण विमानोंके द्वारा वहाँ आये और महात्मा कृकल और उसकी महानुभावा पत्नी दोनोंकी सराहना करने लगे। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर भी अपनी देवियोंके साथ वहाँ गये। सम्पूर्ण देवता उस सतीके सत्यसे संतुष्ट थे। सबने उस पुनीत दम्पतिको मुँहमाँगा वरदान देकर उनपर पुष्पोंकी वर्षा की और उस पतिव्रताकी स्तुति करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये।

उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट हो जाता है कि हिंदू-धर्ममें पत्नीको कितना ऊँचा दर्जा एवं सम्मान दिया गया है और उसके अधिकार कितने सुरक्षित हैं। जिस प्रकार पत्नीके लिये यह आदेश है कि—

> दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
> पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यः ……………॥

—(पति चाहे क्रूर स्वभावका हो, अभागा हो, वृद्ध हो, मूर्ख हो, रोगी अथवा निर्धन हो, पत्नीको चाहिये कि वह कभी उसका त्याग न करे), उसी प्रकार पतिका भी यह

कर्तव्य है कि वह पत्नीका त्याग न करे—चाहे वह कर्कशा हो, कुरूपा हो अथवा परुषवादिनी हो। बल्कि उसके क्रूर स्वभावको मृदु करनेके लिये हमारे यहाँ यज्ञादि दैवी साधनों-की व्यवस्था की गयी है, न कि विवाह-विच्छेदके द्वारा उसे अलग करनेकी। उपर्युक्त आख्यानसे विवाहके पूर्व वर-कन्याके ग्रह आदि मिलानेकी भी आवश्यकता सिद्ध होती है। ग्रहोंके प्रतिकूल होनेपर भी पति-पत्नीमें कलह आदि होनेकी सम्भावना रहती है। तात्पर्य यह है कि हमारे यहाँ सब प्रकारसे ऐसी व्यवस्था की गयी है कि जिसमे दाम्पत्य-जीवन अन्ततक सुखमय बना रहे, पति-पत्नी दो देह, एक प्राण होकर रहे और परस्पर सहयोगसे धर्म-अर्थ-कामका सम्पादन कर अन्तमें मनुष्य-जीवनके परम ध्येय—मोक्ष अथवा निःश्रेयसको प्राप्त करें। इसी आदर्शको सामने रखकर धर्म-शास्त्रके सारे विधान बनाये गये हैं। समाजशास्त्रका जैसा सुन्दर अध्ययन हमारे ऋषियोंने किया है और गार्हस्थ्य-जीवनकी जैसी आदर्श व्यवस्था हमारे शास्त्रोंने बनायी है, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। फिर भी आश्चर्य है कि हमारा शिक्षित समाज इस आदर्श व्यवस्थाको न अपनाकर पश्चिमके आदर्शोंको ही अनुकरणीय मानकर उन्हींको ग्रहण करनेके लिये लालायित है। भगवान् सबको सुबुद्धि दें।

अपहरण की हुई मा-बहिनें पवित्र हैं

महर्षि अत्रिकी सम्मति

(लेखक—पं० श्रीरामाधारजी पाण्डेय)

आजकल देशकी राजनीतिसे हमारा जीवन कितना प्रभावित है, यह सभीको भलीभाँति विदित है। देशके विभाजनके परिणामसे कौन अवगत न होगा। धन गया, धर्म गया, बर्बरतापूर्ण नर-संहार हुआ; और क्या-क्या नहीं हुआ ? इसमे सबसे अधिक भोगना पड़ा हमारी नारी-जातिको। सम्मान और पातिव्रत्य लूटे जानेपर भी किन्हीं-किन्हींके प्राण छूटने न पाये और नर-पिशाचोंके साथ आजीवन वेदनामे घुल-घुलकर जीवित रहनेका अभिशाप मिला। इस विषम परिस्थितिमें बलात् अपहृता हमारी माताएँ और बहिने यदि पुनः हममें मिलने आती हैं तो वे संकीर्ण-दृष्टिवालोंकी दृष्टि फिरी पाती हैं, मानो उनकी आपत्तिने उन्हें हमारे धर्म और समाजसे बहिष्कृत कर दिया है। अतः हम इस विषयमें महर्षि अत्रिके विचार पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत करना चाहते हैं; आप देखेंगे कि हमारे धर्मशास्त्र परिस्थितिविशेषमें कितने उदार हो जाते हैं—

पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः।
भुञ्जते मानवाः पश्चान्न ता दुष्यन्ति कर्हिचित्॥ १॥
असवर्णैस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषेच्यते।
अशुद्धा सा भवेन्नारी यावद्गर्भं न मुञ्चति॥ २॥
विमुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते।
तदा सा शुध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा॥ ३॥
स्वयं विप्रतिपन्ना या यदा वा विप्रसारिता।
बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथैव वा॥ ४॥
न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते।
ऋतुकाले उपासीत पुष्पकालेन शुध्यति॥ ५॥
(अत्रिसंहिता)

अर्थात् सर्वप्रथम स्त्रियाँ (कन्याएँ) सोम, गन्धर्व और वह्नि देवताओंद्वारा भोगी जाती हैं; तत्पश्चात् प्रसादरूपेण मनुष्य उनके रजस्वला होनेके पश्चात् उन्हें भोगता है। इससे वे कभी भी दूषित नहीं होतीं॥ १॥

अपने वर्णके अतिरिक्त अन्य व्यक्तिके द्वारा स्त्रीमें गर्भ रह जानेपर वह केवल तबतक अशुद्ध रहती है, जबतक प्रसव नहीं हो जाता॥ २॥

स्त्रीमें शल्यरूप पराये शुक्रके, जो गर्भरूपमें हो, निकल जानेपर, फिर पुनः रजस्वला होनेपर वह स्त्री शुद्ध होकर निर्मल स्वर्णसदृश हो जाती है॥ ३॥

जो स्वय भ्रष्ट हो गयी हो या छल करके बहकायी गयी हो, जिसके साथ बलात्कार किया गया हो या जो चोरीसे निद्रित अवस्थामे भोगी गयी हो, ऐसी स्त्री त्याज्य नहीं है; किंतु उसके साथ तबतक संयोग न करे, जबतक वह पुनः रजस्वला न हो। रजस्वला होनेपर स्त्री शुद्ध हो जाती है॥ ४-५॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बलात् भ्रष्ट की गयी नारियाँ अब भी पूर्वतुल्य पवित्र और ग्रहणीय हैं।*

* ऐसी नारियोंको पुनः घरमें न रखनेकी कल्पना तो बड़ी ही मूर्खता और निर्दयता है। हमारी बहिन या कन्याको कोई दुष्ट बलपूर्वक हरण करके ले जाय और वह रोती-बिलखती हुई किसी प्रकार घरमें वापस आवे एवं हम कह दें कि तुम्हारे लिये घर-में स्थान नहीं है—यह तो अत्यन्त ही अमानुषीपन है। अतएव उन्हें बड़े स्नेह तथा आदरसे घरमें पूर्ववत् रखना चाहिये। हाँ, जो कुछ-शास्त्रीय विधान हो—पञ्चगव्यादि पान कराना, गङ्गा-स्नान तथा हवनादि—उसे अवश्य करा देना चाहिये कि जिससे नीच-संस्पर्शजनित अशुद्धि मिट जाय और कोई दोष गृहमें न आने पावे।

मा ! शीघ्र आ

मा ! तेरा स्वरूप आजकी परिस्थितिमें बड़ा ही विचित्र-सा है ! देखती क्या है । उठने दे तेरा कराल करवाल ! उठने दे तेरा प्रचण्ड हाथ । अरी, ओ खप्परवाली ! क्या सङ्केत करती है ? क्या तुझे इन आततायियोंके समक्ष भी जबान हिलानेकी सुधि नहीं । तेरे ये कमल-कोमल स्वरूप अगणित प्रकारोंसे रौंदे जा रहे हैं । फिर क्यों देर है, मा ? क्या कारण है तेरे इस विरामका ?

देख मैया ! तूने ही महिषासुरका वध किया । तेरे ही प्रबल प्रतापसे मधु-कैटभका संहार हुआ ! चण्ड-मुण्ड-सरीखे शक्तिशाली दैत्य भी धराशायी हुए ! रक्तबीजका रक्त भी तूने ही पान किया । आज क्या कारण है तेरी इस अगम गम्भीरताका । क्या तू भूल गयी कि तेरे एक भ्रुकुटि-विलाससे—तेरी एक साधारण-सी मरोड़से कई करोड़ दानवोंका कलेजा दहल उठेगा ! जिस क्षण तेरी गम्भीर हुंकार होगी, उसी दम सारा विश्व थर्रा उठेगा ! पृथ्वी हिल जायगी ! दैत्योंका—इन पाशविक अत्याचारियोंका नामोनिशानतक शेष न रहेगा !

मेरा तो विश्वास है । पूरी तरह भरोसा है मुझे, जगजननी ! न जाने क्यों अब तू ही हमें विकल कर रही है । देख, रोते-रोते हमारे गलेकी नसें फूल उठी हैं । घिग्घी बँध गयी है ! हम तड़प रहे हैं । हमारी दशा बड़ी ही दयनीय हो रही है । माता ! फिर क्यों पुत्रोंकी यह दुर्दशा देखकर भी तू नहीं पसीजती ? हमने सुन रक्खा है कि 'पुत्र चाहे कैसा भी कुपूत हो, पर माता तो कुमाता नहीं होती ।' यह साधारण सांसारिक नियम है । फिर तू तो अनन्त दिव्य स्नेहमयी है, तब क्यों देर करती है ? तेरा आवाहन है, मैया । अपना डेरा-डंडा सँभाल ! ले, आ !!—आचार्य माणिक

माका दिल

(लेखक—श्रीदुर्गाशङ्करजी व्यास बी० ए०, साहित्यशास्त्री)

मैं दफ्तरमें बैठा था । चार सज्जन डेपुटेशनके रूपमें मुझसे मिलने आये हुए थे । मेरे सामने पड़ी कुर्सियोंपर वे सब बैठे थे । मैं उनसे बातें कर रहा था । इतनेमें एक चपरासी नीचेसे आया और मुझे अभिवादन करके बोला—'पण्डित-जी ! माताजी आयी हैं ।'

'माताजी आयी हैं,' सुनकर मेरी आत्मा सिहर उठी । मेरी मानस-शृङ्खला एकदम टूट गयी । मैं विस्मयविमुग्ध हो रहा था कि आखिर क्या मामला है, एक मीलकी दूरीसे माताजी आज स्वयं चलकर दफ्तर क्यों आ रही हैं । हृदय काँप उठा और मैं उन उपस्थित सज्जनोंकी अपेक्षा न करते हुए झट कुर्सीसे उठकर सीढ़ियोंसे नीचे उतरने लगा । आधी सीढ़ियोंतक नीचे गया था कि माताजीका साक्षात् हुआ, वे ऊपर आ रही थीं ।

मैं उन्हें अपने साथ ऊपर लिवा लाया । एक कुर्सीपर बिठाया । मेरी आँखें आश्चर्यसे भरपूर हो रही थीं । मैंने पूछा—'क्यों, माताजी ! आप कैसे आयीं ? घरपर कुशल तो है न ?' वे होठों-ही-होठोंमें मुसकरा दीं ।

मैं कुछ समझ न सका । माताजी मेरे दफ्तरमें पहले कभी नहीं आयी थीं । उन्होंने केवल इतना सुन रक्खा था कि 'मेरे लड़केका दफ्तर सन्तरामकी सरायमें है ।' वे अधिक पढ़ी-लिखी भी नहीं हैं—केवल हिंदी जानती हैं । दफ्तरके दरवाजेपर अंग्रेजी लिपिमें लिखा हुआ साइन-बोर्ड लगा हुआ था । उसे वे कब पढ़ सकती थीं । निश्चय ही, वे पूछते-पूछते यहाँतक आयी थीं और वह भी पैदल ! एक पचपन-वर्षीया वृद्धा !!

मैं उनकी उस स्थितिको कुछ समझ न सका ।

तब एकाएक उन्होंने अपनी चादरके नीचेसे एक डिब्बा निकाला और मेरी ओर बढ़ाकर कहा—'मैं तुम्हारे लिये रोटी लायी हूँ ।'

उक्त वाक्यको सुनते ही मेरे शरीरमें रोमाञ्च हो उठा । वह रोमाञ्च किन भावनाओंसे प्रेरित था, इसकी कल्पना पाठक स्वयं कर लेंगे । और मैं हृदयको अगाध श्रद्धासे भरकर विस्फारित नेत्रोंसे माताजीको एकटक निहार रहा था । अन्य उपस्थित सज्जनोंकी दृष्टि भी माताजीपर टिकी हुई थी ।

'आपने इतना कष्ट क्यों किया ?' सहसा मेरे मुँहसे निकल गया ।

'घरपर सब रोटी खा चुके थे, लेकिन आज तुम्हारा चपरासी तुम्हारी रोटी लेनेके लिये नहीं आया था; इसलिये मेरे मुँहमें एक कौर भी नहीं जा पाता था। हृदय चीख-चीखकर कह रहा था—'तेरा बेटा अभी भूखा है!' तुम्हारी स्त्रीके रोकनेपर भी मैं पूछती-पूछती यहाँ आ गयी हूँ। परंतु तुमने आज चपरासी क्यों नहीं भेजा, बेटा?' माताने ममता-भरे स्वरमें पूछा।

'दफ्तर आकर देखा,' मैंने उत्तर दिया, 'बेचारे चपरासीको बुखार हो गया था; इसलिये आज उसे जानेको मैंने रोक दिया था।'

'यह तो बहुत अच्छा किया,' माताजी बोलीं, 'लेकिन चपरासीके न आनेसे मैंने निश्चय किया कि तुम भूखे हो।'

'यह आपने कैसे निश्चय कर लिया कि मैं भूखा हूँ; क्या मैं बाजारसे मँगवाकर नहीं खा सकता था?' मैंने मुसकराते हुए पूछा।

तब उन उपस्थित सज्जनोंका लीडर बोल उठा—'जनाब! यह माका दिल है!'

और माताजी बोल उठीं—'मैं तुम्हारी आदत जो जानती हूँ, बेटा!'

मैं हँस पड़ा और अनायास मेरे मुँहसे निकल गया—'सच कहती हो, मा! मैंने अभीतक कुछ नहीं खाया।'

'तो बेटा! अब जल्दी खा लो,' माताजीने पीठपर हाथ फेरते हुए कहा, 'तीन बजनेवाले हैं!'

'लेकिन, अब तो मैं अकेला नहीं खाऊँगा,' मैंने कहा, 'आप भी तो भूखी हैं; अब हम दोनों साथ ही खायेंगे।'

नारीकी देश-सेवा

(लेखिका—विद्याविनोदिनी श्रीमती कृष्णादेवीजी)

आजकल लोग कहने लगे हैं कि 'हिंदू-स्त्रियोंको पातिव्रत्यके नामपर घरमें बंद रक्खा जाता है और इससे उनको देश-सेवासे वञ्चित रहना पड़ता है।' पर इस कथनमें जरा भी समझदारी नहीं है। मैं पूछती हूँ—'क्या जुलूस निकालना, झंडे फहराना, सभामें व्याख्यान झाड़ना, पति-पुत्रोंको छोड़कर स्वतन्त्र भटकना, वकील-जज होना अथवा मेम्बर-मिनिस्टर बनना और कल-कारखानों एवं आफिसोंमें काम करना ही देश-सेवा है? यदि हाँ, तो मैं कहती हूँ कि आप कर्तव्यज्ञानसे वञ्चित हो गये हैं। देशका संरक्षण, संवर्धन और अभ्युदय करनेवाले, देशके लिये नाना प्रकारके शुभ संकल्प और शुभ आयोजन करनेवाले मनस्वी, तेजस्वी, तपस्वी, बुद्धिमान्, विद्वान्, वीर-हृदय, उदार महापुरुषोंको और देशके लिये सब प्रकारका बलिदान करनेवाले सैनिकों-सेवकोंको उत्पन्न करना, उनका लालन-पालन करना और तैयार करके देश तथा धर्मके लिये उन्हें कार्यक्षेत्रमें प्रेरित करना क्या किसी भी प्रकारसे कम देश-सेवा है? भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, भीष्म, युधिष्ठिर, अर्जुन, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, महाराजा अशोक, नानक, कबीर, गुरु गोविन्दसिंह, गोस्वामी तुलसीदास, कवीन्द्र रवीन्द्र, महात्मा मालवीयजी, श्रीगाँधीजी, लाला लाजपतराय, श्रीमोतीलालजी नेहरू आदि पुण्य-पुरुषोंको उत्पन्न करके उन्हे पाल-पोसकर बड़ा करनेवाली पुण्यशीला प्रातःस्मरणीया माताओंका क्या धर्म और देशकी सेवामें कम महत्त्वपूर्ण हिस्सा है? अरे, ये माताएँ न हों तो देशका नाम उज्ज्वल करनेवाले पुरुष उत्पन्न ही कहाँसे हों। क्षेत्रको उजाड़कर फल चाहनेवालेकी बुद्धिको नमस्कार! अतएव हमें इस भ्रमको छोड़ देना चाहिये कि घरमें रहकर सुसन्तानका निर्माण करनेवाली हम पतिव्रता नारी पुरुषोंसे कम देश-सेविकाएँ हैं। याद रखना चाहिये—हमारा प्रधान कार्य है सुसन्तानका निर्माण करना और उसे माता सुमित्रा, कुन्ती, विदुला आदिकी भाँति देशके अर्पण कर देना। यही हमारे लिये सच्ची राष्ट्र-पूजा है। इसके लिये हमें बाहर भटकनेकी जरूरत नहीं है। हम गृहदेवियाँ रहकर ही देशको ऐसी महत्त्वपूर्ण देन दे सकती हैं। इस मातृत्वकी पवित्र जिम्मेवारीको छोड़कर पुरुषोंके बाजार-हाटोंमें घूमना तो देशहितके नामपर देशका वस्तुतः अहित करना होगा। भगवान् हमें ऐसे दम्भ, मोह और प्रमादसे बचावें।'*

* लेखिकाके 'नारी-स्वातन्त्र्य' नामक ४५ पृष्ठके बृहद् लेखमेंसे स्थानाभावसे केवल उपर्युक्त अंशमात्र कुछ संशोधनके साथ छापा गया है। —सम्पादक

सर्वश्रेष्ठ सन्तान-प्राप्तिके लिये नियम

'प्राणियोंकी हिंसा न करे, किसीको शाप न दे, झूठ न बोले, नख और रोम छेदन न करे, अपवित्र और अशुभ वस्तुका स्पर्श न करे, जलमें डुबकी लगाकर न नहावे, क्रोध न करे, दुष्ट जनोंके साथ कभी बातचीत न करे, बिना धोया कपड़ा और निर्माल्य माला धारण न करे; जूँठा, चींटियोंका खाया हुआ, आमिषयुक्त, शूद्राणीके द्वारा लाया हुआ और ऋतुमतीकी नजरमें पड़ा हुआ भोजन न करे; भोजन करके हाथ धोये बिना, केश बाँधे बिना, वाणीका संयम किये बिना, वस्त्रोंसे अङ्गोंको ढके बिना और सन्ध्याके समय घरसे बाहर विचरण न करे; पैर धोये बिना, गीले पैर रखकर एवं उत्तर या पश्चिमकी ओर सिर करके न सोवे। नंगी होकर, किसी दूसरेके साथ तथा सन्ध्या-कालमें भी न सोवे। प्रातःकाल भोजनसे पहले धोये हुए कपड़े पहनकर, पवित्र होकर तथा समस्त मङ्गलद्रव्योंको धारण करके प्रतिदिन गौ, ब्राह्मण, भगवान् नारायण और भगवती लक्ष्मीदेवीका पूजन अवश्य करे। माला, चन्दन, भोजनसामग्री आदिके द्वारा पतिका पूजन करे एवं पूजा समाप्त होनेपर पतिका अपने उदरमें ध्यान करे।'

गर्भकालमें इस प्रकार करनेसे निश्चय ही तेजस्वी, मेधावी, शूर तथा धार्मिक पुत्रका जन्म होता है।

सन्ततिनिरोध

वर्तमान समयमें कई कारणोंसे सन्तति-निरोधका भी प्रश्न छिड़ा हुआ है, जो कुछ दृष्टियोंसे आवश्यक भी जान पड़ता है। यह सत्य है कि भारतके समान गरीब देशमें इस महान् महँगीके युगमें अधिक सन्तान माता-पिताके लिये बड़े ही सन्तापका हेतु होती है और उसका निरोध या सीमित होना अवश्य ही लाभप्रद माना जा सकता है; परन्तु किया क्या जाय, यह तो विधिका विधान है। पूर्वकर्म भी कोई वस्तु है, उसका फल सहज ही टल नहीं सकता। जिस जीवका जहाँ जन्म बदा है, वहाँ होगा ही—यह सिद्धान्त है; परंतु यदि कोई इसे न भी माने तो, सन्ततिनिरोधका सबसे बढ़िया तरीका एकमात्र इन्द्रियसंयम है। सन्ततिनिरोधकी आवश्यकता और साधन बतलानेवाली मिस सैंगर-जैसी विदेशी रमणीके सद्भावों-का अनादर न करते हुए भी यह कहना ही पड़ता है कि उनके बतलाये हुए साधन भारतीय संस्कृतिके अनुसार नीति, सदाचार और धर्म—सभी दृष्टियोंसे हानिकर ही नहीं, वरं पापपूर्ण हैं। इस प्रकारकी सन्ततिनिरोधकी प्रणालीमें व्यभिचारकी वृद्धि और कामवासनाकी निष्कण्टक चरितार्थता-की सम्भावना ही प्रत्यक्ष रूपसे छिपी है। महात्मा गाँधीने एक लेखमें लिखा था कि—'इन कृत्रिम साधनोंसे ऐसे-ऐसे कुपरिणाम आये हैं, जिनसे लोग बहुत कम परिचित हैं। स्कूली लड़के और लड़कियोंके गुप्त व्याभिचारने क्या तूफान मचाया है, यह मैं जानता हूँ ×××× मैं जानता हूँ, स्कूलों-मे, कालेजोंमें ऐसी अविवाहिता जवान लड़कियाँ भी हैं जो अपनी पढ़ाईके साथ-साथ कृत्रिम-सन्तति-निग्रहका साहित्य और मासिकपत्र बड़े चावसे पढ़ती रहती हैं और कृत्रिम साधनोंको अपने पास रखती हैं। इन साधनोंको विवाहित स्त्रियोंतक ही सीमित रखना असम्भव है और विवाहकी पवित्रता तो तभी लोप हो जाती है जब कि उसके स्वाभाविक परिणाम सन्तानोत्पत्तिको छोड़कर महज अपनी पाशविक विषय-वासना-की पूर्ति ही उसका सबसे बड़ा उपयोग मान लिया जाता है।'

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मनुष्योंके हृदयमें कृत्रिम सन्ततिनिग्रहके इस आन्दोलनसे पवित्रताके स्थानपर किस प्रकार घृणित पाशविक कामका आधिपत्य हो रहा है और किस प्रकार हमारे अपरिपक्वमति बालक और बालिकाएँ इसके शिकार होकर अपना सर्वनाश कर रहे हैं!

सन्ततिनिरोधके लिये संयमकी आवश्यकता है। एक प्रसवके बाद दूसरे प्रसवके बीचमे पाँच सालका समय रहे तो सन्ततिनिरोध अपने-आप ही हो जायगा।

गर्भिणीके लिये आहार-विहार

जननीकी शारीरिक और मानसिक स्थिति—खास करके उसके गर्भावस्थाके आहार, विहार और मानसिक स्थितिके ऊपर ही होनेवाली सन्तानका स्वास्थ्य और स्वभाव अधिकांशमें निर्भर करता है। गर्भ-धारणके बाद स्त्रीको बहुत सावधानीसे आवश्यक नियमोंका पालन करना चाहिये। आजकल इस सम्बन्धमे स्त्रियाँ बहुत असावधान रहती हैं; इसीसे गर्भपातकी संख्या बढ़ रही है और साथ ही स्त्रियोंके रोगोंकी भी। माता जो कुछ खाती है, उसीका परिपाक होनेपर उसके सारसे जो रस बनता है, उसका एक अंश स्तनदुग्धके रूपमें परिणत होता है और दूसरा अंश रक्तके रूपमें परिणत होकर गर्भका पोषण करता है। माताके इस आहार-रसके द्वारा ही गर्भस्थ शिशु बढ़ता और पुष्ट होता है। अतएव माता यदि सुपथ्यका सेवन तथा गर्भिणीके नियमोंका पालन करती है तो सन्तान सहज ही हृष्ट-पुष्ट होती है और ठीक समयपर उसका प्रसव भी सुखपूर्वक होता है। ऐसा न करनेपर माताको कष्ट होनेके साथ ही सन्तान भी जीवनभर रोगोंसे घिरी रहती है।

आहार

गर्भिणीको रुचिकारक, स्निग्ध, हल्का, अधिक हिस्सा मधुर और अग्निदीपक (सोंठ, पीपल, काली मिर्च, अजवायन आदि) द्रव्योंके संयोगसे बना हुआ भोजन करना चाहिये। चबानेमें कष्ट हो, ऐसी चीज नहीं खानी चाहिये। चरक-सुश्रुतमें गर्भिणीको मीठे पदार्थ खानेकी सम्मति दी गयी है। मीठे पदार्थोंमें—दूध, घी, मक्खन, चावल, जौ, गेहूँ, मूँग आदि अन्न; खीरा, नारियल, पपीता, कसेरू, केला आदि फल; किसमिस, खजूर आदि मेवा और लौकी, कुम्हड़ा आदि साग समझने चाहिये।

गर्भिणीके लिये दूध सर्वोत्तम खाद्य है। पहले और दूसरे महीने सुबह-शाम अन्न और अन्य समय परिमित मात्रामें गुनगुना दूध लेना चाहिये। तीन-चार बारमें प्रतिदिन कम-से-कम एक सेर दूध पीना उचित है। तीसरे महीने शहद और घी मिलाकर और चौथे महीने दूध और मक्खनके साथ अन्न लेना चाहिये। पाँचवें महीने भी दूध-घीके साथ भोजन करना चाहिये। छठे और सातवें महीने गोखुरूके साथ घीको पकाकर उपयुक्त मात्रामें पीना चाहिये। चरकमें कहा गया है कि सातवें महीने पेटकी चमड़ी फट जाती है और शरीरपर खुजलाहट होती है। इस समय बेरके क्वाथ और शतावरी तथा विदारीकंद आदिके साथ मक्खनको पकाकर उसकी दो तोला मात्रा गर्भिणीको पिलानी चाहिये और पेट तथा छातीपर चन्दनका लेप करना अथवा कवरी वृक्षके पत्तोंको तिलके तेलमें पकाकर वह तेल शरीरपर लगाना चाहिये। शरीर अधिक फट जाय और खुजली बहुत ज्यादा हो तो मालती पुष्प और मुलहठीको जलमें पकाकर उस जलसे शरीर धोना चाहिये। आठवें महीने दूधमें पकाकर जौ (बारली) और साबूदाना आदि कुछ घी मिला देना चाहिये। गर्भिणीकी मलशुद्धि हो और वायु सरल रहे, इसके लिये उसे दूधके साथ शतावरी देनी चाहिये तथा आवश्यक हो तो शतावरी, विदारीकंद, गोखुरू आदिको तिलके तेलमें पकाकर उस तेलकी पिचकारी भी दी जा सकती है। गर्भिणीको उपवास नहीं करना चाहिये। चरक-सुश्रुतके इस मतसे ऐसा जान पड़ता है कि गर्भिणीके लिये दूध, घी और हल्का अन्न ही उत्तम भोजन है।

गर्भिणीका कोठा साफ रहे और पेशाब सरलतासे होता रहे, इस ओर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। पके पपीते, संतरे और सेव आदि खानेसे कब्ज मिटता है और खून भी साफ होता है। दिन-रातमें कम-से-कम चार-पाँच बार पेशाब हो जाना चाहिये; नहीं तो समझना चाहिये पेशाब कम होता है और वैसी हालतमें जल तथा दूधकी मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। कच्चे दूधके साथ समान मात्रामें जल मिलाकर सुबह-शाम एक-एक कटोरी पी लेनेसे पेशाब साफ होने लगता है।

गर्भिणीको गुरुपाक (भारी) भोजन, अधिक मसाले, लाल मिर्च और ज्यादा गरम चीजें नहीं खानी चाहिये। खट्टी-बासी और रूखी चीजें तो बिल्कुल ही नहीं! आजकल चाय खूब चल रही है। स्त्रियोंमें भी इसकी लत बढ़ रही है। पर गर्भावस्थामें चाय बहुत हानिकारक है। किसी भी तरह न रहा जाय तो चाय बहुत ही थोडी और दूध अधिक मिलाकर लेना चाहिये। पान भी न खाया जाय तो अच्छा है। पानके साथ सुरती या जर्दा तो खाना ही नहीं चाहिये।

विहार

सुश्रुतमें कहा गया है कि गर्भिणीको पहले दिनसे ही सदा प्रफुल्लितचित्त, पवित्र, अलङ्कारों और साफ-सफेद वस्त्रोंसे भूषित, शान्ति और मंगलकार्योंमें निरत तथा देवता और बड़ोंकी भक्ति करते रहना चाहिये। इस अवस्थामें बड़ी सावधानीसे चलना-फिरना चाहिये, क्योंकि अकस्मात् पैर

फिसलकर गिर जानेसे गर्भपात हो सकता है। सदा शुद्धाचार-से रहना चाहिये। गर्भिणीको भक्तों, महापुरुषों, संतों और शूरवीरोंके जीवन-चरित्र तथा श्रीहरि-कथा आदि सुननी चाहिये। इसमें बहुत लाभ है।

गर्भिणीको ज्यादा मोटा कपड़ा नहीं पहनना चाहिये। साड़ी तथा अङ्गका वस्त्र चुस्त न होकर कुछ ढीला रहे। कपड़ा, बिछौना तथा बैठनेका आसन साफ-सुथरा और कोमल हो। बिछौना बहुत ऊँचेपर न हो, बिछौनेपर नरम तकिया रहे। गर्भिणीको शरीर सह सके जैसे ठंडे या गरम जलसे नहाना चाहिये। शरीरको साफ रखना चाहिये, जिसमें रोमावलियोंके छेद खुले रहें।

गर्भिणीको भोजनके बाद कुछ देर आराम करना चाहिये, परतु दिनमे सोना नहीं चाहिये। न दिनभर लगातार बैठे ही रहना चाहिये। थोड़ी मेहनतके घरके काम करते रहना चाहिये। प्रतिदिन हल्की चक्कीसे थोड़ा पीसना चाहिये। कुछ देर रोज शुद्ध वायुमें टहलना बहुत हितकर है, चाहे घरके आँगन या छतपर ही घूम लिया जाय। नौकर-नौकरानियाँ होनेपर भी प्रतिदिन कुछ शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिये।

न करनेकी आठ बातें

(१) मैथुन बिल्कुल न करना, (२) टट्टी, पेशाबकी हाजत न रोकना, (३) बहुत तेज चलनेवाली सवारियोंपर न चढ़ना, (४) कूद-फाँद या दौड़-भाग न करना, (५) बोझ न उठाना,, (६) परिश्रम करना, परंतु परिश्रमसे शरीर-को बहुत थका न देना, (७) दिनमें न सोना और रातको न जागना और (८) मन खिन्न हो, ऐसा कोई काम न करना।

ये तो प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित कार्य भी नहीं करने चाहिये—जैसे सदा चित होकर सोना, बहुत जोरोंसे बोलना या हँसना, उकड़ बैठना, अकेले कहीं जाना या सोना, क्रोध-शोक-भय आदि करना, मैले, विकलाङ्ग या विकट आकृतिके व्यक्तियोंका स्पर्श करना, दुर्गन्ध, बीभत्स दृश्य या पदार्थका सूँघना, देखना, जनशून्य घरमे रहना, अधिक तेल मसलाना या हल्दी-उबटन आदिसे शरीर मलना, लाल रंगकी साड़ी पहनना और किसी दूसरी स्त्रीके प्रसवके समय उसके पास रहना। इनके करनेसे भी गर्भको हानि पहुँचनेकी सम्भावना है।

प्रसूति-गृह

(लेखक—प० श्रीकेदारनाथजी त्रिवेदी)

मनुष्यकी जिंदगीका सबसे पहला घर प्रसूति-गृह है। इसीमें सबसे पहले नवजात शिशुका पदार्पण और स्वागत होता है। अतः जीवनमें इसका बहुत महत्त्व है। किसी साधारण-से अतिथिको जब हम कहीं ठहराते हैं तो उस स्थान-को स्वच्छ, सुसज्जित एवं सुन्दर कर लेते हैं; परंतु जिस गृहमें हमारी भावी पीढ़ीका आधारस्तम्भ जन्म लेता है, उस घरकी सुव्यवस्थाकी ओर हमारा तनिक भी ध्यान नहीं जाता—यह कितने दुःखकी बात है। अन्धविश्वास, रूढ़ि, अशिक्षा आदिके कारण हमारे देशमें प्रसूति-गृहके लिये प्रायः घरका वही स्थान चुना जाता है, जो सबसे उपेक्षित और निकम्मा होता है, जिसमें न प्रकाशके लिये खिड़की है, न स्वच्छता और न रहनेके लिये आराम। स्वच्छ वायुका प्रवेश तो उस घरमें होता ही नहीं। प्रसूता और बालकको शीत-उष्णसे बचानेके लिये वस्त्र आदिका भी ठीक प्रबन्ध नहीं किया जाता। भूत और चुड़ैलोंसे बच्चेको बचानेकी भावनासे प्रसूति-गृहके द्वारपर धूआँ किया जाता है, जो उस घरमें पूर्णतः फैल जाता है। इतना ही नहीं, गंदे कपड़ोंमें लिपटी हुई, मूर्खताकी मूर्ति चमारिनें आदि वहाँ धायका काम करती हैं। इन सबका परिणाम यह होता है कि नाना प्रकारके रोग माता एवं बालकको आ घेरते हैं और गर्भसे निकलते ही आवश्यकताभर शुद्ध हवा न पानेसे अक्सर बच्चे कमजोर फेफड़ेवाले हो जाते हैं और निमोनिया आदिके शिकार होकर प्रसूति-गृहसे ही यमपुरी सिधार जाते हैं। माताओं एवं बालकोंके स्वास्थ्य और जीवनका इस प्रकार ह्रास होना कितने दुःखका विषय है। बहुत-से लोगोंका कहना है कि 'प्रसूति-गृहको बद रखनेकी प्रथा प्राचीन कालसे ही चली आ रही है, अतएव उसको अपनाये रखना आवश्यक है।' उस समय न तो आजकलकी तरह घनी बस्ती थी, न विषय-भोगका इतना प्राबल्य था। उस समय ऐसे घर होते थे, जिनमें काफी सुराख रहते थे। उन सुराखोंमेंसे इतनी हवा कमरेमें स्वतः आ जाती थी कि काम चल जाता था। अतएव उस समय खिड़कियों आदिको यथासाध्य बंद रखना आवश्यक था, क्योंकि अधिक हवासे सर्दी हो जानेका भय रहता है। पर आजकल तो सीमेन्ट आदिके पक्के मकान

बनते हैं, जिनकी दीवालोंसे हवा भीतर जा ही नहीं सकती। और इसलिये बाहरसे हवाके प्रवेशके लिये रास्ता रखना नितान्त आवश्यक है।

प्रसूति-गृह बहुत ही सुन्दर, साफ, साधारण प्रकाश और हवावाला होना चाहिये। उसके लिये घरका ऐसा कमरा चुनना चाहिये, जिसकी धरतीमें नमी न हो, फर्श ऊँचा और पक्का हो, पनाला या पायखाना पासमें न पड़ता हो, द्वार पूर्व या दक्षिणकी ओर हो तथा वह पाँच-छः गज लंबा और तीन-चार गज चौड़ा हो। हवा साधारणरूपसे आवे—तेज हवाके झोंके बच्चे अथवा उसकी माके शरीरपर सीधे न लगने पावें। यदि दक्षिणकी ओर द्वार न हो तो उस ओर एकाध खिड़की अवश्य हो, क्योंकि दक्खिनी हवा अत्यन्त उपयोगी होती है। कमरा सामानसे लदा नहीं रहना चाहिये। सिवा एक या दो आवश्यक चारपाई या पलङ्गके उसमें और कुछ नहीं रहना चाहिये। जाड़ेका मौसम हो तो प्रसूति-गृहको दिनमें दो-तीन बार आवश्यकतानुसार गरम कर लेना चाहिये। पर चौबीसों घंटे अँगीठी न जलती रहे; क्योंकि आग हवामेंके आक्सिजनको, जिसकी बच्चेको फेफड़ा छोटा होनेके कारण अधिक आवश्यकता पड़ती है, खा जाती है और उसमें कार्बन आदि दूषित पदार्थ पैदा कर देती है। प्रायः देखा जाता है कि स्त्रियाँ इन बातोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण प्रसूति-गृहमें चौबीसो घंटे अँगीठी रखती हैं और उसमे धूआँ उठनेवाले पदार्थ—काठ, गोबर आदि जलाती रहती हैं। यह बहुत बुरा है। कई जगह ऐसा देखा गया है कि एक ओर अँगीठी धधकती है और दूसरी ओर किरासिन तेलकी लालटैन जलती है। तथा किंवाड़ बंद कर दिये जाते है। किरासिनका धूआँ अँगीठीके धूएँसे मिलकर ऐसी जहरीली गैस पैदा करता है कि कमरेके अंदरके सब लोग दम घुटकर मर जाते हैं।

प्रसूति-गृहके विषयमें वैद्यकशास्त्रका मत

प्रसूति-गृहको अत्यन्त स्वच्छ रखना चाहिये। उसमें किरासीन तेलकी लालटैन न जलाकर तिलके तेलका दीपक जलाना चाहिये। पूजागृहकी ही भाँति उसे धूप, दीप, चन्दन तथा सुगन्धसे सम्पन्न किये रहना उचित है। प्रसवके पहले ही उस घरमें शान्ति-पाठ एवं हवन करावे। गौ, विद्वान् ब्राह्मण, अग्नि और जलका प्रवेश करावे। गौको वहाँ मधु, अक्षत, घास और जल खिलावे। ब्राह्मणको माङ्गलिक द्रव्य देकर स्वस्तिवाचन करावे। जब गर्भिणी उसमें प्रवेश करे तो उसके स्वच्छ एवं कोमल बिस्तर और ओढ़नेका प्रबन्ध किया जाय। उस समय वहाँ बुद्धिमती साध्वी स्त्रियाँ जाकर शान्तिदायक और हर्षवर्द्धक वचन कहें, जिससे गर्भिणीको सान्त्वना एवं प्रसन्नता प्राप्त हो; विदुषी स्त्रियाँ आशीर्वादात्मक मन्त्र पढ़ें। वे कहें—'कल्याणी! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, विष्णु और प्रजापति तेरी और तेरे गर्भकी रक्षा करें। बिना कष्टके तुझे कार्तिकेयके समान तेजस्वी पुत्र प्राप्त हो, स्वामी कार्तिकेय तेरे पुत्रकी रक्षा करें।' आदि।

सुश्रुतके शारीरस्थानमें लिखा है कि सूतिकागृह-निर्माणके विषयमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके लिये यथाक्रम श्वेत, रक्त, पीत और कृष्णवर्णकी भूमि प्रशस्त है। बिल्व, वट, तिन्दुक और भल्लातक–इन चार प्रकारके काष्ठोंसे यथाक्रम उक्त चार वर्णोंके सूतिकागारमें पलंग बनावे। उस घरकी दीवार अच्छी प्रकार लीप-पोत दे। उसका दरवाजा पूर्व या दक्षिणकी ओर होगा। उस घरकी लंबाई आठ हाथ और चौड़ाई चार हाथ होगी। उसे बंदनवारसे सुशोभित करना होगा। गर्भवती स्त्रीको नवम मासमें जिस दिन साध भक्षण कराया जाता है, उसी शुभ दिनमें प्रसव-गृहका निर्माण शुरु कर देना चाहिये। यदि उस दिन प्रसूति-गृहका निर्माण आरम्भ न किया जाय तो पीछे किसी अन्य शुभ दिनमे वह घर बनाना आवश्यक है। अशुभ दिनमें सूतिका-गृह कभी भी नहीं बनाना चाहिये, आदि-आदि।

ज्योतिस्तत्त्वमे लिखा है कि जहाँ बालक होगा, वहाँ बालककी रक्षा करनेके लिये काकजङ्घा, काकमर्चिका (मकोय), कोषातकी, बृहती, यष्टिमधु (मुलहठी)–इन सब वृक्षोंकी जड़ अच्छी तरह पीसकर प्रसवस्थलपर लीप देनी चाहिये और रक्षा-मन्त्रद्वारा रक्षा करनी चाहिये।

उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट हो जाता है कि प्रसूतिका गृहके विषयमे हमारे यहाँ कितना सुन्दर विधान बताया गया है। सुश्रुतके वर्णनसे तो ऐसा ज्ञात होता है कि प्रत्येक प्रसवके समय नूतन प्रसूतिका-गृहका निर्माण करना आवश्यक है।

डाक्टरी मत

डाक्टरोंकी रायमें भी प्रसूति-गृह पूर्णतः स्वच्छ होना आवश्यक है। यदि घरकी सुव्यवस्थासे गर्भिणी शान्त, प्रसन्न और सुखपूर्वक रह सके तो उसका बहुत सुन्दर प्रभाव बालकपर भी पड़ता है। प्रसूति-गृहमें दूसरे सामान न रहने दे। उसमें धूप और वायुके प्रवेशकी सुविधा रहे। प्रसूताके लिये जो चारपाई या बिछावन हो, उसमें जूँ और खटमल आदि न रहने पावे। बिछावन आदि नया हो

तो अच्छा है। प्रसवके समय धाय या अन्य स्त्रियाँ स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहन लें, अपने हाथोंके नाखून काट लें और साबुन तथा गर्म जलसे हाथ धोकर सौरीगृहमें प्रवेश करें। बिस्तरेके सिवा सौरीगृहमें 'आयल-क्लाथ' होना चाहिये, जिससे कि मल-मूत्रको आसानीसे धोकर साफ किया जा सके। प्रसूति-गृह यथासाध्य एकान्तमें होना चाहिये। प्रसव चाहे जिस ऋतुमें हो, बच्चेके लिये सदा स्वच्छ और हल्का वस्त्र आवश्यक है। वस्त्र बहुत ढीला-ढाला होना चाहिये। प्रसूताके लिये भी साफ और ढीले वस्त्र रहने चाहिये।

प्रसूति-गृहके लिये आवश्यक चीजें

प्रसूति-गृहमें निम्नलिखित सामान पहलेसे ही तैयार रहना चाहिये—(१) खूब कसा हुआ पलङ्ग, जिसपर गुदगुदा बिछौना हो और उसपर मोमजामा बिछा हो। सिरहानेका हिस्सा ऊँचा होना चाहिये। पलङ्गके स्थानपर यदि तख्ता हो तो और भी उत्तम है। (२) पेटपर लपेटनेके लिये गर्म और मोटा कपड़ा। (३) पोंछने आदिके लिये पुराने धुले हुए बहुत-से कपड़े। (४) नार बाँधनेके लिये मोटा धागा। (५) साफ रूई। (६) गरम और ठंढा पानी। (७) बच्चेको लपेटनेके लिये एक फलालैनका टुकड़ा। (८) मीठा तेल। (९) बेसन या शुद्ध स्वदेशी साबुन। (१०) पेटमें पट्टी लपेटकर अटकानेके लिये थोड़ी आलपीनें। (११) तेज और साफ कैंची या चाकू। कैंची और धागेको एक कटोरीमें पानी डालकर उबाल लेना चाहिये, जिससे नार काटनेमें किसी प्रकारका विकार न होने पावे। यदि प्रसव रातके समय हो तो सौरीमें लालटैन न रखकर तिलके तेलका दीपक रखना चाहिये। दीपक जच्चाके सम्मुख न रखकर सिरहानेकी ओर रखना चाहिये।

प्रायः देखा जाता है कि सौरीगृहमें घरकी तथा अड़ोस-पड़ोसकी बहुत-सी स्त्रियाँ जमा हो जाती हैं और बैठकर बेकामकी बातें करती हैं। यह बड़ी खराब प्रथा है। प्रसवका समय बड़ा ही नाजुक है। जरा-सी असावधानीसे जच्चा-बच्चा दोनोंके प्राण चले जानेका भय रहता है! अतएव ऐसे समय शोर-गुल नहीं मचाना चाहिये। मन-ही-मन ईश्वरका नाम लेना चाहिये और उनका गुणानुवाद करना चाहिये। सौरीघरमें अधिक-से-अधिक वही तीन या चार स्त्रियाँ रहें, जिनसे गर्भवतीका अधिक प्रेम हो।

प्रसूति-गृहकी सफाई केवल प्रसवके समय ही आवश्यक नहीं है। प्रायः देखा जाता है कि प्रसवके समय तो काफी स्वच्छता रक्खी जाती है, किंतु बादमें प्रसूता एवं बच्चेके वहाँ मल-मूत्र त्याग करते रहनेसे उस स्थानका वातावरण बड़ा दूषित हो जाता है। अतएव ऐसी चेष्टा रखनी चाहिये कि प्रसूति-गृहमें मल-मूत्र पड़ा न रहे; उसे तुरंत उठाकर बाहर निश्चित स्थानपर फेंक देना चाहिये। जिन पात्रोंमें मल-मूत्र किया जाता हो, उनको व्यवहार करनेके बाद प्रत्येक बार पानीसे धो डालना चाहिये। यदि सम्भव हो तो फिनाइल या चूनेका पानी काममें लाना चाहिये। प्रसूता एवं बच्चेके कपड़े रक्त, मल, मूत्र आदिमें न सनने पावें। सौरी-गृहके आँगनमें कहीं रक्त आदिका दाग न रहे। गीले कपड़ेसे आँगनको पोंछकर सुखा देना चाहिये, जिससे न तो गंदगी रहे और न वहाँका वातावरण ही ठंढा होने पावे। सुबह-शाम अजवाइन, नीम, गुग्गुल आदि सुगन्धित एवं कृमि-नाशक वस्तुओंकी धूप देनी चाहिये। प्रसूति-गृहका वातावरण सात्त्विक बना रहे—इसकी पूर्ण चेष्टा रखनी चाहिये। याद रखना चाहिये कि प्रसूति-गृहके वातावरणका जच्चा एवं बच्चेके शरीर, मन एवं प्राणपर बड़ा असर पड़ता है।

सच्चरित्रता

'अपनी सन्तानोंके लिये धन-रत्नकी अपेक्षा सच्चरित्रताकी विमल सम्पत्ति छोड़ जाना ही माता-पिताका कर्तव्य है।' —प्लेटो

'जिसको दहेज कहा जाता है, उसे मैं दहेज नहीं समझता; सच्चरित्रता और संयमको ही मैं यथार्थ दहेज समझता हूँ।' —प्लाटस

'स्त्रियोंमें शीलका अभाव एक ऐसा अपराध है, जिसका मार्जन किसी भी क्रियासे नहीं हो सकता। इसके बिना उनकी सुन्दरता शोभाविहीन और चतुराई घृणास्पद हो जाती है।' —स्टील

स्त्रियोंके रोग और उनकी घरेलू चिकित्सा

(लेखक—पं० श्रीगङ्गाधरजी त्रिवेदी)

लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि सब प्रकारकी उन्नतियों-का मूल स्वास्थ्य है। स्वस्थ मनुष्य स्वयं सुन्दर रहता है। उसे कपड़े और गहने सुन्दर नहीं बना सकते। स्वस्थ मनुष्यका शरीर फुर्तीला, मन प्रसन्न और आत्मा सजग होती है। अस्वस्थको फूलकी सेज भी काँटे-सी चुभती है, वह संसारका बोझ हो जाता है। उसे साहस भी नहीं छूता और वह मौतके जंजीरमे जकड़ जाता है। अस्वस्थ नारीको पहले तो सन्तान ही नहीं होती, और होती भी है तो रोगी, दुर्बल और अल्पायु। इसलिये जिस स्त्रीको मायकेमें मा-बाप और ससुरालमें सास-ससुर और पति-पुत्रका भार न बनना हो, उसे अपने स्वास्थ्यकी तरफ पूरा ध्यान देना चाहिये। नीचे लिखे कारणोंसे नारीका स्वास्थ्य बिगड़ता है—

१ किसी प्रकारका परिश्रम न करने और दिनभर हाथ-पर-हाथ दिये बैठे रहनेसे स्वास्थ्य नष्ट होता है।

२. शृंगार-पटार करके चहारदीवारीमे बंद रहनेसे अपच, कब्जियत और मन्दाग्नि आदि रोग हो जाते हैं।

३. ठीक समयपर भोजन न करने और अत्यल्प तथा अधिक भोजन करने एवं बार-बार कुपथ्य करनेसे स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है।

४. अत्यधिक विषय-भोगमे संलग्न रहनेके कारण प्रदर आदि रोग हो जाते हैं।

स्वस्थ रहनेके लिये सबसे आवश्यक है परिश्रम करना। जिस नारीको नवेली-छबीली, तितली बनने या मोटी महिषी बनकर मसनदपर पड़े रहनेका शौक है, वह कभी तन्दुरुस्त नहीं रह सकती। अनेक स्त्रियाँ समझती हैं कि काम करना दरिद्रताकी निशानी है। जिसके पास कुबेरका भण्डार पड़ा है, वह क्यों शरीरको कष्ट दे—क्यों चक्की और जाँतेके पास जाय? बस, उनकी यही धारणा उन्हें नष्ट करती है। जो देहाती स्त्री चक्की और जाँता चलाती है, रसोई बनाती और बर्तन माँजती है, जो पानी भरती और अन्य परिश्रमके काम करती है, वह सदा स्वस्थ, सुन्दरी, भली-चंगी और तगड़ी बनी रहती है। डाक्टरोंने सिद्ध किया है कि चक्की चलानेवाली स्त्रीको अजीर्ण और क्षय रोग होते ही नहीं और जाँता चलानेसे अङ्ग-प्रत्यङ्गपर जोर पड़ता है, जिससे शरीर सुडौल होता है हड्डियाँ मजबूत होती हैं, मांस-पेशियाँ सुदृढ़ होती हैं, चित्त प्रसन्नता आती है और साहस कई गुना बढ़ जाता है। जो स्त्री केवल एकाध कपड़ा सी लेने और बेल-बूटे काढ़ लेनेको ही काफी समझती है, जो घर-बर्तन और रसोईके पास भी नहीं जाती, उसका शरीर दुबला-पतला हो जाता, उसके गाल पिचक जाते, आँखें धँस जातीं और उसका स्वभाव चिड़-चिड़ा हो जाता है। यदि ऐसी स्त्री दुबली नहीं हुई, तो बेढंगी मोटी होकर कपड़ेकी गाँठ बन जाती है। ये दोनों हालतें ही वंश-वृद्धि आदिमें खतरनाक हैं। परिश्रमी देहाती स्त्रीको जहाँ प्रसव-वेदना नाममात्रको होती है, वहाँ व्यसनासक्त और शहरी स्त्रीके लिये डाक्टर लगानेपर भी प्रसवमें असह्य कष्ट भोगना पड़ता है और कभी-कभी तो वह प्राणोंसे भी हाथ धो बैठती है।

पिता, पुत्र और पतिके साथ कुछ देरतक, शुद्ध वायुका सेवन करनेसे नारीका स्वास्थ्य ठीक रहेगा। योग्य अभिभावक न रहें और टहलनेका सुभीता न रहे,तो किसी-न-किसी तरह कुछ शारीरिक परिश्रम स्त्रीको अवश्य करना चाहिये।

प्रतिदिन नियत समयपर पति, पुत्र आदिको भोजन कराकर स्वयं भी नारीको ठीक समयपर, निश्चित मात्रामें सुपथ्यका भोजन करना चाहिये। किसी दिन कम और किसी दि[न] ज्यादा भोजन करनेकी भूल नहीं करनी चाहिये। आहारके समय और मात्रा नियत न रहनेसे कभी भी स्वास्थ्य ठी[क] नहीं रह सकता। हल्की और शीघ्र पचनेवाली चीज़ [ही] खानी चाहिये।

परंतु सबसे बढ़कर आवश्यक है संयमी जीवन बिताना। जो नारी विषयका कीड़ा बनेगी, वह सदा रोगिणी ही रहेगी जितना ही ब्रह्मचर्य नष्ट होगा, उतना ही शरीर जर्जर हो[गा] और रोगोंका अड्डा बनेगा। मासिकधर्मकी गड़बड़ी [ही] नहीं, जितने भी स्त्री-रोग हैं, उनमेंसे अधिकांश अधिक विष[य-]सम्भोगसे ही होते हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें ब्रह्मचर्य और संयमकी इतनी महिमा गायी गयी है। आस्तिक और धार्मि[क] जीवन बितानेके लिये तो संयम सुदर्शन-चक्रके समान सर्वदुःख-हारी और अमित सहायताकारी है।

प्रतिदिन कुछ समय पूजन-भजन और उत्तम ग्रन्थोंके पठनमें बितानेसे स्वास्थ्य ठीक रहता है और रोग दूर रहते हैं। साथ-साथ चित्त-शुद्धि भी होती है और जीवन संयमी बनता है। अपना आचार-विचार शुद्ध रखनेसे शरीर, मन और आत्मा—सभी स्वस्थ और सजग रहते हैं। विलासी जीवन लोक और परलोक दोनोंका सत्यानाश करता है।

इन दिनों विलायती नकल भी स्त्रियोंमें खूब चल रही है। अङ्ग-भङ्गसे नजाकत टपकायी जाती है, ऊँची एड़ीकी जूतियाँ पहनी जाती हैं, क्रीम और पाउडर लगाये जाते हैं। ओठ रँगे जाते हैं। इन बातोंने स्त्रियोंके जीवनको विषयी बनाकर उनका स्वास्थ्य रद्दी कर डाला है। नकली सौन्दर्य असली सौन्दर्यका मुकाबिला भी तो नहीं कर सकता।

पहले स्त्रियाँ संयमी और धार्मिक जीवन बिताती थीं—स्वास्थ्यपर अत्यधिक ध्यान देती थीं। यही कारण है कि वे पूर्ण स्वस्थ रहती थीं। महाराज दशरथके साथ महारानी कैकेयी युद्धमें गयी थीं। वहीं महारानी कैकेयीने महाराजाके टूटे रथके धुरेको अपने हाथसे रोककर वर प्राप्त किया था। झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाईने युद्धमें अंग्रेजोंके भी छक्के छुड़ा दिये थे। यदि स्त्रियाँ स्वस्थ रहें, तो क्या मजाल कि कोई भी उनकी ओर आँख उठाकर देख सके। माताएँ स्वस्थ रहें, तो बच्चे भी निश्चय ही तगड़े होंगे—उनका स्वास्थ्य भी शीघ्र नष्ट नहीं होगा।

स्त्रियोंको चाहिये कि वे रोज आधे घंटे तक हल्का-सा व्यायाम किया करें। बीमारी, गर्भावस्था और रजोदर्शनके समयको छोड़कर शेष दिनोंमें नीचे लिखे हल्के व्यायाम करने चाहिये—

१. सीधी खड़ी होकर और साँस खींचकर छाती फुलावे। थोड़ी देर रोककर साँस छोड़ दे। ऐसा छः बार करना चाहिये।

२. सीधी खड़ी होकर गर्दनको धीरे-धीरे कई बार दायें-बायें घुमावे।

३. दोनों पैर सटाकर एड़ियोंको ऊपर उठावे और पैरोंको तानकर रखे। इसी तरह पंजोंके बल थोड़ी दूर चले।

४. खुली हवामें मुँह बंद करके बार-बार साँसको नाकसे खींचे और छोड़े।

इन व्यायामोंको प्रतिदिन करनेसे मन प्रसन्न रहेगा, शरीरमें स्फूर्ति रहेगी, रक्त शुद्ध रहेगा, अङ्ग पुष्ट रहेंगे और रोग पास नहीं आवेगा। इससे मासिकधर्मकी गड़बड़ी दूर हो जायगी, मनकी चञ्चलता दूर होगी, निर्भीकता बढ़ेगी, चित्त दृढ़ होगा और शान्ति प्राप्त होगी।

स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिये यह भी आवश्यक है कि स्त्रियाँ गंदी चर्चा करना और गंदे गीत गाना छोड़ दें। इससे मनपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। विवाहके अवसरपर या सम्बन्धियोंके घर जानेपर, भोजनके समय, स्त्रियाँ माङ्गलिक गीतोंके स्थानपर गंदे गीत गाया करती हैं, यद्यपि यह पहलेकी अपेक्षा आजकल कम हो गया है। गंदे शब्दोंके उच्चारणसे ही मस्तक बिगड़ जाता है। शब्द और भावका घनिष्ठ सम्बन्ध है। बुरे शब्दसे बुरे भावका पैदा होना अनिवार्य है। ऐसे शब्दोंका असर बालक-बालिकाओंपर भी पड़ता है। लज्जा और नम्रताकी मूर्ति नारीका मुँहसे भद्दे शब्द निकालना बड़े कलङ्ककी बात है। जिस स्त्रीमें जितनी ही गम्भीरता, विनम्रता, सन्तोष और धैर्य रहेगा, वह उतनी ही शरीर और मनसे स्वस्थ रहेगी।

उपर्युक्त स्वास्थ्यके नियमोंके विरुद्ध जो स्त्री चलेगी, प्रायः पहले उसके मासिकधर्ममें गड़बड़ी पैदा हो जायगी। मासिकधर्म 'अति' हो जायगा, 'अल्प' हो जायगा, अनियमित हो जायगा या बंद हो जायगा। मासिकधर्मके समय सिर और पेटमें पीड़ा होगी, पेट भारी रहेगा, दस्त साफ नहीं आवेगा और प्रत्येक अंगमें व्यथा होने लगेगी। प्रारम्भमें ही इस रोगकी समुचित दवा करनी चाहिये। पुराना होनेपर इससे पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है। पौधेके उखाड़नेमें सरलता है, पेड़को उखाड़नेमें बड़ी कठिनता है।

अनियमित ऋतु

इस रोगमें बच, काला जीरा, जीरा, पीपल, सेंधा नमक, वन अजवाइन, जवाखार, चितामूल—सबको भुनकर चीनीके साथ सेवन करना चाहिये। चूर्ण महीन रहना चाहिये।

इससे लाभ न हो, तो असगन्धकी जड़ दो तोले लेकर और उसे कूटकर पावभर गायके दूध और सेरभर पानीमें पकाना चाहिये। जब सारा पानी जल जाय तब उतारकर ढाँक लेना चाहिये। अन्तको उसमें दो तोले गायका घी डालकर पीना चाहिये।

अधिक रजःस्राव

यदि अधिक रजःस्राव हो तो (१) आधा तोला असगन्धका चूर्ण, आधे तोले खाँड़के साथ, प्रातःकाल फाँककर ऊपरसे एक घूँट ठंढा पानी पी लेना चाहिये। (२) दूबका रस दो तोले, आधा तोला देशी चीनीके साथ सुबह, शाम और रातको सोनेके समय लेना चाहिये। (३) विशल्यकरणीके पत्तोंका रस एक तोला या अँडूसेकी पत्तियोंका रस दो तोले चीनीके साथ सुबह-शाम पीना चाहिये।

प्रदर

विरुद्ध आहार, मद्य-पान, अजीर्ण, अतिविषय-भोग, शोक, गर्भपात और दिवाशयन आदिके कारण प्रदर रोग होता है। (१) लालचन्दन, बेलकी गिरी, चिरायता, दारु-हल्दी, रसौत और मूता दो-दो तोले लेकर आध सेर जलमें पकाना चाहिये। जब जल आधा पाव रह जाय, तब उतारकर छान लेना चाहिये। इस काढ़ेको मधुके साथ सेवन करनेसे प्रदर रोग अच्छा हो जाता है। (२) अशोक-मूलकी छालको सोलह तोले दूध और चौंसठ तोले पानीमें पकाना चाहिये। सोलह तोले दूध शेष रहनेपर उतार दे। इसका सेवन करनेसे प्रदर शान्त होता है। (३) सूपारीका फूल, पिस्तेका फूल, मजीठ, सिरपालीका बीज तथा ढाका गोंद चार-चार माशे लेकर बारीक चूर्ण बनाना चाहिये। प्रतिदिन प्रातः पानीके साथ फाँकनेसे सभी प्रकारके प्रदर शान्त हो जाते हैं।

श्वेतप्रदर

(१) सेमलकी मुसली, सफेद मुसली, खिरैटीकी जड़ और भिण्डीकी जड समान भाग लेकर कूटना चाहिये। फिर कपड़ेसे छानकर सबके बराबर मिश्री मिला देनी चाहिये। प्रातः-सायं फाँककर ऊपरसे गायका दूध पीनेसे श्वेतप्रदर नष्ट हो जाता है। (२) पुराने चावलके पानीमें कैथकी जड पीस-छानकर शहद और मिश्री मिलाकर पीनेसे श्वेतप्रदर दूर हो जाता है। (३) दूध एक सेर, जवा फूल पाँच एक मिट्टीकी नयी हाँडीमें डालकर सरवेसे हाँडीका मुँह ढक दे और रोगिणी भीगे कपडे तथा भीगे बालोंकी अवस्थामें खड़की आगसे उसकी खीर पका ले और बासी पेट उसे खा ले। ऐसा करनेसे एक ही दिनमें श्वेतप्रदर मिट जाता है। (४) अच्छी जावित्री पानके साथ दिनभरमें चार-पाँच बार खानेसे एक सप्ताहमें रोग अच्छा होता है। (५) ठंडे जलमें कुछ नमक मिलाकर उसमें प्रतिदिन कुछ समय तक कमर डुबोकर बैठनेसे भी लाभ होता है।

इस रोगमें प्रसव-द्वारको साफ रखना कर्तव्य है। ठंडे पानीका डूस लेना चाहिये। आध सेर छाछको दो सेर पानीमें मिलाकर उसका डूस लेना तो बहुत ही लाभकारक है।

रक्तप्रदर

(१) आमकी गुठलीका चूर्ण करके घी, चीनी, मैदा मिलाकर और सबका हलुवा बनाकर खानेसे रक्तप्रदर अच्छा हो जाता है। (२) लाख एक तोला, अशोककी छाल तीन माशे, मोचरस छः माशे— सबको मिलाकर आध सेर पानीमें पकाना चाहिये। जब पानी आधा पाव रह जाय, तब उतारकर छान ले। ठंडा हो जानेपर आध पाव गायके दूध और आधी छटाँक मिश्री डालकर पीनेसे रक्तप्रदर शान्त हो जाता है। (३) कुकरौंदाकी पत्तियोंका रस एक तोला चीनीके साथ सुबह-शाम लेनेसे आराम होता है। (४) असली नागकेसर आठ आना भर ठंडे जलके साथ दोनों समय लेनेसे भी बहुत लाभ होता है।

प्रसूति-रोग

प्रसवके बाद अनेक स्त्रियाँ बकवाद करने लगती हैं। उनका शरीर काँपने लगता है, ज्वर हो आता है, प्यास लगती है। इसका नाम प्रसूति-रोग है। बल और मासकी क्षीणतासे ही यह रोग ज्यादा होता है। बेलछाल, गभारीछाल, पाटलछाल, अरलूछाल, अरणीछाल गोखरूका पंचाग, छोटी कटेलीका पंचाग, बड़ी कटेलीका पंचांग, पृष्टपर्णीका पचाग और शालपर्णीका पंचाग दशमूल कहा जाता है। सबको समान भागमें लेकर और क्वाथ (काढा) बनाकर और उसे मन्दोष्ण करके गोघृतके साथ सेवन करनेसे प्रसूति-रोग शीघ्र अच्छा हो जाता है। असलमें प्रसूता स्त्रीको दस दिनोंतक रोज ही दशमूलका क्वाथ देना चाहिये।

एक तोला दशमूल, सोलह तोले गोदुग्ध और चौंसठ तोले पानीके साथ, पकाना चाहिये। जब केवल दूध रह जाय, तब उसे छानकर उसमें मिश्री मिला देनी चाहिये। इसका पान करनेसे प्रसूति-रोग दूर हो जाता है।

पञ्चमूलादि (शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और चिरायता) को समान भाग लेकर और क्वाथ बनाकर उसमें सेंधा नमक मिला लेना चाहिये। कुछ-कुछ गरम रहनेपर ही पीनेसे प्रसूति-रोग शान्त हो जाता है।

कब्ज

यदि आयुर्वेदिक नियमोंके अनुसार गर्भिणीको रक्खा जाय, तो प्रसूति-रोग होनेकी सम्भावना कम हो जाती है। गर्भिणीको कब्ज हो जाय तो हर्रे और मुलहठीका चूर्ण एक-एक चम्मच गरम जलके साथ सोनेके समय ले लेना चाहिये या दो तोला रेडीका तेल चीनी और गायका दूध मिलाकर पी लेना चाहिये। इससे कोठा भी साफ हो जाता है और गर्भिणीको कोई हानि भी नहीं पहुँचती।

छातीमें दर्द होनेपर या जलन मालूम पड़नेपर चिरायतेका

अर्क पीना लाभदायक है। पेट, जाँघ और पेड़पर दर्द होनेपर नारियलका तेल गरम करके धीरे-धीरे मलना चाहिये।

गर्भिणीके शरीर-दर्दपर विषगर्भ तैल और वायुप्रकोप या चर्मरोगपर मरीच्यादि तैलकी मालिश सर्वोत्तम है। आवश्यक होनेपर किसी वैद्यसे राय लेकर व्यवहार करना चाहिये।

जिस स्त्रीको गर्भ ही न रहता हो, उसको आमके गूदेको पानीमें पीसकर मासिकधर्मके बाद इक्कीस दिन पिलानेसे गर्भ रह जाता है।

गर्भिणीको सदा शरीर शुद्ध रखना चाहिये और भोजन बराबर हल्का करना चाहिये। उसे सदा पतिदेवका ध्यान करना चाहिये। भगवान् रामचन्द्र और भगवान् कृष्णचन्द्र आदि अवतारों और देव-देवियोंका जितना ही भजन-स्मरण-ध्यान गर्भिणी करेगी, उतना ही उसका स्वास्थ्य ठीक रहेगा और उतनी ही उसकी सन्तान दिव्य-पवित्र होगी। सूतिकागारको पूजा-गृहकी तरह साफ, स्वच्छ और सुगन्धमय रखना चाहिये।

सुप्रसव

यदि प्रसव होनेमें ज्यादा विलम्ब हो, तो केलेकी जड़ गर्दनमें बाँध दे। यदि बच्चा पेटमें ही मर गया हो, तो आधा या पौन तोला गोबर गर्म पानीमें घोलकर पिला देनेसे मरा हुआ बच्चा बाहर निकल आवेगा।

हाथमें चुम्बक पत्थर रखनेपर गर्भिणीको प्रसव-पीड़ा नहीं होती। सवा तोले अमलतासके छिल्केको पानीमें औटाकर और शक्कर मिलाकर पीनेसे भी पीडा कम हो जाती है। मनुष्यके बाल जलाकर और उसमें गुलाब जल मिलाकर गर्भिणी-के तलवेमें मलनेसे भी बड़ा लाभ होता है। कण्टकारीकी जड़-को हाथ-पैरमें बाँध देनेसे और अतसी तथा पाटलाको धारण करनेसे शीघ्र प्रसव होता है। तिल और सरसोंके तेलको गरम कर गर्भिणीके पार्श्व, पीठ, पसली आदि अङ्गोंपर धीरे-धीरे मलनेसे भी शीघ्र प्रसव होता है। कूट, इलायची, मीठा वच, चित्रक, कंजा, कलिहारी आदिका महीन चूर्ण बनाकर नस्य लेनेसे भी प्रसव शीघ्र होता है। फूल न आये हों, ऐसी इमलीके छोटे वृक्षकी जड़ सिरके सामनेके बालोंसे बाँध देनी चाहिये। इससे बिना तकलीफके सहज प्रसव हो जाता है; परंतु सन्तान प्रसव होनेके साथ ही उसी क्षण उन बालोंके समेत उसे कैंचीसे काट देना चाहिये। यह प्रयोग परीक्षित है।

इसके अतिरिक्त ज्योतिस्तत्त्वके अनुसार यदि गर्भवती स्त्री प्रसव-वेदनासे छटपटा रही हो तो वटके पत्तेपर निम्नलिखित सुखप्रसव मन्त्र तथा चक्र लिखकर उसके मस्तकपर रख देनेसे सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है।

मन्त्र

अस्ति गोदावरीतीरे जम्भला नाम राक्षसी।
तस्याः स्मरणमात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत्॥

यन्त्र

१	८	९	१४
११	१२	३	६
७	२	१५	८
१३	१०	५	४

थनैला

प्रसव हो जानेके बाद किसी-किसी स्त्रीके स्तनमें गाँठ पड़ जाती और वह पक जाता है—इसे 'थनैला' रोग कहा जाता है। नागरमोथा और मेथीको बकरीके दूधमें पीसकर लगाने-से या अरंडके पत्तोंके रसमें कपडा भिगोकर बार-बार लगानेसे यह रोग अच्छा हो जाता है। सहिजनके पत्ते पीसकर लेपन करनेसे भी लाभ होता है। कचनारकी छाल पीसकर लेप करनेसे स्तनकी सूजन अच्छी हो जाती है। ज्यादा दर्द हो तो घी-मोम मिलाकर चुपड़ देना चाहिये।

स्तनमें दूध न उतरे तो मुनक्का पीसकर घीमें मिलाकर खानेसे दूध उतरेगा और बढ़ेगा भी।

स्त्रियोंके खास-खास रोग ये ही हैं। साधारण रोग तो स्त्री-पुरुष सबको होते हैं। इन रोगोंकी संख्या भी अगणित है, इसलिये ऐसे रोगोंके लिये किसी योग्य वैद्यके पास जाना चाहिये।

स्त्रीके आदर्श गुण

सच्चरित्रता द्वारा ही स्त्री-जाति पुरुषके लिये सबसे अधिक सम्मानयोग्य बन जाती है। सत्य-वादिता, स्वामिभक्ति और अनन्य निष्ठाके साथ-साथ सच्चरित्रता प्रेमास्पदका विशेष गुण है, जो उसे सबसे अधिक प्रियपात्र बना देता है।—एडिसन

शिशुरोग और उनकी घरेलू चिकित्सा

बाल्यावस्था जीवनकी आधारशिला है। उसपर जीवनका विशालकाय भवन निर्मित होता है। नींवकी दृढ़तापर जैसे भवनकी दृढ़ता अवलम्बित है, वैसे ही बाल्यावस्थापर जीवन। इस प्रकार बाल-स्वास्थ्य और बाल-चिकित्साका प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है; किंतु दुःखका विषय है कि इस ओर देशवासियोंका जितना ध्यान जाना चाहिये, उतना नहीं गया है। हमारी माताएँ और बहिनें तो इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नके विषयमें प्रायः बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। उनमें इस सम्बन्धमें अभीतक इतना अज्ञान भरा हुआ है कि जहाँ बच्चा बीमार हुआ कि वे नजर या टोना लग जाने आदिकी आशङ्का करने लगती हैं और चिकित्साका नामतक न लेकर झाड़-फूँक आदिकी शरण लेने लगती हैं। भाग्यवश या दैवयोगसे कोई बच्चा अच्छा हो गया तो ठीक है; नहीं तो रोगके साथ उसकी जीवनलीला तो समाप्त है ही। यही कारण है कि हमारे देशमें प्रति सौ बच्चोंके पीछे साठ बच्चे बारह वर्षकी अल्प आयुके पूर्व ही अपनी जीवनलीला संवरणकर चल बसते हैं। और जो बचते हैं, उनका स्वास्थ्य भी पचास प्रतिशत नष्ट हुआ मिलता है तथा एक-न-एक भयङ्कर रोग उनके शरीरमें काठमें घुनकी भाँति लगा ही रहता है। इसमें सुधार तभी संभव है, जब देशके लोग और विशेषकर हमारी माताएँ-बहिनें बाल-स्वास्थ्य और बाल-चिकित्साके सम्बन्धमें पूर्ण शिक्षिता हो जायँ। पुराने जमानेकी बूढ़ी स्त्रियाँ बच्चोंके घरेलू इलाजोंको जानती थीं। उन्हें बात-बातमें डाक्टर-वैद्योंको बुलाकर व्यर्थ धनव्यय, अपवित्र दवाइयोंके सेवनसे धर्मनाश नहीं करना पड़ता था और न कठिन परतन्त्रताका दुःख ही उठाना पड़ता था। समयपर सस्तेमें इलाज हो जाता और सब प्रसन्न रहते।

बच्चोंकी बीमारीके कारण

बच्चोंकी बीमारीके प्रधानतः दो कारण हैं—(१) माताका बच्चेकी ओरसे लापरवाही करना और (२) माताका आचार-विचारहीन रहना, स्वास्थ्य एवं साधारण घरेलू इलाजसे तथा दवाओंसे सर्वथा अनभिज्ञ होना।

बच्चोंकी प्रकृति बड़ी नाजुक होती है। थोड़ी-सी भी अस्वच्छता, दुर्गन्ध तथा तनिक-सी सर्दी-गर्मीका अधिक असर उन्हें हानि पहुँचा देता है। हमारे यहाँ प्रसूतिका-गृहकी सफाईपर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। प्रसूतिकाको घरके सबसे गंदे कपड़े ओढ़ने-बिछानेको दिये जाते हैं, मैली-कुचैली स्त्रियाँ प्रसूतिकाके पास काम करनेके लिये रक्खी जाती हैं तथा मल-मूत्रको समयानुसार उठानेका कोई ठीक प्रबन्ध नहीं होता। इन सब बातोंका परिणाम यह होता है कि प्रायः प्रसूतिगृहमें ही बच्चेको एक-न-एक रोग आ घेरता है। अतएव प्रसूतिकागृह आदिकी सफाईपर पूरा ध्यान देना चाहिये।

दूसरे, बालक माताके दूधपर ही अधिकतर रहता है। अतएव माताके शरीरके अच्छे-बुरे पदार्थ दूधके साथ बच्चेके शरीरमें पहुँचते रहते हैं। इस प्रकार जहाँ माताने आहार-विहारमें गड़बड़ी की कि उसके शरीरमें विकार उत्पन्न होकर बच्चेको भी वह रोगी बना डालता है। अतः जबतक बच्चा माताका दूध पीता है, तबतक यदि उसके शरीरमें कभी कोई रोग दिखायी पड़े तो उसकी दवा करनेके पहले माताकी दवा करनी चाहिये। यदि बच्चेको दवा देना आवश्यक ही हो तो माताको भी साथ-साथ दवा देनी चाहिये, क्योंकि रोगका मूल कारण तो माताके शरीरमें है और यदि वह नष्ट न होगा तो बच्चेके शरीरके दूषित अवयव नष्ट होनेपर भी माताके दूधके साथ और नवीन दूषित पदार्थ उसमें आ जायँगे और उसे रोगी बना डालेंगे। इस प्रकार माताओंपर दोहरी जिम्मेवारी रहती है—एक अपने स्वास्थ्यकी और दूसरी बच्चेके स्वास्थ्यकी। अतएव उन्हें अपना आहार-विहार खूब संयमित रखना चाहिये।

बाल-रोग-निदानकी कठिनता

सुख और दुःखकी अनुभूतियोंसे बच्चेका जीवन प्रारम्भ होता है, जिन्हें वह हँसकर और रोकर प्रकट करता है। हमारी तरह वह अपने मनोभावोंको वाणीद्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। अतएव बच्चेके रोगका निदान करना बड़ी बुद्धिमानीका काम है। साधारणतः बच्चेकी तकलीफको जाननेका एक ही साधन है। बालकको जब किसी तरहकी तकलीफ होती है तो वह रोता है, चिल्लाता है या अपने बदनको पटकता है। पर इसमें भी सावधानीकी आवश्यकता है। बच्चेको ऐसा करते देखकर तुरंत दवा-दारूकी फिक्रमें नहीं लग जाना चाहिये। कभी-कभी जूँ, खटमल आदिके काटनेसे भी बालक बुरी तरह रोने लगता है। अतः माताको सबसे पहले देखना चाहिये कि बच्चेके कपड़ोंमें या उसकी चारपाईपर जूँ, चींटी आदि तो नहीं आ गयी हैं, जो बालकको काट रही

हैं। इनमेंसे यदि कोई बात न हो तो समझ लेना चाहिये कि बालक बीमार है। बालकोंकी बीमारीका अधिकतर कारण पेटका रोग होता है। अतः सबसे पहले बच्चेके पेटपर ध्यान देना चाहिये। यदि बालक बारंबार पैरोंको पेटकी ओर समेटे और पेटको दबानेसे खुश न हो, बराबर रोता रहे, तो समझना चाहिये कि उसके पेटमें दर्द है। सोकर उठनेके बाद यदि बालक जीभ निकाले, इधर-उधर सतृष्ण दृष्टिसे देखे और माथा हिलाये तो समझना चाहिये कि भूखा है। जहाँ पीड़ा रहती है, वहाँ बच्चा बार-बार हाथ ले जाता है और दूसरेके वहाँ छूनेपर रोता है। यदि बालकके मस्तकमें पीड़ा होती है तो वह आँखें मूँदे रहता है और रोता है। गुदामें दर्द होनेपर बच्चेको प्यास अधिक लगती है और कभी-कभी साधारण-सी मूर्च्छा-सी आ जाया करती है। मलके कोठेमें दर्द होनेपर मल मूत्र रुक जाता है, मुख धुँधला पड़ जाता है, साँस अधिक चलती है और आँतोंसे आवाज होती है। इस प्रकार बच्चेके संकेतोंद्वारा उसकी तकलीफको समझना चाहिये और बादमें औषध देनी चाहिये। बिना रोगका अच्छी प्रकार निदान किये दवा देना आरम्भ कर देना मृत्युका आवाहन करना है।

बच्चोंकी औषधका परिमाण

औषधकी मात्रा एक वर्षके बच्चोंके लिये एक रत्ती और दो वर्षके बच्चोंको दो रत्ती और इसके ऊपरकी अवस्थावालोंको एक माशा औषधकी मात्रा देनी चाहिये। बच्चोंको औषध माके दूधमें अथवा शहदमें घिसकर दी जाती है।

(१) जन्मते ही दस्त होनेका उपाय

जन्म लेते ही बालकको दस्त होता है, जिससे गर्भावस्थाका इकट्ठा हुआ मल निकल जाता है। यदि यह दस्त न हो तो बालक रोगग्रस्त हो जाता है। अतएव इसपर विशेष ध्यान देना चाहिये। यदि जन्म लेते ही बच्चेको स्वतः ही दस्त न हो तो माताको चाहिये कि वह उसे स्तन पिलाये। दूध पीनेसे अवश्य दस्त हो जायगा। यदि इससे भी दस्त न हो तो शुद्ध रेंड़ीके तेलकी पाँच-सात बूँदें शहदमें मिलाकर बालकको चटा देनी चाहिये। इससे अवश्य ही दस्त हो जायगा।

(२) नाभि पक जानेपर

बहुधा नार काटनेवालीकी असावधानीसे बच्चेकी नाभि पक जाती है। ऐसी अवस्थामें (१) मोमका मलहम कपड़ेपर लगाकर नाभिपर रख दे। (२) कपड़ेको कडुवे या नारियलके तेलमें भिगोकर नाभिपर रख दे। (३) यदि सूजन आ गयी हो तो पीली मिट्टीके एक ढेलेको आगमें गरम करके उसके ऊपर दूध डाले और उसका बफारा नाभिपर दे। (४) अथवा कपड़ा गरम करके सेक दे। (५) नाभिसे खून बहता हो तो साफ कपड़ेको जलाकर उसकी राख लगा दे। (६) घाव होनेपर कपड़ेकी राख, हल्दीका चूर्ण मिलाकर लगा दे या नीमकी पत्तियोंको गायके घृतमें तलकर उन्हे पीसकर लगा दे।

(३) आँखके रोग

(अ) आँखका आना—

बालककी आँख दुखनेके कई कारण होते हैं—कभी सर्दी, कभी गर्मी, कभी माताकी आँख दुखनेसे तथा कभी दाँत निकलते समय उनकी पीड़ासे। दाँतोंके समय जो आँख दुखती है, वह जबतक दाँत नहीं निकल चुकते तबतक दुखती रहती है और कठिनतासे अच्छी होती है। उसका यत्न यह है कि (१) आँवला और लोदको गौके घीमें भूनकर पानीमें पीस ले और आँखोंपर चुपड दे। (२) घीकुआरका रस आँखोंमें टपका दिया जाय। (३) अमचूरको लोहेपर पीसकर आँखोंपर लेप कर दे। (४) लालचन्दन, मुलहठी, लोद, चमेलीके फूल तथा गेरूको पीसकर नेत्रोंपर लेप करनेसे भी पीडा बद हो जाती है। (५) बकरीके दूधका खोवा आँखोंपर बाँधा जाय।

सर्दीसे आँख दुखनेपर—कानमें कडवा तेल डालकर पैरोंके तलवोंमें भी थोड़ा तेल मल दिया जाय।

गर्मीसे आँख आनेपर—(१) नीमकी कोमल पत्ती पीसकर टिकिया बना ले और कोरे घड़ेपर चिपका दे। रातको या दोपहरके समय उसे आँखोंपर बाँधे। (२) गेरूको पानीमें घिसकर उसमें रूई भिगो दे और उसे आँखोंपर बाँधे।

यदि आँखोंमें कीचड़ जमता हो और सोकर उठनेके बाद बालककी आँखें जल्दी नहीं खुलती हों तो त्रिफलाके जलसे उन्हें धोना चाहिये।

बालककी आँख दुखनेके समय उसे दूध पिलानेवालीको खट्टा तथा नमकीन आहार छोड देना चाहिये। चनेकी कोई चीज नहीं खानी चाहिये।

(आ) आँखका सूजना—

यदि बालककी आँखें सूज गयी हों तो हर्रे, फिटकरी, रसौत—इन तीनोंको तीन-तीन माशे और अफीम दो माशे लेकर एकमें पीस डाले और आगमें गर्मकर पलकोंपर चढ़ा दे।

पुरानी इमलीका छिलका तथा चीया निकालकर साफ कर डालना चाहिये और चार भाग पानीमें भिगो देना चाहिये। दो घंटे इसी प्रकार भीगी रहनेके बाद उसे मलकर छान ले। फिर उसमे एक-एक भाग फिटकरी और अफीम डालकर लोहेके बर्तनमें पकावे। गाढा हो जानेपर उतार ले और ऑखोंपर उसीका लेप चढावे।

एक छटाक साफ जलमे एक रत्ती तूतिया मिलाकर सुबह-शाम ऑख धो देनी चाहिये। इससे ऑखोंके तमाम रोग अच्छे होते हैं।

(इ) आँखमें फूली पड़ना—

चिड़चिड़ेकी जडका रस शुद्ध शहदमें मिलाकर ऑखोंमे अञ्जनकी तरह लगानेसे फूली कटकर ऑखकी ज्योति ठीक हो जाती है। इस अञ्जनको फूली न कटनेतक बराबर लगाते रहना चाहिये।

(ई) आँखमे कुछ पड़ जाना—

यदि ऑखमें कुछ पड जाय—जैसे धूल, किरकिरी आदि, तो गरम जलकी धारासे ऑखोंको साफ कर देना चाहिये। अथवा एक बूँद रेडीका तेल डालकर ठडे पानीकी पट्टी बॉध देनी चाहिये।

(४) कानके रोग

(१) बरोह और काली मिर्चको पीसकर गरम कर ले, गुनगुना रहनेपर किसी कपड़ेपर रखकर कानमे निचोड दे। दो-तीन बार डालनेसे कानका दुखना बद हो जाता है। यदि बहता भी हो तो नीमके पानीसे धोकर इसे टपकाना चाहिये। बरगदकी डालियोंमे जो जटाकी तरह लटका रहता है, उसका नाम बरोह है। (२) नारियलका तेल डालनेसे भी पीड़ा शान्त हो जाती है। (३) स्त्रीके दूधमे रसौतको घिसकर फिर शहद मिलाकर डालनेसे कानके सब रोग दूर हो जाते हैं। (४) भेडका मूत्र, सेंधा नमक और नीमके पत्ते तिलके तेलमें पकावे। जब तीनों दवाइयॉ जल जायँ, तब उस तेलको शीशीमें रख ले और कानमे डाल दिया करे। (५) मेथीको पानीमें पकाकर वही पानी कानमे डालनेसे कानका दर्द ठीक हो जाता है। (६) आमके पीले पत्तेको तेल चुपडकर आगपर सेंके और उसका रस कानमें निचोड़े। (७) यदि कान बहता हो तो पहले नीमकी पत्तीको उबालकर गरम पानीसे धोवे, फिर उसमें समुद्रफेन डाले। अथवा भँगरैयाका रस या सुदर्शनकी अथवा गेंदेकी पत्तीका रस गार दे। (८) यदि बालकके कानमें कोई कीड़ा घुस जाय तो मकोयके पत्तेका रस गारकर कानमें डाले।

(५) बहरापन

यदि किसी कारणवश कानसे कम सुनायी देता हो तो सफेद कत्था पीसकर खूब महीन कपड़ेमें छान डाले और गरम पानीमें उसे घोलकर शीशेकी पिचकारीद्वारा उसे कानमें डाले। थोडी देरके बाद फिर उसे बाहर खींच ले और नीमके पानीसे कान साफ कर डाले।

(६) नाकसे रुधिर जाना

यदि नाकसे खून जाता हो तो (१) ताजी प्याज सुँघावे। (२) सफेद मिट्टीमें खसका इत्र मिलाकर उसे पानीमें भिगोकर सुँघावे। (३) त्रिफलाका सेवन करावे। (४) शंखपुष्पी या कौड़ेनीको मिर्चके साथ पीस छानकर पिलावे। (५) फिटकरीका पानी नाकसे सूँघे।

(७) गाल फूलनेपर

बालकके गाल फूल जानेपर—(१) गोबरौली मिट्टी गरम पानीमें पकाकर बालकके गालपर लगावे। (२) राई अथवा धतूरेके बीजको पीसकर गरम करना चाहिये और उसे गालपर चढ़ा देना चाहिये।

(८) घाँटीका चढ़ जाना

बहुधा बालकोंकी घॉटी बढ जाती है, जिससे उन्हें दूध पीनेमे पीडा अनुभव होती है। चतुर धायको चाहिये कि घॉटीको मुखमें अँगुली देकर ठीक कर दे। घॉटी ऊपर उठाते समय चूल्हेकी राख और काली मिर्च पीसकर अँगुलियोंपर लगा ले तथा मुलतानी मिट्टीको सिरकेमे पीसकर तलुवेपर धर दे अथवा माजूफलको सिरकेमें घिसकर अँगुलीसे घॉटीको उठाये। बालकको तथा उसकी माताको गरम वस्तु खानेको न दे।

(९) होठ फटनेपर

(१) घीमें नमक मिलाकर दिनमें दो-तीन बार नाभिमें लगाना चाहिये।

(२) तिलके तेलको या गुनगुने घीको होठोंपर लगाना चाहिये।

(३) तरबूजके बीजको पीसकर होठोंपर लगाना चाहिये।

(१०) मुख पकना

मुख पकनेपर चमेलीके कोमल पत्ते और फूलको शहद-में मिलाकर मुखमें लगावे। अथवा चमेलीके पत्ते और फूल डालकर पानीको औटाया जाय और बादमें जलको ठंढा करके उससे बालकको कुल्ला कराया जाय।

(११) दाँत निकलना

यद्यपि यह कोई रोग नहीं है, किंतु इसमे बच्चेको काफी पीड़ा होती है तथा बहुधा वह अतिसार, ज्वर आदिका शिकार हो जाता है। अतएव इसपर भी विचार करना आवश्यक है। जब रोते समय बालकके गालोंका रंग लाल हो जाया करे, तब समझना चाहिये कि शीघ्र ही दाँत निकलनेवाले हैं। दाँत निकलनेके लिये सरल उपाय यह है कि शहदमें सुहागा, नमक अथवा सोरा पीसकर मिलावे और दिनभरमें कई बार मसूड़ोंपर लगा दिया करे। यह याद रहे कि दाँत निकलनेका समय पाँचवें महीनेके बाद आता है। मुलहठी-के डंठको छीलकर बालकको पकड़ा दे और उसे चूसने दे। इससे भी बच्चेको आराम मिलता है और दाँत जल्द निकल आते हैं। दाँत निकलते समय बालकोंका आहार घटा देना चाहिये; क्योंकि उस समय उनकी जठराग्नि मन्द पड़ जाती है और नाना प्रकारके रोगोंकी सम्भावना रहती है।

(१२) पसली उठना

पसलीका रोग दो प्रकारका होता है—(१) मलके दोषसे अर्थात् दस्त ठीक तरहसे न आनेसे ज्वर और खाँसी आने लगती है। इसके लिये साधारण दस्त लगानेवाली दवाएँ—जैसे अमलताशका गूदा, मुनक्का या बनफ्सा देकर दस्त कराना चाहिये। जमालगोटा या सनाय कभी नहीं देनी चाहिये। (२) दूसरे प्रकारका दर्द कफके कारण होता है। इसमें बुखारके साथ-साथ साँस भी फूलता है। इसकी दवा बड़ी सावधानीसे करनी चाहिये।

(१३) खाँसी

यह कई प्रकारकी होती है—खाँसी, कुकुरखाँसी, जुकाम-की खाँसी, सर्दीकी खाँसी आदि। (१) अनारका छिलका और नमक पीसकर चटावे। (२) वंशलोचनकी बुकनी शहदमें मिलाकर चटावे। (३) अतीस, नागरमोथा तथा मुलहठीकी बुकनी बनावे और तीनोंकी बराबर मात्रा शहदमें मिलाकर चटावे। (४) पानके रसमें एक या दो रत्ती जायफल घिसकर दे। (५) सूखी खाँसीमें मुलहठीका सत मुखमें डालकर कुछ देर रक्खे, अथवा बादामकी गिरी पानीमें घिसकर चटावे। (६) यदि ज्वर, खाँसी, अतिसार तीनों एक साथ हों तो काकड़ासिंगी, पीपल, अतीस और मोथाको कूटकर बुकनी बनावे और इनकी बराबर मात्रा शहदमें मिलाकर चटावे। (७) कबाबचीनी और मिश्री समान-समान लेकर पीस ले और उस चूर्णको अँगुलीसे शिशुकी जीभपर लगा दे। (८) छातीपर पुराना घी या कपूर मिला हुआ सरसोंका तेल मालिश करनेसे भी खाँसी मिटती है।

(१४) सर्दी या जुकाम

यदि बच्चेको सर्दी लग जाय और नाकसे पानी जाने लगे तो (१) नाककी हड्डी, सिर और कनपटीको सेंकना चाहिये। (२) राईको कूँच डाले और उसे पानीमें डालकर आगपर चढ़ा दे। जब पानी पक जाय तो सोते समय बालकके पैर गुनगुने पानीसे धोकर उनमें मोटे ऊनी मोजे पहना दे। (३) यदि बच्चा माताका दूध पीता हो तो माताको बाजरेके आटेका हलवा खिलाना चाहिये या इसी तरहके अन्य गरम पदार्थका सेवन कराना चाहिये। (४) अवस्थानुसार तुलसीके २, ४, ६, ८ पत्ते दूधमें पकाकर तथा उसे छानकर पिलाना चाहिये। (५) यदि सर्दीके कारण ज्वर भी हो गया हो तो तीन तुलसीकी पत्ती और तीन गोल (काली) मिर्च मिलाकर पीसे और उसे जलमें घोलकर आगपर रख दे। जब उबाल आ जाय तो छानकर थोड़ी मिश्री मिलाकर पिला दे। (६) रातके समय पैरोंके तलुओंमें गरम कड़वा (सरसोंका) तेल लगा दे। (७) पाँच-छः तुलसीपत्रोंका रस शहदके साथ मिलाकर चटा देनेपर या एक-दो अडूसेके पत्तोंका रस शहदके साथ जीभपर लगा देनेपर सर्दी-खाँसीमें बहुत लाभ होता है।

(१५) ज्वर

यदि बालकको ज्वर आता हो तो—

(१) नागरमोथा, हर्रे, नीमकी छाल, परवल और मुलहठी—इनका काढ़ा बनाकर पिलावे। यह काढ़ा बालकोंको हर तरहके ज्वरमें लाभ करता है।

(२) गिलोयका सत शहदमें मिलाकर चटावे।

(३) मिश्री और शहदमें कुटकी मिलाकर चटावे तो अफारासहित दारुण ज्वर शीघ्र ठीक हो जाता है।

(४) कुटकीको जलमें पीसकर शरीरमें उसका लेप करनेसे कैसा ही ज्वर हो, शीघ्र शान्त होता है।

(५) पद्माख, नीमकी छाल, धनिया, गिलोय, लाल चन्दन—इनका काढ़ा पिलानेसे बालकका त्रिदोष-ज्वर दूर हो जाता है। बच्चा यदि माताका दूध पीता हो तो यह काढ़ा माताको पिलावे।

(६) गिलोयको आठ पहरतक जलमें भिगो देवे, फिर घोंटकर पिलानेसे बालकोंके सब प्रकारके ज्वर दूर हो जाते हैं।

(७) मुलहठी, शहद, वंशलोचन, धानकी खील, रसौत, मिश्री—इनका अवलेह बालकको देनेसे सब प्रकारके ज्वर ठीक होते हैं।

(८) शालपर्णी, गोखरू, सोंठ, नेत्रबाला, छोटी करेली-की जड़, गिलोय, चिरायता—इनका काढ़ा बनाकर बालकको तथा उसकी माताको (यदि बालक उसका दूध पीता हो तो) पिलावे। इससे वात-ज्वर जाता रहता है और जठराग्नि बढ़ती है। लघु पञ्चमूलका काढ़ा बालकको पिलानेसे भी वातज्वर ठीक होता है। नागरमोथा, हर्रेकी छाल, नीमकी छाल, पटोलकी छाल—इनका काढ़ा शहद मिलाकर पिलानेसे भी वातज्वरको लाभ होता है।

(९) यदि ज्वर हो, खाँसी हो, कै होती हो और साथ ही साँस भी फूलता हो तो नागरमोथा, पीपल, अतीस तथा काकड़ाशींगीकी बुकनी शहदमें चटावे। यदि खाँसी तेज हो तो जवासा मिला देना चाहिये। यदि दस्त अधिक आते हों तो नागरमोथाकी जगहपर धनिया मिला देना चाहिये।

(१०) यदि मलेरिया ज्वर हो तो अतीसकी बुकनी तुलसीके रसमें देनी चाहिये।

(११) यदि बालकका ज्वर चला गया हो, पर हरारत रहती हो तो अतीस, नीमकी छाल और गिलोयका काढ़ा पिलाना चाहिये।

(१२) जो बालक माताका दूध पीते हों, उनके लिये नागरमोथा, काकड़ाशींगी और अतीसकी बुकनी शहदमें चटाना ज्वर, खाँसी और वमनके लिये सदा लाभकारी है।

(१३) धनिया, लाल चन्दन, गुरुचकी जड़ और नीमकी भीतरी छाल—इन सबकी बराबर मात्रा लेकर खलमें कूट डाले। रातको नयी हँड़ियामें पावभर पानीमें इन्हें भिगो दे। सुबह आगपर चढ़ा दे। जब पानी जलकर आधा रह जाय तो उतारकर छान ले और ठंडा कर पिलावे।

(१६) उदर-रोग

अ—

(१) सफेद कत्था आधी रत्ती, हींग आधा चावल, सोंठ दो चावल, जीरा दो चावल, शोरा कलमी एक रत्ती, माजूफल एक चावल, फिटकरीकी खील दो चावल—इनको पीसकर सुबह-शाम जलके साथ खिलावे। इससे उदर-रोग शान्त हो जाते हैं।

(२) यदि बालकके पेटमें कीड़े (केंचुवे) हों या उसे बदहजमी (अपच) हो तो प्याजका रस पिलाना चाहिये। या वायविडंगका क्वाथ जरा-सा शहद मिलाकर पिलाना चाहिये।

(३) पेटमें दर्द हो तो करैलेके पत्तेके रसमें जरा-सी हल्दी मिलाकर पिला दे।

(४) अजीर्ण हो तो नीबूके रसमें केशर घिसकर चटा दे।

(५) पेटमें कहीं मल रुक गया हो और दस्त साफ न होता हो तो नीबूके रसमें हर्रे घिसकर चटा दे।

(६) अगर पेटमें कीड़े हों तो चावलभर केशर और कपूर खिलाकर ऊपरसे दूध पिला दे।

(आ) पेटका फूलना, भारीपन रहना आदि—

यदि बालकका पेट फूल गया हो और वह सुस्त रहता हो तो (१) सोंठ, रेवन्त चीनी, सौंफका अर्क—इन सबको मिलाकर दोनों समय खिलावे। यहाँ सोंठ एक चावलभर, रेवन्त चीनी दो चावलभर और सौंफका अर्क तीन माशेभर लेना चाहिये और उसकी दो खुराक बना लेनी चाहिये (२) सेंधा नमक, सोंठ, इलायची, भुनी हींग और भारङ्गी महीन पीसकर गरम पानीके साथ पिलावे। (३) हींग भूनकर और पानीमें घिसकर नाभिके चारों ओर लेप कर दे (४) इलायची, सूखा पोदीना, काली मिर्च, पीपल, काला नमक—इन सबको मिलाकर दिनमें दो-तीन बार दे। यदि प्रति दिन पेट फूलनेकी शिकायत हो तो तीन-चार दिनपर्यन्त दे (५) यदि पेट बढ़नेकी बीमारी हो गयी हो तो रातको पानी साथ थोड़ा-सा शहद मिलाकर पिलाना चाहिये। कितनी माताएँ अपने बच्चेको मोटा-ताजा बनानेके मोहमें घी आदि देरसे पचनेवाली चीजें अधिक मात्रामें खिलाती रहती हैं बच्चा उन पदार्थोंको सहजमें पचा नहीं पाता और इस पेटमें भारीपन रहने लगता है। ऐसी दशामें—

(१) बकरीकी लेंड़ी आधी छटाँक, रेड़ीकी चीनी पाव भर, महुआ आधा छटाँक—इन तीनोंको पानीमें एक स

खूब पकाना चाहिये। जब खूब पक जाय तो नीचे उतारकर कपड़ेपर फैलाना चाहिये और बच्चेके सहन करनेभर गरम रहते हुए उसे बालकके पेटपर रखकर ऊपरसे बाँध देना चाहिये।

(२) साबुन, मुमव्वर, नमक और हल्दी—इन सबोंको पानीमें पीसकर पकाना चाहिये और बरदाश्त करनेभर गरम रखकर पेटपर बाँध देना चाहिये।

(१६) संग्रहणी (भोजन न पचना)

(१) पीपल, मोंथा और सोंठके चूर्णको शहदके साथ चटानेसे बच्चोंकी संग्रहणी नष्ट हो जाती है। (२) आधी छटाँक खानेका बढ़िया चूना एक परातमें रक्खे और ऊपरसे ढाई सेर पानी पतली धारसे उसके ऊपर छोड़े। चूना घुल जायगा। दो घंटेके बाद उस पानीको निथारकर चूनेको फेंक दे। इस पानीको आध घंटेतक फिर स्थिर रहने दे। बादमें धीरेसे उस पानीको निथारकर किसी बोतलमें भर ले और नीचे जमे हुए चूनेको फेंक दे। इस पानीको थोड़ेसे दूधमें मिलाकर प्रतिदिन बच्चेको पिलावे। इससे बालककी उल्टी और हरे दस्तोंका आना भी बंद हो जाता है। पेटके कृमि भी नष्ट होते हैं।

(१७) दूधका फेंकना

यदि बालक दूध फेंकता हो तो पहले इस बातका पता लगाना चाहिये कि इसका कारण क्या है। बालकके पेटमें कुछ खराबी है अथवा माताके दूधमें कुछ दोष आ गया है। बहुधा देखनेमें आता है कि माताएँ काम करके उठती हैं, पसीनेमें लथपथ रहती हैं और बच्चेको दूध पिलाने लगती हैं। काम करनेसे दूधमें गरमी आ जाती है और वह दूषित हो जाता है। अतएव वह बच्चेके अनुकूल नहीं पड़ता और वह उसे फेंकने लगता है। ऐसी दशामें माताको बच्चेको दूध पिलानेमें सावधानी करनी चाहिये और कामपरसे उठकर पहले ठंढी हो ले, तब दूध पिलावे; किंतु यदि बच्चेके पेटमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न हो गया है और वह उसके कारण दूध फेंकता है तो (१) काकड़ाशींगी, अतीस, मोथा और पीपल समान मात्रामें कूटकर उसकी बुकनी शहदमें मिलाकर बालकको चटावे। (२) आमकी गुठली, धानकी खील और सेंधा नमक कूटकर उसकी बुकनी शहदमें चटावे। (३) धनिया भिगोया हुआ जल थोड़ा-थोड़ा-सा पिलावे। (४) साथ ही बार-बार दस्त होते हों तो चावल धोये हुए जलके साथ जायफल घिसकर सुबह-शाम एक-एक छोटी चम्मच पिला दे।

(१८) दूध न पीना

बहुधा बच्चे दूध नहीं पीते। यदि माताके किसी दोषके कारण बच्चा दूध नहीं पी रहा हो तो माताकी दवा करे, नहीं तो बच्चेको दवा दी जाय। इस तरहकी बीमारीकी सबसे उत्तम दवा यह है कि परवलके पत्तोंको पानीमें उबालकर उसी पानीसे बच्चेको नहलाये।

(१९) सिरका दर्द

बालकके सिरमें दर्द होनेपर—

(१) कानमें सरसोंका तेल डाल देना चाहिये।

(२) चन्दन और सोंठ पीसकर कनपटी तथा सिरपर लगाना चाहिये।

(३) काली मिर्च तथा चावल पीसकर गरम करे और सिर तथा कनपटीपर उसका लेप करे।

(४) सिरपर मक्खन लगाना चाहिये।

(२०) सिरमें बाल न उगना

कितने ही बालकोंके सिरमें बाल नहीं उगते। यदि सिरमें बहुत दिनतक बाल न उगें तो (१) मक्खीका मैल पानीमें पीसकर सिरपर लगाये। (२) गायका मक्खन ठंडे जलमें पंद्रह बार धोये, फिर उसमें नीला तूतिया और मुर्दाशङ्ख पीसकर दो तोलेके परिमाणमें मिलावे और उसका मलहम बनाकर सिरमें लगावे। (३) तीते परवलके पत्तेका रस सिरमें लगावे। (४) हाथीदाँतकी राख और रसौत लगावे।

(२१) अतिसार

(अ)—

यह कई कारणोंसे होता है। अजीर्णसे, सर्दीसे तथा दाँत निकलनेके समय। यदि दाँत निकलनेके समय यह रोग हो तो इसे कदापि नहीं रोकना चाहिये। (१) अजीर्णके कारण हो तो घूँटी दे अथवा भुना हुआ सुहागा आदि पाचक चीजें देवे। (२) साधारण दस्तोंके लिये बेलगिरी, कत्था, धायके फूल, बड़ी पीपल और लोध—इनको पीसकर शहदमें चटावे। (३) हल्दी, कुड़ेके बीज, काकड़ाशींगी और बड़ी हर्रे पानीमें भिगोकर वही पानी पिलाये। (४) तज दो चावल भर, हींग चौथाई चावल भर, सौंफ एक चावल, मोथेका बीज चौथाई चावल, बबूलका गोंद एक चावल—इन सबको

मिलाकर एक खुराक बनावे, पानीमें औटाकर उतार लेवे। यदि बच्चा बहुत छोटा हो तो आधी खुराक देवे (५) यदि पतला दस्त आता हो तो नेत्रवाला, धायका फूल, बेलकी गिरी तथा गजपीपर बराबर मात्रामे लेकर इनका काढ़ा बनावे और बालकको पिला दे। (६) मजीठ, धायका फूल, सारिवा, पठानी तथा लोधका काढ़ा ठंडा करके शहदमें मिलाकर पिलावे। (७) सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धवाला तथा इन्द्रजवका काढ़ा बनाकर पिलावे। (८) लजनीकी जड़, धायका फूल, लोध तथा सारिवाका काढ़ा बनावे। ठंडा कर इसमे शहद मिलाकर बालकको पिलावे। कैसी ही दस्तकी बीमारी क्यों न हो, ठीक हो जाती है। (९) पत्थर या मिट्टीके बर्तनमें थोड़ा मट्ठा रख ले। उसमें एक मात्रा कुलंजन घिसकर डाल दे। फिर थोड़ी हींग डालकर उसकी कढ़ी तैयार करे। वही कढ़ी बालकको पिलावे। कैसी भी दस्तकी बीमारी हो, अवश्य दूर होगी।

(आ) आमातिसार (आँव)

दस्तके साथ आँव गिरनेपर (१) वायविडङ्ग, अजमोद और पीपलको बारीक पीसकर चावलके पानीमें पिला दे। (२) भुनी हींग, अतीस, चीता, कुड़ा, मेथी, सोंठ—इनका चूर्ण गर्म जलके साथ देवे। (३) अधभुनी सौंफ कूटकर शक्कर मिलाकर देवे। (४) मरोरफलीकी सेंधे नमकके सग पीसकर देवे। (५) सोंठका मुरब्बा खिलावे। नं० तीनसे पाँचतककी दवा आँवके साथ खूनके दस्त आनेपर भी बहुत लाभकारी है।

(इ) रक्तातिसार

यदि दस्तके साथ खून गिरता हो तो (१) सोंठ और पाषाणभेदको पानीमें घिसकर पिलावे। (२) कुड़ेके बीज सफेद जीरा-जलके साथ पीसकर तथा मिश्री मिलाकर पिलावे। (३) धायके फूल, कमलके फूल, मोचरस—इनको पीसकर शाठी चावलमें देवे। (४) मोचरस, लजनीकी जड़ तथा कमलकी केसर बराबर मात्रामें सवा तोले लेकर उसमे उतना ही बढ़िया चावल मिला दे। तीन छटाँक पानीमें पीसकर इनकी लपसी बना डाले। इसके खिलानेसे आँव, दस्तके साथ रक्तका आना बंद हो जाता है। यह दवा उन बालकोंको दी जानी चाहिये, जो अन्न खाते हैं।

(ई) ज्वरातिसार

यदि बच्चेको ज्वर भी आता हो और दस्त भी लगते हों तो (१) धायका फूल, बेल, धनिया, लोध, इन्द्रजव और नेत्रवालाका चूर्ण शहदमें मिलाकर चटावे। (२) नागरमोथा, पीपल, मजीठ और सोंठका चूर्ण शहदमें चटावे। (३) पीपल, अतीस, नागरमोथा, काकड़ासींगी—इनका चूर्ण शहदमें चटावे।

(उ) प्यास और ज्वरातिसार

सोंठ, अतीस, मोथा, इन्द्रजव, खस—इनका काढ़ा पिलानेसे ज्वर, अतिसार और प्यासका विकार दूर हो जाता है।

(२२) सोते समय दाँत चबाना

यदि बालक सोते समय दाँत चबाता हो तो काकड़ासींगीको सागोनकी लकड़ीसे दूधमें पकाकर उस दूधको बच्चेके पाँवके तलेमें सोते समय मल दे। दाँत चबाना बंद हो जायगा।

(२३) बहु-रोदन

यदि बालक बहुत रोता हो तो चन्दन अथवा वनप्शेका लेप करना चाहिये। कभी हँसलीके डिग जानेसे भी बालक बहुत रोता है। नीमके पत्तोंकी धूनी देनी चाहिये और घुंघचीकी माला पहरानी चाहिये।

(२४) हिचकी

यदि बालकको हिचकी आती हो तो—

(१) थोड़ा-सा ठंडा जल पिला देवे। (२) नारियलको पीसकर उसमें चीनी मिलाकर बालकको चटावे। (३) पिप्पल और मुलहठीकी बुकनी बना ले और इसमें शहद और मिश्री मिलाकर बिजौरे नीबूके रसके साथ चटावे। (४) हींग, काकड़ासींगी, गेरू, मुलहठी, सोंठ तथा नागरमोथाकी बुकनी बनाकर शहदमें मिलाकर चटावे। (५) छोटी इलॅके चूर्णको शहदमें चटावे। (६) सोहागाको पीसकर शहदमें चटावे। (७) काली मिर्चको मोटी सूईकी नोकमें पिरोकर उसे दियासलाईसे जला दे और उसका धूँआ नाकमें दे। तत्काल हिचकी मिट जायगी।

(२५) तुतलाना

अगर बालक तुतलाकर बोलता हो और जबानसे साफ शब्द नहीं निकलते हों तो लघुब्राह्मी घासके ताजे पत्ते उसे कुछ दिनतक खिलाने चाहिये। इससे जबान पतली हो जायगी और साफ शब्द मुँहसे निकलने लगेंगे।

(२६) अधिक प्यास

यदि बच्चोंको अधिक प्यास लगे और पानी पीनेसे भी

उन्हें सन्तोष न हो तो (१) कमलगट्टेके हरे बीजको नीमके साथ घोंटकर पानीमें पिलाये। (२) मुनक्केका बीज निकालकर तथा थोड़े-से नमकके साथ उसे घोंटकर सबेरे बालकको चटावे। (३) भुनी हींग, सेंधा नमक और पलासपापड़का चूर्ण शहदमें मिलाकर चटावे।

(२७) कब्ज

यदि बालकको खुलासा दस्त न हो तो—

(१) काला नमक, सुहागा और भुनी हींगको पानीमें घिसकर जरा गरम करके पिला दे।

(२) थोड़ा-सा रेड़ीका तेल नाभिके चारों ओर लगा दे; इससे लाभ न हो तो थोड़ा-सा दूधके साथ पिला दे।

(३) ढोंढ़ी और पेंड़ूपर हींगका लेप करके ऊपरसे पानका पत्ता बाँध दे।

(४) पेंड़ूमें गरम तेल धीरे-धीरे मलना चाहिये।

बच्चा यदि माको छोड़कर किसी दूसरी स्त्रीका दूध पीता हो तो उसे तुरंत बंद कर देना चाहिये; क्योंकि इससे कब्ज और भी बढ़ जाता है।

(२८) फोड़ा-फुंसी

फोड़ा-फुंसी होनेपर नीमकी पत्ती पानीमें उबालकर उस गरम जलसे स्नान करावे तथा (१) छः माशा खड़िया और आठ माशा मक्खन एक साथ घोंटकर मलहम बना ले और फोड़े-फुंसीके स्थानपर लगावे। (२) गायके मक्खनको १०१ बार ठंडे जलमें धोकर उसमें कमेला कपड़छानकर मिला ले और फुंसियोंपर लगावे।

(२९) घाव

यदि बालकके शरीरमें कहीं घाव हो जाय तो नीमके पत्ते, दारुहल्दी और मुलहठीकी बुकनी घीमें फेंटकर मलहम बना ले और घावपर लगावे। यदि नासूर पड़ गयी हो तो मलहम लगानेसे पहले नीमकी पत्तीसे धो लेना चाहिये। अगर घावमेंसे मवाद आती हो तो नीमके कच्चे पत्तेको पीसकर शहदमें मिलाकर चटाना चाहिये।

कई बार बच्चोंकी गुदा पक जाती है। ऐसी अवस्थामें रसौत और लोधका चूर्ण गुदामें भर देना चाहिये।

(३०) खुजली

बच्चे अधिकतर धूलमें खेलते रहते हैं, अतएव यह रोग उन्हें बहुत जल्दी हो जाता है। इससे बचनेका सबसे बढ़िया उपाय है बच्चोंको प्रतिदिन नीमकी पत्ती उबाले हुए गरम पानीसे स्नान कराना। खुजली हो जानेपर (१) कड़वे तेलमें चूनेका पानी मिलाकर उसे खूब हिलाये और जब वह काफी गाढ़ा हो जाय तो उसकी बालकके शरीरपर मालिश करे। (२) कड़ुआ तेल, सेंधा नमक तथा कागजी नीबूका रस—तीनों चीजें एकमें फेंट डाले और बालकके बदनपर पोत दे तथा थोड़ी देर बाद मलकर स्नान कराये। (३) नारियलके तेलमें कपूर डालकर बदनपर मालिश करे। (४) चन्दनके तेलमें नमक और नीबूका रस मिलाकर बालकके बदनपर उबटन करे। (५) नारियल या सरसोंके तेलमें सफेद कवरीके पत्तोंको तलकर वह तेल लगावे।

(३१) आगसे जलना

इमलीकी छालको जलाकर गायके घीमें फेंटकर जले हुए स्थानपर लगा दे। यदि घाव हो गया हो तो कड़ुआ तेल लगाकर ऊपरसे पत्थरका खूब बारीक कोयला बुरका दे। अथवा चूनेका पानी, जैसा कि खुजलीके प्रसङ्गमें कहा गया है, लगा दे।

(३२) मूत्ररोग

यदि बच्चेको पेशाब न उतरता हो तो चूहेकी लेंड़ीको मठ्ठेमें पीसकर उसे गरम करे और ढोंढ़ीसे लेकर पेंड़ूतक लेप कर दे। कलमी शोरेको पानीमें भिगोकर बच्चेके पेड़ू एवं नाभिपर लगाये। टेसूके फूलको पीसकर बालकको पिला दे।

बार-बार बच्चा ज्यादा पेशाब करता हो तो आँवलेका रस शहदके साथ दिया जाय। अथवा केलेकी गदर, आँवलेका रस, शहद और मिश्री—इनको दूधके साथ पिलाया जाय।

(३३) जूँ या ढील

यह बीमारी साधारण है। अधिकांश बालकोंको जूँ पड़ जाती है। इसके लिये सबसे पहले बच्चेके शरीर तथा कपड़ोंकी सफाई करनी चाहिये तथा वह जिन व्यक्तियोंके सम्पर्कमें रहता है, उनके कपड़े भी स्वच्छ रहने चाहिये। निमौरी (नीमका फल) को पानीमें पीसकर सिरमें मलना चाहिये।

(३४) उन्हरिया या अम्हौरी

गरमीके दिनोंमें बच्चेके शरीरपर छोटे-छोटे लाल दाने निकल आते हैं। इससे उसे बड़ी पीड़ा होती है, दिन-रात खुजलानेकी इच्छा होती है; ऐसी दशामें बालकको बड़ी सावधानीसे रखना चाहिये। (१) आमकी गुठली पीसकर

शरीरपर लगाना चाहिये। (२) पीली मिट्टीमें गुलाबजल मिलाकर शरीरपर पोतना चाहिये।

(३५) लू लगनेपर

(१) कच्चे आमको भूनकर उसका शरबत पिलावे और सारे बदनमें उसीकी मालिश करे।

(२) प्याज पीसकर उसमें जौका आटा मिलाकर उबटन करे।

(३) धनियेका शरबत मिश्री मिलाकर पिलावे तो लू लग ही नहीं सकती।

(३६) धनुष-टंकार

इस रोगमें शिशु धनुषकी तरह टेढ़ा हो जाता है। यह भयानक रोग है। अच्छे अनुभवी चिकित्सकको दिखलाना चाहिये। यह देखा गया है कि मस्तकपर ठंडा जल या बरफ रखने और पैरोंको गरम जलके बरतनमें डुबा रखनेसे बहुत ही लाभ होता है। आँखोंपर जलका छावका देना चाहिये तथा होश होने और रोनेपर स्तन मुखमें देना चाहिये। लज्जावती बेलकी जड़ लाल सूतसे गलेमें बाँध देनेपर भी तत्काल लाभ होता है।

बाल-स्वास्थ्यके कुछ मुख्य उपाय

बालकोंको नीरोग रखनेका मुख्य उपाय यही है कि प्रसूति-गृहसे ही उनको स्वच्छ रक्खे तथा इन उपायोंको काममें लावे—

(१) गोरखमुण्डी और खसके काढ़ेसे चौथे, छठे या आठवें दिन स्नान करा दिया करे।

(२) हल्दी, चन्दन और कूटको पीसकर बालकके शरीरमें उसका उबटन लगाकर स्नान करावे।

(३) प्रतिदिन बालकके शरीरपर उबटन और तेल मल दिया करे।

(४) राल, गूगल, खस और हल्दीका धुआँ दे दिया करे।

(५) कुछ माताएँ नींद आनेके लिये बच्चोंको अफीमकी आदत डाल देती हैं। इससे बहुत ही हानि होती है। अतः बच्चोंको अफीम कभी नहीं देना चाहिये।

(६) बच्चोंको बड़ी अमृतसरी हर्रे घिसकर रोज माके दूधके साथ दी जाय तो बहुत ही लाभ होता है।

बालरक्षा-घूँटी

नीचे लिखी ओषधियोंकी एक घोंटी तैयारकर दोनों समय बालकोंको देनी चाहिये। बड़ी ही उपयोगी है—

सौंफकी जड़, सौंफ, छोटी हर्रे, उन्नाव, सोहागा, वायविडंग, अजवायन, जीरा, पुराना गुड़, अमलतास, सोंठ, बालबच, बड़ी हर्रे, गुलाबके फूल, सफेद जीरा और मुनक्का— इनकी बराबर मात्रा लेकर कूट ले। जब देना हो तो खौलते पानीमें एक मात्रा डालकर औटावे। फिर उतारकर छान ले और आधी रत्ती या इससे कम-बेशी काला नमक मिलाकर पिला दे। इससे बालकके पेटकी पीड़ा, बदहज़मी, पेटका फूलना, पेटका कड़ापन, दूध फेंकना आदि सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं और बालकके शरीरमें बल बढ़ता है।

बच्चोंके लिये दो अत्यन्त लाभकारक दवाएँ

(१) लौंग, अजवायन, अनारके छिल्के, बड़ी इलायचीके छिलके—चारों समान भाग और थोड़ा-सा जायफल मिलाकर कालमेघके रसमें भिगो दे। फिर अच्छी तरह पीसकर छायामें सुखा ले। इस तरह तीन बार भिगोवे और सुखावे। तदनन्तर उसकी छोटी (मसूरीके दाने-जितनी) गोली बाँधकर शीशीमें रख ले। दो-तीन महीनेके बच्चेसे लेकर पाँच वर्षतकके बालकको यह गोली दी जा सकती है। इसका नाम 'अमृतवटी' है।

बीच-बीचमें इसे देते रहनेसे बच्चोंको सर्दी, खाँसी, साधारण बुखार और यकृत् (लीवर) की बीमारियाँ मिट जाती हैं।

(२) दूसरी दवा इससे भी उत्तम है, इसका नाम 'तिक्त सुधावटी' है।

अजवायन एक तोला, कच्ची हल्दी एक तोला, सेंधा नमक एक तोला और कालमेघ तीन तोले। सबको मिलाकर जरूरत-के माफिक जलके साथ अच्छी तरह पीसकर छः रत्तीकी गोली बना ले और उन्हें धूपमें सुखाकर रख ले।

अजवायन साफ करके जलमें धोकर धूपमें सुखा लेनी चाहिये, हल्दीके छिल्के उतार देने चाहिये और कालमेघकी कच्ची पत्तियाँ लेनी चाहिये।

यह गोली ठंडे जलके साथ दी जानी चाहिये और मात्रा छोटे बच्चेको चौथाई गोली, बालकको आधी और बड़ी उम्र-वालेको पूरी देनी चाहिये। दवा देनेका सबसे अच्छा समय प्रातःकाल है। रोगके अनुसार दिनमें दो-तीन बार दी जा सकती है। यह दवा प्रायः सभी रोगोंमें लाभ करती है, खास करके निम्नलिखित रोगोंमें तो बहुत ही उपकारक है—

(१) यकृत्-दोष—बच्चेको कैसी भी लीवरकी बीमारी हो, यह उसके लिये बहुत उत्तम दवा है। लीवर बढ़ जानेपर

या दर्द होनेपर, आँव और पेशाब पीला हो जानेपर इसका प्रयोग विशेष लाभदायक होता है।

(२) अजीर्णजनित पतले दस्तोंमें और कब्जीमें इसका प्रयोग किया जाता है। मन्दाग्नि किसी भी प्रकारकी हो, यह उसके नाशके लिये रामबाण है।

(३) पेटके छोटे-बड़े कृमियोंका नाश इससे होता है।

(४) रक्तहीनता या पाण्डुरोगमें यह सर्वोत्तम दवा है। यह लीवरको सुधारकर रक्त बनानेमें बहुत सहायता करती है। पीलिया रोगमें भी विशेष लाभकारक है।

(५) मलेरिया बुखारमें भी बहुत अच्छा काम करती है, खास करके जहाँ तिल्ली या लीवर बढ़ी हो।

ऊपर बच्चोंके शरीरमें होनेवाले विभिन्न रोगोंका उपचार लिखा गया है। इससे कोई यह न समझे कि बालकोंके शरीर-में इन रोगोंका होना आवश्यक या स्वाभाविक है। प्रकृति सदा स्वस्थ है, अतएव उसपर निर्भर करनेवाले हमेशा स्वस्थ रहते हैं; उनके शरीरमें कोई भी रोग नहीं होता। किंतु मनुष्यकी यह कमजोरी है कि वह अपने स्वाभाविक आहार-विहारमें व्यतिक्रम उत्पन्न कर लेता है और रोगका शिकार बन जाता है। जहाँतक हो, दवा न खिलाना या कम-से-कम खिलाना ही उत्तम है। अतएव माताओंको चाहिये कि वे यथासाध्य बच्चोंके जीवनकी स्वाभाविकताको नष्ट न होने दें। तथा खान-पानमें संयम रक्खें, जिससे वे चिर स्वास्थ्य, चिर जीवन और चिर सुख प्राप्त कर सकें तथा अपने कर्तव्यका ठीकरूपसे पालन कर मानवजीवनके चरम लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति-का अनुभव कर अपने जीवनको कृतार्थ कर सकें।

माताके द्वारा बालकका लालन, पालन और शिक्षा

(लेखक—पण्डित श्रीलल्लनजी)

एक विद्वान्‌का कथन है कि 'बच्चे उतने ही ऊँचे उठ सकते हैं, जितनी ऊँची स्थितिमें उनकी माताएँ होती हैं।' वास्तवमें बच्चे ही राष्ट्रके नेता और उद्धारक होते हैं और उन्हें इस योग्य बनानेका दायित्व मातापर ही है। जैसी माता, वैसी सन्तान; जैसी भूमि, वैसी उपज। आचार्य शङ्करको ज्ञानके उच्च शिखरतक पहुँचनेकी शक्ति किसने दी थी, माताने। प्रताप और शिवाजीको रणाङ्गणमें मदमत्त यवनोंकी विशाल वाहिनीके संहारका साहस किसने दिया था, उनकी माताओंने। अतः प्रत्येक माताको अपना उत्तरदायित्व समझना और सन्तानको योग्य बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

गर्भमें बालकके आते ही माताको अपने कर्तव्य-पालनके लिये सजग हो जाना चाहिये। सबसे पहले उसके लिये अपने स्वास्थ्यपर ध्यान देना आवश्यक है। तन, मन दोनों स्वस्थ रहें। शरीर नीरोग हो और मनमें सद्विचार जाग्रत् होते रहें—यही तन-मनकी स्वस्थता है। माताके रक्तसे ही बालकके शरीरका निर्माण और पोषण होता है; अतः रोगिणी माताका बालक कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। जन्मसे एक वर्ष बाद-तक बच्चेके स्वास्थ्यका विशेष ध्यान रखना चाहिये। उस समयकी स्वस्थता या अस्वस्थताका जीवन-व्यापी प्रभाव होता है। जन्म-कालमें स्वस्थ बालकका वजन साढ़े तीनसे साढ़े चार सेरतक रहता है। जो बच्चे पैरके बल पैदा होते हैं, वे यदि तुरंत रो न उठें तो उनके मुखपर बारीक कपड़ा रखकर उसपर पाँच-पाँच सेकंडके अन्तरसे फूँक मारनी चाहिये। बच्चेका रोना विशेष गुणकारी है। जन्मके बाद गुनगुने पानीसे बच्चेका शरीर साफ कर देना चाहिये। उसकी आँखोंको भी सावधानीसे पोंछना और मुँहमें अँगुली डालकर उसे साफ कर देना चाहिये। पहले शिशुको मधु चटाकर पीछे माताका स्तन पिलाना चाहिये।

माताको दूध कम आता हो तो वह दूधमें बना हुआ साबूदाना पीवे। बच्चेको प्रत्येक दो-तीन घंटेपर दूध पिलाना उचित है, परंतु दस बजे रातसे छः बजे सबेरेतक दूध पिलाना मना है। माताके दूधके अभावमें गायके उबाले हुए दूधमें जरा-सा पानी और मिश्री मिलाकर शिशुको पिलाना चाहिये। नौ महीने बाद दूधमें पानी मिलानेकी आवश्यकता नहीं रहती। बच्चेके बिस्तरे और वस्त्रको स्वच्छ रखना और प्रति-दिन धूपमें सुखाना चाहिये। उसके दाँतोंको हल्के हाथों बराबर साफ करते रहना चाहिये। हर समय अनियमित रूपसे दूध पिलाना अच्छा नहीं। रातको जगाकर बच्चा रोवे तो उसे एक चम्मच गुनगुना पानी पिला दे। सोतेसे जगाकर दूध पिलाना हानिकारक है। अधिक दूध पीनेसे हरे-पीले दस्त आने लगते हैं, बच्चा दूधका उछाल करता है; ऐसी दशामें उसे एक छोटी चम्मच रेंडीका तेल पिला दे और एक समय

दूध न पिलावे। इससे सहज ही उसका कोठा साफ हो जायगा।

सरसोंका तेल और उबटन लगानेसे बच्चे बढ़ते हैं। चमड़ा भी साफ और मुलायम होता है। भुनी सरसोंका तेल अधिक लाभकर है। आँखोंमें काजल बराबर लगाना चाहिये। बच्चेको खूब सोने देना चाहिये। बच्चेको किसीके साथ न सुलाकर, अपने पास ही दूसरे बिस्तरेपर सुलाना चाहिये; अन्यथा उसकी वृद्धिमें बाधा पड़ती है। सर्दीके दिनोंमें सरसोंका तेल कुछ गर्म करके और कपूर मिलाकर छाती, गले एवं हाथ-पैरमें मालिश करनेसे बच्चेको लगी हुई सर्दीका कष्ट दूर हो जाता है। शिशुके कानोंमे भी बराबर तेल डालना चाहिये। इससे नेत्ररोग नहीं होता। सिरपर तेल रखनेसे मस्तिष्कको लाभ पहुँचता है। यदि पेट दबानेसे बच्चा रोवे और बार-बार अपने पैर पेटकी ओर समेटे तो समझना चाहिये पेटमें दर्द है; फिर तुरत अपना हाथ आगपर सेंककर पेटको धीरे-धीरे सहलाना चाहिये। गुलरोगन-को गर्म करके पेटपर लगाने या नमकको गर्म करके मलनेसे भी पेट-दर्दमे लाभ पहुँचता है। सो लेनेके बाद जब बच्चा जीभ बाहर निकाले या सिर इधर-उधर करे, तब समझना चाहिये उसे भूख लगी है; अतः दूध पिला देना चाहिये। कभी-कभी अंगूर और सेवका रस भी पिलाया जाय तो उत्तम है। बच्चेको लार टपके तो बड़ी इलायची और मुस्तकी एक-एक तोला लेकर बुकनी बना ले और उसे चीनीकी चाशनीमें जमाकर रख ले। उसे प्रतिदिन पाव-आध माशे भर बच्चेको पिलावे। कान बहे, उसमें सूजन या दर्द हो, तो माताके दूधमें रसोत घिसकर उसमे मधु मिलाकर कानमे डालना चाहिये। खुजली हो तो बच्चा उसे नाखूनसे खुजलाने न पावे--इस ओर ध्यान रक्खे। खुजलीके दानोंपर मक्खन लगा दे या नारियलके तेलको पानीमें फेटकर लगावे। बच्चेका मुँह न चूमे, न किसीको चूमने दे। इससे बड़ी हानि होती है। मुँहके कीटाणु उसके मुँहमें प्रवेश कर जाते हैं। कई माता-पिता लाड़-प्यारसे अपने मुँहकी चीज—पान-मेवा आदि चबाकर बच्चोंके मुँहमें दे देते हैं। उसकी जीभको अपने मुँहमें और अपनी जीभको उसके मुँहमें दे देते हैं। यह बहुत बुरी चाल है; इससे उनकी बीमारियाँ बच्चोंको हो जाती हैं और वे बेमौत मर जाते हैं।

दो-तीन वर्षके बच्चोंको बाजारकी अंड-बंड चीजें खिलाकर चटोर न बनावे, उन्हें पैसे भी न दे; अन्यथा उनकी पाचनशक्ति खराब होती है। घरपर बनी हुई मिठाई ही थोड़ी मात्रामें देनी चाहिये। माताका दूध छूटनेके बाद बच्चेको गायका दूध पूर्ण मात्रामें देना चाहिये। हड्डियोंके निर्माणमें गायका दूध सबसे बड़ा सहायक है। बच्चोंको गहना भी नहीं पहनाना चाहिये। बच्चोंके लिये कपड़े प्रायः ढीले पहनाने चाहिये। बच्चोंके दौड़ने-धूपने या खेलने-कूदनेमें बाधा न दे। बच्चे धूल-मिट्टीमें खेलें, खुलकर व्यायाम करें—यह आवश्यक है। माताको चाहिये कि वह बच्चेकी रुचि और आवश्यकताको समझकर वैसी व्यवस्था करे। हर बातमें मारने-पीटने या डराने-धमकानेसे अच्छा लड़का भी चिड़चिड़ा हो जाता है। बच्चेसे प्रेमपूर्वक बोले। उसके प्रत्येक प्रश्नका उत्तर दे। वह डरपोक न बने, निर्भय एवं बलिष्ठ हो—इस ओर ध्यान देना चाहिये।

बालकको कुसङ्गसे बचाकर अच्छे सङ्गमें रक्खे। उसे अच्छी शिक्षा दे। झूठ बोलनेका कुफल बताकर सत्यमें लगावे। उसमें गुरुजनोंके प्रति विनय और आज्ञापालनका भाव जगावे। पुत्र और कन्याको समान समझकर दोनोंके विकासपर एक-सा ध्यान दे। बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षासे कभी असावधान न हो। जिस विषयमें उनकी स्वाभाविक रुचि हो, उस विषयके अध्ययनमें ही उनको लगावे। पाँच वर्षकी अवस्थामें बच्चेको अक्षरका अभ्यास कराना आरम्भ कर दे। माता शिक्षित हो और विनोदपूर्वक सिखावे तो बच्चा खेल-खेलमें ही बहुत-कुछ सीख लेगा। किंडरगार्टनकी प्रणाली उपयोगी है। बच्चा गाली दे तो प्रेमसे समझाकर उसे उस आदतसे हटावे। उसे खिलौने आदि देकर पढ़नेके लिये उत्साह बढ़ावे। हँसी-मजाकमें भी बालकके सामने विवादकी चर्चा न करे। इसका प्रभाव अच्छा नहीं होता। अक्षर-परिचयके बाद बालकको किसी सुयोग्य शिक्षककी देख-रेखमें पढ़नेकी व्यवस्था कर दे। कुछ शिक्षित हो जानेपर बालककी रुचिके अनुसार उसे आवश्यक विषयोंकी शिक्षामें प्रवीण बनानेकी चेष्टा करे। आजीविकाके लिये उपयोगी शिक्षा दे। परंतु शिक्षाका उद्देश्य आत्माका कल्याण है; अतः धार्मिक एवं आध्यात्मिक शिक्षाकी ओर तो बालकको अवश्य लगाना उचित है।

कन्याओंको खास तौरपर ऐसी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे वे आदर्श गृहिणी बन सकें। सीता और सावित्रीके आदर्शको अपना सकें।

बालकोंकी शिक्षा

कोमल वस्तुपर प्रभाव अत्यन्त शीघ्र किंतु स्थायी पड़ता है। छोटे कोमल पौधेको माली जैसे चाहता है, वैसे झुका देता है; कच्चे मिट्टीके बर्तनको कुम्भकार अपने इच्छानुसार आकृति दे डालता है। ठीक यही दशा बालकोंकी है। उनकी प्रकृति, उनकी बुद्धि, उनका स्वभाव, मस्तिष्क, हृदय आदि इतने सरल और कोमल होते हैं कि उनपर आप जो संस्कार डालना चाहें, डाल दीजिये; आपको किसी प्रकारका परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। बालकोंका हृदय उस स्वच्छ एवं सफेद वस्त्रके समान है, जिसपर किसी प्रकारका रंग नहीं चढ़ा है। अतएव इस अवस्थामें बालकोंकी शिक्षा-दीक्षापर ध्यान देना परम आवश्यक है।

अनुकरणकी प्रवृत्तिसे ही बच्चेकी शिक्षा प्रारम्भ होती है। यह शक्ति बालकोंमें जन्मजात होती है। बच्चेका बाल्यकाल प्रधानतः माताकी गोदीमें बीतता है। वह खाता है तो माकी गोदीमें, खेलता है तो माकी गोदीमें और सोता है तो माकी गोदीमें। अतएव उसके जीवनका निर्माण माके हाथमें है। माता चाहे तो अपने आचरणद्वारा बच्चेको सदाचारी, ईश्वरभक्त, कर्तव्यपरायण, शान्त, धीर, वीर एवं गम्भीर बना सकती है; और वह चाहे तो उसे चोर, लबार, पाखण्डी, कामी, क्रोधी, डरपोक आदिके रूपमें परिणत कर सकती है। विश्वके इतिहासमें आजतक जितने भी महापुरुष हुए हैं, सब माताओंकी देन हैं।

माताका हृदय स्नेहमय है। वह अपने सात्त्विक स्नेहके द्वारा बच्चेके जीवनमें सरसता उत्पन्न करती है। किंतु अच्छी-बुरी सभी वस्तुओंकी एक सीमा है। स्नेह भी जब विवेककी सीमाको लाँघकर आगे बढ़ता है तो वह घातक हो जाता है। बच्चोंके बिगड़नेमें अधिकतर यही बात होती है। देखा गया है कि विवाहके बहुत वर्षोंके बाद सन्तान उत्पन्न हुई या कई सन्तान मरनेके बाद पुत्रका जन्म हुआ, या कई लड़कियोंके पश्चात् लड़केके जन्मका सौभाग्य प्राप्त हुआ अथवा एक पुत्र होनेके बाद और सन्तान न हुई, धनका प्राबल्य हुआ—आदि-आदि अनेक स्थितियाँ ऐसी हैं, जिनमें स्वभावतः माता-पिता (विशेषतया माता) बच्चेको इतना स्नेह करने लगते हैं कि दिन-रात बच्चा उनकी गोदमें ही झूलता रहता है। धरती छूनेका उसे अवसरतक नहीं मिलता। परिणामतः उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है; कभी-कभी तो उसके नीचेके अङ्ग एकदम बेकार हो जाते हैं और वह पङ्गु बन जाता है। लड़कोंको जिद्दी बनानेमें भी यही स्नेह हेतु होता है। कुछ माताएँ स्नेहके कारण बच्चोंको शिक्षाके लिये अपनेसे पृथक् नहीं करतीं। वे सोचती रहती हैं—'मेरे लालकी उम्र ही क्या है, अभी तो दूधके दाँत भी नहीं टूटे। सारी उम्र पड़ी है, पढ़ लेगा। न पढ़ेगा, तो भी क्या है। किसीसे भीख थोड़े ही माँगने जाना है। ईश्वरने दे रक्खा है, इसीसे काम चल जायगा।' इससे बच्चा शिक्षासे वञ्चित रह जाता है और भविष्यमें बड़ा कष्ट उठाता है। बहुत बार यह भी देखनेमें आता है कि लड़का कुसंगसे अथवा बालचपलतासे भाँति-भाँतिके अनुचित कार्य करने लगता है—जैसे घरसे बाहर अवारा घूमना, पतंग उड़ाना, ताश-चौपड़-गोली आदि खेलना, जूआ खेलना, लड़कोंके साथ मिलकर राह जाते हुए व्यक्तियों, पशुओंको तंग करना, पक्षियों जन्तुओं आदिपर पत्थर फेंकना, चींटी आदिको हाथसे या पैरसे नोच डालना, बीड़ी पीना, अश्लील शब्द बोलना, घरसे चुपचाप रुपये-पैसे आदि निकालकर बाजारमें उनके बदले चीजें खरीदना आदि-आदि। और माता-पिताको इनका पूर्ण ज्ञान भी होता है; किंतु बच्चेके स्नेहके कारण वे उसे कुछ भी नहीं कहते, उल्टे उसकी नटखटतापर प्रसन्न होते हैं। यह बहुत ही घातक है। यह बच्चेके प्रति स्नेह नहीं, अन्याय है। इससे बच्चेका जीवन नष्टप्राय हो जाता है।

प्रकृतिभेदके अनुसार आजकल कुछ माताओंमें वात्सल्य-स्नेहका अभाव पाया जाता है। वे अज्ञानतावश अथवा फैशनकी गुलाम होकर अपने व्यक्तिगत सुख आरामको प्रधानता देती हैं और बच्चोंके कार्यको गौणता। फैशनकी पुतलियाँ आजकी कुछ शिक्षिता कहलानेवाली नारियाँ, जो स्त्री-पुरुषके सम्बन्धको पाशविक मनोविकारकी पूर्तिका साधनमात्र समझती हैं, जन्म देते ही बालकको अपनेसे पृथक् कर डालती हैं। बच्चेको दूध पिलाना, पालना, शिक्षित करना आदि सब काम धायपर पड़ जाता है। बालकका जीवन किस प्रकार बीत रहा है, इसकी भी माको कुछ चिन्ता नहीं रहती। फलतः दास-दासियोंके भरोसे रहनेसे उन लोगोंके सब प्रकारके अवगुण उस अनुकरणशील बच्चेमें आ जाते हैं और बेचारेका जीवन नष्ट हो जाता है। अमीरोंके लड़कोंके बिगड़नेमें यह एक बड़ा कारण है।

कितनी ही माताएँ खिला-पिलाकर बच्चेको स्कूल भेज देनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री मानती हैं। वे यह जाननेका कभी कष्ट

भी नहीं उठातीं कि बच्चा स्कूलमें क्या पढ़ता है, किनके सम्पर्कमें रहता है, कैसे लड़कोंके साथ स्कूल आता-जाता है और क्या करता है। इससे माताओंको अवश्य कुछ अवकाश मिल जाता है; दिनभर लड़का घरपर रहकर भाँति-भाँतिके उपद्रव करता था, उससे माताको राहत मिल जाती है। किंतु बच्चेकी जीवन-धारा किस ओर बह रही है, इससे मा बेखबर रहती है! मा बच्चेको सुधारनेके लिये स्कूलमें भेजती है, अतएव समझती है उसका सुधार हो रहा है, पर होता है उसका और भी पतन। आजकलकी स्कूली शिक्षाका जो दुष्परिणाम दिखायी दे रहा है, स्कूलोंमें बालकोंका जिस प्रकार चारित्रिक पतन हो रहा है, उसे देखते हुए तो यह कहना पड़ता है कि बच्चे-को स्कूलमें भेज देनेके बाद तो माता-पिताका दायित्व और भी बढ़ जाता है; क्योंकि विपत्तिकी सम्भावना भी उस समय बहुत बढ़ जाती है। अतएव माता-पिताको बालकोंको स्कूलमें भेजना प्रारम्भ करनेके बाद दायित्वसे मुक्त नहीं समझ लेना चाहिये, प्रत्युत बालककी ओरसे और भी सतर्क रहना चाहिये।

बालकोंके पतनका तीसरा कारण है माता-पिताओं-का उन्हें अधिक अनुशासनमें रखना। बड़े पेड़के नीचे छोटा पौधा नहीं पनपता; यदि पनपता भी है तो उस हिसाबसे नहीं, जिस हिसाबसे खुले स्थानमें। बस, बालकोंके लिये भी यही बात है। अधिक अनुशासन जहाँ हुआ, छोटी-छोटी बातपर जहाँ डाँट-फटकार होने लगी, वहीं बच्चेका जीवन मुरझा जाता है, वहीं उसकी विकासोन्मुख प्रतिभा नष्ट हो जाती है। कली खिलनेके पूर्व ही सूख जाती है। परिणाम यह होता है कि बच्चा या तो बुजदिल और कमजोर हो जाता है तथा अपने चरित्रबलको खो बैठता है, या ढीठ हो जाता है और किसीके कहने-सुननेकी कुछ भी परवा नहीं करता। अतएव माता पिताको चाहिये कि वे बालकको संयममें तो रक्खें, पर अधिक डाँट-फटकार न देवें; बाल-प्रकृतिकी स्वाभाविकता एवं सरलताको कुचल न डालें। जो बात जिस समय आवश्यक हो, उसी समय प्रेमसे समझाकर, यदि आवश्यक हो तो प्रेमपूर्ण साधारण डाँट-फट-कार देकर कह देनी चाहिये। नहीं तो घातसे प्रतिघात होना स्वाभाविक ही है। पौधेकी रक्षाके लिये बाड़की आवश्यकता होती ही है, दीपक बिना आवरण ठीक प्रकाश नहीं देता तथा बहुत बार बुझ भी जाता है। ठीक इसी प्रकार प्रेमपूर्ण तथा विवेकमय अनुशासनकी आवश्यकता है। विवेकपूर्ण अनुशासन-में यदि बालकको स्वतन्त्र छोड़ा जाय तो उससे उसकी प्राकृतिक गुप्त शक्तियोंका इतना विकास होता है कि वैसा अन्य किसी प्रकारसे सम्भव नहीं।

आचरणकी शक्ति अपार है। आचरणके 'मौनव्याख्यान'-से वह कार्य हो जाता है, जो बड़े-बड़े सुधारक विद्वान् रात-दिन उपदेश देकर, गम्भीर विवेचनात्मक लेख लिखकर तथा अन्य प्रकारकी शिक्षा-सम्बन्धी चेष्टा करके भी नहीं कर पाते। आचरणमें एक ऐसी दिव्य शक्ति है, जो दूसरेको स्वतः कर्तव्य-की ओर प्रेरित कर देती है। फिर बच्चे तो स्वभावसे ही नकल करनेवाले होते हैं। अतएव माता-पिताको अपना जीवन ठीक वैसा ही बनाना चाहिये, जैसा कि वे अपनी सन्तानको बनाना चाहते हैं। धातुकी मूर्तियाँ बनानेके लिये साँचेकी आवश्यकता होती है। बच्चोंके जीवनको ढालनेके लिये माता-पिताका जीवन ही साँचा है। माता-पिताको याद रखना चाहिये कि 'बच्चोंको मारकर, उनपर खीझकर उन्हें सदाचारी नहीं बनाया जा सकता। पहले खुद सदाचारी बननेसे ही वे सदाचारी बनेंगे।' असंयमशील माता-पिताका यह आशा करना कि उनकी सन्तान पूर्ण सदाचारी बनेगी, दुराशामात्र है। इसलिये माता-पिताको शरीर, मन और वाणी—तीनोंमें संयम रखना चाहिये। एवं सावधानीके साथ सदाचार-परायण रहना चाहिये।

संततिको योग्य बनानेके लिये माताका सुशिक्षित होना परमावश्यक है। प्रायः देखा गया है कि जिस घरमें माता चतुर होती है, उसकी सन्तान भी बड़ी चतुर एवं गुणवान् होती है। लड़कियोंका जीवन तो पूर्णरूपसे मातापर ही निर्भर है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, बच्चोंके हृदय-पर छोटी-छोटी बातोंका प्रभाव बहुत शीघ्र होता है। प्रायः देखा गया है कि माताएँ बालकोंमें डरनेकी आदत डाल देती हैं। जब कभी बच्चा दूध नहीं पीता, कपड़े नहीं पहनता, रातमें अधिक देरतक जगता रहता है, बिना कारण रोने लगता है अथवा इसी प्रकारकी कोई अन्य बात करता है, तो माता-पिता उसे 'भूत', 'हौवा', 'चोर' आदिका डर दिखाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चेकी प्रकृति डरपोक हो जाती है। कहीं-कहीं तो यह भय जन्मभर बना रहता है।

बच्चेके लिखने-पढ़नेकी शिक्षाका भार भी मातापर ही रहना चाहिये। देखनेमें आया है कि स्कूलमें भर्ती होने-तक बच्चे खेलते ही रहते हैं, उन्हें कुछ भी शब्दज्ञान नहीं हो पाता। यह बहुत बुरा है। माता-पिताको चाहिये कि वे बच्चेको होश सम्हालते ही मौखिक शिक्षा देना आरम्भ कर दें। यूरोपमें वस्तुपाठद्वारा बच्चोंको शिक्षा दी जाती है। बच्चे खिलौनोंके शौकीन तो होते ही हैं। अतएव सुन्दर-सुन्दर खिलौनोंके रूपमें काठ या किसी धातुके मोटे-मोटे अक्षर बना लिये जाते हैं और उन्हींको दिखलाकर बालकोंको वर्ण-परिचय करा दिया जाता है। भारतमें भी इस प्रणालीका शीघ्र ही प्रचार होना चाहिये।

प्रायः देखा गया है कि हमारे देशके लड़के व्यावहारिक शिक्षामें एकदम शून्य रहते हैं। बड़े होने तथा शिक्षा प्राप्त करनेपर भी उनमें इस शिक्षाकी बड़ी कमी बनी रहती है। इसका दायित्व एकमात्र माता-पितापर है। वे स्नेहवश बच्चेमें खराब आदतको घर करने देते हैं। माता-पिता देखते रहते हैं कि बच्चा देरतक सोता रहता है, मैले-कुचैले कपड़े रखता है, पुस्तकोंको फाड़ डालता है, इच्छा आती है वहीं थूक देता है, अशिष्टतासे बोलता है, दस आदमियोंके बीच जानेमें संकोच करता है, कोई बात पूछी जाय तो नाकमें अँगुली देने लगता है तथा जैसे तैसे भागनेका प्रयत्न करता है अथवा बड़ोंका अनादर करता है, बेमतलब बकता है, बात करते हुए बड़े-बूढ़ोंके बीचसे निकल जाता है, कहनेपर भी बात नहीं मानता और मुँह बनाता है—आदि-आदि; पर वे उसे कुछ भी नहीं कहते। परिणाम यह होता है कि उसका स्वभाव वैसा ही बन जाता है और वह जन्मभर बुद्धू या उद्दण्ड बना रहता है। अतएव माता-पिताको चाहिये कि वे निरन्तर ऐसी चेष्टा करें कि उनके बच्चे सदा-सर्वदा सदाचार और शिष्टाचारकी शिक्षा प्राप्त करते रहें।

माता-पिताको चाहिये कि धार्मिक शिक्षाका बीज भी अपनी सन्तानमें बाल्यकालमें ही बो दें। इसका सबसे सीधा उपाय यही है कि प्रतिदिन सुबह-शाम बच्चोंको साथ लेकर कीर्तन करें, भगवद्भक्ति-सम्बन्धी ललित पद गावें तथा भगवान्‌के दर्शनके लिये मन्दिरोंमें जावें। बच्चोंको कहानी सुननेका शौक होता ही है, अतएव उन्हें भक्तोंके सुन्दर-सुन्दर चरित्र सुनाकर उनमें वैसा ही बननेकी इच्छा जाग्रत् करनी चाहिये। दीन-दुखियों तथा पशु-पक्षियोंको बच्चोंके हाथसे अन्न, जल, रोटी आदि दिलानेसे उनके हृदयमें दयाभाव उत्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार आचरणद्वारा तथा मौखिकरूपसे स्पष्ट भाषण करने, किसी प्रकारका छिपाव न रखने, किसीकी कोई वस्तु बिना दिये न लेने, व्यर्थका झगड़ा न करने, सबका आदर करने, प्रेमसे हँसकर बोलने आदिकी शिक्षा भी बच्चोंको बाल्यकालसे ही माता-पिताद्वारा मिलनी चाहिये।

बालकोंपर ही परिवारका, समाजका, देशका तथा विश्वका भविष्य निर्भर करता है। अतः उनको शिक्षित करना कितना आवश्यक है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। माताओंको चाहिये कि वे अपने स्वरूपको समझें और अपने कर्तव्यमें लग जायँ। एक विद्वान्‌के इन वचनोंपर माताओंको सदा ध्यान देना चाहिये—'एक अच्छी माता सैकड़ों शिक्षकोंके बराबर है। वह परिजनोंके मनको खींचनेके लिये चुम्बक-पत्थर तथा उनकी आँखोंके लिये ध्रुवतारा है।'

किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये ?

सास-ससुर—हिंदू-शास्त्रानुसार वस्तुतः माता-पिताकी अपेक्षा भी अधिक पूजनीय और श्रद्धाके पात्र हैं। क्योंकि वे आत्माकी अपेक्षा भी अधिक प्रियतम पतिको जन्म देनेवाले उनके पूजनीय माता-पिता हैं। अपने हाथों उनकी सेवा करना, आज्ञा मानना, उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करना, उनकी अनुचित बातको भी सह लेना तुम्हारा धर्म है। सास ससुर असलमें मानके भूखे होते हैं। जिन सास-ससुरने पाल पोसकर तुम्हारे स्वामीको आदमी बनाया है, वे स्वाभाविक ही यह चाहते हैं कि बहू-बेटे हमारी आज्ञा माननेवाले हों और हमारे मनके विरुद्ध कुछ भी न करें। तुम्हें ऐसा कोई भी काम या आचरण नहीं करना चाहिये, जो उनको बुरा लगता हो। कहीं जाना हो तो पहले साससे पूछ लो। कपड़ा-लत्ता मँगाना हो तो पतिसे सीधा न मँगवाकर सासकी मारफत मँगवाओ। साससे बिना पूछे या उनके मना करनेपर कोई काम मत करो। रुपये-पैसेका हिसाब-किताब सासके पास रहने दो। रोज कुछ समयतक सासके पाँव दबा दिया करो और पतिको भी ऐसा कोई काम करनेसे सम्मानपूर्वक समझाकर रोक दो, जो उनके माता-पिताके मनके विरुद्ध हो। बस, तुम्हारे इन आचरणोंसे वे प्रसन्न हो जायँगे। वस्तुतः सास-ससुरको साक्षात् भगवान् लक्ष्मी-नारायण समझकर उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सेवा करनी चाहिये। तुम सेवा तथा सद्-व्यवहार करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करोगी तो तुम्हारा परम कल्याण होगा।

जेठ—भगवान्‌ने जिनको तुम्हारे स्वामीसे बड़ा और उनका भी पूजनीय बनाकर भेजा है, वे चाहे विद्या-बुद्धिमें हीन हों, तुम्हारे लिये सदा ही आदर, सम्मान तथा सेवाके पात्र हैं। उनका हित करना, सेवा करना और उन्हें सुख पहुँचाना तुम्हारा धर्म है।

देवर—देवरको छोटा भाई मानकर उसका हित करना तथा उससे पवित्र सद्व्यवहार करना चाहिये। देवरसे हँसी-

सास-ननदका बहू तथा भौजाईके प्रति बर्ताव

प्रायः देखा गया है कि दूसरोंके साथ अच्छा बर्ताव करनेवाली सद्गुणवती सास भी बहुओंके साथ बुरा बर्ताव कर बैठती है। पहले-पहल जब बहू ससुराल जाती है, तब उसे लज्जाके कारण बड़ी असुविधाएँ होती हैं। ससुरालमें किसका कैसा स्वभाव है, वह जानती नहीं। मनमें बड़ा संकोच रहता है। बीमार होती है, सिर, पेटमें दर्द होता है, तो भी सकोचसे कुछ कहती नहीं। नया घर है। स्नेहसे पालनेवाले माता-पिता नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें उससे गलती भी हो जाती है। इसलिये सासका कर्तव्य और धर्म होता है कि वह उस अबोध बचीपर दया करे और उसके सुख-दुःखका विशेष ध्यान रक्खे। बहूकी किसी भूलपर रणचण्डी न बन जाय, उसको तथा उसके मा बापको जली-कटी न सुनावे। विचार करना चाहिये कि तुम्हारी बेटीको ससुरालमें ऐसा ही व्यवहार प्राप्त हो तो उसको कितना दुःख होगा और तुम सुनोगी तो तुम्हें भी कितना कष्ट होगा। इसी प्रकार इसको, और पता लगनेपर इसके माता-पिताको भी दुःख होगा। यहाँ इसका कोई सहायक नहीं है। यह अपने मनकी बात किससे कहे। सासकी देखा-देखी यदि उसकी लड़की (ननद) भी अपनी भावजसे बुरा बर्ताव करने लगती है, तब तो उस बेचारीका दुःख बहुत ही बढ़ जाता है। कहीं-कहीं तो माताके कहनेसे उसका पुत्र (बहूका पति) भी अपनी पत्नीको मारने-डाँटने लगता है। ऐसी अवस्थामें वह बेचारी मन-ही-मन रोती-कलपती है। कहीं-कहीं तो इसी दुःखसे बहुएँ आत्महत्यातक करनेको मजबूर होती हैं !!

अतएव सासको चाहिये कि बहूको अपनी बेटीसे अधिक प्रिय समझकर उससे प्यार करे। अपने सद्व्यवहारसे उसके मनमें यह बैठा दे कि मेरी सास साक्षात् लक्ष्मी है और मेरी मातासे भी बढ़कर मुझसे प्रेम करती है। सासको समझना चाहिये कि बहू ही तुम्हारे कुलकी रक्षा करनेवाली, उत्तम सतान उत्पन्न करके तुम्हारे पतिका नाम अमर करनेवाली है।

ननदको समझना चाहिये कि अपने पीहरके कुलदीपक भाई-की पत्नी होनेके कारण भावज उसके लिये अत्यन्त आदरकी पात्री है। उससे ईर्ष्या-डाह नहीं करनी चाहिये। वह साससे कुछ कहनेमें तो सकुचाती है, इसलिये सगी बहिनकी भाँति उससे प्यार करके उसके मनकी सुख-दुःखकी बात पूछनी चाहिये। उससे कभी भूल हो जाय तो अपनी मातासे उसको छिपा लेना चाहिये और माता कभी नाराज हो तो उसे समझाकर शान्त करना चाहिये। ननदको विचार करना चाहिये कि मेरी ससुरालमें मैं अपनी ननदसे जैसा सुन्दर बर्ताव चाहती हूँ, वैसा ही मुझे भी यहाँ अपनी भावजके साथ करना चाहिये।

यह देखा गया है कि सास-ननद अपने बुरे बर्तावसे बहू-का मन इतना खिन्न कर देती हैं कि उसके कारण कई जगह तो छोटी उम्रकी बहुएँ 'हिस्टीरिया' रोगसे ग्रसित हो जाती हैं और मन-ही-मन सास-ननदको शाप देती हुई अकालमें मर जाती हैं। हिस्टीरिया रोग प्रायः उन नववधुओंको ही अधिक होता है, जिनको अदर-ही-अदर मन मसोसकर दुःख-क्लेश सहने पड़ते हैं। इस मानसिक दुःखसे उनकी रज-व्यवस्था बिगड़ जाती है तथा हिस्टीरिया या मन्दाग्नि हो जाती है। और यदि कहीं बहू भी उग्र स्वभावकी हुई—(पहले न होनेपर भी बहुत अधिक असत्कार और दुर्व्यवहार प्राप्त होनेपर उसमें उग्रता जाग्रत् हो जाती है) तो घरमें रात दिन कलह मचा रहता है। एक तरफ सास रोती है, दूसरी तरफ बहू। ऐसी हालतमें बेचारे पतिकी दुर्गति होती है। वह यदि माकी तरफ होकर पत्नीको कुछ कहता सुनता है तो वह आत्महत्याको तैयार होती है; और माताको कुछ कहता है तो माता नाराज होती है और पत्नीमें लड़नेका साहस बढ़ता है। मतलब यह कि घरकी सुख-शान्ति नष्ट हो जाती है। अतएव सास-ननदको बहू-भावजके साथ बहुत ही उत्तम बर्ताव करना चाहिये। सच्चा धर्म वही है कि जैसा बर्ताव आदमी दूसरोंसे चाहता है वैसा ही दूसरोंके साथ पहले स्वयं करे। 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्' जो बर्ताव अपने मनके प्रतिकूल हों, वे दूसरोंके प्रति न करे।

कौन नारी पृथ्वीको पवित्र करती है ?

(लेखक—प० श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र, ज्योतिषाचार्य)

लज्जा वासो भूषणं शुद्धशीलं पादक्षेपो धर्ममार्गे च यस्याः ।
नित्यं पत्यु. सेवनं मिष्टवाणी धन्या सा स्त्री पूतयत्येव पृथ्वीम् ॥

'जिस स्त्रीका लज्जा ही वस्त्र एवं विशुद्ध भाव ही भूषण हो तथा धर्ममार्गमें जिसका अभिनिवेश हो, मधुर वचन बोलनेका जिसमें गुण हो, वह पतिसेवा-परायण श्रेष्ठ नारी इस पृथ्वीको पवित्र करती है ।'

महर्षि गर्गके प्रति भगवान् श्रीशङ्करका वचन है—

यद्गृहे रमते नारी लक्ष्मीस्तद्गृहवासिनी ।
देवताः कोटिशो वत्स न त्यजन्ति गृहं हि तत् ॥

'जिस घरमें उपर्युक्त सर्वसद्गुणसम्पन्ना नारी सुखपूर्वक निवास करती है, उस घरमें लक्ष्मी अवश्य निवास करती हैं । और हे वत्स ! कोटि देवता भी उस घरको नहीं छोडते ।'

इन देवियोंके पास एक पतिव्रत-धर्म ही ऐसा अमोघ शस्त्र है, जिसके सम्मुख बड़े-बड़े वीरोंके शस्त्र भी कुण्ठित हो जाते हैं ।

सती-साध्वी नारीको धर्म-पथसे गिरा देना सहज नहीं है । सच्छास्त्रोंका सिद्धान्त है कि पतिव्रता स्त्री अनायास ही योगियोंके समान सिद्धि प्राप्त कर लेती है, इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं है ।

जो श्रद्धावती नारी स्नानादिसे शुद्ध होकर सूर्योदयसे पहले 'ॐ ॐ ह्रीं ॐ क्लीं ह्रीं ॐ स्वाहा'—इस 'नारी-सौभाग्यकरण' मन्त्रकी दस (१०८ दानोंकी) माला प्रतिदिन जप करती है, उसके घरमें स्थिर सुख-समृद्धि बनी रहती है—ऐसा कई देवियोंका अनुभव है । इस मन्त्रका जप शुभ मुहूर्तमें प्रारम्भ करे तथा प्रतिवर्ष चैत्र और आश्विनके नवरात्रोंमें विधिपूर्वक हवन कराके यथाशक्ति कन्या-बटुक आदिको भोजनादिसे सन्तुष्ट करती रहे । स्मरण रहे कि इस मन्त्रके हवनमें समिधा वटवृक्षकी ही ग्रहण करनी चाहिये ।

गृहस्थकी साधारण शिक्षा

(लेखक—पं० श्रीरामस्वरूपजी शर्मा)

ससुरालमें जब लड़की जाय तो उसे बड़े शील-स्वभावसे रहना चाहिये; क्योंकि जब नव-वधूको देखनेके लिये नातेदार तथा अड़ोस-पड़ोसकी स्त्रियाँ आती हैं तो उन सबकी दृष्टि इसीपर रहती है कि वधूका बोलना, उठना-बैठना, ऑचल, लाज, चतुराई आदि कैसे हैं । बहूको चाहिये कि वह सबसे पहले उठे, मल-मूत्र त्याग करे, सबसे पीछे सोवे, भोजन भी सबसे पीछे करे, पतिकी गुप्त बात किसीसे न कहे और कभी नगी होकर न नहावे । प्रथम छोटे-छोटे काम करने लगे, फिर धीरे-धीरे बड़े कामोंमें हाथ डाले तथा परिवारमें सचेत होकर चले—

सरल स्वभाव ऑख में सीला । वेष सुहावन बचन रसीला ॥

जो वचन भॉवर फिरते समय अपने पतिसे दिये थे उनका सर्वदा ध्यान रखना चाहिये । पतिको दिये गये वचन ये हैं—

(१) किसी दूसरेके घरमें निवास न करूँगी । (२) बहुत न बोलूँगी । (३) किसी परपुरुषसे बातें न करूँगी । (४) पति-सेवामें मन लगाऊँगी । (५) बिना पतिकी आज्ञाके कहीं नहीं जाऊँगी । (६) बाग या जगलमें अकेली कभी नहीं जाऊँगी, आदि ।

ससुरालमें सास, बड़ी ननद, छोटी ननद, जेठानी, देवरानी आदिसे यथायोग्य सम्मान, श्रद्धा भक्ति, स्नेह और प्रेमके साथ बात-चीत करे । सबका सम्मान करे । तिरस्कार या अवज्ञा किसीकी न करे । बड़ोंकी आज्ञा माने तथा किसीकी कभी निन्दा न करे । जब कभी ससुरालसे मायके घर आवे तो वहाँ पतिके घरकी तथा सास-ननद आदिकी कोई बुराई न करे । क्योंकि एक तो इसको सुननेसे माता-पिताको दुःख होगा; दूसरे ससुरालवाले सुन पावेंगे तो उस (वधू) पर कोप करेंगे और अपना नेह हटा लेंगे । सास, देवरानी, जेठानी आदिसे कभी अलग रहनेका विचार न करे । सासका अपनी मातासे भी अधिक सम्मान करे, क्योंकि वह उसके प्राणनाथकी भी पूज्या है । दूसरे, एक दिन वह भी सास बनेगी और यदि वह अपनी सासके साथ कठोरताका व्यवहार

करेगी तो उसकी पुत्र-वधू भी उसके आचरणसे शिक्षा लेकर उसके साथ वैसा ही व्यवहार करेगी। स्त्रीको अपने मैके और ससुरालके लिये यह याद रखना चाहिये—

मातु बहिन भावज संग प्रीती। सहित सनेह करहु यह रीती॥
बैर भाव जो घर में राखत। ताको उत्तम कोउ न भाखत॥
सहनशील निज करहु स्वभावा। जो सब नर-नारीको भावा॥
मैके रह प्रसन्न सब काजी। पति-गृह सास-ससुर हों राजी॥

अंग-भंग, काना, बधिर, कूबड, लंगड देखि।
कीजै नहिं उपहास कछु, आपन हित अवरेखि॥

मातु-पिता सम सास-ससुरमें। कीजै भाव जाय पतिपुरमें॥
सेवाविधि मर्यादि समेता। नारि-धर्म कह बुद्धि निकेता॥
अति आदर करु जेठ-जेठानी। बालक सम देखहु देवरानी॥
बहिन समान ननद कों जानी। शुद्ध भाव सबही में आनी॥
सब की सेवा पति के नाता। दरसावहु गुण-गणकी बाता॥

जो स्त्री ससुरालमें जाकर इस रीतिसे वर्ताव नहीं करती, उसके लिये ससुरालवाले ताने दिया करते हैं—

मैके पसु यह रही चरावत। नारि-धर्म कछु एक न आवत॥

अतएव हमेशा मीठे वचन बोले। बिना सोचे कोई बात न कहे। मीठा वचन सबको प्रिय होता है—

कागा काको धन हरै, कोयल काको देय।
मीठे वचन सुनाइ कै, जग अपनो करि लेय॥

अहितकारक तथा कटुवचन तो कभी किसीको कहे ही नहीं; क्योंकि वचनका घाव इतना गहरा होता है कि जन्म-भर भरता ही नहीं—

नावक शर घन तीर, काढत कढत शरीर तें।
कुवचन तीर अधीर, कढत न कबहूँ उर गडे॥

सदा प्रिय बोले। बोल-चालके इन नियमोंको सदा ध्यानमें रक्खे—(१) बहुत न बोले, (२) बिल्कुल चुप भी न रहे, (३) समयपर बोले, (४) दोके बीचमें बिना पूछे कभी न बोले, (५) बिना सोचे-समझे न बोले, (६) शीघ्रतासे न बोले, (७) ऊट-पटॉग न बोले, (८) उलाहनेभरी और मतभेदी बात कभी न बोले, (९) सदा धर्मयुक्त यथार्थ बात बोले, (१०) दूसरेको जो बुरी लगे, ऐसी बात कभी न बोले, (११) ताना न मारे, व्यङ्ग्य न करे, (१२) हँसी-दिल्लगी न करे, (१३) दूसरोंकी बुराई या निन्दा न करे, (१४) सत्य, कोमल, मधुर एवं हितकी बात बोले, (१५) अपनी प्रशंसा अपने मुखसे न करे, (१६) बात-चीतमें हठ न करे इत्यादि।

स्त्रियाँ गहना पहनना तो खूब चाहती हैं, पर उनके पहननेके गुण नहीं सीखतीं। गुणवती स्त्रीको गहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है और न शृङ्गारकी। अपने पतिको मोहित करनेके लिये उसके सद्गुण ही सच्चा शृङ्गार और गहने हैं। स्त्रीको चाहिये कि वह ऐसे शृङ्गार करे और गहने पहने—

मिस्सी—मिस (बहाना बनाना) छोड दे।
पान या मेंहदी—जगमे अपनी लाली बनाये रखनेकी चेष्टा करे।
काजल—शीलका जल ऑखोंमे रक्खे।
बेंदी—बदी (शरारत) को तजनेका प्रयत्न करे;
नथ—मनको नाथे, जिससे किसीकी बुराई न हो;
टीका—यशका टीका लगावे, कलङ्क न लगने दे;
बॅदनी—पति और गुरुजनोंकी वन्दना करे;
पत्ती—अपनी पत (लाज) रक्खे;
कर्णफूल—कानोंसे दूसरेकी प्रशंसा सुनकर फूले;
हॅसली—सबसे हॅसमुख रहे;
मोहनमाला—सबके मनको मोह ले;
हार—अपने पतिसे सदा हार (पराजय) स्वीकार करे;
कडे—किसीसे कड़ी (कठोर) बात न बोले,
बाँक—किसीसे बॉकी—तिरछी न रहे, सदा सीधी चाल चले;
दूआ—सबके लिये दूआ (आशीर्वाद) करे;
छल्ले—छलको छोड़े;
पायल—सब बूढ़ी-बडियोंके पैर लगे।

स्त्रीके जो आठ अवगुण—साहस, झूठ, चपलता, छल, भय, मूर्खता, अपवित्रता और निर्दयता—बताये गये हैं, उनको यथासाध्य छोड़नेका प्रयत्न करना चाहिये।

स्त्रीको चाहिये कि वह अपने घरका काम समयके अनुसार बॉट ले। मोटेरूपमें एक साधारण-सा कार्य-क्रम इस प्रकार बनाया जा सकता है—

(१) प्रातःकाल उठकर शौच-स्नान करना, घरकी सफाई करना, सामानकी देख-भाल करना आदि	···	२ घंटे
(२) पूजा-पाठ	···	१ घंटा
(३) विद्याकी चर्चा	···	२ घंटे
(४) भोजन बनाना, खाना	···	३ घंटे
(५) सखी-सहेलियोंमें बैठना	···	१ घंटा
(६) शिल्प-विद्या	···	२ घंटे
(७) शामका भोजन बनाना, खाना	···	३ घंटे
(८) बाल-शिक्षा और परीक्षा	···	२ घंटे
(९) नौकरोंका काम देखना, घरका सामान जँचाना, हिसाब लिखना आदि	···	२ घंटे
(१०) शयन ···	···	६ घंटे
		२४ घंटे

इस प्रकार अपने सुविधानुसार एक निश्चित कार्य क्रम बना लेना चाहिये। इससे समयकी बचत होती है तथा काम भी समयपर ठीक ढंगसे होता है।

स्त्रीके लिये परिश्रमी होना बहुत आवश्यक है। बिना परिश्रम किये शरीरमें नाना भाँतिके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। स्त्रियोंके लिये घरका काम करना, आटा पीसना आदि सर्वोत्तम व्यायाम हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ घरके कामको हेय समझती हैं, यह बहुत बुरा है। घरका काम करनेमें सर्वदा गौरव-बुद्धि होनी चाहिये। याद रखना चाहिये कि जो स्त्री घरके काम करनेमें लज्जा बोध करती है, वह अपने स्त्रीत्वको खो बैठती है।

स्त्रीको चाहिये कि अपने पतिकी आमदनीके अनुसार खर्च करे, प्रतिमास कुछ बचानेका प्रयत्न रक्खे। आमदनीसे अधिक, उधार लेकर तो कभी भी खर्च न करे। जो गृहस्थ उधार लेकर खर्च करते हैं, उनका अपना जीवन तो सदा दुखी रहता ही है, ऋणभारसे दबे हुए उनके बच्चे भी बहुत क्लेश भोगते हैं। काम भी ठीक ढगसे नहीं हो पाता। नीतिके इन वचनोंपर सदा ध्यान देना चाहिये—

अपनी पहुँच विचारके करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर॥
कारज वाही को सरै, करै जो समय निहार।
कबहुँ न हारै खेल, जो खेलै दाँव विचार॥

अधिक खर्च होनेमें अधिकतर स्त्रियोंकी विलासिता, फैशन तथा दूसरोंकी देखा-देखी करना ही प्रधान कारण होता है। अतएव इससे बचना चाहिये। स्त्रियोंको चटोरपनसे भी सदा बचना चाहिये।

जीभ न जाके बस रहै, सो नारी मतिहीन।
धन, लज्जा, आरोग्यता, करै प्रतिष्ठा हीन॥
रिनी दुखी निजको करै, नारि चटोरी जोय।
झूठ डाह कपटादि सब अवगुन ताके होय॥

चटोरपन गृहस्थको निर्धन कर देता है। क्योंकि नित नयी-नयी बातात बनती है और निर्धनकी कोई बात नहीं पूछता। जिसपर बीतती है, वही भोगता है। सम्पत्तिमें हजार सङ्गी हो जाते हैं, पर विपत्तिमें कोई भी पास नहीं फटकता। वृक्षके नीचे निवास करना, घासपर सोना, छाल और पत्ते पहनकर लज्जाकी रक्षा करना अच्छा है; परन्तु निर्धन होकर बन्धुवर्गमें रहना अच्छा नहीं। इसलिये स्त्रीको चाहिये कि वह अपनी तथा अपनी सन्तानकी जीभपर काबू रक्खे, आवश्यकतासे अधिक कपड़ा न खरीदे तथा देखा देखी गहने आदि न बनवावे। जहाँतक हो, बाजारसे उधार वस्तु कभी न खरीदे, नकद पैसा देकर चीजें लेवे। उधार चीजें खरीदने-से एक तो बाजारसे महँगे भावपर चीजें मिलती हैं, दूसरे खर्चका कोई हिसाब नहीं रहता कि कितना हो गया।

नारी गृहस्थाश्रमकी मूलभित्ति है। वह अपने आचरणका प्रभाव पत्नीरूपसे पतिपर तथा मातृरूपसे भावी सन्तानपर डालती है। अतएव उसका सदाचार एवं शिष्टाचारसे सम्पन्न होना देश एवं समाजकी उन्नतिके लिये कितना आवश्यक है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं।*

पर्दा आकर्षणका हेतु

भारतीय स्त्रियोंमें बहुत कुछ आकर्षण उनके जनसमूहसे अलग रहने, अन्तःपुरमें छिपी रहनेके कारण ही है और वे इस बातको जानती हैं। उदाहरणार्थ उनमें अमेरिकाके स्कूलोंकी वह भद्दी प्रथा नहीं है जहाँपर लड़के-लड़कियोंके साथ पढ़ने तथा खेलनेसे उनका एक-दूसरेके प्रति आकर्षण नष्ट हो जाता है। भारतमें स्त्रियोंका आदर तथा उनकी शक्ति बहुत कुछ इसीलिये है कि वे अन्तःपुरमें रहती हैं और कभी-कभी ही दृष्टि-पथमें आती हैं।—अटो रथफील्ड

---

* बहुत बड़ा लेख था। स्थानाभावसे एक अंशमात्र छापा गया है। —सम्पादक

नारीके दूषण

कलह—

बात बातमें लड़ने-झगड़नेको तैयार रहना, लड़े बिना चैन न पड़ना, घरमें तथा अड़ोस-पड़ोसमें किसीसे भी खुश न रहना—कलहका स्वरूप है। यह बहुत बड़ा दोष है। जो स्त्री कलह करके अपने दोष धोना तथा अपनी प्रधानता स्थापन करना चाहती है, उसको परिणाममें दोष और घृणा ही मिलते हैं। कलह करनेवाली स्त्रीसे सभी घृणा करते है। यहाँतक कि कई बार वह जिन पति-पुत्रोंके लिये दूसरोंके साथ कलह करती है, वे पति-पुत्र भी उससे अप्रसन्न होकर उसका विरोध करते हैं। कलहसे अपने सुख शान्तिका तो नाश होता ही है, सारे परिवारमें महाभारत मच जाता है। सास-ससुर, पति-पुत्र-कन्या और नौकर-नौकरानियाँ सबके मनमें उद्वेग होता है। घरके कामोंमें विशृङ्खलता आ जाती है। पतिका अपने व्यापार या दफ्तरके काममें मन नहीं लगता। रोगीको उचित दवा-पथ्य नहीं मिलता। जिस कुटुम्बमें कलहकारिणी कर्कशा स्त्री होती है, उसके दुर्भाग्यका क्या ठिकाना। ताने मारना, बढ़ा-चढ़ाकर दोषारोपण करना, दूसरोंको गाली देना और स्वयं खाना कलहकारिणीके स्वभावमें आ जाता है। अतएव उसके मुँहसे आवेशमें ऐसी-ऐसी गंदी बातें निकल जाती हैं कि जिन्हें सुनकर लज्जा आती है। जबानका घाव अमिट होता है। क्रोधावेशमें नारी अपने घर-परिवारके लोगोंको ऐसे शब्द कह बैठती है कि जन्मसे चला आता हुआ प्रेम सहसा नष्ट हो जाता है तथा जीवनभरके लिये परस्पर वैर बँध जाता है। और तो क्या, क्रोधमें भरकर नारी ऐसी क्रिया कर बैठती है कि वह अपने स्वामीकी नजरसे भी गिर जाती है और फिर उम्रभर क्लेश सहती है। स्त्री जहाँ एक बार पतिकी आँखसे गिरी कि फिर सभीकी आँखोंसे गिर जाती है। अतः नारीको इस जघन्य दोषसे अवश्य बचे रहना चाहिये

निन्दा—हिंसा-द्वेष—

जहाँ चार स्त्रियाँ इकट्ठी हुईं कि परचर्चा शुरू हुई। परचर्चामें यदि पराये गुणोंकी आलोचना हो, तब तो कोई हानि नहीं है; परंतु ऐसा होता नहीं। आजकल मानव-स्वभावमें यह एक कमजोरी आ गयी है कि वह दूसरोंके गुण नहीं देखता, दोष ही देखता है। कहीं-कहीं तो दोष देखते-देखते दृष्टि ऐसी दोषमयी बन जाती है कि फिर उसे सबमें सर्वत्र सदा दोष ही दीखते हैं और दोष दीखनेपर तो निन्दा ही होगी, स्तुति कैसे होगी। निन्दासे दोषोंका चिन्तन होता है; जिनकी निन्दा होती है, उनसे द्वेष बढ़ता है। द्वेषका परिणाम हिंसा है। अतएव परनिन्दासे बचना चाहिये। उचित तो यह है कि पर-चर्चा ही न हो। या तो भगवच्चर्चा हो या सत्-चर्चा हो। यदि परचर्चा हो तो वह गुणोंकी हो, दोषोंकी नहीं। इससे सभीको शान्ति मिलेगी तथा बच्चे भी इसी आदर्शमें ढलेंगे। निन्दाकी भाँति चुगली भी दोष है। उससे भी बचना चाहिये। चुगली करके नारियाँ घरमें परस्पर झगड़ा कराने और घरके बर्बाद होनेमें कारण बनती हैं, जो सर्वथा अनुचित तथा हानिकारी है।

ईर्ष्या—

दूसरोंकी उन्नति देखकर, दूसरोंको धन-पुत्र आदिसे सुखी देखकर जलना ईर्ष्या या डाह है। यह बहुत बुरा दोष है और स्त्रियोंमें प्रायः होता है। इससे बहुत-से अनर्थोंकी उत्पत्ति होती है। अतएव इससे भी बचना आवश्यक है।

भेद—

नारियोंमें प्रायः दोष होता है कि वे घरके लोगों और नौकरोंके खान-पानमें तो भेद रखती ही हैं, अपने पति-पुत्रोंमें तथा घरके सास, ससुर, जेठ, देवर, ननद आदिमें तथा उनकी सन्तानमें भी खान-पान, वस्त्रादि पदार्थोंमें तथा व्यवहारमें भेद रखती हैं। बबईमें एक संभ्रान्त घरकी बहूने पतिके लिये दही छिपाकर रख लिया था और विधुर ससुरको माँगनेपर वह झूठ बोल गयी थी। परिणाम यह हुआ कि ससुरने बुढ़ौतीमें दूसरा विवाह कर लिया और आगे चलकर उस पुत्र वधू और पुत्रको ससुरके धनमेंसे कुछ भी नहीं मिला। अपने ही पेटके लड़के और लड़कीमें भी स्त्रियाँ भेद करते देखी जाती हैं। लड़केको बढ़िया भोजन-वस्त्र देती हैं, लड़कीको घटिया। लड़का अपनी बहिनको मारता है तो मा हँसती है और कन्याको सहन करनेका उपदेश देती है; एवं कन्या कहीं भाईको जरा डाँट भी देती है तो मा उसे मारने दौड़ती है। पर आश्चर्य यह कि यह भेद तभीतक रहता है जबतक कन्याका विवाह नहीं हो जाता। विवाह होनेके बाद माता अपनी कन्यासे विशेष प्यार करती है और पुत्र वधू तथा पुत्रसे कम। खास करके, पुत्र-वधूके प्रति दुर्व्यवहार और कन्याके प्रति सद्व्यवहार करती है। इस भेदसे भी घर फूटता है। नारियोंको इस व्यवहार-भेदका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

दूषित स्वभावकी नारी

दिन चढ़ आया किंतु सोती पड़ी आलसमें, कोई सदा डूबी-सी विषादमें लखाती है।
कोई कलहा है, रूठती है, त्यों कुवेषा नारि . कोई मार सासको ही गेहसे भगाती है ॥
कोई कुलटा है, पतिद्रोह ओह कोई करे, निपट निलज्ज कोई नंगी ही नहाती है।
कोई मुँहजोरी, कोई चटक चटोरी बड़ी . बन खरचीली धन-धर्म भी गँवाती है ॥

फूहड़ और चतुर
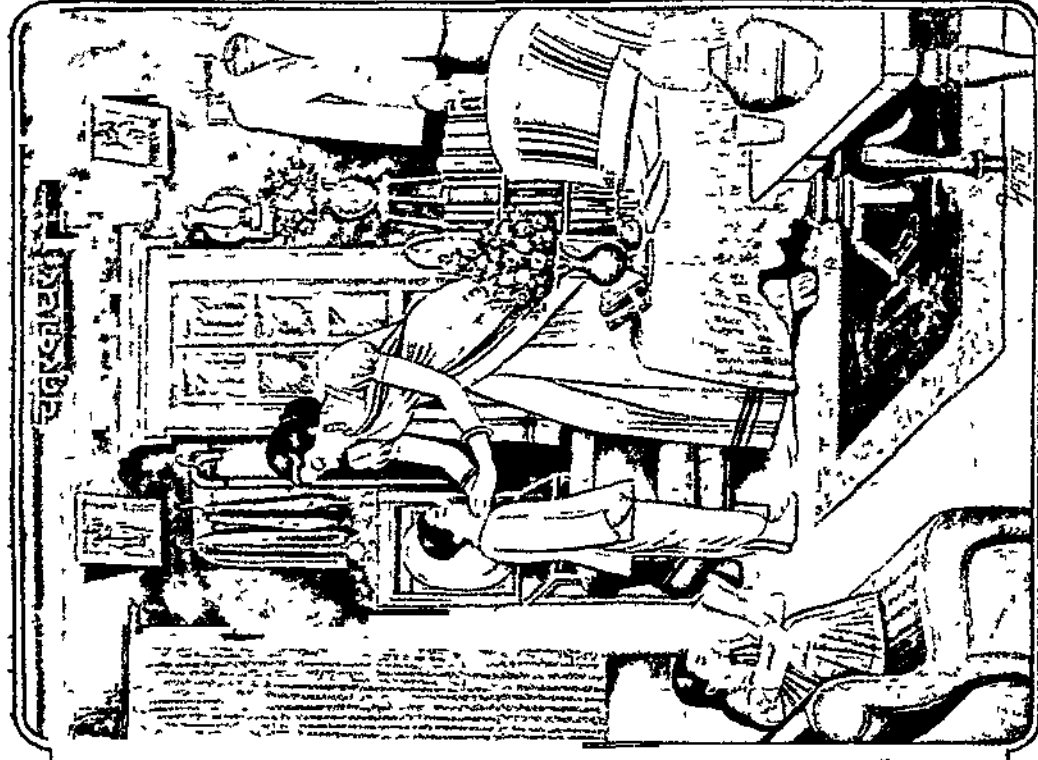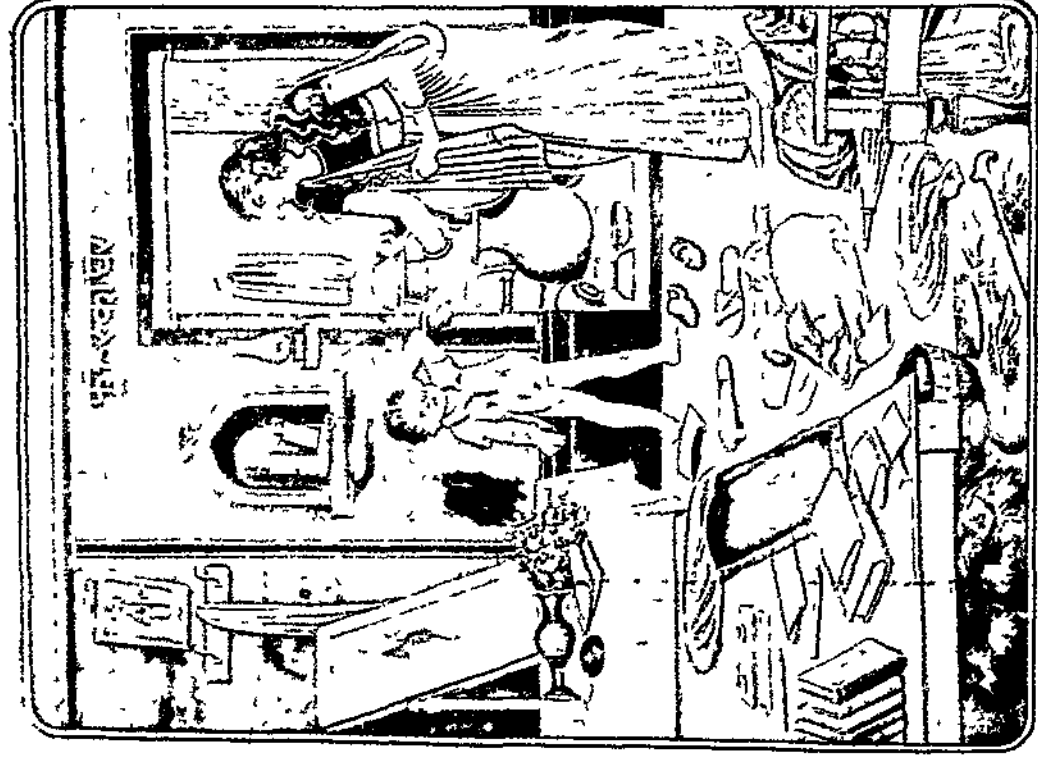
विलासिता-शौकीनी—

यह दोष आजकल बहुत ज्यादा बढ़ रहा है। भ्रष्ट तैल, साबुन, पामेड, पाउडर, स्नो, एसेंस, बढ़िया-से-बढ़िया विदेशी ढगके कपड़े-गहने आदिकी इतनी भरमार हो गयी है कि उसके मारे गृहस्थीका अन्य खर्च चलना कठिन हो गया है। पत्नियोंकी विलासिताकी माँगने पतियोंको तग कर दिया है। इसीको लेकर रोज घरोंमें आपसमें झगड़े हो जाते हैं। यह भारतीय नारियोंके लिये कलङ्क है। शृङ्गार होता है पतिके लिये, न कि दुनियाको दिखानेके लिये। आजकी फैशन तथा विलासिताने स्त्रियोंको बहुत नीचे गिरा दिया है। घटों वेष-भूषामें खर्च कर देना, खर्चको अत्यधिक बढ़ा लेना, बुरी आदत डाल लेना—जो आगे चलकर दोहरा दुःख देती है—और घरके काम-काजमें हाथ न लगाना, ये बहुत बड़े दोष हैं, जो शौकीनीके कारण उत्पन्न होते हैं। स्वास्थ्य तथा सफाईके लिये आवश्यक उपकरण रखनेमें आपत्ति नहीं और न साफ-सुथरे रहनेमें दोष है। बल्कि साफ-सुथरा रहना तो आवश्यक है। दोष तो शौकीनीकी भावनामें है, जो त्याज्य है।

फिजूलखर्च—

शौकीनीकी भावनाके साथ ही दूसरी स्त्रियोंकी देखादेखी तथा मूर्खतासे एव सग्रह करनेकी आदतसे भी यह दोष बढ़ जाता है। वही गृहस्थ सुखी रहता है, जो आमदनीसे कम खर्च लगाता है। चतुर और सुघड बुद्धिमती स्त्रियाँ एक पैसा भी व्यर्थ खर्च नहीं करतीं। लोगोंकी देखादेखी अनावश्यक सामान नहीं खरीदतीं, चौके तथा वस्त्राभूषणोंमें सादगीसे काम लेती हैं। बच्चोंको नहा-धुलाकर साफ-सादे कपड़े पहना-कर और उनके मनमें उस सादगी तथा सफाईमें ही गौरव-बुद्धि उपजाकर सुन्दर सुडौल रखती हैं, जिससे न तो उनकी आदत बिगड़ती और न खर्च ही अधिक होता है। खर्चकी तो कोई सीमा ही नहीं है। अपव्यय करनेपर महीनेमें हजारों रुपये भी काफी नहीं होते और सोच-समझकर खर्च करनेसे इस महँगीमें भी सहज ही अपनी आमदनीके अदर ही काम चल जाता है। स्त्रियोंको हिसाब रखना सीखना चाहिये और आमदनी-मेंसे कुछ अवश्य बचाकर रक्खेंगी, ऐसा निश्चय करके ही खर्च करना चाहिये। 'तेते पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर।'

गर्व-अभिमान—

कोई-कोई स्त्री अपने पति-पुत्रके धन या पद-गौरवका अथवा अपने गहने-कपड़ोंका गर्व—अभिमान वाणी और व्यवहार-में लाकर इतनी रूखी बन जाती है कि घरके लोगोंको उससे बात करते डर लगता है और अपमान बोध होता है। ऐसी स्त्री बिना मतलब सबको अपना द्वेषी बना लेती है। अतएव किसी भी वस्तुका गर्व कभी नहीं करना चाहिये।

दिखावा—

नारियोंके स्वभावमें प्रायः ऐसा देखा जाता है कि वे नहीं समझती हैं कि किसी भी चीजको दिखाकर करना चाहिये। कन्या या ननदको कुछ देंगी तो उसको पहले मजाकर लोगोंको दिखलायेंगी, तब देंगी। कहीं-कहीं तो दिखाया जाता है ज्यादा और दिया जाता है कम, जिससे कन्या आदिको दुःख भी होता है। इसी प्रकार किसी परिवारके या बाहरके सम्मानप्राप्त पुरुष या स्त्रीकी कभी कोई सेवा की जाती है तो ऐसा सोचा जाता है कि हमारी सेवाका पता इसको जरूर लग जाना चाहिये। सेवा करें और किसीको कुछ पता भी न चले तो मानो सेवा ही नहीं हुई। सेवा करके जताना, एहसान करना और बदलेमें कृतज्ञता तथा खुशामद प्राप्त करना ही मानो सेवाकी सफलताका निशान समझा जाता है। यह बड़ा दोष है। देना वही सात्त्विक है, जिसको कोई जाने ही नहीं। लेनेवाला भी न जाने तो और भी श्रेष्ठ।

विषाद—

कई स्त्रियोंमें यह देखा गया है कि वे दिन-रात विषादमें डूबी रहती हैं। उनके चेहरेपर कभी हँसी नहीं। दुःख-कष्टमें तो ऐसा होना स्वाभाविक है, पर सब तरहके सुख-स्वाच्छन्द्य होनेपर भी स्वभावसे ही हमेशा विषादभरी रहना और किसी बातके पूछते ही झुँझला उठना तो बडा भारी दोष है। इसको छोड़कर सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये। प्रसन्नता सात्त्विक भाव है। प्रसन्न मनुष्य सबको प्रसन्नताका दान करता है। विषादी और क्रोधी तो विषाद और क्रोध ही बाँटते हैं।

हँसी-मजाक—

कई नारियोंमें हँसी-मजाकका दोष होता है। कई तो देवर या ननदोई आदिके साथ गदी दिल्लगी भी कर बैठती हैं। परिवारके तथा घरमें आने-जानेवाले पुरुषों तथा स्त्रियोंके साथ भी दिल्लगी करती रहती हैं। हँसमुख रहना गुण है। निर्दोष और सीमित विनोद भी बुरा नहीं। परन्तु जहाँ हँसी-मजाककी आदत हो जाती है और उसमें ताना, व्यङ्ग्य, कटुता और अश्लीलता आ जाती है वहाँ उससे बड़ी हानि होती है।

स्त्रीको सदा ही मर्यादामें बोलनेवाली और हँसमुखी होनेपर भी गम्भीर होना चाहिये।

वाचालता—

बहुत बोलना भी दोष है। इसमें समय नष्ट होता है; व्यर्थ-चर्चामें असत्य, पर-निन्दा, चुगली आदि भी हो जाते हैं। जबानकी शक्ति नष्ट होती है और घरके कामोंमें नुकसान होता है। गप लड़ानेवाली स्त्रियोंके घर उजड़ा करते हैं। अतएव नारीको समझ-सोचकर सदा हितभरी, मीठी वाणी बोलनी चाहिये और वह भी बहुत ही कम। ज्यादा बोलनेवालीको तो भजन करनेकी फुरसत ही नहीं मिलती, जो बहुत बड़ी हानि है।

स्वास्थ्यकी लापरवाही तथा कुपथ्य—

स्त्रियोंमें यह दोष प्रायः देखा जाता है कि वे स्वास्थ्यकी ओरसे लापरवाह रहती हैं। रोगको दबाती तथा छिपाती हैं और कुपथ्य भी करती रहती हैं। जिन बहुओंको ससुरालमें सासके डरसे रोग छिपाना पड़ता है और रोगकी यन्त्रणा भोगते हुए भी जबरदस्ती बलवान् मजदूरकी तरह दिनभर खटना पड़ता है, उनकी बात दूसरी है। पर जो प्रमाद-वश या दवा लेने और पथ्यसे रहनेके डरसे रोगको छिपाती है, वह तो अपने तथा घरके साथ भी अन्याय करती है। साथ ही स्त्रियाँ प्रायः स्वास्थ्य-रक्षाके नियमोंको भी नहीं जानतीं; और कुछ जानती हैं तो उनकी परवा नहीं करतीं। ऐसा नहीं करना चाहिये।

मोह—

कई स्त्रियाँ मोहवश बच्चोंको अपवित्र वस्तुएँ खिलाती, अपवित्र रखती, जान-बूझकर कुपथ्य सेवन कराती, उन्हें झूठ बोलने, नौकरोंके साथ बुरा बर्ताव करने तथा गाली देने और मारनेकी बुरी आदत सिखाती, उनकी चोरी-चमारीकी क्रियाको सहकर उनका वैसा स्वभाव बनाती और पढ़ाने-लिखानेमें प्रमाद करती हैं। साथ ही उन्हें कुछ भी काम न करने देकर और दिन-रात खेल-तमाशों तथा सिनेमा वगैरहमें ले जाकर फिजूल-खर्च, आलसी, सदाचाररहित, गंदा, रोगी और बुरे स्वभावका बनाकर उनका भविष्य बिगाड़ती है एवं परिणाममें उनको दुखी बनाकर आप भी दुखी होती है। इस दोषसे सन्ततिका शील और सदाचार नष्ट हो जाता है और बच्चे कुलदीपकसे कुलनाशक बन जाते हैं। माताओंको व्यर्थके मोहसे बचकर बच्चोंको—पुत्र तथा कन्या दोनोंको—संयमी, धार्मिक, सदाचारी और सद्गुण-सम्पन्न बनाना चाहिये, जिससे वे सुखी हों तथा अपने आचरणोंसे कुलका सिर ऊँचा कर सकें।

कुसङ्ग—

स्त्रियोंको भूलकर भी परनिन्दा करनेवाली, खुशामद करनेवाली, झाड़-फूँक और जादू-टोना बतलानेवाली, पर-पुरुषोंकी प्रशंसा करनेवाली, विलासिनी, अधिक खर्च करनेवाली, इधर-उधर भटकनेवाली, कलहकारिणी और कुलटा स्त्रियोंका सङ्ग नहीं करना चाहिये। इनका सङ्ग कुसङ्ग है तथा सब प्रकारसे पतनका कारण है।

आलस्य—

आलस्य, प्रमाद और निद्रा तमोगुणके स्वरूप हैं। तमोगुणसे चित्तमें मलिनता आती है और जीवनमें प्रगतिका मार्ग रुक जाता है। अतएव स्त्रियोंको सदा सत्कर्मोंमें लगे रहना चाहिये और आलस्य-प्रमादादिसे बचना चाहिये।

व्यभिचार—

स्त्रियोंके लिये यह सबसे बड़ा दोष है। शरीरसे तो क्या, वाणी और मनसे भी पर-पुरुषका सेवन करना महापाप है। सतीत्वका नाशक है। लोकमें निन्दा करानेवाला और परलोकको बिगाड़नेवाला है। जो नारी ऐसा करती है, उसका मुँह देखना पाप है। उसे लाखों करोड़ों बरसोंतक नरकोंकी भीषण यन्त्रणा भोगनी पड़ती है और तदनन्तर जहाँ जन्म होता है, वहाँ बार-बार भाँति-भाँतिके भीषण दुःखों-कष्टोंका भार वहन करके जीवनभर रोना पड़ता है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥

न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति

'स्त्रियोंको किसी भी वयमें स्वाधीन छोड़ना उचित नहीं है।' —हरेस मैन
'पुरुषोंके अधीन रहनेमें ही स्त्रियोंकी सबसे बड़ी शोभा है।'—लिविस मारिस

नारीके भूषण

सौन्दर्य—(१) सुन्दर वर्ण, सुडौल अङ्ग-प्रत्यङ्ग, चाल, दृष्टि, भाव-भङ्गी तथा तोड़-मरोड़ आदिमें सुहावनापन और वाणीमें माधुर्य—यह बाहरी सौन्दर्य है।

(२) क्षमा, प्रेम, उदारता, निरभिमानता, विनय, सहिष्णुता, समता, शान्ति, धीरता, वीरता, परदुःखकातरता, सत्य, सेवा, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, शील और प्रभुभक्ति आदि सद्गुण तथा सद्भाव भीतरी सौन्दर्य है।

बाहरी तथा भीतरी दोनों ही आवश्यक हैं, परंतु बाहरीकी अपेक्षा भीतरीका महत्त्व अधिक है। रूपवती नारियोंको रूपका गर्व न करके अपने अंदर सद्गुणों तथा सद्भावोंके सौन्दर्यको बढ़ाना चाहिये।

लज्जा—धर्मविरुद्ध, शीलके विरुद्ध और समाजकी पवित्र प्रथाओंके विरुद्ध कुछ भी करनेमें महान् संकोच और पुरुष-समाजके संसर्गसे बचनेके लिये होनेवाले दृष्टि-संकोच, अङ्ग-संकोच और वाणी-संकोचका नाम लज्जा है। लज्जा नारीका भूषण है और यह शीलभरी आँखोंमें रहता है। बीमार एवं बड़ोंकी सेवामें तथा कर्तव्यपालनमें लज्जाके नामपर तत्पर न होना लज्जाका दुरुपयोग एवं मूर्खता है। साथ ही अबाध पुरुष-संसर्गमें निःसंकोच जाना-आना लज्जाका निरङ्कुश नाश है, जो नारीके शीलके लिये अत्यन्त घातक है।

विनय—वाणीमें, व्यवहारमें तथा शरीर-संचालनमें गर्व, उग्रता, कठोरता तथा टेढ़ेपनका त्याग करके नम्र, सरल, स्नेहपूर्ण, आदर-भावयुक्त और मधुर होना विनय है। विनयका अर्थ न तो चापलूसी है न कायरता। दुष्टोंके दमनमें कठोरता और उग्रता आवश्यक है। पर घर-परिवार तथा संसारके अन्य सभी व्यवहारोंमें नारीको विनयरूप भूषण सदैव धारण किये रहना चाहिये।

संयम-तप—शरीर, मन और वाणीको विषयोंकी ओरसे यथासाध्य हटाये रखना तथा उनको कभी भी अवैध तथा अकल्याणकारी कार्यमें न लगने देनेका नाम संयम है। इसीको तप भी कह सकते हैं। गीतामें भगवान्‌ने बतलाया है—(१) देव-द्विज, गुरुजन और ज्ञानीजनोंकी पूजा, शरीरकी शुद्धि, सरलता (शरीरकी सौम्यता), ब्रह्मचर्य (पर-पुरुष अथवा पर-स्त्रीका सर्वथा त्याग एवं पति-पत्नीमें शास्त्रोक्त सीमित संसर्ग) तथा अहिंसा (किसीको भी चोट न पहुँचाना) यह शारीरिक तप है; (२) किसीको घबराहट न पैदा करे ऐसी सच्ची, प्रिय और हितकारी वाणी बोलना तथा भगवन्नाम-का उच्चारण करना एवं परमार्थ-ग्रन्थोंको पढ़ना—यह वाणी-का तप है और (३) मनकी प्रसन्नता, मनकी सौम्यता, मनका मौन (अन्य चिन्तनसे रहित केवल भगवच्चिन्तन-परायण होना), मनका वशमें रहना और मनका पवित्र भावोंसे युक्त रहना—यह मनका तप है। शरीर, वचन और मनसे होनेवाली तमाम कुप्रवृत्तियोंसे उनको हटाकर उन सत्प्रवृत्तियोंमें लगाये रखना ही संयम है।

संतोष—परश्रीकातरता, असहिष्णुता, लोभ और तृष्णाके वशमें न होकर भगवान्‌की दी हुई अपनी स्थितिमें सन्तुष्ट रहना 'संतोष' है। संतोषसे चित्तकी जलन मिटती है, द्वेष-विषाद और क्रोधसे रक्षा होती है एवं परम सुखकी प्राप्ति होती है।

क्षमा—अपना अहित करनेवालेके व्यवहारको सह लेना अक्रोध है और उसको अपने तथा दूसरे किसीके द्वारा भी बदलेमें दुःख न मिले एवं उसकी बुद्धि सुधर जाय, इस प्रकारके सद्भावका नाम क्षमा है। अक्रोध अक्रिय है, क्षमा सक्रिय। क्षमा कायरोंका नहीं, वरं वीरोंका धर्म है।

धीरता-वीरता—दुःख, विपत्ति, कष्ट और भयके समय भगवान्‌के मंगलमय विधानपर भरोसा रखकर तथा 'विपत्ति सदा नहीं रहती। बादल आते हैं, आकाश काला हो जाता है; फिर बादल हटते हैं और सर्वत्र प्रकाश फैल जाता है।' इस प्रकार समझकर अपने कर्तव्यका पालन करते हुए मैदानमें डटे रहना धीरता है और इसीके साथ-साथ विरोधी शक्तियों-को निर्मूल करनेका साहस तथा बुद्धिमानीसे पूर्ण प्रयत्न करना वीरता है।

गम्भीरता—समझकर मधुर थोड़े शब्दोंमें बोलना, व्यर्थ न बोलना, हँसी-मजाक न करना, विवाद न करना, चपलता-चञ्चलता न करना, प्रत्येक कार्यको खूब सोच विचार-कर दृढ़ निश्चयके साथ करना, शान्त और शिष्ट व्यवहार करना, झगड़े-टंटेमें न पड़ना, जगत्‌की विपत्ति या घरमें कोई काम आ पड़नेपर विचलित न हो जाना गम्भीरता है। गम्भीर स्त्रीका तेज सब मानते हैं तथा उसका आदर करते हैं और वह भी बहुत ही व्यर्थकी कठिनाइयोंसे बच जाती है।

समता—सबमें एक ही आत्मा है अथवा प्राणिमात्र सब एक ही प्रभुकी अभिव्यक्ति या सन्तान हैं, यह समझकर मनमें सबके प्रति समान भाव रखना, सबके दुःखको अपना दुःख समझना, सबके हितमें अपना हित मानना—समता है। व्यवहारमें तो प्रसंगानुसार कहीं-कहीं भिन्नता करनी पड़ती

है, जो अनिवार्य है; पर मनमें आत्मदृष्टि अथवा परमात्मदृष्टिसे सबमें समता रखनी चाहिये। विषमता इस रूपमें हो तो वह गुण है—जैसे अपने तथा अपनी सन्तानके हिस्सेमें कम परिमाणमें, कम संख्यामें और अपेक्षाकृत घटिया चीज ली जाय; और अपने देवर-ननद एवं जेठानी-देवरानी तथा उनकी सन्तानके हिस्सेमें अधिक परिमाण, अधिक संख्यामें और अपेक्षाकृत बढ़िया चीजें प्रसन्नतापूर्वक दी जायँ।

सहिष्णुता—दुःख, कष्ट और प्रतिकूलताके सहन करनेका नाम सहिष्णुता है। यह नारी-जातिका स्वाभाविक गुण है। नारी पुरुषकी अपेक्षा बहुत अधिक सहती है और सहनेकी शक्ति रखती है। साधारणतः सहिष्णुता गुणकी तुलना वृक्षोंके साथ की जाती है। 'तरुणेव सहिष्णुना।' लोग पत्थर मारते हैं तो फलका वृक्ष सुन्दर सुपक्व मधुर फल देता है; लोग काटकर जलाते हैं तो वह स्वयं जलकर उनका यज्ञकार्य सम्पादन करता है, भोजन पकाता है और शीतसे ठिठुरते हुए शरीरमें गर्मी पहुँचाकर जीवनदान देता है। फलवान् वृक्ष बनता भी है अनेकों आँधी-पानी, झड़-बिजली आदि बाधा-विपत्तियोंको झेलकर। यदि किसी नारीको प्रतिकूल भावोंके पति और सास प्राप्त हुए हों तो उसे सहिष्णु बनकर प्रेमके द्वारा उनको सन्मार्गपर लाना चाहिये। सहना, कलह न करके प्रेम करना, प्रतिवाद न करके सेवा करना—ऐसा अमोघ मन्त्र है कि इससे शीघ्र ही अशान्तिसे भरा उजड़ता हुआ घर पुनः बस जाता है और उसमें शान्ति तथा सुखकी लहरें उछलने लगती हैं।

सुव्यवस्था तथा सफाई—घरकी वस्तुएँ, आवश्यक सामग्री तथा कार्योंको सुशृङ्खलाबद्ध रखनेका नाम सुव्यवस्था है। नारी घरकी लक्ष्मी है, घरके सौन्दर्य एवं ऐश्वर्यकी देवी है। सुव्यवस्थाके बिना घरमें लक्ष्मीका स्वरूप बिगड़ जाता है। इधर-उधर बेतरतीब बिखरी चीजें, कूड़े-कर्कटसे भरा आँगन, मकड़ीके जालोंसे छायी दीवारें, कपड़े तथा बरतन आदिका मैलापन, खोजनेपर घंटोंतक जरूरी चीजोंका नहीं मिलना, आवश्यकता होनेपर इधर-उधर दौड़-धूप करना, झुँझलाना और दूसरोंपर दोषारोपण करना, हिसाब-किताबका पता नहीं—ये सब अव्यवस्थाके रूप हैं। इनसे घर बरबाद होता है और तकलीफ तो कभी मिटती ही नहीं। थोड़ी-सी सावधानी रखके नियत स्थानपर प्रत्येक वस्तु सम्हालकर रक्खी जाय, घर-दीवारोंको झाड़-बुहार लिया जाय और कपड़े-बरतन आदिको धो माँजकर साफ रक्खा जाय, तो सहज ही सुव्यवस्था हो सकती है। आवश्यकता होते ही चीज मिल जाती है। न समय व्यर्थ जाता है, न झुँझलाहट और किसीपर दोष लगानेकी नौबत आती है। गंदगी तथा कूड़ा-कर्कट न रहनेसे रोग तथा रोगके कीटाणु भी नहीं पैदा होते और व्यर्थकी सारी तकलीफें भी मिट जाती हैं।

श्रमशीलता—नारी घरमें रहती है, उसके स्वास्थ्यके लिये घरके काम ही सुन्दर व्यायाम हैं। जो नारी शारीरिक परिश्रम करती है, आलस्य तो उसके पास फटकता ही नहीं, रोग तथा बुढ़ापा भी उससे दूर-दूर ही रहते हैं। खाया हुआ भोजन हजम होता है। रक्तमें शक्ति तथा शुद्धि होती है। मन प्रफुल्लित रहता है। आजकल कुछ नारियाँ कहती हैं कि 'घरमें पैसा है, नौकर-नौकरानियाँ काम कर सकती हैं; फिर हम मेहनत क्यों करें?' पर यह बड़ी भूल है। नौकर-नौकरानियाँ काम कर देंगी, पर आपका खाया हुआ वे कैसे पचा देंगी। आपको स्वस्थ तथा शुद्ध रक्त वे कहाँसे देंगी। फिर बिना सम्हालके, नौकरोंसे कराये हुए काम भी तो ठीक नहीं होते। चोरी शुरू होती है। खर्च बढ़ता है। और सबसे बड़ी हानि यह होती है, घरमें आलस्य और रोगोंकी उत्पत्ति होती है। नौकर रहनेपर भी घरकी सफाई, आटा पीसना, चर्खा कातना, दही बिलोना, रसोई बनाना आदि काम तो हाथसे करनेमें ही सब तरहका लाभ है। भोजनमें भावके अनुसार अमृत भी हो सकता है और विष भी। माता तथा पत्नीकी बनायी रसोईमें अमृत होगा। खर्च भी बचेगा और विशुद्धि भी रहेगी। चक्की चलानेवाली स्त्रियोंको रजसम्बन्धी रोग बहुत कम होते हैं। खेतोंमें काम करनेवाली नारियाँ बहुत कम बीमार होती हैं। अतएव नारीको शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिये।

निरभिमानता—रूप, धन, पुत्र, विद्या, बुद्धि तथा अधिकार आदिका गर्व न करना और सबके साथ नम्रता तथा सौजन्यपूर्ण व्यवहार करना निरभिमानता है। स्त्रियोंमें गर्व बहुत जल्दी आता है और वे उसके आवेशमें गाँव और पड़ोसियोंका तथा नौकर-चाकरोंका ही नहीं, आत्मीय स्वजनोंका—यहाँतक कि सास-ससुर, जेठ-जेठानी आदि गुरुजनोंका तथा कन्या-जामाता, पुत्र-पुत्रवधू आदिका भी तिरस्कार कर बैठती हैं, जिसके परिणामस्वरूप जीवनभरके क्लेश पैदा हो जाते हैं। इसलिये सदा-सर्वदा सावधानीसे निरभिमानताका अत्यन्त विनम्र बर्ताव करना चाहिये। नम्र व्यवहारसे बैरी भी मित्र हो जाते हैं और कठोर व्यवहारसे मित्र भी शत्रु बन जाते हैं।

मितव्ययिता—सीमित खर्च करनेको 'मितव्ययिता' कहते हैं। मितव्ययिता केवल रुपये-पैसोंकी ही नहीं, घरकी वस्तुमात्रको ही समझदारीके साथ यथासम्भव कम खर्च करना चाहिये। कम आमदनीवाले गृहस्थको सम्भव हो तो आमदनीका तीसरा या चौथा हिस्सा आकस्मिक विपदापद्के समय खर्चके तथा बच्चोंके ब्याह-शादीके लिये जमा रखना चाहिये। जिनके पास बहुत पैसा तथा बहुत आमदनी है, उनको

भी व्यर्थ व्यय नहीं करना चाहिये। इससे आदत बिगड़ती है, जो कभी पैसा न रहा तो बहुत दुःखदायी होती है। एवं व्यर्थ अधिक व्यय हो जानेके कारण धर्म तथा लोकसेवाके आवश्यक कार्योंमें खरचनेकी प्रवृत्ति घट जाती है, जो मनुष्यकी एक उच्च वृत्तिका नाश करनेवाली होनेके कारण सबसे बड़ी हानि है। स्त्रियोंमें फिजूलखर्चीका दोष प्रायः अधिक होता है। थोड़ी आमदनीवाले पति-पुत्र तो बेचारे तंग आ जाते हैं। घरमें सदा अशान्ति रहती है। नारियाँ यदि चाहें तो सहज ही मनका संयम करके कम खर्चकी आदत डालकर घरमें पति-पुत्रोंको सुख-शान्ति, आदतका सुधार तथा धर्म-पुण्यके लिये सुअवसर प्रदान कर सकती हैं।

उदारता—जिस प्रकार फिजूलखर्ची दोष है, उसी प्रकार पैसा होनेपर भी आवश्यक धार्मिक तथा सामाजिक कार्योंमें कंजूसी करना भी दोष है। बच्चोंकी बीमारीमें, उनके लिये दूध-फल आदिमें, श्राद्धादि धार्मिक कृत्योंमें, भगवान्‌की पूजा तथा पर्वोत्सवोंमें, गो-ब्राह्मण तथा देवसेवामें, बेटी-बहिनको देनेमें, बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षामें, सास-ससुरकी सेवामें, परिवारके अन्य लोगोंकी सेवामें, विधवा तथा आश्रितोंके सत्कारपूर्ण भरण-पोषणमें, गरीबोंकी सेवामें तथा अपने स्वास्थ्यके लिये भोजन-औषध आदिमें जो नारी कंजूसी करती है और पैसा बटोरकर रखना चाहती है, उसका अपना नैतिक पतन तो होता ही है, उसके आदर्शसे उसके बाल बच्चे भी बुरी शिक्षा ग्रहण करके पतित हो जाते हैं। अतएव आवश्यक कामोंमें कंजूसी न करके उदारतासे बरते। किसीकी सहायता-सेवा करके न अभिमान करे, न अहसान करे और न उसका बदला चाहे।

परदुःख-कातरता—दूसरेको दुःखमें पड़े देखकर बिना किसी भेद-भाव या पक्षपातके उसका दुःख दूर करनेके लिये मनमें जो तीव्र भावना उत्पन्न होती है, उसका नाम 'परदुःख-कातरता' है। इसीको दया भी कहते हैं। नारीमें इस गुणका विशेष विकास हो और दुखी प्राणियोंका दुःखहरण करनेके लिये वह मा अन्नपूर्णा बन जाय, यह बहुत ही आवश्यक है।

सेवा-शुश्रूषा—१ पतिकी सेवा, २ सास-ससुरकी सेवा, ३ बच्चोंकी सेवा, ४ अतिथिसेवा, ५ देवसेवा, ६ देशसेवा और ७ रोगियोंकी तथा पीडितोंकी सेवा—ये सभी सेवाके अङ्ग हैं। नारीमें सेवा-भाव स्वाभाविक होता है; पर उसे सेवा करनी चाहिये केवल पतिसेवाके लिये या परमपति परमात्मा प्रभुकी सेवाके लिये ही। सेवामें उसका अन्य उद्देश्य नहीं होना चाहिये। सेवा वशीकरण मन्त्र है। सेवासे सभीको वशमें किया जा सकता है। असलमें जीवन सेवामय ही होना चाहिये। जैसे धनमें ईर्ष्या होती है, वैसे ही शुद्ध सेवामें भी सबसे आगे बढ़नेकी ईर्ष्या तथा सेवाका अधिक-से-अधिक सुअवसर प्राप्त करनेकी तीव्र अभिलाषा एवं भगवान्‌से प्रार्थना होनी चाहिये। सेवा शुद्ध सेवाके भावसे ही होनी चाहिये। न तो सेवामें किसीका उपकार करनेका अभिमान होना चाहिये, न सेवाका विज्ञापन करनेकी कल्पना और न सेवाके बदलेमें कुछ पानेकी आकाङ्क्षा ही। सेवा करनेपर जो गर्वहीन सहज आत्मसन्तोष होता है, वही परम धन है। सेवाके संक्षिप्त प्रकार ये हैं—

(१) तन-मन—सर्वस्व अर्पण करके सब प्रकारसे पतिको सुख पहुँचाने एवं उन्हें प्रसन्न करनेके लिये तथा उनका सदा-सर्वदा सर्वत्र कल्याण हो, इस कामनासे उनकी हर तरहकी सेवा करे।

(२) सास-ससुरकी सेवा करनेका सुअवसर मिला है, इसमें अपना सौभाग्य मानकर और वे सेवा स्वीकार करते हैं, इसलिये उनका उपकार मानकर मधुर, आदरयुक्त वाणीसे उनकी रुचि तथा पसंदके अनुसार भोजन, वस्त्र, आज्ञापालन, उनके इच्छानुसार धर्मकार्य-सम्पादन या दान आदिके द्वारा तथा सासके और वृद्ध हों तो ससुरके भी चरण दबाकर रोगादिकी अवस्थामें उनकी हर तरहकी सेवा करके, उनके मतानुसार उनकी कन्याओंको, जो ननद लगती हैं, सम्मानपूर्वक देकर—यदि वे कम कहें और अपनी हैसियत अधिक देनेकी हो तो प्रार्थना करके उनसे आज्ञा प्राप्त करके उन्हें अधिक देना चाहिये। इसमें वे प्रसन्न ही होंगे। उन्हें रामायण, भागवत, गीता, भगवन्नाम-कीर्तनादि सुनाकर उनको सुख पहुँचावे।

(३) बच्चोंका स्वास्थ्य सुधरे, वे तन-मनसे निरोग हों, उनकी बुद्धिका विकास हो, उनके आचरणोंमें स्फूर्तियुक्त सात्त्विक गुणोंका प्रकाश हो, वे कुल, जाति, देश तथा धर्मका गौरव बढ़ानेवाले, सुशिक्षित तथा सदाचारी हों एवं त्यागकी पवित्र भावनासे युक्त ईश्वरभक्त हों—इस प्रकारसे उनका लालन-पालन, शिक्षण-संवर्धन आदि करे।

(४) अतिथिको भगवान् समझकर उनकी यथाशक्ति तथा यथाविधि निर्दोष तथा निष्काम सेवा करे।

(५) घरमें इष्टदेवकी धातु अथवा पाषाणकी या चित्रमयी मूर्ति रखकर श्रद्धा तथा विधिपूर्वक भक्तिके साथ उसकी नित्य विविध उपचारोंसे पूजा करे।

(६) देशकी सेवाके लिये उत्तम-से-उत्तम सन्तान निर्माण करे और उसे अपने-अपने सन्तानके द्वारा देशके घर-घरमें भगवान्‌की सेवाका सच्चा पाठ सिखावे। देशकी नारियोंमें अपने आदर्श सदाचार, पातिव्रत तथा धर्मपालनके द्वारा सत्-शिक्षा और सद्भावनाका विस्तार करे।

(७) घरमें तथा अवसर आनेपर आवश्यकतानुसार और अपनी सुविधाके अनुसार रोगियों और दीन-दुखियोंकी तन-मन-वचन तथा धनसे निर्दोष और निष्काम सेवा सुन्दर ढंग

सत्कारपूर्वक करे। कभी सेवाका अभिमान न करे, न अहसान जनावे।

संयुक्त परिवार—जहाँतक हो, सहकर तथा उदारताके साथ विनम्र व्यवहार करके घरको संयुक्त रक्खे। भाइयोंको तथा परिवारको पृथक्-पृथक् न होने दे। पता नहीं, किसके भाग्यमे सुख तथा ऐश्वर्य मिलता है। कभी ऐसा न समझे कि मेरा पति या पुत्र कमाता है और दूसरे सब मुफ्तमे खाते हैं। सबका हिस्सा है और सब अपने-अपने भाग्यका ही खाते हैं। तुम जो इसमें निमित्त बन रहे हो, यह तुम्हारा सौभाग्य है। नारियोंपर यह एक कलङ्क है कि उनके आते ही सहोदर भाइयोंमे विद्वेष हो जाता है, घरमे फूट पड़ जाती है और फलतः घर बर्बाद हो जाता है। इस कलङ्कको धोना चाहिये और पति-पुत्रोंको समझाकर यथासाध्य सयुक्त परिवार तथा सयुक्त भोजन रहे, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। सेवाभाव तथा प्रेम जितना ही अधिक होगा, उतना ही त्याग अधिक होगा। प्रेमकी भित्ति त्याग है। जहाँ प्रेम होगा, वहाँ पृथक् होनेका प्रश्न ही नहीं उठेगा।

भक्ति—जीवनके प्रत्येक कर्मके द्वारा भगवान्की सेवा करना, मनके प्रत्येक संकल्पके द्वारा प्रभुका चिन्तन, प्रभुके प्रति आत्मसमर्पण, प्रभुको प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा—ये भक्तिके मुख्य रूप हैं। इसके विभिन्न विधान हैं। उनको जानकर यथासाध्य प्रतिदिन नियमितरूपसे भगवान्के नामका जप, चिन्तन, उनकी लीलाकथाओंका वाचन-श्रवण-मनन, उनके दिव्य स्वरूपका ध्यान, उनकी आज्ञाओंका पालन, एवं उनकी वाणी श्रीमद्भगवद्गीता तथा उनके पवित्र चरित्र श्रीरामायण तथा भागवतका अध्ययन करना चाहिये।

सादगी—तनमे, मनमें तथा वचनमें कहीं भी दिखावट, दम्भ, बाहरी शृङ्गार, शौकीनी, कुटिलता नहीं हो। भड़कीले, चमकीले तथा विदेशी ढगके वस्त्रादि, गहने तथा सेंट वगैरह, जिनसे लोगोंका आकर्षण होता हो, न हों। सभी वस्तुओंमें सादगी और सिधाई हो।

सतीत्व—यह नारीका सर्वोत्तम और अनिवार्य आवश्यक गुण है। इसकी चर्चा अन्यत्र इस अङ्कमे बहुत हुई है।

पतिव्रता क्या कर सकती है ?

(एक सच्ची घटना)

आर्यसमाजके इतिहासमे स्व० स्वामी श्रद्धानन्दका स्थान स्वामी दयानन्दके बाद ही समझा जाता है और मेरी निजी सम्मतिमें तो वे स्वा० दयानन्दसे आर्यसभ्यताके अधिक अच्छे प्रतिनिधि थे। यहाँ इस विवादकी जरूरत नहीं। मेरा मतलब इतना ही है कि स्वामी श्रद्धानन्दको अन्धविश्वासी और मिथ्याचारी कहकर 'आधुनिक' युवक अलग नहीं कर सकते। बचपनसे मृत्युतक उनका जीवन बहुरंगे अनुभवोंकी एक सुन्दर माला है। इन्हीं स्वामी श्रद्धानन्दके जीवनसे हम एक चित्र यहाँ देना चाहते हैं, जिससे अपने-आप स्पष्ट हो जायगा कि एक अपढ, पर अच्छे संस्कारोंके बीच पली हुई पतिप्राणा नारी क्या कर सकती है और वह एक अपदार्थ, असमर्थ अबला है या पति-हृदयपर शासन करनेवाली, उदार महिमामयी तथा शक्तिमान् नारी।

जब काशीमें मुंशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी) के पिता कोतवाल थे, तब मुंशीरामको कसरत-कुश्ती, अखाड़ेका शौक था। अच्छा कसरती शरीर था। भले-बुरे सभी तरहके संगी साथी थे। मद्य-मांस और जूएका इन्हें चसका लग गया था। धीरे धीरे इनके मनमें विवाह करके एक जीवन-संगिनी प्राप्त करनेकी इच्छा पैदा हुई। लेकिन इनके दिमागमें धुआँ भरा था, जैसा कि कालेजकी शिक्षा प्राप्त करनेवाले आजकलके अधिकाश युवकोंके दिमागमे भरा होता है। कुछ समय बाद विवाह हुआ। द्विरागमन होनेपर बहू घरमे आ गयी।

इस समय इनका जीवन अच्छे और बुरे सस्कारोंके सघर्षमें झूल रहा था। इसलिये ये बार-बार गिरते थे, बार-बार अनुताप करते थे और फिर बुरी आदतोंमें फँस जाते थे। एक ओर ये कुसस्कार थे, बुरी आदतें थीं; दूसरी ओर पतिप्राणा पत्नीकी एकान्त भक्ति और निष्ठा थी। इस भक्तिने कैसे कुसस्कारोंपर विजय प्राप्त की, इसकी कथा बड़ी मनोरञ्जक है। स्वामी श्रद्धानन्दजीने स्वयं ही इसका विस्तारसे वर्णन किया है। वे लिखते हैं—

"बरेली आनेपर शिवदेवी (मेरी धर्मपत्नी) का यह नियम हुआ कि दिनका भोजन तो मेरे पीछे करतीं ही, परतु रातको जब कभी मुझे देर हो जाती और पिताजी भोजन कर चुकते तो मेरा और अपना भोजन ऊपर मँगा लेतीं और जब मैं लौटता, उसी समय अँगीठीपर गर्म करके मुझे भोजन करा पीछे स्वय खातीं। एक रात मैं आठ बजे मकान लौट रहा था। गाड़ी दर्जीचौकके दरवाजेपर छोड़ी। दरवाजेपर ही बरेलीके बुजुर्ग रईस मुंशी जीवनसहायका मकान था। उनके

बड़े पुत्र मुशी त्रिवेनीसहायने मुझे रोक लिये । गजक सामने रक्खी और जाम भरकर दिया । मैंने इन्कार किया । बोले—'तुम्हारे ही लिये तो दो आतशा खिंचवायी हैं । यह जौहर है ।' त्रिवेनीसहायजीके छोटे भाई सब मेरे मित्र थे । उनको मैं बड़े भाईके तुल्य समझता था । न दो आतशाका मतलब समझा न जौहरका । एक गिलास पी गया । फिर गपबाजी शुरू हो गयी और उनके मना करते-करते मैं चार गिलास चढ़ा गया । असलमें वह बड़ी नशीली शराब थी । उठते ही असर मालूम हुआ । दो मित्र साथ हुए । एकने कहा, चलो मुजरा करायें । उस समयतक न तो मैं कभी वेश्याके मकानपर गया था और न कभी किसी वेश्याको बुलाकर अपने यहाँ बातचीत की थी, केवल महफिलोंमें नाच देखकर चला आता था । शराबने इतना जोर किया कि पाँव जमीनपर नहीं पड़ता था ।······ एक वेश्याके घरमें जा घुसे । कोतवाल साहबके पुत्रको देखकर सब सलाम करके खड़ी हो गयीं । घरकी बड़ी नायिकाका हुक्म हुआ कि मुजरा सजाया जाय । उसकी नौचीके पास कोई रुपये देनेवाला बैठा था । उसके आनेमें देर हुई । न जाने मेरे मुँहसे क्या निकला । सारा घर काँपने लगा । नौची घबरायी हुई दौड़ी आयी और सलाम किया । तब मुझे किसी अन्य विचारने आ घेरा । उसने क्षमा माँगनेके लिये हाथ बढ़ाया और मैं 'नापाक नापाक' कहते हुए नीचे उतर आया । यह सब पीछे साथियोंने बताया । नीचे उतरते ही घरकी ओर लौटा, बैठकमें तकियेपर जा गिरा और बूट आगे कर दिये जो नौकरने उतारे । उठकर ऊपर जाना चाहा । परतु खड़ा नहीं हो सकता था । पुराने भृत्य बूढ़े पहाड़ी पाचकने सहारा देकर ऊपर चढ़ाया । छतपर पहुँचते ही पुराने अभ्यासके अनुसार किवाड़ बद कर लिये और बरामदेके पास पहुँचा ही था कि उलटी होने लगी । उसी समय एक नाजुक छोटी अँगुलियोंवाला हाथ सिरपर पहुँच गया और मैंने उलटी खुलकर की । अब शिवदेवीके हाथोंमें मैं बालकवत् था । कुल्ला करा, मेरा मुँह पोंछ, ऊपरका अँगरखा, जो खराब हो गया था, बैठे-ही-बैठे फेंक दिया और मुझे आश्रय देकर अंदर ले गयी । वहाँ पलँगपर लिटाकर मुझपर चादर डाल दी और बैठकर सिर दबाने लगी । मुझे उस समयका करुणा और शुद्ध प्रेमसे भरा मुख कभी न भूलेगा । मैंने अनुभव किया मानो मातृशक्तिकी छत्रछायाके नीचे निश्चिन्त लेट गया हूँ । पथरायी हुई आँखें बद हो गयीं और मैं गहरी नींद सो गया । रातको शायद एक बजा था जब मेरी आँख खुली । वह चौदह-पंद्रह वर्षकी बालिका पैर दबा रही थी । मैंने पानी माँगा । आश्रय देकर उठाने लगी, परन्तु मैं उठ खड़ा हुआ । गरम दूध अँगीठीपरसे उतार और उसमें मिश्री डालकर मेरे मुँहको लगा दिया । दूध पीनेपर होश आया । उस समय अँग्रेजी उपन्यास मगजमेंसे निकल गये और गुसाईंजीके खींचे हुए चित्र सामने आ खड़े हुए । मैंने उठकर और पास बैठाकर कहा—'देवी ! तुम बराबर जागती रही और भोजनतक नहीं किया । अब भोजन करो ।' उत्तरने मुझे व्याकुल कर दिया । परतु उस व्याकुलतामें भी आशाकी झलक थी । शिवदेवीने कहा—'आपके भोजन किये बिना मैं कैसे खाती । अब भोजन करनेमें क्या हानि है ?' उस समयकी दशाका वर्णन लेखनीद्वारा नहीं हो सकता । मैंने अपनी गिरावटकी दोनों कहानियाँ सुनाकर देवीसे क्षमाकी प्रार्थना की; परतु वहाँ उनकी माताका उपदेश काम कर रहा था—'आप मेरे स्वामी हो, यह सब कुछ सुनाकर मुझपर पाप क्यों चढ़ाते हो ? मुझे तो यह शिक्षा मिली है कि मैं आपकी नित्य सेवा करूँ ।' उस रात बिना भोजन किये दोनों सो गये और दूसरे ही दिनसे मेरे लिये जीवन ही बदल गया ।''

''वैदिक आदर्शसे गिरकर भी जो सतीत्व धर्मका पालन पौराणिक समयमें आर्यमहिलाओंने किया है, उसीके प्रतापसे भारतभूमि रसातलको नहीं पहुँची और उसमें पुनरुत्थानकी शक्ति अबतक विद्यमान है—यह मेरा निजका अनुभव है । भारतमाताका ही नहीं, उसके द्वारा तमामकी देवेतर ससारकी सब जातियोंका सच्चा उद्धार भी उसी समय होगा जब आर्यावर्तकी पुरानी सस्कृति जागनेपर देवियाँगे उनके उच्चासनपर फिरसे बैठाया जायगा ।'

इस आदर्शके विरुद्ध कोई 'आधुनिका' होती तो वह घृणासे मुँह फेर लेती, पतिसे सम्बन्ध विच्छेद कर लेती । जहरसे जहर और बढ़ता और दोनोंके जीवन चौपट होते । पर युग-युगसे भारतीय नारीके हृदयमें जो अमृत संचित होता रहा है, उसने बार-बार विषको निष्प्रभ कर दिया है और न केवल नारीको सभ्यताके सीर्षस्थानपर उठाकर प्रतिष्ठित किया है बल्कि पुरुषकी भी रक्षा की है और उसे सन्मार्गपर प्रेरित किया है । —रा० कु०

०००

पतिका धर्म

आजकल बहुधा यह बात देखनेमें आती है कि पतिको अपने कर्तव्यका ध्यान तो नहीं रहता, परंतु वह पत्नीको सीता और सावित्रीके आदर्शपर सोलहो आने प्रतिष्ठित देखनेकी इच्छा रखता है। यह मनोवृत्ति न्यायसंगत नहीं है। स्त्री हो या पुरुष—दोनोंको अपने-अपने कर्तव्यका ज्ञान और उसके पालनका पूर्णतः ध्यान रहना चाहिये। जो पुरुष अपने धर्मको नहीं देखता, स्वयं धर्मपर आरूढ़ नहीं रहना चाहता और दूसरेको, विशेषतः अपनी पत्नीको धर्मपर पूर्णतया आरूढ़ न देखकर अथवा उसके स्वधर्म-पालनमें तनिक भी न्यूनता देखकर झल्ला उठता है, उसकी झल्लाहट व्यर्थ है। उससे कोई अच्छा फल नहीं होता।

यदि पुरुष चाहता है, नारियाँ सीता और सावित्री बनें तो उसे सर्वप्रथम अपनेको ही श्रीरामचन्द्र और सत्यवान्‌के आदर्शपर चलाना चाहिये। स्त्रियाँ अपने धर्मका पालन करें, यह बहुत आवश्यक है; परंतु पुरुषोंके लिये भी तो धर्मका पालन कम आवश्यक नहीं है। मैंने सुना है, कई बहनोंके पत्रोंसे भी मालूम हुआ है कि कितने ही पुरुष अपनी स्त्रियोंको इसलिये मारते और गालियाँ देते हैं कि वे उनकी इच्छाके अनुसार नीच-से-नीच पाप-कर्म करनेके लिये उद्यत नहीं होतीं और इस प्रकार अपने पतिव्रता होनेका परिचय नहीं देतीं। आधुनिक सभ्यतामें पले हुए कितने ही पुरुषोंका यहाँतक पतन सुना गया है कि वे अपनी स्त्रीसे वेश्यावृत्तितक कराना चाहते हैं। एक विधवा बहनका कहना है कि उनके देवरने उन्हें फुसलाकर सादे कागजपर उनकी सही ले ली और अब वह उनकी न्यायोचित सम्पत्तिको भी हड़प लेना चाहता है। ये दो-एक बातें उदाहरणके तौरपर कही गयी हैं। ऐसी घटनाएँ न जाने कितनी होती होंगी। पुरुषोंका अत्याचार बेहद बढ़ गया है। वे अपने दोषकी ओर तो कभी दृष्टि ही नहीं डालते; परंतु पत्नी निर्दोष हो तो भी उसमें दोष-ही-दोष दिखायी पड़ते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रीके दोषोंकी उपेक्षा की जाय। यदि स्त्रीमें वस्तुतः दोष है तो पति अथवा गुरुजनोंका यह धर्म हो जाता है कि वे उसे समझाकर, समझानेसे न माने तो उसके हितके लिये समुचित दण्ड देकर भी राहपर लावें। अवश्य ही यह बात किसी राग-द्वेष या पक्षपात आदिके कारण नहीं होनी चाहिये। किंतु जहाँ पत्नी आदर्श देवी है, वह भारतीय आदर्शके अनुसार स्वधर्मके पालनमें लगी है, वहाँ आधुनिकताके रंगमें रँगे हुए पतिमहोदय यदि उसे धर्मके विरुद्ध कुछ करनेकी आज्ञा देते हैं और उसको न करनेपर उसे पतिकी आज्ञा न माननेवाली होनेके कारण 'पतिव्रता' नहीं मानते तो यह उनका अन्याय है। उनकी दृष्टिमें तो पत्नीका 'निर्दोष' होना ही 'दोष' बन गया है।

वास्तवमें दोष तो उस पुरुषका ही है, जो स्वयं पत्नीके सम्मुख परमात्मा बनकर बैठता है, उसकी न्यायसङ्गत सम्मतिके विरुद्ध उससे अपनी पूजा करवाना और अनुचित बातोंमें उसका सहयोग प्राप्त करना चाहता है। उसे क्या हक है कि वह अपनी स्त्रीसे पर-पुरुषोंके सामने नाचने-गानेको कहे और वह न नाचे-गाये तो उसे पतिव्रता न समझे। उसे क्या हक है कि वह पत्नीको शराब पिलाकर सिनेमामें ले जाना चाहे और वह हाथ जोड़कर क्षमा माँगे, तो उलटे उस देवीपर नाराज हो, उसे सतीधर्मसे गिरी हुई करार दे? पतिको परमेश्वर समझकर उसकी सेवा करे, अवश्य ही यह स्त्रीका धर्म है; परंतु पतिका यह धर्म नहीं कि वह अपनेको परमेश्वर बताकर उससे कहे कि 'तुम मुझे उचित-अनुचित जैसे भी मैं कहूँ, पूजो।' यह तो किसीके धर्मसे अनुचित लाभ उठाना है। जो स्त्री अपने पतिको शराब छोड़ने, तम्बाकू त्याग करने, सिनेमा न देखने और झूठ न बोलनेकी सलाह देती है, वही उसकी सच्ची हितैषिणी है। वही वास्तवमें सहधर्मिणी और पतिका मङ्गल चाहनेवाली है। यह उसका उपदेश नहीं, सत्परामर्श है और इसका उसे सनातन अधिकार है। जिसे ऐसी सुशीला और सद्गुणवती पत्नी प्राप्त हो, उसे अपने सौभाग्यपर गर्व होना चाहिये तथा परमात्माका कृतज्ञ होना चाहिये। पति कभी ऐसा माननेकी भूल न करे कि 'पत्नी पाँवकी जूती है, उसका आदर करना उसे सिर चढ़ाना है।' जो ऐसा सोचता है, वह अपने कर्तव्यसे च्युत होता है। जो पति पत्नीकी बीमारीमें उसकी सेवा करनेमें अपना अपमान समझता है, दुःखमें उसका साथ नहीं देता, वह वस्तुतः कर्तव्य-विमुख और धर्मभ्रष्ट है। पति स्वयं सदाचारी, मिष्टभाषी, एकपत्नीव्रती, अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखनेवाला तथा उसके साथ मित्रवत् सच्चा प्रेम एवं सद्व्यवहार करनेवाला बने। ऐसा करके ही वह पत्नीके हृदयको जीत सकता है।

सीताजीके प्रति

(लेखिका—कुमारी कान्ति चौहान)

सीते !
जगत्-जननी !
पुनीते !
अर्चनामे मै तुम्हारी,
क्या सुमन अर्पित करूँ ?
जब गा चुके सम्मानमें तब गीत कितने—
भक्ति-भावोंसे भरे…
वे मातृ-मन्दिरके पुजारी,
कर रहे जो युग-युगान्तरसे सदा ही
वन्दना निशि-दिन तुम्हारी।
देवि ! बोलो मै अकिञ्चन,
आज भीगी-भावनाके…
कुछ सुमन अम्लान ले…
उपहार चरणोंमें चढ़ानेके…
लिये कैसे बढ़ूँ ?
सीते ! जगत्-जननी,
पुनीते ! अर्चनामे मै तुम्हारी,
क्या सुमन अर्पित करूँ ?

(२)

कैसा सरल गाम्भीर्य वह,
औ स्नेहका सागर अतल;
हिमगिरि-सदृश कैसी विमल
चारित्र्यकी दृढता अटल !
तुम राज-पुत्री, नृप-वधू,
औ राज-पत्नी कोमला;
खेलीं सदा पद-पद्मसे
शुभ शारदा, कमला, कला।
फिर भी विरत-अभिमान,
नारी-जाति-हित वरदान-सी,
तुम सरल-हृदया, धर्मनिष्ठा, धीरधीरा
कल्पलतिका-सी अमर-फल-दायिका
हे सौम्य, मर्यादा-पुरुष-उत्तम-प्रवर
उन धीर-वीर-गँभीर राजा रामकी रानी-प्रिया।
सीते ! जगत्-जननी !……

(३)

सुखमें पलीं—
झूलीं सदा, ऐश्वर्यके मृदु दोलमे;
पर कहाँ सीखा था, कहो—
हँस-हँस दुखोंसे खेलना ?
रहकर भयानक विपिनमें—
कर सुखोंकी अवहेलना।
हम जगत्की मृदु-कामनाओंमें निरत,
अधिकार-लिप्साके मनोरम जालमें…
बिसरा रहीं कर्तव्य अपना उच्चतम।
अब क्या हमारे तिमिर-हृदयोंमें कभी
आदर्श पावनकी तुम्हारे दिव्यतम
कुछ स्वर्ण-किरणें जग उठेंगी प्रात-सी ?
मनकी मलिनता त्याग कर,
संघर्षमय भव-पथमें…
हँस वीरतासे सब दुखोंका सामना
हम कर सकेंगी क्या कभी,
गरिमामयी ?
करुणा करो—आशीष दो—
कलुषित हृदयमें…
शील-शुद्धाचारका सम्मान हो।
सीते ! जगत्-जननी !…

(४)

गाऊँ तुम्हारे गान क्या—
असमर्थ हूँ, अज्ञान हूँ;
तुम हृदय-मंदिरमें बसो,
जीवन सफल हो जायगा;
औ भक्ति-रसमय गीत युग-युग
मूक-मानस गायगा।
तुम हो महामहिमामयी, अति क्षुद्र मैं—
कैसे बहूँ देवत्वके तव सिंधुमें
हे पुण्य-प्रतिमे !
फिर तुम्हारी वंदना कैसे करूँ ?
घटमें जलधि कैसे भरूँ ?
पाकर तुम्हें…
है गौरवान्वित
देश भारतकी अमल अवनी अहो !
सीते !
जगत्-जननी,
पुनीते !
अर्चनामें मैं तुम्हारी…
क्या सुमन अर्पित करूँ ?

नारीकी समस्याएँ

(लेखक—श्रीभगवानदासजी झा 'विमल,' एम्० ए०, बी० एस्-सी०, साहित्यरत्न)

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा॥
(गो० तुलसीदास)

आजका युग भारतवर्षके लिये एक क्रान्ति-युग—एक समस्या-युग है। नवीन जागृतिके साथ-साथ समस्याओंकी उलझन और भी जटिल हो गयी है। भारतवर्षकी यही विशेषता है कि उसकी समस्याएँ पूर्णरूपसे कभी सुलझ ही नहीं पायीं। नारीकी समस्याएँ तो आजकलतक गुत्थियाँ बनी सुषुप्तिके गर्तमें पड़ी हुई हैं। पुरुषकी समस्याएँ मानव-जीवनके बाह्य जगत्से सम्बन्धित हैं, किंतु नारी जीवनके आन्तरिक पक्षकी एक झाँकी है। पुरुष कठोरताका प्रतीक है, नारी कोमलताकी प्रतिमा है। पुरुषका जगत् संघर्षमय है, नारीका जगत् वेदना-मय है। प्राचीन कालसे नारीने हिंदू-समाजमें कितने रूप ग्रहण किये, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। युगके परिवर्तनके साथ नारीको भी परिवर्तित रूप धारण करना पड़ा। परंतु आजके संक्रान्तिके युगमें—जो एक सन्धि-काल है—अनेक प्रकारकी वीभत्सताओंको स्थान मिल सकता है मानव-जीवनके समस्त कृत्योंका विधान उसके कालकी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियोंसे होता है। दासताके युगमें दस्युवृत्तियोंको महत्त्वपूर्ण स्थान मिलता रहा है, परंतु आजके स्वतन्त्र-युगमें इन मनोवृत्तियोंको परिष्कृत करना होगा। मानव-की अनेक चेष्टाओंपर नियन्त्रण करना होगा। तभी किसी प्रकारके कल्याणकी आशा की जा सकती है।

कवि-कुल-तिलक गोस्वामी तुलसीदासजीके 'मानस' की चौपाई—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा॥

—से प्रत्येक हिंदू-रमणी परिचित होगी। ग्रामीण नारियाँ इस चौपाईका स्पष्ट अर्थ यह लगाती हैं कि उनका एकमात्र धर्म पतिकी सेवा करना है। 'पति ही परमेश्वर है'—यह वाक्य उनके मुखसे बहुधा सुना जाता है; परंतु नगरकी सुशिक्षिता नारियोंको इस चौपाईने चकाचौंधीमें डाल दिया है। चौपाई-के कुत्सित अर्थ लगाकर अनेक स्त्रियाँ अपने कर्तव्यसे वञ्चित होकर अमानवताका नर्तन करनेमें व्यस्त हैं। वे गोस्वामीजी-के हृदयकी थाह लेनेमें असमर्थ हैं; यही कारण है कि उनकी दृष्टिमें पतिकी सेवा करना दासताका लक्षण है—स्वातन्त्र्यका हनन है।

मैं नारीको पूजनीया समझता हूँ। मेरे विचारसे वे कुल-लक्ष्मी हैं, अमृत-निधि हैं और पुरुषकी सच्ची सहचरी हैं।

नारीकी समस्त समस्याएँ उक्त चौपाईके वास्तविक अर्थ-को स्पष्ट करनेसे सुलझायी जा सकती हैं। गोस्वामीजी समस्त नारी-जातिके हितैषी थे, उनके मुखसे नारीके प्रति कुविचार प्रसारित ही नहीं हो सकते थे। अतः प्रत्येक नारीका कर्तव्य है कि वह शान्त मस्तिष्कसे स्वयं अपनी समस्याओंपर निष्पक्ष दृष्टि-कोणसे विचार करके उन्हें सुलझानेकी चेष्टा करे।

मानव-जीवन एक सामूहिक संस्था है। एक मनुष्य समाजके अन्य मनुष्योंसे किसी-न-किसी प्रकार अवश्य सम्बन्धित है। कार्यका क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जानेके कारण मानवको इस सम्बन्धको सकुचित क्षेत्रमें अधिक व्यापक और सुगठित बनाना पड़ा। यही भावना 'विवाह-संस्कार'के रूपमें समाज-में आयी। विवाह स्त्री और पुरुष—दो भिन्न लिङ्गोंके प्राणियोंके सम्बन्धको अधिक स्पष्ट, व्यवस्थित और सुसंयमित बनानेका एक माध्यम है। यही माध्यम व्यापकताके सिद्धान्त-का अवलम्बन कर समाजका हितैषी बना। विवाह वासनातृप्ति-का साधन नहीं है, जीवनकी जटिल गम्भीरताकी एक देन है। यदि जीवन खिलवाड़ होता तो कदाचित् विवाहकी आवश्यकता ही न रह जाती। मैं विवाहको पुत्रोत्पत्तिके साधनके भी ऊपरकी वस्तु समझता हूँ। सृष्टिकी वृद्धि करना मानवके कर्तव्योंमेंसे एक अवश्य है, परंतु कोई भी मानव इस भावना-से विवाह नहीं करता। विवाह जीवनके सरल और सुगम सञ्चालनका पथ-प्रदर्शक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नारी विवाहके प्रथम दिवससे ही पुरुषके जीवनमें घुल-मिलकर रहनेके लिये आती है, अपनी स्वतन्त्र सत्ताका भयङ्कर रूप दिखानेके लिये नहीं। यह तो मानना ही पड़ता है कि नारीकी अपेक्षा पुरुषका क्षेत्र अधिक विस्तृत है। कारण कि पुरुषमें कठोरता है। जीवन संघर्षकी एक पहेली है, जिसके सुलझानेके लिये कठोरता नितान्त आवश्यक है। कहनेका तात्पर्य यह है कि नारी व्यर्थके 'समानता' के भाव-भँवरमें न पड़कर अपनी वास्तविक दशाको समझे।

नारीका जीवन पुरुषके जीवनसे सामञ्जस्य स्थापित करने-के ही लिये है। इसमें नारीके स्वातन्त्र्यके खोये जानेका भी

भय नहीं है। फिर नारी व्यर्थमें ही क्यों त्रस्त हो रही है?

'एकइ धर्म'—धर्म एक ही है। ठीक है, 'धर्म'का अर्थ 'धारण करना' है। नारीका वही धर्म होगा, जिसके साहाय्यसे वह अपने जीवनको सुदृढ़ और व्यवस्थित रूपसे धारण कर सके। नारीका धर्म है कि वह पूर्णरूपसे सुशिक्षिता होकर अपने पतिकी सहधर्मिणी बने। मैं पत्नीकी शिक्षा-दीक्षामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं करता, परंतु इस सब शिक्षा-दीक्षाका ध्येय पतिके जीवनसे सामञ्जस्य स्थापित करना ही होना चाहिये। स्वयं पुरुष अपनी स्त्री इत्यादिके भरण-पोषणके लिये ही इतना परिश्रम करता है, यौवनकालके आदिसे ही उसके मस्तिष्क और हृदयमें भावी पत्नीके लिये अवश्य स्थान हो जाता है। इसे मैं पुरुष-जातिका आदर्श समझता हूँ। तो फिर क्या स्त्री अपनेको इस आदर्शसे विरक्त कर सकती है?

महान् बननेकी कामना स्त्री और पुरुष दोनोंमें समान होती है, पर क्या नारी पुरुषकी सहधर्मिणी बनकर महान् नहीं बन सकती? पुरुष उसके कार्यक्षेत्रमें किस प्रकार बाधक बनकर बैठ जायगा, यह समझमें नहीं आता। स्त्री पुरुषसे बहुत कुछ ग्रहण कर सकती है और पुरुष स्त्रीसे। यही 'पारस्परिक साहाय्यकी भावना' जीवनका मूल मन्त्र है, विश्वकी शान्तिमय उपासनाका प्रचारक है। 'समानता'का वास्तविक अर्थ 'सामञ्जस्य' है। पुरुषको स्त्रीको दासी समझनेका कोई अधिकार नहीं और न स्त्रीको हर एक काममें पुरुषकी समानता करनेका। मैं यह स्पष्ट कह सकता हूँ कि यह 'समानताकी भावना' पाश्चात्त्य सभ्यताकी देन है, जिससे हमें विमुक्त होना है। भारतीय नारीका आदर्श गोरी महिलाएँ न होनी चाहिये, अपितु सती-साध्वी अनसूया, सीता, सावित्री, द्रौपदी इत्यादि होनी चाहिये। वास्तवमें स्त्री और पुरुष दोनोंके क्षेत्र स्पष्ट हैं, फिर संघर्षका प्रश्न कैसा? स्त्री घरकी रानी है, पुरुष घरके बाहरका राजा। घरके अंदर आकर राजा और रानी दोनोंके हृदयोंका मिलन अभूतपूर्व आनन्दका सृजन करता है। यही सच्चा गृहस्थ-धर्म है। यहाँ न तो नारीकी ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका हनन होता है और न पुरुष ही अपनी चेष्टाओंको वीभत्स रूप दे सकता है; जिसके लिये वह युगोंसे दोषी ठहराया गया है। गार्हस्थ्य-जीवनका वास्तविक आनन्द नर और नारीके हृदयोंके उचित समन्वयमें ही सन्निहित है; दोनों एकरूप होकर ही अपने और अपने समाजके जीवनको उत्कर्षमय बना सकते हैं। दोनोंके अस्तित्वको पृथक् करनेसे लाभकी अपेक्षा हानिकी ही अधिक सम्भावना है।

'एक व्रत नेमा'—एक ही व्रत और नियम है—यह वाक्य भी व्यापकतासे शून्य नहीं है। संकुचित अर्थमें ही यह नारीकी समस्याओंको उलझा देता है, क्योंकि नारी इसमें परतन्त्रताकी झाँकी देखने लगती है; परंतु बात ऐसी नहीं है। जीवनके व्यवस्थित सञ्चालनके लिये व्रत और नियमोंकी आवश्यकताकी कोई अवहेलना नहीं कर सकता। धर्म भी व्रत और नियमोंका ही सामूहिक नाम है। ये व्रत और नियम चाहे किसी प्रकारके हों, उनका उद्देश्य मानवके हितका सम्पादन ही होना चाहिये।

आजके जीवनकी उलझनोंका प्रधान कारण यह है कि मनुष्य अपनी संकुचित सुखप्रद परिस्थितिसे संतुष्ट न होकर अपने हाथ-पाँव दूरतक फैलाना चाहता है। परिणाम यह होता है कि वह व्यर्थकी महत्ताके चक्करमें पड़कर अपनी सुखद अवस्थाको भी खो बैठता है।

आजकी नारी भी कुछ-कुछ यही सोचती और करना चाहती है। वह अपने क्षेत्रको व्यापक और विस्तृत बनानेकी धुनमें अपने व्रत और नियमोंको भी अधिक प्रसारित करना चाहती है। परंतु जब वह यह स्वीकार कर लेती है कि मैं अपने पतिके लिये हूँ और मेरा पति मेरे लिये है, फिर उसको व्रत और नियमोंके संकुचित रूपसे ही तृप्त हो जाना चाहिये। उसका पति समाजका ही एक प्राणी है, उसकी सेवा समाजकी ही सेवा है। हाँ, अपनी शक्तिके अनुसार वह समाजके अन्य प्राणियोंकी भी सेवा कर सकती है; क्योंकि पति-सेवा समाज-सेवाका ही अङ्ग है। परंतु अपने हृदय-मन्दिरके पुजारी त्यागमय पतिकी अवहेलना करके समाजके अन्य व्यक्तियोंकी सेवा करनेमें वह अपने पतिके साथ कहाँतक न्याय करती है, यह वह स्वयं सोच सकती है। यहाँपर मैं 'सेवा' शब्दका वही व्यापक अर्थ लगा रहा हूँ, जो किसी भी परिष्कृत समाजमें लगाया जाना चाहिये। पतिके समस्त कार्योंमें पतिकी सहायता करना नारीके लिये पतिकी सेवा है और पत्नीके समस्त कार्योंमें उसकी सहायता करना पतिके लिये पत्नीकी सेवा है। दोनोंका कर्तव्य एक दूसरेकी सेवा करना है। दोनोंके व्यक्तित्वमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है, फिर समस्याओंका उठना कैसा?

'काय बचन मन पति पद प्रेमा'—भी ऐसे ही व्यापक अर्थमें लिया जाना चाहिये। ये शब्द पति और पत्नीके पवित्र दैवी प्रेमका समर्थन करते हैं। तुलसीदासजीने पति और पत्नीको देव और देवी माना है। यदि पत्नी देवी-तुल्य कार्य करने लगे तो पतिको स्वयं ही देव बनना पड़ेगा। जहाँ यह हो

गया, वहीं यह मर्त्यलोक स्वर्गलोकके रूपमें परिणत हो जायगा और इसीको 'स्वर्गका धरापर उतरना' कहते हैं।

'प्रेम' शब्दकी पवित्रता और उपयोगितापर किसीको सन्देह नहीं हो सकता। यही प्रेम मानव-शक्तियोंका प्रेरक है। इसी प्रेमकी कल्पना गोस्वामीजीने नर और नारीमें की है। यह प्रेम तन, मन और वचनसे होना चाहिये; नहीं तो वह 'प्रेम' न कहलाकर 'वासना' कहलाने लगेगा।

सारांश यह है कि नारीकी समस्याएँ केवल उसी समयतक हैं, जबतक वह अपनेको अपने पतिसे पृथक् मानती है, अथवा समानताकी प्रतिद्वन्द्विताम पड़ी रहती है। कितना आश्चर्य है कि आजकी नारी अपनी समस्याएँ सुलझाने इधर-उधर भटकती फिरती है, पर स्वयं अपने योग्य पतिके सामञ्जस्यसे उन्हें नहीं सुलझा लेती! पत्नी पतिके लिये वरदान-स्वरूप है और पति उसके लिये वरदानस्वरूप है। दोनों राजमहलके वासी हैं, फिर झोपड़ियों और कुटियोंमें भटकनेकी क्या आवश्यकता!

अन्तमें मैं—

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः॥

—कहकर नारी-जगत्की शुभ कामना करता हूँ।

भारतकी नारी—किस ओर ?

(लेखक—विद्वान् श्री के० एस० चिदम्बरम्, बी० ओ० एल०)

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥[1]

पूज्यपाद श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमदादिशङ्कर-भगवत्पादकी इस सूक्तिमें आर्यधर्मके आदिप्रवर्तक आर्य-भाषाके परमाचार्य महेश्वर शिव जिस रूपमें चित्रित हैं, उसीसे हमें स्पष्ट समझमें आ सकता है कि हमारे इस सनातन राष्ट्रमें नारियोंका क्या स्थान है। जिस शक्तिसे युक्त रहे विना शिवजी भी चल-फिर नहीं सकते, जो शक्ति हरि-हर-विरिञ्चि आदि-की भी परमाराध्या प्रसिद्ध है, वही एक अनन्त शक्ति वसुधा-का सञ्चालन करती है—

वह स्वतन्त्र इच्छासे लय, उद्भव, पालन करती है।[2]

संक्षेपमें कहें तो—

परम विचित्र यन्त्र यह जग है उसी शक्तिसे चलता।[2]

इसी परात्पशक्तिका प्रतीक हमारे देशकी नारी होती है। हमारे प्राचीनतम सनातन धर्मके साहित्यमें 'अन्तर्बाह्य सौन्दर्य-की पूर्ण अधिष्ठात्री स्त्रीरूप देवी लक्ष्मी और सरस्वती ही मानी गयी हैं। मायारूपी स्त्रीकी वैरागी कविलोग चाहे जितनी निन्दा करें, परंतु ब्रह्मके सौन्दर्यका अनुभव हम मायाके विना नहीं कर सकते।'[3] हमारे कवि और दार्शनिकोंने स्त्री-को सौन्दर्यकी अधिष्ठात्री देवी इसलिये माना है कि वह भावुकतामयी है और मानव हृदयके सौन्दर्यका उसमें सम्पूर्ण विकास हुआ है। प्रेम, करुणा, दया, स्नेह, सौहार्द, उपकार, कृतज्ञता, साहस, त्याग, सेवा, श्रद्धा, भक्ति आदि मानव-हृदयके सौन्दर्य जिस मात्रामें स्त्री-जातिमें पाये जाते हैं, उस मात्रामें और किसीमें भी शायद ही पाये जायँ। साहित्य, संगीत आदि ललित कलाओंकी जननी भी स्त्रीको ही माना गया है। इसीलिये शायद दुनियामें उत्पन्न हर प्राणीकी नारी एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है! कोई भ्रम-वश उससे अलग होकर रहना चाहे, तो भी उसे आखिर विफल ही होना पड़ता है; क्योंकि—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥[4]

सती-वियोगके बाद एकदम विरक्त हो, हिमवदुपत्यकामें जा उग्र तपस्यामें लीन शिवजीकी सेवा-शुश्रूषाके लिये जब हिमवान्ने बालिका पार्वतीको उपस्थित किया, तब शायद उसी भगवती महामायाकी प्रेरणासे उनके मनमें यह विचार हुआ कि—

१. श्रीसौन्दर्यलहरी। २. 'पथिक'—पं० रामनरेश त्रिपाठी। ३. 'साहित्य और सौन्दर्य-दर्शन'—पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी। ४. श्रीदुर्गा-सप्तशती १। ५६।

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः ।[1]

तभी तो कैलास बसा ! यही नहीं, शिवजीने उसे अपनी अर्धाङ्गिनी बना लिया—'अर्धनारीश्वर'की उपाधि प्राप्त कर ली ! धनुर्भंगके बाद, श्रीरामको कन्या-दान करते हुए जनकजीने कहा था—

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ।

इन्हीं परम्पराओंके पालन करनेवाले हम गृहस्थोंका कोई भी पवित्र कार्य नारीके—अर्धाङ्गिनीके सहयोगके बिना सम्पन्न नहीं हो सकता । हमारी संस्कृति और धर्मके सिवा और कहाँ नारीको इतना ऊँचा स्थान और महान् गौरव प्राप्त है ?

हमारी नारियाँ इतना गौरव प्राप्त करके आनन्दमें बैठी नहीं रह गयीं । उनके-जैसा त्यागमय, सेवापूर्ण जीवन और किसीका नहीं है । वे कुछ करतीं तो केवल अपने परिवारके लिये, अपने लिये नहीं । पति और संतानके अर्थ उन्हें क्या-क्या नहीं करना पड़ता । वही हमारी नारी आज कैसी है ? विदेशी असभ्य सभ्यताके पीछे दौड़ती हुई तलाकका स्वातन्त्र्य चाहती है, सन्तति निरोध (बर्थ कंट्रोल) के नये-नये आविष्कारोंका फायदा भरपूर उठाना चाहती है । और क्या, साड़ीकी कई तहोंमे सिमट-सिमटकर लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमाके आदर्शको अपने परिवेष्टनोंमें छिपाकर सहमी-सहमी, धरतीमें आँखें गड़ाये कदम बढ़ानेवाली कुल-लक्ष्मी[2] न रहकर पाश्चात्य वेष-भूषासे अलकृत यूरोपियन रमणी बनना चाहती है ! प्रजातन्त्रके सिद्धान्तोंमें किस 'ऐक्ट' की कमी है ! उनकी सभी आवश्यकताओंकी पूर्तिके नियम बहुमतसे सहज ही बन जाते हैं ! पिताकी सम्पत्तिकी वे भी भागिनी बनें, मिली जायदादके दुर्विनियोगमें वे सोशल वीमेन (वेश्याएँ नहीं !) बनें, बिना ब्याही और साथ ही परोपकारिणी (केवल शरीरसे, मनसे नहीं, इसलिये प्रास्टिट्यूट नहीं !) रहें, विवाहित होकर भी जब जीमें आये, तलाककी माँग पेश करें —सब आज न्यायसम्मत है ! हमारी पुरातन पवित्र नारियोंकी वशागत इन बहिनोंकी ऐसी दुर्गतिका कौन प्रेरक है ? क्या क्या कारण हैं ? इन बातोंको साफ समझकर भी हम सब आज बिल्कुल अनजान बने बैठे हैं ।

अब तो हमारा स्वराज्य है ! हमें शासन-क्रममें स्वतन्त्रताको काममें लानेका यथाशक्ति प्रयत्न करना है । इस प्रयत्नमें हम अपनी 'शक्तियोंसे' अलग हो अग्रसर नहीं हो सकेंगे । पर क्या आजकलकी नारियाँ हमारी सहायिका बनेंगी ? बहुधा नहीं । सम्भव है कि वे हमें गलत रास्तेपर ले जायँ । हमें जल्द चेतना होगा ! कम-से-कम भविष्यकी नारियोंको हमारी अपनी सभ्यताके अनुरूप बनाना हमारा परम ध्येय होना चाहिये । इस दिशामें हमारा पहला कर्तव्य उनके शिक्षा-क्रमको सुधारना होगा। नरोंके शिक्षा-क्रमसे नारीकी कोई भलाई नहीं हो सकेगी । एक ही प्रकारकी शिक्षा पाये हुए नर-नारियोंके सहयोगसे राष्ट्रका कोई विशेष लाभ नहीं होगा । नर-नारीका संयोग सचमुच नेगेटिव् पॉजिटिव् का मिलन हो, तभी भारतकी ज्योति फिर एक बार चमक उठेगी । उच्च वर्गोंमें सह-शिक्षा (को-एजूकेशन) आदि विदेशी कुरीतियोंका देशभरमें विरोध होना चाहिये । अपनी सहज प्रकृतिकी उपेक्षा करके निर्लज्ज हो, सैकड़ों तीखी आँखोंके सामने नर-नारी हिल-मिलकर रहें—यही आदर्श शिक्षा नहीं है । हर प्रकारकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेवाली विभिन्न प्रकारकी शिक्षाकी व्यवस्था करके जबतक देशभरमें प्रचार नहीं किया जायगा, जबतक हमारे नर और नारियाँ सब प्रकारसे पूर्ण नहीं बनेंगी, तबतक हमारे राष्ट्रका पूर्ण उद्धार भी असम्भव है । क्या हम आशा करें कि हमारे देशके विचक्षण शिक्षा-शास्त्रियोंका ध्यान इस ओर शीघ्र आकृष्ट होगा ? ऐसा हुआ तो निश्चय ही हम पराशक्तिके कृपा-साम्राज्यकी प्रजा हो पायेंगे ।

स्त्री-जातिकी विशेषता

नारी एक ऐसा पुष्प है, जो छायामें ही अपनी गन्ध फैलाता है।—लेमेनिस

१. 'कुमारसम्भव'—कालिदास (१ सर्ग) । २. अपना-अपना भाग्य—पं० जैनेन्द्रकुमार ।

उषा

(रचयिता—साहित्याचार्य पं० श्रीदामोदरजी शास्त्री, बी० ए०)

(बालिका-रूप)

द्विज-रव-मिस रुनझुन करती,
पहने किरणोंकी माला—
यह जग-आँगन खिल जाता—
जब आती ऊषा-बाला ॥
आती ऊषा अलबेली,
सुषमाका साज सजाकर।
जाने ओझल हो जाती,
क्यों मेरा मन बहलाकर ॥
ऊषे ! तेरा छवि-वैभव
लखकर आँखें थक जातीं।
पर हाय, हमारी इच्छा
फिर भी अतृप्त रह जाती ॥
तेरी पग-ध्वनिसे, ऊषे !
मानस-कलिका खिल जाती।
जगसे ऊबे मनमें तू
है शान्ति-सुधा बरसाती ॥

(युवती-रूप)

तनपर अभिनव शोभाका
मोहक सम्भार सँभाले।
मुखपर सुषमासे पूरित
स्वर्णिम अवगुण्ठन डाले ॥
प्राचीमें नवल वधू-सी
जब उषा-सुन्दरी आई।
पायलकी ध्वनिमें गूँजी
विहगोंकी मृदु शहनाई ॥
यौवनकी आभामें है
छायी लज्जाकी लाली।
ऊषाको पाकर प्रियने
है नयी चेतना पा ली ॥
प्रियके मृदु प्रणय-सलिलकी
वह मञ्जुल मीन हुई है।
अपना अस्तित्व मिटाकर
प्रियतममें लीन हुई है ॥

(मातृ-रूप)

आँसू-धन कितना खोकर,
उरमें रख कितनी माया।
जाने कितना कुछ सहकर,
बालारुण उसने पाया ॥
एकान्त शान्त हो लीना,
अम्बुज-उपहार सजाया।
रे बहुत साधना करके
बालारुण उसने पाया ॥
बालारुण ले गोदीमें
रे उषा मन्द मुसकाती।
लखकर उसकी इस छविको
जगती है बलि-बलि जाती ॥
बालार्क लिये गोदीमें
जब वह जग-आँगन आती।
दायित्व समझकर अपना,
जगती पदमें झुक जाती ॥
ऊषाकी स्नेह-सुधासे
उसका शिशु रवि बढ़ जाता।
उसके तपके फलसे ही
जगमें वह पूजा जाता ॥
जननी तेरी कोमलता,
तू है कोमलता-धारा।
कोमलतामय जीवन रख,
कोमल तव मृत्यु-किनारा ॥

पातिव्रत्य-धर्मका एक महान् तत्त्व

The Law of Telegony.

(लेखक—आचार्य श्रीराम गोस्वामीजी)

यस्मै मां पिता अदात् नैवाहं तं जीवन्तं हास्यामि ।

(शतपथब्राह्मण)

एक एव पतिर्नार्या यावज्जीवं परायणम् ।
मृते जीवति वा तस्मिन् नापरं प्राप्नुयात् पतिम् ॥

हिंदू-संस्कृतिमे नारी-धर्मकी बहुत चर्चा की गयी है और नारी-जीवनका अनेक अङ्गोंसे विवेचन किया गया, है परंतु उन सभीमें अधिकतम महत्त्व दिया गया है 'पातिव्रत्य'को । हिंदू-संस्कृतिमे नारी-धर्मकी सारी समस्याएँ इसी एक तत्त्वके आधारपर केन्द्रित हो चुकी हैं । नारी-जातिका सम्मान इसी एक मानबिन्दुपर रक्खा गया है । नारी-जातिका गौरव-स्थान और सुख-सर्वस्वका मन्दिर इसी आधारस्तम्भपर रचा हुआ दिखायी देता है ।

हमारी संस्कृतिमें नारी-जाति जो देवता-तुल्य मानी गयी है और हमारे श्रुति-स्मृति-पुराणादि ग्रन्थोंमें उसका जो कुछ गौरव पाया जाता है, उसका कारण सोचा जाय तो एक पातिव्रत्य-धर्ममे ही उसका मूल मिल सकता है । सावित्री, सीता और मन्दोदरी-जैसे महान् रमणीरत्नोंकी प्रशंसा हमारे धर्मग्रन्थोंमें जो मिलती है, वह सब पातिव्रत्यको लेकर ही ।

पातिव्रत्य ऐसी क्या चीज है ? और उसका क्या स्वरूप है ? यहाँ उसीका विचार करना है ।

ऊपर जो शतपथब्राह्मणका अवतरण दिया है, उसमें इस महान् तत्त्वका दिग्दर्शन मिलता है । आमरणान्त स्त्रीका एक ही पति हो सकता है, दो और अधिक नहीं । पतिव्रताका पति एक ।

कबीरसाहब कहते हैं—

पतिव्रताका एक पति, व्यभिचारिन के दोय ।
पतिव्रता व्यभिचारिणी, कैसे मेला होय ॥
पतिव्रता को सुख घना, जाका पति है एक ।
मन मैली व्यभिचारिणी, ताके खसम अनेक ॥
पतिव्रता का एक पति, दूजा नाहि सुहाय ।
सिंघ सदा लंघन करे, तोभी घास न खाय ॥
पतिव्रता मैली भली, काली कुचल कुरूप ।
पतिव्रता के रूप पर, वारौं कोटि सुरूप ॥

सतीको एक ही पतिके साथ आमरणान्त अव्यभिचारी धर्मसे रहना चाहिये । यही है पातिव्रत्यका मुख्य सिद्धान्त । इस पातिव्रत्य-धर्मकी चाह पाश्चात्य संस्कृतिसे ग्रस्त आजके नर-नारियोंमें नहीं रही । किंबहुना, पुनर्विवाह, विवाह-विच्छेद इत्यादि सुधारकी बातोंसे हमारे नव-शिक्षितोंके मन घिरे हुए मालूम पड़ते हैं । खेद है कि वे इस बातपर कोई विचार नहीं करते कि हमारे पूर्वाचार्यों और ऋषियोंने पातिव्रत्य-धर्मपर इतना जोर क्यों दिया था ।

प्रश्न यह है कि हमारे दूरदृष्टि-सम्पन्न गम्भीरविचारक ऋषियोंने पातिव्रत्यको ही नारी-जीवनका ध्रुवतारा क्यों बतलाया ?

पश्चिमीय समाजशास्त्रज्ञोंने इस विषयपर संशोधनकी दृष्टिसे बहुत सोच-विचार किया । इस संशोधनमें Law of Telegony का तत्त्व पाया गया है । उसीसे पातिव्रत्य-धर्मका स्पष्टीकरण बहुत अच्छी तरह मिल जाता है ।

The Law of Telegonyका ऐसा रूप है— 'Woman is the medium of progeny. Man disperses and woman absorbs. Woman's organism is permanently affected by man's connection, as she is innoculated by his seed.'

निसर्गकी रचनामें नारी संततिका माध्यम है और उसकी देह-रचना फोटोकी नेगेटिवके कॉचके समान है । उसकी देहपर एक ही पुरुष-सम्बन्धसे स्थायी नियत परिणाम हो जाता है । इग्लैंडकी रायल सोसायटीके दफ्तरमे इस तत्त्वके फलस्वरूप काफी प्रयोग लिखे हैं । Law of Telegonyकी स्पष्टताके लिये उनमेंसे एक नीचे दिया जाता है—

प्राणिसंग्रहालयमे यह प्रयोग देखा गया । एक अश्व घोड़ीके साथ एक झेबाके सदृश क्वागाका प्रथम समागम कराया गया, पर इससे घोड़ीको कोई संतान नहीं हुई । कुछ महीनोंके बाद उसी अश्व घोड़ीके साथ उसीकी जातिके अश्व नरका सम्बन्ध कराया गया । इस दूसरे सम्बन्धसे जो संतान पैदा हुई, उसपर क्वागाके बहुत-से लक्षण और चिह्न दिखलायी पड़े । क्वागाके पूर्वोक्त प्रथम समागमके स्थायी नियत परिणाम घोड़ीकी देहपर हो गये थे, यह उसीका फल था ।

नारीके लिये आमरणान्त एक ही पतिका विधान करनेवाले हमारी संस्कृतिके महान् ऋषियोंने इस तत्त्वको अपनी दिव्यदृष्टिसे देखा था और विशुद्ध विमल संतानके लिये नारी-धर्मकी इमारत इसीलिये पातिव्रत्य धर्मकी नींवपर उन्होंने रची थी । यह सारा प्रयत्न केवल 'शुद्ध सन्तान', 'शुद्ध वंश'के लिये ही था । शुद्ध संतान नारी-जातिकी समाजको सर्वोत्तम देन है । आज भी शुद्ध वंशके लिये पातिव्रत्यकी समाज-शास्त्र और धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे बड़ी जरूरत है । नारी-जातिका सम्मान और सुख-सर्वस्व इसीमें समाया है ।

स्त्री-पुरुषके पवित्र कर्तव्य

(लिओ टाल्स्टाय)

जो पुरुष अपना जीवन विविध पुरुषोचित कार्योंके करनेमें बिताते हैं और जो स्त्रियाँ अपना जीवन बच्चे पैदा करने और उनका पालन-पोषण करनेमें बिताती हैं, वे सदा अनुभव करेंगे कि उन्होंने अपना जीवन पुण्यकार्योंमें बिताया और मनुष्य-समाज सदा उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखेगा; क्योंकि उन्होंने अपने कर्तव्योंका पालन किया। पुरुषोंका कार्य बहुमुखी और विस्तृत है; स्त्रियोंका कार्य सीमित, पर ठोस है।

× × × ×

पुरुषको शरीर तथा बुद्धिसे ईश्वरकी सेवा करनी चाहिये, उपासना करनी चाहिये; वह अनेक क्षेत्रोंसे अपने कर्तव्यकी पूर्ति कर सकता है! परंतु स्त्रीके लिये ईश्वर-सेवा तथा उपासनाका एकमात्र आधार बच्चोंका लालन-पालन है।

पुरुषको अपने कार्यसे ईश्वर और मनुष्य-जातिकी सेवा करनेका आदेश दिया गया है, पर स्त्री तो सन्तान-निर्माणके द्वारा ही सेवा कर सकती है। इसलिये स्त्रियोंका अपने बच्चोंको विशेष रीतिसे प्यार करना स्वाभाविक है। इसके विरुद्ध जो दलीलें दी जाती हैं, वे व्यर्थ हैं। माता सदा अपने बच्चेको विशेष रीतिसे प्यार करेगी। माताका अपने बच्चोंको विशेष रीतिसे प्यार करना अहंवृत्तिका द्योतक नहीं है, जैसी कि उलटी सीख कुछ लोग देते हैं। यह प्यार वैसा ही है, जैसे कोई कारीगर अपने हाथसे बनायी वस्तुको प्यार करता है। यदि यह प्यार छीन लिया जाय तो फिर उसके लिये काम करना असम्भव हो जाय।···मेरी समझमें इस तरह स्त्रियों और पुरुषोंकी पूर्णरूपसे समानता सिद्ध होती है; क्योंकि दोनों समान रूपसे ईश्वर तथा मनुष्यजातिकी सेवा करते हैं, यद्यपि उनके कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। दोनोंकी समानता इस बातसे भी सिद्ध है कि दोनोंका योग समान रूपसे महत्त्वपूर्ण है, एककी दूसरेके बिना कल्पना नहीं की जा सकती। दोनों एक दूसरेके पूरक हैं तथा दोनोंको अपने-अपने कार्य सम्पन्न करनेके लिये सत्यका जानना आवश्यक होता है और उसे जाने बिना कार्य मानव-जातिके लिये लाभदायक होनेके बदले हानिकारक हो जाते हैं।

पुरुषको विविध कार्य करनेका आदेश दिया गया है; पर उसका सारा शारीरिक श्रम, उसका मानसिक कार्य तथा उसका धार्मिक कार्य तभी लाभदायी होता है, जब वह अनुभूत सत्यके आधारपर किया जाता है। यही बात स्त्रियोंपर भी चरितार्थ होती है। उनका बच्चे पैदा करना तथा उनका पालन-पोषण करना मनुष्यजातिके लिये तभी लाभदायी होगा, जब वह अपने सुखके लिये बच्चोंका पालन-पोषण नहीं करेगी, बल्कि वह उन्हें मानवजातिका भावी सेवक बनायेगी, उन्हें सत्यका शिक्षा देगी और सिखलायेगी कि वे मनुष्यसे कम-से-कम लें और उसे अधिक-से-अधिक दें। मैं उस स्त्रीको आदर्श स्त्री कहूँगा, जो जीवन-सिद्धान्तोंको अच्छी तरह समझ लेनेके बाद अधिक-से-अधिक सख्यामें बच्चे पैदाकर तथा पाल-पोसकर उन्हे मानवजातिकी सच्ची सेवा कर सकनेके योग्य बना देनेकी शिक्षा देती है। जीवन सिद्धान्तोंकी शिक्षा महिला-विद्यापीठोंमें अथवा आँख कान बंद रखनेसे नहीं मिलती। वह हृदयका द्वार मुक्त रूपसे खोल देनेपर प्राप्त होती है।

(सकलित)

नारीका वास्तविक स्वरूप

मेरे विचारसे नारी सेवा और त्यागकी मूर्ति है, जो अपनी कुर्बानीसे अपनेको बिल्कुल मिटाकर पतिकी आत्माका एक अश बन जाती है। आप कहेंगे, 'मर्द अपनेको क्यों नहीं मिटाता ? औरतसे ही क्यों इसकी आशा करता है ?' मर्दमें वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह तेजप्रधान जीव है।······स्त्री पृथ्वीकी भाँति धैर्यवान् है, शान्तिसम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुषमें नारीके गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है। नारीमें पुरुषके गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है।

नारीके पास दान देनेके लिये दया है, श्रद्धा है, त्याग है। पुरुषके पास दान देनेके लिये क्या है ? वह देवता नहीं, लेवता है। वह अधिकारके लिये हिंसा करता है, सग्राम करता है, कलह करता है······।

मुझे खेद है कि हमारी बहनें पश्चिमका आदर्श ले रही हैं, जहाँ नारीने अपना पद खो दिया है और स्वामिनीसे गिरकर विलासकी वस्तु बन गयी है।—स्व० प्रेमचन्दजी

महिला-हृदयोद्गार

(रचयि०—सौ० कमलादेवी पुरोहित)

उठी है मनमें तरल-तरंग।
भरे उत्कर्षित अङ्ग उमंग॥
हमी हैं भारतकी ललना, करें प्रण, जो न कभी टलना।
ध्येय है सत-पथपर चलना, सर्वदा दानव-दल दलना॥
तीर्थ है 'पतिव्रत' पावन-गंग।
भरे उत्कर्षित अङ्ग उमंग॥
हमी हैं आश देशकी एक, रखेंगी निश्चय इसकी टेक।
जनेंगी लवसे पुत्र अनेक, साहसी, वीर, धीर, सुविवेक॥
देखकर हों देवादिक दंग।
उठी है मनमें तरल-तरंग॥
हमी हैं काली विकराली, हमी हैं अरुणोदय-लाली।
हमी हैं मदिरा मतवाली, हमी हैं फूलोंकी डाली॥
हमारा जगमें अद्भुत ढंग।
भरे उत्कर्षित अङ्ग उमंग॥
हमीने मधु-कैटभ मारा, वीर रावणको ललकारा।
हमीसे 'धर्मराज'* हारा, वहाई ज्ञान-सलिल-धारा॥
तरे हैं मानव बहु, पा संग।
उठी है मनमें तरल-तरंग॥
परशुधर, राम, कृष्ण भगवान, धनञ्जय, भीम, भीष्म, हनुमान।
धनाधिप† भामाशा धनवान, व्यासकवि वाल्मीकि विद्वान॥
प्रतिष्ठित सभी हमारे अङ्ग।
भरे उत्कर्षित अङ्ग उमंग॥
न समझो हमें मूर्ख-नादान, सहेंगी कभी नहीं अपमान।
रखेंगी स्वाभिमानका ध्यान, हुआ है प्रकट हृदयमें ज्ञान॥
रहेंगी कभी न होकर तंग।
उठी है मनमें तरल-तरंग॥
जानकर हमको अबला नार, करें निशि-वासर अत्याचार।
लूटनेको सतीत्व-भण्डार, सदा रहते हैं जो तैयार॥
जला देंगी उनके अँग-अंग।
भरे उत्कर्षित अङ्ग उमंग॥
देहमें जबतक हैं यह प्राण, नहीं त्यागेंगी अपनी आन।
दिखा देंगी कर स्वर्ण-विहान, जगद्गुरु प्यारा हिंदुस्तान॥
गुनें गुण 'कमला' भृंग-विहंग।
उठी है मनमें तरल-तरंग॥

---

* सावित्रीसे यमराजको हारना पड़ा। † कुबेर।

भारतीय नारी और राज्य-शासन

भारतीय साहित्यके अनुशीलनसे यह पता लगता है कि प्रायः राजकुलकी स्त्रियाँ ज्ञान-विज्ञान और ललित कलामें प्रवीण होनेके साथ ही राजनीति और युद्ध-कलाकी भी शिक्षा पाती थीं। कालिदासके शब्दोंमें नारी गृहिणी होनेके साथ पतिकी सचिवा भी थी। यह साचिव्य-कर्म तभी हो सकता है, जब उसे सभी तरहकी आवश्यक शिक्षा प्राप्त हो। भारतीय नारी अपने पातिव्रत्यको अक्षुण्ण रखकर ही अन्य विषयोंमें यथा-साध्य पतिकी सहायता करती थी। उसमें पतिसे आगे बढ़कर अपनी शक्ति दिखानेकी स्पर्धा नहीं थी। उसका सम्पूर्ण ज्ञान पतिके कार्योंमें सहयोग देनेके लिये ही था। इस प्रकार जिस राजाका शासन बहुत उत्तम और न्यायानुकूल होता था, उसकी उस शासन-व्यवस्थामें राजमहिषीका भी सुन्दर परामर्श काम करता था। कितनी ही स्त्रियाँ अपने सहयोगसे पतिकी अयोग्यताको भी दूर करके उसे योग्य शासक बनाती थीं। रानी चूड़ालाका जीवन इसके लिये आदर्श है। भारतीय नारीको देवाङ्गनाओंसे यह प्रेरणा प्राप्त होती थी। देवी दुर्गा तथा इन्द्र, वरुण आदिकी पत्नियोंमें नारीजनोचित गुणोंके साथ-साथ युद्ध और शासनकी भी पूर्ण क्षमता भारतीय स्त्रियोंको सदा वैसी बननेके लिये प्रोत्साहन देती रही है। महारानी कैकेयीने महाराज दशरथके साथ युद्धमें जाकर जिस साहस और धैर्यका परिचय दिया, उससे केवल राजाको विजय ही नहीं मिली, समस्त नारी-जातिका भी गौरव बढ़ गया।

कहते हैं, महाभारत युद्धमें जो राजा मारे गये थे, उनमेंसे जिन-जिनके कोई पुत्र नहीं था, उनके राज्य उनकी पुत्रियोंको दिये जायँ—ऐसा आदेश भीष्मपितामहने धर्मराज युधिष्ठिरको दिया था। नवीं शताब्दीमें उत्कलके राजा ललिताभरण देवका देहान्त होनेपर उनकी महारानी त्रिभुवनदेवीने ही राज्यका भार सँभाला और बड़ी योग्यताके साथ उसका निर्वाह किया। चन्द्रगुप्त प्रथम अपनी लिच्छिविवंशीया महारानी कुमार-देवीके साथ ही राज्यका शासन करते थे। उनके सिक्केपर दोनोंके नाम भी पाये जाते हैं। कौशाम्बीके राजा उदयन जब बंदी बना लिये गये थे, उस समय उनकी माताने ही राज्यका पालन किया था। 'मसग'के नरेश जब समर-भूमिमें मारे गये, उस समय उनकी रानीने सेनाका सञ्चालन करके युद्धमें आक्रमणकारी सिकंदरका सामना किया था। ईस्वी सन्से दो सौ वर्ष पूर्व दक्षिणके शातवाहन साम्राज्यकी रानी नयनिकाने अपने बालक राजकुमारके वयस्क होनेतक स्वयं ही राज्यकी देख-भाल और शासन किया। चौथी शताब्दीमें विधवा रानी प्रभावती गुप्ताने भी दस वर्षोंतक अपने राज्यकी रक्षा की थी। उस समय राजकुमार अभी बालिग नहीं हुए थे। काश्मीरकी रानी सुगन्धा और दिद्दाने भी वैधव्य-दशामें वर्षोंतक अपने देशका शासन किया था। सन् ११९३ ई० में जब पृथ्वीराजके साथ समरसिंह युद्धभूमिमें मारे गये, उस समय कूर्मदेवीने मेवाड़का शासनसूत्र अपने हाथमें लिया और कुतुबुद्दीनके आक्रमण करनेपर बड़ी योग्यता-से सैन्य-सञ्चालन करते हुए उसका सामना किया था। गुजरातके सुलतान बहादुरशाहने जब चित्तौड़पर आक्रमण किया, उस समय राणा साँगाके मारे जानेपर उनकी प्रथम विधवा रानी कर्णवतीने घमासान युद्ध किया था। राणा साँगाकी द्वितीय पत्नी जवाहरबाईने भी दुर्गकी रक्षा करते हुए वीर-गति प्राप्त की।

मराठोंके इतिहाससे सिद्ध होता है कि कोल्हापुरकी रानी ताराबाई, इछलकरनजीकी अनुबाई, इन्दौरकी अहल्याबाई तथा झाँसीकी विख्यात वीराङ्गना रानी लक्ष्मीबाईने बड़ी कुशलता, नीति और बहादुरीके साथ राज्य-शासन और युद्ध भी किया था। ताराबाईने कूटनीतिज्ञ औरंगजेबको पीछे खदेड़ा था। अनुबाईने अनेक बार शत्रुओंके दाँत खट्टे किये और लक्ष्मीबाईने तो संहारकारिणी दुर्गाकी भाँति शत्रु-सेनाका संहार किया था। उसने फिरङ्गियोंके छक्के छुड़ा दिये थे। दक्षिण-भारतमें अनेक ऐसे शिलालेख मिले हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि नारियाँ शासन-कार्यमें क्रियात्मक भाग लेती थीं। सातवीं शताब्दीके मध्यभागमें चालुक्यवंशके राजा आदित्य-की महिषी विजय मदारिका बम्बईके दक्षिणमें राज्य करती थीं। उनका एक घोषणा-पत्र भी प्राप्त हुआ है। ७८६ ई० में राष्ट्रकूटोंके राजा ध्रुवकी रानी शील महादेवीने राज्य-सिंहासनपर आरूढ होनेके बाद एक भूमिखण्ड पुरस्काररूपमें अर्पण किया था। १०५३ ई० में चालुक्यराजा सोमेश्वरकी महारानी मैलादेवी 'वनवासी' प्रान्तपर राज्य करती थीं। सोमेश्वरकी दूसरी रानी केटलादेवी पोनवदके अग्रहारकी शासिका थीं। जयसिंह तृतीयकी बड़ी बहन अक्कादेवी १०२२ ई० में किसुकद जिलेपर राज्य करती थीं। १०७९ ई० में विजयादित्यकी बहन कुंकुमदेवी कर्नाटकके

धारवाड जिलेके अधिकाश भागपर शासन करती थी। विक्रमादित्य षष्ठकी प्रधान महारानी लक्ष्मीदेवीके हाथमें १८ धर्मार्थ दातव्य संस्थाओंका शासनभार था। १३वीं सदीमें प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलोने गुंटूर जिलेपर एक रानीको राज्य करते देखा था।

ऋग्वेदमें नारीको गृह, सास-ससुर, पति, ननद और देवरकी सम्राज्ञी होनेका आशीर्वाद दिया गया है। यह साम्राज्य शासनके लिये नहीं, प्रेम और सद्व्यवहारके लिये है। इसीके द्वारा नारी सम्राट्के हृदयकी भी सम्राज्ञी बन जाती है।

नारी और भोजन-निर्माण-कला

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९। २७)

श्रीभगवान्ने अर्जुनसे कहा है—'कौन्तेय! तुम जो कुछ भी करो, जो खाओ, जो होम करो, जो दान दो और जो तप करो—सब मेरे अर्पण करो।'

इससे यह सिद्ध होता है कि भोजन न तो जीभके स्वादके लिये करना है और न शारीरिक बल प्राप्त करके यथेच्छ विषय-भोगके लिये। भोजन करना है—श्रीभगवान्के लिये। अर्थात् मानव-जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, भगवत्प्राप्तिके लिये भजन आवश्यक है, भजन स्वस्थ शरीरसे होता है और स्वस्थ शरीर रहता है भोजनसे। इसलिये भोजन करना चाहिये। ऐसा भोजन स्वाभाविक ही सात्त्विक—भगवान्के अनुकूल और सर्वथा निर्दोष होगा।

भोजनमें प्रधानतया पाँच बातें देखनी हैं—

१—न्याययुक्त सच्ची कमाईके पैसोंसे खरीदा हुआ अन्नादि हो।

२—मांस-मद्यसे रहित हो, हिंसात्मक न हो।

३—पवित्र वस्तुसे, पवित्र स्थानमें, पवित्र प्रेमभरे हृदयवाले व्यक्तिके द्वारा बनाया और परसा हुआ हो।

४—सादा और सात्त्विक हो, तथा

५—जिसमें बहुत व्यय न हुआ हो।

श्रीभगवान्ने गुणभेदसे गीतामें भोजनके तीन भेद बतलाये हैं—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

(१७। ८-१०)

'आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले रसदार, स्नेहयुक्त, स्थिर रहनेवाले और मनको प्रिय आहार सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं।'

'कड़वे, खट्टे, नमकीन, बहुत गरम, तीखे, रूखे और जलन पैदा करनेवाले, दुःख-शोक और रोग उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको प्रिय होते हैं। और अधपके, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी, जूठा और अपवित्र आहार तामस पुरुषको प्रिय होता है।'

वैज्ञानिक कहते हैं कि शरीरकी शक्तिवृद्धि और बुद्धिके सात्त्विक विकासके लिये गायका दूध सर्वश्रेष्ठ है। इसमें सब पोषक तत्त्व हैं। अनेक वैज्ञानिकोंका तो दृढ़ विश्वास है कि यदि पर्याप्त मात्रामें गोदुग्ध मिले तो केवल इसीपर मनुष्य रह सकता है। मनुष्यके लिये जितने पोषक तत्त्वोंकी आवश्यकता है, वे सब गायके दूधमें हैं। बड़े-बड़े शास्त्रोंके बनानेवाले ऋषि-महर्षि केवल गोदुग्धपर ही रहते थे। अब भी कितने ही महात्मा दूधपर ही रहते हैं। वास्तवमें गोदुग्ध मानवके लिये अमृत है। सदा दूधका व्यवहार करनेवालोंको रोग नहीं हो सकता और होगा भी तो टिकेगा नहीं। दूधसे अग्निमन्दता दूर होती है और पेट साफ रहता है। रोगके कीटाणुओंको दूध मार देता है। शरीर, बुद्धि और हड्डियोंको पुष्ट करनेकी दूधमें अद्भुत शक्ति है। लोगोंको दूध नहीं मिलनेसे ही उनके बच्चे अधिक संख्यामें मरते हैं। भारतवर्षमें पहले दूधकी नदियाँ बहती थीं, परंतु देशमें गोघातकोंकी बाढ़ आ जाने और जन-संख्या-वृद्धि आदिके कारण अब मध्य श्रेणीके मनुष्योंको भी यथेष्ट दूध नहीं मिलता। 'धारोष्ण' दूधमें अधिक गुण माने गये हैं।

दूधके बाद दूधके बने हुए मक्खन, घी, दही, छाछ, मलाई, रबड़ी, पेड़े, बर्फी आदिमें मक्खन सर्वोपरि है। यदि जरा-सी मिश्री मिलाकर मक्खन खाया जाय तो यह परम सात्त्विक और पोषक पदार्थ सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होता है। मक्खनमें

जो विटामिन है, वह तो घीमें भी नहीं है; क्योंकि मक्खनका घी बनानेपर अर्थात् उसे गरम करनेपर बहुत कुछ विटामिन नष्ट हो जाता है। मस्तिष्कको शीतल रखने और नेत्रकी ज्योति बढ़ानेमें तो मक्खन अनूठा पदार्थ है। शरीरको नीरोग रखनेमें छाछ भी अमृत है।

आयुर्वेदके अनुसार प्रातःकाल दस बजे और रात्रिको आठ बजे भोजन करना चाहिये। अनियमित भोजन कभी नहीं करना चाहिये। भोजन 'प्राणाग्निहोत्र' है; और अग्निहोत्र या आहार बिना नियत समयपर किये लाभके बदले हानि पहुँचाते हैं। इसीसे भगवान्‌ने गीतामें 'युक्ताहारविहार'पर जोर दिया है। दिनके पहले पहरमें और दोपहरके बाद भोजन करना मना है। पहले पहरमें भोजन करनेसे रसाजीर्णकी उत्पत्ति होती है और दोपहरके बाद भोजन करनेसे बलक्षय होता है।

ऋतुके अनुसार भोजन करना चाहिये, इससे स्वास्थ्यकी वृद्धि होती है। बसन्त (चैत्र-वैशाख) में पित्त कुपित होता है, इसलिये इस समय जुलाब लेना चाहिये और खट्टी, मीठी और गरिष्ठ चीजोंका त्याग कर देना चाहिये। ग्रीष्म (ज्येष्ठ-आषाढ) में कड़वी, चटपटी, सूखी और खट्टी चीजोंको नहीं खाना चाहिये। वर्षा-ऋतु (श्रावण-भाद्रपद) में रूखे और गरम पदार्थ खाना हानिप्रद है। वर्षा-ऋतुमें नीबूका सेवन बहुत हितकारक है। शरद् (आश्विन-कार्तिक) में अग्निमान्द्य होता है। इसलिये हल्की चीजें खानी चाहिये, गरिष्ठ नहीं। हेमन्त (अगहन-पौष) में भी पित्त कुपित होता है; इसलिये पित्तनाशक घी, गेहूँ, गरम दूध, मुनक्का आदिका विशेष सेवन करना ठीक है। शिशिर (माघ-फाल्गुन) में बर्फ, सत्तू और कड़वे, कसैले, खट्टे, शीतल और वातकारक पदार्थोंका खाना मना है। कसेरू, सिंघाड़े, उड़द और आलूका सेवन भी अच्छा नहीं।

हरे चने और मटर भी अच्छे खाद्य हैं। अङ्कुरित चना भी स्वास्थ्यवर्द्धक है। मिष्टान्नोंमें बहुत ही कम विटामिन रहता है। इसलिये इनका सेवन बहुत ही कम करना चाहिये। मीठे पदार्थका सेवन करनेकी इच्छा हो तो मधुका सेवन करना चाहिये।

भोजनमें हरी तरकारियोंका रहना अत्यावश्यक है। मूलवाली तरकारियोंसे पत्तीवाली तरकारियाँ अच्छी हैं। श्वेत तरकारियोंमें पीली और हरे रंगवाली तरकारियाँ अच्छी हैं। पालक, मेथी, पातगोभी और पौधोंके नवपल्लवोंकी तरकारियाँ बढ़िया होती हैं। इन तरकारियोंके उबाले हुए जलको नहीं फेंकना चाहिये, वरं तरकारियोंके साथ मिलाकर और पकाकर खाना चाहिये।

नीबू, नारङ्गी, अंगूर, सेब, नाशपाती, आम, अमरूद, बेर, पपीता, लीची, तरबूज, ककड़ी आदिमेंसे जो भी फल मिल सके, उसका नित्य सेवन करना बड़ा लाभदायक है। इन सबमें यथेष्ट पोषक तत्त्व रहते हैं। टमाटर, मूली और थोड़ी मात्रामें हरी मिर्चका सेवन करना भी लाभप्रद है। टीनमें सुरक्षित फलों या अन्य पदार्थोंका सेवन हानिकारक है।

भोजन बनाना तथा खिलाना एक कला है और नारीका यह एक प्रधान महत्त्वपूर्ण गुण है। सब गुण होते हुए भी यदि नारी भोजन-कलासे अनभिज्ञ होती है तो उसका अनादर होता है; इसके विपरीत जो नारी भोजन बनाने, खिलाने आदिमें निपुण होती है वह सर्वत्र मान और आदर-सत्कार प्राप्त करती है। वह सर्वदा समयसे सुन्दर और स्वादिष्ट पदार्थ बनाकर अपने परिवारको स्वस्थ रखती हुई पतिकी प्रेमपात्री बनी रहती है। अतएव प्रत्येक नारीको इस कलामें निपुण होना चाहिये तथा अपनी कन्याओंको बाल्यकालसे ही इस कलाका अच्छा ज्ञान करा देना चाहिये, जिससे कि वे बड़ी होकर सुगृहिणीका पद प्राप्त कर सकें।

समाजमें एक उक्ति प्रसिद्ध है—'गेहूँ सबके घरमें होता है, पर रोटी बिरले ही घरोंमें बनती है।' बात साधारण है; किंतु गम्भीरतासे देखें तो ज्ञात होगा कि हमारे अधिकांश घरोंमें पाकशास्त्रकी रीतिसे भोजन नहीं होता। कुछ नारियाँ तो भोजन बनाना नहीं जानतीं; और जो जानती हैं, वे उसके खिलानेकी क्रियासे अनभिज्ञ होनेके कारण उसका स्वाद एवं सौन्दर्य नष्ट कर डालती हैं। इस बातकी आवश्यकता नहीं कि भोजनमें चार प्रकारकी तरकारियाँ हों, दो-चार तरहके अचार हों, चटनी हो, रायता हो, मिष्टान्न हो तथा इसी प्रकारकी अन्य रुचिकर चीजें हों। किंतु साधारण से-साधारण भोजन क्यों न हो—चावल, दाल, रोटी और एक ही प्रकारकी तरकारी क्यों न हो; पर इनका निर्माण इस ढंगसे हुआ हो तथा ये परसी इस चतुराईसे गयी हों कि थाली सामने आते ही भोजन करनेवालेका चित्त प्रसन्न हो उठे और वह बड़े चावसे भोजन करने लगे। वस्तुतः भोजनका स्वाद उत्तम वस्तुओंकी अपेक्षा उसके निर्माण एवं परोसनेमें है।

परस्पर सम्पर्कमें आनेवाली वस्तुओंपर एक-दूसरेका प्रभाव पड़ता है—यह प्राकृतिक नियम है। इस सिद्धान्तके अनुसार यह स्पष्ट है कि भोजन बनानेवाले और परोसनेवालेके मन, हृदय

एवं बुद्धिका प्रभाव भोजनकी वस्तुओंपर पड़ता है तथा उनके साथ विचारोंके सूक्ष्म परमाणु भोजन-कर्ताके शरीरमें पहुँचकर उसके हृदय, मन और बुद्धिपर प्रभाव डालते हैं। यही कारण है कि हमारे यहाँ भोजनकी पवित्रतापर इतना अधिक ध्यान दिया गया है।

हमारे यहाँ भोजनका काम नारीके जिम्मे है। अतएव उसका दायित्व बहुत बढ़ जाता है। पाकशास्त्रकी दृष्टिसे नारीमें ये गुण होने आवश्यक हैं—

(१) स्वास्थ्य अच्छा हो, शरीरमें किसी प्रकारका संक्रामक रोग न हो।

(२) कौन वस्तु कैसे बनती है, इसका ज्ञान हो; साधारण भोजनको भी बढ़िया और रुचिकर बनानेके लिये कई बातें देखनी पड़ती हैं। पहले, पानी अर्थात् किस पदार्थमें कितना पानी देना चाहिये; दूसरे, आँच अर्थात् किस चीजको बनानेके लिये कितनी और कैसी आँचकी आवश्यकता है और तीसरे, ताव अर्थात् भोजनका सामान ठीक समयपर आँचपर चढ़ाया जाता है, ठीक समयपर चलाया जाता है तथा ठीक समयपर आँचपरसे उतारा जाता है।

(३) विचार सात्त्विक हों; स्वभाव शान्त एवं मधुर हो; मनमें चञ्चलता न हो; वस्तुके सिद्ध होनेतक प्रतीक्षा करनेका धैर्य हो; भोजन बनानेमें कर्तव्यबुद्धि हो; जिसके लिये भोजन बनाया जाय उसके प्रति प्रेम, रुचि एवं हितकी भावना हो।

(४) चौकेमें जितने भी भोजन करनेवाले हों, सबके प्रति एक भाव हो; किसीको प्रेम, मोह, स्वार्थ, दबाव, लालच, भय, लापरवाही आदिके कारण कम-बेशी चीज न दे; अपने-परायेका भाव लाकर किसीसे दुराव-छिपाव न करे।

इन प्रधान बातोंके अतिरिक्त नारीको कुछ और भी बातोंपर ध्यान देना चाहिये। भोजन स्नान करनेके बाद बनाया जाय। भोजन बनाते समय स्वच्छ एवं पवित्र वस्त्र पहने जायँ। केश बँधे हुए हों, हाथोंके नख कटे हुए तथा साफ हों; हाथोंपर मैल न चढ़ा हुआ हो। मन प्रसन्न हो, क्रोध आदिका आवेग न हो। मन बड़ा संक्रामक है, मानसिक विकारोंका अन्नपर बहुत जल्दी प्रभाव पड़ता है; किसीको भोजन करानेमें कष्ट होता हो, भीतर-ही-भीतर जलन होती हो, मनमें एक प्रकारके भारका अनुभव होता हो—ऐसी स्थितिमें सात्त्विक पदार्थोंसे विधिपूर्वक बना भोजन भी तामसिक हो जाता है और शरीरमें पहुँचकर उसमें शारीरिक एवं मानसिक रोग उत्पन्न कर देता है। रजस्वला अवस्थामें भोजन कभी नहीं बनाना चाहिये।

भोजन स्वादिष्ट एवं रुचिकर बने, इसके लिये आवश्यक है कि वे पदार्थ जिनसे भोजन बने, उत्तम हों। आटा छना हुआ हो, पर मोटा हो, आटेमें चोकर अवश्य रहना चाहिये। चोकरमें विशेष विटामिन होता है। बिना चोकरका आटा निष्प्राण-सा है। चावल भी बिना छँटे हों तो अच्छा है। बिना चोकरके आटे तथा छँटे हुए चावलोंमेंसे विटामिन तथा खनिज नमक नष्ट हो जाते हैं। भातमेंसे माँड नहीं निकालना चाहिये। उसमें विटामिन होता है। पानी स्वच्छ हो; तरकारी ताजी, धुली हुई तथा ढंगसे कटी हुई हो। लकड़ियाँ सूखी तथा साफ हों, उनमें कीड़े न हों, चूल्हा लीपा-पोता हुआ हो। रसोईके कपड़े धुले हुए, स्वच्छ तथा गाढ़ेके हों, मिलके बुने हुए नहीं; क्योंकि मिलके कपड़ोंमें प्रायः चर्बीकी माँड़ी लगती है। बर्तन अच्छी तरह माँजे, धुले तथा पोंछे हुए हों और पाकके अनुकूल हों। रसोई-घरकी स्वच्छता भी भोजनकी उत्तमताको कम नहीं बैठाती। अतएव यह आवश्यक है कि उसपर भी ध्यान दिया जाय। साधारणतः भोजन-घर खुला हुआ होना चाहिये। धूँआ निकलनेके लिये मार्ग होना चाहिये। ऊपर कुछ छत, टीन, छप्पर आदिका छादन अवश्य हो; किंतु फूसका छप्पर हो तो उससे कूड़ा न गिरे। कोनों आदिमें मकड़ी आदिके जाले न लगे हुए हों। भोजन-गृहके पासमें गंदी नाली, पेशाबघर या पायखाना नहीं होना चाहिये। भोजन गृह इतना बड़ा होना चाहिये कि भोजन बनानेका स्थान पृथक् ही हो, खानेवाले पासमें बैठकर खा सकें; उनके खानेसे पानी, दाल, साग आदिके छींटे भोजनपर न पड़ें।

प्रायः देखा जाता है कि धनी लोगोंके घरमें घरकी नारियाँ पाक नहीं बनातीं, अन्य स्त्रियों या पुरुषोंको नौकर रखकर भोजन बनवाया जाता है। यह प्रथा हितकर नहीं है; जहाँतक हो, भोजन हाथसे बनाना चाहिये। जहाँ नारियोंको भोजन बनानेमें अत्यन्त कष्टका अनुभव होता हो, वहाँ भी कम-से-कम अपने पति, पुत्र, गुरुजन आदिको खिलानेका काम तो उन्हें अपने ही हाथों करना चाहिये; क्योंकि जिस भावसे अन्न परसा जाता है, पेटमें जाकर वह वैसा ही परिणाम उत्पन्न करता है। अमृतभावापन्न होकर देनेसे वह अमृतका काम करता है और विषभावापन्न होकर देनेसे जहरका। यही कारण है कि हमारे यहाँ माके हाथसे भोजन करनेकी व्यवस्था

है। माँ यदि न हो तो बहिन, पत्नी या घरकी कोई अन्य बड़ी स्त्रीके हाथसे भोजन किया जाता है। घरवालोंमें जो माता-ममता, वात्सल्यप्रेम तथा हितकी भावना होती है, वह दूसरोंमें नहीं हो सकती। यह सभीका अनुभव होगा कि किसी दिन किसी कारणवश मन क्षुब्ध होता है, नाना प्रकारकी चिन्ताओंके कारण भोजन करनेकी एकदम रुचि नहीं होती, किंतु यदि माँके, पत्नीके या बहिनके हाथसे भोजन किया जाता है तो मनुष्य इच्छा न होनेपर भी पूरी खूराक खा जाता है। अतएव नारीका यह कर्तव्य है कि पति, पुत्र, भाई एवं परिवारवालोंको स्वयं अपने हाथों मातृभावापन्न होकर भोजन खिलावे।

भोजन खिलानेके समय कुछ और भी बातोंपर ध्यान देना आवश्यक है। स्त्रियोंको चाहिये कि भोजनके समय गृहस्थीका पचड़ा न छेड़ें। बच्चोंको पहलेसे ही खिला-पिलाकर रक्खें, ताकि वे रोयें चिल्लायें नहीं। जहाँतक हो, उस समय घरमें प्रेम और शान्तिका वातावरण बना रहे। इससे भोजन करनेवालोंकी रुचिमें वृद्धि होती है और वे प्रसन्नतासे भोजन करके सन्तुष्ट हो जाते हैं।

नारीको भोजनकी चीजोंको परोसनेकी कलाका भी अच्छा ज्ञान होना चाहिये। भोजनका बहुत कुछ स्वाद परोसनेकी क्रियापर भी निर्भर करता है। परोसते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि किसको कौन-सी वस्तु कितनी देनी चाहिये। चतुराईसे परोसनेसे भोजन करनेवालोंकी तृप्ति हो जाती है; नहीं तो कोई भूखा उठ जाता है और किसीकी थालीमें अधिक होनेसे कोई पदार्थ छूट जाते हैं। फिर यह भी जानना चाहिये कि किस पदार्थको थालीमें कैसे और कहाँ रक्खा जाय। मीठे पदार्थोंको एक ओर और नमकीनको एक ओर रखना चाहिये। रसेदार तरकारियाँ तथा दालको कटोरीमें रखना चाहिये। प्रत्येक पदार्थको ऐसे बर्तनमें रखना चाहिये, जिसमें बिगड़नेका भय न हो तथा जिससे खानेमें आसानी हो। जितने पदार्थ चौकेमें तैयार किये गये हों, सब इस हिसाबसे परोसने चाहिये कि थोड़ा-थोड़ा सबको प्राप्त हो जाय। कुछ स्त्रियोंका यह स्वभाव होता है कि वे एक साथ ही थालीमें इतना भोजन परस देती हैं कि उसको देखकर खानेवालेकी आँखसे ही तुष्टि हो जाती है और वह आवश्यकता एवं रुचिके अनुसार भोजन करनेसे वञ्चित रह जाता है। यह प्रथा ठीक नहीं है। भोजन थोड़ा-थोड़ा करके कई बार परसना चाहिये। खानेवालोंकी क्रियाओंसे यह समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये कि किसको कौन पदार्थ विशेष रुचिकर हुआ है और उसको वही पदार्थ बार-बार देनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जहाँतक हो, भोजन करनेवालोंको कुछ माँगना न पड़े। खिलानेवालीका यह कर्तव्य है कि वह इस बातको ध्यानपूर्वक देखती रहे कि किसकी थालीमें कौन पदार्थ है और कौन नहीं है। जो पदार्थ न हो, उसे पूछकर फिर देना चाहिये। बच्चोंको खिलाते समय तो बहुत ही सावधानी रखनी चाहिये। बच्चोंको अपने पेटका अनुमान तो रहता नहीं; अतएव वे प्रायः होड़ा-होडीसे भूखसे अधिक खा जाते हैं जिससे उन्हें अजीर्ण आदि रोग होनेका डर रहता है। इसके अतिरिक्त उनकी थालीमें भोजन छूट जानेका भी डर रहता है। अतः उन्हें खूब सोच-समझकर परसना चाहिये। रोगीको खिलाते समय बड़े संयमसे काम लेनेकी आवश्यकता है। मोहके कारण उसे मनमानी चीजें नहीं खिला डालनी चाहिये। रोगीकी निर्दोष रुचिके अनुसार, चिकित्सकका परामर्श लेकर भोजन खिलाना चाहिये; नहीं तो लाभकी अपेक्षा हानि ही होगी। किसीको भी भूखसे अधिक भोजन खिलानेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। अधिक खानेसे मनुष्य अधिक मोटा होता है, इस भ्रमको मनसे निकाल देना चाहिये।

यह भोजनके सम्बन्धमें साधारण विवेचन हुआ। अब कौन व्यञ्जन किस प्रकार बनाया जाता है, इसपर भी कुछ विचार कर लेना चाहिये। स्थानाभावसे विस्तृत वर्णन सम्भव नहीं है, अतएव कुछ खास-खास व्यञ्जनोंके बनानेकी संक्षिप्त विधि लिखी जाती है—

(१) मेवेकी खिचड़ी

सामान—पावभर चावल, पावभर धोयी मूँगकी दाल, पावभर बादाम पिसा हुआ, अन्य मेवा आधा सेर, चीनी एक सेर, इलायची एक तोला, गुलाबका फूल चार तोला, कस्तूरी दो रत्ती, पीपरमूल एक तोला और चवन्नीभर केसर।

बनानेकी विधि—चावल, दाल और पीसी हुई बादामकी गिरीको एक साथ पानीमें डालकर आगपर चढ़ा दे। इधर मेवेको घीमें भून डाले और चीनीकी चाशनी ले ले। कस्तूरी, गुलाब और केसरको पीस डाले। चावल अधपका हो जानेपर सब सामान देगचीमें छोड़ दे। ऊपरसे तीन पाव पानी डाल दे। चम्मचसे धीरे-धीरे चला दे और ढाँप दे। आँच खूब धीमी दे। आध घंटेमें खिचड़ी बनकर तैयार हो जायगी।

(२) केसरिया भात

सामान—पुराना महीन चावल पावभर, चीनी पावभर, मेवा (बादाम, किशमिश, गिरी और छोटी इलायची) पावभर, केसर तीन माशे और दूध एक सेर ।

विधि—चावलको धोकर देगचीमे डालकर आगपर चढा दे । पानी इतना डाले कि मॉड न पसाना पड़े । चावल पकनेमें जरा कसर रहे, तभी ऑच कम कर दे । चीनीकी चाशनी ले ले । मेवा साफकर बारीक काट ले । केसरको दूधमें घोंट ले । सबको देगचीमें छोड दे । चम्मचसे एक बार चलाकर ढक दे और ऊपर दो-चार कोयले रख दे । आध घंटेमें चावल तैयार हो जायगा ।

(३) खस्ता कचौड़ी

खस्ता कचौड़ीके लिये कुछ मैदा लेकर उसमें उसीके हिसाबसे खूब बारीक पीसा हुआ नमक मिला देवे । पश्चात् आटेमें घी छोड़कर बलसे दोनों हाथोंसे खूब मसले । जब सब आटेमें घी मिल जाय तो उसे दहीमें सान डाले । जब मैदा सन जाय तो उसमें दहीके पानीका छींटा दे-देकर उसे खूब मुलायम करे । जब वह रोटीके आटेके समान मुलायम हो जाय, तब दो-दो रुपयेभर लोई तोड़कर उसकी टिकिया बना ले । इधर मूँग या उड़दकी दालको धोकर खूब बारीक पीस ले । पॉच सेर मैदेमें सवा सेर पीठी काफी है । सवा सेर पीठीमे सोंठ, धनिया, काली मिर्च एक-एक छटॉक और लौंग-जीरा एक-एक तोला खूब कूट-पीसकर मिला देवे । फिर उसे कढ़ाईमें घी डालकर हींगके बघारके साथ भून ले । फिर उस पीठीको मैदेकी टिकियोंमें भरकर तथा बेलन या हाथसे, छोटी-बड़ी जैसी रुचि हो, बढ़ाकर खौलते हुए घीमें छोड़ दे । मधुरी ऑचमें उसे इतनी देर सेंके कि उसपर सुर्खी चढ़ जाय । यह कचौड़ी बड़ी स्वादिष्ट होती है ।

(४) बेसनका हलुवा

बेसन सेरभर, घी डेढ़ सेर, चीनी सवा सेर ले । बेसनको पहले घीमें सेंके, फिर दूधका जोश देकर आगसे उतार ले और उसमें चीनी मिला दे । सब चीजोंको अच्छी प्रकार कौंचेसे मिलाकर और उसमें अंदाजसे कुछ पानी छोड़कर मंदी-मंदी ऑचमें पकावे । जब पक जावे तो थालीमें जमा दे और ऊपरसे मेवा छील-कतरकर डाल दे । इच्छा हो तो गुलाब, केवडा या खसका जल ऊपरसे छिड़क दे ।

(५) मालपूआ

ढाई पाव पानीमें आधा पाव सौंफ औंटाकर छान ले । उस पानीको पॉच सेर चीनीमें मिलाकर छान ले । आठ सेर मैदा और एक सेर दहीको इसी मीठे पानीमे डालकर खूब मथे और उसमे काली मिर्च, इलायची आदि डाल दे । चौड़ी छितरी कडाहीमे घी छोड़कर पकाइये । अनन्तर मथे हुए आटेको किसी कटोरी आदिमें भरकर थोडा-थोडा छोड़े । उलट-पुलटकर खूब सिद्ध कर ले और पौनेसे घी निचोड़कर बाहर निकाल ले ।

(६) खोवेकी पूरी

खोवेको कड़ाहीमें थोड़ा-सा घी डालकर भून ले । जब वह लाल हो जाय तो उतारकर उसे थालमें रख दे । ठंढा हो जानेपर उसमें चीनी मिला दे, इतनी कि खोवा तथा आटा जिसमें यह लगाया जायगा मीठा हो जाय । आटेको सानकर टिकिया बना ले और उसमे चीनीमिश्रित खोवा भर दे । फिर चकले-बेलनसे बेलकर घीमें सेंक ले ।

(७) गोझिया

एक सेर मैदा लेकर उसमे एक छटॉक घी डालकर खूब मिला दे और पानी डालकर सान ले । आधा सेर खोवा लेकर कड़ाहीमें उसे भून ले । ठंढा होनेपर उसमें पावभर चीनी और कटे हुए मेवे मिला दे । तब उस साने हुए मैदेकी छोटी-छोटी लोई बनाकर उन्हें बेल ले और खोवेको पूरीपर रखकर गूँथ दे और घीमें तल ले । मध्यम ऑच रक्खे; तेज ऑचसे गोझिया फट जायगी ।

(८) आलूकी बरफी

पावभर आलूको धीमी ऑचमें भूनकर छिलके उतार ले । फिर उसका बारीक भुर्ता बनाकर घीमें भूने । लाली आ जानेपर उतार ले । डेढ़ पाव चीनीकी चाशनी बनाकर उसमें वह भुर्ता डाल दे और चलाता रहे । छोटी इलायची बुककर डाल दे । गाढ़ा हो जानेपर थालीमें फैला दे । जम जानेपर कतली काट ले ।

मूँगफली, कच्चे नारियल, बादाम आदिको पीसकर ऊपर लिखे तरीकेसे चीनीकी चाशनीमे मिलानेसे स्वादिष्ट बरफी तैयार हो जाती है ।

(९) नान खताई

पावभर सूजी, पावभर घी और पावभर चीनी एकमे मिलाकर मल डाले। इसमें तीन माशे समुद्रफेन डाले। छोटा-छोटा पेड़ा बनाकर लोटेके बर्तनमे रख ले। ऊपरसे लोहेकी परातसे ढक दे और नीचे-ऊपर कोयलोंकी जलती आग रख दे। बीस मिनटमे खताइयाँ खिल जायँगी। आग हटाकर खताइयाँ उतार ले।

(१०) नमकीन सेव

बढ़िया मैदा एक सेर, घी पावभर, नमक डेढ़ तोला, मँगरइला एक छटाँक और दहीका पानी आध सेर ले। पहले मैदेमें घी छोड़कर उसे खूब मसल डाले। जब वह अच्छी तरह मिल जाय, तब दहीके पानीसे उसे साने। यदि पानी कम पड़े तो सादा पानी और मिला ले। आटा बहुत कड़ा न रहे। खूब मल-मलकर लोचदार बना ले। पीछे नमक पीसकर मिला दे और मँगरइला छोड़कर उसे फिर मसल डाले। फिर चकला-बेलनसे बेलकर गेहूँकी मोटाईके बराबर लम्बी-चौडी कतारें काट ले और उन्हें घीमे तल ले। अच्छी तरह ठंढा होने-पर खावे।

(११) मेवेका बड़ा

उड़दकी पीठीकी लोई बना ले। चकलेपर भीगा कपड़ा बिछाकर लोईको चिपका दे। उसके ऊपर भुना हुआ सफेद जीरा, गरम मसालेकी बुकनी, चार दाना काली मिर्च, गिरी-पिस्ता और बादामकी कतरन, चिरौंजी और किशमिश फैला दे। इसके बाद उसी तरहकी दूसरी लोई हाथपर बढ़ाकर उस-पर रख दे और पानीसे सँवारकर दोनोंके किनारोंको चिपका दे। फिर कड़ाहीमें डालकर पूरीकी तरह छान ले और दहीमें भिगो दे। दहीको कपड़ेसे छानकर मट्ठा बना लेना चाहिये। उसमें जल नहीं डालना चाहिये। दहीमें नमक, काली मिर्च और जीरा पीसकर डाल देना चाहिये।

(१२) छुहारेकी चटनी

आधपाव छुहारा भिगो दे। किशमिश-अदरख आधपाव, काली मिर्च आधी छटाँक, लाल मिर्च, जीरा और भूनी हींग—सबको पीसकर चटनी बना ले। ऊपरसे नीबूका रस गार दे।

(१३) आमकी चटनी

कच्चे आमको छीलकर काट ले। धनिया, मेथी, पोदीना, जीरा और हींग—इन सबको भून ले। नमक और लाल मिर्च मिलाकर सबको एक साथ पीस डाले। थोड़ा चीनी मिला दे।

(१४) आलूका रायता

आलूको उबालकर छिलके उतार लीजिये। फिर उसे हाथोंसे मल डालिये। जीरा भूनकर और बारीक पीसकर दही-मे डाल दीजिये। अन्तको नमक-मिर्च डालकर आलूको उसीमें मिला दीजिये।

(१५) पुदीनेका रायता

पुदीनेके पत्ते पीसकर ताजे दहीमें मिला दीजिये। जीरा और हींग भूनकर और बारीक पीसकर उसमें डाल दीजिये और नमक-मिर्च मिलाकर सबको फेंट दीजिये।

लौकी, बथुआ, ककड़ी, मूली आदिको उबालकर इसी प्रकार दहीमें मिलानेसे भिन्न-भिन्न प्रकारका स्वादिष्ट रायता बन जाता है। —रा० ति०

भारतीय नारी आदर्श नारी

कठोर संयमपूर्ण, त्यागमय हिंदू-आदर्शका अनुसरण करनेवाली स्त्रियाँ आदर्श पुत्रियाँ, आदर्श पत्नियाँ और आदर्श माताएँ होती हैं। वे मर्यादा और शीलपूर्वक गृहकार्य करती हुई घरमें ही रहती हैं। सन्ततिके सुखमें ही वे अपना सर्वोत्तम सुख और पतिकी पूजाको ही वे नारीके यथार्थ गौरवका अमिट उत्कर्ष मानती हैं। —सर जार्ज बर्ड उड

पञ्च-पतिव्रता

सती, पार्वती, अरुन्धतीजी, अनसूया, शाण्डिली सुजान।
पतिव्रता नारीरत्नोंमें इन पाँचोंका नाम प्रधान॥

सतीशिरोमणि सती

(लेखक—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

पतिव्रता स्त्रियोंमें सबसे पहले दक्ष-कन्या सतीका नाम लिया जाता है। वे ही साध्वी स्त्रियोंकी आदर्श हैं। उन्हींके नामपर अन्य पतिव्रता स्त्रियाँ भी 'सती'की उपाधिसे विभूषित हुई हैं। सती-धर्म वही है, जिसका भगवती सतीने पालन किया है। उनके द्वारा स्वीकृत और पालित धर्म ही शास्त्रोंमें 'सती-धर्म'के नामसे संकलित है।

भगवती सती साक्षात् सच्चिदानन्दमयी आद्या प्रकृति हैं। व्यक्त और अव्यक्त सब उन्हींके रूप हैं। अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूपमें उन्हींकी अभिव्यक्ति होती है। वे ही कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी जननी हैं। उन्हींके भ्रुकुटि-विलाससे जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार आदि कार्य होते हैं। वे सर्वत्र व्यापक और सर्वस्वरूप होकर भी सबसे विलक्षण हैं। जगत्‌के जीवोंपर करुणा करके लीलाके लिये ही वे सगुणरूपमें प्रकट हैं। भिन्न-भिन्न पुराणों और उपपुराण आदि ग्रन्थोंमें उनके प्रदुर्भावकी अनेकों कथाएँ विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध होती हैं। कल्पभेदसे वे सभी ठीक भी हैं। यहाँ अति संक्षेपसे उनके जीवनकी कुछ बातें निवेदन की जाती हैं।

प्रसिद्ध है कि भगवान् शङ्कर स्वभावसे ही विरक्त एवं आत्माराम हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें ही उन्होंने स्त्री-परिग्रहकी इच्छा त्याग दी। ब्रह्माजीको उनके इस अखण्ड वैराग्यसे अपने सृष्टिकार्यमें बाधा पड़ती दिखायी दी। वे शङ्करजीके वीर्यसे एक पराक्रमी पुत्र प्राप्त करना चाहते थे, जो विध्वसकारी असुरोंका दमन करनेवाला तथा देवताओंका संरक्षक हो। इसके लिये उन्होंने शङ्करजीसे विवाह करनेके लिये अनुरोध किया; किंतु वे अपने सङ्कल्पसे विचलित न हुए। भगवान् शिव दीर्घकालीन समाधिमें संलग्न होकर सदा अपने इष्टदेव साकेत-विहारी श्रीरघुनाथजीका चिन्तन करते रहते थे। सृष्टि और संहारके झमेलेमें पड़ना उन्हें स्वीकार नहीं था। ब्रह्माजी एक ऐसी नारीकी खोजमें थे, जो महादेवजीके अनुकूल हो, उनके तेजको धारण कर सके और अपने दिव्य सौन्दर्यसे उनके मनपर भी अधिकार प्राप्त करनेमें समर्थ हो; किंतु ऐसी कोई स्त्री उन्हें दिखायी न दी तब उन्होंने अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये भगवती विष्णुमायाकी आराधना करनी ही उचित समझी।

ब्रह्माजीके नव मानस पुत्रोंमें प्रजापति दक्ष बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्माजीके दाहिने अंगूठेसे हुई थी। एक समय शापवश इनको यह शरीर त्यागना पड़ा। उसके बाद वे दस प्रचेताओंके अंशसे उनकी पत्नी मारिषाके गर्भसे उत्पन्न हुए। तबसे प्राचेतस दक्षके नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। प्रजापति वीरणकी कन्या वीरिणी इनकी धर्मपत्नी थी।* ब्रह्माजीके आदेशसे दक्षने आराधना करके भगवतीको पुत्रीरूपमें प्राप्त किया। परंतु भगवतीने उनसे पहले ही कह दिया कि 'यदि तुम कभी मेरा तिरस्कार करोगे, तो मैं तुम्हारी पुत्री न रह सकूँगी। शरीर त्यागकर अन्यत्र चली जाऊँगी।'

कन्याका साधु-स्वभाव और भोलापन देखकर ही माता-पिताने उसका नाम 'सती' रख दिया था। सतीका हृदय बचपनसे ही भगवान् शङ्करकी ओर आकृष्ट था। कुछ बड़ी होनेपर उसने खेल-कूद और मनोरञ्जनसे मनको हटा लिया और वह नियमपूर्वक महादेवजीकी आराधना करने लगी। वह प्रातःकाल ब्राह्मवेलामें उठकर गङ्गास्नान करती और भगवान्‌की पार्थिव मूर्ति बनाकर फूल और बिल्वपत्र आदिसे उसकी विधिवत् पूजा करती थी। फिर नेत्र बंद करके मन-ही-मन प्राणाधारका ध्यान धरती और उनसे मिलनेको उत्सुक होकर देरतक आँसू बहाया करती थी।

सच्चे प्रेमकी पिपासा प्रतिक्षण बढ़ती ही रहती है। यही दशा सतीकी भी थी। उसके मन-प्राण भगवान् शङ्करके लिये व्याकुल रहने लगे। उसे विरहका एक-एक क्षण युगके समान प्रतीत होता था। उसकी जिह्वापर 'शिव'का नाम था। हृदयमें उन्हींकी मनोहर मूर्ति बसी हुई थी। उसकी आँखें शिवके सिवा दूसरे पुरुषको देखना नहीं चाहती थीं। वह सोचती, 'क्या आशुतोष भगवान् शिव मुझ दीन अबलापर भी कभी कृपा करेंगे ? क्या कभी ऐसा समय भी आयेगा, जब मैं अपने आपको उनके चरणोंमें समर्पित करके यह तन, मन, जीवन और यौवन सार्थक कर सकूँगी ?' इन्हीं भावनाओंमें वह बेसुध रहती थी। सतीकी यह प्रेम-साधना आगे चलकर कठोर तपस्याके रूपमें परिणत हो गयी।

उधर ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शङ्करके पास गये और उनसे असुरविनाशक पुत्रकी प्राप्तिके लिये विवाह करनेका अनुरोध करने लगे। शिवने विवाहकी अनुमति दे दी और

* कहीं-कहीं स्वायम्भुव मनुकी कन्या 'प्रसूति'को इनकी धर्मपत्नी बताया गया है।

योग्य कन्याकी खोज करनेको कहा । ब्रह्माजीने कहा—'महेश्वर ! दक्ष-कन्या सती आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तपस्या कर रही है। वही आपके सर्वथा अनुरूप है। आप उसे ग्रहण करें।' शिवने 'तथास्तु' कहकर देवताओंको विदा कर दिया।

सतीकी व्रताराधना अब पूर्ण होनेको आयी। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथि थी। सतीने उस दिन बड़े प्रेम और भक्तिके साथ अपने प्राणाराध्य महेश्वरका पूजन किया। दूसरे दिन व्रत पूर्ण होनेपर भगवान् शिव एकान्त कुटीरमें सतीके सम्मुख प्रकट हुए। सती निहाल हो गयी।

जिनकी बाट जोहते जोहते युग बीत गये थे, उन्हीं आराध्य-देवको सहसा सामने पाकर वह क्षणभरके लिये लज्जासे जडवत् हो गयी। मन आनन्दके समुद्रमें लहरें लेने लगा। उसकी आँखें भगवान्‌के चरणोंमें जा लगीं। शरीर रोमाञ्चित हो उठा। उसने काँपते हाथोंसे प्रियतमका चरण-स्पर्श किया और भक्तिभावसे प्रणाम करके प्रेमाश्रुओंसे वह उनके पाँव पखारने लगी।

भगवान्‌ने अपने हाथोंसे सतीको उठाकर खड़ा किया। उस समय उसका रोम-रोम अनिर्वचनीय रसमें डूबा हुआ था। शङ्करजी सतीकी तपस्याका उद्देश्य जानते थे, तो भी उन्होंने उसीके मुँहसे उसका मनोरथ सुननेके लिये कहा—'दक्ष-कुमारी! मैं तुम्हारी आराधनासे बहुत सन्तुष्ट हूँ। बताओ, किसलिये अपने कोमल अङ्गोंको इस कठोर साधनाके द्वारा कष्ट पहुँचाया है?'

सती संकोचसे मुख नीचे किये हुए ही बोली—'देवाधिदेव! आप घटघटवासी हैं, मेरी अभिलाषा आपसे छिपी नहीं है। आप स्वयं ही आज्ञा दें, मै आपकी क्या सेवा करूँ?' सतीका वह अलौकिक प्रेम देखकर भगवान् शिव उसके हाथों बिना दाम बिक गये। वे सहसा बोल उठे—'देवि! तुम मेरी पत्नी बनकर मुझे अनुगृहीत करो।' सतीका हाथ भगवान् शिवके हाथमें था। प्रभुकी वह अनुरागभरी वाणी सुनकर वह पुनः रमणी-सुलभ लज्जाके वशीभूत हो गयी। उसकी जन्म-जन्मकी साध अब पूरी होने जा रही थी। उस समय उसके मनमें कितना सुख, कितना आह्लाद था, इसका वर्णन नहीं हो सकता। उसने थोड़ी ही देरमें अपनेको सँभाला और मन्द मुसकानके साथ संकोचयुक्त वाणीमें कहा—'भगवन्! मैं अपने पिताके अधीन हूँ; आप उनकी अनुमतिसे मुझे अपनी सेवाका सौभाग्य प्रदान करें।'

'बहुत अच्छा' कहकर शङ्करजीने सतीको आश्वासन दिया और उससे विदा लेकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। इधर सतीकी तपस्या और वरदान-प्राप्तिकी बात दक्षके घरमें फैल गयी। उसे सुनकर दक्ष चिन्तामें पड़े थे कि 'किस प्रकार सतीका विवाह शिवजीके साथ होगा?' इतनेहीमें भगवान् शङ्करकी अनुमतिसे ब्रह्माजीने आकर कहा—'मैं स्वयं ही शङ्करजीको साथ लेकर यहाँ आऊँगा; तुम विवाहकी तैयारी करो।' नियत समयपर ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ भगवान् शिव विवाहके लिये पधारे। उस समय भी उनका वही अडभगी वेष था। दक्षको उनकी वेष-भूषापर क्षोभ हुआ; फिर भी उन्होंने समारोहपूर्वक सतीका विवाह शिवजीके साथ कर दिया।

विवाहके पश्चात् सती माता-पितासे विदा हो पतिके साथ कैलासधाम चली गयीं। वे भगवान् शिवके साथ दीर्घकालतक वहाँके सुरम्य प्रदेशोंमें सुखसे रहने लगीं। देवताओं और यक्षोंकी कन्याएँ उनकी सेवा किया करती थीं। भगवान् शिवके पास अनेक देवर्षि, ब्रह्मर्षि, योगी, यति, संत-महात्मा पधारते और सत्संगका लाभ उठाया करते थे। सतीको वहाँ भगवच्चर्चामें बड़ा सुख मिलता था। उस दिव्य वातावरणमें रहते हुए उन्हें कितने ही युग बीत गये। सतीके तन, मन और प्राण केवल शिवकी आराधनामें लगे रहते थे। उनके पति, प्राणेश और देवता सब कुछ भगवान् शिव ही थे।

एक बार त्रेतायुग आनेपर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीहरिने रघुवंशमें अवतार लिया था। उस समय वे पिताके वचनसे राज्य-त्याग करके तापस-वेषमें दण्डकवनके भीतर विचरण कर रहे थे। इसी समय रावणने मारीचको कपटमृग बनाकर भेजा था और सूने आश्रमसे सीताको हर लिया था एवं श्रीरामजी साधारण मनुष्यकी भाँति विरहसे व्याकुल होकर लक्ष्मणजीके साथ वनमें सीताकी खोज कर रहे थे। जिनके कभी संयोग-वियोग नहीं है, उनमें भी विरहका दुःख प्रत्यक्ष देखा जा रहा था।

इसी अवसरपर भगवान् शङ्कर सतीदेवीको साथ लिये अगस्त्यके आश्रमसे राम-कथाका आनन्द लेकर कैलासको लौट रहे थे। उन्होंने अपने आराध्यदेव श्रीरघुनाथजीको देखा; उनके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ। श्रीराम शोभाके समुद्र हैं, उन्हें शिवजीने आँख भरकर देखा; परंतु ठीक अवसर न होनेसे परिचय नहीं किया। उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा—'जय सच्चिदानंद जग पावन।' शङ्करजी सतीके साथ चले जा रहे थे, आनन्दातिरेकसे उनके शरीरमें बारंबार रोमाञ्च हो आता था। सतीने जब उनकी इस अवस्थाको लक्ष्य किया तो उनके मनमें बड़ा सन्देह हुआ। वे सोचने लगीं—'शङ्करजी तो सारे जगत्के वन्दनीय हैं; देवता, मनुष्य और मुनि सब इनको मस्तक झुकाते हैं; इन्होंने एक राजकुमारको 'सच्चिदानन्द परमधाम' कहकर प्रणाम कैसे किया और उसकी शोभा देखकर ये इतने प्रेममग्न कैसे हो गये कि अबतक इनके हृदयमें प्रीति रोकनेसे भी नहीं रुकती। जो ब्रह्म सर्वत्र व्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेद-शून्य है, जिसे वेद भी नहीं जान पाता, वह क्या देह धारण करके मनुष्य बन सकता है? देवताओंके हितके लिये जो मनुष्य-शरीर धारण करनेवाले विष्णु हैं, वे भी तो शिवजीकी ही भाँति सर्वज्ञ हैं, भला वे कभी अज्ञानीकी भाँति स्त्रीको खोजते फिरेंगे? परंतु शिवजीने सर्वज्ञ होकर भी उन्हें 'सच्चिदानन्द' कहा है, उनकी बात भी तो झूठी नहीं हो सकती।

इस प्रकार सतीके मनमें महान् सन्देह खड़ा हो गया। यद्यपि उन्होंने प्रकट कुछ नहीं कहा, फिर भी अन्तर्यामी शिवजी सब जान गये। उन्होंने सतीको समझाकर कहा कि 'समस्त ब्रह्माण्डोंके अधिपति मायापति, नित्य, परम स्वतन्त्र ब्रह्मरूप मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीरामने ही अपने भक्तोंके हितके लिये अपनी इच्छासे ही 'रघुकुल-रत्न' होकर अवतार लिया है।' पर सतीके मनमें उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेवजी मन ही-मन भगवान्की मायाका बल जानकर मुसकराते हुए बोले—'यदि तुम्हारे मनमें अधिक सन्देह है, तो जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेतीं? जबतक तुम लौट न आओगी, मैं इसी बड़की छाँहमें बैठा रहूँगा।'

भोली-भाली सतीपर भगवान्की योगमायाका प्रभाव पड़ चुका था। वे पतिकी आज्ञा पाकर चलीं। इधर शङ्करजी अनुमान करने लगे, 'आज सतीका कल्याण नहीं है। मेरे समझानेपर भी जब सन्देह दूर नहीं हुआ तो विधाता ही विपरीत है, इसमें भलाई नहीं है। जो कुछ रामने रच रक्खा है, वही होगा, तर्क करके कौन प्रपञ्चमें फँसे।' यों विचारकर वे भगवान्का नाम जपने लगे। उधर सतीने खूब सोच विचार-कर सीताका रूप धारण किया और आगे बढ़कर उस मार्गपर चली गयीं जिधर श्रीरामचन्द्रजी आ रहे थे। लक्ष्मणजी सीताको मार्गमें खड़ी देखकर चकित हो गये। जिनके स्मरणमात्रसे अज्ञान मिट जाता है, उन सर्वज्ञ श्रीरामचन्द्र-जीने सारी बात जानकर मन-ही-मन अपनी मायाके बलका बखान करते हुए हाथ जोड़कर सीतारूपिणी सतीको प्रणाम किया। अपना और अपने पिताका नाम बतलाया तथा हँसकर पूछा—'देवि! शिवजी कहाँ हैं? आप वनमें अकेली क्यों विचर रही हैं?' अब तो सतीजी सङ्कोचसे गड़ गयीं। वे भयभीत होकर शङ्करजीके पास लौट चलीं। उनके हृदयमें बड़ी चिन्ता हो गयी थी, वे सोचने लगीं—'हाय! मैंने स्वामीका कहना नहीं माना, अपना अज्ञान श्रीरामचन्द्र-जीपर आरोपित किया। अब मैं उनको क्या उत्तर दूँगी।'

फिर वे बारंबार श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके उस स्थानकी ओर चलीं, जहाँ शिवजी उनकी प्रतीक्षामें बैठे थे। निकट जानेपर शिवजीने हँसकर कुशल-समाचार पूछा और कहा—'सच-सच बताओ, किस प्रकार परीक्षा ली है?' सतीने श्रीरघुनाथजीके प्रभावको समझकर भयके मारे शिवजीसे अपने सीतारूप धारण करनेकी बात छिपा ली। शङ्करजीने ध्यान लगाकर देखा और सतीने जो कुछ किया था, वह सब जान लिया। फिर उन्होंने श्रीरामजीकी मायाको मस्तक झुकाया।

'सतीने सीताका वेष बना लिया,' यह जानकर शिवजीके मनमें बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा, 'अब यदि मैं सतीसे पत्नीकी भाँति प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्गका लोप हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है। सती परम पवित्र हैं,

अतः इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करनेमें बड़ा पाप है।' महादेवजी प्रकटरूपसे कुछ नहीं कह सके; किंतु उनके हृदयमें बड़ा सन्ताप था। तब उन्होंने श्रीरामको मन-ही-मन प्रणाम किया। भगवान्‌की याद आते ही उनके हृदयमें यह सङ्कल्प उदित हुआ—'एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं।' ऐसा निश्चय करके वे श्रीरामका स्मरण करते हुए चल दिये। उस समय आकाशवाणी हुई—'महेश्वर! आपकी जय हो, आपने भक्तिको अच्छी दृढ़ता प्रदान की। आपको छोड़कर ऐसी प्रतिज्ञा कौन कर सकता है। आप श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हैं, समर्थ हैं और भगवान् हैं।'

सतीने भी यह आकाशवाणी सुनी। उनके मनमें बड़ी चिन्ता हो गयी। उन्होंने सकुचाते हुए पूछा—'दयामय! कहिये, आपने कौन सा प्रण किया है। प्रभो! आप सत्यके धाम और दीनदयालु हैं। मुझ दीनपर दया करके अपनी की हुई प्रतिज्ञा बताइये।' सतीने भाँति-भाँतिसे पूछा, किंतु उन्होंने कुछ नहीं बताया। तब सतीने अनुमान किया, 'शिवजी सर्वज्ञ हैं, वे सब कुछ जान गये। हाय! मैंने इनसे भी छल किया। स्त्री स्वभावसे ही मूर्ख और बेसमझ होती है।' अपनी करनीको याद करके सतीके हृदयमें बड़ा सोच और अपार चिन्ता हुई। उन्होंने समझ लिया कि शिवजी कृपाके अथाह सागर हैं, इसीसे प्रकटमें इन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा; किंतु उनका रुख देखकर सतीको यह विश्वास हो गया कि स्वामीने मेरा परित्याग कर दिया है।

त्यागका विचार आते ही उनका हृदय व्याकुल हो गया। सतीको चिन्तामग्न देख शङ्करजी उन्हें सुख देनेके लिये सुन्दर-सुन्दर कथा-वार्ता कहने लगे। मार्गमें अनेक प्रकारके इतिहासका वर्णन करते हुए वे कैलासधाम पहुँचे। वहाँ अपनी प्रतिज्ञाको याद करके वे वटवृक्षके नीचे आसन लगाकर बैठ गये। अपने सहज स्वरूपका स्मरण किया और अखण्ड समाधि लग गयी। सतीजी कैलासपर रहकर एकाकी जीवन व्यतीत करने लगीं। उनके मनमें बड़ा दुःख था। एक-एक दिन एक-एक युगके समान बीत रहा था और इस दुःख-समुद्रसे पार होनेका कोई उपाय नहीं सूझता था।

इस प्रकार दक्ष-कुमारी सतीके दारुण दुःखकी कोई सीमा नहीं थी। वे रात-दिन चिन्ताकी आगमें झुलस रही थीं। इस अवस्थामें पड़े-पड़े उनके सत्तासी हजार वर्ष बीत गये। इतने दिनों बाद शिवकी समाधि खुली, वे स्पष्ट वाणीमें राम-नामका उच्चारण करने लगे। तब सतीने जाना कि जगदीश्वर शिव समाधिसे जगे हैं। उन्होंने जाकर शङ्करजीके चरणोंमें प्रणाम किया। शिवजीने उनको बैठनेके लिये सामने आसन दिया और श्रीहरिकी रसमयी कथाएँ सुनाने लगे। इस प्रकार दयालु महेश्वरने सतीके सन्तप्त हृदयको कुछ शीतल करनेका प्रयत्न किया। भगवच्चर्चामें लग जानेसे मानसिक दुःखका आवेग बहुत कुछ कम हो गया।

इसी बीचमें सतीके पिता दक्ष 'प्रजापति' के पदपर अभिषिक्त हुए। यह महान् अधिकार पाकर दक्षके हृदयमें बड़ा भारी अभिमान पैदा हो गया। संसारमें कौन ऐसा है, जिसे प्रभुता पाकर मद न हो। उन्होंने ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंको जिनमें शङ्करजी भी थे, उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना आरम्भ किया। शङ्करजीपर उनके रोषका कुछ विशेष कारण था। वे उनके तत्त्वसे बिल्कुल अनभिज्ञ थे। सतीके विवाहके कुछ ही समय बाद एक बार प्रजापतियोंने यज्ञका आयोजन किया था। उसमें बड़े-बड़े ऋषि, देवता, मुनि और अग्नि आदि भी अपने अनुयायियोंसहित उपस्थित हुए थे। ब्रह्मा और शिवजी भी उस सभामें विराजमान थे। उसी समय दक्ष भी वहाँ पधारे। सभी सभासद् उनके स्वागतमें उठकर खड़े हो गये। केवल ब्रह्माजी और महादेवजी अपने स्थानपर बैठे रहे। ब्रह्माजी तो दक्षके पिता ही थे; अतः उन्होंने झुककर उनके चरणोंमें प्रणाम किया, किंतु शङ्करजीका बैठे रहना उनको बहुत बुरा लगा। उन्हें इस बातके लिये खेद था कि 'शङ्करने उठकर मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया' अतः उन्होंने भरी सभामें उनकी बड़ी निन्दा की, कठोर वचन सुनाये और शापतक दे डाला। भगवान् शङ्कर चुपचाप चले आये। उन्होंने उनकी बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

इतनेपर भी दक्षका रोष उनके प्रति शान्त नहीं हुआ था। वे शिवसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिसे द्वेष रखने लगे। यहाँतक कि अपनी पुत्री सतीके प्रति भी उनका भाव अच्छा नहीं रह गया। प्रजापतियोंके नायक बन जानेपर उनको वैर-साधनका अच्छा अवसर मिला। पहले तो उन्होने वाजपेय यज्ञ किया और उसमें शङ्करजीको भाग नहीं लेने दिया। उसके बाद पुनः बड़े समारोहके साथ 'बृहस्पति-सव' नामक यज्ञका आयोजन किया। इस उत्सवमें प्रायः सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता और उपदेवता आदि आमन्त्रित थे। सबने अपनी-अपनी पत्नीके साथ जाकर यज्ञोत्सवमें भाग लिया और स्वस्तिवाचन किया। केवल ब्रह्मा और विष्णु कुछ सोचकर उस यज्ञमें सम्मिलित नहीं हुए। सतीने देखा,

कैलासशिखरके ऊपर आकाशमार्गसे विमानोंकी श्रेणियाँ चली जा रही हैं। उनमें देवता, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर आदि बैठे हैं। उनके साथ उनकी स्त्रियाँ भी हैं, जो चमकीले कुण्डल, हार तथा विविध रत्नमय आभूषण पहने भलीभाँति सज-धजकर गीत गाती हुई जा रही हैं।

सतीने पूछा—'भगवन्! यह सब क्या है? ये लोग कहाँ जा रहे हैं?' भगवान् शिवने मुसकराते हुए कहा—'तुम्हारे पिताके यहाँ बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है। उसीमें ये लोग निमन्त्रित हैं।' पिताके यज्ञकी बात सुनकर सतीको कुछ हर्ष हुआ। उन्होंने सोचा, 'यदि स्वामीकी आज्ञा हो तो यज्ञके ही बहाने कुछ दिन वहीं चलकर रहूँ।' यह विचारकर वे भय, संकोच और प्रेमरसमें सनी हुई वाणीमें बोलीं—'देव! पिताजीके घर यज्ञ हो रहा है तो उसमें मेरी अन्य बहनें भी अवश्य पधारेंगी। माता और पितासे मिले मुझे युग बीत गये। इस अवसरपर आपकी आज्ञा हो तो आप और मैं दोनों वहाँ चलें। यज्ञका उत्सव भी देखेंगे और सबसे भेंट-मुलाकात भी हो जायगी। प्रभो! यह ठीक है कि उन्होंने निमन्त्रण नहीं दिया; अतः वहाँ जाना ठीक नहीं है, तथापि पति, गुरु और माता-पिता आदि सुहृदोंके यहाँ बिना बुलाये भी जाना चाहिये। सम्भव है भीड़-भाड़में वे निमन्त्रण देना भूल गये हों, अथवा देनेपर भी यहाँ पहुँच न पाया हो।'

शिव—'इसमें सन्देह नहीं कि माता-पिता आदि गुरुजनोंके यहाँ बिना बुलाये भी जा सकते हैं, परंतु ऐसा तभी करना चाहिये जब वहाँके लोग प्रेम रखते हों। जहाँ कोई विरोध मानता हो, वहाँ जानेसे कदापि कल्याण नहीं होता। तुम्हारे पिता मुझसे द्वेष रखते हैं, अतः तुम्हें उनको और उनके अनुयायियोंको देखनेका भी विचार नहीं करना चाहिये। यदि तुम मेरी बात न मानकर वहाँ जाओगी तो इसका परिणाम अच्छा न होगा, क्योंकि किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिको जब अपने स्वजनोंद्वारा तिरस्कार प्राप्त होता है, तो वह तत्काल उसकी मृत्युका कारण बन जाता है।'

इसके बाद शङ्करजीने बहुत प्रकारसे समझाया-बुझाया, पर सती रहना नहीं चाहती थीं। स्वजनोंके स्नेहका स्मरण करके उनका हृदय भर आया। वे आँखोंमें आँसू भरकर रोने लगीं। तब महादेवजीने अपने प्रधान-प्रधान पार्षदोंको साथ देकर सतीको अकेली ही विदा कर दिया। सती अपने समस्त सेवकोंके साथ गङ्गातटपर बनी हुई दक्षकी यज्ञशालामें पहुँचीं। मण्डपमें पहुँचनेपर दक्षने सतीका किञ्चित् भी सत्कार नहीं किया। उनकी चुप्पी देखकर दू लोग भी उन्हींके भयसे कुछ भी न बोले। केवल माता अ बहनें सतीसे प्रेमपूर्वक मिलीं और उन्हें आदरपूर्वक उपह की वस्तुएँ देने लगीं, किंतु पितासे अपमानित होनेके का स्वाभिमानिनी सतीने किसीकी दी हुई कोई भी वस्तु स्वी नहीं की। सतीको स्वामीकी कही हुई बातें याद आने लग

उस यज्ञमें शिवजीके लिये कोई भाग न देकर उन घोर अपमान किया गया था। सतीने इस बातकी ओर लक्ष्य किया। इससे उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उन भौंहें तन गयीं, आँखें लाल हो गयीं और ऐसा जान पड़ मानो वे सम्पूर्ण जगत्को भस्म कर डालेंगी। उनका यह भ देखकर शिवके पार्षद भी दक्षको दण्ड देनेके लिये उद्यत गये, किंतु सतीने उन्हें रोक दिया और समस्त सभासदों सामने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

'पिताजी! भगवान् शङ्कर सम्पूर्ण देहधारियोंके प्रि आत्मा हैं, उनसे बढ़कर इस संसारमें दूसरा कोई भी न है। उनके लिये न कोई प्रिय है, न अप्रिय। वे सर्वरूप अतः उनका किसीके साथ भी वैर-विरोध नहीं है। ऐ भगवान्के साथ आपको छोड़कर दूसरा कौन विरोध क सकता है? विप्रवर! आप-जैसे ज्ञानशून्य लोग ही दूसरों गुणोंमें भी दोष देखते हैं; श्रेष्ठ पुरुष ऐसा नहीं करते। ज दूसरोंके थोड़े-से गुणोंको भी बहुत बड़े रूपमें देख चाहते हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ महात्मा पुरुष हैं। आपने ऐसे मह पुरुषोंमें भी दोष देखना आरम्भ किया है। जो दुष्ट मुर्दे शरीरको ही आत्मा मानते हैं, वे ईर्ष्यावश सदा महात्माजनोंकी निन्दा करें तो यह कोई आश्चर्यकी बात न है, क्योंकि महापुरुषोंकी चरण-धूलि उन निन्दा करनेव पापियोंके तेजका नाश कर देती है; अतः उनके लिये य योग्य है। जिनका 'शिव' यह दो अक्षरका नाम बातचीत प्रसंगमें भी जिह्वापर आ जाय तो नाम लेनेवालेके समस्त पा का तत्काल विनाश कर देता है। जिनके शासनका क उल्लङ्घन नहीं कर सकता, जिनकी कीर्ति परम पवित्र उन्हीं मङ्गलमय शिवसे आप द्वेष करते हैं—यह महान् आश्च है। सचमुच ही आप अमङ्गलरूप हैं। अहो! महापुरुषों मनरूपी भ्रमर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छ जिनके चरण-कमलोंका निरन्तर सेवन करते हैं तथा जो भ चाहनेवाले पुरुषोंको उनके अभीष्ट भोग भी देते हैं उ विश्वबन्धु भगवान् भूतनाथसे आप वैर करते हैं, यह आ

[illegible] दुर्लङ्घ्य बात है। सुनती हूँ, आप कहा करते हैं कि [illegible] उनका वेष तो महान् अशिव—अमङ्गल है; क्योंकि वे श्मशानकी भस्म, चिताकी राख और मनुष्योंकी खोपड़ी लिये, जटा बिखेरे, भूत-पिशाचोंके साथ फिरते श्मशानमें निवास करते हैं। मालूम होता है, शिवके उस [illegible] आपको ही है; आपके सिवा दूसरे ब्रह्मा आदि भी उस बातको नहीं जानते। तभी तो वे शिवके चरणोंपर चढ़े हुए निर्माल्यको अथवा उनके चरणोंकी धूलिको अपने मस्तकपर धारण करते हैं। पिताजी! शास्त्र क्या कहता है? यदि कोई उच्छृङ्खल प्राणी धर्मकी रक्षा करनेवाले ईश्वरकी निन्दा करे तो अपनेमें उसे दण्ड देनेकी शक्ति न होनेपर दोनों कान मूँद ले और वहाँसे हट जाय। अगर यदि शक्ति हो तो उस बकवादीकी दुष्ट जिह्वाको काट-कर फेंक दे। ऐसा करते समय कदाचित् प्राणोंपर संकट आ जाय तो प्राणोंको भी त्याग दे; यही धर्म है। आप भगवान् नीलकण्ठकी निन्दा करनेवाले हैं; अतः आपसे उत्पन्न हुए इस शरीरको अब मैं नहीं धारण करूँगी। यदि भूलसे कोई दूषित अन्न खा लिया जाय तो वमन करके उसे निकाल देना ही आत्मशुद्धिके लिये आवश्यक बताया गया है। भगवान् शिव जब जब आपके साथ मेरा सम्बन्ध दिखलाते हुए मुझे हँसीमें भी दाक्षायणी (दक्षकुमारी) के नामसे पुकारते हैं तब-तब उस हास परिहासको भूलकर मेरा मन तुरंत ही दुःख-के अगाध समुद्रमें डूब जाता है। अतः आपके अङ्गसे उत्पन्न हुए इस शवतुल्य शरीरको अब त्याग देती हूँ; क्योंकि यह मेरे लिये कलङ्करूप है।'

यज्ञमण्डपमें इस प्रकार कहकर देवी सती मौन हो उत्तर-दिशामें बैठ गयीं। उनका शरीर पीताम्बरसे ढका था। वे आचमन करके नेत्र बंद किये योगमार्गमें स्थित हो गयीं। पहले उन्होंने आसनको स्थिर किया, फिर प्राण और अपान वायुको एकरूप करके नाभिचक्रमें स्थापित किया। तदनन्तर उदान वायुको नाभि-चक्रसे धीरे-धीरे ऊपर उठाया और बुद्धिके साथ हृदयमें स्थापित कर दिया; फिर हृदयस्थित वायुको वे कण्ठमार्गसे भृकुटियोंके बीचमें ले गयीं। महापुरुषोंके भी पूजनीय भगवान् शिव जिसको बड़े आदरके साथ अपने अङ्कमें बिठा लेते थे, उसी शरीरको मनस्विनी सतीदेवी दक्षपर रोष होनेके कारण त्याग देना चाहती थीं; अतः उन्होंने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें अग्नि और वायुकी धारणा की। इसके बाद वे अपने स्वामी जगद्गुरु भगवान् शिवके चरणारविन्द-मकरन्दका चिन्तन करने लगीं; उसके सिवा दूसरी किसी वस्तु-का उन्हें भान न रहा। उस समय उनका वह दिव्य देह, जो स्वभावसे ही निष्पाप था, तत्काल योगाग्निसे जलकर भस्म हो गया।*

इस प्रकार पतिप्राणा सतीकी ऐहलौकिक लीला समाप्त हुई। उन्होंने जीवनभर सदा ही तन, मन, प्राणसे अपने पति भगवान् शिवकी सेवा और समाराधना की तथा अन्तमें भी उन्हींका चिन्तन करते-करते प्राण-त्याग किया। मरते समय भी उन्होंने भगवान्से यही वर माँगा था कि 'प्रत्येक जन्ममें मेरा भगवान् शिवके ही चरणोंमें अनुराग हो।†' इसीलिये वे पुनः गिरिराज हिमालयके यहाँ पार्वतीके रूपमें प्रकट हुईं और भगवान् शङ्करको ही पतिरूपमें प्राप्त किया। सतीका यह दिव्य पतिप्रेम भारतकी नारियोंके लिये आदर्श बन गया। आज घर-घरमें सती-पूजाकी जो प्रथा चली आती है, उसमें दक्ष-कन्या सतीके प्रति ही भारतीय नारियाँ अपनी श्रद्धा और भक्ति अर्पित करती हैं। सतीजी भगवान् शिवके लिये ही उत्पन्न हुईं, उन्हींकी सेवाके लिये जीवित रहीं और उसीमें बाधा पड़नेपर फिर उन्हींको सम्पूर्णरूपसे प्राप्त करनेके लिये उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया। गङ्गाके किनारे जिस स्थानपर सतीने अपना शरीर छोड़ा था, वह आज भी 'सौनिक तीर्थ'के नामसे विख्यात है।

---

* ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम्। ददर्श देहो हतकल्मषः सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना॥ (श्रीमद्भा० ४।४।२७)

† सती मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥ (रामचरितमानस)

सती पार्वती

पति देवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख ।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष ॥

सतीत्व ही नारीका सौन्दर्य है, पातिव्रत्यकी रक्षा ही उसका व्रत है । मन, वाणी और क्रियाद्वारा पतिके चरणोंमें पवित्र प्रेम ही उसका धर्म है । ऊँची-से-ऊँची स्थितिको पाकर भी मनमें अहङ्कारका उदय न होना, भारी-से-भारी सङ्कट आनेपर भी धैर्य न छोड़ना, स्वयं कष्ट सहकर भी स्वामी तथा कुटुम्बीजनोंको यथायोग्य सेवासे प्रसन्न रखना; विनय, कोमलता, दया, प्रेम, लज्जा, सुशीलता और वत्सलता आदि सद्गुणोंको हृदयमें धारण करना, यह प्रत्येक साध्वी नारीका स्वभाव होता है । नारी न भीरु होती है, न अबला । भीरुता और अबलापनको तो वह अपने पति और गुरुजनोंके सामने केवल विनयकी रक्षा और अविनयसे बचनेके लिये धारण किये रहती है । सती नारीकी सबसे बड़ी शक्ति है उसका पातिव्रत्य, जो सम्पूर्ण जगत्‌को सबल और निर्भय बना सकता है । वह प्राणोंके रहते सतीत्वपर आँच नहीं आने देती । आवश्यकता हुई तो सतीत्वकी रक्षाके लिये वह शस्त्र भी ग्रहण करती है और आततायीके लिये भयानक रणचण्डी बन जाती है । अपने पति और पुत्रोंके ललाटमें रक्तका चन्दन लगाकर स्वयं ही उन्हें रणमें भेजती है और इस प्रकार संसारमें वह वीराङ्गना एवं वीरजननीके रूपमें सम्मानित होती है । नारीके इन सभी सद्गुणों और सभी रूपोंका एकत्र समन्वय देखना हो-तो जगज्जननी भगवती पार्वतीके जीवनपर दृष्टिपात करना चाहिये । पार्वतीने जहाँ प्रेम और विनयकी प्रतिमूर्ति होकर पतिके आधे अङ्गमें स्थान प्राप्त किया, उन्हें अर्धनारीश्वर बनाया; वहीं स्वामीको अपनी विराट् शक्ति देकर मृत्युञ्जयके रूपमें प्रतिष्ठित किया, दोनों पुत्रोंको सेनानी और गणाध्यक्ष बनाया तथा स्वयं भी वे पातिव्रत्यकी रक्षा एवं लोककल्याणके लिये शस्त्र हाथमें ले चण्ड-मुण्डविनाशिनी चामुण्डा बन गयीं; वेद, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, तन्त्र, आगम सभी शिव और पार्वतीके गुणगानसे भरे हैं । यहाँ अतिसंक्षेपसे ही उनके जीवनपर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है ।

पार्वती पूर्वजन्ममें दक्षप्रजापतिकी कन्या सतीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं । उस समय भी उन्हें भगवान् शङ्करकी प्रियतमा पत्नी होनेका सौभाग्य प्राप्त था । जब वे अपने स्वामीके साथ कैलासपर्वतपर रहती थीं, उन दिनों गिरिराज हिमालयकी धर्मपत्नी मेनकादेवी उनसे बड़ा प्रेम रखती थीं । उनके मनमें सदा यही अभिलाषा होती कि मेरे गर्भसे भी एक सती-जैसी ही सुन्दरी तथा सुलक्षणा कन्या जन्म ले । सतीका भी उनके प्रति माता-जैसा ही प्रेम था । दक्षके यज्ञमें सतीका देहावसान सुनकर मेनकाको बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये बड़ी भक्तिके साथ आद्या शक्ति जगदम्बाकी आराधना आरम्भ कर दी । इससे प्रसन्न होकर देवीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मनोवाञ्छित वर माँगनेको कहा । मेनकाने पहले पुत्र और फिर कन्या प्राप्त होनेका वर माँगा । देवीने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की ।

इसी प्रकार महर्षि कश्यपके उपदेशसे श्रेष्ठ संतानकी प्राप्तिके लिये गिरिराज हिमवान्‌ने तपस्या करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और उनसे उत्तम पुत्र और महान् सद्गुणवती कन्या प्राप्त करनेका वर-लाभ किया ।

हिमालयकी पत्नी मेनका पितरोंकी मानसी कन्या थीं । वे कुल और शील दोनों ही दृष्टियोंसे श्रेष्ठ थीं । उनके गर्भसे पहले एक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मैनाक था । मैनाकके जन्मके कुछ काल पश्चात् सतीने नूतन शरीर धारण करनेके लिये मेनकाके गर्भमें प्रवेश किया । समय आनेपर जैसे सुनीति नवीन सम्पत्ति उत्पन्न करती है, उसी प्रकार मेनकाने एक कन्या-रत्नको जन्म दिया ।

पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण कन्याको सब लोग पार्वती कहने लगे । कुछ लोग गिरिजा और शैलजा भी कहते हैं । धीरे-धीरे पार्वती प्रतिदिन चन्द्रकलाके समान बढ़ने लगीं । वे ज्यों-ज्यों बड़ी होती गयीं, त्यों ही त्यों उनके सुन्दर अङ्ग भी सुडौल होकर बढ़ने लगे । माता-पिताकी आँखें त्रिभुवनसुन्दरी पार्वतीको देखकर अघाती नहीं थीं । पार्वतीके जन्मका समाचार पाकर देवर्षि नारद भी उन्हें देखनेके लिये कौतूहलवश हिमाचलके घर पधारे । पर्वतराजने उनका बड़ा आदर किया । 'मेरा अहोभाग्य, जो मुनिराजके दर्शन हुए' इस प्रकार अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए हिमवान्‌ने अपनी लाडली पुत्री पार्वतीको बुलाकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम कराया । इसके बाद हाथ जोड़कर कहा 'मुनिवर ! आप भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालोंके ज्ञाता हैं । आपकी सर्वत्र पहुँच है; अतः आप हृदयमें विचारकर कन्याके दोष और गुण बतलाइये ।'

नारदजीने हँसकर रहस्ययुक्त कोमल वाणीमें कहा—'गिरिराज ! तुम्हारी कन्या सब गुणोंकी खान है। यह स्वभावसे ही सुन्दर, सुशील और समझदार है। आगे चलकर यह उमा, अम्बिका और भवानी आदि विविध नामोंसे प्रसिद्ध होगी। इसमें सम्पूर्ण शुभ लक्षण विद्यमान हैं। यह अपने पतिको सर्वदा प्यारी होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहेगा। इस कन्यासे माता पिताको बड़ा भारी यश मिलेगा। यह सारे जगत्‌में पूज्य होगी। इसकी सेवासे कुछ भी दुर्लभ न होगा। संसारमें स्त्रियाँ इसके नामका स्मरण करके पातिव्रत्यरूपी तलवारकी धारपर चढ़ जायँगी। शैलपते ! इस प्रकार तुम्हारी कन्या सब प्रकारसे सुलक्षणी है; किंतु इसमें जो एक अवगुण है, उसे भी सुन लो। इसको पति गुणहीन, मानहीन, माता-पितासे रहित, उदासीन, संशयशून्य, योगी, जटाधारी, कामना-शून्य, नंगा और अमङ्गल वेषवाला मिलेगा। इसके हाथमें ऐसी ही रेखा पड़ी है।'

मुनिकी यह बात सुनकर और मन-ही मन उसको सत्य जानकर दोनों दम्पति हिमवान् और मैना बहुत दुखी हुए; किंतु पार्वतीजी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। हिमवान्‌को चिन्तित देखकर नारदजीने कहा—'हिमवान् ! इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारी कन्याको वैसा ही वर प्राप्त होगा, जैसा कि मैंने बताया है; परंतु मैंने वरके जो जो दोष बताये हैं, मेरे अनुमानसे वे सभी शिवजीमें हैं। यदि उनके साथ इसका विवाह हो जाय, तो दोषोंको भी सब लोग गुणके ही समान कहेंगे। शिवजी सहज समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान् हैं; अतः इस विवाहमें सब प्रकारसे कल्याण है। यद्यपि महादेवजीकी आराधना बड़ी कठिन है, तथापि तपस्या करनेसे वे शीघ्र ही संतुष्ट हो जाते हैं। यदि तुम्हारी कन्या तप करे, तो महादेवजी होनहारको भी मिटा सकते हैं। वे कृपाके समुद्र और सेवकोंके मनको प्रसन्न करनेवाले हैं। शिवजीकी आराधना किये बिना करोड़ों योग और जप करनेपर भी मनोवाञ्छित फलकी सिद्धि नहीं हो सकती।' ऐसा कहकर नारदजीने पार्वतीको आशीर्वाद दिया और भगवान्‌का स्मरण करके वे ब्रह्मलोकमें चले गये। हिमवान् पार्वतीके तप करनेका उपयुक्त अवसर देखने लगे।

उधर जबसे सतीने पिताके हाथों महादेवजीका अपमान होनेपर योगाग्निसे अपने शरीरको जला दिया तबसे महादेवजीने दूसरा विवाह नहीं किया। भोग-विलासको तो वे बहुत पहलेसे ही छोड़ चुके थे। हिमालयके सुन्दर शिखरपर जाकर उन्होंने तपस्या आरम्भ की। वहाँ भगवान्‌की सेवामें उनके पार्षद प्रमथगण और नन्दी भी साथ-साथ रहते थे। परम विरक्त शिवजी श्रीरघुनाथजीका नाम जपते हुए उन्हींका ध्यान करने लगे। महादेवजीको तपस्यामें स्थित देख हिमवान् अपनी पुत्रीको साथ लेकर उनकी पूजाके लिये गये। पहले उन्होंने स्वयं शिवजीकी पूजा की; फिर अपनी पुत्रीको आज्ञा दी कि 'सखियोंके साथ आकर तुम वहीं रहकर भगवान्‌की पूजा करो।' यद्यपि पार्वतीजीके रहनेसे शिवजीकी तपस्यामें बाधा पड़नेकी सम्भावना थी; फिर भी उन्होंने पार्वतीजीकी सेवा स्वीकार कर ली; क्योंकि वास्तवमें ज्ञानी और महात्मा पुरुष वे ही हैं जिनका चित्त विकारके साधन उपस्थित रहनेपर भी विचलित न हो। पार्वती नियमसे प्रतिदिन वहाँ रहकर पूजाके लिये फूल चुनकर लातीं, वेदीको धो-पोंछकर स्वच्छ बनातीं और नित्यकर्मके लिये जल और कुशा लाकर रख दिया करती थीं। यह सब करते हुए उनके तन-मनमें तनिक भी थकानका अनुभव नहीं होता था।

उन्हीं दिनों तारक नामसे प्रसिद्ध एक अजर-अमर असुर हुआ, जिसकी भुजाओंका बल, प्रताप और तेज बहुत बढ़ा था। उसने सब लोक और लोकपालोंको जीत लिया। तब उन्होंने ब्रह्माजीके पास जाकर अपनी कष्ट-कथा सुनायी। ब्रह्माजीने देवताओंको समझाकर कहा—'उस दैत्यकी मृत्यु तब होगी, जब शिवजीके वीर्यसे कोई

पुत्र उत्पन्न हो। वही इसे युद्धमें जीतेगा। दक्षकन्या सती हिमवान्‌के यहाँ पार्वतीके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। वे ही शिवका वीर्य धारण करनेमें समर्थ हैं; परंतु शिवजी परम विरक्त होकर समाधि लगाये बैठे हैं। हिमगिरिके शिखरपर तपस्या कर रहे हैं। उन्हें विवाहके लिये उद्यत करना कठिन है। इसके लिये तुम्हें कोई उपाय सोचना चाहिये।'

यह सुनकर इन्द्र आदि देवताओंने कामदेवको अपनी दुःखभरी गाथा सुनाकर वसन्त आदि सहायकोंके साथ वहाँ भेजा। उसके हाथमें पुष्पमय धनुष शोभा पा रहा था। वहाँ जाकर वह एक सुन्दर डालीपर जा बैठा। उसने पुष्पधनुषपर अपने पाँचों बाण चढ़ाये और अत्यन्त क्रोधसे लक्ष्यकी ओर देखकर उन्हें छोड़ दिया। बाण भगवान् शङ्करके हृदयमें जा लगे। उनकी समाधि टूट गयी और वे जाग उठे। इससे उनके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने आँखें खोलकर सब ओर देखा। आमके पत्तोंमें छिपे हुए कामदेवपर उनकी दृष्टि पड़ गयी। शिवजीने अपना तीसरा नेत्र खोला और उसके द्वारा देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया। जगत्‌में हाहाकार मच गया। कामदेवकी स्त्री रति अपने पतिकी यह दशा सुनकर मूर्छित हो गयी। वह रोती, चिल्लाती और करुणा करती हुई शिवजीकी शरणमें गयी। आशुतोष शिव अबलाकी करुण पुकार सुनकर पिघल गये और बोले—'रति! तेरा पति मरा नहीं है, केवल उसका शरीर जल गया है। अब वह बिना शरीरके ही सबको व्यापेगा। अबसे उसका नाम अनङ्ग होगा। जब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुवंशमें श्रीकृष्णका अवतार होगा, उस समय तेरा पति उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न होगा। तभीसे उसे अपने खोये हुए शरीरकी भी प्राप्ति हो जायगी।' यह सुनकर रति लौट गयी। इसी समय गिरिराज हिमालयने वहाँ पहुँचकर अपनी कन्याको गोदमें उठा लिया और सखियोंसहित उसे घर ले आये। शङ्करजीकी भक्ति और दृढ़तासे संतुष्ट होकर श्रीरघुनाथजीने उन्हें दर्शन दिया और पार्वतीजीसे विवाह करनेको विवश किया। शिवने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की।*

घर आनेपर पार्वतीजीने भगवान् शिवकी प्राप्तिके लिये घोर तपस्या करनेका निश्चय किया। उसने अपना यह विचार माता-पितापर भी प्रकट किया। हिमवान्‌को तो यह अभीष्ट ही था; किंतु माताका कोमल हृदय इसे सहन न कर सका। उसने सोचा, 'मेरी सुकुमारी कन्या इन कोमल अङ्गों तपस्याका कष्ट कैसे सह सकेगी!' इस विचारसे उसका हृद भर आया। नेत्रोंमें आँसू छलक आये। मेनाने पार्वती छातीसे लगा लिया और कहा—बेटी 'उ'......'मा' (ऐ न कर); तभीसे पार्वतीका नाम 'उमा' पड़ गया। मात पिताको हर तरहसे समझा-बुझाकर पार्वतीजी बड़े हर् साथ तपस्या करनेके लिये चलीं। हिमालयके एक सुन शिखरपर पार्वतीने घोर तपस्या आरम्भ की। उनका सुकुम शरीर तपके योग्य नहीं था तो भी शिवके चरणोंका चिन्त करके उन्होंने सब भोग छोड़ दिये। स्वामीके चरणोंमें नि नया अनुराग उत्पन्न होने लगा और तपमें ऐसा मन लगा शरीरकी सुध-बुध बिसर गयी।

इस प्रकार रात-दिन कठोर तपस्याके द्वारा अपने सुकोम अङ्गोंको सुखाकर पार्वतीने कठोर शरीरवाले तपस्वियोंको भ लज्जित कर दिया। इसी बीचमें पार्वतीके आश्रमपर ए तेजस्वी ब्रह्मचारी आया। उसका शरीर ब्रह्मचर्यके दिव्य तेज प्रकाशित हो रहा था। अतिथिका सत्कार करनेवाली दे पार्वतीने बड़े आदरसे आगे बढ़कर ब्रह्मचारीका विधिव पूजन किया। ब्रह्मचारीने उनकी पूजा ग्रहण करके पल अपनी थकावट मिटायी; फिर पार्वतीकी तपश्चर्या महान् प्रशंसा करते हुए उसका उद्देश्य जानना चाहा ब्रह्मचारीने ऐसे ढंगसे बातें कहीं, मानो उसने पार्वती हृदयमें पैठकर सब बातें जान ली हों। उन्हें सुनकर पार्व ऐसी लजा गयीं कि अपने मनकी बात मुँहसे न निकाल सकीं अतः उन्होंने सखीकी ओर देखकर उसे कहनेके लिये संके किया। तब पार्वतीजीकी सखीने ब्रह्मचारीको बड़े मधुर शब्दों पार्वतीकी मानस स्थितिका वर्णन करते हुए यह बत दिया कि ये पिनाकपाणि श्रीमहादेवजीको पतिरूपमें प्रा करनेके लिये तप कर रही हैं। इसपर ब्रह्मचारीने अरु अरुचि व्यक्त करते हुए महादेवजीके अशुभ वेषका वर्णन कर उनकी निन्दा की और अन्तमें कहा कि 'मेरे विचारसे तुम अपने मनको इस अनुचित आग्रहसे हटा लेना चाहिये। क तुम और कहाँ वह। दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर है

ब्रह्मचारीकी ऐसी उलटी-सीधी बातें सुनकर पार्वत के ओठ क्रोधसे काँपने लगे, भौंहें तन गयीं और आँ लाल हो गयीं। उन्होंने ब्रह्मचारीकी ओर आँखें तरेर देखा और कहा—'निश्चय ही महादेवजीके वास्तविक स्वरू

---

* सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा।
परम धरमु यह नाथ हमारा॥

तुम नहीं जानते, तभी तुम्हारे मुँहसे ऐसी बातें निकली हैं। मूर्ख लोग महात्मा पुरुषोंके उस अलौकिक चरित्रकी निन्दा ही करते हैं, जिसके रहस्यको जानने या समझनेकी उनमें क्षमता नहीं होती। जो लोग अपने ऊपर आयी हुई विपत्ति दूर करना चाहते हैं अथवा धनके लिये उत्सुक रहते हैं, वे ही ढूँढ-ढूँढकर माङ्गलिक कही जानेवाली वस्तुओंका सेवन करते हैं; परंतु जो सम्पूर्ण जगत्को शरण देनेवाले हैं, जिनके मनमें कोई इच्छा ही नहीं है, उन महेश्वरको ऐसी वस्तुओंसे क्या लेना है? कहते हो उनके पास कुछ नहीं है, वे श्मशानमें घूमते हैं और उनका रूप भयङ्कर है; किंतु सच बात यह है कि अकिञ्चन होते हुए भी वे ही सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता हैं। श्मशानमें विचरनेवाले होकर भी वे तीनों लोकोंके रक्षक हैं; भयानक रूपवाले होनेपर भी वे ही शिव (कल्याणकारी) कहलाते हैं। पिनाकपाणि महादेवजीके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले इस संसारमें नहीं हैं। वे सुन्दर आभूषण पहने या साँप लपेटे रहें। हाथीकी खाल ओढ़ें अथवा स्वच्छ वस्त्र धारण करें। हाथमें कपाल लिये हों अथवा माथेपर चन्द्रमाका मुकुट सजाये हों; संसारमें जितने भी रूप हैं, सब उन्हींके हैं; अतः उनका रूप ऐसा है, ऐसा नहीं है, इस बातका निश्चय नहीं किया जा सकता। जिन्हें तुम निर्धन कहते हो वे ही जब अपने बैलपर चढकर चलते हैं, उस समय मदोन्मत्त ऐरावत हाथीपर चढकर चलनेवाला इन्द्र भी आकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाता है और खिले हुए पारिजात-पुष्पोंके परागसे उनके चरणोंकी अंगुलियोंको लाल रंगकी कर देता है। तुम्हारी आत्मा अपने स्वरूपसे भ्रष्ट हो चुकी है। तुम शङ्करजीके दोष ही बतलाना चाहते थे तो भी तुम्हारे मुखसे एक बात तो उनके लिये अच्छी ही निकल गयी। अरे! जो ब्रह्माजीको भी उत्पन्न करनेवाले हैं, उन महेश्वरके जन्म, कुल और माता-पिता आदिका पता हो ही कैसे सकता है। जो सबके पिता-माता हैं, उनके पिता-माता दूसरे कौन हो सकते हैं; अस्तु, इस विवादसे कोई लाभ नहीं, तुमने शङ्करजीके बारेमें जैसा सुना है, वे वैसे ही सही; मेरा प्रेम-रसमें डूबा हुआ मन उन्हींमें रम गया है। अब उसे उनकी ओरसे हटाया नहीं जा सकता। प्रेमीका अन्तःकरण प्रेमास्पदके दोषोंपर दृष्टि नहीं डालता।'*

इतनेहीमें पार्वतीने देखा ब्रह्मचारी फिर कुछ कहना चाहता है तब वे सहसा बोल उठीं—'सखी! देखो, इस ब्रह्मचारीके ओठ फड़क रहे हैं। यह पुनः कुछ कहना चाहता है, इसे रोक दे। अब यह एक शब्द भी बोलने न पाये, क्योंकि जो महात्मा पुरुषोंकी निन्दा करता है, केवल वही नहीं पापी होता; जो उसके मुँहसे सुनता है, उसे भी पापका भागी होना पड़ता है।† अथवा मैं ही यहाँसे उठकर चली जाऊँगी।' यों कहकर उमा ज्यों ही चलनेको उद्यत हुईं, महादेवजीने अपना वास्तविक रूप प्रकट करके मुसकराते हुए उनका हाथ पकड़ लिया। अपने जीवननिधिको सहसा सामने उपस्थित देख पार्वतीजीके शरीरमें कम्पन होने लगा। समस्त अङ्ग पसीने-पसीने हो गये। आगे चलनेको

* गोस्वामी तुलसीदासजीने भी इस प्रसंगका अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। सप्तर्षियोंने पार्वतीकी प्रेम-परीक्षा लेते समय जब महादेवजीके दोष और विष्णुके गुणोंका वर्णन करके उनका मन विष्णुकी ओर खींचनेका प्रयत्न किया तथा नारदके उपदेशको हानिकर बताकर उन्हें तपस्यासे विरत करनेकी चेष्टा की, उस समय पार्वतीजीने उन्हें मुँहतोड़ उत्तर देते हुए कहा था—

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥

† निवार्यतामालि किमप्ययं बटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्॥
(कुमारसम्भव ५। ८३)

जो पैर उठ चुका था, वह जहाँ-का-तहाँ रुक गया। भगवान् शङ्कर बोले—'कोमलाङ्गी! आजसे मैं तुम्हारा तपस्यासे मोल लिया हुआ सेवक हूँ।' इतना सुनते ही पार्वती अनिर्वचनीय आनन्दमें डूब गयीं। तपस्यासे उन्हें जितना कष्ट हुआ था, वह सब जाता रहा। मनोवाञ्छित फल मिल जानेके कारण उनके तन-मन—दोनों हरे हो गये। तदनन्तर पार्वतीने अपनी सखीके मुँहसे यह कहलाया कि 'मेरे इस शरीरके स्वामी मेरे पिता हैं; अतः आप उन्हींके पास आदेश देकर मेरा वरण करें।' 'एवमस्तु' कहकर भगवान् शङ्कर वहीं अन्तर्धान हो गये।

कुछ कालके बाद हिमालयके विशाल शिखरपर पार्वतीका स्वयंवर रचाया गया। उस समय सम्पूर्ण देवताओंके विमानोंसे वह स्थान खचाखच भरा हुआ था। इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग और किन्नरगण मनोहर वेष बनाये वहाँ उपस्थित थे। भगवती उमा माला हाथमें लिये देवसमाजमें खड़ी हुईं। इसी समय उनकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शङ्कर पाँच शिखावाले बालक बनकर उनकी गोदमें आकर सो गये। देवीने ध्यानके द्वारा उन्हें पहचानकर बड़े प्रेमके साथ अङ्कमें ले लिया। पार्वतीका सङ्कल्प शुद्ध था। वे अपना मनोवाञ्छित पति पा गयीं; अतः भगवान् शङ्करको हृदयमें रखकर स्वयंवरसे लौट पड़ीं। इन्द्रने उस बालकको अपने मार्गका कण्टक माना और उसे मार डालनेके लिये वज्रको ऊपर उठाया। यह देख शिशुरूपधारी शिवने उन्हें वज्रसहित स्तम्भित कर

दिया। वे अपने स्थानसे हिल भी न सके। तब भगदेवताने एक तेजस्वी शस्त्र चलाना चाहा, किंतु उनकी भी बाँह जड़वत् हो गयी। यह देख ब्रह्माजीने भगवान् शिवको पहचान लिया और देवताओंको उनकी शरणमें जानेके लिये कहा। देवता भगवान्के चरणोंमें गिर पड़े। महेश्वर प्रसन्न हो गये। फिर सब देवताओंका शरीर पूर्ववत् हो गया। तदनन्तर भगवान् शिव अपने साक्षात् स्वरूपसे प्रकट हुए। पार्वतीने अपने हाथकी माला उनके चरणोंमें चढ़ा दी।

तत्पश्चात् भगवान् शङ्कर और पार्वतीका विवाह बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ। वरपक्षकी ओरसे ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता बारात लेकर आये थे, हिमवान्ने सबका बड़े प्रेमसे स्वागत-सत्कार किया। तदनन्तर विदाका समय आया। उस समय प्रेम और करुणाका समुद्र उमड़ पड़ा। सबके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। माताने अपनी लाड़िली पुत्रीको गोदमें बिठाकर शिक्षा दी 'बेटी! तू सदा शिवजीके चरणोंकी पूजा करना। नारियोंका यही धर्म है। उनके लिये पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है।'* इतना कहते-कहते माताके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उन्होंने कन्याको छातीसे चिपटा लिया। उसके बाद पार्वती सबसे मिल-जुलकर विदा हुईं। हिमवान्ने सब बरातियोंको भी आदरपूर्वक विदा किया।

कैलास पहुँचकर युगोंके बाद दो अनादि दम्पतियोंका पुनर्मिलन हुआ। वे सदासे ही एक प्राण, एक आत्मा थे और पुनः उसी प्रकार रहने लगे। फिर पार्वतीसे छः मुखोंवाले स्कन्द उत्पन्न हुए। छहों कृत्तिकाएँ भी इन्हें पुत्र मानती थीं, इसीसे इनका नाम कार्तिकेय भी है। इन्होंने तारकासुरको मारकर देवताओंको निर्भय किया। देवसेनाके अध्यक्ष-पदपर अभिषिक्त होनेसे इनका नाम सेनानी भी हो गया। पार्वतीजीके दूसरे पुत्र गणेश हैं। ये अनादि देवता माने गये हैं। इनकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विभिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका मिलता है। एक समयकी बात है, पार्वतीजीने स्नान करनेसे पहले अपने शरीरमें उबटन लगवाया। उससे जो मैल गिरी, उसको हाथमें लेकर देवीने कौतूहलवश एक बालककी प्रतिमा बनायी। वह प्रतिमा बड़ी सुन्दर बन गयी। ऐसा जान पड़ा, मानो कोई सुन्दर बालक सो रहा है। यह देख उन्होंने उसमें अपनी शक्तिसे प्राण-सञ्चार कर दिया। बालक सजीव हो उठा और बोला, 'मेरे

* करेहु सदा संकर पद पूजा। नारि धरमु पति देउ न दूजा॥

किये खड़ा रहता है?' देवीने कहा—'तुम हाथमें दण्ड लेकर द्वारपर पहरा दो। मैं स्नानके लिये जाती हूँ। जबतक स्नान करके लौट न आऊँ, तबतक किसीको अंदर न आने देना।' यों कहकर उमादेवी स्नानके लिये चली गयीं और बालक पहरा देने लगा। कुछ ही देरमें भगवान् शिव आये और घरके भीतर प्रवेश करने लगे। बालकने उन्हें रोका, फिर तो उन दोनोंमें भयङ्कर संग्राम छिड़ गया। शिवने त्रिशूलसे बालकका मस्तक काट गिराया। यह देख पार्वती धरतीपर लोटकर करुणक्रन्दन करने लगीं। चारों ओर हाहाकार मच गया। भगवान् शिव बालकको जीवित करनेकी इच्छासे इधर-उधर दृष्टिपात करने लगे, किंतु उसका कटा हुआ मस्तक कहीं नहीं मिला। इतनेहीमें उनकी दृष्टि गजासुरपर पड़ी। उन्होंने तुरंत उस दैत्यका मस्तक काटकर हाथमें ले लिया और उस बालकके धड़से जोड़ दिया। बालक

जी उठा। तभीसे उसका नाम गजानन पड़ा। ये गजानन ही अनादि सिद्ध गणेशके मूर्तिमान् स्वरूप हुए। इन्होंने अपने गम्भीर प्रभावसे समस्त देवादि गणोंका अध्यक्षत्व प्राप्त किया है।

एक बार पार्वती देवी कैलासके समीप बहनेवाली गङ्गाजीके तटपर स्नान करने गयीं। उस समय वहाँ सम्पूर्ण देवता देवीकी स्तुति कर रहे थे। पार्वतीने पूछा, 'आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं?' इतनेहीमें उन्हींके शरीरसे एक कल्याणमयी देवी प्रकट हुईं और बोलीं—'ये देवता शुम्भ और निशुम्भ नामक दैत्योंसे पराजित और पीड़ित होकर यहाँ एकत्रित हुए हैं और मेरी ही स्तुति करते हैं।' वे अम्बिका देवी पार्वतीजीके ही शरीरकोशसे प्रकट हुई थीं; इसलिये उन्हें कौशिकी कहते हैं। कौशिकीके प्रकट होनेके बाद पार्वतीजीका शरीर काले रंगका हो गया; अतः वे हिमालयनिवासिनी कालिका देवीके नामसे विख्यात हुईं। इस प्रकार उनके दो रूप हो गये, गौरी और काली। इन दोनों ही रूपोंसे उन्होंने धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, निशुम्भ और शुम्भ आदि बड़े-बड़े दैत्योंका संहार करके सम्पूर्ण जगत्का कल्याण किया। वे कौशिकी देवी ही महासरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार पार्वती देवीने अन्यान्य भक्तोंको भी अपनी कृपासे ही अनुगृहीत किया था। हैहयराज कार्तवीर्य अर्जुनपर कृपा करनेवाली आदिशक्ति महामाया देवी ये ही हैं।

एक समयकी बात है, देवता असुरोंपर विजय पाकर अभिमानसे फूल उठे और ऐसा मानने लगे कि हमने अपनी ही शक्तिसे विजय पायी है। इतनेहीमें एक तेजस्वी यक्ष प्रकट हुआ। 'वह कौन है?' इसका पता लगानेके लिये क्रमशः अग्नि और वायु गये। यक्षने उनके सामने एक तिनका रख दिया, उसे वे अपनी सारी शक्ति लगाकर भी न जला सके, न उड़ा सके। अन्तमें इन्द्र गये। यक्ष अन्तर्धान हो गया। उसकी जगह पार्वतीजी खड़ी थीं; उन्होंने बताया, 'वह ब्रह्म था। उसीकी शक्तिसे तुमने विजय पायी है।' देवताओंका अभिमान दूर हो गया। इस प्रकार सबसे पहले ब्रह्मविद्यारूपा उमासे ही ब्रह्मका ज्ञान हुआ। (यह प्रसंग केनोपनिषद्में आया है।)

एक बार देवदेव महेश्वरके पूछनेपर गङ्गा आदि पवित्र नदियोंके सामने पतिव्रताशिरोमणि श्रीपार्वती—उमाने स्त्री-धर्मका वर्णन करते हुए कहा—

नारीधर्म

'देवि! मुझे स्त्रियोंके धर्मका जैसा ज्ञान है उसके अनुसार उसका विधिवत् वर्णन करती हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो—विवाहके समय कन्याके भाई-बन्धु पहले ही उसे स्त्री-धर्मका उपदेश कर देते हैं जब कि वह अग्निके समीप अपने पतिकी सहधर्मिणी बनती है। जिसके स्वभाव, बातचीत और आचरण उत्तम हों, जिसको देखनेसे भी पतिको सुख मिलता हो, जो अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें मन नहीं

लगाती और स्वामीके समक्ष सदा प्रसन्नमुख बनी रहती है वह स्त्री धर्माचरण करनेवाली मानी गयी है। जो साध्वी स्त्री अपने स्वामीको सदा देवतुल्य समझती है, वही धर्मपरायण और वही धर्मके फलकी भागिनी होती है। जो पतिकी देवता-के समान सेवा-शुश्रूषा और परिचर्या करती, पतिके सिवा और किसीसे हार्दिक प्रेम नहीं करती, कभी रंज नहीं होती तथा उत्तम व्रतका पालन करती है, जो पुत्रके मुखकी भाँति स्वामीके मुखकी ओर सदा निहारती रहती है और नियमित आहारका सेवन करती है, वह साध्वी स्त्री धर्मचारिणी है। 'पति और पत्नीको एक साथ रहकर धर्मका आचरण करना चाहिये' इस मङ्गलमय दाम्पत्यधर्मको सुनकर जो स्त्री धर्म-परायण हो जाती है, वह पतिके समान व्रतका पालन करने-वाली (पतिव्रता) है। साध्वी स्त्री सदा अपने पतिको देवता-के समान देखती है। पति और पत्नीका यह सहधर्म (साथ-साथ रहकर धर्माचरण करना) रूप धर्म परम मङ्गलमय है। जो अपने हृदयके अनुरागके कारण स्वामीके अधीन रहती है, अपने चित्तको प्रसन्न रखती है, उत्तम व्रतका पालन करती है और देखनेमें सुखदायक—सुन्दर वेष धारण किये रहती है, जिसका चित्त अपने पतिके सिवा और किसीका चिन्तन नहीं करता, वह प्रसन्नवदन रहनेवाली स्त्री धर्मचारिणी मानी गयी है। जो स्वामीके कठोर वचन कहने या क्रूरदृष्टिसे देखनेपर भी प्रसन्नतासे मुसकराती रहती है, वही स्त्री पतिव्रता है। पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषकी ओर देखना तो दूर रहा, जो पुरुषके समान नाम धारण करनेवाले चन्द्रमा, सूर्य और किसी वृक्षकी ओर भी दृष्टि नहीं डालती, वही पतिव्रत धर्मका पालन करनेवाली है। जो नारी अपने दरिद्र, रोगी, दीन अथवा रास्तेकी थकावटसे खिन्न हुए पतिकी पुत्रके समान सेवा करती है, उसीको धर्मका पूरा-पूरा फल मिलता है। जो स्त्री अपने हृदयको शुद्ध रखती, गृहकार्य करनेमें कुशल होती, पतिसे प्रेम करती और पतिको ही अपने प्राण समझती है, वही धर्मका फल पानेकी अधिकारिणी होती है। जो प्रसन्न-चित्तसे पतिकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती है, पतिके ऊपर पूर्ण विश्वास रखती है और उसके साथ विनययुक्त बर्ताव करती है, वह नारी धर्मका फल पाती है। जिसके हृदयमें पतिके लिये जैसी चाह होती है वैसी काम, भोग, ऐश्वर्य और सुखके लिये नहीं होती, जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठनेमें रुचि रखती, गृहके काम-काजमें योग देती और घरको झाड़-बुहार-कर उसे गायके गोबरसे लीप-पोतकर स्वच्छ बनाये रखती है, जो पतिके साथ रहकर नित्य अग्निहोत्र करती, देवताओंको पुष्प और बलि अर्पण करती तथा देवता, अतिथि और सास-ससुर आदि पोष्य-वर्गको भोजन देकर न्याय और विधिके अनुसार शेष अन्नका स्वयं भोजन करती है तथा घरके लोगों-को हृष्ट-पुष्ट एवं सन्तुष्ट रखती है, वही नारी धर्मका पालन करनेवाली है। जो उत्तम गुणोंसे युक्त होकर सदा सास-ससुरके चरणोंकी सेवामें संलग्न रहती और माता-पिताके प्रति भक्ति रखती है, वह स्त्री तपस्विनी मानी गयी है। जो ब्राह्मणों, दुर्बलों, अनाथों, दीनों, अंधों और कंगालोंको अन्न देकर उनका पालन-पोषण करती है, उसे पतिव्रत-धर्मका फल प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन उत्तम व्रतका पालन करती, पतिमें ही मन लगाती और निरन्तर पतिके हित-साधनमें लगी रहती है, उसे पतिव्रता समझना चाहिये। जो नारी पतिव्रत धर्मका पालन करती हुई स्वामीकी सेवामें तत्पर रहती है, उसका यह कार्य महान् पुण्य, बड़ी भारी तपस्या और अक्षय स्वर्गका साधन है। पति ही स्त्रियोंका देवता, पति ही उनका बन्धु-बान्धव और पति ही उनकी गति है। नारीके लिये पतिके समान न दूसरा कोई सहारा है, न दूसरा कोई देवता। एक ओर पतिकी प्रसन्नता और दूसरी ओर स्वर्ग, ये दोनों नारीकी दृष्टिमें समान हो सकते हैं या नहीं, इसमें सन्देह है। मेरे प्राणनाथ महेश्वर! मैं तो आपको अप्रसन्न रखकर स्वर्गको भी नहीं चाहती। पति दरिद्र हो जाय, किसी रोगसे घिर जाय, आपत्तिमें फँस जाय, शत्रुओंके बीचमें पड़ जाय अथवा ब्राह्मणके शापसे कष्ट पा रहा हो और उस अवस्थामें वह न करने योग्य कार्य, अधर्म अथवा प्राण त्याग देनेकी भी आज्ञा दे तो उसे आपत्तिकालका धर्म समझकर निःशङ्क भावसे तुरत पूरा करना चाहिये। भगवन्! आपकी आज्ञासे मैंने यह स्त्री-धर्मका वर्णन किया है। जो स्त्री ऊपर बताये अनुसार अपना जीवन बनाती है, वह पातिव्रत्य-धर्मके फलकी भागिनी होती है।'

पार्वतीजी समस्त पतिव्रताओंकी शिरोमणि हैं। भगवती सीताको इन्हींकी आराधनासे श्रीरघुनाथजीकी प्राप्ति हुई थी। ये महादेवजीको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। इन्हींके अनुरोध-से महादेवजीने अनेकानेक उपयोगी तथा गुप्त साधनोंका वर्णन किया है, जो भिन्न-भिन्न पुराणों, तन्त्रों, आगमों तथा गुरुपरम्परासे उपलब्ध होते हैं। बहुत-से मन्त्रोंका प्राकट्य भी इन्हींकी दयासे हुआ है। ये श्रीरघुनाथजीकी बड़ी भक्त हैं। भगवान्‌के बहुत-से शतनाम, सहस्रनाम तथा अन्य स्तोत्र, व्रत आदि माहात्म्यसहित इन्हींके प्रयत्नसे प्रकट हुए हैं। इस प्रकार इनके हाथों लोककल्याणके असंख्य कार्य हुए हैं। श्रीरामचरितमानसकी मङ्गलमयी पावन कथा भी इन्हींकी देन है। सबसे पहले इन्हींको महादेवजीने वह कथा सुनायी थी—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥

माता पार्वतीका आदर्श भारतकी प्रत्येक नारीके लिये कल्याणकारी है।

—रा० शा०

जगज्जननी लक्ष्मी

पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम् ।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम् ॥

देवीकी जितनी शक्तियाँ मानी गयी हैं, उन सबका मूल महालक्ष्मी ही हैं । ये ही सर्वोत्कृष्ट पराशक्ति हैं । ये ही समस्त विकृतियोंकी प्रधान प्रकृति हैं । सारा विश्वप्रपञ्च महालक्ष्मीसे ही प्रकट हुआ है । तीनों गुणोंकी साम्यावस्थारूपा प्रकृति भी इनसे भिन्न नहीं है । स्थूल, सूक्ष्म, दृश्य, अदृश्य अथवा व्यक्त, अव्यक्त सब इन्हींके स्वरूप हैं । ये ही सच्चिदानन्दमयी साक्षात् परमेश्वरी हैं । यद्यपि अव्यक्तरूपसे ये सर्वत्र व्यापक हैं तथापि भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये परम दिव्य चिन्मय सगुणरूपसे भी सदा विराजमान रहती हैं । इनके उस श्रीविग्रहकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णके सदृश है । ये नित्य सनातन होती हुई भी लीलाके लिये अनेक रूपोंमें प्रकट होती रहती हैं । देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि योनियोंमें जो कुछ पुरुषवाची है, वह सब भगवान् श्रीहरि हैं और जो कुछ स्त्रीवाची है, वह सब श्रीलक्ष्मीजी हैं । इनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है ।*

यों तो महालक्ष्मी ही जगजननी हैं, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी इन्हींसे प्रकट होते हैं; तथापि ये अपने एक-एक स्वरूपसे ब्रह्मा, विष्णु आदिकी सेवामें भी रहती हैं । लक्ष्मीकी अभिव्यक्ति दो रूपोंमें देखी जाती है—श्रीरूपमें और लक्ष्मी-रूपमें । ये दो होकर भी एक हैं और एक होकर भी दो । दोनों ही रूपोंसे ये भगवान् विष्णुकी पत्नियाँ हैं । श्रुति भी कहती है—'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ ।' श्रीदेवीको कहीं-कहीं 'भूदेवी' भी कहते हैं । इस प्रकार लक्ष्मीके दो स्वरूप हैं—एक तो सच्चिदानन्दमयी लक्ष्मी, जो श्रीनारायणसे अभिन्न है, सदा उनके वक्षःस्थलमें वास करती हैं और कभी उनसे विलग नहीं होतीं । दूसरा रूप है भौतिक या प्राकृत सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवीका । यही श्रीदेवी या भूदेवी हैं । ये भी अनन्यभावसे भगवन्नारायणकी ही सेवामें रहती हैं । उक्त भौतिक या प्राकृत सम्पत्ति स्वरूपतः जड है, किंतु उसे भी श्री या लक्ष्मी कहा जाता है । यह प्रयोग औपचारिक है, मुख्य नहीं । इस जड सम्पत्तिपर भिन्न-भिन्न समयमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंका अधिकार होता रहता है । यह कभी एक-की होकर नहीं रहती, कहीं भी स्थिर नहीं रहती । इसीलिये लक्ष्मीको सर्वभोग्या, नीचसेव्या, चञ्चला, चपला, बहुगामिनी आदि कहकर आक्षेप किया जाता है । यहाँ यह बात ध्यानमें रखनेकी है, यह निन्दा अथवा आक्षेप जड सम्पत्तिको लक्ष्य करके ही किया जाता है । साक्षात् चिन्मयी देवी श्रीलक्ष्मीजीको नहीं । वे तो पतिप्राणा हैं । सनातन भगवान्‌की सनातन अनपायिनी शक्ति हैं । उनका जीवन नित्य-निरन्तर भगवान्‌की सेवामें ही व्यतीत होता है । वे भगवान्‌के सिवा दूसरेको न देखती हैं, न जानती हैं । यह बात अवश्य है कि वह जड सम्पत्ति उनके अधिकारमें रहती है । जिसे भगवान् देना चाहते हैं या जिसपर लक्ष्मीकी कृपा हो जाती है, उसे यदि आवश्यकता हो तो ये जडसम्पत्ति प्रदान करती हैं । इन्हें कमल अधिक प्रिय है । ये कमलवनमें निवास करती हैं, कमलपर बैठती हैं और हाथमें भी कमल धारण किये रहती हैं । सब सम्पत्तियोंकी अधिष्ठात्री श्रीदेवी शुद्ध सत्त्वमयी हैं । इनके पास लोभ, मोह, काम, क्रोध और अहंकार आदि दोषोंका प्रवेश नहीं है । ये स्वर्गमें स्वर्ग-लक्ष्मी, राजाओंके यहाँ राज-लक्ष्मी, मनुष्योंके घरोंमें गृहलक्ष्मी, वणिग्-जनोंके यहाँ वाणिज्य-लक्ष्मी तथा युद्धमें विजेताओंके पास विजय-लक्ष्मीके रूपमें रहती हैं ।

पतिप्राणा चिन्मयी लक्ष्मी समस्त पतिव्रताओंकी शिरोमणि हैं । एक बार उन्होंने भृगुकी पुत्रीरूपमें अवतार लिया था; इसलिये इन्हें भार्गवी कहते हैं । समुद्र-मन्थनके समय ये ही क्षीरसागरसे प्रकट हुई थीं; इसलिये इनका नाम 'क्षीरोद-तनया' अथवा 'क्षीरसागर-कन्या' हुआ । ये पद्मिनी विद्याकी भी अधिष्ठात्री देवी हैं । तन्त्रोक्त नील सरस्वतीकी पीठ-शक्तियोंमें भी इनका नाम आता है । भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब उनके साथ लक्ष्मीदेवी भी अवतीर्ण हो उनकी सेवा करती और उनकी प्रत्येक लीलामें योग देती हैं । इनके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—

महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे एक त्रिलोकसुन्दरी भुवनमोहिनी कन्या उत्पन्न हुई । वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थी; इसलिये उसका नाम लक्ष्मी रक्खा गया । अथवा साक्षात् लक्ष्मी ही उस कन्याके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं; इसलिये वह लक्ष्मी कहलायी, धीरे-धीरे बड़ी होनेपर लक्ष्मीने भगवान् नारायणके गुण और प्रभावका वर्णन सुना ।

---

* देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नाम्ना भगवान् हरिः ।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम् ॥
(वि० पु० १ । ८ । ३५)

इससे उनका हृदय भगवान्‌में अनुरक्त हो गया। वे उन्हें पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छासे समुद्रके तटपर जाकर घोर तपस्या करने लगीं। तपस्या करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये। तब इन्द्र भगवान् विष्णुका रूप धारण करके लक्ष्मी-देवीके समीप आये और वर माँगनेको कहा। लक्ष्मीने कहा—'आप अपने विश्वरूपका मुझे दर्शन कराइये।' इन्द्र इसके लिये असमर्थ थे, अतः लज्जित होकर वहाँसे लौट गये। इसके बाद और कई देवता पधारे, परंतु विश्वरूप दिखानेकी शक्ति न होनेके कारण उनकी भी कलई खुल गयी।

यह समाचार पाकर साक्षात् भगवान् नारायण वहाँ देवीको दर्शन देने और उन्हें कृतार्थ करनेके लिये आये। भगवान्‌ने देवीसे कहा—'वर माँगो।' यह आदेश सुनकर देवीने भगवान्‌का गौरव बढ़ानेके लिये ही कहा—'देवदेव! यदि आप साक्षात् भगवान् नारायण हैं तो अपने विश्वरूपका दर्शन देकर मेरा संदेह दूर कर दीजिये।' भगवान्‌ने विश्व-रूपका दर्शन कराया और लक्ष्मीजीकी इच्छाके अनुसार उन्हे पत्नीरूपमें ग्रहण किया। इसके बाद वे बोले—'देवि! ब्रह्मचर्य ही सब धर्मोंका मूल तथा सर्वोत्तम तपस्या है। तुमने ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक इस स्थानपर कठोर तपस्या की है, इसलिये मैं यहाँ मूल 'श्रीपति' के नामसे विख्यात होकर रहूँगा तथा तुम भी ब्रह्मचर्यस्वरूपिणी 'मूल श्री' के नामसे यहाँ प्रसिद्धि प्राप्त करोगी।'

लक्ष्मीजीके प्रकट होनेका दूसरा इतिहास इस प्रकार है—एक बार भगवान् शङ्करके अंशभूत महर्षि दुर्वासा भूतलपर विचर रहे थे। घूमते-घूमते वे एक मनोहर वनमें गये। वहाँ एक विद्याधर-सुन्दरी हाथमें पारिजात-पुष्पोंकी माला लिये खड़ी थी, वह माला दिव्य पुष्पोंकी बनी थी। उसकी दिव्य गन्धसे समस्त वन-प्रान्त सुवासित हो रहा था। दुर्वासाने विद्याधरीसे वह मनोहर माला माँगी। विद्याधरीने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करके वह माला दे दी। माला लेकर उन्मत्त वेषधारी मुनिने अपने मस्तकपर डाल ली और पुनः पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे।

इसी समय मुनिको देवराज इन्द्र दिखायी दिये, जो मतवाले ऐरावतपर चढ़कर आ रहे थे। उनके साथ बहुत-से देवता भी थे। मुनिने अपने मस्तकपर पड़ी माला उतारकर हाथमें ले ली। उसके ऊपर भौंरे गुंजार कर रहे थे। जब देवराज समीप आये तो दुर्वासाने पागलोंकी तरह वह माला उनके ऊपर फेंक दी। देवराजने उसे लेकर ऐरावतके मस्तक-पर डाल दिया। ऐरावतने उसकी तीव्र गन्धसे आकर्षित हो सूँड़से माला उतार ली और सूँघकर पृथ्वीपर फेंक दी। यह देख दुर्वासा क्रोधसे जल उठे और देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोले—'अरे ओ इन्द्र! ऐश्वर्यके घमंडसे तेरा हृदय दूषित हो गया है। तुझपर जडता छा रही है; तभी तो मेरी दी हुई मालाका तूने आदर नहीं किया है। वह माला नहीं, लक्ष्मीका धाम थी। माला लेकर तूने प्रणामतक नहीं किया। इसलिये तेरे अधिकारमें स्थित तीनों लोकोंकी लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायगी।' यह शाप सुनकर देवराज इन्द्र घबरा गये और तुरंत ही ऐरावतसे उतरकर मुनिके चरणोंमें पड़ गये। उन्होंने दुर्वासा-को प्रसन्न करनेकी लाख चेष्टाएँ कीं, किंतु वे महर्षि टस-से-मस न हुए। उलटे इन्द्रको फटकारकर वहाँसे चल दिये। इन्द्र भी ऐरावतपर सवार हो अमरावतीको लौट गये। तबसे तीनों लोकोंकी लक्ष्मी नष्ट हो गयी। इस प्रकार त्रिलोकीके श्रीहीन एवं सत्त्वरहित हो जानेपर दानवोंने देवताओंपर चढ़ाई कर दी। देवताओंमें अब उत्साह कहाँ रह गया था? सबने हार मान ली। फिर सभी देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने उन्हें भगवान् विष्णुकी शरणमें जानेकी सलाह दी तथा सबके साथ वे स्वयं भी क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओंने बड़ी भक्तिसे भगवान् विष्णुका स्तवन किया। भगवान् प्रसन्न होकर देवताओंके सम्मुख प्रकट हुए। उनका अनुपम तेजस्वी मङ्गलमय विग्रह देखकर देवताओंने पुनः स्तवन किया, तत्पश्चात् भगवान्‌ने उन्हें क्षीरसागरको मथनेकी सलाह दी और कहा, 'इससे अमृत प्रकट होगा। उसके पान करनेसे तुम सब लोग अजर-अमर हो जाओगे; किंतु यह कार्य है बहुत दुष्कर, अतः तुम्हें दैत्योंको भी अपना साथी बना लेना चाहिये। मैं तो तुम्हारी सहायता करूँगा ही।'

भगवान्‌की आज्ञा पाकर देवगण दैत्योंसे सन्धि करके अमृत-प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। वे भाँति-भाँतिकी ओषधियाँ लाये और उन्हें क्षीरसागरमें छोड़ दिया। फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकिको नेती (रस्सी) बनाकर बड़े वेगसे समुद्रमन्थन-कार्य आरम्भ किया। भगवान्‌ने वासुकिकी पूँछकी ओर देवताओंको और मुखकी ओर दैत्योंको लगाया। मन्थन करते समय वासुकिकी निःश्वासाग्निसे झुलसकर सभी दैत्य निस्तेज हो गये और उसी निःश्वास-वायुसे विक्षिप्त होकर बादल वासुकिकी पूँछकी ओर बरसते थे; जिससे देवताओंकी शक्ति बढ़ती गयी। भक्तवत्सल भगवान् विष्णु स्वयं कच्छपरूप धारणकर क्षीरसागरमें घूमते हुए मन्दराचलके आधार बने हुए थे। वे ही एक रूपसे देवताओंमें और एक रूपसे दैत्योंमें मिलकर नागराजको

खींचनेमें भी सहायता देते थे तथा एक अन्य विशाल रूपसे, जो देवताओं और दैत्योंको दिखायी नहीं देता था, उन्होंने मन्दराचलको ऊपरसे दबा रक्खा था। इसके साथ ही वे नागराज वासुकिमें भी बलका सञ्चार करते थे और देवताओंकी भी शक्ति बढ़ा रहे थे।

इस प्रकार मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे क्रमशः कामधेनु, वारुणी देवी, कल्पवृक्ष और अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसके बाद चन्द्रमा निकले, जिन्हें महादेवजीने मस्तकपर धारण किया। फिर विष प्रकट हुआ, जिसे नागोंने चाट लिया। तदनन्तर अमृतका कलश हाथमें लिये धन्वन्तरिका प्रादुर्भाव हुआ। इससे देवताओं और दानवोंको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। सबके अन्तमें क्षीरसमुद्रसे भगवती लक्ष्मीदेवी प्रकट हुईं।

वे खिले हुए आसनपर विराजमान थीं। उनके श्रीअङ्गोंकी दिव्य कान्ति सब ओर प्रकाशित हो रही थी। उनके हाथमें कमल शोभा पा रहा था। उनका दर्शन करके देवता और महर्षिगण प्रसन्न हो गये। उन्होंने वैदिक श्रीसूक्तका पाठ करके लक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। फिर देवताओंने उनको स्नानादि कराके दिव्य वस्त्राभूषण अर्पण किये। वे उन दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर सबके देखते-देखते अपने सनातन स्वामी श्रीविष्णुभगवान्‌के वक्षःस्थलमें चली गयीं। भगवान्‌को लक्ष्मीजीके साथ देखकर देवता प्रसन्न हो गये। दैत्योंको बड़ी निराशा हुई। उन्होंने धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका कलश छीन लिया; किंतु भगवान्‌ने मोहिनी स्त्रीके रूपसे उन्हें अपनी मायाद्वारा मोहित करके सारा अमृत देवताओंको ही पिला दिया। तदनन्तर इन्द्रने बड़ी विनय और भक्तिके साथ श्रीलक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। उससे प्रसन्न होकर लक्ष्मीने देवताओंको मनोवाञ्छित वरदान दिया। इस प्रकार ये लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुकी अनन्य प्रिया हैं। भगवान्‌के साथ प्रत्येक अवतारमें ये साथ रहती हैं। जब श्रीहरि विष्णु नामक आदित्यके रूपमें स्थित हुए तब ये कमलोद्भवा 'पद्मा' के नामसे विख्यात हुईं। ये ही श्रीरामके साथ 'सीता' और श्रीकृष्णके साथ 'रुक्मिणी' होकर अवतीर्ण हुई थीं। भगवान्‌के साथ इनकी आराधना करनेसे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंकी सिद्धि होती है। लक्ष्मीजी सतीत्व और साधुताकी मूर्ति हैं। इसीलिये सभी सती-साध्वी स्त्रियोंको घरकी 'लक्ष्मी' कहकर सम्मानित किया जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णकी पट्टमहिषी महारानी रुक्मिणीजी एक बार अपनी अभिन्नरूपा लक्ष्मीजीसे भेंट करने वैकुण्ठ पधारीं और वहाँ लक्ष्मीजीको भगवान् विष्णुके समीप बैठी देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं, फिर लोक-कल्याणके लिये प्रद्युम्नकी माता रुक्मिणीजीने लक्ष्मीदेवीसे पूछा—'देवि! आप किस स्थानपर और कैसे मनुष्योंके पास रहती हैं?'

पञ्च-दिव्यधामेश्वरी

रमा, राधिका, सीता, गौरी, ब्रह्माणीदेवी अनुरूप ।
दिव्यधाम-स्वामिनि ये पाँचों दिव्य नारिके हैं शुभरूप ॥

लक्ष्मी कहाँ रहती हैं

लक्ष्मीने उत्तर दिया—'कल्याणी ! सुनो, जो मनुष्य मिष्टभाषी, कार्यकुशल, क्रोधहीन, भक्त, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उदार है, उनके यहाँ मेरा निवास होता है। सदाचारी, धर्मज्ञ, बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें तत्पर, पुण्यात्मा, क्षमाशील और बुद्धिमान् मनुष्योंके पास मैं सदा रहती हूँ। जो स्त्रियाँ पतिकी सेवा करती हैं, जिनमें क्षमा, सत्य, इन्द्रियसंयम, सरलता आदि सद्गुण होते हैं, जो देवताओं और ब्राह्मणोंमें श्रद्धा रखती हैं, जिनमें सभी प्रकारके शुभ *लक्षण* मौजूद हैं, उनके समीप मैं निवास करती हूँ। सवारी, कन्या, आभूषण, यज्ञ, जलसे पूर्ण मेघ, फूले हुए कमल, शरद् ऋतुके नक्षत्र, हाथी, गायोंके रहनेके स्थान, आसन, फूले हुए कमलोंसे सुशोभित तालाब, मतवाले हाथी, साँड़, राजा, सिंहासन, सज्जन पुरुष, विद्वान् ब्राह्मण, प्रजापालक क्षत्रिय, खेती करनेवाले वैश्य तथा सेवापरायण शूद्र मेरे प्रधान निवास-स्थान हैं। जिस घरमें सदा होम होता है, देवता, गौ तथा ब्राह्मणोंकी पूजा होती है, उस घरको मैं कभी नहीं छोड़ती। भगवान् नारायण धर्म, ब्राह्मणत्व और संसारके एकमात्र आधार हैं, इसीसे मैं इनके शरीरमें एकाग्रचित्त और अभिन्न-रूपसे रहती हूँ। भगवान् नारायणके सिवा अन्यत्र कहीं भी मैं शरीर धारण करके नहीं रहती। जहाँ मेरा वास होता है, वहाँ धर्म, अर्थ और सुयशकी वृद्धि होती रहती है।

अब जिन स्थानोंसे मुझे घृणा है, उसका वर्णन सुनो—'जो अकर्मण्य, नास्तिक, कृतघ्न, आचारभ्रष्ट, नृशंस, चोर, गुरुद्रोही, उद्धत तथा कपटी हैं, बल, बुद्धि तथा वीर्यसे हीन हैं, उनके पास मैं नहीं रहती। जो हर्ष और क्रोधका अवसर नहीं जानते, धन-प्राप्तिकी आशा नहीं करते और थोड़ेमें ही संतुष्ट हो जाते हैं, ऐसे लोगोंके पास भी मैं कभी नहीं रहती। जो स्त्रियाँ गंदी रहती हैं, घरकी वस्तुओंको इधर उधर बिखेरे रखती हैं, जिनमें उत्तम विचार नहीं होता, जो सदा पतिके प्रतिकूल बातें करती हैं, जिन्हें दूसरोंके घरोंमें रहना अधिक पसंद है, जिनमें न धैर्य है, न लज्जा, जो स्वभावसे निर्दय और शरीरसे अपवित्र होती हैं, काम-काजमें जिनका मन नहीं लगता, जो सदा लड़ाई-झगड़े किया करती और अधिक सोती हैं, उसके पास मैं कभी नहीं रहती।' —रा० शा०

भगवती सरस्वती

सरस्वती श्रुतिमहती न हीयताम्।

सम्पूर्ण जगत्की कारणभूत आद्याशक्ति परमेश्वरीकी अभिव्यक्ति तीन स्वरूपोंमें होती है—महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। इनकी मूल प्रकृति महालक्ष्मी ही हैं। वे ही विशुद्ध सत्त्वगुणके अंशसे महासरस्वतीके रूपमें प्रकट होती हैं। इनका चन्द्रमाके समान गौर वर्ण है। इनके हाथोंमें अक्षमाला, अङ्कुश, वीणा तथा पुस्तक शोभा पाती है। महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा और धीश्वरी (बुद्धिकी स्वामिनी)—ये इनके नाम हैं। ये वाणी और विद्याकी अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है। ऋग्वेदमें वाग्देवीका नाम सरस्वती बताया गया है। इनके तीन स्थान हैं—स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष। स्वर्गकी वाग्देवीका नाम भारती, पृथ्वीके वाग्देवताका नाम इला और अन्तरिक्षवासिनी वाग्देवीका नाम सरस्वती है। तन्त्रशास्त्रमें प्रसिद्ध तारा देवीका नाम भी सरस्वती है। तन्त्रोक्त नीलसरस्वतीकी पीठशक्तियोंमें भी सरस्वतीका नाम आया है। तारिणी देवीकी एक मूर्तिका नाम भी सरस्वती है। सरस्वती देवी सम्पूर्ण संशयोंका उच्छेद करनेवाली तथा बोधस्वरूपिणी हैं। इनकी उपासनासे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ये संगीत-शास्त्रकी भी अधिष्ठात्री देवी हैं। ताल, स्वर, लय, राग-रागिनी आदिका प्रादुर्भाव भी इन्हींसे हुआ है। सात प्रकारके स्वरोंद्वारा इनका स्मरण किया जाता है, इसलिये ये स्वरात्मिका कहलाती हैं। सप्तविध स्वरोंका ज्ञान प्रदान करनेके कारण इनका नाम सरस्वती है।

'देवीभागवत'में लिखा है, सरस्वतीदेवी भगवान् श्रीकृष्णकी जिह्वाके अग्रभागसे प्रकट हुई हैं। श्रीकृष्णने उन्हें भगवान् नारायणको समर्पित किया। श्रीकृष्णने ही संसारमें सरस्वतीकी पूजा प्रचारित की। पूर्वकालमें भगवान् नारायणके तीन पत्नियाँ थीं—लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वती। तीनों ही बड़े प्रेमसे रहतीं और अनन्यभावसे भगवान्का पूजन किया करती थीं। एक दिन भगवान्की ही इच्छासे ऐसी घटना हो गयी, जिससे लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वतीको भगवान्के चरणोंसे कुछ कालके लिये दूर हट जाना पड़ा। भगवान् जब अन्तःपुरमें पधारे, उस समय तीनों देवियाँ एक

ही स्थानपर बैठी हुई परस्पर प्रेमालाप कर रही थीं, भगवान्‌को आया देख तीनों उनके स्वागतके लिये खड़ी हो गयीं। उस समय गङ्गाने विशेष प्रेमपूर्ण दृष्टिसे भगवान्‌की ओर देखा। भगवान्‌ने भी उनकी दृष्टिका उत्तर वैसी ही स्नेहपूर्ण दृष्टिमें हँसकर दिया; फिर वे किसी आवश्यकतावश अन्तःपुरसे बाहर निकल गये। तब देवी सरस्वतीने गङ्गाके उस बर्तावको अनुचित बताकर उनके प्रति आक्षेप किया। गङ्गाने भी कठोर शब्दोंमें उनका प्रतिवाद किया। उनका विवाद बढ़ता देख लक्ष्मीजीने दोनोंको शान्त करनेकी चेष्टा की। सरस्वतीने लक्ष्मीके इस बर्तावको गङ्गाजीके प्रति पक्षपात माना और उन्हें शाप दे दिया, 'तुम वृक्ष और नदीके रूपमें परिणत हो जाओगी।' यह देख गङ्गाने भी सरस्वतीको शाप दिया 'तुम भी नदी हो जाओगी।' यही शाप सरस्वतीकी ओरसे गङ्गाको भी मिला। इतनेहीमें भगवान् पुनः अन्तःपुरमें लौट आये। अब देवियाँ प्रकृतिस्थ हो चुकी थीं। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई तथा भगवान्‌के चरणोंसे विलग होनेके भयसे दुखी होकर रोने लगीं।

इस प्रकार उनका सब हाल सुनकर भगवान्‌को खेद हुआ। उनकी आकुलता देखकर वे दयासे द्रवीभूत हो उठे। उन्होंने कहा—'तुम सब लोग एक अंशसे ही नदी होओगी; अन्य अंशोंसे तुम्हारा निवास मेरे ही पास रहेगा। सरस्वती एक अंशसे नदी होंगी। एक अंशसे इन्हें ब्रह्माजीकी सेवामें रहना पड़ेगा तथा शेष अंशोंसे ये मेरे ही पास निवास करेंगी। कलियुगके पाँच हजार वर्ष बीतनेके बाद तुम सबके शापका उद्धार हो जायगा। इसके अनुसार सरस्वती भारत-भूमिमें अंशतः अवतीर्ण होकर भारती कहलायीं। उसी शरीरसे ब्रह्माजीकी प्रियतमा पत्नी होनेके कारण उनकी 'ब्राह्मी' नामसे प्रसिद्धि हुई। किसी-किसी कल्पमें सरस्वती ब्रह्माजीकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण होती हैं और आजीवन कुमारीव्रतका पालन करती हुई उनकी सेवामें रहती हैं।

एक बार ब्रह्माजीने यह विचार किया कि इस पृथ्वीपर सभी देवताओंके तीर्थ हैं, केवल मेरा ही तीर्थ नहीं है। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने नामसे एक तीर्थ स्थापित करनेका निश्चय किया और इसी उद्देश्यसे एक रत्नमयी शिला पृथ्वी-पर गिरायी। वह शिला चमत्कारपुरके समीप गिरी; अतः ब्रह्माजीने उसी क्षेत्रमें अपना तीर्थ स्थापित किया। एकार्णवमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल निकला, जिससे ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ, वह स्थान भी वही माना गया है। वही पुष्कर तीर्थके नामसे विख्यात हुआ। पुराणोंमें उसकी बड़ी महिमा गायी गयी है। तीर्थ स्थापित होनेके बाद ब्रह्माजीने वहाँ पवित्र जलसे पूर्ण एक सरोवर बनानेका विचार किया। इसके लिये उन्होंने सरस्वती नदीका स्मरण किया। सरस्वती देवी नदीरूपमें परिणत होकर भी पापीजनोंके स्पर्शके भयसे छिपी-छिपी पातालमें बहती थीं। ब्रह्माजीके स्मरण करनेपर वे भूतल और पूर्वोक्त शिलाको भी भेदकर वहाँ प्रकट हुईं। उन्हें देखकर ब्रह्माजीने कहा—'तुम सदा यहाँ मेरे समीप ही रहो; मैं प्रतिदिन तुम्हारे जलमें तर्पण करूँगा।'

ब्रह्माजीका यह आदेश सुनकर सरस्वतीको बड़ा भय हुआ। वे हाथ जोड़कर बोलीं—'भगवन्! मैं जन-सम्पर्कके भयसे पातालमें रहती हूँ। कभी प्रकट नहीं होती; किंतु आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना भी मेरी शक्तिके बाहर है; अतः आप इस विषयपर भलीभाँति सोच-विचारकर जो उचित हो, वैसी व्यवस्था कीजिये।' तब ब्रह्माजीने सरस्वतीके निवासके लिये वहाँ एक विशाल सरोवर खोदवाया। सरस्वतीने उसी सरोवरमें आश्रय लिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने बड़े-बड़े भयानक सर्पोंको बुलाकर कहा—'तुमलोग सावधानीके साथ सब ओरसे इस सरोवरकी रक्षा करते रहना; जिससे कोई भी सरस्वतीके शरीरका स्पर्श न कर सके।'

एक बार भगवान् विष्णुने सरस्वतीको यह आदेश दिया कि 'तुम बडवानलको अपने प्रवाहमें ले जाकर समुद्रमें छोड़

दो।' सरस्वतीने इसके लिये ब्रह्माजीकी भी अनुमति चाही। लोकहितका विचार करके ब्रह्माजीने भी उन्हें उस कार्यके लिये सम्मति दे दी। तब सरस्वतीने कहा—'भगवन्! यदि मैं भूतलपर नदीरूपमें प्रकट होती हूँ, तो पापीजनोंके सम्पर्कका भय है और यदि पातालमार्गसे इस अग्निको ले जाती हूँ तो स्वयं अपने शरीरके जलनेका डर है।' ब्रह्माजीने कहा, 'तुम्हें जैसे सुगमता हो, उसी प्रकार कर लो। यदि पापियोंके सम्पर्कसे बचना चाहो, तो पातालके ही मार्गसे जाओ; भूतलपर प्रकट न होना; साथ ही जहाँ तुम्हें बडवानलका ताप असह्य हो जाय, वहाँ पृथ्वीपर नदीरूपमें प्रकट भी हो जाना। इससे तुम्हारे शरीरपर उसके तापका प्रभाव नहीं पड़ेगा।'

ब्रह्माजीका यह उत्तर पाकर सरस्वती अपनी सखियों—गायत्री, सावित्री और यमुना आदिसे मिलकर हिमालयपर्वतपर चली गयीं और वहाँसे नदीरूप होकर धरतीपर प्रवाहित हुईं। उनकी जलराशिमें कच्छप और ग्राह आदि जल-जन्तु भी प्रकट हो गये। बडवानलको लेकर वे सागरकी ओर प्रस्थित हुईं। जाते समय वे धरतीको भेदकर पातालमार्गसे ही यात्रा करने लगीं। जब अग्निके तापसे सन्तप्त और श्रान्त हो जातीं तो कहीं-कहीं भूतलपर प्रकट भी हो जाया करती थीं। इस प्रकार जाते-जाते वे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचीं। वहाँ चार तपस्वी मुनि कठोर तपस्यामें लगे थे। इन्होंने पृथक्-पृथक् अपने-अपने आश्रमके पास सरस्वतीको बुलाया। इसी समय समुद्रने भी प्रकट होकर सरस्वतीका आवाहन किया। सरस्वतीको समुद्रतक तो जाना ही था, ऋषियोंकी अवहेलना करनेसे भी शापका भय था; अतः उन्होंने अपनी पाँच धाराएँ कर लीं। एकसे तो वे सीधे समुद्रकी ओर चलीं और चारसे पूर्वोक्त चारों ऋषियोको स्नानकी सुविधा देती गयीं। इस प्रकार वे 'पञ्चस्रोता' सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं और मार्गके अन्य विघ्नोंको दूर करती हुई अन्तमें समुद्रसे जा मिलीं।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीने सरस्वतीसे कहा—'तुम किसी योग्य पुरुषके मुखमें कवित्वशक्ति होकर निवास करो।' ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर सरस्वती योग्य पात्रकी खोजमें बाहर निकलीं। उन्होंने ऊपरके सत्यादि लोकोंमें भ्रमण करके देवताओंमें पता लगाया तथा नीचेके सातों पातालोंमें घूमकर वहाँके निवासियोंमें खोज की; किंतु कहीं भी उनको सुयोग्य पात्र नहीं मिला। इसी अनुसन्धानमें पूरा एक सत्ययुग बीत गया। तदनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमें सरस्वती देवी भारतवर्षमें भ्रमण करने लगीं। घूमते-घूमते वे तमसा नदीके तीरपर पहुँचीं। वहाँ महातपस्वी महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्योंके साथ रहते थे। वाल्मीकि उस समय अपने आश्रमके इधर-उधर घूम रहे थे। इतनेमें ही उनकी दृष्टि एक क्रौञ्च पक्षीपर पडी; जो तत्काल ही एक व्याधके बाणसे घायल हो पंख फड़फड़ाता हुआ गिरा था। पक्षीका सारा शरीर लोहूलुहान हो गया था। वह पीडासे तड़प रहा था और उसकी पत्नी क्रौञ्ची उसके पास ही गिरकर बड़े आर्तस्वरमें चें-चें कर रही थी। पक्षीके उस जोड़ेकी यह दयनीय दशा देखकर दयालु महर्षि अपनी सहज करुणासे द्रवीभूत हो उठे। उनके मुखसे तुरंत ही चार चरणोंका एक श्लोक निकल पड़ा; जो इस प्रकार है—

> मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
> यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

यह श्लोक सरस्वतीकी ही कृपाका प्रसाद था। उन्होंने महर्षिको देखते ही उनकी असाधारण योग्यता और प्रतिभाका परिचय पा लिया था; अतः उन्हींके मुखमें उन्होंने सर्वप्रथम प्रवेश किया। कवित्वशक्तिमयी सरस्वतीकी प्रेरणासे ही उनके मुखकी वह वाणी, जो उन्होंने क्रौञ्चीकी सान्त्वनाके लिये कही थी, छन्दोमयी बन गयी। उनके हृदयका शोक ही श्लोक बनकर निकला था। सरस्वतीके कृपापात्र होकर महर्षि वाल्मीकि ही 'आदि कवि'के नामसे संसारमें विख्यात हुए।

इस तरह सरस्वतीदेवी अनेक प्रकारसे जगत्का कल्याण करती हैं। बुद्धि, ज्ञान और विद्यारूपसे सारा जगत् इनकी कृपाका अनुभव करता है। ये मूलतः भगवान् नारायणकी पत्नी हैं तथा अंशतः नदी और ब्राह्मीरूपमें रहती हैं। ये ही गौरीके शरीरसे प्रकट होकर 'कौशिकी' नामसे भी प्रसिद्ध हुईं और शुम्भ-निशुम्भ आदिका वध करके इन्होंने संसारमें सुख-शान्तिकी स्थापना की। तन्त्र और पुराण आदिमें इनकी महिमाका विस्तृत वर्णन है। यहाँ संक्षेपसे ही इनके जीवनका परिचय दिया गया है। —रा० श्री०

ब्रह्मशक्ति भगवती सावित्री

यद् गयांस्तत्रे तस्माद् गायत्री नाम
स यामेवामूः सावित्रीमन्वाहैषैव सा ।*

सावित्री ब्रह्माजीकी पत्नी हैं। ये आद्याशक्ति परा प्रकृतिके पाँच स्वरूपोंमेंसे एक मानी गयी हैं।† इनका विग्रह तपाये हुए स्वर्णके समान है। ये मध्याह्नकालके सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्विनी मानी गयी हैं। ये सुखदायिनी और मोक्षदायिनी भी हैं। सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ इन्हींकी स्वरूपभूता हैं। इन्हें ही वेदमाता गायत्री कहते हैं। पुराणोंमें इनकी उत्पत्ति विभिन्न प्रकारसे बतलायी गयी है। वास्तवमें ये नित्यसिद्ध परमेश्वरी हैं। इनके जन्म-कर्म लीलामात्र हैं। किसी समय ये सविता (सूर्य) की पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं; इसलिये इनका नाम सावित्री पड़ गया। कहते हैं, सविताके मुखसे इनका प्रादुर्भाव हुआ था। भगवान् सूर्यने इनका विवाह ब्रह्माजीके साथ कर दिया। तभीसे इनकी ब्रह्माणी संज्ञा हुई। कहीं कहीं सावित्री और गायत्रीके पृथक्-पृथक् स्वरूपोंका वर्णन मिलता है। ब्रह्माजीके विख्यात तीर्थ पुष्करमें जब ब्रह्माजीके द्वारा महान् यज्ञका आयोजन किया गया था, उसमें ब्रह्माजीके साथ यज्ञमें बैठनेके लिये उनकी ज्येष्ठ पत्नी सावित्रीको बुलाया गया। सावित्रीके आनेमें कुछ विलम्ब हुआ; अतएव उनकी छोटी पत्नी गायत्रीको ही ब्रह्माजीके साथ बिठाकर ठीक समयपर यज्ञ आरम्भ कर दिया। सावित्रीने इसे अपने अधिकारका अपहरण समझा और वे रूठकर एक पर्वत-शिखरपर जा बैठीं; फिर सब देवताओंने उन्हें स्तुतिके द्वारा प्रसन्न किया। आज भी पुष्करमें गायत्री और सावित्रीके पृथक् स्वरूपोंकी झाँकी होती है। दो रूपोंमें होनेपर भी वे हैं एक ही ब्रह्माजीकी शक्ति। अतः उन्हें वास्तवमें अभिन्न ही मानना चाहिये। उपनिषदोंमें इनकी अभिन्नताका स्पष्ट रूपसे वर्णन है—गायत्रीमेव सावित्रीमनुब्रूयात्।

सावित्री ज्ञान-विज्ञानकी मूर्ति हैं। कहीं-कहीं व्याहृतियोंको इनकी कन्या और सनकादिको इनका पुत्र बतलाया गया है। ये द्विजातिमात्रकी आराध्य देवी हैं। इन्हें परब्रह्मस्वरूपिणी माना गया है। वेदों, उपनिषदों और पुराण आदि ग्रन्थोंमें इनकी महिमाका विस्तृत वर्णन मिलता है। सावित्री पहले गोलोक-धाममें श्रीराधिकाजीके साथ रहा करती थीं। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें ब्रह्माजीके हाथमें सौंपा। उस समय वे गोलोक-धाम छोड़कर ब्रह्मलोक जानेको तैयार न हुईं, तब श्रीकृष्णकी आज्ञासे ब्रह्माजीने वेदमाता सावित्रीका भक्तिपूर्वक स्तवन किया। इससे सन्तुष्ट होकर सावित्रीने ब्रह्माजीको अपना प्रेम समर्पित किया और उनके साथ जाकर ब्रह्मलोकमें रहने लगीं। वहाँ इन्होंने मन, वाणी तथा शरीरसे ब्रह्माजीकी सेवा की। अपने अविचल सतीत्वके प्रभावसे ही ये तीनों लोकोंकी वन्दनीया हुईं। भद्रदेशके राजा अश्वपतिने कठोर तपस्याद्वारा इन्हींको सन्तुष्ट किया था। सावित्रीकी ही कृपासे उन्हें सावित्री-जैसी पुत्री प्राप्त हुई, जो अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे तीनों लोकोंमें विख्यात है।

सावित्रीकी उपासना तीनों कालमें की जाती है, प्रातः, मध्याह्न और सायं। तीनों कालोंके लिये इनका पृथक्-पृथक् ध्यान है। प्रातःकाल ये सूर्यमण्डलके मध्य विराजमान होती हैं। उस समय इनके शरीरका रंग लाल होता है, ये अपनी दो बाँहोंमें अक्षसूत्र और कमण्डलु धारण किये होती हैं। इनकी सवारीमें हंस मौजूद रहता है। इनकी अवस्था कुमारी होती है। इनका यही स्वरूप ब्रह्मशक्ति गायत्रीके नामसे प्रसिद्ध है। इसका वर्णन ऋग्वेदमें मिलता है। मध्याह्नकालमें इनकी अवस्था युवतीकी-सी रहती है।

---

* इन्होंने गयों (प्राणों) का त्राण किया था, इसीसे इनका नाम गायत्री हुआ। आचार्यने आठ वर्षके बटुके प्रति उपनयनके समय जिस सावित्रीका उपदेश किया था, वह यही है।

† गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता॥
(देवीभागवत ९।४।४)

पञ्च-अवतार-जननी

वामन-जननी अदिति जय, कोसलसुता सनाथ। जिनकी गोद प्रमोद चढ़ि खेले श्रीरघुनाथ॥
जयति देवकी, रोहिणी श्रीयशुदा अभिराम। लीलामय प्रगटे जहाँ रामसहित घनश्याम॥

इनकी चार भुजाएँ और तीन नेत्र होते हैं। चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पाते हैं। उस समय इनकी सवारीमें गरुड़ रहता है। ये विष्णुको देवता माननेवाली वैष्णवी शक्तिके रूपमें प्रकट होती हैं। इसी स्वरूपका नाम सावित्री है। इसका वर्णन यजुर्वेदमें मिलता है। सायंकालमें गायत्रीकी अवस्था वृद्धा मानी गयी है। वे वृषभपर बैठी हुई रुद्रशक्तिके रूपमें उपस्थित होती हैं। शरीरका वर्ण शुक्ल होता है। अपनी चार भुजाओंमें वे त्रिशूल, डमरू, पाश और पात्र धारण किये होती हैं। इस स्वरूपका नाम सरस्वती है और इसका वर्णन सामवेदमें मिलता है।

इस प्रकार गायत्री, सावित्री और सरस्वती एक ही ब्रह्मशक्तिके नाम हैं। प्रणव, वेद, व्याहृति, वेदाङ्ग, शास्त्र, पुराण और इतिहास आदि समस्त वाङ्मय इन्हींका स्वरूप है। ये ही सबकी अधिष्ठातृ देवी हैं। इन्हींको ब्राह्मी, भारती एवं वाणी कहते हैं। बुद्धिकी अधिष्ठातृ देवी ये ही हैं। इन्हींकी शक्तिसे ब्रह्माजी सृष्टिका कार्य-सञ्चालन करते हैं। स्वरूपतः एक होते हुए भी सावित्री और सरस्वतीके रूप पृथक्-पृथक् हैं। दोनों ही रूपोंमें दर्शन देकर ये भक्तजनोंपर अनुग्रह किया करती हैं। अवधनरेश ध्रुवसन्धिका पुत्र सुदर्शन अपने सौतेले भाईके षड्यन्त्रसे अनाथकी भाँति मातासहित निकाल दिया गया था। उस समय उसकी मा वनमें एक महर्षिके आश्रमपर रहती थी। सुदर्शनका लालन-पालन वहीं हुआ। एक दिन किसी बालकने खेल-कूदके समय सुदर्शनको 'क्लीब' कह दिया। सुदर्शन इसका अर्थ नहीं जानता था; किंतु उस शब्दका बारंबार उच्चारण करने लगा। संयोगवश क्लीवकी जगह 'क्लीम्' का जप करने लगा। यह सरस्वतीका बीजमन्त्र है। यद्यपि सुदर्शनने जान-बूझकर देवीकी उपासना नहीं की थी तो भी दयामयी सरस्वतीने उस बालकपर कृपा की। उसे अद्भुत बल, बुद्धि और विद्यासे सम्पन्न कर दिया। काशिराजकी पुत्री राजकुमारी शशिकलासे उसका विवाह हो गया। देवीने स्वयं प्रकट होकर सुदर्शनके शत्रुओंका दमन किया और उसे पुनः अयोध्याके राजसिंहासनपर बिठा दिया। जिस समय देवी महासरस्वती रक्तबीज आदि दानवोंसे युद्ध कर रही थीं, उस समय ब्रह्मशक्ति सावित्री देवी भी हंसपर सवार हो कमण्डलु लिये हुए वहाँ पहुँची थीं। उस युद्धमें अपने मन्त्रपूत कमण्डलुके जलसे उन्होंने बहुत से दैत्योंका संहार किया था—'ब्रह्माणी मन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः।'

'सरस्वती के विषयमें विशेष बातें अलग दी जा रही हैं। रा० शा०

देवमाता अदिति

देवी अदिति दक्ष प्रजापतिकी कन्या और महर्षि कश्यपकी धर्मपत्नी हैं। ये शरीर, मन, वाणी और क्रियाद्वारा पतिकी सेवामें संलग्न रहती हैं। पतिकी आज्ञासे ही नाना प्रकारके उत्तम एवं कठोर नियमों तथा व्रतोंका पालन करती हुई धर्मानुष्ठानमें लगी रहती हैं। भगवान्‌में उनकी बड़ी भक्ति है। इन्हींके गर्भसे इन्द्र आदि देवताओंकी उत्पत्ति हुई है। अदितिके पुत्र होनेसे ही देवता आदितेय कहलाते हैं। देवमाता अदिति अजर और अमर हैं। इनके पुत्र इन्द्र तीनों लोकोंके अधिपति हैं तो भी ये वैभव भोगको अत्यन्त तुच्छ और बन्धनकारक मानकर उससे दूर ही रहती हैं। धर्म और तपोमय जीवन ही इन्हें अधिक प्रिय है। अपने आश्रममें ही रहकर धर्म और भगवान्‌की आराधनापूर्वक ये पति और पुत्रोंकी मङ्गलकामना किया करती हैं। अदितिका स्वभाव परम सात्त्विक है। इसीलिये इनके पुत्र देवगण भी सात्त्विक स्वभावके ही हैं। सत्त्वप्रधान होनेके कारण ही देवताओंका संसारमें पूजन होता है और उन्हें यज्ञका भाग समर्पित किया जाता है। अदितिकी दूसरी बहन दिति हैं, उन्हींके पुत्र दैत्यगण हैं। उनमेंसे अधिकांश तमोगुणी और रजोगुणी प्रकृतिके हैं; अतः सात्त्विक देवताओंका सहज उत्कर्ष देखकर उनके मनमें जलन होती है। वे देवताओंके अधिकारको बलपूर्वक छीनकर उसका उपभोग करना चाहते हैं।

एक बार दैत्योंने भारी उद्योग करके देवताओंको परास्त कर दिया। देवता स्वर्ग छोड़कर भाग गये और इधर-उधर जंगलों तथा पर्वतकी कन्दराओंमें छिपकर समय बिताने लगे। माता अदितिने देखा, दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंको अपने स्थानसे हटा दिया है और सारी त्रिलोकी नष्टप्राय कर दी है। तब उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् प्रयत्न किया। वे नियमित आहार करके कठोर नियमोंका पालन करने लगीं। उन्होंने एकाग्रचित्त होकर आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् भास्करका स्तवन किया। इस प्रकार बहुत दिनोंतक आराधना करनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको अपने तेजोमय स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराया और अदितिकी प्रार्थनाके अनुसार देवशत्रुओंका नाश करनेके लिये स्वयं उत्पन्न होना स्वीकार करते हुए कहा—'देवि! मैं

अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रके शत्रुओंका नाश करूँगा।'

यों कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं। तत्पश्चात् वर्षके अन्तमें देवमाता अदितिकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् सविताने उनके गर्भमें निवास किया। उस समय देवी अदिति यह सोचकर कि मैं पवित्रतापूर्वक ही इस दिव्य गर्भको धारण करूँगी, एकाग्रचित्त होकर कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं। उनका यह कठोर नियम देखकर कश्यपजीने कुपित होकर कहा—'तू नित्य उपवास करके गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती है।' तब वे भी रुष्ट होकर बोलीं—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा। मैंने इसे नहीं मारा है, यही अपने शत्रुओंको मारनेवाला होगा।' यों कहकर देवमाताने उसी समय उस गर्भका प्रसव किया। वह उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी अण्डाकार गर्भ सहसा प्रकाशित हो उठा। उसे देखकर कश्यपजीने वैदिक वाणीद्वारा आदरपूर्वक उसका स्तवन किया। स्तुति करनेपर उस गर्भसे बालक प्रकट हो गया। उसके श्रीअङ्गोंकी शोभा पद्मपत्रके समान श्याम थी। उसका तेज सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया। उसी समय अन्तरिक्षसे कश्यप मुनिको सम्बोधित करके सजल मेघके समान गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—'मुने! तुमने अदितिसे कहा था—"त्वया मारितम् अण्डम्" (तूने गर्भके बच्चेको मार डाला), इसलिये तुम्हारा यह पुत्र मार्तण्डके नामसे विख्यात होगा और यज्ञभागका अपहरण करनेवाले अपने शत्रुभूत असुरोंका संहार करेगा।' यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव हतोत्साह हो गये। तत्पश्चात् देवताओंसहित इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। दानवोंने भी आकर उनका सामना किया। उस समय देवताओं और असुरोंमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें भगवान् मार्तण्डने दैत्योंकी ओर देखा; अतः वे सभी महान् असुर उनके तेजसे जलकर भस्म हो गये; फिर तो देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही। उन्होंने अदिति और मार्तण्डका स्तवन किया। तदनन्तर देवताओंको पूर्ववत् अपने-अपने अधिकार और यज्ञभाग प्राप्त हो गये।

(२)

एक बार दैत्योंने फिर देवताओंका सर्वस्व छीन लिया। उस समय महर्षि कश्यप समाधिमें थे। 'भद्रे! आश्रमके आश्रित ब्राह्मण, हमारी गौएँ तथा सेवक सकुशल तो हैं? तुमने कभी किसी अतिथिको बिना यथाशक्ति सत्कार किये चले तो नहीं जाने दिया? कहीं कभी प्रमादवश प्राजापत्य अग्नि बुझ तो नहीं गयी थी? किसी ब्राह्मणका तुम्हारे द्वारा अनादर तो नहीं हुआ? तुम्हारे सब पुत्र कुशलसे तो हैं? तुम्हारा मुख श्रीहीन क्यों है?' समाधिसे उत्थित होनेपर महर्षि कश्यपने अपनी पत्नी अदितिको उदास देखकर पूछा।

'अग्नि, अतिथि, ब्राह्मण और गौएँ सब सकुशल हैं। आप-जैसे धर्मात्मा स्वामीके गृहमें धर्मका कभी अनादर नहीं हो सकता। जो भी किसी आशासे आये, उन सबका यथोचित सत्कार हुआ है। मेरी खिन्नताका कारण है—दितिके पुत्रोंने मेरे पुत्रोंको स्वर्गसे निकाल दिया है। भयके मारे वे कहीं भी टिक नहीं पाते। बेचारे मन्दरकी गुफाओंमें मारे-मारे फिरते हैं। सब-के-सब क्षीणकाय हो गये हैं। मैं जानती हूँ कि असुर और सुर दोनों आपके पुत्र हैं। दोनोंपर आपका स्नेह है; किंतु असुरोंने अपने स्थानके अतिरिक्त मेरे पुत्रोंका स्थान भी छीन लिया है। मैं आपकी दासी हूँ। आपकी शरण हूँ। कोई भी ऐसा मार्ग बताइये, जिससे मेरे पुत्र इस विपत्तिसे परित्राण पावें।' देवमाताने रोते हुए पतिके चरणोंपर सिर रक्खा।

'कैसी विचित्र भगवान्‌की माया है। कौन किसका पुत्र,

कौन किसकी माता। मोहके वश हो भौतिक शरीरमें अहंबुद्धि करके सभी क्लेश पा रहे हैं।' महर्षि कश्यप गम्भीर हो गये। 'अच्छा, तुम भगवान्‌की आराधना करो। वे दयामय तुम्हारा कल्याण करेंगे।' अदितिको आदेश मिला।

'मेरे भगवान् तो आप ही हैं। मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगी। आप आराधना-विधिका मुझे उपदेश करें।' देवमाताने बड़ी नम्रतासे प्रार्थना की।

'भगवान् ब्रह्माने मुझे यह व्रत बताया था। तुम ध्यान देकर सुनो और उसका अनुष्ठान करो।' महर्षिने उपदेश प्रारम्भ किया—'फाल्गुनकी अमावस्याको वाराहकी खोदी मृत्तिका शरीरमें लगाकर समन्त्र स्नान करे। मूर्तिमें, वेदीपर, भगवान् सूर्यमें, जलमें, अग्निमें तथा हृदयमें भगवान्‌की पूजा करे। मन्त्रके द्वारा मरकतश्याम भगवान् नारायणकी स्तुति करके उनका आवाहन करे। षोडशोपचारसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। घृत एवं गुड मिली हुई चावलकी खीरसे अग्निमें द्वादश आहुति दे। भगवान्‌के जो भक्त उपस्थित हो, उनको उसी खीरका प्रसाद दे तथा अन्तमें भगवान्‌को ताम्बूल प्रदान करे, अष्टोत्तरशत गोपाल-मन्त्रका जप करके भगवान्‌की स्तुति करे और तब भक्तोंकी आज्ञा लेकर वही खीर भोजन करे। कम-से-कम दो ब्राह्मणोंको अवश्य भोजन करावे। यदि उद्वासन करना हो तो करके ब्रह्मचर्यपूर्वक रात्रिको भूमि-शयन करे। प्रातःस्नानादि करके विधिपूर्वक भगवान्‌को दुग्धस्नान कराके पूजन करे। पूर्ववत् ब्राह्मण-भोजन तथा हवन करे; किंतु स्वयं भगवान्‌को स्नान कराया हुआ दूध ही पीकर रहे। फाल्गुनशुक्ल त्रयोदशीतक भूमि-शयन, ब्रह्मचर्य तथा तीनों समय स्नान-सन्ध्याके नियमोंका पालन करे। किसी असत् पुरुषसे बात न करे। कोई भी छोटा या बड़ा भोग पदार्थ सेवन न करे। नित्य भगवान्‌का ध्यान करे। त्रयोदशीको शास्त्रानुसार भगवान्‌को पचामृतसे स्नान कराके, वित्तशाठ्य छोड़कर विधिज्ञाता ब्राह्मणोंद्वारा भगवान्‌की उत्साहपूर्वक महापूजा करे। दूधकी चरु बनाकर उससे हवन करे। विविध प्रकारके नैवेद्य भगवान्‌को समर्पित करे। आचार्यकी पूजा करे और सम्मान तथा दक्षिणासे ऋत्विजोंको सन्तुष्ट करे। सभी जातिके लोगों, सेवकों, चाण्डालों तथा कुत्तोंको भोजन दे। सबके भोजन कर लेनेपर कुटुम्बियोंके साथ स्वयं भोजन करे। व्रतके दिनोंमें भगवान्‌की कथा, संकीर्तन, वाद्यके साथ गुणगान कराता रहे।' इस पयोव्रतका उपदेश महर्षि कश्यपने दिया। श्रीमद्भागवतके अष्टमस्कन्धके सोलहवें अध्यायमें सम्पूर्ण व्रत, स्तुति तथा मन्त्र हैं।

पतिको अभिवादन करके अदितिने व्रतका आरम्भ किया। व्रतकी समाप्तिपर पीताम्बरधारी चतुर्भुज, घनश्याम, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी प्रभु उसके सम्मुख प्रकट हुए। अदितिके नेत्र सफल हुए। प्रेमसे भरे कण्ठको सम्हालकर, आनन्दाश्रुओंको पोंछकर देवमाताने जगदाराध्यकी स्तुति की—'हे यज्ञेश! यज्ञस्वरूप! पवित्रकीर्ति! आपका नाम कानोंमें जाते ही जीवका कल्याण कर देता है। मैं आपकी शरण हूँ, कष्टमें पड़ी हूँ, मुझे शान्ति दें। विश्वस्वरूप, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण, स्वेच्छाशरीरधारी, अपने शाश्वत ज्ञानसे अज्ञानान्धकारको दूर कर देनेवाले श्रीहरि, आपको नमस्कार! परमायु, तीनों लोकोंका ऐश्वर्य, योगकी सभी सिद्धियाँ, अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष—ये सब आपकी कृपासे ही प्राप्त हो जाते हैं; फिर सपत्नीके पुत्रोंपर मेरे पुत्रोंकी विजय तो कितनी बड़ी बात है।'

'देवमाता! मैं आपकी इच्छाको जानता हूँ। आप अपने पुत्रोंकी विजय तथा असुरोंका पराभव चाहती हैं। देवि! इस समय असुर अजेय हैं। जिनपर ईश्वर प्रसन्न हों या जो ब्राह्मणोंसे रक्षित हो, उनके विरुद्ध पराक्रम सुखदायी नहीं होता। आपने मेरी पूजा की है। मेरी आराधना निष्फल नहीं जाती। मैं किसी भी प्रकार आपकी इच्छा पूर्ण करूँगा! मैं आपका पुत्र बनूँगा और आपके पुत्रोंकी रक्षा करूँगा!' अदितिकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उसे आश्वासन दिया और अन्तर्हित हो गये।

भगवान्‌ने प्रजापति कश्यपको पिता बनाकर अदितिके गर्भसे अवतार धारण किया। अदितिने देखा कि उनके पुत्र-रूपसे दूर्वादलश्याम, वनमाली, चतुर्भुज, अपने शङ्ख-चक्रादि उपकरणोंको धारण किये, दिव्याभरणभूषित साक्षात् नारायण प्रकट हुए हैं। उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। प्रजापति कश्यपने उन्हें प्रणाम किया। देखते-देखते ही भगवान्‌का वह शरीर एक वामन ब्राह्मणबालकके रूपमें परिवर्तित हो गया। महर्षि कश्यपने दूसरे ऋषियोंके साथ उन वामन प्रभुका उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया।

पैरमें खड़ाऊँ, हाथोंमें पलाशदण्ड, ताड़पत्रका छत्र तथा जलपूर्ण कमण्डलु लिये साक्षात् प्रज्वलित अग्निके समान वे वामन भगवान् ब्रह्मचारीके वेषमें दैत्यराज बलिके यज्ञमण्डपमें पधारे। बलिने उनका स्वागत किया। उनसे अनुरोध किया

कि कुछ याचना करके वे कृतार्थ करें। उन महामायावीने तीन पद भूमि माँगी। आचार्य शुक्रके निषेध करनेपर भी बलिने भूमि-दानका संकल्प कर दिया।

'अब तीसरा पैर कहाँ रक्खूँ?' देखते-देखते वह वामन-रूप विराट् हो गया। समस्त पृथ्वी एक पदमें तथा द्युलोक दूसरे पदमें माप लिया गया। सम्पूर्ण आकाश उस महामूर्तिसे आच्छादित हो गया।

'इस सेवकके मस्तकपर! दान-सामग्रीसे दाता बड़ा होता है प्रभु!' मनस्वी बलिने मस्तक आगे कर दिया। प्रभुने उसपर श्रीचरण रक्खा। बलि भगवान्‌के आदेशसे सपरिवार सुतल गये। भगवान् उनके द्वारपर सदा गदापाणि खड़े रहते हैं। आगामी कल्पमें बलि इन्द्र होंगे। ब्रह्माके अनुरोधसे भगवान् वामनने उपेन्द्र पद स्वीकार किया। वे देवमाताको उनके पुत्रोंकी रक्षाका वरदान दे चुके थे, अतः इस रूपसे स्वर्गमें उनका निवास हुआ। —रा० शा०, सु० सिं०

देवसम्राज्ञी शची

शची देवराज इन्द्रकी पत्नी हैं। ये भी भगवती आद्याशक्तिकी एक कला मानी गयी हैं। ये स्वयंवरकी अधिष्ठात्री देवी हैं। प्राचीन कालमें जब कहीं स्वयंवर होता था तो पहले शचीका आवाहन और विधिवत् पूजन कर लिया जाता था, जिससे स्वयंवर-सभामें कोई विघ्न या बाधा पड़नेकी सम्भावना अथवा उत्पात, कलह और मार-काटकी आशङ्का नहीं रहती थी। ऋग्वेदमें कई ऐसे सूक्त मिलते हैं, जो शचीद्वारा प्रकाशमें लाये गये बतलाये जाते हैं। वे सपत्नियोंपर प्रभुत्व स्थापित करनेके लिये अनुष्ठानोपयोगी मन्त्र हैं। शचीदेवी पतिव्रता स्त्रियोंमें श्रेष्ठ मानी गयी हैं। वे भोग-विलासमय स्वर्गकी रानी होकर भी सतीत्वकी साधनामें संलग्न रहती हैं। उनके मनपर पतिके विलासी जीवनका विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपनी ओर देखती हैं और अपनेको सती-साध्वी देवियोंके पुण्य-पथपर अग्रसर करती रहती हैं। उनके सर्वस्व देवराज इन्द्र ही हैं। इन्द्रके सिवा दूसरे किसी पुरुषको, भले ही वह इन्द्रसे भी ऊँचे पदपर क्यों न प्रतिष्ठित हो, अपने लिये कभी आदर नहीं देतीं।

रत्न किसी अयोग्य स्थानमें पड़ा हो तो भी रत्न ही है। इससे उसके महत्त्वमें कमी नहीं आती। शचीदेवीका जन्म दानवकुलमें हुआ था तथापि वे अपने त्याग, तपस्या और संयम आदि सद्गुणोंसे देवताओंकी भी वन्दनीया हो गयीं। शचीके पिताका नाम था पुलोमा। वह दानव-कुलमें सम्मानित वीर था। उसीके नामपर शचीको पौलोमी और पुलोमजा भी कहते हैं। बाल्यकालमें शचीने भगवान् शङ्करको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी भारी तपस्या की थी और उन्हींके वरदानसे वे देवराजकी प्रियतमा पत्नी तथा स्वर्गलोककी रानी हुईं। शचीका जीवन बड़े सुखसे बीतने लगा। इसी प्रकार कई युग बीत गये। देहधारी प्राणी स्वर्गके देवता हों, या मर्त्यलोकके मनुष्य, उनके जीवनमें कभी-कभी दुःखका अवसर अवश्य आता है। यह दुःख प्राणियोंके लिये एक चेतावनी होती है। सुखका जीवन प्रमादी हो जाता है। दुःखमें ही प्राणी सजग होते हैं। अपनी भूलों और त्रुटियोंको सुधारनेका अवसर मिलता है। सबसे बड़ी बात यह है, दुःखमें ही भगवान् याद आते हैं और दुःखमें ही धर्मका महत्त्व समझमें आता है। शचीके जीवनमें भी एक समय ऐसा आया, जब कि उन्हें सतीत्वकी अग्निपरीक्षा देनी पड़ी और गर्वके साथ कहना पड़ता है कि शचीने अपने गौरवके अनुरूप ही कार्य करके धैर्य और साहसपूर्वक प्राणोंसे भी अधिक प्रिय सतीत्वकी रक्षा की।

देवराज इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र भगवद्भक्त वृत्रासुरका वध कर दिया। इस अन्यायके कारण इन्द्रकी सर्वत्र निन्दा हुई। उनपर भयानक ब्रह्महत्याका आक्रमण हुआ। उससे बचनेके लिये वे मानसरोवरके जलमें जाकर छिप गये। स्वर्गको इन्द्रसे शून्य देखकर देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई। तीनों लोकोंमें अराजकता फैल गयी। अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे। वर्षा बंद हो गयी। नदियाँ सूख गयीं। पृथ्वी धन, वैभवसे रहित हो गयी। इन सब बातोंका विचार करके देवताओंने भूतलसे राजा नहुषको बुलाया और उन्हें इन्द्रके पदपर स्थापित कर दिया। नहुष धर्मात्मा तो थे ही, सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके इन्द्रपदके अधिकारी भी हो गये थे। किंतु धर्मात्मा होनेपर भी नहुष इन्द्रपद पानेके बाद अपनेको राजमदसे मुक्त न रख सके। वे विषयभोगोंमें आसक्त हो गये। उन्होंने शचीके रूप और लावण्य आदि गुणोंकी चर्चा सुनी तो उनकी प्राप्तिके लिये भी वे चिन्तित हो उठे। शचीको जब इसका पता लगा तो वह गुरु बृहस्पतिजीकी शरणमें गयीं। बृहस्पतिने उसको आश्वासन देते हुए कहा—'बेटी! विश्वास रक्खो, मैं सनातनधर्मका त्याग करके तुम्हें नहुषके हाथमें कभी नहीं पड़ने दूँगा। जो शरणमें आये हुए

आर्तजनोंकी रक्षा नहीं करता, वह एक कल्पतक नरकमें पड़ा रहता है। तुम चिन्ता न करो। किसी भी अवस्थामें मैं तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा।'

नहुषने सुना, इन्द्राणी बृहस्पतिकी शरणमें गयी है। बृहस्पतिने उसे अपने घरमें छिपा रक्खा है। तब उसे बड़ा क्रोध हुआ। उसने देवताओंसे कहा, 'यदि बृहस्पति मेरे प्रतिकूल आचरण करेगा तो मैं उसे मार डालूँगा।' देवताओंने नहुषको शान्त करते हुए कहा, 'प्रभो! आप अपने क्रोधको रोकिये। धर्मशास्त्रोंमें परस्त्रीगमनकी निन्दा की गयी है। इन्द्रकी पत्नी शची सदासे ही साध्वी जीवन बिताती आ रही हैं। आप इस समय तीनों लोकोंके स्वामी और धर्मके उपदेशक हैं, यदि आप-जैसे महापुरुष भी अधर्मका आचरण करें तो निश्चय ही प्रजाका नाश हो जायगा। स्वामीको सदा ही साधु पुरुषोंके आचरणका पालन करना चाहिये। आप पुण्यके ही बलसे इन्द्रपदको प्राप्त हुए हैं। पापसे सम्पत्तिकी हानि और पुण्यसे उसकी वृद्धि होती है; इसलिये आप पापबुद्धि छोड़ दीजिये।' कामान्ध नहुषपर इस उपदेशका कुछ भी असर न हुआ। तब देवता और महर्षि बहुत डर गये और यह कहकर कि 'हम इन्द्राणीको समझा-बुझाकर आपके पास ले आवेंगे' बृहस्पतिजीके घर गये।

देवताओंके मुखसे यह दुःखद समाचार सुनकर बृहस्पतिने कहा—'शची पतिव्रता है, और मेरी शरणमें आयी है।' यों कहकर बृहस्पतिने देवताओंके साथ कुछ परामर्श किया और फिर इन्द्राणीको साथ लेकर सब-के-सब नहुषके पास गये। इन्द्राणी काँपने लगीं और लजाते-लजाते बोलीं—'देवेश्वर! मैं आपसे वरदान प्राप्त करना चाहती हूँ। आप कुछ कालतक प्रतीक्षा करें। तबतक मैं इस बातका निर्णय कर लेती हूँ कि इन्द्र जीवित हैं या नहीं। मेरे मनमें इस बातका संशय बना हुआ है; अतः इसका निर्णय करके ही आपकी सेवामें उपस्थित होऊँगी। तबतकके लिये आप मुझे क्षमा करें।' इन्द्राणीके इस प्रकार कहनेपर नहुष प्रसन्न हो गया और बोला—'अच्छा, जाओ।' इस प्रकार उसके विदा करनेपर देवी शची अन्यत्र चली गयीं और सम्पूर्ण देवताओंसे बोलीं—'अब तुमलोग वास्तविक इन्द्रको यहाँ ले आनेके लिये पूर्ण उद्योग करो।' तब देवताओंने जाकर भगवान् विष्णुकी स्तुति की। भगवान्‌ने कहा—'इन्द्र अश्वमेध-यज्ञके द्वारा जगदम्बाका आराधन करें तो वे पापसे मुक्त हो सकते हैं। इन्द्राणीको भी भगवतीकी आराधनामें लग जाना चाहिये।'

यह सुनकर बृहस्पति और देवता उस स्थानपर गये, जहाँ इन्द्र छिपे थे और उनसे विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करवाया। तदनन्तर इन्द्रने अपनी ब्रह्महत्याको वृक्ष, नदी, पर्वत, स्त्री और पृथ्वीको बाँट दिया। इधर इन्द्राणीने भी बृहस्पतिजीसे भुवनेश्वरीदेवीके मन्त्रकी दीक्षा लेकर उनकी आराधना आरम्भ की। वे सम्पूर्ण भोगोंका परित्याग करके तपस्विनी बन गयीं और बड़ी भक्तिसे भगवतीकी पूजा करने लगीं।

कुछ कालके बाद देवीने सन्तुष्ट होकर इन्द्राणीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और वर माँगनेको कहा। शचीने कहा—

'माताजी! मैं पतिदेवका दर्शन चाहती हूँ तथा नहुषकी ओरसे जो भय मुझको प्राप्त हुआ है, वह भी दूर हो जाय।' देवीने कहा—'तुम्हारी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी। तुम इस दूतीके साथ मानसरोवर पर्वतपर जाओ। वहाँ तुम्हें इन्द्रका दर्शन होगा।' देवीकी आज्ञासे दूतीने शचीको तुरंत ही उनके पतिके पास पहुँचा दिया। पतिको देखते ही शचीके शरीरमें नूतन प्राण आ गये। जिनके दर्शनके लिये कितने ही वर्षोंसे आँखें तरस रही थीं, उन्हें सामने पाकर शचीके हर्षकी सीमा न रही। फिर शचीने नहुषकी पापवासना और अपने संकटका सारा वृत्तान्त पतिको सुनाया। सुनकर इन्द्रने कहा—'देवि! पतिव्रता नारी अपने धर्मसे ही सदा सुरक्षित रहती है। जो दूसरोंके बलपर अपने सतीत्वकी रक्षा करती है, वह उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता नहीं है। तुम भगवतीका स्मरण

करके उचित उपायसे आत्मरक्षा करो।' यों कहकर इन्द्रने शचीको एक युक्ति सुझायी और इन्द्रलोक भेज दिया। नहुषने शचीको देखकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'इन्द्राणी! तुम्हारा स्वागत है। तुमने अपने वचनका पालन किया है। अब तुम्हें मुझसे लज्जा नहीं करनी चाहिये। मैं तुम्हारा प्रेमी हूँ। मेरी सेवा स्वीकार करो।' शची बोली—'राजन्! मेरे मनमें एक अभिलाषा है, आप उसे पूर्ण करें। मैं चाहती हूँ, आप ऐसी सवारीपर चढ़कर मेरे पास आवें, जो अबतक किसीके उपयोगमें न आयी हो।'

नहुषने कहा—'इन्द्राणी! मैं तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण करूँगा। मेरी शक्ति किसीसे कम नहीं है। मैं ऋषियोंकी पीठपर बैठकर आऊँगा। सप्तर्षि मेरे वाहन होंगे।' यों कहकर नहुषने सप्तर्षियोंको बुलाया और उनकी पीठपर बैठकर इन्द्राणीके भवनकी ओर प्रस्थान किया। उस समय वह इतना मदान्ध हो रहा था कि महर्षि अगस्त्यको कोड़ोंसे पीटने लगा। इस प्रकार नहुषको मर्यादाका अतिक्रमण करते देख क्षमाशील महर्षिके मनमें भी क्रोधकी आग जल उठी। उन्होंने नहुषको शाप देते हुए कहा—'अरे! तू सर्पकी योनिमें चला जा।' महर्षिके शाप देते ही नहुष सर्पका रूप धारण करके स्वर्गसे नीचे जा गिरा। इस तरह शचीने अपने सतीत्वकी रक्षा करके अपने ऊपर आये हुए संकटपर विजय प्राप्त की और पतिको भी पुनः स्वर्गके सिंहासनपर प्रतिष्ठित किया। —रा० शा०

कात्यायनी

असुर रम्भने अपनी तपस्यासे आशुतोषको संतुष्ट किया। भगवान् विश्वनाथके प्रसादसे उसे एक पुत्र प्राप्त हुआ। इस शिशुका सिर भैंसेके मुखके समान था और उसपर सुदृढ़ सींग थे। रम्भने उसका नाम महिष रक्खा। असुरशिशु उत्पन्न होते ही पूरी आकृति प्राप्त कर लेते हैं। महिषासुरने पिताके उपदेशसे तपस्या प्रारम्भ की। अत्यन्त उग्र तपस्याने औढरदानीको सन्तुष्ट कर दिया। भगवान् शशाङ्कशेखरके वरदानसे महिषासुर सम्पूर्ण सुरासुरसे अवध्य हो गया।

पूरे सौ वर्ष संग्राम करके महिषासुरने सम्पूर्ण देवताओंको पराजित कर दिया। इन्द्रका वज्र, यमका दण्ड और वरुणका पाश उसने व्यर्थ बना दिया। देवता स्वर्ग छोड़कर भागे। महिषासुरने देव-राजधानीपर अधिकार किया।

देवताओंने जाकर स्रष्टासे प्रार्थना की। पितामह देवताओं-को लेकर कैलास पहुँचे। वहाँसे त्रिलोचनको लेकर सब पहुँचे क्षीरोदधिके तटपर। सबकी स्तुतिसे वे मेघश्याम गरुडध्वज प्रकट हुए। उन्होंने पितामहके मुखसे महिषासुरके अत्याचारका समाचार सुना। लीलामयके नेत्रोंमें तनिक-सी अरुणिमा आयी। मुखसे एक तेज प्रकट हुआ। सर्वेशके क्रोधका अभिनय करते ही पितामह और भगवान् शिव भी क्रुद्ध हो गये। उनके मुखोंसे भी तेज प्रकट हुआ। यह दिव्य तेज एकत्र होकर एकाकार हो गया। उसने एक परम दिव्य नारीकी आकृति धारण की। सभी देवताओंने उस महाशक्तिको अपने दिव्यास्त्र प्रदान किये।

आश्विन कृष्ण चतुर्दशीको महाशक्तिने स्वरूप धारण किया। इसी मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी-को महर्षि कात्यायनने इनकी अर्चना की। महर्षि कात्यायनकी प्रथम पूजा स्वीकार करनेसे इनका नाम कात्यायनी पड़ा।

आश्विन शुक्ल दशमीको महाशक्तिने महिषासुरको ललकारा और घोर युद्धमें उसे मार डाला। इस बार उनका नाम उग्रचण्डी हुआ। दूसरे कल्पमें पुनः महिषासुरने जन्म लिया और महामाया कात्यायनीने उसे भद्रकालीस्वरूपसे मारा। तीसरे कल्पमें दुर्गास्वरूपसे उन्होंने इसी दैत्यका संहार किया।

शक्तिके मदसे अत्याचार करनेवाला कभी सकुशल रह नहीं सकता। किसी भी भावसे की हुई भगवान्की आराधना व्यर्थ नहीं होती। महिषासुर मारा गया। उसके अत्याचार उसे ले डूबे। उसकी शिवोपासनाने उसे देवीके पार्षदका पद दिया और देवीकी पूजाके साथ आज भी वह पूजा जाता है। —सु० सिं०

सती शतरूपा

शतरूपा मानव सर्गकी आदिमाता हैं। ये स्वायम्भुव मनुकी पत्नी थीं। मनु और शतरूपासे ही मानव-सृष्टिका आरम्भ हुआ। श्रुति भी कहती है—'ततो मनुष्या अजायन्त।' मनु और शतरूपा दोनों ही ब्रह्माजीके शरीरसे उत्पन्न हुए हैं। दक्षिण भागसे मनुका और वाम भागसे शतरूपाका प्रादुर्भाव हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषद्में बतलाया गया है—केवल मनुष्य ही नहीं, सैकड़ों प्रकारके पशु भी इन्हीं दोनोंकी सन्तान हैं। शतरूपा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली तथा संकोचशीला स्त्री थीं। अतः प्रथम समागमके अवसरपर इन्होंने सैकड़ों रूप धारण करके अपनेको मनुकी दृष्टिसे छिपानेका प्रयत्न किया; किंतु उन सभी रूपोंमें मनुने उन्हें पहचाना और वैसा ही रूप धारण करके उनसे भेंट की। इस प्रकार सैकड़ों रूप धारण करनेके कारण ही सम्भवतः उनका नाम शतरूपा हो गया। जिन-जिन पशुओंके रूप इन्होंने धारण किये, उन सभीके रूपमें एक-एक सन्तान छोड़ दी। मानवी-सृष्टिका आदि स्रोत मनुसे ही आरम्भ हुआ। उन्हींके नामपर संसारके नर और नारी मानव कहलाते हैं।

स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्तके राजा थे। सब प्रकारकी सम्पदाओंसे युक्त बर्हिष्मती नगरी उनकी राजधानी थी। जहाँ पृथ्वीको रसातलसे ले आनेके पश्चात् शरीर कँपाते समय श्री-वराह भगवान्‌के रोम झड़कर गिरे थे। वे रोम ही निरन्तर हरे-भरे रहनेवाले कुश और काश हुए, जिनके द्वारा मुनिजन यज्ञमें विघ्न डालनेवाले दैत्योंका तिरस्कार करके भगवान् यज्ञपुरुष-की आराधना करते हैं। 'बर्हिष्' कहते हैं कुशोंको; उनकी अधिकता होनेके कारण ही मनुकी वह नगरी बर्हिष्मतीपुरीके नामसे प्रसिद्ध हुई। उसी पुरीमें महारानी शतरूपाके साथ मनुजी निवास करते थे। प्रतिदिन प्रेमपूर्ण हृदयसे भगवान्-की कथाएँ सुनना, उनका नित्यका नियम था। वे दोनों दम्पति भलीभाँति धर्मका अनुष्ठान करते थे। आज भी वेद उनकी मर्यादाका गान करते हैं। मनु और शतरूपाके दो पुत्र और तीन कन्याएँ हुईं। पुत्रोंके नाम उत्तानपाद और प्रियव्रत थे और कन्याएँ आकूति, प्रसूति तथा देवहूतिके नामसे प्रसिद्ध हुईं थीं। प्रसिद्ध भगवद्भक्त ध्रुव राजा उत्तान-पादके ही पुत्र थे। राजा प्रियव्रतने इस पृथ्वीको सात भागोंमें विभक्त किया था। कन्याओंमेंसे आकूति रुचि प्रजापतिको ब्याही गयी थी, प्रसूति प्रजापति दक्षकी पत्नी थी और देवहूतिका विवाह महर्षि कर्दमसे हुआ था। देव-हूतिके ही गर्भसे सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवत्स्वरूप महर्षि कपिलका अवतार हुआ था। महाराज मनुने बहुत समयतक राज्य किया और सब प्रकारसे प्रजापालन एवं शास्त्रमर्यादाकी रक्षारूप भगवान्‌की आज्ञाका पालन किया।

घरमें रहकर राज्य भोगते-भोगते चौथापन आ गया, परंतु विषयोंसे वैराग्य नहीं हुआ। इस बातका विचार करके राजाके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे सोचने लगे—'हाय! हमारा सारा जन्म भगवान्‌का भजन किये बिना ही व्यर्थ बीत गया। तब मनुजीने अपने पुत्रको जबर्दस्ती राज्यपर बिठाया और स्वयं रानी शतरूपाको साथ ले वनको प्रस्थान किया। दोनोंने सहस्रों वर्षोंतक घोर तपस्या करके भगवान्‌को प्रसन्न किया। तब करुणानिधान भक्तवत्सल प्रभु श्रीराम उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान्‌के श्रीअङ्गोंकी शोभा नीलकमल, नीलमणि

तथा नीलमेघके समान श्याम थी, उसे देखकर कोटि-कोटि काम-देव लज्जित हो रहे थे। मुखपर शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी शोभा बिहँस रही थी। मनोहर कपोल, सुन्दर ठोडी और शङ्खके सदृश ग्रीवा थी। लाल-लाल ओठ, स्वच्छ दन्त पङ्क्ति, सुन्दर नासिका तथा चन्द्ररश्मियोंको तिरस्कृत करनेवाली हँसी सुशोभित थी। नेत्रोंकी छवि नवविकसित कमलके समान सुन्दर थी। मनोहारिणी चितवन जीको बहुत प्यारी लगती थी। सुन्दर भौंहें, ललाटपर प्रकाशमय तिलक, कानोंमें मकराकृत

कुण्डल, मस्तकपर किरीट, कारी-कारी घुँघरारी अलकें, वक्षःस्थलमें श्रीवत्स और वनमाला, गलेमें पदक और हार तथा अन्य अङ्गोंमें भी मणिमय आभूषण शोभा पा रहे थे। सिंह-की-सी गर्दन, सुन्दर यज्ञोपवीत, हाथीकी सूँड़के समान मनोहर भुजदण्ड, कमरमें तरकस और हाथोंमें बाण एवं धनुष सुशोभित थे। पीताम्बरकी छवि बिजलीको लजा रही थी। उदरपर त्रिवलीकी रेखा देखने ही योग्य थी। नाभि ऐसी लगती थी, मानो यमुनाजीमें भँवर उठी हो। चरण-कमलों-की शोभा अवर्णनीय थी। श्रीरघुनाथजीके वामभागमें उन्हीं-के समान शोभाकी निधि आदिशक्ति सीता शोभा पा रही थीं।

युगल सरकारकी यह मनोहर झाँकी देखकर मनु और शतरूपाकी पलकें स्थिर हो गयीं। वे एकटक दृष्टिसे उनकी रूप-माधुरीका पान कर रहे थे। देखते-देखते मन अघाता नहीं था। दोनों दम्पति आनन्दनिमग्न हो गये। शरीरकी सुध भूल गयी। भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श करके वे पृथ्वीपर दण्ड-की भाँति पड़ गये। करुणामय भगवान्‌ने अपने हाथोंसे उनके मस्तकका स्पर्श किया और उन्हें तुरंत उठाकर खड़ा कर दिया; फिर वर माँगनेको कहा। राजाने कहा—'नाथ! आपके दर्शन-से ही सब अभिलाषा पूरी हो गयी, अब एक ही लालसा मनमें रह गयी है; वह यह कि आपके समान एक पुत्र हो जाय।' भगवान्‌ने कहा—'अपने-जैसा पुत्र कहाँ खोजता फिरूँगा, मैं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' इतना कहकर भगवान्‌ने शतरूपा-की ओर दृष्टिपात किया और कहा, 'देवि! तुम भी अपनी रुचिके अनुसार वर माँगो!' शतरूपाने कहा—'प्रभो! महाराजने जो वर माँगा है, वही मुझे भी प्रिय है; फिर भी आपकी आज्ञासे मैं एक वर माँगती हूँ; वह यह है—

जे निज भगत नाथ तव अहहीं।
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि देहु॥

यह कोमल, गूढ़ और मनोहर वाक्य-रचना सुनकर प्रभु प्रसन्न हो गये और बोले—'तुम्हारे मनमें जो कुछ अभिलाषा है, वह सब तुमको दे दी।' इतना कहकर भगवान्‌ने उसी दिन उन्हें माता कहकर पुकारा और विवेकका वरदान दिया—

मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥

इस प्रकार शतरूपाने अपनी अलौकिक भक्ति और तपस्या-से भगवान्‌को पुत्ररूपमें प्राप्त किया। वे दोनों दम्पति भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार कुछ कालतक इन्द्रलोकमें रहे। उसके बाद मनु अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश दशरथ हुए और शतरूपा उनकी पत्नी कौसल्या हुईं। श्रीरघुनाथजीने इनके पुत्ररूप-में प्रकट होकर इनको तो अनुगृहीत किया ही; साथ-ही-साथ अपनी पवित्र लीलाओंकी स्मृति छोड़ दी, जिसका गायन, स्मरण और कीर्तन करके अनन्त कालतक जगत्‌के मनुष्य परमपदकी प्राप्ति करते रहेंगे। —रा० शा०

ब्रह्मवादिनी घोषा

घोषा काक्षीवान् ऋषिकी कन्या थीं। इनको कोढ़का रोग हो गया था, इसीसे योग्य वयमें इनका विवाह नहीं हो पाया। अश्विनीकुमारोंकी कृपासे इनका रोग नष्ट हुआ, तब इनका विवाह हुआ। ये बहुत प्रसिद्ध विदुषी और ब्रह्मवादिनी हो गयी हैं। इन्होंने स्वयं ब्रह्मचारिणीके रूपमें ही ब्रह्मचारिणी कन्याके समस्त कर्तव्योंका उल्लेख दो सूक्तोंमें किया है। इन्होंने कहा है—'हे अश्विनीकुमारो! आपके अनुग्रहसे आज घोषा परम सौभाग्यवती हुई है। आपके आशीर्वादसे घोषाके स्वामीके भलेके लिये आकाशसे प्रचुर वर्षा हो जिससे खेत लहलहा उठें। आपकी कृपादृष्टि घोषाके भावी पतिको शत्रुकी हिंसासे रक्षा करे। यौवन-सुन्दर पतिको पाकर घोषाका यौवन चिरकाल अक्षुण्ण बना रहे।'

'हे अश्विनीकुमारो! पिता जैसे सन्तानको शिक्षा देते हैं, वैसे ही आप भी मुझको सत्-शिक्षा दें। मैं ज्ञान-बुद्धिहीन नारी हूँ। आपका आशीर्वाद मुझको दुर्गतिसे बचावे। आपके आशीर्वादसे मेरे पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रादि सुप्रतिष्ठित होकर जीवन-यापन करें। पतिगृहमें मैं पतिकी प्रियपात्री बनूँ।'

सती देवहूति

देवहूति ब्रह्मावर्त देशके अधिपति एवं बर्हिष्मतीपुरीके निवासी महाराज स्वायम्भुव मनुकी पुत्री थीं । इनकी माताका नाम शतरूपा था । ये महर्षि कर्दमको ब्याही गयी थीं और इन्हींके गर्भसे सिद्धोंके स्वामी भगवान् कपिलका प्रादुर्भाव हुआ था । ये बचपनसे ही बड़ी सद्गुणवती थीं । रूप और लावण्यमें तो इनकी समानता करनेवाली उस समय दूसरी स्त्री थी ही नहीं । देवहूति भारतवर्षके सम्राट्की लाड़िली कन्या होकर भी राजवैभवके प्रति आसक्त नहीं थीं । इनके मनमें धर्मके प्रति स्वाभाविक अनुराग था । त्याग और तपस्याका जीवन इन्हें अधिक प्रिय था । ये चाहतीं तो देवता, गन्धर्व, नाग, यक्ष तथा मनुष्योंमें किसी भी ऐश्वर्यशाली वरके साथ विवाह कर सकती थीं; किंतु इन्हें अच्छी तरह ज्ञात था कि 'यह जीवन भोग-विलासके लिये नहीं मिला है । मानव-भोगोंसे स्वर्गका भोग उत्कृष्ट बताया जाता है, किंतु वह भी चिरस्थायी नहीं है, अन्तमें दुःख ही देनेवाला है । जीवनका उद्देश्य है आत्माका कल्याण, इसे ममता और आसक्तिके बन्धनोंसे मुक्त करके भगवान्से मिलाना । जिसने मनुष्यका शरीर पाकर इस उद्देश्यकी सिद्धि नहीं की, उसने अपने ही हाथों अपना विनाश कर लिया । जिसने इस मोक्ष-साधक शरीरको विषय-भोगोंमें ही लगा रक्खा है, वह अमृत देकर विषका संग्रह कर रहा है ।' इन्हीं उच्च विचारोंके कारण देवहूति किसी राजाको नहीं, तपस्वी मुनिको ही अपना पति बनाना चाहती थीं ।

देवर्षि नारदजीकी सम्मतिसे महाराज मनु महारानी शतरूपा तथा पुत्री देवहूतिको साथ लेकर महर्षि कर्दमके आश्रमपर गये और वहाँ जाकर मनुजीने उनको प्रणाम किया । रानी और कन्याने भी मस्तक झुकाया । कर्दमजीने आशीर्वाद दे राजाका यथोचित सामग्रीसे विधिवत् सत्कार किया तथा उनके राजोचित गुणोंकी प्रशंसा करते हुए आश्रमपर पधारनेका कारण पूछा । मनुजीने कहा—'ब्रह्मन् ! मेरा बड़ा भाग्य है, जो आज मुझे आपका दर्शन मिला और मैं आपके चरणोंकी मङ्गलमयी धूल मस्तकपर चढ़ा सका । आप ब्राह्मणोंकी कृपा सदा ही मुझपर रही है और इस समय भी उस कृपाका मैं पूर्णरूपसे अनुभव कर रहा हूँ । जिस उद्देश्यको लेकर आज मैंने आपका दर्शन किया है, वह बतलाता हूँ, सुनिये । यह मेरी कन्या, जो प्रियव्रत और उत्तानपादकी बहन है, अवस्था, शील और गुण आदिमें अपने योग्य पति प्राप्त करनेकी इच्छा रखती है । इसने देवर्षि नारदजीके मुखसे आपके शील, रूप, विद्या, आयु और उत्तम गुणोंका वर्णन सुना है और तभीसे आपको ही अपना पति बनानेका निश्चय कर चुकी है । मैं बड़ी श्रद्धासे अपनी यह कन्या आपकी सेवामें समर्पित करता हूँ ।' आप इसे स्वीकार करें ।

कर्दमजीको भगवान्की आज्ञा मिल चुकी थी; अतः उन्होंने महाराज मनुके वचनोंका अभिनन्दन किया तथा कुमारी देवहूतिके रूप और गुणोंकी प्रशंसा करते हुए उनके साथ विवाह करनेकी अनुमति दे दी । इतनी शर्त अवश्य लगा दी कि 'सन्तानोत्पत्ति-कालतक ही मैं गृहस्थ आश्रममें रहूँगा; इसके बाद संन्यास ले भगवान्के भजनमें ही शेष जीवन लगाऊँगा ।' मनुजीने देखा, इस सम्बन्धमें महारानी शतरूपा तथा राजकुमारीकी भी स्पष्ट अनुमति है । अतः उन्होंने कर्दमजीके साथ अपनी गुणवती कन्याका विवाह कर दिया । महारानी शतरूपाने भी बेटी और दामादको बड़े प्रेमपूर्वक बहुत-से बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और गृहस्थोचित पात्र आदि दहेजमें दिये ।

देवहूति तन, मन, प्राणसे प्रेमपूर्वक पतिकी सेवा करने लगी। उन्होंने कामवासना, कपट, द्वेष, लोभ और मद आदि दोषोंको कभी अपने मनमें नहीं आने दिया । विश्वास, पवित्रता, उदारता, संयम, शुश्रूषा, प्रेम और मधुर भाषण आदि सद्गुण उनके हृदयमें स्वभावतः बढ़ते रहे, इन्हीं सद्गुणोंके द्वारा देवहूतिने अपने परम तेजस्वी पतिको पूर्णतः संतुष्ट कर लिया । निरन्तर कठोर व्रत आदिका पालन करते रहनेसे उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था । वे पतिको परमेश्वर मानतीं और उन्हें सर्वथा प्रसन्न रखना ही अपना परमधर्म समझती थीं । इस प्रकार पतिकी सेवा करते-करते कितने ही वर्ष बीत गये ।

एक दिन देवहूतिकी सेवा, तपस्या और आराधनापर विचारकर तथा निरन्तर व्रत आदिके पालनसे उन्हें दुर्बल हुई देखकर महर्षि कर्दमको दयावश कुछ खेद हुआ और वे प्रेम-पूर्ण गद्गद वाणीमें कहने लगे—'देवि ! तुमने मेरी बड़ी सेवा की है, सभी देहधारियोंको अपना शरीर बहुत प्रिय होता है । किंतु तुमने मेरी सेवाके आगे उसके क्षीण होनेकी कोई चिन्ता नहीं की । अतः मैंने भगवान्की कृपासे तप, समाधि, उपासना और योगके द्वारा जो भय और शोकसे रहित विभूतियाँ प्राप्त की हैं, उनपर मेरी सेवाके प्रभावसे अब तुम्हारा अधिकार हो गया है । मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि प्रदान करता हूँ, उसके द्वारा

तुम उन्हें देखो । पातिव्रतधर्मका पालन करनेके कारण तुम्हें सभी प्रकारके दिव्य भोग सुलभ हैं; तुम इच्छानुसार उनका उपभोग कर सकती हो ।'

देवहूति बोली—'प्राणनाथ ! मैं यह जानती हूँ कि अमोघ योगशक्ति तथा त्रिगुणात्मिका मायापर आपका पूर्ण अधिकार हो गया है । परंतु सन्तान न होनेसे मेरे मनमें कभी-कभी क्षोभ-सा होता है, गृहस्थकी शोभा सन्तानसे ही है । अतः मेरी सन्तान-विषयक अभिलाषाकी अब पूर्ति होनी चाहिये । श्रेष्ठ पतिके द्वारा उत्तम सन्तानकी प्राप्ति सती नारीके लिये बहुत बड़ा लाभ है ।' यह सुनकर कर्दमजीने अपनी प्रियाकी इच्छा पूर्ण करनेका निश्चय किया । उनके संकल्पमात्रसे एक अत्यन्त सुन्दर विमान प्रकट हो गया, जो इच्छाके अनुसार सर्वत्र आ-जा सकता था । उसका निर्माण उत्तमोत्तम रत्नों और मणियोंसे हुआ था । उसमें सभी प्रकारके दुर्लभ दिव्य वैभव और दिव्य सामग्रियोंका सञ्चय था ।

पतिके साथ दिव्य विमानपर बैठकर सहस्रों दासियोंसे सेवित हो उन्होंने अनेक वर्षोंतक इच्छानुसार विहार किया । सम्पूर्ण देवोद्यानों तथा त्रिलोकीके सुन्दरतम प्रदेशोंमें वे विमानद्वारा विचरती रहीं । कुछ कालके पश्चात् देवहूतिके गर्भसे नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं; जो अद्वितीय सुन्दरी थीं । उनके अङ्गोंसे भी कमलकी सुगन्ध निकलती थी । कन्याओंके जन्मके पश्चात् अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जानेसे कर्दम ऋषि वनमें जानेको उद्यत हो गये । उन्हें संन्यासके लिये जाते देख देवहूतिने उमड़ते हुए आँसुओंको किसी प्रकार रोका और विनययुक्त वचनोंमें कहा—'भगवन् ! आपकी प्रतिज्ञा तो अब पूरी हो गयी, अतः आपका यह वनकी ओर प्रस्थान करना आपके स्वरूपके अनुरूप ही है; तथापि मैं आपकी शरणमें हूँ, अतः मेरी दो-एक विनय और सुन लीजिये । इन कन्याओंको योग्य वरके हाथमें सौंप देना पिताका ही कार्य है, अतः यह आपको ही करना पड़ेगा । साथ ही, जब आप वनको चले जायँ, उस समय मेरे जन्म-मरणरूप शोक और बन्धनको दूर करनेवाला भी कोई यहाँ होना चाहिये । प्रभो ! अबतक भगवान्की सेवासे विमुख रहकर मेरा जो जीवन इन्द्रिय-सुख भोगनेमें बीता है, वह तो व्यर्थ ही गया है । आपके प्रभावको न जाननेके कारण ही मैंने विषयासक्त रहकर आपसे अनुराग किया है, तो भी यह मेरे संसारबन्धनको दूर करनेवाला ही होना चाहिये, क्योंकि साधु-पुरुषोंका संग सर्वथा कल्याण करनेवाला ही होता है । निश्चय ही, भगवान्की मायाद्वारा मैं ठगी गयी; तभी तो आप-जैसे मुक्तिदाता पतिको पाकर भी मैं संसारबन्धनसे छूटनेका कोई उपाय न कर सकी ।'

देवहूतिके ये वैराग्ययुक्त वचन सुनकर कर्दमजी बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने पत्नीको सान्त्वना देते हुए कहा—'प्रिये ! तुम मनमें दुखी न हो, कुछ ही दिनोंमें साक्षात् भगवान् तुम्हारे गर्भसे प्रकट होंगे । अब तुम संयम, नियम, तप और दान आदिका अनुष्ठान करती हुई श्रद्धा और भक्तिके साथ भगवान्की आराधना करो ।' पतिकी इस आज्ञाके अनुसार देवहूति पूर्ण श्रद्धा और अटल विश्वासके साथ भगवान्के भजनमें लग गयीं । समयानुसार देवहूतिके गर्भमें भगवान्का अंश प्रकट हुआ । इसी बीचमें ब्रह्माजी नौ प्रजापतियोंके साथ वहाँ आये । उनके आदेशसे कर्दमजीने अपनी नौ कन्याओंका विवाह नौ प्रजापतियोंके साथ कर दिया । कला मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अङ्गिराको, हविर्भू पुलस्त्यको, गति पुलहको, क्रिया क्रतुको, ख्याति भृगुको और अरुन्धती वसिष्ठ मुनिको ब्याही गयीं ।

तदनन्तर शुभ मुहूर्तमें देवहूतिके गर्भसे भगवान् कपिलने अवतार ग्रहण किया और अपने पिता कर्दमको उपदेश दिया । तत्पश्चात् वे विरक्त होकर जंगलमें चले गये और सर्वत्र सर्वात्मभूत भगवान्का अनुभव करके उन्होंने परम पद प्राप्त कर लिया । देवहूतिने भी विषयोंकी असारताका अनुभव कर लिया था । उनकी दुःखरूपता और असत्यताकी बात उनके मन बैठ गयी थी । भगवान् कपिलसे उन्होंने अपने उद्धारके

लिये प्रार्थना की। भगवान्ने उन्हें योग, ज्ञान और भक्तिके उपदेश दिये। अपना अभिमत साख्यमत माताको स्पष्टरूपसे बतलाया। उनका उपदेश श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्धके पचीसवें अध्यायसे आरम्भ होकर बत्तीसवें अध्यायमें पूर्ण होता है। आत्म-कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको उसका अध्ययन अवश्य करना चाहिये। भगवान्के उपदेशसे देवहूतिका मोह-रूप आवरण हट गया, अज्ञान दूर हो गया। वे कृतकृत्य होकर भगवान् कपिलकी स्तुति करने लगीं। स्तुति पूर्ण होनेपर कपिलदेवजी माताकी आज्ञा ले वनमें चले गये और देवहूति वहीं आश्रमपर रहकर भगवान्का ध्यान करने लगीं। भगवान्के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु अब उनके मनमें नहीं आती थी। वे भगवान्में इतनी तन्मय हो गयीं कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध नहीं रह गयी। उस समय उनके शरीरका पालन-पोषण केवल दासियोंके ही प्रयत्नसे होता था। शरीरपर धूल पड़ी रहती, फिर भी उनका तेज कम नहीं होता था। वे धूमसे आच्छादित अग्निकी भाँति तेजोमयी दिखायी देती थीं। बाल खुले रहते, वस्त्र भी गिर जाता, फिर भी उनको इसका पता नहीं चलता था। निरन्तर श्रीभगवान्में चित्तवृत्ति लगी रहनेके कारण और किसी बातका उन्हें भान ही नहीं होता था। कपिलदेवजीके बताये हुए मार्गका आश्रय लेकर थोड़े ही समयमें उन्होंने नित्यमुक्त परमात्मस्वरूप श्रीभगवान्को प्राप्त कर लिया। उन्हींके परमानन्दमय स्वरूप-में स्थित हो गयीं। जिस स्थानपर देवहूतिको सिद्धि प्राप्त हुई थी, वह आज भी सिद्धिपदके नामसे सरस्वतीके तटपर स्थित है। देवहूतिका शरीर सब प्रकारके दोषोंसे रहित एवं परम विशुद्ध बन गया था, वह एक नदीके रूपमें परिणत हो गया, जो सिद्धगणसे सेवित तथा सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाली है।

—रा० शा०

कुमारी सन्ध्या

एक समयकी बात है, लोकपितामह ब्रह्माजी कमलके आसनपर बैठे भगवान्का ध्यान कर रहे थे। उस समय भी उनके मनमें सृष्टिका सङ्कल्प हुआ और तत्काल ही एक त्रिभुवनसुन्दरी कन्या उनके मनसे प्रकट हो गयी। ब्रह्माकी वह मानस कन्या सम्यक् ध्यान करते समय उत्पन्न हुई थी; इसलिये उसका नाम सन्ध्या हुआ। वह तपस्या करनेके लिये चन्द्रभाग पर्वतपर गयी। वहाँ जाकर उसे इस बातकी चिन्ता हुई कि तपस्या कैसे करूँ? वह चाहती थी, कोई संत-महात्मा सद्गुरु मिल जाय और मुझे तपस्याका मार्ग बता दे। इसी विचारसे वह बृहल्लोहित नामक सरोवरके पास इधर-उधर घूमने लगी। भगवान्की दयासे वहाँ महर्षि वसिष्ठ आ गये। उन्होंने सन्ध्याको वहाँ अकेली देखकर पूछा—'भद्रे! तुम कौन हो, किसकी कन्या हो? इस भयङ्कर वनमें अकेली कैसे घूमती हो? यदि कोई गोपनीय बात न हो तो अपना उद्देश्य बतलाओ।'

सन्ध्याने अपने मनकी बात बता दी। तब वसिष्ठजीने दया-परवश हो उसे द्वादशाक्षर मन्त्र बतलाकर तप करनेके नियम बतला दिये और कहा—'जबतक भगवान्का दर्शन न हो, उत्साह और प्रेमके साथ इस नियमको चलाते रहना चाहिये। वृक्षोंका वल्कल पहनना और जमीनपर सोना, इस नियमके साथ मौनि-तपस्या करती हुई निरन्तर भगवान्के स्मरणमें लगी रहो; इससे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु निश्चय ही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे।'

इस प्रकार उपदेश देकर महर्षि वसिष्ठ चले गये। सन्ध्याको तपस्याका मार्ग मिल गया; अतः उसके हर्षकी सीमा न रही। वह बड़े आनन्द और उत्साहके साथ भगवान्-की पूजामें लग गयी। महर्षिके बताये हुए नियमोंका वह बड़ी सावधानीके साथ पालन करती थी। इस प्रकार बराबर चार युगोंतक उसने अपनी तपस्याको चालू रक्खा। उसका व्रत, उसका नियम तथा उसकी भगवान्के प्रति सुदृढ निष्ठा देखकर सबको बड़ा आश्चर्य होता था, सन्ध्याकी तपस्या पूर्ण

हुई। भगवान् विष्णु उसकी भावनाके अनुसार मनोहर रूप धारण करके उसके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हुए। वे गरुड़पर विराजमान थे। अपने प्रभुकी वह मनोहारिणी छवि देखकर सन्ध्या शीघ्र ही आसनसे उठ खड़ी हो गयी। आनन्दातिरेकसे उसकी अवस्था जडवत् हो गयी है। उसे यह स्फुरित नहीं होता था कि मैं इस समय क्या करूँ और क्या कहूँ ! उसके मनमें भगवान्‌की स्तुति करनेकी अभिलाषा हुई; किन्तु असमर्थतावश वह कुछ बोल नहीं पा रही थी। भगवान्‌ने उसकी मनोदशाकी ओर लक्ष्य किया और दया करके उसे दिव्य, ज्ञान, दिव्य दृष्टि तथा दिव्य वाणी प्रदान की। अब वह बड़े उत्साह के साथ भगवान्‌की स्तुति करने लगी। उसके एक-एक वाक्यमें हृदयके प्रेम और भक्तिका स्रोत उमड़ा पड़ता था। ज्ञानपूर्ण स्तुति करते-करते सन्ध्या भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़ी। उसका शरीर तपस्यासे अत्यन्त दुर्बल हो गया था। यह देखकर भगवान्‌का हृदय करुणासे भर आया। उन्होंने अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर उसे पहलेकी भाँति हृष्ट-पुष्ट बना दिया और स्नेहभरे मधुर वचनोंमें कहा—'भद्रे ! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो।' सन्ध्याने कहा—'भगवन् ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और वर देकर मुझे अनुगृहीत करना चाहते हैं तो मैं पहला वर यही माँगती हूँ कि संसारमें पैदा होते ही किसी भी प्राणीके मनमें कामके विकारका उदय न हो। दूसरा वर मुझे यह दीजिये कि मेरा पातिव्रत कभी खण्डित न होने पाये। इसके सिवा एक तीसरे वरके लिये भी मैं प्रार्थना करती हूँ, वह यह है कि अपने भगवत्स्वरूप पतिके अतिरिक्त और कहीं भी मेरी सकाम दृष्टि न हो। जो पुरुष मेरी ओर कामभावसे देखे, वह पुरुषत्वहीन—नपुंसक हो जाय।'

भगवान्‌ने कहा—'कल्याणी ! शरीरकी चार अवस्थाएँ होती हैं—बाल्य, कौमार्य, यौवन और जरा। इनमेंसे दूसरी अवस्थाके अन्तमें लोगोंके अन्तःकरणमें कामभावनाका उदय होगा। तुम्हारी इस तपस्याके प्रभावसे आज मैंने यह मर्यादा स्थिर कर दी है कि कोई भी प्राणी पैदा होते ही कामभावनासे युक्त नहीं होगा। तुम्हारे सतीत्वकी प्रसिद्धि तीनों लोकोंमें होगी और तुम्हें तुम्हारे पतिके अतिरिक्त जो भी काम-दृष्टिसे देखेगा, वह नपुंसक हो जायगा। तुम्हारे पति बड़े भाग्यवान्, तपस्वी, सुन्दर तथा तुम्हारे साथ-साथ सात कल्पोंतक जीवित रहनेवाले होंगे। तुमने जो-जो वर माँगा है, वह सब मैंने दे दिया। अब तुम्हारे मनकी बात बताता हूँ, सुनो। तुमने पहले आगमें जलकर अपने इस शरीरको त्याग देनेकी प्रतिज्ञा की थी; यह प्रतिज्ञा तुम्हें इसलिये करनी पड़ी कि तुमपर किसीकी काम-दृष्टि पड़ चुकी थी और इसीसे तुम अपने इस शरीरको निर्दोष होनेपर भी त्याग देने योग्य मान चुकी हो। यहाँसे पास ही चन्द्रभागा नदी है, उसके तटपर महर्षि मेधातिथि एक ऐसा यज्ञ कर रहे हैं, जो बारह वर्षोंमें पूर्ण हुआ करता है। उसी यज्ञमें जाकर तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो, किंतु वहाँ ऐसे वेषमें जाओ, जिससे मुनियोंकी दृष्टि तुम्हारे ऊपर न पड़ सके। मेरी कृपासे अब तुम अग्निदेवकी पुत्री हो जाओगी। जिसे तुम अपना पति बनाना चाहती हो, उसका चिन्तन करते-करते अग्निमें ही अपने शरीरको त्याग दो।'

यों कहकर भगवान्‌ने अपने पवित्र कर-कमलोंद्वारा सन्ध्याके शरीरका स्पर्श किया। उनके स्पर्श करते ही सन्ध्याका शरीर पुरोडाश (यज्ञका हविष्य) बन गया। भगवान्‌ने ऐसा इसलिये किया कि मुनिके उस यज्ञमें जो सम्पूर्ण लोकोंके कल्याणके लिये हो रहा था, अग्निदेव मांसभोजी न हो जायँ। तदनन्तर सन्ध्या अदृश्य होकर उस यज्ञमण्डपमें जा पहुँची। उस समय उसके मनमें एक ही भावना थी—मूर्तिमान् ब्रह्मचर्यस्वरूप ब्रह्मर्षि वसिष्ठ मेरे पति हों। उन्हींका चिन्तन करते-करते सन्ध्याने अपने पुरोडाशमय शरीरको पुरोडाशके ही रूपमें अग्निदेवको समर्पित कर दिया। भगवान्‌की आज्ञासे अग्निदेवने सन्ध्याके शरीरको जलाकर सूर्यमण्डलमें प्रवेश करा दिया। सूर्यने उसके शरीरके दो भाग करके देवता और पितरोंकी प्रसन्नताके लिये अपने रथपर स्थापित कर दिया। उसके शरीरके ऊपरी भागका, जो दिनका प्रारम्भ अर्थात् प्रातःकाल है, नाम 'प्रातःसन्ध्या' हुआ और शेष भाग दिनका अन्त 'सायं-सन्ध्या' हुआ।

इस प्रकार कुमारी सन्ध्याने, जो त्याग-तपस्याकी मूर्ति थी, अग्निमें प्रवेश करके, अपने उस जीवनको समाप्त कर दिया। भगवान्‌के वरदानसे वही दूसरे जन्ममें अरुन्धतीके रूपमें प्रकट हो ब्रह्मर्षि वसिष्ठकी पतिव्रता-शिरोमणि धर्मपत्नी हुई।

—रा० श०

सती अरुन्धती

पतिव्रताशिरोमणि अरुन्धतीका नाम तीनों लोकोंमें विख्यात है। ये ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीकी धर्मपत्नी हैं। इनके अनुपम पातिव्रत्यकी कहीं भी तुलना नहीं हो सकती। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—ये छः दोष जो प्राणिमात्रके स्वाभाविक शत्रु हैं, अरुन्धती देवीकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं पाते। इनमें क्षमा, दया, करुणा, शान्ति, अहङ्कारशून्यता, लज्जा, विनय, विद्या, विवेक, ज्ञान-विज्ञान आदि सद्गुणोंका सहज विकास है। इनका मन राग-द्वेष तथा शत्रु-मित्र आदिकी भावनासे सर्वथा रहित है। इनका जीवन नारी-जगत्के लिये आदर्श है। इनका स्मरण तन, मन और प्राणोंको पवित्र करनेवाला है।

हमलोग मानते हैं, अरुन्धतीजी अजर-अमर हैं। रूप, गुण एवं तपस्यामें इनकी समानता करनेवाली तीनों लोकोंमें दूसरी कोई स्त्री नहीं है। इनकी आयु सात कल्पोंतककी मानी गयी है। ये सदा और सर्वत्र अपने पतिके ही साथ रहती हैं। सप्तर्षि-मण्डलमें देवी अरुन्धतीके अतिरिक्त दूसरी किसी ऋषि-पत्नीने स्थान नहीं पाया है। विवाहके अवसरपर वर और वधूको अरुन्धतीका दर्शन कराया जाता है। इसलिये कि वधूमें अरुन्धतीके गुणोंका विकास हो। उसका अखण्ड सौभाग्य बना रहे। अरुन्धतीकी उत्पत्तिके विषयमें पुराणोंमें अनेक तरहके प्रसंग मिलते हैं। कहीं तो इन्हें दक्ष प्रजापतिकी कन्या बतलाया गया है और कहीं इनकी उत्पत्ति महर्षि मेधातिथिके यज्ञमें अग्निकुण्डसे हुई बतायी गयी है। ये बाल्यकालमें भी कभी धर्मका अवरोध नहीं करती थीं। इसीसे इनका नाम अरुन्धती पड़ा।

चन्द्रभागाके तटपर महर्षि मेधातिथिका तापसारण्य नामक आश्रम था। उसीमें कुमारी अरुन्धतीका लालन-पालन हुआ। अपनी पाँच वर्षकी छोटी अवस्थामें ही इन्होंने अपने सद्गुणोंसे सम्पूर्ण तापसारण्यको पवित्र कर दिया। एक दिन अरुन्धती जब अपने पिता मेधातिथिके पास ही बालकोचित खेल-कूदमें लगी थीं, उसी समय स्वयं ब्रह्माजी उनके आश्रमपर पधारे। महर्षिने ब्रह्माजीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उनका विधिवत् पूजन किया और कुमारी अरुन्धतीसे भी प्रणाम करवाया। ब्रह्माजीने कन्याको आशीर्वाद दे महर्षि मेधातिथिसे कहा—'मुने! अब अरुन्धतीको शिक्षा देनेका समय आ गया है। अतः इसे सती-साध्वी स्त्रियोंके पास रखकर शिक्षा दिलवानी चाहिये। कन्याकी शिक्षा पुरुषोंद्वारा नहीं होनी चाहिये। स्त्री ही स्त्रियोंको समुचित शिक्षा दे सकती है। तुम्हारे पास ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जो इसे शिक्षा दे सके; इसलिये तुम अपनी कन्याको बहुला और सावित्रीके पास रख दो। तुम्हारी कन्या उनके पास रहकर शीघ्र ही परम गुणवती हो जायगी।'

मेधातिथिने ब्रह्माजीकी यह आज्ञा शिरोधार्य की और उनके चले जानेपर वे कन्याको लेकर सूर्यलोकमें गये। वहाँ उन्होंने सूर्यमण्डलमें स्थित पद्मासनपर विराजमान सावित्री देवीका दर्शन किया। उस समय बहुला मानस पर्वतपर जा रही थीं; अतः सावित्री देवी भी वहींके लिये चल पड़ीं। वहाँ जानेका कारण यह था कि प्रतिदिन सावित्री, गायत्री, बहुला, सरस्वती और द्रुपदा मानस पर्वतपर एकत्रित हो धर्मचर्चा तथा लोक-कल्याणकी कामना किया करती थीं। महर्षि मेधातिथिने उन सब माताओंको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'देवियो! यह मेरी कन्या अरुन्धती है। इसके उपदेशका समय प्राप्त हुआ है; इसीलिये इसको लेकर मैं आपलोगोंकी सेवामें आया हूँ। अब यह आपके ही पास रहेगी। आप लोग इसे ऐसी शिक्षा दें, जिससे यह साध्वी एवं सच्चरित्र बन सके। ब्रह्माजीकी ऐसी ही आज्ञा है।' सावित्री और बहुलाने कहा—'महर्षे! तुम्हारी कन्यापर भगवान् विष्णुकी कृपा है; अतः सच्चरित्र तो यह पहलेसे ही हो चुकी है; किंतु ब्रह्माजीकी आज्ञा होनेके कारण हम इसे अपने पास रख लेती हैं। यह यहीं रहकर शिक्षा प्राप्त करे। पूर्वजन्ममें यह ब्रह्माजीकी मानसी कन्या रह चुकी है। अब तुम्हारे तपोबलसे तथा भगवान् विष्णुकी अपार कृपासे यह तुम्हारी पुत्री हुई है। इस कन्यासे तुम्हारा और तुम्हारे कुलका तो लाभ होगा ही, समस्त संसारका भी परम कल्याण होगा।'

तत्पश्चात् मेधातिथि वहाँसे लौट आये। अरुन्धती वहीं सावित्री और बहुलाकी सेवामें रहकर शिक्षा पाने लगीं। जगन्माताओंकी सेवाका सुदुर्लभ अवसर पाकर अरुन्धती अपना अहोभाग्य मानती थीं। इस प्रकार पूरे सात वर्ष बीत गये। स्त्री-धर्मकी शिक्षा पाकर अरुन्धती सावित्री और बहुलासे भी श्रेष्ठ हो गयीं।

तदनन्तर एक दिन देवी सावित्रीने यह प्रार्थना करनेपर कि 'अरुन्धतीके विवाहके लिये यही उपयुक्त अवसर है।' ब्रह्माजी भगवान् विष्णु तथा शङ्करजीको साथ लेकर महर्षि

वसिष्ठके आश्रमकी ओर चले। नारदजी महर्षि मेधातिथिको बुला लाये। ब्रह्माजी आदिकी आज्ञा लेकर मेधातिथिने अपनी कन्याको आगे करके उन सब देवताओंके साथ प्रस्थान किया। महर्षि वसिष्ठ मानस पर्वतकी कन्दरामें समाधि लगाये बैठे थे। उनके मुख-मण्डलसे सूर्यकी भाँति प्रकाशकी किरणें निकल रही थीं। जब समाधि खुली तो मेधातिथिने निवेदन किया—'भगवन्! यहाँ मेरी कुमारी कन्या है। इसने अबतक विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन किया है। आप इसे ब्राह्मविवाहकी विधिसे ग्रहण कीजिये। आप जहाँ-जहाँ जिस रूपमें भी रहेंगे, यह छायाकी भाँति आपके पीछे पीछे चलेगी और सब प्रकारसे आपकी सेवा करेगी।' महर्षि मेधातिथिकी यह प्रार्थना सुनकर वसिष्ठजी-ने देखा—ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी आदि सब देवता उपस्थित हैं। उन्होंने तपोबलसे भावी बातोंको जान लिया और अरुन्धतीका पाणिग्रहण किया। अरुन्धतीकी आँखे उनके चरणोंमें जा लगीं। तदनन्तर सब देवताओंने मिलकर विवाहोत्सवका कार्य सम्पन्न किया। देवताओंने विविध दुर्लभ सामग्रियाँ और दिव्यगुण एवं मङ्गलमय आशीर्वाद दिये। विवाहके अवसरपर ब्रह्मा, विष्णु आदिके द्वारा अभिषेक कराते समय जो जलकी धाराएँ गिरी थीं, वे ही गोमती, सरयू, क्षिप्रा और महानदी आदि सात नदियोंके रूपमें परिणत हो गयीं। उनके दर्शन, स्पर्श, स्नान और जल-पानसे समस्त संसारका कल्याण होता है। विवाहके बाद महर्षि वसिष्ठजी अपनी धर्मपत्नीके साथ ब्रह्माजीके दिये हुए विमानमें बैठकर इच्छानुसार देवभूमियोंमें विचरण करते फिरे। तत्पश्चात् हिमालयपर्वतकी तलैटीमें आश्रम बनाकर दोनों दम्पति दीर्घकालतक तपस्या करते रहे। इसी आश्रमपर महाराज दिलीपने अपनी रानी सुदक्षिणाके साथ रहकर कामधेनुपुत्री नन्दिनीका सेवन किया था।

एक बार अग्निदेवकी पत्नी स्वाहा अरुन्धतीका रूप धारण करने लगी, तो उसे सफलता न मिली। उसने लाख चेष्टा की, किंतु वह रूप धारण करना उसके लिये असम्भव हो गया। यह देख स्वाहा अरुन्धतीके पास गयी और हाथ जोड़कर सब बातें कह सुनायी। फिर क्षमा माँगते हुए उसने कहा—'सतीशिरोमणि अरुन्धती! आप धन्य हैं। एकमात्र आप ही पातिव्रत्य धर्मका ठीक-ठीक पालन करनेवाली हैं। आप-जैसी दूसरी सती अबतक मेरे देखनेमे नहीं आयी। जो कन्याएँ विवाहके समय पूर्णतया एकाग्रचित्त हो ब्राह्मण और अग्निके समक्ष पतिका हाथ पकड़ते समय आपका स्मरण करेंगी, उन्हे सुख, धन, अखण्ड सौभाग्य तथा पुत्रकी प्राप्ति होगी। मैंने आपके रूपको धारण करनेका जो असफल दुःसाहस किया है, उसके लिये आप क्षमा करें।'

एक बार स्त्रियोंके पातिव्रत्य-धर्मकी जिज्ञासासे सूर्य, इन्द्र और अग्नि तीनों देवता अरुन्धतीके पास गये। उस समय वे घड़ेमें जल लानेके लिये जा रही थीं। देवताओंको देखकर अरुन्धतीने अपना घड़ा एक किनारे शुद्ध भूमिपर रख दिया और तीनों देवताओंकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया; फिर पूछा, 'आपलोग किस कार्यसे यहाँ पधारे हैं, कृपा करके बतलावें।' देवता बोले—'हमारे मनमें एक प्रश्न उठा है, जिसका निर्णय करानेके लिये हम आपके पास आये हैं।' अरुन्धती बोलीं—'आप थोड़ी देर यहाँ आश्रमपर विश्राम करें तबतक मै यह घड़ा भरके लाती हूँ। उसके बाद आप-का प्रश्न सुनूँगी और यथाशक्ति उत्तर भी दूँगी।' तब सूर्य आदि देवताओंने कहा, 'देवि! हम अपने प्रभावसे इस घड़े-को भर देते हैं।' सूर्यदेवने सारी शक्ति लगा दी किंतु वे घड़े-को एक चौथाईसे अधिक न भर सके। इन्द्र और अग्निने भी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर केवल एक-एक चौथाई भाग भरा। इस प्रकार घड़ेका तीन भाग भर गया। बाकी चतुर्थ भाग वे तीनों मिलकर भी न भर सके। तब अरुन्धतीने सतीधर्म-का वर्णन किया और उसकी महिमासे घड़ेका चौथा भाग स्वयं भर दिया। देवताओंको अपने प्रश्नका उत्तर मिल गया

और वे अरुन्धतीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर अपने-अपने लोकको चले गये।

अरुन्धतीकी महिमाका वर्णन सर्वत्र मिलता है। भारतवर्ष-के विभिन्न भागोंमें वसिष्ठ और अरुन्धतीके आश्रम हैं। वसिष्ठ-जी सूर्यवंशी राजाओंके एकमात्र गुरु रहे हैं; अतः अयोध्यामें भी इनका आश्रम है। अरुन्धतीजीने अपने पतिके साथ अयोध्यापुरीको भी दीर्घकालतक सुशोभित किया है। सीता जैसी सतीशिरोमणिने जिनके चरणोंकी वन्दना की है, उन अरुन्धती देवीके सौभाग्यकी सराहना कौन नहीं करेगा। आज भी वे सप्तर्षि मण्डलमें रहकर अपने पातिव्रत्यके तेजसे प्रकाशित हो रही हैं।—रा० शा०

ब्रह्मवादिनी विश्ववारा

'प्रज्वलित अग्नि तेजका विस्तार करके द्युलोकतकको प्रकाशित करते हैं। अग्नि प्रातः एवं सायं (हवनके समय) अत्यन्त सुशोभित होते हैं। देवार्चनमें निमग्न वृद्धपुरुष तथा विद्वान् अतिथियोंका हविष्यान्नसे स्वागत करनेवाली स्त्रियाँ उस अग्निके समान ही सुशोभित हैं।'

'अग्नि! आप प्रकाशमान होनेसे जलके स्वामी हो। जिस यजमानके पास आप जाते हो, वह समस्त पशु आदि धन प्राप्त करता है। हम आपके योग्य आतिथ्य-सूचक हवि प्रस्तुत करके आपके समीप (हवनकुण्डके पास) रखती हैं। जो स्त्री श्रद्धा-विश्वासपूर्वक आपको प्रणाम करती है, वह ऐश्वर्यकी स्वामिनी होती है। उसका अन्तःकरण पवित्र होता है। उसका मन स्थिर होता है। उसकी इन्द्रियाँ वशमें रहती हैं।

'अग्नि! महासौभाग्यकी प्राप्तिके लिये आप बलवान् बनो—प्रज्वलित हो! आपके द्वारा प्राप्त धन-परोपकार उत्तम हो! हम स्त्रियोंके दाम्पत्यभावको सुदृढ़ करो! हम स्त्रियोंके शत्रु दुष्कर्म, कुचेष्टा, लोमादिपर आपका आक्रमण हो!'

'हे दीप्तिमान्! मैं तुम्हारे प्रकाशकी वन्दना करती हूँ। तुम यज्ञके लिये प्रज्वलित हो। हे प्रकाशराशि! भक्तवृन्द तुम्हारा आह्वान करते हैं। यज्ञक्षेत्रमें तुम सभी देवताओंको प्रसन्न करो।

'यज्ञमें हव्यवाहक अग्निकी रक्षा करो! अग्निकी सेवा करो और देवताओंको हव्य पहुँचानेके लिये अग्निका वरण करो।'

ऋग्वेदके पाँचवें मण्डलके द्वितीय अनुवाकके अट्ठाईसवें सूक्त षट्ऋकोंका यह भावार्थ है। अत्रि महर्षिके वंशमें उत्पन्न विदुषी विश्ववारा इन मन्त्रोंकी द्रष्टा ऋषि हैं। अपनी तपस्यासे उन्होंने इस ऋषिपदको प्राप्त किया था।

इन मन्त्रोंमें बताया गया है कि स्त्रियोंको सावधानीपूर्वक अतिथि-सत्कार करना चाहिये। यज्ञके लिये हविष्य तथा सामग्रियोंको प्रस्तुत करके अपने अग्निहोत्री पतिके समीप पहुँचाना चाहिये। अग्निकी वन्दना करनी चाहिये। अग्निकी स्तुति करनी चाहिये और पतिके प्राजापत्य अग्निकी सावधानीपूर्वक रक्षा भी पत्नीको ही करनी चाहिये। [पहले प्रत्येक द्विजातिके घरमें हवनकुण्डके अग्निकी सावधानीसे रक्षा होती थी। प्रत्येक पुरुषके हवनकुण्ड पृथक् होते थे। इनकी अग्निका बुझना भयङ्कर अमङ्गल माना जाता था। इन मन्त्रोंसे जान पड़ता है कि ये अग्निकी ही उपासिका थीं।

—सु० सि०

ब्रह्मवादिनी अपाला

विश्ववाराकी भाँति अपाला भी अत्रिमुनिके वंशमें ही उत्पन्न हुई थीं। कहते हैं कि अपालाको कुष्ठ हो गया था, इस उनके पतिने उन्हें घरसे निकाल दिया था। वे अपने पीहरमें बहुत दुखी रहती थीं। उन्होंने कुष्ठरोगसे मुक्त होनेके लि इन्द्रकी आराधना की और एक बार इन्द्रको अपने घर बुलाकर उन्हें सोमपान करवाया और इन्द्रदेवको प्रसन्न किया इन्द्रके वरदानसे अपालाके पिताके सिरके उड़े हुए केश फिर आ गये, उनके खेत हरे-भरे हो गये और अपालाका कोढ़ मि गया। ये ब्रह्मवादिनी थीं। ऋग्वेदके अष्टम मण्डलके ९१ वें सूक्तकी १ से ७ तक ऋचाएँ इन्हींकी संकलित हैं।

सती तपती

'सुन्दरी, तुम कौन हो ? देव, दैत्य, गन्धर्व एवं नागलोकमें भी ऐसा अपूर्व सौन्दर्य सुननेमें नहीं आता। मर्त्यलोकमें उसे देखकर मैं आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। तुम्हारे शरीरपर यद्यपि दिव्यरत्नालङ्कार हैं, परंतु वे तो तुम्हारी ही कान्तिसे भूषित हैं। मैं महाराज पौरवका पुत्र हूँ। विश्वमें किसी नारीने अबतक मुझे आकृष्ट नहीं किया है। मैं तुम्हारा परिचय पानेको उत्सुक हूँ, तुम्हारे मधुर वचनोंको सुननेको आतुर हूँ। मुझपर कृपा करो और अपना परिचय दो।' अयोध्याधीश महाराज संवरण वनमें आखेटको निकले थे। उनके तीव्रगामी अश्वने उन्हें परिचरोंसे पृथक् कर दिया था और एकान्त अरण्यमें एक दिव्य सौन्दर्यमयीको देखकर वे मुग्ध हो गये थे। महाराजको प्रश्न करके अपनी ओर आते देख वह दिव्या सहसा अन्तर्हित हो गयी।

सबलोंके आवेश भी सबल होते हैं। हम अल्पप्राणोंके लिये उसकी कल्पना भी कठिन जान पड़ती है। उस दिव्यनारीके अन्तर्हित होते ही महाराज संवरण भूमिपर गिर पड़े। मुकुट पृथक् हो गया। केश बिखर गये और लंबी श्वासें लेने लगे। उनकी यह दशा देख वह दिव्य कन्या पुनः प्रकट हुई। उसने बड़े मधुर स्वरमें कहा—'राजन्! उठो। सर्वेश तुम्हारा मङ्गल करें। पृथ्वीके सर्वश्रेष्ठ राजाके लिये इस प्रकार अधीर होना शोभा नहीं देता।'

'मैं जगत्को आलोकित करनेवाले भगवान् आदित्यकी पुत्री तथा सावित्रीकी छोटी बहिन तपती हूँ।' दिव्याने अपना परिचय दिया। 'मैं स्वतन्त्र नहीं। मुझपर मेरे पिताका अधिकार है। इसीसे तुम्हारे निकट आनेमें मैंने संकोच किया था। तुम्हारा यश, कुलीनता तथा सद्गुण विश्वमें प्रख्यात है। ऐसे पुरुषको पतिरूपमें पानेमें प्रत्येक नारी अपना भाग्य मानेगी। तुम तप एवं प्रार्थनाके द्वारा मेरे लोकपूजित पिताको प्रसन्न करके उन्हींसे मेरी याचना करो।' महाराजको सेवकोंसे पृथक् हुए देर हो गयी थी। वे उन्हें अन्वेषण करते हुए समीप आ गये थे। तपती पुनः अदृश्य हो गयी।

थोड़ी देरमें महाराज सावधान हुए। उन्होंने इधर-उधर देखा, तपतीके वाक्योंका स्मरण किया और कर्तव्यका निश्चय किया। सभी सेवकोंको उन्होंने वहाँसे विदा कर दिया। समीपकी सरितामें स्नान किया। आचमन करके भगवान् आदित्यको उन्होंने अर्घ्य दिया और तब दोनों हाथोंकी अञ्जलि बनाकर वे भगवान् भुवनभास्करके मन्त्रका जप करते हुए खड़े हो गये। मन-ही-मन उन्होंने अपने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठका स्मरण किया।

सेवक राजधानी लौट आये। उन्होंने महाराजकी स्थिति-समाचार राज्यगुरु महर्षि वशिष्ठको दिया और सूचित कर दिया कि महाराजने उन्हें लौटा दिया है। उधर महाराजके स्मरणका प्रभाव भी महर्षि अनुभव कर रहे थे। उन्होंने ध्यान किया। सभी बातें स्पष्ट हो गयीं। प्रजा एवं मन्त्रियोंको आश्वासन देकर तथा राज्य-प्रबन्धको व्यवस्थित रखनेके लिये समझाकर आप वनमें संवरणके समीप पहुँचे। महाराजने गुरुकी वन्दना की। महर्षिने उन्हें आश्वासन दिया और योगबलसे वे आकाशमार्गसे सीधे सूर्यलोककी ओर प्रस्थित हुए।

'मैं भगवान् ब्रह्माका पुत्र हूँ और मेरा नाम वशिष्ठ है।' अरुण रथको वेगपूर्वक हाँके जा रहे थे। मुनिगण स्तुति कर रहे थे। पीछेसे नाग और राक्षस रथको वेग दे रहे थे। सातों अश्व समान वेगसे निश्चित मार्गपर बढ़े जा रहे थे। महर्षि उसी गतिसे रथको दक्षिण करके जा पहुँचे।

'मैं धन्य हुआ!' बड़ी शीघ्रतासे भगवान् सूर्य उठ खड़े हुए। उन्होंने महर्षिको साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। अपने रथमें आसन देकर पाद-प्रक्षालित करके चरणोदक लिया। पूजाके पश्चात् पादपीठके समीप करबद्ध बैठकर उन्होंने प्रार्थना की। 'आपका यहाँ पधारना मङ्गलमय हो। मुझे आदेश दें। मैं आपकी आज्ञाको शिरसः स्वीकार करूँगा।'

'आप जानते ही हैं कि पृथ्वीपर अयोध्यानरेश महाराज संवरण धराके सर्वश्रेष्ठ नरेश हैं। वे शूर, संयमी और प्रजावत्सल हैं। वे आपके अनन्य उपासक हैं और सदा विधिपूर्वक आपकी ही शुद्ध हृदयसे अर्चना करते हैं। आज बारह दिन तथा इतनी ही रात्रियाँ एक स्थानपर स्थिर खड़े रहकर आपकी प्रार्थना करते हुए उन्होंने व्यतीत कर दी हैं। उनकी आराधना अविराम चल रही है।' महर्षिने बड़े मधुर शब्दोंमें सूचित किया। 'मैं अपने उन्हीं यजमानके लिये आपसे आपकी छोटी पुत्री सावित्रीकी छोटी बहिन तपतीकी याचना करने आया हूँ।'

'संवरण राजाओंमे सर्वश्रेष्ठ हैं और मेरे प्रिय भक्त हैं।' सूर्यनारायणने कहा—'तपती भी अनुरूप वर न मिलनेसे बड़ी हो गयी है और देव-गन्धर्वादिमें उसके उपयुक्त पात्र न देखकर मैं उसे स्वयं संवरणको देना चाहता था। सब प्रकार यह अनुरूप सम्बन्ध है। मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आप मेरी इस कन्याको ले जायँ।' महर्षि वशिष्ठने तपतीको साथ लिया और गगनमार्गसे वे सीधे संवरणके समीप उसी पर्वतपर पहुँचे।

अग्नि प्रज्वलित की गयी। गुरुदेवने वहीं विधिपूर्वक संवरण-तपतीका विवाह कराया और वहाँसे यजमान दम्पतिको लेकर राजधानी पहुँचे। इसी तपतीके पुत्र कुरु हुए जिनसे कुरुकुल प्रतिष्ठित हुआ। —सु० सिं०

ब्रह्मवादिनी वाक्

वाक् अम्भृण ऋषिकी कन्या थीं। यह प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानिनी थीं और इन्होंने भगवती देवीके साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थी। ऋग्वेदसंहिताके दशम मण्डलके १२५ वें सूक्तमें देवी-सूक्तके नामसे जो आठ मन्त्र हैं, वे इन्हींके रचे हुए हैं। चण्डीपाठके साथ इन आठ मन्त्रोंके पाठका बड़ा माहात्म्य माना जाता है। इन मन्त्रोंमें स्पष्टतया अद्वैतवादका सिद्धान्त प्रतिपादित है। मन्त्रोंका यह अर्थ है—

मैं सच्चिदानन्दमयी सर्वात्मा देवी रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेव गणोंके रूपमें विचरती हूँ। मैं ही मित्र और वरुण दोनोंको, इन्द्र और अग्निको तथा दोनों अश्विनीकुमारोंको धारण करती हूँ।

मैं ही शत्रुओंके नाशक आकाशचारी देवता सोमको, त्वष्टा प्रजापतिको तथा पूषा और भगको भी धारण करती हूँ। जो हविष्यसे सम्पन्न हो देवताओंको उत्तम हविष्यकी प्राप्ति कराता है, तथा उन्हें सोमरसके द्वारा तृप्त करता है, उस यजमानके लिये मैं ही उत्तम यज्ञका फल और धन प्रदान करती हूँ।

मैं सम्पूर्ण जगत्की अधीश्वरी, अपने उपासकोंको धनकी प्राप्ति करानेवाली, साक्षात्कार करनेयोग्य परब्रह्मको अपनेसे अभिन्नरूपमें जाननेवाली तथा पूजनीय देवताओंमें प्रधान हूँ। मैं प्रपञ्चरूपसे अनेकों भावोंमें स्थित हूँ। सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें मेरा प्रवेश है। अनेक स्थानोंमें रहनेवाले देवता जहाँ कहीं जो कुछ भी करते हैं, सब मेरे लिये ही करते हैं।

जो अन्न खाता है, वह मेरी ही शक्तिसे खाता है; इसी प्रकार जो देखता है, जो साँस लेता है तथा जो कही हुई बात सुनता है, वह मेरी ही सहायतासे उक्त सब कर्म करनेमें समर्थ होता है। जो मुझे इस रूपमें नहीं जानते, वे न जाननेके कारण ही हीन दशाको प्राप्त होते जाते हैं। हे बहुश्रुत! मैं तुम्हें श्रद्धासे प्राप्त होनेवाले ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करती हूँ, सुनो—

मैं स्वयं ही देवताओं और मनुष्योंके द्वारा सेवित इस दुर्लभ तत्त्वका वर्णन करती हूँ। मैं जिस पुरुषकी रक्षा करना चाहती हूँ, उस-उसको सबकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना देती हूँ। उसीको सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, परोक्षज्ञान-सम्पन्न ऋषि तथा उत्तम मेधाशक्तिसे युक्त बनाती हूँ।

मैं ही ब्रह्मद्वेषी हिंसक असुरोंका वध करके रुद्रके धनुषको चढ़ाती हूँ। मैं ही शरणागत जनोंकी रक्षाके लिये शत्रुओंसे युद्ध करती हूँ तथा अन्तर्यामीरूपसे पृथ्वी और आकाशके भीतर व्याप्त रहती हूँ।

मैं ही इस जगत्के पितारूप आकाशको सर्वाधिष्ठानस्वरूप परमात्माके ऊपर उत्पन्न करती हूँ। समुद्रमें तथा जलमें मेरे कारण (कारणस्वरूप चैतन्य ब्रह्म) की स्थिति है। अतएव मैं समस्त भुवनमें व्याप्त रहती हूँ तथा उस स्वर्गलोकका भी अपने शरीरसे स्पर्श करती हूँ।

मैं कारणरूपसे जब समस्त विश्वकी रचना आरम्भ करती हूँ, तब दूसरोंकी प्रेरणाके बिना स्वयं ही वायुकी भाँति चलती हूँ, स्वेच्छासे ही कर्ममें प्रवृत्त होती हूँ। मैं पृथ्वी और आकाश दोनोंसे परे हूँ। अपनी महिमासे ही मैं ऐसी हुई हूँ।

ब्रह्मवादिनी सूर्या

ऋग्वेदके दशम मण्डलके ८५ वें सूक्तकी ४७ ऋचाएँ इनकी हैं। यह सूक्त विवाहसम्बन्धी है। आरम्भकी ऋचाओंमें चन्द्रमाके साथ सूर्यकन्या सूर्याके विवाहका वर्णन है। हिंदू वेद-शास्त्रोंमें जितने आख्यान हैं, उन सबके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों अर्थ होते हैं। वेदकी ऋचाओंके भी तीन अर्थ हैं; परंतु वे केवल आध्यात्मिक अर्थरूप ही हैं; इतिहास नहीं है, ऐसी बात नहीं है। चन्द्रमाके साथ सूर्याके विवाहका आध्यात्मिक अर्थ भी है और उसका ऐतिहासिक तथ्य भी है। जहाँ चन्द्र और सूर्यको नक्षत्ररूपमें ग्रहण किया गया है, वहाँ आलङ्कारिक भाषामें आध्यात्मिक वर्णन है और जहाँ उनके अधिष्ठात्री देवताके रूपमें लिया गया है वहाँ प्रत्यक्ष ही वैसा व्यवहार हुआ है।

सूर्या जब विदा होकर पतिके साथ चली तब उसके बैठनेका रथ मनके वेगके समान था। रथपर सुन्दर चँदोवा तना था और दो सफेद बैल जुते थे। सूर्याको दहेजमें पिताने गौ, स्वर्ण, वस्त्र आदि पदार्थ दिये। सूर्याके बड़े ही सुन्दर उपदेश हैं—

हे बहू! इस पति-गृहमें ऐसी वस्तुओंकी वृद्धि हो, जो प्रजाको और साथ ही तुझको भी प्रिय हों। इस घरमें गृह-स्वामिनी बननेके लिये तू जाग्रत् हो। इस पतिके साथ अपने शरीरका संसर्ग कर और जानने-पहचानने योग्य परमात्माको ध्यानमें रखते हुए दोनों स्त्री-पुरुष वृद्धावस्थातक मिलते और बातचीत करते रहे। हे बहू! तू मैले कपड़ोंको फेंक दे; वेद पढनेवाले पुरुषोंको दान कर। गंदी रहने, गंदे कपड़े पहनने, प्रतिदिन स्नान न करनेसे और आलस्यमें रहनेसे भाँति-भाँतिके रोग हो जाते हैं और पत्नीकी मलिनता पतिमें भी पहुँच जाती है। इसलिये पतिका कल्याण चाहनेवाली स्त्रीको स्वच्छ रहना उचित है। मैलेपनसे होनेवाले रोगसे शरीर कुरूप हो जाता है। शरीरकी कान्ति नष्ट हो जाती है। और जो पति ऐसी पत्नीके वस्त्र पहनता है उसका शरीर भी शोभाहीन और रोगी हो जाता है।

हे बहू! सौभाग्यके लिये ही मै तेरा पाणिग्रहण करता हूँ। पतिरूप मेरे साथ ही तू बूढ़ी होना।

हे परमात्मा! आप इस वधूको सुपुत्रवती और सौभाग्यवती बनावें। इसके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न करें और ग्यारहें पति हों। हे वधू! तू अपने अच्छे व्यवहारसे श्वशुरकी सम्राज्ञी हो, सासकी सम्राज्ञी हो, ननदोंकी सम्राज्ञी हो और देवरोंकी सम्राज्ञी हो। अर्थात् अपने सुन्दर बर्तावसे और सेवासे सबको अपने वशमें कर ले।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वा भव।
नान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

ब्रह्मवादिनी रोमशा

रोमशा बृहस्पतिजीकी पुत्री थीं और भावभव्यकी धर्मपत्नी। इन्होंने ऋग्वेदसंहिताके प्रथम मण्डलके १२६वें सूक्तकी सात ऋचाओंका संकलन किया है। कहते हैं कि इनके सारे शरीरमें रोमावली थी, इससे इनके पति इन्हें नहीं चाहते थे। यह भी कहते हैं कि जिन-जिन बातोंसे स्त्रियोंकी बुद्धिका विकास होता है, उन्हींका प्रचार करती थीं; इसीलिये ये रोमशा नामसे प्रसिद्ध हुईं। वेद और शास्त्रोंकी अनेक शाखाएँ ही इनके शरीरके रोम हैं और वे इसका प्रचार करती थीं, इसीसे रोमशा कहलायीं।

वाचक्नवी गार्गी

वैदिक साहित्यके जगत्में ब्रह्मवादिनी विदुषी गार्गीका नाम बहुत प्रसिद्ध है। इनके पिताका नाम वचक्नु था, उनकी पुत्री होनेके कारण इनका नाम 'वाचक्नवी' पड़ गया। किंतु असली नाम क्या था, इसका वर्णन नहीं मिलता। गर्ग गोत्रमें उत्पन्न होनेसे ही लोग इन्हें 'गार्गी' कहते थे और इनका 'गार्गी' नाम ही जन-साधारणमें अधिक प्रचलित था। बृहदारण्यक उपनिषद्में इनके शास्त्रार्थका प्रसंग इस प्रकार वर्णित है। विदेह देशके राजा जनकने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। उसमें कुरु और पाञ्चाल देशतकके विद्वान् ब्राह्मण एकत्रित हुए थे। राजा जनक बड़े विद्याव्यसनी और सत्संगी थे। उन्हें शास्त्रके गूढ़ तत्त्वोंका विवेचन और परमार्थ-चर्चा अधिक प्रिय थी। इसलिये उनके मनमें यह जाननेकी इच्छा हुई कि यहाँ आये हुए विद्वान् ब्राह्मणोंमें सबसे बढ़कर तात्त्विक विवेचन करनेवाला कौन है? इस परीक्षाके लिये उन्होंने अपनी गोशालामें एक हजार गौएँ बँधवा दीं। उनमेंसे प्रत्येकके सींगोंमें दस-दस पाद सुवर्ण बँधे हुए थे। यह व्यवस्था करके राजाने ब्राह्मणोंसे कहा—'आपलोगोंमें जो सबसे बढ़कर ब्रह्मवेत्ता हो, वह इन सभी गौओंको ले जाय।' राजाकी यह घोषणा सुनकर किसी भी ब्राह्मणमें यह साहस नहीं हुआ कि उन गौओंको ले जाय। सबको अपने ब्रह्मवेत्तापनमें संदेह हुआ। सब सोचने लगे 'यदि हम गौएँ ले जानेको आगे बढ़ते हैं तो ये सभी ब्राह्मण हमें अभिमानी समझेंगे और शास्त्रार्थ करने लगेंगे, उस समय हम इन सबको जीत सकेंगे या नहीं; इसका क्या निश्चय है!' यह विचार करते हुए सब चुपचाप ही रहे। सबको मौन देखकर याज्ञवल्क्यजीने अपने ब्रह्मचारीसे, जो सामवेदका अध्ययन करनेवाला था, कहा, 'सोम्य! तू इन सब गौओंको हाँक ले चल।' ब्रह्मचारीने वैसा ही किया।

यह देखकर ब्राह्मणलोग क्षुब्ध हो उठे। विदेहराजका होता अश्वल याज्ञवल्क्यसे पूछ बैठा—'क्यों? तुम्हीं हम सबमें बढ़कर ब्रह्मवेत्ता हो?' याज्ञवल्क्यने नम्रतासे कहा—'नहीं, ब्रह्मवेत्ताओंको तो हम नमस्कार करते हैं, हमें केवल गौओंकी आवश्यकता है, अतः ले जाते हैं।' फिर क्या था, शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया। यज्ञका प्रत्येक सदस्य याज्ञवल्क्यसे प्रश्न पूछने लगा। याज्ञवल्क्य इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने धैर्यपूर्वक सबके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः देना आरम्भ किया। अश्वलने चुन-चुनकर कितने ही प्रश्न किये, किंतु उचित उत्तर पा जानेके कारण चुप होकर बैठ गये। तब जरत्कारु गोत्रमें उत्पन्न आर्तभागने प्रश्न किया; उनको यथार्थ उत्तर मिल गया; अतः वे भी मौन हो गये। फिर क्रमशः लाह्यायनि, भुज्यु, चाक्रायण, उषस्त और कौषीतकेय कहोल प्रश्न करके चुप बैठ गये। इसके बाद वाचक्नवी गार्गी बोलीं। उन्होंने

पूछा—'भगवन्! यह जो कुछ पार्थिव पदार्थ है, वह सब जलमें ओत-प्रोत है, किंतु जल किसमें ओत प्रोत है?' 'जल वायुमें ओतप्रोत है' याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया।

इस प्रकार क्रमशः वायु, आकाश, अन्तरिक्ष, गन्धर्व-लोक, आदित्यलोक, चन्द्रलोक, नक्षत्रलोक, देवलोक, इन्द्र-लोक और प्रजापतिलोकके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर होनेपर जब गार्गीने पूछा कि 'ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत है?' तब याज्ञवल्क्यने कहा—'यह तो अति प्रश्न है। गार्गी! यह उत्तरकी सीमा है, अब इसके आगे प्रश्न नहीं हो सकता। अब तू प्रश्न न कर, नहीं तो तेरा मस्तक गिर जायगा। वाचक्नवी विदुषी थी, उसने याज्ञवल्क्यके अभिप्रायको समझ लिया और चुप हो रही। तदनन्तर और कई विद्वानोंने प्रश्नोत्तर किये। उसके बाद गार्गीने दो प्रश्न और किये। इन प्रश्नोंके उत्तरमें याज्ञवल्क्यने अक्षरतत्त्वका, जिसे परब्रह्म परमात्मा कहते हैं, भलीभाँति निरूपण किया। गार्गी याज्ञ-वल्क्यका लोहा मान गयी। उसने निर्णय कर दिया कि इस सभामें याज्ञवल्क्यसे बढ़कर ब्रह्मवेत्ता कोई नहीं है; इनसे

कोई पराजित नहीं कर सकता। ब्राह्मणो! आपलोग इसीको बहुत समझें कि याज्ञवल्क्यको नमस्कार करनेमात्रसे आपका छुटकारा हो जा रहा है। इन्हें पराजित करनेका स्वप्न देखना व्यर्थ है।

गार्गीके प्रश्नोंको पढकर उनके गम्भीर अध्ययनका पता लगता है; इतनेपर भी उनके मनमें अपने पक्षको अनुचित-रूपसे सिद्ध करनेका दुराग्रह नहीं था। वे विद्वत्तापूर्ण उत्तर पाकर संतुष्ट हो गयीं और दूसरेकी विद्वत्ताकी उन्होंने मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की। गार्गी भारतवर्षकी स्त्रियोंमे रत्न थीं। आज भी उनकी-जैसी विदुषी एवं तपस्विनी कुमारियोंपर इस देशको गर्व है। —रा० शा०

मैत्रेयी

महर्षि याज्ञवल्क्यकी दो स्त्रियाँ थीं मैत्रेयी और कात्यायनी। इनमे मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थीं, किंतु कात्यायनीकी बुद्धि साधारण स्त्रियोंकी-सी ही थी। मैत्रेयी ज्येष्ठ पत्नी थीं और कात्यायनी छोटी। एक दिन याज्ञवल्क्यने अपनी दोनों पत्नियोंको अपने पास बुलाया और मैत्रेयीको संबोधित करके कहा—'मेरा विचार अब संन्यास लेनेका है; अतः इस स्थानको छोड़कर मैं अन्यत्र चला जाऊँगा, इसलिये तुमलोगोंकी अनुमति लेना आवश्यक है; साथ ही यह भी चाहता हूँ कि घरमे जो कुछ धन-दौलत है, उसे तुम दोनोंको बराबर-बराबर बाँट दूँ; जिससे मेरे चले जानेके बाद तुममें परस्पर विवाद न हो।'

यह सुनकर कात्यायनी तो चुप रहीं, किंतु मैत्रेयीने

पूछा—'भगवन्! यदि यह धन-धान्यसे परिपूर्ण सारी पृथ्वी केवल मेरे ही अधिकारमें आ जाय तो क्या मैं उससे किसी प्रकार अमर हो सकती हूँ?' याज्ञवल्क्यने कहा—'नहीं, भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न मनुष्योंका जैसा जीवन होता है, वे लौकिक दृष्टिसे जितने सुख और सुविधामे रहते हैं, वैसा ही तुम्हारा भी जीवन हो जायगा। किंतु धनसे कोई अमर हो जाय, उसे अमृतत्वकी प्राप्ति हो जाय, इसकी आशा कदापि नहीं है।' मैत्रेयी बोलीं—'भगवन्! जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उसे लेकर क्या करूँगी? यदि धनसे ही वास्तविक सुख मिलता तो आप इसे छोड़कर क्यों जाते? आप ऐसी कोई वस्तु अवश्य जानते हैं, जिसके सामने यह धन, यह गृहस्थी-का सारा सुख तुच्छ प्रतीत होता है। अतः मै भी उसीको जानना चाहती हूँ। 'यदेव भगवान् वेद, तदेव मे ब्रूहि'—केवल जिस वस्तुको श्रीमान् अमृतत्वका साधन जानते हैं, उसीका मुझे उपदेश करें।'

मैत्रेयीकी यह जिज्ञासापूर्ण बात सुनकर याज्ञवल्क्यको बड़ी प्रसन्नता हुई; उन्होंने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'धन्य मैत्रेयी! धन्य! तुम पहले भी मुझे बहुत प्रिय थीं और इस समय भी तुम्हारे मुखसे प्रिय वचन ही निकला है। अतः आओ, मेरे समीप बैठो, मै तुम्हें उपदेश करता हूँ। तुम सुनकर मनन और निदिध्यासन करो। मै जो कुछ कहूँ, उसपर स्वयं भी विचार करके उसे हृदयमें धारण करो।'

यों कहकर महर्षि याज्ञवल्क्यने उपदेश आरम्भ किया—'मैत्रेयी! तुम जानती हो स्त्रीको पति और पतिको स्त्री क्यों प्रिय हैं? इस रहस्यपर कभी विचार किया है? पति इसलिये प्रिय नहीं है कि वह पति है, बल्कि इसलिये प्रिय है कि वह अपनेको संतोष देता है, अपने काम आता है। इसी प्रकार पतिको स्त्री भी इसलिये प्रिय नहीं होती कि वह स्त्री है, अपितु इसलिये प्रिय होती है कि उससे आत्माको सुख मिलता है। इसी न्यायसे पुत्र, धन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, लोक, देवता, समस्त प्राणी अथवा संसारके सम्पूर्ण पदार्थ भी आत्माके लिये प्रिय होनेसे ही प्रिय जान पड़ते हैं; अतः सबसे बढ़कर प्रिय-तम वस्तु क्या है, अपना आत्मा। इसलिये—

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ।'

'मैत्रेयी ! तुम्हे आत्माका ही दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिये; उसीके दर्शन, श्रवण, मनन और यथार्थ ज्ञानसे सब कुछ ज्ञात हो जाता है ।'

तदनन्तर महर्षि याज्ञवल्क्यने भिन्न-भिन्न अनेकों दृष्टान्तों और युक्तियोंसे ब्रह्मज्ञानका यथार्थ उपदेश देकर कहा— 'मैत्रेयी ! तुम निश्चयपूर्वक समझ लो, इतना ही अमृतत्व है । तुम्हारी प्रार्थनाके अनुसार मैंने ज्ञातव्य तत्त्वका उपदेश कर दिया ।' यों कहकर याज्ञवल्क्यजी संन्यासी हो गये । मैत्रेयी यह अमृतमय उपदेश पाकर कृतार्थ हो गयीं । यही यथार्थ सम्पत्ति है, जिसे मैत्रेयीने प्राप्त किया । —रा० शा०

ब्रह्मज्ञानिनी सुलभा

'जनक ज्ञानी कहे जाते हैं । अनेक ब्रह्मवादी उनकी सभाको सुशोभित करते हैं । परंतु अभी भी वादके द्वारा अपने मतकी स्थापना और दूसरोंके मतका खण्डन करनेकी उनकी प्रवृत्ति गयी नहीं । यह तो अपूर्णताका परिचायक है । आत्मस्वरूपकी उपलब्धिके अनन्तर कौन किसका खण्डन करेगा । ऐसे विवेकी, साधुसेवी नरेशको अपूर्ण नहीं रहना चाहिये ।' नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मनिष्ठा, तपस्विनी सुलभा तक जनककी कीर्ति पहुँच चुकी थी । उनके कोमल हृदयमें करुणाका स्रोत उमड़ा और महाराज विदेहकी भ्रान्ति दूर करनेका उन्होने निश्चय कर लिया । योगबलसे उन्होंने एक सुन्दर तपस्विनी स्त्रीका वेष धारण किया और मिथिला पहुँचीं ।

महाराज जनकने उनका स्वागत किया । पाद्य-अर्घ्यादिसे सत्कार किया । उनके भोजन करके सन्तुष्ट होकर आसनपर विराजनेके पश्चात् बड़ी नम्रतासे महाराजने पूछा, 'देवि ! आप कौन हैं ? किसकी पुत्री हैं ? कहाँसे पधारी हैं और कहाँ जाना है ? आप क्या करना चाहती हैं ? प्रश्न किये बिना कोई किसीका परिचय जान नहीं सकता । मैं आपके साथ परमार्थ-सम्बन्धी चर्चा करना चाहता हूँ ।'

संन्यासिनीको मौन देखकर महाराजने कहा, 'मैं अपना परिचय दिये देता हूँ । मैं परमयोगी महात्मा पञ्चशिखका शिष्य हूँ । मेरे सम्पूर्ण संशयोंका उन्होंने मूलोच्छेद कर दिया है । मैंने योग तथा सांख्य शास्त्रके सम्पूर्ण रहस्य प्राप्त कर लिये हैं । मोक्षके साधन, कर्म-ज्ञान तथा उपासना, इन तीनोंको मैं भली प्रकार जानता हूँ । महात्मा पञ्चशिखने यहाँ चातुर्मास्य किया था और उसी समय उन्होंने मुझे योगविद्याका शिक्षण दिया । उन्होंने मुझे राज्य त्यागकर वनमें जानेकी आज्ञा नहीं दी । मेरे गुरुदेवने मुझे निष्काम कर्मकी आज्ञा दी है ।'

इसके पश्चात् महाराजने अपनी अन्तःस्थितिका परिचय दिया 'ज्ञानसे मोक्ष होता है । योगसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे ही सुख-दुःखादि द्वन्द्व दूर हो जाते हैं । यह ज्ञान मैंने प्राप्त किया है । इस सांसारिक जीवनसे मुझे कोई आसक्ति नहीं । मेरे कर्मबीज गुरुवाक्योंकी ज्ञानाग्निमें भूने जा चुके हैं । अब उनमें अङ्कुरित होनेकी शक्ति नहीं । कोई मेरे एक हाथको चन्दन लगावे तथा दूसरेको लकड़ीकी भाँति छीले, तो भी मेरे लिये दोनों समान हैं । मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें मुझे कोई वैषम्य नहीं जान पड़ता । कर्मसे लाभ होता हो तो भी उसकी अपेक्षा न करना और कर्मोंका प्रयोजन न रहा हो तो भी उनका त्याग न करना चाहिये, यह मुझे गुरुने उपदेश किया है । प्रयत्न, नियम, राग-द्वेष, कामना, परिग्रह, मान, दम्भ, स्नेहादि सम्पूर्ण विषयोंमें समान रहनेकी मुझे शिक्षा मिली है । गैरिकवस्त्र, कमण्डलु, दण्ड-धारणादि त्यागके बाह्य चिह्न हैं । ये मोक्षके कारण नहीं । मोक्षके लिये किसी वस्तुका त्याग या स्वीकार आवश्यक नहीं । ज्ञान ही मोक्षका हेतु है । राज्य-वैभवादिमें होकर भी मैं उनसे अलिप्त हूँ । स्नेहबन्धनको मैंने विचार एवं त्यागके खड्गसे काट दिया है ।'

महाराजने इस प्रकार अपना परिचय देकर पुनः पूछा, 'आपमें योगका प्रभाव देखकर मेरा आपके प्रति आदर भाव है । आश्चर्य है कि आपका सौन्दर्य एवं अवस्था योगके

अनुरूप नहीं। आपमें संन्यासियोंके योग्य यम, नियम, संयम स्पष्ट लक्षित हैं। आपने आडम्बर तो नहीं किया है? आप क्यों आयीं? आपका उद्देश्य क्या है? जो भी हो, मैं कहूँगा कि आप अपने संन्यास-धर्मपर सदा स्थिर रहें। मुझे लगता है कि गुप्त वेषमें आप मेरे ज्ञानकी परीक्षा लेने पधारी हैं। आपका यहाँ आनेका कारण, जाति तथा साधनाभ्यास मैं जानना चाहता हूँ।'

संन्यासिनीने किसी रोष एवं असन्तोषका भाव व्यक्त नहीं किया। उसने प्रथम बतलाया कि कैसे बोलना चाहिये। बोलनेमें किस प्रकारके शब्दोंका उपयोग करना चाहिये। वाणीमें नव दोष होते हैं और नव दोष बुद्धिदोष उत्पन्न करते हैं। इन अठारह दोषोंसे बचकर अठारह गुणोंसे युक्त वाणी ही श्रेष्ठ होती है। वाक्य कैसे होना चाहिये, यह भी उसने बताया। स्पष्ट अर्थयुक्त, द्वि-अर्थ दोषसे रहित, आठ गुण-वाला वाक्य होना चाहिये। इस प्रकार काम, क्रोध, भय, लोभ, दैन्य, गर्व, लज्जा, दया तथा मानके द्वारा प्रेरित वाक्य भी दूषित होता है। यह बड़ा सुन्दर एवं विशद विषय है। भाषा-शास्त्रका इससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। महाभारतके शान्तिपर्वमें जनक-सुलभा-संवादमें ही इसे भली प्रकार देखना चाहिये।

सुलभाने वाक्य एवं भाषाके गुण-दोषका निरूपण करके महाराजसे कहा, 'जैसे लाख और काष्ठ, जल और धूलिके संयोगसे ये पदार्थ परस्पर सन्धीभूत होते हैं, इसी प्रकार देहसे पृथक् आत्मासे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये तन्मात्राएँ अपनी इन्द्रियोंके साथ संश्लिष्ट हैं। इस विषयमें पूछने योग्य क्या है? तुम पूछते हो कि मैं कौन हूँ, पर यह प्रश्न निरर्थक है। जड एवं चेतनके संयोगके मिथ्याज्ञानसे मेरे निर्माणकी प्रतीति है। तुम्हारी भी प्रतीति ऐसी ही है। चेतन तो एक एवं अविभाज्य है तथा जड, मेरे, तुम्हारे तथा सभी शरीरोंमें वही हैं। जैसे रेतके कण एक दूसरेसे लगे होनेपर भी परस्पर एक दूसरेको नहीं जानते, वैसे प्राणी भी परस्पर एक दूसरेको आत्मस्वरूप नहीं जानते। नेत्र अपनेको देख नहीं पाता, रसना अपना स्वाद नहीं लेती। कोई अपनेको पहचानता नहीं। इन्द्रियाँ भी एक दूसरीको नहीं जानतीं। जैसे नेत्र बाह्य सूर्यके प्रकाशके बिना वस्तुओंको देखनेमें असमर्थ हैं, वैसे ही इन्द्रियोंको भी बाह्य पदार्थोंकी अनुभूतिके लिये गुणों-की आवश्यकता होती है। पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, सत्त्व, अहं, अविद्या, प्रकृति, व्यक्ति, द्वन्द्वानुभूतिकी शक्ति, काल, विधि, वीर्य, बल तथा समधा प्रकृति—ये तीस गुण हैं। ये तीसों जहाँ सन्धीभावमें हों, उसे शरीर कहते हैं। अव्यक्त प्रकृतिने उपर्युक्त गुणोंको स्वीकार करके जो व्यक्तरूप बनाया है, वही मैं हूँ। तुम और दूसरे शरीरधारी भी वही हैं। तुम कौन हो? तुम्हारा यह प्रश्न व्यर्थ है।'

इस प्रकार तत्त्वज्ञानका विविध भाँतिसे उपदेश करनेके अनन्तर संन्यासिनीने बताया, 'मैं जातिसे क्षत्रिया हूँ। मेरी उत्पत्ति शुद्ध है। मैंने योग्य वर न मिलनेसे विवाह नहीं किया। प्रधान नामक राजर्षिके कुलमें मैं उत्पन्न हूँ। मोक्षधर्ममें प्रवृत्त होकर मैंने संन्यासियोंके व्रतको स्वीकार कर लिया है। मैं एकाकी पर्यटन करती हूँ। किसी छल या कपटसे मैं यहाँ नहीं आयी हूँ। मुझे किसीका धन हरण नहीं करना है और न मैं धर्म-भ्रष्ट हूँ। मैं अपने व्रतमें स्थिर हूँ। तुम्हारी अत्यन्त कीर्ति सुनकर मैं यहाँ आयी। तुम्हारे विचारोंकी भ्रान्ति दूर कर तुम्हें योग्य मार्ग दिखलाने मैं यहाँ आयी हूँ। मैं तुम्हारे भलेके लिये कहती हूँ। स्वपक्ष-समर्थन तथा परपक्ष खण्डनकी तुम्हारी प्रवृत्ति बतलाती है कि अभी तुम्हारा अपने स्वपक्षमें आग्रह है। जहाँ एक ही आत्मतत्त्व है, वहाँ स्व और पर कहाँ? कहाँ पक्ष और कहाँ विपक्ष? तुम उसी आत्मतत्त्वमें स्थित होकर इस आग्रहसे उपरत हो जाओ।'

सुलभाने महाराज जनकसे सत्कार प्राप्त कर एक रात्रि वहीं निवास किया और दूसरे दिन वहाँसे प्रस्थान किया।

—सु० सिं०

ब्रह्मवादिनी शश्वती

ब्रह्मवादिनी रोमशाकी भाँति शश्वती भी वेदकी एक ऋचाकी ऋषिका हैं। ये अङ्गिरा ऋषिकी कन्या और आसंग राजाकी पत्नी थीं। ऋग्वेदके अष्टम मण्डलके प्रथम सूक्तकी ३४वीं ऋचाका संकलन इनके द्वारा हुआ है। इनकी ऋचामें बहुत ही उत्तम तथा गूढ़ उपदेश भरा है।

चूडाला

'यह शिखिध्वज आपको अभिवादन करता है ।' मंदराचलकी एकान्त शान्त गुफामें देवताओंके निमित्त पुष्प-चयन करके माला गुम्फन करते हुए तपस्वीने एक गौरवर्ण तरुण तेजोमूर्ति ब्राह्मणको देखकर अभ्युत्थान दिया। अर्घ्य, पाद्यके अनन्तर पुष्पमाल्य अतिथिको पाकर सार्थक हो गया। ब्राह्मण आसनासीन हुए।

'तुम्हारा यह क्षीणकाय, ये जटाएँ, यह कठोर तपस्या और यह विस्तृत कर्मजाल किसलिये है।' परिचयमें ब्राह्मणने अपनेको कुम्भ ऋषि बतलाया था और राजासे तपःकुशलका शिष्टाचार समाप्त हो चुका था। 'तुमने मेरा अत्यन्त सत्कार किया है। मैं प्रसन्न हूँ। तप संन्यासी तथा वानप्रस्थाश्रमीके लिये उपयुक्त है और तुम तरुण हो। यह विषमें तुमने किस उद्देश्यसे स्वीकार किया? सुख और दुःख तो मनके धर्म हैं, आत्माके धर्म हैं नहीं। तुम्हारे राज्यसुख छोड़ने और तपःकष्ट उठानेका आत्मासे क्या सम्बन्ध। यदि तुम्हें मोक्ष ही अभीष्ट है तो तुम्हें आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये। मिथ्या अज्ञानावरणको दूर करो। तुम्हारी पत्नी चूडालाने तुम्हें ठीक ही उपदेश किया था। उसका अनादर करके जब तुम वनमें ही आ गये तो फिर यहाँ भी तुमने सर्वस्व त्यागकी पूर्ण प्राप्ति क्यों नहीं की?'

'धन, पुत्र, स्त्री, राज्यादि तो किसीके हैं नहीं। तात्त्विक दृष्टिसे तो वे सर्वेश्वरके हैं। उनका त्याग त्याग नहीं है।' यह समझाते ब्राह्मणकुमारको देर नहीं लगी। राजाने आसन छोड़ा और उठ खड़े हुए। 'मैं अब कहीं भी पड़ा रहूँगा। मेरी कोई गुफा नहीं, कोई आश्रम नहीं।' उन्होंने आसन, मृगछाला और कमण्डलु आदि भी छोड़ दिया।

'अभी भी बहुत कुछ छोड़ना है।' ब्राह्मणकुमार मुसकराये।

'हाँ' राजाने सोचा। पाठकी पुस्तक, जपकी माला उन्होंने छोड़ दी एक शिलापर।

'अभी भी ·······'

नरेशने जल उठाया और संकल्प किया 'मैं अपनी समस्त तपस्या, जप-पूजादिका फल त्याग करता हूँ।'

'अभी और!'

राजाने कुछ सोचा और एक शिखरपर जा खड़े हुए। वे कूदना ही चाहते थे कि विप्रकुमारने पीछेसे पकड़ लिया। 'तुम समझते हो कि शरीर-त्यागसे ही सब हो जायगा?' तनिक स्वर कठोर था। आत्महत्याका पाप और मिलेगा। शरीर तो दूसरा धारण करना होगा। जो शरीरको क्रियाशक्ति देता है, जो सारे संस्कारोंको बनाता है, जो शरीर दिया करता है, उस अहंकारका त्याग तुम क्यों नहीं करते? 'मैं कर्ता हूँ, मैंने किया है, मैं त्याग करूँगा, क्या यह सत्य है?' आत्मा तो साक्षी है, अकर्ता है। तुम इस अहंकारका त्याग किये बिना पूर्ण त्यागी कैसे बनोगे?'

तपस्याने अन्तःकरण शुद्ध कर दिया था। मल नष्ट हो गया था। फल-त्यागके संकल्पने विक्षेपको शमन कर दिया था। इन बोधवाक्योंने सहसा आवरणपर आघात किया। वह दूर हो गया। राजाने चाहा कि वह अपने ज्ञानदाताके पैरोंपर सिर रख दे। यह क्या! उनके ही पैरोंपर गिर पड़ा यह कौन है? विप्रकुमार कहाँ गये?

'प्रभो! आप यह क्या कर रहे हैं। मैं तो आपकी दासी हूँ।' उनकी पत्नी चूडाला मन्दस्मितिसे गुहाके द्वारदेशपर किसी देवीके समान जान पड़ती थी।

× × ×

सौराष्ट्र-राजकन्या चूडाला जितनी ही सुन्दर थी, उतनी ही नृत्य-संगीतादि ललित कलाओंमें निपुण थी। शील और प्रतिभा उसे जन्मसे ही प्राप्त थी। [illegible]

शिखिध्वजके समान शूर, सुन्दर, सदाचारी एवं प्रतापी नरेशके द्वारा उसका पाणिग्रहण हुआ। दम्पतिने अपने हृदयोंके साथ सद्गुणोंका भी आदान-प्रदान किया और फलतः चूडाला धर्मशास्त्र एवं नीतिमें तथा महाराज ललित कलाओंमें भी प्रवीण हो गये। यदि धर्मपूर्वक अर्थ और कामका सेवन हो तो धर्म स्वतः इनसे विरक्ति उत्पन्न करके मानवको उसके परम लक्ष्यकी ओर प्रेरित कर देता है। चूडालाकी प्रतिभा पतिसे धर्मशास्त्रका ज्ञान प्राप्त करके पुष्ट हो गयी। अब उसमें जिज्ञासा उठी 'मैं कौन हूँ? संसारमें क्यों आयी? यहाँ आनेका उद्देश्य क्या है?'

जिज्ञासाने हृदयभूमिमें मननका बीज डाला। सदाचार-शुद्ध हृदयमें वह बढ चला। निरन्तर मननने स्पष्ट कर दिया कि शरीर, इन्द्रियाँ, मन, प्राण, बुद्धि तथा अहं भी अपना स्वरूप नहीं। अन्ततः जो सबसे परे है, सबका बाध होनेपर उस उपलब्ध स्वरूपमें स्थिति तो होनी ही थी। परम तत्त्वकी उपलब्धिके पश्चात् चूडालाने चाहा कि पतिको भी वह इस निःश्रेयस् स्थितिका साक्षात् करा दे। महाराजके हृदयमे अब भी वासनाओंके बीज थे। संस्कार थे। पत्नीका बार-बारका प्रेमोपदेश भी उन्हें मार्गपर लानेमें समर्थ न हुआ। वे चूडालाके शील-सौन्दर्यपर मुग्ध थे, अन्ततः चूडालाने सोचा 'धर्मयुक्त भोगमें लिप्त रहनेका फल है वैराग्य और आरम्भिक वैराग्य विचारहीन होता है। महाराजको ऐसा वैराग्य अवश्य होगा और तब वे चुपचाप जंगलमें चले जायँगे। वहाँ कायक्लेश-प्रधान तप करेंगे। इससे कोई लाभ होगा नहीं।' ऐसा अवसर आनेपर पतिका अनुगमन करने तथा उपयुक्त अवसरपर उन्हें उचित मार्गपर लानेके लिये उसने साधन प्रारम्भ किया और आकाशमार्गसे गमनकी सिद्धि प्राप्त की।

अन्ततः महाराजको भोगोंसे वैराग्य हुआ। उन्होंने वनमें जाकर तप करनेका निश्चय किया। चूडालाने समझाया 'प्रत्येक कार्य यथावसर ही उपयुक्त होता है। आप गृहस्थ हैं। आपके लिये वनवास विधर्म है।' लाभ कुछ नहीं हुआ। महाराज एक रात्रिको चुपचाप उठे और वनमें चले गये। चूडालाके लिये महाराजका पता लगा लेना कठिन न था, पर उनसे परिचय करना व्यर्थ था। समयकी प्रतीक्षा करनी थी। उसने राज्यकार्य सम्हाला और अठारह वर्षतक उसे चलाती रही।

× × ×

'आप विरक्त होकर चले आये थे। आपका चित्त इस स्थितिमें न था कि आप स्वस्थ विचार करें। तपस्याने जब हृदयके मलको नष्ट कर दिया तो दासीने सेवामें उपस्थित होनेका अवसर पाया।' चूडालाके नेत्र आनन्दाश्रुसे भरे थे।

'अब क्या इच्छा है।' महाराजने पूछा। 'वनमें रहना हो मेरे साथ तो मुझे आपत्ति नहीं। मेरी तपस्या आपको मेरे साथ इसी शरीरसे स्वर्गमें भी रखनेमें भी समर्थ है।'

'मुझे भोग आकर्षित नहीं करते। स्वर्गका मुझे क्या करना है।' चूडालाका आनन्द आज सीमातीत था। 'तपस्यासे कुछ प्राप्त करना नहीं है। राज्य प्रारब्धवश स्वतः प्राप्त है। प्रजा-पालनका कर्तव्य आपको कर्मविधानसे मिला है। उसका अस्वीकार आप क्यों करें।'

चूडाला पतिके साथ राजधानी लौट आयी। आत्मदर्शन-सम्पन्ना पत्नीने पतिकी इस स्थितिमें भी सहधर्मिणीके कर्तव्यको पूर्ण किया। पर्याप्त समयतक दम्पतिने राज्यका संचालन किया। अन्तमें तो उन्होंने परनिर्वाण प्राप्त कर ही लिया था।

महाराजने प्रसन्न होकर चूडालाको आशीर्वाद दिया था 'तुम विश्वकी श्रेष्ठ सतियोंमें सदा सम्मानित होओगी।'

पत्नीके लिये पतिका हार्दिक आशीर्वाद तो ईश्वरीय वरदान है। —सु० सिं०

ब्रह्मवादिनी ममता

ममता दीर्घतमा ऋषिकी माता थीं। ये बहुत बड़ी विदुषी और ब्रह्मज्ञानसम्पन्ना थीं। अग्निके उद्देश्यसे किया हुआ इनका स्तुतिपाठ ऋग्वेदसंहिताके प्रथम मण्डलके दशम सूक्तकी ऋचामें मिलता है। उसका भावार्थ यह है—

हे दीप्तिमान्! असंख्य चोटियोंवाले और देवताओंको बुलानेवाले अग्नि! दूसरे अग्निकी सहायतासे प्रकाशित होकर आप इस मानवस्तोत्रको सुनिये। श्रोतागण ममताके सदृश ही अग्निके उद्देश्यसे इस मनोहर स्तोत्रको पवित्र घृतकी भाँति अर्पण करते हैं।

माता मैना (मेनका)

पर्वतराज हिमालयकी पत्नी मैना पर्वतराजके साथ ही आकल्प चिरजीवी हैं। सतीने दक्षयज्ञमें शरीर छोड़ा तो पुनः देह-धारणके लिये एकमात्र साध्वी मैना-जैसी ही स्त्री उनकी माता बननेकी अधिकारिणी हो सकती थीं। मैनाजीके अनेक गिरिपुत्र थे, अनेक सरितापुत्रियाँ थीं; किन्तु पार्वती उनकी अन्तिम पुत्री थीं और दिव्या। माताका अपार स्नेह अपनी बालिकापर था। देवर्षि नारदने आकर उनकी बालिकाका हाथ देखा और पर्वतराजको पता नहीं क्या-क्या समझा गये। माताको तो यही चिन्ता थी कि पुत्रीका विवाह अच्छे घरमें, सुयोग्य वरसे हो। पर्वतराजने समझाया कि श्रेष्ठ पति प्राप्त करनेके लिये पुत्रीको तपस्या करनेका आदेश दो।

'मेरी कुसुम-सुकुमार बालिका तप करेगी ? एकाकिनी वनमें रहेगी ?' माताका हृदय फटने लगा। अपने मुखसे वे कैसे यह आदेश दें। उनकी बालिकाने ही उनकी गोदमें बैठकर बड़े मधुर स्वरसे कहा, 'मा ! स्वप्नमें एक तेजस्वी ब्राह्मणने मुझे तपस्या करनेको कहा है। मैं तप करूँगी। तुम प्रसन्नतासे आज्ञा दो।' हृदयको वज्र बनाकर आज्ञा देनी पड़ी। जिनकी आयु कल्प और युगोंमें गिनी जाती है, उनके लिये शताब्दियोंका क्या अर्थ होता है ? फिर भी जब एक दिन पर्वतराज तपोवन जाकर कन्याको लौटा लाये तो माताको लगा कि उनकी बच्ची कल्पोंके पश्चात् लौटी है। रात्रि-दिवस उन्होंने अपनी उमाकी चिन्ता करते हुए ही विताये थे।

नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥

बारात आयी। बड़ी साधसे मैनाजी सखियोंके साथ जामाताका परिछन करने गयी थीं। मुण्डमाल, फुफकारते नाग, बैलपर बैठा वह पागल औघड़। भयसे चीत्कार करके थाल फेंककर वे भाग आयीं। पुत्रीको गोदमें बैठाकर विलाप करने लगीं। 'हाय, हाय, मेरी हिम-सी कोमल बच्चीने तपस्या करते-करते अपनेको सुखा दिया और परिणाममें मिला यह पागल वर। नारदके घर-गृहस्थी तो है नहीं, बड़े निर्दय हैं। ऐसा भी परिहास किया जाता है। मैं इस मुण्डमालीको तो लड़की दूँगी नहीं। यदि पतिदेवने आग्रह किया तो उमाको गोदमें लेकर ऊपरसे कूद पड़ूँगी या समुद्रमें डूब जाऊँगी। संखिया और वत्सनाग भी मेरे ही यहाँ उत्पन्न होते हैं।'

पार्वतीजीने माताको बहुत समझाया, परन्तु वे अविचल रहीं। समाचार पाकर देवर्षि सप्तर्षियोंको लेकर आये। 'माता ! तुम्हारी पुत्री महाशक्ति जगद्धात्री हैं। वे भगवान् शंकरकी नित्य अर्धाङ्गिनी हैं। वेद-शास्त्र भवानी, दुर्गा, महामाया कहकर इन्हींकी स्तुति करते हैं।' देवर्षिने पार्वतीके पूर्वजन्मका परिचय दिया। सप्तर्षियोंने अनुमोदन किया। जगज्जननी उमाने माताके मोहको दूर किया। हृदयमें भगवान् शंकर एवं पार्वतीके वास्तविक स्वरूप प्रकाशित हो गये। माताने जामाताकी अर्चना की और सोल्लास पार्वतीके समर्पणमें पतिके साथ योग दिया। भगवती उमाकी जननी होकर वे धन्य हो गयीं।

—सु० सिं०

ब्रह्मवादिनी उशिज

ममताके पुत्र दीर्घतमा ऋषिकी पत्नीका नाम उशिज था। प्रसिद्ध महर्षि कक्षीवान् इन्हींके सुपुत्र थे। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ११६ से १२१ तकके मन्त्र इन्हींके द्वारा संकलित हैं। प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी घोषा इन्हींकी पौत्री थीं। यह सारा ही कुटुम्ब ब्रह्मपरायण था। इनके दूसरे पुत्रका नाम था दीर्घश्रवा। ये भी प्रसिद्ध ऋषि थे।

सती सावित्री

मद्रदेशमें एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। वे बड़े धर्मात्मा, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे। उनका नाम था अश्वपति। नगर और देशकी प्रजा उनपर बहुत प्रेम रखती थी। वे सदा सब प्राणियोंके हितसाधनमें लगे रहते थे। राजाके यहाँ सब प्रकारका सुख था; किंतु उनके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये उन्होंने सन्तान-प्राप्तिके उद्देश्यसे कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। कठोर नियमोंका पालन करते हुए उन्होंने अठारह वर्षोंतक सावित्रीदेवीकी आराधना की। अठारहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर देवीने राजाको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और 'तुम्हें शीघ्र ही एक तेजस्विनी कन्या प्राप्त होगी।' यों वर देकर सावित्री अन्तर्धान हो गयीं। राजा अपने नगरमें लौटकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे। तदनन्तर समय आनेपर राजाकी बड़ी महारानीने, जो मालवनरेशकी कन्या थीं, गर्भ धारण किया। यथासमय रानीके गर्भसे कमलके समान नेत्रोंवाली एक कन्या प्रकट हुई। राजाने प्रसन्न होकर उस कन्याके जातकर्म आदि संस्कार किये। उस कन्याके लिये सावित्री-मन्त्रद्वारा हवन किया गया था और सावित्रीने ही प्रसन्न होकर उसे दिया था; इसलिये ब्राह्मणोंने तथा कन्याके पिताने भी उसका नाम सावित्री रक्खा। राजकन्या मूर्तिमती लक्ष्मीके समान दिनों-दिन बढ़ने लगी। धीरे-धीरे उसने युवावस्थामें प्रवेश किया। राजाकी वह सुन्दरी कन्या सोनेकी प्रतिमाके समान तेजसे उद्भासित हो रही थी। जो ही उसके सामने जाता, वही दिव्य तेजसे प्रतिहत हो जाता था। उसे देखकर सब यही कहते, यह मानवी नहीं, कोई देवकन्या है। इसीलिये कोई भी राजा या राजकुमार उसका वरण न कर सका।

कन्याको सयानी देख राजाको उसके विवाहके लिये बड़ी चिन्ता हुई। वे एक दिन बोले—'बेटी! अब तू विवाहके योग्य हो गयी है, इसलिये स्वयं ही अपने योग्य वरकी खोज कर।' यों कहकर राजाने वृद्ध मन्त्रियोंको साथ जाने और यात्राकी तैयारी करनेका आदेश दिया। सावित्रीने कुछ संकुचित-सी होकर पिताके चरणोंका स्पर्श किया और उनकी आज्ञा मानकर राजभवनसे निकली। द्वारपर सोनेका रथ तैयार खड़ा था। सावित्री उसपर जा बैठी और बड़े-बूढ़े मन्त्रियोंसे सुरक्षित हो राजर्षियोंके रमणीय तपोवनोंमें विचरण करने लगी। माननीय वृद्ध पुरुषोंको नमस्कार करती, ब्राह्मणोंको धन देती तथा नाना प्रकारके पुण्य करती हुई वह भिन्न-भिन्न तीर्थों और देशोंमें घूमती रही।

एक दिन मद्रराज अश्वपति अपनी राजसभामें बैठे हुए नारदजीसे वार्तालाप कर रहे थे, उसी समय समस्त तीर्थोंकी यात्रा पूरी करके सावित्री मन्त्रियोंके साथ पिताके घर लौट आयी। उसने पिताको नारदजीके साथ बैठे हुए देखकर उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम किया। नारदजीने पूछा—'राजन्! आपकी यह कन्या कहाँ गयी थी और कहाँसे आयी है? अब तो यह सयानी हो गयी है। आपने अभीतक इसका विवाह क्यों नहीं किया?' राजाने कहा—'देवर्षे! इसी कार्यके लिये मैंने इसे भेजा था। यह अभी-अभी लौटी है। अब इसीके मुँहसे सुनिये—इसने किसको अपना पति चुना है?'

नारदजीसे ऐसा कहकर अश्वपतिने अपनी पुत्रीसे कहा—'बेटी! तुम अपना सब वृत्तान्त सुनाओ।' सावित्रीने संक्षेपसे ही उत्तर दिया—'शाल्वदेशमें एक धर्मात्मा राजा थे। उनका नाम द्युमत्सेन है। वे पहले राज्य करते थे; किंतु पीछे उनकी आँख अंधी हो गयी। उस समय उनका पुत्र बहुत छोटा था। शत्रुओंको आक्रमण करनेका मौका मिल गया। पड़ोसमें ही एक राजा था, जिसके साथ उनकी पहलेसे शत्रुता चली आती थी। उसीने उनका राज्य छीन लिया। तब वे गोदमें बालक लिये हुए पत्नीके साथ वनमें चले गये और वहाँ

उत्तम नियमोंका पालन करते हुए तपस्यामें लग गये। उनके पुत्र सत्यवान्, जो नगरमें जन्म लेकर तपोवनमें पले और बढ़े हैं, सर्वथा मेरे योग्य हैं; अतः मैंने अपने मनसे उन्हींको पति चुना है।'

यह सुनकर नारदजी सहसा बोल उठे—'राजन्! यह तो बड़े खेदकी बात हो गयी। सावित्रीने बड़ी भूल की है। बेचारी जानती नहीं थी, इसीलिये उत्तम गुणोंसे युक्त सत्यवान्का वरण कर लिया। उस राजकुमारके पिता और माता सदा सत्य ही बोलते हैं; इसीलिये ब्राह्मणोंने उसका नाम सत्यवान् रख दिया।' राजाने कुछ चिन्तित होकर पूछा—'नारदजी! क्या इस समय भी माता-पिताके प्रति भक्ति रखनेवाला सत्यवान् तेजस्वी, बुद्धिमान्, क्षमावान् और शूरवीर है?' नारदजीने कहा—'द्युमत्सेनका वह वीरपुत्र सूर्यके समान तेजस्वी, बृहस्पतिके सदृश बुद्धिमान्, इन्द्रके समान वीर, पृथ्वीकी भाँति क्षमाशील, रन्तिदेवके समान दानी, उशीनरपुत्र शिबिके समान ब्राह्मणभक्त और सत्यवादी ययातिके समान उदार, चन्द्रमाके समान नयनाभिराम और अश्विनीकुमारोंके समान रूपवान् है। वह जितेन्द्रिय, विनयी, पराक्रमी, सत्यप्रतिज्ञ, मिलनसार, ईर्ष्यारहित, लज्जाशील और तेजस्वी है।' राजाने चकित होकर कहा—'मुनिवर! आपने तो उसे समस्त गुणोंका भण्डार बता दिया। उसमें कोई दोष भी है क्या?' नारदजी बोले—'राजन्! दोष तो उसमें एक ही है, जिसने समस्त गुणोंपर पर्दा डाल दिया है। दोष भी साधारण नहीं है, उसे किसी भी प्रयत्नके द्वारा मिटा देना असम्भव है। आजसे ठीक एक वर्षके बाद उसकी आयु समाप्त हो जायगी। उसे देहत्याग करना पड़ेगा।' नारदजीकी बात सुनकर राजा अश्वपति व्यग्र हो गये। उन्होंने सावित्रीको सम्बोधित करके कहा—'बेटी! अब फिरसे यात्रा करो और दूसरे किसी योग्य वरका वरण करो। सत्यवान्का एक ही दोष ऐसा है, जिसने सब गुणोंको ढक दिया है। उसकी आयु थोड़ी है। वह एक ही वर्षमें शरीर त्याग देगा।'

सावित्री सती थी। उसका धार्मिक भाव जीवन और मृत्युकी सीमासे ऊँचे उठ चुका था। उसने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—'पिताजी! धनका बँटवारा करते समय जो चिट्ठी आदि डाली जाती है, वह कार्य एक ही बार होता है; कन्या एक ही बार किसीको दी जाती है तथा 'मैं दूँगा' यह प्रतिज्ञा एक ही बार की जाती है। ये तीन बातें एक-एक बार ही हुआ करती हैं, सत्यवान् दीर्घायु हों, अथवा अल्पायु; गुणवान् हों, अथवा निर्गुण, मैंने एक बार उन्हें अपना पति स्वीकार कर लिया। अब दूसरे पुरुषको मैं नहीं वर सकती। पहले मनसे निश्चय करके फिर वाणीसे प्रकट किया जाता है और जो वाणीसे प्रकट किया जाता है, उसीको क्रियाद्वारा पूर्ण किया जाता है; अतः मैंने जो पतिका निश्चय किया है, उसमें मेरा मन ही प्रमाण है।* सावित्रीके इस निश्चयका नारदजीके मनपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने राजाको समझाते हुए कहा—'महाराज! सावित्रीकी बुद्धि स्थिर है। इसने धर्मका आश्रय लिया है। अतः इसे किसी प्रकार भी इस निश्चयसे विचलित नहीं किया जा सकता। सत्यवान्में जो-जो गुण हैं, वे दूसरे किसी पुरुषमें हैं भी नहीं, अतः मुझे तो अब यही अच्छा जान पड़ता है कि आप उसे कन्यादान कर दें।' राजाने कहा—'भगवन्! आप ही मेरे गुरु हैं। आपने जो कुछ कहा है, वह ठीक है। मैं ऐसा ही करूँगा।' नारदजीने कहा—'सावित्रीका विवाह निर्विघ्न समाप्त हो तथा आप सब लोगोंका कल्याण हो—इसके लिये यथासाध्य मैं भी चेष्टा करूँगा।'

यों कहकर नारदजी अन्तर्धान हो गये। राजा अश्वपतिने कन्याके विवाहके लिये सब सामग्री एकत्रित करायी। फिर वृद्ध ब्राह्मण, पुरोहित तथा ऋत्विजोंको बुलाकर शुभमुहूर्तमें कन्याके साथ प्रस्थान किया। राजा द्युमत्सेनके पवित्र आश्रमपर पहुँचनेके बाद राजा अश्वपति सवारीसे उतर पड़े। और ब्राह्मणोंके साथ पैदल ही उन राजर्षिके समीप गये। उन्होंने द्युमत्सेनकी यथायोग्य पूजा की और नम्रतापूर्ण वचनोंमें अपना परिचय दिया। धर्मके ज्ञाता राजर्षि द्युमत्सेनने भी मद्रराजको अर्घ्य और आसन देकर सम्मानित किया। तत्पश्चात् अश्वपतिने कहा—'राजर्षे! मेरी कन्या सावित्री यहाँ उपस्थित है। आप धर्मानुसार इसे अपनी पुत्रवधूके रूपमें ग्रहण करें।' द्युमत्सेनने पहले तो अपनी वर्तमान

---

* सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥
दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।
सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम्॥
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः॥

(महाभारत वनपर्व २९४ । २६—२८)

अवस्थाको ध्यानमें रखकर कुछ असमर्थता प्रकट की; किंतु मद्रराजके पुनः अनुरोध करनेपर उन्होंने इस सम्बन्धको सहर्ष स्वीकार किया । तदनन्तर उस आश्रममें रहनेवाले सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको बुलाकर दोनो राजाओंने विधिपूर्वक वर-वधूका विवाह-सस्कार सम्पन्न कराया । राजा अश्वपति कन्यादानके साथ ही यथायोग्य वस्त्राभूषण आदि दहेजमें देकर प्रसन्नतापूर्वक अपने नगरको चले गये । सत्यवान्‌को सर्वगुणसम्पन्ना सुन्दरी पत्नी मिली और सावित्रीने मनोवाञ्छित पति प्राप्त किया । अतः दोनों ही दम्पति बहुत प्रसन्न थे । पिताके चले जानेपर सावित्रीने सब आभूषण उतारकर रख दिये और गेरुआ वस्त्र तथा वल्कल धारण कर लिया । उसने सेवा-भाव, सद्गुण, विनय, सयम तथा सबके मनके अनुसार कार्य करने आदिके द्वारा सबको प्रसन्न कर लिया । वह सासको नहलाती, धुलाती, उनके पैर दबाती, बिछावन करती, ओढ़ने और पहननेके लिये वस्त्र आदि देती और उनकी सँभाल करती; इससे सासको वह प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो गयी । ससुरको देवताके समान मानकर उनकी पूजा और योग्य सेवा करती तथा मौन रहती थी । इससे ससुर भी उससे बहुत सन्तुष्ट रहते थे । इसी प्रकार वह पतिसे प्रिय वचन बोलती, बड़ी कुशलताके साथ उनकी सेवाका प्रत्येक कार्य करती, शान्तभावसे रहती और एकान्तमें भी अपनी सेवाओंसे उन्हे सुखी बनाती थी । इन सब गुणोंसे पतिदेव भी उसके ऊपर बहुत सन्तुष्ट रहते थे । इस प्रकार उस आश्रममें रहकर तपस्या करते हुए उन सब लोगोंका कुछ समय बीता ।

सावित्रीको नारदजीकी बात भूलती नहीं थी । दिन रात उसीकी चिन्तामे वह गली जा रही थी । दिन बीतते क्या देर लगती है । वह समय भी आ पहुँचा, जिसमें सत्यवान्‌की मृत्यु निश्चित थी । सावित्री एक-एक दिन गिनती रहती थी । जब उसने देखा, आजके चौथे दिन पतिदेवकी मृत्यु होनेवाली है, तो उसने तीन रातका निराहार व्रत धारण किया और रात-दिन स्थिर होकर बैठी रही, जब सत्यवान्‌के जीवनका एक ही दिन शेष रह गया, तो उस दिन रातमें सावित्रीको बड़ा दुःख हुआ । उसने बैठे-ही-बैठे सारी रात बिता दी । सबेरा होनेपर यह सोचकर कि आज ही वह दिन है, उसने दो घड़ी दिन आते-आते अपना सारा प्रातःकृत्य समाप्त कर दिया; फिर प्रज्वलित अग्निमें हवन किया और आश्रमपर रहनेवाले समस्त ब्राह्मणों, वृद्धपुरुषों तथा सास-ससुरके चरणोंमें क्रमशः प्रणाम करके वह हाथ जोड़कर खड़ी रही । उस तपोवनके सभी तपस्वियोंने सावित्रीको सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद दिया । सावित्रीने भगवान्‌का चिन्तन करते हुए 'ऐसा ही हो' इस भावनाके साथ उनका आशीर्वाद ग्रहण किया । इसके बाद नारदजीके कथनानुसार वही काल और वही मुहूर्त समीप आ गया । यह सोचकर सावित्रीके मनमें बड़ा दुःख होने लगा । इतनेहीमें सत्यवान् कंधेपर कुल्हाड़ी रखकर वनसे समिधा लानेके लिये तैयार हुआ । यह देख सावित्रीने कहा—'नाथ ! आज आप अकेले न जायँ । मैं भी आपके साथ चलूँगी ।' सत्यवान् बोला—'प्रिये ! वनका रास्ता कठिन है । तुम वनमें पहले कभी गयी नहीं हो । इधर व्रत और उपवासने तुम्हे दुर्बल बना दिया है; अतः पैदल कैसे चलोगी ।'

सावित्रीने कहा—'उपवाससे मुझे कोई कष्ट और थकावट नहीं है । चलनेके लिये मनमें उत्साह है । इसलिये रोकिये मत ।' सत्यवान् बोला—'यदि तुम्हें चलनेका उत्साह है तो मैं मना नहीं करूँगा; किंतु माता और पिताजीसे आज्ञा ले लो ।' यह सुनकर सावित्रीने सास-ससुरके चरणोंका स्पर्श किया और कहा—'मेरे स्वामी फल आदि लानेके लिये वनमें जा रहे हैं । यदि सासजी और ससुरजी आज्ञा दें, तो आज मैं भी इनके साथ जाना चाहती हूँ ।' द्युमत्सेनने कहा—'सावित्री जबसे बहू होकर मेरे घरमें आयी है, तबसे अबतक इसने कभी किसी बातके लिये याचना की हो, उसका मुझे स्मरण नहीं; अतः आज इसकी इच्छा अवश्य पूरी होनी चाहिये । अच्छा बेटी ! तू जा, मार्गमें सत्यवान्‌की सँभाल रखना ।' सास-ससुरकी आज्ञा पाकर यशस्विनी सावित्री पतिके साथ वनकी ओर चली । उसके मुँहपर तो हँसी थी, किन्तु हृदयमें दुःखकी आग जल रही थी । सत्यवान्‌ने पहले तो स्त्रीके साथ फलोंका संग्रह करके टोकरी भर ली; फिर लकड़ियाँ काट-काटकर गिराने लगा । लकड़ी काटते-काटते परिश्रमके कारण उसे पसीना आ गया और सिरमें बड़े जोरसे दर्द उठा । लकड़ी काटना छोड़कर वह अपनी पत्नीके पास गया और इस प्रकार बोला—'प्रिये ! आज परिश्रमके कारण मेरे सिरमें दर्द होने लगा है । सारा शरीर टूट रहा है । कलेजेमें भी बड़ी पीड़ा है । इस समय मैं अपनेको अस्वस्थ-सा देख रहा हूँ । ऐसा जान पड़ता है, कोई मेरे मस्तकमें बर्छियोंसे छेद रहा है । अब तो खड़ा रहनेकी भी शक्ति नहीं है । कल्याणी ! अब मैं सोना चाहता हूँ ।' सावित्रीने पतिके पास जाकर उन्हें सँभाला और उनका मस्तक गोदमें रखकर वह

सावित्रीके देख दृढ़ सती-धर्म, व्रत, नेम ।
धर्मराज देते समुद वर वरदान सप्रेम ॥

सती अनसूया
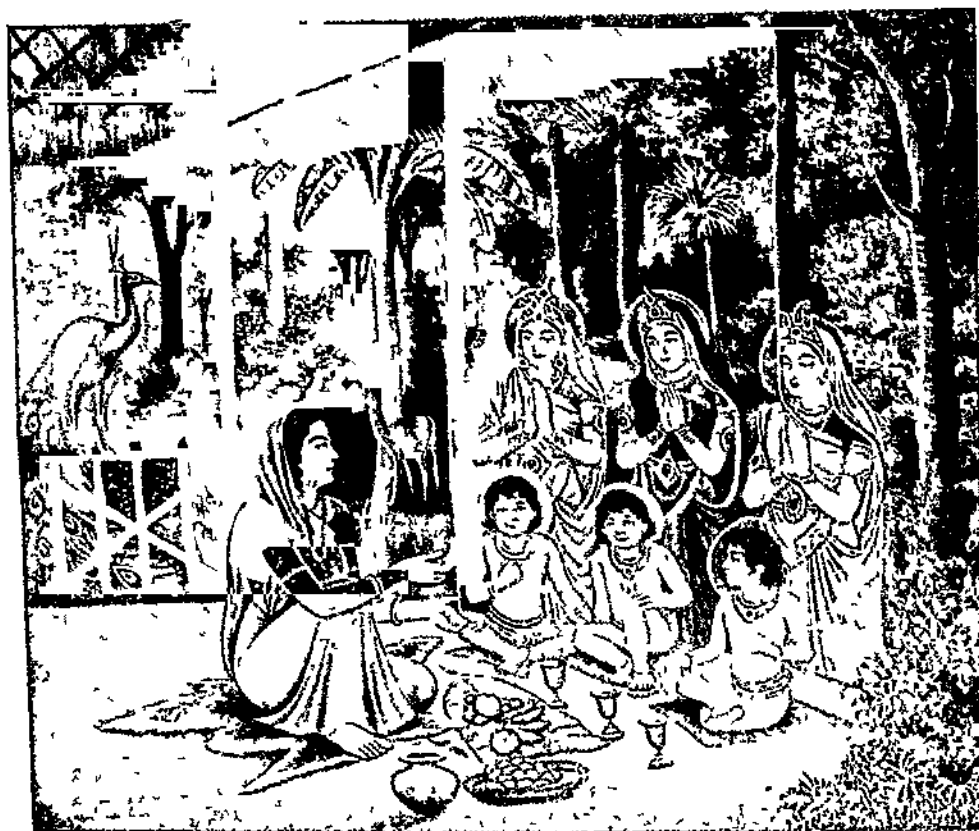
अनसूयाके धर्मका प्रकट प्रभाव अनूप । खेल रहे आँगन समुद विधि-हरि-हर शिशुरूप ॥

पृथ्वीपर बैठ गयी। फिर उसने नारदजीकी बातका विचार करके उस मुहूर्त, क्षण, वेला और दिनका हिसाब लगाया। ठीक वही समय आ पहुँचा था। इतनेमें ही एक पुरुष दिखायी दिया, जो लाल वस्त्र पहने था। उसके माथेपर मुकुट था। वह अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण साक्षात् सूर्यदेव-सा जान पड़ता था। उसके सुन्दर शरीरका रंग साँवला था, नेत्र लाल-लाल दिखायी देते थे। हाथमें पाश और देखनेमें उसकी आकृति भयङ्कर जान पड़ती थी। वह सत्यवान्‌के पास खड़ा उसीकी ओर देख रहा था।

उस अद्‌भुत पुरुषको देखकर सावित्रीने पतिका मस्तक भूमिपर रख दिया। फिर सहसा उठकर खड़ी हो गयी और प्रणाम करके बोली—'आप कोई देवता जान पड़ते हैं, क्योंकि आपका शरीर मनुष्यका-सा नहीं है, यदि आपकी इच्छा हो तो बताइये आप कौन है और क्या करना चाहते हैं?' वह पुरुष और कोई नहीं, साक्षात् यमराज थे। उन्होंने कहा—'सावित्री! तू पतिव्रता और तपस्विनी है; अतः मैं तुझसे वार्तालाप कर सकता हूँ। तुझे मालूम होना चाहिये कि मैं यमराज हूँ। तेरे पतिकी आयु समाप्त हो चुकी है; अतः मैं इसे लेने आया हूँ।' सावित्री बोली—'भगवन्! मैंने तो सुना है, जीवोंको ले जानेके लिये आपके दूत आया करते हैं; आप स्वय कैसे पधारे?' यमराज बोले—'सत्यवान् परम धर्मात्मा है, यह दूतोंद्वारा ले जाये जानेयोग्य नहीं है, अतः मै स्वयं आया हूँ।' इतना कहकर यमराजने सत्यवान्‌के शरीरसे अँगूठेके बराबर आकारवाला जीव निकाला, वह पाशमें बँधा था, उसे लेकर वे दक्षिण दिशाकी ओर चले। यह देख सावित्री दुःखसे आतुर हो उठी और यमराजके पीछे पीछे चल दी। यमराजने कहा—'सावित्री! तू कहाँ, तू तो अब लौट जा और इसका दाह-संस्कार कर। पति-सेवाके ऋणसे तू मुक्त हो चुकी है और पतिके पीछे जहाँतक आना चाहिये, वहाँतक आ चुकी है।' सावित्री बोली—'भगवन्! जहाँ मेरे पतिदेव जायँ, वहाँ मुझे भी जाना चाहिये। आपकी दयासे मेरी गति कहीं कुण्ठित नहीं हो सकती। नारीके लिये पतिका अनुसरण ही सनातनधर्म है।' यमराजने कहा—'सावित्री! तेरी धर्मानुकूल युक्तियुक्त बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; अतः सत्यवान्‌के जीवनके अतिरिक्त कोई भी वर मुझसे माँग ले।'

सावित्रीने कहा—'देव! मेरे श्वशुरके नेत्रकी ज्योति नष्ट हो गयी है, वह उनको पुनः प्राप्त हो जाय और वे बलवान् तथा तेजस्वी हो जायँ।' यमराजने कहा—'एवमस्तु' (ऐसा ही होगा); अब तू लौट जा, नहीं तो थक जायगी।' सावित्रीने कहा—'पतिके समीप रहते हुए मुझे किसी प्रकार थकावट नहीं हो सकती। जहाँ मेरे प्राणनाथ रहेंगे, वहीं मेरे लिये भी आश्रय मिलना चाहिये। अतः मैं तो इनके साथ ही चलूँगी। दूसरा लाभ है सत्संग। सत्पुरुषोंका संग एक बार भी मिल जाय तो वह अभीष्टकी पूर्ति करनेवाला होता है, यदि उनसे प्रेम हो जाय तब तो कहना ही क्या है! सतसमागम कभी निष्फल नहीं होता; अतः सदा सत्पुरुषोंके साथ ही रहना चाहिये।' यमराज बोले—'सावित्री! तूने जो बात कही है, वह सबके लिये हितकर तथा मुझे अत्यन्त प्रिय है; अतः सत्यवान्‌के जीवनको छोड़कर तू पुनः कोई दूसरा वर माँग।' सावित्रीने कहा—'मेरे श्वशुरका छीना हुआ राज्य उन्हें स्वतः प्राप्त हो जाय तथा वे कभी धर्मका परित्याग न करें।' यमराजने वह वरदान भी दे दिया और कहा—'अब तू लौट जा।' किन्तु सावित्री पूर्ववत् उनके पीछे ही लगी रही। चलते-चलते उसने कहा—'देव! आप सारी प्रजाका नियमन करनेवाले हैं, अतः 'यम' कहलाते हैं। मैंने सुना है, मन, वचन और क्रियाद्वारा किसी भी प्राणीके प्रति द्रोह न करके सबपर समानरूप दया करना और दान देना—श्रेष्ठ पुरुषोंका सनातनधर्म है। यों तो संसारके सभी लोग यथाशक्ति

कोमलताका बर्ताव करते हैं किंतु जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, वे अपने पास आये हुए शत्रुपर भी दया ही करते हैं।'

यमराज बोले—'कल्याणी! जैसे प्यासेको पानी मिलनेसे तृप्ति होती है, उसी प्रकार तेरी धर्मानुकूल बातें सुनकर मुझे प्रसन्नता होती है, अतः सत्यवान्के जीवनके सिवा कोई तीसरा वर और माँग ले।' सावित्रीने कहा—'मेरे पिता अश्वपतिके कोई पुत्र नहीं है, उन्हें सौ औरस पुत्र देनेकी कृपा करें।' यमराजने इसके लिये भी हामी भर दी और कहा—'सावित्री! तू बहुत दूर आ गयी, अब लौट जा।' सावित्रीने कहा—'मैं पतिके समीप हूँ, अतः दूरीका मुझे अनुभव नहीं होता। पतिसे दूर रहना ही नारीके लिये दुःखकी बात है। आप मेरी दो-एक बातें और सुनें। विवस्वान् (सूर्यदेव) के पुत्र होनेसे आपको 'वैवस्वत' कहते हैं। आप शत्रु-मित्र आदिके भेदको भुलाकर सबका समान रूपसे न्याय करते हैं, इसीसे सब प्रजा धर्मका आचरण करती है और आप धर्मराज कहलाते हैं। अच्छे मनुष्योंका संतोंपर जैसा विश्वास होता है, वैसा अपनेपर भी नहीं; अतएव वे संतोंपर ही अधिक अनुराग रखते हैं। विश्वास ही सौहार्दका कारण है तथा सौहार्द ही विश्वासका। सत्पुरुषोंमें सबसे अधिक सौहार्दका भाव होता है, इसलिये उनपर सभी विश्वास करते हैं।' यमराज बोले—'सावित्री! तूने जो बातें कही हैं, वैसी मैंने और किसीके मुँहसे नहीं सुनी हैं; अतः मेरी प्रसन्नता और भी बढ़ गयी है। अब तू सत्यवान्के सिवा कोई चौथा वर भी माँग ले।'

सावित्रीने कहा—'भगवन्! मुझे भी कुलकी वृद्धि करनेवाले सौ औरस पुत्र प्राप्त हों। वे सभी बलवान् और पराक्रमी हों।' यमराज बोले—'तेरी यह अभिलाषा भी पूर्ण होगी। अच्छा, अब बहुत दूर चली आयी, जा, लौट जा।' सावित्रीने अपनी धार्मिक चर्चा बंद नहीं की। वह कहती गयी—'सत्पुरुषोंका मन सदा धर्ममें ही लगा रहता है। सत्पुरुषोंके साथ जो समागम होता है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता। संतोंसे कभी किसीको भय नहीं होता। सत्पुरुष सत्यके बलसे सूर्यको भी अपने समीप बुला लेते हैं। वे ही अपने प्रभावसे पृथ्वीको धारण करते हैं। भूत और भविष्यके आधार भी वे ही हैं। उनके बीचमें रहकर श्रेष्ठ पुरुषोंको कभी खेद नहीं होता। दूसरोंकी भलाई—सनातन सदाचार है; ऐसा मानकर सत्पुरुष प्रत्युपकारकी आशा न रखते हुए सदा परोपकारमें ही लगे रहते हैं।' सावित्रीकी बातें सुनकर यमराज दयासे द्रवित हो उठे और बोले—'पतिव्रते! तेरी ये धर्मानुकूल बातें गम्भीर अर्थसे युक्त तथा मेरे मनको लुभानेवाली हैं। तू ज्यों-ज्यों ऐसी बातें सुनाती है, त्यों-ही-त्यों तेरे प्रति अधिक श्रद्धा बढ़ती जाती है, अतः तू मुझसे कोई अनुपम वर माँग।'

सावित्रीने कहा—'भगवन्! अब तो आप सत्यवान्के जीवनका ही वरदान दीजिये। इससे आपके ही सत्य और धर्मकी रक्षा होगी। आप मुझे सौ पुत्र होनेका वर दे चुके हैं, उसकी सिद्धि पतिके बिना कैसे हो सकती है? पतिके बिना तो मैं सुख, स्वर्ग, लक्ष्मी तथा जीवनकी भी इच्छा नहीं रखती।'* धर्मराज वचनबद्ध हो चुके थे। उन्होंने सत्यवान्को मृत्यु-पाशसे मुक्त कर दिया और चार सौ वर्षोंकी नवीन आयु प्रदान की। इस प्रकार सती सावित्रीने अपने पातिव्रत्यके प्रतापसे पतिको मृत्युके मुखसे लौटाया तथा वह पतिकुल और पितृकुल दोनोंकी अभिवृद्धिमें सहायक हुई। यह है सती-धर्मकी अमोघ शक्ति!—रा० शा०

सती लोपामुद्रा

लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्यकी धर्मपत्नी हैं। ये भी अपने पातिव्रत्य, संयम, तपस्या और त्यागके लिये संसारमें विख्यात हैं। इनकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार है—एक समय मुनिवर अगस्त्य कहीं जा रहे थे। उन्होंने देखा, एक गड्ढेमें कुछ व्यक्ति नीचेको सिर किये लटक रहे हैं। मुनिने पूछा, 'आपलोग कौन हैं? उन्होंने उत्तर दिया, 'हम तुम्हारे ही पितर हैं और पुत्र होनेकी आशा लगाये इस गड्ढेमें लटके हुए हैं। बेटा अगस्त्य! यदि तुम्हारे एक पुत्र हो जाय तो इस नरकसे हमारा छुटकारा हो सकता है और तुम्हें भी सद्गति मिल सकती है।' महर्षि अगस्त्य बड़े तेजस्वी और सत्यपरायण थे। उन्होंने पितरोंसे कहा, 'आपलोग चिन्ता छोड़ें। मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूँगा।' इस प्रकार पितरोंको

* न कामये भर्तृविनाकृता सुखं न कामये भर्तृविनाकृता दिवम्। न कामये भर्तृविनाकृता श्रियं न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम्॥ (महा० वन०)

सान्त्वना दे अगस्त्यजीने विचार किया कि 'वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये विवाह करना आवश्यक है।' किंतु उन्हें अपने योग्य कोई स्त्री न दिखायी दी।

उन्हीं दिनों विदर्भदेशके राजा सन्तानके लिये तपस्या कर रहे थे। मुनिने राजाको एक श्रेष्ठ कन्या होनेका आशीर्वाद दिया। समय आनेपर ऋषिके वरदानसे विदर्भराजके यहाँ एक तेजस्विनी कन्या उत्पन्न हुई। ब्राह्मणोंने उस कन्याके जन्मपर अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की और उसका नाम लोपामुद्रा रख दिया। जैसे पानीमें कमलिनी और होमकुण्डमें प्रज्वलित अग्निकी शिखा बढ़ती है, उसी प्रकार वह मनोहर रूप धारण करनेवाली राजकुमारी शीघ्रतापूर्वक बढ़ने लगी। देखते-देखते लोपामुद्राके शरीरमें यौवन फूट पड़ा। वह रूपमें स्वर्गकी अप्सराओंको भी लज्जित करने लगी। उसमें विनय, सुशीलता, सदाचार, लज्जा और धर्मानुराग आदि सद्गुण स्वाभाविक रूपसे विकसित हो रहे थे। पिता उसके सुन्दर स्वभाव और सद्व्यवहारसे बहुत प्रसन्न रहते थे। कन्याको सयानी हुई देख पिता इस चिन्तामें पड़े कि कन्याका विवाह किसके साथ किया जाय।

महर्षि अगस्त्य मन-ही-मन विदर्भराजकी कन्याको अपनी सहधर्मिणी बनानेका निश्चय कर चुके थे। जब उन्हें मालूम हो गया कि लोपामुद्रा गृहस्थीका भार सँभालने योग्य हो गयी है, तब वे स्वयं जाकर विदर्भराजसे मिले और इस प्रकार बोले—'राजन्! मैं पुत्रकी उत्पत्तिके लिये विवाह करना चाहता हूँ। इसके लिये तुम्हारी कन्याका ही वरण करता हूँ। तुम लोपामुद्राका विवाह मेरे साथ कर दो।' विदर्भराज-दम्पति अपनी

प्राणाधिका प्रिय पुत्रीका विवाह इनसे करना नहीं चाहते थे, पर शापसे डरते भी थे। पर इस प्रकार पिता-माताको दुःखी देख राजकुमारी लोपामुद्राने स्वयं उनके पास आकर कहा—'महाराज! आप मेरे लिये दुःखी न हों। मुझे अगस्त्य ऋषिको दान दें और अपनी रक्षा करें।' पुत्रीकी यह बात सुनकर राजाने शास्त्रविधिके अनुसार अगस्त्यजीके साथ उसका विवाह कर दिया। विवाहके पश्चात् महर्षिने कहा, 'देवि! तुम्हारे ये वस्त्र और आभूषण बहुमूल्य हैं। इनको यहीं उतार दो। वनमें इनकी रक्षा कौन करेगा।'

लोपामुद्राका जन्म राजकुलमें हुआ था। वह बाल्यकालसे ही राजोचित सुखभोगमें पली थी। उसने अबतक अच्छे-अच्छे वस्त्रों और आभूषणोंसे ही शरीरका शृङ्गार किया था तो भी पतिकी आज्ञा पाते ही उसने उस राजवैभवका, उन बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणोंका मोह क्षणभरमें त्याग दिया। उसने एक-एक करके दर्शनीय रत्नमय आभूषण और सुन्दर महीन वस्त्र उतार डाले तथा उनकी जगह चीर, वल्कल और मृगचर्म धारण कर लिये। राजकुमारीने तपस्विनीका बाना धारण कर लिया और अपने पतिके समान ही व्रत एवं नियमोंका पालन करने लगी। लोपामुद्रा तन, मन, प्राणसे पतिकी अनुगामिनी बन गयी। महर्षि अगस्त्य नवोढा पत्नीके साथ हरद्वारके क्षेत्रमें आये और वहाँ रहकर घोर तपस्या करने लगे। लोपामुद्रा बड़े ही प्रेम, उत्साह और तत्परतासे पतिकी सेवा करती थी। महर्षि भी उसके प्रति बड़े प्रेमका बर्ताव करते थे। इस प्रकार वहाँ तपस्या करते-करते कितने ही वर्ष बीत गये। एक दिन महर्षिने देखा, लोपामुद्रा ऋतुस्नानसे निवृत्त होकर सेवामें उपस्थित है। तपस्याने उसकी कान्तिको और बढ़ा दिया है। उसकी सेवा, पवित्रता, दम-शान्ति और रूपलावण्यने महर्षिको मुग्ध कर दिया था। उसने पिताके भवनमें अट्टालिकाके भीतर जिस प्रकारसे रहा करती थी, लोपामुद्राको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे वैसी ही व्यवस्था करनेके लिये महर्षि अगस्त्य धनके निमित्त घरसे निकले।

महर्षि अगस्त्य धन माँगनेके लिये पहले राजा श्रुतर्वाके पास गये। उनके आगमनका समाचार पाकर राजा श्रुतर्वा मन्त्रियोंसहित उनकी अगवानीके लिये अपने राज्यकी सीमातक आया। उन्हें आदरपूर्वक नगरमें ले जाकर विधिवत् अर्घ्य अर्पण किया। फिर उसने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक महर्षिके आगमनका कारण पूछा। अगस्त्यजीने कहा—'राजन्! तुम्हारे पास मैं धनके लिये आया हूँ, अतः दूसरोंको कष्ट पहुँचाये बिना जो धन तुम्हें देना बनता हो, उसमेंसे यथाशक्ति मेरे लिये दो।' अगस्त्यजीकी बात सुनकर राजाने अपना सारा आय-व्ययका हिसाब उनके सामने रख दिया

और कहा, 'इसमेंसे आप जो धन लेना उचित समझें, वही ले लें।' अगस्त्यजीने देखा, उस हिसाबमें आय-व्ययका लेखा बराबर था, इसलिये यह सोचकर कि इसमेंसे थोडा-सा भी धन ले लेनेपर प्राणियोंको दुःख होगा, उन्होंने कुछ भी न लिया। अन्तमें उन्हें इल्वलसे निर्दोष धन प्राप्त हुआ और उसीको लेकर उन्होंने अपनी साध्वी पत्नीका मनोरथ पूर्ण किया।

इस प्रकार लोपामुद्रा अपने सदाचार, सतीत्व और धर्मपरायणता आदि सद्गुणोंद्वारा पतिको बहुत ही प्रिय थीं। महर्षिने स्वयं कहा था—'तुष्टोऽहमस्मि कल्याणि तव वृत्तेन शोभने।' 'कल्याणि! तुम्हारे सदाचारसे मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ।' वनवासके समय भगवान् श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर भी पधारे थे। वहाँ देवी लोपामुद्राने भी अपने पतिके साथ इन परमाराध्य अतिथियोंका स्वागत करके अपनेको धन्य बनाया था।

एक समयकी बात है, देवगण महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर पधारे, महर्षिने उनका विधिपूर्वक पूजन किया। तत्पश्चात् बृहस्पतिने देवताओंकी ओरसे महर्षिका अभिनन्दन करते हुए उनकी धर्मपत्नी लोपामुद्राके सम्बन्धमें जो उद्गार प्रकट किया, वह प्रत्येक भारतीय नारीके लिये विशेषरूपसे ध्यान देने योग्य है।

पतिव्रताके आचरण

बृहस्पतिजीने कहा—'मुने! तुम्हारी सहधर्मिणी लोपामुद्रा बड़ी पतिव्रता है। यह कल्याणी तुम्हारे शरीरकी छायाकी भाँति सदा तुम्हारा अनुसरण करती है। इसकी चर्चा भी पुण्य देनेवाली है। अरुन्धती, सावित्री, अनसूया, शाण्डिली, सती, लक्ष्मी, शतरूपा, मेना, सुनीति, संज्ञा और स्वाहा—इन देवियोंके द्वारा समस्त पतिव्रताओंमें लोपामुद्राका जितना ऊँचा स्थान बताया जाता है, उतना दूसरी किसी स्त्रीका नहीं है। तुम्हारे भोजन कर लेनेपर ही यह अन्न ग्रहण करती है। जब तुम खड़े होते हो, उस समय यह भी बैठी नहीं रह सकती। तुम्हारे सो जानेपर ही यह सोती है और तुम्हारे जागनेसे पहले ही जग जाती है। जबतक यह अपनेको स्वच्छ वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित न कर ले तबतक तुम्हारे सामने नहीं आती और जब तुम किसी कार्यवश बाहर चले जाते हो तब यह आभूषणोंको छूती भी नहीं। तुम्हारी आयु बढ़े, इसके लिये यह कभी तुम्हारा नाम अपनी जबानपर नहीं लाती। साथ ही सतीत्वकी रक्षाके लिये किसी दूसरे पुरुषका नाम भी नहीं लेती। यदि तुमने कभी कोई कड़ी बात भी कह दी तो यह उसका उत्तर नहीं देती, तुम्हारे दण्ड देनेपर भी यह प्रसन्न ही होती है, रंज अथवा बुरा नहीं मानती। जब तुम कहते हो, 'देवि! अमुक कार्य करो।' तो इसकी ओरसे तुरंत उत्तर मिलता है—'नाथ! इस कामको पूरा हुआ ही समझिये, मैं अभी किये देती हूँ।' तुम्हारे पुकारनेपर यह तुरंत ही घरके आवश्यक काम छोड़कर भी चली आती है और पूछती है—'नाथ! मुझे किसलिये बुलाया है, सेवा बतानेकी कृपा करें।' यह कभी घरके द्वारपर देरतक नहीं खड़ी होती। दरवाजेपर कभी नहीं बैठती। बिना तुम्हारी आज्ञा लिये किसीको कोई वस्तु नहीं देती। बिना कहे स्वयं ही तुम्हारे लिये पूजाकी सामग्री एकत्र कर देती है। नित्य नियमके लिये जल, कुशा, पत्र, पुष्प और अक्षत आदि जुटा देती है। अवसर देखा करती है, जब जैसा समय आया, उसके अनुकूल वस्तुएँ लाकर प्रस्तुत कर देती है। यह सब कुछ यह बड़ी प्रसन्नतासे करती है, इसके मनमें तनिक भी उद्वेग नहीं होता।

'स्वामीके भोजनसे बचे हुए अन्न और फल आदिको ही यह स्वयं ग्रहण करती है। पति जो कुछ देते हैं उसे यह 'महाप्रसाद' मानकर लेती है। देवता, पितर, अतिथि, भृत्यवर्ग, गौ तथा भिक्षुकजनोंको अन्नका भाग दिये बिना कभी स्वयं नहीं खाती। घरकी हर-एक वस्तु जतनसे रखती है। गृहकार्यमें बड़ी कुशल है। सदा उत्साहयुक्त एवं प्रसन्न रहती है। अधिक खर्च नहीं करती। तुम्हारी आज्ञा लिये बिना कोई व्रत-उपवास आदि नहीं करती। जहाँ अधिक जन-समुदाय जुटा हो, ऐसे उत्सवको देखनेसे यह दूर ही रहती है। पतिकी आज्ञा बिना तीर्थोंमें भी नहीं जाती; विवाहोत्सव देखनेकी भी इच्छा नहीं करती। जब पतिदेवता सुखपूर्वक सोये, बैठे अथवा आराम करते रहते हैं, उस समय अत्यन्त आवश्यक कार्य होनेपर भी यह पतिको कभी नहीं उठाती। रजस्वला होनेपर तीन रात्रितक स्वामीको अपना मुँह नहीं दिखाती। जबतक शुद्ध होकर स्नान नहीं कर लेती तबतक अपनी वाणी भी पतिके कानोंमें नहीं पड़ने देती। स्नान कर लेनेपर सर्वप्रथम यह अपने पतिका ही दर्शन करती है, दूसरे किसीका नहीं। अथवा यदि पति उपस्थित न हों तो मन-ही-मन उनका ध्यान करके सूर्यदेवका दर्शन करती है।

'यह पतिव्रता नारी 'पतिकी आयु बढ़े' ऐसी इच्छा रखकर हरिद्रा-चूर्ण, कुङ्कुम, सिन्दूर, काजल, अँगिया, पान, माङ्गलिक शुभ आभूषण, केश सँवारना, चोटी बाँधना, कंगन और कानका आभूषण—इन्हें कभी अपने शरीरसे दूर नहीं करती। धोबिन, कुतर्क करनेवाली स्त्री तथा दुर्भगा (दुराचारिणी) के साथ वह कभी मैत्री नहीं स्थापित करती। जो स्त्री अपने पतिसे द्वेष रखती है, उससे यह कभी बात भी नहीं करती। अकेली कहीं नहीं जाती। नंगी होकर

स्नान नहीं करती। ओखली, मूसल, झाड़ू, सिल, जाँता और देहली (चौकठके निचले भाग) पर साध्वी लोपामुद्रा कभी नहीं बैठती। जिस-जिस वस्तुमें स्वामीकी रुचि होती है, उसीमें यह भी सदा प्रेम रखती है। स्त्री अपने पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन न करे—यही उनके लिये व्रत है, यही उनका परम धर्म है और यही एक उनके लिये देवपूजा है। पति नपुंसक, दुर्दशाग्रस्त, रोगी, वृद्ध, सुखी अथवा दुखी कैसा ही क्यों न हो, नारी उसका त्याग न करे। पतिके हर्षमें हर्ष माने और पतिके मुखपर विषादकी छाया देख वह स्वयं भी दुखी हो जाय। पुण्यवती सती सम्पत्ति और विपत्तिमें भी पतिके साथ एक रूप होकर रहे। घरमें घी, नमक, तेल आदि समाप्त हो जानेपर भी पतिव्रता स्त्री पतिसे सहसा यह न कहे कि ये वस्तुएँ नहीं हैं। घरमें आते ही उसे चिन्तामें न डाल दे। तीर्थ-स्नानकी इच्छा रखनेवाली सती स्त्री अपने पतिके चरणोदकका पान करे। नारीके लिये एकमात्र पति ही शिव अथवा विष्णुसे भी बढ़कर है। जो स्त्री पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके व्रत, उपवास और नियमका अनुष्ठान करती है वह अपने पतिकी आयुको घटाती है और मरनेके बाद नरकमें पड़ती है। जो स्त्री पतिके कुछ कहनेपर क्रोधमें आकर उसे प्रत्युत्तर देती है वह गाँवमें कुतिया अथवा निर्जन वनमें गीदड़ी होती है।

'स्त्रियोंके लिये यही सबसे श्रेष्ठ नियम बताया गया है कि वह स्वामीके चरणोंकी पूजा करके भोजन करे। इस नियमको वह दृढ़तापूर्वक अपनावे। ऊँचे आसनपर न बैठे। दूसरोंके घर न जाय। मुँहसे कभी ऐसी बात न निकाले, जिसके कहने-सुननेसे लज्जा आती हो। किसीकी निन्दा न करे। कलहको तो वह दूरसे ही नमस्कार करे। गुरुजनोंके समीप न तो वह कभी जोरसे बोले और न हँसे। जो खोटी बुद्धिवाली स्त्री पतिको त्याग कर अकेली एकान्तमें घूमती-फिरती है, वह वृक्षोंके खोखलेमें रहनेवाली क्रूर उलकी होती है। जो पतिके द्वारा दण्डित होनेपर उन्हें भी मारना चाहती है, वह दूसरे जन्ममें बाघिन अथवा डाँस होती है। जो पराये पुरुषकी ओर कटाक्ष करती है, वह केकराक्षी होती है। जो स्वामीको छोड़कर अकेली ही मिठाइयाँ उड़ाती है, वह ग्रामीण सूकरी अथवा अपनी ही विष्ठा खानेवाली वल्गु (चमगादड़) होती है। जो पहले 'तू' कहकर फिर प्रिय वचन बोलती है, वह दूसरे जन्ममें गूँगी होती है। जो सदा सौतसे डाह रखती है, वह बारंबार दुर्भगा होती है। जो स्वामीकी दृष्टिपर पर्दा डालकर दूसरे पुरुषको आसक्तभावसे देखती है, वह कानी, कुरूपा और विकृत मुखवाली होती है।

'जो पतिको बाहरसे आते देख तुरंत उनके लिये जल और भोजनकी सामग्री प्रस्तुत करती, पान देती, पंखा झलती, पैर दबाने आदिके द्वारा सेवा करती, मीठी बातें सुनाती, पसीना पोंछती तथा अन्य उपचारोंद्वारा उन्हें तृप्त करती है, उसके द्वारा मानो तीनों लोकके प्राणी तृप्त कर दिये जाते हैं। पिता, भ्राता और पुत्र—ये सभी स्त्रीको परिमित वस्तुएँ देते हैं; परन्तु पतिसे उसे जो कुछ मिलता है, उसका कोई माप नहीं है; अतः अमितदान करनेवाले पतिकी सदा पूजा करनी चाहिये। पति ही देवता है, पति ही गुरु है तथा पति ही धर्म, तीर्थ और व्रत है, अतः नारी सब कुछ छोड़कर केवल पतिका पूजन किया करे।

'कन्याके विवाहकालमें ब्राह्मण यही आशीर्वाद देते हैं कि तुम पतिके जीवन और मरणमें भी सदा उनकी सहचरी बनी रहो। स्त्री सदा ही पतिका अनुसरण करे, ठीक उसी प्रकार, जैसे छाया शरीरका, चाँदनी चन्द्रमाका तथा बिजली मेघका अनुसरण करती है। जो पतिके मर जानेपर प्रसन्नतापूर्वक उनके शवके साथ श्मशानभूमिमें जाती है, उसे निश्चय ही पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। जैसे साँप पकड़नेवाला मदारी साँपको बलपूर्वक बिलसे निकाल लेता है, उसी प्रकार सती नारी यमदूतोंके चंगुलमें पड़े हुए पतिका बलपूर्वक उद्धार करके उसे स्वर्गलोकमें पहुँचाती है। यमराजके दूत सती नारीको देखकर उसके पापाचारी पतिको भी छोड़कर दूर भाग जाते हैं। पतिव्रताका तेज देखकर सबको तपानेवाले सूर्य भी सन्तप्त हो उठते हैं, दाहक अग्निदेव स्वयं ही दग्ध होने लगते हैं तथा सम्पूर्ण तेज काँप उठते हैं। शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने कोटि अयुत वर्षोंतक पतिव्रता स्त्री पतिके साथ रमण करती हुई स्वर्ग-सुखका उपभोग करती है।

'संसारमें वह माता धन्य है, वह पिता धन्य है तथा वह सौभाग्यशाली पति धन्य है, जिनके घरमें पतिव्रता स्त्री शोभित है। केवल पतिव्रताके पुण्यसे पिता, माता तथा पतिके कुलोंके तीन-तीन पीढ़ीके मनुष्य स्वर्गका सुख भोगते हैं। पतिव्रताका चरण पृथ्वीको जहाँ-जहाँ स्पर्श करता है, वहाँ-वहाँकी पावन भूमि यही मानती है कि मुझपर अब कुछ भी भार नहीं है। सूर्य, चन्द्रमा और वायु भी डरते-डरते ही पतिव्रताका स्पर्श करते हैं, वह भी और किसी कारणसे नहीं केवल अपने आपको पवित्र करनेके लिये। जल सदा ही पतिव्रताका स्पर्श चाहता है, उसे पाकर वह यह मानता है कि आज मेरी जड़ताका विनाश हो गया। आज मुझपर ही

मैं दूसरोंको पवित्र करनेवाला बन गया। क्या घर-घरमें अपने रूप और लावण्यपर गर्व करनेवाली स्त्रियाँ नहीं हैं; परंतु पतिव्रता स्त्री तो भगवान् विश्वनाथकी भक्तिसे ही मिलती है। भार्या ही गृहस्थ-धर्मकी जड़ है। वही सुखका मूल है तथा भार्या ही धर्म-फलकी प्राप्ति एवं संतानकी वृद्धिका भी कारण है। स्त्रीके द्वारा ही इस लोक और परलोकपर विजय पायी जाती है। देव, पितर और अतिथियोंका पूजनादि कर्म करनेका अधिकारी वह पुरुष नहीं है, जिसके स्त्री न हो। वास्तवमें गृहस्थ वही है, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है। दूसरे लोग तो केवल स्त्रीरूपी राक्षसी अथवा वृद्धावस्थाका ग्रास बन रहे हैं। जैसे गङ्गामें स्नान करनेसे शरीर पवित्र होता है उसी प्रकार पतिव्रताकी शुभ दृष्टि पड़नेसे भी शरीर परम पवित्र हो जाता है।*

'महाभागा लोपामुद्रा! आज तुम्हारे दर्शनसे हमें गङ्गा-स्नानका फल मिल गया।' इस प्रकार लोपामुद्राकी सराहना और स्तुति करके बृहस्पतिजीने लोपामुद्राको प्रणाम किया और अगस्त्यजीसे कहा—'मुने! तुम साक्षात् ब्रह्मतेज हो और देवी लोपामुद्रा साक्षात् पातिव्रत्य-तेज हैं।'

धन्य हैं सतीशिरोमणि देवी लोपामुद्रा! जिनकी महिमाका वर्णन साक्षात् देवगुरु बृहस्पतिने इस प्रकार किया है। संसारकी स्त्रियाँ इनके जीवनसे बहुत कुछ सीख सकती हैं। लोपामुद्रा अपने सतीत्वके कारण सदा अमर रहेंगी।—रा० शा०

सती-पद-वन्दन

सती देवि! तेरे चरणोंका सादर वन्दन करते हैं।
भाव-भक्तिसे हृदय खोलकर।
प्रेमसहित जय-जयति बोलकर॥
भक्त-वृन्द परमेश्वरका जैसे अभिनन्दन करते हैं।
परमोज्ज्वल, शुचि, परम तपस्विनि।
वीर-धीर, हे परम मनस्विनि॥
सुरसरि सम तेरे चरणोंसे रज ले चन्दन करते हैं।
परम तेजकी, परम त्यागकी।
पति-पदमें परमानुरागकी॥
गा-गाकर गुण-गरिमा सज्जन, जन-मन-रंजन करते हैं।
सती देवि! तेरे चरणोंका सादर वन्दन करते हैं।

—शिवनाथ दुबे 'सा० रत्न'

* धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः। धन्यः स च पतिः श्रीमान् येषां गेहे पतिव्रता ॥६०॥
पितृवंश्या मातृवंश्या पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः। पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते ॥६१॥
पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्ध्रुवम्। तत्रेति भूमिर्मन्येत नात्र भारोऽस्ति पावनी ॥६२॥
बिभ्यत् पतिव्रतास्पर्शं कुरुते भानुमानपि। सोमो गन्धवहश्चापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ॥६४॥
आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा। अद्य जाड्यविनाशो नो जातास्त्वद्यान्यपावनाः ॥६५॥
गृहे गृहे न किं नार्यो रूपलावण्यगर्विताः। परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता ॥६६॥
भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च। भार्या धर्मफलावाप्त्यै भार्या सन्तानवृद्धये ॥६७॥
परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम्। देवपित्रतिथीज्यादि नाभार्यः कर्म चार्हति ॥६८॥
गृहस्थः स हि विज्ञेयो यस्य गेहे पतिव्रता। ग्रस्यतेऽन्या प्रतिपदं राक्षस्या जरयाथवा ॥६९॥
यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत्। तथा पतिव्रतादृष्ट्या शुभया पावनं भवेत् ॥७०॥
(स्कन्दपु० काशी० पूर्वार्ध अ० ४

सती अनसूया

भारतवर्षकी सती-साध्वी स्त्रियोंमें अनसूयाजीका स्थान बहुत ऊँचा है। इनका जन्म अत्यन्त उच्च कुलमें हुआ था। स्वायम्भुव मनुकी पुत्री देवी देवहूति इनकी माता और ब्रह्मर्षि कर्दम इनके पिता थे। भगवान् विष्णुके अवतार सिद्धेश्वर कपिल इनके छोटे भाई हैं। अनसूयाजीमें अपने वंशके अनुरूप ही सत्य, धर्म, शील, सदाचार, विनय, लज्जा, क्षमा, सहिष्णुता तथा तपस्या आदि सद्गुणोंका स्वाभाविकरूपसे विकास हुआ था। ब्रह्माजीके मानस पुत्र परम तपस्वी महर्षि अत्रिको इन्होंने पतिरूपमें प्राप्त किया था। अपनी सतत सेवा तथा पावन प्रेमसे अनसूयाने महर्षि अत्रिके हृदयको जीत लिया था। पतिव्रता तो ये थीं ही, तपस्यामें भी बहुत चढ़ी-बढ़ी थीं; किंतु पतिकी सेवाको ही ये नारीके लिये परम कल्याण-का साधन मानती थीं।

तीनों देव अनसूयाकी गोदमें

(लेखक—ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी महाराज)

सरस्वती श्रीरमा शिवा तीनों यह मानें।
पतिव्रता हम श्रेष्ठ याहि सबरो जग जानें॥
नारद सबके भरे कान अनसूयाको सम।
निज-निज पति तें कहें पातिव्रत देखें बल हम॥

विधि हरि हर भिक्षुक बने, अनसूया आश्रम गये।
पतिव्रताकी परीक्षा हित भिक्षा माँगत भये॥

भगवान्को अपने भक्तोंका यश बढ़ाना होता है, तो वे नाना भाँतिके स्वाँग रचते हैं, ऐसी-ऐसी अद्भुत क्रीड़ाएँ करते हैं कि जिनको स्मरण करके साधारण मनुष्य चकित हो जाते हैं, कि भगवान्ने ऐसी क्रीड़ा क्यों की? हम साधारण अज्ञ पुरुष भगवान्की अचिन्त्य लीलाओंको अपने तर्ककी तुलापर तौलें, तो हमारा यह प्रयास असफल ही न होगा, अपितु यह हमारी अनधिकार चेष्टा भी समझी जायगी।

कहते हैं कि भगवती श्रीलक्ष्मीजी, श्रीसतीजी और श्री-सरस्वतीजीको अपने पातिव्रत्यका बड़ा अभिमान था, भगवान् और किसीके अभिमानको चाहे सहन कर लें; किंतु वे अपने भक्तों-के हृदयमें उठे हुए अभिमानके अंकुरका तुरंत नाश कर देते हैं। यही तो उनकी भक्तोंके ऊपर भक्तवत्सलता है। भगवान्ने देखा कि इन चराचर जगत्की वन्दनीया देवियोंको बड़ा गर्व हो गया है, तो उनके गर्वको खर्व करनेके निमित्त कौतुकप्रिय भगवान् नारदके मनमें प्रेरणा की। नारदजी तो भगवान्की इच्छाको जाननेवाले ही ठहरे। वे भगवान्की प्रेरणासे चले। उन्हें तो नित्यप्रति कोई-न-कोई नया कौतुक चाहिये। अतः वे पहले लक्ष्मीजीके यहाँ पहुँचे।

वीणा बजाते, रामकृष्ण-गुण गाते नारदजीको अपने यहाँ आते देखकर लक्ष्मीजीका मुखकमल खिल उठा। बड़ी प्रसन्नतासे वे बोलीं—'आइये, नारदजी! अबके तो बहुत दिनोंमें आये, कहाँ चक्कर लगाते रहे?'

कुछ रुककर नारदजी बोले—'माताजी! हमारा क्या ठिकाना? रमते राम ठहरे; जिधर चल दिये, चल दिये। वैष्णवका और ऊँटका जिधर मुँह उठा, चल दिया।'

यह सुनकर लक्ष्मीजी बड़े जोरोंसे हँस पड़ीं और हँसते-हँसते बोलीं—'नारदजी! आपने वैष्णवकी ऊँटके साथ तुलना बड़ी सुन्दर की। ऊँट भी नीमको बिना पत्तीके बना देता है और ये वैष्णव भी तुलसीको बिना पत्तीकी बना देते हैं। सहस्र-सहस्र दल शालग्राम भगवान्पर चढ़ाते हैं। खैर, यह तो बताइये, आप कहाँसे आ रहे हैं?'

नारदजी बोले—'माताजी! क्या बताऊँ, कुछ बताते नहीं बनता। अबके मैं घूमता-घामता चित्रकूटकी ओर चला गया। वहाँसे पयस्विनीके किनारे किनारे भगवान् अत्रिके आश्रम-पर पहुँच गया। वहाँ उनकी पतिव्रता पत्नी भगवती अनसूया-के दर्शन करके कृतार्थ हो गया। आज संसारमें उनके समान पतिव्रता कोई भी नहीं है। उन्होंने अपने तपके ही प्रभावसे गङ्गाजीकी एक धारा प्रकट कर दी, जो सब पापोंको काटने-वाली मन्दाकिनीके नामसे संसारमें प्रसिद्ध है। आज संसारकी सभी सती-साध्वी पतिव्रताओंकी वे शिरोमणि हैं। चौदहों भुवनोंमें घूम आया, ऐसी पतिव्रता तो मुझे कहीं मिली नहीं।'

यह सुनकर तो लक्ष्मीजीको बड़ा बुरा लगा। यह मेरे ही घरका बच्चा, मेरे ही सामने ऐसी बातें कर रहा है। यह तो मेरा प्रत्यक्ष अपमान है, फिर सोचा—इसने हँसीमें ऐसा कहा होगा। अतः बातको स्पष्ट करते हुए बोलीं—'नारद! तुमने अनसूयाके पातिव्रत्यकी बड़ी प्रशंसा की। नाम तो उनका मैंने भी सुना है, किंतु क्या वे मुझसे भी बढ़कर हैं?'

नारदजीको तो उनके मनको फेरना ही था, बोले—'माताजी! आप बुरा न मानें तो मैं इसका उत्तर दूँ।'

लक्ष्मीजी बोलीं—'बुरा माननेकी कौन-सी बात है, तुम निर्भय होकर उत्तर दो।'

नारदजी बोले—'माताजी! सच कहूँ या झूठ?'

लक्ष्मी बोलीं—'अरे झूठका क्या काम? तुम सच-सच बताओ।'

तब नारदजी दृढ़ताके स्वरमें कहने लगे—'माताजी! सच बात तो यह है, आप उन देवी अनसूयाके पासंगके बराबर भी नहीं।' इतना सुनते ही लक्ष्मीजीका मुख फक पड़ गया। वे नारदजीसे ऐसे उत्तरकी स्वप्नमें भी आशा नहीं रखती थीं। उनके मनमे सतीके प्रति डाह पैदा हुआ और मन-ही-मन उन्होंने भगवती अनसूयाको नीचा दिखानेका निश्चय कर लिया। फिर प्रकटमें बोलीं—'अच्छी बात है नारद! समय ....'पासंगके समान है या मैं उसके पासंगके तुल्य हूँ।' नारदजीको तो कलहका बीज बोना था। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा बीज ठीक समयपर जोती-गोड़ी उर्वरा भूमिमें ही बोया गया। अब अति शीघ्र ही बीजमेंसे अंकुर उत्पन्न होकर वह पुष्पित, पल्लवित और फलवान् बन जायगा। इतना सोच-कर नारदजी शीघ्रताके साथ कैलासकी ओर चल दिये।

इधर लक्ष्मीजी आज मुँह फुलाकर बैठ गयीं। भगवान्‌ने पूछा—'प्रिये! आज किस कारणसे खटपाटी लेकर पड़ी हो? अपने दुःखका कारण मुझे बताओ।'

लक्ष्मीजी बोलीं—'देखो जी, सुन लो मेरी बात! बहुत दिन मैंने आपके तलुए सुहराये हैं। आपने भी कृपा करके मुझे अपने कण्ठका हार बनाया है। मैंने आजतक आपकी हाँ-में-हाँ मिलायी है? अपनी कोई माँग उपस्थित नहीं की। आज आपको मेरी एक बात माननी पड़ेगी?'

भगवान् बोले—'बात भी तो सुनें, क्या है, बिना सुने कैसे कह दें?'

मुँह फुलाकर लक्ष्मीजी बोलीं—'नहीं जी, बात कुछ हो। मैं शशकके सींग माँगूँ, तो आपको एक सींगवाला शशक बनाकर उसके सींग लाने पड़ेंगे। मैं वन्ध्यापुत्र माँगूँ तो आपको वन्ध्याके मुँहसे पुत्र प्रकट करके लाना पड़ेगा। आप 'हाँ' करेंगे तब मैं कहूँगी, उसके पहले नहीं, आज ही तो आपका प्रेम देखना है। बहुत मुझे बहकाते रहते थे।'

भगवान् बोले—'अच्छी बात है, कहो तो सही।'

लक्ष्मीजी बोलीं—'हाँ!' कहिये।'

भगवान् हँसकर बोले—'हाँ, हाँ, हाँ, और कहो कै बार कहूँ। पट्टा लिख दूँ? गङ्गाजी तो मेरे अँगूठेसे ही निकली हैं; जो गङ्गाजीमे खड़ा होकर कहूँ।'

लक्ष्मीजी प्रसन्नता प्रकट करती हुई बोलीं—'नहीं, बस महाराज! हो गया मुझे विश्वास। आपको, जैसे भी हो, अनसूया देवीका सतीत्व भङ्ग करना होगा।'

भगवान् यह सुनकर हँसे और मन-ही-मन कहने लगे—'अरी देवि! हममें इतनी सामर्थ्य कहाँ जो उस देवीका पातिव्रत्य खण्डित कर सकें।' भगवान् समझ गये, यह सब इस तूमड़िया नारदके बीज बोये हैं, प्रकटमें बोले—'बस, इतनी-सी ही बात-पर मुँह कुप्पाकी तरह फुला लिया था। हम अभी जाते हैं। हम तो प्रयत्न करेंगे और जबतक इस कामको पूरा न करेंगे, तबतक न लौटेंगे, यदि तुमने बीचमे कुछ विघ्न-बाधा न डाली तो?'

लक्ष्मीजी बड़ी प्रसन्न हुईं। भगवान्‌ने अपने वाहन गरुड़को बुलाया और वे अत्रिके आश्रमकी ओर चल पड़े।

इधर नारदजी कैलास पहुँचे। सतीजी अकेली बैठी पूजा कर रही थीं। वीणा बजाते, नाचते, गाते नारदजीको देखकर सती पार्वतीने उनका स्वागत किया, खानेको एक लड्डू दिया। एक ही गफ्फेमें मुँहमें डालते हुए नारदजी बोले—'अहा, कैसा स्वादिष्ट लड्डू है। अमृतका बना मालूम पड़ता है, किंतु भगवती अनसूयाके यहाँ जैसा स्वाद था, वैसा तो स्वाद है नहीं!'

सतीने मनमें सोचा—'हाय! कैसे कृतघ्नसे पाला पड़ा! कितने उल्लाससे तो मैंने सुधामय मोदक इसे दिया, यह कहता है अनसूयाके लड्डूके बराबर नहीं है।' तब तो उन्हें रोष आ गया और बोलीं—'नारद! क्या कह रहा है? अनसूया कौन है, जिसके लड्डूकी तू इतनी प्रशंसा करता है?'

नारदजी बोले—'माताजी! सती-साध्वी भगवती अनसूया भगवान् अत्रिकी प्राणप्रिया पत्नी हैं। आज संसारमें उनके सदृश दूसरी कोई पतिव्रता नहीं।'

सतीजीने बल देते हुए कहा—'मुझसे भी अधिक?'

नारदजीने उपेक्षाके स्वरमें कहा—'माताजी! अधिक-कमका तो मुझे पता नहीं, किंतु इतना अवश्य जानता हूँ, उनके पातिव्रत्यके सामने आपका पातिव्रत्य फीका है।'

यह सुनते ही सतीजी दौड़ी-दौड़ी शिवजीके पास पहुँचीं और बोलीं—'आप तो कहते थे मैं पतिव्रताओंमे शिरोमणि हूँ।'

शिवजीने कहा—'तो क्या तुम्हें इसमें कुछ सन्देह है?'

सतीजीने कहा—'महाराजजी ! अबतक तो सन्देह था नहीं । इस नारदने मुझे सन्देहमें डाल दिया है । नारद कहता है कि अत्रिपत्नी अनसूयाके सामने तुम्हारा पातिव्रत्य फीका है ।'

यह सुनते ही शिवजी हँस पड़े और बोले—'नारद कहाँ है ? उसे मेरे पास लाओ ।' सतीजी लौटकर गयीं तो अब नारद वहाँ कहाँ । वे तो कबके नौ-दो-ग्यारह हो चुके थे । सतीजीने लौटकर कहा—'महाराज ! वह तो चला गया, किंतु आप बतावें यह बात सत्य है क्या ?'

भोलानाथ स्त्रियोंके डाहकी बात क्या जानें कि इनके मनमें कैसी असूया होती है । वे बोले—'नारद ठीक कहता था, देवि ! तुम भगवती अनसूयाकी समानता तो नहीं कर सकतीं ।'

सतीजीने उसी समय शिवजीके कमलके सदृश अरुण चरण पकड़ लिये और दृढ़ताके स्वरमें बोलीं— 'अब इन चरणोंको तभी छोड़ूँगी, जब अनसूयाका पातिव्रत्य भङ्ग करके मुझे संसारमें सर्वश्रेष्ठा सतीशिरोमणि बना देंगे ।'

भोले बाबा अपने साँपोंको सम्हालते हुए बोले—'देवि ! हम प्रयत्न करेंगे, किंतु बीचमें फिर तुम कहीं गड़बड़-घुटाला मत मचा देना । स्त्रियाँ क्षणभरमें तो रुष्ट हो जाती हैं, क्षणभरमें सन्तुष्ट । फिर भायेलो-सहेलो मत जोड़ लेना ।'

सतीजी बोलीं—'महाराज ! मुझे तो आपका ही डर है । आप भोलानाथ ठहरे । पुरुषोंकी सदा यही नीति रहती है कि छलसे, बलसे, कला कौशलसे, डाँटके, फटकारके, प्यार कर, झूठ-सच बोलकर स्त्रियोंको ठग लेते हैं । सो देवताजी ! अब उसी ठग-विद्याका प्रयोग अत्रिपत्नी अनसूयाके प्रति कीजिये ।'

शिवजी हँस पड़े और मन ही-मन सोचने लगे—'जो दूसरोंको खाई खोदता है, उसके लिये कुआँ खुदा-खुदाया तैयार रहता है ।' प्रकटमें बोले—'देवि ! मैं अभी जाता हूँ, तुम मेरे पैरोंको छोड़ो तो सही ।' सती देवीने भगवान् वृषभध्वजके चरणोंको छोड़ दिया । जो सती अपने पतिके चरणोंको क्षणभर भी छोड़ देती है, उसे अन्तमें भी क्लेश-ही-क्लेश उठाना पड़ता है । शिवजीने अपने नादियेको बुलाया । वे बमबम करते हुए तुरंत दौड़े चले आये । शिवजी उछलकर उनके ऊपर सवार हुए और पीछे आनेवाले भूत, प्रेत, पिशाचोंको लौटाकर अकेले ही अत्रि-आश्रमकी ओर चल पड़े ।

इधर नारदजी ब्रह्मलोकमें पहुँचे । देवी ब्रह्माणीने उनका स्वागत-सत्कार किया और बोलीं—'वत्स नारद ! तुम तो हमें भूल ही जाते हो, अबके तो बहुत दिनोंमें आये । क्या नये समाचार हैं ?'

नारदजीने कहा—'माताजी ! सब ठीक है, एक बड़ी अद्भुत बात मैंने मर्त्यलोकमें देखी ।'

उत्सुकताके साथ ब्रह्माणीने पूछा—'बताओ' कौन-सी अद्भुत बात है ?'

नारदजीने कहा—'माताजी ! क्या बताऊँ, अत्रिपत्नी अनसूयाके पातिव्रत्यका ऐसा प्रभाव है कि सब ऋषि-मुनि आकर उनकी स्तुति करते हैं । संसारमें उनके समान आज कोई भी पतिव्रता नहीं । पातिव्रत्यका ऐसा प्रभाव ही होता है ।' अमर्षके सहित ब्रह्माणी बोलीं—'तो क्या वह मुझसे भी बढ़कर है ?'

नारदजीने कहा—'अब माताजी ! यह मैं कैसे कहूँ । अपनी मा तो मा ही है, सर्वश्रेष्ठ है ही । किंतु सभी ऋषि-मुनि यही बात कह रहे हैं कि आज अनसूयासे बढ़कर कोई भी पतिव्रता नहीं ।'

अब तो ब्रह्माणीजीको बड़ी चिन्ता हुई । उन्होंने कहा—'जाओ, शीघ्रतासे अपने पिताको तो बुला लाओ ।'

माताजीकी आज्ञा पाकर नारदजी पितामहकी सभामें पहुँचे । उस समय देवताओं और असुरोंमें जो बहुत दिनसे वैर-भाव चल रहा था, उसीके सम्बन्धमें कश्यपजीसे बातें कर रहे थे । नारदजीने ब्रह्माणीजीका सन्देश कह सुनाया ।

ब्रह्माजीने समझा कोई आवश्यक कार्य होगा, इसीलिये उठकर भीतर आये । आते ही ब्रह्माणीने पूछा—'भगवन् ! आजकल संसारमें सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता कौन है ?'

ब्रह्माजीने विस्मयके साथ पूछा—'इस अप्रासंगिक प्रश्नका प्रयोजन ?'

हठके स्वरमें ब्रह्माणीने कहा—'प्रयोजन कुछ नहीं, आप मुझे पहले इसका उत्तर दे दीजिये ।'

ब्रह्माजीने प्रेमसे मुस्कराकर कहा—'वैसे ही कोई बात न चीत । तुमसे बढ़कर और संसारमें कौन पतिव्रता है !

ब्रह्माणीने प्रेमके स्वरमें कहा—'अब महाराज ! आप ये चाटुकारिताकी बात न कीजिये, सच-सच बताइये । मैंने तो सुना है आजकल अनसूयासे बढ़कर कोई पतिव्रता संसारमें नहीं है ।'

यह सुनकर ब्रह्माजीको कुछ चिन्ता भी हुई, उसके

मुसकराये भी। सोचा—कुछ दालमें काला है। स्त्रियोंमें असूया शीघ्र ही आ जाती है। अनसूयामें यही विशेषता है, कि किसीके प्रति भी उसके मनमें असूया नहीं। बात तो सत्य है, उनके समान कौन हो सकता है? बातको टालनेकी दृष्टिसे ब्रह्माजी बोले—'तुमसे यह बात किसने कही?'

ब्रह्माणीजी इधर-उधर देखने लगीं। नारदजीका पता ही नहीं। माता-पिताकी ऐकान्तिक रहस्यकी बातोंके समय सयाने पुत्रको वहाँ नहीं रहना चाहिये, इसलिये नारदजी न जाने कबके अन्तर्धान हो गये थे। जब नारदजीको न देखा तो ब्रह्माणीजीने कहा—'मुझसे काले चोरने कहा। आप यह बताइये, बात सत्य है या नहीं?'

ब्रह्माजीने मुखपर हाथ फेरते हुए कहा—'मान लो, सत्य ही है तो इसमें तुम्हें चिन्ता करनेकी कौन-सी बात है। वह तो तुम्हारी पुत्रवधू ही ठहरी।'

ब्रह्माणीजीने रोषके स्वरमें कहा—'मानसिक पुत्रोंसे क्या सम्बन्ध? वे तो आपके पृथक्-पृथक् अङ्गोंसे प्रकट होनेसे परस्परमें भिन्न ही हैं। देखिये, आप जैसे भी हो, अनसूयाको पातिव्रत्य-धर्मसे च्युत करें।'

उसी समय सर्वज्ञ भगवान् ब्रह्माजीने ध्यान लगाया। सब बात वे समाधिमें ही समझ गये। भगवान् कुछ कौतुक करना चाहते हैं। वे शीघ्रतासे मुकुट सम्हालते हुए बोले—'अच्छी बात है, मैं जाता हूँ।' यह कहकर वे हंसपर चढ़कर अकेले ही चल दिये।'

भगवती मन्दाकिनीके तटपर तीनों देव महामुनि अत्रिके आश्रममें पहुँचे। परस्परमें एक दूसरेसे प्रणाम-नमस्कार हुआ। सभीने अपने-अपने आनेका कारण बताया। भगवान् तो सब समझते ही थे; अतः बोले—'हम तीनों वेष बदलकर भगवती अनसूयाके पातिव्रत्यकी परीक्षा करने चलें।' सभीने इस बातको स्वीकार किया और तीनों साधु-वेषसे अनसूया-देवीके निकट पहुँचे। उस समय भगवान् अत्रि आश्रममें नहीं थे। अतिथिरूपमें तीन मुनियोंको आते देखकर पतिव्रता अनसूयाने उनका स्वागत-सत्कार किया। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय देकर उन्होंने कन्द, मूल, फल भेंट किये, किंतु मुनियोंने देवीके आतिथ्यको स्वीकार नहीं किया।

तब देवीने विनीत भावसे पूछा—'मुनियो! मुझसे कौन-सा अपराध हो गया, जो आप मेरी की हुई पूजाको ग्रहण नहीं कर रहे हैं?'

मुनियोंने कहा—'आप हमें एक वचन दें, तो हम आपकी पूजा ग्रहण करेंगे, अन्यथा नहीं ग्रहण कर सकते।'

देवीने कहा—'मुनियो! अतिथिका सत्कार प्राणोंको बलिदान करके भी किया जाता है। कपोतने अपनी स्त्रीके मारनेवाले व्याधाका सत्कार स्वयं अग्निमें कूदकर प्राण देकर भी किया था। आप जिस प्रकार भी प्रसन्न होंगे, उसी प्रकार मैं करनेको उद्यत हूँ।'

तब तो मुनियोंने कहा—'देवि! आप विवस्त्र होकर हमारा आतिथ्य-सत्कार कीजिये।'

यह सुनकर पतिव्रता अनसूया हकी-बकी-सी रह गयीं। ये मुनि हैं या कोई छद्मवेषधारी, जो ऐसा अनुचित सदाचार-हीन प्रस्ताव कर रहे हैं। उन्होंने ध्यान लगाकर समाधिमें देखा, तो सब रहस्य समझ गयीं और बोलीं—'मैं आपका विवस्त्र होकर सत्कार करूँगी। यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ, मैंने कभी भूलसे भी स्वप्नमें भी पर-पुरुषका काम-भावसे चिन्तन न किया हो, तो आप तीनों छः-छः महीनेके बच्चे बन जायँ।'

पतिव्रताका इतना कहना था कि तीनों-के-तीनो छः-छः महीनेके दूध पीनेवाले बच्चे बनकर पालनेपर कुलबुलाने लगे। माताने विवस्त्र होकर अपना स्तन पान कराया और पालनेपर सुला दिया। इतनेमें ही महामुनि अत्रि भी आ गये। तीनों सुकुमार बच्चोंको देखकर वे आश्चर्यचकित होकर पूछने लगे—'देवि! ये देवस्वरूप, परम सुन्दर, अत्यन्त मनोहर, मनको स्वतः ही अपनी ओर खींच लेनेवाले तीनों बच्चे किस भाग्यशालीके हैं?'

भगवती अनसूयाने कहा—'भगवन्! ये आपके ही बच्चे हैं।

ऋषि बोले—'हमारे ऐसे भाग्य कहाँ?

देवीने कहा—'नहीं, महाराज! आपके ही हैं। भगवान्-ने स्वतः कृपा की है।' मुनि सब रहस्य समझ गये। अब तो तीनों देवता बच्चे बने क्रीड़ा करने लगे। मा अनसूया उन्हें खिलातीं, पिलातीं, पुचकारतीं, प्यार करतीं। ये सब भी उमङ्गमें भरकर माके साथ क्रीड़ाएँ करते।

इधर जब तीनों देवियोंने देखा, हमारे पति तो आये ही नहीं, तब तो वे बड़ी ही चिन्तित हुईं। जिससे पूछें वही कह दे, 'माताजी! हम तो जानते ही नहीं।' क्या करें, कहाँ रह

गये ! आखिर तीनों घरसे निकलीं। दैवयोगसे तीनोंकी चित्रकूटमें भेंट हो गयी। परस्परमें मिलकर एक दूसरीने अपना दुःख बताया। लक्ष्मीजीने सतीजीसे पूछा—'तुम्हें कैसे पता चला ?'

उन्होंने कहा—'हमसे तो नारदने ये सब बातें कही थीं।

शीघ्रतासे ब्रह्माणीजी बोल उठीं—'हाय ! उसीने मेरे भी कान भरे थे।'

लक्ष्मीजी भी सिर ठोकने लगीं। तीनों नारदजीपर क्रोध कर रही थीं। लक्ष्मीजी बड़ी कुपित हो रही थीं। दाँत पीसकर बोलीं—'यदि वह दुमड़िया कहीं मिल जाय, तो उसकी दूमड़ी-फूमड़ी फोड़ दूँ। उसकी ऐसी मरम्मत करूँ कि छठीतकका दूध याद आ जाय।' वे कह रही थीं कि सामनेसे 'जय रामकृष्ण हरि' की धुनि करते हुए नारदजी दिखायी दिये।

दूरसे ही नारदजीने कहा—'माताजी ! दण्डवत् ! सब माताओंको दण्डवत् !'

लक्ष्मीजी तो मन-ही-मन क्रोधित थीं, सभीका रोष पराकाष्ठाको पहुँच रहा था। अपने रोषको छिपाकर लक्ष्मीजी बोलीं—'वाह नारदजी ! बड़े अच्छे समयपर आये। दूर क्यों खड़े हो, हमारे पास तो आओ। तुम्हारी यह वीणा तो बड़ी सुन्दर है। देखें तनिक इसे, कैसी है ? ये सरस्वतीजी बड़ी सुन्दर वीणा बजाती हैं।'

नारदजी तो समझ रहे थे, बोले—'माताजी ! मैं आजकल एक अनुष्ठानमें हूँ। मैं किसीके पास जाकर बातें नहीं करता। विशेषकर तो स्त्रियोंसे तो दूर ही रहता हूँ। किसीके पैर नहीं छूता। रही वीणाकी बात सो यह तो मुझे प्राणोंसे भी प्यारी है, इसे तो मैं किसीको छूनेतक नहीं देता। सरस्वतीजी अपनी वीणा बजावें। अपने राम तो चले, जय जय सीताराम !' इतना कहा और नारदजी चल पड़े।

अब तो तीनों बड़ी घबड़ायीं। बड़ी कोमल वाणीमें ब्रह्माणी बोलीं—'नारद ! नारद ! तुझे मेरी शपथ, अपने पिताकी शपथ जो तू लौटकर न आवे। भैया ! एक बात सुन जा ! तू सब जानता है। तीनों देवता कहाँ चले गये ?'

नारदजीने अँगुलीसे संकेत करते हुए कहा—'देखो, वह भगवती अनसूयाका आश्रम है, उसीमें खेल रहे हैं।'

लक्ष्मीजी शीघ्रतासे बोलीं—'ऐसा भी क्या खेल ! इतने दिन हो गये। तू हमारे पास तो आ। अब तेरी वीणा-फीणा नहीं फोड़ूँगी, बात तो बता। हम किस तरह अपने पतियोंसे मिल सकती हैं ?'

नारदजी बोले—'मैं इन बातोंको क्या जानूँ। मैं तो माताओंसे मिलना जानता हूँ।

पार्वतीजी बोलीं—'अरे भैया नारद ! तेरी पहुँच सब जगह है, तू सब जानता है। हम इस आश्रमके भीतर जाना चाहती हैं, कैसे जायँ ? भगवती अनसूया अप्रसन्न तो न होंगी ? हमें उनका बड़ा डर है।'

नारदजीने कहा—'तुम भूलकर भी पैर मत रखना। जहाँ तुम भीतर गयीं कि देवीने अपने सतीत्वके बलसे तुम सबको भस्म किया।'

तीनों बड़ी घबड़ायीं और बोलीं—'नारद ! भैया ! देख, अब हँसी मत कर। सब बात बता दे, कहाँ हैं वे तीनों ?'

नारदजी हँसी रोककर बोले—'वे तीनों तो म्याऊँ म्याऊँ कर रहे हैं। तीनोंकी बोलती बंद है। दूध पीते हैं और किलकिलाते हैं, बिल्लीके-से बच्चे बने हुए हैं। सती जहाँ बिठाती हैं, बैठते हैं; जहाँ लिटाती हैं, लेटते हैं। अब उनकी आशा छोड़ो। पंद्रह-बीस वर्षमें बड़े होंगे, तब सती उनका [illegible] विवाह करेंगी। अब तुम सब भस्म रमाकर माला लेकर राम-राम रटो। दूसरा कोई उपाय नहीं। अब समझ गयीं, अनसूयाके समान संसारमें दूसरी कोई सती नहीं ?'

लक्ष्मीजी बोलीं—'यह सब [illegible] ही [illegible] हुई है। अब भैया ! तू जीता हम सब हारीं। जैसे हम उनसे मिल सकें, वह उपाय बता दे। हमने अपने किये का फल पा लिया। सत्य है, कभी किसी गुणवानके प्रति ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये। सबसे बड़ा पाप दूसरोंसे ईर्ष्या-डाह रखना ही है।'

नारदजी बोले—'अब आयीं ठीक ठिकानेपर। पश्चात्तापसे सभी पाप धुल जाते हैं। अब एक ही उपाय है। तुम सतीकी शरणमें जाओ, तभी कल्याण होगा।'

तीनों आश्रमके समीप गयीं। किवाड़ बंद थे, किसी का साहस नहीं हुआ किवाड़ खोलकर भीतर घुस जायँ। न जाने सती असन्तुष्ट हो जायँ। सम्भव है देवी स्नान करने कहीं गयी हों। कुटीके पीछे एक विशाल वटवृक्ष था, उसपर चढ़कर देखती हैं, तो तीनों बच्चे बने एक पालनेमें [illegible] हैं। विष्णुभगवान्ने खिड़कियोंसे लक्ष्मीजीकी ओर देखा और चिल्ला उठे—'म्याऊँ-म्याऊँ'। लक्ष्मीजीने [illegible] कहा—'क्यों ढोंग बनाये हुए हो, चल आओ।' [illegible] हिलाने लगीं। तीनोंने तीनोंको देखा। किंतु भगवान् तो

सतीके तपके वशमें थे, अतः वे तो बिना पूछे जा नहीं सकते। तीनों देवियाँ अनसूयाके शापसे भयभीत थीं। अतः उनका साहस नहीं हुआ, बिना पूछे नीचे उतर जायँ। थोड़ी ही देरमें भगवती अनसूया गीले वल्कल पहने आ गयीं। तीनों शीघ्रतासे पेड़से उतरकर, कुटीके द्वारपर खड़ी हो गयीं। वहींसे पुकारने लगीं—'माताजी! माताजी! हम भीतर आवें?'

माताजीने भीतरसे ही पूछा—'तुम कौन हो?' तीनोंने कहा—'हम आपकी पुत्रवधू हैं।'

माताने कहा—'अरी, बहुओंको अपने घरमें क्या पूछना? आ जाओ, यह तो तुम्हारा ही घर है।' यह सुनकर तीनों लजाती हुई भीतर गयीं। माता अनसूयाके पैर छूए। माताने कहा—बड़ी अवस्थावाली हो, अपने पतिकी प्यारी हो, मेरे बच्चे तो अभी छोटे-छोटे हैं। बहुएँ तो बड़ी लंब-तडंगी हैं।'

इतनेमें ही महामुनि अत्रिजी भी आ गये। तीनों बहुएँ घूँघट मारकर एक ओर हट गयीं। मुनिने पूछा—'देवि! ये तीनों कौन हैं?'

अनसूयाजीने कहा—'भगवन्! ये आपकी पुत्रवधू हैं।'

मुनि बोले—'देवि! तुम बड़े कौतुक रच लेती हो। अभी तो पुत्र बना लिये। वे पूरे छः महीनेके भी नहीं हुए, कि पुत्रवधुएँ भी आ गयीं। हाथ-हाथ भरके बच्चे, पाँच-पाँच हाथकी बहुएँ, यह कैसी विचित्र बातें हैं?'

अनसूया देवी बोलीं—'महाराज! इसमें क्या हानि? बड़ी बहू, बड़े भाग्य—यह कहावत है। बच्चे भी एक दिन बड़े हो जायँगे।' यह सुनकर मुनि हँस पड़े और सब रहस्य समझ गये।

अब तीनोंने सतीके पैर पकड़े 'देवि! हमें क्षमा करिये। अपने कियेका हमने फल भोग लिया। अब हमें हमारे पतियोंको दे दीजिये!'

अनसूयाजीने कहा—'मैं कब मना करती हूँ? ले जाओ गोदीमें उठाकर, ये सो रहे हैं।'

तीनों देवियोंने कहा—'माताजी! अब हमें बहुत लज्जित न करें। संसारमें हमारी हँसी न करावें, कोई क्या कहेगा? इन्हें जैसे-का-तैसा कर दीजिये।'

तीनों देवियोंको दुखित देखकर माताका हृदय पसीज गया। उन्होंने हाथमें जल लेकर बच्चोंके ऊपर छिड़क दिया। तीनों देव अपने-अपने स्वरूपोंमें अपने-अपने वाहनों-पर विराजमान थे। सती-साध्वी अनसूयाने उठकर तीनों देवोंकी वन्दना की, पूजन किया और प्रदक्षिणा की। माताकी पूजासे प्रसन्न होकर तीनों देवताओंने कहा—'पतिव्रते! हम तुम्हारे पातिव्रत्यसे अत्यन्त ही सन्तुष्ट हैं। तुम हमसे जो चाहो वरदान माँग लो।'

यह सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों देवोंको नमस्कार करके गद्गद कण्ठसे भगवती अनसूयाने कहा—'यदि आपलोग मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यही वरदान माँगती हूँ कि आप तीनों मेरे पुत्र हो जायँ।'

प्रसन्न होकर तीनों देवोंने कहा—'तथास्तु।' अच्छी बात है, हम तीनों अपने-अपने अंशोंसे आकर तुम्हारे पुत्र होंगे।'

अनसूयाको इस प्रकार वरदान देकर, सम्मुख लजासे नीचा सिर किये हुए लक्ष्मीजी, सतीजी और ब्रह्माणीजीको देखकर तीनोंने पूछा—'बताओ, आजकल संसारमें सबसे श्रेष्ठ सती कौन है?'

लजाते हुए तीनोंने एक स्वरमें कहा—'पुण्यश्लोका प्रातःस्मरणीया भगवती अनसूया देवी ही सर्वश्रेष्ठ सती हैं। इनसे बढ़कर पतिव्रता संसारमें दूसरी कोई नहीं है।'

पतिको ही परमेश्वर मानकर जो देवी अपनी समस्त इच्छाओंको पतिकी इच्छामें ही मिला देती है, वह क्या नहीं कर सकती? पति चाहे जैसा हो वह उसके गुणोंके कारण नहीं, अपने प्रभावके कारण, अपनी साधनाके सहारे, अपनी एकनिष्ठाके आधारपर जो-जो चाहे सो कर सकती है।*

* संकीर्तनभवन, झूसी प्रयागसे पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी महाराजके द्वारा लिखित 'श्रीभागवती कथा' प्रकाशित हो रही है। इसमें श्रीमद्भागवतकी कथाएँ बड़े ही रोचक ढंगसे तथा सरल भाषामें लिखी गयी हैं। शायद १०८ भागमें पूरी होगी। ब्रह्मचारीजीके द्वारा लिखित श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली 'कल्याण'के पाठक पढ़ चुके हैं। इससे वे जानते हैं कि ब्रह्मचारीजीकी लेखनीमें कितना माधुर्य भरा रहता है। 'भागवती कथा'का प्रत्येक खण्ड प्रतिमास निकालनेका उनका संकल्प है। प्रत्येक खण्डमें २२५-२५० पृष्ठ होते हैं। स्थायी ग्राहकोंसे १४) वार्षिक अग्रिम लिये जाते हैं और बिना डाक-व्ययके पुस्तक भेजी जाती है। प्रतिखण्डका मूल्य १।) है, डाकव्यय अलग। 'भागवती कथा' वृद्ध-युवा, बालक-बालिका, माता-बहिनें सभीके लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह चरित्र 'भागवती कथा'से ही लिया गया है।

सीता-अनसूया-संवाद

जिस समय भगवान् श्रीरामका वनवास हुआ था और वे सीता तथा लक्ष्मणको साथ लेकर वनमें गये, उस समय ये तीनों महर्षि अत्रिके भी अतिथि हुए थे। वहाँ अनसूयाजी-ने सीताका बड़ा सत्कार किया। स्वयं महर्षि अत्रिने श्रीरामके सामने अपने मुखसे अनसूयाके प्रभावका वर्णन करके कहा—'श्रीराम! ये वे ही अनसूया देवी हैं, ये तुम्हारे लिये माताकी भाँति पूजनीया हैं। विदेहराजकुमारी सीता इनके पास जायँ, ये सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये वन्दनीय हैं।' अत्रि-जैसे महर्षि जिनका गुणगान इस तरह करते हैं, उन पति-परायणा अनसूयाजीकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है!

महर्षि अत्रि तथा श्रीरघुनाथजीकी आज्ञासे सीताने आश्रम-के भीतर जाकर शान्तभावसे उनके चरणोंमें प्रणाम किया। अपना नाम बतलाया और हाथ जोड़कर बड़ी प्रसन्नतासे उन तपस्विनी देवीका कुशल-समाचार पूछा। उस समय अनसूयाजीने सीताको सान्त्वना देते हुए जिस प्रकार सतीधर्म-का महत्त्व बतलाया, वह प्रत्येक नारीके लिये अनुकरणीय तथा कण्ठहार बनानेयोग्य है। अनसूयाजी बोलीं—'सीते! यह

जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है कि तुम सदा धर्मपर दृष्टि रखती हो, बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर और उनसे प्राप्त होने-वाले मान-प्रतिष्ठाका परित्याग करके तुम वनमें भेजे हुए राम-का अनुसरण कर रही हो; यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अपने स्वामी नगरमें रहें या वनमें, भले हों या बुरे; जिन स्त्रियोंको वे प्रिय होते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकोंकी प्राप्ति होती है। पति बुरे स्वभावका, मनमाना बर्ताव करनेवाला, अथवा धनहीन ही क्यों न हो, वह उत्तम स्वभाववाली नारियों-के लिये श्रेष्ठ देवताके समान है।* वैदेही! मैं बहुत विचार करनेपर भी पतिसे बढ़कर कोई हितकारी बन्धु नहीं देखती। तपस्याके अविनाशी फलकी भाँति वह इस लोक और परलोक-में सर्वत्र सुख पहुँचानेमें समर्थ होता है। जो अपने पतिपर भी शासन करती हैं, वे असाध्वी स्त्रियाँ इस प्रकार पतिका अनुसरण नहीं करतीं, उन्हें गुण-दोषोंका ज्ञान नहीं होता। ऐसी नारियाँ अनुचित कर्मोंमें फँसकर धर्मसे भ्रष्ट हो जाती हैं और संसारमें उन्हें अपयशकी प्राप्ति होती है, किंतु जो तुम्हारे समान लोक-परलोकको जाननेवाली साध्वी स्त्रियाँ हैं, वे उत्तम गुणोंसे युक्त होकर पुण्यकर्मोंमें संलग्न रहती हैं। अतः तुम उसी प्रकार अपने पतिदेव श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें लगी रहो। सतीधर्मका पालन करो। पतिको प्रधान देवता समझो और प्रत्येक समय उनका अनुसरण करती हुई उनकी सहधर्मिणी बनो। इससे तुम्हें धर्म और सुयश दोनोंकी प्राप्ति होगी।'

तदनन्तर सीताजीने भी सतीधर्मकी महिमा सुनायी। उसे सुनकर अनसूयाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'सीते! तुम्हें आवश्यकता हो या न हो; तुम्हारी निर्लोभतासे मुझे जो हर्ष हुआ है, उसे मैं अवश्य सफल करूँगी। ये हार, वस्त्र, आभूषण, अङ्गराग और उत्तम-उत्तम अनुलेपन मैं तुम्हें देती हूँ। इनसे तुम्हारे अङ्गोंकी शोभा होगी। ये सब तुम्हारे ही योग्य हैं। बेटी! पहले मेरे सामने ही इन दिव्य वस्त्र और आभूषणोंको धारण कर लो और इनसे सुशोभित होकर मुझे प्रसन्न करो।' इस प्रकार सीताका सत्कार करके अनसूयाजीने प्रेमपूर्वक उनको विदा किया।

गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें अनसूयाजीके उपदेशका बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। वह सरल, सुबोध एवं सरस पद्यमय होनेके कारण प्रत्येक स्त्रीके लिये सदा स्मरण

---

* नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः ।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः ।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ॥
(वा० रा० अयो० ११७। २२-२४)

रखनेयोग्य है; इसलिये उसे यहाँ अविकलरूपमें उद्धृत किया जाता है—

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पतिपद प्रेमा॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥
सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥

—रा० शा०

सती शाण्डिली

प्रतिष्ठानपुरमें एक कौशिक नामसे प्रसिद्ध ब्राह्मण रहता था। वह पूर्वजन्ममें किये हुए पापोंके कारण कोढ़ी हो गया था। उसकी पत्नीका नाम शैव्या था, किंतु शाण्डिल्य-गोत्रमें उत्पन्न होनेके कारण उसे लोग शाण्डिली ही कहा करते थे। वह बड़ी साध्वी और पतिव्रता थी। पतिकी सब प्रकारसे सेवा करके उसे सतुष्ट रखना ही नारीका परम धर्म है, इस शास्त्र-वाक्यपर उसको अटल विश्वास था। उसका पति अत्यन्त घृणित रोगसे ग्रस्त था तो भी वह देवताकी भाँति उसकी पूजा करती थी। शाण्डिली अपने पतिके पैरोंमें तेल मलती, उसका शरीर दबाती, उसे अपने हाथसे नहलाती, कपडे पहनाती और भोजन कराती थी। इतना ही नहीं, उसके थूक, खँखार, मल-मूत्र और रक्त भी वह स्वयं ही धोकर साफ करती थी। वह एकान्तमें भी पतिकी सेवा करती और उसे मीठी वाणीसे प्रसन्न रखती थी। इस प्रकार अत्यन्त विनीतभावसे वह सदा अपने स्वामीकी सेवा किया करती, तो भी अधिक क्रोधी स्वभावका होनेके कारण वह निष्ठुर प्रायः अपनी पत्नीको फटकारता ही रहता था। इतनेपर भी वह उसके पैरों पड़ती और उसे देवताके समान समझती थी। यद्यपि उसका शरीर अत्यन्त घृणाके योग्य था, तो भी वह साध्वी उसे सबसे श्रेष्ठ मानती थी, कौशिकसे चला-फिरा नहीं जाता था, तो भी उसने एक दिन अपनी पत्नीसे कहा—'धर्मज्ञे! उस दिन मैंने घरपर बैठे-ही-बैठे सड़कपर जिस वेश्याको जाते देखा था, उसके घरमें आज मुझे ले चलो, मुझे उससे मिला दो। उस वेश्याको बहुत लोग चाहते हैं और मुझमें उसके पासतक जानेकी शक्ति नहीं है; इसलिये आज मुझे तुम उसके पास पहुँचा दो।'

अपने स्वामीका यह वचन सुनकर उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई इस परम सौभाग्यशालिनी पतिव्रता पत्नीने अपनी कमर खूब कस ली और अधिक शुल्क लेकर पतिको कंधेपर चढ़ा लिया। फिर धीरे-धीरे वेश्याके घरकी ओर प्रस्थान किया। रात्रिका समय था, आकाश मेघोंसे आच्छन्न हो रहा था। केवल बिजलीके चमकनेसे मार्ग दिखायी दे जाता था। ऐसी वेलामें वह ब्राह्मणी अपने पतिका अभीष्ट साधन करनेके लिये राजमार्गसे जा रही थी। मार्गमें सूली थी; जिसके ऊपर चोर न होते हुए भी चोरके सन्देहसे माण्डव्य नामक ब्राह्मणको चढा दिया गया था। वे दुःखसे आतुर हो रहे थे, कौशिक पत्नीके कंधेपर बैठा था। उस अन्धकारमें देख न सकनेके कारण उसने अपने पैरोंसे छूकर सूलीको हिला दिया। इससे कुपित होकर माण्डव्यने कहा—'जिसने पैरसे हिलाकर मुझे इस कष्टकी दशामें पहुँचा दिया और मुझे अत्यन्त दुखी कर दिया, वह पापात्मा नराधम सूर्योदय होनेपर विवश होकर अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। सूर्यका दर्शन होते ही उसका विनाश हो जायगा।' इस दारुण शापको सुनकर उसकी पत्नी व्यथित हो उठी और बोली—'अब सूर्यका उदय ही नहीं होगा।'*

---

* तस्य भार्या ततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम्।
प्रोवाच व्यथिता सूर्यो नैवोदयमुपैष्यति॥

(मार्कण्डेयपु० १६। ३१)

तदनन्तर सूर्योदय न होनेके कारण बराबर रात ही रहने लगी। कितने ही दिनोंके बराबर समय रातभरमें ही बीत गया। सारे धर्म-कर्मका लोप हो गया। इससे देवताओंको बड़ा भय हुआ।

सब देवता आपसमें बात करने लगे। यज्ञोंके विनाशकी आशङ्कासे वहाँ एकत्रित हुए देवताओंके वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजीने कहा—'पतिव्रताके माहात्म्यसे इस समय सूर्योदय नहीं हो रहा है और सूर्योदय न होनेसे मनुष्यों तथा तुम देवताओंकी भी हानि है; अतः तुमलोग महर्षि अत्रिकी पतिव्रता पत्नी तपस्विनी अनसूयाके पास जाओ और सूर्योदयकी कामनासे उन्हें प्रसन्न करो।' तब देवताओंने जाकर अनसूयाजीको प्रसन्न करके 'पूर्ववत् दिन होने लगे' यह याचना की। अनसूयाने कहा—'देवताओ! पतिव्रताका माहात्म्य किसी प्रकार कम नहीं हो सकता; इसलिये मैं उस साध्वीको मनाकर दिनकी सृष्टि करूँगी। मुझे ऐसा उपाय करना है, जिससे पूर्वकी भाँति दिन-रातकी व्यवस्था चलती रहे और उस पतिव्रताके पतिका भी नाश न हो।' देवताओंसे यह कहकर अनसूया देवी उस ब्राह्मणीके घर गयीं और बोलीं—'कल्याणी! तुम अपने स्वामीके मुखका दर्शन करके प्रसन्न तो रहती हो न? पतिको सम्पूर्ण देवताओंसे बड़ा मानती हो न? पतिकी सेवासे ही मुझे महान् फलकी प्राप्ति हुई है तथा सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंकी प्राप्तिके साथ ही मेरे सारे विघ्न भी दूर हो गये। साध्वी! मनुष्यको पाँच ऋण सदा ही चुकाने चाहिये। अपने वर्णधर्मके अनुसार धनका संग्रह करना आवश्यक है। उसके प्राप्त होनेपर शास्त्रविधिके अनुसार उसका न्यायसे दान करना चाहिये। सत्य, सरलता, तपस्या, दान और दयासे सदा युक्त रहना चाहिये। राग-द्वेषका परित्याग करके शास्त्रोक्त कर्मोंका अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य अपने वर्णके लिये विहित उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है। पतिव्रते! इस प्रकार महान् क्लेश उठानेपर पुरुषोंको प्राजापत्य आदि लोकोंकी प्राप्ति होती है। परन्तु स्त्रियाँ पतिकी सेवा करनेमात्रसे पुरुषोंके दुःख सहकर उपार्जित किये हुए पुण्यका आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियोंके लिये अलग यज्ञ, श्राद्ध या उपवास करनेका विधान नहीं है। वे पतिकी सेवामात्रसे ही उन अभीष्ट लोकोंको प्राप्त कर लेती हैं, अतः महाभागे! तुम्हें पतिकी सेवामें सदा मन लगाना चाहिये, क्योंकि स्त्रीके लिये पति ही परमगति है। पति जो देवताओं, पितरों तथा अतिथियोंकी सत्कारपूर्वक पूजा करता है, उसके भी पुण्यका आधा भाग स्त्री अनन्यचित्तसे पतिकी सेवा करनेमात्रसे प्राप्त कर लेती है।'*

अनसूयाजीका वचन सुनकर पतिव्रता ब्राह्मणीने बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया और इस प्रकार कहा—'स्वभावतः सबका कल्याण करनेवाली देवी! स्वयं आपने यहाँ पधारकर पतिसेवामें मेरी पुनः श्रद्धा बढ़ा दी है। इससे मैं धन्य हो गयी। यह आपका मुझपर बहुत बड़ा अनुग्रह है। इसीसे देवताओंने भी आज मुझपर कृपादृष्टि की है। मैं जानती हूँ कि स्त्रियोंके लिये पतिके समान दूसरी कोई गति नहीं है। पतिमें किया हुआ प्रेम इहलोक और परलोकमें भी उपकार करनेवाला होता है। यशस्विनि! पतिके प्रसादसे ही नारी इस लोक और परलोकमें भी सुख पाती है, क्योंकि पति ही नारीका देवता है। महाभागे! आज आप मेरे घरपर पधारी हैं। मुझसे अथवा मेरे इन पतिदेवसे आपको जो भी कार्य हो, उसे बतानेकी कृपा करें।' अनसूया बोलीं—'देवि! तुम्हारे वचनसे दिन-रातकी व्यवस्था लोप हो जानेके कारण

---

* नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न [illegible]।
भर्तृशुश्रूषयैवैतान् लोकानिष्टान् [illegible]॥
तस्मात् त्वमपि [illegible]।
त्वया [illegible]॥
यद्देवेभ्यो यच्च पितृभ्य [illegible]।
तस्यार्द्धं केवलानन्यचित्ता नारी [illegible]॥
(मार्कण्डेयपु० [illegible])

शुभ कर्मोंका अनुष्ठान बंद हो गया है; इसलिये ये इन्द्र आदि देवता मेरे पास दुखी होकर आये हैं और प्रार्थना करते हैं कि दिन-रातकी व्यवस्था पहलेकी तरह अखण्ड रूपसे चलती रहे। मैं इसीके लिये तुम्हारे पास आयी हूँ। मेरी यह बात सुनो। दिन न होनेसे समस्त यज्ञकर्मोंका अभाव हो गया है और यज्ञोंके अभावसे देवताओंकी पुष्टि नहीं हो पाती है, अतः तपस्विनि! दिनके नाशसे समस्त शुभकर्मोंका नाश हो जायगा और उनके नाशसे वृष्टिमें बाधा पड़नेके कारण इस संसारका ही उच्छेद हो जायगा। अतः यदि तुम इस जगत्को विपत्तिसे बचाना चाहती हो तो सम्पूर्ण लोकोंपर दया करो, जिससे पहलेकी भाँति सूर्योदय हो।' ब्राह्मणीने कहा—'महाभागे! माण्डव्य ऋषिने अत्यन्त क्रोधमें भरकर मेरे स्वामी—मेरे ईश्वरको शाप दिया है कि सूर्योदय होते ही तेरी मृत्यु हो जायगी।'

अनसूया बोलीं—'कल्याणी! यदि तुम्हारी इच्छा हो और तुम कहो तो मैं तुम्हारे पतिको पूर्ववत् शरीर एवं नयी स्वस्थ अवस्था करे दूँगी। सुन्दरी! मुझे पतिव्रता स्त्रियोंके लिये माहात्म्यका सर्वथा आदर करना है। इसीलिये तुम्हें मनाती हूँ।' ब्राह्मणीके 'तथास्तु' कहकर स्वीकार करनेपर तपस्विनी अनसूयाने अर्घ्य हाथमें लेकर सूर्यदेवका आवाहन किया। उस समयतक दस दिनोंके बराबर रात बीत चुकी थी। तदनन्तर भगवान् सूर्य खिले हुए कमलके समान अरुण आकृति धारण किये अपने महान् मण्डलके साथ गिरिराज उदयाचलपर आरूढ़ हुए। सूर्यदेवके प्रकट होते ही ब्राह्मणी-का पति प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिरा; किन्तु उसकी पत्नीने गिरते समय उसे पकड़ लिया। अनसूया बोलीं—'भद्रे! तुम विषाद न करना। पतिकी सेवासे जो तपोबल मुझे प्राप्त हुआ है, उसे तुम अभी देखो; विलम्बकी क्या आवश्यकता? मैंने जो रूप, शील, बुद्धि एवं मधुर भाषण आदि सद्गुणोंमें अपने पतिके समान दूसरे किसी पुरुषमें कभी नहीं देखा है, उस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगसे मुक्त हो फिरसे तरुण हो जाय और अपनी स्त्रीके साथ सौ वर्षोंतक जीवित रहे। यदि मैं स्वामीके समान किसी और देवताको नहीं समझती, तो उस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगमुक्त होकर पुनः जीवित हो जाय। यदि मन, वाणी एवं क्रियाद्वारा मेरा सारा उद्योग प्रतिदिन स्वामीकी सेवाके लिये ही होता हो, तो यह ब्राह्मण जीवित हो जाय।'* अनसूया देवीके इतना कहते ही वह ब्राह्मण अपनी प्रभासे उस भवनको प्रकाशमान करता हुआ रोगमुक्त तरुण शरीरसे जीवित हो उठा; मानो जरावस्थासे रहित देवता हो। तदनन्तर दुंदुभि आदि देवताओंके बाजोंकी आवाजके साथ वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी। धन्य हैं पतिव्रता देवियाँ! —रा० श०

सती प्रातिथेयी

देवी प्रातिथेयी महर्षि दधीचिकी धर्मपत्नी थीं। भारतवर्षकी पतिव्रता देवियोंमें इनका बहुत ऊँचा स्थान है। पुराणोंमें इनके दो नाम और मिलते हैं, गभस्तिनी और बड़वा। ये विदर्भदेशके राजाकी कन्या तथा लोपामुद्राकी बहिन थीं। प्रातिथेयी सदा कठोर तपस्यामें लगी रहती थीं। ये पतिकी अनन्य अनुरागिणी तथा उन्हींकी सेवामें सदा संलग्न रहनेवाली थीं। प्रातिथेयीके लिये तपोवनका प्रत्येक प्राणी पुत्रकी भाँति पालनीय था। वृक्षों और लताओंपर भी ये माताकी भाँति स्नेह रखतीं और सब प्रकारसे उनकी सँभाल करती थीं। उनकी इस साधनाका फल भी प्रत्यक्ष देखा जाता था। आश्रमवासी वृक्ष और लताएँ दूसरोंके लिये भले ही जड़ वस्तु हों, प्रातिथेयीके लिये सभी चेतन थे। सभी उनसे बोलते तथा अपने अधिकारके अनुसार उनकी आज्ञाका पालन भी करते थे। तपोवनमें जितने वृक्ष थे, वे सभी माता प्रातिथेयीको बिना माँगे ही आवश्यकताके अनुरूप फल-फूल अर्पण करते थे।

एक दिनकी बात है, दधीचि मुनिके आश्रमपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता पधारे। वे दैत्योंको परास्त करके वहाँ आये थे, अतः उस विजयके कारण उनके हृदयमें हर्षकी हिलोरें उठ रही थीं। मुनिवर दधीचिका दर्शन करके सब

* यथा भर्तृसमं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित्। रूपतः शीलतो बुद्ध्या वाङ्माधुर्यादिभूषणैः॥
तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा। प्राप्नोतु जीवितं भार्यासहायः शरदां शतम्॥
यथा भर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम्। तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः॥
कर्मणा मनसा वाचा भर्तुराराधनं प्रति। यथा ममोद्यमो नित्यं तथायं जीवतां द्विजः॥

चार तेजस्विनी सतियाँ

सावित्रीने सती-धर्मसे धर्मराजको भी जीता । पति-संमुख उत्तीर्ण हुई थी अग्निपरीक्षामें सीता ॥
सती शाण्डिलीने पतिके हित रविका रथ भी रोक लिया । दमयन्तीने कुटिल व्याधको भेज तुरत यमलोक दिया ॥

देवताओंने उन्हें प्रणाम किया । दधीचि भी सब देवताओंको आश्रमपर उपस्थित देख बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने सबका पृथक्-पृथक् पूजन किया । उनकी पत्नीने भी देवताओंके आतिथ्यमें पूर्ण योग दिया । मुनिके द्वारा समर्पित की हुई पूजा ग्रहण करके देवताओंने कहा—'महर्षे ! हम आपको एक कष्ट देना चाहते हैं । हमारे पास जो ये परम तेजस्वी दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं, इनके द्वारा हम शत्रुओंको परास्त कर चुके हैं । अब इन्हें धारण किये रहनेकी आवश्यकता नहीं है । यदि किसी सुरक्षित स्थानपर उनके रखनेकी व्यवस्था हो जाती, तो हम निश्चिन्त हो जाते । इसके लिये आपके आश्रमसे बढ़कर दूसरी कोई जगह हमें दिखायी नहीं देती । यह स्थान आपकी तपस्याद्वारा सब ओरसे सुरक्षित है; अतः यहाँ दैत्योंकी दाल नहीं गल सकती ।' दधीचिने 'एवमस्तु' कहकर देवताओंकी आज्ञा स्वीकार कर ली ।

उस समय दधीचिकी पत्नी प्रातिथेयी भी वहाँ उपस्थित थीं । उनको शस्त्रोंकी धरोहर रखनेका कार्य अपनी आश्रम-मर्यादाके अनुरूप न जान पड़ा । उन्होंने बहुत प्रकारसे पतिको समझाकर कहा—'प्राणनाथ ! दूसरेके धनको धरोहरके रूपमें रखना साधु पुरुषोंने कभी स्वीकार नहीं किया है; इसलिये आप इस काममें न पड़िये ।' पत्नीकी यह बात सुनकर दधीचिने कहा—'देवि ! तुम्हारा कहना ठीक है; किंतु अब तो मेरे मुँहसे 'हाँ' निकल चुका, अतः इसके विपरीत मैं 'नाहीं' नहीं कर सकता ।' पत्नीने भी यह सोचकर कि विधाताका विधान ही प्रबल है, आग्रह करना छोड़ दिया । देवताओंका कार्य तो हो ही गया था, वे मुनिको प्रणाम करके चले गये । महर्षि दधीचि अपनी पत्नीके साथ धर्मका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक वहाँ रहने लगे । इस प्रकार एक हजार दिव्य वर्ष बीत गये । एक दिन महर्षिने प्रातिथेयीसे कहा—'प्रिये ! बहुत दिन हो गये, देवता अपने अस्त्र-शस्त्र लेने नहीं आ रहे हैं । इधर दैत्य हमसे द्वेष करने लगे हैं । ऐसी दशामें हमें क्या करना चाहिये ।' पत्नीने विनयपूर्वक कहा—'नाथ ! मैंने तो पहले ही निवेदन किया था कि यह कार्य आपके योग्य नहीं है । अब मैं कुछ नहीं कह सकती; आप ही जो उचित समझें करें ।' तब दधीचिने उन अस्त्र-शस्त्रोंकी रक्षाके लिये एक उपाय किया । उन्होंने उन सभी आयुधोंको एक पात्रमें रखकर उन्हें मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित जलसे नहलाया । फिर तो वे सभी गलकर पानी हो गये । उस सर्वास्त्रमय जलको महर्षिने पी लिया । वे सभी अस्त्र दधीचिकी हड्डियोंके साथ मिलकर एक हो गये । जब दैत्योंको यह खबर मालूम हुई तो उन्होंने देवताओंपर आक्रमण किया । देवता भयभीत होकर दधीचिके आश्रमपर आये और अपने अस्त्र-शस्त्र माँगने लगे । महर्षिने कहा—'अब तो आपलोगोंके सभी आयुध मेरी हड्डियोंमें मिल गये हैं; अतः उन हड्डियोंको ही ले जाइये ।' उस समय प्रातिथेयी देवी आश्रमपर नहीं थीं । देवता उनके तेजसे बहुत डरते थे; अतः उनकी अनुपस्थितिमें लाभ उठाकर वे बोले—'विप्रवर ! जो कुछ करना हो, जल्दी कीजिये ।' दधीचिने समाधिमें स्थित होकर अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया । देवता उनकी हड्डियोंको लेकर अपने स्थानको लौट गये ।

तदनन्तर बहुत देरके बाद दधीचिकी सुशीला पत्नी हाथमें जलसे भरा हुआ कलश ले फल और फूलोंसे पार्वती देवीकी अर्चना और वन्दना करके आश्रमपर आयीं । उन दिनों वे गर्भवती थीं । आश्रमपर पतिको न देखकर उन्होंने अग्निदेवसे पूछा । उनके मुखसे सब हाल जानकर वे दुःख और शोकसे मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं; फिर धीरे-धीरे चेत होनेपर उन्होंने कहा—'मैं देवताओंको शाप देना नहीं चाहती; अतः स्वयं ही अग्निमें प्रवेश करूँगी । अब यह जीवन रखकर क्या होगा । संसारमें जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह सब नश्वर है; अतः उसके लिये शोक नहीं होना चाहिये । किंतु मनुष्योंमें वे ही पुण्यके भागी होते हैं, जो गौ, ब्राह्मण और देवताओंके लिये अपने प्यारे प्राणोंका उत्सर्ग कर देते हैं ।'*

यों कहकर प्रातिथेयीने अग्निदेवका यथावत् पूजन किया और अपना पेट चीरकर गर्भके बालकको निकाला; फिर गोदावरी नदी, भूदेवी तथा आश्रमके वनस्पतियोंको अपना बालक सौंपकर उन्हें प्रणाम किया और पतिकी [illegible]

* उत्पन्ने वस्तु [illegible] ।
गोविप्रदेवार्थमिह [illegible]
([illegible])

लोम आदिको चितामें रखकर स्वयं भी उसीमें प्रवेश कर गयीं। इस प्रकार पतिका चिन्तन करते हुए ही इस नश्वर शरीरका परित्याग करके उन्होंने पतिके साथ ही दिव्य लोक प्राप्त किया। उनके बालकको पिप्पल नामक वृक्षने अपना फल खिलाकर पाला था; इसलिये उसका नाम पिप्पलाद हुआ। पिप्पलाद आगे चलकर बहुत बड़े महात्मा हुए।—रा० शा०

सती मदालसा

भारतवर्षमें ऐसे योग्य पुत्र तो बहुत हुए हैं, जिन्होंने अपने सत्कर्मोंसे माता-पिताका उद्धार करके 'पुत्र' नामको सार्थक किया हो; परंतु ऐसी माता, जो परम उत्तम ज्ञानका उपदेश देकर पुत्रोंका भी संसार-सागरसे उद्धार कर दे, केवल मदालसा ही थी। उसने पुत्रोंका ही नहीं, अपना और पतिका भी उद्धार किया था। मदालसा आदर्श विदुषी, आदर्श सती और आदर्श माता थी। उसका जन्म दिव्य कुलमें हुआ था। पहले तो वह गन्धर्वराज विश्वावसुकी पुत्री थी। फिर नागराज अश्वतरकी कन्यारूपमें प्रकट हुई। उसके जीवनका संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है।

प्राचीन कालमें शत्रुजित् नामके एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। उनकी राजधानी गोमतीके तटपर थी। उनके एक बड़ा बुद्धिमान्, पराक्रमी और सुन्दर पुत्र भी था, उसका नाम था ऋतध्वज। एक दिन नैमिषारण्यसे गालव मुनि राजा शत्रुजित्के दरबारमें पधारे। उनके साथ एक बहुत ही सुन्दर दिव्य अश्व था। उन्होंने राजासे कहा—'महाराज! हम आपके राज्यमें रहकर तपस्या, यज्ञ तथा भगवान्का भजन करते हैं; किंतु एक दैत्य कुछ कालसे हमारे इस पवित्र कार्यमें बड़ी बाधा डाल रहा है। यद्यपि हम उसे अपनी क्रोधाग्निसे भस्म कर सकते हैं तथापि ऐसा करना नहीं चाहते; क्योंकि प्रजाकी रक्षा करना और दुष्टोंको दण्ड देना—यह राजाका कार्य है। एक दिन उसके उपद्रवसे पीड़ित होकर हम उसे रोकनेके उपायपर विचार कर रहे थे, इतनेमें ही यह दिव्य अश्व आकाशसे नीचे उतरा। उसी समय यह आकाशवाणी हुई—'मुने! यह अश्व बिना किसी रुकावटके समस्त पृथ्वीकी परिक्रमा कर सकता है; आकाश, पाताल, पर्वत, समुद्र सब जगह आसानीसे जा सकता है। इसलिये इसका नाम 'कुवलय' है। भगवान् सूर्यने यह अश्व आपको समर्पित किया है। आप इसे ले जाकर राजा शत्रुजित्के पुत्र राजकुमार ऋतध्वजको दे दें। वे ही इसपर आरूढ़ होकर उस दैत्यका वध करेंगे, जो सदा आपको कष्ट दिया करता है।' इस आकाशवाणीको सुनकर हम आपके पास आये हैं। आप इस अश्वको लीजिये और राजकुमारको इसपर सवार करके हमारे साथ भेजिये, जिससे धर्मका लोप न होने पावे।'

गालव मुनिके यों कहनेपर धर्मात्मा राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ राजकुमारको मुनियोंकी रक्षाके लिये भेजा। महर्षिके आश्रमपर पहुँचकर वे सब ओरसे उसकी रक्षा करने लगे। एक दिन वह मदोन्मत्त दानव शूकरका रूप धारण करके वहाँ आया। राजकुमार शीघ्र ही घोड़ेपर सवार हो उसके पीछे दौड़े। अर्धचन्द्राकार बाणसे उसपर प्रहार किया। बाणसे आहत होकर वह शूकराकार दैत्य प्राण बचानेके लिये भागा और वृक्षों तथा पर्वतसे घिरी हुई घनी झाड़ीमें घुस गया। राजकुमारके अश्वने उसका पीछा न छोड़ा। दैत्य भागता हुआ सहस्रों योजन दूर निकल गया और एक स्थानपर बिलके आकारमें दिखायी देनेवाली अँधेरी गुफामें कूद पड़ा। अश्वारोही राजकुमार भी उसके पीछे उसी गड्ढेमें कूद पड़े। भीतर जानेपर वहाँ सूअर नहीं दिखायी पड़ा; बल्कि दिव्य प्रकाशसे परिपूर्ण पाताल लोकका दर्शन हुआ। सामने ही इन्द्रपुरीके समान एक सुन्दर नगर था, जिसमें सैकड़ों सोनेके महल शोभा पा रहे थे। राजकुमारने उसमें प्रवेश किया; किंतु वहाँ उन्हें कोई मनुष्य नहीं दिखायी दिया। वे नगरमें घूमने लगे। घूमते ही-घूमते उन्होंने एक स्त्री देखी, जो बड़ी उतावलीके साथ कहीं चली जा रही थी। राजकुमारने उससे कुछ पूछना चाहा; किंतु वह आगे बढ़कर चुपचाप एक महलकी सीढ़ियोंपर चढ़ गयी। ऋतध्वजने भी घोड़ेको एक जगह बाँध दिया और उसी स्त्रीके पीछे-पीछे महलमें प्रवेश किया। भीतर जाकर देखा, सोनेका बना हुआ एक विशाल पलँग है। उसपर एक सुन्दरी कन्या बैठी है, जो अपने सौन्दर्यसे रतिको भी लजा रही है। दोनोंने एक-दूसरेको देखा और दोनोंका मन परस्पर आकर्षित हो गया। कन्या मूर्च्छित हो गयी। तब पहली स्त्री ताडका पंखा लेकर उसे हवा करने लगी। जब वह कुछ होशमें आयी तो राजकुमारने उसकी मूर्च्छाका कारण पूछा। वह लजा गयी। उसने सब कुछ अपनी सखीको बता दिया।

उसकी सखीने कहा—'प्रभो! देवलोकमें गन्धर्वराज

विश्वावसु सर्वत्र विख्यात हैं। यह सुन्दरी उन्हींकी कन्या मदालसा है। एक दिन जब यह अपने पिताके उद्यानमें घूम रही थी, पातालकेतु नामक दानवने अपनी माया फैलाकर इसे हर लिया। उसका निवासस्थान यहीं है। सुननेमें आया है, आगामी त्रयोदशीको वह इसके साथ विवाह करेगा, इससे मेरी सखीको अपार कष्ट है। अभी कलकी बात है, यह बेचारी आत्महत्या करनेको तैयार हो गयी थी। उसी समय कामधेनुने प्रकट होकर कहा—'बेटी! वह नीच दानव तुम्हें नहीं पा सकता। मर्त्यलोकमें जानेपर उसे जो अपने बाणोंसे बींध डालेगा, वही तुम्हारा पति होगा।' यों कहकर माता सुरभि अन्तर्धान हो गयीं। मेरा नाम कुण्डला है। मैं इस मदालसाकी सखी, विन्ध्यवान्‌की पुत्री और वीर पुष्करमालीकी पत्नी हूँ। मेरे पति देवासुर-संग्राममें शुम्भके हाथों मारे गये। तबसे मैं तपस्याका जीवन व्यतीत कर रही हूँ। सखीके स्नेहसे यहाँ इसे धीरज बँधाने आ गयी हूँ। सुना है, मर्त्यलोकके किसी वीरने पातालकेतुको अपने बाणोंका निशाना बनाया है। मैं उसीका पता लगाने गयी थी। बात सही निकली। आपको देखकर मेरी सखीके हृदयमें प्रेमका सञ्चार हो गया है, किन्तु माता सुरभिके कथनानुसार इसका विवाह उस वीरके साथ होगा, जिसने पातालकेतुको घायल किया है। यही सोचकर दुःखके मारे यह मूर्च्छित हो गयी है। जिससे प्रेम हो, उसीके साथ विवाह होनेपर जीवन सुखमय बीतता है। इसका प्रेम तो आपसे हुआ और विवाह दूसरेसे होगा, यही इसकी चिन्ताका कारण है। अब आप अपना परिचय दीजिये। कौन हैं और कहाँसे आये हैं?'

राजकुमारने अपना यथावत् परिचय दिया तथा उस दानवको बाण मारने और पातालमें पहुँचनेकी सारी कथा विस्तारपूर्वक कह सुनायी। सब बातें सुनकर मदालसाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने लज्जित होकर सखीकी ओर देखा, किन्तु कुछ बोल न सकी। कुण्डलाने उसका मनोभाव जानकर कहा—'वीरवर! आपकी बात सत्य है। मेरी सखीका हृदय किसी अयोग्य पुरुषकी ओर आसक्त नहीं हो सकता। कमनीय कान्ति चन्द्रमामें और प्रचण्ड प्रभा सूर्यमें ही मिलती है। आपके ही लिये गोमाता सुरभिने सङ्केत किया था। आपने ही दानव पातालकेतुको घायल किया है। मेरी सखी आपको पतिरूपमें प्राप्त करके अपनेको धन्य मानेगी।' कुण्डलाकी बात सुनकर राजकुमारने कहा—'मैं पिताकी आज्ञा लिये बिना विवाह कैसे कर सकता हूँ?' कुण्डला बोली—'नहीं, नहीं, ऐसा न कहिये। यह देवकन्या है। आपके पिताजी इस विवाहसे प्रसन्न होंगे। अब उनसे पूछने और आज्ञा लेनेका समय नहीं रह गया है। आप विधाताकी प्रेरणासे ही यहाँ आ पहुँचे हैं, अतः यह सम्बन्ध स्वीकार कीजिये।' राजकुमारने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात मान ली। कुण्डलाने अपने कुलगुरु तुम्बुरुका स्मरण किया। वे समिधा और कुशा लिये तत्काल वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने अग्नि प्रज्वलित करके विधिपूर्वक ऋतध्वज और मदालसाका विवाह-संस्कार सम्पन्न किया। कुण्डलाने अपनी सखी राजकुमारके हाथों सौंप दी और दोनोंको अपने-अपने धर्मपालनका उपदेश दिया। फिर दोनोंसे विदा लेकर वह दिव्य नारी अपने अभीष्ट स्थानपर चली गयी। ऋतध्वजने मदालसाको घोड़ेपर बिठाया और स्वयं भी उसपर सवार हो पातालसे बाहर जाने लगे। इतनेहीमें पातालकेतुको यह समाचार मिल गया और वह दानवोंकी विशाल सेना लिये राजकुमारके मार्गमें आ डटा। राजकुमार भी बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने हँसते-हँसते बाणोंका जाल-सा फैला दिया और त्वाष्ट्र नामक दिव्य अस्त्रका प्रयोग करके पातालकेतुसहित समस्त दानवोंको भस्म कर डाला। इसके बाद वे अपने पिताके नगरमें जा पहुँचे। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने माता-पिताको प्रणाम किया। मदालसाने भी सास-ससुरके चरणोंमें मस्तक झुकाया। ऋतध्वजके मुखसे सब समाचार सुनकर माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पुत्र और पुत्रवधूको हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा। मदालसा पतिगृहमें बड़े सुखसे रहने लगी। वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर सास-ससुरके चरणोंमें प्रणाम करती और पतिको अपनी सेवाओंसे सन्तुष्ट रखती थी।

तदनन्तर एक दिन राजा शत्रुजित्‌ने राजकुमार ऋतध्वजसे कहा—'बेटा! तुम प्रतिदिन प्रातःकाल इस अश्वपर सवार हो ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये इस पृथ्वीपर विचरते रहो।' राजकुमारने 'बहुत अच्छा' कहकर पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की। वे प्रतिदिन पूर्वाह्णमें ही पृथ्वीकी परिक्रमा करके पिताके चरणोंमें नमस्कार करते थे। एक दिन घूमते हुए वे यमुना-तटपर गये। वहाँ पातालकेतुका छोटा भाई तालकेतु आश्रम बनाकर मुनिके वेषमें रहता था। राजकुमारने मुनि जानकर उसे प्रणाम किया। वह बोला—'राजकुमार! मैं यहाँ यज्ञ करना चाहता हूँ; किंतु मेरे पास दक्षिणा नहीं है। तुम अपने गलेका यह आभूषण दे दो और यहीं रहकर मेरे आश्रमकी रक्षा करो। मैं जलके भीतर प्रवेश करके वरुण देवताकी स्तुति करता हूँ। [illegible] ही लौटूँगा।' यों कहकर तालकेतु जलमें घुसा और मायासे अदृश्य हो

गया। राजकुमार उसके आश्रमपर ठहर गये। मुनिवेषधारी तालकेतु राजा शत्रुजित्के नगरमें गया। वहाँ जाकर उसने कहा—'राजन्! आपके पुत्र दैत्योंके साथ युद्ध करते करते मारे गये। यह उनका आभूषण है।' यों कहकर वह जैसे आया था, उसी प्रकार लौट गया। राजकुमारकी मृत्युका दुःखपूर्ण समाचार सुनकर नगरमें हाहाकार मच गया। राजा-रानी तथा रनिवासकी स्त्रियाँ शोकसे व्याकुल होकर विलाप करने लगीं। मदालसाने उनके गलेके आभूषणको देखा और पतिको मारा गया सुनकर तुरंत ही अपने प्यारे प्राणोंको त्याग दिया। राजमहलका शोक दूना हो गया। राजा शत्रुजित्ने किसी प्रकार धैर्य धारण किया और रानी तथा अन्तःपुरके अन्य लोगोंको भी समझा-बुझाकर शान्त किया। मदालसाका दाह-संस्कार किया गया। उधर तालकेतु यमुना-जलसे निकलकर राजकुमारके पास गया और कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसने उनको घर जानेकी आज्ञा दे दी। राजकुमारने तुरंत अपने नगरमें पहुँचकर पिता-माताको प्रणाम किया। उन्होंने पुत्रको छातीसे लगा लिया और नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे। राजकुमारको सब बातें मालूम हुईं। मदालसाके वियोगसे उनका हृदय रो उठा। उनकी दुनिया सूनी हो गयी। उन्होंने मदालसाके लिये जलाञ्जलि दी और यह प्रतिज्ञा की, 'मैं मृगके समान विशाल नेत्रोंवाली गन्धर्वराजकुमारी मदालसाके अतिरिक्त दूसरी किसी स्त्रीके साथ सम्भोग नहीं करूँगा। यह मैंने सर्वथा सत्य कहा है।'

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उन्होंने स्त्री-सम्बन्धी भोगसे मन हटा लिया और समवयस्क मित्रोंके साथ मन बहलाने लगे। इसी समय नागराज अश्वतरके दो पुत्र मनुष्यरूपमें पृथ्वीपर घूमनेके लिये निकले। राजकुमार ऋतध्वजके साथ उनकी मित्रता हो गयी। उनका आपसका प्रेम इतना बढ़ गया कि नागकुमार एक क्षण भी उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे। वे दिन भर पातालसे गायब रहते थे। एक दिन नागराजके पूछनेपर उन्होंने ऋतध्वजका सारा वृत्तान्त सुनाकर पितासे कहा—'हमारे मित्र ऋतध्वज मदालसाके सिवा दूसरी किसी स्त्रीको स्वीकार न करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं। मदालसा पुनः जीवित हो सके तो कोई उपाय करें।' नागराज बोले—'उद्योगसे सब कुछ सम्भव है। प्राणीको कभी निराश नहीं होना चाहिये।' यों कहकर नागराज अश्वतर हिमालयपर्वतके प्लक्षावतरण तीर्थमें, जो सरस्वतीका उद्गमस्थान है, फिर दुष्कर तपस्या करने लगे। सरस्वती देवीने प्रसन्न होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और वर माँगनेको कहा। अश्वतर बोले—'देवि! मैं और मेरा भाई कम्बल दोनों संगीतशास्त्रके पूर्ण मर्मज्ञ हो जायँ।' सरस्वतीदेवी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं। अब दोनों भाई कम्बल और अश्वतर कैलासपर्वतपर गये और भगवान् शङ्करको प्रसन्न करनेके लिये तालस्वरके साथ उनके गुणोंका गान करने लगे। शङ्करजीने प्रसन्न होकर कहा—'वर माँगो।' तब कम्बलसहित अश्वतरने महादेवजीको प्रणाम करके कहा—'भगवन्! कुवलयाश्वकी पत्नी मदालसा जो अब मर चुकी है, पहलेकी ही अवस्थामें मेरी कन्याके रूपमें प्रकट हो। उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण बना रहे। पहले ही-जैसी उसकी कान्ति हो तथा वह योगिनी एवं योगविद्याकी जननी होकर मेरे घरमें प्रकट हो।' महादेवजीने कहा—'नागराज! तुम श्राद्धका दिन आनेपर यही कामना लेकर पितरोंका तर्पण करना और श्राद्धमें दिये हुए मध्यम पिण्डको शुद्ध भावसे खा लेना। इससे वह तत्काल ही तुम्हारे मध्यम फणसे प्रकट हो जायगी।' नागराजने वैसा ही किया। सुन्दरी मदालसा उनके मध्यम फणसे प्रकट हो गयी। नागराजने उसे महलके भीतर स्त्रियोंके संरक्षणमें रख दिया। यह रहस्य उन्होंने किसीपर प्रकट नहीं किया।

तदनन्तर अश्वतरने अपने पुत्रोंसे कहा—'तुम राजकुमार ऋतध्वजको यहाँ बुला लाओ।' नागकुमार उन्हें लेकर गोमतीके जलमें उतरे और वहींसे खींचकर उन्हें पातालमें पहुँचा दिया। वहाँ वे अपने असली रूपमें प्रकट हुए। ऋतध्वज नागलोककी शोभा देखकर चकित हो उठे। उन्होंने नागराजको प्रणाम किया। नागराजने आशीर्वाद देकर ऋतध्वजका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। भोजनके पश्चात् सब लोग एक साथ बैठकर प्रेमालाप करने लगे। नागराजने मदालसाके पुनः जीवित होनेकी सारी कथा उन्हें कह सुनायी। फिर तो उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी प्यारी पत्नीको ग्रहण किया। उनके स्मरण करते ही उनका प्यारा अश्व वहाँ आ पहुँचा। नागराजको प्रणाम करके वे मदालसाके साथ अश्वपर आरूढ हुए और अपने नगरमें चले गये वहाँ उन्होंने मदालसाके जीवित होनेकी कथा सुनायी। मदालसाने भी सास-ससुरके चरणोंमें प्रणाम किया। नगरमे बड़ा भारी उत्सव मनाया गया।

कुछ कालके पश्चात् महाराज शत्रुजित् परलोकवासी हो गये। ऋतध्वज राजा हुए और मदालसा महारानी। मदालसाके गर्भसे प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने उसका नाम विक्रान्त

रक्खा। मदालसा वह नाम सुनकर हँसने लगी। इसके बाद समयानुसार क्रमशः दो पुत्र और हुए। उनके नाम सुबाहु और शत्रुमर्दन रक्खे गये। उन नामोंपर भी मदालसाको हँसी आयी। इन तीनों पुत्रोंको उसने लोरियाँ गानेके व्याजसे विशुद्ध आत्मज्ञानका उपदेश दिया। बड़े होनेपर वे तीनों ममताशून्य और विरक्त हो गये। मदालसाके उपदेशका सारांश इस प्रकार है—

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव।
पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः॥
न वा भवान् रोदिति वै स्वजन्मा शब्दोऽयमासाद्य महीशसूनुम्।
विकल्प्यमाना विविधा गुणास्तेऽगुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु॥
भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः।
अन्नाम्बुदानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः॥

हे तात! तू तो शुद्ध आत्मा है, तेरा कोई नाम नहीं है। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर भी पाँच भूतोंका बना हुआ है। न यह तेरा है, न तू इसका है। फिर किसलिये रो रहा है? अथवा तू नहीं रोता है, यह शब्द तो राजकुमारके पास पहुँचकर अपने-आप ही प्रकट होता है। तेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें जो भाँति-भाँतिके गुण-अवगुणोंकी कल्पना होती है, वे भी पाञ्चभौतिक ही हैं। जैसे इस जगत्में अत्यन्त दुर्बल भूत अन्य भूतोंके सहयोगसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं; उसी प्रकार अन्न और जल आदि भौतिक पदार्थोंको देनेसे पुरुषके पाञ्चभौतिक शरीरकी ही पुष्टि होती है। इससे तुझ शुद्ध आत्माकी न तो वृद्धि होती है और न हानि ही होती है।

त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिंस्तस्मिंश्च देहे मूढतां मा व्रजेथाः।
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कञ्चुकस्ते पिनद्धः॥
तातेति किंचित् तनयेति किंचिदम्बेति किंचिद्दयितेति किंचित्।
ममेति किंचिन्न ममेति किंचित् त्वं भूतसङ्घं बहु मानयेथाः॥
दुःखानि दुःखोपगमाय भोगान् सुखाय जानाति विमूढचेताः।
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि जानाति विद्वानविमूढचेताः॥

तू अपने उस चोले तथा इस देहरूपी चोलेके जीर्ण शीर्ण होनेपर मोह न करना। शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार यह देह प्राप्त हुआ है। तेरा यह चोला मद आदिसे बँधा हुआ है। (तू तो सर्वथा इससे मुक्त है)। कोई जीव पिताके रूपमें प्रसिद्ध है, कोई पुत्र कहलाता है, किसीको माता और किसीको प्यारी स्त्री कहते हैं; कोई 'यह मेरा है' कहकर अपनाया जाता है और कोई 'मेरा नहीं है' इस भावसे पराया माना जाता है। इस प्रकार ये भूतसमुदायके ही नाना रूप हैं, ऐसा तुझे मानना चाहिये। यद्यपि सब भोग दुःखरूप हैं, तथापि मूढ़चित्त मानव उन्हें दुःख दूर करनेवाला तथा सुखकी प्राप्ति करानेवाला समझता है; किंतु जो विद्वान् हैं जिनका चित्त मोहसे आच्छन्न नहीं हुआ है, वे उन भोगजनित सुखोंको भी दुःख ही मानते हैं।

तत्पश्चात् रानी मदालसाके गर्भसे चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ। जब राजा उसका नामकरण करने चले तो उनकी दृष्टि मदालसापर पड़ी। वह मन्द-मन्द मुसकरा रही थी। राजाने कहा—'मैं नाम रखता हूँ तो हँसती हो। अब इस पुत्रका नाम तुम्हीं रक्खो।' मदालसाने कहा—'जो आपकी आज्ञा। आपके चौथे पुत्रका नाम मैं अलर्क रखती हूँ।' 'अलर्क!' यह अद्भुत नाम सुनकर राजा ठठाकर हँस पड़े और बोले—'इसका क्या अर्थ है?' मदालसाने उत्तर दिया—'सुनिये! नामसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। संसारका व्यवहार चलानेके लिये कोई-सा नाम रखना पड़ता है [illegible] जाता है। वह संज्ञामात्र है, उसका कोई अर्थ नहीं। आपने भी जो नाम रक्खे हैं, वे भी निरर्थक ही हैं। पहले 'विक्रान्त' इस नामके अर्थपर विचार कीजिये। [illegible] जो एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाता है, वही विक्रान्त है। आत्मा सर्वत्र व्यापक है, उसका कहीं आना-जाना नहीं होता; अतः यह नाम उसके लिये निरर्थक तो है ही, [illegible] भी है। आपने दूसरे पुत्रका नाम सुबाहु रक्खा [illegible] निराकार है, तो उसे बाँह कहाँसे आयी। [illegible] है तो सुबाहु नाम रखना कितना असङ्गत है। [illegible] 'शत्रुमर्दन' रक्खा गया है; उसमें भी कोई [illegible] नहीं दिखायी देती। सब शरीरोंमें एक ही आत्मा [illegible] है;

ऐसी दशामें कौन किसका शत्रु है और कौन किसका मर्दन करनेवाला। यदि व्यवहारका निर्वाहमात्र ही उसका प्रयोजन है तब तो अलर्क नामसे भी इस उद्देश्यकी पूर्ति हो सकती है।

राजा निरुत्तर हो गये। मदालसाने उसको भी ब्रह्मज्ञान-का उपदेश सुनाना आरम्भ किया। तब राजाने रोककर कहा—'देवि! इसे भी ज्ञानका उपदेश देकर मेरी वंश-परम्पराका उच्छेद करनेपर क्यों तुली हो। इसे प्रवृत्तिमार्गमें लगाओ और उसके अनुकूल ही उपदेश दो।' मदालसाने पतिकी आज्ञा मान ली और अलर्कको बचपनमें ही व्यवहार-शास्त्रका पण्डित बना दिया। उसे राजनीतिका पूर्ण ज्ञान कराया। धर्म, अर्थ और काम तीनों शास्त्रोंमें वह प्रवीण बन गया। बड़े होनेपर माता-पिताने अलर्कको राजगद्दीपर बिठाया और स्वयं वनमें तपस्या करनेके लिये चले गये। जाते समय मदालसाने अलर्कको एक अंगूठी दी और कहा—'जब तुम-पर कोई सङ्कट पड़े तो इस अगूठीके छिद्रसे उपदेशपत्र निकालकर पढना और इसके अनुसार कार्य करना।' अलर्कने गङ्गा-यमुनाके संगमपर अपनी अलर्कपुरी नामकी राजधानी बनायी, जो आजकल अरैलके नामसे प्रसिद्ध है। कुछ कालके बाद अलर्कको भोगोंमें आसक्त देख उनके बड़े भाई सुबाहुने काशिराजकी सहायतासे उनपर आक्रमण किया। अलर्कने सङ्कट जानकर माताका उपदेश पढ़ा। उसमें लिखा था—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः स कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम्॥

'सङ्ग (आसक्ति) का सब प्रकारसे त्याग करना चाहिये; किंतु यदि उसका त्याग न किया जा सके तो सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंका सङ्ग ही उसकी ओषधि है। कामनाको सर्वथा छोड़ देना चाहिये; परंतु यदि वह छोड़ी न जा सके तो मुमुक्षा (मोक्षकी इच्छा) के प्रति कामना करनी चाहिये; क्योंकि मुमुक्षा ही उस कामनाको मिटानेकी दवा है।'

इस उपदेशको अनेक बार पढ़कर राजाने सोचा, मनुष्यों-का कल्याण कैसे होगा? मुक्तिकी इच्छा जाग्रत् करनेपर और मुक्तिकी इच्छा जाग्रत् होगी सत्सङ्गसे। ऐसा विचार कर अलर्कने महात्मा दत्तात्रेयजीकी शरण ली और वहाँ ममता-रहित विशुद्ध आत्मज्ञानका उपदेश पाकर वे सदाके लिये कृतार्थ हो गये। इस प्रकार महासती मदालसाने अपने पुत्रोंका उद्धार करके स्वयं भी पतिके साथ परमात्मचिन्तनमें मन लगाया और थोड़े ही समयमें मोक्षस्वरूप परमपद प्राप्त कर लिया। मदालसा अब इस लोकमें नहीं है; किंतु उसका नाम सदाके लिये अमर हो गया। —रा० शा०

सती वैशालिनी

(१)

विदिशा नगरमें बड़ी चहल-पहल है। देश-देशके राजा एकत्रित हुए हैं। विदिशाके महाराज विशालकी एकमात्र लाड़िली कन्या वैशालिनीका स्वयंवर होनेवाला है। नगरके बाह्य प्रदेशमें भिन्न-भिन्न नरेशोंके शिविर हैं। सबके साथ चतुरङ्गिणी सेना आयी है। प्रायः सभी युद्धकी सम्भावना जानकर अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर आये हैं। महाराज विशालने सबके स्वागत-सत्कारका उत्तम प्रबन्ध किया है। अयोध्यानरेश करन्धमका तरुण पुत्र अवीक्षित भी, जो अपने महान् पराक्रमके लिये समस्त भूमण्डलमें विख्यात था, अपने कुछ चुने हुए साथियोंको साथ लेकर आया था। उसके पास बड़ी सेना नहीं थी। अतः वह राजमहलके पास ही एक छोटे-से शिविरमें ठहर गया था। राजा करन्धमने अनेक बार अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किये थे। उनके पुत्र अवीक्षितने ही दिग्विजय करके पिताके यज्ञोंका सम्पादन कराया था, अतः सम्पूर्ण भूमण्डलके राजा और राजकुमार अवीक्षितका लोहा मानते थे। इस स्वयंवरमें, यद्यपि अवीक्षितके साथ कोई सेना नहीं थी, तो भी उसके आगमनमात्रसे सबके मनमें शङ्का हो गयी। सब राजाओंने उसके विरुद्ध संगठन किया। सबने यह निश्चय कर लिया कि अवीक्षित यदि कन्या-को बलपूर्वक ले जानेकी चेष्टा करे, तो हम सब लोग एक साथ होकर उसका विरोध करेंगे। उन्होंने अपना निश्चय राजा विशालको भी सुना दिया। राजा भी यही चाहते थे। स्वयंवरमें कोई गड़बड़ी न होने पावे, इसके लिये उन्होंने पूरी व्यवस्था की थी।

नियत समयपर स्वयंवरका कार्य आरम्भ हुआ। मनोहर प्रसाधनोंसे सजी हुई विशाल रङ्गभूमिमें सहस्रों सुन्दर मञ्च लगे हुए थे। समस्त राजा अपने-अपने मञ्चपर विराज-मान हुए। राजकुमार अवीक्षित भी एक ऊँचे मञ्चकी शोभा बढ़ाने लगा। उस तेजस्वी तरुणके सामने समस्त राजाओं-की कान्ति फीकी पड़ गयी। वह तारोंके बीच चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था। मागध और वन्दीजन

विरदावलीका वर्णन कर रहे थे। इतनेमें शहनाइयोंकी मधुर ध्वनिके साथ रमणीजनोंके कोमल कण्ठका मृदु सङ्गीत सुनायी पड़ा। राजकुमारी स्वयंवरमें आ रही हैं, यह जानकर सब लोग सजग हो गये। सभी मन-ही-मन इष्टदेवको मनाने लगे। वैशालिनी रङ्गभूमिमें आ गयी। एक-एक करके राजाओंका परिचय आरम्भ हुआ। राजकुमारी प्रत्येकको नमस्कार करके आगे बढ़ने लगी। धीरे-धीरे वह अवीक्षितके सामने आयी। परिचय सुना। क्षणभर वह सकुचायी-सी, सहमी-सी खड़ी रही। उसकी ओर आकृष्ट हुई। हाथ ऊँचे उठे; किंतु किसी अज्ञात प्रेरणासे वह पुनः रुक गयी। सम्भवतः उसके शौर्य और साहसकी वह परीक्षा लेना चाहती थी। अवीक्षितकी ओर कटाक्षपूर्वक देखकर वह मन्द मुसकानके साथ आगे बढ़ने लगी।

(२)

एक ही क्षणमें स्थिति बदल गयी। वैशालिनी बिजली-सी चमककर अदृश्य हो गयी। पलक गिरनेमें विलम्ब हो सकता है; किंतु अवीक्षितने आधे निमेषमें ही अपना सङ्कल्प सिद्ध कर लिया। प्रतिहारीने देखा, राजकुमारी नहीं है। सखियोंने चकित होकर देखा, वैशालिनी उनके पास नहीं है। राजाओंकी सहस्रों आँखें भी अवीक्षितकी फुर्ती नहीं देख सकीं, केवल उसके गर्वपूर्ण वाक्य अब भी उनके कानोंमें गूँज रहे थे, 'वैशालिनी अवीक्षितकी है, इसे दूसरा कोई नहीं पा सकता।' पलभरमें ही स्वयंवरका वह शान्त वातावरण 'दौड़ो, पकड़ो, मारो, छीन लो' के तुमुल कोलाहलसे गूँज उठा। नगरके बाहर पहुँचकर लोगोंने देखा, अवीक्षित वैशालिनीके साथ रथपर बैठा है और धनुष-बाण लेकर युद्धकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसके वीर सैनिक अगल-बगल और पृष्ठभागकी ओर उसकी रक्षाके लिये खड़े हैं। राजा विशाल अपनी विशाल वाहिनीके साथ युद्धमें आ डटे। राजाओंने भी उनका साथ दिया। महासागरके समान असंख्य शत्रु-सेनासे घिरकर भी अवीक्षित भयभीत न हुआ। उसका रथ अलातचक्रकी भाँति चारों ओर घूमने लगा। उसके धनुषका एक-एक बाण सहस्रोंकी संख्यामें होकर शत्रुओंपर प्रहार करता था। सूर्योदयसे अन्धकारकी भाँति उसके शौर्यसे शत्रुओंकी विशाल वाहिनी नष्ट हो गयी। अवीक्षितका शरीर भी आघातसे जर्जर हो रहा था, फिर भी उसमें रणका उत्साह कम नहीं था। हारे हुए समस्त राजाओंने मिलकर पशुबलसे काम लेनेका निश्चय किया। वे सभी चारों ओरसे अवीक्षितपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे। अवीक्षितका धनुष कट गया। घोड़े और सारथि मारे गये। अकेला असहाय वीर निःशस्त्र हो जानेके कारण बन्दी बना लिया गया।

(३)

'बेटी! अवीक्षितको उसके अन्यायका दण्ड मिल गया, अब तुम अपनी इच्छाके अनुसार किसी राजाको वरण करो।' राजा विशालने पुत्रीको सान्त्वना देते हुए कहा।

'पिताजी! मेरा मन स्वस्थ नहीं है, अतः स्वयंवरमें भाग नहीं ले सकती।' राजकुमारीने टालनेके लिये कहा।

यह निश्चय हुआ कि अब कुछ दिनों बाद शुभ मुहूर्त देखकर स्वयंवरका आयोजन किया जायगा। तबतक सब राजा अपने-अपने नगरको पधारें। सूचना पाकर सभी राजा चले गये। दो ही दिनके बाद राजा करन्धमकी विशाल सेनाने आकर विदिशा नगरको चारों ओरसे घेर लिया। विदिशानरेश पराजित हुए। उन्होंने सन्धि कर ली। महाराज करन्धम राजा विशालके आदरणीय अतिथि हुए। अवीक्षित मुक्त कर दिया गया। उसने आकर पिताको प्रणाम किया, किंतु मुखपर प्रसन्नता नहीं थी। पिताने पुत्रके अद्भुत शौर्य और साहसकी प्रशंसा की; फिर भी उसका [illegible] न भरा। थोड़ी ही देरमें राजा विशाल अपनी कन्या वैशालिनीको लिये हुए अवधनरेशकी सेवामें उपस्थित हुए और बोले—'राजन्! मैं अपनी कन्याका हाथ कुमार अवीक्षितके हाथमें देता हूँ। आप इसे पुत्रवधूके रूपमें ग्रहण करें।' करन्धम कुछ कहना ही चाहते थे कि अवीक्षित बोल उठा—'पिताजी! मैंने कभी आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया है, अतः आप ऐसी कोई आज्ञा न दें, जिसका पालन करनेमें मुझे संकोच हो। मैं कुमारी वैशालिनीके [illegible] देखते युद्धमें पराजित हुआ हूँ, अब वीर [illegible] नहीं हूँ; इसलिये मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि [illegible] नहीं करूँगा।'

राजाने वैशालिनीकी ओर देखा, [illegible] समझकर वैशालिनीने सङ्कोचपूर्वक कहा—[illegible] अपनेको गलत समझा है। इनकी [illegible] कोई सन्देह नहीं हो सकता। एक ओर [illegible] दूसरी ओर ये अकेले ही सामना कर रहे [illegible] सबको परास्त कर दिया। [illegible] इनको मारना आरम्भ किया, [illegible]

अजेय रहा है, किसीको इन्होंने अपने समीप नहीं आने दिया है। जिन राजाओंने इनपर विजय पायी है, वे अनीतिका आश्रय लेनेके कारण मेरी दृष्टिमें कायर हैं और ये उत्साहपूर्वक युद्धमें डटे रहनेके कारण वास्तविक विजयके अधिकारी हैं। मैं किसी कायरको अपना पति नहीं बना सकती, अतः समस्त राजाओंको छोड़कर मैंने इनका ही वरण किया है। ये मुझे ग्रहण करें या न करें—मैं दूसरेको स्वीकार नहीं कर सकती।'

यह सब सुनकर भी अवीक्षित विवाह करनेको राजी न हुआ। महाराज करन्धम पुत्रको लेकर अयोध्या लौट गये। कुमारी वैशालिनीने तपस्या करनेका निश्चय किया।

(४)

'बेटा!' महारानी वीराने पुकारा।

'आज्ञा माताजी!' अवीक्षितने विनयपूर्वक हाथ जोड़े हुए कहा।

'मै किमिच्छक व्रत करना चाहती हूँ; किंतु इसके नियमोंकी रक्षा तुम्हारे अधीन है, क्या तुम यह व्रत मुझसे करा सकोगे?' रानीने पुत्रकी मातृभक्तिकी परीक्षा लेते हुए कहा।

'मा! मुझे इसमें क्या करना होगा?' पुत्रने एक जिज्ञासुकी भाँति पूछा।

'इस व्रतमें खुले तौरपर यह घोषणा करनी पड़ती है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी शुभ इच्छाको लेकर आये, उसकी पूर्ति की जायगी।' माताने व्रतकी स्पष्ट शब्दोंमें व्याख्या की।

'मा! अवीक्षित आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करनेके लिये तैयार है' पुत्रके मनमें माताके व्रतको पूर्ण करनेका उत्साह था।

माताने व्रतकी दीक्षा ली। उसी दिन कुमार अवीक्षितने नगरमें सब ओर घोषणा करा दी, 'मेरी माताने प्रत्येक व्यक्तिकी शुभ इच्छाको पूर्ण करनेका सङ्कल्प किया है। यदि किसीके मनमें कोई इच्छा हो, तो वह आकर कहे।'

अवीक्षितने आश्चर्यके साथ देखा, सबसे पहले याचक उसके पिता महाराज करन्धम ही थे। उन्होने कहा, 'बेटा! मैं पौत्रका मुँह देखना चाहता हूँ; क्या तुम्हारी माता मेरी यह इच्छा पूर्ण कर सकती हैं?'

अवीक्षित वचनबद्ध हो चुका था, उसे यह समझते देर न लगी कि यह सब उपाय मेरे विवाहके ही लिये किया गया था। उसने माताके व्रतकी रक्षाके लिये अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी और कहा—'मैं कुमारी वैशालिनीके सिवा दूसरी किसी स्त्रीसे विवाह नहीं कर सकता, अतः उसीकी खोज करनी चाहिये।'

(५)

चम्पकारण्यके सघन प्रदेशमें एक छोटी-सी कुटी है। उसपर फैली हुई बेलोंने कुटीकी शोभा बहुत बढ़ा दी है। भाँति-भाँतिके वनविहङ्ग वृक्षोंकी डालियोंपर चहक रहे हैं। पास ही पुण्यसलिला शालग्रामीकी पावन धारा कलकल ध्वनिके साथ प्रवाहित हो रही है। कुटीके भीतर एक सुन्दरी तपस्विनी ध्यान लगाये बैठी है। तीन महीने हो गये, वह अपने आसनसे हिलीतक नहीं। निराहार रहकर कठोर तपस्यामें संलग्न है। उसके अस्थिचर्मावशिष्ट शरीरमें तपस्याजनित तेज-पुञ्ज मात्र दिखायी देता है। दुर्बलता इतनी बढ़ गयी है कि देहकी एक-एक नाड़ी गिनी जा सकती है। जान पड़ता है, वह 'शरीरं वा पातयामि, कार्यं वा साधयामि'का दृढ़ सङ्कल्प लेकर अविचल भावसे बैठी है। लक्षणोंसे जान पड़ता है, अब इन सूखी हड्डियोंमें अधिक दिनोंतक प्राणोंको भुलावा देकर नहीं रोका जा सकता। सहसा कुटीका द्वार एक दिव्य आलोकसे भर गया। एक दिव्य पुरुष आकाशमें ही खड़ा होकर उस तपस्विनीसे कहने लगा—'राजकुमारी! यह मानव-शरीर बड़ा दुर्लभ है। यही समस्त धर्मोंका साधन है। इसके प्रति इतनी उपेक्षाका भाव अच्छा नहीं। इसकी रक्षा करो। तुम्हारे गर्भसे एक वीर पुत्र होगा, जो सातों द्वीपोंका अखण्ड साम्राज्य भोगेगा। लुटेरे, म्लेच्छ और दुष्ट लोग उसके हाथों मारे जायँगे। वह अश्वमेध आदि यज्ञोंका छः हजार बार अनुष्ठान करेगा।'

वैशालिनीके नेत्र खुल गये। उसने काँपते हाथोंसे देवदूतको प्रणाम किया और धीमी आवाजमें कहा—'महानुभाव! आपका यह वरदान इस जन्ममें सफल होनेवाला नहीं जान पड़ता। मैंने जिसे अपना हृदय प्रदान किया है, वह मुझे ग्रहण करनेको तैयार नहीं।'

'तुम शरीरकी रक्षा करो, देवताओंके वचन मिथ्या नहीं होते।' यों कहकर देवदूत अन्तर्धान हो गया। वैशालिनी फल-मूल खाकर शरीरका पोषण करने लगी। कुछ ही दिनोंमें वह चलने-फिरने लायक हो गयी। संयम, नियम और आराधनाका क्रम अब भी चालू था।

पञ्च-साध्वी

महायोगिनी सतीशिरोमणि विदुषी मदालसा धन्या। बूढ़े पतिकी सेवामें रत धन्य सुकन्या नृपकन्या ॥
चिन्ता और बेहुलाका भी स्वामीमें अनन्य अनुराग। बनी तापसी प्रियतमके हित वैशालिनी राज-सुख त्याग॥

एक दिन वह कलशीमें शालग्रामीका जल लेकर आश्रम-पर आ रही थी। कुटीके भीतर अभी उसने पैर भी नहीं रक्खा था कि किसीके कर्कश हाथोंने उसकी बाँह पकड़ ली। घबराहटमें कलश छूटकर गिरा और फूट गया। वैशालिनीने देखा, सामने विशालकाय दानव दृढ़केश हाथमें डंडा लिये खड़ा अट्टहास कर रहा है। वह बोला, 'तेरे गर्भसे दानव-विरोधी पुत्र होनेवाला है; अतः तुझे मारकर हम अपना मार्ग निष्कण्टक बनाना चाहते हैं; न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।'

कुछ कहनेका अवसर दिये बिना ही दानव उसे घसीट ले चला। राजकुमारी कातर वाणीमें चीख उठी, 'अरे कोई दौड़ो, बचाओ; महाराज करन्धमकी पुत्रवधूको एक नीच दानव हरकर लिये जाता है।'

उसका आर्तनाद समस्त वन-प्रान्तमें गूँज उठा। सहसा उसके कानोंमें आवाज आयी, 'डरो मत, डरो मत।' उसने आहट ली। कोई अश्वारोही युवक उधर ही घोड़ा बढ़ाये दौड़ा चला आ रहा था। नवागत वीरने दानवको युद्धके लिये ललकारा। वह कन्याको छोड़कर राजकुमारपर टूट पड़ा और सौ कीलोंसे युक्त अपना डंडा उस वीर युवकपर दे मारा। युवक सतर्क था, उसने बाण मारकर डंडेके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, फिर बहुत देरतक दोनोंमें घमासान युद्ध होता रहा; अन्तमें युवक विजयी हुआ। उसके श्वेतसपत्र नामक बाणसे दानवका मस्तक कटकर धराशायी हो गया। युवकपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। 'राजकुमार अवीक्षितकी जय' की गगनभेदी ध्वनिसे वह वनप्रदेश गूँज उठा। 'वरं ब्रूहि' का आदेश पाकर राजकुमारने देवताओंसे एक महापराक्रमी पुत्र माँगा।

'इसी कन्याके गर्भसे तुम्हें महाबली चक्रवर्ती पुत्रकी प्राप्ति होगी। इस देवीकी तपस्याने ही तुम्हें विजयी बनाया है।' यों कहकर देवता अन्तर्धान हो गये।

'परंतु मेरी तो प्रतिज्ञा है कि कुमारी वैशालिनीके सिवा दूसरी किसी स्त्रीको मैं अपनी पत्नी नहीं बना सकता।'

'मैं ही वैशालिनी हूँ नाथ!' कहकर तपस्विनीने राजकुमार-के चरण पकड़ लिये। 'अब मुझे इन चरणोंसे अलग न कीजिये।' उसके आँसुओंसे अवीक्षितके पैर भीग गये।

वैशालिनीने अपनी बीती कह सुनायी। अवीक्षितने उसे प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा। उसी समय वहाँ एक दिव्य विमान उतर आया। उन दोनोंने देखा, विमानसे बहुत-सी सुन्दरी अप्सराओंके साथ कोई श्रेष्ठ गन्धर्व उतर रहे हैं; उनका नाम 'मय' था। वे निकट आकर बोले—'राजकुमार! यह कन्या वास्तवमें मेरी पुत्री भामिनी है। महर्षि अगस्त्यके शापसे इसे मनुष्ययोनिमें आना पड़ा था। आज वह शाप निवृत्त हो गया। आज मैं स्वयं ही अपनी यह कन्या आपको सौंपता हूँ; आप इसे पत्नीके रूपमें ग्रहण करें।' राजकुमारने 'बहुत अच्छा' कहकर पाणिग्रहण किया। इस समय वहाँ तुम्बुरु मुनिने हवन किया, देवता और गन्धर्व गीत गाते रहे। मेघोंने फूलोंकी वर्षा की और देवता लोग बाजा बजा रहे थे। विवाह-के पश्चात् नवदम्पति गन्धर्व-लोकमें गये। वहाँ वे दीर्घकाल-तक देवताओंके मनोहर उद्यानों तथा रमणीय प्रदेशोंमें विहार करते रहे। भामिनी गर्भवती हो गयी।

(६)

अयोध्यामें महाराज करन्धम चिन्ताग्रस्त बैठे हैं। उनका पुत्र अवीक्षित लगभग दो वर्षोंसे लापता है। वह वनमें शिकार खेलनेके लिये गया था, किंतु अभीतक नहीं लौटा। उसके साथियोंने लौटकर इतना ही कहा था कि 'कुमार अकेले ही घोड़ा दौड़ाये कहीं चले गये; फिर हमसे नहीं मिले।' महारानी वीरा भी पुत्रका कोई समाचार न मिलनेसे अधीर हो रही हैं। उन्होंने देवाराधन आरम्भ किया है, जो आज ही पूर्ण होने-

वाला है। राजा और रानीकी चिन्तासे परिजन और पुरजन भी चिन्तित हैं।

थोड़ी देरमें महारानी एक थालीमें प्रसाद लिये महाराजके पास आयीं और बोलीं—'नाथ! आज शकुन तो अच्छे दिखायी देते हैं, शायद मेरे अवीक्षितका शुभ समाचार प्राप्त हो।'

इसी समय प्रतिहारीने आकर सूचना दी—'महाराजकी जय हो, राजकुमार अवीक्षित पत्नी और पुत्रके साथ पधार रहे हैं।' उसकी बात पूरी भी न होने पायी थी कि अवीक्षितने पिता-माताके चरणोंका स्पर्श किया; साथ ही वधूने भी उनकी चरण-धूलि माथेमें लगायी। महाराज और महारानीने पुत्र और वधूको छातीसे लगाकर मस्तक सूँघा। अवीक्षितने चाँद-सा सुन्दर हृष्ट-पुष्ट बालक पिताकी गोदमें देते हुए कहा—'यह आपका पौत्र है। माताके किमिच्छक व्रतमें आपको दिये हुए वचनकी पूर्ति आज सम्भव हो सकी है।' महाराज करन्धमने बड़े उल्लाससे पौत्रका मुख चूमा और कहा—'मैं बहुत सौभाग्यशाली हूँ।'

साथमें आये हुए गन्धर्वोंके मुखसे सब बातें सुनकर राजा और रानी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भामिनीके सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए कहा—'पतिव्रता वधूके पुण्यका ही यह प्रताप है कि आज हमें अपना खोया हुआ पुत्र और देवदुर्लभ पौत्र प्राप्त हुआ।' महाराज करन्धमका यह पौत्र ही महा पराक्रमी मरुत्तके नामसे संसारमें विख्यात हुआ।—रा० शा०

सती शैव्या

सुख और सम्पत्तिमें पतिके अनुकूल रहकर उसकी सेवा करनेवाली सती साध्वी स्त्रियाँ बहुत हो सकती हैं; किंतु दुःख और विपत्तिमें भी जिनका पतिप्रेम कम नहीं होता, जो उस समय भी पतिसेवाका अधिक अवसर मिलनेके कारण संतोषका ही अनुभव करती हैं, पतिके कष्टोंमें हाथ बँटाती, सान्त्वनापूर्ण मधुर वचनोंसे पतिको धैर्य बँधाती और उसकी पीडा कम करती हैं, ऐसी पतिव्रता देवियाँ विरले भाग्यवानोंके घरकी शोभा बढाती हैं। शैव्या ऐसी ही प्रातःस्मरणीया देवियोंमेंसे एक थी। वह महाराज हरिश्चन्द्रकी पत्नी और कुमार रोहिताश्वकी माता थी। उसका नाम तारा था, परतु शिविदेश अथवा शिवि-नरेशकी कन्या होनेसे इन्हे लोग 'शैव्या' ही कहते थे। शैव्या आदर्श सती थी। पतिकी आत्माके साथ उसकी आत्मा मिली हुई थी। वे दोनों दम्पति एक प्राण दो देह थे। पतिका ही सुख शैव्याका सुख था और उन्हींका दुःख उसके लिये दुःख था। उसने अपना अस्तित्व पतिमें ही विलीन कर दिया था।

एक दिन महाराज हरिश्चन्द्र जब महलमें आये तो कुछ उदासीन थे। महारानी शैव्याने उनके उस भावको लक्ष्य किया। वे सोचने लगीं, महाराजके मुखपर आज चिन्ताका भाव क्यों प्रकट होता है, ये नित्यकी भाँति आज प्रसन्न क्यों नहीं दिखायी देते? इनके नेत्रोंसे सदाकी भाँति स्नेहकी वर्षा क्यों नहीं होती! अवश्य ही इनके मनमें कोई कष्ट है। इस विचारसे पतिप्राणा शैव्याके हृदयमें बडी व्यथा हुई। उन्होंने उदासीनताका कारण पूछा। तब महाराज हरिश्चन्द्रने कहा—'प्रिये! भगवान्की दयासे मेरे द्वारा कोई ऐसा कार्य नहीं हुआ, जिसे अनुचित कहा जा सके। मैंने वनमें मुनिवर विश्वामित्रको उनके माँगनेपर अपना सारा राज-पाट दान कर दिया है। अब मैं राजा नहीं, अकिञ्चन हूँ; मुझे अपने लिये चिन्ता भी नही है। किंतु इस दशामें तुमको और रोहिताश्वको जो कष्ट होगा, वह मुझसे कैसे देखा जायगा, यही सोचकर मनमे कुछ व्यग्रता-सी हो रही है।' शैव्याने कहा—'महाराज! यदि यही बात है, तब तो उल्टे प्रसन्न होना चाहिये। यह राज्य और धन कितने दिन रहनेवाला है, आज है, कल नहीं। यह शरीर जिसे हम इतनी सावधानीसे रखते हैं, यह भी तो सदा नहीं रहता। संसारमें धर्म ही नित्य एवं परलोकमें सुख देनेवाला माना गया है। यदि इस नश्वर धनसे, क्षणभङ्गुर शरीरसे नित्य धर्मका पालन हो सके, प्राण देकर भी धर्मकी रक्षा की जा सके तो वही उत्तम है। इसीमें जन्म और जीवनकी सफलता है। राज्यके प्रपञ्चमें पड़कर मनुष्य भगवान्को भूल जाता है; अब निश्चिन्त होकर हम भगवान्का भजन कर सकेंगे। जिसके लिये यह शरीर मिला है, उस उद्देश्यकी वास्तविक सिद्धि होगी। इस राज-काजमें फँसकर आप मुझसे दूर रहते थे, मैं भी आपकी सेवासे वञ्चित रहती थी। अब आप मेरे निकट रहेंगे, मैं भी आपकी सेवा करके सुखी हो सकूँगी; अतः यह तो मेरे लिये बड़े आनन्दकी बात हुई है। राज्य और धनका इससे सुन्दर उपयोग और क्या हो सकता है! पतिका अखण्ड प्रेम और उनकी सेवाका सतत सौभाग्य—यही पत्नीके लिये सबसे बडा सुख है। इसके विना तीनों लोकोंका राज्य पाकर भी साध्वी स्त्री संतुष्ट नहीं हो सकती।'

शैव्याकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रकी सारी चिन्ता मिट गयी। वे मन-ही मन पत्नीके सद्गुणों और सद्विचारोंकी प्रशंसा करने लगे। रात बीती। दूसरे दिन सवेरे ही विश्वामित्रजी आ धमके और बोले—'यदि तुमने यह सारा राज्य मुझे दे दिया तो जहाँ जहाँ मेरा प्रभुत्व हो, वहाँसे तुम्हें निकल जाना चाहिये। बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण सब यहीं छोड़ दो। वल्कलका वस्त्र पहनो और स्त्री एवं पुत्रको साथ लेकर जल्दी चले जाओ।' 'बहुत अच्छा, जैसी महाराजकी आज्ञा।' यों कहकर हरिश्चन्द्र वहाँसे चल दिये। उन्हें जाते देख रानी शैव्या और रोहिताश्व भी पीछे हो लिये। तब विश्वामित्रने हरिश्चन्द्रको रोककर कहा—'मुझे राजसूयकी दक्षिणा दिये बिना कहाँ जाते हो?' राजाने कहा—'भगवन्! अब तो मेरे पास ये तीन शरीर ही शेष हैं। मुझे एक मासका समय दीजिये।' मुनि 'देखो, तीसवें दिन दक्षिणा न दोगे तो मैं शाप दे दूँगा' कहकर चले गये।

राजा हरिश्चन्द्र एक दीन और असहायकी भाँति पैदल चले जा रहे थे। रानी शैव्या चलनेका अभ्यास न होनेसे यों ही थकी रहती थीं, उसपर बालक रोहिताश्व उनकी गोदसे उतरता ही नहीं था। जिसे सैकड़ों दासियाँ हाथोंहाथ लिये रहती थीं, वही सुकुमार बालक कभी पैदल, कभी माता-पिताकी गोदमें बैठकर चल रहा था। चलते-चलते कई दिनों बाद वे काशीके समीप पहुँचे। राजाने सोचा—'काशी भगवान् विश्वनाथकी पावन पुरी है, इसपर केवल भगवान् शिवका ही अधिकार है। अतः यह मेरे राज्यसे बाहर है।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने स्त्री और पुत्रसहित काशीमें प्रवेश किया। पुरीमें पहुँचते ही मुनिवर विश्वामित्र सामने खड़े दिखायी दिये। राजाने हाथ जोड़कर विनीत भावसे कहा—'मुने! मेरे प्राण, स्त्री, पुत्र सब आपकी सेवामें प्रस्तुत हैं। कहिये, हमलोग आपकी क्या सेवा करें।' विश्वामित्रने कहा—'राजन्! आज एक मास पूरा हो रहा है। मुझे राजसूयकी दक्षिणा चुका दीजिये।' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! अभी आधा दिन शेष है। इतने समयतक और प्रतीक्षा कीजिये। अब अधिक विलम्ब न होगा।'

विश्वामित्र शापकी धमकी देकर चले गये। राजा रानी पैदल चलनेसे तो थके ही थे, ऊपरसे उपवासका कष्ट और भी पीड़ा दे रहा था। बालक रोहिताश्व तो भूखसे कराह रहा था। क्षत्रिय होनेसे ये भीख तो लेते नहीं थे, पासमें पैसा था नहीं और कोई काम-काज भी अभी शुरू नहीं किया था। फिर भोजनका प्रबन्ध कैसे हो? उनके धैर्यकी बड़ी कठोर अग्नि-परीक्षा चल रही थी। बालककी छटपटाहट देखकर उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था। उससे भी बढ़कर चिन्ताकी बात थी सन्ध्याके पहले ही भारी धनका प्रबन्ध करना। राजा सोचने लगे—'स्वीकार की हुई दक्षिणा मैं किस प्रकार दूँ? क्या अपने प्राण त्याग दूँ, तब भी तो ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेके कारण मैं पापात्मा समझा जाऊँगा। अथवा अपनेको बेचकर यह दक्षिणा चुका दूँ। बस, यही ठीक है।'

राजाकी चिन्ताका कारण शैव्यासे छिपा नहीं था। उसने नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें कहा—

'महाराज! चिन्ता छोड़िये और अपने सत्यका पालन कीजिये। जो मनुष्य सत्यसे विचलित होता है, वह श्मशानकी भाँति त्याग देने योग्य है। नरश्रेष्ठ! पुरुषके लिये अपने सत्यकी रक्षासे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं बतलाया गया है। जिसका वचन निरर्थक हो जाता है, उसके अग्निहोत्र, स्वाध्याय तथा दान आदि सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाते हैं। धर्मशास्त्रोंमें बुद्धिमान् पुरुषोंने सत्यको ही संसार-सागरसे तारनेके लिये सर्वोत्तम साधन बताया है। इसी प्रकार जिनका मन अपने वशमें नहीं है, ऐसे पुरुषोंको पतनके गर्तमें गिरानेके लिये असत्यको ही प्रधान कारण बताया गया है। महाराज! मुझसे पुत्रका जन्म हो चुका है ......' इतना कहकर रानी शैव्या फूट-फूटकर रोने लगी। राजा हरिश्चन्द्र

बोले—'कल्याणी ! संताप छोडो और जो कुछ कहना चाहती थीं, उसे स्पष्ट कहो ।' शैव्याने कहा—महाराज ! मुझसे पुत्रका जन्म हो चुका है । श्रेष्ठ पुरुष स्त्री-संग्रहका फल पुत्र ही बतलाते हैं, वह फल आपको मिल गया है; अतः मुझको बेचकर ब्राह्मणकी दक्षिणा चुका दीजिये ।'

रानीकी यह बात सुनकर हरिश्चन्द्रको बड़ा दुःख हुआ और वे जमीनपर मूर्च्छित होकर गिर पड़े । महाराज हरिश्चन्द्रको पृथ्वीपर पड़ा देख रानी शैव्याको बड़ा दुःख हुआ वह भी मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ी । बालक रोहिताश्व क्षुधासे अत्यन्त पीडित था, उसने माता-पिताकी ऐसी अवस्था देखी तो दुःखित हो उन्हें पुकार-पुकारकर जगाना आरम्भ किया—'पिताजी ! पिताजी !! उठिये, मुझे भोजन दीजिये । मा ! मुझे खानेको दो, बहुत भूख लगी है । मेरी जीभ सूखी जाती है ।' इसी समय महर्षि विश्वामित्र आ पहुँचे । राजा सचेत होकर ज्यों ही उठे, मुनिपर दृष्टि पड़ते ही पुनः मूर्च्छित हो गये । मुनिने कमण्डलुका जल छिड़ककर उन्हें जगाया और इस प्रकार कहा—'राजन् ! उठो और दक्षिणा देकर अपने सत्यकी रक्षा करो । यदि सूर्यास्त होनेतक तुम मुझे दक्षिणा न दोगे तो भयङ्कर शाप दे दूँगा ।' यों कहकर वे चले गये । राजा हरिश्चन्द्र उनके भयसे व्याकुल हो उठे । उनकी दशा निर्दयी धनीने पीडित एक कंगालकी-सी हो रही थी । उस समय रानी शैव्याने पुनः कहा—'महाराज ! मैंने जो प्रार्थना की है, वही कीजिये, अन्यथा आपको शापकी अग्निसे दग्ध होकर प्राण त्यागना पड़ेगा । आप द्यूत, मदिरा, राज्य अथवा भोगके लिये तो मुझे बेचते नहीं हैं, इन दुर्गुणोंसे तो आप कोसों दूर हैं । गुरुको दक्षिणा चुकानी है, इसलिये बेच रहे हैं; अतः इसमें दुःखकी क्या बात है, मुझे बेचकर अपने सत्यव्रतकी रक्षा कीजिये ।'* जब पत्नीने बारबार आग्रह किया तो राजा बोले—'कल्याणी ! मैं बड़ा निर्दयी हूँ । लो, अब तुम्हें बेचने चलता हूँ । क्रूर-से क्रूर मनुष्य भी जो कार्य नहीं कर सकते वही आज मैं करूँगा ।' पत्नीसे यों कहकर राजा नगरमें गये और नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए गद्गद कण्ठसे बोले—

'ओ नागरिको ! मेरी बात सुनो, क्या पूछ रहे हो ? मैं कौन हूँ, लो मेरा परिचय भी सुन लो—मैं क्रूर हूँ; मैं मनुष्यतासे रहित हूँ, मैं राक्षससे भी कठोर हूँ; क्योंकि अपनी प्राणोंसे भी प्यारी पत्नीको बेचनेके लिये ले आया हूँ । यदि आपमेंसे किसी महानुभावको दासीकी आवश्यकता हो तो वे शीघ्र बोलें । इस असह्य दुःखमें भी जबतक मैं जीवन धारण किये हुए हूँ, तभीतक बात कर लें ।'

यह सुनकर एक बूढ़ा ब्राह्मण सामने आया । उसने कहा—'दासीको मेरे हवाले करो । मैं इसे धन देकर खरीदता हूँ । मेरी पत्नी बहुत सुकुमारी है, उससे घरके काम-धंधे नहीं हो पाते ।' यों कहकर ब्राह्मणने राजाके वल्कल-वस्त्रमें धन बाँध दिया और पत्नीको खींचकर साथ ले चला । माताको इस दशामें देख बालक रोहिताश्व रो उठा और हाथसे उसका वस्त्र पकड़कर अपनी ओर खींचने लगा । उस समय रानीने कहा—'बेटा ! आओ, जी भरकर देख लो, तुम्हारी माता अब दासी हो गयी । तुम राजपुत्र हो, मेरा स्पर्श न करो । अब मैं तुम्हारे स्पर्श करने योग्य न रही ।' इतनेमें ब्राह्मण शैव्याको घसीट ले चला । यह देख रोहिताश्व 'मा ! मा !!' कहकर रोता हुआ दौड़ा । उसके नेत्र आँसुओंसे भरे हुए थे । जब बालक पास आया तो ब्राह्मणने क्रोधमें भरकर उसे लातसे मारा तो भी उसने अपनी माको नहीं छोड़ा । केवल 'माई ! माई ! ओ माई !!' कहकर बिलखता रहा । यह देख रानी ब्राह्मणसे बोली—'स्वामिन् ! आप मुझपर कृपा कीजिये । इस बालकको भी खरीद लीजिये ! इसके बिना मैं मन लगाकर आपका कार्य नहीं कर सकती । मैं बड़ी अभागिनी हूँ । मुझपर दया करके बछड़ेसे गायकी तरह इस बालकसे मुझे मिलाइये ।' ब्राह्मणने रोहिताश्वको भी खरीद लिया । जाते समय शैव्याने मन-ही-मन हरिश्चन्द्रको प्रणाम किया और नेत्रोंमें आँसू भर भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो ! यदि मैंने दान दिया हो, हवन किया हो तथा ब्राह्मणोंको भोजनसे तृप्त किया हो तो उस पुण्यके प्रभावसे मेरे स्वामी हरिश्चन्द्र फिर मुझे प्राप्त हो जायँ ।'* यों कहकर शैव्या उनके चरणोंमें गिर पड़ी । राजासे यह अवस्था देखी न गयी । वे फूट-फूटकर रोने लगे ।

इसके बाद विश्वामित्र आये । राजाने पत्नी और पुत्रको बेचनेसे जो धन मिला था, वह सब उन्हें दे दिया । अब भी दक्षिणा पूरी नहीं हुई । अबकी बार राजाने अपनेको बेचनेके लिये आवाज लगायी । तुरत ही एक चाण्डाल आ निकला । राजाने इच्छा न रहते हुए भी मुनिके दबावसे अपनेको

---

* न द्यूतहेतोर्न च मद्यहेतोर्न राज्यहेतोर्न च भोगहेतो ।
देहस्व गुर्वर्थमनो मया त्वं सत्यव्रतत्वं सफलं कुरुष्व ॥
(देवीभाग० ७ । २१ । २७)

* यदि दत्त यदि हुत ब्राह्मणास्तर्पिता यदि ।
तेन पुण्येन मे भर्ता हरिश्चन्द्रोऽस्तु वै पुनः ॥
(देवीभाग० ७ । २२ । २७)

सती शैव्या

धर्म रहे पतिका अमर सोच सती मतिधीर।
मृत सुतका देती कफन शैव्या आँचल चीर॥

चाण्डालके हाथों बेच दिया। मुनि दक्षिणा लेकर चले गये। राजा श्मशानघाटकी रक्षा करने लगे। इसनेपर भी उन्होंने धर्म न छोड़ा। दृढ़तापूर्वक उसके पालनमें लगे रहे।

एक दिन जब वे श्मशानमें पहरा दे रहे थे। एक स्त्रीकी करुण पुकार सुनायी दी। वह अपने बालकको, जो साँपके काटनेसे मर गया था, जलानेके लिये लायी थी। राजाको ऐसी घटनाएँ रोज देखनी-सुननी पड़ती थीं। अतः उनको कोई हर्ष-विषाद नहीं हुआ। वे उसके पास सिर्फ कफन लेनेके लिये आये; किंतु उस भाग्यहीना स्त्रीके पास कफनके लिये भी कपड़ा नहीं था। वह रोती हुई कह रही थी—'हा वत्स! न जाने किस पापका फल उदय हुआ कि आजतक हमारे दुःखोंका अन्त नहीं आया। पतिका साथ छूटा। पुत्र भी चला गया। अब भी मैं अभागिनी जीवन धारण किये हूँ। हा दैव! तूने महाराज हरिश्चन्द्रकी कौन सी दुर्दशा नहीं की। उनका राज्य गया। उनकी स्त्री बिक गयी और यह एक पुत्र बचा था, वह भी आज कालके गालमें चला गया!'

अब हरिश्चन्द्रने पहचाना, 'यह शैव्या है, यह मेरे ही हृदयका टुकड़ा रोहिताश्व है—इन दोनोंकी यह दुरवस्था! हाय!' यों विलाप करते हुए हरिश्चन्द्र मूर्छित हो गये। अब शैव्याने भी पहचाना। पतिकी इस दुरवस्थाको देखकर वह भी मूर्च्छित हो गयी। फिर दोनोंको चेत हुआ। दोनोंने एक दूसरेको आप-बीती कह सुनायी। दोनों ही दुःखसे व्याकुल होकर देरतक करुण विलाप करते रहे, तदनन्तर राजाने अपनेको सँभाला और कहा—'शैव्ये! कफन देकर अग्नि-संस्कार करो। मैं इस समय बालकका पिता नहीं, चाण्डालका सेवक हूँ।' शैव्याने कहा—'स्वामिन्! मेरी दशा भी तो आपसे छिपी नहीं है; बिकी हुई दासीको कफनके लिये पैसा कहाँ मिले। ब्राह्मणकी इतनी ही उदारता है कि बालकका दाह-संस्कार करनेको छुट्टी दे दी।' हरिश्चन्द्रने कहा—'मैं कुछ नहीं सुनूँगा।' शैव्याने कहा—'एक ही साड़ी मेरे पास है। इसीमेंसे आधा फाड़कर कफनके लिये दिये देती हूँ, आधेसे अपनी लाजकी रक्षा करूँगी।' हरिश्चन्द्रने स्वीकार किया। परीक्षाकी यह अन्तिम सीमा थी। शैव्या ज्यों ही साड़ी फाड़ने लगी; सम्पूर्ण देवता वहाँ प्रकट हो गये। सबने शैव्याको रोका। हरिश्चन्द्रके त्याग, सत्य, धैर्य और सत्त्वकी सराहना की। रोहिताश्वको जीवनदान मिला। महाराज हरिश्चन्द्र, रानी शैव्या तथा समस्त अयोध्यावासी प्रजा विमानपर बैठकर स्वर्गमें गयी। रोहिताश्वको अयोध्याका राज्य मिला। हरिश्चन्द्रने अपने सत्य तथा शैव्याने अपने सतीत्वके प्रभावसे अपना और अपनी प्रजाका भी उद्धार कर दिया।—रा० शा०

सती दमयन्ती

विदर्भ देशमें भीष्मक नामके एक राजा राज्य करते थे, वे बड़े ही गुणवान्, वीर और पराक्रमी थे। उन्होंने सतानकी कामनासे 'दमन' नामक महर्षिकी बड़ी सेवा की। उनके वरदानसे राजाके चार संतानें हुईं—तीन पुत्र और एक कन्या। पुत्रोंके नाम थे दम, दान्त और दमन। पुत्रीका नाम 'दमयन्ती' था। दमयन्ती लक्ष्मीके समान अप्रतिम रूपवती थी। उन्हीं दिनों निषध देशमें वीरसेनके पुत्र नल राज्य करते थे। वे बड़े गुणवान्, परम सुन्दर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सबके प्रिय, वेदज्ञ एवं ब्राह्मण-भक्त थे। निषध देशसे जो लोग विदर्भ देशमें आते, वे महाराज नलके गुणोंकी बड़ी प्रशंसा करते थे, वह प्रशंसा दमयन्तीके कानोंतक भी पहुँचती थी। इसी प्रकार विदर्भसे निषध देशमें जानेवाले लोग नलके सामने राजकुमारी दमयन्तीके रूप और गुणका बखान करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि नल और दमयन्ती दोनोंके हृदय एक दूसरेके प्रति आकृष्ट होते गये। एक दिन कुछ दिव्य हंस राजा नलके महलके सामने उद्यानके भीतर सरोवरके किनारे उतरे। नलने उनमेंसे एकको पकड़ लिया। हंसने मानवी भाषामें कहा—'आप मुझे छोड़ दें तो हमलोग दमयन्तीके सामने जाकर आपके गुणोंका ऐसा वर्णन करेंगे, जिससे वह स्वयंवरमें आपका ही वरण करेगी।'

नलने हंसको छोड़ दिया। वे सब उड़कर विदर्भ देशमें गये। दमयन्तीने अपनी उद्यान-वापीमें दिव्य हंसोंको देखा तो उन्हें पकड़नेके लिये आगे बढ़ी। वह जिस किसी हंसको पकड़ने जाती, वही नलके गुणोंका इतना सुन्दर वर्णन करता कि वह सुनकर मुग्ध हो जाती। हंस कहते—'तुम दोनोंकी जोड़ी बहुत सुन्दर होगी। तुम्हारे बिना नलका और नलके बिना तुम्हारा जीवन व्यर्थ है।' दमयन्ती बोली

उठती—'हंस ! नलसे भी मेरी ओरसे ये ही बातें कहना ।' हंसोंने नलके पास लौटकर दमयन्तीका संदेश सुना दिया । हंसके मुखसे महाराज नलकी कीर्ति सुनकर दमयन्ती पूर्णतः उनमें अनुरक्त हो गयी । सखियोंने दमयन्तीके हृदयका भाव ताड़ लिया और रानीसे सब हाल कह सुनाया । रानीने महाराजसे कहा । विदर्भराजने सोचा—'मेरी पुत्री विवाहके योग्य हो गयी है । अतः अब इसका स्वयंवर कर देना चाहिये ।' इस निश्चयके अनुसार उन्होंने सब राजाओंको स्वयंवरका निमन्त्रण-पत्र भेज दिया । देश-देशके नरेश हाथी, घोड़े और रथोंकी ध्वनिसे दिशाओंको मुखरित करते हुए सज-धजकर विदर्भ देशमें पहुँचने लगे । भीष्मकने सबके स्वागत-सत्कारकी समुचित व्यवस्था कर दी ।

देवर्षि नारद और पर्वतके द्वारा स्वयंवरका समाचार पाकर इन्द्र आदि लोकपाल बिना निमन्त्रणके ही स्वयंवरमें भाग लेनेके लिये चल दिये । राजा नलका हृदय तो दमयन्तीके प्रति पहलेसे ही आकृष्ट था, अतः उन्होंने भी विदर्भ देशकी यात्रा की । देवताओंने स्वर्गसे उतरते समय दिव्य कान्ति और लोकोत्तर रूप-सम्पत्तिसम्पन्न नलको देखा । उन्होंने नलके सामने प्रकट हो अपना परिचय दिया और उन्हें प्रतिज्ञामें आबद्ध करके इस बातके लिये विवश कर दिया कि वे देवताओंके दूत बनकर राजमहलमें दमयन्तीके पास जायँ और उन्हें समझावें कि 'वह देवताओंमेंसे ही किसीको अपना पति चुने ।' इस कार्यकी सफलताके लिये उन्होंने नलको अन्तर्धान होनेकी विद्या भी सिखा दी ।

नलने अन्तर्धान-विद्याके प्रभावसे महलके भीतर बेरोक-टोक प्रवेश किया । दमयन्ती और उसकी सखियाँ उन्हें देखकर अवाक् रह गयीं । दमयन्तीने उनका परिचय पूछा । नल असत्यसे बहुत डरते थे, अतः उन्होंने अपना यथार्थ परिचय देते हुए कहा—'भद्रे ! मेरा नाम नल है । मैं लोकपालोंका दूत बनकर आया हूँ । सुन्दरी ! इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम—ये चार देवता तुम्हारे साथ विवाहकी इच्छा रखते हैं, तुम इनमेंसे किसी एकको अपनी रुचिके अनुसार वरण कर लो । यही उनका संदेश है ।' दमयन्ती नलको सामने पाकर बड़ी प्रसन्न हुई । उसने देवताओंका उपकार माना और चारों देवताओंको श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके नलसे कहा—'राजन् ! मैंने आपके गुणोंका वर्णन सुनकर बहुत पहलेसे ही अपना हृदय, अपना सर्वस्व आपके चरणोंमें समर्पित कर दिया है । आप मुझे प्रेमदृष्टिसे देखिये और आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ । यदि आप मेरी प्रार्थना नहीं सुनेंगे; मुझे ग्रहण नहीं करेंगे तो जैसे भी होगा मैं इस जीवनका अन्त कर डालूँगी । आपको न पाकर इस जगत्‌में जीवन धारण करना दमयन्तीके लिये असम्भव है ।'

नलने कहा—'जब बड़े-बड़े देवता तुमसे प्रणय-सम्बन्धके लिये उत्सुक हैं, तो मनुष्यकी अभिलाषा क्यों करती हो ? उन ऐश्वर्यशाली देवताओंकी चरणधूलिके बराबर भी तो मैं नहीं हूँ । तुम अपना मन उन्हींमें लगाओ । देवताओंका अप्रिय करनेसे मनुष्यको अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ता है; अतः तुम मेरी रक्षा करो और उन्हींमेंसे किसीको अपना पति बनाओ ।' नलकी यह बात सुनकर दमयन्ती घबरा गयी । उसके दोनों नेत्रोंमें आँसू छलक आये । वह कहने लगी—'मैं सब देवताओंको प्रणाम करके आपहीको पतिरूपमें वरण करती हूँ । इसके लिये मैं शपथ खाकर कहती हूँ, इसके विपरीत मैं कुछ नहीं कर सकती ।' उस समय दमयन्तीका सारा शरीर काँप रहा था और उसके दोनों हाथ जुड़े हुए थे । राजा नल बोले—'तुम अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करनेमें स्वतन्त्र हो, किंतु मैं तो दूत हूँ, परतन्त्र हूँ, यदि इस समय तुम्हारा अनुरोध स्वीकार करूँ तो मुझे दोषका भागी होना पड़ेगा । धर्मके विरुद्ध कोई कार्य मैं नहीं कर सकता, तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिये ।' दमयन्तीने गद्गदकण्ठसे कहा—'राजन् ! इसके लिये एक निर्दोष उपाय है, उसके अनुसार कार्य करनेपर आपको कोई दोष नहीं लगेगा, आप स्वयंवर-मण्डपमें आइये । मैं देवताओंके सामने ही आपको वरण कर लूँगी ।'

राजा नलने महलसे लौटकर देवताओंको सारी बातें ठीक-ठीक बता दीं, देवता मौन हो गये। तदनन्तर शुभ मुहूर्तमें स्वयंवरका कार्य आरम्भ हुआ। सभा-मण्डल देश-देशके राजाओंसे भर गया। जब सब लोग अपने-अपने आसनपर बैठ गये तब सुन्दरी दमयन्ती रंग-मण्डपमें आयी। तीनों लोकोंके प्रभावशाली व्यक्ति उपस्थित थे। देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य सबका समुदाय जुटा था। स्वयं भगवती सरस्वतीने प्रकट होकर राजाओंका पृथक्-पृथक् परिचय दिया। दमयन्ती एक-एक नरेशको देखकर आगे बढ़ती गयी। उसकी आँखें केवल नलको ढूँढ़ रही थीं। आगे एक ही स्थानपर पाँच नल बैठे दिखायी दिये। सबका एक ही रूप, एक ही रंग और एक ही वेष-भूषा। दमयन्ती अपने प्रियतम नलको पहचान न सकी। इससे उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ। अन्तमें वह मन-ही-मन देवताओंकी ही शरणमें गयी। देवताओंने उसका दृढ़ निश्चय, सत्य प्रेम, आत्मशुद्धि, भक्ति तथा नलके प्रति अटूट अनुराग देख उसे ऐसी बुद्धि दे दी, जिससे वह मनुष्य और देवताओंके भेदको पहचान सके। दमयन्तीने देखा, देवताओंके शरीरपर पसीना नहीं है, उनकी पलकें नहीं गिरतीं, माला कुम्हलायी नहीं, वे स्थिर हैं, धरती नहीं छूते, उनकी छाया भी नहीं पड़ती। इधर नलमें सभी बातें उनसे भिन्न दृष्टिगोचर हुईं। इन लक्षणोंसे उसने पुण्यश्लोक महाराज नलको पहचान लिया और धर्मके अनुसार उनका ही वरण किया। उसने लज्जावश कुछ घूँघट काढ़ लिया और समीप जाकर नलके गलेमें वरमाला डाल दी। देवता और महर्षि साधुवाद देने लगे। अन्य राजाओंमें हाहाकार मच गया।

राजा नलके हर्षकी सीमा नहीं थी। दमयन्तीने नलके लिये कितना त्याग किया था! देवलोकके अपार ऐश्वर्यपर लात मारकर नलको अपनाया। इस बातपर विचार करके नलका रोम-रोम कृतज्ञ था। वे दमयन्तीके हाथों बिना मोल बिक गये। दोनोंने एक दूसरेका सादर अभिनन्दन किया, फिर इन्द्र आदि देवताओंकी शरण ली। देवता भी उनकी सत्यनिष्ठा और दृढ़ प्रेम देखकर बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने बारी-बारीसे नलको आठ वर दिये। इन्द्रने कहा—'तुम्हें यज्ञमें मेरा दर्शन होगा और उत्तम गति मिलेगी।' अग्निने कहा—'जहाँ तुम मेरा स्मरण करोगे, वहीं मैं प्रकट हो जाऊँगा और मेरे ही समान प्रकाशमय लोक तुम्हें प्राप्त होंगे।' यमराजने कहा—'तुम्हारी बनायी हुई रसोई बहुत मीठी होगी और तुम अपने धर्मपर दृढ़ रहोगे।' वरुणने कहा—'तुम जहाँ चाहोगे, वहीं जल प्रकट हो जायगा। तुम्हारी माला उत्तम गन्धोंसे परिपूर्ण रहेगी।' इस प्रकार दो दो वर देकर सब देवता अपने-अपने लोकमें चले गये।

दमयन्ती निषध-नरेशकी महारानी बनी। दोनों दम्पति बड़े प्रेम और सुखसे समय बिताने लगे। दमयन्ती पतिव्रताओंमें शिरोमणि थी। उसको ऐश्वर्यका अभिमान छू न सका था। वह पतिकी छोटी-से छोटी सेवा भी अपने हाथों करती थी। समयानुसार दमयन्तीके गर्भसे एक पुत्र और कन्याका जन्म हुआ। दोनों बालक पिता-माताके अनुरूप ही सुन्दर तथा गुणवान् थे। समय सदा एक सा नहीं रहता; दुःख सुखका चक्र निरन्तर चलता ही रहता है। महाराज नल वैसे तो बड़े गुणवान्, धर्मात्मा एवं पुण्यश्लोक थे, फिर भी उनमें एक दोष था—जूएका व्यसन। यही उनके लिये संकटका कारण बन गया। राजा नल सत्ययुगके स्रष्टा थे; कलियुग उनसे स्वभावतः द्वेष रखता था। उसने द्वापरको भी अपना साथी बनाया। दोनों उनके नगरमें रहने लगे। बारह वर्षों बाद एक दिन नलसे कुछ भूल हुई, जिससे कलियुग उनके शरीरमें प्रवेश कर गया। नलके एक भाईका नाम था पुष्कर। वह उनसे अलग रहता था। उसने नलको जूएके लिये आमन्त्रित किया। दैवकी प्रेरणासे नल द्यूतके लिये तैयार हो गये। खेल आरम्भ हुआ। भाग्य प्रतिकूल था। नल हारने लगे। सोना, चाँदी, रथ, वाहन, राज पाट सब हाथसे निकल गये। प्रजा और मन्त्रियोंके अनुरोधसे दमयन्तीने रोकनेका यत्न किया, किंतु व्यर्थ सिद्ध हुआ। उसने आनेवाली विपत्तिको लक्ष्य किया और उसे झेलनेको तैयार हो गयी। रानीने नलके सारथि वार्ष्णेयको बुलाकर उसे रथ जोतनेका आदेश दिया और अपने दोनों बालकोंको उसके द्वारा विदर्भ देशकी राजधानी कुण्डिनपुरमें भेज दिया। वार्ष्णेय उन बालकोंको पहुँचाकर अयोध्या चला गया और राजा ऋतुपर्णके यहाँ सारथिके ही कार्यपर नियुक्त हो गया।

इधर नल जूएमें सर्वस्व हार चुके थे। उन्होंने अपने शरीरसे सब वस्त्राभूषण उतार दिये और केवल एक वस्त्र पहने नगरसे बाहर निकले। दमयन्तीने भी केवल एक साड़ी पहनकर पतिका अनुसरण किया। नल और दमयन्ती दोनों तीन दिनोंतक नगरके बाहर टिके रहे। पुष्करने नगरमें ढिंढोरा पिटवा दिया था कि 'जो कोई नलके प्रति सहानुभूति प्रकट करेगा, उसको मृत्युदण्ड दिया जायगा।' भयके मारे नगरनिवासी अपने राजाका सत्कारतक न कर सके। नल अपने

ही नगरके पास तीन राततक केवल जल पीकर रहे। चौथे दिन बहुत भूख लगनेपर दोनों फल-मूल खाकर वहाँसे आगे बढ़े। एक दिन राजा नलने सोनेकी पाँखवाले कुछ पक्षी देखे, जो पास ही बैठे थे। नलने सोचा, यदि इनको पकड़ लिया जाय तो इनकी पाँखोंसे कुछ धन मिल सकता है। ऐसा विचारकर उन्होंने अपने पहननेका वस्त्र खोलकर उन पक्षियों-पर फेंका। पक्षी वह वस्त्र लिये-दिये उड़ गये। अब नलके पास तन ढकनेतकके लिये कोई वस्त्र नहीं रह गया था। वे पक्षी नहीं, कलियुगकी मायासे रचित जूएके पासे थे। नल अपनी अपेक्षा भी दमयन्तीके दुःखसे अधिक व्याकुल थे। एक दिन जंगलमें दोनों एक ही वस्त्रसे शरीर छिपाये वृक्षोंके नीचे पड़े थे। दमयन्तीको थकावटके कारण नींद आ गयी। नलने सोचा, दमयन्तीको मेरे साथ रहनेपर दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ेगा। यदि छोडकर चल दूँ, तो किसी न किसी तरह विदर्भ देशमें पहुँच ही जायगी। यह परम सती है, इसका धर्म इसकी रक्षा अवश्य करेगा ही। ऐसा विचारकर नलने उसकी आधी साड़ी वहाँ पड़ी तलवारके द्वारा धीरेसे काटी और उसीसे अपना शरीर ढक लिया। फिर भगवान् और देवताओं-को प्रणाम करके उन्हींकी शरणमें दमयन्तीको छोड़कर वे चल दिये। उस समय उनका हृदय दुःखके मारे टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा था। जब दमयन्तीकी नींद टूटी तो वह राजाको न देखकर भय और आशङ्कासे काँप उठी और कातर स्वरसे पुकारने लगी—'महाराज! स्वामी! मेरे सर्वस्व! आप कहाँ हैं? मैं अकेली डर रही हूँ। शीघ्र दर्शन दीजिये। हा नाथ! आप जंगलमें अकेले कैसे रहेंगे। जिसने आपकी यह दुर्दशा की है वह इससे भी अधिक दुखी जीवन बितावे।'

इस प्रकार विलाप करती हुई दमयन्ती इधर-उधर भटकने लगी। वह घोर जंगलमें पगली-सी घूम रही थी। इतनेहीमें एक अजगरके पास जा पहुँची। अजगर उसे निगलने लगा। उस समय भी उसे यही चिन्ता थी, 'मेरे न रहनेपर मेरे स्वामी अकेले कैसे रहेंगे?' वह पुकारने लगी—'प्राणनाथ! आप कहाँ हैं? दौड़कर इस अजगरके मुखसे मेरी रक्षा कीजिये।' दमयन्तीकी आवाज एक व्याधके कानमें पड़ी। वह दौड़ा आया और यह देखकर कि एक स्त्रीको अजगर निगल रहा है, उसने तेज तलवारसे उस अजगरका मुँह चीर डाला और दमयन्तीको छुड़ाकर स्नान कराया। जब वह कुछ शान्त हुई तो व्याधने पूछा—'तुम कौन हो? और यहाँ कैसे आयी हो?' दमयन्तीने अपने प्राणरक्षकसे सारी कष्ट कहानी कह सुनायी, व्याध सदाका पापी था। दमयन्तीको असहायावस्थामें पाकर उसकी पापवासना जाग उठी, वह बलात्कार करनेको उद्यत हो गया, जब दमयन्ती उसे किसी प्रकार रोकनेमें समर्थ न हो सकी तो शाप देते हुए बोली—'यदि मैंने राजा नलको छोड़कर दूसरे किसी पुरुषका मनसे भी चिन्तन न किया हो तो इस पापी व्याधके जीवनका अभी अन्त हो जाय।' उसकी बात पूरी होते ही व्याधके प्राणपखेरू उड गये। वह जले हुए ठूँठकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़ा।

तदनन्तर अनेक प्रकारके कष्ट भोगती और भयानक जंगलोंको पार करती हुई वह दैवयोगसे चेदिनरेश राजा सुबाहुकी राजधानीमें जा पहुँची। राजमहलके निकट जानेपर खिड़कीसे झाँकती हुई राजमाताकी दृष्टि उसपर पड़ी। उन्होंने धायको भेजकर उसे महलके भीतर बुलवाया और उसका परिचय पूछा। दमयन्तीने कहा—'मैं एक पतिव्रता नारी हूँ। विपत्तिकी मारी वन-वन घूम रही हूँ। मेरे पति रातके समय मुझे सोती छोड़कर न जाने कहाँ चले गये। तबसे मैं उन्हींके वियोगमें जलती हुई उन्हींको खोजती-फिरती हूँ।' इतना कहते-कहते दमयन्तीकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। वह फूट-फूटकर रोने लगी। दमयन्तीके दुःखभरे विलापसे राजमाताका हृदय भर आया। वे कहने लगीं—'बेटी! मेरा तुमपर स्वाभाविक प्रेम हो रहा है। तुम मेरे ही पास रहो।' दमयन्तीने कहा—'माताजी! मैं एक शर्तपर आपके घर रह सकती हूँ। मैं कभी जूठा न खाऊँगी, किसीके पैर न धोऊँगी, पर-पुरुषसे

सती दमयन्ती

पतिके दुखसे दुखी सो रही दमयन्ती हा ! दृग मीचे ।
अञ्चल चीर शरीर ढाक नल त्याग चले तरुके नीचे ॥

साथ किसी प्रकार भी वार्तालाप न करूँगी। यदि कोई पुरुष मुझपर कुदृष्टि डाले तो उसे कठोर दण्ड देना होगा। मैं अपने पतिको ढूँढ़नेके लिये धर्मात्मा ब्राह्मणोंसे बातचीत करती रहूँगी। यही मेरी शर्त है। यह स्वीकार हो तो मैं रहूँगी, अन्यथा नहीं।' राजमाता उसके नियमोंको सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और अपनी पुत्री सुनन्दाको बुलाकर कहा—'बेटी! इस देवीको अपनी सखीके समान राजमहलमें रखना। इसे कोई कष्ट न होने पाये।'

उधर नल जब दमयन्तीको छोड़कर आगे बढ़े तो सहसा वनमें दावाग्नि जल उठी। उसके भीतर नारदजीके शापसे कर्कोटक नाग पड़ा हुआ था। नलने उसको बचाया। नाग उनका मित्र बन गया। उसने नलकी भलाईके लिये अपने विषसे उनका रूप बदल दिया और दो दिव्य वस्त्र देकर कहा—'जब तुम अपने पहले रूपको धारण करना चाहो तो इन वस्त्रोंको ओढ़कर मेरा स्मरण करना।' नागने यह भी बताया, 'तुम्हारे शरीरमें कलियुग घुसा हुआ है। मेरे विषसे वह बहुत दुखी रहेगा। अब तुम्हें किसी हिंसक पशुका भय नहीं है। किसी और प्रकारके विषका भी अब तुमपर प्रभाव न पड़ेगा।' इसके बाद कुछ और बातें बताकर कर्कोटक नाग वहीं अन्तर्धान हो गया।

राजा नलने नागके बताये अनुसार अपना नाम बाहुक रख लिया। वहाँसे चलकर वे दसवें दिन राजा ऋतुपर्णकी राजधानी अयोध्या पहुँचे। वहाँ प्रतिमास दस हजार स्वर्णमुद्रा वेतनपर वे अश्वशालाके अध्यक्ष बनाये गये। उनका पुराना सारथि वार्ष्णेय भी उनकी सेवामें रहने लगा। राजा नल अपनेको सबसे छिपाकर रखते और सदा दमयन्तीकी ही चिन्ता किया करते थे। विदर्भनरेश भीष्मकको जब यह समाचार मिला कि मेरे दामाद नल राज्यसे च्युत होकर दमयन्तीके साथ वनमें चले गये हैं तो उन्होंने ब्राह्मणोंको धन देकर उनकी खोजमें सब ओर भेजा। काम पूरा होनेपर भारी पुरस्कार देनेकी भी घोषणा कर दी। एक दिन सुदेव नामक ब्राह्मण नल-दमयन्तीका पता लगानेके लिये चेदिनरेशकी राजधानीमें गया। उसने राजमहलमें दमयन्तीको देख लिया। उस समय महलमें पुण्याहवाचन हो रहा था और दमयन्ती-सुनन्दा एक साथ बैठकर वह मङ्गलकृत्य देख रही थीं। सुदेव दमयन्तीको पहचानकर उसके पास गया और बोला—'विदर्भराजकुमारी! मैं तुम्हारे भाईका मित्र सुदेव हूँ। राजाकी आज्ञासे तुम्हें ही खोजनेके लिये आया हूँ। तुम्हारे माता-पिता, भाई और दोनों बच्चे भी कुण्डिनपुरमें सकुशल हैं। कुटुम्बके सभी लोग तुम्हारे बिछोहसे दुखी एवं प्राणहीन-से हो रहे हैं।' दमयन्तीने ब्राह्मणको पहचान लिया। बन्धुजनोंका स्मरण हो आनेसे वह सहसा रो पड़ी। सुनन्दाके मुँहसे यह हाल सुनकर राजमाता अन्तःपुरसे निकल आयी। दमयन्तीका सच्चा परिचय आज उन्हें मिला। वे दमयन्तीकी सगी मौसी थीं। उसे छातीसे लगाकर रोने लगीं। सुनन्दा भी दमयन्तीसे रो-रोकर गले लगी। फिर दमयन्तीके इच्छानुसार राजमाताने उसे पालकीपर बिठाकर कुण्डिनपुर भेज दिया। दमयन्ती वहाँ अपने भाई, माता, पिता और सखियोंसे मिली। राजा भीष्मकको पुत्रीके मिल जानेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सुदेव ब्राह्मणको एक हजार गौएँ, गाँव तथा धन देकर सन्तुष्ट किया।

पिताके घर एक दिन विश्राम करके दमयन्तीने अपनी मातासे कहा—'माँ! यदि मेरे जीवनकी रक्षा चाहती हो तो पतिदेवको ढुँढ़वानेका उद्योग करो।' रानी पुत्रीके दुःखसे बहुत दुखी थीं। उन्होंने राजा भीष्मकसे कहा—'प्राणनाथ! दमयन्ती अपने पतिके लिये बहुत व्याकुल है। उसने संकोच छोड़कर मुझसे कहा है कि उन्हें ढुँढ़वानेका उद्योग होना चाहिये।' राजाने अपने आश्रित ब्राह्मणोंको बुलवाया और नलको ढूँढ़नेके कार्यमें नियुक्त कर दिया। ब्राह्मणोंने दमयन्तीके पास जाकर कहा—'राजकुमारीजी! हम राजा नलका पता लगानेके लिये जाते हैं।' दमयन्ती बोली—'आपलोग जिस राज्यमें जायँ, वहाँ मनुष्योंकी भीड़में यह बात कहें—'ओ निर्दयी! तुम जिसकी साड़ीमेंसे आधी फाड़कर तथा जिसे वनमें अकेली छोड़कर कहीं चले गये, तुम्हारी वह दासी अब भी उसी अवस्थामें आधी साड़ी पहने तुम्हारे आनेकी बाट जोह रही है और तुम्हारे विरहमें तड़प रही है।' यदि ऐसा कहनेपर आपलोगोंको कोई यथार्थ उत्तर दे, तो वह कौन है, कहाँ रहता है—इस बातका पता लगा लीजियेगा और उसका उत्तर याद रखकर मुझे सुनाइयेगा।' दमयन्तीके इस आदेशके अनुसार ब्राह्मणलोग राजा नलको खोजनेके लिये निकल पड़े। बहुत दिनोंतक खोज करनेके बाद पर्णाद नामक ब्राह्मणने लौटकर दमयन्तीसे कहा—'राजकुमारी! मैं आपके बताये अनुसार महाराज नलका पता लगाता हुआ अयोध्या जा पहुँचा। वहाँ राजा ऋतुपर्णके पास जाकर भरी सभामें आपकी बात दुहरायी। वहाँ किसीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, किंतु जब मैं चलने लगा तो बाहुक नामवाले सारथिने मुझे एकान्तमें बुलाकर कुछ बातें बतलायीं। वह सारथि राजा ऋतुपर्णके घोड़ोंको शिक्षा देता है। स्वादिष्ट भोजन बनाता है; परंतु उसके हाथ छोटे और शरीर कुरूप हैं। उसने लंबी

साँस लेकर रोते हुए कहा—'कुलीन स्त्रियाँ घोर कष्ट पानेपर भी अपने शीलकी रक्षा करती हैं और सतीत्वके बलपर स्वर्ग-लोकको जीत लेती हैं। त्यागनेवाला पुरुष विपत्तिमें पड़ गया था। उसका राज्य उसके हाथसे छिन गया था। जब वह प्राणरक्षाके लिये जीविका चाह रहा था, उस समय पक्षी उसके वस्त्र लेकर उड़ गये थे। वह अत्यन्त चिन्ता और दुःखसे अचेत हो गया था; अतः उसके ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिये।' बाहुककी यह बात सुनकर मैं आपको बतानेके लिये लौट आया हूँ। आप जो उचित समझें, करें।'

दमयन्तीकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने पर्णादका सत्कार करके विदा किया और सुदेवको बुलाकर कहा—'विप्रवर! आप शीघ्र ही अयोध्यापुरीमें जाकर राजा ऋतुपर्णसे कहिये, राजा नलके जीने-मरनेका किसीको पता नहीं है; अतः दमयन्ती पुनः स्वयंवरसे स्वेच्छानुसार पति वरण करना चाहती है। बड़े-बड़े राजा और राजकुमार आ रहे हैं। स्वयंवरका समय कल प्रातःकाल ही है; अतः आप भी यदि पहुँच सकें तो वहाँ जाइये।' सुदेवने अयोध्या जाकर यह बात कह दी। राजा ऋतुपर्णने तुरंत ही बाहुकको बुलाया और मधुर वाणीमें कहा—'बाहुक! कल ही दमयन्तीका स्वयंवर है। आज रातभरका समय हाथमें है। यदि इतने ही समयमें मुझे वहाँ पहुँचा सको, तो कुण्डिनपुर चलनेकी तैयारी करो।' यह बात सुनकर नलका कलेजा फटने लगा। उन्होंने सोचा, 'क्या दमयन्ती ऐसा करेगी। सम्भव है, मुझे बुलानेके लिये ही यह युक्ति की गयी हो। सत्यता क्या है—इसका निर्णय तो वहाँ जानेपर ही होगा।' यह विचारकर बाहुकने कुण्डिनपुर चलनेकी सम्मति दे दी। उसने अश्वशालामें जाकर घोड़ोंकी परीक्षा की और अच्छी जातिके चार शीघ्रगामी घोड़े रथमें जोत लिये। राजा ऋतुपर्ण रथपर सवार हो गये। रथ पक्षी-की भाँति आकाशमें उड़ने लगा। नदी, पर्वत और वनोंको लाँघता हुआ वह हवासे बातें करने लगा। एक स्थानपर ऋतुपर्णका दुपट्टा नीचे गिर गया। उन्होंने तुरंत रथ रोककर उसे ले लेनेकी इच्छा की। बाहुकने कहा—'वह स्थान चार कोस पीछे रह गया है।' राजा रथकी तीव्र गति देखकर चकित थे। चलते-चलते उन्होंने कहा—'बाहुक! तुम मेरी गणित-विद्याकी चतुराई देखो। सामनेके वृक्षमें जितने पत्ते और फल लगे हैं; उनसे सौगुने अधिक नीचे गिरे हैं। इस वृक्ष-की दोनों शाखाओं और टहनियोंपर पाँच करोड़ पत्ते और दो हजार पंचानबे फल हैं।' बाहुकने रथ रोक दिया। पेड़ काटकर पत्ते और फल गिने। ठीक उतने ही उतरे। नल आश्चर्यचकित हो गये। ऋतुपर्णने कहा—'गणितकी ही भाँति मैं पासोंकी वशीकरण-विद्यामें भी बहुत निपुण हूँ।' बाहुक-ने कहा—'आप मुझे यह विद्या सिखा दें तो मैं भी आपको घोड़ोंकी विद्या सिखा दूँगा।' राजाने उन्हें पासोंकी विद्या सिखा दी। उसे सीखते ही कलियुग कर्कोटक नागके तीखे विषको उगलता हुआ नलके शरीरसे बाहर निकल गया। बाहुकने रथको पुनः तीव्र गतिसे आगे बढ़ाया और सन्ध्या होते-होते कुण्डिनपुरमें पहुँचा दिया। रथकी आवाज सुनकर दमयन्ती मन-ही-मन कहने लगी—'इस रथकी घरघराहट मेरे चित्तमें उल्लास पैदा करती है। अवश्य ही इसको हाँकने-वाले मेरे पतिदेव हैं। यदि आज वे मेरे पास नहीं आयेंगे तो मैं धधकती आगमें कूद पड़ूँगी। वे शक्तिशाली, क्षमावान्, वीर, दाता और एकपत्नीव्रती हैं। उनके वियोगसे मेरा हृदय दग्ध हो रहा है।' दमयन्ती महलके छतपर चढ़कर रथको देखने लगी।

ऋतुपर्णके आनेकी बात राजा भीष्मकको मालूम नहीं थी। एकाएक उनका आगमन सुनकर राजाको आश्चर्य हुआ। वे राजाके अतिथि-भवनमें ठहराये गये। वहाँ उनका भली-भाँति स्वागत सत्कार किया गया। बाहुक भी वार्ष्णेयके साथ अश्वशालामें ठहरकर घोड़ोंकी सेवामें संलग्न हो गया। दमयन्तीने राजा नलको रथसे उतरते नहीं देखा; अतः वह बहुत चिन्तित हुई। उसने अपनी दासी केशिनीको अश्वशाला-में बाहुकका परिचय जाननेके लिये भेजा। केशिनीने बाहुकसे बातें कीं। बाहुकने राजाके आनेका कारण बताया और अपनी अश्वविद्या एवं भोजन बनानेकी चतुरताका परिचय दिया। केशिनीने पूछा—'बाहुक! क्या तुमको या तुम्हारे साथी वार्ष्णेयको यह मालूम है कि राजा नल कहाँ हैं?' बाहुकने उत्तर दिया—'वार्ष्णेयको उनके सम्बन्धमें कुछ भी मालूम नहीं है। इस समय नलका रूप बदल गया है। वे छिपकर रहते हैं। उन्हें या तो स्वयं वे ही पहचान सकते हैं या उनकी पत्नी दमयन्ती; क्योंकि वे अपने गुप्त चिह्न दूसरोंके सामने प्रकट करना नहीं चाहते।' केशिनी! यह ठीक है कि राजा नलने अपनी पत्नीके साथ उचित व्यवहार नहीं किया; तथापि वे विपत्तिमें थे। जिस समय वे भोजनकी चिन्तामें थे, पक्षी उनके वस्त्र लेकर उड़ गये। उनका हृदय पीड़ासे जर्जरित था; अतः उनकी अवस्थापर विचार करके दमयन्तीको क्रोध नहीं करना चाहिये।' इतना कहते-कहते बाहुककी आँखोंमें आँसू आ गये। वह रोने लगा। केशिनीने लौटकर सारी बात दमयन्तीको बता दी। अब दमयन्तीकी आशङ्का दृढ़ होने लगी कि ये ही राजा नल हैं।

उसने दासीसे कहा—'केशिनी ! तुम पुनः बाहुकके पास जाओ और बिना कुछ बोले ही खड़ी रहकर उसकी प्रत्येक चेष्टापर ध्यान दो।' केशिनीने ऐसा ही किया। कुछ देरके बाद लौटकर उसने दमयन्तीसे कहा—'राजकुमारी ! बाहुक तो अद्भुत मनुष्य है। उसने जल, थल और अग्निपर विजय पा ली है। यदि कहीं नीचा द्वार आ जाता है, तो वह झुकता नहीं; उसे देखकर द्वार ही ऊँचा हो जाता है। पतले-से-पतला छेद भी उसके लिये चौड़ी गुफा बन जाता है। वहाँ जो घड़े रखे थे, वे उसकी दृष्टि पड़ते ही पानीसे भर गये। उसने फूसका-पूला लेकर सूर्यकी ओर किया और वह जलने लगा। वह अग्निका स्पर्श करके भी जलता नहीं है। पानी उसकी इच्छाके अनुसार बहता है। उसके हाथसे मसलनेपर भी फूल कुम्हलाते नहीं और खिल उठते हैं। ऐसा पुरुष आजतक न मैंने कहीं देखा है न सुना है।' यह सब सुनकर दमयन्तीको यह निश्चय हो गया कि ये ही मेरे पतिदेव हैं। फिर उसने केशिनीके साथ अपने दोनों बच्चोंको वहाँ भेजा। इन्द्रसेना और इन्द्रसेनको पहचानकर बाहुक स्वतः उनके पास आ गया और उन्हें छातीसे लगाकर प्यार करने लगा। उस समय उसके मुखपर पिताके समान स्नेह प्रकट होने लगा। नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी और वह बिलख-बिलखकर रोने लगा। फिर उसने केशिनीसे कहा—'ये बच्चे मेरे दोनों बच्चोंके ही समान हैं; इसीलिये इन्हें देखकर मैं रो पड़ा। अब तुम इन्हें ले जाओ।' यह सारा हाल सुनकर दमयन्तीने मातासे कहलाया—'मैंने राजा नल समझकर बाहुककी बार-बार परीक्षा करवायी है। इससे मेरा विश्वास बढ़ता गया है। अब मुझे केवल बाहुकके रूपके सम्बन्धमें सन्देह रह गया है। आपकी आज्ञा हो, तो इसकी परीक्षा मैं स्वयं करूँ।' रानीने अपने पति भीष्मकसे अनुमति ली और बाहुक रनिवासमें बुला लिया गया। दमयन्तीको देखते ही नलका हृदय एक साथ ही दुःख और शोकसे भर आया। वे आँसुओंसे नहा गये। बाहुककी आकुलता देखकर दमयन्ती भी शोकसे कातर हो गयी। उस समय वह गेरुआ वस्त्र पहने थी। केशोंकी जटा बँध गयी थी और शरीर मलिन था। दमयन्तीने कहा—'बाहुक ! एक धर्मज्ञ पुरुष अपनी पत्नीको वनमें सोती छोड़कर चला गया था; क्या कहीं तुमने उसे देखा है ? मैंने जीवनभर जान-बूझकर उनका कोई अपराध नहीं किया है; फिर भी वे मुझे त्यागकर चले गये।' इतना कहते-कहते दमयन्ती रो पड़ी। नेत्रोंसे आँसूकी वर्षा होने लगी। अब नलसे नहीं रहा गया। कहने लगे—'प्रिये ! मैंने जान-बूझकर न तो राज्यका नाश ही किया है और न तुम्हें त्यागा ही है। यह सब कलियुगकी करतूत थी। अब वह मुझे छोड़कर चला गया। अब हमारे दुःखका अन्त आ गया है। मैं केवल तुम्हारे ही लिये यहाँ आया हूँ; किंतु तुम मेरे-जैसे प्रेमी और अनुकूल पतिको छोड़कर अब दूसरेसे विवाहके लिये तैयार हुई हो; क्या कोई साध्वी स्त्री ऐसा कर सकती है ?'

यह सुनकर दमयन्ती भयके मारे थर-थर काँपने लगी। उसने हाथ जोड़कर कहा—'आर्यपुत्र ! मुझपर दोष न लगाइये। आप जानते हैं, मैंने देवताओंको छोड़कर आपका वरण किया है। स्वयंवरकी बात आपको यहाँ बुलानेके लिये एक युक्तिमात्र थी। आपके अतिरिक्त दूसरा कोई मनुष्य नहीं है, जो एक दिनमें घोड़ोंके रथसे सौ योजन पहुँच जाय। आपके चरणोंका स्पर्श करके शपथपूर्वक कहती हूँ कि मैंने मनसे भी कभी पर-पुरुषका चिन्तन नहीं किया है। यदि स्वयंवर ही करना होता, तो उसके लिये यहाँ कुछ भी तो तैयारी की गयी होती। ऋतुपर्णके सिवा और राजा तथा राजकुमार भी तो आये होते ! यदि मेरे द्वारा मनसे भी कभी पापकर्म हुआ हो तो सर्वत्र विचरनेवाले वायुदेव मेरे प्राणोंका नाश कर दें।' इसी समय वायुने अन्तरिक्षमें स्थित होकर

कहा—'राजन् ! दमयन्ती सर्वथा निष्पाप है। इसने सदा अपने उज्ज्वल व्रत और शीलकी रक्षा की है। हम देवगण इसकी पवित्रताके साक्षी हैं।' वायुदेवकी बात पूरी होते ही आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। देवताओंकी दुन्दुभियाँ

बज उठीं। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलने लगी।

यह अद्भुत दृश्य देख राजाके मनका संदेह दूर हो गया। उन्होंने नागराज कर्कोटकका दिया हुआ वस्त्र ओढ़कर उसका स्मरण किया। उनका शरीर पुनः पूर्ववत् हो गया। दमयन्ती नलके चरणोंमें लिपट गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। नलने भी आँसू बहाते हुए उसे गले लगाया और दोनों बच्चोंको छातीसे चिपटा लिया। उस दिन सारी रात दमयन्तीसे बात करनेमें ही बीती। प्रातःकाल नहा-धो सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारणकर नल और दमयन्तीने राजा भीष्मकको प्रणाम किया, राजाने उनका सत्कार किया और आश्वासन दिया। बात-की-बातमें यह समाचार नगरमें फैल गया। घर-घर उत्सव मनाया गया। बाहुकके रूपमें नल ही थे, यह जानकर ऋतुपर्णने उनसे क्षमा माँगी। नलने उनका आदर किया और अश्वविद्या सिखा दी। वे अयोध्या चले गये। एक महीनेतक कुण्डिनपुरमें रहकर नल अपने देशको प्रस्थित हुए। राजा भीष्मकने एक श्वेत रथ, सोलह हाथी, पचास घोड़े और छः सौ पैदल नलके साथ भेजे। वहाँ जाकर नलने पुष्करको जूएमें हराकर अपना राज्य पुनः प्राप्त किया। पुष्करको भी उन्होंने अभयदान दिया। दमयन्तीके पुण्य-प्रतापसे ही उन्हें पुनः यह शुभ देखनेको मिला।—रा० शा०

परम साध्वी कान्तिमती

'आज तुममें धर्मजिज्ञासा उत्पन्न हुई है, यह इस पुण्यका प्रभाव है जो परम पवित्र वैशाख मासमें ब्राह्मणोंको चरण-पादुका एवं छातेका दान करके तुमने अर्जित किया है।' महामुनि शङ्खने अपने सम्मुख हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक बैठे हुए कल्याणकामी व्याधसे कहा—'तुम्हारी धर्ममें रुचि तुम्हारी पूर्वजन्मकी पत्नीके पुण्यका प्रताप है। उसकी सद्भावनासे ही तुम कल्याणमार्गकी ओर प्रवृत्त हुए हो।'

× × × ×

वह ब्राह्मण था। शाकल नगरीमें पवित्र श्रीवत्स गोत्रमें उसने जन्म लिया था। पूर्वपुण्योंके प्रभावसे उसे अपार सम्पत्ति मिली थी और अनुकूला साध्वी सुन्दरी पत्नी मिली थी। उसकी पत्नी केवल नामसे ही नहीं, रूप और गुणोंसे भी कान्तिमती थी। सब होकर भी कुसंगने उसे भ्रष्ट कर दिया। वह एक वेश्याके मायाजालमे पड़ गया और अन्तमें इतना निर्लज्ज हो गया कि उसने वेश्याको लाकर घरमें टिका लिया।

'आप मेरे पैर क्यों धोती हैं?' अन्ततः वेश्या भी तो नारी ही होती है। कान्तिमतीकी पतिभक्तिने उसके मनमें श्रद्धा उत्पन्न कर दी। वह उस सतीसे पैर धुलवानेमें हिचकने लगी।

'आप संकोच न करें! मेरे आराध्य इससे प्रसन्न होते हैं।' कान्तिमती पतिके चरण धोनेके अनन्तर उस गणिकाके भी पैर धोती। अञ्चलसे उनके पैरोंको पोंछती। रात्रिमें जब वे दोनों शयन करते तो वह उनके पैरोंके पास सो रहती। उसे पतिकी सेवामें ही सन्तोष था। उसके लिये पति ही परमेश्वर थे। उसके मनमें न ईर्ष्या थी और न द्वेष। वह उन दोनोंकी श्रद्धापूर्वक दासीकी भाँति सेवा किया करती थी।

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते॥

अत्यन्त महान् पुण्य तथा घोरतम पाप तुरंत फल देते हैं। उस पतित ब्राह्मणने एक दिन मूली और उड़द तथा तिल एवं दही साथ-साथ भोजन किया। विधि-निषेधकी अपेक्षा वह छोड़ चुका था। विषम भोजनसे उसे वमन-विरेचन होने लगा। संग्रहणी हो गयी और फिर कष्टप्रद भगन्दर हो गया। वेश्या अबतक उसके धनको अपने घर पहुँचा चुकी थी। धनहीन रोगीको छोड़कर वह चली गयी। सम्बन्धियोंने पतित समझकर पहले ही त्याग दिया था। अब इस कष्टमें केवल पत्नी ही उसकी सहायिका थी। वह दिन-रात अपने विश्रामको छोड़कर बराबर उसकी सेवामें लगी रहती। उसके मलिन वस्त्र स्वच्छ करती, उसे स्नान कराती, भोजन कराती, पंखा झलती तथा उसके कष्टको शमन करनेका प्रत्येक उपाय करती।

'सती! मैंने तुम्हें बड़ा कष्ट दिया। सब प्रकार तुम्हारा अपमान किया और तुम्हें पीड़ा दी! इसी पापका फल मैं भोग रहा हूँ। मुझे क्षमा करो।' एक दिन उसने कहा।

'मेरे देव! आप मुझे अपराधिनी न बनावें! आपके द्वारा मुझे कोई कष्ट कभी नहीं मिला है। आपकी सेवा करके मुझे जो आनन्द प्राप्त होता रहा है, वह अवर्णनीय है। मैं आपकी तुच्छ दासी हूँ।' कान्तिमतीने उसके पैरोंपर मस्तक रख दिया। वह साध्वी पतिकी मङ्गलकामनासे अनेक व्रत करती, अनेक देवताओंकी आराधना करती और सब प्रकार अपने रोगी पतिके कष्टको कम करनेके प्रयत्नमें लगी रहती।

वैशाखकी सन्तप्त दोपहरीमें महर्षि देवल उस गृहमें अतिथि

हुए। बड़ी श्रद्धासे साध्वी कान्तिमतीने उन्हें आसन दिया। उनके चरणोंको शीतल जलसे प्रक्षालित करके पादोदक अपने मस्तकपर धारण किया एवं पतिके शरीरपर छिड़का। चन्दन, कर्पूरमिश्रित शीतल जल महर्षिको स्नानके लिये अर्पित किया। मधुर स्वादिष्ट भोजनसे उनका स्वागत किया गया। जाते समय आग्रहपूर्वक महर्षिको ताडपत्रनिर्मित-सुन्दर छाता और चन्दनकी चरणपादुका उसने समर्पित की। इस पुण्यसे उसके पतिका कष्ट कुछ कम हुआ।

सहसा एक दिन ब्राह्मण असंगत वाक्य बोलने लगा। ज्वर तीव्र हो गया। कान्तिमतीने पतिको सन्निपात हुआ देखा तो घबडा गयी। बेचारी स्त्री करती भी क्या? किसी समीपके वैद्यके घर दौड़ी गयी और वहाँसे ओषधि ले आयी। तबतक ब्राह्मणके दाँत लग गये थे। बलपूर्वक दाँतोंको खोल-कर ओषधि मुखमें डालनेका वह प्रयत्न करने लगी। सन्निपात-के आवेशमें रोगीने दाँत दबाये। स्त्रीकी एक अँगुली कटकर उसके मुखमें रह गयी। इसी समय उसने हिचकियाँ लीं दो-तीन और प्राण विदा हो गये।

सतीने कर्तव्यका निश्चय कर लिया। शोककी छाया उसके मुखपरसे दूर हो गयी। बहुत दिनोंपर स्नानके पश्चात् उसने नवीन वस्त्र धारण किया तथा अपना शृंगार किया। भालपर सिन्दूर लगाया। अङ्गोंमें सुगन्धित द्रव्य मले। केवल केश उन्मुक्त रहे। उनमें पुष्प लगा लिये थे। श्मशानमें चिता निर्मित हुई। पतिका शव चितापर पहुँचते ही सतीने चिता-रोहण किया। उसने उस शवको आलिङ्गन दिया। चिता प्रज्वलित हुई। पतिके शवको आलिङ्गन किये हुए सतीका शरीर भी अग्निदेवने आत्मसात् कर लिया।

'ब्राह्मणने मरते समय भी उस वेश्याका ही ध्यान किया। महर्षि देवलके चरणोदकसे यद्यपि उसके पाप दूर हो गये थे, परंतु अन्तिम समय वेश्याका चिन्तन करने तथा साध्वी पत्नी-की रक्तसनी अँगुली मुखमें लेकर मरनेसे उसकी सद्गति नहीं हुई।' महामुनि शङ्खने कहा—'व्याध! क्रूर कर्मोंमें लिप्त वही ब्राह्मण तुम हो। महासाध्वी गुणवती पतिसेवा, महर्षिके आतिथ्य तथा पतिके संग सती होनेके पुण्यसे विष्णुलोक चली गयी। अब वह इस आवागमनके चक्रसे मुक्त हो गयी।'—सु० सिं०

कुमारी पिंगला

'जो चला गया, उसे पुनः नहीं पाया जा सकता। पिताके लिये तुम्हारा शोक व्यर्थ है। शरीरसे पृथक् होते ही जीव शरीरसम्बन्धी ममत्वसे छूट जाता है। कौन किसका पिता और कौन किसकी पुत्री। इस संसार-सागरमें सभी कालरूपी लहरोंपर तिनकोंकी भाँति मिलते तथा पृथक् होते प्रवाहित हो रहे हैं। 'यह किया, यह करूँगा' यह वासना ही जीवके आवागमनका कारण है। तुम अपने पूर्वकर्मोंसे ही इस कष्टको भोग रही हो।' पिताकी मृत्युपर शोकातुर होकर पिंगला आत्मघात करनेको उद्यत हो गयी थी। मुनिकन्याओंने उसे घेर रक्खा था और मुनिगण उसे आश्वासन दे रहे थे। किसी प्रकार उसका शोक दूर नहीं हो रहा था। दयापरवश धर्मने एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप रक्खा और वे उसके समीप आकर उसे आश्वासन देने लगे।

कान्यकुब्जमें विद्वान्, ज्ञान-ध्यानरत, स्वाध्यायसम्पन्न पिंगल नामके एक ब्राह्मण थे। उनकी पतिव्रता पत्नी पिंगाक्षीके एक सुशीला, सुन्दरी कन्या थी। पिताने उसका नाम पिंगला रक्खा। कन्यापर पिताका अत्यन्त स्नेह था। पत्नीकी मृत्युके पश्चात् वे विप्रदेव मुनियोंके मध्य वनमें निवास करने लगे। वहाँ वे तपस्या करते तथा भगवान्‌की अर्चना करते। कन्याके प्रेमवश उसे सदा अपने समीप रखनेकी इच्छासे उन्होंने वयस्का होनेपर भी उसका विवाह नहीं किया और इसी मोहने उन्हें संन्यास भी नहीं लेने दिया। अन्ततः समयपर उनका देहावसान हो गया। अनाथिनी, अनाश्रिता पिंगला पितृशोकसे व्याकुल होकर विलाप करने लगी। मृत्युके अतिरिक्त उसे कोई आश्रय नहीं जान पडता था।

'तुम वीणा-वेणुवादननिपुणा, नृत्य-गीत-कलाप्रवीणा, परम सुन्दरी वेश्या थीं पूर्वजन्ममें। यह जो तुम्हारा पिता था, पूर्वजन्ममें ब्राह्मणकुमार था। तुम्हारे रूप-गुणपर मुग्ध होकर अपनी द्वादशवर्षीया बालिका पत्नीको छोड़कर वह तुम्हारे समीप ही रहने लगा। चार वर्षतक वह तुम्हारे साथ रहा। एक दिन तुम्हारे एक शूद्र प्रेमीने उसे मार डाला। उस ब्राह्मणके माता-पिता पुत्रवियोगसे अत्यन्त व्याकुल हुए। उन विप्र दम्पतियोंने पुत्रकी मृत्युकी कारणभूता तुम्हें मानकर शाप दिया कि जन्मान्तरमें तुम मातृ-पितृहीना होओ और तुम्हें पति न प्राप्त हो। यह तुम्हारा पिता पूर्वजन्मकी आसक्तिके कारण ही तुम्हें अपनेसे दूर (पतिगृह) भेजनेमें असमर्थ रहा।' धर्मने उसके पूर्वजन्मका परिचय देकर उसे शान्त किया।

'मैं नीच वेश्या थी, वेश्या महान् पतित होती है फिर उत्तम ब्राह्मणकुलमें मेरा जन्म किस प्रकार हुआ ?' पिंगलाने जिज्ञासा की।

'एक बार एक विषयलोलुप ब्राह्मणने धनके लोभमें चोरी की। चोरी करते समय वह राजकर्मचारियोंद्वारा पकड़ा गया। निश्चय ही उसे प्राणदण्ड होता, परंतु तुमने अपने नृत्य-गीतसे भूपतिको प्रसन्न करके प्रचुर धन देकर उस ब्राह्मणको राजदण्डसे बचा लिया। अपने घर लाकर तुमने उसका भली प्रकार सत्कार किया। इसी पुण्यसे तुम्हारा विप्रकुलमें जन्म हुआ है।' धर्मने स्पष्टीकरण किया।

'मैं बड़ी नीच हूँ। बड़ी पापिनी रही हूँ। इस जन्ममें भी अब मेरा कोई आश्रय नहीं रहा है। स्त्रीको स्वतन्त्र नहीं रहना चाहिये, अन्यथा उसका पतन होता है। आप ही बतावें कि अब मैं क्या करूँ ? किस प्रकार मेरी मुक्ति हो ?' शोक दूर हो चुका था। पिंगला अब कर्तव्य निश्चय करना चाहती थी।

'महाकालवन नामक एक गुप्त पवित्र क्षेत्र है। यह क्षेत्र मोक्षप्रद है। दस योजन विस्तृत दिव्य क्षेत्रके पूर्वमें एक परम प्रभावशाली शिवलिङ्ग है। तुम वहाँ जाकर उसका दर्शन करो।' धर्म इतना कहकर अन्तर्हित हो गये। पिंगलाने उस दिव्य लिङ्गमूर्तिका दर्शन किया। सहसा उसका हृदय पवित्र हो गया। वह एकचित्त होकर भगवान् शङ्करका ध्यान करने लगी। ध्यानमें वह तन्मय हो गयी। अन्तमें पवित्र क्षेत्र तथा प्रगाढ़तम ध्यानके प्रभावसे वह उसी मूर्तिमें लीन हो गयी। ऋषियोंने तभीसे उस अद्भुत लिङ्गमूर्तिका नाम पिंगलेश्वर रख दिया।—सु० सिं०

तपस्विनी धर्मव्रता

'बेटी ! पतिके बिना स्त्रीका जीवन व्यर्थ है और अयोग्य पतिको पाकर भी स्त्रीका जीवन व्यर्थ हो जाता है। अपने योग्य पतिकी प्राप्तिके लिये तू तपस्या कर। तप समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।' धर्मरता, परम सुन्दरी, सुशीला तथा विद्यावती कन्या वयस्का हो गयी थी और बहुत श्रम करके भी विप्र धर्म उसके योग्य वर नहीं ढूँढ़ पाये थे। उस धर्मिष्ठाने पिताकी आज्ञा स्वीकार की। माता विश्वरूपाने उसे आशीर्वाद दिया। वनमें जाकर वह कठोर नियमोंका पालन करती हुई भगवान्का आराधन करने लगी।

सृष्टिकर्ता ब्रह्माने अपने मानसपुत्र ऋषि मरीचिको प्रजा-वृद्धिका आदेश दे रक्खा था। प्रजापति मरीचि अनुकूल पत्नीके अन्वेषणमें तीर्थाटन कर रहे थे। उन्होंने घूमते हुए एक दिन तपस्या-निरत परमसुन्दरी धर्मव्रताको देखा। उसके रूप, लक्षण तथा कर्मको देखकर वे मुग्ध हो गये। परिचय-के पश्चात् उन्होंने आग्रह किया कि वह उनकी पत्नी बने।

'मैं स्वाधीन नहीं हूँ। मुझपर मेरे पिताका अधिकार है। आप उनके समीप जाकर मेरी याचना करें।' नम्रतापूर्वक उस तपस्विनीने उत्तर दिया। महर्षि उसके पिताके पास गये। धर्मने उनका स्वागत किया। उनकी याचना सफल हो गयी। विवाह करके वे पत्नीको लेकर अपने आश्रममें आये। प्रजापतिके द्वारा धर्मव्रताने सौ पुत्र प्राप्त किये।

'अब मैं क्या करूँ ? यदि उठती हूँ तो पति रुष्ट होंगे और नहीं उठती तो पतिके धर्मका नाश होता है।' एक दिन फल-मूलादि लानेमें प्रजापति अत्यन्त श्रान्त हो गये थे। वे आसनपर शयन कर रहे थे और उनकी पत्नी उनकी चरण-सेवा कर रही थी। ऋषि निद्रित हो गये। इसी समय आश्रम-में ब्रह्माजी पधारे। पुत्रके गृहमें आनेपर पिताका सत्कार न हो तो पुत्रके धर्मका लोप होता ही है। ऋषिपत्नी बड़े असमञ्जसमें पड़ीं।

'तूने मेरी चरण-सेवा छोड़ दी और दूसरे कार्यमें लग गयी। तेरी बुद्धि विचारहीन शिलाके समान है, अतः तू शिला हो जायगी।' उठनेपर ऋषि मरीचिने पत्नीको अपने समीप न देखकर शाप दे दिया।

'आप मेरे गुरु हैं, आपकी सेवा मेरा धर्म है और मैं उसमें नियुक्त थी। आपके पिताजी जो आपके और मेरे दोनोंके गुरु हैं, आपकी निद्रावस्थामें पधारे। उनका सत्कार न करनेसे आपके धर्मकी हानि होती। मैंने अपने गुरुके भी गुरुके पदार्पणपर उनकी सेवा कर्तव्य मानकर आपके समीपसे उठनेमें धर्म देखा। उन्हें अर्घ्य, पाद्य, आसनादिसे सत्कृत करके मैं अभी ही निवृत्त हुई हूँ। आपने धर्मका विचार न करके मुझ निरपराधिनीको शाप दिया है। आप मेरे आराध्य हैं, अतः मैं आपको शाप नहीं दूँगी।' उस सतीने बड़े दुःखसे पतिको कहा और चिता बनाकर उस प्रज्वलित अग्निमें बैठ गयी।

पतिव्रताको भस्म करनेमें अग्नि तभी समर्थ होते हैं, जब वह मृतपतिके शवके साथ भस्म होनेकी इच्छा करती है।

धर्मव्रताको अग्नि जला नहीं सकते थे। उस सतीके अपमानका ध्यान करके वे बुझ भी नहीं सकते थे। प्रज्वलित अग्निमें बैठकर वह तपस्या करने लगी। अग्नि जलती रही परंतु उसमें जलानेकी शक्ति नहीं रही। वह जलती हुई भी शीतल हो गयी। उसके दीर्घकालीन कठोर तपसे सम्पूर्ण लोक संतप्त हो गये। विवश होकर ब्रह्माजीको आगे करके देवता श्रीहरिके समीप गये और उन्होंने प्रार्थना की कि सर्वशक्तिमान् प्रभु इस तपःतापसे विश्वको बचावें।

'पुत्री! तेरे पतिने जो शाप दिया है, वह तो मिथ्या नहीं हो सकता; फिर भी तेरी इस तपस्यासे मैं सन्तुष्ट हुआ हूँ। तू मुझसे वर माँग ले।' भगवान्ने प्रकट होकर धर्मव्रताको दर्शन दिया।

'यदि शाप दूर नहीं हो सकता तो आप मुझे वर दें कि जब मैं शिला हो जाऊँ तो सभी देवता आपके साथ मुझमें नित्य निवास करें। मेरे ऊपर पिण्ड देनेवालेके पितर मुक्त हो जायँ। मेरे ऊपर किया पुण्य अक्षय हो।' उसने वर माँगा और भगवान्ने स्वीकार कर लिया।

× × × ×

महासुर गयने कठोर तप करके भगवान् विष्णुको प्रसन्न करके उनसे वर प्राप्त किया कि वह सभी तीर्थोंसे अधिक पवित्र हो। दैत्यको यह वरदान देनेसे सभी तीर्थ सारहीन हो गये। देवताओंने भगवान्से विनय की। भगवान्ने ब्रह्माजीको आदेश दिया कि वे गयसे उसका शरीर यज्ञभूमिके रूपमें माँगें।

'दैत्यराज! आपकी जय हो!'

'पितामह! मैं आपका स्वागत करता हूँ। आप मेरे अतिथि हैं, अतः ईप्सित वस्तु माँग लें।'

'मुझे यज्ञ करना है। पवित्रतम स्थलके अन्वेषणमें हूँ। आपके शरीरसे पवित्र कोई तीर्थ नहीं। आप यज्ञके लिये भूमिरूपमें अपना शरीर दें।'

'एवमस्तु!' ब्रह्माजीकी याचनापर दैत्यके इतना कहते ही उसका मस्तक कटकर गिर गया।

'प्रभो! दैत्यका मस्तक जीवित है। यज्ञ पूर्ण होनेपर वह शरीरसे लग जायगा और फिर वह दैत्य जीवित हो जायगा।' ब्रह्माजीने श्रीहरिसे पुनः प्रार्थना की।

'महातपस्विनी धर्मव्रता शिला हो गयी है। उस धर्मशिलाको लाकर दैत्यके मस्तकपर रख दो। सम्पूर्ण देवता उस शिलापर स्थित हों और मैं भी गदा धारण करके उसपर स्थित होता हूँ। इस प्रकार मस्तक हिल नहीं सकेगा।' भगवान्ने बताया।

गयातीर्थमें तपस्विनी धर्मव्रता इस सर्वदेवमयी धर्मशिलाके रूपमें गयके मस्तकको दबाये स्थित हैं।—सु० सिं०

सती सीमन्तिनी

'यह लड़की चौदह वर्षकी अवस्थामें विधवा हो जायगी!' महाराज चित्रवर्माकी पुत्री सीमन्तिनीका हाथ देखकर ज्योतिषीने भविष्यवाणी की। सारा राजपरिवार शोकसागरमें निमग्न हो गया।

'माता! तुम्हीं मेरी रक्षा करो!' राजकुमारीने महर्षि याज्ञवल्क्यकी पत्नी मैत्रेयीके चरणोंपर मस्तक रखकर रोते हुए सब बातें सुनायीं।

'बेटी! चिन्ता मत कर। भगवान् आशुतोष तेरा कल्याण करेंगे!' स्नेहपूर्वक राजकुमारीके मस्तकपर हाथ फेरकर मैत्रेयीजीने उसे सोमवारका व्रत तथा पञ्चाक्षर शिव-मन्त्रका जप करनेका आदेश दिया।

सीमन्तिनीका विवाह महाराज नलके दौहित्र चित्राङ्गदके साथ हो गया। चित्राङ्गद एक समय बड़ी सेनाके साथ आखेट करने गया था। वहाँ यमुनाजीमें नौकापर बैठकर वह भयङ्कर जल-जन्तुओंका आखेट कर रहा था। अकस्मात् आँधी आयी और नौका डूब गयी। चित्राङ्गदका शरीर भी ढूँढनेपर प्राप्त नहीं हुआ। बेचारी सीमन्तिनी सुनते ही मूर्च्छित हो गयी।

नरेशहीन राज्य देखकर शत्रुओंने निषध देशपर आक्रमण कर दिया। अबला सीमन्तिनी बन्दी करके कारागारमें डाल दी गयी। उसका एक ही आधार था पञ्चाक्षर शिवमन्त्र। वह सोमवारको निर्जल व्रत करती। सदा उन शशाङ्कशेखर आशुतोषका स्मरण करती और उनकी प्रार्थना करती। उसे पूरा विश्वास था कि उसके पतिदेव जीवित हैं और भगवान् शङ्करकी कृपासे उसे प्राप्त होंगे।

'भगवान् शङ्करके भक्तोंके लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं। तुम मेरे यहाँ भाग्यसे आये हो। मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। मुझसे जो चाहे सो माँग लो!' जलमें डूबकर चित्राङ्गद सीधे नागलोक पहुँचे थे। उन्हें नागकन्याओंने अपने नरेश तक्षकके सम्मुख उपस्थित किया। तक्षकने उनका आदर करके वर माँगनेको कहा।

'मैं अपने माता-पिताका एक ही पुत्र हूँ। वे मेरे बिना व्याकुल होंगे। उनके चरणोंका मुझे शीघ्र दर्शन हो ऐसी व्यवस्था कर दें।' चित्राङ्गदने नागराजसे प्रार्थना की।

'तुम बारह सहस्र गजोंका बल प्राप्त करो!' तक्षकने वरदान दिया। एक अश्व और एक चिन्तामणि देकर एक नागके द्वारा यमुनाजलसे बाहर भेज दिया।

तीन वर्ष पीछे सीमन्तिनीको शत्रुओंने कारागारसे मुक्त कर दिया था। वह यमुना-किनारे एकाग्र मनसे भगवान् शङ्करकी आराधना करके उनसे अपने पतिके प्राप्त करनेकी प्रार्थना कर रही थी। सहसा चित्राङ्गद उसके सम्मुख आकर खड़ा हो गया। उसका तेज पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक था। सीमन्तिनी तो आश्चर्यसे मूढप्राय हो गयी। अपनेको सम्हालकर उसने पतिके चरणोंपर सिर रक्खा। चित्राङ्गदने उसे उठाया।

नागराजसे प्राप्त अश्व एवं वरदानके प्रभावसे चित्राङ्गद शत्रुओंके लिये अजेय हो चुके थे। उन्होंने अपने राज्यपर पुनः अधिकार प्राप्त किया। पत्नीके साथ जीवनपर्यन्त वे सदा सोमवारका व्रत करते तथा पञ्चाक्षरका जप करते रहे। दोनोंकी भगवान् शङ्करमें प्रगाढ़ भक्ति हो गयी थी।—सु० सिं०

शिवभक्ता घुश्मा

'आप अपना दूसरा विवाह कर लें! मेरी छोटी बहिन घुश्मा अत्यन्त सुशीला और धर्मपरायणा है। इससे आपको कोई कष्ट न होगा। हम दोनों बहिनें परस्पर एकत्र रहकर सुखी होंगी।' सुदेहाने बार-बार अपने पतिसे अनुरोध किया। दक्षिणमें देवगिरि पर्वतके निकट विप्र सुधर्मा पत्नीके साथ बड़े सुखपूर्वक रहते थे। सम्पन्न घर था और पत्नी अनुकूला थी। केवल एक ही कष्ट था कि उन्हें कोई सन्तति न थी। सुदेहा बार-बार सन्तानप्राप्तिके लिये पतिको दूसरा विवाह करनेका आग्रह किया करती थी। अन्तमें विप्र सुधर्माने पत्नीके अनुरोधको मानकर उसकी छोटी बहिनसे विवाह कर लिया। घुश्मा बचपनसे ही शिवभक्ता थी। भगवान् शङ्करमें उसकी अपार श्रद्धा थी। नित्य मृत्तिकासे वह १०१ शिवलिङ्ग निर्मित करके उनकी विधिपूर्वक पूजा करती और पूजाके पश्चात् उन्हें समीपके सरोवरमें विसर्जित कर आती। पतिगृहमें भी उसका यह उपासनाक्रम बना रहा। धार्मिक पतिने उसकी उपासनाको सदा प्रोत्साहित किया। दोनों बहिनोंमें बड़ा प्रेम था। वे बड़ी मैत्रीपूर्वक रहती थीं।

भगवान्की कृपासे घुश्मा गर्भवती हुई और समयपर उसे एक सुन्दर पुत्र हुआ। पुत्र होते ही पता नहीं क्यों उसकी बड़ी बहिन सुदेहा उससे द्वेष करने लगी। पुत्रके कारण ब्राह्मणका प्रेम घुश्मापर अधिक हो गया था और यही सुदेहाके द्वेषका कारण था। धीरे-धीरे बालक बड़ा होने लगा। वह युवा हुआ। पिताने सुयोग्य ब्राह्मणकन्यासे उसका विवाह कर दिया। घरमें पुत्रवधू आयी।

'अब मेरा इस घरमें क्या रहा। घर तो घुश्माके पुत्र तथा उसकी पुत्रवधूका हो गया।' सुदेहा मन-ही-मन इस प्रकारकी दुर्भावनाओंसे जलने लगी। एक दिन पुत्रवधू गृहकार्यमें लगी थी। पुत्र एकान्त शयनकक्षमें निद्रामग्न था। इसी समय सुदेहाने वहाँ प्रवेश किया। उसने गला घोंटकर उस निर्दोष कुमारको मार डाला और सरोवरमें फेंक आयी। उस पुत्रकी पत्नीने जब आकर शय्यापर पतिको नहीं देखा और वस्त्रोंको रक्तसना पाया तो विलाप करने लगी। घुश्माको कुछ पता नहीं था। वह अपने पार्थिव-पूजनमें लगी थी।

'मा! मैं मर गया था; किंतु भगवान्ने मुझे फिर जीवन दिया!' जैसे ही घुश्माने सरोवरपर जाकर पार्थिव लिङ्ग विसर्जित किये, उसके पुत्रने भीगे वस्त्रों जलसे निकलकर उसे प्रणाम किया।

'बेटा! सुदेहा तुम्हारी माता ही है। उसे क्षमा कर दो। यह बात किसीसे मत कहना!' घुश्माने पुत्रसे सब विवरण समझकर प्रेमपूर्वक उसे समझाया।

'तू उसे भले क्षमा कर दे, पर मैं नहीं कर सकता।' भगवान् शङ्कर भक्तापराध सहन नहीं कर सके। वे चन्द्रभाल, अहिधर त्रिशूल उठाये प्रकट हो गये।

'प्रभो! करुणामय! आप मेरी बहिनको क्षमा करें। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरी बहिनको इस पापसे मुक्त कर दें और उसके चित्तको शुद्ध बना दें।' घुश्माने विह्वल होकर आराध्यके चरणोंमें प्रणिपात किया।

'मैं तेरी क्षमासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तू वर माँग!' प्रसन्न औढरदानी बोले।

'आप यहीं नित्य निवास करें और जो आपकी पूजा करें वे निष्पाप होकर आपके पुण्यधामको प्राप्त करें।' घुश्माने वरदान माँगा।

'एवमस्तु!' ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें भगवान् शङ्कर वहीं स्थित हो गये। यह घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग निजाम हैदराबादके राज्यमें दौलताबाद स्टेशनसे १२ मील दूर वेरुल गाँवके समीप है। एलोराकी विश्वविख्यात गुफाएँ यहाँसे समीप ही हैं।—सु० सि०

सती सुनीति

सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥

यह सत्य होनेपर भी काम, क्रोध, लोभ, मोहादिके आवेशमें सभी अकरणीय कर डालते हैं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी इसके अपवाद नहीं। वैवस्वत मनुके पुत्र महाराज उत्तानपादके सम्बन्धमें भी हम यही कह सकते हैं। भगवान्की लीला विचित्र है। अधिकांश वैज्ञानिक आविष्कार वैज्ञानिकों-की भूल और प्रमादसे हुए हैं। महाराजकी भूलने भी विश्वको ध्रुव-सा परम भक्त दिया और अपनी भूलके कारण ही महाराज-का यश अमर हो गया।

महाराज उत्तानपादके दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी सुनीति एवं छोटी रानी सुरुचि। महाराजने छोटी रानीके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर ही उनसे विवाह किया था। कामका आकर्षण गुणकी अपेक्षा रूपकी ओर अधिक होता है। छोटी रानी जितनी सुन्दरी थीं, उतनी ही चतुरा भी। उन्होंने हाव-भाव एवं मधुर वचनोंसे महाराजको पूर्णतः अपने वशमें कर लिया। उन्हें बड़ी रानीसे द्वेष था। बड़ी होनेके कारण सुनीति पट्टमहिषी थीं और सभी यज्ञादि कार्योंमें उन्हींकी प्रधानता रहती थी। सुरुचिके लिये यह असह्य था। महाराज सुरुचिके सौन्दर्यपर मुग्ध थे। अन्ततः मानका स्वाँग करके, बराबर आग्रह करके सुरुचिने सुनीतिको निर्वासित करा दिया। स्त्रीके सौन्दर्यने जिसे जड बना दिया है, वह कौन-सा अकरणीय नहीं कर सकता।

सुनीतिकी गोदमें नन्हा-सा शिशु था। उसे लेकर वे राजधानीके समीप ही यमुना-किनारे महर्षि अत्रिके आश्रममें निवास करने लगीं। पतिसे परित्यक्ता तपस्विनी सुनीतिने बालकके शिक्षण तथा ऋषियोंकी सेवामें मन लगाया। उनका जीवन नियमित हो गया। महारानीसे वे एक सामान्य आश्रम-वासिनी तपस्विनी हो गयीं। ऋषिकुमारोंके साथ, महर्षियोंके सान्निध्यमें बालक ध्रुवका पालन होने लगा। मनुका पवित्र वंशज सुनीतिके समान सरल, सात्त्विक माताका पुत्र, महर्षि अत्रिका स्नेहपात्र बालक ध्रुव, सद्गुण, प्रतिभा आदिसे परिपूर्ण तो होना ही था।

बालक ध्रुवकी अवस्था पाँच वर्षकी हो गयी। राजधानीमें सुरुचिके भी एक पुत्र था और उसका नाम उत्तम था। वह ध्रुवसे कुछ महीने ही छोटा था। एक दिन माताकी आज्ञा लेकर ध्रुव ऋषिकुमारोंके साथ पिताके दर्शनके लिये राजधानीमें गये। ऋषिकुमारोंको प्रवेश करनेमें कहीं प्रतिबन्ध तो था ही नहीं, सबने राजभवनमें प्रवेश किया। महाराज उत्तानपादने ऋषिपुत्रोंको प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया। ध्रुवने पिताके चरणोंपर मस्तक रक्खा। सुन्दर तेजस्वी बालकको महाराजने गोदमें बैठा लिया।

महाराज यदा कदा रानी सुरुचिके साथ तथा एकाकी भी महर्षि अत्रिका दर्शन करने उनके आश्रममें जाते ही होंगे। ध्रुवको महाराज पहचानते थे और सुरुचि भी जानती थीं कि यह उनकी सपत्नीका पुत्र है। ध्रुव बड़े थे। न्यायतः वही राज्यके उत्तराधिकारी थे। अतः सुरुचि उन्हें सदा महाराजसे दूर ही रखना चाहती थीं। महाराजका स्नेह एकमात्र उत्तमपर रहे और वे उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनावें, यह सुरुचि-की प्रबल इच्छा थी।

'महाराज! आपने किस भिखारिनीके पुत्रको गोदमें बैठा लिया है।' सहसा सुरुचिने उस भवनमें प्रवेश किया। महाराजकी गोदमें ध्रुवको बैठे देखकर वे क्रोधसे लाल हो उठीं। हाथ पकड़कर तिरस्कारपूर्वक उन्होंने बालकको पिताकी गोदसे नीचे उतार दिया। 'तुमने अभागी माताके गर्भसे जन्म लिया है। यदि तुम्हें महाराजकी गोद अथवा महाराजके सिंहासनपर मेरे पुत्र उत्तमकी भाँति बैठना है तो जाकर भगवान्को प्रसन्न करो और उनसे वरदान लेकर मेरे गर्भसे जन्म धारण करो।' व्यङ्ग्यपूर्वक सुरुचिने बालकका अपमान किया। महाराज सहसा कुछ बोल न सके। ऋषि-कुमार स्तब्ध रह गये। क्रोधसे बालक ध्रुवके नेत्र लाल हो गये। शरीर काँपने लगा। उन्होंने एक बार नरेशकी ओर देखा। महाराज निश्चेष्ट बैठे थे। कठोर नेत्रोंसे विमाताको देखकर वे तीव्रतासे लौट पड़े।

बड़ी तीव्रगतिसे राजधानीसे वे आश्रममें आये। उन्होंने देखा भी नहीं कि उनके साथी ऋषिकुमार साथ आ रहे हैं या नहीं। माताने पुत्रको व्याकुल होकर आते देखा। दौड़-कर ध्रुवने जननीकी गोदमें मुख छिपा लिया और फूट-फूटकर रोने लगे। माताने पुचकारा, पीठ सहलाई, मुख पोंछा। बार-बार बड़े स्नेहसे पूछा 'तुम्हें किसने मारा है? किसने तुम्हारा अपमान किया है?' बड़ी कठिनतासे रोते हुए बच्चेने सब ज्यों-का-त्यों सुना दिया।

'सचमुच बेटा! बड़ी अभागिनी हूँ। भाग्यहीना न होती तो मेरे आराध्य मेरा परित्याग करते? महाराज मुझे अपनी पत्नी

स्वीकार करनेमें भी संकोच करते हैं। ऐसी माताके गर्भसे जन्म लेना सचमुच तुम्हारे अपुण्यका ही सूचक है।' सुनीतिके नेत्र भी झरने लगे। 'बेटा! विमाता होकर भी सुरुचिने जो कहा है, वही सत्य है। उसीमें तुम्हारा कल्याण है। भगवान्‌को प्रसन्न करके तुम उत्तम तो क्या अपने पितामह मनुसे भी श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर सकते हो।'

'मा! तब मैं भगवान्‌को प्रसन्न करूँगा। मैं वनमें जाकर तपस्या करूँगा और उन जगन्नाथको अवश्य प्रसन्न करूँगा।' ऋषियोंके सहवासमें ध्रुवने इतना जान लिया था कि भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये वनमें जाकर तपस्या करनी पड़ती है। 'मा! तू मुझे आशीर्वाद दे। मैं अभी जाऊँगा। गोदसे उतरकर बालकने माताके पैरोंपर मस्तक रक्खा।

पुत्रका स्नेह; पाँच वर्षका नन्हा बालक और वह घोर वनमें जाना चाहता है; किंतु महर्षिके आश्रममें रहकर सुनीतिने जान लिया था कि जगदात्मा अपने शरणागतोंकी सब प्रकार रक्षा करते हैं। उनके आश्रितोंका अमङ्गल कभी नहीं होता। उसे अपने पुत्रका स्वभाव ज्ञात था। वह जानती थी कि मना करना व्यर्थ है। बालक न तो कष्टसे विचलित होनेवाला है और न वह भयभीत होगा।

'प्रभु तुम्हारा मङ्गल करें। जाओ पुत्र, उन मङ्गलमयको प्रसन्न करो! दिशाओंके देवता और लोकपाल तुम्हारी रक्षा करें।' नेत्र भर गये। कण्ठ असमर्थ हो गया। गोदमें लेकर पुत्रका मस्तक सूँघा। आशीर्वाद दिया और ध्रुव वनको विदा हो गये।

× × ×

ध्रुवके राजभवनसे निकलते ही महाराजको अपनी भूल ज्ञात हुई। बालक जिस तेजस्वितासे चला गया था, उसने उनके हृदयको और आकर्षित किया। पुरस्कारादिसे सन्तुष्ट करनेके लिये उसे बुलाने उन्होंने दूत भेजा। पता लगा कि वह तो माताकी आज्ञा लेकर वनमें तपस्या करने चला गया। 'नन्हा-सा बच्चा, घोर वन। वनपशु उसे भक्षण कर जायँगे।' पुत्रस्नेहने महाराजको व्याकुल कर दिया। इतनेमें ही देवर्षि नारद आ गये। महाराजने उनसे पुत्रके सम्बन्धमें प्रश्न किया।

'आप चिन्ता न करें। आपका पुत्र महापुरुष है। वह भगवान्‌को संतुष्ट करके लौटेगा। आपके यशको वह अमर कर देगा।' देवर्षिने धैर्य दिया।

'आत्मनः कामाय सर्वं प्रियं भवति' इतने महत्तम पुत्रके प्रति स्नेह उमड़ पड़ा। उसके तिरस्कारके लिये महाराजको अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। स्वयं महाराज सुनीतिके झोपड़ेमें गये। उससे क्षमा माँगी और राजभवन ले आये। सुरुचिने देख लिया कि वह उपेक्षिता हो गयी है। ध्रुवपर महाराजका अपार स्नेह हो गया है। और उस बालकको वन भेजनेका दोष उसीपर है। अब यदि वह तनिक भी बाधा देगी तो दण्ड मिलेगा। उसने सुनीतिसे क्षमा माँग ली। साध्वी सुनीतिने छोटी बहिनके समान उसका आदर किया।

ध्रुवको देवर्षिका उपदेश प्राप्त हुआ। छः महीनेमें ही उन्होंने सर्वेशको तुष्टकर नित्यलोककी प्राप्तिका वरदान उपलब्ध किया। उनके लौटनेपर महाराजने उनका स्वागत किया। जो माता निरन्तर अपने बच्चेकी कल्याणकामनाका ही चिन्तन करती रही थी, उसके आनन्दका क्या पूछना।

ध्रुव युवराज हुए और समय पाकर उन्हें राज्य देकर महाराज उत्तानपादने वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकार किया। आखेटको गये उत्तमको किसी यक्षने मार डाला। पुत्रके वियोगमें सुरुचि उन्मत्तकी भाँति वनमें भागी और दावाग्निकी लपटोंमें भस्म हो गयी। ध्रुवने दीर्घकालतक राज्य किया। पृथ्वीपर राज्यभोगका समय समाप्त होनेपर भगवान्‌के पार्षद विमान लेकर आये। स्वस्तिवाचन करके ध्रुव विमानमें बैठने लगे।

'मेरा स्पर्श किये बिना कोई इस लोकसे जाता नहीं

आपको यह मर्यादा भङ्ग नहीं करनी चाहिये।' मृत्युने उपस्थित होकर करबद्ध प्रार्थना की।

'अच्छा, यही सही।' ध्रुवने मृत्युके मस्तकपर चरण रक्खा और विमानमें बैठ गये।

'ओह, मेरी माता!' मार्गमें ध्रुवने विष्णुपार्षदोंसे प्रार्थना की। 'मैं तो दिव्यलोक जा रहा हूँ और मेरी तपस्विनी माता पृथ्वीपर एकाकिनी कष्ट पावेगी। प्रमादवश मैं आते समय उसके चरण स्पर्श करना भी भूल गया। आपलोग कृपा करें। विमान पृथ्वीपर लौटे।

'राजन्! आप धन्य हैं। आपकी पुण्यमयी माता भला मर्त्यलोकमें कैसे रह सकती हैं। वे आपसे आगेके विमानमें जा रही हैं।' श्रीहरिके पार्षदोंने आगे जाते हुए एक विमानकी ओर संकेत किया।

ध्रुवने कल्पान्ततकके लिये ध्रुवलोक प्राप्त किया। समस्त ग्रह, सभी नक्षत्र, सम्पूर्ण तारावर्ग उनकी प्रदक्षिणा करता है। ध्रुवकी माता सुनीति उसी नित्य ध्रुवलोकमें पुत्रके साथ निवास करती हुई श्रीहरिकी आराधनामें संलग्न रहती हैं।

—सु० सिं०

सती सुकन्या

'महातपस्वी, अत्यन्त क्रोधी भृगुपुत्र महर्षि च्यवनका किसने अपराध किया है?' महाराज शर्याति घूमते हुए ससैन्य च्यवनाश्रमके वनमें आ गये थे। वहाँ उन्होंने शिविर डाला था। महामुनिके दर्शन करके राजधानी लौट जानेका विचार था। सहसा सभी सैनिकोंके उदरमें पीड़ा प्रारम्भ हुई। मूत्र एवं अधोवायु रुद्ध हो गये। स्वयं महाराजकी यही दशा थी। साथके अश्व भी पीड़ासे तड़पने लगे थे। सोचकर महाराजने कारणका अन्वेषण प्रारम्भ किया।

'पिताजी! मैं नहीं जानती कि यह अपराध हुआ या नहीं; परंतु मैंने कुछ किया तो है।' थोड़ी देर सभी निस्तब्ध रह गये थे। महाराजकी परमप्रिय एकमात्र नन्हीं-सी पुत्री सुकन्याने अन्तमें सोचकर कहा 'मैं सखियोंके साथ वनमें अभी घूमने गयी थी। एक वृक्षके नीचे दीमकोंकी मिट्टीसे ऊँचा-सा टीला बन गया दीख पड़ा। मिट्टी कठोर हो गयी थी। उसमें ऊपरी भागमें दो छिद्र थे और उन छिद्रोंसे कोई वस्तु चमक रही थी। मैंने उन चमकीली वस्तुओंको निकालनेके लिये बिल्वके काँटे छिद्रोंमें डाले। छिद्रोंसे दो-एक बूँद रक्त निकला। काँटे रक्तसे भीग गये! मैंने समझा कोई जुगुनूकी भाँतिका कीट चमक रहा था। काँटोंसे बिंध गया है।'

'ओह!' महाराजने दीर्घ श्वास ली। बिना कुछ बोले उठ खड़े हुए। मन्त्रियोंने अनुगमन किया। पहुँचकर लोगोंने देखा कि महर्षि च्यवन इतने कठोर तपमें संलग्न हैं और वे एकासनपर इतने दिनोंसे स्थित रहे हैं कि उनके शरीरपर दीमकोंकी मिट्टी ढकते-ढकते कठोर हो गयी है। वे अब केवल एक मिट्टीके टीले जान पड़ते हैं। शर्यातिने बड़ी दीनतापूर्वक प्रार्थना की और अज्ञानवश पुत्रीसे जो अपराध हुआ था, उसके लिये क्षमा चाही।

'तुम्हारी पुत्रीने मुझे अंधा कर दिया है। नेत्र-पीड़ाके कारण मेरी ध्यानावस्था भी भंग हो गयी है। अब मुझे यहाँसे उठना है। उठनेपर सन्ध्या, हवन, तर्पणादि सभी करने चाहिये। अंधा मनुष्य बिना किसीकी सहायताके जीवन-व्यवहार कैसे चला सकता है।' महर्षिने कहा।

'मैं आपकी सेवाके लिये पर्याप्त सेवक नियुक्त कर दूँगा।' राजाने आश्वासन दिया।

'भय, श्रद्धा, लोभादिसे सेवा नहीं होती। थोड़े दिनोंमें आवेश शान्त होनेपर सेवामें त्रुटि होने लगती है। अंधेको तो जीवनभर सेवा चाहिये और सेवामें उपेक्षा या त्रुटि होनेसे उसे तो कष्ट होगा ही।' ऋषिने स्पष्ट किया 'सेवा तो ममत्वसे ही होती है। तुम्हारी जिस सुन्दरी सुकुमारी कन्याने मुझे अंधा किया है, उसे तुम मुझे दे दो। वही मेरी ठीक सेवा कर सकेगी। मैं इसी प्रकार सन्तुष्ट हो सकता हूँ।'

बड़ा कठिन प्रश्न था। एक बूढ़े, क्रोधी ऋषिको प्रिय पुत्रीको कैसे दे दिया जावे? इस घोर वनमें वह कुसुम-सुकुमार बालिका कैसे जीवित रहेगी? महाराज मौन हो गये। सुकन्याने देखा कि उसके कारण उसके पिता तथा समस्त सचिव-सैनिक असह्य कष्टमें पड़े हैं। उसने स्वयं अपने अपराधका दण्ड स्वीकार करनेका निश्चय किया।

'मैं प्रस्तुत हूँ। महर्षिने मेरी याचना की है। मैं अपने आपको उन्हें समर्पित करती हूँ। आर्यनारी एक बार ही आत्मदान करती है।' शर्याति स्तम्भित हो गये। सबने प्रशंसा की। अब तो राजाको पुत्री ऋषिको देना ही था। उन्होंने प्रार्थना की 'आप प्रसन्न हों। सुकन्या स्वयं आपकी दासी बननेको प्रस्तुत है।' महर्षि तुष्ट हो गये। सबकी शारीरिक पीड़ा दूर हो गयी।

'मुझे इन कौशेयाम्बरों और आमरणोंका क्या करना है ? तपस्वीकी पत्नीको क्या ये शोभा देंगे ?' सुकन्याने वल्कल धारण करके वस्त्र एवं आभूषण सखियोंमें वितरित कर दिये।

नरेशने महर्षिको प्रणिपात किया और आज्ञा ली। रोते हुए पुत्रीको कण्ठसे लगाया। सखियाँ भीगे नेत्रोंसे गले मिलीं। सब विदा हो गये। सुकन्याने अपने जीवनको बदल डाला! महर्षिको उस मिट्टीके ढेरसे बाहर निकाला। घड़ेमें नदीसे जल ले आयी। स्नान कराया। नित्य समिधा, कुश, कन्द, मूल तथा जल लाना, अग्नि प्रज्वलित रखना, हविष्य प्रस्तुत करना, आश्रम स्वच्छ रखना तथा पतिकी छोटी-बड़ी सभी सेवा करना उसने प्रारम्भ कर दिया। वह भूल गयी कि वह राजकुमारी है। शरीर दुर्बल हो गया। केशकी जटाएँ बनने लगीं। हाथोंमें घट्टे पड़ गये; किंतु पतिप्राणा सुकन्याने कभी अशान्तिका अनुभव नहीं किया। कभी उसने पतिकी सेवामें प्रमाद प्रकट नहीं किया।

'सुन्दरि! तुम कौन हो? एकाकिनी क्यों दीख पड़ती हो? नदीपर स्नान करते समय सौन्दर्यमूर्ति सुकन्याको देखकर अश्विनीकुमार नभमार्गसे उतर पड़े थे। तपस्या एवं संयमने सुकन्याके सौन्दर्यको और बढ़ा दिया था।

'मैं महात्मा च्यवनकी पत्नी हूँ। स्नान करके उनके लिये जल लेने आयी हूँ। आप कौन हैं? आश्रममें पधारें और महर्षिका आतिथ्य स्वीकार करें।' सुकन्याने प्रणाम किया।

'तुम्हारा सौन्दर्य, तुम्हारी अवस्था, तुम उन जरठकी पत्नी हो!' अश्विनीकुमार उस दिव्य सौन्दर्यसे प्रभावित हो गये थे। 'हम देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार हैं।'

'वे मेरे आराध्य हैं। मेरे ईश्वर हैं। आप उनके सम्मानके विरुद्ध कृपाकर कुछ न कहें। आर्य सतीके लिये पतिकी निन्दा सुनना असह्य होता है।' सुकन्याने पुनः प्रणाम करते हुए प्रार्थना की।

'हम महर्षिका आतिथ्य स्वीकार करेंगे।' देवता डरे। उन्होंने समझ लिया कि यदि कुछ भी असंगत मुखसे निकला तो साध्वीके शापसे हमें बचानेवाला कोई है नहीं।

'हम देवभिषक् हैं। आपकी तपस्यासे हम प्रसन्न हैं। हमसे आप वरदान माँगें।' आश्रममें आकर महर्षि च्यवनसे अश्विनीकुमारोंने कहा।

'आपका मङ्गल हो। आप मुझे स्त्रियोंके लिये अभीष्ट रूप एवं अवस्था प्रदान करें तथा नेत्र-ज्योति दें।' सुकन्याकी सेवासे तुष्ट महर्षि उसे सन्तुष्ट करना चाहते थे।

'एवमस्तु!' देववैद्योंने महर्षिका हाथ पकड़ा और पासके सरोवरतक ले गये। कौन जाने उन्होंने क्या युक्ति की। तीनोंने साथ ही डुबकी लगायी और जलसे एक ही रंग-रूप-अवस्थाके तीन पुरुष बाहर निकले। महर्षि च्यवन अवस्था एवं सौन्दर्यमें अश्विनीकुमारोंकी भाँति ही हो गये थे।

'सुन्दरी! हम तीनोंमेंसे एकको स्वीकार कर लो!' उन्होंने सुकन्यासे कहा।

'मैं महात्मा च्यवनकी पत्नी हूँ। जन्म-जन्मान्तरमें मैं उन्हींकी दासी रहना चाहती हूँ। मैं इस द्यूतमें कैसे सम्मिलित हो सकती हूँ। मैंने यदि सच्चे मनसे पतिसेवा की हो तो अश्विनीकुमार सन्तुष्ट हों। मैं उन देव-युगलकी शरण हूँ। वे मुझे मेरे पतिको प्रदान करें।' हाथ जोड़कर सुकन्याने गद्गद कण्ठसे प्रार्थना की।

'देवि! ये हैं तुम्हारे पतिदेव।' ऐसी साध्वीसे कबतक छल किया जा सकता है। दोनों देवता सुकन्याको पतिका परिचय देकर आकाशमार्गसे देवलोक जाने लगे।

'मैं आपका उपकृत हूँ। यज्ञमें आपको सोमका भाग मैं दिलाऊँगा।' महर्षि च्यवनने जाते हुए देववैद्योंसे कहा। वे वैद्य होनेके कारण निन्द्य माने जाते थे और उन्हें यज्ञमें सोमका भाग प्राप्त नहीं होता था।

अब सुकन्या अपने युवा पतिके साथ आनन्दपूर्वक वनमें रहने लगी।

'कुलटे! तूने तो पति एवं पितृ दोनों कुलोंको नरकमें ढकेल दिया। तुझे धिक्कार है। मेरे उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर भी तेरी बुद्धि भ्रष्ट क्यों हो गयी। निर्लज्जकी भाँति वयोवृद्ध लोकपूजित महर्षिको त्यागकर इस जार तरुणके साथ आमोद कर रही है!' राजर्षि शर्यातिको अश्वमेध यज्ञ करनेकी इच्छा हुई, अपने जामाता महर्षि च्यवनको उन्होंने बुलाया। वे तपोवनसे आये। साथमें सुकन्या थी। पर पुत्रीके साथ एक सुन्दर तरुणको देखकर उन्होंने समझा कि कन्या कुपथ-गामिनी हो गयी है। वे क्रोधसे काँपने लगे। जब पुत्रीने आगे बढ़कर पिताको अभिवादन किया तो उसे आशीर्वाद देनेके स्थानमें उन्होंने उसकी भर्त्सना प्रारम्भ की।

'पिताजी ! आप व्यर्थ रुष्ट होते हैं। ये आपके जामाता भृगुनन्दन ही हैं। इन्हें प्रणाम करें और इन्हींसे सब ज्ञात करें।' मुसकराते हुए सुकन्याने पिताको समझाया। महाराज ऋषियोंके अपार योग-प्रभावको जानते थे। उन्होंने झट समझ लिया कि कहीं मुझसे भूल हुई है। उठकर ऋषिको प्रणाम किया। सम्पूर्ण वृत्त ज्ञात कर उन्हें अपार आनन्द हुआ। पुत्रीको गोदमें लेकर उसके मस्तकको उन्होंने अपने आनन्दाश्रुओंसे भिगो दिया।

महर्षि च्यवन राजधानीमें आये। उन्हींके नेतृत्वमें यज्ञ प्रारम्भ हुआ। जब महर्षिने सोमभाग देनेके लिये अश्विनी-कुमारोंका आह्वान किया तो महेन्द्र क्रुद्ध हो गये। उन्होंने वज्र उठाया ऋषिको मारनेके लिये।

'वज्रके साथ भुजा भी यथास्थित स्थिर रहे।' हँसते हुए मुनिने मन्त्र पढकर बाहुस्तम्भन कर दिया। इन्द्र अपनी दाहिनी भुजा हिलानेमें असमर्थ हो गये। विवश होकर उनको स्वीकार करना पड़ा कि अबसे यज्ञमें अश्विनीकुमारोंको सोमभाग मिला करेगा। —सु० सिं०

सती शकुन्तला

'राजन्! आपका मङ्गल हो! यह महात्मा कण्वका आश्रम है। आप ऋषिका आतिथ्य स्वीकार करें।' महाराज दुष्यन्त मृगयाको निकले थे और एक मृगका पीछा करते हुए वे आश्रमके समीप पहुँच गये थे। उन्हें एक ब्रह्मचारीने निमन्त्रित किया। आश्रममें पहुँचकर वल्कल पहने, सखियों-के साथ लताओंको सींचती हुई शकुन्तलाको उन्होंने देखा। वे उस अपूर्व सौन्दर्यपर मुग्ध हो गये।

'यह पाद-प्रक्षालनार्थ जल है। ये कुछ मधुर कन्द तथा फल हैं। आप आचमन करें और इन्हें स्वीकार करें। मेरे पिता महर्षि कण्व आश्रमपर नहीं हैं। किसी ग्रहशान्तिके लिये वे सोमतीर्थ गये हैं।' शकुन्तलाने अतिथिका स्वागत करते हुए कुशल प्रश्न किया।

'पुरुवंशियोंका चित्त अधर्ममें प्रवृत्त नहीं होता। मेरा मन तुम्हें देखकर क्षुब्ध हो रहा है। तुम् मुनिकन्या तो नहीं जान पडतीं।' दुष्यन्तने आतिथ्य-ग्रहणके अनन्तर पूछा।

'मैं महर्षि विश्वामित्रकी पुत्री हूँ। मेरी माता मेनकाने उत्पन्न होते ही मेरा त्याग कर दिया। नदी-किनारे वनमें शकुन्त पक्षी मेरे ऊपर छाया किये घेरे थे मुझे। महर्षि कण्व-ने मुझे देखा और दयावश उठा लाये। उन पक्षियोंके कारण ही मेरा नामकरण हुआ, महर्षिने बड़े स्नेहसे मेरा पालन किया। आप अतिथि हैं। मैं आपकी क्या सेवा करूँ।' शकुन्तलाने परिचय दिया।

'तुम राजर्षिके कुलमें उत्पन्न हो। मेरा मन तुम्हें देख-कर आकर्षित हो गया है। मुझे स्वीकार करके मेरे ऊपर कृपा करो और महारानी बनो।' दुष्यन्तने मधुर स्वरमें अनुनय की।

'महाराज! मैं स्वाधीन नहीं हूँ। मेरे पिताको आने दीजिये। आप उनसे ही प्रार्थना कीजिये।' शकुन्तलाने लज्जा-पूर्वक निवेदन किया।

'राजकन्याएँ स्वयं पति चुना करती हैं। महात्मा कण्व इससे असन्तुष्ट न होंगे। दुष्यन्त प्रतीक्षा करनेको प्रस्तुत न थे। शकुन्तलाका हृदय भी आकर्षित हो चुका था और जिसे हृदय दिया जा चुका, वह तो पति हो ही गया। उसकी आज्ञाका पालन करना ही चाहिये। शकुन्तलाने स्वीकार कर लिया। गान्धर्व-विधिसे महाराज दुष्यन्तने उसे ग्रहण किया। अपनी मुद्रिका देकर तथा शीघ्र उसे राजधानी बुलानेको कहकर चले गये।

शकुन्तला एक दिन पतिके ध्यानमें निमग्न थी। आश्रममें दुर्वासा ऋषि आये, परंतु उसे पता न लगा। ऋषिने क्रोध

करके शाप दे दिया कि जिसके ध्यानमें लगकर तू मेरे स्वागत-को नहीं उठी है, वह तुझे भूल जायगा। सखियोंने शाप सुना। उन्होंने ऋषिकी प्रार्थना की। किसी प्रकार वे प्रसन्न हुए। उन्होंने शापका परिहार किया कि किसी चिह्नके दिखलानेसे महाराजको स्मरण हो जायगा। शकुन्तला इस घटनासे अनभिज्ञ ही रही।

× × ×

'महर्षि कण्व लौटे। उन्हें शकुन्तलाकी सखियोंसे सब ज्ञात हुआ। वे प्रसन्न हुए। उन्होंने विवाहिता कन्याको आश्रममें रखना उचित नहीं समझा। उनका अनुमान था कि महाराज राजकार्यमें लगकर इधरका ध्यान भूल गये हैं। दो शिष्योंको साथ करके, उन्होंने शकुन्तलाको महाराजके समीप भेजा। दोनों शिष्य राजधानी पहुँचे। राजसभामें उन्होंने महाराजका साक्षात् किया। महाराजने आश्रमका कुशल पूछा। ब्रह्मचारियोंने राजाको आशीर्वाद दिया।

'महर्षि कण्वने आपकी मङ्गलकामना की है। उनकी पालित पुत्री शकुन्तला, जिसे आपने आश्रममें आकर गान्धर्व-विधिसे स्वीकार किया था, उसे उन्होंने आपके समीप भेजा है। ऋषिने कहलाया है कि राजकार्यमें लगकर आपका विस्मृत होना स्वाभाविक था। अब आप अपनी धर्मपत्नीको स्वीकार करें और हमलोगोंको आश्रम जानेकी आज्ञा दें।' ब्रह्मचारियोंने संक्षिप्त विनय की।

'मुझे कुछ भी स्मरण नहीं। मैं इस कल्याणीको जानता-तक नहीं हूँ। आपलोग क्या कह रहे हैं? मैं कुछ भी समझ नहीं पाता।' महाराज दुर्वासाके शापसे सब भूल चुके थे।

'राजन्! तब क्या आपने मुझे भ्रष्ट करनेके लिये ही वे मधुर बातें की थीं। आप नरेश होकर भी एक बालिकाका धर्म लेकर उसे अस्वीकार करते लज्जित नहीं होते। औरस पुत्र अपने पिता, पितामहको नरकसे मुक्त करता है और आपके द्वारा ही मैं अन्तर्वत्नी हूँ। आप अब इस प्रकार निष्ठुर वचन क्यों बोल रहे हैं।' शकुन्तलापर महाराजके वचनोंसे जैसे वज्रपात हुआ था। किसी प्रकार धैर्य धारण करके उसने रोते हुए कहा।

'तुम व्यर्थ ही मुझे कलङ्कित कर रही हो। मुझे स्मरण तक नहीं कि मैंने तुम्हें कभी देखा भी है। महारानी बननेके लोभमें यदि तुम ऐसा कर रही हो तो वह व्यर्थ है। पुरुवंशी परस्त्रीकी ओर भूलकर भी नहीं देखते।' महाराजने कठोरता-पूर्वक उत्तर दिया।

'तुमने मुझे अपनी मुद्रिका दी है प्रेमके चिह्नस्वरूप।' शकुन्तलाने मुद्रिका दिखाना चाहा, परंतु वह तो मार्गमें आचमन करते समय शचीतीर्थमें गिर गयी थी। 'मुद्रिका तो कहीं गिर गयी। परंतु तुम्हें अपने शब्द तो स्मरण होंगे।' अनेक एकान्त प्रसंगोंका शकुन्तलाने परिचय दिया।

'स्वार्थसिद्धिके लिये कुलटा स्त्रियाँ ऐसी बातें गढ़ा ही करती हैं।' राजाने कटाक्ष किया।

अनेक प्रकारसे शकुन्तलाने प्रार्थना की, रोयी; परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। दुष्यन्त उसे किसी प्रकार भी स्वीकार करनेको प्रस्तुत नहीं हुए। ऋषिने जिन ब्रह्मचारियोंको साथ भेजा था वे यह सोचकर कि 'यदि महाराज ठीक कहते हैं तो शकुन्तला त्याज्य है और यदि शकुन्तला सत्य कहती है तो अनेक अपमान सहकर भी नारीको पतिगृहमें ही रहना चाहिये।' चले गये।

'ज्योतिषियोंने कहा है कि आपका प्रथम पुत्र चक्रवर्ती होगा। सन्तान होनेतक यह मेरे यहाँ सुरक्षित रहे। यदि इसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र चक्रवर्तीके लक्षणोंसे युक्त हुआ तो समझा जायगा कि यह सत्य कहती है और तब श्रीमान् इसे स्वीकार कर लेंगे।' दयालु राजपुरोहितने एक मार्ग निकाला। महाराजने इसे स्वीकार कर लिया। शकुन्तला राजपुरोहितके पीछे रोती हुई उनके घरकी ओर चली। मार्गमें एक ज्योतिर्मयी नारी सहसा आकाशसे आयी और शकुन्तलाको लेकर अदृश्य हो गयी।

शचीतीर्थमें शकुन्तलाकी अंगुलीसे गिरी रत्नमुद्रिकाको एक मछली निगल गयी थी। मछुओंने जाल डाला और दूसरी मछलियोंके साथ वह भी पकड़ी गयी। उसे जिसने काटा, उसे मछलीके पेटमें वह अंगूठी मिली। अंगूठी बेचने वह जौहरीके पास गया। अंगूठीपर महाराजका नाम देखकर जौहरीने उसे कोतवालके पास भेज दिया। इस प्रकार बन्दी होकर वह राजाके सम्मुख पहुँचा। अंगूठी देखते ही शापका प्रभाव दूर हो गया। महाराजने उसे तो पुरस्कार देकर छोड़ दिया और अंगूठी रख ली। अब उन्हें अपने कृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। शकुन्तलाके विरहमें वे चिन्तित रहने लगे। उन्होंने उस साध्वीका भरी सभामें जो अपमान किया था, वह उन्हें अत्यन्त पीड़ा देने लगा।

× × ×

स्वर्गमें असुरोंसे देवताओंका युद्ध छिड़ गया। महेन्द्रने अपने सारथि मातलिको भेजकर सहायताके लिये महाराज

दुष्यन्तको बुलाया। महाराज देवरथमें बैठकर स्वर्ग गये और अपने अद्भुत पराक्रमसे उन्होंने संग्राममें असुरोंको पराजित किया। असुर पाताल भाग गये। महाराजको मातलि रथमें बैठाकर राजधानी पहुँचाने लौटा। मार्गमें लोकपिता महर्षि कश्यपके दर्शनार्थ महाराज हेमकूटके शिखरपर उतरे। इस समय महर्षि अपनी पत्नियोंको धर्मोपदेश कर रहे थे। थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी महाराजको।

'अरे मुख खोल, मुख! मैं तेरे दाँत गिनूँगा।' एक सुन्दर दिगम्बर तेजस्वी बालक एक सिंहशावकको एक कक्षमें दबाये था और दूसरेको हाथोंसे पकड़कर उसका मुख खोलनेमें लगा था। उसके सम्मुख सिंहके बच्चे बिल्लीसे भी गये बीते हो रहे थे। महाराज विस्मित होकर उस बालकको देखने लगे।

'तू क्यों गुर्राती है? चुप रह, नहीं तो सिर फोड़ दूँगा।' बच्चोंके मोहसे गुर्राती सिंहनी समीप आ गयी थी। बालकने एक सूखी लकड़ी उठाकर उसे इस प्रकार डाँटा, जैसे वह

कोई बकरी हो। सचमुच सिंहनीके नेत्रोंमें क्रोधके बदले याचना थी। मानो वह अपने बच्चोंपर दया करनेकी प्रार्थना कर रही हो।

'अरे सर्वदमन, छोड़ दे शेरके बच्चेको। तू बड़ा चञ्चल हो गया है। क्यों सताता है उसे?' एक तपस्विनीने बालकको डाँटा।

'मैं इसके दाँत गिनूँगा। यह मुख क्यों नहीं खोलता?' बालकको अपनी धुन थी।

'अरे देख, तेरा शकुन्त गिर गया। उसे उठा ले आकर।' बच्चेको खिलौनेका लालच मिला।

'मा शकुन्तला कहाँ है?' बालकने केशरी शावकोंको छोड़ दिया और तपस्विनीकी ओर चल पड़ा। महाराजने देख लिया था कि बालकमें महापुरुषोंके लक्षण हैं। उसकी माताका नाम सुनकर वे चौंके। तपस्विनीके पास आकर उन्होंने परिचय जानना चाहा। उन्हें ज्ञात हुआ कि यह उन्हींका पुत्र है और शकुन्तलाको उसकी माता मेनका आकाशमार्गसे लेकर यहाँ छोड़ गयी है। इसी समय शकुन्तला पुत्रको ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँची। महाराजको देखकर वह उनके चरणोंमें गिर पड़ी।

'मुझे क्षमा करो।' बड़ी कठिनतासे महाराजने इतना कहा।

'आप मुझे अपराधिनी न बनावें! उस नारीको धिक्कार है, जो पतिके प्रति असत्-विचार करती है और जिससे पतिको क्षमा माँगनी पड़ती है। आप मेरे आराध्य हैं। मैंने सदा आपके मङ्गलका ही चिन्तन किया है। वह तो मेरे किसी पूर्वकृत पापका फल था जो मुझे भोगना पड़ा।' शकुन्तलाने पतिके चरणोंमें पुनः मस्तक रक्खा।

महर्षि कश्यपका दर्शन करके तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त कर महाराज पत्नी तथा पुत्रके साथ राजधानी लौटे। शकुन्तलाके यही पुत्र सर्वदमन आगे चलकर भरत नाम परमपराक्रमी यशस्वी नरेश विख्यात हुए।—सु० सिं०

वीर माताएँ

(रचयिता—कवि केहरि श्री'कृपाण'जी)

शीलवान साहसी सपूत ललनाएँ यहाँ पतिकी अभिन्न वाम-अङ्ग अधिकारी हैं।
सीता-सी सती-सी अनुसूया औ शकुन्तला-सी शुभ्र सात्त्विकी हैं प्रीति-रीतिकी पुजारी हैं॥
यह सिंहिनी हैं सिंह-सा ही जनती हैं सदा सन्तति सपूत पै सदा से बलिहारी हैं।
सबल महा हैं इन्हें अबल गिनो न कभी वीर बहिनें हैं वीर माताएँ हमारी हैं॥

सती चिन्ता

(लेखक—श्रीशिवनाथजी दुबे, साहित्यरत्न)

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी॥

बात है सत्ययुगकी। उस समय यहाँके राजा श्रीवत्स थे। उनकी धर्मपरायणा पत्नीका नाम चिन्ता था। भगवान्में दोनोंका अटूट विश्वास था। एक दिन लक्ष्मी और शनिने आकर श्रीवत्ससे पूछा 'आप बतानेका कष्ट करें कि हम दोनोंमें कौन बड़ा है ?'

राजा बड़ी उलझनमें पड़ गये। उस दिन स्वागतादिसे बिताकर अगले दिन अपना निर्णय देनेका उन्होंने वचन दिया। दूसरे दिन दो आसन पड़े थे। ध्यान दिये बिना ही शनिदेव चाँदीके आसनपर और लक्ष्मीदेवी सोनेके आसनपर आसीन हो गयीं। उन्हें ऐसे बैठे देखकर राजाने कहा—'अपने-अपने आसन देखकर आपलोग बड़े-छोटेका निर्णय स्वयं कर लें।' श्रीवत्सके इस निर्णयपर श्रीलक्ष्मीजीने आशीर्वाद दिया, पर शनिदेव कुपित होकर चले गये।

शनिके अप्रसन्न होते ही राजाका महल ध्वंस हो गया। सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी। अकाल, महामारी प्रभृति सारी विपत्तियाँ घिर आयीं। विकल होकर श्रीवत्सने आभूषणोंके साथ अपनी पत्नी चिन्ताको ससुराल भेजकर अपने विदेश जानेका निश्चय किया। पर सती चिन्ताके हठको वे न टाल सके। राज्य छोड दोनों पैदल ही चल पड़े।

अनेक निर्जन वन और कण्टकाकीर्ण पथको पार करते हुए वे एक नदीके तीरपर पहुँचे। वहाँपर माझीके वेषमें आकर शनिदेवने श्रीवत्सकी सम्पत्ति छीन ली और अन्तर्धान हो गये।

राजा अपनी पत्नीके साथ भगवान्‌का नाम लेते आगे चले। रास्तेमें आकाशवाणी हुई 'वनवास-कालमें मैं सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा।' यह सुनकर उन्हें ढाढ़स बँधा।

भूखसे व्याकुल राजाके होश ठीक नहीं थे। खानेके लिये उन्होंने एक दिन धीवरोंसे मछली माँग ली। भूनी हुई मछलियाँ नदीमें धोते समय जीवित होकर भाग गयीं।'

राजाकी चिन्ता बढ़ने लगी। इसी बीचमें क्रोधित शनिने आकर कहा 'तुम्हारी पत्नी भी अलग करके छोड़ूँगा।' चिन्ता छटपटा उठी। राजा भी रोने लगे। वे दोनों भगवान्‌की प्रार्थना करने लगे।

कई वनोंको पार करते हुए श्रीवत्स चिन्तासहित एक गाँवमें जा बसे। वह गाँव नदीके तीरपर था। वहाँ एक व्यापारी नाव लेकर आया। उसकी नाव वहीं अटक गयी। एक वृद्ध ब्राह्मणने उसे बताया कि सती नारीके स्पर्शसे ही तुम्हारी नाव चल सकेगी। वणिक् बड़ी प्रार्थना करके चिन्ताको ले गया। चिन्ताके स्पर्शसे ही नाव चल पडी। स्वार्थी और नीच वैश्यने जबर्दस्ती चिन्ताको भी नावपर चढ़ा लिया। अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये चिन्ताने सूर्यदेवसे प्रार्थना की। उसके शरीरमें गलित कुष्ठ हो गया।

उस गाँवकी स्त्रियाँ वणिक्‌को गाली देती हुई घर लौटीं। श्रीवत्स बाहर गये थे। चिन्ताके छीने जानेकी बात सुनते ही वे काँप उठे। गाँववालोंके रोकनेपर भी वे नदीके तीरसे रोते और विलाप करते चले। एक बार तो उन्होंने नदीमें डूबकर प्राण देना चाहा, पर भगवान्‌की आकाशवाणीने उन्हें ऐसा करनेसे रोक लिया।

नदी, वन, पर्वत और मरुभूमिको पार करते हुए वे एक अत्यन्त रमणीक नगरमें पहुँच गये। उसका नाम था देवलोक। देवलोकके नरेशने इन्हें अपने यहाँ आदर और प्रेमपूर्वक रख लिया। वहाँ श्रीवत्सने देखा कि नन्दिनी गौके स्तनसे जो दूधकी धारा निकलती है उसका बहुत-सा हिस्सा पृथ्वीपर गिर जाता है और मिट्टी गीली हो जाती है। श्रीवत्सने उस गीली मिट्टीसे प्रतिदिन ईंट बनाना शुरू किया। आश्चर्यकी बात यह थी कि वह ईंट सूखनेपर सोनेकी हो जाती थी। इस अलौकिक प्रभावको देखकर वे छोटी-छोटी ईंटें पाथने लगे।

शनिदेवने श्रीवत्सकी बुद्धि भ्रमित कर दी थी। एक दिन सोनेकी ईंटोंके साथ वे राज्यके बाहर एक नदीके तटपर पहुँच गये। वहाँ एक वणिक् नाव लिये आ रहा था। उसके साथ साझेमें सोनेकी ईंटोंको बेचनेकी प्रार्थना उन्होंने की। वणिक्‌ने उन्हें नावमें बैठा लिया। पर उसने लोभवश श्रीवत्सको नावसे जलकी तीव्र धारामें फेंक दिया। यह वही वणिक् था जिसने चिन्ताको जबर्दस्ती नावपर बैठा लिया था। चिन्ता नावके नीचेवाले भागमें उस क्रूरके हाथों बँधी पड़ी थी।

अपना नाम लेकर चिल्लाते हुए पतिकी ध्वनि पहचानकर चिन्ता भी रोने लगी। श्रीवत्स डूबकर मर जाना अच्छा

समझ रहे थे, पर उन्हें लगा जैसे उनका हाथ पकड़कर कोई तटकी ओर खींचता ले जा रहा है। वे तैरने लगे।

श्रीवत्स बहते-बहते सोतिपुर नामक प्रदेशमें तटपर जा लगे। यहाँ बहुत दिनोंसे वर्षा नहीं हुई थी, पर इनके जाते ही घनघोर वृष्टि हुई। देश हरा-भरा हो गया।

बहते-बहते श्रीवत्स जहाँ लगे थे, वहाँ एक मालिनका घर था। मालिन कहीं गयी थी। वहाँ श्रीवत्सके जाते ही सूखे वृक्ष हरे हो गये। लताएँ और पौधे फूलोंसे लहलहाने लगे। मालिन लौटकर आयी तो वगीचेके रूपको देखकर चकित हो गयी। कुछ ही दूरपर तेजोमय श्रीवत्सको देखकर उसने उनसे जीवनका वृत्तान्त पूछा। श्रीवत्सने अपनी सारी राम-कहानी उससे कह दी। मालिनने उन्हे अपना धर्म-भाई बनाकर अपने पास रख लिया।

सोतिपुरके राजा बाहुदेवकी एक कन्या थी। उसका नाम था भद्रा। श्रीवत्स नरेशकी प्रशंसा सुनकर उसने देवीकी आराधना करके उन्हें ही पतिके रूपमें पानेकी प्रार्थना की थी। देवीने उसकी कामनापूर्तिका आशीर्वचन दे दिया था।

स्वयंवर रचा गया। तमाशा देखने श्रीवत्स एक कदम्ब वृक्षके नीचे खड़े थे। भद्राने उन्हींके गलेमें वरमाला डाल दी। श्रीवत्सको इस बातकी तनिक भी आशा नहीं थी। अन्य नरेशोंके सामने भद्राके पिता बड़े लज्जित हुए और उनके मनमें आघात भी पहुँचा, पर कन्याके वरमाला दे देनेपर वे कुछ कर नहीं पाये। विधिपूर्वक विवाह हो गया।

बाहुदेवका सुन्दर व्यवहार नहीं देखकर व्यवसायकी दृष्टि-से श्रीवत्सने नदीकिनारे नाव लेकर आनेवाले व्यापारियोंसे चुंगी लेनेका काम करना स्वीकार किया। राजाकी आज्ञा भी मिल गयी। श्रीवत्स प्रियतमा चिन्ताकी चिन्तासे दग्ध थे। उसीके पानेकी आशासे भी उन्होंने यह काम लिया था।

एक दिन वही धूर्त वणिक् वहाँ आया। पहचानते ही श्रीवत्सने उसे गिरफ्तार कर लिया। बात राजाके यहाँ पहुँची। राजाके पूछनेपर श्रीवत्सने कहा 'यह चोर है। ये छः सोनेकी ईंटें इसने चुरायी हैं। यदि नहीं तो जुड़वा सोनेकी ईंटोंको यह अलग कर दे।'

अपने तीक्ष्ण हथियारोंसे वणिक्ने उस ईंटको तोड़नेकी बहुत चेष्टा की, पर कोई फल नहीं निकला। तब श्रीवत्सने उसे लेकर भगवान्को स्मरण किया। ईंटें अलग हो गयीं।

अत्यन्त चकित होकर बाहुदेवने इसका रहस्य पूछा। श्रीवत्सने अपना सारा वृत्तान्त सुना दिया। श्रीवत्सका परिचय पाते ही बाहुदेव हाथ जोडकर बोले—'महाराज! आपको पाकर मेरी कन्या और हम सब कृतार्थ हो गये। अज्ञानवश मुझसे जो अपराध हुआ हो उसे आप कृपापूर्वक क्षमा करेंगे।'

इसके बाद राजा अपनी रानीके साथ स्वयं नौकापर गये। वहाँ उन्होंने चिन्ताको दयनीय स्थितिमें पाया। राजा-रानी

दोनों एकटक उनकी ओर देखने लगे और फिर आदरपूर्वक राज्य-भवनमे ले आये।

बाहुदेवने वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित कर चिन्ताको श्रीवत्सके पास भेज दिया। चिन्ता पतिके पास जाते ही चरणोंपर गिर पड़ी, श्रीवत्सने उसे हृदयसे लगा लिया। दोनोंकी आँखें बरस रही थीं। दोनोंने अपनी विपद्-गाथा एक दूसरेको सुनायी और भगवान्के कृतज्ञ हुए।

कुछ देर बाद भद्रा चिन्ताको अपनी माताके पास ले गयी। भद्राकी माताने उसे बेटीकी तरह प्यार किया। प्रेमसे भोजन कराया और आशीर्वाद दिया। सौतोंमें प्रायः द्वेष रहता है, पर चिन्ता और भद्रा दो बहिनोंकी तरह आपसमें मिल गयीं।

दूसरे दिन दरबारमें जब बाहुदेवके पास ही सिंहासनपर श्रीवत्स बैठे थे, तब शनिदेवने आकर कहा—'राजन्! आप बड़े धर्मात्मा हैं। इतने दिनोंमें आपका कर्म-भोग पूरा हुआ है, मैं तो केवल निमित्तमात्र था। अब आपके विपत्तिके दिन

समाप्त हो गये। आप जाकर राज्य कीजिये। सती चिन्ता और आप दोनोंका नाम युग-युगतक रहेगा।' शनिदेव अन्तर्धान हो गये।

कुछ दिनों बाद अपनी दोनों पत्नियोंके साथ राजा श्रीवत्स अपने राज्यमें लौट गये और आनन्दपूर्वक राज्य करने लगे। उनका और सती चिन्ता तथा भद्रादेवीका अधिक समय भगवान्‌के पूजन और भजनमें ही बीतता था। धर्म ही उनके प्राण थे।

माता कौसल्या

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिस्तु तेषां परपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतन्मानाय दानाय च रक्षणाय॥

लंकाधिपति रावण महान् वेदवेत्ता विद्वान् था। दुष्टोंकी शक्तिका सदुपयोग नहीं होता। वह विश्वके लिये भय ही उपस्थित करती है। दैवश रावणने अपने भाग्यका विचार किया और उसे पता लगा कि अयोध्याके महाराज अजके युवराज दशरथके औरससे कोशलराजकुमारी कौसल्याको जो पुत्र होगा, वही उसका वध करेगा। विषयी पुरुषके लिये शरीर ही सब कुछ है। मृत्युसे अधिक भयदायक उसे कुछ नहीं जान पड़ता। जीवन एवं शरीरकी रक्षा ही उसका चरम उद्देश्य होता है। रावण आकाशमार्गसे कोशल पहुँचा।

दक्षिण कोशलराजने अपनी पुत्रीका विवाह अयोध्याके युवराजसे निश्चित किया था। आमन्त्रण भेजा जा चुका था। नगर सज्जित हो रहा था। मण्डप बनाये जा रहे थे। सामग्री प्रस्तुत हो रही थी। अकस्मात् एक दिन राजसदनसे राजकुमारी अदृश्य हो गयीं। बड़ा हाहाकार हुआ। अन्वेषण होने लगा। अयोध्या समाचार भेज दिया गया। उधर अयोध्यासे महाराज अज प्रस्थान कर चुके थे। मन्त्रीकी सलाहसे सरयूद्वारा यात्राका निश्चय हुआ था। सुसज्जित नौकाओंके दल प्रस्थित हुए। सहसा मार्गमें आँधी आयी। भयंकर झंझाने बहुत-सी नौकाओंको डुबा दिया। वायुके महोत्पातके शान्त होनेपर महाराजने देखा कि मन्त्रिपुत्र सुमन्तके साथ युवराज जिस नौकामें थे, उसका पता नहीं है। बहुत अन्वेषण करनेपर भी युवराजका पता न लगा। कुछ प्रवीण लोगोंको अन्वेषणके लिये छोड़कर महाराज लौट गये।

रावणने कौसल्याका हरण किया और उन्हें एक काष्ठपेटिकामें बंद करके दक्षिण सागरमें अपने एक परिचित महामत्स्यको दे आया कि वह उसे रक्षित रक्खे। महामत्स्य पेटिकाको मुखमें रखे रहता था। अकस्मात् दूसरे महामत्स्यने उसपर आक्रमण किया। युद्धमें लगनेसे पूर्व मत्स्यने पेटिका गङ्गासागरके किनारे भूमिपर छोड़ दी। भीतरसे कौसल्याजीने पेटिका खोली, क्योंकि पर्याप्त समयतक पेटिकाको वे स्थिर अनुभव कर रही थीं। पेटिका खोलकर उन्होंने अपनेको स्थलपर पाया। स्थानका परिचय जाननेके लिये निकलकर इधर-उधर देखने लगीं।

रावणने ही झञ्झावात उत्पन्न करके महाराज अजकी नौकाओंको डुबा दिया था। दशरथजी जब सरयूके तलमें डूबकर ऊपर आये तो प्रवाहवेगसे वे दूर निकल गये थे। वहाँ वे एकाकी थे। अकस्मात् नौकाओंका टूटा एक काष्ठ-खण्ड दृष्टि पड़ा। मन्त्रीपुत्र सुमन्त उसपर बैठे थे। दशरथजी भी तैरकर उसीपर बैठ गये। वर्षाका प्रारम्भ हुआ था। सरयू बढ़ी थीं। मध्यधारामें काष्ठपर बैठे दोनों बहे जा रहे थे। सरयूसे बहते हुए वे गङ्गामें पहुँचे और गङ्गासे समुद्रतटके समीप जाकर तब कहीं वह काष्ठ किनारे लगा। दोनों उतरे।

यहीं कौसल्याजीसे साक्षात् हुआ। परस्पर अज्ञात स्थानमें जिज्ञासा स्वाभाविक थी। परिचय हुआ और तब दशरथजीने वहीं विधिवत् अग्नि प्रज्वलित करके उनका पाणिग्रहण किया। महाराज अजद्वारा नियुक्त अन्वेषक किनारे-किनारे पता लगाते आ पहुँचे। उनके साथ दशरथजी अयोध्या गये।

× × ×

आरम्भसे ही कौसल्याजी धार्मिक थीं। वे बराबर भगवान्‌की पूजा करतीं। अनेक व्रत रखतीं। नित्य ब्राह्मणोंको दान देतीं। सभी साधु-संत जो अयोध्यामें आते, उनके द्वारा सम्मान तथा आतिथ्य पाते थे। महाराज दशरथने अनेक विवाह किये। सबसे छोटी महारानी कैकेयीने उन्हें अत्यधिक आकर्षित किया था। वे बराबर छोटी महारानीके भवनमें ही रहते थे। कौसल्याजी पूरी तपस्विनी बन गयीं।

माता कौशल्याका सौभाग्य

उनका समय पूजा-पाठ तथा साधु-ब्राह्मणोंके सत्कारमें ही व्यतीत हुआ करता था। अनेक कठोर व्रतोंका वे बार-बार अनुष्ठान करती थीं।

'स्त्रियोंके लिये सपत्नीद्वारा किये गये अपमानसे बढ़कर कोई कष्ट नहीं। मैं तो कैकेयीकी दासीकी भाँति हूँ। मेरे सेवक-सेविकाएँ कैकेयीसे सदा भीत रहते हैं और कैकेयीके सेवक भी मुझे कष्ट देते हैं। श्रीकौसल्याजीने भगवान् श्रीरामके वन जाते समय यह उद्गार प्रकट किया है। यह सिद्ध करता है कि उन्होंने कितना मनःकष्ट उठाया। अपनी शालीनताके कारण उन्होंने कभी किसीसे कैकेयीकी निन्दा नहीं की।

महर्षि वसिष्ठके आदेशसे शृंगी-ऋषि आमन्त्रित हुए। पुत्रेष्टि यज्ञमें अग्निदेवने प्रकट होकर महाराजको चरु प्रदान किया। चरुका अर्धभाग कौसल्याजीको प्राप्त हुआ। पातिव्रत्य, व्रत, साधुसेवा, भगवदाराधना सब एक साथ सफल हो गयीं। सच्चिदानन्दघनने माता कौसल्याकी गोदको विश्ववन्द्य बना दिया। माताने उस भुवनसुन्दर शिशुको देखा, उनके सब क्लेश परमानन्दमें परिणत हो गये।

'हे भगवन्!' एक दिन अपने रामको गोदमें लेकर स्नेहसे वे उनका कमल मुख देख रही थीं। जम्हाई आयी और वह छोटा-सा मुख खुल गया। नदी, समुद्र, पर्वत, सूर्य, चन्द्र, पशु-पक्षी, नर-वानर, देव-दैत्य, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उस नन्हे मुखमें कहाँसे आ गया। माताने नेत्र बंद कर लिये। वे उन सच्चिदानन्द सर्वकारणकारणकी शरण गयीं। राघव मुसकरा पड़े। माता वैष्णवी मायावश उन्हें पुनः वात्सल्यभावसे दुग्धपान कराने लगीं।

× × ×

'मेरा राम, आज युवराज होगा!' माताने रात्रिभर भगवान्का गुणगान करते हुए व्यतीत किया था। प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें ही उठकर उन्होंने पहले नगरके विप्रोंके यहाँ गायें, वस्त्र, तिल आदि भेजे। स्नान करके बड़े प्रेमसे भगवान्की पूजा करनेमें लग गयीं। षोडशोपचारसे पूजन करके नीराजनके अनन्तर उन्होंने पुष्पाञ्जलि देकर प्रणिपात किया। इसी समय श्रीरघुनाथने आकर माताके चरणोंमें मस्तक झुकाया।

'बेटा, बलिहारी! कुछ कलेऊ तो कर ले! अभिषेकमें लगनेपर बहुत विलम्ब होगा।'

'मेरा अभिषेक तो हो गया! पिताजीने मुझे चतुर्दश वर्षके लिये काननका राज्य दिया है। मा! जी छोटा न करके आज्ञा और आशीर्वाद दो।'

'राम! तुम मातासे परिहास तो नहीं करते? महाराज तुम्हें प्राणोंसे अधिक प्रिय मानते हैं। किस अपराधपर उन्होंने तुम्हें निर्वासित किया है? मेरे निर्दोष पुत्रको किसने लाञ्छित किया है?' जैसे पाटलकलिका प्रज्वलित अग्निमें फेंक दी गयी हो। माता जहाँ-की-तहाँ खड़ी रह गयी।

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

'भाइयोंमें परस्पर द्वेष नहीं होना चाहिये। कैकेयीने चाहे जो किया हो; परंतु भरत भी तो मेरा पुत्र ही है। माताके भाव कभी संकीर्ण नहीं हुए। हृदयको वज्र बनाकर प्राणाधिक पुत्रको उन्होंने आज्ञा दी। मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा।' के आदेशको उन्होंने पुत्रके लिये रक्षित किया। विपत्तिका यहीं अन्त नहीं था। 'चित्र लिखित कपि देखि डराती' जानकी-सी कुसुमसुकुमार पुत्रवधू भी उनके सम्मुख आकर वन जानेको प्रस्तुत हो गयीं। माताके दुःखका कोई पार नहीं था।

× × +

'कल्याणी! मैंने चाहे जो किया हो, पर तुम्हारा पति हूँ। मुझे क्षमा करो!' श्रीराम वनको चले गये। महाराज

दशरथ कैकेयीको छोड़कर कौसल्याजीके भवनमें आये। शोकवश कौसल्याजीके मुखसे तनिक अप्रिय वचन निकल गये। महाराजने क्षमा माँगी।

'मैं पापिष्ठा हूँ! मेरे देव! मुझे क्षमा करें। पतिके दीन वचन सुनकर वे रोती हुई उनके चरणोंपर गिर पड़ीं। स्वामी दीनतापूर्वक जिस स्त्रीकी प्रार्थना करता है, वह अच्छे घरकी कन्या नहीं! उसके धर्मका नाश होता है। पति ही स्त्रीके इस लोक और परलोकका स्वामी है। मेरे अनुचित वचनोंको आप क्षमा करें। मैं आपकी दासी हूँ। दुःखने मेरी बुद्धिको भ्रान्त कर दिया है।' अनेक प्रकारसे महाराजको वे सान्त्वना देती रहीं।

श्रीरामके विषम वियोगमें महाराजने शरीर त्याग दिया। माता कौसल्या सती हो जाना चाहती थीं। भरतके अकृत्रिम स्नेहको उन्होंने देखा। भरतके लिये एकमात्र वही आश्रय रह गयी थीं। कैकेयीके भवनकी ओर भूलकर भी भरत नहीं देखते थे। ऐसे पुत्रके अनुरोधको वे टाल न सकीं। पतिके साथ चितारोहणका विचार उन्हें छोड़ना पड़ा। 'गूढ़ सनेह भरत मन माहीं।' श्रीभरतलालके मनमें श्रीरामके प्रति जो अपार प्रेम था, उसे माताने भली प्रकार समझ लिया था।

'लक्ष्मणको लेकर श्रीराम वनमें चले गये हैं। अब मैं तुम्हारा ही सुख देखकर जीवित हूँ। बेटा! तुम्हें यह क्या हो गया?' शृंगवेरपुरमें कुश-साथरी देखकर भरतजीके मूर्च्छित होनेपर बड़ी व्याकुलतासे उनके मस्तकको गोदमें रखकर माताने कहा था। भरतपर उनका श्रीरामकी भाँति ही वात्सल्य था। कैकेयीके प्रति भी उन्होंने कभी दुर्भाव प्रकट नहीं किया। भरत जब भी कैकेयीकी भर्त्सना करने लगते तो माता दैवको कारण बताकर उनको निवारित कर देतीं। चित्रकूटमें जनकराजमहिषी सुनयनाजीने जब कैकेयीको उनके सामने ही भला-बुरा कहना प्रारम्भ किया तो माताने बड़ी गम्भीरतासे कहा 'आप जो परम ज्ञानी महाराज विदेहकी पत्नी हैं। आप जानती हैं कि कोई किसीको सुख-दुःख नहीं देता। दैवकी प्रेरणासे ही संसारके सब कार्य होते हैं। प्राणी तो विवश होकर निमित्त बनता है। उसे दोष देना उचित नहीं है।

× × ×

'जैसे दुःख बिना चाहे प्रारब्धवश आता है, वैसे ही सुख भी बिना चेष्टा किये प्राप्त होता है। जो दुःख देता है, वही सुखका भी विधान करता है। चौदह वर्ष एक-एक पलको युगकी भाँति काटते हुए किसी प्रकार बीत गये। 'सीता अनुज सहित प्रभु आवत' का समाचार मिला और वे आ भी गये।

अतिसय मृदुल सुभर मेरे बारे। कवन भाँति रजनीचर मारे॥

माताकी समझमें यही नहीं आता था। वे बार-बार श्रीरामके कमल-कोमल अङ्गोंपर हाथ फिरातीं और देखतीं कि कहीं आघातका चिह्न तो नहीं है। उनके लिये तो श्रीराम सदा कोमल शिशु रहे और रहेंगे।

बंदौं कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥

—सु० सिं०

माता सुमित्रा

प्रात सुमित्रा नाम जग जे तिय लेहिं सनेम।
तनय लखन रिपुदमन सम पावहिं पति पद प्रेम॥

महाराज दशरथकी रानियोंकी संख्या कहीं तीन सौ साठ और कहीं सात सौ बतायी जाती है। जो भी हो, महारानी कौसल्या पट्टमहिषी थीं और महारानी कैकेयी महाराजको सर्वाधिक प्रिय थीं। शेषमें श्रीसुमित्राजी ही प्रधान थीं। महाराज छोटी महारानीके भवनमें ही प्रायः रहते थे। सुमित्राजीने उपेक्षिता-प्राय महारानी कौसल्याके समीप रहना ही उचित समझा। वे बड़ी महारानीको ही अधिक मानती थीं।

पुत्रेष्टियज्ञ समाप्त होनेपर अग्निके द्वारा प्राप्त चरुका आधा भाग तो महाराजने कौसल्याजीको दे दिया। शेषका आधा कैकेयीजीको प्राप्त हुआ। चतुर्थांश जो शेष था, उसके दो भाग करके महाराजने एक कौसल्या तथा दूसरा कैकेयीजीके हाथोंपर रख दिया। दोनों महारानियोंने अपने-अपने वे भाग सुमित्राजीको प्रदान किये। महाराज यदि सुमित्राजीको भाग देते तो सभी रानियोंको देनेका प्रश्न उठता।

समयपर माता सुमित्राने दो हेमगौर तेजस्वी पुत्र प्राप्त किये। उनमेंसे कौसल्याजीके दिये भागके प्रभावसे लक्ष्मणजी श्रीरामके तथा कैकेयीजीके दिये भागके प्रभावसे शत्रुघ्नजी भरतलालके अनुगामी हुए। यों चारों कुमारोंको रात्रिमें माता सुमित्राकी गोदमें ही निद्रा आती थी। सबकी सुख-सुविधा, लालन-पालन, क्रीड़ाका प्रबन्ध माता सुमित्रा ही करती थीं। गोस्वामी तुलसीदासजीने गीतावलीमें बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। अनेक बार माता कौसल्या श्रीरामको अपने पास सुला

लेतीं। रात्रिको जगनेपर वे रोने लगते। माता रात्रिमें ही सुमित्राजीके भवनमें पहुँचकर कहतीं 'सुमित्रा! अपने रामको लो! इन्हें तुम्हारी गोदके बिना निद्रा ही नहीं आती। देखो तो, रो-रोकर आँखें लाल कर ली हैं।' श्रीराघव सुमित्राजीकी गोदमें जाते ही चुप हो जाते।

बड़े होनेपर प्रभु प्रातः उठकर पिता तथा माताओंको प्रणाम करते। नित्य उन्हें पूछना पड़ता कि मझली मा कहाँ हैं? क्योंकि राजसदनके समस्त प्रबन्धका निरीक्षण, दास-दासियोंकी नियुक्ति, पूजा तथा दानके लिये सामग्रियोंको प्रस्तुत करना, अतिथियोंको आमन्त्रण दिया गया कि नहीं, यह देखना। दैनिक एवं नैमित्तिक उत्सवों, पूजादिकोंकी व्यवस्था करना, सब सुमित्राजीने अपने ऊपर ले लिया था। इन कार्यों-में व्यस्त वे राजसदनके किसी निश्चित स्थानपर नहीं रहा करती थीं सवेरे।

× × ×

पितासे वनवासकी आज्ञा पाकर श्रीरामने माता कौसल्यासे तो आज्ञा ली; परंतु सुमित्राजीके समीप वे स्वयं नहीं गये। वहाँ उन्होंने केवल लक्ष्मणजीको भेज दिया। माता कौसल्या अपने पुत्रको रोककर कैकेयीसे विरोध नहीं कर सकती थीं। भगवान्‌के लिये भी माताकी अपेक्षा विमाता कैकेयी शास्त्रके आज्ञानुसार अधिक सम्मान्य थीं। सुमित्राजीके सम्बन्धमें यह बात नहीं थी। यदि न्यायका पक्ष लेकर वे तेजस्विनी अड़ जायँ तो क्या होगा? वे श्रीरामको वन न जानेकी आज्ञा निःसङ्कोच दे सकती थीं। उनके रुष्ट होनेपर कोई भी उनका प्रतीकार करनेमें समर्थ नहीं था। लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों माताके परम आज्ञाकारी थे। इस प्रकारकी असमञ्जसमयी स्थितिसे बचनेके लिये ही श्रीरघुनाथ सुमित्राजीसे आज्ञा लेने नहीं गये। लक्ष्मणजीको आज्ञा माँगनेपर माता सुमित्राने जो आज्ञा दी है, वह तो हम श्रीरामचरितमानससे ज्यों-की-त्यों उद्धृत किये देते हैं। माताके विशाल हृदयका इससे विशद परिचय और कहीं भी प्राप्त होना दुर्लभ है।

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

माताने इस प्रकार पुत्रको केवल आज्ञा ही नहीं दी 'पुत्रवती जुबती' आदिसे उन्होंने नारी-जीवनकी सफलता भी बतलायी। आज्ञाके साथ आशीर्वाद दिया—

रति होहु अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई।

माता सुमित्राका ही वह आदर्श हृदय था। प्राणाधिक पुत्रको निःसंकोच उन्होंने कह दिया—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्॥

× × ×

चित्रकूटमें माता सुमित्राकी नीतिज्ञताका बड़ा मनोहर परिचय हमें मिलता है। श्रीजनकजीकी महारानी सुनयनाका कैकेयीपर अपार रोष है। कौसल्याजीके बार-बार समझानेपर भी उनका चित्त शान्त नहीं होता। 'सुनिअ सुधा, देखिअ गरल' के समान कटूक्तियाँ वे सुनाती जा रही हैं। सहसा

सुमित्राजीने 'देवि जाम जुग जामिनि बीती।' कहकर इस प्रसंगको ही समाप्त कर दिया है।

दूसरी बार हमें उनके उसी गौरवमय हृदयका परिचय मिलता है, जिस गौरवसे उन्होंने लक्ष्मणको वन जानेकी आज्ञा दी थी। 'लङ्कामें घोर युद्ध हो रहा है। लक्ष्मण रणभूमिमें आहत होकर मूर्छित हो गये हैं।' यह समाचार धौलागिरि लेकर जाते हुए हनुमान्‌जीने भरतलालके बाणसे आहत होकर गिरनेपर दिया। अयोध्यामें अत्यन्त व्याकुलता व्याप्त हो गयी। 'छिन-छिन गात सुखात मातुके छिन-छिन होत हरे हैं।' माता सुमित्राकी मनोदशा विचित्र हो गयी। उस समय 'लक्ष्मण! मेरा पुत्र, श्रीरामके लिये सम्मुख युद्धमें वीरतापूर्वक लड़ता हुआ गिरा है। मैं धन्य हो गयी!' प्रसन्नतासे वे खिल उठतीं।

'ओह, शत्रुओंके मध्यमें श्रीराम एकाकी हो गये!' यह सोचते ही उनका मुख सूख गया। 'क्या चिन्ता, अभी शत्रुघ्न तो है ही!' एक निश्चयपर आकर उन्होंने सन्तोष व्यक्त किया। पुत्रको आज्ञा दे दी—'तात जाहु कपि संग।' ऐसी जननीका पुत्र प्रमादी या भीरु नहीं हुआ करता। 'रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।' आज्ञाका पालन हुआ। महर्षि वसिष्ठने नहीं रोका होता तो माता अपने छोटे पुत्रको भी श्रीरामकी सेवामें लङ्का भेजनेसे रुकती नहीं। उन्होंने लक्ष्मणको आज्ञा देते समय कहा था 'राम सीय सेवा सुचि है हौ, तब जानिहौं सही सुत मेरे।' और इस सेवाकी अग्निमें तपकर जब उनका लाल तप्त काञ्चनकी भाँति अधिक उज्ज्वल होकर लौटा, तभी उन्होंने उसे हृदयसे लगाया।—सु० सिं०

माता कैकेयी

कैकय देश आज भी विश्वमें अपने स्वर्गीय सौन्दर्यके लिये प्रख्यात है। महाराज दशरथने कैकयनरेशकी राजकुमारी कैकेयीसे विवाह किया। यह महाराजका अन्तिम विवाह था। छोटी महारानी अत्यन्त पतिपरायणा थीं। उनके रूप और गुणने महाराजके स्नेहको अपनेमें ही आबद्ध कर लिया। महाराज उन्हींके भवनमें रहने लगे।

देवराज इन्द्र शम्बरासुरसे अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। देवता असुरोंको युद्धमें पराजित नहीं कर पाते थे। अन्तमें देवराजने महाराज दशरथसे सहायता चाही। महाराज जब अमरावती जाने लगे तो वीराङ्गना महारानी कैकेयीने भी साथ जानेकी इच्छा प्रकट की। पिताके यहाँ उन्होंने शस्त्रचालन सीखा था। वे बहुत सुन्दर ढंगसे रथ हाँक लेती थीं। अमरावती तथा असुरयुद्ध देखनेकी उनमें प्रबल इच्छा थी। महाराजने उन्हें साथ ले लिया।

घोर युद्ध करते-करते महाराज श्रान्त हो गये थे। उन्हें निद्रा आ गयी। अवसर पाकर असुरोंने उनके सारथिको मार डाला। कैकेयीजीने आगे बढ़कर रश्मि मुखमें ले ली। घोड़ोंको भागनेसे रोककर उन्होंने धनुष चढ़ाया और बाणवृष्टि करके पतिकी रक्षा करने लगीं। महाराज सावधान हुए। सारथि दूसरा आया। युद्ध पुनः चला। सहसा कैकेयीजीने देखा कि शत्रुके बाणसे रथका धुरा कट गया है। निकट ही था कि धुरा गिर पड़ता। रथचक्र इधर-उधर हो जाते और महाराज भूमिमें गिर पड़ते। कैकेयीजी रथसे कूद

पड़ीं । उन्होंने धुरेके स्थानपर अपनी पूरी भुजा लगा दी । महाराज युद्धमें तन्मय थे । शीघ्र ही दैत्य पराजित होकर भाग गये ।

प्रिये ! तुमने दो बार आज मेरे प्राणोंकी रक्षा की है, अतः तुमको जो अभीष्ट हो; वे दो वरदान माँग लो !' देव-वैद्योंने महारानीकी आहत भुजाको शीघ्र स्वस्थ कर दिया था, महाराज अत्यन्त प्रसन्न थे ।

'नाथ ! आप मेरे आराध्य हैं । मैं आपकी कुछ सेवा कर सकी हूँ, यही मेरे लिये क्या थोड़ा वरदान मिला है । आप दासीपर प्रसन्न हैं, मैं इसीमें अपना सौभाग्य मानती हूँ ।' कैकेयीजीके मनमें पतिसेवाके अतिरिक्त कोई इच्छा नहीं थी । महाराजने जब बहुत आग्रह किया तो उन्होंने यह कहकर बात टाल दी कि 'मुझे जब आवश्यकता होगी, तब माँग लूँगी ।'

× × ×

'नगरमें अत्यन्त आह्लाद है । वीथियाँ, राजपथ तोरणोंसे सज गये हैं । भवनोंपर पताकाएँ चढ़ायी गयी हैं । महारानी तुम्हें कुछ पता भी है ? सुनो, शहनाई, शङ्ख बज रहे हैं । विराट् उत्सवका आयोजन हो रहा है !' एक दिन सायंकाल कैकेयीके पितृगृहसे साथ आयी उसकी दासी मन्थराने उनसे कहा । मन्थरा दौड़ती हुई आयी थी । उसकी साँस फूल रही थी । वह अत्यन्त व्याकुल थी । महाराजने गुरुदेवसे आज्ञा लेकर श्रीरामको युवराजपद देना निश्चित किया था । प्रातः ही अभिषेक-मुहूर्त था । श्रीकौसल्याजीको तो श्रीरामके सखाओंने जाकर समाचार दे दिया था, परंतु कैकेयीको महाराज स्वयं रात्रिमें यह प्रिय समाचार सुनाकर प्रसन्न करना चाहते थे ।

'अयोध्यामें तो नित्य ही उत्सव होते रहते हैं । कल कोई विशेष उत्सव है क्या ? तू इतनी व्याकुल क्यों हो रही है ?' महारानीने सहज भावसे पूछा ।

'आप बड़ी भोली हैं । समझती हैं कि महाराज आपको बहुत चाहते हैं । यहाँ चुपचाप सब हो गया और आपको पतातक नहीं । कल रामको महाराज युवराजपद देने जा रहे हैं ।' कुबरी मन्थराने ऐसा मुख बनाया, जैसे कोई बड़ा अनर्थ होने जा रहा है ।

'तेरे मुखमें घी-शक्कर ! अहा ! मेरा राम कल युवराज होगा ! झूठ तो नहीं बोलती तू ।' दासीकी भाव-भंगीपर ध्यान न देकर महारानीने इस मङ्गल समाचार सुनानेके उपहारमें उल्लसित होकर कण्ठहार उतारा उसे देनेके लिये ।

'अपना हार रहने दीजिये ! कौन भरत युवराज हो गये हैं जो उपहार देने चली हैं । भरतको ननिहाल भेजकर गुपचुप रामको युवराज बनाया जा रहा है । कौसल्या राजमाता बनेंगी और अब भी आपकी आँखें नहीं खुलतीं ।' कुब्जाने रोनेका नाट्य किया ।

पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी । तौ धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ॥

महारानीने दासीको डाँटा—'मेरे लिये राम और भरत दो नहीं हैं । मैंने अनेक बार परीक्षा करके देखा है कि राम मेरा आदर कौसल्यासे अधिक करते हैं । रघुवंशकी प्रथाके अनुसार रामका अभिषेक हो, इसमें अनुचित क्या है ? मुझे श्रीराम प्राणोंसे अधिक प्रिय हैं । उनके अभिषेकके समाचारसे तू अभागिनी रोती क्यों है ?' महारानीके हृदयके सच्चे भाव यही थे ।

'राम बड़े सरल हैं और रघुवंशके अनुसार यह उचित ही है कि उनका अभिषेक हो, यह तो ठीक है परंतु आपको समाचारतक नहीं दिया गया । भरतको बुलाया नहीं जा रहा है । इतनेपर भी आप कुछ समझतीं नहीं । मुझे क्या, मैं तो दासी हूँ और दासी ही रहूँगी । फिर भी आपका अमङ्गल मुझसे देखा नहीं जाता । महाराज आपको चाहते हैं, इससे बड़ी रानी सदा ईर्षा करती हैं । अवसर पाकर बड़े पुत्रको अभिषेकके नियमके बहाने महाराजको उन्होंने उद्यत कर लिया है । अधिकार पाकर श्रीराम माताकी आज्ञामें न रहेंगे, इसका क्या विश्वास ! कल यदि अभिषेक हो गया तो कौसल्या अपना सब बदला आपसे चुका लेंगी । राजमाता होते ही वे आपके अधिकार छीन लेंगी । भरतको कारागार भिजवा देंगी और आपको उनकी दासी बनकर रहना होगा ।' कुब्जा मन्थराने खूब विष-वमन किया ।

'मैं विष खाकर मर जाऊँगी; परंतु सपत्नीकी दासी बनकर नहीं रहूँगी ।' दुष्टोंके अमङ्गलमय वचन पवित्र हृदयोंको कलुषित कर ही देते हैं । फिर यहाँ तो रामकी इच्छासे रामकाज करानेके लिये भगवती सरस्वती कैकेयीकी मति फेर गयीं और कुब्जाकी जिह्वापर आ बैठी थीं । कैकेयी विलाप करने लगीं । मन्थराने उन्हें आश्वासन दिया । महाराजसे दोनों पूर्वके वरदान माँगनेकी स्मृति दिलायी । कोपभवनमें मान करनेकी युक्ति भी उसीने सुझायी ।

'महाराज बहुत दुःखी होंगे । अनेक प्रकारसे अनुनय-

विनय करेंगे। सभी समझाने आवेंगे। यदि आप तनिक भी झुकीं तो काम बिगड़ जायगा।' उस दुष्टाने भलीभाँति अपना विष उस सरला राजमहिषीके हृदयमें भर दिया।

× × ×

सन्ध्या हुई। महाराज दशरथ राजसभासे उठकर बड़े उल्लाससे कैकेयीके भवनमें पधारे। रानीको कोपभवनमें सुनकर उन्हें बड़ा खेद हुआ। वहाँ जाकर उन्होंने अत्यन्त नम्रतासे उसे आश्वासन देनेका प्रयत्न किया। 'भामिनि भयउ तोर मन भावा।' कहकर उन्होंने श्रीरामके अभिषेकोत्सवका समाचार दिया। कपटपूर्ण मुसकानसे कैकेयीने दोनों वरदान न देनेके लिये महाराजको उलहना दिया। महाराजने श्रीरामकी शपथ करके अभीष्ट वर माँगनेको कहा। 'रामके स्थानपर भरत युवराज हों।' महाराजको इस वरदानसे आश्चर्य तो हुआ; किंतु कोई विशेष कष्ट न हुआ।

'तापस बेस बिसेष उदासी। चौदह बरिस राम बनबासी॥

दूसरा वरदान तो वज्रपात ही था। 'पाके छत जनु लाग अँगारू।' महाराजको विश्वास ही नहीं हुआ कि जिन रामकी कैकेयी सदा प्रशंसा करती रहती थी, उनके सम्बन्धमें इतनी अप्रिय माँग कैसे कर रही है। उन्होंने पूछा 'रिस परिहास कि साँचहु साँचा।' महाराजका पूछना, रोना, विनय करना व्यर्थ था। कैकेयी तीक्ष्णतम कटूक्तियाँ सुनाती गयीं—

भरत कि राउर पूत न होहीं। आनेहु मोल बेसाहि कि मोहीं॥
दुइ कि होहिं एक संग भुआलू। हँसब ठठाइ फुलाउब गालू॥
सत्य सराहि कहेउ बर देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना॥

प्रतिशोधकी भावना मनुष्यको कितना निष्ठुर, कितना विवेकहीन बना देती है, यह हम इस स्थानपर कैकेयीके चरित्रमें प्रत्यक्ष देखते हैं। वही पति, जिनकी सेवा करना वह अपना सौभाग्य समझती थी, आज रोते, चिल्लाते, क्रन्दन करते और बार-बार मूर्च्छित होते हैं और वह पाषाणी बनी चुपचाप तटस्थ बैठी है। उलटे व्यङ्ग्यबाणोंसे उन्हें विद्ध करती जाती है। उसने यहाँतक कह दिया—

प्रात होत मुनिबेस धरि जौं न राम बन जाहिं।
मोर मरन राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं॥

प्रातः महाराजको उठनेमें विलम्ब होता देख महामन्त्री सुमन्त्र अन्तःपुरमें उपस्थित हुए। कैकेयीने उन्हें श्रीरामको शीघ्र बुला लानेका आदेश दिया। महाराजने श्रीरामसे स्वयं कुछ नहीं कहा। वे उन्हें अङ्कमें लेकर अश्रुधार बहाते रहे, कैकेयीने ही कहा सब कुछ। उसने अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये श्रीरामकी पितृभक्तिकी प्रशंसा की—

'राउ जान बन कहहिं कि काऊ।'

'महाराज अपने मुखसे तो तुम्हें वन जानेको कह नहीं सकते। तुम यदि पिताको असत्य बोलनेसे बचाना चाहो तो वैसा करो।' कितना निष्ठुर हो जाता है हृदय स्वार्थकीटके प्रवेश करते ही। मातासे विदा होकर जब श्रीराम भाई लक्ष्मण तथा जानकीजीके साथ पुनः पिताके समीप लौटे तो कैकेयीने तीनोंके लिये वल्कलादि लाकर तुरंत सम्मुख रख दिया। उसे शीघ्रता पड़ी थी। स्वार्थी हृदय बड़ा शङ्कालु होता है। उसे भय था कि किसी बहाने राम रुक न जावें। गुरुजनोंकी भर्त्सना, सखियोंकी शिक्षा तथा मुनिपत्नियोंके आदेश उसे विष-जैसे प्रतीत हो रहे थे!

× × ×

श्रीरामके वियोगमें महाराजने शरीर छोड़ दिया। अयोध्यामें हाहाकार हो रहा था; किंतु कैकेयीके नेत्रोंमें आँसू नहीं थे। वृद्ध पति शोकावेगमें चले गये तो कोई विशेष बात नहीं हुई। उन्होंने सौभाग्यसूचक वस्त्राभरण उतार दिये; किंतु उनका उत्साह शिथिल नहीं हुआ। वे बड़े उत्साहसे भरतकी प्रतीक्षा कर रही थीं। महाराजके न रहनेसे उनका पुत्र युवराजके स्थानपर महाराज होगा। वह राजमाता होगी। भरतको आया सुनकर बड़ी उमंगसे आरती सजाकर स्वागतको बढ़ी थीं।

'जिन श्रीरामसे प्राणिमात्र प्रेम करते हैं, वही तुझे शत्रु प्रतीत हुए! तू मानवी तो है नहीं। कौन है तू?' जिस भरतपर सम्पूर्ण आशाएँ थीं, उन्होंने दूधकी मक्खीकी भाँति निकाल फेंका।

जो हसि सो हसि मुह मसि लाई। लोचन ओट बैठु किन जाई॥

भरतने उन्हें 'मा' कहना भी छोड़ दिया। उनके भवनकी ओर वह भूलकर भी नहीं देखते। जिन कौसल्यासे प्रतिशोध लेना था, भरतकी दृष्टिमें उनका आदर मासे भी कहीं ऊँचा हो गया। जिस पुत्रके लिये सब किया, वही अहर्निश रोता है, धूलिमें लोटता है। सभी उसपर सन्देह करते हैं। वह स्वयं कैकेयीका पुत्र होनेके लिये अपनेको बार-बार कोसता है।

एक दिन जिसका सबसे अधिक गौरव था, जिसकी कृपाकी प्राप्तिके लिये सभी लालायित रहते थे, आज उसे

पञ्च-वीराङ्गना

रन-सिगार सजाती पतिका, छोड़ रही अरिदलपर तीर। धुरा बनाती कोमल करको रथका कैकेयी मति धीर ॥
ले तलवार हाथमें करती शत्रुसैन्यका खूब सँहार। वीरांगना बहाती असिधारामें अरिकुल अतुल अपार ॥

उसके मुखपर ही सब राक्षसी, पतिघातिनी आदि चाहे जो कहते हैं। सेवकतक उसकी बात नहीं सुनते। लोग उसका मुख नहीं देखना चाहते। किसीसे बोलनेमें उसे बड़ा भय प्रतीत होता है। पद-पदपर उसका अपमान होता है। क्या करे? किससे कहे? अपने ही कियेपर मन मारकर उसे पश्चात्ताप करना था। सब कुछ सहनेके अतिरिक्त कोई भी दूसरा मार्ग नहीं था।

भरतने पिताकी अन्त्येष्टिके पश्चात् वन जाकर श्रीरामको लौटानेका निश्चय किया। सभी भरतके साथ जानेको उत्सुक हुए। कैकेयीके मनमें एककी आशा थी 'मैंने चाहे जो किया हो, परंतु राम बड़े सुशील हैं। वे मुझे बहुत मानते हैं। अवश्य क्षमा कर देंगे। वनमें लोगोंके साथ चलनेकी उनकी प्रबल इच्छा थी। कहें किससे? जिससे कहेंगी, वही तिरस्कारसे हँसी उड़ावेगा। अन्तमें महारानियोंमें जो एक दिन सर्वश्रेष्ठ थीं, वही अकेली, डरते-डरते दासीकी भाँति सुमित्राके पास गयीं और उनके पैरोंपर गिरकर फूट-फूटकर रोने लगीं। सुमित्राजीने बहिन कहकर उन्हें उठाया और आश्वासन दिया।

'कैकेयीने ही श्रीरामको वन भेजा है। उसके आदेशके बिना वे लौटेंगे कैसे?' जब भरतजीने कैकेयीको साथ ले चलना स्पष्ट अस्वीकार कर दिया तो सुमित्राजीने नीतिपूर्वक उनकी स्वीकृति प्राप्त की। चित्रकूट पहुँचकर भी कैकेयीका साहस श्रीरामके सम्मुख जानेका नहीं हुआ। वह एक वृक्षकी ओटमें छिप गयीं। पूछनेपर भी जब भरतजीने कैकेयीके सम्बन्धमें मौन धारण कर लिया तो श्रीरघुनाथजीने स्वयं अन्वेषण करके उनके चरणोंमें 'मा!' कहकर सिर रक्खा।

'मैं राक्षसी हूँ। मैंने अपने कुसुम-सुकुमार बच्चेको वनमें भेज दिया।' वह फूट-फूटकर रोने लगीं।

'बेटी! तुझे पहननेको वल्कल देते समय मेरा हृदय फट नहीं गया। बहुत हो चुका, तू अब लौट। वनमें अब मैं वास करूँगी और अपने पापोंका प्रायश्चित्त करूँगी।' जानकीजीके प्रणाम करनेपर तो वह विह्वल हो गयीं। उन्होंने अपने अश्रुओंसे वैदेहीके मस्तकको भिगो दिया।

× × ×

'आप क्षमाशील हैं। करुणाधाम हैं। मेरे अपराधोंको क्षमा कर दें। मेरा हृदय अपने पापसे दग्ध हो रहा है!' महर्षि वशिष्ठने जब भरतजीको बताया था कि श्रीराम साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं और देवकार्यके लिये उन्होंने मनुष्य-शरीर धारण किया है, तो कैकेयीने भी एक ओर बैठकर यह उपदेश सुना था। जब श्रीभरतजी भगवान्‌की चरण-पादुका लेकर अयोध्याके लिये विदा होने लगे तो एकान्त पाकर माता कैकेयीने अश्रुभरे नेत्रोंसे श्रीरामकी प्रार्थना की।

'आपने कोई अपराध नहीं किया है। देवताओंने सरस्वतीको भेजकर मन्थराकी बुद्धिमें भ्रम उत्पन्न कर दिया था और मेरी भी ऐसी ही इच्छा थी।' श्रीरामने माताको आदर देते हुए समझाया 'देवकार्यके लिये मेरा वन आना आवश्यक था। मेरी ही इच्छासे आप इसमें निमित्त बनी हैं। आपने कोई भी अपराध नहीं किया। सम्पूर्ण संसारकी निन्दा, सदाके लिये अपयश लेकर भी आपने मेरे कार्यको पूर्ण होनेमें योग दिया है। मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आप आनन्दसे अयोध्या लौटें। श्रीभगवान्‌का भजन करनेमें चित्त लगावें। आपकी आसक्तिका नाश हो गया है। अपमान तथा घृणाने आपके प्रबल अहङ्कारको नष्ट कर दिया है। आप निश्चय ही भगवद्धाम प्राप्त करेंगी।'

वनवाससे लौटनेपर जब प्रभु अयोध्या लौटे तो वे सर्वप्रथम माता कैकेयीके ही भवनमें गये। सर्वप्रथम प्रभुने उन्हींका आदर किया। कैकेयीजीका प्रेम धन्य है, जिन्होंने सदाके लिये कलङ्कका टीका सिर लगाकर भी राम-काज किया।

—सु० सिं०

माता सुनयना

महाराज सीरध्वज जनककी पत्नी महारानी सुनयनाके एक पुत्र थे लक्ष्मीनिधि। महाराज विदेहने अकाल पड़नेपर यज्ञ करनेका निश्चय किया और यज्ञार्थ भूमिको स्वर्ण-हलसे जोतते समय एक दिव्यकन्या उन्हें प्राप्त हुई। महारानी सुनयनाकी गोद इस कन्या सीताको पाकर धन्य हो गयी। इसके पीछे महारानीको तप्तस्वर्णाभ एक कन्या और हुई उर्मिला। दोनों कन्या बड़ी हुईं। महाराजने प्रतिज्ञा कर ली कि जो शिवधनुषको भंग करेगा, वही सीताके पाणिग्रहणयोग्य होगा।

उस दिन स्वयंवर-सभामें अनेक देशोंके नरेश एकत्र हुए थे। मध्यमें मञ्चपर शिवधनुष रक्खा था। सहसा महर्षि विश्वामित्रके साथ अयोध्याके दो राजकुमारोंने प्रवेश किया। उन नील-पीत परमसुन्दर किशोरोंको देखकर सबके नेत्र वहीं स्थिर हो गये। दूसरी ओर अब देखने योग्य कुछ रह ही नहीं गया था। महारानीने बड़े उत्सुक हृदयसे सोचा 'इन नवीन मेघमाला से मनोहर कुमारको देखकर भी महाराज प्रतिज्ञापर कैसे अड़े हैं! मेरी सीता तो इन्हींके योग्य है।'

रावण और बाणासुरने सभाभवनमें प्रवेश किया। माताका हृदय धकसे हो गया। वे दोनों परस्पर ही विवाद करके चले गये। धनुषको उन्होंने स्पर्शतक नहीं किया। वन्दियोंने घोषणा की, नृपगण बड़े उत्साहसे उठने और निराश होकर लौटने लगे। 'यह बड़ा बली जान पड़ता है। कहीं धनुष तोड़ न दे। चलो, अच्छा हुआ। बड़े गर्वसे दौड़े थे। जैसे पिनाक उठाना कोई खेल है।' प्रत्येकके उठनेपर माताके प्राण धुकपुक करने लगते।

'बड़ा अच्छा हुआ। अब महाराज विवश होकर अवध-कुमारको पुत्री देंगे।' सभी नरेशोंके निराश होकर बैठ जानेपर महारानी प्रसन्न हुईं। 'हाय! हाय! महाराजने तो पुत्रीको सदा कुमारी रखने तकका हठ कर लिया है।' महाराज जनककी घोषणासे उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। लक्ष्मणके रोषभरे वचनोंने उन्हें प्रसन्न कर दिया। अन्तमें गुरुदेवकी आज्ञा पाकर श्रीराम उठे। वह शील, वह नम्रता, वह सिंहकी-सी मदभरी गति; किंतु महारानीकी दृष्टिमें वे सुकुमार बालक थे। वे अत्यन्त दुखी होकर सखीसे कहने लगीं—

रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥
बोउ न बुझाइ कहै नृप पाहीं। ए बालक असि हठ भल नाहीं॥

'सुकुमार अङ्ग हैं। कहीं खरोंच आ जाय, कोई नस मोच खा जाय।' महारानी व्याकुल हो गयीं। सखीने उन्हें श्रीरामका प्रभाव समझाकर आश्वस्त किया। धनुष टूटा, लेकिन परशुराम आ धमके। 'छोट कुमार खोट बड़ भारी।' महारानी चाहती थीं कि कोई लक्ष्मणको समझाकर चुप कर दे। उन्हें बड़ा भय लग रहा था। बड़ा सन्तोष हुआ उन्हें जब परशुराम प्रार्थना करके चले गये। महाराज दशरथ बारात लेकर पधारे। माता सुनयनाकी अभिलाषा पूर्ण हुई। उनकी दोनों कुमारियाँ तथा उनके देवरकी भी दोनों पुत्रियाँ अवधके राजकुमारोंको अर्पित हुईं। आनन्द अपनी सीमा तोड़कर प्रवाहित हुआ।

× × ×

समाचार मिला कि श्रीराम पिताके आदेशसे वनमें चले गये। महाराज जनक ससैन्य चित्रकूट पहुँचे। वल्कलवसना जानकीने जब वहाँ आकर माताको प्रणाम किया, माताका हृदय भर आया। 'पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।' उन्होंने विदा होते समय जानकीको जो सदा पतिके अनुगमनकी शिक्षा दी थी, उसे मूर्त देखकर वे आनन्दमग्न हो गयीं।

माता-पितासे मिलने आकर सीताजीको महाराज जनकके शिविरमें अधिक रात्रि हो गयी। 'इहाँ रहब रजनी भल नाहीं।' सोचकर वे संकोच करने लगीं। माताने पुत्रीका संकोच लक्षित किया। वे स्वयं आदर्श पतिपरायणा थीं। पुत्रीकी उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की। —सु० सिं०

जगज्जननी सीता

(लेखक—पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

भारतीय देवियोंमें सतीशिरोमणि सीताका स्थान सबसे ऊँचा है। सीता और राम—ये दो ही भारतीय जनताके प्राण हैं। हिंदू-समाजके घर-घरमें, प्राण-प्राणमें सीता और राम बसे हुए हैं। श्रीराम साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं और सीता उनकी स्वरूपभूताह्लादिनी शक्ति। इस नातेसे तो वे सम्पूर्ण विश्वके ही वन्दनीय हैं, किंतु भारतीय स्त्री-पुरुषोंके साथ उनका और भी घनिष्ठतम सम्बन्ध है। वे सुख-दुःखमें सदा हमारे साथ रहकर हमें सान्त्वना देते और कर्तव्यमार्गका दर्शन कराते रहते हैं। उनका जीवन हमारे लिये एक दिव्य प्रकाश है; उस प्रकाशमें चलनेसे हमें कभी अज्ञानके अन्धकारमें नहीं भटकना पड़ेगा। स्त्रीके शील और धैर्यकी परीक्षा होती है संकटकालमें। अकेली सीताको बार-बार जितने बड़े-बड़े संकटोंका सामना करना पड़ा, उतने संकट कदाचित् ही किसी स्त्रीको सहन करने पड़े होंगे। उन्हें अनेक बार अग्निपरीक्षा देनी पड़ी और विपत्तिकी आँचसे तपकर वे सदा खरे सोनेकी भाँति निखर उठी थीं। यही कारण है कि भारतीय साहित्यके अधिकांश पृष्ठ सीताके उज्ज्वल चरित्रोंसे ही गौरवान्वित हुए हैं। इतिहास, पुराण, काव्यसे लेकर स्त्रियोंके ग्राम्य गीतोंतकमें सीताकी समानरूपसे प्रतिष्ठा हुई है। उनका चरित्र अगाध है। यहाँ संक्षेपसे ही उनके आदर्श जीवनकी कुछ चर्चा करके लेखनी पवित्र की जायगी।

प्राचीनकालमें मिथिला प्रान्तकी राजधानी मिथिला ही थी, जनकवंशी क्षत्रियोंके अधिकारमें होनेसे मिथिलापुरीका दूसरा नाम जनकपुर भी था। एक समय वहाँ सीरध्वज जनक नामसे प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। वे शास्त्रोंके ज्ञाता, परम वैराग्यवान् तथा ब्रह्मज्ञानी थे। उनका जीवन एक त्यागी तपस्वीका जीवन था, इसीलिये उस समयके साधु-महात्मा, ऋषि-मुनि उन्हें राजर्षि कहते थे। एक बार राजा जनक यज्ञके लिये पृथ्वी जोत रहे थे। उस समय चौड़े मुँहवाली सीता (हलके घँसनेसे बनी हुई गहरी रेखा) से एक कुमारी कन्याका प्रादुर्भाव हुआ, जो रतिसे भी बढ़कर सुन्दरी तथा साक्षात् लक्ष्मीके समान रूपवती थी। राजाने उस कन्याको भगवान्‌का दिया हुआ प्रसाद माना और अपनी औरस पुत्रीकी भाँति बड़े लाड़-प्यारसे उसका पालन किया। सीतासे ही प्रकट होनेके कारण ही कन्याका नाम सीता रक्खा गया। जनककी पुत्री होनेसे वह जानकी भी कहलाने लगी। जैसे आत्माके प्रति सभी प्राणियोंका स्वाभाविक आकर्षण होता है, उसी प्रकार सीताके प्रति माता-पिताका मन अधिक आकृष्ट था। राजा जनकके एक छोटी कन्या और थी जिसका नाम उर्मिला था। सीता शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिनोंदिन बढ़ने लगी। शरीरके ही साथ रूप, लावण्य और गुणोंकी भी वृद्धि होने लगी। इसी प्रकार माता-पिताका स्वाभाविक अनुराग भी निरन्तर बढ़ता गया।

एक दिन सीता सखियोंके साथ उद्यानमें खेल रही थी। वहाँ उन्हें दो तोते बैठे दिखायी दिये, जो बड़े ही सुन्दर थे।
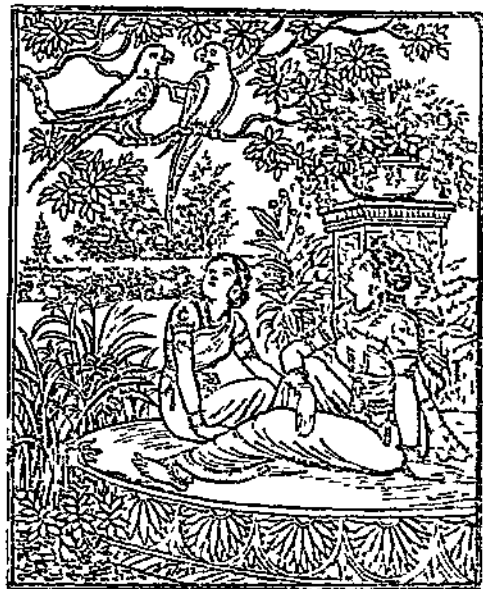
वे दोनों पक्षी एक वृक्षकी डालपर बैठे-बैठे एक बड़ी मनोहर कथा कह रहे थे—'इस पृथ्वीपर श्रीराम नामसे प्रसिद्ध एक बड़े सुन्दर राजा होंगे। उनकी महारानीका नाम सीता होगा। श्रीरामचन्द्रजी बड़े बुद्धिमान् और बलवान् होंगे तथा समस्त राजाओंको अपने अधीन करके सीताके साथ ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करेंगे। धन्य हैं जानकी देवी और धन्य हैं श्रीराम, जो एक दूसरेको पाकर इस लोकमें आनन्दपूर्वक विहार करेंगे।' तोतेके मुँहसे ऐसी बातें सुनकर सीताने सोचा, 'ये दोनों पक्षी मेरे ही जीवनकी कथा कह रहे हैं। इन्हें पकड़कर सभी बातें पूछूँ!' ऐसा विचारकर उन्होंने सखियोंसे

कहा—'यह देखो, इस पर्वतके शिखरपर जो वृक्ष है, उसकी डालीपर दो पक्षी बैठे हुए हैं। ये दोनों बहुत सुन्दर हैं। तुमलोग चुपकेसे जाकर इनको पकड़ लाओ।' सखियाँ उस पर्वतपर गयीं और दोनों पक्षियोंको पकड़ लायीं। सीताने उन्हें हाथमें लेकर प्यार किया और आश्वासन देते हुए कहा—'देखो, डरना नहीं; तुम दोनों बड़े सुन्दर हो। मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुम कौन हो और कहाँसे आये हो। राम कौन हैं और सीता कौन हैं, तुम्हें उनकी जानकारी कैसे हुई?' सीताके इस प्रकार प्रेमपूर्वक पूछनेपर उन पक्षियोंने कहा—'देवि! वाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़े महर्षि हैं। हमलोग उन्हींके आश्रममें रहते हैं। महर्षिने एक बड़ा मधुर काव्य बनाया है। जिसका नाम है रामायण। उसकी कथा मनको बहुत प्रिय लगती है। महर्षि अपने शिष्योंको रामायण पढ़ाते हैं और सदा उसके पद्योंका चिन्तन करते रहते हैं। प्रतिदिन सुनते-सुनते हमें भी उसकी बातें बहुत कुछ मालूम हो गयी हैं। हम तुम्हें रामका परिचय देते हैं, सुनो—अयोध्याके महाराज दशरथ महर्षि ऋष्यशृङ्गको बुलाकर उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ करावेंगे। उस यज्ञके प्रभावसे भगवान् विष्णु उनके यहाँ चार शरीर धारण करके प्रकट होंगे। वे चारों भाई क्रमशः श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके नामसे प्रसिद्ध होंगे। देवाङ्गनाएँ भी उनकी उत्तम लीलाओंका गान करेंगी। श्रीराम महर्षि विश्वामित्रके साथ मिथिला पधारेंगे और राजा जनकके यहाँ रक्खा हुआ शिवजीका धनुष तोड़कर लक्ष्मी-स्वरूपा सीताके साथ विवाह करेंगे। उनके अन्य तीन भाइयोंका विवाह भी मिथिलामें ही होगा। सुन्दरी! ये तथा और भी बहुत-सी बातें हमने महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें सुनी हैं। तुमने जो कुछ पूछा था, हमने वह बता दिया। अब हमें छोड़ दो। हम दूसरे वनमें जाना चाहते हैं।'

पक्षियोंकी बातें सीताके कानोंमें अमृतकी वर्षा कर रही थीं। उन्होंने कुछ और सुननेके लिये पूछा—'श्रीरामचन्द्रजी कैसे हैं? उनके गुणोंका वर्णन करो। तुम्हारी बातें मुझे बड़ी प्रिय लगती हैं।' सीताके प्रश्न सुनकर तोतेकी स्त्रीने समझ लिया कि ये ही जनकनन्दिनी हैं; फिर तो वह उनके चरणोंपर गिर पड़ी और बोली—'श्रीरामचन्द्रजीका मुख कमलके समान सुन्दर है। नेत्र बड़े-बड़े तथा खिले हुए पङ्कजकी शोभा धारण करते हैं। नासिका ऊँची, पतली और मनोहारिणी है। दोनों भौंहें सुन्दर ढंगसे परस्पर मिली हुई हैं। भुजाएँ घुटनोंतक लंबी और मनको लुभानेवाली हैं। गला शङ्खके समान है, विशाल वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिन्ह शोभित होता है। उनका कटिभाग, जंघा तथा घुटने अत्यन्त मनोहर हैं। चरणारविन्दकी शोभा वर्णनसे परे है। श्रीरामचन्द्रजीका रूप कितना मनोहर है; इसका वर्णन मैं क्या कर सकती हूँ। जिनके सौ मुख हैं, वे भी उनके गुणोंका बखान नहीं कर सकते। जिनकी झाँकी देखकर लावण्यमयी लक्ष्मी भी मोहित हो गयीं, उनका दर्शन करके दूसरी कौन स्त्री है, जो मोहित न हो। मैं श्रीरामका कहाँतक वर्णन करूँ। वे सब प्रकारके ऐश्वर्यमय गुणोंसे युक्त हैं। जनककिशोरी सीता धन्य हैं, जो रघुनाथजीके साथ हजारों वर्षोंतक प्रसन्नतापूर्वक रहेंगी; किंतु सुन्दरी! तुम कौन हो? जो इतने प्रेमके साथ श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन सुनती हो।'

जानकी बोलीं—'तुम जिसे जनकनन्दिनी सीता कहती हो, वह मैं ही हूँ। श्रीरामने मेरे मनको अभीसे लुभा लिया है। वे यहाँ आकर जब मुझे ग्रहण करेंगे तभी मैं तुम दोनोंको छोड़ूँगी। तुमने अपने वचनोंसे मेरे मनमें रामको पानेका लोभ उत्पन्न कर दिया है; अतः मेरे घरमें सुखसे रहो और मीठे-मीठे पदार्थ भोजन करो।' सीताकी यह बात सुनकर सुग्गी अनिष्टकी आशङ्कासे काँप उठी और विनती करती हुई बोली—'साध्वी! हम वनके पक्षी हैं। पेड़ोंपर रहते हैं और स्वच्छन्द विचरा करते हैं। तुम्हारे घरमें हमें सुख नहीं मिलेगा। मैं गर्भिणी हूँ। अपने स्थानपर जाकर बच्चे पैदा करूँगी। उसके बाद फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगी।' तोतेने भी ये ही बातें कहकर प्रार्थना की; किंतु सीता उस सुग्गीको छोड़नेके लिये उद्यत न हुईं। दोनों पक्षी बहुत रोये, गिड़गिड़ाये; किंतु उन्होंने बालकोचित हठके कारण उसे नहीं छोड़ा। वे वनवासी विहङ्गमोंकी हार्दिक वेदनाका अनुभव न कर सकीं। सुग्गीके लिये पतिका वियोग असह्य हो गया। वह बोली—'अरी! मुझ दुःखिनीको इस अवस्थामें तू पतिसे अलग कर रही है, अतः तुझे भी गर्भिणीकी दशामें पतिसे विलग होना पड़ेगा।' यों कहकर 'राम-राम'का उच्चारण करते हुए सुग्गीने अपने प्राण त्याग दिये। उसे लेनेके लिये एक सुन्दर विमान आया और वह दिव्य रूप धारण करके उस विमानके द्वारा भगवान्के धामको चली गयी। पत्नीके वियोगमें तोतेने भी देह त्याग दिया। वही इस वैरका बदला लेनेके लिये अयोध्यामें धोबीके रूपमें प्रकट हुआ। इस प्रकार विदेहनन्दिनी सीताके जीवनमें आनेवाले विरह दुःखका बीज उसी समय पड़ गया।

विदेहकुमारी सीता क्रमशः बढ़कर सयानी हुईं। राजाने अपनी उस अयोनिजा कन्याके सम्बन्धमें यह निश्चय किया

कि 'जो अपने पराक्रमसे शिवजीके दिये हुए धनुषको चढ़ा देगा और तोड़ डालेगा, उसीके साथ इस कन्याका विवाह करूँगा।' उस धनुषका इतिहास इस प्रकार है—पूर्वकालमें परम पराक्रमी भगवान् शङ्करने यही धनुष उठाकर प्रजापति दक्षके यज्ञका विध्वंस किया। जब यज्ञ नष्ट हो गया तो वे क्रोधमें भरकर बोले—'देवताओ! तुमलोगोंने मुझे इस यज्ञमें भाग नहीं दिया; अतः इस धनुषसे मैं तुम सबके मस्तक काट डालूँगा।' यह सुनकर देवता बहुत डरे और स्तुतिके द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेका यत्न करने लगे। भगवान् आशुतोष ठहरे; उनका रोष कबतक टिकता! उन्होंने प्रसन्न होकर बड़े प्रेमके साथ वह धनुष देवताओंको ही अर्पण कर दिया। वही धनुष जनकके पूर्वज महाराज देवरातके पास धरोहरके रूपमें रक्खा गया था।

सीताजी विवाहके योग्य हो गयी थीं; इसलिये राजर्षि जनकने धनुष-यज्ञके साथ ही सीताके स्वयंवरका आयोजन किया। निमन्त्रण पाकर देश-देशके राजा मिथिलामें आये। राजाने सबको ठहरनेका स्थान दे सबका यथायोग्य सत्कार किया। महर्षि विश्वामित्र भी यज्ञोत्सव देखनेके लिये ऋषि-मुनियोंके साथ मिथिलामें पधारे। उनके साथ श्रीराम और लक्ष्मण भी थे। नगरके बाहर आमोंका एक सुन्दर बगीचा था। वहाँ सब प्रकारके सुभीते थे। विश्वामित्रजीको वही स्थान पसंद आया; अतः वे सबके साथ वहीं ठहर गये। राजा जनकको जब उनके आनेका समाचार मिला तो वे श्रेष्ठ पुरुषों और ब्राह्मणोंको साथ ले उनसे मिलनेके लिये गये। राजाने मुनिके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया और मुनिने प्रसन्न होकर राजाको आशीर्वाद दिया। फिर सारी ब्राह्मणमण्डलीको मस्तक झुकाकर राजाने अपना अहोभाग्य माना। कुशल-प्रश्नके पश्चात् विश्वामित्रने राजाको बिठाया। इतनेहीमें दोनों भाई राम-लक्ष्मण जो फुलवारी देखने गये थे, वहाँ आये उनके आनेपर सब लोग उठकर खड़े हो गये। विश्वामित्र-जीने उन्हें अपने पास बिठा लिया। दोनों भाइयोंको देखकर सबको बड़ा सुख मिला। सबके नेत्रोंमें प्रेम और आनन्दके आँसू उमड़ आये। शरीर रोमाञ्चित हो उठे। श्रीरामचन्द्र-जीकी मनोहारिणी मूर्ति देखकर राजा विदेह (जनक) विशेष रूपसे विदेह हो गये—उन्हें देहकी भी सुध-बुध न रही। तदनन्तर राजाने उनका परिचय पूछा। विश्वामित्रजीने बतलाया—'ये दोनों भाई रघुकुलमणि महाराज दशरथके पुत्र हैं। राजाने इन्हें मेरे हितके लिये भेजा है। इन्होंने ही ताड़का और सुबाहुको मारकर मेरे यज्ञकी रक्षा की है। मार्गमें आते समय गौतमपत्नी अहल्याका भी उद्धार किया है। इन दोनों भाइयोंमें बहुत घनिष्ठ प्रेम है।' परिचय पाकर राजा जनक बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सबको साथ ले जाकर एक सुन्दर महलमें ठहराया, जो सभी ऋतुओंमें सुखदायक था।

तदनन्तर विश्वामित्रजीकी आज्ञा ले राम और लक्ष्मण दोनों भाई नगर देखनेके लिये गये। पुरवासियोंने जब यह समाचार पाया तो वे उन्हें देखनेके लिये सब घर-बार, काम-काज छोड़कर ऐसे दौड़े, मानो दरिद्र मनुष्य खजाना लूटने दौड़े हों। युवती स्त्रियाँ घरके झरोखोंसे झाँकने लगीं। जिसने देखा, वही मोहित हो गयी। घर-घरमें इन्हीं दोनों भाइयों-की चर्चा थी। सब लोग यही कहते कि जानकीजीके योग्य वर तो ये ही हैं। राम और लक्ष्मण क्रमशः नगरके बाजार-हाट, गली, सड़क, चौराहे तथा सुन्दर-सुन्दर मकान देखते हुए पूर्व दिशाकी ओर गये, जहाँ धनुष-यज्ञके लिये भूमि बनायी गयी थी। लंबा-चौड़ा ढाला हुआ पक्का आँगन था; जिसपर सुन्दर वेदी सजायी गयी थी। चारों ओर सोनेके बड़े-बड़े मञ्च थे। राजाओं, पुरवासियों तथा स्त्रियोंके बैठनेके लिये अलग-अलग स्थान बने हुए थे। सब देख सुनकर दोनों भाई लौट आये। रात बीती; प्रभात हुआ और स्नान आदिसे निवृत्त होकर राम और लक्ष्मण मुनिकी आज्ञासे फूल लेनेके लिये चले। उन्होंने जाकर राजा जनकका सुन्दर बाग देखा; जहाँ वसन्त ऋतु लुभाकर रह गयी है। नये-नये पत्तों, फूलों और फलोंसे भरे हुए सुन्दर वृक्ष अपनी सम्पत्तिसे कल्पवृक्षको भी लजा रहे हैं। उद्यानके बीचमें एक सुन्दर सरोवर शोभा पा रहा है, जिसमें मणियोंकी सीढ़ियाँ विचित्र ढंगसे बनी हैं। स्वच्छ निर्मल जल, बहुरंगे कमल, जलपक्षियोंके कलरव और भ्रमरोंके गुंजार उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। बागमें चारों ओर दृष्टि डालकर और मालियोंसे पूछकर वे प्रसन्न मनसे पत्र और पुष्प लेने लगे। इसी समय सीताजी भी वहाँ आयीं। माताने उन्हें पार्वतीजीकी पूजाके लिये भेजा था। उनके साथमें सुन्दरी और सयानी सखियाँ थीं; जो मनोहर वाणीमें गीत गा रही थीं। सरोवरके पास ही गिरिजाजीका मन्दिर शोभा पा रहा था। उसकी मनोहारिणी सुषमा अवर्णनीय थी। सीताजीने सखियोंसहित सरोवरमें स्नान किया और प्रसन्न मन-से वे गिरिजाजीके मन्दिरमें गयीं। वहाँ उन्होंने बड़े प्रेमसे पूजा की और मनके अनुरूप वर माँगा। एक सखी सीताजी-का साथ छोड़कर फुलवारी देखने चली गयी थी। उसने राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको फूल चुनते देखा और प्रेममें विह्वल होकर वह सीताजीके पास आयी। सखियोंने उसकी

दशा देखी। शरीर पुलकित है। नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक रहे हैं। सब कोमल वाणीमें पूछने लगीं—'अरी! बता तो सही, कौन-सी ऐसी निधि मिल गयी, जिससे तू हर्षके मारे फूली नहीं समाती।' उसने कहा—'दो राजकुमार बाग देखने आये हैं। उनकी किशोर अवस्था है और वे सभी दृष्टियोंसे परम सुन्दर, अत्यन्त मनोहर हैं। एकका शरीर साँवला है और दूसरेका गोरा। उनके रूपका वर्णन कैसे करूँ? आँखोंने देखा है, पर वे बोल नहीं सकतीं; वाणी बोल सकती है, पर उसके नेत्र नहीं। यह सुनकर सीताजीके हृदयमें बड़ी उत्कण्ठा हुई। उनकी मनोदशा जानकर चतुर सखियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। एक कहने लगी—'सखी! ये वे ही राजकुमार हैं, जो कल विश्वामित्रजीके साथ आये सुने गये हैं। उन्होंने अपने रूपकी मोहनी डालकर नगरके सभी नर-नारियोंको अपने वशमें कर लिया है। सब लोग जहाँ-तहाँ उन्हींकी छविका वर्णन करते हैं। अवश्य चलकर देखना चाहिये, वे देखने ही योग्य हैं।'

उस सखीकी बात सीताजीको बड़ी प्रिय लगी। दर्शनके लिये उनके नेत्र अकुला उठे। उसी प्यारी सखीको आगे करके सीताजी चलीं। उनके हृदयमें पूर्वकालसे ही जो प्रेम सञ्चित था, उसे कोई नहीं देख पाता था। एक बार नारदजीने सीतासे मिलकर श्रीरामके दर्शन तथा मिलनकी बात बतायी थी। उनके वचनोंका स्मरण करके सीताजीके मनमें पावन प्रेमका उदय हो आया। वे चकित होकर सब ओर इस प्रकार देखने लगीं, मानो कोई डरी हुई छोटी-सी हरिणी हो। जब सखियोंके साथ सीताजी रघुनाथजीके दर्शनके लिये जा रही थीं, उस समय उन सबके कंकण, करधनी और पायजेब आदि गहनोंकी मधुर झनकार होने लगी। उसे श्रीरामचन्द्रजीने सुना; उस मनोहर शब्दकी ओर दृष्टि फेरी, सीताजीका मुखचन्द्र सामने प्रकाशित हो रहा था। उसपर दृष्टि पड़ते ही श्रीरघुनाथजीके नेत्र चकोर बन गये। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये। पलकें नहीं गिरती थीं। सीताजीकी शोभा देखकर श्रीरामजीको बड़ा सुख मिला। सीताजीकी आकृति इतनी अनुपम थी, मानो ब्रह्माजीने अपना सारा सृष्टि-कौशल मूर्तिमान् करके संसारको प्रकट दिखा दिया हो। सीताजीकी शोभा सुन्दरताको भी सुन्दर बनानेवाली है। मानो छविके घरमें दीप-शिखा जल रही है।

इस प्रकार जनकनन्दिनीके सौन्दर्यकी सराहना करके और अपनी दशा विचारकर श्रीरामने लक्ष्मणको सम्बोधित करके पवित्र मनसे कहा—'तात! ये वे ही जनककिशोरी हैं, जिनके लिये धनुषयज्ञ हो रहा है। सखियाँ इन्हें गौरीपूजनके लिये ले आयी हैं। ये इस फुलवारीमें प्रकाश फैलाती फिर रही हैं। इनकी अलौकिक शोभा देखकर मेरा स्वभावसे ही पवित्र मन प्रेमविह्वल हो उठा। इसका क्या कारण है; यह सब तो विधाता जानें; किंतु भाई! मेरे मङ्गलदायक दाहिने अङ्ग फड़क रहे हैं। रघुवंशियोंका यह जन्मगत स्वभाव है कि उनका मन कभी कुपंथपर पाँव नहीं रखता। मुझे तो अपने मनपर पूरा विश्वास है, जिसने स्वप्नमें भी परायी स्त्रीपर दृष्टि नहीं डाली है। रणमें शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते, परायी स्त्रियाँ जिनके मन और दृष्टिको नहीं लुभा पातीं और भिखारी जिनके यहाँसे खाली हाथ नहीं लौटते, ऐसे श्रेष्ठ मनुष्य संसारमें थोड़े हैं।' इस प्रकार श्रीरामजी छोटे भाईसे बातें कर रहे थे; किंतु मन सीताजीके मुखकमलकी छविरूपी मकरन्दका भ्रमरकी भाँति पान कर रहा था। उधर सीताजी चकित होकर चारों ओर देखने लगीं और मन-ही-मन चिन्ता करने लगीं, 'राजकुमार कहाँ चले गये?' तब सखियोंने लताकी ओटमें खड़े हुए दोनों कुमारोंको दिखलाया। श्रीरघुनाथजीका रूप देखकर सीताके नेत्र ललचा उठे। वे इतने प्रसन्न हुए, मानो उन्होंने अपनी खोयी हुई निधि पा ली हो। अधिक स्नेहके कारण शरीरकी सुधि नहीं रह गयी। सीता अपलक नेत्रोंसे श्रीरामको इस प्रकार देखने लगीं, जैसे चकोरी शरत्कालके चन्द्रमाको बे-सुध होकर निहारती हो। उन्होंने श्रीरामकी मनोहर मूर्ति अपने हृदय-मन्दिरमें बिठाकर पलकोंके किवाड़ लगा लिये, आँख बंद करके श्रीरघुनाथजीका ध्यान करने लगीं। उसी समय दोनों भाई लताकुञ्जसे प्रकट हुए मानो दो चन्द्रमा बादलोंका परदा हटाकर निकले हों। उनके नील-गौर शरीर शोभाके भण्डार थे। वे अपने अनुपम सौन्दर्यसे कोटि-कोटि कामदेवको लज्जित कर रहे थे। श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सखियाँ अपने आपको भूल गयीं। एक चतुर सखी धैर्य धारणकर सीताजीका हाथ अपने हाथमें लेकर बोली—'राजकुमारीजी! गिरिजाजीका ध्यान फिर कर लेना। इस समय राजकुमारको देख क्यों नहीं लेतीं।' तब सीताने लजाकर आँखें खोलीं और दोनों कुमारोंको सम्मुख खड़े देखा। नखसे शिखातक श्रीरामकी शोभा निहारकर और पिताका प्रण याद करके उनका मन बहुत क्षुब्ध हो गया।

कुछ देर तो हो ही गयी थी, अतः माताका भय लगा। श्रीरामको हृदयमें रखकर वे लौट चलीं। मृग, पक्षी और वृक्षोंको देखनेके बहाने सीता बार-बार घूमकर श्रीरामजीकी छवि देखती जाती थीं। उनका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। सुख, स्नेह, शोभा और गुणोंकी खान जानकीकी मनोहारिणी छवि भी श्रीरामके हृदय-पटपर अङ्कित हो गयी थी। वे उनकी अनुपम छविकी सराहना करते हुए लौट गये। सीताजी पुनः भवानीके मन्दिरमें गयीं और उनके चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर स्तुति करने लगीं, पार्वतीजी सीताके विनय और प्रेमके अधीन हो गयीं। उन्होंने मुसकराकर सीताको प्रसादमाला अर्पण की और कहा—'जनककिशोरी! मैं आशीर्वाद देती हूँ, तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही वर तुम्हें मिलेगा।' गौरीजीका यह वचन सुनकर जानकीसहित सब सखियोंको बड़ा हर्ष हुआ। सीताने बार-बार भवानीका पूजन किया और वे प्रसन्न मनसे राजमहलको लौट गयीं।

सीताजीका स्वयंवर आरम्भ हुआ। देश-देशके राजा, राजकुमार, विद्वान् ब्राह्मण, ऋषि, मुनि, नगरवासी, देशवासी, स्त्री-पुरुष—सभी अपने-अपने लिये नियत यथायोग्य स्थानपर बैठ गये, स्वयंवरमें भाग लेनेवाले राजाओंके मञ्च बहुत सजे-सजाये और सुन्दर थे। श्रीराम और लक्ष्मण भी विश्वामित्रजीके साथ एक ऊँचे मञ्चपर विराजमान थे। राजा जनकने मन्त्रियोंको आज्ञा दी, 'चन्दन और मालाओंसे सुशोभित वह दिव्य धनुष यहाँ ले आओ।' वह धनुष आठ पहियोंवाली लोहेकी बहुत बड़ी संदूकमें रखा था। उसे मोटे-ताजे पाँच हजार आदमी किसी तरह ठेलकर वहाँ ला सके। अवसर जानकर जनकजीने सीताजीको बुला भेजा। चतुर और सुन्दर सखियाँ आदरपूर्वक उन्हें लिवा लायीं। वे मनोहर वाणीसे गीत गा रही थीं। सीताजीकी शोभा अवर्णनीय थी। उन्होंने ज्यों ही रङ्गभूमिमें पैर रखा, उनका दिव्यरूप देखकर सभी स्त्री-पुरुष मोहित हो गये। इसके बाद जनककी आज्ञासे भाटोंने उनके प्रणकी घोषणा इस प्रकार की—'राजाओ! आपलोग महाराज जनककी प्रतिज्ञा सुनें। आपके सामने शिवजीका कठोर धनुष रखा हुआ है। आपमेंसे जो भी इसे तोड़ देगा, उसे त्रिभुवनविजयका सुयश मिलेगा तथा राजकुमारी सीता उसका वरण करेगी।' प्रण सुनकर सब राजा ललचा उठे। जिन्हें अपनी वीरताका अभिमान था, वे बड़े जोरसे शिवजीका धनुष तोड़ने चले; किंतु तोड़ना तो दूर रहा, वे धनुषको हिला भी न सके। सब लोग हार मानकर बैठ गये। यह देखकर राजा जनकको बड़ा दुःख हुआ। वे कहने लगे—'आपलोगोंमेंसे जो लोग अपनेको वीर मानते हों, वे मेरी बात सुनकर नाराज न होंगे। आज मुझे निश्चय हो गया कि पृथ्वी वीरोंसे खाली है। अब आशा छोड़कर आपलोग अपने-अपने घर पधारें। विधाताने सीताका विवाह लिखा ही नहीं है।'

जनकजीकी यह बात लक्ष्मणको बहुत बुरी लगी। उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं। ओठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने श्रीरामके चरणोंमें मस्तक झुकाकर कहा—'मैं समूचे ब्रह्माण्डको गेंदकी तरह उठा लूँगा, कच्चे घड़ेकी तरह फोड़ डालूँगा। इन भुजाओंमें मेरु पर्वतको मूलीकी भाँति टुकड़े-टुकड़े कर देनेकी शक्ति है। इस पुराने धनुषमें क्या रखा है। इस सभामें रघुवंशशिरोमणि श्रीरामजीके रहते हुए जनकजीने जो बात कही है, वह कदापि उचित नहीं है।' लक्ष्मणजीके ये वीरोचित उद्गार सुनकर पृथ्वी डगमगा उठी। दिग्गज काँपने लगे। समस्त राजा डर गये। सीताजीके हृदयमें हर्ष हुआ और जनकजी सकुचा गये। तब विश्वामित्रजीकी आज्ञासे श्रीरामजी धनुषके समीप गये। सब स्त्री-पुरुष उनकी सफलताके लिये देवी-देवताओंको मनाने लगे। उन्होंने मन-ही-मन गुरुको प्रणाम करके बड़ी फुर्तीसे धनुष उठा लिया। उनके हाथमें वह धनुष बिजलीकी तरह चमक उठा; फिर खींचनेपर आकाशमें मण्डलाकार दिखायी देने लगा। श्रीरामने धनुषको कब उठाया, कब चढ़ाया और कब खींचा; इसका किसीको पता न लगा। सबने श्रीरामजीको धनुष खींचे खड़े देखा। उसी क्षण उन्होंने धनुषको बीचसे तोड़ डाला और दोनों टुकड़े पृथ्वीपर डाल दिये। आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभी बज उठी; अप्सराएँ नाचने और गाने लगीं। रंग-बिरंगे फूलोंकी वर्षा होने लगी। सारे ब्रह्माण्डमें जय-जयकारकी ध्वनि छा गयी। तब शतानन्दजीकी आज्ञासे सीताजी जयमाल हाथमें लिये श्रीरामचन्द्रजीके समीप गयीं। साथमें सुन्दरी और सयानी सखियाँ मङ्गलाचारके गीत गाती जा रही थीं। निकट पहुँचकर श्रीरामजीकी शोभा निहारकर वे चित्रलिखी-सी रह गयीं। चतुर सखीने उनकी यह दशा देखकर कहा—'राजकुमारी! जयमाल पहनाइये।' सीताजीने दोनों हाथोंसे माला उठायी; पर प्रेमसे विह्वल होनेके कारण वह पहनायी नहीं जाती थी। सखियाँ मङ्गल गाने लगीं और सीताने श्रीरामजीके गलेमें माला डाल दी।

उपस्थित हो गये। उन्होंने कहा—'भद्रे! मैं तुम्हारी मन्त्र-शक्तिसे विवश होकर आया हूँ। आज्ञा दो, मैं क्या करूँ?'

कुन्तीने प्रणाम करके प्रार्थना की—'आप अपने धामको पधारें। मैंने कुतूहलवश आपको बुलाया था। मेरा अपराध क्षमा करें।'

भगवान् सूर्यने कहा—'देवताका आना व्यर्थ नहीं होना चाहिये। मुझे देखकर तुम्हारे मनमें यह भाव आया था कि मेरे इन कुण्डलों तथा कवचसे भूषित अतुल पराक्रमी पुत्र हो। अतः मैं तुम्हें ऐसा ही पुत्र प्रदान करूँगा।'

'मैं कन्या हूँ। मेरे माता-पिता जीवित हैं, इस शरीरपर उनका अधिकार है। सदाचार ही लोकमें श्रेष्ठ है और वह है—अनाचारसे शरीरको बचाये रखना। आप मेरे अपराधको क्षमा करके लौट जायें।' कुन्तीने भीत होकर प्रार्थना की। भगवान् सूर्यने समझाया कि उनकी बात स्वीकार करके भी उसका कन्याभाव नष्ट नहीं होगा। वह सती ही रहेगी। कुन्तीने इसपर सूर्यनारायणकी बात स्वीकार कर ली। भगवान् सूर्यने योगशक्तिसे उसके उदरमें अपना अंश स्थापित किया। उसके कन्याभावको दूषित नहीं किया।

अन्तःपुरमें केवल एक धायको पता था कि पृथा गर्भवती हैं। यथासमय देवताओंके समान कान्तिमान् बालक उत्पन्न हुआ। उसके शरीरपर स्वर्णकवच तथा कानोंमें दिव्य कुण्डल थे। पृथाने धात्रीकी सलाहसे एक पिटारीमें कपड़े बिछाये, ऊपरसे मोम चुपड़ दिया। उसीमें नवजात शिशुको लिटाकर ढक्कन लगा दिया। पिटारीको अश्वनदीमें छोड़ते हुए रोकर विदीर्ण होते हृदयसे माता कुन्तीने कहा—'बेटा! सभी जल, स्थल, नभके प्राणी तेरी रक्षा करें। तेरा मार्ग मङ्गलमय हो। शत्रु तुझे विघ्न न दें। सभी लोकपाल तेरी रक्षा करें। तू कभी कहीं भी मिलेगा तो इस कवच और कुण्डलोंसे मैं तुझे पहचान लूँगी।'

वह पिटारी अश्वनदीसे चर्मण्वती (चम्बल), उससे यमुनामें होती गङ्गामें पहुँची। चम्पापुरीमें सूत अधिरथने उसे पकड़ा और उसमेंसे निकले हुए बालकको पुत्र मानकर पालन-पोषण किया। वही बालक वसुषेण महारथी कर्णके नामसे प्रख्यात हुआ। दूतोंद्वारा कुन्तीको पता लग गया था कि उनका पुत्र सूतद्वारा पाला जा रहा है। लोकलज्जाके भयसे उन्होंने इस रहस्यको प्रकट नहीं किया।

× × ×

सुन्दरी पृथाके लिये महाराज कुन्तिभोजने अनेक राजाओंसे प्रार्थना की। स्वयंवर हुआ और महाराज पाण्डुके गलेमें जयमाल पड़ी। कुन्तीको लेकर वे हस्तिनापुर आये। आखेटमें मृगवेषधारी ऋषिकुमार किन्दमपर पाण्डुने बाण चला दिया। मरते समय ऋषिपुत्रने अपना रूप प्रकट करके शाप दे दिया—'तुमने सहवास करते मृगपर बाण छोड़ा, अतः पत्नीके साथ सहवास करते समय तुम्हारी मृत्यु होगी।'

विरक्त होकर महाराजने संन्यास लेनेका निश्चय किया, किंतु कुन्ती देवीके आग्रहसे पत्नियोंके साथ वनमें तपस्वी जीवन व्यतीत करना उन्होंने स्वीकार कर लिया। सन्तान न होनेसे पुरुष पितृ-ऋणसे उऋण नहीं होता, यह सोचकर महाराज दुखी रहते थे। ऋषियोंने उन्हें देवांशसे पाँच पुत्रोंकी प्राप्तिका वरदान दिया था। ऋषिवाक्य सत्य होने चाहिये, यह सोचकर उन्होंने एक दिन कुन्तीसे कहा—'भद्रे! तुम सन्तति-प्राप्तिके लिये कोई यत्न करो।'

'आपकी आज्ञा होनेपर मैं जिस देवताका आह्वान करूँगी, उसीसे मुझे सन्तान होगी। आप आज्ञा दें, किस देवताका सङ्कल्प करूँ?' दुर्वासाजीद्वारा मन्त्र-प्राप्तिका वर्णन सुनाकर कुन्तीजीने पूछा।

'मुझे धर्मात्मा पुत्र चाहिये। धर्मात्मा सन्तति कुलको पवित्र कर देती है। तुम धर्मराजके उद्देश्यसे मन्त्रका जप करो!' महाराजने आदेश दिया। आज्ञाका पालन हुआ। फलतः धर्मराजके अंशसे युधिष्ठिरका जन्म हुआ।

'क्षत्रिय जाति बलप्रधान है। परम बलवान् सन्ततिकी मैं कामना करता हूँ।' कुछ दिनों पश्चात् महाराजने पुनः आज्ञा की। इस बार कुन्तीने वायुदेवताके उद्देश्यसे जप किया। पवनके अंशसे उन्हें भीमसेन-जैसे-पराक्रमी पुत्रकी प्राप्ति हुई।

'मैंने देवराजको प्रसन्न कर लिया है, तुम उनका स्मरण करो।' पाण्डुने सर्वश्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिके लिये एक पैरसे सूर्यके सम्मुख खड़े होकर उग्र तपस्या करके महेन्द्रको प्रसन्न कर लिया था। पतिकी आज्ञासे कुन्ती देवीने भी एक वर्षतक व्रत एवं विशेष नियमोंका पालन किया था। महाराजके आदेशसे पृथाके आह्वान करनेपर देवराज पधारे। उनके अंशसे परम पराक्रमी नरके अवतार अर्जुनका जन्म हुआ।

छोटी रानी माद्रीके अनुरोध करनेपर महाराजने पृथाको आदेश दिया, 'कल्याणि! माद्रीको भी सन्तति प्रदान करो!'

पतिकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने माद्रीसे किसी देवताका ध्यान करनेको कहा। माद्रीके ध्यान करनेपर

अश्विनीकुमारोंके अंशसे यमज नकुल और सहदेवकी उत्पत्ति हुई।

एकान्तमें पर्वतपर माद्रीके साथ घूमते हुए पाण्डु अपनेको संयमित न रख सके। फलतः उनका शरीरान्त हो गया। बड़ी रानी होनेके कारण सती होनेका अधिकार कुन्तीजीको था, किन्तु माद्रीका अनुरोध स्वीकार करके उन्होंने आजीवन पति-वियोगका कष्ट स्वीकार किया। माद्रीके सती हो जानेपर अपने और माद्रीके पुत्रोंका सर्वथा समान भावसे उन्होंने पालन किया। उस वनके तपस्वियोंने पाण्डुके पुत्रों तथा पत्नीको धृतराष्ट्रके समीप पहुँचा देना आवश्यक समझा। कुन्तीदेवी तपस्वियोंके साथ हस्तिनापुर आयीं। धृतराष्ट्रके आदेशसे यहीं पाण्डु एवं माद्रीकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हुई।

× × ×

दुरात्मा दुर्योधनके कारण पाण्डवोंपर अनेक आपत्तियाँ आयीं। उसने भीमसेनको विष दे दिया और बाँधकर जलमें फेंक दिया। इससे भीमके बच जानेपर सभी पाण्डवोंको मार डालनेकी इच्छासे वारणावत नगरमें लकड़ी, लाख, तैलके संयोगसे इस प्रकारका भवन बनाया जो अग्निसे तुरंत भस्म हो जाय। धृतराष्ट्र अपने पुत्रसे सहमत थे। उन्होंने माताके साथ पाण्डवोंको वारणावत जानेकी आज्ञा दे दी। विदुरजीको कौरवोंके इस षड्यन्त्रका पहले ही पता लग गया था। उन्होंने उस भवनसे वनतक एक सुरंग बनवा दी थी। जाते समय युधिष्ठिरको संकेतसे उन्होंने सब बातें समझा दीं।

दुर्योधनका सेवक पुरोचन लाक्षा-भवनपर अग्नि लगानेको नियुक्त था। एक वर्ष पाण्डव वहाँ रहे। एक दिन रात्रिमें स्वयं अग्नि लगाकर वे माताके साथ सुरंगसे वनमें चले गये। पुरोचन उसी अग्निमें भस्म हो गया। दैवात् पाण्डवोंसे अन्न लेने एक भील-स्त्री अपने पाँच पुत्रोंके साथ उसी दिन आयी थी। सुरापानके कारण वे उसी भवनमें अनजाने सोते रह गये थे। उनके जले शवोंको देखकर लोगोंने समझ लिया कि माताके साथ पाण्डव अग्निमें जल गये।

वहाँसे बचकर घूमते हुए पाण्डव एकचक्रा-नगरी पहुँचे। वहाँ ब्राह्मण-वेशमें एक ब्राह्मणके घर वे ठहर गये। एक दिन चारों भाई कंद-मूल लाने वनमें गये थे, केवल भीमसेन माताके पास थे। उसी समय उस घरके लोगोंको करुण-क्रन्दन करते सुनकर माताने कहा—'बेटा! हमलोग ब्राह्मणके घरमें रहते हैं। ये हमारा सत्कार करते हैं। मैं बराबर इनका कोई उपकार करनेकी बात सोचा करती हूँ। आज इनपर कोई विपत्ति आयी जान पड़ती है। यदि इनकी कुछ सहायता हो सके तो हम इनके ऋणसे उऋण हो जायँ।'

भीमसेनने उत्तर दिया—'मा! पता लगाओ। कठिन-से-कठिन कार्य करके भी हम ब्राह्मणकी सेवा करेंगे।'

कुन्तीने जाकर छिपकर देखा, घरका प्रत्येक सदस्य—ब्राह्मण, उसकी पत्नी तथा पुत्री—दूसरेकी रक्षाकी आवश्यकता बताकर अपनेको किसी राक्षसकी भेंट करनेकी बात कर रहे हैं। सभी रो रहे हैं। सभी अपना बलिदान करनेको उत्सुक हैं। सभी अपनेको अनावश्यक तथा दूसरोंको आवश्यक सिद्ध करना चाहते हैं। एक छोटा बच्चा सबके पास जाकर तोतली वाणीमें कह रहा है कि मुझे राक्षसके पास भेज दो। मैं उसे मार डालूँगा।

'आपके दुःखका कारण क्या है? हो सका तो मैं उसे दूर करनेका प्रयत्न करूँगी।' कुन्तीदेवीका हृदय इस दृश्यसे द्रवित हो गया था। उन्होंने प्रकट होकर पूछा। ब्राह्मणने बताया कि बक नामक कोई राक्षस समीप ही रहता है। उसके लिये दो-एक गाड़ी अन्न तथा दो भैंसे प्रतिदिन दिये जाते हैं। जो यह सामग्री लेकर जाता है, उसे भी वह खा जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो पता नहीं ग्रामके कितने लोगोंको वह खा जाय। प्रत्येक घरके लोग बारी-बारीसे अन्न ले जाते हैं। आज ब्राह्मणकी बारी है। किसी न-किसी घरके सदस्यको राक्षसका भक्ष्य बनना होगा। कुटुम्बमें किसीको घरपर रहना स्वीकार न होनेके कारण ब्राह्मणने सपरिवार राक्षसके यहाँ जाना निश्चित किया है, यह भी बताया।

'आप शोक छोड़ दें। राक्षससे छुटकारेका उपाय मेरे पास है। आपके एक ही पुत्र है और एक ही कन्या है। आपमेंसे किसीका जाना उचित नहीं। मेरे पाँच पुत्र हैं। उनमेंसे एक राक्षसका भोजन लेकर चला जायगा।' कुन्ती-देवीने दृढ़ स्वरमें कहा।

'हरे, हरे, मैं इस नश्वर शरीरके लिये अतिथिका नाश कभी न होने दूँगा। मैं आत्महत्या तो कर नहीं रहा हूँ। वह राक्षस मुझे पत्नीके साथ भले खा ले, परन्तु अपने घरमें एक अतिथि ब्राह्मणका बलिदान कभी नहीं करूँगा। इसे अपने धर्मका ज्ञान है। आपका त्याग, कुलीनता एवं धर्म प्रशंसनीय हैं, परंतु मैं अपने धर्मका नाश न करूँगा।' वह धर्मात्मा ब्राह्मण इस प्रस्तावसे ही काँप गया।

'मैं ब्राह्मणकी रक्षा करनेका दृढ़ निश्चय कर चुकी हूँ।

आप निश्चिन्त रहें । राक्षस चाहे जितना बलवान् हो, वह मेरे पराक्रमी मन्त्रसिद्ध पुत्रका कोई अनिष्ट न कर सकेगा। मेरे पुत्रके हाथों अनेक विशालकाय राक्षस मारे जा चुके हैं। आपसे केवल इतनी प्रार्थना है कि इस बातको गुप्त रक्खें। लोग मेरे पुत्रोंको पीछे तग न करें, यह मैं चाहती हूँ।' कुन्तीजीके दृढ़ निश्चयके सामने ब्राह्मणको झुकना पड़ा। भीमसेन अन्न लेकर गये। वहाँ जाकर गाड़ीमे जुते भैंसोंको तो पीटकर उन्होंने गाँवमें भगा दिया और अन्नका स्वयं प्रसाद पा लिया। राक्षस बक लाल-पीला होता आया सही, किंतु युद्धमें पछाड़कर वृकोदरने उसे सीधे यमलोक भेज दिया। माता कुन्तीकी कृपासे उस गाँवके निवासियोंकी विपत्ति सदाके लिये दूर हो गयी।

यहींसे पाण्डव पाञ्चाल गये। स्वयंवरमें अर्जुनने द्रौपदी-को प्राप्त किया। 'मा! हम एक भिक्षा लाये हैं।' राजकुमारीको लाकर अर्जुनने कहा। बिना देखे ही माताने भीतरसे कह दिया—पाँचो भाई उसे काममे लो!' फलतः पाञ्चाली पाचों भाइयोंकी पत्नी हुई। पता लगनेपर धृतराष्ट्रने विदुरको भेजकर पाण्डवोंको बुला लिया। आधा राज्य देकर इन्द्रप्रस्थ उनकी राजधानी कर दी। माताके साथ पाण्डवों-का वहाँ निवास हुआ।

× × ×

कैटभारि पाण्डवोंकी ओरसे शान्तिदूत होकर पधारे। दुर्योधनने स्पष्ट कह दिया कि युद्धके बिना सूईकी नोक रखने-भर भूमि न दूँगा। जब श्रीकृष्ण पुनः विराटनगर लौटने लगे तो माता कुन्तीने अपने पुत्रोंके लिये सदेश दिया—'युधिष्ठिर! क्षत्रियोंको बाहुबलसे आजीविका चलानी चाहिये। राजासे सुरक्षित रहकर प्रजा जो धर्म करती है, उसका चतुर्थांश राजाको प्राप्त होता है। दण्डनीतिका ठीक प्रयोग करके लोगोंको वह धर्ममार्गमें प्रवृत्त करता है। तुम जिस सन्तोषको लिये बैठे हो, उसे तुम्हारे पिता-पितामहने कभी आदर नहीं दिया। यह याचना तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं। भिक्षा ब्राह्मण माँगते हैं, वैश्य कृषि-वाणिज्यसे और शूद्र सेवासे आजीविका चलाते हैं। तुम क्षत्रिय हो, भुजबलसे राज्य प्राप्त करो। यही तुम्हारी धर्मसम्मत आजीविका है। तुम-सा पुत्र पाकर भी मैं दूसरोंके टुकड़ोंपर आश्रित हूँ, यह कितने कष्टकी बात है।'

द्यूतमें हारकर पाण्डवोंके वन जानेपर माता कुन्ती विदुरजीके यहाँ रहती थीं। वे अपना पूरा समय भजन, पूजन तथा व्रतोंमें व्यतीत करती थीं। उनका रहन-सहन अत्यन्य सादा था। अपने सब कार्य वे स्वयं कर लिया करती थीं। उन्होंने श्रीकृष्णको विदुलाका आख्यान सुनाकर फिर कहा—''अर्जुनसे कहना कि उससे मुझे बड़ी-बड़ी आशाएँ

हैं। आकाशवाणीने उसके जन्मके समय कहा था कि 'वह इन्द्रके समान पराक्रमी होगा। भीमके साथ रहकर शत्रुओंका जय करेगा। सारे कौरवोंको मारकर पितृराज्य प्राप्त करेगा।' मेरी इच्छा है कि देवताओंकी वाणी सत्य हो। क्षत्राणियाँ जिस कामके लिये पुत्र उत्पन्न करती हैं, उसका समय आ गया।''

श्रीकृष्णसे उन्होंने पुत्रोंको उत्साहित करने तथा रक्षा करनेका अनुरोध किया।

× × ×

'बेटा! कर्णको भी जलाञ्जलि दो!' युद्धमें मारे गये सभी स्वजनोंको धर्मराज तिलाञ्जलि दे रहे थे। रोती हुई माता कुन्तीने उनसे अनुरोध किया।

'मा! वह सूतपुत्र सदा हमसे द्वेष करता रहा। वह हमारे गोत्रका भी नहीं। हम उसे जल नहीं देंगे।' युधिष्ठिरने अस्वीकार किया।

'तुम नहीं जानते, वे महाभाग तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता थे।' कुन्तीने कर्णके जन्मका परिचय दिया।

'हाय! हम यह पहले जानते तो इतना अनर्थ क्यों होता? हम उनके चरणोंमें सिंहासन निवेदित करके स्वय सेवक बने रहते। हमने अपने ही ज्येष्ठ भ्राताको मार डाला! मा! तूने यह बात मुझसे क्यों नहीं कही?' धर्मराज अत्यन्त शोकार्त होकर रोते हुए बार-बार पूछने लगे।

'पुत्र ! युद्ध आरम्भ होनेसे पूर्व ही मैं उस सूर्यनन्दनके समीप गयी थी । वे उस समय जलमें खड़े होकर सन्ध्या कर रहे थे । उन्होंने अपनेको अधिरथका पुत्र कहकर मुझे प्रणाम किया । मैंने उन्हें बताया कि वे मेरे पुत्र हैं । भगवान् सूर्यने स्पष्ट वाणीमें मेरा समर्थन किया । मैंने अनुरोध किया कि वे पाण्डवोंके पक्षमें आ जायँ । हाय ! मेरे पुत्रने अधिरथके उपकारोंका स्मरण करके इस सत्यको स्वीकार करके भी मानना नहीं चाहा । उसने किसी भी प्रकार दुर्योधनका पक्ष छोड़ना स्वीकार नहीं किया । उसने मुझसे वचन ले लिया कि मैं इस बातको छिपाये रहूँगी । माताका आदर करनेके लिये उसने प्रतिज्ञा की कि युद्धमें अर्जुनके अतिरिक्त किसी पाण्डवको मारनेमें समर्थ होकर भी वह नहीं मारेगा । अपनी प्रतिज्ञाका अन्ततक उसने निर्वाह किया ।' माता कुन्तीने रोते हुए बताया ।

'माता ! तुमने यह बात छिपाकर हमारे हाथों बहुत बड़ा अनर्थ करा डाला । मैं शाप देता हूँ कि अबसे स्त्रियाँ कोई बात छिपा नहीं सकेंगी ।' शोकार्त धर्मराजने शाप दिया । विधिपूर्वक उन्होंने कर्णकी अन्त्येष्टि क्रिया की ।

× × ×

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥

'हे जगद्गुरु ! हे सर्वेश्वर ! मुझपर बार-बार विपत्तियाँ आवें । क्योंकि उनमें आपका दर्शन, स्मरण होता है, जो मोक्षको देनेवाला है ।' माता कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे यह वरदान माँगा, जब वे हस्तिनापुरसे युद्धकी समाप्तिके पश्चात् द्वारका जाने लगे । विपत्तिका वरदान ! माता कुन्तीने बराबर विपत्तियोंमें रहकर यह अनुभव कर लिया था कि भगवान्का सच्चा स्मरण विपत्तिमें ही होता है ।

राज्य प्राप्त करके पाण्डवोंने धृतराष्ट्रका वही सम्मान रक्खा जो पहले था । धृतराष्ट्रकी आज्ञासे ही वे सब कार्य करते थे । पन्द्रह वर्षोंतक पाण्डवोंने धृतराष्ट्रके संरक्षणमें राज्यकार्य किया । कुन्तीजीने सदा गान्धारीके अनुकूल आचरण किया और उनकी सेवामें लगी रहीं । अन्तमें धृतराष्ट्रने वनमें सपत्नीक रहकर तपस्या करनेका निश्चय किया । महर्षि व्यासके समझानेपर युधिष्ठिरने उनके वनवासके लिये सम्मति दे दी । अन्तमें पुत्रोंका श्राद्ध करके धृतराष्ट्र वनको चले । पाण्डव, सभी पाण्डवोंकी पत्नियाँ और परिजन पहुँचाने चले । माता कुन्ती गान्धारीका हाथ पकड़े आगे-आगे चल रही थीं । युधिष्ठिर, भीम आदिने मातासे लौटनेके लिये बहुत प्रार्थना की, पर कुन्ती अपने निश्चयपर अटल रहीं ।

धृतराष्ट्र तथा गान्धारीने भी कुन्तीको लौटनेका आदेश दिया, अनेक प्रयत्न किये, किंतु असफल हुए । सती कुन्ती वनवासका निश्चय कर चुकी थीं । गान्धारी उन्हें किसी प्रकार लौटा न सकीं । वनमें कुशकी चटाईपर गान्धारीके पास माता कुन्ती रात्रिमें सो रहती थीं । वही जल तथा कन्द-मूल लाती थीं । आश्रम भी वही स्वच्छ करती थीं । सब प्रकारसे वे धृतराष्ट्र तथा गान्धारीकी सावधानीपूर्वक सेवा करती थीं । स्वयं अनेक प्रकारके व्रत-उपवास किया करती थीं । तीनों समय स्नान करके पतिका स्मरण करतीं । इस प्रकार वनमें अपना समय वे व्यतीत करने लगीं ।

वनमें युधिष्ठिर एक बार सपरिवार पूरे समाजके साथ मातृदर्शनके लिये पधारे । इसी समय वहाँ भगवान् व्यास भी आये । धृतराष्ट्रने भगवान् व्याससे अपने मृत पुत्रोंको देखनेकी इच्छा प्रकट की । माता कुन्तीने भी कर्णको देखना चाहा । योगबलसे व्यासजीने सभी मृत पुरुषोंको दिखा दिया । पूरी रात्रि वे मृतजन पाण्डवोंके साथ मिलते-जुलते तथा क्रीड़ा करते रहे । प्रातः गङ्गामें वे अदृश्य हो गये । भगवान् व्यासने आदेश दिया—'जो स्त्रियाँ पतियोंके साथ जाना चाहें, वे गङ्गामें डुबकी लगा लें ।'

पाण्डवोंके हस्तिनापुर लौट आनेपर कुन्तीजी गान्धारी तथा धृतराष्ट्रके साथ हरिद्वार चली गयीं। वहाँ कठोर व्रतों-का तीनों आचरण करने लगे। एक दिन वनमें दावाग्नि लगी देख तीनोंने आसन लगाया। योगके द्वारा प्राण निरोध करके उन्होंने शरीर छोड़ दिया। उनका वह शरीर दावाग्नि-की भेंट हो गया। —सु० सिं०

सती माद्री

मद्रदेशके महाराज शल्यकी भगिनी माद्री अत्यन्त रूपवती एवं सुशीला थीं। भीष्मपितामहने मद्रराजके पास सन्देश भेजा और उसे स्वीकार करके महाराज शल्यने अपनी बहिनका विवाह पाण्डुके साथ कर दिया। राजा पाण्डुका इससे पूर्व ही एक विवाह कुन्तिभोजनरेशकी कन्या कुन्तीसे हो चुका था। एक दिन आखेट करते हुए पाण्डुने एक मृगपर बाण चलाकर उसे मार डाला। मृग उस समय मृगीसे सहवास कर रहा था। मरते समय मृग सहसा ऋषिकुमारके रूपमें परिवर्तित हो गया। अब पाण्डुको पता लगा कि उन्होंने ऋषि-पुत्र किन्दमको भूलसे मार दिया है। पाण्डुको ऋषिपुत्रने शाप दिया कि 'तुमने मृग समझकर भी सहवासके समय मुझे मारनेकी नृशंसता की है, अतः पत्नीसे सहवास करते समय ही तुम्हारी मृत्यु होगी।'

शापको सुनकर पाण्डुको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने संन्यास लेकर तपस्या करनेका निश्चय किया। पाण्डुकी दोनों पत्नियोंने प्रार्थना की कि संन्यास न लेकर वानप्रस्थ-आश्रममें रहते हुए ही महाराज तपस्या करें और इस प्रकार उन दोनों-को भी उनके सान्निध्यमें रहकर तपस्या करनेका अवकाश दें। पाण्डुने इसे स्वीकार कर लिया। सेवकोंको उन्होंने अपने सम्पूर्ण वस्त्राभरण दे दिये और अपनी सब सम्पत्ति तथा राज्य धृतराष्ट्रको देनेका आदेश देकर विदा कर दिया। कन्द-मूल खाकर ऋषियोंके आश्रममें वे तपस्वियोंका जीवन व्यतीत करने लगे।

पाण्डुके आदेशपर कुन्तीजीने क्रमशः धर्म, वायु और इन्द्रका आह्वान किया और उनसे युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन हुए। माद्रीने भी पतिसे सन्तानकी प्रार्थना की।

'शुभे! मेरी प्रसन्नताके लिये तुम माद्रीको भी सन्तति दो।' पाण्डुने कुन्तीसे अनुरोध किया।

'बहिन! तुम केवल एक बार किसी देवतासे पुत्र पा सकती हो। भली प्रकार सोचकर उस देवताका ध्यान करो!' माद्री-ने अश्विनीकुमारोंका ध्यान किया। कुन्तीके मन्त्र-प्रभावसे देवता पधारे और दोनों अश्विनीकुमारोंके अंशसे माद्रीको यमज नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए।

प्रारब्धको कोई टाल नहीं सकता। एक दिन महाराज पाण्डु वनमें घूम रहे थे। एकाकिनी माद्री उनके साथ थी। शाप विस्मृत हो गया। मन संयमसे बाहर हो गया। उन्होंने माद्रीका आलिङ्गन किया। पत्नीने पृथक् होनेकी बहुत चेष्टा की। पतिको बहुत समझाया। रोई, प्रार्थना की। कोई लाभ न हुआ। अन्ततः शाप सफल हुआ। पाण्डुका शरीर निष्प्राण हो गया।

'बच्चोंको वहीं छोड़कर अकेली आओ! माद्रीके आर्त-नादको सुनकर पुत्रोंके साथ कुन्ती दौड़ी आ रही थीं। माद्रीने पुकारकर उन्हें सचेत किया। समीप आनेपर कुन्तीने जो कुछ देखा, उससे वे व्याकुल हो गयीं।

'अच्छा उठो! बच्चोंको सम्हालो। मैं बड़ी पत्नी हूँ महाराजकी, अतः मैं उनके साथ सती होऊँगी।' कुन्तीने कहा।

'बहिन! मैं तुमसे छोटी हूँ। मेरा इतना अनुरोध मानो और यह अधिकार मुझे दो! मैं अनुभवहीन हूँ। युवती हूँ। संसारमें संयमपूर्वक रहते हुए शिशुओंका पालन मेरे लिये अत्यन्त कठिन है। मेरी ही आसक्तिके कारण महाराजको शरीर छोड़ना पड़ा है, अतः उनकी सेवामें मुझे शीघ्र ही उपस्थित होना चाहिये। मेरे बच्चोंका पालन भी तुम अपने बच्चोंके समान ही करना।' कुन्तीको माद्रीका यह आग्रह स्वीकार करना पड़ा। काष्ठ-चयनके बाद चिता निर्मित हुई। उसी प्रकार पतिके शरीरको आलिङ्गन किये हुए ही माद्रीने अपनी आहुति चितानलमें दे दी। पाण्डुके साथ माद्रीकी अस्थियाँ भी ऋषियोंने हस्तिनापुर पहुँचायी। महाराज धृतराष्ट्रने विधि-पूर्वक बड़े समारोहसे दोनोंकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की।

—सु० सिं०

वेदवती

कलप भेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥

'मा! मैं आपके समान ही रूप-गुण-सम्पन्ना पुत्री चाहता हूँ।' महाराज कुशध्वजने उन कमलहस्ता, कमलासना शोभामयीको देखा और एकटक देखते रह गये। अपनी उग्रतर तपस्यासे उन्होंने 'विश्वोद्भवस्थितिसंहारकारिणी' महालक्ष्मीको प्रसन्न कर लिया था। वरदान माँगनेका आदेश होनेपर उन्होंने उनको ही पुत्रीरूपसे माँगा।

'एवमस्तु! मेरे समान तो और कौन हो सकता है, मैं ही अंशरूपसे तुम्हारी पुत्री बनूँगी।' बादलोंमें विद्युत्की भाँति वह दिव्य मूर्ति इतना कहकर लीन हो गयी। महाराजने पृथ्वीपर मस्तक रक्खा। भवन लौट आये। समयपर महारानी सगर्भा हुईं।

'ॐ गणानात्वा गणपतिं—'सहसा सूतिकागृह सस्वर वेदमन्त्रकी ध्वनिसे गूँज उठा। परिचारिकाओं एवं धात्रियोंने चौंककर इधर-उधर देखा। महारानी मालावती यह जानकर आनन्दविभोर हो गयी कि उनकी नवजात नन्ही बालिका ही वेदमन्त्रोंका स्वरसहित गान कर रही है। बालिकाका नाम इसी निमित्तको लेकर वेदवती रखा गया।

'मा! मैं तपस्या करने जाऊँगी।' वह कोई सामान्य बालिका नहीं थी। कुछ क्षणोंमें ही वह पाँच-छः वर्षके बच्चे-जितनी बड़ी हो गयी। उसने सूतिकागृहसे निकलकर स्नान किया। दिव्य वस्त्र धारण किया। वनमें जानेका निश्चय करके उसने माता-पितासे आज्ञा माँगी। अपने आराध्य हृदयेशसे पृथक् होकर उन सिन्धुजाके लिये एक क्षण भी रहना कल्पके समान प्रतीत हुआ। तपस्या करके श्रीहरिको प्राप्त करनेके लिये वे व्याकुल हो गयीं। दृढ़ निश्चयको कौन रोक सकता है। हृदयको वज्र बनाकर महाराज तथा महारानीने पुत्रीको रोते हुए विदा किया।

'जन्मान्तरमें श्रीनारायणको तुम पतिरूपसे प्राप्त करोगी।' पूरे एक मन्वन्तरके कठोर तपके पश्चात् आकाशवाणी हुई। तपस्यासे कृश शरीर उस अमृतस्यन्दी स्वरके कानोंमें पड़ते ही स्वस्थ, सबल एवं सुपुष्ट हो गया। कहाँ तो एक पल भारी हो रहा था प्राणधनसे पृथक् हुए बिना और कहाँ आकाशवाणीने एक जन्मकी अवधि बता दी। अपने तपस्याके क्षेत्र पुष्करको छोड़कर वेदवती गन्धमादनपर चली गयीं और वहाँ और भी दुष्कर तप करने लगीं।

राक्षसराज रावण पुष्पकद्वारा गगनमार्गसे घूमता गन्धमादनपरसे जा रहा था। उसने तपोलग्न उस साकार सौन्दर्यराशिको देखा। पुष्पकसे उतरकर वह नीचे आया और परिचय प्राप्त करनेके लिये जिज्ञासा की। आगत अतिथिके सत्कारके लिये वेदवतीने आसन रक्खा, पैर धोनेको जल दिया और एक पत्तेपर सुस्वादु कन्द एवं फल निवेदित किये। रावण कामान्ध हो रहा था। उसने आतिथ्यकी सामग्री ग्रहण नहीं की। उसने वेदवतीको पकड़ लिया।

'स्थिर हो जा!' रोषपूर्वक देखते हुए वेदवतीने कहा। सहसा राक्षसराजके हाथ, पैर प्रभृति सब काठकी भाँति जड़ हो गये। न तो उसकी जिह्वा हिल सकती थी और न नेत्रकी पलकें। जो अङ्ग जैसे थे वैसे ही चेष्टाहीन हो गये। अब तो दशानन अत्यन्त व्याकुल हुआ। बोल तो सकता नहीं था, मन-ही-मन उसी देवीकी स्तुति करने लगा।

'अच्छा, जा! मेरे ही कारण तेरा सपरिवार नाश होगा।' वेदवतीने उसके शरीरकी जड़ता दूर करके शाप दे दिया। अधम राक्षसके स्पर्शसे शरीरको अपवित्र हुआ समझ उन्होंने आसन लगाया। नाभिचक्रमें ध्यान करके अग्निकी भावना की। योगाग्निने उनके शरीरको देखते-देखते भस्म कर दिया। यही वेदवती त्रेतामें मिथिलानरेश महाराज जनककी भूमिसे उत्पन्न पुत्री सीता हुई थीं। वनमें भगवान् रामने इनको अग्निके समीप रखकर छायासीताको व्यक्त किया। छाया सीताका अपहरण करके सपरिवार रावण मारा गया। तब लङ्काके युद्धके पश्चात् छायासीताने अग्निमें प्रवेश किया और वैदेही पुनः प्रकट हुईं। छायासीताने भी प्रकट होकर अपने लिये आदेश माँगा। श्रीराम एवं जनकनन्दिनीके आदेशानुसार पुष्करमें जाकर तीन लाख वर्षतक उन्होंने उग्र तप किया। द्वापरके अन्तमें महाराज द्रुपदके यज्ञकुण्डसे प्रकट होकर वही पाण्डवोंकी पत्नी द्रौपदी हुईं।—सु० सिं०

केतकी

केतकी प्रजापति दक्षकी कन्या थी। रूप, गुण, शील, आचार आदिमें यह मूर्तिमती लक्ष्मी ही थी। इसने विवाह नहीं किया और माता-पिताकी अनुमति लेकर हिमालयके शिखरपर जाकर तप करना आरम्भ कर दिया। एक बार साक्षात् भगवती गायके रूपमें यहाँ आयीं। केतकीने उसकी हँसी की। गायरूपिणी भगवतीने प्रकट होकर कहा—'तुझे कुमारी रहनेका बड़ा गर्व हो गया है, तेरे इस गर्वका नाश करनेके लिये ही मैं आयी हूँ। तुझे शाप देती हूँ कि तू पृथ्वीपर नारीके रूपमें जन्म लेकर पाँच पतियोंकी पत्नी होगी। शाप सुनकर केतकीको बड़ा दुःख हुआ, उसने आर्त होकर भगवतीसे प्रार्थना की। दयामयी भगवतीने कहा—'बेटी! रो मत, तेरे द्वारा भगवान्‌का कार्य सिद्ध होगा। तू उनकी प्रिय है, अतएव प्रसन्नतासे उनका कार्य कर। पाँच स्वामी होनेपर भी तेरा धर्म अस्खलित रहेगा और तू जगत्‌में सतीशिरोमणि मानी जाकर पूजित होगी। तेरा यश अक्षय और तेरा नाम प्रातःस्मरणीय होगा।' इतना कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं।

केतकीका चित्त शान्त नहीं हुआ। उसे इस बातका बड़ा दुःख था कि मुझे ऐसी पवित्र तपोभूमिको छोड़कर मर्त्यभूमिमें जाना पड़ेगा। वह इधर-उधर रोती फिरती थी। एक दिन उसने गङ्गाजीमें प्रवेश किया। देवमायासे उसके आँसुओंकी प्रत्येक बूँद जलके साथ मिलकर एक-एक दिव्य स्वर्णकमल बनने लगी। केतकीको इसका कुछ भी पता न था। मन्दाकिनीमें बहते हुए वे कमल स्वर्गकी ओर चले गये।

धर्म, वायुदेवता और दोनो अश्विनीकुमारोंके साथ देवराज इन्द्र मन्दाकिनीके किनारे-किनारे स्वर्गको जा रहे थे। स्वर्णकमलोंकी अत्यन्त मधुर और दिव्य गन्धसे पाँचोंको बड़ा सुख मिला। मन्दाकिनीमें बहते हुए अभूतपूर्व स्वर्णकमलोंको देखकर इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और इस बातका पता लगानेका विचार करने लगे कि ये पुष्प कहाँसे आते हैं।

मधुर सौरभपूर्ण सुन्दर स्वर्णपद्मोंके उद्गमस्थानका पता लगाने धर्मराज गये। वे नहीं लौटे, तब वायुदेव गये और उसके बाद दोनों अश्विनीकुमार भी चले गये। जब इनमेंसे कोई नहीं लौटे, तब आश्चर्यचकित होकर स्वयं देवराज खोज करने चले। चलते-चलते वे वहाँ पहुँच गये, जहाँ मन्दाकिनीमें केतकी खड़ी थी। उसे देखकर इन्द्रने उसका परिचय पूछा और उससे अपने साथ विवाह करनेके लिये कहा।

देवराजकी बात सुनकर केतकीको बड़ी व्यथा हुई। उसने कहा—'देवराज! मैं जन्मसे तपस्विनी हूँ। भगवान् शङ्करके चरणोंकी मुझपर कृपा है। मेरे प्रति विवाहका प्रस्ताव करनेसे, जैसे इससे पहले चार देवपुरुष कठोर दण्ड भोग रहे हैं, वैसे ही आपको भी भोगना पड़ेगा। आप देवराज हों या और कोई। मुझे किसीकी कोई परवा नहीं है।'

केतकीकी बात सुनकर देवराजको बड़ा कुतूहल हुआ और उन्होंने निर्भयताके साथ पुनः विवाहका प्रस्ताव करते हुए, पहले आये हुए चारों देवताओंका पता पूछा। उन्हें देखना है तो चलो,-कहकर केतकी इन्द्रको हिमालयपर ले गयी। वहाँ एक योगी समाधिस्थ थे। केतकीने दूरसे ही उनको बताकर इन्द्रसे कहा कि 'इन महात्मासे पूछिये कि वे कहाँ हैं।'

इन्द्रने उनके पास जाकर धर्म, वायुदेवता और अश्विनीकुमारोंके बाबत पूछा; पर समाधिस्थ महात्माने कोई उत्तर नहीं दिया। तब इन्द्रने कुपित होकर कुछ कुवाच्य कहे। महात्माकी समाधि टूटी और देखते-देखते ही महात्मा त्रिशूलधारी महान् योगीश्वर भगवान् रुद्रके रूपमें परिणत होकर गर्जते हुए बोले—'तुमलोग बार-बार एकके बाद एक आकर मेरी आश्रिता इस आजीवन ब्रह्मचारिणी तपस्विनी देवीको क्यों सताते हो? जाओ, पहले चारोंको जो दण्ड दिया गया है, तुम भी उसीको भोगो।'

इतना कहकर महादेवजी एक अन्धकारमयी गुफाके सामने इन्द्रको ले गये। इन्द्रने काँपते हुए देखा कि धर्मराज, वायुदेव और दोनों अश्विनीकुमार हाथ-पैर बँधे वहाँ पड़े हैं।

इन्द्र डरकर श्रीशङ्करजीके चरणोंपर गिर पड़े और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे। आशुतोष प्रसन्न हो गये और उनका दोष क्षमा करके उन पाँचोंको भगवान् विष्णुके पास ले गये। उनकी बात सुनकर विष्णुभगवान्‌ने कहा—'स्वर्गके देवता होकर भी जब तुम इन्द्रियोंका दासत्व नहीं छोड़ सके, तब तुम्हें मर्त्यलोकमें जाकर मनुष्यदेह धारण करना पड़ेगा। तुम पाँचों वहाँ जाकर जन्म लोगे और भगवतीके वचनानुसार दूसरे जन्ममें यह केतकी तुम्हारी धर्मपत्नी होगी। जगत्‌के कल्याणके लिये इस कार्यकी

चुका था। निवृत्तिनाथने कहा—'मुक्ता! मार जल्दीसे कुत्तेको! सब चील्हे ले जायगा तो तू ही भूखी रहेगी!'

'मारूँ किसे! विहल ही तो कुत्ता भी बन गये हैं!' मुक्ताबाईने बडी निश्चिन्ततासे कहा। उन्होंने कुत्तेकी ओर देखातक नहीं।

तीनों भाई हँस पड़े। ज्ञानेश्वरने पूछा—'कुत्ता तो विट्ठल बन गये हैं और विसोब चाटी?'

'ये भी विट्ठल ही हैं!' मुक्ताका स्वर ज्यों-का-त्यों था।

विसोबा चाटी मुक्ताके साथ ही कुम्हारके घरसे पीछा करता आया था। वह देखना चाहता था कि तवा न मिलनेपर ये सब क्या करते हैं। ज्ञानेश्वरकी पीठपर चील्हे बनते देख उसे बड़ी जलन हुई। जाकर कुत्तेको वही पकड़ ले आया था। मुक्ताके शब्दने उसके हृदयपर बाणकी भाँति आघात किया। वहाँसे निकलकर सीधे वह मुक्ताबाईके पैरोंपर गिरा—'मैं महा-अधम हूँ। मैंने आपलोगोंको कष्ट देनेमें कुछ भी उठा नहीं रक्खा है। आप दयामय हैं, साक्षात् विट्ठलके स्वरूप हैं आपलोग। मुझ पामरको क्षमा करें। मेरा उद्धार करें। मुझे अपने चरणोंमें स्थान दें।'

कई दिनोंतक विसोबाने बड़ा आग्रह किया। उसके पश्चात्ताप एवं हठको देखकर निवृत्तिनाथने आदेश दिया। मुक्ताबाईने उसे दीक्षा दी। मुक्ताबाईकी कृपासे विसोबा चाटी-जैसा ईर्ष्यालु ब्राह्मण प्रसिद्ध महात्मा विसोबा खेचर हो गया। उसने योगके द्वारा समाधि अवस्था प्राप्त की। महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध महात्मा नामदेवजी इन्हीं विसोबा खेचरके शिष्य हुए हैं।—सु० सिं०

जनाबाई

भक्तप्रवर श्रीनामदेवजीका नाम प्रसिद्ध है। जनाबाई उन्हींके यहाँ नौकरानीका काम करती थी। श्रीनामदेवजीके सम्पर्कमें आकर वह भक्त बन गयी थी। वह कोई भी काम करती भगवन्नामका कीर्तन किया करती। वह साध्वी थी। काम करना था उसे भगवद्भक्त-भवनका। सारी क्रियाओंसे उससे भगवत्सेवा स्वयं होती जाती थी।

एकादशीकी रात्रिमें श्रीनामदेवजीके घर अखण्ड कीर्तन होता। अंशुमालीके क्षितिजपर पहुँचते ही जनाबाई वहाँ आ जाती और एक कोनेमें बैठी हुई रातभर कीर्तन करती रहती। उसकी आँखोंसे प्रेमाश्रु बहते रहते।

एक बारकी बात है। एकादशीकी रातभर कीर्तन कर लेनेके बाद वह अपने घर गयी। भगवान्के ध्यानमें बैठे-बैठे उसे दो घड़ी दिन चढ़ आया। वह स्वामीके गृहकी सेवामें विलम्ब होनेसे घबराती हुई नामदेवजीके घर पहुँची। काम कितने पड़े थे। जल्दी-जल्दी कपड़े लेकर नदी-किनारे गयी। वस्त्र पानीमें डुबा भी नहीं पायी थी कि श्रीनामदेवजीके दूसरे आवश्यक कामकी याद आ गयी। कपड़ा छोड़कर वह भागती श्रीनामदेवजीके घरकी ओर चली।

'कहाँ जा रही हो, बेटी?' एक बुढ़ियाने उसका आँचल पकड़कर माताकी तरह प्रेमभरे शब्दोंमें कहा।

'आज मुझे देर हो गयी है। महात्माकी सेवा बाकी है।' कहती हुई जना जल्दीसे बुढ़ियासे आँचल छुड़ा भागी।

'चिन्ता न कर, बेटी! कपड़े मैं साफ कर देती हूँ'—बुढ़ियाने अत्यन्त स्नेहसने स्वरोंमें कहा।

जनाबाई श्रीनामदेवजीके घर तो गयी, पर जाने क्यों बार-बार उसका मन बुढ़ियाकी याद कर लेता था। स्नेहमयी जननीकी भाँति दुर्लभ स्नेह उसे जीवनमें पहली बार मिला था।

श्रीनामदेवजीका आवश्यक काम समाप्त करके जना नदी-तटपर आयी तो देखा वृद्धाने सारे वस्त्र अत्यन्त उज्ज्वल कर

दिये हैं। उसे पता नहीं था कि इस वृद्धाने इस वस्त्रके पहनने-वाले एवं धोनेवालोंका तन-मन भी निर्मल कर दिया है।

'बड़ा कष्ट उठाया आपने! मैं आपका आभार मानती हूँ' —जनाबाईने वृद्धासे विनयभरे स्वरोंमें कहा।

'इसमें आभारकी कौन बात है, बेटी!' कहती हुई वृद्धा वहाँसे चल पड़ी।

'कभी आवश्यकता पड़ी तो मैं भी वृद्धाकी सेवा करूँगी'—इस विचारसे तुरंत वृद्धाका परिचय प्राप्त करनेके लिये जना वृद्धाको ढूँढ़नेके लिये दौड़ पड़ी, पर वृद्धाको कहीं न पाकर वह निराश होकर लौट आयी।

सारी बात जनाने श्रीनामदेवजीको बता दी। 'जना! तू बड़ी भाग्यशालिनी है। वह वृद्धा तो स्वयं भगवान् थे,' श्री-नामदेवजी भगवान्‌की भक्तवत्सलताकी प्रशंसा करते हुए बोले।

जना प्रेमसे रोने लगी। भगवान्‌के अपने लिये कष्ट उठानेकी बात सोचकर उसका हृदय टूक-टूक हो जाता था।

—शि० दु०

सहजो और दया

ये दोनों चरणदासकी शिष्या थीं। इनका निश्चित समय नहीं मिलता। इन दोनोंका क्रमबद्ध जीवन-चरित्र भी अबतक कहींसे प्राप्त नहीं हो सका है। ये दोनों बहिनें 'शब्दमार्गी' थीं। सहजो प्रेमका मूर्तिमान् स्वरूप थी और दया वैराग्यकी जीवित प्रतिमा थी। अन्य संतोंकी भाँति इन देवियोंकी वाणियाँ भी सांसारिक मनुष्योंके शुभ-पथका प्रदर्शन करती हैं। स्मरणके लिये दोनोंके दो-दो दोहे यहाँ अङ्कित किये जाते हैं—

सीस नवै तो तुमहिं कूँ, तुमहि सू भाखूँ दीन। जो झगरूँ तो तुमहिं सू, तुम चरनन आधीन॥
निरपच्छी के पच्छ तुम, निराधारके धार। मेरे तुम ही नाथ! इक जीवन-प्रान-अधार॥ —दया
प्रेम दिवाने जे भये, कहें बहकते बैन। सहजो मुख हाँसी छुटै, कबहूँ टपकैं नैन॥
प्रेम दिवाने जे भये, सहजो डिगमिग देह। पाँव पड़ै कित को कितै, हरि सँभाल तब लेह॥ —सहजो

—शि० दु०

चारणी नागल और मीणल

(सती-शापका परिणाम)

(लेखक—पं० श्रीमङ्गलजी उद्धवजी शास्त्री, 'साहित्यालङ्कार')

काहू सुमति कि खल सँग जामी।
सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी॥

—तुलसीदासजी

विक्रमाब्द १४४१ की बात है। तब जूनागढ़ हिंदुओंके हाथमें था। उसके दुर्गपर त्रिशूलचिह्नित हिंदू-ध्वज फहरा रहा था। वहाँपर हिंदू-वंशके अन्तिम नरेश राव माण्डलीक राज्य कर रहे थे।

मोणिया जूनागढ़से दक्षिणकी ओर दस मील दूर गिर-नारके एक कोनेमें पड़ता है। राव माण्डलीक अपने चपल तुरङ्गपर चढ़कर उसी ओर भागे जा रहे थे। उनकी सद्-सत् एवं धर्माधर्मविवेककी शक्ति लुप्त हो गयी थी, फिर भी वे बीच-बीचमें अश्व रोककर ठिठक जाते थे। एक बार उनका कलेजा धड़क जाता था!

वे नागार्जुनकी जननी सती नागबाईको भलीभाँति जानते थे। वे एक नहीं, अनेक बार उसकी देहरीपर जा चुके हैं और श्रद्धावनत उसकी चरण-धूलि भी माथेपर चढ़ा चुके हैं। वे यह भी जानते थे कि उसके मैके दात्राणा एवं ससुराल मोणियाके लोग उसे 'देवी' कहते हैं और सचमुच उसमें वैसी ही विलक्षण शक्ति एवं दैवी गुण भी हैं। वचन-सिद्धि भी उसके पास है। पितृगृहमें जब वह अल्पवयस्का बालिका थी, तभी उसका चमत्कार देखनेमें आया था। नृशंस यवनोंने उसके पिताकी गाय चुरा ली थी। उसने अपनी दिव्य शक्तिसे उसे लौटा लिया और उसके कर-स्पर्शसे ही गायकी मृत देहमें जीवन संचरित हो गया था।

युवावस्थामें नागार्जुनको जन्म देनेके बाद ही वह विधवा हो गयी। प्राणप्रिय पुत्र नागार्जुनके पालन-पोषण एवं

संरक्षणके लिये ही उसने सती होनेका विचार त्याग दिया था।

'अपना परम सौभाग्य! दूत समाचार लाया है कि सौराष्ट्रके 'रा' महाराज अपने यहाँ पदार्पण कर रहे हैं। बेटी! अपनेसे हो सके, उतना सत्कार महाराजका करना चाहिये। नागबाईने अपनी पुत्रवधूको आदेश दिया। सौराष्ट्र (जूनागढ़) नरेश उस समय 'रा' पदसे भूषित होते थे और उस समय गद्दीपर अन्तिम 'रा' माण्डलीक थे। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी कि महाराज चारणके घर पधार रहे थे। 'रा' नवघन एवं 'रा' खगारका वंश सदासे शूर एवं प्रजावत्सल रहा है। चारण जाति परम पूज्य एवं देवांश-सम्भूत मानी जाती रही है। चारणियाँ साक्षात् योगमायाका स्वरूप मानी जाती थीं। 'रा' यदि चारणियोंमें भी सर्वश्रेष्ठ नागबाईसे आशीर्वाद प्राप्त करने आ रहे थे तो स्वाभाविक ही था।

चारण जाति पूज्य तो मानी ही जाती थी; वह अत्यन्त शूर, समरकुशल होती थी। चारण स्त्रियाँ पुरुषोंके समान ही शस्त्रकलामें निपुण होती थीं और युद्धमें अच्छे प्रख्यात शूर उनका लोहा मानते थे। उनकी राज्यमें सर्वोपरि प्रतिष्ठा थी। नरेशका आगमन सुनकर चारणियोंने गीत गाना प्रारम्भ किया। स्थान सुसज्जित हुआ। स्वागतका आयोजन हुआ। जूनागढ़से बीस मील दूर पवित्र गिरनारकी छायामें आज 'रा' पधार रहे थे।

नागबाईने द्वारपर 'रा' का स्वर्णपुष्पोंसे अभिनन्दन किया। उनपर न्योछावर किया। उनके भालपर तिलक किया। भवनके जिस स्थानपर 'रा' के बैठनेके लिये गद्दी-तकिया लगा था, वहाँसे द्वारदेशतक पाटाम्बर पड़ा था। उनपर होकर नरेश नागबाईके साथ बैठनेके स्थानतक गये और वहाँ आसीन हो गये। 'रा' माण्डलीक धार्मिक पुरुष थे। वे सीधे गङ्गाजल मँगाते थे और उसीसे नित्य स्नान करते थे। उनके एक परिचितको रक्तपित्तका रोग हो गया था। नरेशके पवित्र स्पर्शमात्रसे वह मनुष्य स्वस्थ हो गया। ऐसे नरेशके मनमें कोई दुर्भावना होगी, यह कोई अनुमान नहीं कर सकता था। पर—'को न कुसंगति पाइ नसाई।'

'रा' माण्डलीककी परिषद्में कुछ दुष्टस्वभाव पुरुष थे। उन्होंने बार-बार नागबाईकी पुत्रवधू मीणल देवीके रूपकी प्रशंसा की। अनेक बार मित्रोंसे परिहासपूर्वक एक नारीका वर्णन सुनते-सुनते 'रा' का हृदय कलुषित हो गया। वे यहाँ आज नागबाईकी पुत्रवधू मीणलका सौन्दर्य देखने आये थे।

वे बड़ी उलझनमें पड़ गये थे। बुरी भावनाको लेकर मीणल देवीके यहाँ आये थे और वह सजा-सजाया थाल लिये बहिनकी तरह भ्रातृ-पूजाके लिये उद्यत थी। नरेशकी बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही थी।

नरेश स्त्रियोंसे घिरे पूर्वाभिमुख बैठे थे। मङ्गल-गीत गाये जा रहे थे। पवित्रहृदया मीणलने रोलीका तिलक लगानेके लिये हाथ उठाया ही था कि राव माण्डलीक उत्तराभिमुख हो गये। 'चन्द्रबलके कारण आज पूर्वाभिमुख पूजा शुभ नहीं होगी, इस कारण नरेश उत्तराभिमुख हो गये हैं' अपनी अल्पज्ञताका अनुभव करके लज्जिता मीणलने तिलकके लिये पुनः हाथ उठाया तो नरेशने पश्चिमकी ओर मुँह फेर लिया।

उसीको सम्मुख समझकर बेचारी मीणल पश्चिमकी ओर गयी। राजाने उसे कटाक्षपूर्वक देखा और दक्षिणकी ओर मुख करके बैठ गये।

'मा! राजा तो फिर रहा है।' नरेशको कटाक्षसे अपनी ओर देखते देख साध्वी मीणल मुड़ पड़ी। उसने साससे कहा। 'बेटी! राजा नहीं फिर रहा है। उसका दिन फिर रहा है, जो योगमायाके समान चारणियोंपर कुदृष्टि डाले, वह राजा नहीं रह सकता।' नागबाईने राजाकी कुदृष्टि देख ली थी।

'रा' माण्डलीककी दुष्ट मनोवृत्तिने सती नागबाईके हृदयमें क्षोभ पैदा कर दिया। वे गरजकर बोलीं—

गंगा जल गढे चा, पंड ताहूँ तो पवित्र छे,
विंजाने तो रगत गयॉं, पण आ शूँ सूझ्यँ माटलिक।
गढ जूनानी पोळ, दामो कुड देखीश नहीं,
रतन पडशे रोळ, ते दी मुँ समारे माटलिक॥
जाशे 'रा'नी रीत, 'रा' पणु रहेशे नहीं
ममतो मॉंगीश भीख, ते दी मुँ समारे माडलिक।
भूल्यो राजा भींत, नागलके नम्यो नहीं
मंदिर ठेकाणें मसीद, ते दी मुँ समारे माडलिक

"अरे माण्डलीक! तैने जन्मभर गङ्गाजलमें स्नान किया है, तेरा शरीर पवित्र था। तेरे छूने भरसे विजानीका रक्तपित्त मिट गया था। अब तुझे यह क्या सूझा!

"अरे माण्डलीक! अब तुझे जूनागढका दरवाजा और दामोदरकुण्ड देखनेको नहीं मिलेंगे। तेरी पुण्य राशि समाप्त हो जायगी। तब तू मुझे याद करेगा।

"अरे माण्डलीक! तेरी 'राव'की रीति नष्ट हो जायगी; तेरा रावपन नहीं रहेगा और तू भीख माँगता हुआ भटकेगा। तब तू मुझे याद करेगा।

"अरे माण्डलीक ! तू भान भूल गया है । इसीसे तैंने नागलको प्रणाम नहीं किया। तेरे मन्दिर-महलकी जगह मस्जिद बनेगी। तब तू मुझे याद करेगा।"

माण्डलीकको अब अपने प्रमादका पता लगा। वह मारे लज्जाके गड गया और मुँह छिपाकर घोड़ेको वहीं छोड़कर भागा। उसके हृदयमें आग जल रही थी और महासतीके शापसे उसे अपना भविष्य प्रत्यक्ष अन्धकारमय दिखलायी दे रहा था।

दुर्गके सम्मुख जाते ही प्रहरीने सन्देश दिया—'उत्तरकी ओरसे मुहम्मद बेगड़ा विशाल सैन्यके साथ दुर्ग-ध्वंस करनेके लिये चढ़ आया है।

राव माण्डलीकने शत्रुओंको भगानेके लिये अपने सैनिकोंको आदेश दिया। घमासान युद्ध हुआ। हिंदू वीरोंने अपनी वीरताका सुन्दर परिचय दिया। पर सती-शापके कारण वे दुर्गको बचा नहीं सके। झूमती हुई यवन-सेना जूनागढमें आ गयी। राव माण्डलीक बंदी बन गया।*

साईं नेहड़ी

नामसे आप भ्रममें न पड़ें। उस पवित्र देवीका नाम साईं था और नेहड़ा नामक चारणोंकी एक विख्यात शूर जाति है। इसी जातिमें वह उत्पन्न हुई थी। वनमें चारणोंकी इतस्ततः झोपड़ियोंके बिखरे समूहको 'नेह' कहते हैं। इस प्रकारके एक 'नेह'में जंगलमें साईंकी भी झोपडी थी। उसके पतिदेव दूसरे चारणोंके साथ विदेशमें आजीविकाके लिये गये थे। अपनी झोपडीमें साईं सब भोगोंको छोड़कर पतिको स्मरण करते हुए किसी प्रकार दिन काट रही थी।

अँधेरी रात्रि थी। बादल गर्जना कर रहे थे। विद्युत् चमक रही थी। मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। पतिरहिता साईंकी पलकोंमें निद्रा नहीं थी। जब चटाईपर पड़े-पड़े जी ऊब गया तो वह द्वारके समीप आ खड़ी हुई। द्वार खोलकर प्रकृतिके ताण्डव-नृत्यको देखने लगी। सहसा बिजली चमकी। उसने देखा कि एक घोड़ा चला आ रहा है। फिर दूसरी बार ध्यानसे देखनेपर पता लगा कि उसपर कोई बैठा है। वह इसी झोपड़ीकी ओर आ रहा है। साईंने सोचा 'कोई आँधी-पानीसे त्रस्त भूला पथिक होगा।'

वह बड़े असमञ्जसमें पड़ी। एकाकिनी तरुणी, अँधेरी रात्रि! किसी पुरुषको आश्रय दे या नहीं? सबेरे उसके यहाँसे एक पुरुषको जाते देख लोग क्या कहेंगे? जो भी हो, इस आपत्तिमें अतिथिको आश्रय तो देना ही चाहिये। उस गृहस्थको धिक्कार है, जिसके यहाँसे अतिथि निराश लौट जाता है। लोग चाहे जो कहें; किंतु जो सबका साक्षी है,वह तो जानता ही है। साईंने आगतको आश्रय देना स्थिर किया। घोड़ा आकर उसके सम्मुख खड़ा हो गया। यह क्या, आगत तो घोड़ेपर मूर्च्छित लुढ़का पड़ा है। स्वामिभक्त घोड़ेकी बुद्धिमानी ही उसे यहाँतक ले आयी है।

चारणीने मूर्च्छितको हाथोंसे नीचे उतारा। वस्त्रोंसे वह कोई राजपुरुष प्रतीत होता था। उसने उसके सब वस्त्र उतार दिये। शीतके कारण वह अकड़ गया था; किंतु हृदय चल रहा था। जीवनके लक्षण थे। सूखे वस्त्रसे उसके शरीरको पोंछकर चटाईपर लिटा दिया। घोड़ेको भीतर बाँध दिया और उसके वस्त्र सूखनेको फैला दिये। भाग्यकी बात, घरमें ईंधन नहीं था। जो थोड़े-से वस्त्र थे, वे अतिथिको पर्याप्त उष्णता देकर जीवन देनेमें समर्थ नहीं थे। अग्नि जलानेका साधन नहीं था।

'माता अपने पुत्रको गोदमें लेकर सोती है। बचपनमें भाई-बहिन साथ ही सोते हैं। यह मेरा अतिथि है। मूर्च्छित है। इसके मनमें तो कोई भाव इस समय आ नहीं सकता और मेरा मन पवित्र है। मन ही धर्मका मूल है।' साईंने सोचकर निश्चय किया। वह आगतके समीप लेट गयी। आगतकी पीठको अपनी ओर करके उसने उसे अपनी गोदमें ले लिया। मानव-शरीरकी गर्मीसे उस शीतल शरीरमें गर्मीका संचार हुआ। श्वासोंका क्रम ठीक होते ही साईं उठ गयी।

'सौराष्ट्रके गोहिलवाड़ प्रान्तमें खम्भातके आखातके समीप तलाजा नगर है। मैं वहाँका नरेश हूँ। तुमने मुझे जीवनदान दिया है, अतः तुम मेरी धर्मकी बहिन हो। जब कभी मेरे योग्य सेवा हो, अवश्य मुझे सूचित करना।' स्वस्थ होनेपर आगतने अपना पूरा परिचय देकर बताया कि 'मैं आखेटके लिये वनमें आया था। साथियोंसे पृथक् होकर मार्ग भूलनेके कारण मेरी यह दशा हुई।' प्रातःकाल वह अपने घोड़ेपर चढ़कर चला गया।

'रात्रिमें इसके घरमें बड़ा सुन्दर तरुण रहा है। इसने उसके घोड़ेको भी इसलिये भीतर बाँध रक्खा था कि कोई देख

* कहते हैं कि राव माण्डलीक कुछ दिनोंके बाद मुहम्मद बेगडाके कारावाससे निकल भागा और गली-गलीकी खाक छानता रहा। क्षुधादि अनेक यातनाएँ सहते हुए अन्तमें उसने अहमदाबादमें प्राण परित्याग कर दिया। —लेखक

न ले।' चारणोंके झोपड़ियोंकी स्त्रियाँ काना-फूसी करने लगीं। भली बातपर मनुष्य कठिनतासे विश्वास करता है; किंतु बुरी बातपर उसका सहज विश्वास हो जाता है। साईंका पति लौटा। अपनी स्त्रीके सम्बन्धमें फैले प्रवादको सुनकर वह आगबबूला हो गया। पत्नीकी बातोंपर उसे तनिक भी विश्वास न हुआ। वह उसे बराबर मारने लगा। कटुवचनोंसे सदा उसका तिरस्कार करता और अकारण ही क्रूरतापूर्वक पीटता।

अन्तमें साईं नित्यके इस अत्याचारसे व्यथित हो गयी। उसने सूर्यभगवान्‌से हाथ जोड़कर कातर स्वरमे प्रार्थना की—'हे लोकसाक्षी प्रभु! आप सबके पाप पुण्यको जानते हैं। मैंने कोई पाप नहीं किया है, यह आपसे अविदित नहीं। यदि मैंने कोई अपराध किया हो तो आप मुझे कठोर दण्ड दें।'

'पुत्री! तू पवित्र है। तुझपर जो अकारण अत्याचार करता है, उसे मैं शाप देता हूँ। उसके सर्वाङ्गमें गलित कुष्ठ हो!' स्पष्ट आकाशसे शब्द आये। 'यह क्या? सती हाहाकार करके मूर्च्छित हो गयी। इससे तो अच्छा था कि मुझको ही दण्ड मिला होता। पतिके अमङ्गलकी बात तो मैंने सोची भी नहीं थी।' चारणके सर्वाङ्गसे दुर्गन्धयुक्त मवाद निकलने लगा। साईं बड़े धैर्यसे पतिकी सेवा करने लगी।

कुछ दिनों पश्चात् पतिको कधेपर बैठाकर वह तलाजा पहुँची। राजभवनमें उसने समाचार भेजा। नरेशने अत्यन्त आदरसे पतिके साथ उसे बुलवाया और सत्कार किया। अन्तमें उसने नरेशसे कहा—'मेरे ही अपराधसे पतिदेवको यह भयङ्कर कष्ट सहना पड रहा है। अनेक प्रकारसे यत्न करके निराश होनेपर आपके पास आयी हूँ।'

'बहिन! मुझे आज्ञा दो। प्राण देकर भी मैं तुम्हारा कार्य करूँगा।' उपकारका कुछ बदला देनेका अवसर मिले, यह सोचकर नरेश प्रसन्न हो गये।

'एक महात्माने कहा है कि बत्तीस लक्षणोंवाले पुरुषके रक्तसे स्नान करानेपर तेरे पतिदेव स्वस्थ हो जायँगे! पतिके लिये मैं यह क्रूर कर्म करनेपर उद्यत हुई हूँ,' साईंने बताया। इसी समय राजकुमारने माताके सिखानेसे आकर साईंको प्रणाम किया।

'बेटा! तेरा मङ्गल हो। भाई! तुम बड़े भाग्यवान् हो। तुम्हे बत्तीस लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्र मिला है।' साईंने यह कहकर राजाके मुखकी ओर देखा। नरेशको समझते देर न लगी। वे चुपचाप उठकर पत्नीके समीप गये। पिताको दुखी होते देख पुत्र कारण जाननेके लिये साथ गया।

'मेरा जीवन धन्य है! मेरेद्वारा कुछ उपकार हो, इससे बड़ा मेरा क्या सौभाग्य होगा। जिसने आपके जीवनकी रक्षा की, उसके काम आकर मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। आप इतने दुखी क्यों होते हैं। उठिये, कर्तव्यका पालन कीजिये।' राजकुमारने दृढतापूर्वक माता-पिताको आश्वासन दिया। उसने पूरी बातें सुन ली थीं। अन्ततः महारानीने भी पातिव्रत्य सम्हाला। उन्होंने भी पतिको प्रोत्साहित किया। महाराज पुत्रको लेकर आये। खड्गके एक ही आघातसे युवराजका मस्तक पृथक् हो गया। रक्तसे स्नान करके चारण स्वस्थ हो गया।

अब साईंकी बारी थी। उसने युवराजके मस्तकको उठाकर धड़पर रखकर हाथ फेरा गर्दनके चारों ओर। 'मैंने यदि
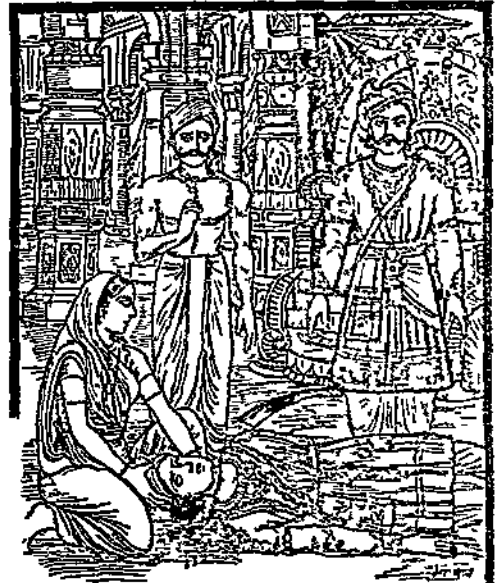
स्वप्नमें भी पतिको छोड़कर दूसरे पुरुषका चिन्तन न किया हो तो तू जी उठ, बेटा!' पतिव्रताके आदेशकी अवहेलना करनेका साहस यमराजमें नहीं। अपनी शक्तिके भरोसे ही साईंने बलिदान माँगा था। युवराज इस प्रकार उसके गोदमें बैठ गये, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। —सु० सिं०

नारी

सुरा सुधा माहुर भरी, रची विधाता नार।
डगमगात जीवत मरत, जेहि चितवत इक बार॥ —रामाधार पाण्डेय, साहित्यालङ्कार

चारणी कामबाई

'मेरा भाई घोड़ा वेचकर कब लौटेगा, भाभी !' जामनगरके नरेशने कामबाईसे कहा। वे चारणोंके गाँवमें प्रतिष्ठित चारणोंके बीचमें बैठे थे। परम रूपवती कामबाईको कलशी लिये जल भरने जाते देखकर उन्होंने कह दिया।

कामबाईके कलेजेमें आग लग गयी। 'राजा प्रजाका पिता होता है और जामनगरके नरेशको तो हम भाई मानती हैं; पर इन्होंने आज मुझे भाभी कह दिया !' अपमानका अनुभव करके वह काँपने लगी। साथ ही उसने सोचा, मेरे अद्वितीय लावण्यने ही उनकी बुद्धि भ्रष्ट की है।

वह तुरंत घर गयी। वहाँ उसने तीव्र धारवाली कटारसे अपने दोनों स्तन काट डाले और उन्हें थालीमें रखकर कपड़ेसे ढक दिया। बाल उसके खुले थे। थाली हाथमें लेकर वह राजाके पास चली।

उसका भीषण स्वरूप जो देखता, वही काँप जाता। वह राजाके पास पहुँची। समस्त चारण काँपने लगे और राजा भाग चला। कामबाई भी अपना जाँबुडा (चारणोंका गाँव, जहाँ कि कामबाई थी) गाँव छोड़कर राजाके पीछे-पीछे चली।

एक कोस जानेके बाद कामबाईने अपना एक पाँव काट दिया और एक पैरसे ही लँगड़ाती जामनगरकी ओर चली। दूसरा कोस समाप्त होनेपर उसने दूसरा पाँव भी काट दिया और दोनों हाथोंके बलसे धड़को घसीटती हुई राजाकी राजधानीकी ओर जाने लगी। तीसरे कोसके समाप्त होनेपर उसने अपनी दाहिनी भुजा काट डाली और एक ही भुजाके बलपर लड़खड़ाती हुई चली। चौथे कोसपर उसने अपनी दूसरी भुजा भी काट डाली।

× × ×

'साक्षात् चण्डिकाकी तरह एक चारणी अपने शरीरके हर एक अवयवको काटती-फेंकती नगरकी सीमातक पहुँच चुकी है' प्रजाने राजासे निवेदन किया।

'माताजी ! चारणोंके बहकानेसे मैंने आपको कुवचन कहा था। कृपापूर्वक मुझे क्षमा करें।' दौड़ते हुए राजाने सिर झुकाये और हाथ जोड़े हुए कामबाईसे प्रार्थना की। उनका शरीर थरथर काँप रहा था।

'मैं जानती हूँ, मेरे विरोधी चारणोंके बहकावेमें आकर आपने मुझे कटुवचन कहा है। अतः मैं आपको क्षमा करती हूँ,' कहती हुई कामबाईने अपना प्राण परित्याग कर दिया।

—शि० दु०

जगदम्बा श्रीकरणीदेवी

लगभग ५०० वर्ष पूर्वकी बात है। जोधपुर-राज्यान्तर्गत सुआप नामक गाँवमें मेहोजी नामके एक चारण रहते थे। ये भगवतीके उपासक थे। इनके लगातार छः पुत्रियाँ हुईं। इन्होंने देवीसे प्रार्थना की कि 'माता ! मेरा वंश चले।' माताने प्रकट होकर 'तथास्तु' कह दिया।

अबकी बार मेहोजीको पुत्र होनेकी आशा थी, पर फिर पुत्री हो गयी। मेहोजीकी बहिनने अपने भाईसे अँगुली टेढ़ी कर कहा—'फिर वही पत्थर आ पड़ा।' तबसे उनकी अँगुली टेढ़ी ही रह गयी। दूसरी बार अपनी ससुरालसे लौटनेपर वे बालिकाकी सेवा करने लगीं। बालिकाने अपने करस्पर्शसे ही अँगुली सीधी कर दी। बालिकाका नाम दिधुबाई था, पर अब वह करणीदेवी कहलाने लगी।

भोजनकी सामग्री लेकर एक दिन देवीजी अपने खेतपर जा रही थीं। रास्तेमें जैसलमेरके महाराज शेखोजी अपनी क्षुधार्त सेनाके साथ मिले। देवीजीने अपने उतने ही भोजनसे समस्त सैनिकोंको खिला दिया और राजाको विपत्तिमें सहायता देनेका वचन दिया। राजा युद्धक्षेत्रमें पहुँचे, पर उनकी सेना हार गयी और उनके रथका घोड़ा भी मर गया। स्मरण करते ही देवीजी सिंहके रूपमें उनके रथमें जुत गयीं। राजाकी विजय भी हो गयी।

करणीदेवीके पिताको एक बार सर्पने काट लिया। देवीजीने केवल करस्पर्शसे ही उन्हें अच्छा कर दिया। देवीजीको सयानी देखकर उनके पिताने साठिका नामक गाँवके दीपोजीसे उनका विवाह कर दिया। पहले ही दिन देवीजीने दीपोजीको चतुर्भुजी रूपमें दर्शन दिया और कहा कि 'आप दूसरा विवाह कर लें। मुझसे कोई सन्तान न होगी।' दीपोजीने देवीजीके बहिनसे विवाह किया। उनसे चार सन्तानें हुईं। वे सन्तानें देवीजीकी ही कहलाती थीं। दीपोजी देवीजीको सदैव माताके रूपमें देखते थे।

ससुरालमें भी उन्होंने बहुत चमत्कार दिखाये। 'यहाँ बिच्छू रहते हैं, बहू सावधान रहना!' एक दिन उनकी सासने कहा। 'बिच्छूके तो यहाँ दर्शन भी नहीं होते', देवीजीने कहा। सुनते हैं, तबसे आजतक वहाँ बिच्छू कभी नहीं निकले।

एक बार साठिका गाँवमें कई वर्षतक दुर्भिक्ष पड़ा। दयालु देवीजी गायोंको लेकर वहाँसे चल पड़ीं, वे पहले राठौड राजा कान्होजीकी राजधानी जाँगळू पहुँचीं। कुओंके जलसे भरी खेलियोंसे जल पिलानेकी आज्ञा उन्होंने कर्मचारी और राजासे चाही, पर किसीने उन्हें गायोंको जल नहीं पिलाने दिया। इतनेमें ही राजाके छोटे भाई रणमलजी आ गये। उन्होंने देवीजीकी अभ्यर्थना की और पानी पिलानेके लिये गायोंको ले गये। पानी पी लेनेपर भी खेलियाँ ज्यों-की-त्यों भरी रहीं। देवीजीने उन्हें 'राजन्' कह दिया। बादमें जाँगळू-के राजा रणमलजी ही हुए और जोधपुरको भी उन्होंने अपने अधिकारमें कर लिया।

इसके बाद देवीजीने आगे चलकर देशनोक नामक गाँव बसाया। नेड़ी स्थानसे चलते समय उन्होंने अपनी नेडी (मथानी) वहीं गाड़ दी थी। कहते हैं, वह हरी हो गयी और खेजड़ी (शमी) वृक्षके रूपमें आज भी वर्तमान है। उस स्थानको आजतक नेड़ी कहते हैं।

जोधपुरके राजा जोधाजीके सुपुत्र बीकाजी अपने पिता-जीसे मनमुटाव हो जानेके कारण आश्विन सुदी १० संवत् १५२२ को नया शहर बसानेके लिये देवीजीके पास आये। देवीजीने उन्हें राजा होनेका आशीर्वाद दे दिया। कुछ दिन बाद उन्होंने बीकानेर नगर बसाया। उनका सब जगह अधिकार हो गया। वे राजा बन गये। करणीदेवी राज्यकी कुलदेवी बन गयीं।

राज्यप्रबन्धसे अब भी देवीजीका स्थान देशनोकमें वर्तमान है। नवरात्रियोंमें वहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है और बीच-बीचमें शतचण्डी-अनुष्ठान आदिका भी आयोजन होता रहता है।

देशनोकमें देवीजी ५० वर्षोंतक रहीं। एक बार जैसलमेर-नरेशकी पीठमें एक फोड़ा हो गया। किसी प्रकार भी अच्छा न होनेपर उन्होंने देवीजीको याद किया। देवीजी अपने पुत्र (भगिनी-पुत्र) पूनोजीको साथ लेकर चलीं। वहाँसे तीस कोस दूर चारणवास नामक गाँवके पास आकर उन्होंने पूनोजीसे जल मँगाकर स्नान किया और उसी क्षण नश्वर शरीर त्याग दिया। आज भी उस स्थानपर देवीजीका स्मारक विद्यमान है।

माताजीके चले जानेसे पूनोजी फूट-फूटकर रोने लगे, तब देवीजीने भगवतीके रूपमें उन्हें दर्शन देकर कहा—'तुम देशनोक लौट जाओ। मैं तुमसे फिर वहाँ मिलूँगी।' पूनाजी देशनोक लौट आये। भगवतीने जैसलमेर-नरेशका फोड़ा अच्छा कर दिया।

देशनोकमें श्रीदेवीजीके दर्शनार्थ दूर-दूरसे यात्री आते हैं। वहाँ अब भी चमत्कार देखे जाते हैं। एक दिन साधुके वेषमें एक चोर आया और देवीजीका छत्र चुराकर गुम हो गया। देवीजीने राजाको तुरंत स्वप्न दिया। राजाने चोरको पकड़वाकर छत्र मन्दिरमें भिजवा दिया और सोनेका एक विशाल और सुन्दर छत्र बनवाकर देवीजीको भेंट किया, जो अब भी वहाँ रक्खा है।

देशनोक बीकानेरसे बीस मील दक्षिण बीकानेर रेलवेका स्टेशन है। देवीजीका मन्दिर स्टेशनसे अत्यन्त समीप ही है। दर्शनार्थियोंको बीकानेरसे देशनोक जानेके लिये राज्यकी ओरसे वापसी टिकट ।।-) में मिल जाता है। स्टेशनपर ठहरनेके लिये धर्मशाला आदिका भी सुप्रबन्ध है।—शि० दु०

पवित्र गणिका

यह कथा बहुत पुरानी है। एक नगरमें जीवन्ती नामकी एक वेश्या रहती थी। वह थी तो पवित्र संस्कारसम्पन्न, परंतु कुछ बड़े पापके प्रभावसे उसने गणिकाके घरमें जन्म लिया था। वह व्यभिचारवृत्तिसे अपना पेट-पालन करती थी।

'यह तोता बहुत सुन्दर है, इसे मुझे दे दो!' गणिकाने तोता बेचनेवालेसे कहा। बेचनेवालेको मूल्यसे मतलब था। तोता उसने गणिकाके हाथ बेच दिया।

गणिका वैसे ही मन बहलानेके लिये तोतेको 'राम-राम' पढ़ाने लगी। पर नामका प्रभाव तो समस्त पापोंको नाश करनेवाला होता है। 'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥' की उक्तिके अनुसार गणिकाका मन क्रमशः 'राम-राम' में लगने लगा। उसे जब भी अवकाश मिलता, वह तोतेके पास आकर बैठ जाती। तोता 'राम-राम' गाने लगता। गायिका गणिकाने तोतेको अच्छे

स्वरका अभ्यास करा दिया था। स्वयं भी तोतेके स्वरमें स्वर मिलाकर अत्यन्त मधुरतासे 'राम-राम' गाती।

मृत्यु जीवोंके पीछे सिंहनीकी तरह दौड़ रही है। गणिका और तोता दोनोंके प्राणपंछी एक ही साथ 'राम-राम' कहते हुए निकल गये।

उस समय वहाँ बड़ी विचित्र घटना घटी। दोनों प्राणियोंके प्राण अपने-अपने लोकोंमें ले जानेके लिये यमराज और श्रीविष्णुके दूत आ गये। विष्णुके दूत सबल थे। यमदूत घबराये हुए यमराजके पास पहुँचे और गणिका तथा तोतेकी सारी कहानी सुना दी। इस बातपर अधिक जोर दिया कि गणिका महाव्यभिचारिणी तथा अधमा थी।

यमराजने गम्भीरतासे उत्तर दिया—"यदि उन्होंने 'राम' इन दोनों अक्षरोंका मरते समय स्मरण किया है तो वे मुझसे कभी दण्डनीय नहीं हैं। उस 'राम' नामके प्रतापसे भगवान् नारायण उनके प्रभु हो गये। गणिका पवित्र हो गयी।"

दूता यदि स्मरन्तौ तौ रामनामाक्षरद्वयम्।
तदा न मे दण्डनीयौ तयोर्नारायणः प्रभुः॥

यमदूतोंने सिर लटका लिया। गणिका दिव्यलोकमें चली गयी।—शि० दु०

वेश्या सुमध्या

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः॥

एक बार भीड़के धक्केमें जिसके पैर लड़खड़ाये, वह प्रायः गिरता है और कुचला जाता है। दुःसङ्गसे सुन्दरी सुमध्याका पतन हुआ और फिर होता ही गया। अन्तमें सामाजिक परिस्थितियोंसे विवश होकर वह वेश्या हो गयी। माता-पिताके संरक्षणमें उसने शास्त्रोंका अध्ययन किया था। बचपनमें उसे धार्मिक वातावरण प्राप्त हुआ था। अपने पतनपर उसे अत्यन्त पश्चात्ताप था। छुटकारेका कोई मार्ग न मिलनेसे मन-ही-मन वह खिन्न रहा करती थी। अपने व्यवसायसे उसे अत्यन्त घृणा थी।

पुरुषोत्तमपुरीकी उस श्रेष्ठ वेश्यापर वहींका एक सम्पन्न ब्राह्मण युवक भद्रतनु आसक्त था। यद्यपि बचपनमें भद्रतनु अत्यन्त धार्मिक एवं सदाचारी था, किंतु सङ्गदोषसे उसके सब धार्मिक कृत्य छूट गये। क्रमशः वह कुपथगामी हुआ। मद्यपान, चोरी, द्यूत—सब दुर्गुण उसमें आ गये। दुर्गुणोंकी तो एक शृङ्खला है। एकको छूते ही सब आ जाते हैं। अब भद्रतनु धर्मकी निन्दा करने लगा। परलोक एवं देवताओंसे उसकी आस्था दूर हो गयी। लोगोंको दिखानेके लिये वह पाखण्ड भी करने लगा।

भद्रतनु वेश्याओंके व्यसनमें पड़कर इसी क्रममें सुमध्याके समीप पहुँचा। सुमध्याके रूपने उसे अत्यन्त आकर्षित किया। वह नित्य उसके समीप जाने लगा। सुमध्याने भी उस ब्राह्मणयुवकसे अनुराग किया। अपने व्यवसायसे उसे घृणा तो थी ही, अब दूसरे सभी पुरुषोंका अपने यहाँ आना उसने बंद कर दिया। उसे भद्रतनुके पतनपर बड़ी दया आती थी। अनेक प्रकारसे मद्य, द्यूत, मांसाहार एवं चोरीके दोषोंको बताकर वह आग्रह करती कि भद्रतनु उन्हें छोड़ दे। हम जिससे स्नेह करते हैं, उसकी बातोंका हमारे हृदयपर प्रभाव पड़ता है। सुमध्याके बार-बारके उपदेशोंसे भद्रतनुने क्रमशः इन व्यसनोंको छोड़ना प्रारम्भ किया।

घोड़ा घासपर दया करे तो खाय क्या? यद्यपि सुमध्याको ब्राह्मणकुमारके पतनपर अत्यन्त दुःख होता था, किंतु वह उसे अपने समीप आनेसे मना करनेमें असमर्थ थी। भद्रतनुके अतिरिक्त उसकी जीविकाका दूसरा कोई साधन नहीं था। उसे यह भी विश्वास नहीं था कि भद्रतनु उसकी बात मान ही लेगा। भय था कि अधिक जोर देनेपर वह और किसीके समीप जाने लगेगा।

अँधेरी रात्रि थी, वर्षा हो रही थी। भद्रतनुने अर्धरात्रिको सुमध्याका द्वार खटखटाया। उसके सब वस्त्र भीग गये थे। भीतर आकर वस्त्र बदलते हुए कहने लगा—'क्षमा करना! आज पिताका श्राद्ध था। इस श्राद्धादिमें मेरी रत्तीभर भी श्रद्धा नहीं; परंतु क्या करूँ, लोगोंके डरसे करना पडा। मैंने किसी प्रकार उसे पूरा किया है। बहुत शीघ्रता करनेपर भी देर हो गयी। मेरा मन तो तुममें ही लगा था। मेरा तो पूजन-श्राद्ध सब तुम्हीं हो। तुम्हे छोड़कर मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिये।'

सुमध्या सुन रही थी। उसे ब्राह्मणके पतनपर दया आ रही थी। कितना मोह! कितना अज्ञान! उसने रोषपूर्वक कहा—"ब्राह्मण! धिक्कार है तुझे! तेरे-जैसे पुत्रसे तो अच्छा

था कि तेरे पिता बिना पुत्रके ही रहते। आज उनके श्राद्धके दिन तू इस नरककुण्डमें डूबने आया है? तूने शास्त्र पढ़े हैं। तुझे यह नहीं लिखा मिला कि श्राद्धके दिन स्त्री-सहवास करनेवाले तथा उसके पितरोंको भी परलोकमें वीर्यपान करना पडता है? मेरे इस हड्डी, मांस, चर्मके शरीरमें ऐसा क्या है, जिसपर तू पागल हो रहा है!

"अरे! मूर्ख! प्राणियोंका जीवन यमराजके दण्डके अधीन है (चाहे जब मृत्यु आ जाती है), यह जानते हुए भी तू निर्भय होकर क्यों सदा पापोंमें लिप्त हो रहा है? जीवनका क्या ठिकाना है? यह तो जलके बुद्बुदेके समान एक ही क्षणमें ध्वंस हो जायगा। इसे नित्य जानकर तू नित्य ऐसे पाप क्यों कर रहा है? 'मृत्यु' ये दो अक्षर जिसके ललाटपर लिखे हैं, वह प्राणी सब प्रकार क्लेश देनेवाले पाप न जाने क्यों करता है? अहो! संसारमें भगवान् महाविष्णुकी माया बड़ी बलवती है, जिससे लोग शत्रुतुल्य पापोंको बटोरकर उलटे हर्षित होते हैं। रे दुराशय! तू अपने शरीरमें पापको स्थान मत दे। जैसे अग्नि अपने आश्रितको दग्ध कर डालती है, इसी प्रकार पाप भी अपने आश्रितको भस्म कर डालते हैं!*

"भाई! विचार कर, और अपने मनको मुझसे हटाकर भगवान्में लगा दे। जो भगवान्के शरण होकर भगवान्को भजता है, वह भगवान्की दुस्तर मायासे सहजमें ही तर जाता है। भगवान् बड़े दयालु हैं! वे तुझे आश्रय देंगे।" यों कहकर सुमध्या चुप हो गयी। उसका हृदय वैराग्यसे पूर्ण हो गया।

'मैंने शास्त्र पढ़े हैं, ब्राह्मण हूँ और फिर भी इस वेश्यासे गया-बीता हूँ।' भद्रतनुके हृदयपर वेश्याके वचनोंसे बडी चोट लगी। वह चुपचाप काष्ठकी भाँति थोड़ी देर सोचता खडा रहा। उसे अपने पूर्वके जप, तप, धर्मका स्मरण आया। क्रमशः अपने पतनका विचार हुआ। उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी। दोनों हाथ जोड़कर उसने वेश्याको प्रणाम किया—'देवि! तुमने मुझे मार्ग दिखाया! पतनके गड्ढेसे मुझे बचाया।'

वहाँसे तुरंत लौटकर भद्रतनु सीधे महामुनि मार्कण्डेयजीके समीप पहुँचा और उनके आदेशसे दान्त मुनिके आश्रमपर जाकर उनसे दीक्षा ग्रहण की। कठोर नियमोंका पालन करते हुए धर्मपूर्वक उसने शेष जीवन व्यतीत किया। उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिये।

भद्रतनुके घरसे बाहर जाते ही सुमध्याने अपने सब आभूषण एवं कीमती वस्त्रोंको एकत्र किया। प्रातः उसने उन्हें बेच डाला। उस मकानको छोड़कर दूसरे स्थानपर एक झोपडीमें संयमपूर्वक भगवान्का स्मरण करते हुए उसने जीवन सफल किया। —सु० सिं०

---

* दुर्मते मैथुन यस्तु कुरुते पितृवासरे। रेतोभोगिन एव स्यु: पितरस्तस्य सोऽपि च॥
यमदण्डान्तरस्थायि जीवित च शरीरिणाम्। तथापि पातकं मूढ कुरुषे निर्भय सदा॥
जलबुद्बुदवन्मूढ क्षणविध्वंसि जीवनम्। किमर्थं शाश्वतधिया करोषि दुरितं सदा॥
ललाटे लिखितं यस्य मृत्युरित्यक्षरद्वयम्। स कथ कुरुते पापं समस्तक्लेशदायकम्॥
अहो माया महाविष्णोरेका बलवती क्षितौ। यत पापमिवामित्रं सन्चेतु हर्षितो जनः॥
स्थानं पापाय मा देहि निज देहे दुराशय। दहत्याश्रयमेनं हि वीतिहोत्र इव ज्वलन्॥

गणिकाका रत्नमुकुट

'आज पता नहीं मेरे किस सौभाग्यका उदय हुआ है ! एक वेश्याके द्वारपर साधु ! कहीं ऐसा न हो कि मेरा परिचय पाकर महात्मालोग चले जायँ !' दक्षिण देशकी उस गणिकाने नगरसे लौटकर देखा कि उसके द्वारके सम्मुख पीपलके पेड़के नीचेके चबूतरेपर वैष्णव संतोंने आसन कर रक्खा है। धूनी जल रही है। छत्ता गाड़कर उसके नीचे ठाकुरजीका सिंहासन लगा दिया गया है। साधुओंमें कोई चन्दन घिस रहा है, कोई पार्षद मल रहा है और कोई तिलक कर रहा है। वेश्याने सोचा कि 'मैं इनका आतिथ्य करनेयोग्य तो हूँ नहीं, मेरा अन्न भला साधु कैसे ग्रहण करेंगे !' वह भीतर गयी। एक चाँदीकी थालीमें स्वर्ण-मुद्राएँ जितनी आ सकीं लेकर उसने लाकर ठाकुरजीके सामने थोड़ी दूरीपर रख दिया।

'मैया ! तू कौन है ? एक साधुने पूछा। इतना द्रव्य श्रद्धासे अनजान स्त्रीका निवेदन करना कम आश्चर्यजनक नहीं था।

'आप और चाहे जो पूछें, परंतु मेरा परिचय न पूछें !' उसने मुख नीचा करके प्रार्थना की।

'साधुसे भयकी क्या बात ?' महात्माने आग्रह किया।

'मैं महानीच हूँ। मेरे पापोंका कोई हिसाब नहीं। सम्भवतः मुझे देखकर नरकके जीव भी घृणा करेंगे। पाप ही मेरा जीवन है। शरीरको बेचकर मेरी जीविका चलती है।' रोते हुए उसने कहा।

'ले जा अपना थाल ! साधु वेश्याओंका धन नहीं लिया करते !' एक साधुने झिड़क दिया।

'महाराज ! मेरे-जैसी महापापिनीसे नरक या नारकीय जीवतक घृणा कर सकते हैं, किंतु गङ्गाजी तो घृणा नहीं करतीं। मैं नित्य गोदा माताकी पवित्र धारामें डुबकी लगाती हूँ। उन्होंने कभी मेरा तिरस्कार नहीं किया। सुना है कि साधु गङ्गाजीसे भी अधिक पवित्र होते हैं। संत तो सुरसरिको भी पवित्र कर देते हैं। आप यदि मुझसे घृणा करेंगे तो फिर कौन पतितोंका उद्धार करेगा ! मेरा दुर्भाग्य !' उसने अत्यन्त दुःखित होकर थाल उठा लिया।

'मैया ! श्रीरङ्गनाथके लिये मुकुट बनवा दे,' मण्डलीमें जो सबसे वृद्ध थे, उन्होंने कहा। गणिकाकी भक्तिभरी वाणीने उन्हें द्रवित कर दिया था।

'जिसकी भेंट संत नहीं लेते, उसकी रङ्गनाथ तो क्या लेंगे ! साधु तो भगवान्से भी अधिक दयालु होते हैं। वे तो उन सर्वेशसे भी अधिक पतितोंपर कृपा करते हैं। जिसका तिरस्कार साधुओंने ही कर दिया, उसके लिये भगवान्से क्या आशा रही।' वह रोती हुई जा रही थी।

'मैया ! उपहार न लेना होता तो मुकुट बनानेका आदेश न देता ! वृद्ध साधुने स्पष्ट समझाया। वह द्रव्य साधुओंने स्वीकार कर लिया। तीन लाख रुपयोंसे वेश्याने एक सुन्दर रत्नजटित मुकुट बनवाया और उसे लेकर वह श्रीरङ्ग पहुँची।

'मैं अपवित्र हूँ, मेरा मन्दिरमें जाना उचित नहीं ! आप मुकुट भगवान्को चढ़ा दें !' भला, श्रीरङ्गनाथके पुजारीजी यह वेश्याका आग्रह कैसे मान लें ! उन्हें तो स्वप्नमें भगवान्ने स्पष्ट आदेश दिया था कि वे उसी वेश्याके हाथसे मुकुट धारण करेंगे। विवश होकर वह मुकुट लेकर गयी। दोनो हाथोंमें मुकुट उठाकर नृत्य करते हुए वह आगे बढ़ी। आज भगवान्के शृङ्गारमें मस्तकपर मुकुट नहीं था। सिंहासन ऊँचा था। मूर्तिके मस्तकतक वेश्याका हाथ पहुँच नहीं सकता था।

उसने मुकुट उठाया। सबने देखा कि श्रीरङ्गनाथके श्रीविग्रहने मस्तक झुका दिया है। वेश्याने मुकुट उठाकर रख दिया। मूर्ति पूर्ववत् हो गयी। मन्दिरके प्राङ्गणमें ही भगवान्की इस असीम कृपाका अनुभव करके उनके दर्शन करते हुए ही उसने शरीर छोड़ दिया। —सु० सिं०

कान्हू पात्रा

'तबलेपर थाप पड़ते ही मेरा कलेजा टूटने लगता है, मा !' मंगलवेढ़ाकी प्रसिद्ध गणिका श्यामाकी पुत्री कान्हू पात्राने रोते-रोते कहा। सारंगीकी मधुर ध्वनि बर्छीकी अनीकी तरह मेरी रग-रगमें चुभती है, शत-शत वृश्चिक-दंशन-सी पीड़ा

मुझे होने लगती है। मंजीरके झनझनाते ही मैं अधीर हो जाती हूँ और बगलेकी पाँखकी तरह उज्ज्वल वस्त्रोंसे सजे रसिकोंको देखती हूँ, तो मेरा दम घुटने लगता है। वे मुझे यमदूतकी भाँति भयानक दीखते हैं, मा! मुझसे यह सब नहीं हो सकेगा। मुझे क्षमा कर दो।'

'पेट बड़ा अधम है, बेटी! श्यामाने पुत्रीके माथेपर हाथ फेरते तथा बालोंको सहलाते हुए कहा। 'इसके लिये मनके पवित्र भावोंका दमन करके, अपना सर्वनाश करके, विषकी कड़वी घूँटकी भाँति इसे पीना पड़ता है, मेरी बिटिया! पहले तो सचमुच मन छटपटा उठता है, पर थोड़े ही दिनोंमें आदत पड़ जाती है। हमारी जीविका ही यही है, मेरी रानी बेटी!'

'पर ऐसी जीविकापर मैं थूक दूँगी, मा!' कान्हू पात्राने स्पष्ट शब्दोंमें माको अपना निश्चय सुनाया। 'मनकी पवित्र भावनाओंका दमन करके उद्दाम वासनाके पंकमें मैं नहीं फँसना चाहती। विषकी घूँट पीना मुझे अभीष्ट नहीं है। मैं चिथड़ेसे अपना तन लपेटकर भीख माँगकर खा लूँगी। भीख नहीं मिली तो बिना खाये भगवान्‌का नाम लेकर लेट रहूँगी; पर अपना धर्म, अपना सतीत्व उन समाजके दुर्दान्त नारकीय कीड़ोंके चाँदीके टुकड़ोंपर समर्पित नहीं कर सकूँगी, मा! क्षुधाकी असह्य ज्वालासे तड़प-तड़पकर मैं कुत्तेकी मौत मर जाना पसंद करूँगी; पर इस घृणित जीविकाका सहारा मैं नहीं लूँगी, अम्मा! नहीं लूँगी।' कान्हूकी आँखें बरस रही थीं। उसका आँचल भीग गया था।

'बेटी! मैं तो तेरे भलेकी दृष्टिसे कह रही हूँ।' श्यामा अपनी पुत्रीका भाव देखकर डर गयी थी। उसने देखा, लालन-पालनका सारा कष्ट मेरा व्यर्थ जा रहा है। पर जननीकी दया भी उसमें थी। अत्यन्त स्नेहसे उसने कहा—'किसी धनी पुरुषका ही पल्ला पकड़ ले। एकके ही पास रह जा! तेरी खूबसूरतीपर अप्सराएँ भी शर्माती हैं। संकेतमात्रपर कितने धन-कुबेर तेरे पैरोंको चूम लेंगे। यह यौवन सदा नहीं रह सकेगा ......'

'मेरी जान लेकर ही दम लेगी क्या, मा?' बीचमें ही रोककर अत्यन्त दुःखसे कान्हूने कहा। 'अस्थि-रक्त-मांस-निर्मित किसी भी पुतलेके कण्ठमें मेरी बाँहें नहीं पड़ सकेंगी।'

कान्हू उठकर दूसरे कमरेमें चली गयी और फफक-फफककर रोने लगी। वारकरी श्रीविठ्ठल-भक्तोंके एक दिनके भजन और उपदेशका उसपर इतना प्रभाव पड़ गया था। उसके पूर्वजन्मके शुभ-संस्कार उदित हो गये थे। जगत्‌की अस्थिरता और नश्वरता तथा पापका भीषण परिणाम उसकी आँखोंमें नृत्य कर रहा था!

× × ×

'भगवान् पाण्डुरंगके एक बार—केवल एक बार दर्शन कर लेने दो, भैया!' गिड़गिड़ाते हुए कान्हूने बेदर बादशाहके सिपाहियोंसे प्रार्थना की। कान्हूके सौन्दर्यकी ख्याति सुनकर वह बादशाह इसपर लुब्ध हो गया था। 'कान्हू अपनी माको छोड़कर पण्ढरपुर चली गयी है। अगर वह सिधाईसे न आ सके तो जबर्दस्ती मेरे हरममें उसे ले आओ!' बादशाहने अपने सिपाहियोंको आज्ञा दे दी थी। सिपाही अपने अन्नदाताकी आज्ञाका पालन कर रहे थे।

'बादशाहकी गोदमें लेटनेके लिये तुम्हें चलना ही पड़ेगा,' क्रोधसे एक सिपाहीने कहा। 'तुम्हें ढूँढनेमें हमलोगोंकी दुर्दशा हो गयी है।'

'केवल एक बार......' कान्हू फूट-फूटकर रो रही थी।

'दर्शन कर लेने दो!' पाण्डुरंग-कृपासे सरल बालिकाके रुदनपर एक सिपाहीने द्रवित होकर कहा। हमलोग मन्दिरके द्वारपर खड़े रहेंगे। दर्शन करके निकलते ही पकड़ लेंगे।'

× × ×

'मेरे पाण्डुरंग!' अत्यन्त व्याकुलता तथा करुणा-विगलित हृदयसे रुदन करती हुई कान्हू पात्राने भगवान्‌के सामने खड़ी होकर प्रार्थना की—'प्रभो! मेरे मा-बाप और भाई—सब कुछ तुम्हीं हो। जिस विपत्तिसे त्राण पानेके लिये मैं माका साथ छोड़कर यहाँ भाग आयी थी, वही विपत्ति पुनः मेरे सिरपर आ रही है। नरकमें ले जानेके लिये यमदूत बाहर ही खड़े हैं, नाथ! मुझे तुम्हारे चरणोंके सिवा और कोई सहारा नहीं है, देव! मुझे उबार लो।' कान्हूने अपना सिर भगवान्‌के चरणोंमें झुकाया; बस, उसी क्षण उसका शरीर अचेत हो गया। उसके तनसे एक ज्योति निकली, वह

भगवान्‌के विग्रहमें विलीन हो गयी।

बेदरशाहके सिपाही मुँह लटकाये चले गये ! कान्हू पात्राकी अस्थियाँ मन्दिरके दक्षिण द्वारपर गाड़ी गयीं । मन्दिरके समीप कान्हू पात्राकी मूर्तिके दर्शन कर आज भी पतितजन पावन बन रहे हैं । —शि० दु०

वेश्या चिन्तामणि

चिन्तामणि पण्या नहीं थीं । वे गायिका थीं । अपने अद्भुत लावण्य, मनोहर संगीत तथा कलापूर्ण नृत्यसे उन्होंने पर्याप्त सम्मान प्राप्त किया था । नगरके प्रायः सभी सम्पन्न युवक उनके यहाँ आते और अपने संगीतसे वे उनका मनोरञ्जन करतीं ।

अन्ततः नारीहृदय किसीको अर्पित हुए बिना अपनेको पूर्ण नहीं मान सकता । नगरका सर्वश्रेष्ठ सम्पन्न ब्राह्मण-युवक बिल्वमंगल चिन्तामणिको राजपथपर देखकर आत्मविस्मृत हो गया । उस रूपराशिके सम्मुख उसका संयम स्थिर न रह सका । रात्रिमें वह चिन्तामणिके समीप पहुँचा । सुन्दर गौरवर्ण स्वस्थ सुपुष्ट शरीर । संयम और सदाचारके तेजने युवकको अत्यन्त सुन्दर बना दिया था । चिन्तामणिका हृदय भी आकर्षित हुआ । दोनोंने परस्पर एक दूसरेको उत्सर्ग कर दिया ।

युवक बिल्वमङ्गल प्रतिभाशाली कवि था । उसका काव्य चिन्तामणिका कोकिल कण्ठ, लोकोत्तर गायन एवं नृत्यकलाको पाकर सार्थक हो गया । चिन्तामणिकी कला भी उस काव्यको प्राप्तकर सफल हुई । दोनोंका प्रेम प्रगाढतर होता गया । अब किसीको दूसरेके बिना कुछ क्षण भी विश्राम नहीं था । युवकके नियम, संयम, धर्म, कर्म—सब समाप्त हो गये । वह अब चिन्तामणिके गायनमें ही मुग्ध रहने लगा । चिन्तामणिका भी कहीं आना-जाना बंद हो गया । उन्होंने सेवकोंको आदेश दे दिया कि उनके यहाँ कोई आने न पावे । सब प्रकार वे उसी युवकको प्रसन्न करनेमें तत्पर रहने लगीं ।

पिता रुग्ण थे । सन्देशपर सन्देश आते थे; किंतु बिल्वमङ्गल भला, चिन्तामणिको छोड़कर कैसे जायँ । चिन्तामणिने उन्हें घर जानेको विवश किया । दैवेच्छा, पिताने शरीर छोड दिया । अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न करनेमें रात्रि हो गयी । वर्षाके दिन, बढ़ी हुई नदी और अँधेरी रात्रि । हाथको हाथ नहीं सूझता था । जो भी हो, बिल्वमङ्गलको तो चिन्तामणिके समीप पहुँचना ही है । यह साधारण वैषयिक प्रेम नहीं था । प्रगाढ़ होकर वह विशुद्ध हो चुका था । नदीमें कूद पड़े । किसी प्रकार तैरकर पार हुए ।

चिन्तामणि सोतेसे जगानेपर उठी थीं । उन्होंने सब सुना । उनका प्रेम भी लौकिक नहीं था । वे बिल्वमङ्गलसे सच्चा प्रेम करती थीं । विशुद्ध प्रेम प्रेमास्पदका आत्मकल्याण चाहता है । वह तो मोक्षका प्रशस्त मार्ग है । पतन तो कामके द्वारा होता है । चिन्तामणिके नेत्र भर आये । उन्होंने कहा—

'आज ही आपके पिताने शरीर छोड़ा है । आपकी माता कितनी व्याकुल होगी, यह मैं अनुमान कर सकती हूँ । आपको उन्होंने जन्म दिया है । कम-से-कम आज तो आश्वासन देने आपको उनके समीप रहना था । आप जिस चिन्तामणिके मोहसे इस भयकर रात्रिमें बढ़ी हुई नदीको तैरकर, मृत्युकी उपेक्षा करके आये हैं, वह क्या है ? हड्डी, मांस, स्नायु, रक्त, थूक, केश प्रभृति घृणित एवं अपवित्र वस्तुओंके अतिरिक्त मेरे इस शरीरमें क्या है ? आप प्रतिभाशाली कवि हैं । तनिक कल्पना तो कीजिये कि मेरे सर्वाङ्गमे शीतलाके दाग पड़ गये हैं । मुझे गलित कुष्ठ हो गया है और घावोंसे राध बह रही है । क्या यह असम्भव है ? इसी रूपके पीछे आप पागल हो गये है । सच्चे चिन्तामणि तो वे नवनीलनीरदच्छवि, मयूरपिच्छधर नन्द-नन्दन हैं । उन्हे

प्राप्त करनेपर चिन्ताएँ सदाके लिये मिट जाती हैं। उनकी अपार रूपराशिकी एक किरण ही इस सम्पूर्ण जगत्को सौन्दर्य देती है। कितनी तुच्छ, कितनी घृणित है यह वेश्या उनके सम्मुख। जितना प्रेम आपका इस नश्वर शरीरपर है, उतना यदि उनसे हो—कृतार्थ हो जाय यह चिन्तामणि भी।'

चिन्तामणि अपने शयन-कक्षके एक मनोहर चित्रकी ओर, जिसे उन्होंने स्वयं बनाया था, संकेत कर रही थीं बार-बार। बिल्वमङ्गल कवि थे। प्रतिभाशाली थे। उनका जीवन सदाचारपूर्ण व्यतीत हुआ था। अब भी उनमें कोई दुर्व्यसन नहीं था। चिन्तामणिसे उनका सच्चा प्रेम था। एक-एक शब्द उनके हृदयपर बैठता जा रहा था। जैसे कोई अत्यन्त श्रद्धालु शिष्य गुरुदेवके उपदेशोंको श्रवण करता है, वैसे ही एकाग्रचित्तसे वे एक-एक शब्द श्रवण कर रहे थे। उनके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चल रहा था।

'देवि! तुम मेरी गुरु हो! तुम्हारा आदेश मुझे हृदयसे स्वीकार है।' बड़ी कठिनतासे भरे हुए कण्ठसे उन्होंने कहा और शीघ्रतापूर्वक प्रणाम करके लौट पड़े। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि व्रजमें पहुँचकर ही उन्होंने अपना विश्राम-स्थान बनाया। अपने 'श्रीकृष्णकर्णामृत' के मङ्गलाचरणमें उन्होंने सर्वप्रथम गुरुरूपसे चिन्तामणिका स्मरण किया है।

रात्रिभर चिन्तामणि रोती रहीं। वे बिल्वमङ्गलकी कल्याण-कामनाके लिये भगवान्से प्रार्थना करती रहीं। सबेरा होते ही उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दीनोंमें वितरित कर दी। एक सादी साड़ी पहनकर अपने विशाल भवनका उन्होंने त्याग कर दिया। फूसकी एक झोपड़ीमें वन्यफल एवं कन्दमूल-पर निर्वाह करती हुई निरन्तर भगवान्का स्मरण करने लगीं। उनका शेष जीवन एक साध्वी, तपस्विनी नारीके लिये आदर्श जीवन था। —सु० सिं०

सती रूपमती

शील और आचार किसीकी पैतृक सम्पत्ति नहीं। यह तो पवित्र सुरसरिकी धारा है। प्रत्येकको इसमें निमग्न होने-का अधिकार है। जो इसमें स्नान करेगा, पवित्र हो जायगा। उसके पाप-ताप धुल जायँगे और वह लोकपूजित हो जायगा।

रूपमती एक वेश्याकी पुत्री थीं। माताने उन्हें नृत्य एवं संगीत सिखलाया था। संगीत-कलामें वे इतनी कुशल थीं कि कहते हैं, प्रसिद्ध गानविशारद तानसेन भी उनसे कुछ सीख गये थे। उज्जैनसे ५५ मील दूर मालवामें उनका जन्म हुआ था, किंतु उनकी कीर्ति सम्पूर्ण देशमें व्याप्त हो गयी थी। मालवानरेश बाजबहादुर नृत्य-संगीतके विख्यात प्रेमी थे। रूपमतीका जब अपने राजासे साक्षात् हुआ तो बाजबहादुर कलापर और रूपमती उनकी गुणग्राहकतापर मुग्ध हो गयीं। बाजबहादुरको उन्होंने अपना हृदय समर्पित कर दिया और नरेशने भी उन्हें अपनी समस्त रानियोंसे अधिक सम्मान दिया। उनके लिये पृथक् भवन बनवा दिया गया।

रूपमती विवाहिता स्त्रीसे भी अधिक बाजबहादुरकी सेवा-में संलग्न रहा करती थीं। उन्होंने नरेशको अपना पति मान लिया था और सदा उनकी आज्ञाका पालन करती थीं। बाजबहादुरका रूपमतीपर अपार प्रेम था। वे प्रायः रात-दिन उनके ही साथ रहते थे। रूपमती बाणविद्यामें निपुण थीं। उन्हें अश्वपरिचालनका पूरा ज्ञान था और आखेट उन्हें रुचिकर था। आखेटमें उनका अश्व बाजबहादुरसे आगे चलता था।

एक दिन रूपमती नरेशके साथ आखेटको वनमें गयी थीं। साथके सेवक पीछे छूट गये। सहसा भीलोंने आक्रमण कर दिया। नरेशपर विपत्ति देखकर रूपमतीने घोड़ेकी लगाम दाँतोंसे पकड़ी। धनुष चढ़ाकर उन्होंने घोड़ा आगे बढ़ाया। उनकी तीव्र बाणवृष्टिने भीलोंको विचलित कर दिया। बाजबहादुर भी शरवर्षा कर रहे थे। भीलोंमेंसे कुछ मारे गये। और शेष आहत होकर भाग खड़े हुए।

अबतक मालवाने बादशाह अकबरके सामने मस्तक नहीं झुकाया था। राजा बाजबहादुरके भोगविलासका समाचार पाकर अकबरने सन् १५९० में एक बड़ी सेना अहमदखाँके नेतृत्व-में भेज दी। भयङ्कर युद्ध हुआ। बाजबहादुरको पराजित होना पड़ा। वे भाग गये। जब अहमदखाँने अन्तःपुरमें प्रवेश किया तो उसने देखा कि राजाके आदेशानुसार राज-सेवकोंने सभी स्त्रियोंको तलवारके घाट उतार दिया है। अहमदखाँके कानोंमें रूपमतीकी कीर्ति पहुँची थी। वह उनको पाना चाहता था। पता लगानेपर मूर्च्छित दशामें रूपमती मिलीं। वे कम घायल हुई थीं और भ्रमवश सेवक उन्हें मृत समझकर छोड़ गये थे।

'पतिविहीन होकर जीनेकी मेरी इच्छा नहीं है। मैं कितनी अभागिनी हूँ कि पतिके इच्छानुसार मेरा अन्त नहीं हुआ। पतिका नाम लेते हुए मुझे शान्तिसे मरने दो।' मूर्छा दूर होनेपर रूपमतीने अपनी चिकित्सामें लगे लोगोंसे कहा।

उन्होंने औषध लेना अस्वीकार कर दिया और पट्टी नोच फेंकनेको उद्यत हो गयीं।

'बाजबहादुर जीवित है। वे केवल भाग गये हैं। अच्छी होनेपर तुम्हें उनके पास भेज दिया जायगा।' अहमदखाँने धूर्ततापूर्वक आश्वासन दिया। रूपमतीको विश्वास हो गया। उन्होंने ओषधि ले ली तथा पट्टी बाँधने दी। उनके इच्छानुसार अहमदखाँने उन्हें शेख अहमदनीके पास भिजवा दिया। वे एक धार्मिक पुरुष थे। बाजबहादुरकी उनपर श्रद्धा थी। रूपमतीने इन अपरिचितोंके मध्यमें रहनेकी अपेक्षा वहाँ रहना अच्छा समझा। ठीक होनेपर जब उन्होंने बाजबहादुरके पास जानेकी इच्छा प्रकट की तो उत्तर मिला कि 'बाजबहादुर अभी बादशाहका शत्रु है। जबतक बादशाहके पास उपस्थित होकर वह क्षमा न माँगे और बादशाह उसे क्षमा न कर दें, तबतक उसके पास किसीको भेजा नहीं जा सकता।'

'चलो, खाँ आपको याद करते हैं। अब बाजबहादुर निर्धन हो गया। खाँका राज्य है उन्हें प्रसन्न करनेमें ही अब तुम्हें सुख मिलेगा। 'यह सन्देश उसी दिन शामको अहमदखाँके दूतने सुनाया। रूपमतीको अब उसके भावका पता लगा। उसने सोचा, प्रतिवाद करना व्यर्थ है। दुष्ट अहमदखाँको कोई रोकनेवाला नहीं। वह पकड़ मँगावेगा और बलप्रयोग करेगा। बड़ा दुःख हुआ उस सरलहृदयाको।

'खाँको कहना,मैं उनकी बादी हूँ। मेहरबानी करके आज वे यहाँ आवें। मैं उनका इंतजार करूँगी। दुःख एवं रोषके भावको दबाकर रूपमतीने हँसते मुख दूतको सन्देश देकर विदा किया। उन्होंने स्नान किया। बहुत सुन्दर वस्त्र पहना। सब बहुमूल्य आभूषण धारण किये। वेणीमें पुष्प गूँथे। सम्पूर्ण शरीरमें इत्र लगाया। भली प्रकार शृङ्गार करके एक शय्यापर बहुमूल्य आस्तरण डाला। उसपर फूल बिछाये। इस प्रकार पूरी तैयारी हो गयी।

'हे परमेश्वर! मैं आत्महत्या नहीं कर रही हूँ। मनसे भी मैंने पतिको छोड़कर किसी दूसरे पुरुषका चिन्तन नहीं किया है। मेरे शीलकी रक्षाका कोई और मार्ग रहा नहीं। मुझे क्षमा करो। परलोकमें पतिके चरण मुझे प्राप्त हों, प्रार्थना करके रूपमतीने भयङ्कर विष पी लिया और मुखपर इत्रमें सना रूमाल डालकर शय्यापर सो गयीं।

अहमदखाँ खूब सजकर आया। उसने समझा रूपमती मेरे आनेमें देर होनेसे रूठकर सो गयी हैं। पुकारनेका परिणाम न होते देख मुखसे रूमाल हटाया। नीले ओठ चढ़े नेत्र,विचित्र

आकृति। पीछे हट गया वह। सिर पीट लिया उसने अपना। रूपमतीके सतीत्वने उस पाषाणको पिघला दिया था।

सारंगपुरमें एक तालाबके पास रूपमतीकी समाधि है। मालवामें रूपमतीके निर्मित सरस पद अबतक प्रेमसे गाये जाते हैं। रूपमती एवं बाजबहादुरके चित्र अनेकों मिलते हैं। उनके अमर प्रेमकी अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं। रूपमती अच्छी कवि थीं। उनकी कवितामें प्रेमका गौरव-गान है। उनके एक पदका भाव है--

'दूसरे दूसरी सम्पत्तियोंका सग्रह करें। मेरा धन तो प्रियतमका प्रेम है। प्रेमका धन मैं सबकी दृष्टिसे बचाकर हृदयमें रखती हूँ। इस धनमें कमी कमी नहीं होती। मेरी सम्पत्ति दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती है। मैंने अपनेको प्रियतमको समर्पित कर दिया है। मेरा प्रेमधन अनन्त है।'

—सु० सिं०

महामायाकी छाया

भारत! भूलना नहीं—तुम्हारी नारी-जातिका आदर्श सीता, सावित्री और दमयन्ती हैं। भूलना नहीं—तुम्हारा समाज विराट् महामायाकी छायामात्र है। —स्वामी विवेकानन्द

श्रीरामजनीजी

संत कृष्णदासके पैर क्षणभरके लिये रुक गये। तबलेकी गमगमाहट, पायलकी रुनझुन और सारङ्गीके मधुर स्वरके साथ गणिका रामजनीकी मधुर स्वर-लहरी थिरक रही थी।

'कितना मधुर स्वर है इस वेश्या-पुत्रीका! वाणी जैसे अमृतमें डुबोयी गयी है। यदि यह हमारे गोवर्धन-धरके सामने गाती तो इसका जीवन, इसका जन्म सफल ......'संतने तुरंत सोच लिया। वे भगवान्‌के लिये वस्त्राभूषण लेने गोवर्धनसे दिल्ली आये थे। गलीमें गणिकाकी मधुर तानपर मुग्ध होकर उन्होंने यह निर्णय कर लिया।

'मेरे ठाकुरके पास चल सकोगी?' सीढ़ीसे उतरते ही कृष्णदासने लावण्यमयी गणिकासे कहा। 'वे अनन्त सम्पत्ति-सम्पन्न और उदार हैं। तुम्हारी दीनता सदाके लिये मिट जायगी।'

'हाँ, हाँ, अवश्य चलूँगी,' धनकी लोभिन गणिकाने उत्तर दिया। 'आपकी आज्ञाके लिये दासीके तन, मन और प्राण सभी प्रस्तुत है।'

× × ×

रामजनीने सोचा था किसी धनवान् जमींदारके यहाँ चलना है। वस्त्राभूषणसे वह पूर्णतया सुसज्जित थी। सौन्दर्य उसका निखर गया था। उसके अङ्ग अङ्गमें आकर्षण था। पुरुषको उन्मत्त बना देनेकी क्षमता थी। भजन रटाते बाबाजी उसे गोवर्धनके मन्दिरमें ले आये। वह चकित थी, पर चुप थी; रुपया तो उसे पहले ही मिल चुका था।

'भजन गाओ, देवि!' श्रीकृष्णदासने अत्यन्त प्रेमसे कहते हुए भगवान्‌का पट खोल दिया।

गणिका रामजनीने भगवान्‌को देखा—केवल एक बार देखा, न जाने कौन-सी सम्मोहक शक्ति थी उस प्रतिमामें। गणिका छक गयी! बिक गयी। उसका मन अपने वशमें नहीं रह पाया। टकटकी लगाये वह गोवर्धनधरकी ओर देखती रही। बहुत देरतक देखती रही।

'प्रार्थना सुनाओ, बेटी!' संतने गणिकाको सचेत किया। उसने समझा मैं गानेके लिये यहाँ आयी हूँ। कृष्णदासजीने उसे एक पद बनाकर मुखस्थ करा दिया था। उसे ही वह गानेका उपक्रम करने लगी।

तबलेपर थाप पड़ी, वह गमक उठा। सारङ्गी काँप गयी। मञ्जीर झनझना उठा। मधुर वाद्योंका एक समाँ बँध गया। रामजनीने गाना आरम्भ किया।

'मो मन गिरिधर छबि पै अटक्यौ' स्वरमें अनुपम मधुरता थी। श्रोता झूम उठे। श्रीकृष्णदासकी आँखें भर आयीं। रामजनीका मन तो सचमुच गिरिधर छबिमें अटक गया था। उसने इस पंक्तिको कई बार दुहराया। प्रत्येक बार उसमें नूतन रस छलकता दीखता था। गणिकाका तो प्राण स्वरोंसे तड़पता हुआ बोल रहा था। गीत आगे बढ़ा—

ललित त्रिभंग चाल पै चलि कै,
चिबुक चारु गहि ठटक्यौ॥ १॥

रामजनी श्यामसुन्दरके रंगमें रँगकर श्यामसुन्दर बन गयी थी। अपनी देहका ध्यान उसे नहीं था। त्रिभङ्गी चाल चलकर चिबुक पकड़कर ठिठकनेका अत्यन्त सुन्दर चित्रण नृत्यमें उसने किया। दर्शक मुग्ध थे।

सजल स्याम घन बरन लीन ह्वै,
फिर चित अनत न भटक्यौ।

जलसे लदे बादलका आकार बनाती हुई वह घनश्यामकी भुवनमोहिनी मूर्तिकी ओर देखने लगी। आँखें उसकी भर आयीं। बड़े साहससे उसने पदके अन्तिम अंशकी पूर्ति की।

कृष्णदास किए प्रान निछावर,
यह तन जग सिर पटक्यौ॥ २॥

रामजनीका पार्थिव शरीर धम्मसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसकी साँस बंद हो गयी थी। भक्तगण उसके सौभाग्यकी प्रशंसा कर रहे थे।

साधु-संत और आचार-विचार रखनेवाले सब लोगोंने भगवान्‌का कीर्तन करते हुए उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की। रामजनी धन्य थी। उसके सौभाग्यपर देवगणोंको भी ईर्ष्या होती है। —शि० दु०

महारानी जिन्दा

यह समझना कि बड़े-बड़े राजप्रासादोंमें रहनेवालोंको सुख-दुःखका अनुभव कम होता है, बहुत बड़ी भूल है। ऐसे लोगोंका जीवन काँटोंका ताज है। उनके कंधोंपर देश, जाति, समाज और राष्ट्रके प्रति बड़े-बड़े उत्तरदायित्व रहते हैं। महारानी जिन्दाका जीवन गुलाबकी सेज नहीं, काँटोंका जाल था। कुछ लोग इस रानीका नाम जिन्दो भी बतलाते हैं। वह पंजाब-केशरी महाराज रणजीतसिंहकी रानी थी। उसने जिस धैर्यसे अपने अन्तिम दिन बिताये, वह एक इतिहासप्रसिद्ध बात है और सर्वथा सराहनीय तथा स्तुत्य है।

सन् १८३९ ई०में महाराज रणजीतसिंहकी मृत्युके बाद पंजाबमें अराजकता फैल गयी। सिखसेना स्वच्छन्दतापूर्वक कार्य करने लगी, प्रत्येक सिख सरदार अपनी रियासतकी सीमा बढाकर सारे पंजाबको हथिया लेना चाहता था। अंग्रेजोंकी गृध्रदृष्टि पंजाबपर लगी हुई थी। महारानी जिन्दाने अपने सेनापति हरिसिंहकी सहायतासे अपने पाँच वर्षके बेटे दिलीपसिंहको राज्यका अधिकारी बनाकर शासनकी बागडोर अपने हाथमें ले ली।

सन् १८४५ ई०में सिखों और अंग्रेजोंकी लड़ाई छिड़ गयी, अंग्रेज जीत गये; लेकिन पंजाब अंग्रेजी-राज्यमें नहीं मिलाया गया। हेनरी लारेन्स वहाँका रेजीडन्ट बनाया गया। इस तरह अंग्रेजोंने महाराज दिलीपसिंहको अपने हाथका खिलौना बनाकर रानी जिन्दाको राज्यके कार्योंसे अलग कर दिया और उसके गुजारेके लिये डेढ लाख रुपयेकी वार्षिक पेन्शन नियत कर दी। रानीने अपनी पेन्शनको दान-धर्ममें लगाना आरम्भ कर दिया। गरीबों और दीन-दुखियोंको अन्न-वस्त्र दिया जाने लगा और वह स्वयं जीवनका शेष भाग भगवान्‌की पूजा और उपासनामें बिताने लगी। लारेन्सको उसका यह आचरण अच्छा न लगा। लगता ही क्यों, वह तो पंजाबको हड़पनेकी तैयारी कर रहा था। रानीकी पेन्शन चालीस हजार रुपयोंकी कर दी गयी। धर्मपत्नी जिन्दाने पेन्शन घटा दिये जानेको अपना अपमान समझा, उसने भीतर-ही-भीतर विद्रोहकी तैयारी आरम्भ कर दी; लेकिन गोरे-प्रभुओंके जासूससे यह बात छिपी न रह सकी, वह बन्दी बनाकर बनारस भेज दी गयी। सिखोंने अपनी रानीको बन्दीके रूपमें देखना महापाप समझा, उन्होंने विद्रोहके पलीतेमें आग लगा दी। सन् १८४९ ई०में चिलियानवालामें भयानक युद्ध हुआ, मैदान सिखोंके हाथ रहा। कुछ दिनोंके बाद गुजरातके युद्धमें सिखोंको बुरी तरहसे अंग्रेजोंने दबा दिया।

महारानी स्वाधीनताके लिये आकुल हो उठी; उसने जेलके फाटक तोड डाले, अपने हाथोंसे ही अपनी पराधीनताकी हथकड़ी-बेड़ी काट डाली। पंजाबमें उस समय विद्रोहकी आग सुलग रही थी; फिर भी वहाँ जाना उसने ठीक नहीं समझा। महारानीने योगिनीका वेष धारण किया और नैपालकी ओर चल पड़ी। सचमुच यह बहुत बड़ी वीरता, साहस और बुद्धिमत्ताका काम था। सन् १८४९ ई०मे वह नैपालके भिन्छाखोटी-नामक स्थानपर पहुँच गयी। उस समय नैपालके प्रधान मन्त्री राणा जंगबहादुर थे; उन्होंने अपने उत्तरदायित्वपर रानीको नैपालमें रहनेके लिये स्थान दिया और कभी भी राज्यकी ओरसे भारतकी स्वतन्त्र राजरानीके स्वागत-सत्कारमें किसी तरहकी कमी न होने दी। अंग्रेजोंने रानीको वापस माँगा और धमकी दी कि नैपाल-सरकार इस माँगकी ओर ध्यान न देगी तो सन्धि-भंगका उत्तरदायित्व उसपर होगा। राणाने अंग्रेजोंको कोरा-सा जवाब दे दिया।

कुछ दिनोंके बाद राजकुमार दिलीपसिंह इंग्लैंड भेज दिया गया। रानी अपने पुत्रको प्राणसे भी बढ़कर प्यार करती थी, वह इंग्लैंड जा पहुँची। वहाँ जाकर उसने जो कुछ देखा, उससे वह पागल हो उठी; दिलीप तो धर्मको तिलाञ्जलि दे चुका था। सती-साध्वी धर्म-परायणा हिंदू-माताके हृदयको बहुत बड़ा आघात पहुँचा और धर्मद्रोही राजकुमारके प्रति उसका वात्सल्य और मातृ-प्रेम घृणा और उपेक्षामें परिवर्तित हो उठा।

महारानीने अनेक कष्ट सहकर भी सतीत्व और धर्म तथा कर्तव्यसे कभी मुख न मोड़ा। सन् १८६३ ई०में इस तपस्विनी और आदर्श हिंदू-नारीका इंग्लैंडमें ही देहावसान हो गया। —रा० श्री०

देवी अमरो

देवी अमरो प्रसिद्ध सिक्ख गुरु अंगदजीकी पुत्री थीं। धार्मिक भावना उनमें कूट-कूटकर भरी थी; पर उनका जीवन-सूत्र जिन अमरदासके साथ जुड़ा, वे धर्मकी अवहेलना करनेवाले थे। धर्मके प्रति उनके मनमें कोई भी श्रद्धा नहीं थी।

अमरो इस बातसे रात-दिन दुखी रहती थी। सिक्खोंके द्वितीय गुरुकी पुत्रीका पति धार्मिक न हो, उसके लिये इससे बढ़कर लज्जाकी और कोई बात नहीं थी। पतिकी रुचि धर्मकी ओर केन्द्रित हो जानेके लिये वह शुद्ध मनसे भगवान्से करुण प्रार्थना किया करती थी। पति जब भी उसके पास आते, वह उनके सामने धर्मकी महत्ता वर्णन करने लगती। धार्मिक कथाओंको इतने प्रेमसे, इतनी श्रद्धा और इतने मार्मिक ढंगसे वह सुनाती कि उसके पति मन्त्रमुग्धकी तरह उसे सुनते रहते।

प्रातःकालका मनोहर समय था। अंशुमालीकी गुलाबी रश्मियाँ धरातलकी वृक्ष-लताओं और कण-कणको अपने रंगमें डुबा रही थीं। शीतल पवन धीरे-धीरे बह रहा था। अमरो अत्यन्त मधुर स्वरसे प्रभुका भजन गा रही थी। उसकी वाणीमें जैसे अमृत घुला हुआ था।

'अबसे मैं भी भगवद्भजन करूँगा प्राणेश्वरी' अमरदासने पूरा भजन पीछेसे सुन लिया था। उन्होंने कहा 'इसे फिर सुनाओ।'

अमरोके वदनपर हँसी खेल गयी। जी खोलकर उसने भजन गाया। अमरदास झूम रहे थे।

अमरदास सिक्खोंके प्रसिद्ध तृतीय गुरु हुए, यह सभी जानते हैं। इसका श्रेय देवी अमरोको ही है। सिक्खोंके द्वितीय गुरु अंगदजी स्त्री-जातिको पूज्य समझकर अत्यन्त श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे।—शि० दु०

देवी साहेबकुँवर

सिक्खोंके प्रसिद्ध और पूज्य गुरु गोविन्दसिंह पाँच वीर योद्धाओंको अपने धर्मकी दीक्षा दे रहे थे। वे कह रहे थे 'विश्वकी प्रत्येक जातिके प्रत्येक व्यक्तिको ही नहीं, अपितु प्रत्येक चराचर प्राणीको भगवान्‌को प्राप्त करनेका अधिकार है। भगवान् परम पिता हैं। करुणाके सागर हैं। समस्त प्राणियोंके मस्तकपर उनका करुणामय, प्रेममय और परम शान्तिमय वरद कमलहस्त है। खालसा जातिका यही धर्म है। वह विश्वके सभी मनुष्योंको समेटकर एक सूत्रमें ग्रथित कर देना चाहती है।'

'नैवेद्य ग्रहण करें!' गुरु गोविन्दसिंहकी धर्मपत्नीने मस्तक झुकाये कहा। वे अमृतरस तैयार करके लायी थीं। साथमें बतासा भी था।

'तुम ठीक समयपर आयी' बतासेको अमृत-रसमें डुबाते हुए गुरु गोविन्दसिंहने कहा। 'योग्य नारी पुरुषके जीवनमें मधुमय अमृत उँडेलकर उसके जीवनमें सुख-शान्तिकी सरिता प्रवाहित कर देती है। पुरुषको नारीका कृतज्ञ होना चाहिये।'

साहेबकुँवर परम चतुर और धार्मिक नारी थीं। इसी कारण इन्हें गुरु गोविन्दसिंहकी धर्मपत्नी बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। दीक्षा लेते समय सिक्खोंने कहा था—''गुरु गोविन्दसिंहजी हमारे पूज्य पिता और साहेबकुँवर हमारी परम पूजनीया जननी हैं।'—शि० दु०

देवी शरणकुँवर

अग्निकी भयङ्कर लपटें देखकर मुगल-पठान दौड़ पड़े। समर-भूमिकी लहू-लुहान लाशोंको रौंदते हुए वे चले गये।

'तुम कौन हो?' भयङ्कर चिताग्निके पास खड़ी षोडशी बालिकाको देखकर एक पठानने प्रश्न किया। अर्ध-रात्रिके प्रगाढ़ तममें जब आकाशमें काले बादल मँडरा रहे थे, इस बालिकाने सिक्खोंके शवको एकत्रकर इतनी बड़ी चिता कैसे बना ली?

बालिकाने पंजाबके सीमा-क्षेत्रपर वीर सिक्खोंकी मृत्यु होनेपर सोचा था—'इन वीरोंकी मा-बहनें होतीं तो इनकी लाशोंकी दुर्गति नहीं होती। शृगाल-कुत्ते और चील्हके पेटमें इनका मास नहीं जाता। पर इनकी बहिन मैं जीवित हूँ। मैं अपने कर्तव्यका पालन करूँगी।'

लाशोंपर पैर रखते हुए बालोंको देखकर उसने सिक्खोंके शव एकत्र किये थे, एकाकी, तिमिराच्छन्न निशीथमें। वह थक गयी थी। फिर भी विशाल चिता तैयार करके उसने उसमें आग लगा दी।

यह बात ऐसी थी, जिसे वह प्रकट नहीं करना चाहती थी। असत्य भाषण भी वह नहीं कर सकती थी। वह मौन थी।

क्रुद्ध पठानोंने उसे उठाकर चितामें डाल दिया। क्षणभरमें उसके शरीरका अस्तित्व लोप हो गया।

शरणकुँवरका जन्म गुरु गोविन्दसिंहके समयमें हुआ था।—शि० दु०

विदुषी लीलावती

बहुत दिनोंकी बात है, भारतके प्रत्येक विद्यार्थी और अध्यापककी जीभपर साध्वी लीलावतीका नाम रहता था। लीलावती गणितविद्याकी आचार्या थीं; जिस समय विदेशी गणितका क-ख-ग भी नहीं जानते थे, उस समय उसने गणितके ऐसे-ऐसे सिद्धान्त सोच डाले, जिनपर आधुनिक गणितज्ञोंकी बुद्धि चकरा जाती है।

दसवीं सदीकी बात है, दक्षिण भारतमें भास्कराचार्य नामक गणित और ज्यौतिष विद्याके एक बहुत बड़े पण्डित थे। उनकी कन्याका नाम लीलावती था। वही उनकी एकमात्र सन्तान थी। उन्होंने ज्योतिषकी गणनासे जान लिया कि 'वह विवाहके थोड़े दिनोंके ही बाद विधवा हो जायगी।' उन्होंने बहुत कुछ सोचनेके बाद ऐसा लग्न खोज निकाला, जिसमें विवाह होनेपर कन्या विधवा न हो। विवाहकी तिथि निश्चित हो गयी। जलघड़ीसे ही समय देखनेका काम लिया जाता था। एक बड़े कटोरेमें छोटा-सा छेद कर पानीके घड़ेमें छोड़ दिया जाता था। सूराखके पानीसे जब कटोरा भर जाता और पानीमें डूब जाता था तब एक घड़ी होती थी। विधाताका ही सोचा होता है। लीलावती सोलह श्रृङ्गार सजकर बैठी थी, सब लोग उस शुभ लग्नकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि एक मोती लीलावतीके आभूषणसे टूटकर कटोरेमें गिर पड़ा और सूराख बंद हो गया; शुभ लग्न बीत गया और किसीको पतातक न चला। विवाह दूसरे लग्नपर ही करना पड़ा; लीलावती विधवा हो गयी, पिता और पुत्रीके धैर्यका बाँध टूट गया।

पुत्रीका वैधव्य-दुःख दूर करनेके लिये भास्कराचार्यने उसे गणित पढ़ाना आरम्भ किया। उसने भी गणितके अध्ययनमें ही शेष जीवनकी उपयोगिता समझी। थोड़े ही दिनोंमें वह उक्त विषयमें पूर्ण पण्डिता हो गयी। पाटीगणित, बीजगणित और ज्यौतिष विषयका एक ग्रन्थ 'सिद्धान्त-शिरोमणि' भास्कराचार्यने बनाया है। इसमें गणितका अधिकांश-भाग लीलावतीकी रचना है। पाटीगणितके अंशका नाम ही भास्कराचार्यने अपनी कन्याको अमर कर देनेके लिये 'लीलावती' रक्खा है।*

मनुष्यके मरनेपर उसकी कीर्ति ही रह जाती है। लीलावतीने गणितके आश्चर्यजनक और नवीन, नवीनतर तथा नवीनतम सिद्धान्त स्थिरकर विश्वमात्रका उपकार किया है। वैधव्यने उस साध्वी नारीकी कीर्तिमें चार चाँद लगा दिये।

सती खना

गणितमें लीलावती और ज्योतिषमें खनाका नाम बहुत प्रसिद्ध है। खना लङ्काद्वीपके एक ज्योतिषीकी कन्या थी। सातवीं या आठवीं सदीकी बात है। उज्जयिनीमें महाराज विक्रमका राज्य था। उनके दरबारमें बड़े-बड़े कलाकार, कवि,पण्डित, ज्योतिषी आदि विद्यमान थे। वराह ज्योतिषियोंका अगुआ था। उसकी गणना नवरत्नोंमें होती थी। इतिहासज्ञ वराहमिहिरके नामसे परिचित हैं। मिहिर वराहका लड़का था। मिहिरका जन्म होनेपर वराहने गणना करके देखा कि मिहिरकी आयु केवल दस सालकी थी; परंतु यह उसकी भूल थी। उसने गणना करते समय एक शून्य छोड़ दिया था, उसकी आयु सौ सालकी थी। वराहने उसे एक हॉंडीमें बंदकर क्षिप्रा नदीमें फेंक दिया, हॉंडी व्यापारियोंके हाथ लगी; उन्होंने उसे पाल-पोसकर बड़ा किया और काममें लगा दिया। मिहिर होनहार तो था ही, ज्यौतिषविद्या उसकी पैतृक सम्पत्ति थी; वह घूमता-फिरता लङ्कामें एक ज्योतिषीके घर पहुँचा। उसने ज्योतिषका अध्ययन किया। ज्योतिषीकी कन्यासे उसका विवाह हो गया, जो ज्योतिषमें पारङ्गता थी। कालान्तरमें उसने भारतयात्रा की। उज्जयिनीमें भी आकर उसने वराहतकको परास्त किया। किसी तरह वराहको पता चल गया कि यह उसका ही पुत्र है।

अब ज्योतिषके कड़े-से-कड़े प्रश्न हल हो जाया करते थे। कभी-कभी घरके भीतर बैठी खना ससुरको बड़ी-से-बड़ी भूलका ज्ञान करा देती थी। नगरवाले नहीं जानते थे कि मिहिरकी पत्नी इतनी विदुषी है। वराह उसकी विद्वत्तापर मन-ही-मन कुढ़ता था। उसे यह बात कभी नहीं अच्छी लगती थी कि समय-समयपर मेरी गणनामें भूल निकाला करे। खनाको ऐसी-ऐसी गणनाएँ आती थीं; जिनका वराह या मिहिरको थोड़ी मात्रामें भी ज्ञान नहीं था।

*'लीलावती' ग्रन्थमें आये हुए 'सखे' 'मृगनयने' 'कान्ते' आदि सम्बोधनोंके कारण कुछ लोग लीलावतीको भास्कराचार्यकी सहधर्मिणी मानते हैं।

एक दिन राजाने तारागणोंके सम्बन्धमें वराहसे कठिन प्रश्न किया। उसने मौका माँगा। सन्ध्या-समय घर लौटकर वह प्रश्न हल करने लगा, परंतु किसी प्रकारसे मीमांसा न हुई। रातमें भोजन करते समय बात-की-बातमें खनाने उसे समझा दिया; वराह यह सोचकर प्रसन्न हुआ कि पुत्र-वधू-की विद्यासे राजसभामें मेरा मान बना रहेगा। दूसरे दिन राजाने हलकी विधि पूछी। वराहको कहना ही पड़ा कि प्रश्न-का हल खनाने किया है। राजा तथा सभा-सदस्य चकित हो उठे। राजाने कहा, 'उसे आदरके साथ सभामें लाइये, हम और प्रश्न करेंगे।' वराहको यह बात अच्छी न लगी। उसने घर आकर पुत्रको खनाकी जीभ काट लेनेकी आज्ञा दी। मिहिर पिताके आज्ञापालन और सती-साध्वी विदुषी खनाके प्रेमसे घिर गया। खनाने मिहिरको समझाया कि स्त्रीके मोह या प्रेमसे अधिक महत्त्व पिताकी आज्ञाका पालन करनेमें है; उसने कहा कि 'मेरी मृत्यु किसी दुर्घटनासे होगी, इसलिये आप निर्भय होकर जीभ काट लें।'

मिहिरने पतिव्रताकी बात मान ली। उसने उसकी जीभ काट ली। इस तरह साध्वी खनाने पतिको स्वधर्मपरायणता-की सच्ची सीख दी और ससुरको अपनी कुलवधूको राजदरबार-में उपस्थित करनेसे बचा लिया।

किसान और देहाती जन खनाके बताये सिद्धान्तों और गणनाओंसे पानी बरसने, सूखा पड़ने आदिका भविष्य बतलाते हैं। —रा० श्री०

भडली

श्रावण पहिले पाँचे दिन, मेघ न माँडे आव।
पिया पधारौ मालवा, मैं जैहौं मौसाल॥
पूरव दिसिमें काचबी, जो आथमते सूर।
भडली वायक इमि मडे, दूध जमाऊँ कूर॥
सनि, आदित या मंगलहिं, जौं पौढ़ै जदुराय।
चाक चढावै मेदिनी, पृथ्वी परलै थाय॥
सावन सुक्ला सप्तमी उदय न दीखै भानु।
तब लगि देव बरसहीं, जब लगि देव उठान॥
अंडा लै चींटी चढ़ै, चिडो नहावै धूर।
ऊँचे चील उडान लै, है बरसा भरपूर॥

ये कृषकोंके लिये जीवनसूत्र हैं। काठियावाड़से लेकर उत्तरभारततक इनका प्रचार है। इस प्रकारके सूत्ररूप दोहे ऋतुके सम्बन्धमें, उपजके सम्बन्धमें, पशुओंके सम्बन्धमें तथा कृषि-पशु एवं मनुष्योंके रोगोंके सम्बन्धमें ग्रामोंमें अत्यन्त प्रचलित हैं। ये प्रायः ज्यों-के-त्यों सत्य सिद्ध होते हैं। पता नहीं, कितने दीर्घकालीन अनुभव एवं गहन ज्योतिषका तत्त्व इनमें निहित है।

मारवाड़के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी हुदादकी कन्या भडलीने इस प्रकारके दोहोंका निर्माण किया है। ये दोहे ही बताते हैं कि उनका ज्योतिषसम्बन्धी ज्ञान कितना विशाल था। प्रायः भडलीके दोहे अत्यन्त सरल ग्रामीण भाषामें हैं। सूत्रकी भाँति उनमें पूरी बात कह दी गयी है। ग्राम्य कृषकोंके लिये तो वे पुराण हैं।

पितासे भडलीने ज्योतिषका ज्ञान प्राप्त किया था। साथ ही बड़ी सावधानीसे उन्होंने दीर्घकालतक प्रकृतिका सूक्ष्म निरीक्षण किया था। उनके ज्ञान एवं अनुभवके द्वारा आज भी असंख्यों कृषकोंका उपकार हो रहा है। —सु० सिं०

उठो !

उठो बहनो! क्या सोच-विचार।
आज छाया है कौन खुमार।
वीर थीं तुम तो पहले धीर,
भीरु क्यों बनती अब लाचार!

कहाँ वह कर्म धर्म-अनुकूल,
कहाँ वह जीवन सुखका मूल,
देख यह पश्चिमीय अँधियाव,
वही क्यों जाती सुध-बुध भूल॥

बनी जाती हो क्यों नादान,
भूलकर वह अपना अभिमान।
शिवा, राणा-सी वीर महान,
तुम्हींने पैदा की संतान॥

उठा लो अपना शस्त्र कृपाण,
करो भारतका नव-निर्माण,
गुँजा दो नभमें गौरव-गान,
जग उठे हिंदू-राष्ट्र महान!!

—कु० शैल गर्ग

दक्षिणके नारी-पञ्चरत्न

(लेखक—श्री १००८ श्रीकाञ्ची कामकोटिपीठाधीश्वर श्रीश्रीशङ्कराचार्यजी महाराज)

द्रविड़देशके शैव-सम्प्रदायमें प्राचीन ६३ शिव-भक्तोंको प्रधान माना जाता है। उन्हें 'नायनमार' कहते हैं। इनके रचित अनेक भावपूर्ण ग्रन्थ हैं। इनमें तीन नारियाँ हैं, जो महाशिवभक्ता हो गयी हैं। श्रीपुनीतवती, श्रीमङ्गैयर्करशि और श्रीतिलकवती। उस समयके विष्णुभक्तोंमें बारह मुख्य माने जाते हैं। भगवान् नारायणकी भक्तिधारा उनके ग्रन्थोंमें अबाध प्रवाहित होती है। उनके गीत वेदाध्ययनकी भाँति वैष्णवोंद्वारा गाये जाते हैं। इन्हें 'आळ्वार' कहते हैं। 'आळ्वारों'में भक्तिमती श्रीआडाल (गोदा) मुकुटमणिके समान हैं। इनके अतिरिक्त श्रीमती औवैयार दक्षिणमें सर्वमान्य नारी-संत हो गयी हैं। इन पञ्चरत्नोंका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

१—श्रीमती औवैयार

दक्षिण भारतकी जो भूमि 'श्रीकाञ्ची', 'श्रीकावेरी' और 'श्रीकुमारी'–शक्तित्रयरूपसे भूषित है, जहाँ पावनतम तीर्थक्षेत्र एवं पीठ हैं, उसी पुण्यक्षेत्रमें दो सहस्र वर्ष पूर्व ये संत-स्त्री महात्मा आविर्भूत हुईं। झोपड़ीसे राजसदनतक वृद्धाओंकी कहानियों एवं बच्चोंकी तोतली वाणीमें इनका सुयश विस्तीर्ण है। श्रीमती औवैयारका स्थान दक्षिणी संतोंमें प्रथम है। 'क्रोध मत करो !' 'धर्म करो !' 'माता-पिता हमारे प्रत्यक्ष देव हैं' ये औवैयारके उपदेश-वाक्य हमारी पाठशालाओंकी शिशुकक्षाके पाठ बन चुके हैं।

दो पदोंके छोटे ग्रन्थोंसे लेकर मोक्षप्रद गूढ आध्यात्मिक विशद ग्रन्थोंका निर्माण औवैयारने किया है। यहाँ उनकी महिमा व्याप्त है। ग्राम्य लोकोक्तियोंमें उनके महावाक्य विकीर्ण हुए हैं। श्रुतिकी भाँति औवैयारका उद्धरण देते ही प्रतिवादीको कुण्ठित हो जाना पड़ता है। इन महासतके परमाराध्य भगवान् गणपति थे; फिर भी इनके ग्रन्थोंमें जनसाधारणके लिये शिव-विष्णु-प्रभृति श्रीविग्रहोंकी उपासनाकी अपार प्रेरणा है।

औवैयारका चरित उत्तम गुणोंका आदर्श है। इनके प्रकाशित ग्रन्थोंसे कहीं अधिक अप्रकाशित ग्रन्थ हैं। तंजोर जिलेमें 'मायूर अरन्ताङ्गि (Mayavaram to Arantangi) रेलवेमें तिरुत्तैविलाकम् स्टेशनके समीप कर्पनारकोयिल अथवा तिरुकडिकुलम् एक प्राचीन शिवक्षेत्र है। उसके समीप तुलसियार पट्टनम् ग्राममें औवैयारका एक मन्दिर है। मन्दिरके साथ दी हुई भूमि है। तीन वर्ष पूर्व इन दोनों मन्दिरोंका महाकुम्भाभिषेक-महोत्सव जीर्णोद्धार करके सम्पन्न हुआ है।

२—श्रीमती पुनीतवती [कारैकाल अम्मैयार]

कारैकाल प्रदेश फ्रेंच शासनमें है। श्रीमती पुनीतवतीका यहीं आविर्भाव हुआ था। यह स्थान तंजोर जिलेके समीप है। इनके सम्बन्धमें एक घटना लोकमें अत्यन्त प्रख्यात है। किसी समय श्रीमती पुनीतवतीके पति श्रीपरमदत्तजीको किसी सज्जनने दो सुपक्व आम्रफल दिये। उन्होंने पत्नीको रखनेके लिये दे दिया। उसी दिन कोई साधु अतिथि आये उनके गृहमे। अतिथि तो स्वयं आराध्यके स्वरूप होते हैं। उनके सत्कारमें पुनीतवतीजीने एक आमका उपयोग किया। पतिदेव भोजन करने बैठे। दूसरा आम उनके सम्मुख आया। आम बड़ा स्वादिष्ट था। एक फलसे तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने पत्नीसे दूसरा फल माँगा। सती-साध्वी पुनीतवती अपने पतिके क्रोधी स्वभावको जानती थीं। भयके कारण वे कह नहीं सकीं कि फल अतिथिको अर्पित हो चुका है। भीतर जाकर वे आराध्यके सम्मुख प्रार्थना करने लगीं। सहसा एक फल उनकी अञ्जलिमें आ गया।

श्रीपरमदत्तजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसा अमृतस्वाद, यह दिव्य सुरभि तो जीवनमें उन्हें कभी नहीं प्राप्त हुई थी। यह तो उनका दिया फल नहीं हो सकता। उन्होंने पत्नीसे पूछा और उस सरलाने सब सत्य-सत्य सुना दिया। इस लाभसे लोभ हुआ। एक और फलकी उन्होंने इच्छा प्रकट की। श्रीपुनीतवतीने पुनः प्रार्थना की। फल उनकी अञ्जलिमें आया; किंतु परमदत्तजीके करोंमें पहुँचते ही वह अदृश्य हो गया। इस घटनाकी स्मृतिमें प्रत्येक वर्ष वहाँ फाल्गुनके स्वाती नक्षत्रमें 'आम्रफलोत्सव' मनाया जाता है।

पत्नीकी भगवद्भक्ति एवं प्रभाव देखकर परमदत्तजीकी उनके प्रति आदरबुद्धि हो गयी। श्रीपुनीतवतीको बड़ा दुःख हुआ इससे। अब पतिदेवकी सेवाका अवसर प्राप्त नहीं होता था। अपना जीवन उन्होंने ईश्वराराधन एवं तीर्थाटनमें लगाया। उनका दिव्य सौन्दर्य उस युगकी पैदल तीर्थयात्रामें बाधक हो रहा था। फलस्वरूप उन्होंने अपनेको अत्यन्त कुरूपा बना लिया। उनका स्वरूप देखकर लोग उन्हें पिशाच

समझने लगे । उन्होंने अपने पदोंमें नामके स्थानपर 'कारैक्कालपेय्' की भाँति 'कारैक्काल पिशाच'का भी जहाँ-तहाँ प्रयोग किया है ।

३—श्रीमती मङ्गैयर्करशि

तमिळ प्रान्तमें चेर, चोळ और पाण्ड्य—ये तीन प्रख्यात राज्य हैं । पाण्ड्यराजका प्रधान नगर मधुरा (मदुरा) है । यहाँके नरेशकी मङ्गैयर्करशि प्रधान महिषी थीं । महाराजने जैन-धर्मके प्रभावमें आकर राज्यमें घोषणा करा दी थी कि 'किसी-को वेदाध्ययन नहीं करना चाहिये । भस्म और रुद्राक्ष धारण भी अपराध है । ऐसा करनेवाला दण्डपात्र होगा ।' महारानी परम शिवभक्ता थीं । पतिके आचरणसे उन्हें अत्यन्त क्लेश होता था । एकान्तमें वे आराध्यसे प्रार्थना किया करती थीं कि महाराजकी बुद्धि शुद्ध हो और वे भगवान् शङ्करके चरणोंमें लगें । इसके लिये वे अनेक व्रत करतीं, अनुष्ठान करतीं तथा गुप्तरूपसे भगवान् शङ्करकी आराधना करती रहतीं । प्रत्यक्ष करनेसे महाराजके रुष्ट होनेका भय था ।

महारानीका आर्तनाद कैलाशनाथतक पहुँचा । भगवान् स्कन्द धराधामपर 'ज्ञानसम्बन्धमूर्ति' नामसे अवतीर्ण हुए । उन्होंने विभूति-माहात्म्य, वैदिक धर्मके शुद्ध स्वरूप और शिव-भक्तिका प्रबल प्रचार प्रारम्भ किया । नरेशपर इसी समय आपत्ति आयी । विपत्तिके कारण विवश होकर उन्होंने कुमार कार्तिकेयकी शरण ग्रहण की । राज्यमें पुनः शैव-धर्म-की प्रतिष्ठा हुई । महारानीके पातिव्रत्य एवं भक्तिके प्रभावसे राज्य समृद्धिसम्पन्न हुआ ।

४—श्रीमती तिलकवतियार

दक्षिण आरकाट जिलेमें पण्रुटी रेलवे स्टेशनके पास 'तिरुवतिकै' एक प्रधान शिवक्षेत्र है । उसके समीप एक छोटे ग्राममें एक शूद्र गृहमें इनका जन्म हुआ था । बचपनसे शिवोपासक परिवारका प्रभाव पड़ा और भगवान् शङ्करके चरणोंमें उन्हें प्रेम हो गया । इनका विवाह इनके पिताने एक सजातीय शूर युवकसे निश्चित किया । विवाह-तिथिसे आठ दिन पूर्व उस युवकको एक युद्धमें भाग लेना पड़ा और वह खेत रहा । अकस्मात् इसी समय माता-पिताका भी शरीरान्त हो गया । तिलकवतीने सबको स्पष्ट कह दिया कि जिसे पिताने देना स्वीकार किया था, उससे एक प्रकार विवाह हो चुका । हृदयका दान दो बार नहीं होता । प्रबल इच्छा होनेपर भी वे सती नहीं हो सकीं; क्योंकि छोटा भाई अभी शिशु था और उसके पालन-पोषणका भार इन्हींपर था ।

तिलकवतीने भाईको पाला और सुशिक्षित किया । वह अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि हुआ, किंतु श्रमण साधुओंके सम्पर्क-में आकर उसकी आस्था वैदिक-धर्मसे जाती रही । तन्त्र मन्त्रों-पर विश्वास हुआ और भस्म तथा रुद्राक्ष-धारण बंद हो गया । तिलकवतीने भाईको बहुत समझाया, परंतु वह तो दूसरे प्रभाव-में आ चुका था । बहिनसे पृथक् जैनोंके स्थानोंमें ही वह रहने लगा और उसका नाम धर्मसेन हो गया ।

तिलकवतीने जिसे हृदयके सम्पूर्ण स्नेहसे पाला था, उस-को विपथगामी देखकर उन्हें मर्मान्तक पीड़ा हुई । वे नित्य भगवान् आशुतोषसे प्रार्थना करने लगीं कि वे दयामय उनके भाईको सन्मार्गपर लावें । सच्ची प्रार्थना व्यर्थ नहीं होती । उनके भाईके उदरमें भयङ्कर शूल उठा । सभी प्रख्यात मान्त्रिकोंने प्रयत्न कर लिये, पर सब व्यर्थ रहा । अब उसे बहिनका स्मरण हुआ । संदेश भेजा गया, किंतु तिलकवतीने श्रमणोंके स्थानमें आना अस्वीकार कर दिया । विवश होकर वे बहिनके समीप आये । बहिनने उन्हें भगवान्के सम्मुख उपस्थित किया । मस्तकपर भस्म लगाते ही शूल दूर हो गया । भावविभोर होकर उन्होंने धारावाही कवितामें उन शशाङ्क-शेखरका स्तवन प्रारम्भ किया । इससे सन्तुष्ट होकर भगवान्-ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें 'वागीश' नामसे सम्बोधित किया ।

अब वागीश राज्यमें शिवभक्ति एवं वैदिक धर्मका प्रचार करने लगे । जैसे हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको मारनेका प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया था, वैसे ही प्रयत्न इनकी हत्याके तत्कालीन जैन नरेश एवं श्रमणोंके द्वारा भी हुए । भगवान् शङ्करने सब प्रकार इनकी रक्षा की । नरेशने इनके चरणोंमें मस्तक झुकाया । ये 'पिता' कहलाये और राज्यमें शिवधर्मका प्रचार हुआ । इन्होंने अपनी बहिन तिलकवतियारको ही सदा अपना गुरु स्वीकार किया है ।

५—श्रीमती आंडाल (गोदा)

कर्कटे पूर्वफाल्गुन्यां तुलसीकाननोद्भवाम् ।
पाण्ड्ये विश्वम्भरां गोदां वन्दे श्रीरङ्गनायिकाम् ॥

श्रीरामनाथ जिलेके प्रख्यात श्रीविल्लिपुत्तूरमें 'श्रीविष्णुचित्त' या 'पेरिय आळवार' नामक श्रीआळवारकी पुत्रीरूपसे स्वयं महालक्ष्मी या भगवती तुलसी ही प्रकट हुई थीं इस रूपमें, यह भक्तोंकी धारणा है । पेरिय आळवार सदा भगवान् नारायणकी आराधनामें लीन रहते थे । बचपनसे ही गोदाके हृदय-सिंहासनपर वे चतुर्भुज घनश्याम विराजमान थे । वे उन्हींको अपना पति मानती थीं । पेरिय आळवार नित्य श्रीरङ्गनाथके लिये पुष्पमाल्य निर्मित करके गृहमें रखते ।

आण्डाल उन माल्योंमे अपना शृङ्गार करतीं और तब दर्पणमें अपना स्वरूप देखतीं । इतना करके उन मालाओंको उतारकर वे यथास्थित रख देतीं। एक दिन पिताने यह देख लिया। भगवान्की पूजाके लिये निर्मित माल्य उच्छिष्ट करते देख पुत्रीपर वे अत्यन्त रुष्ट हुए । उसी दिन रात्रिमें श्रीरङ्गनाथने स्वप्नमें दर्शन देकर आदेश दिया—'मुझे आण्डालकी धारण की हुई मालाएँ ही प्रिय हैं। दूसरे पुष्पमाल्य मुझे प्रिय नहीं ।' इसीसे आण्डालका नाम पड़ गया 'चूडिक्को दुत्तनाचियार' अर्थात् पहनकर देनेवाली देवी।

इनके सम्बन्धमें विजयनगर-राज्यके चक्रवर्ती श्रीकृष्णदेवरायने एक नाटक लिखा है सोलहवीं शताब्दीमें । उसका नाम है 'आमुक्त माल्यदम्' । आण्डालके रचे प्रबन्ध 'तिरुप्पावै' कहे जाते हैं । ये भक्तिरससे ओतप्रोत हैं । आज भी धनुर्मासमें जब दूसरे आळवार प्रबन्धोंका अनध्यायकाल होता है, उस समय सूर्योदयसे पूर्व सभी विष्णवालयोंमें आण्डालके 'तिरुप्पावै'का पारायण होता है। दस आळवार आण्डालकी पदरज मस्तकपर धारण करते हैं।

स्त्रियोंमें साधारणतया पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक साहस होता है, यह लोकप्रसिद्ध है । उनका यह स्वभावसिद्ध साहस यदि माता, पिता, गुरु एवं वृद्धादिकी शिक्षासे अथवा सत्सङ्गसे पातिव्रत्यादि सात्त्विक धर्म, दया, परोपकार, भगवद्भक्ति, वैराग्य एवं ज्ञानके अर्जनमें लग जाय तो वह इतना कल्याणकर हो सकता है कि उससे जगत्का उद्धारतक सम्भव है । कन्याकुमारी प्रान्तके उपर्युक्त नारी-पञ्चरत्न इसके प्रमाण हैं।

सती पुष्पावती

छठवीं या सातवीं सदीमें वल्लभीपुर एक समृद्धिशाली राज्य था । उस समय वल्लभीपुर महाराज शीलादित्यके अधीन था जो अपने समयके एक बहुत ऐश्वर्यशाली और शक्तिशाली राजा समझे जाते थे । चन्द्रावतीके परमार राजाकी कन्या पुष्पावतीसे राजा शीलादित्यका विवाह हुआ था । रानी बड़ी रूपवती, साध्वी और वीरहृदया थी; उसकी गुण-सम्पन्नताकी कहानी दूर-दूरतक फैली हुई थी। रानीका अधिक समय पूजा-पाठ, ध्यान-जप-तप-नियम आदि पवित्र और शुभ कर्मोंमें ही बीतता था।

एक बार वह अम्बा देवीके मन्दिरमें मनौती चढ़ाने गयी थी । अम्बा देवीका मन्दिर राज्यमें ही था, पर वल्लभीपुरसे कम-से-कम दो दिनके रास्तेकी दूरीपर था। अचानक वल्लभीपुरपर बर्बरोंने आक्रमण कर दिया । शीलादित्यने राजधानीकी रक्षा करनेके लिये विकट युद्ध किया । दुश्मन मैदान छोड़कर भागनेवाले ही थे कि वल्लभीपुरके ही एक निवासीकी सहायतासे उन्होंने सूर्यकुण्डकी पवित्रता नष्ट कर दी । उस समय लोगोंका यह विश्वास था कि इसी सूर्यकुण्डसे सूर्य देवताके सात घोड़े (सप्ताश्व) निकलकर राजाकी लड़ाईमें सहायता करते हैं। आक्रमणकारियोंने कुण्डमें गोवध कर दिया और उसका महत्त्व समाप्त हो गया । इस किंवदन्तीका यह भी आशय था कि आक्रमणकारी कुएँमें गोवध कर डाल देते थे, हिंदू पानी नहीं पाते थे और अन्तमें उनको आत्मसमर्पण करना पड़ता था। टाडने भी लिखा है कि अलाउद्दीन तथा अन्य यवनाधिपतियोंने चित्तौड़-आक्रमणके समय भी यही नीति अपनायी थी।

वल्लभीपुरपर आक्रमणकारियोंका अधिकार हो गया । राजा लड़ाईमें मारे गये । वल्लभीपुरका विशाल राजप्रासाद श्मशान हो गया । असंख्य नारियोंने चितामें जलकर आत्मयशकी अन्तिम आहुति दी। इस प्रकार इधर वल्लभीपुर मरघट बन रहा था, उधर रानी पुष्पावती ध्यानमग्न होकर देवीकी आरती उतार रही थी। सोनेकी थाली हाथसे गिर पड़ी। घीके दीप बुझ गये। रानीने मन-ही-मन किसी अनिष्टकी कल्पना की। रानीकी पालकी वल्लभीपुरकी ओर चली। उस समय रानी गर्भवती थी, रानीकी पालकी लेकर कहार पवनके वेगसे आगे बढ़ रहे थे । रानीने ओहार उठाकर देखा कुमुदिनीपति सुधा-कलश लेकर मलय पहाड़की हरी भूमिपर प्रकृतिदेवीका अभिनन्दन कर रहा है । उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि दिशाएँ काली पड़ती जा रही हैं; झाड़ियोंमें, लतिकाओंमें उदासी छा गयी है । दो-ही-तीन पल बीते थे कि वल्लभीपुरके राजदूतने पालकी रोकनेका अनुरोध किया। पुष्पावतीने समझा कि प्रियतमने शुभ सन्देश भेजा होगा । शुभ सन्देश ही तो था, स्वर्गमें जानेका शुभ आमन्त्रण था। रानी पालकीपरसे उतर पड़ी, उसने सब वृत्तान्त सुनकर वहीं चिता सजानेकी आज्ञा दी। राजसैनिकोंने कहा—'माता! इस समय पाँव

भारी है।' रानी बिजलीकी तरह कड़क उठी, 'पतिका स्वर्गगमन सुनकर राजपूतनीका एक पल भी जीवनधारण करना महा-पाप है। पति मुझे स्वर्गमें बुला रहे है और मैं विलम्ब करूँ, यह असम्भव है!' परंतु सैनिकोंके बहुत समझाने-बुझानेपर उसने सोचा कि 'गर्भगत बालककी रक्षा करना माताका परम कर्तव्य है, यही राज-सन्तान बर्बर आक्रमणकारियोंको मटियामेट कर देशकी सीमापर हिंदुओंका आधिपत्य स्थापित करेगी।' रानीने आदर्श मातृत्वका परिचय दिया। उसके लिये राजमहल नरक बन चुका था। वह मलय पहाड़के जगलमें एक गुफामें रहने लगी।

कुछ ही महीनोंके बाद राजकुमार गुहका जन्म हुआ। सन्तान पैदा हो जानेके बाद एक पल भी जीवन-धारण करना पुष्पावतीके लिये महामरण था। रानीने अपने प्यारे पुत्रके लालन-पालनका भार वड़नगरके एक ब्राह्मणकी कन्याको, जो बड़ी सुशील और धर्मपरायण थी, दिया।

रानीने कहा—'बहन! तुम्हारा कर्तव्य यही है कि इस बालकको पाल-पोसकर इस योग्य बना दो कि यह आततायियों और विधर्मियोंको तलातलमें पहुँचाकर सारे भारतवर्षमें हिंदू-धर्मका ध्वज फहरा दे। एक बातका और स्मरण रखना होगा कि इस राजकुमारका विवाह राजपूत कन्यासे ही हो।'

मलयज चन्दनकी चिता धायँ-धायँ जल रही थी। अग्नि सैकड़ों जीभ फैलाकर रानीको पतिलोकमें ले जानेके लिये आकाश चूमनेकी उत्सुकता दिखा रही थी। चिताके समीप कमलावती राजकुमार गुहको गोदमें लेकर खड़ी थी। दो दिनका शिशु चुपचाप माताकी साधना देख रहा था। वह 'कहाँ कहाँ' कर रहा था। रानीने एक बार उसके भोले मुखकी ओर देखा और चितामें कूद पड़ी।

वल्लभीपुर मिट गया, उसका चिह्न भी नहीं है; लेकिन पुष्पावतीके यशकी सुगन्ध मलय पहाड़के वन-उपवनमें व्याप्त है।

—रा० श्री०

योगिनी जनीबाई

किसी समय बगाल, आसामसे नैपाल, काश्मीर, राजपूताना होकर सम्पूर्ण गुजरात प्रान्तमें शक्ति-उपासना-पद्धति प्रचलित थी। बिना किसी जाति या वर्ण-भेदके सभी लोग तान्त्रिक पद्धतिसे महाशक्तिकी सम्मिलितरूपसे आराधना करते थे। शाक्तदर्शन वस्तुतः काश्मीरीय शैवदर्शन ही है। इसके अनुसार छत्तीस तत्त्व माने जाते हैं और वे शिवव्यूह, विद्या-व्यूह तथा आत्मव्यूहकी अध्वत्रयीमें विभाजित होते हैं। यह विभाजन क्रमशः शुद्ध, मिश्र एव अशुद्ध है। शक्तिसे अभिन्न चित्स्वरूप शिवका ही यह सब विलास है। एकमात्र सत्यतत्त्व शिव ही है और वे अपने नित्य श्रीपुरमें क्रीड़ा-किया करते हैं। इस शाक्त मतके भी साधना-भेदसे अनेक सम्प्रदाय थे। जनीबाई जिस सम्प्रदायमें थीं, वह अजपाके द्वारा अकुलमें प्रवेश करके अन्तर्न्यासको प्रधान माननेवाला सम्प्रदाय था। नादश्रवण करते हुए उन्मनी-अवस्थाको प्राप्त करके नित्य आनन्दमें निमग्न रहते हुए अर्धनारीश्वरका सान्निध्य ही इस सम्प्रदायका लक्ष्य था। मन्त्र चिन्तामणि माना जाता था। षट्चक्रोंमे तत्त्वोंको जाग्रत् करते हुए कामकला (कुण्डलिनी) को चक्रवेध करके सहस्रारमें श्रीचन्द्रके समीप नित्य श्रीपुरमें पहुँचाकर साधक भैरवस्वरूप प्राप्त करता है। बाला त्रिपुर-सुन्दरीकी आराधना ही उसके श्रेयका साधन है। जनीबाईके पदोंमें इस योगमार्गका विस्तारसे सांकेतिक वर्णन है।

जनीबाईके गुरुदेव 'मीठु' अलौकिक पुरुष थे। काशीमें सर्वशास्त्राभ्यास करके आत्मज्ञानके निमित्त उन्होंने विन्ध्याचलकी गुफामें गङ्गा-किनारे तपस्या की। ग्यारह दिन वे एकासनसे बैठे रहे। वहाँ उन्हें भगवान् शङ्करका साक्षात् हुआ। भगवान् शिवके द्वारा अद्वैतज्ञान प्राप्तकर वे घर

महिशामें आये। वानप्रस्थाश्रमका त्याग करके अपनी पत्नीके साथ गार्हस्थ्यका पुनः प्रारम्भ किया। जनताके कल्याणके लिये उन्होंने मण्डल बनाकर अपनी शाक्त-उपासना-पद्धति प्रचलित की। इनके सम्प्रदायका खूब प्रचार हुआ।

संवत् १८४७ में गुरुदेवने शरीर छोड़ा। १८५७ में उन्होंने जनीको दिव्य दर्शन दिया। जनीने अपनी साधनासे १८६० में युगलस्वरूपका तथा १८६७ में महाशक्ति श्रीबाला-का दर्शन प्राप्त किया। इसी अन्तिम वर्ष पौष वदी तेरसको रविवारके दिन उनकी आत्माने रश्मिरूपसे महाप्रकाशमें प्रवेश प्राप्त कर लिया।

केवल इतना ही परिचय जनीबाईका उनकी कविताओंके द्वारा प्राप्त होता है। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। उनके पद्य बतलाते हैं कि यह गुजराती महिला शाक्त साधनाकी सिद्ध योगिनी थी। साथ ही उनमें प्रकाण्ड वैराग्य एवं प्रबल भक्ति-भाव था। अपने गुरुदेवके चरितका उन्होंने बड़े विस्तारसे वर्णन किया है। —सु० सिं०

जेठीबाई

यूरोपमें रोमके पोपकी सार्वभौम सत्ताके दिन थे। प्रायः सभी यूरोप नरेश पोपका सम्मान करते, उन्हें कर देते और उनकी आज्ञाओंका पालन करते। ऐसा न करनेपर भय रहता था कि पोपकी सेना उन्हें पदच्युत कर देगी और जनता धर्म-गुरुका साथ देगी। पोपने राजाओंको आज्ञा दे रक्खी थी कि वे अपने शासित प्रदेशमें ईसाई-धर्मका प्रचार करें। इटलीके धार्मिक गिरिजाघरोंमें धर्मप्रचारक शिक्षित होते थे। इन्हें रेवरेंड, विशप आदि उपाधियाँ प्राप्त हुआ करती थीं। ये धर्मप्रचारक यूरोपीय देशोंसे शासित विभिन्न देशोंमें जाकर अनेक अत्याचार करके इतरधर्मानुयायियोंको ईसाई बनाते थे। इन्हें 'जेस्युइट' कहा जाता था। जहाँ भी ये जाते थे, वहाँके अधिकारियोंको इनकी हर प्रकार सहायता करनी पड़ती थी। ये अधिकारियों-के भी अधिकारी माने जाते थे। इनके साथ अविवाहित धर्म-प्रचारिकाएँ भी होती थीं और उन्हें 'नन्स' कहते थे।

भारतमें जहाँ कहीं भी पुर्तगीज शासन हुआ, वहाँ इन ईसाई-धर्म-प्रचारक 'जेस्युइट' तथा 'नन्स' वर्गने स्थानीय पुर्तगीज शासकोंकी सहायतासे देशी प्रजापर जो अमानुषिक अत्याचार किये हैं, वे रोमाञ्च कर देनेवाले हैं। अनेक पैशाचिक यन्त्रणाओंके द्वारा वे दूसरे धर्मके लोगोंको ईसाई बननेको बाध्य किया करते थे। भारतमें पुर्तगीज राज्यकी राजधानी गोआ थी। इन धर्म-प्रचारकोंने अपने अत्याचारोंसे वहाँकी अधिकाश जनताको ईसाई बना डाला। काठियावाड़में भी पुर्तगालका छोटा-सा राज्य था। गवर्नर गोआमें रहता था। काठियावाड़में उस समय दीवनगर प्रमुख बंदरगाह एवं उद्योगका केन्द्र था। हाथीके दाँत, आबनूस, स्वर्णाभरण, अन्न, लोहेके हथियार तथा अनेक प्रकारके रंगीन कपड़े दीवसे अरब तथा यूरोपके देशोंको जाया करते थे।

दीवमें मलमलपर सुन्दर बेल-बूटोंकी रँगाईके अनेक कारखाने थे। यह काम वहाँ प्रमुखतासे होता था। कच्छके मांडवी राज्यके एक क्षत्रिय अपनी मातृभूमि छोड़कर यहाँ आ बसे थे। उन्होंने वस्त्रपर छपाईका कारखाना बना लिया था। उनका कारखाना नगरके प्रमुख कारखानोंमें था। अपनी पत्नी जेठीबाईके साथ वे स्वयं कारखानोंकी देख-माल किया करते थे।

दीवके पुर्तगीज अधिकारियोंने कानून बना दिया था कि विवाहके पूर्व यदि किसी बच्चेके माता-पिता मर जायँ तो वह सरकारी संरक्षणमें ले लिया जायगा। माता या पितामेंसे जो पीछे मरे, उसके शरीरकी अन्त्येष्टि-क्रिया होते ही एक सूबेदार सैनिकोंके साथ आता और बालकको ले जाता। घरमें दादी, बहिन, भाई आदि होनेपर भी यह किया जाता। ऐसे बच्चोंको ईसाई बना लिया जाता था। एक दिन जेठीबाईके कारखानेके एक आदमीका शरीरान्त हुआ। उसके लड़केकी आयु ग्यारह वर्षकी थी। जेठीबाईने उसे विधर्मी होनेसे बचानेका निश्चय किया। उसी लड़केके वर्ण एवं अवस्थाकी एक लड़की उन्होंने ढूँढ़ निकाली। लड़कीके पिताको जेठीबाईने यह आश्वासन दिया कि बड़े होनेतक लड़केके तथा उसकी स्त्रीके पालन-पोषण एवं शिक्षणका भार वे स्वयं उठावेंगी। ब्राह्मण बुलाये गये। लड़के-के पिताका शव घरमें पड़ा रहा और विवाह हो गया। शवके अग्निसंस्कारसे लौटनेपर सूबेदार आया। लड़केकी शादीका समाचार पाकर उसे निराश होकर लौटना पड़ा। अब तो यह क्रम बन गया। जिस लड़केके माता-पिता मरते, उसके सम्बन्धी जेठीबाईके पास दौड़े आते। जेठीबाई किसी प्रकार पहले विवाह करातीं बच्चेका और तब मृतकका शव श्मशान जाता। सब अधिकारी उनसे रुष्ट हो गये। नगरके लोगोंमें उनकी कीर्ति प्रख्यात हो गयी।

'इस प्रकार कितनोंको बचाया जा सकता है।' जेठीबाई निरन्तर इन अनाथ बच्चोंकी चिन्ता करती रहती थीं। उन्होंने

सुना था कि पुर्तगालका शासन वहाँकी महारानीके हाथमें है; यह सोचकर कि नारीके हृदयमें दया होगी, प्रार्थना-पत्र भेजनेका निश्चय किया। एक सुयोग्य पुर्तगीज बैरिस्टरको पर्याप्त पुरस्कार देकर उससे प्रार्थना-पत्र लिखवाया। खूब सुन्दर ढाकेकी मलमल लेकर उसपर उन्होंने अपने हाथसे चारों ओर बेल-बूटे छापे। मध्यमें सुन्दर कमल बनाया। कमलके बीचकी कर्णिकापर बड़े सुन्दर अक्षरोंमें प्रार्थना-पत्र लिखा पुर्तगीज भाषामें। उस ओढ़नीको उन्होंने चन्दनकी एक सुन्दर पेटीमें सजाकर रक्खा। पेटी अनेक प्रकारके बेल-बूटोंसे बहुत आकर्षक हो गयी थी।

प्रार्थना-पत्रमें जेठीबाईने बाल-अपहरण कानूनका मार्मिक चित्र खींचा था। बच्चेको एक अपरिचित लोगोंमें बलात् ले जानेसे कितना कष्ट होता है, इसका वर्णन किया था। उन्होंने पूछा था कि 'कोई आपके पुत्र-पुत्रीको छीनकर बलात् ले जाय और अपने धर्ममें दीक्षित करे तो आपको कैसा लगे।' अन्तमें प्रार्थना थी कि 'नारी होनेके कारण महारानी नारी-हृदयकी व्यथाको समझें और इस अन्यायको रोकें।'

प्रार्थना-पत्र लेकर पालकी नौकामें, जो उस समयके जलयान थे, दीवसे गोआ जानेमें चौदह दिन लगे। मार्गमें जलदस्युओंका भय था, अनेक संकट थे; परंतु जेठीबाई पैर बढ़ाकर पीछे हटाना नहीं जानती थीं। वे गोआ पहुँचीं। एक हाथमें जलती मशाल, एकमें प्रार्थना-पत्रकी पेटी और मस्तकपर जलती अग्निकी सिगड़ी लेकर गवर्नरकी कोठीके सामने पहुँचकर उन्होंने 'न्याय ! न्याय !' की पुकार की। गवर्नरने एक कुलीन महिलाको इस विचित्र वेषमें पुकारते देख पहरेदारसे बुलवाया।

'आपके शासनमें अन्धकार है। इसीसे मैंने मशाल ले रक्खा है। हम आपकी प्रजा अन्यायसे जल रही हैं मैंने यह बतानेको सिरपर जलती सिगड़ी रक्खी है।' जेठीबाईने अपने विचित्र वेषका रहस्य बताया। उन्होंने प्रार्थना-पत्र दिया। वायसराय तथा गवर्नरने मिलकर प्रार्थनापर विचार किया। वे जेठीबाईके व्यक्तित्वसे पूर्णतः प्रभावित हुए। कौंसिल बैठी और पत्रको पुर्तगाल भेजनेका निश्चय हुआ। गवर्नरकी अच्छी सिफारिशके साथ पत्र भेजा गया।

पत्र पुर्तगाल पहुँचा। पुर्तगीज महारानीने पत्र देखा। इतनी सुन्दर कला उसने अबतक नहीं देखी थी। जेठीबाईकी ओढ़नी पुर्तगालमें 'पान दे जेठी'के नामसे विख्यात हो गयी। पुर्तगालसे ताम्रपत्रपर खुदी हुई निम्न आज्ञाएँ भारत पहुँचीं महारानीकी ओरसे—

१—अनाथ बालकोंको ईसाई बनानेका वर्तमान कानून तुरत बंद किया जाय।

२—जेठीबाई मेरी पुत्री मानी जाय और उसके सम्मानमें उसके घरके सम्मुख सप्ताहमें एक बार सरकारी बाजा जाकर बजा करे।

३—जब कभी कोई सरकारी कर्मचारी जेठीबाईके या उसके घरके सम्मुखसे निकले, अमुक दूरीतक टोप उतारकर सलामी दे। दीवके गवर्नर भी इस आज्ञाका पालन करें।

बड़ी धूमधामसे वह ताम्रपत्र गोआसे दीव आया और आदरपूर्वक जेठीबाईको दिया गया। अनेक बार सरकारी अधिकारी महाजनोंसे विवाद होनेपर जेठीबाईको मध्यस्थ बनाकर निपटारा कर लिया करते थे। अभी कुछ वर्षों पूर्वतक जेठीबाईके घरके सम्मुख एक पीपलका वृक्ष था और जबतक वह रहा, सरकारी कर्मचारी वहाँ जाकर टोप उतार लिया करते थे।

—सु० सिं०

सती मानवा

(लेखक—श्रीयुत रा० माणेकलाल शङ्करलालजी राणा)

दो सौ वर्ष पूर्व सूरतमें नवाबी शासन था। लम्पट नवाबने नगरसेठकी कुमारी कन्या मानवाके सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनी। उसने छलपूर्वक स्वयं नगरसेठके यहाँ जाकर उस देवोपम सुन्दरीको देखा। अब संयम उसके वशका नहीं था। नगरसेठ बुलाये गये। नवाबने अपना अभिप्राय स्पष्ट किया। जब नगरसेठ वज्राहतकी भाँति दुखी हो रहे थे, उन्हें आज्ञा सुनायी गयी कि यदि तुम पुत्री देना स्वीकार न करोगे तो बंदी कर लिये जाओगे। बेचारे वैश्य, यह भी ठिकाना नहीं था कि अत्याचार कहाँतक बढ़ेगा। उन्हें स्वीकार करना पड़ा। नवाब सपरिवार उन्हें फाँसी दिलवाकर सम्पूर्ण सम्पत्ति छीन सकता था। इतनेपर भी पुत्रीको बचाना असम्भव था। उसे तो आततायी बलपूर्वक ले ही जाते। घरके लोगोंने परिस्थिति समझी तो आँसू पीकर रह गये। कोई उपाय नहीं था।

बेचारी मानवाके हृदयकी व्यथाका पार नहीं था। माता-पिता उसे यवनके यहाँ भेज रहे थे। सखियाँ 'बेगमसाहिबा' कहकर उपहास कर रही थीं और नवाबके सैनिक पालकीके

साथ द्वारपर खड़े थे। रोते हुए उसे पालकीमें बैठना पड़ा। नवाबके महलोंके द्वारपर पालकी पहुँची। मानवाको सीढ़ियों-से ऊपर पहुँचाया गया। यह वैभव, इतना ऐश्वर्य! परंतु मानवा सोच रही थी कि क्या उसका पवित्र शरीर यवनके द्वारा दूषित होगा। सहसा वह द्वारकी ओर दौड़ी और सीढ़ियोंपरसे लुढ़कती भूमिमें हो रही!

विलासी नवाब आतुरतापूर्वक उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। यह दृश्य देखकर वह स्वयं दौड़ा। सीढ़ियोंसे नीचे आकर उसने हाथ पकड़कर उठाना चाहा मानवाको। हाथ छूते ही जड़की भाँति खड़ा रह गया। यवनके अपवित्र स्पर्श-से बचनेके लिये मानवा तो पहले ही देवताओंके परमपवित्र देशमें पहुँच चुकी थी। नवाबके हाथमें तो मिट्टी थी—बर्फके समान शीतल मिट्टी!!

क्षमाशीला असामान्या

बात है उस समयकी, जब बंगभूमिपर सिराजुद्दौलाका शासन था। सिराजुद्दौलाके पूर्व उसके दादा अलीवर्दीखाँ राज्य करते थे। उनका समस्त प्यार सिराजुद्दौलाके ऊपर बरसता रहता था। इसका परिणाम यह होता कि सिराजुद्दौला-के बुरे कृत्योंको भी उसके दादा नहीं रोक पाते थे। सिराजुद्दौला अपने दादाके ही जीवनकालमें अत्यन्त व्यभिचारी, दुश्चरित्र और अनर्थकारी बन गया। वह राह चलते भले घरकी बहू-बेटियोंकी इज्जत लूट लेता था। प्रजा सन्त्रस्त थी, पर कुछ कर नहीं पाती थी।

उस समय मुर्शिदाबादमें बहुत बड़े-बड़े सेठ रहते थे। वहींके प्रसिद्ध जगतसेठकी पुत्री असामान्या थी। असामान्या उत्तम गुणोंमें असामान्या ही थी। वह परम रूपवती एवं साध्वी थी। वीरता तो उसके रग-रगसे छलकती थी। तैरनेकी कला-में भी वह अत्यन्त निपुण थी। सोलहवें वसन्तको पार करते ही पिताने उसका विवाह कर दिया था।

उसके सौन्दर्यकी प्रशंसा सिराजुद्दौलाने भी सुनी। वह असामान्यासे मिलनेके लिये व्याकुल हो गया। कोई भी उपाय न देखकर उसने स्त्रीके वेशमें असामान्याके अन्तःपुरमें प्रवेश किया और उसने तुरंत असामान्याको अपने अङ्कमे कस लिया। असामान्या अपनी पूरी शक्तिसे चिल्ला पड़ी। दौड़े हुए उसके पति आये। एड़ीसे चोटीतक उनके शरीरमें जैसे आग लग गयी। क्रोधसे वे काँपने लगे। उन्होंने स्त्री-वेषधारी अधम सिराजुद्दौलाको पकड़कर पीटना शुरू किया। सैकड़ों जूते उसके सिरपर पड़े। वे सिराजुद्दौलाका मस्तक उतार लेनेवाले थे कि अवसर पाकर वह भाग निकला।

सिराजुद्दौलाके मनमें प्रतिहिंसाकी अग्नि प्रज्वलित हो उठी। वह पुच्छविमर्दित सर्पकी भाँति फुफकार रहा था। गुप्तरीति-से उसने असामान्याके पतिके शिरच्छेदकी योजना तैयार की। मनुष्यके रूपमें कई राक्षस इस पापकृत्यके लिये उद्यत हो गये। नराधम सिराजुद्दौलाने उन्हें यह भी आदेश दिया था कि असामान्याके पतिका मस्तक काटकर चाँदीकी थालीमें उसकी पत्नीके पास पहुँचा देना।

उसके सैनिकोंने वैसा ही किया। असामान्याके पतिका मस्तक उतारकर रजतकी थालीमें असामान्याके पास भेज दिया। पतिका कटा सिर देखकर असामान्या पछाड़ खाकर गिर पड़ी। वह मूर्च्छित हो गयी। तबसे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। वह पगलीकी तरह रहने लगी। कभी रोती, कभी गाती, कभी जोरोंसे चिल्लाती और कभी काष्ठमौन हो जाती। लाख बुलानेपर भी नहीं बोलती।

सिराजुद्दौलाके अन्यायसे प्रजा अत्यन्त पीड़ित हो गयी थी। उसने अंग्रेजोंकी सहायतासे सिराजुद्दौलाको शासन-च्युत करनेका निश्चय कर लिया। इसी बीचमें उसे मीर जाफरने युद्ध-मे पराजित करके शासन-सूत्र अपने हाथमें ले लिया। और मीर जाफरकी आज्ञासे उसके पुत्र मुहम्मद बेगने सिराजुद्दौला-की बुरी तरह हत्या कर डाली। सिराजुद्दौलाके हाथ, पैर और मस्तकादि सभी अङ्ग अलग-अलग काट डाले गये थे। उसके कटे अङ्गको हाथीके ऊपर रखकर प्रजाके बीचसे कब्रिस्तान पहुँचाया गया। उस समय असामान्याके पिता भी अपनी पुत्रीके साथ कब्रिस्तानमें पापीका अन्तिम दृश्य देखने गये।

कटा हुआ प्रत्येक अङ्ग रक्तसे सिंचित था। सारी प्रजा उसे आँख फाड़कर देखती और दुराचारीकी मृत्युपर संतोष-की साँस ले रही थी। इसी समय एक आश्चर्यजनक घटना घटी। पगली असामान्या जोरोंसे हँसने लगी और पूछ बैठी 'यह कटा शरीर किसका है?'

पूरे तीन वर्षके बाद असामान्याने अर्थपूर्ण प्रश्न पूछा था। उसके पिताने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—'बेटी! तेरे पतिकी हत्या करनेवाले पापी सिराजुद्दौलाका।'

'बहुत अच्छा हुआ!' 'बहुत अच्छा हुआ!' जोरसे

चिल्लाती हुई असामान्या अपने पिताके साथ घर वापस चली गयी। लोगोंको भान हुआ जैसे असामान्याकी बुद्धि ठीक हो गयी। और सचमुच सिराजुद्दौलाका अन्तिम परिणाम देखकर असामान्याका बुद्धिभ्रंश मिट गया।

घर आनेपर असामान्या सोचने लगी—'पतिदेव तो चले ही गये, इस जीवनमें तो पुनः उनके दर्शन होंगे ही नहीं; फिर इस ममताके बन्धनोंमें रहकर क्या करूँगी। अब मुझे वह तप करना चाहिये, जिससे जीवन-धनका सुखद स्पर्श पुनः प्राप्त हो सके।' असामान्या दृढ़निश्चयी थी। नीरव निशीथ-में घर छोड़कर भाग गयी। उसके पिताने बहुत ढुँढ़वाया; पर वह नहीं मिली, नहीं मिली।

सिराजुद्दौलाके वियोगमें उसकी पत्नी मेहरुन्निसा मछलीकी तरह तड़प रही थी और प्रिय-वियोगसे अर्द्धमृत-सी हो गयी थी। दुराचारी सिराजुद्दौलाने उसे अपने ही जीवनकालमें ठुकरा दिया था, पर वह नारी पतिव्रता थी। अपने जीवनमें उसने पतिपर कभी क्रोध नहीं किया। उसके एक बालिका भी हुई थी। नव-जात बालिकाका पालन करना उसकी सामर्थ्यकी बात नहीं थी। उसने उसे दिल्लीके एक परिचितको दे देनेका निश्चय करके प्रस्थान किया।

साध्वी मेहरुन्निसा अपनी अज्ञान बच्चीको लेकर जा रही थी और तपस्विनी असामान्या कुछ ही दूर उसके पीछे-पीछे चल रही थी। थोड़ी ही दूरपर आगे गङ्गाजी पड़नेवाली थीं कि बड़े जोरोंकी आँधी आयी और मूसलधार वृष्टि भी होने लगी। हवाके तीव्र झोंकोंसे विशाल वृक्ष समूल उखड़-उखड़कर पृथ्वीपर लोटने लगे। अपना शरीर सँभालना कठिन था; पर मेहरुन्निसा आगे ही बढ़ती चली जा रही थी और सात्त्विक भावका उदय होनेसे उसका उपकार करनेके लिये 'बहिन रुको!' 'बहिन रुको!' चिल्लाती हुई असामान्या भी अपनी पूरी शक्तिसे पीछे-पीछे दौड़ रही थी।

गङ्गातट आ गया। गङ्गाकी लहरें नागिनकी भाँति उछल-उछलकर वारि-बूँदोंको आत्मसात् कर रही थीं। असामान्याने अपनी बहुमूल्य अँगूठी केवटको देकर नाव खुलवा ली। उसने निश्चय कर लिया था 'मेहरुन्निसा नावसे चली गयी।'

माँझी अँगूठी पाकर नाव जोरोंसे ले चला। दूसरी डोंगी भी दिखायी दी। पर उस समय आँखकी पलक उठानी भी मुश्किल थी। पानीकी बौछार तीरकी तरह चोट कर रही थी।

थोड़ी ही देरमें दर्दनाक चीख सुनायी दी। असामान्या तुरंत नावसे कूद पड़ी। उसने समझ लिया था मेहरुन्निसाकी नाव डूब गयी। असामान्या तैरती हुई वहाँ पहुँच गयी। मेहरुन्निसाके बाल उसने देखे और तुरत पकड़ लिया और

तैरती हुई उसे किनारेकी ओर ले चली। असामान्याने तैरते हुए कई बार प्रयत्न किया कि बच्चीको गोदमें ले ले; पर उसकी माने उसे अपने अङ्कमें ही दबाये रक्खा, छोड़ा नहीं।

पूरे तीन घंटेके बाद असामान्या किनारे लगी। वह थक गयी थी, फिर भी उसने मेहरुन्निसाको बचानेका बहुत प्रयत्न किया। पर वह नहीं बच पायी। उसके प्राण परलोक चले गये।

बालिकाका पालन स्वयं असामान्याने किया। उसे वह अपनी सगी पुत्रीकी तरह प्यार करती थी। उसके पालनेमें उसने बहुत कष्ट सहे थे। बंगालमें आज भी लाखों व्यक्ति असामान्याको देवी मानते हैं और उसका गुणगान करते हैं।

—शि० दु०

दुर्गाभक्त दयावती

देवी दयावती अत्यन्त गरीब थीं। इनके पतिका नाम रामलाल था। रामलाल कलकत्तेमें एक व्यापारीके यहाँ काम करते थे। घर इनका काशीपुरमें था। प्रति पंद्रहवें दिन ये पत्नीकी देख-भालके लिये चले जाया करते थे। आवश्यकता पड़नेपर बीचमें भी आ जाते थे।

एक बार माघपूर्णिमाके दिन कार्याधिक्यके कारण रामलालको भोजनके लिये भी अवकाश नहीं मिला। वे गङ्गा-तटपर चले गये। वहाँ उनका मन नहीं लगा। उन्हें लगा जैसे मेरी पत्नी स्मरण कर रही है।

वे सीधे काशीपुर आये। वहाँ उन्होंने देखा कि उनका

पुत्र ज्वरके वेग और शीतलाके प्रकोपसे छटपटा रहा है और उनकी पत्नी चारपाईके समीप बैठी आँसू बहा रही है। पूछनेपर पता चला कि संक्रामक रोगके कारण पासके डाक्टरने दवा लेनेको अपने यहाँ आनेके लिये भी मना कर दिया है।

बच्चेको तड़पता देखकर दयावती उसे गोदमें लेकर रोने लगी। रामलालने दीपकी बत्ती ठीक करनी चाही, पर दीपक बुझ गया। घरमें न तेल था और न तेल लानेके लिये पासमें पैसा ही था। दयावती जोरोंसे क्रन्दन करने लगी 'चिन्ता छोड़कर तुम मा दुर्गाका आश्रय लो और उन्हींका स्मरण करो। मैं तेलकी व्यवस्था करके अभी आता हूँ, कहते हुए रामलाल घरसे निकल गये।

पुकारनेपर भी पड़ोसीका कोई उत्तर न पाकर रामलाल घरकी ओर चले, पर बच्चेकी स्मृतिसे बेचैन होकर वे जाह्नवी-के तटपर चले गये। वहाँ वे 'मा दुर्गे! मा दुर्गे!' रटने लगे। उन्हें अपने शरीरकी स्मृति नहीं रह गयी।

उधर कफसे रुँधे कठोर ऊर्ध्व श्वासको न सुनकर दयावतीने सोचा कि पुत्रका देहान्त हो गया। वह चिल्लाने लगी। 'बचाओ-बचाओ' पुकार करती वह मूर्च्छित हो गयी।

'बच्चा मुझे दे दो' कोई रमणी प्यारभरे स्वरमें कह रही है, होश आनेपर दयावतीने सुना। विपत्तिमें रमणीकी सहानुभूतिसे दयावती गद्गद हो गयी। बच्चा रमणीने ले लिया।

'तुम कौन हो, मा !' दयावतीने प्रश्न किया। 'मैं तुम लोगोंकी मा हूँ' रमणी बोल गयी। 'अब चिन्ता न करो, बच्चा अच्छा हो जाता है।'

'मा ! भूख लगी है,' बच्चा बोल उठा। मा फल-दूध भी साथ ही लायी थी। बच्चेको दे दिया और चलने लगी।

'मा ! ठहरो,' दयावतीने आग्रह किया। 'रामलाल मेरे दरवाजेपर बैठा है, मैं वहीं जा रही हूँ' कहकर मा चली गयी।

रामलाल मा दुर्गाके ध्यानमें रातभर बैठा रहा। प्रातः ध्यान टूटा तो उसे घरकी स्थिति याद आयी। वह भागता हुआ घर आया। देखा तो बच्चा दयावतीकी गोदमें हँस रहा है। दयावतीने रात्रिमें रमणीके आने, बच्चेको रोगमुक्त करके खिलाने और परस्परकी बात-चीत कह सुनायी।

रामलाल जैसे उन्मत्त हो गया। दयावतीसे उसने कहा—'देवी! तुम भाग्यशालिनी हो, मा दुर्गा तुम्हें दर्शन दे गयीं।' दयावती तो पहलेसे ही मा दुर्गाकी हो चुकी थी। माताके दर्शनसे ही वह पवित्र हो गयी थी। उसकी सारी कामना पूरी हो गयी थी।

उधर रामलालके मालिकने रात्रिमें स्वप्न देखा कि उसकी मा उससे कह रही है कि 'तुम्हारा बड़ा भाई रामलालके रूपमें तुम्हारा नौकर बना भूखसे तड़पकर रह गया, तुम्हें दया भी नहीं आती।' उसकी माता उसके बचपनमें ही मर गयी थी। स्वप्नमें माकी विकराल मूर्ति देखते ही वह भयभीत होकर उठ बैठा।

वह भागता हुआ सीधे रामलालके पास आकर उसके चरणोंपर गिर पड़ा और बोला—'भैया! तुम मेरे भाई हो। मेरी सम्पत्तिमें आधा भाग तुम्हारा है। तुम चलकर अपनी सम्पत्ति सँभालो।'

उसके आग्रहका रामलालपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने कहा—'यदि आप अपनी सम्पत्तिका आधा मेरा समझते हैं, तो वह भाग आप भगवद्भक्तोंमें और पुण्य कार्योंमें व्यय कर दीजिये।' और दोनों दम्पति गङ्गातटकी ओर चले गये। दयावती अन्ततक अपने पतिके साथ रहकर मा दुर्गाका स्मरण करती रही।—शि० दु०

फूल देवी

पुरन्दरने फूलबाईका मार्मिक पत्र एक ही साँसमें पढ़ लिया। उन्हें तृप्ति नहीं हुई। एक बार, दो बार, तीन बार, कई बार उन्होंने उसे पढ़ा। उनकी आँखें झर रही थीं, पर पत्र वे पढ़ते ही जा रहे थे। बचपनका सारा दृश्य उनकी आँखोंमे झूल गया।

पुरन्दरके ही देवल गाँवमें विधवा वृद्धाकी एकमात्र पुत्री फूलबाई थी। वही अपनी माकी आँखोंकी पुतली, अंधेकी लाठी, जीवनका सहारा थी। पुरन्दर और फूलबाई दोनों गाँवकी पाठशालामें एक ही साथ शिक्षा पाते थे। बाल्यकालमें दोनोंमें खूब प्रेम था। दोनों परस्पर हिल-मिलकर पढते और साथ ही खेला करते। वयस्के साथ-साथ उनका प्रेम भी बढता गया।

फूलबाईको यौवनमें प्रवेश करते देखकर उसकी माताने पुरन्दरके साथ विवाह करना निश्चित कर दिया, पर इस कामनाकी पूर्ति भी नहीं हो पायी कि वह कालके कराल गालमें चली गयी। फूलबाई वृक्षसे गिरी लतिकाकी भाँति मुरझाने लगी।

यह अनुपम लावण्यवती थी। इसीके गाँवमें औरंगजेबने इसे देखा और लुब्ध हो गया। उसके सैनिक फूलबाईको उठा ले गये। वह बेगमोंकी प्रधान बनी। फूलजानी बेगम उसका नाम पडा।

पर वह इससे बहुत ही दुखी थी और उसने आत्महत्याका विचार करके पुरन्दरको मार्मिक पत्र लिखा था। एक बार अन्तकालमें दर्शनकी कातर प्रार्थना की थी उसने।

'मेरी सहायता तुम कर सकोगी?' आँसू पोंछते हुए पुरन्दरने पत्र-वाहिकासे पूछा। वह फूलजानी बेगमकी प्राणप्रिय और परम विश्वस्त बाँदी थी।

'बेगम साहिबाकी ख्वाहिश पूरी करनेके लिये अपनी जान भी दे सकती हूँ'—उसने तुरंत जवाब दिया।

'तो मुझे अपनी बेगमके पास ले चलो।' पुरन्दर बाँदीके पीछे-पीछे चल पड़े।

× × ×

'मैं परम अपवित्र हूँ, मुझे स्पर्श न करें, नाथ! फूलने रोते रोते कहा। उसकी आँखोंमे आँसूकी बाढ़ आ गयी थी।

'तुम परम पवित्र हो, देवि!' फूलको अपने अङ्कमें लेते हुए पुरन्दरने कहा। 'जिसका मन और जिसकी आत्मा अपवित्र नहीं है, जो विवश है, मनसे जिसने पर-पुरुषकी ओर दृष्टि भी नहीं डाली, वह नारी कायासे बन्धनमें पडकर भी अपवित्र नहीं मानी जा सकती। मैं तुम्हे अपनी सहधर्मिणी बनाकर रक्खूँगा, रानी!'

'मै ऐसा नहीं होने दूँगी, स्वामी! मै आपके योग्य नहीं रह गयी हूँ' रोते-रोते फूलने कहा। 'आप मेरा कहा मान लें, स्वामी! समय बहुत कम है।'

'क्या चाहती हो, फूल?' पुरन्दरकी आँखें छलछला आयीं।

'आपके दर्शनके लिये ही मैं जीवित थी,' उसने बड़ी धीरतासे आँसू पोंछते हुए कहा। मैं चाहती हूँ अपने ही हाथों आप मेरा प्राणान्त कर दें। मैं पवित्र हो जाऊँगी। मेरी आकाङ्क्षा पूरी हो जायगी। परलोकमें पुनः आपकी सेवामें आ जाऊँगी।'

'यह क्या कहती हो, फूल। पुरन्दरने उदास होकर कहा।

'मैं जो कह रही हूँ, वही ठीक है। आप मेरी लालसा पूरी करें। मराठा राजपूत हैं आप!' वह बोल गयी।

पुरन्दरने कटार खींच ली। हाथ ऊपर उठाया, कटार चमक गयी। पुरन्दरका कलेजा धड़क उठा और हाथ हिल गया; पर फूलके चेहरेपर प्रसन्नता नाच उठी।

सहसा पीछेसे एक बाँदीने हाथ पकड़ लिया। पुरन्दर सन्न रह गये। फूल क्रोधसे काँप उठी।

'हाथ छोड़ दे। मैं बेगम होकर हुक्म दे रही हूँ।' बेगमने जोरसे डाँटा, बाँदी भाग खड़ी हुई।

× × ×

'नालायक बाँदीने बादशाहको सारा भेद बता दिया,' फूलने घबराहटसे कहा। 'आप इस सुरङ्गकी राह शीघ्रतासे चले जायँ। सुरगद्वारपर सुसज्जित अश्व तैयार है।'

पुरन्दर सुरंगमें घुसे। घोड़ेपर सवार हो भाग निकले, पर औरगजेबके सैनिक उनके पीछे लग गये थे। सैनिकोंके बाण पुरन्दरके शरीरमें चुभते जा रहे थे। रक्त टपक रहा था, पर वे वायु-विनिन्दक गतिसे घोडा भगाये लिये जा रहे थे। अन्तमें उनका शरीर शिथिल पड गया। वे पकड़ लिये गये।

'महलके भीतर कैसे पहुँचे?' औरंगजेबने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा। 'वहाँ कोई आदमी नहीं जा पाता। भेद बता देनेपर मैं तुम्हें माफ कर दूँगा।'

'तुम्हारे-जैसे चोरोंसे वीर मराठे माफी नहीं चाहते,' क्रोधसे काँपते हुए लाल आँखें किये पुरन्दरने उत्तर दिया। 'तुमने मेरे सर्वस्व—मेरी पत्नी—की चोरी की थी। मैं उसे ही लेने आया था।'

औरंगजेब अपमान नहीं सह सकता था। उसने पुरन्दरको तुरंत प्राणदण्डकी आज्ञा दी। बागनिंद पुरन्दरके शरीरमें चमकती हुई सगीनें चारों ओरसे धँस गयीं। औरंगजेब अपनी आँखोंसे देख रहा था।

सहसा पीछेकी ओरसे एक दर्दभरी चीख सुनकर वह घबरा गया। देखा तो हाथमे कटार लिये फूलजानी बेगम

भागती आ रही है। उसकी बिखुरी केशराशि नागिनोंकी तरह पीठपर लहरा रही थी। वह चण्डी बन गयी थी।

औरंगजेब काँप उठा। एक क्षण सैनिक भी स्तब्ध रह गये। उन्होंने बेगमके हाथसे कटार छीननेकी कोशिश की,

किंतु इसके पूर्व ही कटार उसके कोमल हृदयमें प्रवेश कर गयी। फूल गिर पड़ी। खूनका फौवारा छूट पड़ा!

मरते-मरते उसने कहा—हिंदू-नारीका पति ही सर्वस्व होता है। विश्वकी कोई शक्ति भी उसे अपने पतिसे अलग नहीं कर सकती। महलमें बंद रहकर भी मैं इन्हीं देवताके चरणोंमें थी। इनके परलोक-गमनपर भी इन्हींके पास जा रही हूँ।

औरंगजेबने सिर थाम लिया। हिंदू-नारीकी पति-भक्ति देखकर वह चमत्कृत हो गया। अहमदनगर किलेके बाहर उसने एक समाधि बनवायी। सात दिनोंतक अनवरत रूपसे बादशाहके आज्ञानुसार उसकी सारी बेगमें समाधिपर फूल चढ़ाती और दीपक जलाती थीं।

समाधिपर उसने निम्नाङ्कित आशयका एक फारसी-शेर भी खुदवाया था। सुनते हैं, वह अबतक विद्यमान है।

जो मैं ऐसा जानता, सरल बालिका माहिं।
इतना अतुलित प्रेम है, फूल छेड़ता नाहिं॥

—शि० दु०

देवी चौधुरानी

भारतमें अंग्रेजोंका राज्य स्थापित होनेपर पहला गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्स हुआ। उस समय बंगप्रान्तकी स्थिति अत्यन्त विलक्षण थी। अंग्रेजोंने बंगालके नवाबके लिये अल्प मात्रामें वार्षिक पेन्शन निर्धारित करके सारी व्यवस्था अपने हाथमें ले ली थी। उनके पास अस्त्र थे, शस्त्र थे, सैनिक थे! सब कुछ होते हुए भी उन्हें प्रजाकी सुख-शान्तिकी कोई चिन्ता नहीं थी। वे तो केवल भारतका अमूल्य धन इंग्लैंड भेजनेमें व्यस्त थे।

प्रजा अनाश्रित थी। असहायावस्थामें पड़ी थी। उसके दुःख-सुखकी चिन्ता करनेवाला कोई नहीं था। उसकी सम्मान-प्रतिष्ठाकी रक्षा करनी किसीको अपेक्षित नहीं थी। छोटे-छोटे जमींदार भी स्वार्थवश अंग्रेजोंके तलवे सहला रहे थे। क्योंकि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिये जिन-जिन जमींदार और ताल्लुकेदारोंने संगठित होकर अंग्रेजोंका विरोध किया था, वे सब-के-सब या तो मौतके घाट उतार दिये गये या आजन्म कालकोठरीमें ठूँस दिये गये थे। उनकी सारी सम्पत्ति तो अंग्रेजोंने छीन ही ली थी।

पश्चिमी बंगालमें प्रजामें अब भी एक धनिकवर्ग था। उनपर डाकुओंका प्रतिदिन आक्रमण होने लगा। डाकुओं-का छोटा दल आता और बड़े-बड़े धनी तथा जमींदारोंके पास जाकर धनकी माँग करता। धन तुरंत मिल जाता। रंचमात्र भी चीं-चपड़ करनेपर धनीका सिर धड़से अलग हो जाता। धन लेकर डाकू अविलम्ब भाग जाते। डाकुओंका आतङ्क उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था।

आश्चर्यकी बात तो यह थी कि डाकुओंकी अध्यक्षा एक स्त्री थी। पर उसका किसीको पता नहीं था। वह कौन है, कहाँकी रहनेवाली है, उसकी जाति क्या है, वह सधवा है या विधवा इसका किसीको पता नहीं था। उसे कोई रानी या कोई गौरीबाई और कोई देवी चौधुरानी कहता। इसके नामसे बड़े-बड़े लोगोंका कलेजा काँप जाता था।

देवी चौधुरानी अत्यन्त चतुर एवं वीर नारी थी। उसने बड़ी कुशलतासे चुने हुए डाकुओं और अनाश्रित वीर सरदारोंको एकत्र कर सैन्य संगठित किया। वह रानी बन गयी। पश्चिमी बंगप्रान्तमें घोषित हो चुका था कि देवी

चौधुरानी 'रानी' है। 'अंग्रेजों और मुसलमानोंको निकालकर उर्वर बंगभूमिको स्वतन्त्र करना ही मेरा उद्देश्य है'—अपने उद्देश्यका उसने स्पष्टीकरण कर दिया था।

सुदृढ़, दुर्ग संगठित सैन्य और अगाध सम्पत्तिका संग्रह कर लिया था उसने। अब अंग्रेजोंको लूटनेका कार्य-क्रम बना। गुप्तचरके द्वारा यह समाचार पाकर एक अंग्रेज कलकत्ता लार्ड हेस्टिंग्सको रहस्य बताने गया। वह कलकत्ता पहुँच भी नहीं पाया कि कलकत्तेके कई धनिकोंकी सम्पत्ति लूट ली गयी। अंग्रेज सैनिक कुछ नहीं कर पाये। उन लुटेरोंमें देवी चौधुरानी भी थी।

यह वृत्तान्त सुनकर लार्ड हेस्टिंग्सके कान खड़े हो गये। उसने देवी चौधुरानीको दबाना अत्यन्त कठिन काम समझा। अंग्रेजोंने समझा कि 'देवी चौधुरानीके नाममें भी कोई षड्यन्त्र है। कोई वीर षड्यन्त्रकारी पुरुष देवी चौधुरानी बना हुआ है।' उसने एक विशाल सैन्य एकत्र करके लुटेरोंके विनाशके लिये भेजा।

अंग्रेजोंकी गोलियोंकी बौछारके सामने लुटेरे टिक नहीं सके। वे अपने-अपने प्राण लेकर भागे। अंग्रेजोंने एक-एक लुटेरेका उच्छेदन करना शुरू कर दिया, पर देवी चौधुरानीके माथेपर बल भी नहीं पड़ी। उसने अपने सैनिकोंको युद्ध करनेका आदेश दिया।

घमासान लड़ाई शुरू हुई। एक-एक अंगुल भूमिके लिये अंग्रेजोंको अपने रक्तकी तीव्र सरिता प्रवाहित करनी पड़ती थी। वे त्रस्त हो गये थे। पर वे भी साहसी थे। उनके पास सेना और सामग्री प्रचुर मात्रामें थी। बढ़ते हुए वे देवी चौधुरानीके दुर्गके पास चले गये।

डाकू दुर्गके द्वारपर डटकर युद्ध कर रहे थे। पीछेसे भी छिपा हुआ डाकुओंका दल आकर अंग्रेजोंका प्राण-संहार करने लगा। दुर्गके ऊपरसे एक तोपसे लाल लाल गोलोंकी धुआँधार वर्षा होने लगी। सहस्रों अंग्रेज देखते-देखते धराशायी हो गये। उनके प्राणोंके लाले पड़े थे। डाकुओंकी युद्धकला देखकर वे चकित हो गये।

तोप पकड़नेके लिये जिन अंग्रेजोंने ऊपर चढ़नेकी कोशिश की, वे सभी बारी-बारीसे गोलियोंसे भून दिये गये। अंग्रेजोंका एक सैनिक दुर्गमें घुस गया। उससे एक डाकू भिड़ गया। दो घंटेतक युद्ध होनेके पश्चात् एक अंग्रेजकी संगीनसे डाकूकी मृत्यु हुई।

युद्धमें मर-मिटनेके लिये उत्साह तथा इतनी रणचातुरी लुटेरोंमें देवी चौधुरानीसे आयी थी। देवी चौधुरानीको सभी देवी मानकर श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे, पर वह किसी ही सैनिकके सामने प्रकट होती थी। अन्य सबके लिये वह अन्ततक रहस्यमयी ही बनी रही।

नारी होकर भी देवी चौधुरानीने बड़े-बड़े वीरोंके दाँत खट्टे कर दिये। अन्तमें भी वह अंग्रेजोंके हाथ नहीं आयी। सुनते हैं त्रस्त प्राणियोंकी सहायताके लिये देवी आयी थी, फिर योगबलसे अन्तर्धान हो गयी।

इस देवीके नामपर प्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीबंकिमचन्द्र चटर्जीने एक सुन्दर और वृहत् उपन्यास लिखा है।

—शि० दु०

रानी भवानी

(लेखक—श्रीदेवेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय)

देशके असंख्य नर-नारी जिनको देवता समझकर प्रणाम करते हैं, जिनकी पुण्य-छायाने बंगालके मुर्शिदाबादको आज भी स्निग्ध कर रखा है, आज भी मुर्शिदाबादका बड़नगर जिनकी अतुलनीय देवभक्तिका कुछ-कुछ परिचय दे रहा है, भारतप्रसिद्ध प्रातःस्मरणीय वे रानी भवानी बंगालके नाटोर राज-वंशके जमींदार रामकान्तकी धर्मपत्नी थीं।

राजा उदयनारायणका पतन होनेपर राजशाही जमींदारी नाटोरवंशके हाथमें आ गयी। इस नाटोरवंशके आदिपुरुष रघुनन्दन थे। उन्होंने मुर्शीदकुलीखाँके समीप काम करके अपनी बुद्धिमत्तासे उनके प्रियपात्र बनकर इस जमींदारीको प्राप्त किया था। पश्चात् यह जमींदारी उनके भाई रामजीवनको मिली। रामजीवनके पुत्र कालिकाप्रसाद थे और उनके दत्तक पुत्रका नाम रामकान्त था। रामकान्तके परलोकवासी होनेपर उनकी पत्नी रानी भवानीने सारी सम्पत्तिका उत्तराधिकार प्राप्त करके बंगालके जमींदारोंमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया। बंगालके नवाब सिराजुद्दौलाके विरुद्ध जब लार्ड क्लाइव बंगालके श्रेष्ठ मनीषी और धनी-समुदायके साथ षड्यन्त्र करके उनका नाश करनेकी चेष्टा कर रहे थे, उस समय एकमात्र इन महीयसी महिलाने ही उनका प्रतिवाद किया था। इनके प्रतिवादस्वरूप उपदेशके अनुसार कार्य

होता तो प्रायः दो सौ वर्षोंतक जो भारतको अंग्रेजोंके अधीन रहकर दुःसह यन्त्रणा भोगनी पड़ी; उससे बहुत कुछ छुटकारा मिल जाता।

रानी भवानीको जो जमींदारी मिली थी, उससे प्रायः डेढ़ करोड़की वार्षिक आय थी। इसमेंसे सत्तर लाख रुपये सरकारको लगान देना पड़ता। शेष प्रायः सभी रुपये पुण्यकार्यमें व्यय होते। तत्कालीन बंगालके जमींदारोंमें इन्हींकी आय सबसे अधिक थी। अब भी इनके वंशधर नाटोरके जमींदार महाराजकी उपाधि धारण करते हुए सम्मान और गौरवके साथ अपनी लुप्तप्राय जमींदारीका उपभोग कर रहे हैं।

रानी भवानी बत्तीस वर्षकी उम्रमें विधवा हुई थीं। उनके 'तारा' नामकी एक कन्या थी। रानी भवानीके जीवनकालमें ही वह भी विधवा हो गयी और उसने फिर ब्रह्मचारिणीका जीवन बिताया। विवश होकर रानी भवानीको एक दत्तक पुत्र ग्रहण करना पड़ा। यह दत्तक पुत्र ही बंगालके साधक-चूड़ामणि राजयोगी रामकृष्ण थे। रामकृष्णके बड़े होनेपर जमींदारीका सारा भार उन्हें सौंपकर भवानी भागीरथीके तटपर बड़नगर चली आयीं और उसे देवमन्दिरोंसे विभूषित करके वाराणसीके सदृश पवित्र बना दिया। धर्मप्राणा माताके साथ उनकी सुयोग्य कन्या भी गङ्गातट-निवासिनी हो गयीं। रानी भवानीके जीवनकालमें ही रामकृष्णका देहान्त हो गया था; इसलिये रानीने उसकी सारी देवोत्तर सम्पत्ति एक दानपत्रके द्वारा रामकृष्णकी पत्नी जयमणिको दे दी थी।

बड़नगरमें निवास करनेके समय रानी भवानी अपने हाथों जमींदारीका शासन करतीं और उनकी सारी दैनिक कार्यावली एक निर्दिष्ट नियमसे चलती। वे प्रतिदिन चार घड़ी रात रहते उठकर मालाके द्वारा जप करने बैठ जातीं; आधी घड़ी रात रहते जप पूरा होनेपर वे बगीचेमें जाकर अपने हाथों पुष्पचयन करतीं। जिस दिन अँधेरा रहता, उस दिन नौकर आगे-पीछे मशाल लिये रहते। पुष्पचयनके पश्चात् गङ्गास्नान करके दो घड़ी दिन चढ़नेतक घाटपर बैठकर जप, गङ्गा-पूजन और शिव-पूजन करतीं। तदनन्तर प्रत्येक मन्दिरमें पुष्पाञ्जलि अर्पण करके घर लौटतीं और पुराण-शास्त्रके श्रवण, शिव-पूजन और इष्ट-पूजनमें लग जातीं। दुपहरतक इन्हीं सब कार्योंमें समयका सदुपयोग करतीं। इसके बाद अपने हाथों रसोई बनाकर पहले दस ब्राह्मणोंको भोजन करातीं; फिर परिवारस्थ ब्राह्मणोंके भोजनकी व्यवस्था करके ढाई पहर दिन चढ़े स्वयं हविष्यान्न भोजन करतीं। तदनन्तर दीवान-दफ्तरमें कुशासनपर बैठकर मुख-शुद्धि करनेके अनन्तर कर्मचारियोंको कामकाजका आदेश करतीं; वे लोग उन आदेशोंको लिख लेते। तीन पहर बीतनेपर फिर पुराण सुनने लगतीं। दो घड़ी दिन बचता, तब पुराणकी कथा बंद होती। इस समय सब कर्मचारी उनके आदेशानुसार कागज-पत्र तैयार करके उनसे हस्ताक्षर करानेके लिये आ जाते। रानी सबका मर्म समझकर उनपर मोहर लगाकर हस्ताक्षर करतीं। सायंकालको पुनः गङ्गादर्शन करके और गङ्गाजीपर घृत-दीपक जलाकर घर लौटतीं और चार घड़ी रात बीतनेतक जप करती रहतीं। इसके बाद जलपान करके दीवान-दफ्तरमें जातीं और कामकाजके सम्बन्धमें सबको निर्देश करतीं। पहरभर रात्रिके समय प्रजाजनके आवेदन सुनकर उनपर विचार करतीं और अन्तमें पहरेदारोंमें कौन कहाँ है, सबका पता लगाकर डेढ़ पहर रात बीतनेपर शयन करतीं।

रानी भवानीने बहुसंख्यक देव-मन्दिरोंका निर्माण कराकर अपने प्रिय निवासस्थान बड़नगरकी शोभा बढ़ाई थी। इन मन्दिरोंके भोगरागके लिये उन्होंने प्रायः एक लाख रुपये वार्षिक वृत्ति बाँध दी थी। उनके बनाये मन्दिरोंमें भवानीश्वरका मन्दिर सबसे बड़ा है। इस गगनस्पर्शी मन्दिरकी निर्माणकला बड़ी ही प्रशंसनीय है। इस समय यह असंस्कृत और भग्नप्राय स्थितिमें है। इसके पश्चिमकी ओर रानीकी कन्या ताराने गोपाल-मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिरमें भगवान् श्रीगोपालजीकी काले पत्थरकी बड़ी ही मनोहर मूर्ति विराजित है। गोपाल-मन्दिरके पीछे इनके दत्तकपुत्र साधकप्रवर राजा रामकृष्णकी साधनाका पञ्चमुण्डी आसन था। आज भी एक सूखे बेल-वृक्षके नीचे वेदीके चिह्न मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त राजराजेश्वरी देवीका मन्दिर और मदनगोपालजीका मन्दिर आदि हैं। इन सभी मन्दिरोंकी कारीगरी प्रशंसनीय है। मन्दिरोंकी दीवारोंपर देव-देवियोंकी मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। भवानीश्वर और गोपाल-मन्दिरके उत्तरकी ओर राजमहलके बीचमें एक पूर्व-द्वारी मकानके नीचेके तल्लेमें रानी भवानी रहती थीं। वह पवित्र गृह आज भी राज-परिवारकी पवित्रताकी रक्षा कर रहा है।

इस प्रकार कठोर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए

देव-सेवा, दीन-प्रतिपालन और प्रजाके हित-साधनमें अपने जीवनको उत्सर्ग करके रानी उनासी (७९) वर्षकी अवस्थामें बड़नगरमें भागीरथीके तटपर विश्व-जननी भवानीके साथ नित्य-सम्मिलित हो गयीं।

आजकलकी शिक्षिता पाश्चात्त्य भावोंसे भावित नारियोंके लिये और दूसरी ओर अशिक्षिता कुरुचिपूर्ण भावोंसे ग्रसित अबला नारियोंके लिये भी इस साधिका महीयसी नारीकी जीवनी अत्यन्त हितकर है। आशा है वर्तमान नारी-समाज इस प्रातःस्मरणीया नारीके आदर्शपर चलकर हिंदू-भारतके गौरवकी रक्षा करके जगत्की नारियोंके सामने एक महान् आदर्श उपस्थित करती हुई स्वयं धन्य होंगी और जगत्को धन्य करेंगी।

महारानी लक्ष्मीबाई

(लेखक—श्रीरामलालजी बी० ए०)

महारानी लक्ष्मीबाई स्वाधीनताकी लक्ष्मी थी। देश, धर्म और स्वतन्त्रताके लिये इस वीराङ्गनाने आत्मबलिदान किया है। वह भारतीय स्वाधीनताकी देवी थी; झाँसीका किला स्वराज्य-मन्दिर है, स्वतन्त्र जातिकी बलिवेदीका भव्य महल है। कौन ऐसा हिंदुस्थानी होगा, जिसकी नसोंमें इस वीर-भूमिको देखकर बिजली न दौड़ जाय। इस पवित्र मन्दिरके कण-कणमें स्वाधीनताका इतिहास छिपा है, जिसे पढ़नेके लिये वीर जाति ही समर्थ कही जा सकती है। किलेकी राज्यलक्ष्मीकी अमर आत्मा अब भी सारे वातावरणको अपने सिंहनादसे कम्पायमान करती हुए कहती-सी जान पड़ती है, दीखती है—'झाँसी मेरी है, अपनी झाँसी किसीको नहीं दूँगी। जो लेना चाहे, आये; मैं उसे देख लूँगी।' यह था उसकी स्वाधीनताका मूल मन्त्र, यह था उसके स्वाभिमानका परिचय !

कौन जानता था कि मोरोपन्त ताम्बे और सौभाग्यवती भागीरथीबाईकी लाड़ली संतान भारतीय स्वाधीनताके रणमें अडिग चरण रखकर अपने-आपको अमर कर लेगी ! कौन जानता था कि बिठूरमें नानासाहबके साथ-साथ खेलनेवाली बालिका मनूबाई गङ्गाधररावकी राजरानी होगी ! इतिहासको कहाँ पता था कि अभिनय दुर्गावतीकी कहानीसे उसका अङ्ग-अङ्ग रँग उठेगा ! मनूबाईकी बाल्यावस्था पुण्यसलिला भागीरथीके तटपर बिठूरमें ही बीती थी, वह सोनेकी थालीमें प्रत्येक साल घीके दीप जलाकर नानासाहब सरीखे स्वतन्त्र भारतीय राजकुमारकी आरती उतारती और भैया-दूजका उत्सव मनाती थी। दीपकोंकी चमक और सुनहले आलोकमें भारतका स्वर्णयुग उतर आया करता था।

इस वीराङ्गनाका जन्म कार्तिक कृष्ण १४ संवत् १८९१ में हुआ था। ज्योतिषियोंने भविष्यवाणी की थी कि संसारके इतिहासमें इसका नाम सदाके लिये अमर रहेगा। मनूका बाल्यकाल बालक नानासाहबके ही साथ बीता। बाजीराव पेशवाने इन दोनोंकी शिक्षा-दीक्षाका उचित प्रबन्ध कर दिया था। प्राचीन शिक्षा-प्रणालीके अनुसार लिखना पढ़ना, शस्त्र-अस्त्र चलाना, घोड़ेपर चढ़ना इस वीर-कन्याने थोड़े दिनोंमें ही सीख लिया था। झाँसीमें उस समय गङ्गाधरराव राजा था। लक्ष्मीबाईका विवाह उन्हींसे कर दिया गया। झाँसीकी रानी होनेके बाद उसे कभी बिठूर जानेका सौभाग्य नहीं मिला। रानी निःसन्तान थी। आनन्दराव दामोदर नामक एक बालकको गोद लेनेकी बात पक्की हुई और गवर्नर-जनरलसे स्वीकृतिके लिये लिखा-पढ़ी की गयी कि दामोदर नामक बालक गोद ले लिया गया है। झाँसीका राज्य तो पहलेसे ही अंग्रेजोंका विश्वासपात्र होता चला आया था; लेकिन इस समय डलहौसी भारतके मान-चित्रको लाल रंगसे रँगनेकी चिन्तामें चूर था। रानी लक्ष्मीबाईकी बात अनसुनी कर दी गयी। इतिहासकार केनोने लिखा है कि रानीका प्रयत्न व्यर्थ ही गया। झाँसी राज्य गङ्गाधरकी मृत्युके बाद अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया और रानी तथा उसके दत्तक पुत्रके गुजारेके लिये थोड़ी-सी पेन्शन बाँध दी गयी।

विधवा होनेपर महारानीका जीवन एक पवित्र हिंदू नारीकी तरह संयमित और नियमित हो गया। उसने अपना सारा ध्यान जप-तप-नियम, पूजा-पाठ और ईश्वरभक्तिमें लगाया। नित्यकर्मसे निवृत्त होकर वह तुलसी-पूजन करती और दान-धर्म आदिमें व्यस्त रहती थी। महाभारत भागवत-पुराणादि सुननेमें उसकी बड़ी रुचि थी। उसका जीवन पूर्ण वैराग्यमय हो गया।

कुछ दिनोंके बाद रानीने धूम-धामसे अपने दत्तक पुत्र दामोदरका उपनयन-संस्कार किया। इसके लिये दत्तकके नाम जमा सात लाख रुपयेमेंसे एक लाख सरकारने मंजूर किया

था ; राज्य हड़प लिये जानेपर भी अंग्रेजोंके प्रति रानीका व्यवहार उत्तम ही रहा, उसने मनमें कभी द्वेष या वैमनस्यके भाव न उठने दिये। फिर भी होनहार तो होकर ही रहता है। गोरोंके सिरपर विनाशका भूत बैठ गया था, वे तो बहुत दूरका स्वप्न देख रहे थे। फिर भी नानासाहब, झाँसीकी रानी, ताँत्या टोपे आदिके रहते उनका मनोरथ सिद्ध होना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। डलहौसीकी राज्य हड़प लेनेकी नीतिसे भारतके स्वतन्त्र शासकोंको पता चल गया कि किसी भी हालतमें गोरों और फिरङ्गियोंका विश्वास नहीं किया जा सकता। सब-के-सब असन्तुष्ट थे। बगावतकी तैयारी भीतर-ही-भीतर होने लगी। शिवाजीके वंशज और स्वाधीन भारतीय शासक नहीं चाहते थे कि कासिमबाजार और सूरतमें घूम-घूमकर खिलौने बेचनेवाले सौदागर हमें अपने हाथोंका खिलौना बना लें; उन्होंने इस शरारतकी सजा देनेकी विधि सोची। इन विदेशियोंको निकाल बाहर करनेके लिये जोरदार प्रयत्न आरम्भ हो गया। बारूदमें आग लगने भरकी देर थी। अंग्रेजी सेनाके हिंदुस्थानी सैनिकोंमें असन्तोष बढ़ गया था और उनके हृदयोंमें विद्रोहकी आग सुलग रही थी। रानी लक्ष्मीबाईको इस नाटकमें बहुत बड़ा काम करना था। उसे स्वाधीनताके इस महायज्ञमें बड़े-से-बड़ा आत्मत्याग और बलिदान करना था।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि रानी अंग्रेजोंको निकाल बाहर करना चाहती थी। यह तो उसके लिये स्वाभाविक ही था; क्योंकि वह नानासाहबके साथ शिवाजीके राज्याधिकारीकी राजधानी बिठूरके स्वतन्त्र वातावरणमें पली थी। परंतु कुछ विद्रोही सरदारों और सेनापतियोंकी नीति और कार्य-प्रणाली उसे पसंद नहीं थी। विद्रोहियोंके सामने सामूहिक रूपसे तीन लक्ष्य थे; उनका एक वर्ग देश-प्रेमसे पागल होकर नन्दकुमारके हत्यारोंको, वारेन हेस्टिंग्जके देशवालोंको हिंदुस्थानसे बाहर निकालकर हिंदुस्थानमें अपना खोया राज्य या स्वराज्य स्थापित करना चाहता था; इस वर्गमें नानासाहब, महारानी लक्ष्मीबाई, कुँवरसिंह, बाँदेका नवाब, ताँत्या टोपे और अन्तिम मुगल-अधिपति बहादुरशाह थे। दूसरा वर्ग स्वराज्य-स्थापनाके साथ-ही-साथ केवल अंग्रेजोंको ही नहीं, उनके हिंदुस्थानी सहायकोंको भी मार-काटकर तथा उनका राज्य हड़पकर भारतमें भारतीयोंका आधिपत्य चाहता था; इस वर्गने कुछ समझदारीसे काम लिया। तीसरा वर्ग कुछ ऐसे शासकों, सैनिकों और लुटेरोंका था, जो केवल लूट-पाट करना चाहता था और भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलनसे लाभ उठाकर अपने-आपको दृढ और समृद्धिशाली बनानेके फेरमें था। इस वर्गकी हार-जीतका महत्त्व कुछ भी नहीं था; जिसकी शक्ति बढ़ती देखता था, उसीकी ओर हो जाता था। इस वर्गने भारतीय जन-आन्दोलनकी बड़ी हानि की। इसी वर्गके एक सरदार नत्थेखाँने झाँसीके किलेको घेरकर रानीसे तीन लाख रुपये माँगे। वह रुपये कहाँसे लाती। अंग्रेजोंने राज्यकी सम्पत्तिपर पहलेसे हाथ साफ कर दिया था, फिर भी अपने मान और गौरवकी रक्षाके लिये अपने सारे कीमती आभूषण उसने नत्थेखाँके हाथमें रख दिये; बादमें यह दुष्ट अंग्रेजोंसे मिल गया और उसने रानीपर विद्रोही होनेका लाञ्छन लगाया। अंग्रेज तो रानीसे सशङ्कित थे ही। झाँसीके दमनकी तैयारी होने लगी। लक्ष्मी रणचण्डी बन गयी। विद्रोहका नया अध्याय आरम्भ हो गया। झाँसीके वीर सैनिक 'हर हर महादेव' का सिंहनाद कर रणमें कूद पड़े।

झाँसीकी जनताने नंगी तलवार चूमकर रानीका अभिवादन किया। वह किलेकी ऊपरी छतपर खड़ी थी। उस रणभवानीके सिरपर लाल रंगकी चमकदार टोपी थी, जिसमें मोतियोंकी लडी और रत्न जड़े थे। गलेमें हीरेका हार था। कमरबंदमें 'मशक' के बने हुए दो पिस्तौल थे, जिनपर चाँदी और सोनेके पत्तर जड़े थे। कमरबंदमें जहरसे बुता हुआ पेशकब्ज था। लाल साड़ी पहनकर वह रणाङ्गना नंगी तलवार लपलपाती हुई कह रही थी, 'झाँसी मेरी है, मैं किसीको न दूँगी।' प्रजाने कहा, 'माता दुर्गे! तुम निश्चिन्त रहो, हम झाँसीपर किसी विदेशीका अधिकार न होने देंगे। सारा-का-सारा वातावरण 'हर हर महादेव' के जयनादसे गूँज उठा। डलहौजीज एडमिनिस्ट्रेशन द्वितीय भागमें लिखा है—The lightening of Jhansi declared, 'Give up my Jhansi? I will not! Let him try to take who dares !! Meri Jhansi doongi nahin !!'

खानदेशका रहनेवाला सदाशिव नारायण महारानीके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ, वह अंग्रेजोंका कृपापात्र था। नत्थेखाँने अंग्रेजोंसे मिलकर रानीपर हमला कर दिया। महारानी क्रोधसे लाल हो गयी। उसने कहला भेजा—'मैं हिंदू-नारी हूँ। रणाङ्गणमें शत्रुकी ललकारका उत्तमताके साथ स्वागत करना जानती हूँ। आक्रमणका उत्तर रणभूमिमें मेरी तलवार देगी।' विकट युद्ध हुआ। नत्थेने अंग्रेजोंसे सहायता माँगी। पहले तो वह दुष्ट विद्रोहियोंका सरदार था। महारानी

अबला नहीं, सबला थी; उसके दमनके लिये इंग्लैंडसे १६ सितम्बर १८५७ ई० को सेनापति सर ह्यू रोज आ पहुँचा और अचानक ही एक दिन सात बजे सबेरे उसने झाँसीपर हमला बोल दिया। उसने रानीके पास कहला भेजा कि 'आप किलेसहित अपने-आपको समर्पण कर दें।' रानी सिंहिनीकी तरह गरज उठी; उसने पत्र लिखवाया कि 'मैं आत्मसमर्पणको अपना प्रत्यक्ष अपमान समझती हूँ। आपको मालूम होना चाहिये कि हिंदू-नारी, जो हिंदू-संस्कृति और राष्ट्रीयताकी अनुगामिनी है, किसी पुरुषको आत्मसमर्पण नहीं कर सकती।' कुछ इतिहासकारोंका मत है कि इस उत्तरसे अंग्रेज-सेना कुपित हो उठी, अंग्रेजोंने झाँसीमें गोवध करना आरम्भ कर दिया।' महाराज शिवाजीके वंशको पवित्र करनेवाली इस महाराष्ट्र-रानीने खुले आम विद्रोहका झंडा खड़ा कर दिया। झाँसीकी रानीने अंग्रेजोंके छक्के छुडा दिये और सर ह्यू रोजके दाँत रँग दिये, जिसने रानीकी प्रशंसा विद्रोहियोंकी सबसे कुशल सेनापति कहकर की है। उसने कहा था—'She was the dravest and best man on the side of the mutineers.' रानीने किलेपर गरगज, कड़क बिजली, घनगर्ज, भवानीशकर तोपें रखवा दीं। अंग्रेजोंने झाँसीके किलेपर गोले बरसाना आरम्भ किया। रानीने उन्हें मुँहतोड़ जवाब दिया। वह स्वयं घोड़ेपर सवार होकर और हाथमें नंगी तलवार लेकर अपने सैनिकोंको प्रोत्साहित करने लगी। फिरंगी रानीकी वीरतासे दंग हो गये। अंग्रेजी सेनामें घनगर्ज तोपकी मारसे हाहाकार मच गया। वह पीछे हटने लगी। रानीने अपने तोपची गुलाम गौसखाँको शाबाशी दी और पुरस्कारमें एक जोड़ा सोनेका कड़ा दे डाला। वह तो देशकी स्वाधीनताके नामपर अपने प्राणोंका पुरस्कारतक देनेके लिये तैयार थी। वह आत्मबलिदानकी देवी थी। दो-ही-चार दिनोंके बाद रानीको ताँत्या टोपेकी हारका समाचार मिला। वह कुछ खिन्न हो उठी। झाँसीपर भी अंग्रेजोंने खून-पसीना एक करनेके बाद विजय पायी। रानी दुखी हुई, फिर भी उस वीर रमणीने उनका मूलोच्छेदन करनेका व्रत ले ही लिया। रानी अभी किलेमें ही थी; उसने कहा, 'यह असम्भव है कि मेरे जीते-जी झाँसी अंग्रेजोंकी हो जाय। जबतक हाथमें तलवार है, तनमें प्राण है, झाँसी मेरी ही रहेगी।' वह सैनिकोंको लेकर किलेके नीचे उतरी। अंग्रेजोंने धोखेसे वार करना आरम्भ किया, सारे किलेमें भयङ्कर अग्नि प्रज्वलित हो उठी। अंग्रेजोंने विशाल किलेको श्मशानतुल्य बनाकर उसमें आग लगा दी और इतिहासके पृष्ठोंपर अपनी कायरतामूलक वीरताका अमिट चित्र खींच दिया। रानीने अपने शरीरको गोले-बारुदकी कोठरीमें आग लगाकर जला देना चाहा, लेकिन सरदारोंके बहुत कहने-सुननेपर उन्होंने बाहर निकल जाना ही उचित समझा। सोनेकी चिड़िया निकल गयी, दुश्मनोंने पीछा किया। रानी ग्वालियर रियासतके भाण्डेर नामक स्थानपर पहुँच गयी। लेफ्टेनेंट वाकर पीछा करता हुआ आ पहुँचा। रानी सूर्य-रश्मिकी तरह तलवार चमकाती हुई आगे बढ गयी, महामाया कालीकी तरह उसने पीछा करने-वालोंको मौतके घाट उतार दिया और चौबीस घंटोंतक घोड़े-की पीठपर रहकर एक सौ दो मीलका लंबा रास्ता पार कर लिया। काल्पी पहुँचकर उसने स्वतन्त्रताकी ज्वाला सुलगा दी। उत्तर भारतके मुख्य-मुख्य विद्रोहियोंकी बैठक हुई। नाना-साहबसे यहीं रानीका मिलन हुआ; उन्होंने प्रतिज्ञा की—'मेरी तलवार शत्रुओंके विनाश और हिंदुस्थानकी मर्यादा रखनेके लिये सदा उठी रहेगी।' नानासाहब रानीकी बात सुनकर गद्गद हो गया। काल्पीमें अंग्रेजी फौज विजयी हुई। पेशवाकी छावनीसे महारानी बाहर निकल गयी।

विद्रोही ग्वालियरकी ओर बढ़े। जयाजीराव सिंधिया अंग्रेजोंका बहुत बडा मित्र और सहायक था। ग्वालियरकी प्रजाने विद्रोह कर दिया, वह और चाहती थी कि राजा अंग्रेजोंसे लड़े, महारानीकी वीरतासे नानासाहबने ग्वालियरके किलेपर अधिकार कर लिया; लेकिन दिनकरराव, जो ग्वालियरका दीवान था, अंग्रेजोंसे मिल गया और अन्तमें वहाँ भी दुर्भाग्य-ने विद्रोहियोंका साथ दिया। रानीने जीवन-संग्रामकी तैयारी की। वह रत्नजटित नंगी कृपाण कमरमें लटकाये हुए रण-धुरन्धर सेनानायककी तरह अपने सैनिकोंमें नया जीवन भरने लगी। इतनेमें कर्नल स्मिथकी सेनाने रानीपर आक्रमण किया। महारानीने जी तोड़कर सामना किया। इतना भीषण रण रानीको और पहले कभी नहीं करना पड़ा था। विदेशियोंको हिंदुस्थानके बाहर निकालनेका यह अन्तिम जोरदार प्रयत्न था। रानी चारों ओरसे घिर गयी। परन्तु वह शत्रुओंका व्यूह तोड़कर आगे बढ़ गयी। उसने जानकी बाजी लगा दी, 'मानो दैत्यदलनि दरेरे देति दुरगा' की सत्यता चरितार्थ हो उठी। वह पहलेसे भी अधिक प्रचण्ड वेगसे शत्रुओंपर टूट पड़ी और विकट मार करती हुई अपने अङ्गरक्षकोंके साथ शत्रुओंके घेरेसे पार हो गयी।

रानी वायुकी तरह बढती जा रही थी, परन्तु दुर्दान्त काल उस महाकालीका पीछा कर रहा था। दो अंग्रेज सैनिक

पीछे-पीछे वेगसे चले आ रहे थे। रास्तेमें एक नाला पड़ा, रानीका घोड़ा उसे पार न कर सका। गङ्गाधरके राजमहलकी जीवन-सहचरी उस नीरव स्थानमें असहाय हो गयी। वह जीवनके अन्तिम क्षणोंकी प्रतीक्षा करने लगी। उसने देखा—दो सैनिक बढ़े आ रहे हैं। उस सबलाने, जिसने झाँसीके किलेमें बैठकर असंख्य गोरोंको स्वर्ग भेज दिया, केवल दो साधारण शत्रुओंपर वार करना अपना अपमान समझा। फिर भी उसे चिन्ता थी कि म्लेच्छ पवित्र शरीरपर हाथ न लगा दें। इसलिये उसने प्यासी तलवार सम्हाल ली, जमकर युद्ध हुआ; इतनेमें एक सैनिकने रानीके सिरपर पीछेसे आघात किया, दूसरेने आगेसे किया, महाकालीकी साड़ी खूनसे लथपथ हो गयी। रानीकी आँखोंसे चिनगारियाँ फूटने लगीं। उसने कपालिनीकी तरह उग्र रूप धारण कर लिया; उसकी तलवार उस दुष्ट शत्रुके मस्तकपर टूट पड़ी, जिसने संगीन चलायी थी। उसके दो टुकड़े हो गये, दूसरा शत्रु भी धराशायी हुआ। महामाया लक्ष्मीबाईने दोनोंके शवपर दोनों पैर रख दिये; ऐसा लगता था मानो कालीके पैरोंके तले शुम्भ और निशुम्भ दबे पड़े हैं। रणभूमिमें खूनकी धारा बहने लगी, नालेका पानी लाल हो गया। रानी निस्तेज होने लगी, उसके अङ्ग-अङ्गसे खूनके झरने बह रहे थे। रानीके अन्तिम वाक्य यही थे कि 'मेरी मृत्यु एक वीराङ्गनाकी तरह हुई। मुझे ये म्लेच्छ न जीवितावस्थामें ही पकड़ सके, न मेरे मरनेके उपरान्त ही पकड़ने पाये।'

रानीके मुखपर अद्भुत आनन्द था। उसने आँखें मूँद लीं।

झाँसीकी पवित्र भूमिपर रानीका किला आकाश चूमता-सा कह रहा है कि 'समयके आघातसे मेरा तन जर्जर और काला भले ही हो जाय, फिर भी मेरा हृदय महारानी लक्ष्मीके उज्ज्वल यशसे सदा शुभ्र—आलोकित रहेगा।'

नीरकुमारी

राजपूतोंमें एक-दूसरेके प्रति मान-अपमान तथा प्रतिद्वन्द्विताकी भावनाके विद्यमान रहते भी कर्तव्यपरायणता और वचनबद्धताने उन्हें वीर-जातिके इतिहासमें एक विशिष्ट स्थान दे रक्खा है।

केवल दो सौ साल पहलेकी बात है, मारवाड़नरेश अजीतसिंहके पौत्र रामसिंह और अजीतसिंहके द्वितीय पुत्र भक्तसिंहमें बहुत विकट युद्ध हुआ। रामसिंह शासक थे, इसलिये भक्तसिंहने उनके विरुद्ध राजद्रोह किया। कुछ सरदार राजाकी ओर थे और कुछ इने-गिने सरदारोंने विद्रोहीका साथ दिया। मेहोत्री सरदार राजाके पक्षमें था। उसके पुत्रकी वीरता प्रसिद्ध थी, परन्तु वह रणमें उपस्थित नहीं था। मेहोत्रीकुमार नीरके सरदारकी कन्यासे विवाह करने गया था। राजदूतने मण्डपमें ही आकर उससे रणकी सारी बातें बतायीं; सामने सुन्दर स्त्री थी, चारों ओर मङ्गल-स्वरोंका घोष हो रहा था। किसी तरह आवश्यक विधियाँ पूरी कर उसने वरके वेषमें ही रण-यात्रा की। चलते समय उसने विवाहिता स्त्रीसे कहा—'मैं राजपूत वीर हूँ, तुम राजपूत बाला हो। जीवित रहनेपर फिर मिलेंगे।' राजपूतनीके शरीरमें बिजली दौड़ गयी, उस वीरवधूने कहा—'यहाँ नहीं तो वहाँ अवश्य मिलेंगे।' पतिने रणकी ओर प्रस्थान किया और नीर-कन्या ससुराल गयी।

वीर और वीराङ्गनाकी सुहागरात्रि भी विचित्र थी। पत्नीने ससुराल पहुँचकर देखा कि पतिका शव चितापर रक्खा है। वह पतिके शवसे लिपट गयी। चिताकी आग

जल उठी। एक घड़ीके भी सम्बन्धने पति-पत्नीको कड़ी अग्नि-परीक्षामें पवित्र कर दिया। वह सच्चे रूपसे सहधर्मिणी थी, इस तरहके सहमरण या सहगमनका उदाहरण विश्व-इतिहासमें कम मिलेगा।—रा० श्री०

रानी राजबाई

सन् १८३७ में वढवाण (काठियावाड़) राज्यका संचालन रानी राजबाईने अपने हाथोंमें लिया। वे तेजस्वी स्वभावकी, युद्धकला एवं नीतिशास्त्रमें कुशल थीं। वढवाणमें उस समय राज्यसिंहासनपर स्त्रियोंका ही अधिकार हुआ करता था। इसी प्रथाके अनुसार पति एवं पुत्रोंकी उपस्थितिमें राजबाईने राज्यशासन प्राप्त किया था। उनमें शासनकी सम्पूर्ण योग्यता थी और उन्होंने सिद्ध कर दिया कि इस कार्यमें नारी पुरुषसे किसी प्रकार कम सुयोग्य नहीं है। उनके सुशासनके कारण ब्रिटिश अधिकारी प्रसन्न थे।

सत्तर वर्षकी आयुमें राजबाईको तीर्थ-यात्रा करनेकी इच्छा हुई। रानीने अपने अल्पवयस्क पौत्रको गद्दीका अधिकारी घोषित किया और उसकी माता (अपनी पुत्रवधू) को राज्य-संचालिका बनाकर वे तीर्थयात्राको निकलीं। उनकी पुत्रवधू गोवलबाई सुयोग्य स्त्री थी। राज्य-सञ्चालनकी उनमें पूरी योग्यता थी। पर राज्यका अधिकार हाथमें आनेपर मनमें लोभ आ गया। गोवलबाईने सोचा कि मैं क्यों अपनी सासके समान रानी न बनूँ। उन्होंने अपने विचारको कार्यरूप देनेके लिये सैनिकोंको मिला लिया।

रानी राजबाई तीर्थयात्रा करके कई वर्षोंमें लौटीं। वे राजसदनमें पहुँचकर यज्ञादि करना चाहती थीं। नगरद्वार उन्हें बंद मिला। गोवलबाईने संदेश कहला भेजा—'आप वृद्धा हुईं। आपकी मृत्यु समीप आ चुकी है। कहीं तीर्थमें जाकर भजन करें। राजभवन और राजकार्यकी उलझनोंमें आपको अब नहीं पड़ना चाहिये।'

तेजस्विनी रानीको अपमानका बोध हुआ। उन्होंने राजकोट जाकर तत्कालीन रेजीडेंट सर विलोग्वीसे सहायता चाही। सर विलोग्वीने सहायता देना अस्वीकार कर दिया। वहाँसे निराश होकर रानी राजबाईने सैन्य संग्रह प्रारम्भ किया। एक सहस्र सैनिक उन्हें मिले। लगभग पचहत्तर वर्षकी आयुमें उन्होंने सुदृढ कवच धारण किया। मस्तकपर शिरस्त्राण पहना और हाथमें नंगी तलवार लेकर वे घोड़ेपर बैठकर सैन्य-संचालन करती हुई आगे बढ़ीं।

राजधानीके द्वार बंद थे। रानीके सैनिकोंपर भीतरसे गोलोंकी मार पड़ रही थी। एक-पर-एक सैनिक गिरते जा रहे थे। सहसा सेनानायकको गोली लगी। वह लुढककर रानीके पैरोंके समीप गिर गया। वृद्धा महारानीने देखा कि उनके सैनिक पीछे हट रहे हैं। नेत्र लाल हो गये। ओष्ठ फड़कने लगे। पता नहीं उस वृद्धाके शरीरमें कहाँकी शक्ति आ गयी थी।

घोड़ेको उन्होंने आगे बढ़ाया और नगरद्वारपर पहुँची। गोले-गोलीकी वर्षाकी उन्होंने उपेक्षा कर दी थी। महारानीको बढ़ते देख सभी सैनिक बढ़ गये। द्वारपर आघात होने लगा।

नगरके सैनिक वृद्धा रानीका साहस देख डर गये। वे भाग खड़े हुए। द्वारपालने देखा कि द्वार तो टूट ही जायगा, अतएव उसने फाटक खोल दिया। समाचार पाते ही गोवलबाई भाग खड़ी हुई। प्रजाने अपनी वृद्धा रानीका स्वागत किया। इस गये-बीते युगमें भी आजसे कुल बहत्तर वर्ष पहले पौन सौ वर्षकी दीर्घ आयुमें उत्साहपूर्वक अच्छे शूरोंके हौसले पस्त करनेवाली यह प्रचण्ड वीराङ्गना रानी अपने जीवनके अन्तिम समयतक शासन-संचालिका रहीं।—सु० सिं०

रानी जयमती

आसाममें 'लरा-राजा' का राज्यकाल अपने अत्याचारोंके लिये कुख्यात है। यह अहमवंशीय राजा बालकपनमें ही सिंहासनपर बैठा था। 'लरा' का अर्थ होता है बालक। सत्य तो यह है कि शासनतन्त्र मन्त्रियोंके हाथमें था। वे अपनी सत्ता सुदृढ करनेके लिये सदा सिंहासनपर दुर्बल, भीरु एवं आलसी नरेशको रखना चाहते थे। राजा मन्त्रियोंके हाथकी कठपुतली होता था। मन्त्रियोंने षड्यन्त्र करके वहाँके राजाको मार दिया था और तब यह बालक राजा बनाया गया था। बड़े होनेपर लरा-राजाको अपने जीवनकी चिन्ता हुई। उसने राज्यके उत्तराधिकारियोंका वध करना प्रारम्भ किया। बहुतों-का अङ्गभङ्ग करा दिया उसने। उन दिनों राज्यका अधिकार खण्डिताङ्ग व्यक्तिको नहीं मिला करता था।

'लरा-राजा' ने रूप तथा गुणोंकी प्रशंसा सुनकर कुमारी जयमतीके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। ऐसे कापुरुष एवं क्रूरसे विवाह करना जयमतीने अस्वीकार कर दिया। स्वयंवर हुआ और उसमें राजकुलके धर्मात्मा, विख्यात शूर गदापाणिका उन्होंने वरण किया। आसामके लोग प्रतापी गदापाणिका बहुत आदर करते थे। पहलेसे ही 'लरा-राजा' गदापाणिसे चिढ़ता था। अब जयमतीका पाणि-ग्रहण करनेके कारण वह और भी रुष्ट हो गया। बराबर उनके वधकी चेष्टा करने लगा। किसी प्रकार थोड़े दिनों गदापाणि बचते रहे। उनके एक पुत्र हुआ। अन्तमें पत्नी-की अनुमतिसे राजकोपसे बचनेके लिये वे पुत्र तथा पत्नीको छोड़कर जंगलोंमें भाग गये।

'लरा-राजा'के सैनिकोंने गदापाणिका पीछा किया। अनेक बार गदापाणिने आक्रमण करके सैनिक-टुकड़ियोंका नाश कर दिया, पर अकेला व्यक्ति एक सेनासे कबतक लड़ता। वनमें भटकते हुए वे अत्यन्त दुर्बल हो गये। वन्य कन्दोंपर ही आजीविका थी। इधर-उधरके बराबर भ्रमण, जागरण तथा चिन्ताने उन्हें असमर्थ कर दिया। अन्तमें ब्रह्मपुत्रको पार करके किसी एकान्त गुफामें वे छिप गये। सैनिकोंको जब पर्याप्त समयतक पता न लगा तो वे निराश होकर लौट आये।

'तुम्हारे पति कहाँ हैं?' मन्त्रियोंकी सम्मतिसे 'लरा राजा' ने दरबारमें जयमतीको बुलाकर पूछा। जयमतीने उसके साथ विवाह अस्वीकार कर दिया था, इससे वह चिढ़ा हुआ था।

'मैं यह नहीं बताऊँगी कि वे कहाँ हैं,' जयमतीने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। उनकी निर्भीकता एवं तेजने एक बार सबको स्तम्भित कर दिया। मन्त्रियोंका भय दिखाना व्यर्थ था। अन्तमें उस दुष्ट राजाने सतीको बन्दीगृहमें डाल दिया। वहाँ उन्हें अनेक प्रकारकी पीडा दी जाती। भोजन कई दिनोंपर मिलता। वह भी रूखी रोटी और नमक। उनके केश ऊपर बाँध दिये जाते और इस प्रकार उन्हें कई दिनोंतक खड़ा रक्खा जाता। उस साध्वीने सब क्लेश चुपचाप सहन कर लिये।

गदापाणिको पत्नीके उत्पीड़नका पता लगा। वेश बदल-कर वे बन्दीगृहमें पहुँचे। उन्होंने जयमतीको सलाह दी कि 'तुम पतिका पता बता दो।' भला, पतिव्रता अपने पतिको नहीं पहचानेगी। जयमतीने हाथ जोड़कर-भरे कण्ठसे कहा—'मेरे स्वामी कहाँ हैं, यह मैं इस समय भी जानती हूँ। पर जब-तक मेरे शरीरमें प्राण हैं, तबतक मैं इसे बता नहीं सकती। आप व्यर्थ क्यों मुझे उलटी सम्मति देते हैं। आपको मेरा हितैषी बननेको भेजा किसने! मैं आपके पैरों पड़ती हूँ। अपने योग्य स्थलपर आप शीघ्र चले जायँ।'

गदापाणिने पत्नीका संकेत समझ लिया। मन मारकर वे लौट गये। अब 'लरा-राजा'ने जयमतीको बँधवाकर दीवालपर लटकवा दिया। उनके पैर पृथ्वीका स्पर्श नहीं करते थे। जल्लादोंका समय निश्चित कर दिया गया। एकके हटते ही दूसरा आ जाता। जयमतीपर बेंत पड रहे थे और

वे अनवरत रूपसे बराबर पंद्रह दिन-रात पड़ते रहे।

जयमतीने मुख बंद कर लिया था। उनके मुखसे उफ तक नहीं निकला।

'आपके शरीरमें तनिक भी दया नहीं ? मेरा अपमान और कष्ट देखने तथा बढ़ाने आप बार-बार आते हैं ?' गदापाणि पुनः परिवर्तित वेशमें आये तो जयमतीने बड़े दीन स्वरसे कहा था। पत्नीके हृदयपर आघात न लगे, यह ध्यान करके वे चले गये। पतिव्रता जयमती इतना कठोर उत्पीडन सहकर अधिक जीवित न रह सकीं। उन्होंने शरीर छोड़ दिया। प्रजा 'लरा-राजा'के अत्याचारोंसे ऊब चुकी थी। सरदारोंने गदापाणिको आदरपूर्वक बुलाया। उनके नेतृत्वमें प्रजाने विद्रोह किया। 'लरा-राजा' मारा गया। गदापाणि नरेश हुए। उनके पश्चात् उनके पुत्र रुद्रसिंह गद्दीपर बैठे। रुद्रसिंहने माताकी स्मृतिमें 'जयसागर' नामक तालाब और 'जयदोल' नामक मन्दिर बनवाया। जयसागरके समान विशाल तालाब कहीं खोदा हुआ नहीं मिलता। उसका जल सर्वदा स्फटिकके समान निर्मल रहता है।

भक्त कवयित्री गौरीबाई

(लेखक—श्री 'मस्त')

जिस प्रकार राजस्थानने मीराबाईको पाकर अपनेको सफल किया, उसी प्रकार वहाँ एक संतमार्गीय कवयित्री एवं परम संत भी हुई हैं। संवत् १८१५ में बागड प्रान्तके गिरपुरमें एक नागर ब्राह्मणके यहाँ गौरीबाईका जन्म हुआ था। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही उनका विवाह हो गया। विवाहके अवसरपर उनके नेत्रोंमें पीडा होनेके कारण पट्टी बाँधनी पड़ी थी। विवाहके आठ दिन पश्चात् उनके पतिका देहान्त हो गया। उन्होंने न तो पतिको देखा और न कुछ जाना। उनका सदा निश्चय रहा—'मेरा पति तो परमात्मा है।'

पिताके यहाँ ही गौरीबाईका पालन तथा शिक्षण हुआ। बचपनसे उनकी रुचि कथा, कीर्तन तथा पूजापाठमें थी। प्रारम्भसे सरल संयमित जीवनका उन्हें अभ्यास हो गया था। धीरे-धीरे अवस्थाके साथ उनका भगवत्प्रेम तथा आराधना बढ़ने लगी। इसके साथ उनकी कीर्ति भी फैली। डूँगरपुरके रावल शिवसिंहजी उनके दर्शनको आये तथा अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया। वहाँ गौरीबाईके ठाकुर संवत् १८८६ में विराजे। मन्दिरमें रावलजीने साधुओंके लिये सदाव्रतकी व्यवस्था कर दी। गौरीबाई अपनी दो भानजियोंके साथ वहाँ रहने लगीं। मन्दिरमें पण्डितोंकी कथा, शास्त्रचर्चा, साधु-संतोंका आगमन होता रहता था।

एक समय एक महात्मा मन्दिरमें पधारे। उन्हींसे गौरीबाईने दीक्षा ग्रहण की। उनके ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि उन्होंने गुरुकी कृपासे अनहदनादका श्रवण किया। अब वे पन्द्रह दिनोंतक समाधिकी स्थितिमें रहने लगीं। एक बार उनकी भानजीने परीक्षाके लिये उनकी जंघामें सुई चुभा दी। उनका शरीर हिलातक नहीं। भक्तिकी धार उनमें प्रवाहित हो गयी थी। उनका रहन-सहन सादा था, किंतु उनका प्रभाव महान् था। संवत् १८६० में वे जयपुर गयीं। वहाँ महाराज प्रतापसिंहजीने उनकी परीक्षाके लिये ठाकुरजीके मन्दिरका पट बंद करा दिया और आग्रह किया कि वे श्रीविग्रहके शृङ्गारका वर्णन करें तो मन्दिर खुलेगा। भगवान्‌के दर्शन किये बिना जाना उचित न समझकर उन्होंने एक पदद्वारा प्रभुके शृङ्गारका वर्णन किया। उसमें मुकुटका वर्णन नहीं था। पट खोलनेपर मुकुट गिरा हुआ पाया गया।

जयपुरसे आप वृन्दावनकी यात्रा करके काशी गयीं। वहाँके शिवभक्त राजा सुन्दरसिंहने आपका बड़ा सत्कार किया। आपने नरेशको समाधिमार्गका उपदेश किया। वहीं सात दिनकी समाधिके पश्चात् आपने अपनी भावना बताया कि मेरा अन्तिम समय समीप है और मधुवनमें यमुना-तटपर मैं शरीर छोड़ना चाहती हूँ। काशी-नरेशने सब प्रबन्ध कर दिया। ठीक रामनवमीको मध्याह्नमें संवत् १८६५ में यमुना तटपर आपने शरीर छोड़ा।

आप एक रामभक्त साधुकी शिष्या थीं एवं स्वयं श्रीकृष्णोपासिका थीं। आपके लिये रामकृष्णमें कोई भेद नहीं था। आपके पद बड़े प्रेमसे गाये जाते हैं। उनमें योगके गूढ रहस्य, विशुद्ध अद्वैतवाद तथा प्रेमाभक्तिका सुन्दर सामञ्जस्य है।

महारानी अहल्याबाई

महारानी अहल्याबाई इन्दौरके राजाधिराज खण्डेरावकी राजरानी और मल्हारराव होलकरकी पुत्रवधू थीं।

सत्तरहवीं सदीके समाप्त होनेपर मराठोंने जोर पकड़ा। हिंदू-पदपादशाहीकी स्थापनाका आरम्भ छत्रपति महाराज शिवाजीने किया था। बाजीराव पेशवाने उसकी पूर्ति की। बाजीरावके स्वामिभक्त सहायकोंमें दामाजी गायकवाड, राणोजी सिंधिया और मल्हारराव होलकरके नाम उल्लेखनीय हैं। इस समय मराठोंकी सेनाएँ विजय सम्पादनमें लगी थीं। एक बार

गुजरातके किसी विद्रोही दलका दमन करने मल्हारराव पूना जा रहे थे। उन्होंने पाथरड़ीके शिव-मन्दिरमें डेरा डाल दिया। आनन्दराव अथवा मनकोजी सिन्धियाकी होनहार कन्या अहल्याको उन्होंने यहीं देखा। उन्हें वे राजधानी इन्दौरमें लाये और अपने पुत्रका उनसे विवाह कर दिया। दम्पति सुखपूर्वक जीवन बिताने लगे।

राजवधू होनेपर भी दरिद्र-कन्या अहल्याने कभी गर्व नहीं किया। वे सास-ससुरकी पूजा और सेवा-शुश्रूषामें एक आदर्श हिंदू-कुलवधूकी तरह लगी रहती थीं। जन्मसे ही भगवद्भक्त थीं। पूजा-पाठके साथ राजप्रबन्धमें भी पति और ससुरको पूरा-पूरा सहयोग देती थीं। थोड़े ही दिनोंमें उन्हें एक पुत्र और एक कन्या पैदा हुए। उन्होंने नौ सालतक दाम्पत्य-सुख-भोग किया। विधातासे उनका सुख और ऐश्वर्य न देखा गया। परमात्माने उनपर संकटोंकी आग बरसाकर उनके धैर्य और साहसकी कड़ी परख की। खण्डेरावने स्वर्गलोककी यात्रा की। अहल्याने आत्मयज्ञ करना चाहा; परन्तु सास-ससुरने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया और उन्हें भी विश्वास हो गया कि यदि मैं उनकी आज्ञाकी अवहेलना करूँगी तो इन्दौरकी राज्यश्री लुट जायगी, प्रजा अनाथ हो जायगी और मराठोंके आदर्श हिंदू राज्य-की स्थापनाकी आशापर पानी फिर जायगा। उन्होंने निर्भीकतासे कहा कि यदि इस जन्ममें नहीं तो अन्य जीवनमें अवश्य ही स्वामी-से मिलूँगी। मल्हाररावने उसे सारे अधिकार सौंप दिये। सन् १७६१ में पानीपतके युद्धस्थलसे लौटनेपर उसने अहल्याकी शासनदक्षताकी बड़ी प्रशंसा की।

सन् १७६५ ई० में मल्हाररावका देहान्त हो गया। अहल्याका पुत्र मालेराव गद्दीपर बैठा। वह अत्यन्त क्रोधी उतावला और दुष्ट हृदयका पुरुष था। कहाँ तो उसकी माता ब्राह्मणोंके सामने मस्तक झुकाती थी और कहाँ वह नीच उन्हें कोड़े लगवाता था। क्रमशः उसके पापोंका घड़ा भर गया और कुछ दिनोंके बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

बाजीराव पेशवाका देहान्त होनेपर माधवराव पेशवा बनाये गये। उनका चाचा रघुनाथराव व्यसनी, कपटी और मूर्ख था। इन्दौरके मन्त्री गङ्गाधर यशवन्तके भड़काने-पर वह अहल्याको राज्यसे निकालकर इन्दौरपर अधिकार करनेकी इच्छा कर बैठा। इन्दौरकी राजमहिषीने गायकवाड़ और भोंसलेकी सहायता माँगी। दोनों ही उसकी ओरसे लड़नेके लिये आ पहुँचे। इधर अहल्याने अपने सरदारों और सैनिकोंसे कहा, 'माना, हम पेशवाके अधीन हैं; पर उन्हें कोई अधिकार नहीं है कि वे हमारा राज्य अकारण छीन लें। मुझे अबला समझकर रघुनाथरावने इन्दौरपर हमला कर दिया है। परन्तु मैं उन्हें बतला दूँगी कि मैं सामान्य अबला नहीं हूँ। वीरप्रसूता और वीरवधू हूँ। जिस समय रणमें तलवार लेकर खड़ी हो जाऊँगी, पेशवाका सिंहासन हिल उठेगा। सत्यपर चलनेवालोंकी सहायता परमात्मा करता है।' उनके सैनिक मरने-मारनेको तैयार हो गये; परन्तु वह नहीं चाहती थीं कि अकारण रक्तपात हो; इसलिये उन्होंने पेशवाको पत्र लिखा,—'मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आप मेरा राज्य अपहरण करने ससैन्य आ रहे हैं। यह राज्य आपका ही है; किन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि आप इसे अन्यायपूर्वक छीन लें और इसलिये मुझे भी शस्त्रद्वारा आपका अभिवादन करना पड़ेगा।' माधवरावको आक्रमणके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञात नहीं था; उसने रानीको लिख दिया कि 'यदि इस तरह कोई राज्य अपहरण करना चाहे तो उसे दण्ड देनेका पूर्ण अधिकार है। मैं तुम्हारे राज्यप्रबन्ध और कार्यकुशलतासे सन्तुष्ट हूँ।'

रघुनाथराव क्षिप्रा नदीतक बढ आया; पर प्रतिरोध-की काफी तैयारी देखकर वह डर गया और उसने रानीके पास कहला भेजा कि 'मैं तो केवल देखना चाहता था कि तुम शत्रुओंसे किस प्रकार अपनी रक्षा कर सकती हो।' तदनन्तर वह अतिथिरूपमें कुछ दिनोंतक इन्दौरके किलेमें रहा और फिर अपना-सा मुख लेकर राजधानीमें लौट आया।

रानी बड़ी क्षमाशील थीं; यद्यपि वे जानती थीं कि सारे झगड़ेकी जड़ गंगाधर यशवन्त है, फिर भी उन्होंने क्षमा करके उसको राज्यमें स्थान दिया। उनकी राजनीतिज्ञताकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। उनके राज्यमें सदा शान्ति बनी रही। वे शासन करनेमें जिस तरह कठोर थीं, दया करनेमें भी उतनी ही उदार थीं। साथ ही घोड़ेकी पीठपर सवार होकर रणमें कूद पड़ना भी उनके लिये साधारण काम था। भारत-देशके प्रायः सभी तीर्थस्थानोंमें उनके देवमन्दिर तथा अन्नसत्र आदि स्मारकस्वरूप खड़े हैं। प्रजापालन उनके शासन-प्रबन्ध-का एक विशिष्ट अङ्ग था।

एक बार कुछ भीलोंने विद्रोह किया था, पर रानीने उन्हें अपनी कूटनीति और वीरतासे अपने वशमें कर लिया।

रानी बड़ी सत्यपरायणा थीं। उनके खजानेमें करोड़ों रुपये थे। वे उन्हें दान-धर्ममें खर्च करना चाहती थीं। रघुनाथराव-ने किसी लड़ाईकी सहायताके लिये रुपये माँगे; रानीने सीधा जवाब दे दिया कि 'ये रुपये दान-धर्मके लिये हैं। आप ब्राह्मण हैं; यदि मन्त्र पढ़कर लेना चाहें तो मैं संकल्प करनेके लिये प्रस्तुत हूँ।' रघुनाथराव एक बड़ी सेना लेकर आ पहुँचा, रानीने पाँच सौ स्त्रियोंके साथ युद्धक्षेत्रमें उसका स्वागत किया। उन्होंने रघुनाथरावसे कहा कि 'आप राजा हैं, आपके साथ द्रोह करना मैं उचित नहीं समझती हूँ। आप हमें

मारकर रुपये ले जायँ।' पेशवा रानीके साहसपर आश्चर्यचकित हो उठा। वह लौट गया। अहल्या शान्तिपूर्वक राज करने लगीं।

राज्य प्राप्त होनेपर मद न हो और लोभकी मात्रा न बढ़े ऐसा बहुत कम होता है। अहल्याबाईमें मद तो था ही नहीं। लोभका लेश भी नहीं था। इसीसे लोभी राजाओंकी भाँति खून, विश्वासघातकता तथा अनाचारोंके द्वारा उनका जीवन कलङ्कित नहीं हुआ। वे रानीकी हैसियतसे सदा प्रजाके अभावोंको दूर करने तथा उसे सब प्रकारसे सुख-सुविधा प्रदान करती रहीं और हिंदू-नारीकी हैसियतसे पूजा-अर्चना, अतिथि तथा ब्राह्मणोंकी सेवा, दूसरोंके धर्म-साधनमें सहायता और दुखियोंके दुःख-निवारण आदि परोपकारी सत्कार्योंमें संलग्न रहीं। प्रजाका हित हो और उसकी उन्नति हो—यही उनके कार्योंका मुख्य ध्येय रहता था। प्रजाहित, राज्यहित तथा अपने पवित्र वंशकी मान-मर्यादा-रक्षाके लिये जितना कार्य करना आवश्यक था, वे उतना ही करती थीं। शेष समय तथा मन भगवच्चिन्तनमें लगाती थीं।

उनका पारिवारिक जीवन सन्तोषजनक नहीं था। केवल उनकी एक कन्या मुक्ताबाई बच गयी थी। कालान्तरमें वह भी विधवा हो गयी और पतिके साथ चितामें जलकर स्वर्ग सिधार गयी थी।

अहल्याबाई अद्वितीय गुणवती देवी थीं, उनमें अभिमान नाममात्रको भी नहीं था। वह आदर्श आर्य-नारी और निपुण शासक थीं। किसी ब्राह्मणने उनकी प्रशंसामें एक पुस्तक रच डाली। रानीने पुस्तक सुन ली और यह कहकर उसे नदीमें फेंकवा दिया कि 'मेरे समान पापिनीमें इतने गुण नहीं हैं।' बार-बार वे ईश्वरसे यही कहती थीं कि 'प्रभो! तुमने पत्थरकी अहल्याका उद्धार किया है, मुझे भी अपनाकर भवसागरसे पार कर दो।'

एक दिन उन्होंने बारह हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया और उनके चरण-तीर्थसे पवित्र होकर स्वर्ग चली गयीं।

उनकी अवस्था उस समय साठ सालकी थी।

अहल्याबाई महान् धर्मपरायण, तपस्विनी और तेजस्विनी नारी थीं। इतिहासमें उनका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है।

सती मुक्ताबाई

महारानी अहल्याबाईकी यह पुत्री माताके समान ही धर्मपरायण एवं सद्गुणसम्पन्न थीं। महारानी अहल्याबाईके एकमात्र राजकुमार मल्हाररावकी मृत्युके पश्चात् राज्यमें लूट-पाट, चोरी-डकैतीकी प्रबलता हो गयी। दस्युओंने अपना एक सुगठित दल बना लिया। महारानीने एक दिन भरे दरबारमें घोषणा की—'जो दस्युओंको पूर्णतः दमन करके प्रजामें सुख-शान्ति स्थापित कर देगा, उसके साथ राजकुमारी मुक्ताबाईका विवाह होगा।'

'माता! मुझे आवश्यक धन तथा सेनाकी सहायता मिले तो मैं यह कार्य कर दूँगा।' सभामें पर्याप्त समयतक निस्तब्धता रहनेके पश्चात् एक तेजस्वी, सुगठित-शरीर, सुन्दर महाराष्ट्र-युवकने उठकर प्रार्थना की। महारानीके आदेशसे जितनी आवश्यकता हो, उतनी सेना और कोष लेनेकी उसे स्वतन्त्रता हो गयी। दो ही वर्षोंमें राज्यमें सुव्यवस्था हो गयी। युवकके सुप्रबन्धसे दस्यु शमित हो गये। प्रजा आनन्दसे रहने लगी। महारानीने सभी राज्यके प्रतिष्ठित सरदारोंको बुलाकर बड़े उत्साहके साथ पुत्रीका विवाह उस युवक यशवंतराव फाणसेके साथ कर दिया।

एकमात्र पुत्रीको विदा करते समय महारानीने भरे कण्ठसे जामाताको समझाया—'स्त्रीको सदा सुखी रखना और सन्मार्गपर चलाना, यह पुरुषके ही हाथमें है। पतिके सद्गुणोंको देखकर स्त्री भी गुणवती बनती है। स्त्री-जाति स्वामीके विचार जाननेमें कुशल होती है। घोड़ा अपने सवारकी योग्यता पहचान लेता है और यदि सवार कच्चा हुआ तो उसे फेंक देना चाहता है। यदि सवार कुशल हुआ तो घोड़ा स्वतः ठीक चलता है। स्त्रियोंकी भी यही दशा है। पतिके स्वभाव एवं आचारको देखकर स्त्री अपना रहन-सहन बनाती है। स्त्रियोंको शास्त्रोंने अनन्त गौरव दिया है। स्त्री अमोघ शक्ति है। शान्ति, सुख और आनन्दकी मूर्ति है। बाहर पुरुषको चाहे जितना कष्ट हुआ हो, पर घर आते ही हँसते हुए मुखसे पत्नीके स्वागत करनेपर वह सभी दुःख भूल जाता है। स्त्रियाँ घरको नन्दनवन बनाये रखनेमें समर्थ हैं। तुम स्वयं कुशल हो। मेरी पुत्रीको आदरसे रखना। उसे कष्ट मत देना। तुम्हारा मङ्गल हो! तुम्हारा दाम्पत्य-जीवन सुखमय हो।'

महारानीने पुत्रीको अङ्कमें भर लिया। उनके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चल रहा था। पुत्रीको उन्होंने उपदेश दिया—'बेटी! अब तू नादान नहीं है। भला-बुरा समझनेकी तुझमें शक्ति है। स्त्रीके लिये पति ही परमात्मा है। सब प्रकार उसकी सेवा करना और उसकी प्रसन्नता एवं भलाईका प्रयत्न करना ही स्त्रीका धर्म है। स्वामीकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य न करना। वह रुष्ट हो या अनादर करे, तो भी मनमें बुरा मत मानना। भोग-विलाससे आसक्ति न करके चित्तको धर्ममें लगाये रखना। पतिसे कभी कोई बात छिपाना नहीं। जब वह घर आवे तो प्रसन्न होकर उसका स्वागत करना। भूलकर भी पतिसे कभी झूठ मत बोलना। कोई भूल हो जाय तो बताकर क्षमा माँग लेना। तुम्हारे घरमें कभी कलह न हो। तुम्हारा तन, मन और प्राण पतिका है—यह ध्यान रखना। तुम दोनों सदा प्रेमसे रहो और अखण्ड सुख भोगो!'

मुक्ताबाईका दाम्पत्य-जीवन अत्यन्त सुखमें बीता। पति-पत्नीमें प्रगाढ़ प्रेम था। उन्हें एक सुन्दर पुत्र नत्योबा प्राप्त हुआ। प्रायः यह बालक महेश्वरमें माता-पिताके समीप कम ही रहा करता था। वह अधिक अपनी ननिहालमें इन्दौर रहता था। अहल्याबाईका सब स्नेह दौहित्रपर एकत्र हो गया था। भाग्यकी बात—बालक इन्दौरसे पिताके समीप आया था। उसे ज्वर आया और १८ वर्षकी आयुमें ही उसका देहान्त हो गया। पुत्रकी मृत्युका यशवंतरावके हृदयपर भारी आघात लगा। वे तभीसे दुखी और अस्वस्थ रहने लगे। सन् १७९१में उन्होंने भी शरीर छोड़ दिया।

पतिकी मृत्युसे मुक्ताबाई असहाय हो गयीं। उन्होंने सती होनेका निश्चय किया। मातासे आज्ञा माँगनेपर महारानी अहल्याबाईने समझाया—'बेटी! तू अपनी इस वृद्धा मातापर दया कर। मेरे अब अकेले तू ही एक आधार रही है। जीवनमें मुझे दुःख-ही-दुःख मिला है। पति, पुत्र, दौहित्र और अन्तमें जामाता भी मैंने खोया है। यदि तू भी चली जायगी तो मैं यह शोक कैसे सह सकूँगी। अपने निश्चयको तू बदल दे। मुझे भी पति-वियोग हुआ है और उसे किसी प्रकार मैंने सहा है।'

मुक्ताबाईने सोचा। उसका निश्चय अविचल रहा। उसने नम्रतापूर्वक माताको समझाया—'मा! आज मैं अविनीत हो गयी हूँ। मुझे क्षमा करो! आपने तो सती न होकर धर्मका ही पालन किया था। उस समय आपके दो बच्चे थे। मेरे बड़े भाई छोटे थे और मैं नवजात थी। दो प्राणियोंकी रक्षाके लिये आपने परलोकमें पतिके सान्निध्यका त्याग किया। मेरा पुत्र पहले ही जा चुका है। आपकी वृद्धावस्था है। आयुका कोई ठिकाना नहीं। सोचिये तो आपके न रहनेपर मेरी क्या दशा होगी। मैं असहाय होकर कहाँ भटकूँगी। आप धर्मको जानती हैं। मोहको छोड़कर मुझे आज्ञा दें। पूज्य पतिदेव मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।'

विवश होकर महारानीको आज्ञा देनी पड़ी। रोदनके स्वरमें राजवाद्य बजते जा रहे थे। सभी सामन्त और राज-कर्मचारी नंगे सिर रोते हुए जा रहे थे। महारानी फूट-फूटकर रो रही थीं। केवल मुक्ताबाईके मुखपर गम्भीर प्रसन्नता थी। स्नान करके उन्होंने लाल साड़ी पहन ली थी। भली प्रकार अपना शृङ्गार किया था। मस्तकके खुले केशोंमें पुष्प लगाये थे। पतिकी रथीके साथ वे चल रही थीं। चिता निर्मित हुई। शवको स्नान कराया गया। मुक्ताबाईने पतिके देहको उठाकर हृदयसे दबा लिया। वे अकेली उस शरीरको लेकर चितापर जाकर बैठ गयीं। सुगन्धित द्रव्योंके साथ चिता प्रज्वलित हुई और पतिके देहके साथ सतीके देहकी भस्म एक हो गयी। परलोकमें सती पतिसे एक होने पहुँच चुकी थीं उससे पूर्व ही।—सु० सिं०

वीराङ्गना भीमाबाई होल्कर

महारानी अहल्याबाईके दत्तक पुत्र तुकोजीरावके चार पुत्र थे। इन चारोंमें यशवंतराव होल्करने इतिहासमें ख्याति प्राप्त की। तुकोजीकी मृत्युके पश्चात् यशवंतराव राज्यके अधिकारी हुए। अनेक बार यशवंतरावका सिन्धिया, पेशवा एवं अंग्रेजोंसे संग्राम हुआ। सन् १८०४ में चम्बल नदीके समीप कर्नल मोन्सुन साहबको उन्होंने ऐसी पराजय दी कि कर्नलको बुरी तरह भागना पड़ा। इन्हीं यशवंतरावकी पुत्री भीमाबाई थीं। पिताने बचपनसे ही उन्हें घोड़ेकी सवारी तथा अस्त्रचालनकी विद्या सिखायी थी। पिताकी वीरता, समयसूचकता तथा साहस भीमादेवीको प्राप्त हुए थे। मराठी तो उनकी मातृभाषा थी ही, पितासे उन्होंने फारसीका भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

यशवंतरावके समयमें ही अपने सौन्दर्यके कारण तुलसी-बाई नामक एक दासीका होल्कर महाराजके मनपर और साथ

ही राजभवनपर भी अधिकार हो गया था। होल्करकी मृत्यु-पर इसी दासीने राज्यपर अधिकार किया। उसने एक दत्तक पुत्र भी लिया था। दासी अत्यन्त अहङ्कारिणी थी। उसके अत्याचारोंसे प्रजामें असन्तोष फैल गया था। सभी उसके द्वारा उत्पीड़ित हो रहे थे। भीमा बाई उस समय पतिगृहमें थीं।

भीमाबाईको समाचार मिला, पिताके राज्यकी अव्यवस्थित दशासे उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। उनके पतिका देहान्त हो गया था। उन्होंने कर्नल माल्कमसे कहा—'जान पड़ता है कि होल्कर राज्य एवं होल्कर-कुटुम्बका अन्त समीप है। इस समय इस परिवारके महान् गौरवकी रक्षा करनेवाला मेरे अतिरिक्त कोई रहा नहीं। मैं असहाय विधवा हूँ। मेरे कोई पुत्र भी नहीं है। समस्त प्रपञ्चोंसे पृथक् होकर मुझे भगवान्का भजन करना चाहिये। फिर भी इस कठोर विपत्तिके समय पितृकुलके सम्मानकी रक्षाके लिये मुझे राज्यकार्यमें हाथ डालना होगा और राज्यका संरक्षण करना होगा।'

सन् १८१७ में महीदपुरमें अंग्रेजोंके विरुद्ध होल्कर सेना-का भाग्यने साथ नहीं दिया। भीमाबाई पराजय स्वीकार करने-वाली स्त्री नहीं थीं। उन्होंने थोड़ी सेना संगठित कर ली। उनका निवास पहाड़ोंमें बना। छत्रपति शिवाजीका अनुकरण करके उन्होंने छापा मारना प्रारम्भ किया। अंग्रेजी खजाने, चौकियाँ तथा सामग्री रखनेके स्थान लूटे जाने लगे।

सर माल्कम बहुत बड़ी सेनाके साथ भीमाबाईके निवास-के अन्वेषणमें निकले थे। उन्होंने देखा कि जंगलमें समीपसे ही भीमाबाई घोड़ेपर चढ़ी जा रही हैं। सर माल्कमने उन्हें जीवित पकड़नेका विचार किया। इससे अच्छा अवसर मिलना कठिन था। भीमाबाईके साथ केवल एक ही घुड़सवार सैनिक था। माल्कमके सैनिकोंने घेरा डालना प्रारम्भ किया। भीमाबाईका साथी सैनिक आदेश पाकर घेरा पूरा होनेसे पहले भाग गया। वह वीराङ्गना स्थिर खड़ी रही।

घेरा पूरा हो गया। सैनिकोंने समझा कि आज उन्होंने इस आफतकी पुतली महाराष्ट्र वीराङ्गनाको पकड़ लिया। घेरा छोटा होता गया। सहसा धीरे-धीरे भीमाबाईका घोड़ा सर माल्कमकी ओर बढ़ा। सबने समझा कि विवश होकर वे आत्मसमर्पण करने जा रही हैं। घुड़सवार सैनिकोंकी अटूट पंक्ति चारों ओर उन्हें घेर चुकी थी। घोड़ा ठीक माल्कम-के सम्मुख पहुँचा। एक एड़ लगी और ठीक सेनापति सर माल्कमके सिरके ऊपरसे वह महाराष्ट्र अश्व अपनी स्वामिनी-

को लेकर घेरेसे बाहर हो गया। अब दौड़-धूप और बंदूकों-की गोलियाँ व्यर्थ थीं। अंग्रेजी घोड़े उस महाराष्ट्र घोड़ेके समान नालोंको कूदते, पत्थरोंपर उछलते, झाड़ियोंको चीरते जानेमें असमर्थ थे।

एक पूरी सेनाको अपने धैर्य, साहस एवं कौशलसे अकेले छकाकर वह गौरवमयी नारी कहाँ गयीं? उनका क्या हुआ! इतिहास इस सम्बन्धमें मूक है। —सु० सिं०

नारीका स्थान हृदय

नारीकी उत्पत्ति न तो पुरुषके पैरसे हुई है कि जिससे वह उसके द्वारा शासित होती रहे और न उसके सिरसे हुई है कि जिससे वह उसपर शासन करे। उसकी उत्पत्ति तो पुरुषके वाम पार्श्वसे हुई है, जिससे कि वह उसकी सहयोगिनी बने, उसके हृत्प्रदेशके समीप रहकर उसका प्रेम प्राप्त करे एवं उसके हाथके नीचे रहकर उसके संरक्षणका उपभोग करे।

—मैथ्यू आर्नल्ड

महारानी स्वर्णमयी

सन् १८२७के मार्गशीर्षमें वर्धमान जिलेके भाटाकुल ग्रामके एक दरिद्र कुटुम्बमें एक बालिका उत्पन्न हुई। बालिका असाधारण सुन्दरी थी। माता-पिताने उसका नाम शारदा-सुन्दरी रख दिया। बालिका थोड़ी बड़ी हुई। बचपनसे ही उसके दिव्य गुण प्रकट होने लगे। किसी बालकको रोते देख वह व्याकुल हो जाती, उसके अश्रु पोंछती और अपने खिलौने उसे दे आती। थोड़ी बड़ी होनेपर ग्रामके रोगियों-की सेवाका भार उसने उठा लिया। माता-पिता उसे भोजन-के लिये ढूँढ़ते रहते। वह कहीं किसी वृद्धाका आटा पीस रही है, किसी रोगीका माथा दबा रही है, किसीके लिये भोजन बना रही है, किसी रोगीके कपड़े या घरको स्वच्छ कर रही है अथवा कहीं किसीके बर्तन मल रही है। उसकी सेवा-में ऊँच-नीच, छोटे-बड़ेका भेद नहीं था। सबके कष्ट, सबकी असुविधा, सबके अश्रु उसे समान रूपसे व्यथित करते। न स्नानकी सुधि और न भोजनकी चिन्ता। रात-रातभर वह बीमारोंके समीप बैठी रहती। ग्रामके लोग कहा करते कि इतनी ममता, इतनी दया इस अवस्थामें मनुष्यमें सम्भव नहीं। शारदासुन्दरी तो कोई देवी हैं।

मुर्शिदाबादकी रानी हरसुन्दरी अपने कुमारके लिये सुयोग्य कन्याके अन्वेषणमें थीं। उन्होंने शारदासुन्दरीके रूप एवं गुणका वर्णन सुना तो निश्चय किया कि वही उनकी पुत्रवधू होगी। कुमार कृष्णनाथ अंग्रेजी पढ़े युवक थे। कन्या देखे बिना विवाह करना उन्हें स्वीकार नहीं था। उन्होंने देखकर स्वीकृति दे दी और धूम-धामसे विवाह हुआ। शारदासुन्दरी देहातकी झोंपडीसे ग्यारह वर्षकी अवस्थामें राजभवनमें आयीं। वहाँ उनका नाम स्वर्णमयी हो गया। पुत्र-वधूके तप्तकाञ्चनवर्ण शरीरको देखकर रानी हरसुन्दरी-ने यह नामकरण किया।

लार्ड हेस्टिंग्सके कारण ही कुमार कृष्णनाथका परिवार उन्नत होकर राजा हो गया था। पिताकी मृत्युके समय कुमार अल्पवयस्क थे। राज्य कोर्टऑफ वार्ड्समें चला गया था। कुमार-की शिक्षा अंग्रेजी संरक्षणमें पाश्चात्त्य ढंगपर हुई थी। उनमें शराब-मांसाहारादि अनेक दुर्गुण आ गये थे। उनका रहन-सहन अंग्रेजी ढंगका था। ऐसे पतिके साथ स्वर्णमयीने अत्यन्त संयम तथा नम्रताका व्यवहार करते हुए निर्वाह कर लिया। वे स्वयं न तो मास खाती थीं और न सुराका स्पर्श करती थीं। फिर भी उनके द्वारा पतिका कभी अनादर या उपेक्षा नहीं हुई।

विवाहके पश्चात् कुमार कृष्णनाथ वयस्क हुए। राज्य उनके हाथमें आया। राजा कृष्णनाथ अपने व्यसनोंके कारण बहुत व्यय करते थे। फल यह हुआ कि राज्यपर बहुत अधिक कर्ज हो गया। कम्पनीके खजानेसे कीमती द्रव्यकी पेटी चोरी हुई। राजा कृष्णनाथके दफादार गोपालपर चोरी-का कम्पनीने दोष लगाया। राजा साहबपर नौकरको प्रेरणा देनेका दोष भी लगा। राजमहल घेर लिया गया। किसी प्रकार राजा साहब कासिमबाजारसे भागकर कलकत्ता पहुँचे। इसी समय गोपाल दफादारकी मृत्यु हो गयी। स्वाभाविक था कि राजा साहबपर उसे मार डालनेका सन्देह हो। अपमानसे बचने-के लिये राजा कृष्णनाथने गोली मारकर आत्महत्या कर ली।

बहुत छोटी उम्रमें रानी स्वर्णमयी ससुराल आयी थीं। सन् १८४५में जब अठारह वर्षकी थीं, विधवा हो गयीं। यह शोक तो था ही, राजाके वकील स्ट्रेटलने दो वसीयतनामे कोर्टमें राजा कृष्णनाथके उपस्थित कर दिये। दोनोंमें वे राज्यके संरक्षक बनाये गये थे। रानी स्वर्णमयीको मासिक डेढ हजार रुपया देनेको लिखा गया था। इसी समय रानी स्वर्णमयीको राजीवलोचन-जैसा उदार, धार्मिक नीतिज्ञ सहायक प्राप्त हुआ। मुकदमा चला। अन्तमें न्यायालयने घोषणा की—'राजा कृष्णनाथ न रोगी थे और न वृद्ध। उन्होंने सहसा आत्महत्या की। आत्महत्यासे पूर्व वसीयत करनेका अवकाश मिलना उनके लिये शक्य नहीं था। दोनों वसीयतनामे जाली हैं।'

सुप्रीम कोर्टसे राज्य स्वर्णमयीको प्राप्त हुआ। इसी समय राजमाता हरसुन्दरीने दावा किया कि कृष्णनाथ जातिभ्रष्ट होनेसे पैतृक सम्पत्तिके अधिकारी नहीं रह गये थे। अतः उनकी पत्नी उसकी अधिकारिणी नहीं होगी। दूसरी ओरसे कम्पनी सरकारने दावा किया कि आत्महत्या करनेवालेकी सम्पत्ति सरकारकी होती है। न्यायालयने ये दोनों दावे भी अस्वीकार कर दिये। आचरणके कारण कोई सम्पत्तिके अधिकारसे वञ्चित नहीं किया जा सकता और भारतमें विलायतका कानून कि आत्महत्या करनेवालेकी सम्पत्ति सरकारकी है, उचित नहीं माना गया। रानी स्वर्णमयीको राज्य प्राप्त हुआ। इतना होकर भी शान्ति कहाँ थी। राजा कृष्णनाथने राज्यपर अत्यधिक ऋण जो कर रक्खा था।

रानी स्वर्णमयीने राजीवलोचनको दीवान बनाया। दीवानकी दक्षता और पटुताके कारण थोड़े समयमें राज्य ऋण-

मुक्त हो गया। दीवान राजीवलोचन बड़े संयमी पुरुष थे। उनमें प्रगाढ धर्मनिष्ठा थी। उनके पास कोई निजी सम्पत्ति नहीं थी और अन्ततक उन्होंने कोई अपनी सम्पत्ति नहीं बनायी। दान, धर्म तथा परोपकारमें ही उनकी विशेष रुचि थी। रानी स्वर्णमयीकी धार्मिक भावना इससे प्रोत्साहित हुई। रानी होनेपर भी वे हिंदू-विधवाके सब आचारोंका पालन करती थीं। केवल एक समय सादा भोजन करतीं, भूमिपर सोतीं, सादे वस्त्र पहनतीं तथा बराबर पूजा-पाठमें लगी रहतीं।

लोगोंमें रानी स्वर्णमयी अन्नपूर्णाके नामसे पुकारी जाती थीं। उनके यहाँसे कोई प्रार्थना करके निराश नहीं लौटा करता था। माँगनेवाला सदा अपने अनुमानसे अधिक पाता था। कन्याओंके विवाहके लिये दरिद्र ब्राह्मण सहायता माँगने जाते। उनकी आशा ५०) या ६०) रुपयेकी होती थी। जब वे दो तीन सौ लेकर लौटते तो हार्दिक आशीर्वाद नगर-के लोगोंतकको भी वे देते जाते थे। जहाँ जलकष्ट था, वहाँ कुएँ बनवाये गये। घोषणा की गयी कि राज्यमें जिनके घरोंमें अग्नि लग जाय, उनके घर राज्यव्ययसे बनवा दिये जायँ। मृत्यु एवं विवाहमें काष्ठादि लेनेकी खुली घोषणा हो गयी। अनेक सुयोग्य ब्राह्मणोंको वार्षिकवृत्ति निश्चित की गयी। विद्यार्थियोंको बराबर सहायता दी गयी। सहस्रों भिक्षुक नित्य राजसदनसे अन्न पाते थे।

अस्पताल, चिकित्सालय, विद्यालय, पुस्तकालय बनवाने-में रानी स्वर्णमयीने बहुत अधिक दान किया। उनका दान किसी धर्म या जातितक सीमित नहीं था। अर्थसंकटमें उन्होंने यूरोपियनोंकी भी सहायता की। दुर्गामहोत्सव, जन्माष्टमी प्रभृति धार्मिक पर्वोंके लिये वार्षिक ढाई लाख रुपयोंका व्यय निश्चित था। आय-व्ययका हिसाब करनेपर पता चला कि रानीने साठ लाख रुपया वार्षिक दान-पुण्यमें व्यय किया है। सरकारने उन्हें महारानीकी उपाधि दी थी।

बँगला संवत् १३०४ भाद्रपदमें महारानीने शरीर छोड़ा। सम्पूर्ण बंगाल उनके शोकमें व्याकुल हो गया। रानी भवानी के पश्चात् बंगालके हृदयका इतना व्यापक स्नेह एवं श्रद्धा किसी नारीको प्राप्त हुई तो वे महारानी स्वर्णमयी ही हुई हैं। उनकी उदारता, दानशीलता, दयाका वर्णन अबतक लोग श्रद्धापूर्वक करते हैं।—सु० सिं०

ईमानदार आया बमनी

आया बमनी एक अंग्रेज डाक्टरकी सेवामें रहती थी। डाक्टर साहब अवधप्रान्तके कैंटोन्मेंटके सर्जनके पदपर काम कर रहे थे।

सन् १८५७ के गदरकी लपट अवधमें भी पहुँची। अंग्रेजोंको अपने प्राणोंकी रक्षा करनी कठिन थी। डाक्टर साहबकी पत्नी और उनके दो बच्चोंको अनाजके बोरेमें छिपा-कर ऊपरसे भी बोरा रख दिया गया। और इस प्रकार छिपकर वे लखनऊ पहुँच गये। डाक्टर साहबने भी किसी गुप्त स्थानमें छिपकर अपनी जान बचायी।

विद्रोहियोंने डाक्टर साहबके बँगलेपर आक्रमण कर दिया और उसमें आग लगा दी। अत्यन्त भव्य और फर्नीचरोंसे सजाया हुआ बँगला अग्निदेवकी लपलपाती जिह्वाके स्पर्शसे क्षणभरमें जलकर राख हो गया।

कुछ दिनोंके बाद विद्रोह शान्त होनेपर डाक्टर साहब पुनः अवधमें आ गये। उन्हें ढूँढ़ती हुई उनकी पुरानी आया बमनी भी वहाँ आयी। उसने डाक्टर साहबकी विषादमयी आकृति देखी! आया बिना पूछे बोल उठी—'मेम साहिबाने भागते समय जल्दीमें अपने समस्त बहुमूल्य आभूषण यहीं छोड़ दिये थे। उन्हें ले जाकर अपने घरमें मैंने अबतक छिपा रक्खा था। देनेके लिये आपको ही ढूँढ़ रही थी।'

डाक्टर साहब खिल उठे। उनके पास कुछ नहीं रह गया था। बँगला और फर्नीचरके जल जानेपर भी बहुमूल्य आभूषणोंको पाकर उनकी चिन्ता मिट गयी। उनकी अमूल्य सम्पत्ति वे ही आभूषण थे। डाक्टरने आयाको धन्यवाद दिया। उनके मुँहसे स्वयं निकल पड़ा—'भारतीय देवियाँ धन्य हैं।'—शि० दु०

वीर आया

आज हम एक ऐसी आयाके सम्बन्धमें कुछ पंक्तियाँ लिख रहे हैं, जिसमें विदेशियोंकी भी जान बचानेके लिये प्राणोंकी ममता नहीं थी। वह आया कानपुरके एक अंग्रेज सरदारके यहाँ नौकर थी।

सन् १८५७ई० की गदरमें कानपुरमें भी भीषण नर-संहार आरम्भ हो गया था। भारतीय जन अंग्रेजोंके दुर्व्यवहारसे विकल हो गये थे। उनकी सहनशीलता पराकाष्ठापर पहुँच गयी थी। भारतीयोंकी बुद्धि अपने वशमें नहीं थी। वे एक-एक अंग्रेजको ढूँढ़-ढूँढ़कर मौतके घाट उतार रहे थे। अंग्रेजोंकी जानके लाले पड़े थे। प्राण-रक्षाका उन्हें कोई उपाय नहीं सूझ रहा था।

'अब कानपुर आजसे स्वाधीन हो गया। आपलोग हमलोगोंको सुरक्षित चले जाने दें'— अंग्रेज सरदारने भारतीयोंसे अनुरोध किया। अनुरोध स्वीकृत हुआ। बाल-बच्चोंसहित अंग्रेज नावमें आ गये।

परन्तु कुछ विद्रोही भारतीय शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो नदी-किनारे पहुँच गये और अंग्रेजोंपर गोलियोंकी वर्षा करने लगे। अंग्रेजोंकी स्त्री और बच्चोंके क्रन्दनसे सरिता-तीर काँप उठा।

आया भी उसी नावपर थी। साथमें उसका पंद्रह वर्षका बेटा था। उसके मालिकका पुत्र भी उसीके साथ था। कोई रास्ता न देखकर आया दोनों बच्चोंके साथ नदीमें कूद पड़ी और तैरती हुई दूसरे तटपर जा लगी। पर विद्रोही वहाँ भी थे। वे अंग्रेजोंको ढूँढ़ रहे थे। आया घेर ली गयी। उसके अंग्रेज मालिकका बच्चा उसके शरीरसे चिपक गया था।

'इस बच्चेको छोड़कर तू यहाँसे अभी भाग जा' —एक विद्रोहीने कहा। 'हम इसका सिर अभी धड़से अलग करेंगे।'

आयाके बच्चेने अपनी मासे कहा—'मा! इसे दे दे न! हमलोगोंकी जान बच जायगी।'

गिड़गिड़ाते हुए प्राणोंकी भीख माँगती हुई आया बोली—'यह मेरे मालिकका लड़का है। आपलोग इसकी जान छोड़ दें, भगवान् आपलोगोंपर दया करेगा।'

आयाकी बात सुनकर एक विद्रोहीने डाँटकर कहा—'बच्चेको छोड़ दे, नहीं तो तू अभी ढेर हो जायगी।'

'देहमें जान रहते तो इस बच्चेको मैं नहीं छोड़ सकूँगी'—बुढ़ियाका वाक्य पूरा होते-होते विद्रोहीकी चमकती तलवार उसकी गर्दनपर फिर गयी थी। उसका सिर मुर्दा-सा पृथ्वीपर गिर गया। मृत्युके समय भी अंग्रेज मालिकका बच्चा उसकी भुजाओंमें कसा था।

वहाँ आयाका बच्चा बच गया था। उसके द्वारा आयाकी यह कीर्ति-कहानी चारों ओर फैल गयी। भारत-भूमि धन्य है और धन्य हैं यहाँकी देवियाँ!!—शि० दु०

भारतीय सभ्यतामें नारी

ओह! यहाँ एक ऐसी सभ्यताके दर्शन होते हैं, जिसको आप अपनी सभ्यताकी पहलेके स्वीकार करनेमें 'ना' नहीं कर सकते, जो नारीको पुरुषके समकक्ष धरातलपर रखती है, और जो उसे घरमें एवं समाजमें समान स्थान प्रदान करती है।

—'दि बाइबल इन इण्डिया,' पृष्ठ २०५.

अजपा ब्रह्मचारिणी और हकहकी माता

नाम काम तरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ॥

—रामचरितमानस

बात है सैकड़ों वर्ष पहलेकी । उन दिनों बंगालमें दीवानी और फौजदारी कचहरियोंका फैसला पण्डितलोग किया करते थे । वे अंग्रेजी नहीं जानते थे, परंतु उनका न्याय 'विशुद्ध न्याय' होता था । अजपा ब्रह्मचारिणी एक ऐसे ही धन वैभव-सम्पन्न जज पण्डितकी पुत्री थी । उसका नाम था विलासिनी । उसका विवाह एक धनी, पर मूर्ख वरसे हुआ था । कुछ दिनो बाद पतिका देहान्त हो गया । धीरे-धीरे रुपये-पैसे भी समाप्त हो गये । जीविकाका भी उसे कोई साधन नहीं रह गया । विवश होकर सौन्दर्यमयी विलासिनी रूपके हाटमें बैठ गयी । अन्तमे एक धनी जमींदारने उसे रखेलिन बना लिया । उसका जीवन बड़ी तीव्रतासे पतनके घोर गर्तमे जाने लगा ।

उसी समय काशीमें रामायणके एक कथावाचक आये । मधुरताभरे स्वरसे वे बड़ी ही ललित कथा कहते थे । संगीतप्रेमी विलासिनी भी एक दिन गीतके लोभसे कथा सुनने गयी । पहले ही दिन रामायणकी कथाका उसपर अमिट प्रभाव पड़ा । वह प्रतिदिन आकर एक-ओर बैठ जाती तथा बड़े प्रेमसे कथा सुनती रहती । कथा सुनते-सुनते तन्मय हो जाती । वह रोने लगती । भगवती सीताकी पतिभक्ति, परमहिंसक वाल्मीकिका उद्धार, श्रीलक्ष्मणकी भ्रातृभक्ति, भरतका अनन्य प्रेम, भगवान् श्रीरामका पावन चरित्र, संसारकी अनित्यता, धर्मकी जय, पापकी पराजय और धन-यौवनकी क्षणभङ्गुरताके प्रसंग सुनकर वह मन-ही-मन क्रन्दन करने लगी । अपने पापभरे जीवनपर वह सिर धुनने लगी ।

आठ दिन कथा कहनेके बाद कथावाचक अन्यत्र चले गये और उसी दिन आधी रातके समय थोड़े-से रुपये-पैसे लेकर विलासिनी जमींदारके घरसे निकल गयी । नगरसे बाहर जाते ही उसने अपना उज्ज्वल परिधान फेंककर गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया । गलेमें रुद्राक्षकी माला और हाथमें काष्ठ-कमण्डलु लेकर तथा माथेपर विभूति रमाकर राम-गुन गाती विलासिनी वृन्दावन-धामकी ओर चल दी ।

'नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं ।'

नामकी महिमा ही ऐसी है । शुद्ध मनसे संसारको छोड़कर विलासिनी प्रभुके चरणोंमें विलीन होने जा रही थी, उसकी आकृतिपर तेज क्रीडा करने लगा । उसकी वाणीमें जैसे मधुर अमृत घुला था । वह जब प्रभु-भजन गाने लगती तो शत-शत नर-नारी-मस्तक नमित हो जाते थे । वह साक्षात् देवी-सी लग रही थी ।

वृन्दावन पहुँचकर अपने पाप-प्रक्षालन एवं प्रभुके पद-पङ्कजमें प्रीतिके लिये वह कठोर तप करने लगी । कालिन्दी-कूलपर एक पैरपर खड़े होकर भगवन्नाम-जप, चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कर बीचमें वीरासनसे बैठकर भगवन्नाम-जप उसका नित्यका कृत्य हो गया था । सिद्ध देवी जानकर उसे कोई छेड़ता नहीं था । अन्न-जलकी चिन्ता उसे नहीं थी । अपने तनके नष्ट होनेका ध्यान उसे नहीं था, उसे प्रतिक्षण यदि ध्यान था तो केवल भगवन्नामका । तभीसे वह 'अजपा ब्रह्मचारिणी' कहलाने लगी ।

दर्शनाकाङ्क्षियोंकी भीड़ देखकर अजपा देवीने वृन्दावन त्याग दिया । वे ज्वालामुखी तीर्थमें चली गयीं । फिर जालन्धर होते हुए 'चिन्तामणि' नामक स्थानमें 'भवानी देवी' के दर्शनार्थ गयीं । वहाँ वह एक अन्य साधु-देवीके साथ रहने लगीं । साधु-देवी वीणा बजातीं और अजपा देवी भजन

गातीं; उस समय अमृतकी वर्षा होने लगती । साधु-देवीके नाम-ग्रामका कुछ पता नहीं था । पर वे सिद्ध थीं । वाणी-सिद्धि भी उन्हें थी । वे 'हक' 'हक' पुकारा करती थीं, जिसका अर्थ हिन्दीमें 'नित्य, स्थायी, अमर, अनवद्य, अक्षर, सत्य' होता है । इसी आधारपर उन्हें 'हकहकी माता' कहते थे ।

ये दोनों देवियाँ सदैव एक साथ रहतीं नामके प्रभावसे अजरामें विचित्र परिवर्तन हो गया था। वह संत हो गयी थी। भगवान्‌के गुण गाती दोनों पंजाबके नौशेरा नामक स्थानमें पहुँचीं। वहाँ श्मशान और कब्रस्तान दोनों थे। जगत्‌के लिये भयावन भूमि ही उन देवियोंके लिये परम रमणीय थी वहीं एकान्तमें वृक्षके नीचे रहकर वे दोनों भजन करती थीं।

कुछ ही दिनोंमें अंग्रेजोंने वहाँ कैन्टूनमेंट (छावनी) बनानेका निश्चय किया। इकहकी माताने इसका विरोध किया, पर उनकी बात नहीं सुनी गयी। अन्तमें इकहकी माताने कहा 'छावनीनिर्माता, निर्मापक, तथा यहाँके निवासी सभी नष्ट हो जायँगे।' फिर भी छावनी बनने लगी। माताकी बात सच्ची निकली। सब-के-सब मर गये। एक व्यक्ति भी, जो छावनी बननेसे सहानुभूति रखता था, जीवित नहीं बचा।*

उसके बाद नौशेरा छोड़कर घूमती हुई वे दोनों अरवली पर्वतपर पहुँचीं। वहाँ एक गुफामें विषधर साँपोंकी वे क्रीड़ा देख रही थीं कि दो बलिष्ठ हाथोंने उन दोनोंको पकड़ लिया और पीठपर बाँधकर ले चले। वे दोनों अंग्रेज थे।

आधी रात बीत चुकी थी। दोनों देवियाँ दो अंग्रेजोंकी पीठपर बँधी हुई बंदीगृहमें लायी गयीं। उनसे कहा गया कि विद्रोहियोंको अन्न-वस्त्र वितरण करने एवं गुप्त रीतिसे अंग्रेजोंका मूलोच्छेदन करनेके सहयोगमें साहाय्यके अपराधमें तुमलोगोंको कल आठ बजे गोली मार दी जायगी।

रात केवल दो घंटे बाकी थी कि सहस्रों विद्रोहियोंका समूह वहाँ आ पहुँचा। आते ही उन लोगोंने अंग्रेजोंके कैम्प जला दिये तथा एक अंग्रेजको भी जीवित नहीं छोड़ा। अजरा ब्रह्मचारिणी और इकहकी माता बंदीगृहसे बाहर निकाली गयीं।

उसके बादसे फिर उन तपस्विनी देवियोंका कहीं पता नहीं चला। जिन्हें उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, अपने जीवनके अन्तिम क्षणतक वे उन देवियोंके दर्शनार्थ तरसते रहे।—शि० दु०

महासती राजीमती

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

पुरुष और नारी मानव-समाजरूपी रथके दो पहिये हैं, जिनके बिना या किसी एकके कमजोर होनेसे समाजकी गति अवरुद्ध हो जाती है। इन दोनोंका संयोग एक दूसरेका पूरक है। एकके बिना दूसरेका जीवन नीरस-सा प्रतीत होने लगता है। दोनोंकी प्रकृतिमें कुछ ऐसी मौलिक विशेषताएँ हैं, जिनके सम्मिलनमें ही सुन्दरता है अर्थात् दोनोंके अलग-अलग रहनेपर कमी—अपूर्णताका अनुभव होता है। पुरुषमें पौरुष प्रधान है तो स्त्रीमें सेवा प्रधान है। पुरुष उत्पादक है तो स्त्री उसकी व्यवस्थापिका है। बाहर पुरुषका प्रभाव है तो स्त्रीका घरमें है। पुरुष घरका राजा है तो नारी घरकी रानी है।

प्राचीन कालसे भारतवर्षमें नारीका एक उज्ज्वल आदर्श रहा है—सतीत्व। इसीसे उसे परम पूजनीया, प्रातःस्मरणीया एवं अत्यन्त पवित्र माना गया है। ब्रह्मचर्य वास्तवमें ही एक अलौकिक तेज एवं असाधारण बल है। उसके प्रभावके असंख्य चमत्कार भारतीय साहित्यमें यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। पुरुषके हाथमें सत्ता आयी, फलतः वृत्तियोंका दमन न कर मनमानी अधिक हुई। उसकी प्रकृति जहाँ आवेशप्रधान है, वहाँ स्त्री-स्वभाव सहनशीलताका है। वह अपनी उज्ज्वल आभाका परिचय सतीत्वके द्वारा देती है। पुरुषने अपनी कमजोरी महसूस की और नारीके उस आदर्श गुणके आदररूपमें सतियोंके महत्त्वको स्थान दिया। भारतीय साहित्यमें असंख्य नारीरत्नोंकी कथाओंका भण्डार है। जैन-साहित्यमें तपःपूता सती-साध्वियोंके हजारों चरितग्रन्थ हैं, जिनमें सैकड़ों सतियोंकी कथाएँ हैं। उनमेंसे सोलह†का तो निम्नोक्त श्लोकद्वारा नित्य प्रातः स्मरण किया जाता है।

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती राजीमती द्रौपदी
कौशल्या च मृगावती च सुलसा सीता सुभद्रा शिवा।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यपि
पद्मावत्यपि सुन्दरी प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम्॥

अर्थात् ब्राह्मी, चन्दनबाला, राजीमती, द्रौपदी, कौशल्या

* यह समाचार उस समयके प्रायः सभी प्रतिष्ठित समाचारपत्रोंमें सविस्तृत प्रकाशित हुआ था। १५ मार्च सन् १९०७ के 'इंडियन मिरर' नामक पत्रमें 'दि कर्स आफ दि फकीर' (फकीरका शाप) शीर्षक लेख देखें।

† इन सभी सतियोंके परिचयके लिये धीरजलाल धनजीशाह लिखित गुजराती 'सोल सती' नामक ग्रन्थ एवं हिंदीमें 'जैनबोलसंग्रह' भा० ५ पृ० १८१ से ३७६ देखिये।

मृगावती, सुलसा, सीता, सुभद्रा, शिवा, कुन्ती, दमयन्ती, (पुष्प) चूला, प्रभावती, पद्मावती और सुन्दरी प्रतिदिन हमारा मङ्गल करें।

इनमेंसे कई सतियाँ तो समग्र हिंदू समाजमें विख्यात हैं—जैसे द्रौपदी, कौशल्या (भगवान् रामचन्द्रकी माता), सीता, कुन्ती, दमयन्ती तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही हैं। मृगावतीके आख्यानकने भी जैन, बौद्ध और ब्राह्मण—तीनोंके साहित्यमें स्थान पाया है। अब शेष सतियोंमेंसे ब्राह्मी और सुन्दरी तो भगवान् ऋषभदेवकी पुत्रियाँ थीं। राजीमती भगवान् कृष्णके चचेरे भाई जैनतीर्थंकर नेमिनाथजीकी पत्नी थी और चन्दनबाला, सुलसा, मृगावती, शिवा, प्रभावती और पद्मावती भगवान् महावीरकी भक्त थीं। मृगावती, शिवा, प्रभावती और पद्मावती तो सगी बहिनें थीं और वैशालीके प्रसिद्ध गणतन्त्री राजा चेटककी पुत्रियाँ थीं। चन्दनबाला भगवान् महावीरके साध्वी-संघकी नेता थी। मृगावती उनकी शिष्या थी। अवशेष सुभद्रा और पुष्पचूलाका समय निश्चिततया जाननेमें नहीं आया।

प्रातःस्मरणीय सोलह मुख्य सतियोंके सम्बन्धमें सामान्यतया जानकारी कराके अब पाठकोंको सती राजीमतीका संक्षिप्त परिचय कराया जा रहा है। अन्य सतियोंसे इनमें एक विशेषता है—वह है प्रबोधक वचनोंद्वारा विचलित कामासक्त रथनेमिको सुपथपर लाना। कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

गौरीपुर नगरमें पुरुषोत्तम भगवान् कृष्णके पिता वसुदेवके बड़े भाई समुद्रविजयजीकी पत्नी शिवादेवीकी रत्नगर्भा कुक्षिसे बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) का जन्म हुआ था। बाल्यकालसे ही वे बड़े विरक्त थे। अतः विवाहके लिये माता-पिताके अनुरोधको वे कभी कुछ, कभी कुछ कहकर टालते रहते। पर पुरुषोत्तम कृष्णने उनकी सगाई मथुराके राजा उग्रसेनकी गुणवती पुत्री राजीमतीसे कर ही डाली। नियत समयपर बारात उग्रसेनके यहाँ पहुँची। पर कुमार अरिष्टनेमिने विवाहके प्रीतिभोजके लिये इकट्ठे किये हुए पशुओंका बाड़ा भरा देखा तो वे सिहर उठे और अपने विवाहके उपलक्षमें इतने निरपराध जीवोंका प्राणघात हो—यह उन्हें असह्य हो गया और बिना विवाह किये ही वे लौट गये और वैराग्यभावसे गिरनार पर्वतपर जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। राजीमतीको ज्ञात होनेपर उसने भी उनका अनुसरण किया और माता-पिता एवं सखियोंकी इस आज्ञाको कि अन्य किसी कुमारके साथ तुम्हारा विवाह कर दिया जाय, ठुकरा दिया। 'उत्तराध्ययनः सूत्र'के अनुसार भगवान् नेमिनाथके दीक्षा-अवसरपर पुरुषोत्तम कृष्णने कहा था कि 'हे संयमीश्वर! आप अपने अभीष्ट श्रेय (मोक्ष) को प्राप्त हों।' इसी प्रकार राजीमतीके दीक्षावसरपर भी उन्होंने कहा था कि 'हे पुत्री! इस भयङ्कर संसारको शीघ्र पार करो।'

दीक्षाके अनन्तर एक दिन गिरनारपर जाते हुए वर्षा हो जानेसे राजीमतीके वस्त्र भींग गये। उन्होंने उन्हें सुखानेके लिये एक गुफामें प्रवेश किया और भींगे कपड़े उतारने लगी। इसी समय गुफामें रहे हुए साधु रथनेमिकी दृष्टि उसपर जा पड़ी और उसके अद्भुत रूप लावण्यसे वह विचलित हो उठा। राजीमतीने उसे देखते ही सम्भ्रमसे अपने अङ्गोंको ढक लिया और सकुचाकर बैठ गयी। कामासक्त रथनेमिने उसे अपनी इच्छा बतलाते हुए अपने साथ विषय-भोगोंको भोगनेकी प्रार्थना की, पर राजीमतीका आदर्श महान् था। वह

कब विचलित होनेवाली थी। उसने उसे निर्भीक उद्बोधक वचनोंद्वारा प्रतिबोध देकर संयमभ्रष्ट जीवनको गिरते-गिरते बचा लिया।

'हे रथनेमि! कदाचित् तुम रूपमें साक्षात् वैश्रमण, लीलामें नल, कुबेर या इन्द्र हो, तो भी मैं तुम्हारी कामना नहीं करती। अगन्धन कुलमें उत्पन्न सर्प अग्निमें जल भले ही जाय पर उगले हुए विषको वापस नहीं लेता—पीता। हे अपयशके अभिलाषी! तुम्हें धिक्कार है कि तुम वासनामय वमन किये हुए भोगोंको छोड़कर पुनः भोगनेकी इच्छा

रहे हो। इस पतित जीवनसे तो तुम्हारा मरना ही अच्छा है। मैं भोजक विष्णुकी पौत्री और महाराजा उग्रसेनकी पुत्री हूँ और तुम अंधकविष्णुके पौत्र और समुद्रविजयके पुत्र हो। देखो, हम दोनों गन्धनकुलके सर्प न बनें! हे संयमीश्वर! निश्चल हो संयममें स्थिर होओ। हे मुनि! यदि तुम इस तरह स्त्रियोंको देखकर आसक्त होते रहोगे तो समुद्रके किनारे हवासे हिलते हुए झाड़की तरह उच्च भूमिकासे गिर पड़ोगे। जैसे ग्वाला गायोंको चराता हुआ उनका स्वामी नहीं, जैसे चाभी रखनेसे भण्डारी मालिक नहीं बन जाता, उसी तरह यदि तुम विषयाभिलाषी होगे तो केवल भयके अधिकारी होओगे, उज्ज्वल चरित्रके नहीं। अतः हे रथनेमि! अपनी इन्द्रियोंको वश करो, आत्माको कामभोगोंकी वासनासे हटाओ।'

ब्रह्मचारिणी साध्वीके इन शब्दोंसे रथनेमि होशमें आये; जैसे हाथी अंकुशसे वशमें आ जाता है, वैसे ही इन उद्बोधक शब्दोंने उसे पुनः संयममें स्थिर बना दिया। धन्य हैं सती राजीमती, धन्य है उनकी दृढ़ता। उनका सतीत्व-आदर्श आज भी घर-घरमें जितेन्द्रियताका संदेश दे रहा है। उनके आत्म-स्पर्शी शब्द आज भी विषयरूपी विषके विनाशनमें गारुड मन्त्र हैं। पाठक भी उन्हें पुनः-पुनः स्मरणकर सच्चरित्र बननेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर लें। इसी उज्ज्वल भावनाके साथ लेखक विश्राम लेता है।

महासती चन्दनबाला

(लेखक—श्रीताराचंदजी सेठिया)

भगवान् महावीरके समयमें चम्पानगरी (बिहार) में जो आजकल चम्पारनके नामसे प्रसिद्ध है, दधिवाहन नामके क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। वे बड़े ही न्यायप्रिय एवं प्रजा-पालक राजा थे। इन्हीं राजाके धारिणी नामकी रानी थी, जो बड़ी रूपवती एवं गुणवती थी। रानीके वसुमती (जिसका आगे चलकर नाम चन्दनबाला पड़ा) नामकी पुत्री थी। वसुमती भी माके सदृश रूपवती, गुणवती एवं बुद्धिमती थी। बड़ी होनेपर उसे धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा दी गयी। राजा-रानीने उसका विवाह नहीं किया; वे चाहते थे कि हमारी लड़की पूर्ण ब्रह्मचारिणी रहकर महिलासमाजके सामने एक आदर्श उपस्थित करे। वसुमती भी यही चाहती थी; क्योंकि उसकी माताने इसी प्रकारकी शिक्षा उसे दी थी। अतः विवाह नहीं किया गया।

चम्पापुरीकी सीमापर कौशाम्बी नामकी नगरी थी। वहाँ शतानीक नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम मृगावती था। मृगावती धारिणीकी सगी बहिन ही थी। अतः दोनों राजा आपसमें सम्बन्धी भी थे। फिर भी वह चम्पापुरी-पर अपना अधिकार जमानेके लिये आतुर हो रहा था। उसने मौका देखकर अपनी सेना सुगठित की और चम्पापुरीपर धावा बोल दिया। इधर दधिवाहनकी मामूली सेना थी; क्योंकि न तो वह किसी राजापर आक्रमण ही करना चाहता था और न उसे स्वप्नमें भी यह आशा थी कि कोई उसपर हमला करेगा। उसकी सभी राजाओंसे सन्धियाँ थीं। वह अहिंसात्मक नीतिको माननेवाला शान्तिप्रिय राजा था। वह निरर्थक थोड़ेसे स्वार्थके लिये न तो लाखों-करोड़ों आदमियोंका खून बहाना चाहता था और न उसके अधीन ही होना चाहता था। अतः दधिवाहन जंगलमें भाग गया। परंतु उसके मन्त्रियोंने अपनी मुट्ठीभर फौज लेकर शतानीककी फौजका सामना किया। परंतु कहाँ यह थोड़ी-सी सेना और कहाँ शतानीककी विशाल सेना। अन्तमें शतानीककी विजय हुई।

शतानीकका एक रथी (रथपर लड़नेवाला योद्धा) राजमहलको लूटनेके लिये वहाँ आ पहुँचा। वहाँ विविध प्रकारके रत्नोंको देखकर उसको अत्यन्त प्रसन्नता हुई; परंतु जब उसने रानीके अनुपम सौन्दर्यको देखा तो उन सब रत्नोंको भूल गया और उसे बलपूर्वक प्राप्त करनेके निश्चयसे अपनी तलवार निकालकर कहने लगा—'उठो और मेरे साथ चलो। अब तुम्हारा यहाँ कुछ नहीं है। या तो मेरे साथ चलो, नहीं तो यह तलवार तुम्हारा भी खून पीनेमें नहीं हिचकेगी।' धारिणीने सोचा कि 'यह योद्धा युद्धके नशेमें पागल हो रहा है। नशा शान्त होनेपर मान जायगा।' अतः रानी अपनी लड़की वसुमतीको लेकर रथपर जाकर बैठ गयी।

रथी अपने भावी सुखोंकी कल्पना करता हुआ अपने रथको जंगलमें ले गया और रानीसे अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहा—'मैं तुम्हें अपनी स्त्री बनाऊँगा।' रानीने बहुत कुछ समझाया एवं फटकारा, परंतु रथी तो उस समय कामान्ध हो

रहा था। इससे वह बलपूर्वक अपनी वासना पूर्ण करनेके लिये तैयार हो गया। इतनेमेंही धारिणीने अपनी जीभ पकड़कर बाहर खींच ली। इस प्रकार उस महासतीने अपने सतीत्वकी रक्षा करनेके लिये अपने प्राणोंकी भी बाजी लगाकर समस्त महिला-जगत्के सामने तो महान् आदर्श रक्खा ही, साथमें रथीके जीवनको भी एकदम पलट दिया। कामान्ध होनेके कारण जिसपर उपदेशका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उसे आत्मोत्सर्गद्वारा सत्यका मार्ग सुझा दिया।

वसुमती इस हृदयद्रावक दृश्यको धीरतापूर्वक देख रही थी। उसने सोचा कि 'मुझे भी अब माके बताये हुए मार्गका अनुसरण करना चाहिये, नहीं तो यह दुष्ट रथी मेरे साथ भी वैसा ही बर्ताव करेगा।' परन्तु अब रथीका हृदय-परिवर्तन हो चुका था। उसकी आँखें खुल चुकी थीं। उसने वसुमतीसे क्षमा-याचना की और कहा—'बेटी! मुझे माफ करो। मैंने महान् पाप किया है। अब मुझे बहुत ही पश्चात्ताप हो रहा है। तेरी माता महासती थी। मैं दुष्ट एक महासतीका हत्यारा हूँ। पुत्री! अपनी हत्या करके मेरे पापकी गठरीको और भारी मत करो। मैं तुम्हारे साथ स्वप्नमें भी वैसा वर्ताव न करूँगा।' इस तरहसे पश्चात्ताप करता हुआ वह वसुमतीके पैरोंपर गिर पड़ा। वसुमतीको भी विश्वास हो गया कि रथी अब सन्मार्गपर आ गया है। उसने उसको सान्त्वना दी और उसके पश्चात् दोनोंने सतीका दाह-संस्कार किया।

रथी वसुमतीको अपने घर ले आया और उसके साथ बेटी-सा व्यवहार करने लगा; परंतु रथीकी स्त्रीको सन्देह हो गया कि मेरे पति इसके सौन्दर्यपर मोहित हो गये हैं और इसे मेरी सौत बनायेंगे। अतएव इसको किसी-न-किसी तरह घरसे निकाल देना चाहिये। यद्यपि वसुमतीके आनेसे रथीके घरका सारा कार्य व्यवस्थित ढंगसे होने लगा, फिर भी रथीकी स्त्री वसुमतीको हमेशा बुरी तरहसे डाँटती थी ताकि यह अपने-आप चली जाय। परंतु वसुमती चुपचाप अपना अपराध न होते हुए भी अपनी भूल स्वीकार कर लेती थी। उसने तो क्रोधपर पहले ही विजय प्राप्त कर रक्खी थी। रथीकी स्त्रीकी यह चाल बेकार हुई। तब उसने और कोई उपाय न देखकर अपने पतिसे ही हठ किया कि 'इस लड़कीको बेचकर मुझे बीस लाख मोहरें लाकर दो, अन्यथा मैं अपना प्राण त्याग दूँगी।' रथी स्वप्नमें भी ऐसी सदाचारिणी एवं सेवापरायण कन्याको नहीं बेच सकता था; परंतु वसुमतीने स्वयं समझाया, 'पिताजी! मुझे बेच आइये और माताजीका भ्रम दूर कीजिये। यदि मैं सती हूँ तो किसमें साहस है कि मेरा सतीत्व खण्डन कर सके। क्या आपने मेरी माताका आत्म-बलिदान अपनी आँखों नहीं देखा है?' रथीको उस समय असहनीय दुःख हो रहा था, उसकी आँखोंसे आँसुओं-की धारा बह रही थी; परंतु वसुमतीके वचन शिरोधार्य समझकर वह उसको बेचनेके लिये घरसे निकल पड़ा।

जब रथी वसुमतीको लेकर बाजारके चौराहेपर पहुँचा तो वह स्वयं चिल्लाने लगी, 'भाइयो! मैं एक दासी हूँ, बिकनेके लिये आयी हूँ। मेरी कीमत बीस लाख मोहरें हैं। जो कोई खरीदना चाहे, मेरे पिताजीको मूल्य देकर खरीद सकता है।' नगरके सभी नागरिक इसकी सौम्य एवं सुन्दर आकृतिको देखकर खरीदना तो चाहते थे परन्तु एक दासीके लिये बीस लाख मोहरें-जैसी बड़ी रकम नहीं देना चाहते थे।

इतनेमें नगरकी सुप्रसिद्ध 'नगरनायिका' वेश्या आयी। वसुमतीको देखकर उसे अपार हर्ष हुआ। वेश्या अपने भावी स्वप्नोंके किले बनाने लगी कि इस लड़कीको पाकर मेरा धंधा चमक उठेगा। मैं थोड़े ही दिनोंमें मालामाल हो जाऊँगी। इस कन्याके लिये बीस लाख मोहरें तो क्या, करोड़ मोहरें भी दी जायँ तो थोडी हैं। परंतु वसुमती उसके शृङ्गार एवं भावसे समझ गयी कि यह कोई भद्र महिला नहीं है। अतः उसने पूछा, 'माताजी! आपके घरका आचार क्या है?' वेश्याने उत्तर दिया, 'बेटी! तू तो भोली है। मेरे यहाँ आकर तुझे दासी नहीं बनना पड़ेगा। नित्य नये-नये शृङ्गार करना और बड़े बड़े पुरुषोंको अपना दास बनाये रखना होगा।' वसुमतीने कहा—'माताजी! जिस कार्यके लिये मुझे ले जाना चाहती हैं, वह कार्य मुझसे कदापि न होगा। मेरा और आपका आचार सर्वथा एक दूसरेके विपरीत है। अतः मुझे आप न खरीदें। मैं आपके साथ कदापि नहीं चलूँगी।' वेश्याने बहुत कुछ समझाया एवं प्रलोभन दिये; परन्तु सब बेकार गये।

अब तो वेश्या और भी ज्यादा जबर्दस्ती करने लगी। परन्तु याद रखिये सदा धर्मकी ही विजय होती है, पापकी कदापि नहीं हो सकती। आकाशसे देवतालोग बंदरोंके रूपमें प्रकट होकर वेश्यापर टूट पड़े और उनके शरीरको नोच डाला। वेश्या सहायताके लिये चिल्लायी, परंतु सभी लोग डरके मारे भाग चुके थे। कोई भी वेश्याको छुड़ाने न आया। बंदरोंने वेश्याको लहूलुहान कर दिया। वसुमतीको वेश्याके करुणक्रन्दनपर दया आ गयी। उसने बंदरोंको डाँटते हुए कहा—'इसे छोड दो।' बंदर सब भाग गये। वसुमतीने

वेश्याको उठाया और सान्त्वना दी। उस सतीके स्पर्शमात्रसे वेश्याका सारा भयङ्कर दर्द दूर हो गया। अब वेश्याको मालूम हुआ कि यह तो अपकारीका भी उपकार करनेवाली महासती है। उसने वसुमतीसे पश्चात्ताप करते हुए बार-बार क्षमा-याचना की एवं भविष्यमें पापका पैसा छोड़ देनेके लिये प्रतिज्ञा की। उसे अब मालूम हो गया था कि अहिंसा और सतीत्वमें कितनी महान् शक्ति है। उनकी शक्तिके सामने दुनियाकी सारी शक्तियाँ नगण्य हैं। वेश्या अपनी आत्माको धिक्कारती हुई अपने घर चली गयी। वसुमती और वेश्याकी बात बिजलीके सदृश सारे शहरमें फैल गयी।

कौशाम्बी नगरीमें धनावह नामका एक धर्मात्मा सेठ रहता था। वह निःसन्तान था। जब उसने यह वृत्तान्त सुना तो उसके हर्षकी सीमा न रही। वह दौड़ा-दौड़ा उस कन्याको खरीदनेके लिये आया। वसुमतीने वही बात पूछी—'पिताजी! आपके घरका आचार क्या है?' सेठजीने गम्भीरतासे उत्तर दिया—'पुत्री! यथाशक्ति धर्माराधना करना ही मेरे घरका आचार है। मैं द्वादश व्रतधारी श्रावक हूँ। अतिथिको विमुख न जाने देना मेरा नियम है। धार्मिक कार्योंमें मेरा सहयोग देना ही तुम्हारा कार्य होगा। तेरे सत्य और शीलको पालनेमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं होगी।' सेठजीके इस प्रकारके वचन सुनकर वसुमती जानेके लिये तैयार हो गयी।

सेठजी वसुमतीको अपने घर ले गये। घर लाकर रथीको बीस लाख मोहरें दीं; परंतु उसने लेनेसे इन्कार करते हुए कहा—'मैं इस धर्मपरायण पुत्रीको कदापि नहीं बेचना चाहता, परंतु यह मेरे घरके कलुषित वातावरणमें नहीं रहना चाहती। यदि यह आपके यहाँ रहना चाहती है तो वहाँ रहे। परंतु मैं इसका मूल्य लेकर पापका भागी नहीं बनना चाहता।' अन्तमें वसुमतीके समझानेपर रथीको विवश होकर मोहरें लेनी पड़ीं। मोहरें लेकर वह अपने घर चला गया।

सेठजीने इस कन्याका नाम गुण तथा नामके अनुसार 'चन्दनबाला' रक्खा; क्योंकि चन्दन काटनेवालेको भी सुगन्ध और शान्ति देता है, उसी प्रकार यह कन्या अपकारीका भी उपकार करनेवाली स्त्रीरत्न थी। सभी लोग इसको चन्दनबाला कहने लगे।

सेठजीकी स्त्रीका नाम मूला था। उसका स्वभाव सेठजीके विपरीत था। सेठजी जितने नम्र, सरल, धार्मिक एवं दयालु थे, सेठानी उतनी ही कठोर, कपटी एवं निर्दय थी। वसुमतीके रूप एवं सौन्दर्यको देखकर उसे शक था कि कहीं सेठजी इसे मेरी सौत न बना लें। स्त्री सभी दुःखोंको सहन कर सकती है पर सौतका दुःख नहीं सह सकती!

एक दिनकी बात है कि सेठजी बाहरसे आये थे। उनके पैर कीचड़से खराब हो रहे थे। उन्होंने पानी माँगा। उस समय चन्दनबाला स्नानके बाद अपने बाल सुखा रही थी। पिताके पैर कीचड़से भरे देख वह धोने स्वयं आ गयी। यद्यपि सेठजी उससे पैर धुलवाना नहीं चाहते थे, परन्तु चन्दनबालाके आग्रह करनेसे पैर धुलवाने बैठ गये। पैर धोते समय सिरके बाल हिलनेके कारण चन्दनबालाके मुँहपर आ रहे थे, जिससे उसकी दृष्टि अवरुद्ध होती थी। सेठजीने उन बालोंको उठाकर पीछे कर दिया।

मलिनहृदया मूला यह दृश्य देख रही थी। अब तो उसे पक्का विश्वास हो गया कि सेठजी चन्दनबालासे अनुचित सम्बन्ध रखते हैं। मैं अब इस चालाक छोकरीकी खबर लूँगी।

एक बार सेठजी किसी जरूरी कार्यसे तीन-चार दिनके लिये बाहर चले गये थे। अब मूलाको मनमानी कार्रवाई करनेका सुअवसर मिल गया। उसने चन्दनबालाके सुन्दर बालोंको मुँड़वा दिया, उसके वस्त्रोंको उतार लिया। और पुराने वस्त्रोंकी काछ लगा दी। उस दुष्टा मूलाका इतनेपर भी संतोष नहीं हुआ। उसने हाथोंमें हथकड़ी और पैरोंमें बेड़ी डालकर उसको पुराने भौंरे (तहखाने, तलघर) में बंद करके ताला लगा दिया। उसका अनुमान था कि चन्दनबाला भौंरेमें भूखी पड़ी-पड़ी तीन-चार दिनमें मर जायगी। परंतु साथ-ही-साथ उसके हृदयमें भयका संचार भी हुआ कि कोई यदि चन्दनबालाके बारेमें पूछेगा तो क्या उत्तर दिया जायगा। अतः बात ढकी रखनेके लिये घरका ताला बंद करके वह अपने पीहर चली गयी।

महासती चन्दनबालाने इतना महान् सङ्कट आनेपर भी अपने धैर्यको नहीं छोड़ा। वह उस हालतमें भी सुखका अनुभव कर रही थी। वह यह बात अच्छी तरहसे जानती थी कि विपत्ति बड़ोंके लिये कसौटीमात्र है। इतना कष्ट देनेपर भी वह मूलाको धन्यवाद ही देती थी, जिसने कि उसे देवदेवका एकान्तमें गुणगान करनेके लिये सुअवसर दिया था।

आज चन्दनबालाको भौंरेमें बंद हुए तीन दिन समाप्त हो गये। चौथे दिन सेठजी घर आये तो मकान बंद मिला। सेठजी बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। इतनेमें एक नौकर आया। सेठजीके पूछनेपर उसने कहा कि 'सेठानीने हम सबको बाहर भेज दिया था। अतएव क्या हुआ, क्या नहीं, मुझे

मालूम नहीं है ।' परंतु सेठजी मूलाके मलिन स्वभावको भली-भाँति जानते थे । उन्होंने नौकरको मूलाके पीहर भेजा और चाबियाँ मँगायीं । घर खोलनेपर चन्दनबाला कहीं भी दिखायी न दी तो वे चन्दनबालाका नाम लेकर जोर-जोरसे पुकारने लगे ।

सेठजीकी आवाजको सुनकर चन्दनबालाने कहा—'पिताजी ! मैं यहाँ हूँ ।' आवाजके अनुसन्धानपर सेठजी धीरे-धीरे भौंरेके पास गये और किवाड़ खोलकर अँधेरेमें टटोलते हुए उसके पास जा पहुँचे । धीरे-धीरे उसको ऊपर उठाया और बाहर लाये । चन्दनबालाकी यह दशा देखकर सेठजीके दुःखकी सीमा न रही । वे जोर-जोरसे रोने लगे । चन्दनबालाने सान्त्वना देते हुए कहा—'पिताजी ! इसमें आपका और माताजीका कुछ भी दोष नहीं है । यह तो मेरे पिछले किये हुए कर्मोंका फल है ।' परंतु सेठजी तो शोकसागरमें डूब रहे थे । उनपर किसी बातका असर नहीं हो रहा था । सेठजीका ध्यान किसी कार्यकी ओर खींचकर उनका दुःख दूर करनेके उद्देश्यसे चन्दनबालाने कहा—'पिताजी ! मुझे भूख लगी है और मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो वस्तु सबसे पहले आपके हाथमें आवे, उसीसे पारणा करूँगी ।'

रसोईघरके तो ताला लगा हुआ था । इधर-उधर देखनेपर सूपमें पड़े हुए उड़दके बाकले दिखायी दिये । चन्दनबालाकी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये सेठजीने उन्हींको दे दिया । बाकले देकर सेठजी बेड़ी तुड़वानेके लिये लुहारको बुलाने चले गये । इधर चन्दनबाला बाकले लेकर देहलीपर बैठ गयी । उसका एक पैर देहलीके भीतर था और दूसरा बाहर । पारणा करनेके पहले उसे अतिथिकी याद आ गयी । अतः वह अतिथिके लिये भावना करने लगी ।

उधर भगवान् महावीरने खूब ही कठोर अभिग्रह धारण कर रक्खा था, वह यह था—

'राजकन्या हो, अविवाहिता हो, सदाचारिणी हो, निर्दोष होनेपर भी जिसके पाँवोंमें बेड़ियाँ और हाथोंमें हथकड़ियाँ पड़ी हुई हों, सिर मुँडा हुआ हो, शरीरपर काछ लगी हो, तीन दिनका उपवास किये हो, पारणेके लिये उड़दके बाकले सूपमें लिये हो, न घरमें हो और न बाहर हो, एक पैर देहलीके भीतर हो और दूसरा बाहर हो, दान देनेकी भावनासे अतिथिकी प्रतीक्षा कर रही हो, प्रसन्नमुख हो और आँखोंमें आँसू भी हों—इन तेरह बातोंके मिलनेसे ही मैं आहार ग्रहण करूँगा । अगर ये बातें न मिलें तो आजीवन अनशन है ।'

आहारकी गवेषणामें फिरते हुए भगवान्को पाँच मास पचीस दिन हो गये, परंतु ये बातें न मिलीं । भगवान् घूमते घूमते कौशाम्बीमें पधारे । वहाँ धनावह सेठके यहाँ गये । चन्दनबालाको उस रूपमें देखा, परंतु आँखोंमें आँसू न थे । अतः भगवान् वापस लौटने लगे । भगवान्को वापस लौटते देख चन्दनबालाके आँखोंमें आँसू आ गये । भगवान्ने अचानक पीछे देखा तो तेरहवीं बात भी मिल चुकी थी; अतएव उन्होंने भिक्षाके लिये हाथ फैला दिये । चन्दनबालाने सहर्ष उड़दके बाकले भगवान्को बहरा दिये । उसी समय आकाशसे जयनाद हुआ—'सती चन्दनबालाकी जय !' धनावह सेठके घरपर फूलों और सोनैयोंकी वर्षा होने लगी । हथकड़ी और बेड़ियाँ आभूषणोंके रूपमें बदल गयीं । सारा शरीर सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित हो गया । सिरपर कोमल और सुन्दर केश आ गये । वहाँ रत्नजटित दिव्य सिंहासन प्रकट हुआ । इन्द्रादि देवोंने चन्दनबालाको उसपर बैठाया और स्वयं स्तुति करने लगे ।

यह घटना कौशाम्बी नगरीमें बिजलीकी भाँति फैल गयी । सेठजीने, जो कि लुहारको लानेके लिये गये हुए थे, यह घटना सुनी तो खुशी-खुशी घर वापस लौट गये । मूला भी यह घटना सुनकर दौड़ी-दौड़ी आयी और चन्दनबालासे बार-बार क्षमा-याचना करने लगी । चन्दनबालाने मूलाको सान्त्वना देते हुए कहा—'माताजी ! इसमें आपका कोई कसूर नहीं है । जो होनी होती है, वह तो होकर ही रहती है । यदि आप ऐसा न करतीं तो भगवान् महावीरकी पारणा मेरे हाथसे कैसे होती ? अतः आपके ऐसा करनेसे ही मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ ।' इसी तरहसे वेश्या और रथीकी स्त्रीने भी आकर क्षमा माँगी ।

जब राजा शतानीक और रानी मृगावतीको यह मालूम हुआ तो उनको भी बड़ा दुःख हुआ और वे पश्चात्ताप करने लगे । शतानीकने सोचा कि 'मेरे ही थोड़ेसे स्वार्थके लिये इतने आदमी मारे गये और इतनी बहनें विधवा हो गयीं ।' राजा और रानी दोनोंने आकर क्षमा माँगी ।

इसके बाद शतानीकके बहुत ही अनुरोध करनेपर चन्दनबाला सेठजीकी आज्ञा लेकर राजाके यहाँ चली गयी । राजा शतानीकने दधिवाहनको बुलाकर उससे क्षमा माँगी और चम्पापुरीका राज्य वापस उसको सौंप दिया ।

कुछ दिनोंके बाद वह अवसर उपस्थित हो गया, जिसके लिये चन्दनबाला प्रतीक्षा कर रही थी । भगवान् महावीरको 'केवल ज्ञान' उत्पन्न हो गया । संसारके कल्याणार्थ वे ग्रामानुग्राम विचरने लगे । चन्दनबालाको जब यह मालूम हुआ तो शतानीक और मृगावतीने आज्ञा लेकर भगवान्के पास

जाकर दीक्षा ग्रहण की। स्त्रियोंमें सर्वप्रथम दीक्षा लेनेवाली चन्दनबाला ही थी। उसीसे साध्वीरूप तीर्थका प्रारम्भ हुआ। भगवान्‌ने उसे साध्वी-संघकी नेत्री बनाया।

यथासमय मृगावतीने भी दीक्षा ली। वह चन्दनबालाकी शिष्या बनी। धीरे-धीरे काली, महाकाली, सुकाली आदि रानियों-ने भी संयम अङ्गीकार किया। इस तरहसे छत्तीस हजार साध्वियोंकी मुख्या बनकर वह लोककल्याणार्थ ग्रामानुग्राम विचरने लगी।

चन्दनबालाकी छत्तीस हजार साध्वियोंमेंसे एक हजार चार सौ साध्वियोंको 'केवल ज्ञान' प्राप्त हुआ। आयु पूरी होनेपर एक हजार चार सौ साध्वियाँ शेष कर्मोंको खपाकर मुक्तिको प्राप्त हुईं।

सती मृगावती

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

भगवान् महावीरके समकालीन कौशाम्बीके नरेश शतानीक-की पत्नी मृगावतीकी कथा भारतीय साहित्यमें प्रसिद्ध है। कथासरित्सागर आदि वैदिक कथाग्रन्थोंमें, इसी प्रकार बौद्धसाहित्यमें भी पायी जाती है; पर जैनसाहित्य प्राचीनताके नाते विशेष प्रामाणिक प्रतीत होता है। हिंदी-साहित्यमें भी मृगावतीका आख्यान प्रसिद्ध है। सोलहवीं शताब्दीके मुस्लिम कवि कुतबनने भी इस कथासे प्रभावित होकर हिंदीमें मृगावतीकी कथा रची, जिसकी प्रति बीकानेर राज्यकी अनूप संस्कृत लाइब्रेरीमें विद्यमान है। यहाँ तुलनात्मक अध्ययनके लिये जैनसाहित्यमें वर्णित मृगावतीकी कथाका परिचय दिया जा रहा है।

उपलब्ध जैनसाहित्यमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ एकादश अङ्गसूत्र हैं। उनमेंसे पाँचवें 'भगवती सूत्र'के बारहवें शतकके दूसरे उद्देशकमे जयन्ती श्राविकाके प्रसंगमें शतानीक, उदयन एवं मृगावतीका वर्णन है, जिसका सार इस प्रकार है—

'कौशाम्बी नगरीमें चन्द्रावतरण नामक चैत्य था। एक समय भगवान् महावीरस्वामी वहाँ पधारे। उस समय राजा उदयन उनके दर्शन करनेको गये। उदयनके पिताका नाम शतानीक और माताका नाम मृगावती था। वह वैशालीके प्रसिद्ध राजा चेटककी पुत्री थी। शतानीकके जयन्ती नामक बहिन थी, जो परम जैन श्राविका थी। वह भगवान् महावीरकी परम भक्त एवं साधुओंकी सेवामें सर्वाग्रणी थी।

भगवान् महावीरके कौशाम्बी आनेका समाचार पाकर जयन्तीने अपनी भावज मृगावतीसे कहा कि 'हे देवानुप्रिया! भगवान्‌के नामश्रवणसे बड़ा लाभ होता है। अतः उनका वन्दन एवं धर्मश्रवण करें तो अपना कल्याण निश्चित है।' यह सुनकर मृगावती भी दर्शनके लिये उत्कण्ठित होकर जयन्तीके साथ वाहनमें भगवान् महावीरके पास गयी। भगवान् महावीरका धर्मोपदेश श्रवणकर नगरके अन्य लोग, उदयन और मृगावती वापस लौटे; पर जयन्तीने भगवान्‌से कई प्रश्न किये, जिनके उत्तर पाकर वह उनके पास दीक्षित हुई। उसने आर्या चन्दनाके पास शिष्यारूपसे रहकर ग्यारह अङ्ग पढ़े एवं बहुत वर्षोंतक साध्वीपना पालनकर ६० समयके उपवासपर निर्वाण प्राप्त किया।

'भगवती सूत्र'के उपर्युक्त कथनसे उदयन एवं उनकी माता मृगावतीका जैनधर्मसे विशेष सम्बन्ध प्रमाणित है। इसका एक अन्य कारण भी है; वह यह है मृगावतीके पिता राजा चेटक जैनधर्मावलम्बी थे एवं उनका भगवान्‌से कौटुम्बिक सम्बन्ध भी था। 'आवश्यक चूर्णी'के अनुसार—हैहयवंशीय राजा चेटककी रानियोंसे सात पुत्रियाँ हुई थीं, जिनमेंसे १ प्रभावती—वीतभयपत्तनके राजा उदयनको, २ पद्मावती—चम्पाके राजा दधिवाहनको, ३ मृगावती कौशाम्बीके राजा शतानीकको, ४ शिवा—उज्जयिनीके प्रद्योतको, ५ ज्येष्ठा—महावीरके ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धनको तथा ६ चेलना—राजगृहके राजा श्रेणिकको ब्याही थी। भगवान् महावीरकी माता त्रिशला चेटककी बहिन थी, अतः मृगावती उनकी भतीजी थी तथा भगवान् महावीरके मामाकी बेटी बहिन थी।

कौशाम्बी-नरेश उदयनकी माता मृगावतीका जैनधर्ममें महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैनधर्ममें सोलह सती स्त्रियाँ मानी गयी हैं, जिनका नाम प्रातःकाल बड़ी श्रद्धासे लिया जाता है। मृगावती उन्हीं सोलहमेंसे एक है। इनके सम्बन्धमें प्राचीन आवश्यकचूर्णी आदि जैनग्रन्थोंमें उल्लेख है ही, पर स्वतन्त्र-रूपसे भी निम्नोक्त चार ग्रन्थ उपलब्ध हैं—

१ मृगावती-चरित (संस्कृत) देवप्रभसूरि १३ वीं शताब्दी
२ ,, चौपाई　　सकलचन्द्र सं० १६४३ पूर्व
३ ,, ,,　　विनयसमुद्र सं० १६०२ वैशाख सुदी ५ बीकानेर
४ ,, ,,　　समयसुन्दर सं० १६६८ मुलतान

१. वर्तमान 'मेहरा' (पंजाब)

मृगावतीकी कथा भारतीय साहित्यमें बड़ी प्रसिद्ध रही है। हिंदी भाषामें कुतबन-रचित 'मृगावती' ग्रन्थ पाया जाता है। मृगावती नामक एक ग्रन्थकी एक त्रुटित प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरीमें भी है। पर वह उपर्युक्त कुतबन-रचित है या नहीं, यह अन्त भागके त्रुटित होनेसे नहीं कहा जा सकता।

अब जैनग्रन्थोंमें मृगावतीका चरित्र जिस रूपमें प्राप्त होता है, उसका सार दिया जाता है जिससे तुलनात्मक अध्ययनमें सुगमता हो जाय।

सती मृगावतीकी कथा

वैशालीके राजा चेटककी पुत्री मृगावती राजा शतानीक-की रानी थी। रानीको गर्भ रहनेके तीन महीने पश्चात् रुधिरमय बावलीमें स्नान करनेका दोहदा उत्पन्न हुआ, जिसे पूर्ण करनेके लिये युगन्धर नामक प्रधान मन्त्रीने लाल रंगसे बावलीके पानीको रक्तसदृश कर दिया। रानी ज्यों ही स्नानकर बाहर निकली कि भारण्ड पक्षी उसे मांसपिण्ड समझकर ले उड़ा। सब लोग हाहाकार करने लगे। पर पक्षीके समान उड़ न सकनेसे उसका पीछा करनेसे विवश थे। रानी भी 'बचाओ-बचाओ' पुकार करती हुई रो रही थी। अतः राजा शतानीकको बड़ा दुःख हुआ, पर सर्वत्र खोज करनेपर भी रानीका पता न चला। रानीके वियोगमें चौदह वर्ष व्यतीत हो गये।

अचानक एक दिन राजसभामें एक भीलसहित एक सेठ सोनेका कङ्कण लेकर उपस्थित हुआ और कहने लगा—'राजन्! यह भील यह कङ्कण बेचनेके लिये मेरी दूकानपर लाया है, पर इसपर आपका नाम पाकर मैं इसे आपके समक्ष ले आया हूँ।' राजाने कङ्कण पहचान लिया और भीलसे पूछा कि 'यह तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ?' भीलने कहा—'महाराज! एक समय मैं मणिके लिये साँपका वध कर रहा था कि 'मत मारो' की आवाज आयी और एक बालकने मुझे मणिके बदले अपनी माताका यह सोनेका कङ्कण ला दिया। पाँच वर्षोंतक पहननेके पश्चात् मेरी पत्नीने कहा कि 'इसके बदले मुझे कानोंके कुण्डल ला दो।'' यह सुनकर राजाने उसे कानोंके कुण्डल देते हुए उससे बालक और उसकी माताका स्थान बतलानेका अनुरोध किया। राजासहित मलयाचल पर्वतपर पहुँचकर भीलने उस स्थानको बतला दिया। वहाँ पहुँचनेपर राजाने एक तेजस्वी बालकको रूठा हुआ देखा। उसने योगियोंसे पूछा कि 'यह किसका बालक है?' इसपर एक योगीने मृगावतीको मूर्च्छावस्थामें पानेपर शीतलोपचार करनेसे ठीक होने और सचेत होनेपर समझा-बुझाकर आश्रममें लानेकी बात कही और कहा कि 'यह उसीका पुत्र है। देववाणीके अनुसार इसका नाम उदयन रक्खा गया है।' यह सुनकर राजाने उसको अपने गलेसे लगा लिया। इतनेमें मृगावती भी आती हुई दिखलायी पड़ी और राजा उसे लेकर नगरमें लौट आया। नगरजनोंके हर्षकी सीमा न रही, एवं राजाका चिरवियोग समाप्त हुआ। कुँवर उदयन वीणा वादनमें बड़े कुशल थे।

एक दिन राजा समस्त सभासदोंसहित राजसभामें बैठा था। उसने अपने नगर और राजसभाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसपर एक विदेशीने राजसभामें उत्कृष्ट चित्रोंका अभाव बतलाया। राजाने एक सर्वगुणसम्पन्न चित्रकारकी अध्यक्षतामें चित्र बनानेकी आज्ञा दी। चित्रकारको यक्षका वर था कि वह किसी भी वस्तुकी तनिक सी झलक पाकर उसे हूबहू चित्रित कर सकेगा। एक दिन चित्र अंकित करते हुए रानी मृगावतीके पैरका अँगूठा देखनेमें आया। कुशल चित्रकारने तत्काल ही यक्षके वरके कारण मृगावतीका हूबहू रूप चित्रित कर दिया। रानीकी जंघाको चित्रित करते समय काले रंगकी एक बूँद उसपर जा गिरी। उसने उसे मिटानेका बहुत प्रयत्न किया। पर सफल न होनेसे रानीकी जंघापर ऐसा ही तिल होनेका अनुमान किया। चित्रशाला तैयार होनेपर राजाने उसे बड़े गौरसे देखा और चित्रकारकी कला-का बड़ा आदर किया। इतनेमें ही रानी मृगावतीका चित्र उनकी नजरोंमें पड़ा और उसे देखते देखते जाँघपर तिलका निशान चित्रित देख उसे चित्रकारके बेहूदेपनसे अप्रसन्नता होनेके साथ ही उसके चरित्रपर सन्देह हो गया। राजाकी क्रोधाग्नि भभक उठी। उसने तत्काल ही चित्रकारको प्राणदण्डका हुक्म कर दिया; पर अन्य चित्रकारों एवं मन्त्रियोंके समझाने-पर चित्रकारसे यक्षके वरदानकी बात जानकर परीक्षा की गयी। चित्रकार परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ; फिर भी राजाने उसका दाहिना हाथ तो कटवा ही दिया। इस अन्यायपूर्ण व्यवहारसे चित्रकारको बड़ा रोष आया। वह इसका बदला लेनेकी ठानकर बायें हाथसे ही मृगावतीका चित्र बनाकर उज्जयिनीके राजा प्रद्योतके पास पहुँचा। प्रद्योत चित्रको देखकर मुग्ध हो गया। उसने मृगावतीकी मँगनीके लिये शतानीकके

१. अन्य जैनग्रन्थोंमें शतानीकके चम्पाके दधिवाहन राजापर चढ़ाई कर उसे हरानेका उल्लेख है। दधिवाहनकी पत्नी धारिणी मृगावतीकी बहिन थी। धारिणीके चन्दनबाला नामक कन्या थी, जिसके हाथसे भगवान् महावीरने छः महीने (५ दिन कम) के उपरान्त पारण (आहार-ग्रहण) किया था।

पास दूत भेजा। पर वे इस अयुक्त बातको कैसे स्वीकार कर सकते थे? अतः प्रद्योतने कौशाम्बीपर विशाल सेनाके साथ चढ़ाई कर दी। शतानीकका सैन्यबल मुकाबिला करने योग्य न था। अतः कुछ दिन लड़ाई होती रही। अन्तमें अतिसार-रोगवश शतानीकका मरण हो गया। मृगावतीने धैर्य धारण कर सतीत्वकी रक्षाके लिये एक चाल चली। उसने प्रद्योतको कहला दिया कि 'अभी तो राजाके मरणके शोकके कारण मैं उद्विग्न हूँ, अतः आप वापस पधार जायँ। समय आनेपर विचार किया जायगा। इसपर यदि आप जबरदस्ती करेंगे तो मैं प्राण-विसर्जन कर दूँगी।' प्रद्योत इस बातको उचित समझकर वापस चला गया। इधर मृगावतीने नगरके चारों ओर सुदृढ़ दीवार बनवायी और सैन्यबल बढ़ाया तथा उदयनकुमारको शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देकर योग्य बनाया।

कुछ समयके पश्चात् प्रद्योतने मृगावतीके लिये दूती भेजी, पर उसके अस्वीकार करनेपर फिर चढ़ाई की। इसी समय भगवान् महावीर कौशाम्बी पधारे। मृगावतीने उनके उपदेश सुनकर दीक्षा ग्रहण कर ली और आर्या चन्दनबालाके पास साधना कर ६० समयके उपवास कर मोक्ष पधारीं।[1]

सुभद्रा

यह सुभद्रा महाभारत-युगकी सुभद्रा— वीर अभिमन्यु-की माता नहीं, यह तो जैन-कालकी एक सती है। इसके पिताका नाम जिनदास और माताका नाम तत्त्वमालिनी था। जिनदास वसन्तपुर नगरके राजा जितशत्रुके अमात्य थे। वे जैनधर्मके अनुयायी थे, इसलिये उन्होंने पुत्रीको भी जैनधर्मकी छत्रछायामें पाला-पोसा और शिक्षा देकर बड़ा किया। सुभद्रा बड़ी ही सुशीला और भक्तिमती निकली। वह पूजा-अर्चना नित्य बड़े प्रेमसे करती थी और अतिथि-अभ्यागतों-का स्वागत-सत्कार कर उन्हें सन्तुष्ट करती थी। माता-पिताने उसे जैनधर्मकी मूर्ति समझ किसी सुपात्र जैन-युवकसे ब्याह देनेका विचार किया।

उसी समय चम्पानगरीमें बुद्धदास नामका एक जैन वणिक् रहता था। वह बौद्धधर्मका अनुयायी था। सुभद्राके गुण और सौन्दर्यपर वह मुग्ध था और उससे ब्याह करना चाहता था। किंतु सुभद्राके माता-पिता उसका विवाह किसी जैनसे करना चाहते थे। यह एक बड़ी रुकावट उसके मार्गमें थी। अतएव उसने बौद्धधर्म छोड़कर जैनधर्ममें दीक्षा ली।

बुद्धदास भी सद्गुणी और रूपवान् युवक था, अतएव सुभद्राके माता-पिताने उसका ब्याह बुद्धदाससे कर दिया। सुभद्रा अपनी ससुराल गयी। परंतु ससुरालके सब लोग बुद्धधर्मके अनुयायी थे और उनकी पूजा-अर्चना भी तदनुसार ही होती थी। सुभद्राकी तो आत्मा ही जैनधर्मसे अनुप्राणित हो रही थी। अतएव वह अपने धर्मानुसार वहाँ आचरण करने लगी। उसकी सासको यह बात बहुत खली और उसने बहूको बौद्धधर्ममें लानेके लिये बहुत प्रयत्न किया; परंतु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ गया। इससे सासको बड़ा दुःख हुआ। वह अप्रसन्न होकर बहूके विरुद्ध बुद्धदासको भड़काने लगी; परंतु बुद्धदास सुभद्राके सतीत्वमें विश्वास करता था, अतः माताकी बातोंका उसके ऊपर कोई असर न पड़ा। सुभद्रा जैनधर्मके अनुसार सदाचरण करती हुई आदर्श गृहिणीके समान जीवन बिताने लगी।

एक दिन एक जैन-साधु सुभद्राके यहाँ भिक्षा लेने आया। साधुकी आँखमें एक तिनका पड़ गया। कोमल-हृदया सुभद्रासे यह देखा न गया। वह उस साधुके पास बैठकर आँखसे तिनका निकालने लगी। उसकी सास ऐसे अवसरकी खोजमें थी ही, बुद्धदासको चुपकेसे बुलाकर सुभद्रा-को दिखलाया और उसके विरुद्ध खूब कान भरे। बुद्धदास-के हृदयमें भी सुभद्राके सतीत्वके विषयमें शङ्का हो गयी, और वह उससे अप्रसन्न रहने लगा। पति प्रेमसे वञ्चित रहने-पर सुभद्राको बड़ा दुःख हुआ। उसने भगवान्‌के ध्यान और व्रत-उपवासका अनुष्ठान प्रारम्भ किया तथा देवी-देवताओं-से अपने ऊपर आये हुए कलङ्कको दूर करनेकी प्रार्थना की।

इसी बीच एक अद्भुत घटना घटी। राजाके महलके प्रहरी जब प्रातःकाल महलके द्वार खोलनेके लिये गये तो उनसे एक भी द्वार न खुला। ज्योतिषियोंने बतलाया कि यह कोई दैवी प्रकोप है। यदि कोई पूर्ण पतिव्रता स्त्री आकर द्वार खोले तो सम्भव है कि काम बन जाय।

राजाने ढिंढोरा पिटवा दिया। राज्यसे अनेक स्त्रियाँ राजद्वारपर आयीं, परंतु सब असफल होकर लौट गयीं। सुभद्राने अपनी सासले कहा—'माताजी! मैंने मन, वचन और कर्मसे अपने पतिदेवमें एक निष्ठा रक्खी है; आज्ञा दें

१. विशेष जाननेके लिये हमारी ओरसे प्रकाशित 'सती मृगावती' पुस्तक देखना चाहिये।

तो मैं राजद्वार खोलने जाऊँ।' सासने उसकी बात हँसीमें उड़ा दी। परंतु फिर सुभद्राने उसे नम्रतापूर्वक समझाकर कहा—'माताजी! आप मेरे सतीत्वके विषयमें शङ्का करती हैं। यह समय इस बातकी परीक्षाका आ गया है। यदि मुझमें सच्ची पतिभक्ति और सतीत्व होगा तो द्वार खुल जायँगे, नहीं तो कुल-कलङ्किनी कुलटा समझकर आप मुझे घरसे निकाल देना।'

सासरो आज्ञा लेकर सुभद्रा राजद्वारपर गयी और उसके धक्का देते ही महलके द्वार खुल गये। सुभद्राके सतीत्वकी परीक्षा हो गयी। वह कसौटीपर बिल्कुल खरी उतरी। राजा उससे बहुत प्रसन्न हुए और उसका बड़ा आदर-सत्कार करके वस्त्राभूषणके साथ विदा किया। सुभद्राकी सासको भी पश्चात्ताप होने लगा कि ऐसी शीलवती बहूको मैंने व्यर्थ ही सताया था। उसने सुभद्रासे इसके लिये क्षमा माँगी। सती सुभद्राने उदारताके साथ उसे क्षमा करके जैनधर्मका महत्त्व समझाया। उसके बाद कुछ दिनोंतक गृहस्थधर्मका पालन करनेके उपरान्त सुभद्राने जैनमुनिसे संन्यासकी दीक्षा ली और अपने देशके दुःखी और अज्ञानी बहिनोंको सुख पहुँचाते हुए धर्मके मार्गपर चलनेके लिये प्रोत्साहित किया। सुभद्राका जीवन जैन-संन्यासिनीके रूपमें अमर हो गया।

उदारहृदया सुनन्दा

वेन्नातट नगरमें धनपति नामक सेठके घर सुनन्दाका जन्म हुआ था। माता-पिताने उसे लाड़-प्यारसे पाला-पोसा और शिक्षा देकर बड़ा बनाया। धीरे-धीरे सुनन्दा वयःप्राप्त हो गयी और माता-पिता उसके लिये योग्य वरकी तलाश करने लगे।

इसी बीच राजगृह-नरेशका पुत्र श्रेणिक सेठ धनपतिकी दूकानपर आया और उससे उसका परिचय बढ़ा। श्रेणिक रूपवान् और धार्मिक युवक था। सुनन्दाका उससे प्रेम हो गया और वह भी सुनन्दाके रूप, गुण और शीलको देखकर उसपर मुग्ध हो गया। सुनन्दाके पिताको जब यह बात मालूम हुई तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और सुनन्दाका ब्याह उससे कर देनेपर राजी हो गया।

श्रेणिकको जब यह बात मालूम हुई तो वह सुनन्दासे मिला और उसे समझाया कि उसके समान चलते-फिरते अनजान पुरुषके साथ ब्याह करना उसके लिये ठीक न होगा; परंतु सुनन्दाने निश्चय कर लिया था। उसने कहा—'आप मुझे झूठा भय न दिखावें। मैं अपना विचार नहीं बदल सकती। यदि मैं ब्याह करूँगी तो आपसे ही करूँगी, नहीं तो संयमपूर्वक कुमारी-व्रत धारणकर जीवन बिताऊँगी। आप परदेशी हैं, विवाहोपरान्त मुझे छोड़कर चले जायँगे तो मैं पतिव्रत-धर्मका पालन करती हुई दिनरात आपका नाम जपती रहूँगी।'

सुनन्दाके इस निश्चयसे श्रेणिकने उससे ब्याह कर लिया। विवाहके कुछ समय बाद सुनन्दाको गर्भ रहा। सुनन्दाकी माता प्रेमपूर्वक उसकी सारी इच्छाएँ पूरी करती, फिर भी सुनन्दा दिन-प्रतिदिन दुर्बल होने लगी। उसकी दुर्बलताका कारण पूछनेपर पता चला कि उसके मनमें एक इच्छा उत्पन्न हो गयी है, और उसके पूर्ण होनेकी आशा न होनेके कारण वह दिन-प्रतिदिन दुबली होती जा रही है। माताने जब उसकी अभिलाषाके बारेमें पूछा तो उसने कहा—'माँ! मैं चाहती हूँ कि हाथीपर चढ़कर बाजे-गाजेके साथ निकलूँ। रास्तेमें जो दीन-दुखी मिलें, उन्हें दान देकर अयाचक बना दूँ। अहिंसा-धर्मका पालन करूँ और साधु-संतोंको सात्त्विक भोजन कराके धर्मप्रचार कराऊँ।'

बेटीकी इस अभिलाषाको सुनकर माता प्रसन्न तो हुई, परंतु काम उसके बूतेके बाहरका था। अतएव उसने उसे अपने जामाता श्रेणिकसे कह सुनाया। वह भी अपनी पत्नीकी इस उच्च अभिलाषासे प्रसन्न हो गया। उसके पास एक अमूल्य रत्न था, जिसमें नेत्रोंको ज्योति देनेकी शक्ति थी। वेन्नातट-नगरके राजाकी लड़की सुलोचनाकी आँखें बड़ी और सुन्दर होनेपर भी तेजहीन थीं। अतएव श्रेणिकने अपने श्वसुरको वह रत्न देकर राजाके पास भेजा।

धनपति सेठने अपने रत्नके प्रकाशसे राजनन्दिनी सुलोचनाके नेत्रोंको जब ज्योति प्रदान कर दी तो राजा उससे बहुत प्रसन्न हुआ और सेठको मुँहमाँगा इनाम देनेके लिये कहा। तब धनपति सेठने अपनी कन्याकी अभिलाषा उससे निवेदन करके उसको पूर्ण करनेकी प्रार्थना की। राजा उसकी अभिलाषाकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने कोषागारसे धन-व्यय करके सुनन्दाकी अभिलाषा पूरी की।

श्रेणिक अपने पिताके राज्यमें गया। सुनन्दाने भी पीछे अपने पुत्रको साथ ले पतिगृहके लिये प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उसने दीन-दरिद्रोंकी सेवा, धर्मोपदेश, भगवान्की आराधना आदि सत्कार्योंमें अपना जीवन व्यतीत किया। महावीरस्वामीके जीवनकालमें सुनन्दा एक सद्धर्मचारिणी गृहस्थ-स्त्रीके रूपमें प्रसिद्ध थी और अन्तमें संन्यास-दीक्षा लेकर वह मोक्षकी अधिकारिणी बन गयी।—गो० दि०